



# प्राचीन भारत का राजनीतिक और सांस्कृतिक इतिहास



रतिभानु सिंह नाहर, एम० ए०, डी० फिल०

किताब महल, इलाहाबाद

१९६७

- प्रथम संस्करण, १०५६  
द्वितीय संस्करण १०६१  
तृतीय संस्करण १०६७

प्रकाशक—विताय महल, १५ धानहिन रोड, इलाहाबाद  
मुद्रक—प्रम प्रस कटरा इलाहाबाद ।

## यह तृतीय संस्करण

करण में मने एक बार उन समस्त समस्याओं व ऐतिहासिक गुणियों की की चेष्टा की है जिन पर नये अनुसंधानों से कुछ प्रकाश पड सका है, पर मुझ यह भी ध्यान रखना पडा है कि ग्रंथ केवल गस्त्राय विवेचन तक न रह जाय अथवा जिनके लिए ग्रंथ की रचना हुई है उनके हितों की रक्षण न बन जाय। अतः इस संस्करण में मन केवल कुछ आवश्यक सामं संप्रहीत किया है।

विद्यालय के प्राध्यापकों का म विशेष रूप से श्रेणी हूँ जो मुझ समय समय बहुमूल्य सुझाव देते रहे ह। पूण कुछ भी नहीं है और ज्ञान व क्षम में जापय नहीं है इस स्वाकार करते हुए म अपना यह लघु प्रयास प्रस्तुत

अध्याय

वास्तविकता योद्ध और जगत् को गुना, योद्ध पम का गान, योद्धानीत  
सामाजिक रचना—सामाजिक वर्गीकरण तथा का स्थान, ग्राम तथा नगर  
संगठन एवं आर्थिक व्यवस्था तथा आर्थिक स्थिति / कृत १९०० पृ० १००  
कुछ प्रमुख धारणाएं मध्य १५। १८५-२०८

११ मध्यसाम्राज्य का उदय—अज्ञानता व उत्तराधिकारी—उत्पन्न या उत्पन्न  
उत्पन्न व उत्तराधिकारी तथा वंश का उत्पन्न—मध्यम २०९-२३४

१२ विदेशी आक्रमण—पारसी अभियान मध्यम उदयग पर्वतगण पारसीक  
भारतीय मध्यम का प्रतिफल उत्तराधिकारी भारत योद्धा आक्रमण—सामाजिक  
जातिशील अस्पृश्यता तथा लक्ष्य भारतीय साम्राज्य मध्यम युद्ध सिक्ख  
न राहु चुरा वना उत्पन्न एवं बनिष् पारसी का परजिय विप्लव पर अधिकांश  
बुद्ध या वधवाय धीरे सात का विद्रोह सिक्ख की वापसी मित्र पर  
भाग्य अवराधक—निधि या मित्रां और ज्ञानमां मानव और क्षुद्र अस्पृ  
नां मित्र धारी व निष्क भूमिगत ता निष्क जलित विष्क आक्रमण का  
प्रभाव—सामाजिक प्रभाव सातवां एवं वाणिज्य पर प्रभाव सांस्कृतिक  
प्रभाव। २३५-२५८

१३ मौर्य काल—चंद्रगुप्त मौर्य—उत्तम प्राग्भित्त जीवन राज्याराहण उत्तरी  
निष्किय निष्किय नी परजय जलित निष्किय चंद्रगुप्त का साम्राज्य विस्तार  
चंद्रगुप्त मौर्य का शासन प्रारंभ—साम्राज्य शासन मौर्य परिषद् नगर शासन  
मौर्य मगधन याय विज्ञान ज्ञान प्रयत्न साधना समृद्धि का नगर राजमहल  
तथा उत्तम यकितगत जात व चंद्रगुप्त का भारतीय इतिहास म स्थान बिंदु  
सा—निष्किय वाह्य नीति दक्षिण विजय उत्तम परिवार उत्तरी तिथि  
जगत्क—उत्तम राज्याभिषेक उत्तरी वर्तित विजय धर्मपरायण जगत्क  
जगत्क का सम्प्रदाय जगत्क का धर्म—जगत्क व धर्म का विश्वव्यापक अशाक  
का धार्मिक नीति उत्तम साम्राज्य का विस्तार अशाक व जलित—उत्तम  
मत्त्व शाशासन स्तम्भ एवं मुक्तगत अशाक का शासन प्रबंध—राजत्व  
सिद्धांत स्वयत्त शासन मौर्य परिषद् पत्राधिकारी शासन का शासन-मुधार  
जगत्क व निष्किय याय जगत्क का यकितगत एवं पारिवारिक जीवन तथा  
उत्तम चरित्र जगत्क व उत्तराधिकारी मौर्य साम्राज्य व पतन व कारण।  
२५९-३१९

१४ मौर्यकालीन सभ्यता संरक्षित और समाज—समाज की रचना—विवाह कौटु  
म्बिक जीवन और नारी का स्थान सामाजिक प्रभाव भाजन पान दास प्रथा समाज  
का उच्च नतिर स्तर सामाजिक जीवन की विवचना जायिक जीवन—कृषि  
उद्योग वध यापार धर्म—ब्राह्मण धर्म सत्तास आदानन आजीविक जन  
धर्म वीद्ध धर्म जास्तिक जावन तास धर्म भाषा और साहित्य कला की  
उत्पत्ति। ३२-३४७

१५ मौर्यों के बाद का भारत—ब्राह्मण साम्राज्य शासक की जाति पुष्यमित्र का  
साम्राज्य निष्किय विष्किय के साध पुष्यमित्र की सफलता यचना का आक्रमण  
अक्रमय यन पुष्यमित्र का राज्य साम्राज्य, पुष्यमित्र शक और बौद्ध धर्म पुष्य  
मित्र व कर्णों की विवेचना पुष्यमित्र शक उत्तराधिकारी शक कानान संस्कृति  
और कला—कला की उत्पत्ति वंश वंश का शासन कान, अधि सातवाहिन

अध्याय

यापार, धार्मिक अवस्था—वदिक धर्म वष्णव धर्म शैव धर्म अथ देवताओं की पूजा गुप्त युग में मंदिरों का महत्व, हिंदू धर्म का विदेशों में प्रचार, बौद्ध धर्म जनधर्म गुप्तयुग में साहित्यकी उत्पत्ति—विशुद्ध साहित्य धार्मिक साहित्य दार्शनिक साहित्य, ताम्रित साहित्य, विज्ञान—ज्यामित, गणित, कला-कला की उत्पत्ति—वास्तु कला, मूर्तिकला चित्र कला संगीत-कला मुद्रा निर्माण कला।

५१८-५७५

५७६-५८८

२३ गुप्तकाल भारत का स्वर्ण युग ✓

२४ वाकाटक राजवंश—कुल मूल विन्ध्यमन प्रवरसन प्रथम रद्रसन प्रथम परवापेण प्रथम प्रभावता गुप्ती प्रवरमन द्वितीय नरद्रसन पश्चात्पण द्वितीय वसीम शापा का सक्षिप्त परिचय।

५८९-५९४

२५ गुप्त साम्राज्य के पचास से लेकर हूण के उत्थान के पूर्व का भारत।

प्रकरण १ हूणा का आक्रमण।

प्रकरण २ वत्तमा का राजवंश—मूल प्राचीन इतिहास, ध्रुवसन द्वितीय ध्रुवसन चतुर्थ उसने पश्चात् बलभी का राज्य बलभी का अधिक आर साक्ष्य तिक महत्व।

प्रकरण ३ मीतारिया का राज्य।

प्रकरण ४ मगध और मानवा के उत्तर कालीन गुप्त नरेश। ५९५-६२२

२६ धानद्वार का यक्षन यज्ञ—कुल प्रारम्भिक इतिहास हृषवदन—विजये साम्राज्य विस्तार कन्नौज का परिपत्र प्रयाग का धार्मिक सम्मेलन हृष की मृत्यु शासन प्रवच—केन्द्रीय शासन प्रान्तीय शासन ग्राम शासन दण्ड विधान सना, आय का स्रोत, हृष का व्यक्तित्व—धर्म आर्थिक नाण्य साहित्यिक रुचि, हृषकालीन भारत की सामाजिक धार्मिक एवं आर्थिक अवस्था हृष का मूल्यांकन।

६२३-६४९

२७ सातवीं शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक का भारत—राजनातिक अवस्था कर्नाटक का शशावमन का मरूप का राज्य नेपाल का राज्य, का मौर का राज्य—कर्कोटक का वंश, उत्पन्न वंश का शासन, का मौर में संस्कृति, कन्नौज का गुजरात प्रतीहार—मिर्चि माज, महेंद्रपाल, महापाल, महीपाल का उत्तराधिकारी कन्नौज के महेंद्रपाल नरेश—मदन चंद्र गाविंद चंद्र विजय चंद्र जयचंद्र महेंद्रपाल का अंत शाकम्भरा और अजमेर का चौहान—विग्रह राज चतुर्थ पश्चारात तृतीय बुद्धनसण्ड का चंदल—यशावमन धर्म विद्याधर कातिवमन मदनवमन और मुज राज, माज का उत्तराधिकारी, मामदक प्रथम जय सिंह मिह मिह राज कन्नचुरि—गागय देव लक्ष्मी वंश यश वंश बंगाल का पाल—गापान धर्मपाल टवपाल नारायण पात्र महेंद्रपाल प्रथम त्र्यपाल, विग्रहपाल विग्रहपाल तृतीय का उत्तराधिकारी, रामपाल पात्र साम्राज्य का पता, पात्र शासन का महत्व बंगाल का सन वंश—उनका मूल, विजयसन बल्लालसन लक्षण सन। ६५०-६९६

२८ दक्षिणापथ के राज्य कुल—नीपापय का अग्निप्राय दक्षिणापथ का पूर्व इतिहास चानुकया का मने वादामी का प्रारम्भिक चानुकय नरेश—मानवमन, मगध, पुनवसिन द्वितीय की मय सफलताएं और विजय उसका साम्राज्य,

## अध्याय

हृत्पुत्र का विवरण चानुसंग सत्ता का अध्याय। ११ काव्याया की शक्ति का पुनरुत्थान—विभक्तित्व विभक्त चानुसंग सत्ता का अन्त चानुसंग का शमय म धम और कथा का अध्याय—११। म इत्या ( मानस ) का राष्ट्र— उनका मूल उनका उदात्त गाथि— विीय धम गाथिद तातीय उदात्त कायो का मूल्यान्वित वृष्ण विनाय हृत्पुत्राय अमापवग पुताय वृष्ण तृतीय राष्ट्र कूटवश का पतन राष्ट्रपुटा के राज्य म धम कथा और साहित्य की अवस्था— कथा शिक्षा और साहित्य निष्पन्न कल्याण का परिणामी चानुसंग—सत्त्व विनीय सत्त्वान्य सामन्तरप्रथम आन्व मत्त विभक्तित्व पण्ड विभक्तित्व मत्त विभक्तित्व का चानुसंग म कथारा अन्तराधिपत्य परिणामी चानुसंग की शक्ति का पुनरुत्थान उदात्तपता स्वगिरिकथादव—मिहृण वारगल के कावनीय— गणपति गणपति का पञ्चात द्वारगमद्र का थावगन विहृगन्व कम्बुल परिणामी गगा का राजवश कथिग नगर का पूर्वोक्त गग। ६९५-७३५

२९ सुदूर दक्षिण के राजवश—पत्तन राज्य—उनका मूल उदात्त राजनान्वित द्वितीय पत्तन राजशक्ति का चरम विभाग—मिहृ विष्णु का वश और इमरी सांस्कृतिक उपनिषदा मन्त्र धमन प्रथम नरमिहृ धमन प्रथम परमन्वर धमन प्रथम नरमिहृ धमन द्वितीय राजमिहृ धमन नन्त्र धमन पत्तनमत्त दन्ति धमन् और उमके उत्तराधिकारी पत्तनवा की शासन पद्धति—ग्राम शासन, पत्तन युग म स हित्य कथा चीन राजकुल संगम युग म तामिन दश का समाज और वहाँ की संस्कृति संगम युग स विजयानय तव विजयालय तथा जादित्य परा न्तक परान्तक के पञ्चात जीर र उराज प्रथम का पूर्व राजराज प्रथम राजेन्द्र प्रथम राजाधिराज प्रथम राजेन्द्र (देव) द्वितीय वीर राज प्रथम अधिराजन्द्र युनातग प्रथम के पञ्चात विभक्त चाल कुलोत्तुम द्वितीय चीन शासन—केन्द्रीय सरकार सना जीर उहाजी बेडा भूमिकर और आय के साधन प्रादेशिक विभाजन याय शासन सामाजिक अवस्था—स्त्रिया का स्थान आर्थिक जीवन धार्मिक जीवन साहित्य निर्माण काय और कथा मदुरा पाण्ड्य—आठवीं जीर नवा शताब्दी म पाण्ड्य का पुनरुत्थान चेर राजवश। ७३६-७७७

३० पूर्वमध्यकालीन सभ्यता एवं संस्कृति—शासनप्रबंध—नपतन शासन युवराज मन्त्रि मण्डल सत्य विभाग जय विभाग उरु विभाग पुलिस विभाग याय विभाग वाणिज्य विभाग धम विभाग राजप्रासाद की व्यवस्था जाय-व्यय के खाल परराष्ट्र विभाग प्रातीय विभाग जिल का शासन ग्राम का शासन आर्थिक अवस्था—ग्राम कृषि वाणिज्य यापारएव उद्योग सामाजिक अवस्था—वर्गीकरण सामाजिक रीति रिवाज एव नियम सती प्रथा अथवा जौहर, भाजन वसन तथा आभूषण मनारजन के साधन वयक्तिक चरित्र धार्मिक अवस्था—हिन्दू धम शक मत वणव मत कुछ अन्य सम्प्रदाय अवतारवाद का विकास बौद्ध धम जन धम कुछ सामान्य धार्मिक विन्वास एव अविचार्ये पूर्व मध्य कालीन साहित्य एव कथा—ललित साहित्य उपयागी साहित्य पूर्वमध्यकालीन कथा—गुफा कथा द्रविड शता आय शती सजुराहो शती भवन निर्माण तथा कथा मूर्ति निर्माण समात तथा चित्रकथा। ७७८-८२२

## परिशिष्ट

(क) राजपूता की उत्पत्ति

८२३-८२९

(ख) वश-वृक्ष

८३०-८४८

## भारतीय इतिहास की स्थिति

मानव की विगत विशिष्ट घटनाओं का ही दूसरा नाम इतिहास है। आज की प्रत्येक ऐसी घटना कल का इतिहास बन जायगी। इसी प्रकार अतीत के सभी राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक विकास एवं परिवर्तन भौतिक तथा आध्यात्मिक उत्थान एवं पुनरुत्थान वर्तमान का इतिहास बनकर प्राचीन मानव तथा उसके कृत्यों की स्मृति दिला रहे हैं। किन्तु अतीत और वर्तमान का निकट सम्बन्ध स्थापित करने का कोई माध्यम चाहिए कोई साधन चाहिए जो युगों की लम्बा दूरी को कम कर सके—इतना कम कि पुरातन नूतन बनकर हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाय। साहित्यकारा एवं विभिन्न प्रकार के कलाकारों की कृतियाँ ही वह साधन हो सकती हैं जो अतीत की स्मृति दिला सकें। विश्व की समा प्राचीन सभ्यताओं का ज्ञान इन्हीं कृतियों के आधार पर प्राप्त हो सका है। साहित्यकारों की रचनाओं तथा वास्तु कला भास्कर कला, चित्र-कला तथा अन्य ललित कलाओं के कलाकारों की रचनाओं में केवल इतना अन्तर है कि एक मुखरित है तो दूसरा मूक पर दोनों की उपयोगिता निर्विवाद है। मिश्र की प्राचीन सभ्यता का ज्ञान बहो के पिरामिडों तथा स्फिक्स द्वारा अधिक स्पष्ट हो गया है यूनान के प्राचीन इतिहास का वाद्य कराने में फॉर हेरोडोटस (Herodotus) की महान कृति हिस्ट्रीज (Histories) का महत्व विशेष उल्लेखनीय है, इसी प्रकार राम के इतिहास पर प्रकाश डालने में लिवी (Livy) के एन्स (Annals) की उपयोगिता निर्विवाद है।

भारतीय इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भा इसी काटि की कृतियों का आवश्यकता है। उस प्राचीन काल का विवरण साहित्यकारों की कृतियों में प्राप्त हो और उस विवरण के आशिक साध्य रूप में प्राचीन कलाकारों द्वारा निमित्त मयना, मूर्तियाँ चित्रा तथा अन्य कला की वस्तुओं का अभाव न हो इसके इतर इतिहास जागन का अन्य कोई साधन नहीं। पश्चात्य इतिहासकारों का मन्व यत् आरोप रहा है कि प्राचीन भारत का इतिहास जानने का वाद विम्बसनाय साधन नहीं है। फ्लोन्ट महोन्व के सम्मुख तो यह प्रश्न उठना है कि क्या प्राचीन काल के हिन्दुओं की अभिरुचि इतिहास रचना की आर था? उक्त महोन्व का यह भी वाक उत्पन्न होती है कि प्राचीन भारतीयों में इतिहास रचना की शक्ति था या अथवा नहीं। इसी प्रकार सुप्रसिद्ध इतिहासकार अल्बर्नी ने भी प्राचीन भारतीयों का इतिहास रचना-सम्बन्धी उदासीनता का उल्लेख किया है। अल्बर्नी ने कहा तद स्पष्ट कह दिया है कि प्राचीन भारतीयों में यदि विसा समय या वात का इतिहास या उम समय की किसी घटना विशेष के विषय में पूछा जाता है तो वे कथार्थ कहना आरम्भ कर देते हैं। एवं इतिहासकार ने तो यहाँ तक कह दिया है कि भारतवर्ष का वाद इतिहास ही नहीं है।<sup>1</sup> पूर्ण इतिहास का ज्ञान तो पृथक् रही, भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं की तिथियाँ के विषय में लगभग

1 India has no history but episodes



सभी इतिहासकारों ने जोर देकर कहा है कि प्राचीन भारत की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की तिथियाँ या तो प्राप्य रही या जो कुछ प्राप्य भी है वह गणित्य तथा ग्रन्थगत है। एस्पिरटन महात्म्य ने तो यह स्पष्ट रूप में कहा किया है कि सिक्खर के आगमन के पूर्व की किसी भी महत्त्वपूर्ण घटना की तिथि निर्धारित करना कठिन है। किन्तु जहाँ तक प्रमुख घटनाओं की तिथियाँ के अभाव का प्रश्न है यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि विश्व के सगण्य सभी प्राचीन देशों में यह निर्धारण रहा है कि उनके इतिहास की तिथि प्रमानुसार उहाँ रक्का जा गया। आधुनिक अवेपणा तथा अद्य नव प्राप्त सामग्रियाँ के सम्मिलित अध्ययन के फलान् तिथिभ्रम का ज्ञान होने ही प्राप्त हो गया है। पर प्राचीन इतिहास अपने वास्तविक रूप में तिथि प्रमानुसार रही है। वि० स्मिथ महात्म्य ने समस्त राष्ट्रों के तिथि प्रमानुसार इतिहास के अभाव के कारण ही निरता है कि समस्त राष्ट्रों का इतिहास श्रमवद्ध करने के लिए निश्चय ही तिथियाँ का अभाव है। एसा जगता है कि प्राचीन मानव का यह सामान्य प्रवृत्ति थी कि वह तिथियाँ को महत्त्व न देकर तिथि का घटनाओं का प्रधानता देता था। विश्व के इन गिने देशों में ही तिथि प्रमानुसार इतिहास रचना का पता चलता है। राजाओं का सुविम्नत सलिकाओं तथा तत्सम्बन्धों जसह्य घटनाओं का विवरण जगभग प्रत्यक्ष देश में विवदतिपा दन्तकथाओं तथा पौराणिक कथाओं में प्राप्त होता है। भारतीय इतिहासकारों के सम्मुख तो एसी गूँचियाँ का बाहृत्य है। किन्तु सब कुछ हाते हुए भी यह निस्सन्देह नहीं कहा जा सकता कि प्राचीन भारतीयों का इतिहास रचना में प्रेम न था या उनमें एसा शक्ति न थी। फ्लोड महात्म्य की यह शका कि प्राचीन हिन्दुओं में इतिहास रचना का आरंभ अतिरिचि थी जयवा नहीं या उनमें एसे गुण विद्यमान थे अथवा नहीं विशेष तत्त्वगत नहीं। इसी प्रकार वाक्यन महोत्सव का यह मत कि हिन्दू काल में हम उस समय तक की घटनाओं का विस्तारपूर्वक तथा निश्चित रूप से वर्णन नहीं कर सकते जब तक भारत अद्य राष्ट्रों के सम्पर्क में नहीं आया अक्षरशः सत्य नहीं है। वास्तव में प्राचीन भारतीयों का इतिहास रचना में उतनी ही रचि थी जितनी अद्य विषय के ग्रन्थों का रचना में। अन्तर था केवल दृष्टिकोण का। आज के इतिहास की परिभाषा परिवर्तित हो गई है इतिहासकारों का दृष्टिकोण परिवर्तित हो गया है और इतना ही नहीं सम्भावना तो यह है कि आज का यह परिपक्व इतिहासिक दृष्टिकोण भी परिवर्तित होता जा रहा है जो सम्भवतः निकट भविष्य में ही पूर्णतया विभिन्न हो जायगा। वन तक जिन भाषण रक्नपानों नर-सहारा तथा विजया पर सह्या पठ रग दिये जाते थे और उसी समय केना सम्पत्ता तथा सस्कृति की सूक्ष्म मूल प्रवृत्तियों का बटुधा उल्लेख मात्र कर दिया जाता था आज या तो दाता परिस्थितियों के साथ 'याय' किया जाता है और समान रूप से प्रकाश डाला जाता है या सम्पत्ता एवं सस्कृति को अधिक से अधिक प्रकाश में लाने का प्रयास किया जाता है। हमारा यह जमिप्राय नहीं कि आज का इतिहासकार शब्द इतिहासिक घटनाओं को आरंभ दृष्टिपात ही नहीं करता पर वास्तव में सोचता वह कुछ ऐसे ही है। प्राचीन आर्यों ने इतिहास को क्या रूप दिया था उनका लिए इतिहास क्या था इसका पूर्ण ज्ञान हम उनकी निम्नलिखित परिभाषा से प्राप्त हो जाता है—

**पुराणमितिपुराणमाथिवादिहरण धनशास्त्रमथशास्त्रचेतिहास**

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि पुराण, इतिवृत्त आख्यायिक उदाहरण प्रथम शास्त्र और अर्थशास्त्र ही प्राचीन आर्यों का इतिहास शास्त्र था। उनकी इस

परिभाषा को सम्मुख रख कर क्या यह स्वीकार किया जा सकता है कि प्राचीन आर्यों ने 'इतिहास रचना' में उदासीनता लिखनाई अथवा उनमें 'इतिहास' लिखने का शक्ति न थी? डाक्टर बेना प्रसाद ने उचित ही लिखा है कि, त्रिथिया के न हान से विकास (सम्यता व विकास) का क्रम अच्छी तरह स्थित रहा जाता। पर उसके बाद जो कठिनाई पड़ता है वह सामग्री की कमी से नया किन्तु बहुतायत से पदा होता है। वास्तव में यदि त्रिथि क्रम व प्रश्न को ध्यान से देकर के लिए पथक करके सोचा जाय तो भारतीय इतिहास का सामग्री का इतना बहुल्य है यद्यपि उस अथाह सामग्री-सागर में प्रसिप्ताशा प्रनिवाण तथा अत्युक्ति का अभाव नही कि उन्हें इतिहास का मूलाधार तथा इतिहास जानने व साधना का माध्यम बना कर जीवनपर्यन्त कोई अवषण कर सकता है। कुछ काव्यात्मक किन्तु यथाथ रूप में प्राचीन काल की लिखित सामग्रिया का अथाह सिंधु आर्य ऐतिहासिक घटनाओं का मणिया से उपमा दी जा सकती है। समुद्र में प्रत्येक स्थान पर मणियाँ नही और प्रत्येक मणियाँ मूल्यवान नहीं। ठीक इसी प्रकार प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में प्राचीन इतिहास निहित है। प्राचीन भारतीय कलाकारों की कृतियाँ भी कम नहीं जिनसे हमारे प्राचीन इतिहास का बोध हो सके। मूर्ति-कला चित्र-कला भवन निर्माण-कला तथा अन्य नलित-कलाओं व उत्कृष्ट उदाहरण आज भी अपनी मग्नावस्था में हमारा प्राचीन सम्यता एवं मन्वृत्ति की स्मृति लिखा रह हैं। भारतीय इतिहास की सामग्री का पूरा विवरण आगे दिया जायगा।

यह पहल ही बतलाया जा चुका है कि किसी भाँ दश का इतिहास जानने में केवल दो साधन होते हैं—पहला साहित्यकारों की कृतियाँ तथा दूसरा विभिन्न कलाकारों की कृतियाँ। भारतीय इतिहास के साधना का भी इन्हीं दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

### साहित्यिक तथा पुरातात्विक

साहित्यिक सामग्री को भी सुविधा के लिए इस प्रकार विभाजित किया गया है—(१) धार्मिक साहित्य तथा (२) इहलोकपरक साहित्य। धार्मिक साहित्य भी दो प्रकार का है—(क) ब्राह्मण ग्रन्थ तथा (ख) अब्राह्मण ग्रन्थ (बौद्ध तथा जैन ग्रन्थ)। ब्राह्मण ग्रन्थों को भी श्रुति तथा स्मृति दो भागों में विभाजित किया गया है। श्रुति के अन्तर्गत चारों वेद ब्राह्मण तथा उपनिषदों की गणना की जाती है और स्मृति में दो महाकाव्य रामायण एवं महाभारत पुराण तथा स्मृतियाँ आती हैं। इसी प्रकार इहलोकपरक साहित्य निम्नलिखित पाँच प्रकार का है—

(ब) ऐतिहासिक (ख) अथ ऐतिहासिक (ग) विष्णु विवरण (घ) जाव नियाँ तथा (ङ) कल्पना प्रदान एवं गल्प साहित्य (विशुद्ध साहित्य)।

ऊपर साहित्यिक सामग्री का विभाजन किया गया है। अब पुरातात्विक सामग्री के विभिन्न भागों का उल्लेख किया जायगा। पुरातात्विक सामग्रियाँ कुछ तो अपने वास्तविक रूप में प्राप्त हुई हैं और कुछ उत्पन्न द्वारा उपलब्ध की गई हैं। ऐसा जान कितना सामग्रियाँ अभी पुरातत्ववत्ताओं के पास की प्रतीक्षा में धरती के नीचे पड़ी हैं जो इतिहास में कोई नया परिच्छेद जानें या विवादास्पद विषयों का साध्य बनने के लिए ब्याकुल हैं। इन पुरातात्विक सामग्रियों को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) अतिवृद्ध, (२) प्राचीन स्मारक तथा (३) मूर्तियाँ।

मुंबिया के लिए साहित्यिक तथा पुरातात्विक सामग्रिया का पृथक्-पृथक् विनियम किया जायगा।

## साहित्यिक सामग्री

### (१) धार्मिक साहित्य

#### ब्राह्मण ग्रंथ

वेद—वेद आयों के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। प्राचीनता तथा अनुपमेय मानना के कारण ही ये मानव रचित न शरर प्रदत्त माने गये हैं। वे चार हैं— ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद तथा अथर्ववेद। या तो उगमग चारों का उपयोगिता इतिहास-अवषण में आशिक रूप में धारणीय है किन्तु ऋग्वेद जो प्राचीनतम है इस विषय में अधिक सामग्री मिळ रहा है। प्राचीन काल में आयें किस प्रकार और कहाँ तक भारतवर्ष में अपना प्रसार कर सकीं उनसे उनसे सधियों का बंधन सप्तसिंधु का गुणगान आदि ऋग्वेद से ही प्राप्त होता है। इस आदि ग्रंथ के अभाव में सम्भवतः आयों के विस्तार का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करना कुछ कठिन कार्य हो जाता।

एक दूसरे दृष्टिकोण से भाषा का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। आधुनिक अनुसंधान-कर्त्ता बहूधा समी सामाजिक धार्मिक तथा पौराणिक विषयों का मूल वेद में खोजने की चेष्टा किया करता है और आश्चर्य है कि उसे इसमें कुछ सीमा तक सफलता मिलती है। पौराणिक तथा धार्मिक विषयों का मूल तो यहाँ सरलतापूर्वक मिल जाता है। समी घम सम्प्रदाय वाले अपने मत का उद्भव द म ढक कर स्वयं को बढ़िके धारित करते रहते हैं। भारतीय इतिहास में एक युग था जब सम्प्रदायों की बढ़िकता-अबढ़िकता पर काफी तक बिकत हुआ था और अनेक सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदायों को अबढ़िक कह कर हथ ठहराया करते रहे।

ब्राह्मण—बढ़िके मन्त्रा तथा संहिताओं की गद्य-टीकाओं को ब्राह्मण कहा जाता है। प्राचीन ब्राह्मण में एतरेय पंचविंश गतपथ, तत्तरीय आदि विंशति महत्वपूर्ण हैं। एतरेय के अध्ययन से ही सामाजिक तथा कुछ प्राचीन अभिविकत राजाओं के नामों का ज्ञान प्राप्त होता है। इनकी सूचनाओं की अय सामग्रियों की सहायता से इतिहासपरक बनाया जा सकता है। इसी प्रकार शतपथ में अपने १०० अध्यायों के कारण ही शतपथ कहलाता है भारत के पश्चिमोत्तर के गांधार शाल्य तथा केकय आदि और प्राच्य देश कुरु पाञ्चजन कौशन तथा विन्धु पर प्रकाश डालता है। सुप्रसिद्ध भाय राजा परीक्षित तथा उसके काफी बाद तक का भारतीय इतिहास का ज्ञान ब्राह्मणों द्वारा बहुत कुछ स्पष्ट हो जाता है।

उपनिषद—उपनिषदों में बृहदारण्यक छांदोग्यादि अधिक प्राचीन हैं। इन ग्रंथों से बिम्बसार के पूर्व का इतिहास जानने में सहायता ली जा सकती है। प्रो० मकडानन तथा डा० राज ब्रह्मान मित्र ने यह सिद्ध किया है कि इनका रचना काल बिम्बसार के पूर्व है। परीक्षित उसके पुत्र जनमेजय तथा बाद के राजाओं का उत्तर उपनिषदों में प्राप्त होता है जिससे यह स्वीकार किया जा सकता है कि उनकी रचना परीक्षित के कुछ बाद और बिम्बसार के पहले हुई होगी। वास्तव में ब्राह्मणों तथा उपनिषदों के सम्मिलित अध्ययन से ही परीक्षित से लेकर बिम्बसार तक के इतिहास पर कुछ सोचा जा सकता है। उपनिषदों की दाशनिकता को ध्यान में रखते हुए यह प्रारम्भिक ढंग से कहा जा सकता है कि प्राचीन आयों का देश अय सम्प देशों

क शन म कहा आग बढ़ा था । प्राचीन आर्यों क आध्यात्मिक विकास का पूरा नाम उपनिषद् म ही प्राप्त होता है । प्राचीन काल का धार्मिक अवस्था चिन्तन तथा नैतिक विकास क य जीते जागत उदाहरण हैं । वेद तथा ब्राह्मणों की महानता को ये अधिक शक्तिशाली बना देते हैं ।

वेदांग—कानान्तर म बर्दिक अध्ययन क निमित्त विशिष्ट विद्याया का शाखाया का जन्म हुआ जो वेदांग क नाम स विख्यात है । मन्त्रक उपनिषद् म छ वेदांग का इम प्रकार उल्लेख किया गया है— शिक्षावत्या व्याकरण निरुक्त छन्दो ज्यातिपम् शिक्षा (Phonetics) कल्प (Ritual) व्याकरण (Grammar), निरुक्त (Etymology) छन्दशास्त्र (Metrics) तथा ज्यातिप (Astronomy) । वेदांग का छ शाखाया मे ही बर्दिक पाठ का सरन एव सुबाध बनाया गया । आग चलकर इन विषया क पठन-पाठन म कुछ परिवर्तन हुए और इस प्रकार बर्दिक शाखाया क अन्तगत ही उनका पथक-पथक वग स्थापित हा गया । इहा वर्गों के पाठ्य ग्रन्थ क रूप म सूत्रा का निर्माण हुआ । कल्पसूत्रा का चार भागा म विभाजित किया गया । महायज्ञा स सम्बन्धित सूत्रा का श्रौत मूत्र गृह-संस्कारा पर प्रकाश डालन वान सूत्रा का गृहसूत्र धर्म अथवा नियमा स सम्बन्धित सूत्रा की घमसूत्र आर यन एव हवन-बुष्णा का प्रमश वेद एव नाप आदि स सम्बन्धित सूत्रा का शुत्रसूत्र कहा गया । वेदांग का यह विस्तृत क्षेत्र तत्कालीन धार्मिक अवस्था का एकमात्र निर्देशक है । इन्हीं सूत्रा म सामाजिक अवस्था का भी ज्ञान प्राप्त हा जाता है । किन्तु कठिना यह है कि य इतना विस्तृत तथा अथाह सागर की भांति है कि इनम स ऐतिहासिक तथ्या का राज निकालना मग्न काय नना । ऋग्वेद स लेकर सूत्रा का रचना तक का समय लगभग दस हजार २० पू० म पाँचवा शताब्दी ई० पू० तक माना जाता है । इम लम्बे अरों का इतिहास इसी बर्दिक साहित्य स प्रकाशित हाता है ।

दो महाकाव्य—बर्दिक साहित्य क पश्चान् भारताय साहित्य क दा स्तम्भ रामायण तथा महाभारत का आविर्भाव हाता है । वास्तव म सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य म य अपना ऊँचा स्थान रखत है । भारताय इतिहास का अधिक स अधिक प्रकाश म लान का थय बहुत कुछ इन महाकाव्या का हा लिया जा सकता है । रामायण क रचयिता महाकवि वाल्मीकि न मर्षाया पुण्यात्तम गम का जावनचरित्र त्रिब कर् तत्वालान भारत का राजनैतिक सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति का वाधगम्य बना लिया है । इतिहासकारा न इन महाकाव्या का ऐतिहासिक ग्रन्थ स्वीकार किया है । कुछ इतिहासकारा न तो महाभारत का आदि इतिहास तक धारित किया है किन्तु यह अधिक तर्कमगत नहीं । रामायण क अध्ययन स हा आर्यों तथा यवना एव शका क मधय का वर्णन प्राप्त हाता है । राम का साम्राज्य का भा उत्कल रामायण म प्राप्त हाता है । किञ्चित् काण्ड म यह उल्लेख आया है कि यवना का दश एव शक लागे क नगर कौरवा क दश तथा हिमाचल क मध्य स्थित है । इमा प्रकार भारत क जय भूभाग का राजाया क नियम म कम या अधिक बाल्य तिक या यथाय वान भिन्नता है । यह इतिहासकार का वनव्य है कि इम महान साहित्यिक कृति स ऐतिहासिक तथ्या का अन्वयन कर ।

मूल महाभारत क रचयिता व्यास मुनि मान जात है ; किन्तु महाभारत क सार सस्वरण हुए—जय भारत तथा मग्नभारत । महाभारत का वर्तमान रूप प्राचीन इतिहास जायायिकाया कथाया तथा उपन्यास का मन्त्र माना जा सकता है । महाभारत प्राचीन भारत का सामाजिक तथा धार्मिक परिचयित पर पयाप्त

प्रकाश डालता है। राजनीतिक परिस्थितियों का भी कुछ विवरण द्रुम शिया गया है किन्तु दुर्भाग्यवश तिथि प्रमाणों का इतिहास का द्रुम गयया अभाव है। कुछ कल्पित कथाओं का समावेश में भी ऐतिहासिक गयया के अन्वेषण में कठिनाई उपस्थित हो जाता है।

सामान्य तया महाभारत में प्रथिणाशा का इतना वास्तव्य है कि इतिहास गार उन पर पूषतया निर्भर तया रह गयता। किन्तु उनरी गयये वी विशयना यह है कि व अय-गृति का दान म प्रगार का निर्णय करत है। एन तीना महा काव्या में हा अय एव द्रविड मरुतिया का गमयय का शान प्राप्त हाता है। निषयमानुसार परिस्थितिया का य भल ही वाय न करत सों किन्तु इतना ता निविवाद है कि जिस समय इनका रचना हुँ उस समय की सामाजिक तया धार्मिक स्थिति का य पयाण पान करत हैं। एरी दाना महाकाव्या का आधार पर ती महाकाव्य युग निधारित किया गया है जिसकी सामाजिक तया धार्मिक अवस्था का पूष विवरण एन महाकाव्या में प्राप्त हाता है।

पुराण—महाकाव्या का पचात् पुराणा का स्थान आता है। पुराणा की गख्या १८ है। पुराणा की रचना का थय मूलाम्पण अथवा उनके पुत्र (सौनि) उपश्रवस या उपश्रवा का शिया गया है। पुराणा का अन्तगत पाँच विषय का वणन माधारणतया हुआ है—(१) सग (आदि सष्टि) (२) प्रतिसग (प्रलय का पचात पुनसष्टि) (३) वश (देवताओं तया ऋषिया का वश-तानिका) (४) मन्वन्तर (कल्या का महायुग जिनमें मानव का स्रष्टा मन माना गया है) तया (५) वशानु चरित (प्राचीन राजकुला का चरित)। उपरोक्त पाँच पुराण के विषय हाते हुए की अन्तरहा पुराणा में वशानुचरित का प्रकरण नहा प्राप्त हाता। यह दुर्भाग्य ही है कयकि पुराणा में जा ऐतिहासिक दृष्टिकाण से अधिक महत्वपूष विषय है वह वशानु चरित है। वशानुचरित केव न भविष्य मत्तय वाय विष्णु ब्रह्माण्ड, तया भागवत पुराणों में ही प्राप्त हाता है। गण्ड पुराण में भी पीरव इक्वाकु और वाहदथ राज वश की तानिका प्राप्त हाती है किन्तु इनकी तिथि पूषतया अनिश्चित है।

पुराणा का भविष्यवाणा शरी में कलियुग के राजाओं की तालिकाओं के गाय शशुनाग नल् मीय शग कष्व आध्र तया गुप्त वशों की वशावलिओं का प्राप्त तीना है। कलियुग के सम्राटा का इतिहास में नन कोई स्थान न दिया जाय या उर्ह काल्पनिक तक मान लिया जाय किन्तु उपरोक्त वणित वशों तया उनका सम्राटा की ऐतिहासिक कौन नही स्वाकार कर सकता। यह क्रमबद्ध या क्रमहीन तानिका है इसका प्रश्न यहा नही। शशुनागा में ही विम्बसार तया जजातशशु का उल्लख किया गया है। जन एव बौद्ध सयना का साध्य के आधार पर एहें त्रमश महाकार तया गौतम बद्ध का समकालीन स्वाकार करत हैं। चन्द्रगुप्त मीय का राज्याभिषक २२२ ई० पू० हुआ और वशानुचरित में मीय का नाम उल्लख है। जन पुराण चौथा शताब्दी तक का वणन चाहें वह जिस रूप में भी हो करत है। एसका आग क राजाओं का तानिकाओं का दा गइ है। मीय वश का तिए ता विष्णुपुराण का प्रामा णिकता निविवाद है। एसा प्रकार आध्र वश के तिय मत्स्य पुराण विशेष महत्वपूष है। वायुपुराण गुप्ता का शासन पद्धति पर प्रकाश डालता है। यह वणन चन्द्र गुप्त का काल का शासन प्रथम में वहुत कुछ समानता रखता है। उपरोक्त

पुराणा में सम्राटों का तालिकाशा की बातें शूद्र तथा म्लच्छों का वर्णवर्णन का वर्णन है। आभार शक, गदम धवन तुषार तथा हूणादि का उल्लेख इन्हीं सूत्रियों में किया गया है। उपरान्त जातियों का तालिकाशा जिसे राजकाय का वर्णन का अन्त में देा गई है मन्वन्त व उन्हा सम्राटों के समयकालान था। इस प्रकार का विवरण देकर पुराण इतिहास की प्रचुर सामग्री उपस्थित करन है। पुराण प्राचानकाल में लेकर गुप्तकाल तक के इतिहास में मन्वन्त अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं का परिचय करा है जिन्की प्रामाणिकता के लिए हम अथ साध्या का सहारा लेना पत्ता है। इतिहासकारों का पुराणा से सबधा यह असन्तोष रहा है कि ये निधिपरक नहों और साथ ही वापनिक घटनाओं का अथ एव गन्था का समावेश तो इन पुराणा में काफी छूट के साथ किया गया है। जो कुछ भाग पुराण इतिहासपरक अथ या इतिहास में न हों इतिहास की सामग्री तो है ही और एक ऐसी सामग्री जो कभी इतिहास माना जाता थी।

पुराण अपने में एक स्वतंत्र विद्या है। प्राचान युग में भारतीय जनजीवन का सामाजिक धार्मिक एवं राजनीतिक जीवन का रूप प्रदान करने में इनकी बहुत बड़ी भूमिका है। ये कभी शताब्दियों पूर्व की परंपराओं का अपने युग के ढाँचे में ढालने हुए समसामयिक जीवन का परंपरागत रूप भावा इतिहास के निर्माण का माग प्रकट करते रहे और आज एक ही साथ अपने पूर्ववर्ती युग के जीवन तथा अपने समकालीन जीवन दोनों का सुरक्षित चित्र प्रस्तुत कर रहे हैं। हम नहों कह सकते कि पुराणा के अभाव में भारतीय इतिहास के विद्यार्थी का कितना भारी अमुविधाओं का सामना करना पता होता।

स्मृतियाँ—ब्राह्मण गन्था में ऐतिहासिक उपसंगिता के दृष्टिकोण में स्मृतियों का भी विशेष महत्व है। मनु, विष्णु याज्ञवल्क्य, नारद बहुस्मृति, पराशर आदि की स्मृतियाँ विशेष उल्लेखनीय हैं। ये धर्मशास्त्र के नाम से विख्यात हैं। मनु का स्मृति इनमें अधिक प्रामाणिक है। इसका रचना लगभग दूसरी शताब्दी में हुई थी। मनु स्मृति से ही हम तत्कालीन धार्मिक तथा सामाजिक अवस्था का ज्ञान अधिक प्राप्त होता है। शासन प्रबंध तथा राजा के कर्तव्य के विषय में जो कुछ मनु ने लिखा है उससे तत्कालीन राजनीतिक चिन्तन का भा आभास मिलता है। इसी प्रकार विष्णु स्मृति से भी तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक अवस्थाओं का पता चलता है। याज्ञवल्क्य स्मृति भी इसी काटि का ग्रंथ है।

छठा शताब्दी ईस्वी के लगभग नारद तथा बहुस्मृति की स्मृतियों का रचना हुई। ये पूर्णतया कानून सम्बन्धी स्मृतियाँ हैं। राजा और प्रजा का सम्बन्ध किस प्रकार प्रिय हो उनमें कसे पारस्परिक घनिष्ठता हो इनका पूर्ण विवरण इन स्मृतियों में दिया गया है। प्रजा का विद्रोहियों वचन से रोकने के लिए राजा का क्या व्यवहार करना चाहिए इसका भी उल्लेख इन ग्रंथों में किया गया है। वणाश्रम धर्म के पालन में भी आरंभ किया गया है। इस प्रकार के वर्णन में नरनाशन इतिहास का अतिरिक्त पान प्राप्त हो जाता है। कान्धव में छठा शताब्दी का सामाजिक अवस्था के अध्ययन में ये ग्रंथ काफी सहायक सिद्ध होत हैं। इनके अतिरिक्त पराशर अग्नि, हरित ज्ञानन अगिरम मम मन्त्रक वात्पापन ध्याम शरतिमित्त रूप शरनाप काश्यप गार्य प्रकाश आदि की स्मृतियाँ भी प्राचान भारत का सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था का परंपरागत ढालना है। दूसरी शताब्दी में सानवा शताब्दी तक के विभिन्न सामाजिक उपन-पुत्रक धार्मिक अवस्थाओं का कर्तव्य के सम्पूर्ण पान का परिचय

दो म स्मृतियाँ का बहुत बड़ा हाथ है। स्मृतियों की संख्याओं के विषय में डा० बनी प्रसाद ने लिखा है कि पद्मपुराण १ ३६, बृहद् गौतम १ ५६ या ५७ १२ पण्डित ने वजयन्ती में ५७ और धीर मित्राण्य में मित्रमिश्र १ ५७ स्मृतियाँ गिती हैं। इन सभी स्मृतियों में गांधारण वर्णाश्रम धर्म राजा के वर्तमान तथा श्राद्ध एव प्रायश्चित्त इत्यादि के विषय में प्रकाश डाला गया है। स प्रकार केवल सामाजिक तथा धार्मिक विषयों पर जितना इन स्मृतियों में लिखा हुआ है उतना सम्भवतः अन्य किसी ग्रन्थ में नहीं।

### अश्वत्थाम ग्रन्थ

**बौद्ध ग्रन्थ**—गौतम बुद्ध का अवतरण भारतीय इतिहास की सर्वोत्कृष्ट घटना केवल इसलिए नहीं है कि यह महात्मा थे। यह तो आध्यात्मिक जगत के लिए प्राण है पर भौतिक दृष्टिवाणों से भी यह अवतरण महान है। गौतम बुद्ध के अनुयायियों में जिस साहित्य का सृजन किया उसका उद्देश्य पूर्णतया धार्मिक होते हुए भी भारतीय इतिहास का सामग्री उसमें बहुत कुछ निहित है। बौद्ध ग्रन्थों में त्रिपिटक अधिक महत्वपूर्ण है। सुत्त विनय तथा अभिघम्म तीनों मंत्रों के त्रिपिटक कहलाते हैं। सुत्त में दीर्घ भक्ति, सयुक्त अगुत्तर तथा लक्ष्म पाँच निकाय हैं। इन सभी निकायों में बौद्ध सिद्धान्त तथा कहानियाँ हैं। सिद्धान्तों का ऐतिहासिक महत्व बहुत है क्योंकि बौद्ध दर्शन के अध्ययन में ये काफी योग देते हैं। कहानियाँ भी तत्कालीन सामाजिक अवस्था का प्रसंगत वर्णन करती हैं। पातिमोक्ख महावग्ग चुल्लवग्ग सुत्तविभग तथा परिवर में मिकव मिकखुनियाँ के नियमों का वर्णन किया गया है। उपरोक्त पाँच ग्रन्थ विनय के अन्तर्गत हैं। अभिघम्म के सात संग्रह हैं। इनमें तत्त्वज्ञान की चर्चा की गई है। बौद्ध धर्म तथा तत्कालीन सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों का अध्ययन में इन ग्रन्थों का महत्व काफी है।

त्रिपिटक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि ये बौद्ध सभा के संगठन का पूर्ण विवरण उपस्थित करते हैं। साथ ही तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का भी ब्यौता कराते हैं।

**जातक**—बौद्ध ग्रन्थों में जातक का दूसरा स्थान है। इनकी संख्या लगभग ५४९ है। जातकों का महत्व के विषय में सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान विन्टरनिस्स ने लिखा है जातक केवल इसलिए ही अमूल्य नहीं कि उनकी साहित्य और उनकी कला का प्रकाशन बना है अपितु तीसरी शताब्दी ई पू की सभ्यता के इतिहास की दृष्टि से भी उनका बड़ा उच्च मान है। जातकों में भगवान बुद्ध के पूर्वजन्म की कथाएँ संग्रहीत हैं। यद्यपि इनका दृष्टिकोण पूर्णतया धार्मिक है किन्तु इनके अध्ययन से तत्कालीन सामाजिक तथा आर्थिक अवस्था पर पर्याप्त प्रकाश पता है। सांस्कृतिक तथा धार्मिक क्षेत्र पर तो ये पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। कुछ जातकों में बुद्ध पूर्व तथा बुद्ध कालीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियों का भी आभास मिलता है।

**दापवस महावस**—त्रिपिटक तथा जातकों के पश्चात् दीपवस तथा महावस नामक दो पालि महाकाव्यों का स्थान है। मौर्य साम्राज्य के इतिहास का अध्ययन करने में ये दोनों ग्रन्थ अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। किन्तु इनका सूचनाओं की स्वीकार करते समय तब एव विवेक से काम लेना आवश्यक है।

**मिन्द पटो**—यह अन्य पालि ग्रन्थ है। इस पुस्तक में यूनानी नरेश मिन्द पटो का मिन्दौर और बौद्ध मिशु नागसेन का वार्तालाप है। इस ग्रन्थ से तत्कालीन सामाजिक

जिक तथा धार्मिक अवस्थाओं के अतिरिक्त जाधिक अवस्था का भी पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। भारत के विन्ही व्यापार का ता इसमें सजाव चित्रण किया गया है। तत्कालीन राजनैतिक अवस्था का भी प्रासंगिक विवरण इस पुस्तक में प्राप्त होता है।

उपरोक्त वाद ग्रन्थ पालि भाषा में लिखे गए हैं। इनके बाद संस्कृत ग्रन्थों का विवरण दिया जायगा।

दिव्यावदान—सजाव संस्कृत गद्य का यह पुस्तक अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखती है। जशाक तथा उसके उत्तराधिकारियों के विषय में इसमें बहुत अधिक जानकारी प्राप्त होती है।

मञ्जुश्री मलकल्प—यह भी संस्कृत का ग्रन्थ है। इसमें मौर्य के पूर्व तथा हर्ष के बाद का राजनीतिक घटनाओं का बीच-बीच में उल्लेख मात्र कर दिया गया है। यह ग्रन्थ भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण में काफी महत्त्व रखता है।

ललित विस्तार—सम महामा गौतम बुद्ध के जीवन पर प्रकाश पता है और प्रसंगत तत्कालीन धार्मिक अवस्था तथा सामाजिक रीतियों का भी वर्णन प्राप्त हो जाता है।

अन्य बौद्ध ग्रन्थ भी भारत की सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों पर कुछ न कुछ प्रकाश डालते हैं पर उन सब का वर्णन यहाँ वांछित नहीं है।

जैन ग्रन्थ

जैन ग्रन्थ—बौद्ध ग्रन्थों की भाँति जैन ग्रन्थों में भी पूर्णतया धार्मिक हैं। इन ग्रन्थों में परिशिष्ट पवन विश्व में महत्त्वपूर्ण है। भद्रबाहुचरित्र दूसरा महत्त्वपूर्ण जैन ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में जनाचार्य भद्रबाहु के साथ-साथ चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन पर कुछ प्रकाश पड़ता है। उपरोक्त दो प्रसंगी ग्रन्थों के अतिरिक्त कथाकोष, पुण्याश्रवण-कथाकोष, लोक विभाग त्रिलोक प्रशस्ति आदि ग्रन्थों में भी जैन ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। जैन-साहित्य में कुछ ऐसी भी ग्रन्थें हैं जिनका प्रकाशन नहीं हो सका है या उनका अर्थ भाषाओं में अनुवाद नहीं हो सका है जिससे बहुत-सी ऐतिहासिक सामग्रियाँ तहाँ प्राप्त की जा सकी हैं किन्तु कल्प-सूत्रों से जो कुछ सामग्री प्राप्त हो सकी है उसकी उपयोगिता निम्नलिखित है।

## (७) इहलाकपरक साहित्य

जसा कि पत्र है अतः जहाँ जहाँ चुका है इहलाकपरक साहित्य पाँच प्रकार का है—(क) ऐतिहासिक (ख) जय ऐतिहासिक (ग) विन्ही विवरण (घ) जीवनिया तथा (ङ) कथाकोष प्रधान एवं गल्पसाहित्य (विन्ही साहित्य)।

(क) ऐतिहासिक ग्रन्थ

इतिहास का धर्म अत्यधिक विस्तृत है। इसमें अन्तर्गत राजाओं तथा उनके उत्तराधिकारियों का वर्णन सामान्य प्रसंग तथा अन्य राजनीतिक परिस्थितियों के अतिरिक्त जाधिक तथा सामाजिक परिस्थितियों का भी आता है। यहाँ ऐतिहासिक शास्त्र का जो वास्तविक अर्थ दिया गया है उसमें तात्पर्य राजाओं तथा उनके सामान्य प्रसंग से है। इन पर प्रकाश डालने का यह ग्रन्थ का ही मन्त्र है।

✓ राजतरंगिणी—कल्हण की राजतरंगिणी ही प्राचीन भारत में साहित्य का एक ऐसा ग्रन्थ है जिसमें जय में ऐतिहासिक कहा जा सकता है। इसका रचना ११४९-



५० ई० म हुई थी। राग इव विभिन्न हातर तथ्या की विवेचना करता हा काश्मीरी स्थित कल्हण का उद्देश्य था। राजतरगिणा के सगना का दृष्टिकान पूणतया एतिहासिक था। उगन काश्मीर का पूण इतिहास (आशियाल स अपनो काल ११ का) लिगा है। विभिन्न प्रथा के अध्ययन क पत्रात ही कल्हण न अपनी पुस्तक की रचना की। यद्यपि इस ग्रंथ म कुछ काल्पनिक कथाओं का समावेश है पर सातवीं शताब्दी ई० के पत्रात का जो काश्मीरी इतिहास इस पुस्तक म वर्णित है उस पर पूण विश्वास किया जा सकता है। काश्मीर के भभी राजाओं का प्रमानगर वणन राजतरगिणा म किया गया है। दुग है कि केवल काश्मीर क इतिहास पर हा इस पुस्तक म पण प्रकाश डाला गया है यदि भारत क ग्रंथ भाग के लिए भी कोई एसी पुस्तक होती तो आज एतिहासिक सामग्री के लिए इतना कठिनाइया का सामना न करना पड़ता—सम्भवत एसी कोई समस्या ही न उठता। राजतरगिणा का यदि भारतवर्ष क प्रथम एतिहासिक ग्रंथ कहा जाय ता अनुचित न होगा।

**अथ काश्मीरी इतिहासकार—**कल्हण न साहित्य म एक नई धारा उत्पन्न कर दी जिसक अनयाया अनक काश्मीर लख हा गया। राजतरगिणी म वर्णित विधि क्रम का अनुसरण जान जाने समा प्रयत्न न किया। इन लखका म जोनराज शीवर प्राय भट्ट जाति विशेष उल्लगनाय हैं पर इनके विषय म यहाँ और अधिक प्रकाश डालना इसलिए उचित नभ कि इनक ग्रंथ स प्राचीन भारत के इतिहास का कोई विशेष पान नभ प्राप्त हाता है और राजतरगिणा के सम्मुख इनका कोई महत्व नहा है। य लगभग १४वा तथा १५वा शताब्दी क इतिहास का ही अधिक बोध कराते हैं।

**गजराती इतिहासकार—**काश्मीर की भाँति गुजरात मे भी अपन वीरो के गुणगान तथा उनकी स्मृति का नवीन बनान की प्रथा प्रचलित हुई। अनेकानेक कविया तथा लेखका न इस आर सफन प्रयास किया। सोमेश्वर का नाम इनम विशेष रूप स लिया जा सकता है। इनकी दो पुस्तकें रासमाला तथा क्रीति-कीमदी गुजराती इतिहास क कुछ पहलू पर काफी प्रकाश डालती हैं। अरिसिंह के मुकुति सचीतन राजशालर क प्रबंधकोष, जयसिंह के हम्मिरमद-मदन तथा वस्तुपाल-तेजपाल प्रशस्ति क अध्ययन स गुजरात का इतिहास आभासित हा जाता है। मेरुतुग का प्रबंध चिंता मणि उदयप्रभा की मुकुतिक्रीति-कल्लोकिनी तथा बालचंद्र का बसन्तविलास भी एस ही ग्रंथ हैं जिनस गुजरात का इतिहास मखरित हा उठता है। उपरोक्त सभी ग्रन्थों तथा ग्रंथकारों का उद्देश्य प्रशस्ति एवं गुणगान रहा है किन्तु इनम एतिहासिक तथ्या का भी जमाव नहा। चानक्य वश क अथान गुजरात की एतिहासिक गति विधि का ता सजाव चित्रण हम उपरोक्त ग्रंथों स हा प्राप्त होता है।

**सिंधु एवं नेपाल के इतिहासकार—**काश्मीर तथा गुजरात के अतिरिक्त सिंधु तथा नेपाल म भी स्थानाय इतिहास का लिखित रूप स देने का प्रयास आदिभारत का था जार कतिपय लेखका न इस क्षेत्र म प्रयास भा किय पर कल्हण के स्वयं दृष्टिकान के समान विसा भा लेखका दृष्टिकान न रहा। यही कारण है कि उनकी

**नोट—**जिन ब्राह्मण बौद्ध तथा जन ग्रंथों का उल्लेख ऊपर किया जा चका है उनका यथास्थान विषय परिचय आग के प्रकरणों में दिया जायगा। विद्यार्थियों को चाहिए कि उन ग्रंथों क विषय अध्ययन के लिए उन्हें अवश्य पढ़ें।

रचनाओं में सत्यता का अभाव है। राजाओं की तारीफ़ा दान में भाग्य ग्रन्थ काल्पनिक सिद्ध हुए हैं। नपादक राजाओं की वसावली का महत्व इमाति ए अधिक नहीं है।

**कौटिल्य का अर्थशास्त्र**—वास्तव में राजतरंगिणी के बाद कौटिल्य के अर्थशास्त्र का ही स्थान है। प्राचीन आर्यों ने जीवन के उद्देश्य का चार भागों में विभाजित किया—धर्म अथवा काम तथा मोक्ष। सामिक साहित्य का सज्जन का कुछ उद्देश्य किया और उससे प्राचीन इतिहास पर जो कुछ प्रकाश पड़ता है उसका उल्लेख किया जा चुका है। अर्थशास्त्र पर कौटिल्य की पुस्तक ही अधिक प्रामाणिक है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र और आज के अर्थशास्त्र में पर्याप्त अन्तर है। कौटिल्य ने अपना पुस्तक में तत्कालीन शासनपद्धति पर पूरा प्रकाश डाला है। अभी हाल में ही दक्षिण में अर्थशास्त्र की एक प्रति प्राप्त हुई है जो कौटिल्य रचित है। अनुमान किया जाता है कि यह चन्द्रगुप्त मौर्य के मंत्री का लिखा हुआ है। ई० पू० चौथी शताब्दी की राजनीतिक अवस्था पर यह पुस्तक पर्याप्त प्रकाश डालना है। किन्तु इसकी रचना विषय के विषय में इतिहासकारों में मतभेद है जिसके विषय में आगे पूरा प्रकाश डाला जाएगा। राजा का कर्तव्य शासन-व्यवस्था तथा पालादि अनेक गूढ़ विषयों का पूरा विवरण इस पुस्तक में दिया गया है। मौर्यकालीन इतिहास का तो माना यह दण्ड है।

**शुभ्रनीतिसार**—ऐतिहासिक दृष्टिकोण में इस ग्रन्थ की अपना उपयोगिता है। इसके अध्ययन से तत्कालीन भारतीय समाज उसकी चिन्तन तथा उसका प्रवृत्ति का पूरा बाव होता है। राजनीति सम्बन्धी कुछ तथ्यों का ज्ञान (जो कि किसी विषय राजा का नहीं है) हम इस प्रकार की नीतिग्रन्थों में होता है।

**कामन्दकीय नीतिसार**—लगभग सातवीं आठवीं शताब्दी ई० में कामन्दक ने कौटिल्य के अर्थशास्त्र के जनकान्त मिथ्या अपनी पुस्तक नीतिसार में ग्रहण किया तथा कुछ मौखिक पद्यों की रचना भी की। कामन्दकीय नीतिसार में अर्थशास्त्र का भाँति प्रचलित हो गया और जनकान्त मस्मृत टीकाकार तथा भखवा ने इसे उद्धृत भी किया। कुछ राजसी सिद्धान्तों का जिनका उल्लेख कौटिल्य ने किया है कामन्दक ने छाँट दिया है। सम्भवतः वे समय के काफी पीछे पढ़ चुके थे। मत्स्य तथा अग्नि पुराणों में भी उक्त नीतिसार के अविवाश पद्य उद्धृत हैं। यद्यपि कौटिल्य के अर्थशास्त्र के मर्मों कामन्दकीय नीतिसार का उतना महत्व नहीं किन्तु उन्हीं परिपाटी तथा ढरों में होने के नाते इस ग्रन्थ का भी ऐतिहासिक महत्त्व है। कामन्दक के दसवाँ शताब्दी ई० के राजस्य सिद्धांत राजा के कर्तव्य तथा उनके सामाजिक रीतियों (जिनका सम्बन्ध राज्य तथा राज्य के हितों में था) कामन्दकीय नीतिसार में अधिक स्पष्ट हो जाती है।

**वाहस्पत्य अर्थशास्त्र**—अर्थशास्त्र का परिपाटी में कम से कम दस ग्रन्थों की रचना है किन्तु वे या तो बाज के प्रवाह में समाप्त हो गये या किसी विशाल वायु ग्रहण महानता में विरुद्ध हो गये। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के पञ्चान्त बचने एक और अर्थशास्त्र प्राप्त होता है जो वाहस्पत्य अर्थशास्त्र के नाम से विख्यात है। विषय की उपयोगिता के दृष्टिकोण में ही इस ग्रन्थ का भी ऐतिहासिक ग्रन्थ का भाँति मर्यादा गया है। इसकी रचना विषय के विषय में कोई प्रामाणिक माध्य प्रवृत्ति नहीं है। एसा अनुमान लगाया जाता है कि इसमें कुछ अर्थों का रचना तथा तथा तथा शताब्दी ई० में हुई। मन्त्रिमण्डल में मन का एतना का प्रयत्न करना चाहिए नाविक

तथा मंत्रि रत्ना का प्रबंध पूरा-पूरा होता चाहिये और गुनिया जाराम तथा उपनि व लिए राजा का सराय मंत्रि तालाब तथा पाठशालाय बनयानी चाहिए। इस प्रकार व विवरण म यह स्पष्ट हा जाता है कि सरायनीन राजनीतिक विचार धारा किम करपट बठ रही थी। मंत्रिमण्डल तथा राजा का पाठशाला सम्पन्न क्या था और क्या हाता चाहिए था।

## (ग) अध एतिहासि

जिम कगोटा पर एतिहासिक ग्रन्थ की रचना दा र्ग है उगी कगोटा पर अध एतिहासिक ग्रन्थ का भा कसन का प्रयाग किया जायगा। इस वग म जिन ग्रन्थ का उल्लेख किया जायगा उनक विषय म कवन इतना कह रना उचित हागा कि उनक मयका का उद्देश्य यद्यपि एतिहासिक न था पर जिम भाग का अनुमरण करके ग्रन्थ रचना का गई है वह इतिहास व समानान्तर है। अत इन ग्रन्थ म एतिहासिक घटनाओं का प्रतिबिम्ब आभासित हाता है। इन अर्थ एतिहासिक ग्रन्थ म पाणिनी का अष्टाध्यायी भागसहिता पतञ्जलि का महाभाष्य कानिकास का मालविकाग्निमित्र तथा विशाखदत्त का मुद्राराक्षस विशय महत्वपूर्ण हैं, जिन पर पृथक-पृथक प्रकाश हाता जायगा।

पाणिनि की अष्टाध्यायी—यद्यपि यह एक व्याकरण का ग्रन्थ है किन्तु इससे मीय-पूर्व तथा मीयकालान राजनातिक अवस्था पर प्रचुर प्रकाश पता है। एम ग्रन्थ म कुछ व्याकरण का उल्लेख किया गया है जिसस यह भी स्पष्ट हा जाता है कि इसक पूर्व भा ससृष्ट व कुछ अय व्याकरण ग्रन्थ की रचना हुई था। कात्यायन का व्याकरण ग्रन्थ भा इतिहास की कुछ सामग्री उपस्थित करता है पर उसका महत्व बहुत अधिक नही है।

इस व्याकरण ग्रन्थ म उदाहरणस्वरूप जा नाम आय है अथवा जा वाक्य प्रस्तुत किया गय है उनस अपत्यक्ष रूप म हम धार्मिक इतिहास स सम्बन्धित कुछ सूत्र उपलब्ध हात है। इस ग्रन्थ का एक बहुत महत्वपूर्ण उपयोग ता तब देखने का मिलता है जब इसक भाष्यकार पतञ्जलि को जिसका उल्लेख आग किया गया है इसी माध्यम पर कुछ नवीन सामग्रियाँ प्रस्तुत करत हुए पाते है।

भागसहिता—यह पुराण का एक भाग है। इसम यवन जायमणा का उल्लेख किया गया है। इसी ग्रन्थ स (कुछ जय साम्या का लकर) हम प्रथम शती के लग-लग या इसक जासपास भारत पर यवना का आक्रमण होना जानत है।

पतञ्जलि का महाभाष्य—यद्यपि पाणिनि की अष्टाध्यायी के विवादप्रस्त सिद्धान्ता तथा कुछ अत्रोधगम्य नियमा का सुनयान के अभिप्राय म ही पतञ्जलि ने महाभाष्य की रचना की किन्तु प्रसगत उदाहरणा तथा स्पष्टीकरण क रूप म जिन उपादाना का प्रयाग किया गया है उनस प्रचुर एतिहासिक सामग्री प्राप्त हाता ह।

मालविकाग्निमित्र—यह सम्भवत महाकवि कालिदास का प्रथम नाटक है। पूणतया साहित्यिक प्रवृत्ति का होत हुए भा इस एतिहासिक नाटक का जय-गतिहासिक ग्रन्थ का कानि म रक्ता जा सक्ता है। इस नाटक म नाटककार न पुष्यमित्र शग के पुत्र अग्निमित्र तथा विम्भराज का राजकुमारा मालविका की प्रम-कथा को प्रदर्शित किया है। अग्निमित्र की एतिहासिकता सबमाय है विम्भराज की राजकुमारी

मालविका कहा तब इतिहास के निवट है यह प्रदत्त मन्विष्य है। पर मृत्यु जो भी है इस नाटक से शग वश तथा उसके पूर्ववर्ती राजवशों की समकालीन राजनीतिक परिस्थिति का बाध होता है। राजकुला के आन्तरिक जीवन का ता यद् दपण है।

**मुद्राराक्षस**—विष्णुसाहस-कृत यह नाटक यद्यपि कल्पना का आश्रय लेता हुआ अपनी साहित्यिकता की पूर्णता को प्राप्त कर पाता है पर चन्द्रगुप्त मौर्य, उसके मंत्री चाणक्य तथा कुछ नवजात राजाओं का उल्लेख करके यह इतिहास का मुलजाने में बहुत कुछ योग देता है। जितने राजाओं की तालिका मुद्राराक्षस में गई अथवा जितने पात्रों का उल्लेख किया गया है उन सबको ऐतिहासिक मानना असम्भव है पर अधिकांश पात्र इतिहास से सम्बन्धित हैं। विसु प्रकार एक राज्य का व्यक्ति दूसरे राज्य में आना पत्र (Passport) लेकर जाता था उस पर कितनी कड़ी नियमों रखी जाती थीं तथा ऐसी ही नियमों का अर्थ तथा नियमों का अर्थ हम मुद्राराक्षस से प्राप्त होता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जो कुछ वर्णित है उसके मूल तत्वा का नाटक रूप मुद्राराक्षस ही है। मलयकेतु पवनक यदि राजाओं को हम इतिहास में क्या स्थान दें तब के मंत्री राक्षस का क्या ऐतिहासिक महत्व है यह प्रश्न यहाँ विषयेतर है पर इतना अवश्य कहना चाहिए कि भारत के प्रथम भक्तिशाही सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्यारोहण के पश्चात् के सभ्यों एवं कठिनाइयों का उपाय हमें इस नाटक से काफी स्पष्ट रूप से ही मिलता है। चन्द्रगुप्त मौर्य के दण्ड विधान की कठोरता की घोषणा इस नाटक में स्वयं चाणक्य करता है। मरुतु माहिय का सम्भवतः यह प्रथम जन्मोत्सव नाटक (यद्यपि इस ऐतिहासिक नाटक की सना दी गई है) मौर्य कालीन भारत पर प्रयोजित प्रकाश जानता है।

### (ग) विदेशी विवरण

भारतीय सामग्रियों के अतिरिक्त हमारे इतिहास का कुछ अभाग्य सामग्री भी प्राप्त होती है जिससे इतिहास सम्बन्धी अनेकानेक महत्वपूर्ण तथ्यों का बाध होता है। ये सामग्रियाँ उत्साही यात्रियों, धर्मनिष्ठ भ्रमणशील विद्यार्थियों एवं विदेशी इतिहासकारों की रचनाओं से प्राप्त होती हैं और इसीलिए इन्हें विदेशी विवरण की सहायता दी गई है। विदेशी विवरण का महत्व भारतीय इतिहास का तिथि प्रमाणों के अनुसार अध्ययन करने में सहायक है। वास्तव में भारतीय सामग्रियों की कमी की पूर्ति करने के लिये विदेशी विवरण ही है। जहाँ हिन्दू जन तथा बौद्ध भ्रमण मौर्य ही जाते हैं वहाँ ये विदेशी विवरण ही इतिहासकारों को कुछ प्रकाश दे पाते हैं।

प्राचीन समय में ही भारत में प्राचीन काल से ही विदेशी यात्रियों की आवृत्ति आती रही। धन धर्म तथा भ्रमण हेतु प्रकार की भावना लेकर यहाँ यात्रियों का आगमन आया। विदेशी विवरण में विदेशियों के उन वर्णनों को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिसे लेखकों ने सुनकर लिखा है। जिन विदेशी यात्रियों का भ्रमण पश्चिम तथा लेवका का इस क्षेत्र में विशेष महत्वपूर्ण स्थान है उनमें यूनानी रोमन, चीनी, तिब्बती तथा मुसलमान अधिक प्रसिद्ध हैं।

विदेशी विवरणों के सम्बन्ध में एक बात प्रारम्भ में उल्लेखनीय है कि इनकी कुछ अपनी सीमाएँ हैं। यूनानी रोमन, चीनी तिब्बत आदि भारतीय परम्परा से प्रायः अपरिचित हैं। उनमें से बहुतों को हमारा भाषा का पान न था। ऐसी स्थिति में इनकी रचनाओं या इनके विवरणों में कुछ भाषा के दण्डन स्वभावतः हीन हैं।

दक्षिण विभिन्न रीति रिवाजों की तासिका द गतता है। पाश्चान तथा जैनमार्ग का हर मंदिर बौद्ध विहार रिवाज पर गवता था और अल्बर्नी ग्यारवी शताब्दी में भी अंग्र मंद बंध हुए पहली शती ई० पू० में भारत का चित्र रीति सगता था क्योंकि यह प्राचीन और उक्त प्राचीन प्रयकारों में मध्यकालीन वंशजों की गतता का नहीं समस्त सचता था। पर दो सीमाओं में होत हुए भा हम विभिन्नता में विवरणों के महत्व का कम नहीं कर सकते हैं। हम भारतीय इतिहास के साधनों का उल्लेख करते समय विभिन्न विवरणों का इमीलिए और अधिक महत्व देते हैं कि उनमें से कुछ तो राजदूत के रूप में भी आय है जो प्राय उत्तरायमित्यपूर्ण हैं। स्वतंत्र पयटवा का सगन एव उनका उत्साह भा गराहाय रहा है।

यूनानी—यूनानी विवरणों का सुत्रियानुसार तीन वर्गों में विभाजित कर दिया गया है—(१) सिक्न्दर पूर्व (२) सिक्न्दरवानान तथा (३) सिक्न्दर के बाद।

(१) सिक्न्दर पूर्व—सिक्न्दर पूर्व में ससका में स्काईलास हेक्टियस हेरोडोटस तथा टसियस के नाम विषय उल्लेखनाय है। स्काईलास यूनानी सनिक था। गगमग छठी शताब्दी ई० पू० में यह अपने स्वामी पारसीक सम्राट द्वारा के आदेशानुसार सिन्धु नदी का पता गगन आया था। अपने प्रयास में वह सफल हुआ। उसने अपनी यात्रा का विवरण विविध किया जो अपन वास्तविक रूप में हम भल हा लाभ न पहँचा गया हो पर अरस्तू द्वारा उद्धृत अंश से इस बात का बाध होता है कि तत्कालीन भारतीयों में प्रजा का अपक्षा राजा को उच्चकुलीन मानन का प्रथा थी।<sup>१</sup> कुछ अय वात्पनिक एव मनगडन्त वाता का भा उल्लेख स्काईलास ने किया है। हेक्टियस भी इसी युग का लेखक था जिसका विवरण स्काईलास की काटि का ही है। उपरावन दानों लेखकों में वणन से कोई प्रामाणिक ऐतिहासिक तथ्य नहीं प्राप्त होता। इनसे बवल इतना जाना जा सकता है कि भारत तथा विदेशियों का सम्बन्ध उस प्राचीन युग में स्थापित हो चका था। वास्तव में सिक्न्दर पूर्व के लेखकों में हेरोडोटस तथा टसियस ही महत्वपूर्ण हैं। हेरोडोटस तथा टसियस के ज्ञान-साधन पारसीक लेखकों ही रहे हंग। हेराडाटस तो कुछ सीमा तक ऐतिहासिक सामग्रियों अगणित काल्पनिक वणनों के पुञ्ज में द देता था पर टसियस केवल गल्प-कथाओं में ही उलझा रहे गया। हेराडाटस ने लिखा है कि भारतीय अत्यन्त युद्ध प्रिय है। हर प्रकार के सुन्दर वस्त्रों का प्रयोग यह गति जानता है। पर यहा यह जानना नितान्त आवश्यक है कि जिस जाति का हेराडाटस भारतीय का उपाधि दे रहा है वह कौन था? वास्तव में हेराडाटस की परिचित भारतीय जाति पारसीक सीमा की बबर जातियाँ थी। काबुल की घाटियाँ में बसा बाला पवताय जातियाँ से ही वह परिचित था जत जिस वह भारतीय जातियाँ बतनाता है उससे उन असम्य एव बबर जातियाँ का ही बोध होता है जो भारतके के सीमान्त भागों में निवास करता था। सम्य भारत से हेरोडोटस बिल्कुल ही परिचित न था। भारतीय रीति रिवाज रहन-सहन तथा सम्यना से अपरिचित हान के कारण हेराडाटस का विस्तृत विवरण भी ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अधिक मूल्य नहीं रखता है। लगभग पाँचवाँ शताब्दी ई० पू० में हेरोडोटस ने अपने प्रथम की रचना की थी।

टसियस ईरान के सम्राट आटजरेक्सस का राजवध था। इसने भा भारत के सम्बन्ध में बहुत कुछ निता है पर इसके वणन में कितना सत्य और कितना असत्य है-

केवल इतना ही पता लगाने में जितना अन्वेषण करना पड़ेगा उतने परिश्रम में हम किसी दूसरे साधन द्वारा ऐतिहासिक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सिक्न्दर-पूर्वक विवरणों में भारतवर्ष, उसका रीति-रिवाज, रहन-सहन आदि का प्रचुर उल्लेख प्राप्त हुआ था जो उन पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि इनका कार्य उपमागिता नहीं है। वास्तव में इन विवरणों का अन्य साधनों द्वारा प्रामाणिक बना कर बहुत कुछ ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की जा सकती है, और यदि और कुछ नहीं तो उनका इस उपमागिता का तो मानना ही पड़ेगा कि इन्हीं विवरणों में प्रभावित होकर, आनवाले लखका न भारतवर्ष का वर्णन किया जा बहुत कुछ सत्य के निकट है और जिनसे हमारा इतिहास पर काफी प्रकाश पड़ता है।

(२) सिक्न्दर बालान—सिक्न्दर के तुफानी आक्रमण का भाषणता तथा भयकरता का हम मले हाँ भुना दें किन्तु भारतवर्ष इतिहास की सामग्रियों के अन्वेषण के क्षण में उम विजयता का स्मृति आ जाता है। सिक्न्दर के साथ कुछ ऐसे भी उत्साही व्यक्ति आये थे जिन्होंने अपने समय का वस्तुनिष्ठ चित्रण किया। इन लखका में अरिस्टोबोलस निजाकस धारस, युमेनीस आदि प्रसिद्ध हैं। इन लखका न सिक्न्दर के आक्रमण का सजाव चित्रण किया है। यद्यपि इनके ग्रन्थ मूलरूप में उपलब्ध नहीं किन्तु इनके परवर्ती लखका न इनके ग्रन्थों के आधार पर या इन ग्रन्थों के उद्धरणों का लकर जिन ग्रन्थों की रचना की उनसे पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होता है। इस दृष्टिकोण में उपरोक्त लखका का महत्व अधिक है।

(३) सिक्न्दर के बालान—सिक्न्दर के भारत में लौट जाना के पश्चात् बहुत-से यूनानी लखका राजदूत या यात्री के रूप में भारत आये। कुछ लेखकों ने सिक्न्दर के अनुयायियों के आधार पर ही ग्रन्थ रचना का जिनसे भारतवर्ष इतिहास की प्रचुर सामग्री प्राप्त होता है। इन लखका में मगस्थनीज प्लिनी तालमा, डायमनस डायोडोरस, प्लूटार्क एरियन कटियस, जमिन्, स्ट्रेबो आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

मगस्थनीज यूनानी शासक मन्विकम के राजदूत के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था। मगस्थनीज कुछ दिनों तक (संभवतः ६ वर्षों तक) पाटलिपुत्र में निवास करके वापस लौट गया। उसने भारत की तत्कालीन सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थिति के विषय में बहुत कुछ लिखा है। यद्यपि इनका मूल पुस्तक उपलब्ध नहीं किन्तु अनेक ग्रन्थों में इसका उद्धरण प्राप्त होता है जिससे पर्याप्त ऐतिहासिक सामग्री मिलती है। किन्तु मगस्थनीज तथा अन्य यूनानी लेखकों के विवरणों में बहुत कुछ कमियाँ हैं। इस अभाव का मूल कारण यह है कि वे भारतीय भाषा तथा रीति-रिवाज से अपरिचित थे। मगस्थनीज ने भारतवर्ष समाज का जो वर्णन किया करता है उसमें इस कथन का पुष्टि हाँ जाता है। मगस्थनीज की पुस्तक इण्डिका के महारथ विषय यूनानी तथा रोमन लखका न भारतवर्ष का वर्णन किया है अतः इस क्षण में मगस्थनीज का महत्व बहुत अधिक है।

राजदूत के रूप में दूसरा व्यक्ति डायमनस भारतवर्ष आया था। यह मारिया के राजदरबार में आया था और अदिमकटिम (विन्डुस) के दरबार में कुछ दिनों तक रहा। इस प्रकार डायोडोरस या राजदूत के रूप में भारतवर्ष आया था। उपरोक्त दोनों लखका के मूल ग्रन्थों का कोई पता नहीं चलता—हाँ इनके परवर्तियों

सेगको ने इतने ताम का उन्मेष किया है और गाय ही इतने विवरण का भी अपने पद्यों में प्रयोग किया है जिगने आभार पर गुप्त जाग जा सकता है।

अब यमानी मगना के केवल ताम ता ही गिनाय जा सकते हैं क्योंकि उनके विवरण का कोई विषय एतिहासिक मारत नहीं है। जो यात्री मारत के जिग कोने में पदुष पाया उसका उग आभार पर ही सम्पूर्ण मारत का विवरण कर लिया।

सालमी दूसरा मगना है जिगका नाम ऐतिहासिक दक्षिणोण सं विशेष उल्लेखनाय है। मगमग दूसरी शताब्दी ई० में इगने भारतवर्ष के भूगोल सं सम्बन्धित एक पुस्तक लिगी। सैनमी का दक्षिणोण पूणतया यथागि या आ इसने विवरण में मारत का अग अधिक् है। यद्यपि मारत के भूगोल तथा उगक मानचित्र का ठीक-ठीक विस्तार सैनमी के मस्तिष्क में नहीं आया था तथापि उसका प्रयाम पूणतया अमफल नहीं माना जा सकता।

तानमा क बाण प्लिनो का नाम लिया जा सकता है। इगकी पुस्तक नेचुरल हिस्ट्री का भी इग क्षत्र में बहुत महत्व है। प्लिनो ने मारतवर्ष के पशुआ पौधों तथा खनिज पदार्थों का उल्लेख किया है। यह पुस्तक लगभग प्रथम शताब्दी ई० में लिखा गई थी।

एरियन के जल में ऐतिहासिक दक्षिणोण सं अधिक महत्वपूर्ण हैं। मारत पर मकदूनिया के विजता क आक्रमण के विषय में कोई भी भारतीय ग्रन्थ प्रकाश नहीं डालता है। ऐसी अवस्था में यदि उपरोक्त लखनो ने अपनी पुस्तका की रचना न की होती तो सिक्न्दर के आक्रमण का कोई ज्ञान हम नहीं प्राप्त हो सकता था। जल इनकी उपयोगिता निर्विवाद है।

कटियस जस्टिन तथा स्ट्रबो की देन को हम मूल नहीं सकते। उनके विवरण में चाहे जितना भी अतिरञ्जन हो चाहे जितनी भी काल्पनिक उदाहण हो व हमारे इतिहास के उनज प्रश्ना को मुलज्ञाने या उनका आशिक ज्ञान कराने में निरक्षय ही सहायक होते हैं।

एक ज्ञात लेखक की पुस्तक 'इरिथियन सागर का पेरिप्लस' भी ऐतिहासिक सामग्री प्रस्तुत करती है। भारतीय वाणिज्य पर इससे अधिक प्रकाश पड़ता है जो सम्भवत जय किसी साधन सं न प्राप्त होता।

संजिप्ट के मठाधीश काससम की इडिहा प्लुस्टस की पुस्तक क्रिश्चियन टोपोग्राफी आफ् सिंयूनिक्म का भी उतना ही महत्व है। इस पुस्तक का रचना-काल लगभग ५६७ ई० है।

चीनी—धार्मिक साहित्य का वर्णन करते हुए हमने महात्मा गौतम बुद्ध के अवतरण के महत्व पर एक दृष्टि डाली थी। यहां पुन उसी महात्मा की पुन स्मृति सहसा जा जाती है। भारतीय इतिहास को जा-वल्प बनाने के साथ ही महात्मा गौतम बुद्ध हमारे इतिहास क निर्मिराच्छादित अग का प्रकाशपूर्ण बनाने का भी उपचार अज्ञात रूप में छो गय। वह उपचार बौद्ध धर्म का प्रेरणा का फल था। मारत का बौद्ध धर्म लगभग प्रथम शताब्दी ई० में चीन पदुचा तो चीन निवा सिया क हृदय में भारतवर्ष के प्रति एक विशेष रचि उत्पन्न हो गई। धार्मिक तथा के अवपण तथा तत्सम्बन्धी ज्ञान की प्राप्ति के लिए चीनी यात्री जानापिन हो उठे। उन्हें यह भी ज्ञान विश्वास था कि गौतम बुद्ध की पावन ज मम्मूनि निरक्षय दश

नीय तथा आध्यात्मिकता का वाप होगी। इही आकांक्षाओं के बशीर्भूत होकर चीनी भारतवर्ष आये और अपनी यात्रा का पूण वक्तान्त उन्होंने लिपिबद्ध किया। चीनी साहित्य से भारतवास इतिहास के एक नम्बे युग का परिचय प्राप्त हो जाता है। यात्रियों का दृष्टिकोण यद्यपि पूणतया धार्मिक था और किमी भी वस्तु को वे उसी दृष्टिकोण से देखते थे जिसके फलस्वरूप उनका वर्णन पक्षपातग्रस्त है तथापि उनके विवरणों में से इतिहास की प्रचुर सामग्री प्राप्त हो जाती है।

चीन के प्रथम इतिहासकार शुमाशान ने लगभग प्रथम शताब्दी ई० पू० में इतिहास की एक पुस्तक लिखी। शुमाशान की इस पुस्तक से प्राचीन भारत पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। शुमाशान के पूर्व अन्य किसी चीनी लेखक ने भारतवर्ष से सम्बन्धित किसी विषय पर प्रकाश नहीं डाला था।

जिन चीनी व्यक्तिओं का इस सम्बन्ध में विशेष रूप से नाम लिया जा सकता है वे तीन यात्री फाह्यान, ह्वेनसांग तथा इत्सिंग हैं।

फाह्यान ३९९ ई० में यात्रा की कठोर यात्राओं सहित हुआ भारतवर्ष आया। लगभग १५-१६ वर्ष तक यह धर्म जिज्ञासु भारतवर्ष में रहा और बौद्धधर्म सम्बन्धी तथ्यों का ज्ञानार्जन करता रहा। उस समय भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त विजयमहोदय का शासन था। यात्री ने गंगावर्ती प्रान्तों के शासन प्रबंध तथा सामाजिक अवस्था का पूण विवरण लिपिबद्ध किया। फाह्यान की पुस्तक आज भी अपने मूल रूप में प्राप्य है तथा उसका अंग्रेजी अनुवाक भी हो चुका है। यद्यपि फाह्यान ने भारतवर्ष के अधिकांश भागों का भ्रमण किया था तथा भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और ऐसी दशा में यूनानी लेखकों का अपेक्षा उसे भारतीय इतिहास पर कुछ प्रामाणिक ढंग से लिखने का बहुत कुछ सुविधायें थीं कि धार्मिक मकीबता ने उसका दृष्टिकोण मकुचित कर दिया और वह धार्मिक विषयों के अतिरिक्त इतने लाभपरक विषयों का आरंभ उदात्तान गृह गया जिनमें उसका विवरण अधूरा सा लगता है। पर बौद्ध धर्म के विषय में फाह्यान ने जो कुछ लिखा है वह पर्याप्त है। फाह्यान बौद्ध सिद्धान्तों परिपाटियों नियमों तथा उसका प्रगतिमा के विषय में हम पर्याप्त सामग्री प्रदान करता है।

चीनी यात्रियों में ह्वेनसांग का स्थान अधिक ऊंचा है। यह लगभग ६२९ ई० में भारतवर्ष आया। उस समय हर्षवर्धन भारत का सम्राट था। ह्वेनसांग ने जो जिनानु एक उत्साही व्यक्ति था। उसने अपने जीवन के सान्द्र वर्ष भारतवर्ष में मठा विहारों स्थापना तथा विद्वत्विद्यालयों के स्थापना में वित्तों का बखल दक्षिणा भारत का छा कर ह्वेनसांग ने लगभग सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। वह राज समाजों में भी गया। नागन्दा तथा वायकुंज (बनारस) में जहाँ उस समय हर्ष राज्य कर रहा वह अधिना समय तक रहा। इसने पारश्चात्य समाज के देश नामक ग्रन्थ की रचना की। हर्षवर्धन के शासन-काल की राजनीतिक तथा सामाजिक अवस्था का बहुत कुछ परिचय ह्वेनसांग की पुस्तक में प्राप्त हो जाता है। धार्मिक अवस्था का सा इसने बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है। अतः स्वयं दृष्टिकोण के कारण ही ह्वेनसांग यात्रियों का सम्राट कहा जाता है। फाह्यान तथा इत्सिंग ने अपने समय के सम्राटों का नाम तक नहीं दिया है जब कि ह्वेनसांग ने हर्षवर्धन तथा उसके समकालीन अन्य सम्राटों के विषय में बहुत कुछ लिखा है। जिन जिन राज्यों से ह्वेनसांग अपनी यात्रा समाप्त की उन सबका संक्षिप्त वर्णन उभन किया साथ ही ह्वेनसांग ने सम्पूर्ण



लेखका न 'नक' नाम का उल्लेख किया है और माय 'ग' इनके विवरण का नाम अपने ग्रन्थों में प्रयोग किया है जिसका आधार पर कुछ जाना जा सकता है।

अब यनाता 'नका' क 'वचन' नाम तक ही गिनाये जा सकते हैं क्योंकि उनके विवरण का कोई विषय ऐतिहासिक महत्व नहीं है। जो यात्री भारत क जिस बात में पत्रों पाया उसमें उस आधार पर भी सम्पूर्ण भारत का चित्रण कर दिया।

तालिमी दूसरा 'नका' है जिसका नाम ऐतिहासिक 'ट्रिपिकाण' में विशेष उल्लेखनाय है। लगभग दूसरा शताब्दी २० में 'मन' भारतवर्ष क भूगोल में सम्बन्धित एक पुस्तक दिया। तातमा का 'ट्रिपिकाण' भूगोलया वैज्ञानिक या अतः इसके विवरण में माय का अंश अधिक है। यद्यपि भारत क भूगोल तथा उसका मानचित्र का टाक-टाक विचार तातमा क 'मन्विष्य' में नहीं जाया था तथापि 'नका' प्रथम भूगोलया अन्वेषण नहा माना जा सकता।

तातमा क 'वाट' प्लिना का नाम दिया जा सकता है। इसके पुस्तक 'निचुरा' हिन्दु' का नाम 'म' शत्रु में 'वचन' महत्व है। प्लिनी ने भारतवर्ष क 'पाजों' पौधा तथा 'मनिज' पत्तियों का उल्लेख किया है। यह पुस्तक 'तानग' प्रथम शताब्दी २० में लिखा गया।

एरिथन क 'नका' ऐतिहासिक 'ट्रिपिकाण' में जयिक महत्वपूर्ण है। भारत पर मकदूनिया क विजय क आक्रमण क विषय में 'काइ' या 'भारताय' ग्रन्थ प्रकाश नहा डालता है। एसा जवम्ब्या में यदि उपरोक्त 'नका' न 'लाना' पुस्तकों का रचना न का होता तो 'मिक्ल' क आक्रमण का 'का' पान हम नहा प्राप्त हो सकता था। अब इनका 'उपयोगिता' निर्विवाद है।

बटिपस, अस्टिन तथा स्टुबा का 'नका' हम 'नूत' नहा सकते हैं। उनका विवरण में 'चाट' जिनना या 'अतिरञ्जन' हा 'चाट' जितना या 'काल्पनिक' उपाय हा पर 'हमार' 'निहास' क 'उत्तम' प्रश्नों का 'मुद्रयान' या 'उनका' आर्थिक 'पान' करान में 'निश्चय' हा 'महायक' 'पत्र' हैं।

एक अज्ञात 'नका' का पुस्तक 'इरिथियन सागर का परिप्लस' या ऐतिहासिक 'मामथा' प्रस्तुत करता है। भारतया 'वाणिज्य' पर इसमें जयिक प्रकाश पड़ा है जो सम्भवतः अन्य 'किना' मान्य में न प्राप्त होता।

द्विजि क 'मगाया' 'काससम' का 'इडिहा' 'प्लुस' का पुस्तक 'क्रिश्चियन' टागा 'प्रा' जा' 'मिनिवम' का नाम उतना हा 'मन्व' है। 'न' पुस्तक का 'रचना-काल' लगभग ५६३ ई० है।

चाना—थामिक 'साहित्य' का 'वचन' करत 'ए' 'मन' 'महा'मा 'गौतम' बुद्ध क 'अवतरण' क 'मन्व' पर एक 'लि' 'गाना' था। यही पुन 'उना' 'महना' का 'पुन' 'स्मृति' 'मन्मा' जा 'जाता' है। भारतया 'इतिहास' का 'जा' 'वचन' 'वचन' क 'माय' 'ग' 'महा'मा 'गौतम' बुद्ध 'हमार' 'इतिहास' क 'त्रिभिन्ना' 'उपाय' 'ज्यों' का 'प्रकाश' 'वचन' का 'ना' 'उपचार' 'अपान' 'रु' में 'छा' 'र'। 'का' 'उपचार' 'वाङ्मय' 'प्रम' का 'प्रकाश' का 'न' था। भारत का 'बौद्ध' धर्म 'तन्म' 'प्रथम' 'शताब्दी' २० में 'चान' 'पत्त' 'ना' 'चान-निवा' 'मिया' क 'हृदय' में 'भारतवर्ष' क 'प्रति' एक 'विषय' 'रुचि' 'उत्पन्न' 'ग' 'ग'। 'धार्मिक' 'तन्मा' क 'अन्वेषण' तथा 'तन्म' 'वचन' 'पान' का 'प्राप्ति' क 'निर्' 'चाना' 'का' 'जा' 'वचन' 'हा' 'उ'। 'ए' 'यह' 'ना' 'अन्त' 'विचार' था कि 'गौतम' बुद्ध का 'पवन' 'अनन्मि' 'नि' 'वच' 'ग'

नीय तथा आध्यात्मिकता का काय होगी। इन्हीं आकाशवाणी के वनामृत होकर बानी भारतवर्ष आये और अपनी यात्रा का पूरा वस्तुान उन्होंने लिपिबद्ध किया। चीना साहित्य से भारतीय इतिहास के एक लम्बे युग का परिचय प्राप्त हो जाता है। यात्रियों का दृष्टिकोण यद्यपि पूणतया धार्मिक था और किमा भी वस्तु का व उसी दृष्टिकोण से देखते थे जिसे फलस्वरूप उनका वर्णन पत्रपत्रग्रन्थ है तथापि उनका विवरण में न इतिहास की प्रचुर सामग्री प्राप्त हो जाता है।

चीन के प्रथम इतिहासकार शुमाशीन ने लगभग प्रथम शताब्दी ई० पू० में इतिहास की एक पुस्तक लिखी। शुमाशीन की इस पुस्तक से प्राचीन भारत पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। शुमाशीन के पूर्व अन्य किसी चनी लेखक ने भारतवर्ष से सम्बन्धित किसी विषय पर प्रकाश नहीं डाला था।

जिन चीनी यात्रियों का इस सम्बन्ध में विशेष रूप से नाम लिया जा सकता है वे तीन यात्रा फाह्यान ह्वेनसांग तथा इत्सिंग हैं।

फाह्यान ९९ ई० में यात्रा की कठोर यातनायें सहता हुआ भारतवर्ष आया। लगभग १५-१६ वर्ष तक यह घम जिनामु भारतवर्ष में रहा और बौद्धधर्म सम्बन्धी तथ्यों का पानात्रन करता रहा। उस समय भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन था। यात्री ने गंगावर्ती प्रान्तों के शासन प्रबंध तथा सामाजिक अवस्था का पूरा विवरण लिपिबद्ध किया। फाह्यान की पुस्तक आज भी अपने मूल रूप में प्राप्य है तथा उसका अद्यया अनुवाद भी हो चुका है। यद्यपि फाह्यान ने भारतवर्ष के अधिकांश भागों का भ्रमण किया था तथा भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था और ऐसा तथा यूनानी लेखकों का अपेक्षा उन भारतीय इतिहास पर कुछ प्रामाणिक ढंग में लिखने का बहुत कुछ सुविचारों से कि धार्मिक सकीणता ने उसका दृष्टिकोण सकुचित कर दिया और वह धार्मिक विषयों के अनिश्चित इह प्रकार विषयों को धार बहुधा उदासीन रह गया जिससे उसका विवरण अचूक सा लगता है। पर बौद्ध धर्म के विषय में फाह्यान ने जो कुछ लिखा है वह पर्याप्त है। फाह्यान बौद्ध सिद्धान्तों परिर्याटिया विषयों तथा उसका प्रगतिशील के विषय में हम पर्याप्त सामग्री प्राप्त करता है।

चीनी यात्रियों में ह्वेनसांग का स्थान अधिक ऊँचा है। यह लगभग ६२९ ई० में भारतवर्ष आया। उस समय ह्यवधन भारत का सम्राट था। ह्वेनसांग के हा जिनामु एक उमाही व्यक्ति था। उसने अपने जीवन के सोलह वर्ष भारतवर्ष के भ्रमण विहारों तापस्थानों तथा विचित्रविचित्रता के ज्ञान में विताय। भारत दक्षिणा भारत का छा कर ह्वेनसांग ने लगभग सम्पूर्ण भारत का भ्रमण किया। वह राज समाप्ता में भा गया। नागन्दा तथा नापकुज (कन्नौज) में जहाँ उस समय ह्य रोय कर रहा वह अधिक समय तक रहा। इसने पांचाक्षर समार के दस नामक ग्रन्थ की रचना की। ह्यवधन के शासन-कारण का राजनानिक तथा सामाजिक अवस्था का बहुत कुछ परिचय ह्वेनसांग का पुस्तक में प्राप्त हो जाता है। धार्मिक अवस्था का सा इसने बहुत ही स्पष्ट वर्णन किया है। अपने स्वयं दृष्टिकोण के कारण ही ह्वेनसांग यात्रियों का सम्राट कहा जाता है। फाह्यान तथा इत्सिंग ने अपना समय के सम्राटों का नाम तक नहीं लिया है जब कि ह्वेनसांग ने ह्यवधन तथा उसके समामाधिक अथ राजाओं के विषय में बहुत कुछ लिखा है। जिन जिन राज्यों से ह्यवधन उमन करनी यात्रा समाप्त की उन सबका नाम लिख कर उमन किया साथ ही ह्वेनसांग ने सम्पूर्ण

भारत की साम्राज्य अवस्था पर भी विशय प्रकाश डाला। ह्वेनसांग के वणन के अभाव में सातवीं शताब्दी ई० का भारतीय इतिहास सम्भवतः इतना अधिक सुनिश्चित हुआ न होता—कम से कम ह्यकालीन सामाजिक तथा धार्मिक अवस्था के बोध के लिए तो हमें काफी भटकना पता। जय सामग्रिया के साथ तो ह्वेनसांग के वृत्तान्त का अध्ययन अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है।

नगभग ६७३-९५ ई० के बीच इत्सिंग नामक एक अथ चीनी ने भारतवर्ष की यात्रा की। इसने भारतवर्ष की तत्कालीन धार्मिक अवस्था (विशेषकर बौद्ध धर्म की अवस्था) का सजीव चित्रण किया है। इसका वणन यद्यपि ह्वेनसांग के समान हल्का पड़ता है पर फाह्यान के वणन से इसकी उपयोगिता कम नहीं।

उपरोक्त तीन सुप्रसिद्ध यात्रियाँ व अतिरिक्त कुछ अन्य चीनी लेखकों से भी भारतीय इतिहास की सामग्री प्राप्त होती है। उन लेखकों में ह्वेनसांग अधिक प्रसिद्ध है। यह ह्वेनसांग का मित्र था। इसने ह्वेनसांग की जीवनी लिखी जिसके अध्ययन से भारतीय इतिहास की कुछ सामग्री प्राप्त होती है।

तिब्बती—तिब्बती लेखक लामा तारानाय के ग्रन्थ क्युर तथा तग्युर से भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त होता है। वास्तव में चीना तथा तिब्बती लेखकों से ही मौर्यकाल के उपरान्त से लेकर शक पाण्डियन तथा कुषाण आदि के काल तक के अधिकांश इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है।

अरब—ई० पू० ९वीं शताब्दी तक पश्चिमा एशिया से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुआ था और प्रति वर्ष असंख्य व्यापारी एक दूसरे देश में आया जाया करते थे। कालान्तर में कुछ भारतीय शाहकों ने पश्चिमी एशियाई देशों में मित्रता का सम्बन्ध स्थापित किया। ८वां शताब्दी ई० में महम्मद बिन कासिम ने सिन्ध पर आक्रमण किया और उस पर अधिकार स्थापित कर लिया। तब से अरबों और भारतीयों का सम्पर्क अधिक बढ़ गया और अरबी इतिहासकारों को भारत के विषय में भी कुछ लिखने की प्रेरणा मिली। कुछ अरबी इतिहासकारों ने प्रसारित भारतवर्ष के विषय में कुछ लिख दिया है पर इन सब का वणन हमारे इतिहास की प्रचुर सामग्री प्रदान करता है। इन इतिहासकारों में अधिक प्रसिद्ध हैं (इनकी पुस्तकों के नाम उनके सामने बाँधकर मैं लिख दिये गये हैं) —

मुहम्मद (सिलसिलेनाउत-तवारीख) अजमसूदी (मुहजुजजाव) अलमिलादुरी (कुतूबअ-बुल्दान) तथा अबू मुहम्मद इब्न इब्न बतूता बलइदरीसी आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। इन इतिहासकारों के ग्रन्थों से भारतीय इतिहास की प्रचुर सामग्री प्राप्त होती है। प्राचीन भारत के इतिहास पर पूरा प्रकाश डालने वाले मुस्लिम लेखकों में सबसे श्रेष्ठ एवं सर्वप्रसिद्ध नाम अल्बरूनी का है। अल्बरूनी की विद्वानता यद्यपि अनुपमेय प्रतिभा प्रशस्तनायक्य तथा अजय उत्साह के जागृत तब के सार यात्रा फीक पड़ जाते हैं। भारतीय साहित्य के माध्यम द्वारा भारतीय संस्कृति एवं कला-कौशल के अध्ययन में जितनी रुचि अल्बरूनी ने ली उतना इसका पूर्व सम्भवतः किसी विद्वान ने न लायी। भारतवर्ष के इतिहास का विवरण में जिस परिधम तथा धर्म से अल्बरूनी ने काम किया उतना अन्य किसी विद्वानों लयक न रहा। वास्तव में अल्बरूनी का भारतवर्ष का इतिहास लिखने वाला प्रथम विद्वान इतिहासकार कहा जा सकता है।

जिस समय ११वीं शताब्दी ई० में महमूद गजनवी भाषण नर-सहारा लूट मारों तथा रक्त-प्लावन में लाने था उसका दरबार विद्वान अल्बरूनी साहित्य-सागर में डबकियाँ

लगाकर असह्य बहुमूल्य मणिमा का अन्वेषण कर रहा था। भारतीय समाज का विद्या, ज्यातिष गणित तथा अथ ललित कलाओं के अध्ययन में अल्बरूनी तमय हो गया था। उसने अपने अध्ययन को विस्तृत पुस्तक का रूप दिया। लगभग १०३० ई० में अल्बरूनी ने इस पुस्तक की रचना की थी। यह पुस्तक तहकीये हिंद का नाम से विख्यात है। अल्बरूनी की पुस्तक भारतीय समाज का स्पष्ट है और यदि अत्युक्ति न हो तो यह भी कहा जा सकता है कि यह पुस्तक प्राचीन इतिहासिक पुस्तकों में अद्वितीय है किन्तु यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि अल्बरूनी की पुस्तक किस युग की सामाजिक तथा सांस्कृतिक अवस्था का वर्णन करता है। अल्बरूनी तो ११वीं शताब्दी में भारत आया था पर उसने अथ के म्यान पर मस्तिष्क से अधिक काम लि। और वह भारतीय समाज को घरेली पर न देखकर कागजों पर देखने लगा। जो कुछ प्राचीन ग्रंथ बारा ने भारतवर्ष के विषय में विभिन्न भाषाओं में लिखा था—चाहें वह विषय धर्म शास्त्र रहा हो चाहे अशास्त्र अथवा चाहे भाषा या कला सम्बन्धी शास्त्र रहा अल्बरूनी के मान का माध्यम हो गया। अल्बरूनी का जिज्ञासा भारतीय इतिहास का खोज का ओर बहुत थी जसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है किन्तु उसने अपनी जिज्ञासा की सक्ति का समुचित साधन ढूँढने में कुछ भूल अथवा की। भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के विषय में अल्बरूनी ने जितना लिखा है यदि उसका शतांश भी प्रामाणिक ढंग में राजनीतिक विषय पर कुछ लिख गया होता तो उसका पुस्तक का स्थान आज भारतीय इतिहास के अथ ग्रन्थों में वहाँ अधिक ऊँचा होता। फिर भी अल्बरूनी का प्रयास अत्यन्त सफल रहा और हमारे लिये तो उसका विशय महत्व है।

### (घ) जीवनिदा

साहित्यिक मामप्रिया में जीवनिदा का काफी महत्व है। इस जीवनिदा का यदि प्रशस्ति काय्य कहा जाय तो अनुचित न होगा क्योंकि इनके लक्ष्य में अपने आश्रयता राजाओं की प्रशंसा में अपना लक्ष्मी का मनुष्यमाग किया है। उन लक्ष्य का दृष्टिकोण पूर्णतया साहित्यिक था। वास्तव में साहित्य-सृष्टि के निमित्त ही उन्होंने राजाओं का परम्परानुसार आश्रय लिया था। अपनी साहित्यिक प्रतिभा के कारण ही वे आज तक सम्मानित हैं। इन जीवनी-लावक अथवा प्रशस्ति-गायक का सभ्यता बहुत है पर उनमें से कुछ ही इतिहासिक सामग्री प्रदान करत हैं। एक साहित्यिक ग्रंथ में उपमाओं की जो शक्ति अलंकारों का जसा अलंकार तथा अत्युक्ति की जो युक्ति होता चाहिए वे सब इन जीवनिदों में हैं। इन ग्रन्थों का साहित्यिकता ही इनका ऐतिहासिकता का ठस पहचाना है। ह्यचरित रामचरित चन्द्रचरित पञ्चराज अथवा पृथ्वीराजचरित कौत्स-चौमूदी गौडवाहा नवसाहसिकचरित विभ्रमायचरित कुमारपाचारित भाजप्रवचन तथा हम्मरकाव्य आदि अनेक ग्रंथ इन जीवनिदा के अनगत आते हैं।

ह्यचरित—जीवनी-साहित्य में इतिहासिक दृष्टिवाण से ह्यचरित का बहुत ऊँचा स्थान है। इस काव्यात्मक संस्कृत गद्य की रचना समृद्ध गद्योत्तम धाणमंडल में लगभग ६०० ई० में की जा। बाण कन्नौज तथा पानवर के राजा ह्य के दरबार में रहता था। अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय बाण ने ह्यचरित में अनिश्चित अपने अनेक ग्रंथों के द्वारा भी दिया किन्तु बादम्यरी के बाद महत्व इतिहासिक सामग्री प्रदान करने में नहीं है। बाण ने अपने आश्रयता ह्य का जीवन चरित्र अपने महान ग्रंथ ह्यचरित में निम्न अथवा महत्ता इतिहास की दृष्टि में महत्वपूर्ण है। ह्य के

प्रारम्भिक जीवन तथा उसकी दिग्विजया का पूरा विवरण ह्यचरित से प्राप्त किया जा सकता है।

**रामचरित**—सध्याकर नदी ने रामचरित की रचना की। अपने ग्रन्थ में कवि ने इतनी विलक्षण वणन शरी रखी है कि एक बार तो सम्पूर्ण वणन रामायण की कथा मालूम होता है तथा दूसरी बार बगाल के रामपाल का वणन स्पष्ट रूप से पाता होता है। पाल वंश के इतिहास पर यह पुस्तक पर्याप्त प्रकाश डालती है।

**बल्लालचरित**—बल्लालचरित भी इतिहास की प्रचुर सामग्री प्रदान करता है। इसकी रचना आनन्दभट्ट ने की थी। सनवश के इतिहास को प्रकाशित करने में इस पुस्तक का बहुत कुछ हाथ है।

**कुछ अन्य जीवनियाँ**—पथ्वीराजविजय में पथ्वीराज के सघर्षों का काव्यात्मक वणन जयानक ने किया है। इस ग्रन्थ में चौहान वंश का इतिहास जानने में कुछ सहायता प्राप्त होती है। काव्यमयी भाषा होने के कारण सम्पूर्ण ग्रन्थ में अत्यन्त वाह्य है अतः इसके विवरणों का सावधानी से ग्रहण करना चाहिए।

**पथ्वीराजचरित** या रासो भी इसी काल का ग्रन्थ है। इसका रचयिता चन्द्रवर्मा पथ्वीराज का दरबारी था? उसने पथ्वीराज तथा गौरा के सघर्ष का पूरा वणन किया है। इस पुस्तक में भी अत्यन्त वाह्य का अभाव नहीं तथापि इससे चौहान वंश पर बहुत कुछ प्रकाश पता है।

**कुमारपालचरित** की रचना जयसिंह न वारहवीं शताब्दी में की थी। जयसिंह कुमारपाल का दरबारी था। इसने अहिलवाड़ के शासक जयसिंह के उत्तराधिकारी कुमारपाल का वणन अपने ग्रन्थ में किया है।

**गौडवाहो** के रचयिता वाकपतिराज ने कर्नाट के राजा यशोवर्मन के दिग्विजय का विस्तार वणन किया है। चानक्य वंश के अन्तिम काल की राजनीतिक परिस्थिति का कुछ विवरण इस ग्रन्थ से प्राप्त किया जा सकता है।

**नवसाहस्राक्षचरित** का रचयिता पद्मगुप्त परिमल वाकपति मुञ्ज का दरबारी था। उसने अपने आश्रयदाता मुञ्ज उपनाम वाकपति-मुञ्ज का विस्तृत वणन अपने ग्रन्थ में किया। पद्मगुप्त का ग्रन्थ सपरमार वंश के इतिहास पर कुछ प्रकाश पता है।

**विश्वमाकदेवचरित** का स्थान जीवनियाँ में अधिक महत्वपूर्ण है। इसकी रचना लगभग १७९-११२६ ई. में प्रमुख कवि विल्हण ने की थी। कल्याणी के चानक्य वंश के इतिहास पर इससे पर्याप्त प्रकाश पता है। विश्वमादित्य अथवा विश्वनाथ किस प्रकार सिंहासनाह्वित हुआ इस विषय का पूरा विवरण हम इसी ग्रन्थ से प्राप्त होता है। इन परिस्थितियों पर पूरा प्रकाश डालने के कारण इस ग्रन्थ का महत्व अत्यधिक है। बल्लाल का भाजप्रबंध तथा जयचंद्र का हम्मौरकाव्य भी इसी काल के ग्रन्थ हैं। इनके रचयिता न तो आश्रयदाताओं की प्रशस्तियों में काव्य रचना की हैं।

अधिकांश उपरोक्त ग्रन्थ पूणतया साहित्यिक हैं। उनका वणन आन्वयिक है अतः वे इतिहास से बहुत दूर चल जाते हैं तथापि उनसे तत्कालीन जवस्या का थोड़ा-बहुत पान अवश्य प्राप्त हो जाता है। साहित्यिक ग्रन्थ होने के नाते इन्हें विगड साहित्य में रखा जा सकता था किन्तु ये जावनी भी हैं जिनका स्वतः एक पत्रक है।

१ जयसिंह अहिलवाड़ के शासक से भिन्न।

## (इ) विशुद्ध साहित्य

विशुद्ध साहित्य से हमारा अभिप्राय उन साहित्यिक ग्रन्थों से है जिनका रचना मार्गात्मकार न बला बला के लिए के दृष्टिकोण से की है। आत्ममन्ताप या किसी अन्य प्रेरणा के बशीभूत हातर दसकाटिक ग्रन्थों की रचना हुई। इन ग्रन्थों से इतिहास का एक अंग सम्भूत एवं संस्कृति प्रकाशयुक्त होता है। विशुद्ध साहित्यिक ग्रन्थों में हम उनके समय की प्रचलित भाषा साहित्य, जनमाचरण की अभिवृत्ति या भाषा में सामाजिक अवस्था का वाद्य होता है। इन ग्रन्थों में हृय के तीन नाटक नागानन्द रत्नायक तथा प्रियदर्शिका विषय उल्लेखनीय हैं। इन नाटकों में सातवा शताब्दी के भारत पर चांग-बूत प्रकाश पता है। कानिनास के कुछ नाटकों की गणना भी इसी काटिके ग्रन्थों में की जा सकती है। बौद्ध जातकों के परचान सातवा-आठवीं शताब्दी में कथाग्रन्थों की रचना में पुनः एक ग्राहनी आई। इन ग्रन्थों में गुणाडय का बगाली बहलक्या (जो लुप्त हो चुकी है पर जिसका उल्लेख अनेक लघुका में किया है) बुद्धस्वामी का बहलक्या इमेत्र का बहलक्या मध्यरी तथा सोमदेव का कथासरित्सागर विशेष उल्लेखनीय है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विशुद्ध साहित्य भी हमारे इतिहास का कुछ परिस्फितिपा से हमारा पटिचय करान में काफी सहायक सिद्ध होता है।

## पुरातात्विक सामग्री

साहित्यिक सामग्री के विषय में पिछले पृष्ठा में पूर्ण प्रकाश बना जा चुका है। साहित्यिक सामग्री की भाँति पुरातात्विक सामग्री का भी सुविधा के लिए पूर्व विचारण की भाँति पथक-भूयक वर्णन किया जायगा।

### १ अभिलेख

अभिलेखों की उपयोगिता के विषय में कबल उताव क देना ही पर्याप्त होगा कि जहाँ हरे प्रकार के साधन शिथिल प जाने हैं वहाँ इन अभिलेखों से ही कुछ इतिहास जाना जा सकता है। प्राचीन भारत के राजनतिक अवस्था पर जितना प्रकाश इन अभिलेखों से प्राप्त सकता है उतना अन्य किसी साहित्यिक या पुरातात्विक सामग्री से नहीं। प्राचीन भारत के इतिहास शिलाभा नामपत्रों तथा अन्य पातुओं पर जो कुछ उन प्राचीन भाषा में लिखे गये हैं वह अभिलेख हैं। साहित्यिक सामग्री का भीत प्रायः उमम प्रमाण नही हो सकते। भाषा विषय से अभिलेखों का काल भा स्पष्ट हो जाता है। कुछ अभिलेख तो ऐतिहासिक शृङ्खला का म्यापिन रखने में बहुत सहायक हुए हैं।

दुर्भाग्यवश अगाव के पहले का काइ अभिलेख नही प्राप्त हुआ। अगाव के पान में ही अभिलेखों का आरम्भ होता है। अगाव के ग्राह में सम्पूर्ण भारत में अभिलेखों का बाहुय है। इनके अतिरिक्त कुछ विद्या अभिलेखों में भी प्राचीन भारत के इतिहास की सामग्री प्राप्त की जा सकती है। अतः अभिलेखों का अध्ययन यदि ठीक ढी प्रमूख वर्गों में विभाजित करने किया जाय तो अधिन सुविधा होगा —

(अ) दण्डे अभिलेख तथा (ब) विदेशी अभिलेख

जमा कि ऊपर बतलाया जा चुका है भारत के अभिलेखों का धायणन अगाव के काल से होता है। अथवा यह बहा जा सकता है कि अगाव ही प्रथम शासक

या जिसने भारतीय अभिलेखों को जन्म दिया। अशोक के अभिलेखों ने ही जय शासकों को अभिलेख निर्माण की जोर प्रेरित किया। इसलिए भारतीय अभिलेखों को भी अशोककालीन तथा अशाक के परवर्ती दो भागों में विभाजित किया गया है। अशोककालीन अभिलेखों से तात्पर्य स्वयं सम्राट अशाक द्वारा निमित्त अभिलेखों से है और अशाक के परवर्ती अभिलेखों में वे सभी राजकीय तथा अन्य अभिलेख आते हैं जो बाद के सम्राटों द्वारा तथा उनके काल में निमित्त हुए।

सब प्रथम अशोक के अभिलेखों पर प्रकाश डालना आवश्यक है क्योंकि इनका स्वयं एक वर्ग है। अशोक जब कलिंग विजय के पश्चात् अशोक महान् हुआ गया तो अपनी आध्यात्मिक विजय के लिए उसने मानवता के मूलमूल सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने का निश्चय किया। जनता जनादन को हर प्रकार के कष्टों से मुक्त करना उसे सुन्दर माय पर जाने तथा राजा एवं प्रजा का निकट सम्बन्ध स्थापित करने के अभिप्राय से ही अशाक ने अपन सम्पूर्ण राज्य के कोने-कोने में स्तम्भ तथा शिलालेखों का जाल बिछा दिया। अपनी राजानता तथा घापणाशा को अशोक ने स्तम्भों तथा शिलालेखों पर उल्काण कराया। सबसाधारण को अधकार से प्रकाश में लाने के लिए ही इन महान् ने ऐसा किया। अशाक का उद्देश्य जो कुछ भी रहा हो पर इतिहास के विचार्यों के लिए यह अभिलेख अधिक महत्ववान है। अशोककालीन सम्प्रदाय तथा मस्कुति पर इन अभिलेखों से बहुत कुछ प्रकाश पता है। स्वयं अशाक ही भारतीय इतिहास का महत्वपूर्ण अंग है जोर इसका पूर्ण इतिहास जानने के लिए हम इसका अभिलेखों का ही सहारा लेना पता है। अतः इन अभिलेखों की उपयोगिता इस विषय में निर्विवाद है। विश्व इतिहास में इस प्रकार के अभिलेख नहीं पाये जाते।<sup>१</sup>

डाक्टर त्रिपाठी का मत है कि अशाक के पूर्व के भी अभिलेख पाये जाते हैं।<sup>२</sup> पर प्राचीन भारत के इतिहास का प्रकाशित करने में अशोककालीन तथा अशोक के पश्चात् के अभिलेख ही विशेष उत्पत्तनीय हैं। जब तक १५०० से भी अधिक सन्ख्या में विभिन्न प्रकार के अभिलेख गुप्तकाल के पहले के प्राप्त हुए हैं। उन सबकी किम्पनी न किम्पनी विषय में उपयोगिता है पर उन अमूल्य अभिलेखों का उत्पत्त करना यहाँ असम्भव है।

अशोक के पश्चात् के अभिलेखों में जिन्हें राजकीय कहा जा सकता है कुछ प्रशस्तिपत्रों विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनके अभाव में हम भारतीय इतिहास के आशोक स्तम्भों तक का भा वाच न हो पाता। इसमें हरिष्य की प्रशस्ति विशेष उत्पत्तनीय है। यह प्रशस्ति भारतीय नरालियन वीर समुद्रगुप्त की प्रशंसा में अशोकस्तम्भ के भी है। यह उल्काण की गई है जो आजकल प्रयाग के किने में है। गुप्तवंश के महान् सम्राट समुद्रगुप्त की दिग्विजया तथा उमक व्यक्तिगत गुणा पर पूर्ण प्रकाश डालनेवाला सामग्री इस प्रशस्ति के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं है। सम्भवतः इस प्रशस्ति के अभाव में हम समुद्रगुप्त का महत्ता न जान पाते। भारतीय इतिहास में समुद्रगुप्त का जो स्थान आज दिया गया है या स्वर्णयुग गुप्तकाल का जो श्रेष्ठता प्रदान का गई है उमका बहुत कुछ यह इस प्रशस्ति का ही श्रेष्ठता जाना जा सकता है। गुप्त वंश का उत्पत्त जानने में कुछ अन्य अभिलेखों का भी सहारा लेना पता है।

<sup>१</sup> अशाक के अभिलेखों के विषय अध्ययन के लिए देखिए तत्सम्बन्धी परिच्छेद।

<sup>२</sup> त्रिपाठी का (बस्ता) अभिलेख (I P २५ १९९८ पृष्ठ ५७-८८) तथा बडलो (अजमेर) अभिलेख।

अनुदानों की स्वीकृति सम्बन्धी अनेक गुप्त अभिलेख प्राप्त हुए जो प्रायः सभी मन्त्रपूषण गुप्त-नगशा से सम्बन्धित हैं। मुहरा एव मुद्रामिलेखों की सख्या को तो हम निश्चिन्त रूप से एक बहुत मारा अतः जसख्य कह सकते हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय कुमार-गुप्त, स्कन्दगुप्त आदि का इतिहास इन अभिलेखा से उन्नी प्रकार अधिक प्रकाशित हो पाया है जस प्रयाग प्रशस्ति से समुद्रगुप्त का। गुप्ता की वशावती के निर्माण में ता उन अभिलेखा का बहुत बड़ा हाथ है। यह अनुदान-पत्रा मुहरा तथा मुद्रामिलेखा की ही देन है कि गुप्ता के उस अधकारपूषण इतिहास की भी एक स्थूल रूप रत्ता प्रस्तुत का जा सकी है जहा जय सादय या ता मीन थे या फिर आत्मक विवरण प्रस्तुत कर रहे थे। डा० राधानुमद मुखर्जी ने गुप्ता के इतिहास के साधना पर प्रकाश डालते हुए अभिलेखा के विषय में लिखा है—

The inscriptions are sources of much important and reliable history for the Gupta s Some inscriptions are chronicles of events as is the Allahabad Pillar inscription of Samudra Gupta or the Mandasor Pillar inscription of Yasodharman Other are records of religious endowments or secular donations —*Gupta Empire* p 1

मोज की ग्वालियर की प्रशस्ति से प्रतिहारों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इस प्रशस्ति का भी अधिक महत्व है क्योंकि इसका अभाव में प्रतिहारा का पूषण इतिहास जानना कठिन हो जाता। जिस काल तथा जिन राजाओं पर प्रकाश डालनवानी अय कोटि की सामग्रियाँ उपलब्ध हैं उनके अभिलेखा को भले ही उतना महत्व न दिया जाय किन्तु अय काटि का सामग्रियों के अभाव में तो अभिलेखों की उपयोगिता निश्चिन्त है। उपरान्त दाना अभिलेख इसी कोटि के हैं।

इसी प्रकार सेन वंश पर प्रकाश डालन वानी सामग्रिया में सेन वंशीय राजा विजय सेन की प्रशस्तिया अधिक महत्वपूषण हैं। ये प्रशस्तिया देवपारा में प्राप्त हुई हैं। काव्यात्मक शली में विजय सेन की विजया का उल्लेख इस प्रशस्ति में किया गया है।

ऐहो न अभिलेख से जा चालुक्य-नपति पुल्लेशिन तृतीय की प्रशस्ति में उल्लेख किया गया है, चालुक्य वंश के सुप्रसिद्ध सम्राट का नाम प्राप्त होता है।

जसख्य दानपत्र समपण पत्र तथा स्मारक के रूप में अभिलेखा का निमाण हुआ जिनसे तत्कालीन सामाजिक आर्थिक तथा राजनातिक परिस्थितियों का ज्ञान होता है। राजपूताना में जजमेर और मध्य भारत में धार नामक स्थानों में प्रशस्ति पत्रों पर उच्चकाटि के नामों के अक्षर उल्लेख हैं। पुदुकाट्टा या पुदुवार्न (पुदुवार्न) में सगीत के नियमा का उल्लेख किया गया है।



भी बोध होता है। कला के विभिन्न अंगों पर प्रकाश डालने में अधिक महत्वपूर्ण हैं। दान पत्रों से राज्य की सीमाओं का बोध होता है। राजा तथा प्रजा के बीच भूमि सम्बन्धी समझौते का भी पता इन अभिलेखा से मिलता है।

प्रशस्त अभिलेखा के अतिरिक्त अथ वग के अभिलेख भी प्रशस्त सही आरम्भ किये जाते थे जिनसे तत्कालीन राजकुला का ज्ञान प्राप्त होता है।

उत्तरी भारत से अधिक अभिलेख दक्षिणी भारत में प्राप्त हुए हैं किन्तु यत्न प्राचीन नहीं है। इसीलिए इनका ऐतिहासिक महत्व भी जतना नहीं है। अभिलेखा में ब्राह्मी लिपि जो बाद से दाहिनी ओर की लिखी जाती है और खरोष्ठी लिपि जो दाहिने से बाई ओर की लिखी जाती है दोनों का प्रयोग किया गया है।

असह्य भारतीय लेखा के अतिरिक्त कुछ विदेशी लेख भी प्राप्त हुए हैं जो हमारे इतिहास पर प्रचुर प्रकाश डालते हैं। इनमें एशिया माइनर में बोगजबोई के लेख में बर्दिक देवताओं का उल्लेख किया गया है। आर्यों के सत्रमण का बोध इस अभिलेख से होता है। पर्सिपीलेस तथा नवशस्तम (ईरान) के अभिलेखों से प्राचीन भारत तथा ईरान के पारस्परिक सम्बन्ध का बोध होता है।

## 12) प्राचीन स्मारक

प्राचीन काल की सभ्यता के मन्नादेशों प्राचीन मानव की कला के काम आज उत्खनन द्वारा प्राप्त हुए हैं और उनसे हमारे इतिहास पर पूर्ण प्रकाश पड़ता है। प्रत्येक कला की वस्तु—चित्रकला वास्तु-कला स्थापत्यकला भवन निर्माण-कला सजावट तथा नृत्य-कला साहित्य आदि कलाओं के कलाकारों ने समय-समय पर अपनी कला का प्रदर्शन किया। सभ्यता के विकास के साथ-साथ इन कलाओं में भी विकास होता गया पर कला से भी बढ़कर काल है। काल प्रवाह में सारी कलाओं की (कला सम्बन्धी वस्तुओं की) इतिहास गढ़ी। धरती के नीचे जहाँ वे सूखे की किरणों से देखे जा सकते हैं। शीघ्र नष्ट होनेवाली वस्तुएँ (लकड़ी या इसी प्रकार की अन्य वस्तुएँ) तो समाप्त हो गईं किन्तु कुछ ऐसी वस्तुएँ भी थीं जिनका समूह अन्त हो जाना असंभव था और वे आज भी अपने-आपके सभ्यता सृष्टि की स्मृति दिला रही हैं। वे कलात्मक तब तो दिला सकती हैं इतिहास के निर्माण में बहुत अधिक सहायक रहती हैं। इसीलिए उन्हें प्राचीन स्मारक की संज्ञा दी गई है। प्राचीन स्मारक के अन्तर्गत कितनी वस्तुएँ आ सकती हैं यह बताना कठिन है। वास्तव में पुरातत्व सम्बन्धी शोध वर्गों के अतिरिक्त (अर्थात् अभिलेख भद्रा तथा ललित कला सम्बन्धी वस्तुओं का छोड़ कर) जो कुछ भी धरती के नीचे या ऊपर कला की वस्तु हो या एक ऐसा वस्तु हो जिससे उत्खनन से हम अपने प्राचीन काल के ज्ञान प्राप्त कर सकें, वह प्राचीन स्मारक में आया। प्राचीन स्मारकों की महत्ता यद्यपि राजनीतिक इतिहास जानने में उतनी नहीं बल्कि इसमें राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख करना कठिन था पर ही बना बना राजाओं का नाम उनका वंश और साथ ही अपना टंकनीय व आचार पर उनका अनुमानित काल बताने में अधिक सहायक सिद्ध होते हैं। पुरातत्ववत्ताओं का प्राचीन स्मारकों के अध्ययन में कठिनाई का सामना अवश्य करना पड़ता है किन्तु उस अध्ययन से सभ्यता तथा सृष्टि के जिस पट्टे पर जितना प्रकाश पड़ता है उतना अन्य विज्ञान साध्य से नहीं। साहित्यिक सामग्री जितना काल विषय का जितना विषय बताने का धारा के विषय में बतला सकता है पर उसका ज्ञान जगता उत्पन्न हम प्राचीन स्मारक के रूप में ही प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के भवन

राजप्रासाद मावजनिक हाल जनसाधारण क घर विहार मठ चत्य स्तूप समाधि आदि अमख्य वस्तुएँ अपन मून रूप म या भग्नावशेष रूप म हमारे पिछेन इतिहास को प्रकाशित करती हैं। अपन साधारण रूप म ता ये अपनी कता क विषय म बतलाती हैं पर इनके विनोप अध्ययन स हम तत्कालीन धार्मिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। पूजा पढनि तथा धार्मिक विश्वास का जानन क लिए ता जितना महान्यव प्राचीन स्मारक हुए हैं उतना सम्भवत अय काई सामग्री नहीं।

संस्कृति के अध्ययन क लिए हम पूणतया साहित्यिक साधया पर नहा आश्रित रहना चाहिए क्योंकि साहित्यकार अपन कल्पना जगत म बहुत कुछ निमित्त कर जाता है किन्तु प्राचीन स्मारक म अत्युक्ति कहा वह ता जिनका कलाकार का शक्ति थी उसका सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। प्राचीन स्मारका क अध्ययन के लिए हमारे पास मामप्रिया की कमी नहीं। उत्खनन तथा अवषणा द्वारा निरन्तर एसा वस्तुएँ प्राप्त की जा रही हैं जिनस भारतीय इतिहास पर प्रकाश प ता है। अमिलखा की भाति प्राचीन स्मारकों को भी दशी तथा विश्वी दा वर्गों म विभाजित कर लिया गया है। भारतवष म जा स्मारक प्राप्त हुए हैं उन्हें दशा तथा जा भारतवष क बाहर प्राप्त हुए हैं उन्हें विदेशी की मना दा गई है।

देशी—प्राचीन स्मारका म जमा कितनाया जा चुका है बहुत कुछ सामग्री तो मवन मन्दिर तथा विहार आदि क रूप म प्राप्त हुई है और अधिकांश खुदाइया द्वारा धरती क नीचे मिली है। लाड कजन द्वारा स्थापित पुरातत्व विभाग की देन इम क्षेत्र म सराहनीय है।

प्राचीन स्मारका का प्रकाशयुक्त क ने म पुरातत्व विभाग न अधिक धय एव साहम से काम लिया है। फलस्वरूप माहनजादो हम्पा तथाशिला मयुग कामम, सारनाथ कसिया पाटीनपुर नावदा गर्जगिरि साँची भरहुत लक्षमणेश्वर अगदी, बनवासी पत्तकल चित्तलगुग तालक हजविठ मास्का आदि म जा गुलाइयां हुई हैं उनसे इतिहास के कतिपय अध युगा का ज्ञान प्राप्त हुआ है। माहनजादो हम्पा की खुदाइया न ता इतिहास का एक नया परिच्छेद ही जात दिया है एक विलुप्त हा नवान मन्मता का बाध कराया है। इम खुदाइ न हमारे सांस्कृतिक इतिहास का हजारों वष पाछे ढकल दिया है। दशा स्मारका म इसका सर्वोच्च स्थान है। यहाँ क भग्नावशेषा म हम उस अतान संस्कृति का स्मृति (कल्पना क माध्यम द्वारा) आ जाता है जा विश्व की जय मन्मनाशा का चुनौता द रहा थी। दक्षिण क अगरी, लक्षमणेश्वर, बनवासा पत्तकल चित्तलगुग आदि की खुदाइया स जा मामप्रियां प्राप्त हद है उनस भारत का धार्मिक इतिहास बहुत कुछ आनामित्त होता है। गुलाइया क अनिरिकन धरता क ऊपर क मवन मन्दिर स्तम्भ आदि मा प्राचीन स्मारक क रूप म एति हासिक सामग्री प्रदान करत हैं। एसा मामप्रिया का भरनवष म वाहुय है। अमख्य मन्दिर स्तूप गुफायें विहार आदि सम्पूर्ण भारत म इधर उतर प्राप्य हैं ता मममामयिक धार्मिक प्रवृत्तिया कता-मन्मनाशा भक्तिया कताकारा का मफतनाशा वाणिज्य ध्यरगाय आदि अमख्य मममनाशा क समाधान रूप म हमारे सम्मन आन हैं। मारनाथ का पत्तकार स्तम्भ मन्मक उम प्राचीन वात का नक्काशा कता का उत्कृष्टतम उदाहरण है। मर जान मागम न इसरी नक्काशी का रग कर लिया था कि यँ भारत वष का सर्वोच्च नक्काशी है और प्राचीन विश्व म इमका समता का अय किमा ज्ञेय का कला नहा। अजन्ता तथा अतारा का गुफाशा का गणना मा मन्मपूण प्राचीन

स्मारकों में की जाती है। इन्हें देखकर हम प्राचीन भारत की चित्र कला का बोध करते हैं। कला के उद्वृष्ट उदाहरण जितना इन गुफाओं में निहित हैं उतना सम्भवतः अन्यत्र नहीं। यासी का देवगढ़ मंदिर भीतरगाँव (कानपुर) का मंदिर नालन्दा की महारत्ना गौतम बुद्ध की ताम्रमूर्ति जति भारतीय कला का स्पष्ट बाध कराकर इतिहास के रिक्त अंग की पूर्ति करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि ये मूक भग्नावशेष भी किसी प्रकार इतिहास जानने में सहायक सिद्ध होते हैं। इन कला की वस्तुओं से यह न समझना चाहिए कि इनसे केवल किसी कान विशेष की कला सम्बन्धी प्राप्ति का ही बोध होता है वरन् इनका गहन अध्ययन हम तत्कालीन धार्मिक सामाजिक एवं जातिक परिस्थितियाँ से भी परिचित कराता है। इतना ही नहीं कभी-कभी तो इन पर उत्कीर्ण त्रियया या सक्षिप्त निर्देशन राजनीतिक परिस्थितियाँ का भी बोध कराते हैं।

**विदेशी—**भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में भी कुछ ऐसे स्मारक चिह्न प्राप्त हुए हैं जिनसे प्राचीन भारत के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इन स्मारकों में जावा बम्बोज मलाया स्याम काचीन चाइना बानियो काम्ब जादि में प्राप्त प्राचीन स्मारक विशेष उल्लेखनीय हैं। जावा में डावा पठार का शिव मंदिर मध्य जावा बोरोबोदर एवं ब्रमबनम के देवालया से यह ज्ञात होता है कि प्राचीन भारतीय उपनिवेश स्थापना में भी पर्याप्त अभिरुचि रखते थे। इस प्रकार जमकोरवात तथा अजकोरनाम में भी प्राचीन स्मारक चिह्न उपलब्ध हुए हैं जिनसे भारतीय जीवनवैशिक प्रसार एवं भारतीय कला का बोध होता है। जावा में तुकमम नामक स्थान के भग्नावशेषों में शिव चक्र पद्म तथा त्रिशूल आदि का विद्यमान रहना प्रमाणित हुआ है। इससे यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि हिन्दू धर्म जावा तक प्रसारित था और इस धर्म के अनुयायी वहाँ पर्याप्त संख्या में रहते थे। इसी प्रकार मलाया में सुन गई वतु में एक देवालया एवं कुछ पाषाण मूर्तियाँ मिली हैं। इनके सम्बन्ध में ज्ञान महादय का ज्ञान है। ये भग्नावशेष स्पष्ट रूप से यह बताते हैं कि यहाँ के निवासी हिन्दू मतावलम्बी थे। शिव गणेश पावता नन्दी जादि की पूजा किया करते थे क्योंकि इन देवताओं की प्रतिमाएँ यहाँ प्राप्त हुई हैं। प्राचीन हिन्दुओं के औपनिवेशिक प्रसार अथवा हिन्दू धर्म के प्रसार का दूसरा प्रमाण काना पवत पर प्राप्त एक अन्य भग्न विष्णव मंदिर तथा विष्णु की मूर्ति से प्राप्त हो जाता है। काना पवत पर इन धार्मिक चिह्नों का पाया जाना निश्चय ही यह धारित करता है कि प्राचीन हिन्दू मनाया तक अपना प्रसार कर चुके थे। ऊपर जावा के विभिन्न स्थानों पर प्राप्त धार्मिक चिह्नों का उल्लेख किया गया है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण प्राचीन स्मारक जावा द्वीप के विचुल निकट ही चानी नामक शीप में मन्दिर एवं मूर्तियाँ के रूप में प्राप्त हुए हैं। बानियो के मुकरवमन नामक स्थान में एक स्वर्ण विष्णु मूर्ति प्राप्त हुई है। काम्ब में एक गृह प्राप्त हुई है। ये सारे प्राचीन स्मारक भारतीय धर्म एवं मस्वृति के प्रसार के साक्ष्य हैं। काम्ब की गृह भेदा प्रकृत हैं। इनमें एक प्रकृत में १२ प्रस्तार प्रतिमाएँ हैं। ये सारी प्रतिमाएँ भारतीय धर्म पर निर्मित हिन्दू देवताओं का हैं। शिव गणेश नन्दी अगस्त्य ब्रह्मा आदि का मूर्तियाँ इनमें विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनमें भा शिव-मूर्तियाँ का आधिक्य है। सतिवस के पश्चिमी तट पर सिकन्दर के निकट कम नगा के तट पर महारत्ना गौतम बुद्ध का एक भग्न प्रतिमा प्राप्त हुई है। इस प्रकार पश्चिमी बानियो में कपु भ्रम नगा की घाटी में हिन्दुओं का प्राचीन वास्तव्य के चिह्न प्राप्त हुए हैं। ये सारे प्राचीन स्मारक स्मारक स्मारक इतिहास का स्पष्ट करण में सहायक साक्ष्य हैं जो इनका विषय महत्व है।

### (३) मुद्रायें

धम तो ममस्त पुरातात्विक सामग्रिया ऐतिहासिक सूचनायें प्राप्त करने के माध्याम म अपना विशेष महत्व रखती हैं किन्तु मुद्राओं का स्थान इनमें काफी ऊँचा है। इस क्षेत्र में मुद्राओं का महानता के प्रमुख कारण ये हैं कि ये निरर्थक अथवा इनमें किसी सम्प्रदाय विशेष या किसी मत विशेष का पक्ष लेकर पक्षपातपूर्ण तथ्य का सम्पादन नहीं होता। ये पूणतया राजकीय होती हैं। (कचन जाना सिक्का का छापकर) इनसे जो कुछ सूचना प्रतिपादित होती है उस पर काफी विश्वास किया जा सकता है। इनका दूसरा विशेषता यह है कि ये राजाओं का अश्व-परम्परा का बोध कराता है। तिसरे एक नामपूर्ण मुद्राओं का तो इस क्षेत्र में अत्यधिक महत्व है। इनमें हम इतिहास का उन्नती हुई तिथिया का बोध होता है। जिन मुद्राओं में तिथिया नहीं भी दी गई हैं व भी कम महत्व का नहीं क्योंकि उनकी टेकनाक के आधार पर उनके समय का निर्धारण कुछ अवेषण के पश्चात् किया जाता है। मुद्राओं की अर्थ विषयता यह है कि इनमें राजाओं व साम्राज्य विस्तार का कुछ ज्ञान प्राप्त होता है पर मुद्राओं के प्राप्ति-स्थान व आधार पर साम्राज्य विस्तार के निर्धारण में काफी माध्याम से काम लेना पड़ता है क्योंकि केवल मुद्राओं के प्राप्त होने से यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उस स्थान तक अमुक सम्राट का आधिपत्य है। इनके कुछ अन्य आधिक कारण भी हो सकते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुद्राओं में देश की राजनीतिक परिस्थिति पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है।

मुद्रायें राजनीतिक परिस्थिति व अनिश्चित आधिक परिस्थिति पर भी कुछ प्रकाश डालना है। उनकी धातुओं के आधार पर हम तत्कालीन जातिक व्यवस्था का ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि उत्तम काटि का धातु की निमित्त मुद्राओं के बाहुल्य का अर्थ है समाज धन रायपूरा या और निम्नकाटि की धातुओं का मुद्राओं में तत्कालीन आर्थिक हानता का बोध होता है। वास्तव में मुद्राओं की धातुओं का उत्तमता कुछ तो राजकार की समझ पर आधारित है और कुछ चतानवाने सम्राट की रीति एवं परिपाली पर निर्भर है।

मुद्राओं का एक और महत्व भी है। ये सम्राट विशेष के धम तथा उनकी शक्ति की ओर भी परिनिमित्त करती हैं। मुद्राओं पर उल्लास चिह्न म हम यह जान पाते हैं कि अमुक राजा अमुक धम का अनुयायी था, पर कुछ ऐसे भी उदाहरण हैं कि एक ही मुद्रा पर विभिन्न धार्मिक चिह्न उल्लेख हैं। कनिष्क का मुद्राओं का हम इनमें कोटि में रख सकते हैं। फिर भी अधिकांश मुद्रायें जिन पर कोई विशेष धार्मिक चिह्न उल्लेख है राजाओं के धम का ठाक-ठाक बोध कराता है। राजाओं का शक्ति का भाव बिल्कुल ही ठाक बाप इन मुद्राओं में होता है। यदि मानवजाति के आधार पर मुद्राओं के आधार प्रकार उन पर उल्लेख पशु-पक्षी एवं अश्व शस्त्र का अध्ययन किया जाय तो उस राजा के वैयक्तिक जीवन का पचास ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

उपरोक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मुद्रायें ऐतिहासिक सामग्री प्रदान करती हैं अथवा माध्याम से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। अब कुछ विशेष मुद्राओं का प्राप्त ऐतिहासिक तथ्या का उल्लेख करके विषय का और स्पष्ट रखा जायगा।

अत्यन्त प्राचीन काल की मुद्रायें—शाबान कालीन धनुष्या न मुद्राओं का न विशेष उन्नति नहीं की थी। अब तत्कालीन मुद्राओं पर केवल कुछ चित्र या चिह्न

मात्र उत्कीर्ण हैं। इन मुद्राओं से कोई राजनीतिक सूचना नहीं प्राप्त होती केवल धार्मिक स्थिति का आंशिक बोध होता है।

**यूनानी मुद्रायें—**इन मुद्राओं का विषय राजनीतिक महत्व है। भारत में पंजाब तथा उत्तरी पश्चिमी सीमा पर यूनानियों ने लगभग दो सौ वर्षों तक अपना प्रभुत्व स्थापित रखा था। इनके विषय में हम इन मुद्राओं से पर्याप्त सामग्रियाँ प्राप्त होता है। य मुद्रायें बकिट्रया के यूनानी राजाओं द्वारा जारी की गई थी जिन्होंने यहाँ पंजाब के भू-भाग पर राज्य किया था। लगभग दो सौ वर्षों में ३० से भी अधिक राजाओं ने अपनी मुद्रायें जारी की जिनसे उनके विषय में जानकारी प्राप्त की जाती है। यदि ये मुद्रायें नहीं प्राप्त हुई होती तो उनके विषय में हमारा ज्ञान नितान्त जल्प होता।

**सीथियन तथा पाथियन मुद्रायें—**इनकी मुद्रायें यूनानी मुद्राओं से काफी नाम्य रखती हैं पर ये सुन्दरता में उनसे हीन हैं। मौर्य साम्राज्य के पतन के पश्चात् सीथियन एवं पाथियन का भारत पर प्रभुत्व रहा और इनका इतिहास जानने में मुद्राओं से पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। पश्चिमी क्षत्रपों के इतिहास का बाध इन्हीं मुद्राओं से हा पाता है। यहाँ साहित्यिक साक्ष्य बहुत कुछ मूक हो जाते हैं।

**भारतीय मुद्रायें—**भारतीय सम्राटों की मुद्रायें भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। कुछ भारतीय सम्राटों का इतिहास मुद्राओं के अभाव में अधूरा रह जाता। पाचान मालव यौधेय के मित्र राजाओं का इतिहास जानने के लिये हम उनकी मुद्राओं की ही सहायता लेनी पड़ती है। इसी प्रकार सातवाहन कुल के राजाओं का इतिहास भी मुद्राओं द्वारा प्रकाशित होता है। गुप्त सम्राटों के इतिहास के विभिन्न साधनों में मुद्रायें भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। समुद्रगुप्त की मुद्राओं के आधार पर ही हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि वह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। उसकी मुद्राओं पर उत्कीर्ण शीला के आधार पर ही हम उसे सगीतकला का प्रेमी घोषित करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि ये राजकीय मुद्रायें (यद्यपि प्राचीनतम भारतीय मुद्रायें जिन्हें पंचमाल की मुद्रायें कहते हैं कुछ विद्वानों के मतानुसार प्राइवेट भी हैं और स्वयंकारों द्वारा राजाओं को प्राप्त करके चलाई गई थी) राजकीय सूचनाओं देने में काफी सहायक सिद्ध होती हैं। पर जसा कि प्रारम्भ में ही बताया गया है इनके आधार पर साम्राज्य-सीमायें निर्धारण करने में बहुत सतर्क रहना चाहिये। यहाँ दक्षिण भारत में बहुतायत में पाये जाने वाले रामन सिक्कों का उल्लेख कर देना विषयव्यतिरिक्त होगा। दक्षिण में पाये जाने वाले इन रोमन मुद्राओं से हम यह कदापि न समझ लेना चाहिये कि यहाँ अपना का साम्राज्य था या उनका किस प्रकार का राजनीतिक प्रभुत्व इस भू-भाग पर था। डॉक्टर त्रिपाठी के शब्दों में यह कथन भारतीय विद्वानों का वस्तुतः आरंभ मसाला के बदले धार धार बरसने वाले रामन सिक्कों के प्रति इतिहासकारों की विद्वानों का स्मरण कराने हैं। वास्तविकता में कुछ ऐसा ही है। निश्चय ही इससे रामना तथा भारतीयों के व्यापारिक सम्बन्धों का बाध करना चाहिये क्योंकि रामना का दक्षिण भारत पर प्रभुत्व स्थापित रहना तत्काल नहीं और न इतिहास का बिना अन्य सामग्रियों से यह प्रमाणित होता है।

१ वि० स्मिथ तथा रपसन का ऐसा मत है और आपत्तिक अनुसंधान से पंचमाल की मुद्राएँ साधारण रीति से जनसाधारण में प्रचलित थीं।

## इलाहाबाद यूनिवर्सिटी

१ 'यह कहना नि यक ह कि प्राचीन भारत के इतिहासकारा को किमी ऐतिहासिक रचना के अभाव का सामना करना पडता ह।' (१९४७)

२ प्राचीन भारतीय इतिहास क महत्वपूर्ण मूल साधनों का विवेचन कीजिए। (१९५२)

३ "क्या यह सत्य ह कि महान बौद्धिक तथा महान साहित्यिक क्रियाशीलता के बावजूद भी भारत ने कोई हरोडाटस या यूसिडाइडस-यहा तक कि कोई लिवी या टसिटस भी नहीं उत्पन्न किया।" उपरोक्त कथन की विवेचना कीजिए। (१९५५)

## आगरा यनिवर्सिटी

१ मध्य-एशिया में पाये गये कुछ मत्वपूर्ण भग्नावशेषों पर एक टिप्पणी लिखिए जी प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति पर महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हों। (१९४४)

२ प्राचीन भारतीय इतिहास क महत्वपूर्ण मूल साधना का विवेचन कीजिए। (१९४७)

३ ऐतिहासिक जानकारी के साधनों के रूप से प्राचीन भारत के अभिलेखा तथा सिक्कों का तुलनात्मक मूल्याकन कीजिए। (१९४३)

४ ऐतिहासिक तथ्यों के स्रोतों के रूप में प्राचीन भारत के अभिलेखों एवं सिक्कों का तुलनात्मक मूल्याकन कीजिए। (१९५१)

## वनारस यूनिवर्सिटी

(१) ऐतिहासिक जानकारी के साधनों के रूप से प्राचीन भारत के अभिलेखों तथा सिक्कों का तुलनात्मक मूल्याकन कीजिये। (१९५०)

(२) भारतीय इतिहास के स्रोतों में अभिलेख एवं सिक्के मुख्य रूप से प्रकाश डालते ह। (१९५३)

(३) भारत के प्रारम्भिक इतिहास के विभिन्न साधनों का वर्गीकरण और व्याख्या कीजिए और उनके सापक्षिक महत्व का विवेचन कीजिए। (१९५२)

## २ | प्रागैतिहासिक काल की मानव-सभ्यता

सभ्यता का उदय प्रकृति की वसी ही स्वाभाविक प्रक्रिया है जैसे पशु पक्षिया तथा मानव का उदय। मानव का विकास जिस प्रकार उत्तरोत्तर होता गया उसा प्रकार सभ्यता का विकास भी अपने क्रमिक रूप में होता रहा। मानव विकास के साथ-साथ ही सभ्यता का विकास होता गया वस इनना ही सभ्यता के उदय क विषय में कहना पर्याप्त होगा—यह दूमरी वस्तु है कि जिस सभ्यता का उदय मानव विकास की पद्धति की भांति हुआ उसमें परिवर्तन परिवर्धन संशोधन अन्वेषण आदि कानान्तर में होते थे। अब यहा प्रश्न यह उठता है कि जादि मानव का उदय कस हुआ। पर इस प्रश्न का उत्तर विषयेतर होगा। अत हम केवल आदि मानव क विकास क विभिन्न सोपाना का देखेंग जिनमें जाधुनिक युग की सभ्यता की पूर्वज कही जानवाली सभ्यता के विकास का रहस्य निहित है। यहाँ एक सत्य का स्पष्टीकरण करा दना आवश्यक है कि विश्व के जिन जिन काना में मानव ने विकास करना आरम्भ किया उन सबका विकास विकास की पद्धति जादि लगभग समान-सा थी। सम्पूर्ण विश्व में जहाँ सभ्यता का उदय आरम्भ हुआ लगभग समान विकास की पद्धति का बोध करके हम कुछ आश्चर्य सा होता है पर इस समता का भी प्रमुख कारण है और वह यह कि मनुष्य प्रकृति के बहुत निकट है विशेषकर उस प्रारम्भिक युग में तो वह पूणतया प्रकृति का था और प्रकृति उसकी था पर अब धीरे धीरे वह प्रकृति से दूर हाता जा रहा है उस पर अनुशासन करना चाहता है। जब मनुष्य प्रकृति क निकट है तो वह समस्त प्रकृति सुलभ गुणों काय कलापा प्रवृत्तियों आदि से समान रूप में युक्त हागा। उमका प्रकृति प्रदत्त शक्तियाँ भा उगभग समान-सी हाथी। एसा दशा में सम्पूर्ण मानव चाहे व भारत के दक्षिणी भाग क हा चाहे स्पेन फ्रांस आदि क किसान कान में हा समान प्रगति करेंग।

जब मनुष्य का शक्तियाँ प्रवृत्तियाँ समान रही हागी तो व समान रूप से साचते रहे हाग। समान चिन्तन का जय है समान विकास। पर इस समता में भी अपना दृशीय मौनिकता और विभिन्नता रहा होगा। इस विभिन्नता का भा ठास कारण है। प्रत्येक स्थान क प्राकृतिक अवस्था भी कुछ विभिन्न हाता है। प्रकृति का मन विभिन्न होता है। भिन्न प्रकृति में भिन्न विकास का हाता स्वाभाविक है। मनुष्य प्रारम्भ में जब पूणतया प्रकृति पर आश्रित था तो वह पूणतया निशर का भांति प्रकृति क आदेशा अनुसार अपनी गति प्रवाह में जाति निधारित करता और अपना अन्न भा वह प्रकृति पर छाड देता हागा। अपने एसा स्वाभाविक विकास का स्थिति का विश्व में विभिन्न स्थाना में मानव ने प्राप्त किया। पर प्रगति मानव का महत्त्व स्वभाव है। स्वाभाविक विकास की स्थिति में मानव ने सुधार किया। यह सुधार का मन आश्चर्यजनक नहा था। मनुष्य सन्ताप नहा स्वानार कर सकता कर्णकि यह उमका मस्य है। जन एा सुधार क पश्चात् भी उसने कुछ अवषण किये जा काना महत्त्वपूर्ण थे और जा इसक लिए अत्यन्त नामप्रद एवं महत्त्वपूर्ण थे ठाक उमा प्रकार जस आज मनुष्य एव सभ्यता के विनाशक राष्ट्रों क लिए एटम बम का आविष्कार। और इतना हा नहीं

वह उत्तरात्तर उन्नति करता गया—तब तक जब तक कि पुनः उसकी जन्मदात्री प्रकृति न अपन हाथा ही उसका विनाश नहीं कर दिया। इस प्रकार प्रकृति द्वारा प्रेरित या अधिक स्पष्ट भला भ्रष्ट प्रकृतिप्रसूत सभ्यता का प्रकृति द्वारा ही अपहरण कर लिया गया। उसके बाद युगों की एक लम्बा दूरी बीती। तब तक मनुष्य इतना अधिक सभ्य हो गया कि वह यह कल्पना (यद्यपि यह कल्पना नहीं सत्य है) भी मूल गया कि वह क्या पशु था। किन्तु उसका अपनी वास्तविकता का बान हाना था और इमनिये सीमावर्ष आधुनिक मानव के पूर्वज आदिमात्र के भग्नावशेष विभिन्न स्थानों में प्राप्त हुए। इन्हीं भग्नावशेषों से उस प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता का बोध हुआ जा विभिन्न सीमानों में फली फली थी। यहाँ हम प्राचीनतम सभ्यता का ज्ञान प्राप्त करने में हम अपना कल्पना शक्ति का विशेष सहारा लेना पता है। हम अवशेषों को देखकर अपनी कल्पना द्वारा उस प्रागैतिहासिक काल के कल्पित रचनाचित्र का निमाण करते हैं और उसी रचनाचित्र के आधार पर हम उस काल की सभ्यता की रूप रेखा का सजा करते हैं। कम अवश्य और कल्पना ही हमारे ज्ञान का साधन है। इन्हीं साधनों के आधार पर मानव की प्रागैतिहासिक काल की सभ्यता के निम्नलिखित सापानों की कल्पना की गई है —

- १ प्रारम्भिक पाषाण युग या आदि युग
- २ पाषाण युग तथा
- ३ धातु युग।

यहाँ हम इन तीन सापानों का पर्याय-पर्याय अध्ययन करेंगे। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि प्रारम्भिक पाषाण युग या आदि युग का अमानव-युग कहना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि मानवी प्रवृत्तियाँ तब पूर्णतया पशु प्रवृत्तियों के समान थीं और वह आदि मानव भी प्रायः एक महान पशु था। यहाँ कारण है कि कुछ इतिहासकार इस सभ्यता का सजा तक नहीं करते हैं और वे इस पिछड़ी हुई सभ्यता की मानवता का तयार नहीं हैं। किन्तु हम इस युग की उपस्था नहीं कर सकते हैं क्योंकि यहाँ सभ्यता की प्रारम्भिक पाठशाला के निमाण का युग था और इसी समय हमारे पुराणों में यह अनुभव करना सीखा था कि आहार भोजन निम्न मधुन आदि पशु स्थित प्रवृत्तियों में उत्पन्न कार्यों का ठीक पशुवत करने में उनका उपयोग नहीं हो पा रहा है—न उनकी सुरक्षा ही सम्भव है और न सुख सुविधा ही। अतः हम यहाँ इस युग का अध्ययन प्रस्तुत कर रहे हैं।

### प्रारम्भिक पाषाण युग या आदि युग

इस युग के मनुष्यों के विषय में हम बहुत कम ज्ञान है। इस ज्ञान कल्पना का प्रमुख कारण यह है कि इस युग के मनुष्यों के अस्थि शस्त्र या औजार प्राप्त नहीं मिले। इनके जन्म में हम कल्पना के आधार पर कुछ अनुमान लगा सकते हैं जो सत्य के बड़े तब निकट पहुँच पायेगा यह नहीं कहा जा सकता। भूगर्भ विद्या विचारणा से एका अनुमान किया है कि वे जंगल निचय हो पशु से मिनता-शुनता प्रवृत्तियों में युक्त रहे होंगे। वे कल्पित चकमक पत्थर का प्रयोग अपने औजारों एवं हथियारों में करते थे। पाषाण के अनिर्दिष्ट नकली के औजार का भी सम्भवन के प्रयोग करते रहे होंगे। वस्तुओं की आकृति का भी सम्भवन इस युग के मनुष्यों में ज्ञान प्राप्त कर लिया था और जब उन्हें पत्थर का प्रयोग करना सीख आ गया तो उन्होंने उन ज्ञान



का उपयोग किया होगा। जसा कि बताया जा चुका है दैनिक जीवन में ये पशुआ स मित्र न थे। पशुआ की भाँति ही वे वक्षा की साधन छाया में निवास करते थे। इस प्रकार वे धूप से अपनी रक्षा करते थे। वर्षा से शरीर रक्षा करने के नियम वे गिरि कन्दराओं की शरण लेते थे। कर्नाचित् गिरि कन्दराओं को वे अपने अनुकूल ता फोहर बना लेते थे। वर्षा के अतिरिक्त वर्ष के शप महीना में वे घूमते फिरत रहे होंगे। इनका भोजन क्या रहा होगा इसके विषय में हम स्पष्ट अनुमान लगा सकते हैं। जब इनके पास कोई बग हथियार नहीं था तो यह निश्चय है कि बगड़े पशुओं का शिकार वे बहुत कम करते रहे होंगे।—शायद कभी नहा पर साधारण एव छोट माटे पशुआ का शिकार य बड़ी सरलतापूर्वक करते रहे होंगे। आखट द्वारा प्राप्त मांस ता इनका भोजन का एक प्रमुख पदार्थ था। पर प्रकृति ने भी इन्हें कुछ खाद्य-पदार्थ प्रदान किया था। जंगल में स्वतः उत्पन्न होनेवाले फल कन्द-मूल कुछ विशेष प्रकार का पत्तियाँ जैसे आदि इनका भोजन रहा होगा। सम्भवतः मछली का शिकार करना भी वे जानते थे। उनके खाद्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए दूसरा प्रश्न यह उठता है कि वे किस रूप में इन पदार्थों का प्रयोग करते थे उसे किसी प्रकार पकाना या भूनना उन्हें आता था अथवा नहीं। यहाँ हम अग्नि के साधनों पर ध्यान देना होगा। उस प्राचीन काल में अग्नि के साधन धूम्र सामित थे। गहन जंगल या पर्वतों की घाटियों में बहुधा जाग लग जाया करती थी। यह अरण्यअग्नि सुरक्षित की जा सकती थी। चक्कमक पत्थर का रगड़कर भी अग्नि उत्पन्न की जा सकती थी। अग्नि प्राप्ति के इन दोनों साधनों के अतिरिक्त सम्भवतः अन्य तीसरा साधन उस प्रागैतिहासिक काल में नहा था। अब यह निश्चय करना है कि प्रारम्भिक पाषाण मनुष्य इन दोनों विधियों में से दोनों से या किसी एक से परिचित था अथवा नहीं। कुछ विद्वानों का यह मत है कि दो सूखी पत्तियों के बीच चक्कमक पत्थर को रगड़कर य अग्नि उत्पन्न कर लिया करते थे और उनके स्त्री-बच्चा का यह उत्तरदायित्व था कि वे उस अग्नि के सुरक्षित रखें। यदि यह सत्य है तो यह भी सम्भव है कि स्वतः उत्पन्न होनेवाली अग्नि को भी वे सुरक्षित रखने का प्रयास करते रहे होंगे और अग्नि प्राप्ति की यह पद्धति अधिक प्राचीन रही होगी। किन्तु कुछ विद्वानों का मत का खण्डन करते हैं और उनकी यह धारणा है कि प्रारम्भिक पाषाणयुगीय मनुष्य पशुआ से किसी प्रकार भी भिन्न नहा था। उसे अग्नि का प्रयोग बिल्कुल ही नहीं आता था। कन्द-मूल फल तथा मांस आदि को वह बिना पकाये या भून ही खाना था। पर यदि ध्यानपूर्वक देखा जाय तो उस आदि काल के मनुष्य का अग्नि का महत्व आज से किसी प्रकार भी कम न था। अग्नि उसके लिए प्राण रक्षिका थी। अग्नि से ही वह हिंसक जाव-जन्तुओं से अपनी रक्षा कर सकता था। आत्म रक्षा के समस्त साधनों से पशु-पशु भी परिचित होते हैं। अब यह अनुमान कि वे अग्नि का प्रयोग जानते थे तबसगन लगता है। उनके वसन के विषय में भी कम मतभेद नहा। कुछ इतिहासकारों के विचार से वे नान रहते थे किन्तु कुछ लोगों का यह मत है कि वे पेड़ों की छाया या सम्भवतः मनष्यों का खाल को सुलाकर उससे अपना तन ढकते थे। नज्जाम सही शरीर रक्षा के लिए तो उन्हें वसन आवश्यक हा रहा होगा। उनके भाजन-वसन पर विचार कर लने के पश्चात् अब हम उनके सामाजिक संगठन पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे। हम पाते हैं कि उस आदि काल में घरता के किमी किमा भाग पर ही मानव का अधिकार हो पाया था। जब जनसंख्या इतना कम थी तो आत्मरक्षा के लिए यह आवश्यक था कि एक प्रदेश के या एक भू भाग के समस्त मनुष्य अपना एक जत्था बनाकर रहें।

जल्दा बनाकर रहने की भावना के मूल में चाहे अथ जितने भी कारण हों पर सुरक्षा का कारण प्रारम्भिक एवं महत्वपूर्ण कारण है। मनुष्यों में जल्दा बनाकर रहना किसी प्रकार भी असम्भव नहीं। जब कि हम दाखत हैं कि विशेष जाति व पशु अपना-अपना पथक जल्दा बनाकर रहते हैं। अतः यह स्वतः सिद्ध है कि वे आन्तिकात्मान मनुष्य एवं समूह बनाकर रहत थे। पर कबन समूह बनाकर रहना ही सामाजिक संगठन का चातक नहीं। इसके लिए तो व्यक्तिगत के पारस्परिक सम्बन्ध का आवश्यकता जोर व्यक्तिगत व पारस्परिक सम्बन्ध का अर्थ है परिवार का घारणा स्थापित करना परि वारा में कुल और कुला में एक कुन्दा या बबोला स्थापित करना। कुन्दा या कजने का स्थापना के पश्चात् भी उनमें आत्मीयता की भावना का जागरण (जिसे आज के पाणिभाषिक शब्दा में जातीयता की भावना कह सकते हैं) जोर में जागरण के पश्चात् सामूहिक प्रगति एवं उत्थान के लिए उद्योग की आवश्यकता हाता है। यह मारा भिन्नकर ही सामाजिक संगठन कहा जा सकता है। उपयुक्त स्थितिगत से तो इन प्रागतिहासिक कालान्तर मनुष्या के किसी सामाजिक संगठन का स्थापित करने के लिए विद्वानतधार नहीं हैं पर हा कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि वे अपना समूह बनाकर रहने से। जहा तक समूह बनाकर रहने का बात है यह सत्य ही सक्ती है जसा कि प्रारम्भ में ही सिद्ध किया गया है। पर कुछ विद्वानों का यह भी कहत है कि समूह का सब शक्तिमान व्यक्ति अपने समूह का नेता या प्रधान हाता था। निम्नता की उत्पत्ति का कारण बनताते हुए एक महाव्यक्तिक ने लिया है कि मनुष्य अन्तिकात्मान में ही अपना प्रमुख दूसरे पर लादना चाहता है, अपना महानता दूसरे पर आरोपित करता चाहता है। उक्त विद्वान् का यदि यह मत सत्य है तो यह स्वीकार किया जा सकता है कि उन प्रारम्भिक पाषाणकालान्तर मनुष्या में सब शक्तिमान व्यक्ति ने अपने प्रभुता अपने अथ दूसरे साथियों पर लादने की कोशिश का हागी और अन्त में अपने में दुर्बलों का दाखत उनका प्रधान बन गया हागा। इन प्रकार भिन्न भिन्न समूहों के भिन्न भिन्न प्रधान रहे हागे। जब पहला प्रधान बढ हा जाता रहा हागा या उनकी शक्ति शीघ्र हा जाता रही हागा तो दूसरा शक्तिशाली व्यक्ति नवत्त ग्रहण कर लेता रहा हागा। निरन्तर ही इन प्रधानों के अधिकार अमापित रहे हागे। वे-के पशुप्रा के आवेत्त के समय समूह के बीर एकत्रित होत रहा हागे और उस मारकर प्रधान के आन्तिकात्मान मार बाँट लिया करत हागे। पर इनका पारिवारिक जीवन कसा था यह मा एक प्रश्न है। मनुष्य की सन्तान के यालन-पापण की विधि और उस विधि सम्बन्धी आवश्यकताओं पर ध्यान देते हुए यह अनुमान स्वच्छन्तापूर्वक लगाया जा सकता है कि उन प्राचीनकाल में भी पारिवारिक जीवन का महत्व रहा हागा। माता अपने शिशु का सेवा-शुश्रूषा के लिए निरन्तर ही पर्याप्त समय देता रहा हागा और किसी दशा में उस सन्तान का जतक उसके आहार की व्यवस्था करता रहा हागा। सन्तान तब तक अपने जननी-जनक पर आश्रित रहनी हागी जब तब वह स्वयं आलत करन योग्य नहा हा जाता हागी। इन प्रकार अथ पशु और अध मानव (मानव से अनिप्राय सभ्यता से मनुष्य न कि कबन मनु का सन्तान) का जीवन बिताकर यह प्रारम्भिक पाषाणकालान्तर मनुष्य अपना आनकाली पांडिया के लिए सभ्यता की आरंभिक हानि का माग निमाण कर रहा था।

### परमाणु युग

आन्तिकात्मान युग की समाप्ति के पश्चात् मानव-जीवन सभ्यता की प्रारम्भिक साक्षियाँ मार करने कुछ आगे बढ़ता है। इस युग में उनमें जो कुछ अधिकार बनाये थे सभी

पश्चर मध्य जगा कि हम भाग दोगे और इसीलिए हम पापाण-युग की समाप्ति का दावा नहीं है। सिन्धु-नागाणा की दृष्टि से इस युग की दो उपविभागों में विभक्त किया गया है—पूव पापाण युग तथा उत्तर पापाण युग। यहाँ हम इन दोनों युगों का पृथक्-पृथक् अध्ययन करेंगे।

### पूव पापाण

जिस युग का वर्णन किया जा चुका है वह कौरी कल्पना (चाहे वह भू-गर्भ विचारणा चाहे पुरातत्ववत्ताओं या इतिहासकारों की हो) पर आधारित है। पर जिस युग का अध्ययन हम यहाँ कर रहे हैं उसके लिए हमारे पास कुछ ठोस सामग्री है। यह सामग्री और कुछ नहीं वे विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ हैं जिनका प्रयोग मनुष्य 'हन्-सहन खान-पान आदि का होता है। यहाँ यह कह देना

विषय-तः न हागा कि प्रारम्भिक पापाण काल या आदि काल का जो वर्णन ऊपर किया गया है वह न केवल भारत के आदि निवासियों का वर्णन था वरन् विश्व के समस्त भागों में जहाँ कि मनुष्य रहते थे उन सभी मनुष्यों का वर्णन था। पर पूव पापाण काल का वर्णन करते समय हम अपने को केवल भारतवर्ष तक ही सीमित रखेंगे। यहाँ यह भी कह देना आवश्यक है कि पूव पापाण के अवशेष फ़ॉस स्पेन आदि अन्य देशों का अपेक्षा भारत में बहुत प्राप्त हुए हैं। भारत में भी ये अवशेष कुछ विशेष स्थानों पर ही सीमित हैं। उत्खनन द्वारा प्राप्त मनुष्यवर्षा का परीक्षा से यह पता हुआ है कि पूव पापाण कालीन मनुष्य अपने औजारों में जिस पत्थर का प्रयोग करते थे वे क्वाटजाइट हैं। क्वाटजाइट एक विशेष प्रकार का पत्थर है जो इन निवासियों का दक्षिण भारत में कुदप्पा की पहाड़ियाँ तथा कुछ अन्य दक्षिणी पहाड़ियों से प्राप्त हो जाता था। राजकीय संग्रहालय मद्रास की प्रागतिहासिक सामग्रियों की विवरण पत्रिका के अवलोकन से यह पता चलता है कि इस युग की वस्तुएँ मद्रास कुदप्पा तथा चिन्नपुरम में अधिक संख्या में प्राप्त हुई हैं। दक्खन या दक्षिण भारत में इन वस्तुओं का प्राप्त होना यह प्रमाणित करता है कि यह भाग भारतवर्ष का प्राचीनतम आवास प्रदेश था। क्वाटजाइट पत्थर के अतिरिक्त वे अन्य प्रकार के पत्थर का प्रयोग भी करते थे। इन औजारों तथा अन्य शस्त्र पत्थर के ही होते थे पर कुछ नक्की तथा हड्डियों के भी रहे होंगे। इनके हथियारों का विभाजन वी० रंगाचारी ने अपनी पुस्तक *Pre Muslim India* में इस प्रकार किया है—(१) फलक (२) बाण (३) माला (४) लादन के हथियार (५) पेंशन वाले पत्थर (६) लकड़ी के कान्तवान हथियार (७) चानू (८) छीलनवाने (९) हथौड़े तथा (१०) चमक पत्थर करने वाले हथियार। अपने इन्हीं हथियारों से वे अन्य-मनुष्यों का शिकार करते थे और इसमें वे काफी रुचि लेते थे। वे अपने रहने के लिए किसी प्रकार का भवन या झोपड़ी सम्भवन नहीं बना पाये थे। कन्नड़ जिले की कुछ गुफाओं में पूव पापाण कालीन मनुष्यों का आवास माना जाता है।<sup>१</sup> अब हम दखत हैं कि जिस प्रकार इनके पूवज प्रारम्भिक पापाण कालीन मनुष्य गिरि-वन्दराओं तथा वक्षा में रहते थे उसी प्रकार वे भी पहाड़ियों का गुफाओं तथा वक्षा का छाया में रहते थे। निश्चय ही वेप के अधिकांश दिन वे बाहर बाट

१ रायामुद मुक्जौ, *Hindu Civilization* p. 1

२ वी० रंगाचारी *Pre Muslim India*

दते रहे होंगे और केवल घषा-काल में गुफाओं का धारण लत रहे। इन्होंने कृषि-काल सीखने का प्रयास किया होगा ऐसा अनुमान किया जा सकता है क्योंकि उनके पास खोदने का हथियार थे और प्रकृतिप्रदत्त बीज उन्हें सुगमता से प्राप्त थे। पर इतिहासकार इसमें सहमत नहीं और अधिकांश विद्वानों का यह विचार है कि पूर्व पाषाण युगीय मनुष्य कृषि में पुणतया अपरिचित रहा और इस क्षेत्र में वह पूर्ववत् बना रहा।

इनके वस्त्र के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों में मतभेद है। कुछ विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि ये बहुधा नग्न रहते थे किन्तु अधिकांश विद्वानों इस पक्ष में हैं कि ये पेशे की पत्तियाँ छाली तथा पशुओं की खाल में अपने शरीर का ढक्कन थे। जिनके प्रयाग के विषय में भी कुछ इसी प्रकार का मतान्तर है जिसका निराकरण प्रारम्भिक पाषाण युग के परिच्छेद में किया जा चुका है और वही तब यहाँ भी मान्य समझना चाहिये। इन्होंने इनकी सम्यता सम्बन्धी का जानबाली प्रगति का परीक्षा के आधार पर इतिहासकारों ने असम्य धारित किया है। उनके सम्पूर्ण जीवन की मुद्रना उन्होंने पशुओं से की है और बताया है कि एक चतुर एवं शक्तिशाली पशु का मांस दुबल पशुओं का आगुष्ट कर प्रकृति द्वारा सुगमता से प्राप्त पदार्थ जल आदि का भोजन कर वधा के नीचे या गिरि-गुफाओं में निवास कर ये अपने जीवन के दिन काट लिया करते थे। इन्होंने बतलाना विल्कुल नहीं आता था, अतः जन के लिए विवश होकर इन्होंने सरिता, झरना या बहते बड़े-बड़े कासारा के निकट बसना पड़ता था। प्रातःकाल से लेकर सूर्यास्त तक ये पशुओं के आखेट के रूप में फिरते थे और रात्रि में हिंसक पशुओं से स्वयं अपनी रक्षा के निमित्त चिन्तित होकर किसी सुरक्षित स्थान पर सो जाते थे। ये समूहों में रहते थे जिसे अथवा सामाजिक संगठन कह सकते हैं। ये शव विमज्जन किम प्रकार करते थे, यह अभी तक प्रायोगिक रूप से नहीं ज्ञात किया जा सका है। दफनान तथा जलाने की प्रिया मध्य समाज के पुस्तनी अधिकार के रूप में है अतः व अमध्य पूर्वपाषाण कालीन मनुष्य इन दोनों प्रयाओं से वचित रहे होंगे। ऐसा मानकर इतिहासकारों ने यह घोषित कर दिया है कि वे अपने शवों को कोई चिन्ता नहीं करते थे और उन्हें या ही गुला छान देते थे। पर अतः में ऐसी घोषणा कर देना तबसगत नहीं। यदि यह सत्य है कि घषा प्यार राग द्वेष आदि मनुष्य का जन्मजात प्रवृत्तियाँ हैं तो अपना के प्रति मोह और श्रद्धा उम पूर्व पाषाणकालीन मनुष्य में नही होगी। यदि सिन्धु घाटी में प्राप्त अस्थि भस्म या हड्डियों की बन्धना कोई वस्तु नहीं प्राप्त हो सका तो इसमें आश्चर्य नहीं। इन दोनों युगों में काफी दूरी है। समय का एक बहुत लम्बा रास्ता तय करके तो सिन्धु घाटी का युग आता है। पूर्व पाषाण युग की अवधि कुछ नहीं तो तीस हजार ई० पू० से पन्द्रह हजार ई० पू० तक है जबकि सिन्धु गम्यता का काल ठनता से तान चार हजार ई० पू० है। इतना ही नहीं किन्तु अथ दशा में पूर्व पाषाण कालीन मनुष्य भी अपने शवों का दफनाना था जसा कि फाम स्पन आदि में प्राप्त कब्रों से परिचित होता है। इन कब्रों में वह न केवल अपने प्रिय शव का ही दफनाना था प्रत्युत उसकी प्रिय वस्तुओं का भी वह उसके साथ दफनाना था। सोमाग्यवस विज्ञानों में इसी काल की कब्रें प्राप्त हुई हैं पर अतः है कि भारत में ऐसी कब्रें नहीं मिली या जो मिनीं भी उन्हें पूर्व पाषाण कालीन न मानकर उत्तर पाषाण कालीन माना गया। सम्भव है वे उत्तर पाषाण कालीन हों हों क्योंकि उनके प्राप्ति-स्थान पूर्व पाषाण कालीन मनुष्य का पहुँचने पर ये पर इतना लिए हमारे पास क्या प्रमाण है कि भारत के पूर्व पाषाण कालीन मनुष्य अपने शवों का या हों बरखा से पक देते थे जब कि हम पाते हैं कि धरती के अथ मू माया के इसी काल

के मनुष्य उसे स्फुटताते थे। यह हमारा अपने इतिहास के प्रति मोह या पक्षपातयुक्त भाव नहीं है अपितु यह सम्पूर्ण मानव के समान विकास सम्बन्धी वास्तविकता के प्रति न्याय की मांग है। यहाँ मानव के समान विकाससम्बन्धी वास्तविकता का उदात्तरूप दे देना विषयवस्तु नहीं होगा। विश्व इतिहास के अध्ययन से यह बात होना है कि लगभग सात या छह हजार २००० सालों के तीन या दो हजार ई०पू० के भीतर अर्थात् चार पाँच हजार के भीतर विश्व में कुछ जाग पीछे अनक सम्प्रदायों का उत्पन्न हुआ। इनमें सुमेरियन बेबानोनियन असीरियन क्लिडियन मिथ्रा यूनानी तथा सिन्धु घाटी आदि की सम्प्रदायें प्रमुख हैं जो ही प्राचीन सम्प्रदायों की स्तम्भशिला हैं। अधिक विस्तार में जाया उचित न होगा। अब सक्षम नहीं हैं इन सम्प्रदायों द्वारा समान विकास को स्पष्ट करेंगे। इन सारी सम्प्रदायों के मूल तत्त्व धार्मिक विश्वास (जिसमें पहले प्रकृति-पूजा एवं बहुदेववाद और तब यदि नहीं सम्भव हो सका ता एके-वरवाद) सामाजिक संगठन (उत्तम मध्यम तथा निम्न वर्ग जिसमें राजा एवं राजकुल सामन्त तथा पुरोहित या विद्वान आदि का उत्तम कुल में अथ धनिकों को मध्यम तथा कृषक या दासों को निम्न वर्ग में रक्खा गया) आर्थिक व्यवस्था (जिसमें सर्वप्रथम कृषि तथा परान्त घरेलू उद्योग-धंधे और कान्तर में व्यापार) बहुत थोड़े अंतर से समान हैं। यह दूसरी वस्तु है कि किसी न कान् नवीन आविष्कार कर लिया हो और दूसरा उसमें कुछ कान तक अनभिज्ञ रहे। पर जहाँ तक मूल आवश्यकताओं का प्रश्न है विश्व के समस्त सम्प्रदायों में समान रूप से विकास करते गये और इन प्रकार उनका प्रतिफल बनता था। इन तथ्यों के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अन्य पूर्व पाषाण कालीन मनुष्यों का भावित्य भी अपने शवों को दफनाने रहे जिनका अवशेष आज २५-३० हजार वर्ष बाद प्राप्त नहीं।

दक्षिण के मनुष्य निवासी किस जाति के थे इस विषय में केवल अनुमान ही महा जान लना पड़ता है कि ये भारत के आदि निवासी थे। इनका विशेष विवरण अथवा तत्सम्बन्धी परिच्छेद में दिया जायगा। वास्तव में इन्हीं आदि जातियों में सम्प्रदाय का बीजारोपण किया जिस जानवानी पीढ़ी में विकासामुखी बनाया।

उत्तर पाषाण का

यह युग लगभग पन्द्रह हजार ई०पू० के कुछ पहले से ही आरम्भ हो जाता है। पूर्व पाषाण काल के विषय में लिखते हुए यह बताया गया था कि इस युग के मनुष्यों में मनुष्यत्व बहुत ही नगण्य है पर इसके पीछे प्रतिबल उत्तर पाषाण काल के अवशेष पदावधि मात्रा में प्राप्त होते हैं। साथ ही जहाँ पूर्व पाषाण कालीन लोगों ने अपने का केवल दफनाने भारत में ही सामित कर दिया था जमा कि उनका प्राप्त मनुष्यत्व से मान है वहाँ दूसरी ओर उत्तर पाषाण कालीन मनुष्य का काय-धर्म सम्पूर्ण भारत है। यह रहस्या घाटन उनके मनुष्यत्व से साह्य है। इस पर पुन ध्यान देना चाहिये कि प्रारम्भिक पाषाण कालीन मनुष्य का काय-धर्म मनुष्यत्व प्राप्त नहीं (कान के कठोर गाल में या तन्मा अर्द्धि के मर्म में खो गया) पूर्व पाषाण कालीन मनुष्यों के इन गिन ध्वसावशेष हैं पर उत्तर पाषाण युगीय मनुष्यों के मनुष्यत्व प्रचुर मात्रा में प्राप्त हुए हैं। अब हम पहले इन प्राप्त मनुष्यत्व पर ही ध्यान देना चाहिये। अन्वेषण द्वारा अब तक जा अवशेष प्राप्त हो सके हैं उनका विभाजन इस प्रकार किया गया है—(१) चकमचक उपादान (Pigmy Flints) (२) औजार के कारखाने (Implements Factories) (३) क्षार ढेर (Cinder mounds) (४) कान्तर विहारे या

समण कला सम्बन्धी (Cup Marks) (५) लाल रंगिया की चित्रकारी या चित्र कला सम्बन्धी (Ruddle or haematite drawings) तथा (६) कब्र या समाधियाँ (Tombs) ।

उत्तर पाषाण कालीन मनुष्या के प्रसार का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए हम उपरोक्त मन्दावशेषों का प्राप्ति-स्थानों का उत्खनन करेंगे ।

चक्रमयीय उपादान के अन्तर्गत चक्रमय पत्थर द्वारा निमित्त उन ममस्त छोटे छोटे औजारों का रक्ता गया है जो आधा इंच से लेकर छेड़ इंच तक लम्बे हैं । ये बहुधा नोकाल तथा समद्विबाहु त्रिभुजाकार हैं । इन औजारों का मुटिया भी तर्कही की बना जाता था । छालन कान्ते कुरदन का न आदि का काम इन्हीं औजारों से लिया जाता था । इनके अवशेष विन्ध्य की पहाड़ी या मिर्जापुर रावाँ बघेलखण्ड आदि स्थानों में प्राप्त हुए हैं । छाटा नागपुर आसाम तथा बर्मा में भी इसी वर्ग का एक विशेष प्रकार का औजार प्राप्त हुआ है जो छेती के आकार का है । इस प्रकार का औजार इण्डोचीन तथा मलाया पेनिनसुला में भी प्राप्त हुआ है ।

विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का कारखान भी दक्षिण भारत में अपने ध्वसावशेषों के रूप में प्राप्त हुए हैं । दक्षिण भारत के विभिन्न भागों में उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों की वस्तुओं के चिह्न भी इन्हीं कारखानों के चिह्नों के साथ प्राप्त हुए हैं । चाकू द्वारा निमित्त उच्चकटि के बतन भी यहाँ मिले हैं । ये सार अवशेष उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों के प्रसार का वाद्य करत हैं ।

दक्षिण भारत में जिन प्रकार पूर्व पाषाण कालीन मनुष्यों के अवशेषों में भारत के अथ भागों के साथ-साथ दक्षिण भारत में बहुतायत में मिले हैं । ये दक्षिण भारत के बतारी जिले में पर्याप्त मात्रा में मिले हैं ।

बतारीय चिह्न या तक्षण कला सम्बन्धी वस्तुओं के चिह्न किसी एक स्थान पर ही नहीं प्राप्त हुए हैं प्रत्युत भारत के अधिकांश भागों में इसका उदाहरण प्राप्त हुआ है ।

उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों किन्हीं प्रकार चित्र कला में दक्ष या इसका ज्ञान जानता उदाहरण हम मिर्जापुर हांगगावाँ कमूर का पहाड़ियाँ आदि में प्राप्त हुआ है । मिर्जापुर जिले में वागर्हासिंग पर जात्रमण वर्तन हुए एक आग्न के चित्र प्राप्त हुआ है । होशंगावाँ में एक जिराफ का रेखाचित्र है । ध्यान देने योग्य बात यह है कि ये चित्रकला में परिचित थे । इसी प्रकार सिंगापुर में भी कुछ चित्र मिले हैं जिनमें एक बृश कर्गाण मा है । घोड़े तथा हिरण के चित्र भी अकिन्त निय गये थे जो यहाँ प्राप्त हुए हैं ।

बतारीय समाधियों के चिह्न भी प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर हम उनका पंचविंशतन किया के साथ-साथ उनका प्रसार का वाद्य करत हैं । मिर्जापुर में मम्मवत विना युग का अस्थि-पत्थर प्राप्त हुआ है । जिन समाधियों में यह अस्थि-पत्थर पाया उसमें कुछ चक्रमय बतन भी रक्ते थे । इस युग का एक बहुत बड़ा पश्चिम्तान कालीन जिले में प्राप्त हुआ है । इस स्थान में ७४ बतन हैं । पट्टावरम में मद्राम शहर के निकट भी एक समाधि-माया मिला मिनी है । चिगलपट्ट प्रसार तथा वाकट मन्दावशेषों आदि स्थानों पर भी एसा समाधियों प्राप्त हुए हैं । एसा प्रकार मन्दावशेषों के अतिरिक्त भारत के अथ भागों में भी समाधियों विभिन्न प्रकार के रूप का मिना

है। मसूर निजाम राय तथा बम्बई में इनका वाहल्य है। ५४ कन्नौजवाले कन्नौजवाले क्षेत्र में अधिक मात्रा में एक समाधि भूमि त्रिश्रवली जिले में ताग्रपर्णी नदी के तट पर आदिचनल्लुर नामक स्थान पर प्राप्ता हुई है। यह समाधि भूमि लगभग ११४ एकड़ में प्राप्त है और प्रत्येक एकड़ में कम से कम १००० शवों के लिये स्थान है। यहां प्राप्ता शवों का पूरा ढाँचा टुकड़ों में विभाजित करके रखा हुआ प्राप्त हुआ है। यह भी शव विसर्जन का एक प्रथा रही होगी। शव-पत्रा का यहाँ अधिकता से पाया जाना इस नयी शव विसर्जन क्रिया का द्योतक है।

इन भग्नावशेषों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि ये लगभग सम्पूर्ण भारत में फैले हुए थे। पूर्व पाषाण कालीन मनुष्य की भाँति ये केवल दक्षिण भारत तक ही सीमित नहीं थे। उनके इन भग्नावशेषों के आधार पर हम इनके रहने-सहने का भी अनुमानित रूप रखा तैयार कर सकते हैं। निश्चय ही इनकी भवन निर्माण कला का बौद्धिक विकास हुआ। हाँ इनके भवन किस प्रकार के होते थे यह बताना कुछ कठिन-सा है। पर विद्वानों ने ऐसा अनुमान किया है कि ये घास फूस की शीर्षा या बनाते थे और उन्हें प्रौढ़ता प्रदान करने के लिए उन पर मिट्टी का लप कर देते थे। नक्षत्रों द्वारा भवन निर्माण किया जाना बिल्कुल स्वामाविक है क्योंकि जिन पौधों की डालों की छाया में वह बैठता था उन्हें डाल पत्ता का अपना रस चूसने से बचाने की उमन का शिष्ट की होगी। ये लोग जब कन्नौज और भवन बनाना जान गये थे चाहे वह किसी भी अवस्था में रहे हो यह अनुमान सरलतापूर्वक लगाया जा सकता है कि शरीर के निकटतम आवरण वस्त्र की व्यवस्था भी इन्होंने की होगी क्योंकि जो अपने अपने परिवार तथा अपनी वस्तुओं के लिए एक आवरण घर या शीपरी बना सकता था और शव का आवरण कपड़ा या समाधि निर्मित कर सकता था वह स्वयं अपना तन ढकन के लिए चिन्तित नहीं हो यह असम्भव है। कुछ इतिहासकारों का मत है कि वेत्रन बल्कल पत्तियाँ छाल खाल आदि से ही अपना तन ढकते थे परन्तु अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि उत्तरार्ध काल में उन्होंने वस्त्र बनाना सीख लिया था। पाषाण युग (दोना पाषाण युग—पूर्व तथा उत्तर पाषाण युग) में हथियार पर्यन्त के अस्त्र होते थे और अन्य वस्तुओं के बहुत कम (या यदि रहे भी हाथ समय ने उनका विध्वंस कर दिया) और इसीलिए इस पाषाण युग कहा भी गया है। पर दोना पाषाण युगों की प्रगति में काफी अन्तर पड़ा चका था यह हमने असा देखा है। इनकी मुख्य वस्तुओं अस्त्र शस्त्र में भी काफी परिवर्तन हो चुका था। यद्यपि अधिकांश पुराने हथियार अब भी चल आ रहे हैं पर अब वे उतने माद नहीं थे। उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों ने अब उन्हें सुन्दर तज्ञ और सुडौल बनाना आरम्भ कर लिया था। उन्होंने उस पर एक प्रकार का पानिश करना सीख लिया था। अब ये काफी चमकाने लगे थे। इससे स्पष्ट तथा जात जाता है कि ये आदि कालीन मानव भी उत्तरार्धक सौन्दर्यानुभूति के लिए ध्यातुन सौन्दर्यापामना के लिए परेशान हो रहे थे। कारणात्ता के आ विज्ञान प्राप्त हुए हैं उसमें यह जात जाता है कि इस युग में कुछ कलाओं की विविध उत्पत्ति हुई। इन कलाओं में सम्भवतः बतन कला प्रमुख थी। दक्षिण के कल्पित स्थानों में बतन के अब प्रेष तथा कथन में रक्कत हुए बतन की दृश्य पर यह जात जाता है कि वे तान प्रारम्भ में हाथ में बतन बनाते थे फिर कालान्तर में वे चाक द्वारा बतन बनाने लगे। चाक की प्रयोग बतन बनाने में विद्वानों में सर्वप्रथम कहाँ हुआ इसका अनुमान लगाना कुछ कठिन-सा ही है पर निम्नलिखित यह नसा स्वाकार बतन है कि चाक का प्रयोग उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों ने ही सर्वप्रथम प्रारम्भ किया। अब नया यथाया नक्षत्रों के लक्षण पर

रहते थे। यद्यपि पानी के पात्रों का निमाण ये करने लगे थे पर माघ ही कुछ अन्य आवश्यकताओं भी वह गृह जिनकी पूर्ति के लिए जल के निकट निवास करना आवश्यक था। इन आवश्यकताओं में सबसे प्रधान थी कृषि तथा दूसरी पशु सम्भालना थी। अब अपने आसक्तक जीवन का बाधा-सा घटाकर इन्डान कृषि की आरंभकृत मृदम ध्यान लिया। सम्भवतः नारियाँ ही इस कार्य की करनी रही हागी और पुरुष जब भी जागृत व निष्पन्नता में भटकता रहा होगा। इनकी कृषि में व भी पत्थर प्रारम्भ में रहा हाग जिनका उपयोग वह प्रकृति से प्राप्त करके सलिया से करना जा रहा होगा। उहा पत्थरों का वह अब अपनी इन्डानुमार उपजाने लगा। आदि मानव न यह भा अनुभव किया। न कुछ पशु जिनका वह शिकार करता है ऐसे भा है जिनके पालन से अपत्याहत अधिक लाभ हो सकता है। अतः उनमें पशु-पालन भी आरम्भ किया। यह नहीं कहा जा सकता कि सब प्रथम वे किस पशु से परिचिन हुए। पर यह तो निश्चय है कि प्रारम्भ में इन्होंने उही पशु का वा पालन आरम्भ किया होगा जा इन्हें देखकर भयभीत हो जाते थे और भागते थे। हिसक पशुओं से ये स्वयं डरते थे। अतः उनका पालन सम्भव नहीं। इस आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि वे गाय बिल मड बकरी आदि पालत रह हागे पर यहाँ यह भी कहना आवश्यक है कि अपने पालन पशुओं का भी वे जागेट के अभाव में उसी प्रकार मारकर खा जात रहे हागे जैसे आजका मय्य मानव करना है। पशु-पालन से उन्हें दूध भी प्राप्त होने लगा। फल-फूल जब वे स्वयं यात्रा करने लगने लगे थे आगेट अब भी करते थे। अतः ये सारे पदार्थ उनके भोजन में रहते हागे। मछली पकाने के लिए सम्भवतः इन्होंने जाल-सो कोई वस्तु बना ला हागी क्योंकि उन दिना जब कि माग भारी झील और बड़ी बड़ी नदियाँ के निकट वे लाग रहते थे यह सम्भव नहीं था कि बिना किसी विशिष्ट उपकरण के मछली का शिकार हो सके—वतन तथा कुछ अन्य वस्तुओं की प्राप्ति से कुछ ऐसा परिदृशन होता है कि ये लोग पाक विज्ञान से परिचिन थे। आग से भूतकर खाने वाल पाक विज्ञान को शोध ही समझ सकता है वा कम से कम समझने की और अग्रसर हो सकता है। इस युग के मनुष्य न केवल अपने हृषिपारा तथा अपने उपकरणों की संवारन का प्रयास नहा किया वरन स्वयं अपने को संवारने-बनाने की भी इसन चष्टा की। बाल बाने की कथियाँ तथा गुनुवन्त स यह प्रमाणित होता है कि इनका स्त्रियाँ शृंगार से विशेष अभिरुचि रखनी थी। भोजन वसन भवन आदि पर प्रकाश डालन के पश्चात् अब हम उत्तर पापाण कालीन मनुष्या की मानसिक स्थिति का वाच करगें—मानसिक स्थिति से अभिप्राय वासनव में महदयता अथवा सवेगना से है जो पूणतया हृदय के विषय है पर उहाँ यहाँ मानसिक इसलिए कहा गया है कि प्रारम्भ में जब तक मन्दिज्य शून्य है तब तक हृदयगत विशेषताओं एवं तत्सम्बन्धी प्रगति का कोई प्रान नहा उठता। उम युग की ठीक यही दशा थी।

बला के क्षेत्र में उस प्रागतिहासिक काल के मनुष्य ने भी उन्नति की थी यह विचार हमें वने सुगमतापूर्वक प्राप्त नहीं पर हमें विवस होकर इस गत्य का समयन तब करना पता है जब हमें उनका तत्सम्बन्धी अवशेष प्राप्त हात है। उनका भग्नावापा के विषयों में लिखन हुए हमन पिछले पष्ठा में बतलाया था कि उनके अवशेषों में 'कटारोत्तर विह्व' का लक्षण बड़ा सम्बन्धी अवशेष भी प्राप्त हुए है। भारत के अधिकांश भागों में प्रस्तार गिताओं या चट्टानों पर उन्नीय ये नमून निम्नव हा आच्यजनक \*। यहाँ यह कहना विषयतः न हागा कि भारत में सबप्रथम कलात्मक प्रकृति तथा उसका प्रफुरण का वाच हमें उत्तर-पापाण काल में हाता है। जबकि विश्व के अन्य भागों में पूर्व पापाण कालीन मनुष्या ने ही इस आर पर्याप्त उन्नति कर ली थी आर उनकी



इसी उन्नति की समीक्षा करते हुए एक विद्वान ने लिखा है कि चित्र कोमलता शक्ति और निपुणता से इतन परिपूर्ण है कि उनको देख कर यह दुखद भावना उठती है कि कला ने कम से कम इस क्षेत्र (चित्र कला) में मानव इतिहासक सदीय काल में अधिक उन्नति नहीं की है।<sup>१</sup> तक्षण-कला के अतिरिक्त चित्रकला में भी ये कुछ देख लिये जा सकते हैं। इनके उदाहरण (देखिये पिछले पृष्ठ पर लाल रंग या लाल रंग की चित्रकारी (Ruddle or haematite drawings) पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हुए हैं। यद्यपि ये रंग चित्र पूणतया अपनी प्राथमिक अवस्था में हैं पर इनमें एक अभिव्यक्ति है य भावहीन नहीं है। भारत द्वारा बारहसिंहे पर आक्रमण करने का चित्र स्पष्ट रूप से यह व्यक्त करता है कि (क) आखेट उनका प्रिय विषय था (ख) वे पशुओं को बस में करने के लिए उन पर मनुष्य का आधिपत्य दिखलाना चाहते थे तथा (ग) इनकी अदम्य शक्ति एवं उत्साह सराहनीय है। घाँसाल हिरन शिकारी आदि के जो रंगचित्र प्राप्त हुए हैं उन सब का जाकृतियाँ बहुत कुछ ठीक हैं। मनुष्य के जो चित्र इतना बनाए हैं वे फाटन टाइप का है यद्यपि सम्भवतः उनका अभिप्राय व्यंगचित्र से नहीं रहा होगा। कुछ चित्रों का देखने से ऐसा परिचित हाता है कि वे नृत्य मुद्रा के हैं। इनकी कलात्मक प्रवृत्ति का कुछ बाध कर लन के पश्चात् हम इनके धार्मिक विश्वासों की समीक्षा करेंगे। किसी प्रागैतिहासिक काल या अत्यंत प्राचीन काल के धार्मिक विश्वासों या रीति रिवाजों का बाध हमें प्राप्त मूर्तियाँ मुहरा या ताबीजाँ पर उत्कीर्ण या चित्रित आकृतियाँ तथा पूजा परक सामग्रियाँ सहाता है। तीन हजार ई० पू० में सिंधु घाटी के निवासी विभिन्न धार्मिक प्रथाओं एवं विश्वासों से बाध थे इसका बोध हमें प्राप्त मूर्तियों या ताबीजाँ द्वारा ही हुआ है। पर दुर्भाग्यवश उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों के भगवानों के इस प्रकार के नहीं हैं। वे हमें उनके धार्मिक विश्वासों का बोध कराने में असमर्थ से ही हैं। पर कुछ इतिहासकारों ने ऐसा अनुमान किया है कि वे प्रकृति-पूजक थे। प्रकृति पूजा को किसी भी आदि कालीन मानव के ऊपर मनुष्य के दान बहुत सरल कार्य है क्योंकि यहाँ धर्म का प्रारम्भिक रूप है। तब कुछ इतिहासकारों ने इनके प्रकृति पूजक घोषित करते हुए बतनाया है कि वे बस तथा चट्टानों में देवता का निवास समझते थे और उन्हें पूजते थे पर यह कहा तक सत्य है नहीं कहा जा सकता। कुछ 'खदान' इनमें 'ब्रह्मवाद' तथा 'निग-पूजा' तक का विद्यमान रहना अनमानित किया है। पर इसका कोई प्रमाण हमारे पास नहीं है। साथ ही यह सम्भव नहीं कि तक्षणकला तथा चित्रकला से परिचित उत्तर पाषाणकालीन मनुष्य अपने धर्म का कान्क्षित चित्रित नहीं करता। इनके समाजिक संगठन के विषय में हम कुछ विषय जान नहीं हैं। कबल इतना ही अनुमान किया जा सकता है कि जब भी समूहों में हन का प्रथा प्रचलित था। किसी राजनीतिक संगठन का कल्पना करना तब संगत नहीं। यह विकास का बहुत बड़ा वाला सीढ़ी है।

कुछ इतिहासकारों ने पूव पाषाण काल तथा उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों को जानियाँ में मनु माना है और कुछ ने उन्हें एक ही स्वाकार किया है। इनका जानियाँ के विषय में प्रचलित मतमतांतरों का छाँटा यहाँ कबल इतना ही कह दना पर्याप्त होगा कि पूव पाषाण कालीन मनुष्य जाकृतियाँ दाँतों में हाँ रहना था लगभग १५ हजार वर्षों में उन्नति अवश्य कर सका होगा और यह भी सम्भव है कि उमन धार धीरे उन्नति कर ली। किमा दूरता जानि गता आक्रमण करके पूव पाषाण कालीन मनुष्यों से कुछ निस्तरा ईद सम्पत्ता (यद्यपि यह सम्पत्ता नहीं कहा जा सकता) उत्तर

पाषाण कालान् मनुष्या द्वारा निर्मित दिखलाना कुछ बहुत तनयुक्त नहा जचता । फिर भी एसी सम्भावना हो सकता है ।

**पाषाण युग की कुछ विनिष्टिताएँ**

भारतीय पाषाण युगों की जाँच का प्रकार (Typologically) तथा कालक्रमानुसार (Chronologically) तीन श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है । प्रथम तथा द्वितीय श्रेणियों में तथा मध्यवर्ती पूर्व पाषाण काल (Lower and Middle Palcolithic) व औजार आते हैं । तृतीय श्रेणी के अन्तर्गत अल्पपाषाण उद्योग (Microlithic industries) का रखा जाता है । प्रथम तथा तृतीय श्रेणियों के विषय में तो हमारे पास कुछ तत्वयुक्त समाप्ती है परन्तु द्वितीय श्रेणी की परिभाषा देना भी कुछ कठिन सा प्रतीत है ।

सब प्रथम हम प्रथम श्रेणी के पाषाणीय औजारों का उल्लेख करेंगे ।

**पूर्व पाषाण युग**

भारत में कुछ पाषाण काल (Palcolithic Period) का उल्लेख ४००००० वर्ष ईसा पूर्व से माना जाता है । भूगर्भ शास्त्र (Geology) के अनुसार यह काल मध्यवर्ती प्लायस्टोसीन (Pleistocene) में आता है । भारतीय पूर्व पाषाण काल व औजारों को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है —

**विल्लौर उपकरण (Pebble implements)**—यह औजार नदी द्वारा बहाकर लाये हुए क्वाटजाइट (Quartzite) पत्थर व मान-गोन टुकड़ों से बनाया जाता था । बहुधा हम इन औजारों पर मूल पत्थर के विद्रु (Cortex or crust or the pebble) देख सकते हैं । इन औजारों का भारतीय प्रागैतिहासिक काल में हमें मान उद्योग (Soan Industries) के अन्तर्गत मानते हैं । मान नदी की घाटी में (पंजाब) इस प्रकार के औजार हमें अब प्रथम प्राप्त हुए थे । इसी उद्योग का दूगग नाम (Chopper Chopping industry) से रखा गया है । अर्थात् कुछ भागों में हमें भारतीय विल्लौर औजार जन्म प्राप्त हुए हैं । इसी परम्परा का जन्म में विकास हमें कुठार सभ्यता (Handaxe culture) नाम से जाना है ।

**हस्तकुठार सभ्यता (Hand axe culture)**—यह औजार नासपाता जगा शकल के हैं । इनका एक किनारा (edge) नुकीला (Pointed) होता है । इसी किनारे का सहामता से पाषाण काल के जग अपना आवश्यकता का सामान बटागत थे । पाषाण के दूसरे भाग का मुठिठ का (butt end) का सजा दा जाती है क्योंकि जमा भाग का पक्कर कर सत्वातीन लाग अपना काय करत थे । यूरोप में इस सभ्यता का जग उद्योग (Core industry) के अंतर्गत रखा जाता है अर्थात् पाषाण के मूल भाग से ही हमें कला का निर्माण किया जाता था । हमें कुठार उद्योग का ही परम्परा में विनवत किया जाता है । मरु के तथा निपुण कारणों से इन औजारों का जगवाताम (Abbeville) परम्परा का जग में रखा जाता है क्योंकि अर्थात् नामक स्थान पर ही सब प्रथम इस प्रकार के पाषाण प्राप्त हुए थे । जब मनुष्य ने अपना अनुभव व कुछ अधिज्ञ साधना तो उमन उपयोगिता के सिद्धान्त के माध्यम से माय सौन्दर्यनिर्भरि का सिद्धान्त से सम्मि नित कर लिया । अब हथियार बदन उपयोगिता के लिए नया नया बनाये जान थे प्रत्युत मानसिक तत्त्व के लिए उन्हें सुन्दर रूप में लिया जाता था । जगएव अनुभव (Achelean tradition) परम्परा के हथियार मनुष्य के कायकुशलता एवं निपुणता का उदाहरण हैं । इसी परम्परा के अन्तर्गत (Cleavers) का मान जात है । इनका

किनारा चौड़ी छनी (wide chisel edge) जस होता था। परशु (Cleavers) अधिकतर अशुलीय (Acheulean) परम्परा के साथ मिलते हैं। भारत में इस प्रकार के पायाण सर्व प्रथम मद्रास के कुछ भागों में प्राप्त हुए थे अतएव भारतीय हस्त कला उद्योग को मद्रास उद्योग (Madras Industry) का नाम दिया जाता है।

पटिया उपकरण (Flake implements)—यह औजार पत्थर के मुख्य भाग से निकल हुए या अलग किए हुए पत्थर के टुकड़ों से बनाए जाते थे। इसी प्रकार के औजारा (पटिया) का मूल्यत दो पद्धति से तैयार किया जाता था। पहला को तो हम क्लक्टोनियन (clactonian) पद्धति कह सकते हैं। इस पद्धति में एक पत्थर के बिना किसी प्रारम्भिक तराशी (Primary flaking) किए हुए दूसरे पत्थर के टुकड़ों पर मारा जाता था। इसी लिए इस पद्धति का कभी कभी खण्डोपरिखण्ड पद्धति (block on block technique) की संज्ञा भी दी जाती है। इस पद्धति के बने हुए औजार आकार में वे और १२० के कोण बनाते थे। इस प्रकार के पद्धति अधिकतर मनुष्य की प्रारम्भिक अवस्था में प्रयुक्त होती थी। दूसरी प्रकार की पद्धति को लवालोय (Levallois) या घाट शली कहते हैं। इसमें शिला-खण्ड पर घाट काट लिया जाना और जब तक वाञ्छित उपकरण का घाटशिला-खण्ड पर उत्कीर्ण हो जाता था तो एक दूसरे पत्थर से उस पर चाट की जाती थी जिससे पत्थर को वाञ्छित आकृति पथक हो जाती है। काटन या छीलन का धारदार हथियार प्रायः इसी पद्धति से बनाये जाते थे।

अब हम भारतीय पूर्व पायाण काल (Paleolithic) की कुछ परम्पराओं का विस्तार से वर्णन करेंगे।

भारतीय प्रागतिहासिक काल का पिता ब्रूज फूट (Bruce Foote) ने सर्वप्रथम १८६ में मद्रास के निकट पल्लवरम (Pallavaram) नामक स्थान पर एक पूर्वपायाण कालीन औजार प्राप्त कर भारतीय पायाण काल का उदघाटन किया था। उन्हीं की प्रेरणा एवं स्फूर्ति का कारण है कि आज भारत का युवक पुरातत्ववेत्ता भारत काने-काने में अपने राष्ट्रीय प्रागतिहासिक काल को खोजबीन में लीन एवं अध्यवसाय के साथ खोज रहा है। यद्यपि भारतीय पुरातत्व विभाग अभी एक शिशु रूप में है, लेकिन फिर भी इसने पर्याप्त प्रगति की दिशा में तीव्रगति से प्रयाण का उद्योग किया है। अब हम भारत के विभिन्न स्थानों से प्राप्त इन औजारों की विन्लेषणात्मक विवचना करेंगे।

उत्तर भारत — डा० जेनर (Zenner) ने युरोपाय प्रागतिहासिक काल के चार हिम युग (Glacial Periods) तथा इनके मध्यांतरिय अंतर हिम युग (Interglacial Periods) में विभक्त किया है। उनका मतानुसार हम लायस्टोमान (Pleistocene) युग को निम्नलिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं—

- १ आदि हिम युग Early Glaciation
- २ पूर्व-उपान्त अन्तहिमयुग (Ante Penultimate Interglaciation)
- पूर्व-उपान्त हिम युग (Ante Penultimate Glaciation)
- ४ उपान्त अन्तहिमयुग (Penultimate Interglaciation)

भारत में मा हिमालयपर्वतों से प्लायस्टोमान काल में बर्फ का नन्दिनी फूट निकली थी और इस प्रकार से चार Glacial Periods में हुए। Interglacial Periods के जब कि शान का कठारता समाप्त हो जाता था, तब हमें प्रायः पाते हैं। कर्नाटक तथा पंजाब के चार Glacial Periods का युरोप के Glaciations से सम्बन्धित किया गया है। जब दूसरा Glaciation भारत में हुआ तब मनुष्य की

सभ्यता भारत में प्रारम्भ हुई। Boulder Conglomeratic भारत के Ante Penultimate Glaciation का प्रतिनिधित्व करता है। यही से पाटवार (Potwar) क्षेत्र मनुष्य के पूर्व पाषाण कालीन औजार हमें मिलते हैं। इन औजारों का मान या सोहन उद्योग के अन्तर्गत रखा जाता है।

कबिन मान उद्योग के पूर्व हम एक उद्योग का पाते हैं इस उद्योग में २३-वर्डे फ्लैक या क्वाटजाइट व मग्न पेबल का कि Unfaceted striking Platform से युक्त है और जा अक्षर १२० का कोण बनाते हैं। इस औजार के उपरी भाग में हम कभी प्रकार की Primary flaking नहा पाते और नहीं trimming या retouching के चिह्न ही। इस प्रकार मनुष्य की जगली अवस्था के ये जीन-जागने उद्योग हैं।

कबिन जैसे ही Penultimate Interglaciation हुआ हमें मनुष्य की सभ्यता के कुछ अधिक स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हुए। इस प्रारम्भिक सोन (Early Soan) सभ्यता में हम दो प्रकार के उद्योगों के चिह्न पाते हैं—

(१) प्रारम्भिक सोन (Early Soan) का विभिन्नता का परत एव फ्लैक औजार जिसे हमें scrappers तथा choppers की श्रेणियाँ में रचना पता है।

(२) मग्न उद्योग या हड ऐक्स उद्योग—इस उद्योग में दोना भागों में कारीगरी के चिह्न परिचित होते हैं।

प्रारम्भिक मान उद्योग में हमें क्वानियन (Clactonian) तथा लेवल्लोयन (Levalloisian) दाना पद्धतियाँ द्वारा तयार किये गए औजारों व दाने प्राप्त हैं। पेबल चापर्स (Pebble choppers) तथा स्क्रैपर्स (scrapers) दाना प्रकार की पद्धतियाँ तयार किये जाते थे।

Penultimate Glaciation तथा Late Glaciation के समय हमें Late Soan (परवर्ती सोन) कालीन उद्योगों व दाने मिलते हैं। इस परवर्ती मान काल की भागों में बाँटा जाता है। भाग एक के अन्तर्गत प्रारम्भिक मान परत औजारों का विस्तार ही प्राप्त होता है। यह पेबल औजार प्रारम्भिक परत औजारों से श्रेष्ठतर थे। इन औजारों में हम secondary working के चिह्न पाते हैं। द्वितीय भाग में हमें लेवल्लोयन (Levalloisian) पद्धति से बनाए गए फ्लैक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हम दखते हैं कि सोन परम्परा में हमें एक विकास के चिह्न प्राप्त होते हैं। एच० डो० टेर्रा (H de Terra) तथा टी० टी० पटरसन (T T Paterson) ने Studies on the Ice Age in India and Associated Human Cultures में लिखा है—

In the early stages (of the Soan industry) the flakes are crude. In the late Soan alongside the simple forms there are other flakes showing a development in technique with much more regular primary flaking and often with Facetted platforms

हमल दया कि मान परम्परा के परवर्ती काल में मद्राय के औजारों व दाने नहीं होते परन्तु चौन्नरा (chaunra) में हमें मद्राय उद्योगों के औजारों व हड ऐक्स तथा क्वानियन के दाने मिलते हैं। गान्धारी मान सभ्यता यहाँ एक अलग माना जाता है। इस प्रकार भारतवर्ष में हमें उत्तर भारत के इन भागों में मग्न उद्योग तथा सोन उद्योग का प्रारम्भिक प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार जिन व्यवस्थित न इन विभिन्न परम्पराओं का विभिन्न ज्ञातियाँ म सम्पन्न किये हैं उनमें मिथिला में विधिलता का आनाग प्राप्त होता है।

अब हम मानव्यता का उत्तर देंगे जहाँ परमान सभ्यता के चिह्न प्राप्त होते हैं—

रीलतुर (गिरगा व तट पर) गुरर इहग धनियाला तथा काँग (ध्याग का घाटी

In the basal gravel and sands in the lower few feet was found a flake industry characterised by the absence of handaxes or cores and by the dominance of small blades and scrapers. These tools are made of flint of a per clearly indicative of a total change both in technique and in choice of material.

विध्यावल श्रेणियाँ क दीना और हम इस प्रकार के औजार प्राप्त होते हैं। आदिलाबाद स प्रो० हेमन डाफ (Prof Haimendorf) ने स्त्रपर तथा ब्लेडो को प्राप्त किया है। इसी प्रकार बीजापुर एव धारवाड से भी यह औजार मिले हैं। कामियाडे (Cammiade) तथा बकिट (Burkitt) ने इस ब्लेड एव ब्यूरिन (Blade and burin) उद्योग को तीसरी श्रेणी म रखा है। जब कि Abbevilian तथा Acheulean परम्पराओ के लिए प्रथम दो श्रेणिया प्रदान की है।

जल्प पाषाणीय औजार (Microliths)—भारतीय प्रागतिहासिक काल म सर्वाधिक कठिन पहेली है इन माइक्रोलिथ्स की। यह छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े (Pigmy flints) भारत म बहुत ही अधिक मात्रा मे और विभिन्न कालो मे प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वानो न इन माइक्रोलिथ्स को उत्तर पाषाण काल (Neolithic) व अंतगत रखा था। पर तु अब हमारे अथक परशिम से भारतीय प्रागतिहासिक आकाश म कुछ प्रकाश सा प्रतीत होन लगा है। विद्वानो न इन जल्पपाषाण के औजारो को उत्तर पाषाण काल के polished stone axes से पथक माना है। यही नहा चालिथिक (Chalolithic) के नड उद्योग (blade industry) या Ribben flaking है। भी इन माइक्रोलिथो से अलग माना है। कनल गार्डन (Col Gordon) न इस समस्या को समाधान म पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। यद्यपि हमारे पास यह पाषाण प्रचुर मर्या मे हैं लकिन मैं उन्ही स्थलो का उल्लेख करूंगा जहाँ से इस उद्योग पर एक विशिष्ट प्रकाश पडता है।

गुजरात—गुजरात म श्री ब्रूज फूट (Bruce Foote) द्वारा उदघाटित किए गए काय को आगे बढ़ाने वाल है श्री एच डी० सकालिया। १९४१ मे लघनाज के सर्वेक्षण एव खनन कार्य द्वारा उहाने भारत के मध्यवर्ती पाषाण काल (Mesolithic Age) पर पर्याप्त प्रकाश डाना है। श्री मेहता तथा चौधरी ने नमदा नदी पर कार्य कर इस दिशा म और भी सहयोग दिया है। डा० सकालिया ने यहाँ क माइक्रोलिथ्स की प्रकृति के विषय म इस प्रकार लिखा है—

The microliths include a monotonous series of lunates or crescents often with battered or worked back but at times sharp on both side triangle, semi triangle and trapeze flat and ridged long or short blades, roundish rectangular or square scrapers, tiny disc like pieces or core trimmings and cores usually roundish on the whole microliths are not fine.

लघनाज म हम इन माइक्रोलिथ्स के साथ-साथ मिट्टी क बतन (Pottery) भी प्राप्त हाव है। इस उद्योग के कारक्रम निर्धारण क विषय म हम कुछ भा निश्चित रूप से कहने म समथ नहा हैं। रगपुर म श्री रगनाथराव क उत्खनन स हमें एक नहा मात्त्रानिय उद्योग का पता चला है। इसके बाद क काल म हम ह प्या यगान मध्यता के अवशेष पाते हैं। नव माइक्रालिय उद्योग यहा प्रारम्भ हुआ इसक बार म कुछ नही कहा जा सकता। परन्तु उपरी सीमा क विषय म ता कुछ हूँ तब ता बतान के खनन काय स रोशनी पडती है। यहाँ पर माइक्रालिय तह तथा प्रारम्भिक ऐतिहासिक

सम्यता भारत में प्रारम्भ हुई। Boulder Conglomeratic भारत के Ante Penultimate Glaciation का प्रतिनिधित्व करता है। इसी से पोटवार (Potwar) क्षेत्र मनुष्य के पूर्व पाषाण कालीन औजार हमें मिलते हैं। इन औजारों का सोन या सोहन उद्योग के अतगत रखा जाता है।

किन्तु सोन उद्योग के पूर्व हम एक उद्योग को पाते हैं इस उद्योग में बड़े-बड़े फ्लेक या क्वाटजाइट के भग्न पबल जो कि Unfacetted striking Platform से युक्त हैं और जो अक्सर १२० का कोण बनाते हैं। इस औजार के ऊपरी भाग में हम कभी प्रकार की Primary flaking नहीं पाते और नहीं trimming या retouching के चिह्न ही। इस प्रकार मनुष्य की जगली अवस्था के ये जीते-जागते उदाहरण हैं।

लेकिन जस ही Penultimate Interglaciation हुआ हमें मनुष्य की सम्यता के कुछ अधिक स्पष्ट प्रमाण प्राप्त हुए। इस प्रारम्भिक सोन (Early Soan) सम्यता में हम ११ प्रकार के उद्योगों के चिह्न पाते हैं—

(१) प्रारम्भिक सोन (Early Soan) की विशिष्टता वाल पबल एवं पत्थक औजार जिसमें scrappers तथा choppers की श्रेणियाँ में रखना पता है।

(२) मद्रास उद्योग या हड्ड ऐक्स उद्योग—इस उद्योग में दोना भाग में कारीगरी के चिह्न परिलक्षित होते हैं।

प्रारम्भिक सोन उद्योग में हमें क्लक्टोनियन (Clactonian) तथा ल्वाल्सियन (Levalloisian) दाना पद्धतियाँ द्वारा तयार किये गए औजारा के स्थान पाते हैं। पेबल चापम (Pebble choppers) तथा स्क्रपर्स (scrapers) दोना प्रकार की पद्धतियाँ से तयार किए जाते थे।

Penultimate Glaciation तथा Last Glaciation के समय हमें Late Soan (परवर्ती सोन) कालीन उद्योगों के दशन होते हैं। इस परवर्ती सोन काल को दो भागों में बाँटा जाता है। भाग एक के अन्तगत प्रारम्भिक सोन पेबल औजारा का विस्तार ही प्राप्त होता है। यह पेबल औजार प्रारम्भिक पबल औजारों से श्रेष्ठतर थे। इन औजारों में हम secondary working के चिह्न पाते हैं। द्वितीय भाग में हमें ल्वाल्सियन (Levalloisian) पद्धति से बनाए हुए फ्लेक प्राप्त होते हैं। इस प्रकार हम खते हैं कि सोन परम्परा में हमें एक विकास के चिह्न प्राप्त होते हैं। एच० डा० टेर्रा (H de Terra) तथा टी० टी० पटरसन (T T Paterson) ने Studies on the Ice Age in India and Associated Human Cultures में लिखा है—

In the early stages (of the Soan industry) the flakes are crude. In the late Soan alongside the simple forms there are other flakes showing a development in technique with much more regular primary flaking and often with Facetted platforms

हमन दवा कि सोन परम्परा के परवर्ती काल में मद्रास के औजारा के दशन नहीं होते परन्तु चौन्त्रा (chauntra) में हमें मद्रास उद्योगों के औजार हड्ड ऐक्स तथा क्लीवर्स के स्थान पाते हैं। चौन्त्रा सोन सम्यता का हा एक अग माना जाता है। इस प्रकार भारतवर्ष में हमें उत्तर भारत के इन भागों में पत्थक उद्योग तथा सोन उद्योग का भूमि श्रण प्राप्त होता है। इस प्रकार जिन व्यक्तियों ने इन विभिन्न परम्पराओं का विभिन्न जातियाँ सम्बन्धित किया है उनका सिद्धान्त में शिथिलता का आभास प्राप्त होता है।

अब हम उन स्थानों का उल्लेख करेंगे जहाँ परमोनसम्यता के चिह्न प्राप्त होते हैं—  
 तोलतपुर (मिरमा के तट पर) गुर्जर देहरा धनियारा तथा बाँगग (ध्याम का घाटी

में)। राजस्थान तथा भालवा में लगभग दजन स्थला से हमें पुर प्पाणकालीन पत्थर प्राप्त हुए हैं। ये प्पाण दा श्रणिया में प्राप्त होते हैं। पहली श्रेणी में मद्रास परम्परा क औजार तथा सोन परम्परा के हथियार मिल हैं। दूसरी श्रेणी में हम पूणतया सोन परम्परा क लवारया (Levalloisian) पद्धति के फलक तथा ब्लेड स्क्रपर (blade scrapers) ही मिल हैं। यह श्रणियाँ काल क्रमानुसार भी उचित हैं। उत्तर प्रदेश म बाग्य जिले म स भी हम प्रथम टरेस (Terrace) से हैंड एक्स (handaxes) तथा फलक प्राप्त हुए हैं और दूसरा टरेस में हमें लेवाल्यो (Levalloisian) पद्धति क फलक प्राप्त हुए हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय की आर से यह सर्वेक्षण काय श्रा गावडन राय शर्मा क तत्वावधान म किया गया था।

मध्य भारत—साबरमती मही तथा नमदा नदिया के किनारे भारत क गभ्यमान प्रागतिहासिक विशारदो का काय किया है। भारत के इस भाग का एक विशिष्ट महत्व भा है। सम्पूर्ण भारत का सम्यताआ को परस्पर सम्बन्धित करन के लिए इस भाग का गहन सर्वेक्षण अनिवाय काय है। दक्षिण भारत के भाषण वर्षा क काल (Pluvials) तथा उत्तरी भारत के Glaciations का लगभग परम्पर सयोजित कर दिया गया है। यद्यपि अभी तक हम पूणतया सत्य का माक्षात्कार नहीं कर पाए हैं।

नमदा क प्रारम्भिक उद्याग म हम हैंड-एक्स उद्योग (hand axe) की प्रधानता पाते हैं। यह हैंड-एक्स अबी विलियाँ की परम्परा म रखे जा सकत हैं। लेकिन साथ ही साथ हम सोन सम्यता क प्रारम्भ के बड़े बड़े फलक औजार का भा प्राप्ति होती है। नमदा क परवर्ती उद्याग म हम अशुनिया परम्परा के औजार अधिक मात्रा म मिलत हैं। परन्तु वस्तुन इस क्षेत्र म मिश्रित परम्पराआ का उपस्थिति है। टा० हसमुख सकानिया लिखते हैं—

The inferior and superior workman ship in finds was noticed  
— at stratum — Investigation into Pre

मो हम यहां समस्या अपन सम्मुख उपस्थित पाते हैं। हम १५ ता (Chopper and Chopping tool's पाते हैं और ४३ हैंड एक्स औजार। इन दो परम्पराआ के मिश्रण से हम विसा एक परम्परा क विस्तार एवं समय का निर्धारण करन म असमथ है।

दक्षिण भारत—जस ही हम दक्षिण की आर बढ़ते चलते हैं वम हा Chopper chopping tool tradition क्रमश न्यून रूप म दिग्गई दता है। यद्यपि हम Chopper Chopping tools बड़े स्थला स प्राप्त हुए हैं परन्तु व अप मध्यक है। मयूरभन्ज (उड़ीसा) म पेबल (Pebbles) औजार कुछ ही हैं। अधिकतर दक्षिण म मद्रास उद्याग का बालबाला है। हैंड एक्स तथा कनावमप्रधानतया प्रत्येक दक्षिणी भारताय प्रागतिहासिक कालान क स प्राप्त पाते हैं। अबाविलियाँ तथा अशुनियाँ शना परम्पराए हम स्पष्टतया परिचक्षित हाता हैं। वाम राई (Adamadoru) अत्रिम पत्थर (Hiranpakkam) शना म्यत मात्रा म मिलत हैं। कुनन जिवे क गिन्डारूर यत्र स हम अबाविलियाँ अशुनियाँ हैं एक्स तथा रास्त्रा-कारिन्टम (Lotro carintes) क साथ-साथ क्लैक्शनियन (Clactonian) पत्थर तथा लिस (Lies) भा प्राप्त हुए हैं।

भारताय प्रागतिहासिक कालान परम्पराआ का जसका परम्पराआ म विशिष्ट स्वरूपा प्रतीत हाता है। मयम उद्याग क रास्त्रा कारिन्टम I tra jati-

## प्रागैतिहासिक काल की मानव सम्यता

ates) की समानता विकटारिया वेस्ट (Victoria West) के रोस्टरा का से का जाती है। इसी प्रकार पेबल-औजार (Pebble tools) की समानता Oldowan Lebbble Industry का रखा जाता है। इन्हीं पबल औजारों से अफ्रीका में Abbevillian तथा Acheulean hand axes का जन्म हुआ। भारत में भी हम वही ही परम्परा देख सकते हैं।

हल्लाम मोवियस (Hallam Movius) ने यह दिखाया है कि दूर पूर्व Chopper Chopping Industry की पूणतया प्रभुता थी। इन दशा में अलिया हैट एक्स तथा लवाल्वाय (Levallois) पत्थरों का चिह्न नहीं मिलते हैं। यदि हम बयन को हम सत्य मानें तो हमारा मस्तिष्क में एक प्रश्न उपस्थित होता है—क्या न हम अफ्रीका का हैट एक्स परम्परा का जन्मदाता तथा दूरपूर्व को Chopping tools का प्रवतक मानें? श्री व्हीलर (Wheeler) ने भारतीय महासागर को सम्यता का आदान प्रदान का कद मानकर मेर उपयुक्त प्रदान का समान कर दिया है।

अब हम द्वितीय श्रेणी के औजारों का विषय में कुछ लिखना चाहेंगे। हमने देखा कि परवर्ती सोन में लवाल्वाय पद्धति द्वारा निमित्त श्रेष्ठ फ्लैक औजारों का प्रयोग किया जाता था। इनका हम इस श्रेणी में रख सकते हैं। परन्तु सम्पूर्ण भारत में यह Enigmatic group विभिन्न दशाओं में पाए गए हैं। परन्तु कुछ स्थानों पर Stratigraphical (स्ट्रैटिग्राफिकल) साक्ष्य का आधार पर हम इन औजारों को एक मध्यवर्ती स्थान प्रदान करते हैं क्योंकि ये पाषाण अल्पापाण औजारों (Microlith) तथा मद्रास तथा सोन परम्पराओं के बीच उपलब्ध हुए हैं। महेंदर तथा नवासा में यह Stratified स्थिति हमारे सम्मुख आई है।

**बम्बई—टाड (Todd)** ने खडिब्ली (Khandivli) स्थान पर इस उद्योग का बड़े सुंदर रूप से विवरण किया है। ज़ेनर (Prof Zenner) तथा डॉ॰ सकालिया (Dr Sankalia) द्वारा किए गए अनुसंधान काय में यह Stratigraphic स्थिति मिली है। कृष्णास्वामी ने Ancient India में इस मध्यवर्ती उद्योग का वर्णन इस प्रकार किया है—

A blade and burin industry which appears to get into a more evolved stage in the upper clay with such types as polyhedral and angle burins and even the parrot beak type strongly reminiscent of the Asiatic Aurignacian of Europe and the Middle East

इसी प्रकार का प्रमाण डॉ॰ सकालिया ने प्रवर घाटी में नवासा से उपस्थित किया है—

The earliest occupation was represented by three layers of gravel which contained two types of lithic industries one probably the earlier was a hand axe industry of trap rock. It was typologically Acheulean. The second industry consisted of comparatively small core flakes, scrapers, blades and burins of jasper, carnelian and other fine grained stones.

नर्मदा की घाटी से भी हमारे इस मत की पुष्टि होती है। डी टेर (De terra) तथा टीलहार्ड (Teilhard) ने नर्मदा नदी के समीप नर्मदा नदी का सर्वप्रथम किया था। इस सर्वप्रथम का विवरण देते हुए उन्होंने लिखा है—



In the basal gravel and sands in the lower few feet was found a flake industry characterised by the absence of handaxes or cores and by the dominance of small blades and scrapers. These tools are made of flint or jasper clearly indicative of a total change both in technique and in choice of material.

विध्याचल श्रेणियाँ के दोना ओर हम इस प्रकार के औजार प्राप्त होते हैं। आदिलाबाद से प्रो० हेमन डाफ (Prof Haimendorf) ने स्क्वर तथा ब्लडो को प्राप्त किया है। इसी प्रकार बीजापुर एवं धारवाड से भी यह औजार मिले हैं। कामियाडे (Cammiade) तथा बार्किट (Burkitt) ने इस ब्लड एव ब्यूरिन (Blade and burin) उद्योग को तीसरी श्रेणी म रखा है। जब कि Abbeville तथा Acheulean परम्पराओं के लिए प्रथम दो श्रेणियाँ प्रदान की हैं।

अल्प पाषाणीय औजार (Microliths)—भारतीय प्रागतिहासिक काल में सर्वाधिक कठिन पहेली है इन माइक्रोलिथ्स की। यह छोटे-छोटे पत्थर के टुकड़े (Pigmy flints) भारत में बहुत ही अधिक मात्रा में और विभिन्न कालों में प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वानों ने इन माइक्रोलिथ्स को उत्तर पाषाण काल (Neolithic) के अंतर्गत रखा था। परंतु अब हमारे अथक परश्रम से भारतीय प्रागतिहासिक आकाश में कुछ प्रकाश सा प्रतीत होने लगा है। विद्वानों ने इन अल्पपाषाण के औजारों को उत्तर पाषाण काल के polished stone axes से पृथक् माना है। यही नहीं ताम्रकाल (Chalcolithic) के ब्लेड उद्योग (blade industry) या Ribben flaking भी इन माइक्रोलिथों से अलग माना है। कनल गार्डन (Col Gordon) ने इस समस्या को समाधान में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया है। यद्यपि हमारे पास यह पाषाण प्रचुर मात्रा में हैं लेकिन मैं उन्हीं स्थलों का उल्लेख करूंगा जहाँ से इस उद्योग पर एक विशिष्ट प्रकाश पड़ता है।

गुजरात—गुजरात में श्री ब्रूज फूट (Bruce Foote) द्वारा उदघाटित किए गए काम को आग बत्तन वाल हैं श्री एच डी० सकालिया। १९४१ में लघनाज के सर्वेक्षण एवं खननकार्य द्वारा उद्घोने भारत के मध्यवर्ती पाषाण काल (Mesolithic Age) पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। श्री महता तथा चौधरी ने नमदा नदी पर कार्य कर इस दिशा में और भी सहयोग दिया है। डा० सकालिया ने यहाँ के माइक्रोलिथ्स की प्रकृति के विषय में इस प्रकार लिखा है—

The microliths include a miscellaneous series of lunates of crescent (often with battered or worked back but at times sharp on both sides) triangle, semitriangle, and trapeze, flat and ridged, long or short blades, roundish rectangles, and square scrapers, tiny disc-like pieces or core trimmings and cores usually roundish on the whole. microliths are not fine.

लघनाज में हम इन माइक्रोलिथ्स के साथ-साथ मिट्टी के बर्तन (Pottery) भी प्राप्त हात है। इस उद्योग के कालक्रम निर्धारण के विषय में हम कुछ भा निश्चित रूप से कहने में समर्थ नहीं हैं। रंगपुर में श्री रंगनाथराव के खनन से हम एक महा माइक्रोलिथ उद्योग का पता चला है। इसके बाद के काल में हम हृष्या युगान सम्पत्ता के अवशेष पाते हैं। जब माइक्रोलिथ उद्योग यहाँ प्रारम्भ हुआ तब तक के कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु उपरोक्त सीमा के विषय में तो कुछ हद तक तो बर्तन के खनन कार्य से रोशनी पड़ती है। यहाँ पर माइक्रोलिथ तह तथा प्रारम्भिक ऐतिहासिक

तर क बीच म एक मूय तह का पता चलता है। तिम्वरवा म हम ऐतिहासिक काल तथा माइक्रोलिथ के बीच म किसी भी प्रकार की न्यून्यता नहीं पाते। इस प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल मे हम North block polished ware प्राप्त हुई है। अतएव हम माइक्रोलिथ की उच्चतम सीमा ४०० B C तक रख सकते हैं। रगपुर स हम कुछ हद तक निम्नतम सीमा का बोध होता है। गुजरात म हम लगभग ८० स्थाना से इस उद्योग क औजार प्राप्त होते हैं।

निन्नेवेली जिले से भी हम इस परम्परा क कालनिर्धारण म सहायता मिलनी है। सागर क तट पर टरी तहा म हम यह छोटे औजार हस्तगत हाते हैं। एलचिन न इन स्थलाके पाषाण का अध्ययन किया है। कृष्णास्वामी नसिंगरौली बसिन म माइक्रोलिथ उत्तरी अलुवियम ( Alluvium ) के चार फुट नीच स प्राप्त किए हैं और लिखा है—

Where the evidence is in conformity with the provisional dating assigned to early microlithic sites This site is distributionally linked with the microlithic sites in Banda Bundelkhand and Baghelkhand The general nature of the Singrauli microliths (backed blades, parallel sides blades lunates cores and coars scrapers and arrowheads in milky quartz) reminds us of a degenerate upper Paleolithic tradition and the entire industry devoid of any associated pottery can probably be ascribed to an early mesolithic period *Ancient India No 1*

यद्यपि हमारे पास माइक्रोलिथ की मात्रा बहुत ज्यादा है परन्तु उनको उल्लिखित करना कोई विशेष अर्थ नहीं रखता। आवश्यकता ता इस बात की है कि नई हिम्मत स हम Stratigraphical स्थिति म स इन औजारा का प्राप्त करना चाहिए।

उत्तर पाषाण काल

व्हालर ( Wheeler ) द्वारा ब्रह्मगिरि क उत्खनन काय क परचात डा० मुन्जाराय ने बल्लारी जिले का पर्यवेक्षण किया। इन पर्यवेक्षण क फलस्वरूप सगन बल्लू नामक स्थान पर उत्खनन प्रारम्भ हुआ। आ एफ० आर० ऐलचिन क रायचूर जिले के सर्वेक्षण क परचात पिचलिहल म खुदाई प्रारम्भ हुई। आ थापर न भी मास्की म खुदाई जारा रली। डा० फ्रायडि न पहले क मसूर राज्य के चिह्ना का पुन अध्ययन किया। इन सब अन्वेषणो के बाद हम कुछ तथ्ययुक्त मामलों का आमास हुआ है। अब हम उत्तरपाषाण कालीन सम्यता की स्थिति कुछ हद तक निश्चित करन की स्थिति में हैं। सगन बल्लू म सबप्रथम सम्यता मद् माइक्रोलिथ उद्योग की है। इस सम्यता म हम कुछ पलेक भी मिले हैं जो कि लवात्वाय पदार्थ के अनुसार तयार किए गए य। सोपान तथा कृष्णास्वामी न इस उद्योग क विषय म लिखा है—

This post paleolithic flake industry would be no more than a macro facies of the microlithic blades

इस सम्यता तथा तृतीयसम्यता के मध्य हम एक मूय का परिचय मिलता है। द्वितीय सम्यता म हम Polished stone ce ts क उदाहरण प्राप्त होत हैं तथा साथ ही साथ हाथ से का हुए मिट्टी के बसन। सगनबल्लू का यह II Phase ब्रह्मगिरि क I Phase की सम्यता के तुल्य है। यहां नहीं गादावरी का पाटिया म तथा मानवा क प्लेटा म भी इस समरूपता का पुष्टि हाती है। इस Stratigraphic

Position का मध्य भारत तथा महाराष्ट्र में प्राप्त ओजारा से समथन मिला है।  
श्री बी० बी० जाल न लिखा है—

The painted red ware occurred only in Sanjankalla II 2 (IIb) and not below while the burnished grey ware started from II 1 (IIa). It appears therefore that the painted pottery reached the scene at a later stage through an extraneous influence

यद्यपि ताम्र धातु का प्रवेश हम इस काल में पाते हैं परन्तु यह प्रवेश अतना सीमित था कि इससे कदाचित् ही समकालीन जायिक दशा को प्रभावित किया हो। बल्लारी तथा कुनूल जिनमें लगभग दजना स्थानों से हम axes chisels fricks hammer stones इत्यादि प्राप्त हुए हैं। अनन्तपुर जिले में भी कई स्थानों से उत्तर पाषाण कालीन अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इन सब स्थानों का पर्यवेक्षण करने पर यह पता चलता है कि उत्तरपाषाण काल पर्याप्त समय तक चलता रहा था। लगभग १०० ई० पू० तक यह दक्षिण भारत में धातु काल के प्रारम्भ के पूर्व तक विद्यमान था।

कश्मीर में बर्झम (Burzhom) तथा बलूचिस्तान में किल गल मुहम्मद नामक स्थानों पर भी उत्तर पाषाण कालीन चिह्न प्राप्त हुए हैं। बर्झम में Stratigraphical स्थिति इस प्रकार से है—

III चौथी शती ई० के मिट्टी के बतन।

II Black Polished Pottery जिस पर जगर सम्यता से मिलते जुलते उत्कीर्ण डिजाइन हैं।

I उत्तर पाषाण कालीन केल्ट (Celts) bone awls मिट्टी के बतन।

अमी हान में ही हम इसी स्थल से pit dwellings (गड्ढों में भवन बनाना) के चिह्न मिलते हैं यह उत्तर पाषाण कालीन मनुष्य के ही प्रमाण हैं। किले गल मुहम्मद में हम हल्पा सम्यता के पूर्व की केचीबग सम्यता के नीचे तो तह मिली हैं—

I Pre pottery microliths

II Pottery polished stone axes and flake blades and scrapers

इस प्रकार अब हम कुछ हद तक उत्तरपाषाण काल की परिधि निर्दिष्ट कर सकते हैं।

इस सम्यता के मूल स्थान के सम्बन्ध में भी मतमतान्तर हैं। डा० यजोन वर्मन Dr Eugene Worman ने पश्चिमी तथा उत्तरी पश्चिमी भारत के केल्ट (Celts) का तुलनात्मक अध्ययन कर यह निष्कर्ष दिया है कि इनका मूल स्थान दक्षिण पूर्व एशिया था। हाल में ही डा० अहडदत्तन दाना ने इस मूल स्थान के विषय में अधिक गवेषणात्मक कार्य किया है। उनके अनुसार चीन एवं मलाया के क्षेत्रों से जासाम तथा शेव पूर्वी भारत में यह सम्यता प्रविष्ट हुई था।

धातु-युग

विश्व के विभिन्न भागों में निवासियों ने धातुओं का प्रयोग आरम्भ किया किन्तु यह कहना कठिन है कि किस स्थान में कौन-सी धातु का प्रयोग सर्व प्रथम आरम्भ हुआ। धातु युग को तीन भागों में विभक्त किया गया है—(१) ताम्र युग (२) कांस्य युग तथा (३) लौह युग। अपने क्रमानुसार ही ये युग आरम्भ हुए अर्थात् सर्व प्रथम लौह का प्रयोग तत्पश्चात् कांस का प्रयोग और अन्त में लौह का प्रयोग किया

जाने लगा। विश्व के अन्य स्थानों में तो ये तीनों धातु युग पाये जाते हैं पर भारत में केवल सिंधु की छोर पर अथवा कास्य का प्रयोग नहीं किया गया था। अतः भारतवर्ष में केवल ताम्र तथा लौह युग ही रहा। इन युगों का आरम्भ कब से हुआ यह भी एक प्रश्न है जिसका कोई भी प्रामाणिक उत्तर नहीं दिया जा सकता। कुछ विद्वानों के कथनानुसार यह लगभग उत्तर-पश्चिम से भारत में आया। इन्होंने भारत के आदिवासियों को कुछ लोग कमतानुसार ये उत्तर-पश्चिम से भारत में आये। इन्होंने भारत के आदिवासियों (उत्तर पाषाण कालानुसार) के वंशज मानने वालों का अपने मत में ममयन में यह कहना है कि उत्तर पाषाण कालीन उपकरण एवं अस्त्र शस्त्रों का आकार प्रकार समान हैं और साथ ही यह भी विशेषता है कि पाषाण तथा धातु का प्रयोग साथ ही होता रहा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों युगों का मनुष्य एक ही जाति का था। पर इस सम्बन्ध में कुछ भी प्रामाणिक रूप से अभी नहीं कहा जा सकता।

ताम्र युग के विषय में हम केवल ध्वसावशेषों से कुछ सूचना प्राप्त होती है। मध्य भारत के गुगरिया नामक गाँव में ४२४ ताम्र उपकरण प्राप्त हुए हैं। हिमालय से कानपुर तथा हुगली से सिंधु नदी तक ताम्र-उपकरण पयाप्त सख्या में प्राप्त हुए हैं। ओजारा में तलवार फरसे वछा खजर आदि प्रमुक्त हैं। इस प्रकार उत्तर भारत में इस युग का केन्द्र था।

लौह युग ताम्रयुग के बाद आरम्भ होता है। यद्यपि दक्षिण भारत की प्राप्ति के बाद भी उत्तर भारत में प्राप्ति हुई है पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वह साथ ही प्रयोग में था। वास्तव में ये वस्तुयें पनाढियों की विलासिता की सामग्री हैं और आयात द्वारा प्राप्त हैं। उत्तर भारत में हा लाह का प्रयोग सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। तत्पश्चात् दक्षिण भारत में फादर हुरो गेट्स के कथनानुसार पारसीय सम्राट के लिए यूनानियों ने विरुद्ध योरोप में ४८० ई० पू० में लगे वाले भारतीय सिपाहियों ने लौह शस्त्रों का प्रयोग किया था। धातु युग का मनुष्य का सामाजिक जीवन में पहले की अपेक्षा कुछ सुधार अवश्य हुआ होगा अभी केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है।

### Allahabad University

- 1 When and where is the earliest indication or tool making man in Pleistocene India? Discuss the paleolithic sequence in that region 19०4
- 2 Describe the distribution and typology of Indian microliths 19०4
- 3 Describe the Stone Age of India 19०5
- 4 Describe briefly the main stages of Paleolithic Age Illustrate your answer by citing suitable examples 1९०7
- 5 Describe the Paleolithic industries of the handaxe culture complex in India with special reference to any two of the following areas (a) The Central Indian plateau (b) Western India (c) South eastern India 1९०7
- 6 Describe briefly the main stages of Paleolithic cultures What do you understand by handaxe culture complex? 1९०8

Position का मध्य भारत तथा महाराष्ट्र में प्राप्त जीजारा से समथन मित्रा है। श्री बी० बी० माल ने लिखा है—

The painted red ware occurred only in Sangankallī II 2 (IIb) and not below while the burnished grey ware started from II 1 (IIa). It appears therefore that the painted pottery reached the scene at a later stage through an extraneous influence.

यद्यपि ताम्र धातु का प्रवेश हम इस काल में पाते हैं परन्तु यह प्रवेश इतना सीमित था कि इसने कदाचित् ही समकालीन आर्थिक दशा को प्रभावित किया हो। बल्लारी तथा पुनूल जिला में लगभग दजना स्थानों से हम axes chisels fricks hammer stones इत्यादि प्राप्त हुए हैं। अनंतपुर जिले में भी कई स्थानों से उत्तर पाषाण कालीन अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इन सब स्थानों का पर्यवेक्षण करने पर यह पता चलता है कि उत्तरपाषाण काल पर्याप्त समय तक बतमान रहा था। लगभग १००० ई० पू० तक यह दक्षिण भारत में धातु काल का प्रारम्भ के पूर्व तक विद्यमान था।

बर्हाम में बर्हाम (Burham) तथा बनूचिस्तान में किले गद महम्मद नामक स्थानों पर भी उत्तर पाषाण कालीन चिह्न प्राप्त हुए हैं। बर्हाम में Stratiographical स्थिति इस प्रकार से है—

III चौथी शती ई० के मिट्टी के बतन।

II Black Polished Pottery जिस पर झगर सम्यता से मित्रते जलते उत्कीर्ण डिजाइन हैं।

I उत्तर पाषाण कालीन केल्ट (Celts) bone awls मिट्टी के बतन।

जमी हान में ही हम इसी स्थान से pit dwellings (गड्ढों में मकान बनाना) के चिह्न मिले हैं यह उत्तर पाषाण कालीन मनुष्य के ही प्रमाण हैं। किले गुल मुहम्मद में हम इसी सम्यता के पूर्व की केचीद्विग सम्यता के नीचे तो तह मिलती हैं—

I Pre pottery microliths

II Pottery polished stone axes and flake blades and scrapers

इस प्रकार अब हम कुछ हद तक उत्तरपाषाण काल की परिधि निश्चित कर सकते हैं।

इस सम्यता के मूल स्थान के सम्बन्ध में भी मतभेदों का अन्त है। डा० यजान ब्रमन Dr Eugene Worman ने पश्चिमी तथा उत्तरी पश्चिमी भारत के केल्टा (Celts) का तुलनात्मक अध्ययन कर यह निष्कर्ष दिया है कि इनका मूल स्थान दक्षिण पूर्व एशिया था। हाल में ही डा० अहडदहसन दानी ने इस मूल स्थान के विषय में अधिक गवेषणात्मक कार्य किया है। उनके अनुसार चीन एवं मलाया के क्षेत्रों से आसाम तथा शेष पूर्वी भारत में यह सम्यता प्रविष्ट हुई थी।

## धातु-युग

विश्व के विभिन्न भागों में निवासियों ने धातुओं का प्रयोग आरम्भ किया किन्तु यह कहना कठिन है कि किस स्थान में कौन-सी धातु का प्रयोग सर्व प्रथम आरम्भ हुआ। धातु युग को तीन भागों में विभक्त किया गया है—(१) ताम्र युग, (२) कांस्य युग तथा (३) लौह युग। अपने क्रमानुसार ही ये युग आरम्भ हुए अर्थात् सर्व प्रथम लौह का प्रयोग तत्पश्चात् कांस्य का प्रयोग और अन्त में सोह का प्रयोग किया

जाने लगा। विश्व व अन्न स्थाना में तो ये तीनों धातु पाए जाते हैं पर भारत में केवल सिन्धु की छात्रक अथवा वास्य का प्रयोग नहीं किया गया था। अतः मातृवय में केवल ताम्र तथा लौह युग ही रहा। इन युगों का आरम्भ कब से हुआ यह भी एक प्रश्न है जिसका कोई भी प्रामाणिक उत्तर नहीं दिया जा सकता। कुछ विद्वानों के कथनानुसार ये लगभग उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों के ही वंशज थे और कुछ लोगों के मतानुसार ये उत्तर पश्चिम में भारत में आये। इन्हें भारत व आदिवासियों (उत्तर पाषाण कालीन मनुष्यों) व वंशज मानने वाला का अपने मत के समर्थन में यह कहना है कि उत्तर पाषाण कालीन उपकरण एवं अन्न शस्त्रों के आकार प्रकार समान हैं और साथ ही यह भी विशेषता है कि पाषाण तथा धातु का प्रयोग साथ साथ होता रहा। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनों भिन्न युगों व मनुष्यों एक ही जाति के थे। पर इस सम्बन्ध में कुछ भी प्रामाणिक रूप से अभी नहीं कहा जा सकता।

ताम्र युग के विषय में हम केवल ध्वसावशेषों से कुछ सूचना प्राप्त होती है। मध्य भारत के गुगरिया नामक गाँव में ४२४ ताम्र उपकरण प्राप्त हुए हैं। हिमालय में कानपुर तथा हृगनी से सिन्धु नदी तक ताम्र-उपकरण पर्याप्त संख्या में प्राप्त हुए हैं। बीजपुर में तलवार फरस बर्छा खजर आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार उत्तर भारत ही इस युग का केंद्र था।

लौह युग ताम्रयुग के बाद आरम्भ होता है। यद्यपि पश्चिम भारत की प्राचीन कला में कौंसि व कुछ उपकरण प्राप्त हुए हैं पर इससे यह नहीं समझना चाहिए कि वह साधारण प्रयोग में था। वास्तव में ये वस्तुएँ घनाढ्या की विलासिता की सामग्री हैं और आयात द्वारा प्राप्त हैं। उत्तर भारत में ही लौह का प्रयोग सर्वप्रथम आरम्भ हुआ। तत्पश्चात् पश्चिम भारत में फादर ह्यूडोडोटस के कथनानुसार पारसीक सम्राट के लिए यूनानियों व विन्डियोरस में ४८० ई० पू० में लौह के आले भारतीय सिपाहियों ने लौह शस्त्रों का प्रयोग किया था।

धातु युग व मनुष्यों के सामाजिक जीवन में पहले की अपेक्षा कुछ सुधार अवश्य हुआ होगा अभी केवल इतना ही अनुमान किया जा सकता है।

### Allahabad University

- 1 When and where is the earliest indication or tool making man in Pleistocene India? Discuss the paleolithic sequence in that region 1954
- 2 Describe the distribution and typology of Indian microliths 1954
- 3 Describe the Stone Age of India 1955
- 4 Describe briefly the main stages of Paleolithic Age Illustrate your answer by citing suitable example 1957
- 5 Describe the Paleolithic industries of the handaxe culture complex in India with special reference to any two of the following areas (a) The Central Indian plateau (b) Western India (c) South eastern India 1957
- 6 Describe briefly the main stages of Paleolithic cultures What do you understand by handaxe culture complex? 1958

- 7 Describe the Palaeolithic culture of North western India  
 Discuss it date 19५8
- 8 Describe the Palaeolithic industries of handaxe culture complex in India with special reference to any two of the following areas  
 (a) Central Indian plateau (b) Western India (c) South India (d)  
 (d) Rajasthan 19५9
- 9 Discuss critically the problem of mesolithic in India with  
 special reference to Gujrat and Mirzapur 1959
- 10 Describe briefly the nature extent and date of Sohan cultures  
 1960
- 11 Discuss the main characteristics of Neolithic industries 1९60

आदि मानव ने धरती पर अवतरण के साथ ही जो कुछ सीखा वह विसा वन्य-पशु के वायकलापो से निम्न न था पर धीरे धीरे मनुष्य ने उन्नति करना आरम्भ किया। निश्चय ही असभ्यता से अथ सभ्यता तथा अथ सभ्यता से सभ्यता के प्रथम सीपान तक पहुँचने में उसे वर्षों की असह्य श्रुसलतार्ये पार करनी पड़ी—समय की एक लम्बी दूरी तय करनी पड़ी। विश्व का कौन-सा काना सवप्रथम सभ्यता की एक निरण से प्रकाशित हुआ था इसका कोई ज्ञान दुर्भाग्यवश प्राप्त नहीं है। हाँ इतना अवश्य बात हो सका है कि प्राचीन विश्व की सभी सभ्यताएँ नदियाँ की घाटियाँ में ही उदित हुईं एव फली फूलीं। दजला फरात की घाटी में ही सुमेरियन बबीलोनियन तथा असीरियन आदि सभ्यताओं का जन्म एव विकास हुआ नील नदी की हरी नदी घाटी में ही मिस्र की प्राचीन सभ्यता उदित एव सिक्सित हुई। ठीक इसी प्रकार भारत में ही सिन्धु नदी की घाटी में भी एक अत्यन्त शान्तिमयी सभ्यता का जन्म हुआ जिसका पान हम एक लम्बे समय तक नहीं रहा। विश्व इतिहास का अध्ययन करते समय पहले हम सुमेरियन बबीलोनियन मिस्री आदि सभ्यताओं की प्राचीनता पर आश्चर्य करते थे क्योंकि ये सभ्यताएँ ईसा के तीन-चार हजार वर्ष पूर्व की हैं और भारत की प्राचीनतम सभ्यता के नाम पर हमारे पास प्राचीन आय सभ्यता अर्थात् ऋग्वेदिक सभ्यता थी जिसका काल किसी प्रकार भी १५०० या २००० ई० पू० से पहले नहीं माना जा सकता। सभ्यता की दौड़ में हजारों वर्ष तक पिछड़ा रहना यह कुछ सट-बता-सा था—यद्यपि प्राचीनतम युग में सभ्यता एव सस्कृति में आग बढ जानी आयुनिक युग के लिए न तो विशाप लाम की वस्तु है और न कोई विशाप महत्व का है यह दूसरी बात है कि हम अपनी एतिहासिक प्राचीनता पर घोंडा गव कर लें।

किन्तु सीमायवश आज के कुछ वर्ष पूर्व ही भारत की प्राचीनतम सभ्यता के मग्नावशप प्राप्त हुए जिनके आधार पर हम सुमेरियन बबीलोनियन एव मिस्री आदि सभ्यताओं की समकालीन भारतीय सभ्यता का बोध हुआ है।

सर जान मागल ने सिन्धु घाटी की सस्कृति प्रकाश में आने के पूर्व ही भारत Before the rise of the Maurya Empire a well developed and flourishing civilization has existed in India for at least a thousand years yet of the structural monuments erected during those ages not one example has survived the Cyclopean walls of Pajognha

परन्तु जब यह सभ्यता प्रकाश में आई तब हमें इसकी सर्वश्रेष्ठता का ज्ञान हुआ। पश्चिम जवाहरलाल नेहरू ने हिन्दुस्तान की कहानी में लिखा है— यह एक दिनचर्या बात है कि हिन्दुस्तान की कहानी ने इस उपाकाल में हम उसे एक नई बच्चे के रूप में नहीं देखा है बल्कि इस वक्त भी वह अनेक प्रकार से सपाना हो चुका था। यह जिन्दगी के तरीकों से अनजान नहीं है यह किसी घुपसी और न हासिल हान वाता दूसरी दुनियाँ के सपनों में छोपा हुआ नहीं है बल्कि उसने जिन्दगी की कला में रहने



सहन के साधनो में काफी तरबरी करनी है और न महज सुन्दर चीजा की रचना की है बल्कि आज की सम्यता के उपयोग और पास चिह्नो—जुठे हम्मामा और नागिया पो भी तयार किया है।

इतिहास के साधन—इस प्राचीन भारतीय सम्यता (सिंधु सम्यता) का पान हम किस प्रकार प्राप्त हुआ है यह इतिहास भी रोचक है। आज से हजारों वर्ष पूर्व की यह सम्यता धरती के नीचे अपन भग्नावशेष छोड़ कर विनीत हो गई थी। पर पुरा तत्ववत्ताओं के अदम्य उत्साह एवं अपरिमित धन के फलस्वरूप वे तिमिरविलान भग्नावशेष दिन का प्रकाश देख सकें। निम्नलिखित स्थानों की खुदाइयों से ही सिंधु घाटी की सम्यता का वाद्य होता है —

(१) मोहेन जादड़ो (२) हड़प्पा, (३) अम्बाला (४) कराची (५) चन्हदड़ो एवं पूवरदड़ो तथा (६) बलूचिस्तान)।

उपरोक्त खुदाइयां में सम्यता के वास्तविक रूप का सम्मुख लान का श्रय मोहेन जोदड़ो एवं हड़प्पा की खुदाइयां का ही दिया जा सकता है क्योंकि ये ही सिंधु सम्यता के केन्द्र और अधिकांश भग्नावशेष (कम से कम सभी महत्वपूर्ण भग्नावशेष या प्राचीन स्मारक) यहीं प्राप्त हुए हैं। अतः इन दोनों स्थानों का भौगोलिक स्थिति तथा उनका खुदाइयां का सक्षिप्त विवरण नीचे दिया जायगा।

मोहेन जोदड़ो—मोहेन जोदड़ो का शाब्दिक अर्थ शवा की ढरी है। यह सिंधु के तरवाना जिले में सिंध तथा नर नहर के मध्य स्थित है। सर्वप्रथम १९२२ ई० में आर्कैलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया के पश्चिमी सकिल के अध्यक्ष श्री राखानदास बनर्जी को यहाँ एक बौद्ध समाधि प्राप्त हुई थी। इस आशा से कि यहाँ बौद्ध धर्म सम्बन्धी कुछ सामग्रियाँ प्राप्त होगी बनर्जी ने उत्खनन-कार्य आरम्भ करवाया। पर यहाँ बौद्ध सामग्रियों का अवशेष न मिलकर एक पूरी सम्यता का अवशेष प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् पानी का छूती हुई सात तहों तक खुदाई हुई। इस खुदाई में इतनी प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है कि लिखित विवरण के अभाव में भी (यद्यपि उक्त विवरण का अभाव न होना हुए भी निषिद्ध नामग्री का अपठनीय हाना एक प्रकार का अभाव-सा ही है) हम उस प्राचीन सम्यता की रूप रत्ना अंकित कर पाते हैं।

हड़प्पा—यह माटगोमरी जिले में एक स्थान है। यहाँ सर्वप्रथम १९२२ ई० में दयाराम ने जवेपण-कार्य आरम्भ किया था और कुछ भग्नावशेष प्राप्त किये थे जिन्हु तत्पश्चात् आर्कैलॉजिकल सर्वे आफ इण्डिया के डाइरेक्टर जेनरल सर जान माशेल के निरीक्षण में यहाँ पर्याप्त उत्खनन-कार्य हुआ जिससे धरती में छिपा हुआ सम्यता का परिचय प्राप्त हुआ। Mohenjodaro and the Indian Civilization नामक विवरण तीन खण्डों में सचित्र प्रकाशित करके माशेल महान्य ने इस सम्यता का पान प्राप्त कराया।

इसी प्रकार अम्बाला कराची तथा बलूचिस्तान आदि की खुदाइयां से भी इस सम्यता के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। यही भग्नावशेषों का आधारभूत ही इस सम्यता का मूल्यांकन किया गया है।

उन दिनों सिंध में वर्षों का बाहुल्य था। यहाँ घन जंगल भी रह जाते ऐसे अनुमान लगाया जाता है। सिंध तथा उसकी सहायक नदियों के अतिरिक्त मिहरान नामक एक अन्य बड़ी नदी भी यहाँ थी जो लगभग चौदहवां शताब्दी ईस्वी में सूख गई।

सिंधु सभ्यता का अध्ययन करने के लिए हम प्राप्य मग्नावशपा का ही पथक-पथक विचाराधीन रखना होगा क्योंकि य ही उस सभ्यता के मूल इतिहास है।

भवन—कच्च-पथके छोट-बड़े हर प्रकार के भवना के मग्नावशपा उत्पन्न द्वारा प्राप्त हुए हैं। भवन निर्माण में सिंधु सभ्यता के निवासी कितनी सावधाना स्वच्छता एवं सुन्दरता से काम लते थे इसका प्रमाण हम उनका भवना से प्राप्त हो जाता है। भवन चौकदार बनाये जाते थे। बीच में एक अँगण होता था और उसके चारों ओर छोट-बड़े कमरे होते थे। यहाँ के मकानों में दरवाजे खिड़कियाँ स्नानघर पानी रखने का स्थान आदि के अतिरिक्त कूड़ादान एवं जल निकालनेवाली नालियाँ भी बना होती थी जो घर के पिछले भाग से निकलकर मुख्य नाल में मिल जाता था। लकड़ी और इटा से मकान की छतें पटी होती थी। महिन जादड़ो एवं हडप्पा के मकानों की एक विशेषता यह थी कि किसी भी मकान का दरवाजा या कोई खिड़की प्रमुख दृग्भागा का ओर नहीं खुलती थी। आधुनिक युग में हम उसके ठीक विपरीत देखते हैं। राज का ओर ऊपर बतनाया गया है यहाँ छोट से-छोट मकानों तक भी हाथे थे और वस्त्र-माग का ओर खिड़का दरवाजा के न खुलने का कोई कारण पात नहीं होता है। जसा कि अभी ऊपर बतनाया गया है यहाँ छोट से-छोट मकानों से लेकर बड़े-बड़े राजमहला के सभ्य विशाल भवनों के मग्नावशपा प्राप्त हुए हैं। इनमें एक बहुत ही विशाल भवन है जिसका अगला भाग ८५ फीट गहराई ९७ फीट तथा जिसमें ३२ वग फीट का अँगण है। इस भवन के विशालकाय द्वार, हाल तथा बरामदा का देणकर यहाँ के कारीगरों की निपुणता का बाप होता है। मकानों की बाहरी दीवारें भा काफा मोटी बड़-बड़े हाल भी हैं जो सावजनिक भवन पाठशाला या मन्दिर हो सकते हैं। एक ९० वग फीटवाला हाल भी प्राप्त हुआ है। पक्की इट्टें भी मिश्र मिश्र आकार की प्राप्त हुई हैं। कुछ इट्टें २०॥ इंच लम्बी १०॥ इंच चौकी तथा ३॥ इंच मोटी हाता था। इटा बड़ा-बड़ी इटा से उभर के बंध में जान के लिए सानियाँ बनाई जाती थी। मकान में कुएँ भी खुद होते थे जो आकृति में आधुनिक कुआँ का भाँति हा गालाकार हाते था। पत्थर का अभाव हान के कारण पक्की इटा का ही भवन निर्माण में अधिक प्रयोग हाता था। हडप्पा में एक विशाल अमान्य प्राप्त हुआ है। प्राचीन सभ्य दशा में हाता था। इस अमान्य के दो भाग हैं जिनमें छ छ हात हैं। हाल के बाहर बरामद मा पत्तियाँ में अन्न भरने का प्रथा (एक दूसरे परिभाजित रूप में भागत में भी) सिंधु में है। महिन जाल्पा तथा हडप्पा के भवन वि-कुल साँ बन हुए हैं। इन साँगी का बाई कारण विशेष हा मकाना है क्योंकि कवल यह बहकर सन्ताप नग किया जा सकता है कि उनका भवन निर्माता इस बता में दग न थे। उनकी दक्षता के जीत-जागते उग हाता वास्तुबला एवं मूनिबला सभ्य की अय सामर्थियाँ हैं। स्वयं इन भवना का भीतरा प्रदान हाता है कि वे कता उपयोगिता के लिए के सिद्धान्त का सम्मुख रखाकर भवना का निर्माण करते थे और वे उस अधिक अलङ्कृत बनाने का अपक्षा अधिक टात जानते थे। चिन्ता करते थे।

स्नानागार—गुदादया में अब तक जिन भवना के अवशेष प्राप्त हुए हैं उनमें सर्वोत्तम एवं सर्वोत्कृष्ट एक स्नानागार है। आधुनिक युग में सगनग अधिराज प्राचीन स्नानागार में एक या दो स्नानागार प्राप्त हैं। इसा प्रकार सम्भवतः सिंधु सभ्यता के काल

मे भी उसने ये नगरा म सावजनिक स्नानागार रहे हागे जिनमे से यह एक प्राप्त हुआ है। इस प्रस्तर स्नानागार मे निम्नलिखित खण्ड हैं —

(१) चारा आर बरामदे जिनके पीछे गलरियाँ हैं तथा चारा ओर कमरे हैं (२) एक कुण्ड जिसका नम्बाई ३० फीट चौडाई २३ फाट तथा गहराई ८ फीट है। और दाना आर जल की सतह तक को छूती हुई सीडियाँ है। (३) कुएँ हैं जिनसे आवश्यकता पन्ने पर स्नानागार के कुण्ड का जल से भरा जाता था। (४) महान स्नानागार की कुल लम्बाई १८० फाट चौगाई १०८ फीट है तथा इसकी बाहरी दीवारो की माटाइ ८ फीट है। जलाशय व जल की सुरक्षा तथा उसको नाव को सुदृढ रखने के अभिप्राय म यहा के राजगारा न विशय चानुय से काम लिया है। जलाशय को जल से भरन या रिक्त करन के लिए जा व्यवस्था की गई है वह निश्चय ही काफी असाधारण है। एक छ फीट स भी ऊची प्रणालिका पाई गई है जिसस पानी निकाला जाना रहा होगा।

पुरातत्ववेत्ताआ ने एक विशय प्रकार के खण्ड का देखकर एसा अनुमान किया है कि यह हममाम रहा हीगा जिसम स्नानाय जल गम किया जाता रहा होगा। इस प्रकार हम देखत हैं कि जाधुनिक युग के सुन्दरतम स्नानागारा से यह स्नानागार किसी प्रकार मा कम सुन्दर नहीं है। इसकी मजबूती का सबसे बडा प्रमाण ता यह है कि यह लगभग ५००० ई० पू० का बना हुआ आज भी मली प्रकार सुरक्षित है।

नगर—नगरा व मग्नावशया के अध्ययन के आधार पर ही पुरातत्ववेत्ताआ ने एसा अनुमान किया है कि निश्चय हा सिधु घाटी का सम्यता नगर सम्यता था बन्कि सम्यता की भाँति यह ग्राम्य-सम्यता नहीं थी। उत्खनन द्वारा उस प्राचान विषय नगर का जा ध्वसविशय प्राप्त हुआ है उस देखकर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि नगर निर्माण एक निश्चित योजना (plan) द्वारा हाता था। नगर निर्माण योजना व महत्व को वे प्राचान कानून मनुष्य मली भाँति समझ गये थे यह भी महत्व का विषय है। यहा की स व काफी चौी हैं जिनस छोटी-छोटी शाखायें और गलियाँ फूटी हैं। यहाँ सडका के चौराहा या तान मुहानिया भी प्राप्त हुई हैं। सडका के किनारे जो भवन बन हुए हैं वे सान् पर सुन्दर हैं। यह प्रारम्भ म ही कहा गया है कि यहाँ जल-बन्दि अधिक हाती थी अत इस अपार जन म नगर की सुरक्षा के लिए मोरिया की व्यवस्था अनि वाय था। सिधु निवासिया न म आर विशय ध्यान दिया था जसा कि प्राप्त मग्नावशया म जात हाता है। सम्पूर्ण नगर म मारिया का जाल बिछा था। प्रत्येक घर म मारा होती थी जा घर का पानी सडक के नीचे बनी हुई नाली म गिरा देती थी और इस प्रकार जल अय वडी-डी प्रणालिया द्वारा शहर व बाहर निकल जाता था। एसा प्रकार सन्क तथा अय सावजनिक स्थाना का जल भी प्रणालिकाआ द्वारा बाहर निकाल दिया जाता था।

नगरा की स्वच्छता का विशय ध्यान रक्का जाना था। सन्का व किनार का फेबन व बन्त व-व बतन प्राप्त हुए हैं जिससे एसा अनुमान लगाया गया है कि यहाँ म्यनिसिपल बाड-मी का सस्था अवयव रहा हागा जा नगर का मरान करता था। गाडन चाइल्ड न नगर का स्वच्छता का ध्यान रखत ए हा निजा है मरिया का सुन्दर पक्किया तथा प्रणालिकाआ का उत्तम व्यवस्था एव उनका मरन स्वच्छता म इस बात का सबन मितना है कि यहाँ बाद नियमित नगर शासन था जा अपना वाय सावधाना स सम्पन्न करता था। इसका अधिकार इतना सुदृढ था कि बाडा व कारण वार

मार निर्मित भवना की तैयारी के समय निर्माण एवं सड़का की सुनिश्चित पंक्तियों का बनाय रखने के नियमों का पालन होता था।<sup>१</sup>

**धातु एवं तत्सम्बन्धी सामग्रियाँ**—जा कुछ भग्नावशेषों का रूप में प्राप्त हुना है उनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सिंधु घाटी के निवासियों ने सोना, चाँदी, टिन, ताँबा, काँसा आदि का प्रयोग जान लिया था। पर व लोह का प्रयोग नहीं जानते थे या यह कि वहाँ लोह का अभाव था। मान का प्रयोग आधुनिक युग की मॉनि ही आभूषण में होता था। जिस मान का प्रयोग यहाँ के निवासी करते थे उसमें कुछ एलक्ट्रन की मात्रा है जिससे हम यह कह सकते हैं कि यह आयात द्वारा दक्षिण में कालार या अवनतपुर से प्राप्त किया जाता था क्योंकि इस प्रकार का मान यहाँ प्राप्त होता है। इसी प्रकार कच्चे ताँबे का साथ काँसा का मिश्रित रहना यह सिद्ध करता है कि यह राजपुताना, बलूचिस्तान या फारस से मंगाया जाता था क्योंकि इस प्रकार का ताँबा यहाँ प्राप्त होता है। पत्थर का स्थान अब ताँबे का ग्रहण कर लिया था और विभिन्न प्रकार के अस्त्र शस्त्र गृह सामग्रियाँ आदि तैयार की बनाई जाती थी।

टिन का साधारण प्रयोग नहीं हुआ था। इसे ताँबे का साथ मिश्रित करके काँसा बनाया जाता था। चाँदी की प्राप्ति से यह स्पष्टतः बात जानता है कि ३००० ई० पू० में भांगत में काँसे का प्रयोग होता था। अतः इससे यह धारणा निम्न सिद्ध हो जाती है कि भारतवर्ष में कृषि का युग नहीं रहा। पर टिन या काँसा स्वयं सिंधु के खनिज पत्थर नहीं रहे होंगे। इनका आयात सम्भवतः उत्तर फारस तथा पश्चिमी अफगानिस्तान में किया जाता रहा होगा।

**सिंधु में पत्थर का अभाव** था। भवना आदि के निर्माणार्थ यहाँ के निवासी अन्य स्थानों से पत्थर मंगाते थे। भारत से बनुआ पत्थर आता था जिसमें जन प्रशासिकायें (मारियाँ) ढकी जाती थी। इस प्रकार चिथर की पट्टारियाँ से जिप्सम प्राप्त किया जाता था जिससे बतन तथा मूर्तियाँ बनाई जाती थी। कुछ अन्य प्रकार के पत्थरों में दरवाज, कंगरे मूर्तियाँ आदि बनाई जाती थी। कुछ कामनी पत्थरों का जानपण भी बनाया जाते थे। इस प्रकार पत्थर के लिए इन्हें नीलगिरि पामीर कंगडा तुकिन्गान या तिब्बत आदि तक जाना पड़ता था।

**सूत कातन का चरखे**—मोटेन जालों की गुनाई में प्राप्त भग्नावशेषों में सूत कातने के चरखे का बहुतायत से धरा में पाया जाना भी इस बात का प्रमाण है कि उन दिनों सूत कातना साधारण कार्य था और प्रत्येक व्यक्ति इस कार्य को करता था। कृषि सभ्यता के पायक प्रायः में आज के एक सतालीस पूर्व बिल्कुल यहाँ प्रयास था। प्रयत्न पर की बढ़िया चर्खा कातती थी और उससे वह अपना जीवनयापन करता था। यह नहीं कहा जा सकता कि सिंधु घाटी के निवासियों ने चरखे धर की कृत्रिम वृद्धाभा द्वारा पलाये जाते थे या सवसाधारण चरखे थे। पर कुछ कामनी चर्खों का अर्थक यह भी धारणा बनाई गई है कि घना एवं निपट समान रूप से चलते थे। पर कृत्रिम

<sup>१</sup> *दा० गार्दन द्वारा What Happened In History*

Many well planned streets and a magnificent system of drains regularly cleared out reflects the vigilance of some regular municipal government. Its authority was strong enough to secure the observance of town planning bye laws and the maintenance of the approved lines for streets and lanes so that several reconstructions rendered necessary by floods

धर्मों के बहुमूल्य होने से ही ऐसा अनुमान नहीं लगाया जा सकता। सूत प्राप्त करने के लिए इनके पास ऊन तथा रुई दोनों प्रसाधन थे। एक रजतकलश से लिपटा प्राप्त हुआ सूती कपड़े का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है।

उपरोक्त भग्नावशेषों के अतिरिक्त पशुओं की अस्थियाँ आमूषण जस्त्र घस्त्र मुहुरें आदि अनेकानेक वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं जिनके आधार पर हम इस प्राचीनतम सभ्यता का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इन ध्वसावशेषों का वर्णन प्रसंगत आगे किया जायगा। विषय को सरल बनाने के लिए सिन्धु घाटी के निवासियों की विभिन्न परिस्थितियों (सामाजिक आर्थिक धार्मिक एवं राजनीतिक) का पर्यवेक्षण वर्णन किया जायगा।

### सामाजिक अवस्था

**भोजन**—लगभग सभी प्राचीन सभ्यताओं के निवासियों का मुख्य व्यवसाय कृषि रहा है क्योंकि मनुष्य प्रकृति के अधिक निकट है और अपनी प्रारम्भिक अवस्था में उस जा कुछ कम या अधिक पान प्राप्त हो सका वह प्रकृति-सम्बन्धी ही। सिन्धु घाटी के निवासियों ने भी इस क्षेत्र में काफी उन्नति कर ली थी। सीमाव्यवस्था वहाँ जल का बाहुल्य था अतः मिर्चाई सम्बन्धी किसी कठिनाई का सामना इन्हें नहीं करना पड़ता था। उत्खनन द्वारा गेहूँ तथा जौ के दाने प्राप्त हुए हैं। कृषि सम्बन्धी प्रमुख औजार नहीं मिले हैं। अतः यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे जुताई-बुआई किस प्रकार करते थे।

यहाँ खजूर की गुठली भी प्राप्त हुई है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि ये लोग इसकी खेती करते थे और कुछ अन्य फलों का उत्पादन से भी परिचित रहें होंगे। ये शाकाहारी तथा मासाहारी दोनों थे। दूध के प्रयोग से भी वे परिचित थे।

**वस्त्र**—सूत कातने के चर्खों तथा सूती कपड़े के एक टुकड़े की प्राप्ति का उल्लेख ऊपर किया गया है। इस आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इन्हें वस्त्रों के उत्पादन में पर्याप्त सफलता प्राप्त हो चुकी थी। वे सूती ऊनी दाना प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग करते थे। उनके वस्त्र-सम्बन्धी ज्ञान के लिए सीमाव्यवस्था एक पुरुष की मूर्ति प्राप्त हुई है जो शाल ओट है। यह शाल बाँयें कंधे के ऊपर से होकर दाहिने कंधे के नीचे से जाता है। दाहिना हाथ बिल्कुल खुला है। शाल आसन की प्रथा का दसकक यहाँ अनुमान लगाया जा सकता है कि वे घाती का या इसी से मिलते-जुलते वस्त्र वस्त्र का प्रयोग करते रहें होंगे। स्त्रियों के वस्त्र भिन्न थे। हडप्पा में उत्खनन द्वारा प्राप्त साक्ष्य के आधार पर यह कहा जाता है कि स्त्रियाँ सर पर एक विशेष वस्त्र पहन्ती थीं जो पीछे की ओर पल्ल सा उठा रहता था।

**आमूषण**—सिन्धु घाटी के स्त्री-पुरुषों की आमूषण से विशेष प्रेम था। घना एक निधन समान रूप से इस आर आकृष्ट था। अपनी सामर्थ्य के अनुसार वे कम या अधिक कामती आमूषण बनवाने थे। कुछ आमूषण ऐसे थे जो स्त्री-पुरुष दोनों पहनते थे। इन आमूषणों में हार भुजङ्गक वगैरह और मूर्तियाँ हैं। स्त्रियों के आमूषण में नयुना केशधारा वाली अधिक प्रचलित थी। जसा कि पिछले पन्नों में बताया गया है साने चाँदी कामना पत्थर जति अनेक धातुओं एवं रत्नियों से वे परिचित थे। अतः घना वाणा के आमूषण साने चाँदी मणियाँ एवं जवाहरातों के हार थे और निधना के आमूषण सुनम हडिडियाँ ताँब तथा पक्का मिट्टियाँ के हार थे।

**विलास सम्बन्धी अन्य सामग्रियाँ**—शुगर का आर स्त्रियों का विशेष अभिरुचि

थी। हाथी दांत की कचिया तथा पीतल के जाइन का प्रयोग व करती था। मुख तथा ओष्ठ रंगने के लिए भी वे एक विशेष प्रकार क पदार्थ का प्रयोग करती थी।<sup>१</sup>

**आमोद प्रमोद**—जीवन म आमोद प्रमाद का महत्व उस प्राचीन काल म भी कमन था। ओलिम्पिया के स्पोर्ट्स की पुनरावृत्ति विश्व म आज भा हो रही है। पर इससे भी प्राचीन काल म सिंधु घाटी के निवासिया ने उसको जीवन म उचित स्थान दिया। प्राचीन काल का प्रिय खेल शतरंज यहाँ क निवासिया का प्रिय खेल था। कुछ ऐसी सील प्राप्त हुई है जिन पर धनुष-बाण स जगली हिरण तथा बकरा का जाखट करत दिखलाया गया है। इसमें ऐसा अनुमान लगाया गया है कि उनक मनारंजन का एक अय साधन जाखट भी था। पक्षिया को पालकर ये उन्हें लडाते थे। मुर्गों की लडाइ का इन्हें विशेष शौक था। कुछ ऐसी मुहरें प्राप्त हुई हैं जिन पर तुरहां चीणा आदि के चित्र उत्कीण है। इससे यह परिलक्षित हाता है कि नृत्य एव संगीत से भी इन्हें प्यार था। कासे की एक ननकी की मूर्ति भी इस सत्य का प्रमाणित करती है।

तरुणा के अतिरिक्त बालका के मनाविनाद एव खेल का भा यहाँ समुचित प्रवच था। जय शारीरिक खेलों के विषय मे ता हमे कोई विशेष ज्ञान नही है किन्तु प्राप्त गिलौना के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बच्चा के जीवन म खेल का काफी महत्व था। उत्खनन द्वारा असंख्य खिलौन प्राप्त हुए है जिनम झुनझुनें, सीलियां, गानिया जिनमे बल जुते रहत थे और जिन पर चिथिया बढाई जाती था आदि प्रधान है। य सारे खिलौन बहुधा मिट्टी के होते थे। नर-नारिया एव पशु पक्षिया की आकृतिया भी मिट्टी की बनाई जाता था। इस प्रकार हम देखते हैं कि यहां के निवासी अपन बालका के शारीरिक विकास एव मनोविनोद का विशेष ध्यान रखत थे।

**रहन-सहन के कुछ अय ढंग**—मवना एव नगरा का वणन करते समय हमने बताया है कि इनके मवन हवादार एव स्वच्छ हाते थे। मवना की सादगी म कुछ ऐसा भा आभासित होता है कि वे अपन मवना का कुछ ऐसी वस्तुआ स सजात रहे हागे जा शौघ नश्य रही हागी। पर अलकार स दूर रहना इनके लिए सम्भव नहा जान प ता। ये छोटी दाती तथा मूछें रखते थे। कथा की सहायता स य अपन बाला का पीछे की आर फरते थे।

**तौल के बढकरे**—उत्खनन द्वारा पर्याप्त मात्रा म बढकर प्राप्त हुए हैं। छोटे बढकरे बिल्लौर या स्लटी पत्थर क हैं और ये प्राय छपहल आकृति क हैं किन्तु बडे बढकर गोल पेंदी क नोकिये है। इतिहासकारा का ऐसा मत है कि य बढकर अपनी शुद्धता म मसापाटमिया तथा एलम क बढकरा स भी बढकर है।

**अन्तिम त्रिया**—माहेन जाण्डा एव हरप्पा की सुदाइया म उपनय नामप्रिया क आधार पर इनके मृतक मस्कार का कल्पना की जा सकती है। य तीन प्रकार से अपन शया की अन्तिम त्रिया करत थे—(१) या तो उनका पूरी भमाधि द टा जाता थी। (२) या पहल शय का गुल स्थान म इसलिय छोड दिया जाता था कि बढ पशु-पशिया का आहार बन और तदुपरान्त अवशेष आम्ब-मजर का रूपना लेत थे। (३) या पहने शय का जला देने से और तब मम्म को भाण्ड म रखकर दफना लेत थे। हाँ या तथा बलका म इस प्रकार का मम्म तथा जली अस्थियां प्राप्त हुए हैं जिनक आधार पर

<sup>१</sup> सर जान भागल ने इनकी विलासिता एव शृंगारिष्ठा पर लिख है—  
'यहाँ साधारण नागरिक मुविधा ओर विलास का जिस मात्रा में उपयोग करता था उसकी तुलना समकालीन सम्य ससार क अय भागा से नहीं हो सकती।'

यह कहा सवना है कि सिंधु सभ्यता के प्रौ काल में जलाने की प्रथा प्रचलित थी। मोहेन जोन्डो की सड़का और एक बमरे से लगभग बीस अस्थिपत्र उपनघ हुए हैं पर यहाँ कोई बम नहीं मिली है। किन्तु हम्प्या में एक बमगाह भी प्राप्त हुआ है।

सामाजिक संगठन—सिंधु निवासियों के सामाजिक जीवन का वर्णन सभ्य में ऊपर किया गया है। पर उनके सामाजिक संगठन पर भी कुछ प्रकाश डाल देना अनिवार्य है। सुमेरिया बबालोनिया कल्डिया एवं यूनानी सभ्यताओं के काल में वहाँ के सामाजिक संगठन का अध्ययन करने से हम पता हाता है कि इन अधिकांश सभ्य दशों का सामाजिक संगठन उत्तम मध्यम तथा निम्न तीन वर्गों में सम्पूर्ण समाज को विभक्त करके हुआ था। राजा तथा उसके सामन्त एवं कमी-कमी पुराहित का उत्तमवर्ग में रखते थे। मध्यमवर्ग में जमींदार तथा व्यापारी आते थे और निम्नवर्ग में बहुधा दास और किसान आते थे। पर सिंधु निवासियों का सामाजिक संगठन इनसे विशेष साम्य नहीं रखता। यहाँ सम्पूर्ण समाज चार वर्गों में विभक्त था—(१) विद्वान (२) यादा (३) व्यापारी तथा (४) श्रमजीवी।

पुजारी ज्यातिपी तथा ब्रह्म आदि की गणना विद्वान वर्ग में की जाती थी। सैनिक कार्य करनेवाले तथा जन रक्षका को योद्धा वर्ग में रखा गया था। आध्यात्मिक कार्य करनेवाले तथा वर्णिकों का तृतीय वर्ग व्यापारियों का था। चतुर्थ वर्ग में घर में काम करनेवाले नौकर तथा अन्य श्रमजीवी थे। छोटे माटे घरेलू उद्योग घघा में लग हुए व्यक्तियों का भी इसी वर्ग में रखा गया था।

### आर्थिक दशा

प्रारम्भ में ही बताया जा चुका है कि इनका मुख्य व्यवसाय कृषि था। यह पता नहीं कि कृषि में ये हल का प्रयोग करते थे कि नहीं क्योंकि उसके अवशेष या खेत ओतन के अन्य किसी प्रकार के अवशेष प्राप्त नहीं हैं। पर इनके पशुओं के आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि ये हल का प्रयोग जानते थे। हो सकता है उनकी कृषि का होल के कारण बं नष्ट हो गये हों। आजकल की भाँति उस युग में सिंधु भूमि शुष्क एवं बर्षिहीन नहीं थी ऐसा पहले ही सिद्ध किया जा चुका है। सिंधु एवं मिह्रान तथा उनकी सहायक नदियों से सिंचन-कार्य सुविधापूर्वक हो जाता था और यही कारण है कि सिंचाई के औजारों के चिह्न नहीं प्राप्त हुए हैं। गहू जो और खजूर का उत्पादन में काफी करते थे। कृषि-कार्य में सहायक उद्योग पशु-पालन में भी अपनी जीविका का उपाजन करते थे। अस्थि पत्रों पर तथा मुहरों पर उत्काण चित्रों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इनके पालने पशुओं में से बकरा गाय मुँकर कुत्त और ह्याथी प्रमुख थे। ऊँट तथा घोड़े की हड्डियाँ भी प्राप्त हुई हैं। पर घोड़े की हड्डियाँ ऊपर तह पर प्राप्त हुई हैं जिससे यह परिचित होता है कि घोड़े का प्रयोग वाद में प्रारम्भ हुआ। बस इनके घरेलू में मुँकर घड़ियाँ मछलियाँ तथा चिड़ियाँ की भी हड्डियाँ प्राप्त हुई हैं जिन्हें सम्भवतः य मारकर खाते थे। कुछ पत्रों पर गेंग चीता भालू बन्दर तथा मरगाश के भी चित्र उत्काण हैं जिनसे यह परिचित मान्य मंदत है।

विभिन्न प्रकार के घरेलू उद्योग घघ भी इनका जाविका में प्रमुख माधन थे। इनमें ध्वजकारा, कुम्भकारा वर्णगिरा मुहरा आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। जामूना के

विषय में पहने ही बताया जा चुका है।<sup>१</sup> कुम्भकार चाक द्वारा खाग्नियों बटोरियाँ, प्याग्नियाँ, मट्टक, कुण्डे भाण आदि बनाते थे। मिट्टी के बिलौन बनाकर भी य अच्छी आय कर लेते थे। मिट्टी के बतना एक बिलौना के अतिरिक्त ये दोबरा चूहदानी तथा पित्रे भा मिट्टी से बनाते थे।

रुई का महत्व भी इन दिनों कम न था। माहेन जो गे एव हल्पा का चीनी चौड़ी मन्का पर बनगारियाँ अधिक चलाई जाती थीं। अन्तर्देशीय व्यापार में वन गारियाँ का महत्व अधिक था। बच्चा की गाड़ियाँ और कुसिया तथा वसी प्रकार के अथ छोटे-छोटे मामान बड़ई बनाते थे। भवन-मन्वची लकड़ी की सामग्रियाँ दरवाज, खिन्कियाँ आदि बनाने में भी ये काफी दखल देते थे।

यहाँ लुहार का प्रयोग इतने सकाण अथ में नहा किया गया है, अर्थात् बवल लोहे की सामग्रियों बनानेवाले का ही लुहार का सत्ता नहीं दा गई है। वास्तव में धातु कार को लुहार कहा गया है और अस्त्र शस्त्र तथा आभूषणों के अनिश्चित धातु का अथ समस्त सामग्रियाँ बनानेवाला को लुहार कहा गया है। ये लुहार, चूना आदि में गण करसा लकड़ वछे धनुष-बाण आदि बनाते थे। धातुओं के बतने में यहाँ ताप बनाते थे।

बुनकरा ने भी इस युग में काफी उन्नति की थी। पत्रों मिट्टी तथा हड्डियों के टेबुआ, मूत का नलिकाआ आदि की प्राप्ति में यह स्पष्ट हा जाता है कि मूत की बनाई पर्याप्त हुआ थी और यहाँ के बुनकर कुशलतापूर्वक कपड़े बुनते थे। ये उना तथा सूती दोनों प्रकार के वस्त्र तैयार करते थे।

इनके अतिरिक्त जोहरा हाथी दाँत के काम करनेवाले रंगरेज पत्थर काटनेवाले विभिन्न प्रकार के लाग नाना प्रकार के उद्योग धंधा द्वारा जीविकोपार्जन करते थे।

शुधि, पशु-पालन एवं घरलू उद्योग धंधा के अतिरिक्त व्यापार के क्षेत्र में भी इन लोगों ने पर्याप्त उन्नति की थी। वाणिज्य एवं व्यवसाय में ये विन्ध के अन्य नगरों की अपेक्षा काफी उन्नतिशील थे। चौड़ी-चौड़ी मन्का की पटरियाँ पर छोटी-बेग दुबानें पौती थी। इनका विदेशी व्यापार 'सुमरिया' तक पता था। इनके विदेशी व्यापार के विषय में माहेन वाइल्ड का कथन है, 'सिन्धु घाटी के नगरों का निमित्त सामग्रियाँ दजना कराने के बाजारा में बिकती थी और उधर सुमरियन बला की कुछ शक्तियाँ मसोपान मिया का शृंगार-सामग्रियाँ तथा एक बतने के आकार का मुहर का अनुकरण मित्र निवासियाँ न करती थीं। व्यापार के बच्चे माल तथा बिलाम का बन्नुआ तक ही सामित न था। अग्र्य माणर के तटा से लाई मछलियाँ माहेन जाण्डा का भाजत-सामग्री में सम्मिलित था। इनके विदेशी व्यापार भारत के अडाम-गडोन एशिया के विभिन्न नगरों में भी हुआ था। आयात व्यापार के विषय में धातु एवं अनिश्चित पदार्थों के प्रकरण में थोड़ा बतन प्रकाश डाला गया है और बताया गया है कि माना तीसरा, पत्थर तथा मृगियाँ का आयात ये विन्ध में करते थे। इनके आन्तरिक व्यापार के विषय में प्राफमर माहेन वाइल्ड का मत है 'स्पष्ट रूप में यह प्रकट हुआ है कि सिन्ध के नगरों में शिल्पा शिक्षा के लिए बन्नुओं बनाते थे। इन मामानों के विनिमय की सुविधा के लिए गमाज न मन्का का प्रचलन या मन्व का माण स्वीकार किया था या नहीं, और यदि किया था तो क्या था—इसका ठीक पता नहीं है। अन्व विशाल भवन और मरानों

<sup>१</sup> इन स्वयंकारों की निपुणता के विषय में एक विद्वान ने लिखा है, 'ये वाइल्ड स्ट्रीट के विमा धायनिक जोहरा की दुबान में आये हुए प्रतीत होते हैं, ईसा से ५००० ई० पू० के प्रागैतिहासिक काल के पर से आये हुए नहीं जान पड़ते।'



से लग हुए मुरधित गोदामो से यह ज्ञात होता है कि इन घरा क स्वामा व्यापारी थे। इन घरा की सख्या और आकार यह बताते हैं कि यहाँ सुमगठिन एव समदशाला व्यापारिया की बस्ती थी।<sup>६</sup>

### धार्मिक दशा

वस तो कुछ विद्वाना ने सुमरियन सभ्यता क प्रारम्भिक काल म एकवरवाद की कल्पना की है पर यह कल्पना सत्य क नहीं तक निकट है यह नहा कहा जा सकता। वास्तव म प्राचीन सभ्य दशो के अध्ययन स अब तक यही जान ले पाया है कि व सभ्यस्त प्राचीन निवासी प्रारम्भ म बहुदेववादी प्रकृति-भुजक या शक्ति के उपासक थ। ऐश्वर बाद की कल्पना उन्हनि कालान्तर म की है। सिधु घाटी क निवामिया की धार्मिक अवस्था भी कुछ इसी प्रकार की थी। इनक धम के विषय म जान प्राप्त करन के प्रमुख साधन मुहरे ताबीजें मतिया आदि हैं। इन मुहरा या ताबीजा पर उत्काण चित्रा के आधार पर ही हम उनके धम क बाह्य रूप का बाध कर पाय है। स्पष्ट एव पठनीय लिखित सामग्रा के अभाव मे उनक दशन का कार्द ज्ञान हम प्राप्त नहा है। उनके धार्मिक विश्वासा एव आस्थाआ का ऋमिक विकास किम प्रकार हुआ इनका भा प्रामाणिक जान हमारे पास नहीं है।

मात देवी का उपासना—मोहन जादगे तथा हडप्पा में असभ्य दविया की मतिया प्राप्त हुइ हैं जसा कि बलूचिस्तान में मिली हैं। इसी प्रकार की मूर्तिया पचिमा एशिया इजियन सागर के आस-पास एलम एशिया माइनर मेसोपोटमिया सारिया पलस्टाइन ग्राट, साइरस बालवन इजिप्ट आदि म प्राप्त हुई है। विद्वानो का यह मन है कि य मूनिया मातदेवा या प्रकृति देवी की मूर्तिया है। मातदेवी या प्रकृति देवा का इस उपासना का प्राचान कालान सिध म देखकर हम उस प्राचीन वृत्तिक कालान मात-पूजा (जाध-शक्ति या प्रकृति पथ्वी या आदित जिनका उल्लत ऋग्वेद म किया गया है) स लकर आधुनिक काल क ग्राम्यदेवता (जिनका सख्या अनन्त है) तक का स्मति जा जाता है और भारत क धार्मिक विश्वासा का इस प्राचीन शृखला का बाध करक आचय-सा हान नगता है। इस मात-देवी की उपासना य किस प्रकार करत थ इसका प्रमाण हमे ह प्पा म प्राप्त एक अन्य सील के चित्र स मिलता है (यदि इस चित्र का सम्बध पूर्व-वर्धित मतिया स हो)। उक्त चित्र म एक एसी स्था बनी हुई है जिसक पर स एक पीदा निकत रखा है। चाकू लिए हुए एक पुरुष है और एक स्त्रा जिसकी सम्मवन बलि चढाइ जानवाना है हाथ ऊपर किए खड़ी है। यदि इस मातदेवा मान लिया जाय (जसा कि अधिकाश विद्वान मानत हैं) तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि य मातदेवा का पूजा बनि द्वारा भी करत थ और बनि म नर-वृत्ति मा सम्मिन्त था।

आदि पशुपति की उपासना—एक मान पर एक देवता का मूनि उत्काण है। इस देवता क तान मल और दो सींग हैं। यह मागासन म बठा है। इसर दाहिन ओर एक हाथा और एक सिंह है बाइ आर बारहमिन् तथा भला चिन्नि है। सर पर शिरत्राण है। आसन क नाच एक दो सींगवाना हिरन है। विद्वाना नम चित्र का गन्ध अध्ययन किया है। तान मन स त्रिमुख और त्रिनयन (शंकर भगवान का) चारा आर पञ्चा क चित्रा स ऋग्वेद क ह् और पशुपति शिव यागामन स भा यागिगत्र सिध दाना सींग सिध तथा शिरत्राण का त्रिशू (शंकर भगवान का हा) जतमान किया है। ऋ

प्रकार आदि पशुपति का पूजा का आराम भिन्नता है। कुछ विद्वानों ने हिरण और लो मोना तथा शिन्धुवाण द्वारा कथित तान बन्धुआ (विज्ञान) का बोद्धों के निराल की कल्पना का रूप पर यह तरमगत नया प्रतीत हाता क्योंकि बोद्ध धम का प्राधानता मिथु घाटा के निवासिया के धम में राजना अधिन तबमगत नहा जेंचना। मानन न मिथु घाटा में शबधम का उत्पत्ति मानकर उम विद्व का प्राचीनतम धम स्वीकार किया है। उनके अनुसार—

Among the many revelations that Mohenjodaro and Harappa have had in store for us none perhaps is more remarkable than this discovery that saivism has a history going back to the Chalcolithic Age of perhaps even further still and that it thus takes its place as the most ancient living faith in the world

श्री टी० एम० पी० महादेवन ने श्री मानन की इस विचारवाप्तिता का रान्न बडे डी मूय-बुद्ध के साथ किया है। उहान तथाकथित शिव के चित्रण का शिव न हान के धम में बद्ध आरदार मत लिए हैं। उनके अनुसार—

The figure on the roughly carved seal provides only very slender evidence for the theory which Marshall evolves out of it

लिंग तथा योनि पूजा के प्रतिवि व पापापा का जान मानन शबधम का पुष्टि में प्रमाणस्वरूप उपस्थित करता है। उसके अनुसार—

They were all sacred objects of sort the larger ones serving as agalms for cult purposes the smaller are amulets to be carried on the person just as miniature lingas are commonly carried by saivites of to day

परन्तु महादेवन महोदय ने माशाल के इन मत का मा खडन किया है और इन प्रकार शबधम का प्राचीनता का पूरा ताना-बाना ही उलट जाता है। मता अ नए तथा के प्रकाश में आने तक अपन समयनिणय प्रतिपादन की प्रतीक्षा करना हागी। सरजान माशाल ने अपन मत का बमजारी का आराम किया या अतएव वह कल्पना है—

Our task is but just beginning Fresh materials are coming to light almost daily and our horizon therefore is insensibly changing In such conditions any approach to finality is out of the question

मोनेन जोर्या में एक सील पर एक और भी चित्र अंकित मिला है जो यागी का है और एक नाग दानों आर पूजा में हाथ ऊपर उठाये हुए है। एक दूसरा चित्र भी वही अंकित है जो बचन एक मृगवान दवा का है। शक्ति-पूजा का कल्पना मा प्राप्त चित्रा के आधार पर का जा मरती है जो सम्भवत मात दवा का पूजा या पर्वी-पूजा के उपरान्त आरम्भ हुई।

योनि-पूजा—शिव एवं शक्ति का उपासना के साथ-साथ लिंग-पूजा या योनि-पूजा भी प्रचलित थी। शिव का पूजा के साथ लिंग की पूजा का विकास हाता हिन्दू धम की पूजा-मदति से समता स्थापित करता हो। पत्यरा की बनी हुई लिंग तथा योनि की आहतिया सिध तथा बन्धुचिन्तान दाना स्थाना में पाई गई हैं। लिंग पूजा आदि पशुपति का पूजा निश्चय ही प्रमाणित हा जाना है।

वृक्ष-पूजा या प्रकृति-पूजा—बध-पूजा या प्रकृति-पूजा के प्रमाण स्पष्ट रूप से मिलते हैं। वृक्ष-पूजा दो रूपों में हाती था—(१) वृक्ष का उसक प्राकृतिक रूप में पूजना तथा (२) प्रतीकात्मक रूप में, अर्थात् उस वृक्ष में किमा दवा का निवास मानकर। सिधु

निवासिया की वक्ष-पूजा को जानकर हिन्दूधर्म में प्रचलित वृक्ष-पूजा को स्मृति आ जाती है। तुलसी व वक्ष की पूजा आज भी इसके वास्तविक रूप में होती है और पीपल व वासुदेव भगवान का वास मानकर उसकी पूजा करते हैं। प्रथम प्रकार की पूजा अर्थात् वक्ष को उसके वास्तविक रूप में पूजने की प्रथा का उदाहरण हड़प्पा की कुछ मुहरों से प्राप्त होता है। (हिन्दुओं के पवित्र वृक्ष) पीपल की दो डालों के बीच में एक देवता का चित्र माहन जादड़ों में प्राप्त हुआ है। (ध्यान रहे कि पीपल के पेड़ की पवित्रता न केवल हिन्दू धर्मावलम्बी ही स्वीकार करते हैं बल्कि यह भगवान् बुद्ध का बाधित वक्ष होने के नाते बौद्ध मतावलम्बियों का भी पावन वक्ष है। इस देवता की आराधना में सात अन्य मूर्तियाँ चित्रित की गई हैं जो नारी चित्र हैं। इसमें एक पशु का भी चित्र है जिसके शरीर का कुछ भाग बल का है तथा कुछ बकरे का और जिसका मुख मनुष्य का है। ऐसा अनुमान है कि यह पशु उक्त पीपल देवता का वाहन है। कुछ अन्य चित्र भी प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर इनकी वक्ष पूजा या प्रकृति-पूजा का बाध होता है।

पशु-पूजा—सिंधु सभ्यता के निवासी पशु-पूजा भी करते थे। उस सभ्यत्व में मुहरों तथा पत्थर पत्रों पर चित्रित या उत्कीर्ण मूर्तियों का प्रमाण पर्याप्त होगा। उनकी पशु-पूजा का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि वे पशुओं की आकृतियाँ कुछ विशेष आकार प्रकार की बनाते थे। कुछ पशु आघे मनुष्य और आघे पशु थे जसा कि ऊपर बकरे का उल्लेख किया गया है। आघा भेड़ आघा बकरा आघा हाथी और आघा बल या इसी प्रकार के अन्य मिश्रण से किसी पशु का आकृति का निमाण करना यह सिद्ध करता है कि वे पशुओं में भी देवा अक्ष मानते थे और उनकी आराधना करते थे। और कुछ नहीं तो किसी देवता विशेष के वाहन रूप में तो उसकी पूजा करते ही रहे होंगे। कुछ पशुओं से इन्होंने विशेष प्यार था और उनकी आकृतियाँ ये निरान्त कलात्मक ढंग से बनाते थे। बड़ी लरवाला बल या साँड में मस शर आदि इसी कोटि के पशु हैं। इन पशुओं के प्रति विशेष प्यार हान का कोई अन्य कारण नहीं हो सकता सिवाय इसके कि ये इनके धार्मिक पशु हों। पिछल पृष्ठ में आदि पशुपति का उल्लेख करते हुए शेर तथा मसा के चित्रों का अंकित होना बतलाया गया था। सम्भव है ये देवता उनके पूज्य हों। आज भी वाहन रूप की हिन्दू शकरक नन्दा-बल दुर्गा व सिंह यमदेव के मस ब्रह्मा के भेड़े इन्द्र की गज की सत्ता स्वीकार करते हैं।

धार्मिक प्रथाएँ—इनकी धार्मिक प्रथाओं में विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त स्वल्प है। ये सम्भवतः स्नान से शरीर पवित्र करने में विश्वास करते थे और सम्भवतः स्नान-स्नान-स्नान से शरीर पवित्र करने का इतना मुख्यव्यस्तित प्रबंध किया गया था। इन्होंने सम्भवतः मन्दिरों का निर्माण नहीं किया था पूजा-पाठ या तो खुले स्थानों में या घरी में किया करते थे।

उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि सिंधु घाटी के निवासियों के धर्म तथा हिन्दू धर्म में पर्याप्त साम्य है और इसा साम्य से प्रभावित होकर भाग्य महोदय ने लिखा है सिंधु घाटी के लोगों के धर्म में बहुत-सी ऐसा बातें हैं जिनसे मिलती-जुलती बातें हम अन्य देशों में भी मिल सकती हैं और यह बात सभी प्रागतिहासिक और ऐतिहासिक धर्मों के विषय में ठीक सिद्ध होगा। लेकिन सब कुछ जान लिए मा उनका धर्म इतना विशेषता के साथ भारतीय है कि आधुनिक युग के प्रचलित हिन्दू धर्म से कठिनाता से उसका भेद किया जा सकता है। प्राचीन सभ्यता में धार्मिक अथ-

निर्दन्ना जादू-टाना आदि का अधिक विवरण प्राप्त होता है। मिथु-सम्म्यता में भी हमें इस प्रकार के अंधविश्वासों का पता चलता है। स्वप-नरक का विषय में इनका कोई कल्पना थी या नहीं और यदि थी तो क्या थी इसका भी वाद नाह हम नहीं हैं। आसिपाहारा हान के कारण इनका घासिक प्रयास में कुछ हिंसात्मक भी रहा होगा ऐसा अनुमान किया जा सकता है पर इनका भी कोई माय साध्य नहीं है।

स्टुअर्ट पिगट महान्य न भी हिन्दूधर्म का सान सिधु घाटी से माना है। और अपन मन के समयन में उन्होंने निम्नांकित कथन उपस्थित किया है—

The links between the Harappan religion and contemporary Hinduism are of course of immense interest providing as they do some explanations of those many features that cannot be derived from the Aryan traditions brought into India after or concurrently with the fall of the Harappan civilization. The old faiths die hard! It is even possible that early historic Hindu society owed more to Harappan than it did to the sanskrit speaking invaders. Piggot, *Prehistoric India*

जान मागल ने भी इसी मत का विवेचन करते हुए अंत में लिखा है—

(The text is partially obscured and illegible)

sume that the material side

land and ence

of course argue on the probabilities assumption is more natural than to postulate the existence among the Indo Aryans of a body of belief

### कला

कला का क्षेत्र में यहाँ का कलाकारों ने काफी उन्नति की थी। य कला उपयोगिता के लिए पर विशेष जोर देते थे। मुद्रिया के लिए इनकी विभिन्न कलाओं का पथक-पथक बणन किया जायागा।

भवन निर्माण-कला—मिथु घाटी के भवन का विवरण पीछे दिया जा चुका है। हम जानते हैं कि इनके भवन यद्यपि स्वच्छ एवं सुदृढ़ होने से पर इनमें कलात्मकता का अभाव था। विभिन्न भवनों एवं हात्ता का देव्यंकर हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि ये हम कला में दक्ष थे और मकानों का अधिक से अधिक उपयोगी बनाने चाहते थे। वहनु म्नानागार इनका हम कला का सानक है।

मूर्तिकला—वास्तव में यहाँ के कलाकार मूर्तिकला में ही विशेष उन्नति कर सके थे। इनकी मूर्तियाँ अधिक कलात्मक एवं कल्पनापूर्ण हैं। यूनानी तथा भारतीय (सिंधु) मूर्तिकारा का प्रवृत्तियों का तुलना भी विशेष रचिकर है। यूनानी मूर्तिकार शरीर के अवयवों का हृष्ट-मुष्ट एवं पूर्ण विवक्षित दिखाने के पक्ष में थे जबकि सिंधु के कलाकार मूलमांडन की भावामिव्यक्ति पर अधिक जार देने थे। यूनानी मूर्तियाँ को देखकर रसानुभूति गहा हा पाता पर सिंधु की मूर्तियाँ का देख हृदय में भावानिरेक ता उठता है। यहाँ नतकी की एक मूर्ति प्राप्त हुई है। नतकी त्रिमयी मुद्रा में नतन करने के लिए प्रस्तुत है। वह पर ऊपर उठाकर पद प्रक्षेप करना चाहती है। दो पुरुषों की भी मूर्तियाँ उ खनन द्वारा प्राप्त हुई हैं। यहाँ की मूर्तिकला की प्रशंसा में तान माशल ने लिखा है सिंधु घाटी का कला और धर्म भी उतने ही विविध हैं और उन पर अपनी एक विशिष्ट छाप है। इस काल में हम अरब देशों में काइ एसी वस्तु नहीं जानते जो शली की दृष्टि से यहाँ की चीनी मिट्टी की बनी मडा कुत्ता या अन्य पशुओं की मूर्तियाँ से साम्य रखता है। या उन उत्कीण मुहरों से विशेष रूप से जिन पर छोटी सींगों के बूँडवाल बना की नक्काशी है और जो निर्माण-शैली तथा सुडौलपन की दृष्टि से अद्वितीय है न यही सम्भव है कि हृष्टता में पाई गई दो छोटी प्रतिमाओं की तुलना रचना की सुघराई की दृष्टि से किन्हीं जय मूर्तियाँ से कर सकें सिवाय इसके कि अब यूनानी सभ्यता की प्रौढकाल की मूर्तियाँ देखें।<sup>१</sup>

महर निर्माण कला—इस क्षेत्र में तो यहाँ के मनुष्यों ने आशातीत उन्नति की थी। मुहरों में मित्र मित्र प्रकार के पत्थरों हाथी दात घातुआ तथा मिट्टी की बनाई जाती थी। इनके आकार भी विभिन्न हैं। अधिकांश मुहरों गलाकार हैं। महरों की सुदरता उन पर उत्कीण पशु आकृतियों से और बढ़ जाती है।

अरब कलाएँ—कुम्भकार-कला स्वर्ण-कला वतन बनाने की कला आदि पर पहले ही प्रसंगत प्रकाश डाला जा चुका है। चित्रकला का स्वतंत्र रूप देखने की नहीं मिलता पर इससे यह अनुमान लगाना कि वे चित्रकला से अनभिज्ञ थे तबसगत नहीं। वास्तव में चित्रकला का प्रदर्शन बहुधा शीघ्र नष्ट वस्तुओं पर होता है जिनका इतने दिना तक सुरक्षित रहना असम्भव ही है। मिट्टी के बतना और तांबेजा पर जो चित्र बने हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि वे चित्रकला से परिचित रहे होंगे।

उत्कीण-कला<sup>२</sup>—यहाँ के निवासी लिखना-पढ़ना अवश्य जानते थे जसा कि महरों पर उत्कीण लगने से सात होना है पर काई लेखन-त्र नहीं प्राप्त हुआ है। लगभग ५० मुहरों प्राप्त हुई हैं जिन पर कुछ लिखा है। इनकी लिपि चित्रात्मक प्रतीत होती है और प्रत्येक चिह्न किसी शब्द या वस्तु विशेष के लिए बना है। ये दाहने से बाएँ की लिखते थे पर कुछ महरों में कुछ पंक्तियों बाएँ से दाएँ की भी चली हैं<sup>३</sup> पाई गई हैं। दुर्भाग्यवश इनकी लिपि अब तक नहीं पढ़ा जा सका है। इनके लला में कुछ मात्राओं का भी अनुमान किया गया है और जिन्हें स्वर चिह्न माना जा अनुमान किया गया है वे सम्भवतः बाद में प्रचलित हुईं। विज्ञान न इनकी लिपि के विषय में ऐसा अनु-

<sup>१</sup> वही

<sup>२</sup> सिंधु त्रिवरण के लिये देखिये डा० जी० आर० हार्डर लिखित *Script of Harappa and Mohenjodaro* तथा एच० हेरास लिखित *The Story of the two Mohenjodaro Signs*

मान किया है कि यह लिपि सम्भवतः ब्रह्म लिपि है जिसका प्रयोग मुमर एरम मिस्र तथा अन्य प्राचीन पश्चिमी देशों में होता था। कुछ एमी भा लिखावट मिस्री है निम्न पहला पंक्ति तो दक्षिण से बायें का है पर दूसरी बायें से दक्षिण का है। इस प्रकार की लिखावट को 'बस्त्रोफेडन' (Boustrophedon) कहते हैं।

लिखित सामग्रियों का अभाव या प्रायः सामग्रियों का अपठनाय जाना हम सभ्यता के अथवा ज्ञान का कारण बन जाता है क्योंकि हम बिना हम तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति के विषय में कुछ भी नहीं जान पाते हैं।

मिथु-सभ्यता के निर्माता

विचाराधीन सभ्यता-सम्बन्धी सम्बन्ध प्रश्नों में उन्नत सभ्यता के निर्माताओं का ज्ञान है। अस्थिरता के अवशेषों तथा प्रतिमा मन्दिरों के वैज्ञानिक अध्ययन से ऐसा परिचित हो जाता है कि सिन्धु-सभ्यता के निर्माता किन्ना एक जाति के नहीं थे बरन् कई जातियों के सम्मिश्रण से इस सभ्यता का निर्माण हुआ था। इन मिश्रित जातियों में प्रागम्यत्रायण (Proto Australoid), मडिटरनियन अल्पाइन तथा मगाल विजय उल्लेखनीय हैं। डा० मुखर्जी ने बताया है कि प्रागम्यत्रायण नाम निम्न देश भारत के किसी भाग में ही यहाँ आये होंगे मडिटरनियन एशिया के दक्षिण भाग में आये होंगे और मगाल तथा अल्पाइन क्रमशः पूर्वी तथा पश्चिमी एशिया में स्थानान्तरण करके यहाँ बस गये होंगे। उल्लेखन द्वारा प्राप्त अस्थिरता के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है और इसका समर्थन मान्य जाण्टी में प्राप्त प्रस्तर मूर्तियाँ भी करती हैं। यहाँ प्रतिमाओं का विचारमान रूप के अन्वेषक निर्माताओं का जाति का पता लगा रहा है। पर दुर्भाग्यवश प्रतिमाओं की संख्या भी बहुत कम है। दृष्टि में भी अपठित प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। मुमरियन तथा उनकी अन्य जातियों की भाँति इस सभ्यता का निर्माता मानने के लिए अनेक इतिहासकार तैयार हैं। अनुमान यह है कि द्रविड या (चाहें वे उम अनादि वात में जिसे रूप रंग के दृष्टि से) भारत के किसी भाग में या पश्चिम की ओर से स्थानान्तरण करके यहाँ आकर बस गये और कुछ अन्य जातियों (सम्भवतः प्रागम्यत्रायण जाति) के सम्मिश्रण से इस सभ्यता का निर्माण में तत्काल हो गये।

यदि आप—कुछ भारतीय विद्वानों ने सिन्धु घाटी का संस्कृति में अपना हाँ विविध विचारधारा का प्रतिपादन किया है। उन लोगों के अनुसार सिन्धुघाटी के लोग जाय जाति के थे। परन्तु आजकल ऐसा कल्पना करना कामन्द्य का नहीं।

मुमरियन—ग्रीक साहित्य में सिन्धु घाटी के लोगों का मुमरियन माना है। उनके सम्बन्ध में भारतीय एकता के ही कारण हमें जानना संस्कृतियों में सामान्य तत्व दर्शन है। डा० हान ने मुमरियन का मूल स्थान मयापाटमिया के पूर्व में रखा है और भारत के द्रविडों का भी मुमरियन की जातीयता का अर्थ बताया है। प्राचीन वात में द्रविड सम्पूर्ण भारत में व्याप्त थे। ब्राह्मणों ने आपा अथवा भी इस बात का प्रमाण है कि उन आर्यों के सम्बन्ध में—

१. भारत के मुखर्जी ने अपनी पुस्तक *Hindu Civilization* में प्रागम्यत्रायणों के सम्बन्ध में भील आदि से स्थापित किया है। उन्होंने प्रतिमाओं के अध्ययन में बहुत सावधानी से काम करने का सक्त किया है क्योंकि बलाकार प्रतिमा-संस्कृत का निर्माण करते समय मानव-संस्कृत का टीक-टीक चित्रण करने के लिए धातु न थी और न ही मानव जाति के इतिहास के वैज्ञानिक ही थे।

सिन्धु सभ्यता का सूत्र, प्रसार और समय

The people who spoke Sumerian had their affinities with the people of the Caucasian or European type and we may regard south western Asia as their cradle land until evidence leading to different conclusions comes to light

अतएव हम अभी तक किसी निश्चित समाधान तक नहीं पहुँच हैं। परन्तु इतना निश्चित है कि सिन्धु घाटी के निर्माता आर्य नहीं थे।

सिन्धु सभ्यता का मूल प्रसार और समय—सिन्धु सभ्यता के मूल के विषय में उनके निर्माताओं का सही ज्ञान न होने के कारण म्रम होता आवश्यक है। फिर भी इस सभ्यता के मूल तत्वा पर एक विहंगम दृष्टि डालकर हम उसका मूल ढढने का प्रयास कर सकते हैं। प्रारम्भ में ही यह बताया गया है कि आदि काल में या प्रागतिहासिक काल में बड़ी-बड़ी नदियों की घाटियाँ में विश्व के अनेक भू भागों पर सभ्यता का जन्म होने लगा था। मिस्र की नील नदी की देन कहते हैं अर्थात् मिस्री सभ्यता को जन्म देने का कारण नील नदी है। दजला फरात की कोड में ही सुमेरिया तथा बबिलोनिया आदिकी सभ्यता फूली फली थी। यागटीसीक्याग तथा ह्यांगहा नदी ने प्राचीन काल का जन्म दिया। इसी प्रकार हो सकता है कि अपन स्वभाविक एव प्राकृतिक रूप में सिन्धु तथा मिहारा जसी बड़ी नदियों में सिन्धु घाटी की सभ्यता को जन्म दिया और कौन जानता है कि गंगा-यमुना की गोद में भी कोई बहुत प्राचीन एव परिपक्व सभ्यता निहित हो और जो पुरातत्ववेत्ताओं के फावणे की प्रतीक्षा कर रही हो। इस प्रकार इस सभ्यता के मूल के विषय में जो हम प्रथम अनुमान लगा सकते हैं वह स्वभाविक और प्राकृतिक विकासोन्मुखी गति है।

विश्व इतिहास का अध्ययन करते समय जब हम विभिन्न देशों का सृष्टितया का मूल ढूँढते हैं तो उस समय हम उनके मूलतत्वों को देखना पड़ता है और यह देखते हैं कि किस सभ्यता का छाप किस पर है। जहाँ एक के मूलतत्व अदरश दूसरे से मिलते जाते हैं वहाँ हम उन दोनों सभ्यताओं समान या समान नहीं तो एक दूसरे की उत्तराधि कारिणा (यदि समकालीन नहीं हैं तो) धापित करते हैं। कारण यह है कि सभ्यताओं के मूल तत्व ही उनका मौनिकता के चोकर हैं। जो सभ्यता मौलिक नहीं उसकी बाइ दन नहीं हो सकती और जिस सभ्यता की कोई दन नहीं उसका कम से कम अन्तर्राष्ट्रीय महत्व नहीं। इसी दृष्टि का ध्यान में रखते हुए हम सभ्यताओं का अध्ययन करते हैं। हम देखते हैं कि विश्व की लगभग सभी प्रमुख सभ्यताओं की अपनी एक मौनिकता है अपनी एक अनग छाप है। इस प्रकार वे एक दूसरे से भिन्न हैं। पर इस विनियम में भी एक साम्य होता है। लखन कला का ही लाजिये। मिस्र की लिपि ब्राह्मण से भिन्न है। इसी प्रकार ब्राह्मण की लिपि सुमेरियन लिपि से भिन्न है आदि-आदि। पर म्रम विभिन्नता में एक साम्य यह है कि ये सभी लिपियाँ चित्रात्मक हैं। एसा प्रकार कला सम्बन्धी विषयों में विभिन्नता रहते हुए भी एक साम्य है। विभिन्न रंगा में भिन्न भिन्न दृक्निक के बतन बनाए जाते थे पर चार और अग्नि द्वारा बनना की पक्का रगाइ का रंग समान था। अतः सभ्यताएँ एक आरंभ तो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न रहतीं ह पर एक आधारभूत तत्व समान होते हैं। सिन्धु सभ्यता भी अपना कुछ मौनिकता रखती है और उसकी एसा मौनिकता के आधार पर हम यह कहने का णवा कर सकते हैं कि यह मयायात्मिका या मिस्र आदि का सभ्यताओं से बिल्कुल भिन्न है। सर जान माशेन न भी यह स्वाकार किया है कि सिन्धु घाटी का सभ्यता अपना समकालीन आर्य सभ्यताओं से बिल्कुल भिन्न है। एसा दगा में हम इसका मन कही और उदने

का प्रयास न करके इसे पूणतया स्वविकसित तथा अय देशों की सभ्यताओं का नकल स पर भी एक सभ्यता मानें तो अधिक तकयुक्त होगा।

सिंधु सभ्यता कहां तक स्थानीय मयावा शक्ति का प्रस्फुटन था। और कहा तक यह विश्वास प्रभाव से प्रभावित थी? डा० ह्वीलर ने मेसोपोटामिया का खान माना है सिंधु सभ्यता के उदय का। उनका अनुसार मेसोपोटामिया सभ्यता सिंधु घाटी की सभ्यता का वह रूप था जो सफल रही थी। नागरिक जीवन के आवश्यक तत्वों का इन स्थानों पर पूणतया विकास हुआ था जो मध्यवर्ग के कल्याण का प्रभावशाली नागरिक चेतना का। अतएव सिंधु घाटी के निर्माता भी अपने नगरों की मरका पर या अन्य सांस्कृतिक स्थलों पर सुमेर की जनता जसा जागरूक होकर अपने कृत्य का निबहन करते थे। बल्कि सिंधु घाटी के नगरों में तो हम अधिक विकसित नागरिक चेतना का भी परिचय पाते हैं। हम यद्यपि मेसोपोटामिया की भांति सिंधु सभ्यता में राजनीय स्मारकों का अवशेष नहीं पाते हैं और न ही हम सिंधु घाटी के लोग का लक्ष्य पर नकाशा करने की वारिधियों से परिचित हैं परन्तु इन अभावों का पूरति तो हम सिंधु घाटी का शानदार मौला में प्रतिबिम्बित तथा उत्कीर्ण पाएँगे।

यद्यपि सुमेर तथा सिंधु घाटी का सभ्यता में एक साधारण भी समानता है परन्तु इन समानताओं से हम राजनितिक प्रभुत्व की कल्पना नहीं कर सकते। सर जान मागल एव अन्य कुछ विद्वानों ने सिंधु घाटी का उदगम सुमेर एव तत्कालीन पश्चिमी एशिया का सभ्यताओं का माना है। उन्होंने लिखा है—

*It bears a close resemblance both to second Prediluvian culture of Elam and Mesopotamia and to the proto historic culture of Sumer*

अथ विद्वानों ने सिंधु घाटी का भारतीय सभ्यता स्वीकार करने हुए भारत ही का प्रागैतिहासिक सभ्यताओं में इसका उद्भव स्वीकार किया है। भारत में खोजों की मानने वालों का बावत सबसे बड़ी अड़चन यही है कि सिंधु घाटी की सभ्यता हम एव मन्द गति से विकसित होती हुई नहीं प्रतीत होती है बल्कि शताब्दियों तक की अवधि में यह अपने एक ही रूप में उपस्थित होता है। एकाएक ही सवतामूला प्रगति करने वाला अव्ययमव हा शक्ति का विषय हो सकता है। परन्तु प्रसिद्ध इतिहास विद्वान श्री एर्नास्ट टॉयनबी (Arnold Toynbee) ने *Study of History* के प्रथम मंड में विश्व का ज्ञान महान मस्तिष्क—नाल सुपरटेस तथा सिंधु घाटी की मस्तिष्क का जगती जावन से एकाएक ही विकसित रूप माना है।

यद्यपि यह ज्ञान मस्तिष्क प्रस्फुटित हुई इस बातों कुछ दुष्पर-सा है परन्तु सम्भवतः वे एक विशिष्ट परिस्थिति में जिसमें जगती व्यक्ति का अनुभव प्रयास करने का प्रयोग प्राप्त हुई, एक चुनौती को स्वीकार करने के रूप में प्रस्तुत हुए थे। मस्तिष्क के उत्थान के पूर्व सहारा अरब तथा ईरान के ऊपरी भागों में मानव जाति हुए पास के मदान थे। धार-धार मूरतना एवं चित्राता न उत्तर के अरब प्रयोग किया। इस प्रकार धार-धार और अन्तर्गत रूप से इन भागों में वातावरण परिवर्तित होता रहा। इस प्रकार बरब जाति का सम्मुख एक नई समस्या उपस्थित हुई। कुछ भागों ने तो अपना आर्थिक समयानुसार बर्तन रखा। अन्य भागों ने नाल के दल्ले के जगती तथा इनका भूमि में प्रवेश किया और उन्हें खनन योग्य बनाया तथा मिश्रण मस्तिष्क का



विकसित किया। एसी ही परिस्थितियाँ के मध्य टिगरिस-यूफ्रेटिस तथा सिन्धु सभ्यता का विकास हुआ था।

कुछ विद्वानों ने सिन्धु घाटी की सभ्यता का स्रोत बलूचिस्तान की विभिन्न सभ्यताओं से माना है। ह्वीनर ने उचित ही लिखा है—

The Harappans were not an oasis in a desert the adjacent hills were teeming with variegated life which must have encroached readily upon the riverine civilization had this lacked effective integration

परन्तु वास्तव में सिन्धु घाटी के लोग ने सभ्यता का मुख्य भाग पश्चिमी एशिया की सभ्यता से लिया था। तदनन्तर उस आधार पर उन्होंने एक पूर्णतया स्थानात्मक सभ्यता का आधार शिला रखा—

It is legitimate to affirm that the idea of civilization came to the land of the Indus from the land of the Twin Rivers whilst reorganizing that the essential self sufficiency of each of the two civilizations induced a strongly localized and specialized cultural expression of that idea in each region (*Indus Civilization*)

सिन्धु सभ्यता की प्रसार सीमा का बोध भी हम प्राप्त भग्नावशेषों से जान सकते हैं। यह बतलाया जा चुका है कि माहेंजोदड़ो हड़प्पा चहलू, सुकराहो, चम्भाना, करची कंठा (बलूचिस्तान) आदि स्थानों में इस सभ्यता के भग्नावशेष प्राप्त हुए हैं। अतः यहाँ तक इसका प्रसार माना जान सकता है कि कोई आपत्ति नहीं। इस प्रकार लगभग सम्पूर्ण सिन्धु तथा बलूचिस्तान में यह सभ्यता प्रसरित थी। इस सभ्यता का प्रसार किन कारणों वश सम्पूर्ण भारत में या कम से कम उत्तर भारत में नहीं हुआ सबको इसका स्पष्ट ज्ञान हम नहीं प्राप्त है। पर धातु एवं खनिज पदार्थ सम्बन्धी प्रकरण में यह बताया गया है कि माहेंजोदड़ो से भोजपुर तक प्राप्त हुआ है वह मसूर से ही प्राप्त हुआ होगा। इसी प्रकार अमजद पत्थर भी नीलगिरि पर्वत से ही मिल सकता होगा। तब क्या यहाँ के निवासियों ने इन स्थानों तक अपनी सभ्यता का प्रसार नहीं किया होगा? या क्या यहाँ कोई पथक सभ्यता रहा? डा० दीक्षित ने तो इस सभ्यता का प्रसार राजपुताना, काश्मिर, पंजाब तथा उत्तर-पश्चिम साम्राज्य तक बतलाया है। डा० गार्डन चाइल्ड तथा हाल मन्टगोमरी ने इसका विकास-क्षेत्र बहुत दूर तक बतलाया है और वे इस सभ्यता को ही सुमेरियन सभ्यता की जन्मदात्री या उत्पत्ति बतलाते हैं। हम इस सभ्यता की प्राचीनता का भी बोध ले सकते हैं। मरुजाना माण्डव का मत है कि सिन्धु-सभ्यता यारूप तथा एशिया दक्षिण महाद्वीपों में फैला था और इसमें दक्षिण भारत की घाटी हड़प्पा की घाटी और सिन्धु की घाटी सम्मिलित थी। परन्तु हम विषय में जब तक काँ अज्ञात माध्य उपलब्ध नहीं हुआ जाता तब तक कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

यह विश्वास करना अनभव है कि सभ्यता के नगरीय निर्माणों का भारत में किनासा भाग से सम्भव नहीं रहने पर भी उन्होंने उनका प्रमाण-स्वरूप कुछ अवशेष ही छोड़े हैं। परन्तु आधुनिक अवधारणा नये सिद्ध कर ली है। हड़प्पा तथा माहेंजोदड़ो की सभ्यता मौर्यकाल तथा काश्मिर-काल तक फैला हुआ था। उत्तर में निर्माण

पर्वत की श्रृणियां स लेकर दक्षिण में ताप्ती की घाटी में भगतराव तक पूव में मरठ जिले के आलमगौर स लेकर पश्चिम में सुतकगेनर तक इस सभ्यता के चिह्न हम प्राप्त हुए हैं। लगभग ६० स्थान स हम हड़प्पा सभ्यता के चिह्न मिले हैं। इस प्रकार प्राफ्मर पिंगर न हड़प्पा एवं माहिनजादहा एक महान साम्राज्य का ही राजधानिया का सना दी है—

We are entitled to regard the Harappa Kingdom as governed from two capital cities 300 miles apart but linked by a continuous river thoroughfare

मूल और प्रसार की भांति ही सिंधु सभ्यता के काल का प्रश्न भी अत्यन्त जटिल है। प्राप्त सभ्यता की मनावगणना के आधार पर कुछ विद्वानों ने इस सभ्यता का काल इस प्रकार अनुमानित किया कि इन स्तरों में तान युग पचास का काल है तान मध्य कालान है तथा एक प्राचीन है। और यदि प्रत्येक स्तर का समय ५०० वर्ष का माना जाय तो इस हिसाब में इस सभ्यता का प्रसार-काल २५०० से २००० से १६०० तक हो सकता है। इसका अतिरिक्त कुछ ऐसा समान मुहूर्त सिंधु तथा एलन और ममापाटमिया में प्राप्त हुए हैं जिनके आधार पर भी इस सभ्यता का २६०० से १६०० तक का बह सकता है। यद्यपि सिंधु का ये समान मुहूर्त पचास का काल है। मुहुरा के अतिरिक्त वास्तु-कला सम्बन्धी यहाँ कुछ अन्य मनावगणना भी प्राप्त हुए हैं जो ममापाटमिया के समान हैं। अतः इस सभ्यता का यदि ममापाटमिया से प्राचीन नही तो ममापाटमिया अवश्य मान सकते हैं। वगदा के निकट प्राचीन एरान में उत्खनन द्वारा प्राप्त अन्य वास्तुओं के साथ जा २५०० से १६०० की प्रमाणित हो चुका है कुछ भारतीय वास्तुओं भी प्राप्त हुई हैं जिसमें यह स्पष्टता प्राप्त होता है कि सिंधु सभ्यता इसमें पूर्व का है। इसी प्रकार बब्रानिया के अक्षय तथा माहिनजादहा के अक्षय में भी कुछ नये प्रमाण मिले हैं और बूना महान्य के यह विश्वास है कि मुमरिया तथा सिंधु नदी की घाटी के निवासों एक वास्तु-कला या इसमें किना निकटवर्ती प्रमाणों में निवास कर रहे होंगे किन्ती एक ही जाति के मतलब है। यदि यह सम्भव है तो यह माना जा सकता है कि सिंधु घाटी की सभ्यता बब्रानियन सभ्यता से प्राचीन है क्योंकि मुमरियन सभ्यता के पश्चात् ही बब्रानियन सभ्यता का विकास हुआ।

प्राफ्मर गाविदचंद्र पाण्डे ने सिंधु घाटी का समय निश्चित करत हुए लिखा है—

If we regard 2300 B C as the mean date in the career of the Indus civilization which was then in full flower we get the period 2800 1800 B C as the possible date of this civilization. This will harmonize with the evidence of archaeology, vedic philology, ancient Indian history and Near Eastern history. (C. C. Pandey)

संक्षिप्त सामान्य त्नीलर महान्य का ही कालनिर्धारण ठीक माना जाता है। उनका अनुमान—

The period 2000 1000 B C has been estimated as likely to have comprised the material available without prejudice to such further evidence as may eventually be forthcoming from the un

plumbed depths of Mohenjo daro or Chanlu daro (Indus Civilization)

गाइड चाइल्ड का बयान है ईसा के चार हजार वर्ष पूर्व की अबीनोस (Abv d ) उर (Ur) या मोहेनजोदरो का भौतिक सस्कृति पेरिक्लाज के काल एयेम अबेबा किसी मध्यकालीन नगर की सम्यता से तुलना कर सकती है। भवन निर्माण कला वस्तु निर्माण-कला या मुहर निर्माण-कला और मिट्टी के बतना की चमक तथा सुन्दरता को देखकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ईसा से तीन हजार वर्ष पूर्व के प्रारम्भ में सिन्धु सम्यता अबीनोनियन सम्यता से काफी आगे थी। किन्तु भारतीय मस्कृति का वह पञ्चातकालान स्वरूप था। इसने इसके पूर्व और प्राचीन समय में भी पथ प्रदर्शन किया होगा। वे अनुसंधान और आविष्कार जो पूर्व सुमेरीय मस्कृति को अभिहित करते हैं अबानोनिया की भूमि पर देशीय विकास थे परन्तु उनकी प्रेरणा भारत से प्राप्त हुई थी।<sup>1</sup>

गर जान माशाल भी इस सम्यता की प्राचीनता तथा इसकी महानता का उल्लेख करत हुए लिखत है मानजोदरो तथा हम्पादोना स्थानों में एक बात जो स्पष्टतया प्रकट होती है और जिसका सम्बन्ध में कोई भ्रम नहीं हो सकता वह यह है कि इन दोनों स्थानों में जो सम्यता हमारे सम्मुख आई है वह कोई प्रारम्भिक सम्यता नहीं है अपितु ऐसी है जो समीयगो की प्राचीन हो चुकी थी भारत भूमि पर सुन्दर हो चुकी थी और उसका पीछे मानव की शताब्दियों की कृतियाँ हैं। इस प्रकार अब से यह स्वीकार करना पड़ेगा कि ईरान मेसोपोटामिया और मिस्र की भाँति भारतवर्ष उन सबसे प्रमुख देशों में से है जहाँ सम्यता का जन्म और विकास हुआ था।

उपरोक्त विवरणों एवं उद्धरणों से यह स्पष्टतया परिनिहित होता है कि सिन्धु घाटी की सम्यता काफी प्राचीन सम्यता थी और विश्व की अन्य प्राचीन सम्यताओं में किन्हीं प्रकार कम नहीं बरत कुछ बातों में उनसे अधिक उन्नतिशील थी।

सिन्धु घाटी के निर्माण एवं आय

सिन्धु घाटी की मस्कृति तथा आय सम्यता में परम्परानुगत विवेचन करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि सिन्धु घाटी के निर्माण एवं मस्कृति में पथक मस्कृत कलापक थे। क्रमशः हम पता चलता है कि इन्डो-आय समाज अशत पशुओं का चरान वाला तथा अशत खेती करने वाला समाज था जिनकी नगर की सम्यता का ज्ञान भी नहीं था या जिन्होंने नगरों की जटिल आर्थिक व्यवस्था का परिचय नहीं था। उनका घर उनकी की बलियों द्वारा बनाया जाता था। मत्तैन्जालिया एवं हम्पा में हम सधन जनमय्या वान नगरों का अस्तित्व पाते हैं। यहाँ नगरों का मरान पक्का हुई ईटा का बनाया जाता था एवं उनमें स्वाम्य के नियम प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था थी। भवाना में म्नागागरों का पता तथा आय जीवन की आवश्यक वस्तुएँ म्ना थी। इन्डो-आय समाज का जिन घातुओं का ज्ञान था उनमें सुवर्ण या ताम्र सम्मिलित थे बकि यजुर्वेद एवं अथर्ववेद का रचना का समय तक रजत एवं लौह का भी प्रयोग होने लगता है। सिन्धु घाटी का योग में हम ज्ञान का तुलना में चाना का अधिक प्रयोग करने में यही नहीं था परन्तु बतन पाषाणों का भी बनाया जात था जो कि उत्तर पाषाण काल की दत्त है। ताम्र का दन बतन भी हम इस मस्कृति के अन्तर्गत पाते हैं। साँ का कार्य भी अवश्य हमें मिलता है। आन्नामक हथियारों का लिए बकि आय का धन्य माने

कुरहाडी एव खजर रखते थे—और सुरक्षा के लिए वे कवच तथा लौह टाप रखते थे। सिंधु घाटी के लाग भीतीर घनपू माला कुल्हाडी रखते थे यही नहा व मस (mace) का भी प्रयोग करत थे। उनकी सुरक्षा के हथियारों में हम किसी भी हथियार का अवगण नहीं पाते। वदिक आय मासमक्षा राष्ट्र के मदस्य थे लेकिन मछली के प्रति व घणा रखत थे कयाकि उनका उल्लेख ऋग्वेद में कही भी नहीं है। लेकिन सिंधुवासी मछला तथा अय जन में रहने वाले जीवा का मक्षण करत थे। आयों के जीवन में घा के महत्वपूर्ण स्थान था लेकिन सिंधु घाटी के लाग घों से परिवर्तित नहा थ। वदिक सम्यता के योग गाय का अत्यधिक आदर करते थे परंतु सिंधुवासी बैल का विशेष स्थान प्रदान किए हुए थे। वदिक धर्म सामाय रूप से मूर्ति पूजा विराधी था। सिंधुवासी मृत्यु रूप में मूर्तिपूजक थे। वदिक धर्म में स्त्री देवता का सद्व गण स्थान रहता था लेकिन सिंधुवासियों में स्त्री देवताओं का स्थान पुरुष देवताओं के समकक्ष ही था। सिंधु के लाग की आराध्य स्त्री माना देवी थी। यहाँ नहा शिव की उपासना में भी वे नाग मन वद्वित कर सकत थे। ऋग्वेद में अग्नि की सर्वप्रमुख देवता माना गया है और अग्निबुण्ड प्रत्येक घर में होना एक आवश्यक तत्व माना गया है। माहन जोरों के निवासियों के घरों में हम नाग अग्नि बुण्ड के दशन तहाँ पाते हैं इडा जाय नाग लिंग पूजा से घणा करत थे और इसीलिए उन्होंने अपने विरात्रियों का शिदन देवा कहा है कयाकि वत्रिण के पूजक थे। यह विराधी सिंधुघाटी के नाग ही हो सकत हैं।

आय आक्रामक के रूप में—पुरातत्व साधना तथा साहित्यिक साधना से लगभग अब यह सिद्ध हो चका है कि आय भारत में आक्रामक के रूप में उपस्थित हुए थे। उन्होंने हृष्पायुगीन संस्कृति को नष्ट करके भारतवर्ष में अपनी सम्यता की नींव डाली थी। चतुर्विंशतान में कई स्थानों पर खुदाई करके पर यह पता चका है कि हृष्पा कानीन I base के चारु हम नगरों के जना दिये जान के चिह्न मिलत हैं। बिना गुल महम्मद दगवा जीता जागता प्रमाण है। सिंध एव पजाव के हृष्पा कानीन कदों में भी इसी तरह नहा के दशन हम प्राप्त हात हैं। माहनजाडो में ता हम तलवार में काट गए मनुष्य के श्चि मिले हैं जा यह प्रमाणित करत हैं कि एक घमासान युद्ध में मयन पर जता गया था। हृष्पा में तो हम पूणतया नवीन सम्यता के दशन पाते हैं। इस प्रकार चन्द्रदंडो में भा हृष्पा सम्यता के उपरांत हम एकदम नवीन सम्यता के अवगण मिले हैं। हृष्पा पचात की सम्यताओं का हम तीन भागा में रूप मयने हैं—पूकर सम्यता मिमिट्री एच० (Cemetery H) सम्यता एव गिहना सम्यता। सगर सम्यता इन सम्यताओं के भी चारु का है।

इन विभिन्न सम्यताओं के निर्माता या आक्रमणकारों का नाम पयाप्त मत मद है परंतु गाडन तथा वत्स न आयों को इन सम्यताओं के निर्माता माना है। इस प्रकार जाय आक्रमणकारियों के रूप में हमारे सम्मुख इन तथ्यों में जाते हैं।

ऋग्वेद में भा हृष्पा एव माहनजाडो का सम्यता का परोक्ष रूप में उल्लेख मिलता है। इन नागों के लिए ऋग्वेद में कई शत्रु आण हैं जग नाम हस्यु या असुर। उनका नापा के लिए मूधवाक वदिक कमवाण्डा के विराय के कारण उन्हें जकमन, अयदत एव शिदन देव कहा गया है। इस प्रकार जनाय सम्यता के यह गुण हम हृष्पा कानीन सम्यता में अनुमानित हात हैं।

हृष्पा के नगरों एव दुर्गों का भा निष्ण ऋग्वेद में मिलता है जम पथी (विष्णुत) उर्वी (चोडा), गामता एव १०० स्तम्भा वाला (शनभुजी) अममया

(Ismaniyā) अर्थात् पाषाण का बना हुआ एव शारदी (बान्ग) से सुरक्षित रखने वाला कहा है। इसी प्रकार अनाय सम्यता को १०० नगरा वाली सम्यता कहा गया है। इद्र को पुरदर' (नगरो को विध्वंस करने वाल) की सजा दी गई। यह सब वपन हडप्पा एव माहेनजोदो के लिए प्रणतया उपयुक्त नगते हैं। जतएव हम यदि आयो को इस सम्यता को ध्वंस करने वाल का नाम दें तो काई अनुचित न हागा।

### Allahabad University

1 Discuss the salient features of Harappan culture with special reference to town planning sanitation and craft (1960)

2 Discuss the archaeological evidence for India's contacts with western Asia in the 3rd and 2nd millennium B C (1959)

3 Discuss the main features of Harappan religion and its influence on later Indian religion (1959)

4 Discuss the archaeological evidence of India's contacts with western Asia in the 3rd and 2nd millennium B C (1958)

5 Discuss the salient features of Harappan culture with special reference to town planning sanitation and arts and crafts (1958)

6 Discuss the Chronology of Harappan culture (1957)

7 What light do the excavated antiquities throw on the religion of the Harappans? Discuss the influence on later Indian religion (1957)

8 Discuss the archaeological evidence of India's contacts with West Asia in 3rd and 2nd millennium B C (1956)

9 Discuss the Chronology of the Harappans (1955)

10 The Harappan civilization while largely self-sufficient and essentially Indian in its origin nevertheless did have certain intermittent outside contacts. Flucidate the indigenous nature of the Harappan civilisation and describe its foreign contacts (1953)

### अगरा यूनिवर्सिटी

१ मोहनजोदडो की खुदाई से प्राप्त सामग्रियों के आधार पर सिन्धु घाटी की सम्यता का सविस्तार उल्लेख कीजिए। (१९५४)

२ सिन्धु घाटी की सम्यता विषयक प्राइम आर्चि-इविड सिद्धांत क वपन और विपन में अपने तर्कों का सभिप्त विवरण दीजिए। (१९५०)

### बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

१ मोहनजोदडो की खुदाई से प्राप्त सामग्रों के आधार पर सिन्धु घाटी की सम्यता की विवेचना कीजिए। (१९५०)

## ४ | आर्य जाति

मानव अपने पशुवत् जीवन को काफी दिना तक ढाता रहा। उसका चरित्र उस प्रकृतियाँ तक जब डे रहीं पर विचाम एव प्रगति का पुनरा मानव अधिक िना तक यह भार सहन नहीं कर सकता था। जत ईसा स ७-८ हजार वष पूर्व (सम्भव है इसका मा कुठ पहले ?) उसने अपने को पशुआ से भिन्न करके सम्यता की आर पहला और ठोस कदम उठाया। यहाँ सम्यता का अय आज क यापक रूप म निया गया है जिससे बहुमुखी उन्नति व्यजित होती है। अपने इस प्रयास क लिये उसे उपयुक्त भूमि एव उपयुक्त वातावरण ढूढना पडा। वह निरन्तर एक स्थान म दूसर स्थान का भटवता रहा और अन्त म वह विश्व के अनेक भागा मे सम्यता का बीजारोपण करन म सफल हुआ। मानव की यह सम्यता प्रागतिहासिक कालीन सम्यता से बहुत आगे बनी थी और चान्च म इसे ही सम्यता का सना दी जा सकती है। इहाँ सम्यता निर्माताआ म आयों का नाम विशेष उल्लेखनीय है। भारत की आदि सम्यता (ऐतिहासिक - 17 का सम्यता) का निर्माण भी इही आयों ने किया था। विश्व क कुछ दूसरे भागा म मा इही आयों के वशज न सम्यता का प्रसार किया। इतना महत्वपूर्ण जाति के मूल क विषय म हमारा ऐतिहासिक ज्ञान अनिश्चित एव अमूलक रहना इतिहास का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है। आयों के मूल के विषय म इतिहासकार आज तक एक मत नहीं हो सक हैं। इतिहासकार स्मिय ने आयों क आदि दश के विचका का जिनता का अनुमान करत हुए लिखा है—

*Discussion concerning the original seat or home of Aryans is omitted purposely because no hypothesis on the subject seems to be established*

अब हम नीचे तत्सम्बन्धी समस्या मतमतान्तर का उल्लेख करत हुए उनका समीक्षा करेंगे।

आय भारत क आदि निवासी नहीं थ इसका हनका मकन हम स्वय आयों क आदि एव सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक ग्रन्थ ऋग्वेद से मिलना है। अन अब हम इनका मूल कहा अयत्र ढूढना होगा। आयों का मूल भूमि के विषय म अत्र तक निम्नलिखित धारणाएँ हैं —

१ मध्य एशिया २ रूस ३ फिनलड ४ बाह्रिमिया (चकोम्पावकिया), ५ उत्तरा ध्रुव की निवटम्य भूमि।

आयों क आदि दश क विषय म गोज करनेवाने अन्वेषका का अभाव नहा और न तत्सम्बन्धी सिद्धान्त का ही अभाव है। मकगमूलर, वापे, गाइजर पा० गाइन्स वानगगाधर निलक आदि अनेक प्रकाण्ड विद्वानों एव महारोषिया न इस धार म अन्वेषण किया है और हम प्रकार अपने पाण्डित्य द्वारा आयों क इस अज्ञान आदि निवारसम्मान का खान का प्रयास किया। अपने अन्वेषण का आधार इन विद्वाना न भाग विद्वाना

जाति विषयक विशेषताएँ तथा पुरातात्विक उपकरण गवला है।<sup>१</sup> आर्यों के आदि निवास स्थान का जो वर्गीकरण किया गया है उससे यह बात होता है कि कुछ विद्वान् आर्यों का आदि देश योरप में ही बताते हैं कुछ लोग मध्य एशिया की वह स्थान धारित करते हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार वह भूमि आस्ट्रिक प्रदेश में कहीं थी और कुछ इतिहासकार भारत का ही आर्यों की मूल भूमि प्रमाणित करते हैं। इन समस्त मतों पर पथक-पथक प्रकाश डाला जायगा।

आदि देश योरप—वे विद्वान् जो आर्यों का मूल योरप के ही किसी भाग में मानते हैं अपने मत का प्रचार १८वीं शताब्दी तक की धूम से करते रहे और उनका मत धीरे धीरे धारण भी प्रकृत गया। इस मत का प्रथम प्रचारक हम फ्लोरेंस के एक सौदागर फिलिप्पा स सेटो को कह सकते हैं। यह सौदागर पाँच वर्ष तक गोआ में निवास कर चुका था और भारत की संस्कृत भाषा तथा योरप के अनेक भाषाओं का इस जान था। इसने यह धारित किया कि भारत की संस्कृत भाषा तथा योरप की अन्य भाषाओं में कुछ साम्य है। यद्यपि भाषा सम्बन्धी साम्य की ओर ध्यान आकृष्ट करा देना मात्र ही हम उक्त सौदागर की इस मत का प्रचारक नहीं कह सकते पर आगे चलकर हम दायत हैं कि इस मत के समस्त मथक भाषा विद्वान् का ही सहारा लेते हैं और उसी के आधार पर अपने मत की पुष्टि करते हैं। उक्त सौदागर के विचारों का मूल धन सर्वप्रथम बगान के प्रधान यायाधीश सर विलियम जोस ने किया। इन्होंने १७८६ ई० में एशियाटिक सोसाइटी आफ बगान के सामने अपना एक लेख पढ़ा जिसमें यह बताया कि आर्यों की विभिन्न शाखाओं में बहुत से शब्द समान हैं और उनमें जो अन्तर पता है वह समय की दूरी के कारण। इन्होंने पितृ मातृ आदि शब्दों के साम्य को योरप की अन्य भाषाओं में दिखानाया। निश्चय ही भाषा का यह साम्य हम उक्त मत को भारी समर्थन के लिए एक बार बाध्य करता है। हम दायते हैं कि संस्कृत पत्र पत्रिका में पत्र 'ग्राम' में पत्र 'जद' में पत्र 'केल' में आयर गाथिक में पत्र 'तारवारियन' में पत्र तथा अंग्रेजी में 'पादर' आदि ऐसे शब्द हैं जो बिनकुन भिन्न जस्त हैं। इसी प्रकार संस्कृत द्वी पत्रिका हुआ आइरिश दो गाथिक स्वप पत्रिका नियम दु तथा अंग्रेजी टू एक दूसरे से कितने निकट हैं। भाषा सम्बन्ध यह साम्य निश्चय ही मन्त्रवपुष सिद्ध हुआ और सर विलियम जोस के विचारों का विद्वान् न स्वागत किया पर यह साम्य अधिक से अधिक केवल यह सिद्ध करता है कि उपरोक्त भाषा भाषी कभी कभी एक स्थान पर रह जायें। इसमें अधिक इस साम्य से और कुछ जानना पता। इसमें भी प्रतिवाद का स्थान है। कुछ आचार्यों का मत है कि भाषा का साम्य केवल इसलिए नहीं हो सकता कि उमक भाषा भाषा एक ही जाति के ही किया एक ही स्थान पर दो विभिन्न जातियाँ रह सकती हैं और उनमें भाषा-सम्बन्धी साम्य हो सकता है। शक्तिशाली भाषा का प्रभाव भाषा में क्षत्र में काम करता है और किसी स्थान का शक्तिशाली भाषा की छाप मुद्रित भाषा पर पड़ता है यदि उन दो विभिन्न स्थानों में काल सम्पर्क हो ता। भाषा का आधार मानकर जानाया समझाया मुन्यकार आर्यों के मन के प्रश्न की मुल्यवान का जो रानि मर विनियम जाम्य न मन १७८६ में चलाई वह १९वीं शताब्दी तक चलत जात पर पता। भाषा-सम्बन्धी साम्य के आधार पर योरप को आर्यों का आदि देश मानने वाला का यह मत है कि भारतीय

<sup>१</sup> आर्यों के मूल के विषय अध्ययन के लिए देखिये—*Cambridge History of India* आइजक टेलर गान्धर्वद्वारा *The Origin of the Aryans, The Aryans*

(इंडो-यूरोपियन) भाषाएँ काफी अधिक मन्था में योरप के सीमित क्षेत्रों में ही पाई जाती हैं। योरप के बाहर या बहुत दूर इनका प्रयोग नाममात्र का ही है और केवल गण्य रूप में वहाँ इनके महावरे विवरण में हैं। अतः जब कोई भाषा साम्य का प्रान्त (यूरोपियन भाषाओं के साम्य का प्रान्त) आता है तो यह स्पष्ट है कि समभाषा भाषी लोग कभी योरप के ही आदि निवास रहेंगे। यूरोपीय भाषाओं के भौगोलिक वितरण के आधार पर ही उनका यह मत अवलम्बित है। योरप में निवास का प्रान्त का और घेरते हुए ये विद्वान अपना तर्क प्रकार भी उपस्थित करते हैं कि भाषा साम्य के अतिरिक्त दूसरा महत्वपूर्ण बात यह है कि भारतीय (इंडो-यूरोपियन) भाषाओं में जितना भी इस समय जाति है उनमें से कोई भी अब अपने मूल रूप में नहीं है पर लिखितानियन भाषा आज भी अपने का मूल महावरा के निकट रक्खे हुए है। पन्ने तक द्वारा तो यूरोपीय विद्वान्त के समयका न योरप को आर्यों का मूल निद्व कर दिया तथा दूसरेतक द्वारा उन विद्वान्त द्वारा मूल भाषा के एक भाग (निद्वानियन भाषा भाषा भाग) को सम्पूर्ण आर्यों का मूल भूमि बता दी।

योरप के विभिन्न भागों का आर्यों का मूल बतानेवाला के तर्कों का विद्वान्त ध्यान नाच दिया जायगा।

हंगरी का मदान दक्षिणा में तथा जर्मनी आदि का यह विवादास्पद भूमि विद्वानों द्वारा घोषित किया गया है। हंगरी के मदान के समर्थक डा० पी० गाइलम हैं। इन्होंने अपना प्रसिद्ध पुस्तक *Cambridge Its story of India* में लिखा है —

उत्तरी भाषा में हम जानेंगे कि किन किन पशुओं एवं वृक्षा का उन्हें जान था। उन भाषाओं के साम्य से जिन्हें वे जानते थे हम ऐसा अनुमान करते हैं कि वे प्रायः पूर्णतः समय तक एक स्थान पर एक साथ रहेंगे जिसमें वे पीड़िया तक वे अपने विशेष गुणों में विचार करते रहेंगे। यह क्षत्र गिरि चट्टानों अथवा जंगल द्वारा जय स्थानों से पथक कर दिया गया होगा। इन भाषाओं के अध्ययन से हम यह आसानी से जानेंगे कि यह लोग किसो द्वीप पर रहते रहेंगे। यह भी स्पष्ट है कि समुद्र के लिए उन्हें किसी शक्ति का ध्यान था। अतः यह अस्पष्ट नहीं कि वह स्थान समुद्र में परिचित था। इनकी भाषाओं के अध्ययन में यह बात ही जाना है कि इन्होंने किन किन वृक्षा का जान था। ये वृक्ष भारतीय वनस्पति में उत्पन्न होते हैं। अतः आर्यों का यदि दक्षिण भारतीय वनस्पति में रहना होता। वे पवन मानसों से भाषित रहेंगे। यह निष्पत्ति नहीं बल्कि जानना है कि किन पशुओं का उन्हें जान था। यह बहुत सम्भव है कि आय प्रायः म्यामा रूप से एक स्थान पर निवास करने थे। जिन पशुओं का उन्हें जान था वे वन प्रायः घास कुत्ता मुँजर हिरण इत्यादि थे। गधे खच्चर तथा हाथी में वे अपरिचित थे। जंगलों में पशुओं में उन्हें भैंसिया तथा भालू का जान था किन्तु बाघ अथवा सिंह में वे अपरिचित थे। बतौर तथा गिद्ध को भी वे जानते थे। ये प्रायः म्यामा विपत्तियाँ महें तथा जंगल का प्रयोग जानते थे। योरप में काँसा तथा अन्य प्रयोग हैं जहाँ वे मारा वाने प्रयोग में थे। वे एक क्षेत्र में थे। इसमें पूर्व में कार्पियन पर्वत-माला है। दक्षिण में बाबन पश्चिम में आस्ट्रियन आल्प्स तथा बोस्निया और उत्तर में एरज वन तथा अन्य पर्वतमालाएँ हैं जो कार्पियन में मिल जाती हैं। यह क्षेत्र बड़ा उपजाऊ है तथा हंगरी के मदान में म्यामाओं के पीले पाये जाते हैं। यहाँ पास के मदान भी हैं जहाँ पाये जाने जा सकते हैं। पर्वत का उपत्यका



म भी क लिए काफी सुविधाएँ हैं। सुअर भी यहाँ मिलने हैं। इसी प्रकार प्राचीन  
आर्यों के ज्ञात वक्ष भी यहाँ पाये जाते हैं अतः यहाँ क्षत्रियों का आदि देश रहा होगा।

उपरोक्त विवरण से यह ज्ञात हो जाता है कि गाइल्स महात्त्य न आर्यों की  
परिचित वनस्पति एवं जीव जगत आदि का आधार पर आर्यों का मूल ढढन का प्रयास  
किया है। उन्होंने उपरोक्त परिचित वनस्पति एवं जीव जगत को भारत पामीर की पठारी  
भूमि यारुप का उत्तरी भाग रूस तथा आर्कटिक प्रदेश में भी पाया जाना माना है पर  
प्रधानता उन्होंने ह्गरी का ही दी है जसा कि उनके उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है।

नर्हरिंग नामक एक अय विद्वान ने दक्षिणी रूस को आर्यों का आदि देश बतलाया  
है। त्रियोल्जे (यूकराइन) में प्राप्त लगभग तीन हजार ई० पू० के पात्रों का आधार पर  
ही उक्त महोत्त्य ने अपना मत निर्धारित किया है। पीकोर्नी महात्त्य ने इस मत का  
जोरदार समर्थन करते हुए वजर तथा विश्चुन नदियाँ के मध्य स्थित मदान तथा उसके  
वाहुर र्वेन रूस तक आर्यों का देश घापित किया है। रूस के दक्षिणी भाग स्टप्स का  
मत्तान निम्चय ही नितान्त उपजाऊ है और साथ ही यह शाताण कटिबन्ध में स्थित  
भी है पर डा० पी० गाइल्स ने अपनी पुस्तक में इस मत का खण्ण किया है और यह  
बताया है कि वे मारी बार्ने (जिनका वणन उनके उद्धरण में किया गया है) यहाँ नहीं  
पाए जाते। अतः आशिक प्रमाण मान से रूस स्थान को आर्यों का आदि देश कहना  
उचित नहीं। इस प्रकार इन सारी वस्तुओं के लिए हम कोई अय स्थान ढढना  
पेगा।

कुट्ट विद्वानों का ऐसा मत है कि आर्यों का आदि देश जमना या जमना प्रदेश में बही  
था। इन विद्वानों में पत्का महोत्त्य का नाम विशेष उल्लेखनाय है। पत्का महोत्त्य ने  
स्विट्जरलैंड का आर्यों का आदि देश निर्दिष्ट किया है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने  
जाति सम्बन्धी विशेषताओं का आधार दिया है। पुरातात्विक साम्या के आधार पर  
पत्का के समयका न आर्यों का आदि देश पश्चिमी बाल्टिक समूह बतलाया है। इन सम-  
र्थकों का कथन है कि पूर्व पाषाण युग समाप्त हो जाने के पश्चात् ज. युग आरम्भ होता है  
उम युग के मन्थ्या की निमित्त अनेकानेक वस्तुएँ यहाँ प्राप्त हुए हैं। किन्तु कवल पूर्व  
पाषाण काल के पश्चान् जिस उत्तर पाषाण काल का आविर्भाव हुआ उसके ध्वगावशपा  
का यहाँ पाया जाना ही यह सिद्ध नहीं कर सकता कि उक्त स्थान ही आर्यों का  
जाति देश है। क्योंकि इस युग के ध्वगावशपा का आधार पर मध्य जमनी का मा  
आर्यों का आदि देश माना गया है। यहाँ जा पात्र प्राप्त हुए हैं उनके ज्यामितिक रखा  
चित्र ठीक इण्डो-यारपीय जान पत हैं। अतः यह सम्भव है कि मध्य जमना ही वह  
भूमि है। पर ऊपर का भाँति इस मत का भी खण्ण जानाचका न यह कहकर किया  
है कि इस प्रकार के ज्यामितिक साम्य दक्षिणी रूस पोलण्ड तथा त्रिपाज (यूकराइन)  
में भी प्राप्त हुए हैं पर इससे यह नहीं कहा जा सकता कि ये मार स्थान आर्यों के  
आदि देश हैं। जसा कि ऊपर कहा गया है कि कुट्ट विद्वानों ने जातिगत विशेष-  
ताओं पर अधिक जोर दिया है। रक्तवण एवं मुनहन बाना का आधार पर उन्होंने  
जमना का ही यह स्थान निर्धारित किया है।

उपरोक्त विवरणों में हम जानता है कि यारुप के आर्यों का आदि देश माननेवा-  
ना पात्रों का जातिगत विशेषताओं का आधार पर अपना मत प्रतिपादित करते हैं। आर्यों के  
आदि देश की समस्या सुलभान हुए विद्वानों ने यारुप के दक्षिणी भाग का यह स्थान बतलाया

है। निश्चय ही यहाँ की भूमि उपजाऊ है यह शीनोष्ण कृत्रिम्य में पता है जोर इस सम्बन्ध में उन्होंने यह भी तर्क उपस्थित किया है कि योरोप व दक्षिणी म्यान ही उन स्थानों में निकट हैं जहाँ विभिन्न यारपीय जायों की शाखाएँ प्रशाखाएँ निवाम करती हैं। इतना ही नहीं एशिया की अपथा यारप में आयों की मख्या अधिक है अतः यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि योरोप व दक्षिणा मदान में ही वही आयों का जादि देश है। स्थानान्तरण का सम्भावित सुविधाओं की ओर लक्ष्य करते हुए इस मत के समर्थकों का कथन है कि यहाँ के-व गहन जगन मरभूमि तथा पवनमात्राएँ नन्ही हैं अतः यहाँ में पूर्व की ओर स्थानान्तरण मरन है। अपन मत का पुष्टि में इन्होंने दूसरा प्रमाण यह दिया है कि पयटन प्रायः पश्चिम से पूर्व की ओर हैं पूर्व से पश्चिम की पयटन नहीं हुए हैं। इन अनेक प्रकार के तर्कों द्वारा यारपीय मिद्वान्त के समग्रका न जायों का आदि देश योरोप मिद्व करने का प्रयास किया है।

आदि देश मध्य एशिया—यह मत भी काफी मायना पा चुका है। केवल धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर ही मानते अपना मत प्रतिपादित किया है। प्रा० मक्समूनर इस मत के प्रचारक हैं। अपन मत के समर्थन में इन विद्वानों ने यह तर्क प्रस्तुत किया है कि आय जाति की सम्यता एवं मस्कृति का बात्र हम वन तथा अवेस्ता से जाता है। वन भारतीय (भारतीय आयों) का तथा अवेस्ता ईरानिया का आदि धार्मिक ग्रन्थ है। ईरान तथा भारत के समीप ही कई भू भाग आयों का आदि देश रहा होगा क्योंकि इन दोनों ग्रन्थों में पर्याप्त साम्य है। एन लखक का ता यहाँ तक कथन है केवल एक आध शब्द या वाक्य लच्छ ही नहीं वरन एक सम्पूर्ण पद्यांश का बिना शर्तवरी परिवर्तित किया हा भारतीय से ईराना भाषा में लाया जा सकता है। इतना निकट साम्य यह निश्चयपूर्वक मिद्व करता है कि ये दो विभिन्न देश के निवासी कभी बहुत दिना तक एक ही स्थान पर रहे होंगे और तत्र कालान्तर में कुछ कारणवश स्थानान्तरण कर गये होंगे। भारत तथा ईरान के बीच ही वही इनका आदि देश बनाकर इन विद्वानों ने जायों के स्थानान्तरण के विषय में यह कहा है कि यहाँ से आयों के तीन जटये चने। एक जल्दा भारत की दूसरा ईरान का तथा तामरा यारप का चना। डा० पी० गाइन्स ने जिस प्रकार उनका ग्रन्थों में वर्णित वस्तुओं का प्राप्ति-स्थान के आधार पर ही आयों का मूल ढहने का प्रयास किया है उसी प्रकार इन विद्वानों ने भी आयों की परिचित वस्तुओं तथा उनका ग्रन्थों के आधार पर अनुमानित जनवापु से युक्त भूमि का आयों का मूल मिद्व करने का प्रयास किया है। उन्हें मध्य एशिया ही वही स्थान प्रतात जाता है जहाँ ये मारा वस्तुएँ हैं। उनका तर्क इस प्रकार है—वृषि-कर्म तथा पशु-पानन आयों का प्रमुख व्यवसाय था। इन स्थानों कायों के लिए लम्बे चीन्हे मराना का आवश्यकता है। अनेक वर्ष का गणना आय हिम से करत थे। इसका अर्थ यह है कि ये किसी शान प्रधान प्रशासक मर रहे थे। किन्तु बाद में वही आय वर्ष की गणना शरत में करन गये जिसमें यह परिलक्षित होता है कि ये लाम दक्षिण का आर बढ़ गये जहाँ जपसाहन कर्म टडक पडता है। नाम का प्रयाग व जानने यह इसका अर्थ है कि यह भाग शाना तथा नदियाँ में युक्त रहा होगा। वे घाटे गभीर परिचित थे। उनका प्रयाग व मरवारी म करत थे। पीपन के पत्र में व परिचित थे किन्तु आम तथा वरगण में व अपरिचित थे। इन मारी वस्तुओं का प्राप्ति मध्य एशिया में ही सम्भव है। अतः यहाँ स्थान जायों का आदि देश रहा होगा। यहाँ में स्थानान्तरण

१ मिलाइये वेद तत एव दध अगुर त चित मेदिष्ट वन्म इन्द्र वाय मित्र  
अवेस्ता तत एव अहुर त चित मजद वरिम इन्द्र वायु मित्र

करके शक इणादि जातियां भी भारत आई थी। इतना ही नहीं इन विद्वानों ने यह भी सिद्ध करने का प्रयास किया है कि यहाँ से भारत ईरान तथा यारपू को जाना सरल है।

पामीर प्रदेश या रूसी तुकिस्तान को आर्यों का जादि देश माननेवालों का यह कथन है कि लघु एशिया में बोआकोई म कुछ सचि पत्रा कं अभिलख प्राप्त हुए है। इन अभिलखों में बर्दिक दवताआ—इद्र वरुण मित्र आदि क रूपान्तरित नाम प्राप्त हुए हैं। इन अभिलखा की तिथि १४०० ई पू० मानी जा सकती है और ऐसा अनमान किया जा सकता है कि इस समय इन्डा ईराना लाग लघु एशिया में ही निवास करते थे। पुरा तत्व सांख्य का सहारा इन सम्बन्ध में जयन्त भा लिया गया है। मिस्र में एलअमनी नामक स्थान पर मिट्टी के कुछ पात्र प्राप्त हुए हैं जिन पर राजवशा क नाम उत्कीर्ण हैं। निश्चय ही य नाम इंडो ईरानी है। जिन राजवशा का नाम इन पात्रों से प्राप्त होता है व लगभग १४०० ई० पू० में सीरिया में राज्य करते थे। इस साक्ष्य से भी यह प्रमाणित होता है कि उस समय ईरानी तथा भारतीय जाय एक ही स्थान पर रहते थे। किन्तु यहाँ एक साथ निवास करने के पूर्व भी ता व कही अयत्न रह चक हाग क्याकि यदि व यही क मून निवासी अनादि कान सहोते तो १४०० ई० पू० में ही रूपान्तरित शब्दों का प्रयुक्त न उठता। उनमें किसी प्रकार क रूपान्तर की सम्भावना न थी। निश्चय ही इसमें यह बात होना है कि य लोग किसी दूसरे स्थान से यहाँ आय और यह साम्य कानान्तर में उपस्थित हुआ। हट महोदय के मतानुसार इंडो-यूरोपीय कबीला ही स्थानान्तरण करके एशिया में आ गया और अब इण्डो ईराना कहा जाने लगा। य बात कायसेस पवत का पार करके यहाँ पहुँच था। उक्त महाद्वय न आग यह कहा है कि यद्यपि साधारण रूप में एशिया में आने वाले इण्डो-यूरोपीय जाग पश्चिम से पूर्व की ओर ही जाय थे किन्तु पूर्व से पश्चिम एशिया की ओर भी स्थानान्तरण सम्भव था। हट महोदय के उपरोक्त मत का एडवर्ड मेयर नामक विद्वान न खण्डन करत हुए लिखा है कि यह कस सम्भव है कि जिस प्रदेश को यह वतनाया जाता है कि इन्डा ईरानी जाग सर्वप्रथम यहाँ आकर बस था उसका कोई नाम निशान अवश्य न रह क्याकि आरमानिया से जसीरियन काल तक जितने व्यक्तियों के एक स्थाना क नाम प्राप्त हुए हैं उनमें से कोई इण्डो-यूरोपीय नहीं है। इतना ही नहीं मीथिया की पहाडिया क सामान्त प्रदेश में जो लोग बसत थे इनमें कोई भी इण्डो ईरानी नहीं। इससे यही परिनिर्गत जाता है कि मेड जाति वाले स्थानान्तरण करके पूर्व से पश्चिम की ओर बढ़ते गये थे। यह साहब का मत का खण्डन विद्वत्तापूर्ण ढंग से करत हुए एडवर्ड मेयर महोदय न पामीर प्लेटों के पास ही आर्यों का आदि देश बताया है। पामीर पर्वतों के पास पास आर्यों का आदि देश मानने क कुछ प्रमाण इस मत के समर्थक न इस प्रकार लिये हैं—

भारतीय भाषाओं में हिट्टाइट प्राचीनतम भाषा है। लगभग १९०० पू० में क पश्चिम एशिया के रहनेवाले हिट्टा भाषा भाषा थे। भारत का ऐसा विचार है कि हिट्टाइट जाग में लगभग १९५० ई पू० में क पश्चिम एशिया पर अपना अधिकार स्थापित किया था और कराव-कराव का समय इण्डो ईराना जाग में पामीर प्रदेश या रूसी तुकिस्तान में पश्चिम चक था। इससे यह अनमान लगाया जा सकता है कि आर्यों का आदि देश क पश्चिम एशिया तथा मध्य एशिया से भ्रमण दूर पर हा स्थित रखा जाएगा। भारत तथा पश्चिम जाग आर्यों का आदि देश नही हा सकता है। कुछ अन्य विद्वानों ने (जिनमें भारत का नाम विनाय उल्लेखनाय है) भ्रमणानिया तथा अनातोलिया में लगभग ८०० ई पू० के प्राप्त शक वतना क आधार पर यह अनुमान किया है कि हिट्टाइट जाति न जलमध्य मध्य का पार करके एशिया मान्तर में पलायन किया था। किन्तु अब इनके सम्बन्ध

यह प्रश्न रक्का जाता है कि हिट्टाइट जाति ऐतिहासिक युग में मध्य एशिया या पूर्वी एशिया ही मकान निवास कर रही थी ताब इसका उत्तर दन में असमय हो जात है । एसा प्रश्न में हम पुन मरर व मत का ही अनुमादन करना पता है । किन्तु यही हम यह नहा भूल जाना चाहिए कि आर्यों का आदि देश काफी दूर मग था और जाय जाति वृषि काय करनी थी । इसी आशय पर डा० पी० गाइल्स ने मेयर महात्म्य व मत का खण्डन करत ए कहा है कि इतना उजाड-खण्डहर प्रदश, जसा कि पामीर प्रश्न है आर्यों का आदि देश कल्पि नहा हा सकता ।

मध्य एशिया महा कही आर्यों का आदि देश बनानवाना में म ब्रूडेसटीन महात्म्य का मा नाम उल्लेखनाय है । व किसी प्रकार मा आर्यों का आदि दशधारण में मानन का समार नहा । ब्रूडेसटीन महात्म्य ने माया व आचार पर ही अपन मत का पुष्टि में लिखते हुए य कहा कि प्राचीन आय युरान पवत के अक्षिण में किरगाज स्टप में निवास करते थे । प्राग्भिक भारापाय शास्त्रीय व अध्ययन में ऐंग जान पता है कि व पवत व पाम स्टप व मदान में निवास करत थ । तत्पश्चात ब्रूडेसटीन महात्म्य आर्यों व परिचित जाव-जतुओ एव वनस्पतिया की आर हमाग स्थान आवृष्ट करत हुए वतनात है कि आय लाग जगनी सूअर कृषिनाय चार्ल्समहा में या लामडी आदि पशुआ स मनी भाति परिचित थ और ये सार पशु किर्गाज व स्टप में पाये जात हैं । जिन वनस्पतिया का पान आर्यों को था उनमें स एक भी योरप में नही प्राप्त हाना । आ आर्यों का आदि दश युराप नहाकर किर्गाज या स्टप हा ही सकता है । इसी स्टप में इरा रानिया में पूव की ओर स्थानान्तरण किया हागा ।

उपरोक्त विवरण में हम पात होता है कि डा० पी० गाइल्स व ड स्टीन मयर आदि विद्वाना ने एशिया में नही आर्यों का आदि दश ढडन का प्रयास किया है । किन्तु इस सिद्धांत व आनीचरा का यह बयन है कि जब हम यह जानत हैं कि आर्यों के आदि देश में जल का बहुय था और उनका मानू भूमि नितान्त उबरा की ता मध्य एशिया जस अप जानान तथा वम उबरा भूमि का किम प्रकार आर्यों का आदि देश मान सकते हैं । यका नया यदि आर्यों का आदि दश मध्य एशिया में क्या था ता फिर अपनी मानभूमि में हा आय लोग कतनी कम मग्रा में क्या रह गये आर भारताय आर्यों के आदि प्रय व म मय एशिया का आदि सबेन क्या नही है ? मध्य एशिया का आर्यों का आदि देश माननेवाला ने उमनी वाठ तीव प्राकृतिक दशा के अभाव-म बना प्रश्न का यह उत्तर दिया है कि मध्य एशिया का यह भौगोलिक परिवर्तन आर्यों के स्थानान्तरण व पश्चात हुआ ।

आर्यिक प्रदेश आर्यों का आदि देश—व व आचार पर नामाय वाल गगाधर तिनक न उत्तरा ध्रुव का आर्यों का आदि देश बननाया है । उनका कना है कि व म एस उल्लेख जाय है जा उत्तरी ध्रुव का आर्यों का आदि देश मानन में मग्यव दान है । उपाकरणय व म म हम गता बनता है कि आर्यों का यह पान था कि एक नम्बे दिन और एक मग्रा रात का एक वष हाना है तथा बइ दिन का प्रात जान हाना है । व दिन का प्रात जान यह स्पष्ट बननाया है कि वहाँ अधिवासीय तुषारपात हाना रण हागा । प्रारम्भ में उत्तरी ध्रुव प्रश्न तुषारवत था । एक तुषारपात का वषण हम व-सा प्रामाणिक ईगना प्रय अवगता में मिलता है और इसी तुषारपात व कारण रानी आर्यों का अपना जमभूमि में स्थानान्तरण करना पना था । लगभग १००० ई० पू० तक आय यही उत्तरा ध्रुव प्रश्न में ही रह और तत्पश्चात उहनि मने में स्थानान्तरण किया और ६००० ई० पू० व लगभग इतनी एक शगा मध्य एशिया में आवर बन गई था । इम

प्रकार तिलक जी न मध्य एशिया के सिद्धान्तवाला का आसू पाछते हुए अपने एक नय मत का प्रतिपादन किया है। पर इनका मत अत्रिकाश विद्वानों को अस्वीकार है।

भारत आर्यों का आदि देश—कुछ विद्वान् प्राचीन आर्यों का आदि देश यारप मय एशिया आदि न मानकर भारत का ही बतलाते हैं। ध्यान रहे कि भारत को आदि दश बतानेवाले अधिकांश विद्वान् भारतीय हैं और यह कहना अनुचित न हागा कि यहाँ उन विद्वानों के तक के पीछे आत्म मान की एक हल्की पच्छभूमि है फिर भी इसका तक बन्त कुछ बढ़ियकर एक गम्भीर ज्ञात होता है। इन विद्वानों में श्री जिनानाशचन्द्र दास त्रीगगा नाथ या था डी ए० निवन्ता तथा डा० एल० डी कल्ला का नाम विशेष उल्लेखनाय है। वे म सप्तमिषव का गुणगान यत्र-तत्र किया गया है। अतः यहाँ भूमि आर्यों का आदि देश रही हागा। पुराण तथा ईरानिया के धार्मिक ग्रन्थों के सम्मिलित अध्ययन से भी यह पता चलता है कि कोई सग्राम (पुराणों का दवासुर सग्राम) दो जत्थों के बीच हुआ। इस युद्ध में पुराणों के अनुसार देवताओं ने असुरों को खदेड़ दिया। अवस्था में भी इस प्रकार का विवरण है कि उनके पगम्बर अपनी जन्मभूमि से भगा लिये गये। ता क्या यह भूमि भारत ही है जहाँ से आर्यों ने ईरानिया को भगा दिया? या गगानाय या न ब्रह्मपि दश का आर्यों की जन्मभूमि धारित किया है। था एल डी कल्ला ने काश्मीर तथा हिमालय पर्वत को जाया का मूल निवासस्थान बतलाया है। इस प्रकार डा० एम निवन्ता ने मल्लान के निकट दक्कान नदी को आर्यों की जन्मभूमि बताया है।

भारत का आर्यों का आदि दश माननेवाला का यह कहना है कि आर्यों का कहीं जयन्त निवासस्थान न होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आय परिवार की भाषाओं में सन्तुष्ट में जय भाषाओं की अपेक्षा शब्दों की संख्या (मूल शब्द जिन्हें हम विभिन्न भाषाओं में भाषाओं में उगमग समान रूप में पाते हैं) अधिक है। पर योरोपीय भाषाओं में उन मूल शब्दों की संख्या बिल्कुल कम है। ऐसी अवस्था में यह कस स्वीकार किया जा सकता है कि यारप में आर्यों का आदि देश रहा हागा। चाहिए ता यह कि यारप का भाषाओं में य शब्द अधिक हात और भारतीय भाषाओं में (सन्तुष्ट या भारत की प्राचीन भाषाओं में जिनमें वे शब्द अब भी पाये जाते हैं) कम होते। पर यहाँ ठीक इसके विपरीत है। इसमें तो यह स्पष्ट हा जाता है कि आर्यों का आदि देश भारत ही रहा हागा और भाषा सम्बन्धी जा साम्य प्राप्त हाता है वह पारस्परिक सम्पर्क या गमनागमन से सम्भव हा सकता है। लियूनिया का आर्यों का आदि निवासस्थान माननेवाला के इस मत का कि आय परिवार की भाषाओं में लियूनियन भाषा प्राचीनतम है इन विद्वानों ने इस प्रकार उल्टा किया है कि भाषा की प्राचीनता का एक कारण ता यह है कि उसके भाषा भाषाओं में शब्दों में उन्नति न हो पात अथवा वे विदेशियों के सम्पर्क में नहा आ पात या यहाँ भी सम्भव है कि वे उसके प्राचीनतम रूप का सुरक्षित रखने का का साधन निकाल लें हैं। यहाँ इन्हीं कारणों में से प्रथम दो सम्भव जान प त हैं। ऋग्वेद में वाषा तथा हाथिया का उल्लेख नहा बवन इस आधार पर यह कहना कि भारत आर्यों का आदि दश नहा तकमगत नहा है। ऋग्वेद में ता चावल तथा नमक का भी उल्लेख नहा है ता क्या इसका अर्थ यह है कि वे नाग नमक का प्रयोग नहा जानते थे? किन्तु भारत का आर्यों का आदि देश न माननेवाला का तर्क भी इसमें कम पचाता नहा। वे मय प्रथम ता यहाँ प्रश्न रखते हैं कि यदि भारत आर्यों का आदि दश रहा ता तब तक पूर्व कि यहाँ में कुछ आय वाषा भाषा सम्पूर्ण भारत का आय वर्णन हा गया होता किन्तु यहाँ ता सम्पूर्ण अति भारत तथा उत्तर भारत का कुछ भाग भाषा के विचार से अनाय-भा हा है। य विद्वानों का प्रकार का कुछ अर्थ बाधाएँ भी उपस्थित करत हैं जा अधिक महत्वपूर्ण नहा है। पर

## आय जाति

६

उन्का एक यह भी प्रश्न है कि जब मराठ की प्राचीनतम सम्यता सिधु मग्यता  
 क निर्माता आय नही तो फिर भारत का आयों का आदि देश कसे माना जा  
 सकता है ।

आयों के मूल पर यहाँ जो कुछ प्रकाश डाला गया है वह इस क्षेत्र म किये  
 गये कार्यों का सम्भव न्युतम अंश भी नही है । यह विषय नितान्त जटिल है और  
 दिन पर दिन जटिलतर बनता जा रहा है । ऐसी दशा म किसी भी निष्कप पर पहुँचना  
 अत्यन्त कठिन है । अत इस प्रश्न का अभी ज्या-वा-त्यो विवादास्पद छाँटना ही  
 श्रयस्कर है ।

---

## ५ | भारतीय आर्य तथा ऋग्वैदिक काल

पिछल पष्ठ म आया क मून निवास-स्थान पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि हम किसी निष्पत्ति पर नहीं पहुँच पाय तथापि इस मूल भूमि को भारत से वहीं बाहर मान कर हम इनके भारत में प्रसार के विषय में पतंग। भारतीय आर्यों के प्रसार का कार्य सावा विवरण ऋग्वेद में नहीं प्राप्त होता है पर यद्यपि उसका विवरण को ध्यानपूर्वक देखा जायता उल्लिखित स्थानों या वस्तुओं के नामों से उनका प्रसार का अनुमान लगाया जाता है। ऋग्वेद ही भारतीय आर्यों की प्राचीनतम पुस्तक है। इस पुस्तक में भी कुल दस मण्डल हैं जिनमें से सम्भवतः प्रथम नौ मण्डल ही प्राचीनतम हैं और दसवा मण्डल काफी बाद का है। अतः हम यह जान लेना चाहिये कि आर्यों के प्रसार उनके काल उनकी प्रारम्भिक सभ्यता आदि के लिए ऋग्वेद का अन्वेषण करने एवं उसमें कोई प्रमाण प्राप्त करने में काफी सावधानी से काम लिया जाय और केवल प्रथम नौ मण्डलों को सामग्रियों का ही प्रयोग किया जाय। ऋग्वेद में ऐसा जान होता है कि सब प्रथम भारतीय आर्य अफगानिस्तान तथा पंजाब में बस थे। अफगानिस्तान में बसने का ऋग्वेदिक प्रमाण यह है कि कावल स्वात कुरम तथा गामन का उल्लेख ऋग्वेद में किया गया है। इस प्रकार पंजाब में इनके प्रारम्भिक निवास का भी प्रमाण ऋग्वेदिक मंत्रों में प्राप्त होता है। पंजाब की पाँच नदियाँ का उल्लेख ऋग्वेद में मन्त्रों में बार-बार किया गया है—वितस्ता (सतलज) असिकनी (चाब) परष्णी (रावी) विपाशा (यास) और शुतुद्रा (सतलज)। सिंधु (सिंधु) तथा सरस्वती का भी उल्लेख किया है। पंजाब में इनके निवास करने का एक दूसरा प्रमाण यह है कि यमना का प्रयोग तीन बार तथा गंगा का प्रयोग केवल एक बार किया गया है। इस प्रकार गंगा के पूर्व की नदियाँ का उल्लेख ऋग्वेद में नहीं किया गया है। साधारणतः काबुल का भी उल्लेख नहीं है क्योंकि यह पूर्व में उत्पन्न होता है। इसी तरह जानबरा में बाघ का उल्लेख नहीं है क्योंकि यह भी पूर्व का पशु है। अतः ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि आर्य प्रारम्भ में पंजाब में बस थे और तब वहाँ में उत्पन्न भारत के शप भागों का आर्य-करण किया। इस आर्य-करण में आर्यों का जनापों में धार मधय करना पडा। इसका वर्णन ऋग्वेद में स्पष्ट रूप से प्राप्त होता है। अनाय जप ताँडन कम अमम्य थ यह हम मला मानि जान है। अतः इनके रण सम्पत्तियाँ अस्त्र शस्त्र भाँ दुर्जन एवं अपरिष्कृत थे। चाकरा रण विद्या एवं मनुष्य सङ्गठन का भाँ वापन नहीं था। मम्य आर्यों का इन्हें पराजित करने में कठिनता थी। जबकि पश्चात् पर धारे धार वस्त्र पर विजय पाते गये और समागति से अपना प्रसार भाँ दक्षिण का आर्य करने गये। सब प्रथम सरस्वती तथा शशती नदियाँ के मूल भाग पर अपना अधिकार स्थापित करके आर्यों ने इसका नामकरण ब्रह्मावन किया। आशा है कि ब्रह्मावन में ही ऋग्वेद के पद्य अंश का रचना का गण होगा। ब्रह्मावन पर अपना अधिकार स्थापित कर उन के पश्चात् उनका रण प्रयाण जाग का पश्चात् और उत्तरी अनापों का भूमि का छानकर उसका नाम ब्रह्मपि रक्ता। ब्रह्मपि का स्थापना के पश्चात् आर्यों ने मध्यम का स्थापना का और जब सम्पूर्ण भारत पर उनका अधिकार हा गया ताँ समा नामकरण उत्पन्न लावावन किया। अब हम ब्रह्मावन ब्रह्मपि मध्यम का भागालित म्यनि पर प्रकाश डालेंगे। हम जान है कि सरस्वती तथा शशती नदियाँ के बाघ का भूमि का ही आर्यों ने ब्रह्मावन ब्रह्मपि पर उत्तरा नदियाँ के भाग-परिवहन के

कारण अब उस भू भाग का ठीक-ठाक स्थिति का बान करना असम्भव है। महाभारत से ऐसा पता होता है कि ब्रह्मवर्ष कुरुक्षेत्र का ही एक अंग था। सम्भव है जायों न मव-प्रथम कुरुक्षेत्र का ही अनायों से छाना था। ब्रह्मपि देश में कुरुक्षेत्र पाचान तथा मूरगत राज्य सम्मिलित थे। जायुनिक यान्त्रिक राजपुत्राणा का पूर्वी भाग गंगा-यमुना का तटस्थ तथा यमुना इमक अन्तर्गत आता है। हिमाचल तथा विन्ध्यपर्वत की भूमि और पूव में प्रयाग तक के भू भाग का नामकरण इन्होंने मध्यस्थ किया था।

### ऋग्वेद

ऊपर आयों के प्रमाण का सक्षिप्त वर्णन किया गया है। उनका विवरण में हमारा सम्मम उनकी भौगोलिक पृष्ठभूमि का स्पष्ट रूपगया उपस्थित था गर्द। जायों अनायों के मध्य का विस्तृत विवरण यही वाञ्छनीय नहीं। इसका अतिरिक्त जायों का जागामा प्रगति के विषय में कुछ लिखने के पूव हम आयों के जायुनिक ऋग्वेद के विषय में कुछ जानना आवश्यक है क्योंकि आयों की विभिन्न परिस्थितिया का बाध हम उनका इसी मानन प्रथम से जानता है। उनकी सम्पूर्ण सम्मता एवं मन्त्रित पर प्रकाश जानना याना संभव यही एक प्रथम है कम से कम प्राग्भिक सम्मता के जान का माधन ता कवन ऋग्वेद ही है। तभी तो स्थिति न कहा है—

‘I rigveda points to the settled people an organized society and full grown civilization

ऋग्वेद में कुल दस मण्डल हैं जमा कि पञ्च ही बताया जा चुका है। इन दस मण्डल में कुल १०२८ मन्त्र हैं। इन मन्त्रों की रचना विभिन्न ऋषियां द्वारा विभिन्न स्थानों में की गई थी। रचना-समय का ठीक-ठाक पता न जानने का कारण मन्त्रों के क्रम की भांति स्थिर करना कठिन है। अब तक केवल इतना ही जानना ही सक्ता है कि प्रथम ही मण्डल प्राचीनतम है और दूसरे मण्डल के मन्त्रों की रचना और मन्त्रों के पञ्चात हुई था। मन्त्रों के दूसरे से मानवें मण्डल तक की रचना मवप्रथम हुई था। ये ६ मण्डल गुल्ममद विन्धमित्र कामदेव अत्रि भरद्वाज तथा वसिष्ठ ऋषिया के नाम से हैं। तत्पश्चात् उन मन्त्रों की रचना हुई जिनका क्रम प्रथम मण्डल में ५१ म १०१ तक है। तत्पश्चात् प्रथम मण्डल के ५० मन्त्र तथा आठवें मण्डल के मन्त्रों का रचना हुई और उसका बाद सम्भवतः सामन्तवत् सम्बन्धी मन्त्रों का ही जो मण्डल में पयक करके उनका संग्रह किया गया जा नवें मण्डल के रूप में हमारा सम्मम है।<sup>१</sup>

ऋग्वेद की तिथि—ऋग्वेद के समय के विषय में भा इतिहासकार एक मत नहीं हो पाये हैं। यदि हम भारतीय तथा विदेशी माथ्या के आधार पर ऋग्वेद का तिथि पर प्रकाश डालेंगे। अमरनाथ प्रमाणों में एक महत्वपूर्ण प्रमाण विषय उल्लेखनीय है। एशिया माइनर के बागजबोद नामक स्थान पर मिनत्रा नाम प्राप्त हुए हैं। ये १४०० ई. पू. के हैं। इनके मं जिन देवताओं के नाम लिखे गये हैं वे ऋग्वेदिक देवताओं के नामों से साम्य रखते हैं—जम मित्र वरुण इन्द्र आदि। इन मन्त्रों का नाम एशिया के घासिक प्रथम अवस्था में ही प्राप्त जानते हैं। उन मन्त्रों का जानना है कि भारत में तथा ईरानी शासकों में विभक्त जानने के पूव इन मन्त्रों का ये एक ही देवता थे। किन्तु मिनासिया के अभिलेखों का अन्वेषण मन्त्रों का जानना है कि

<sup>१</sup> देखिये आनन्द *Vedic Metre* मन्त्रमूलर के ऋग्वेदसंहिता की भूमिका, मन्त्रान्त *History of Sanskrit Literature*



इनका मूल ऋग्वेद में ही है अर्थात् इन शक्तियों की उत्पत्ति ऋग्वेद से होती है। इससे यह प्रमाणित होता है कि भारत में १४०० ई० पू० के भी पहले सभ्यता का विकास (वदिक सभ्यता का विकास) हो चुका था और यह सभ्यता इतनी पूर्य थी कि इसमें एशिया माइनर को भी प्रभावित किया।

मक्समूलर महोदय ने वदिक एवं लौकिक मस्कृत की तुलना ग्रीक भाषा के अन्तरा के आधार पर करके यह सिद्ध किया कि ऋग्वेद का रचना १२००-१००० ई० पू० के लगभग हुई थी। किन्तु यह आवश्यक नहीं कि सभी भाषाओं का अन्तर समान रूप एवं समान गति से हो। अतः यह तक अधिक सगत नहीं प्रतीत होता। मकडानेन तथा कीथ महोदय ने मक्समूलर महोदय के मत का समर्थन किया है किन्तु कुछ विद्वानों ने ऋग्वेद का समय और पीछे माना है। सुप्रसिद्ध जर्मन विद्वान् जकोबी ने ज्योतिष शास्त्र के प्रमाण के आधार पर ऋग्वेद का समय लगभग ४००० ई० पू० माना है। इसी प्रकार श्री बाल गंगाधर तिलक ने भी ज्योतिष के आधार पर ही यह समय ८००० ई० पू० बतलाया है। पर इनके मतों का भी जोरदार समर्थन नहीं हुआ है और केवल ज्योतिष के आधार पर यह अनुमान अधिक तकवृक्त नहीं जचना क्योंकि प्राचीन भारत में ज्योतिष के अनेक सिद्धान्त (गणना की अनेक विधियाँ) प्रचलित थीं। पता नहीं कौन-सी विधि ऋग्वेद के समय में प्रामाणिक थी। बिटरनिस्स के मतानुसार यह तिथि २५०० ई० पू० हो सकती है। इन समस्त प्रमाणों के आधार पर इतना तो निश्चय पूर्वक ही कहा जा सकता है कि ऋग्वेद की रचना १५०० ई० पू०-१२०० ई० पू० के भीतर या सम्भवतः उससे भी पहले हुई होगी।

### आर्यों का राजनीतिक उत्कर्ष

अभी तक आर्यों के प्रसार का वह रूप दिखाया गया था जो कि स्थानान्तरण करके आई हुई प्रत्येक सभ्य असभ्य जाति के लिए स्वामाविक है और जो प्रत्येक जाति करती रही। वास्तव में जब तक व्यक्तिगत सुरक्षा व उन्नति की दृष्टि से प्रसार में कोई सघर्ष होता है तब तक उस राजनीतिक रूप नहीं दिया जाता—चाहे वह सघर्ष किसी भाषा मानने पर क्या न चला जाय पर जब बड़ा सघर्ष सम्पूर्ण कबीला या जाति के सम्मिलित हित के लिए सघर्ष होकर होता है तो वह राजनीतिक रूप ले लेता है। आर्यों के प्रारम्भिक प्रसार सम्बन्धी-सघर्षों में जब तक के सघर्ष इस कोटि के हैं यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता पर इतना तो अवश्य ही स्वीकार किया जा सकता है कि उनके समस्त सघर्षों में दस राजाओं का युद्ध अपने दम का सम्मिलित प्रथम है। आर्यों एवं अनार्यों में प्रसार के लिये जा सघर्ष हुए वे तो मयकर थे ही पर आर्यों के ही विभिन्न कबीलों (जत्थों) में सम्भवतः जा महत्वपूर्ण सघर्ष हुआ वह यानी दस राजाओं का युद्ध ही है।

ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि आर्यों के कई दल थे। इन दलों में मरुत अनुम मत्स्य द्रष्टु तुवसु यदु पुरु आदि विभक्त प्रसिद्ध थे। द्रष्टावन में भरत आधुनिक जयपुर अलवर भरतपुर राज्य में मत्स्य पञ्जाब में अनम् तथा मत्स्य दक्षिण पूर्व में तुवसु पश्चिम में यदु तथा मरुत्वना नहीं के आमपास का भूमि में पुरु दल बाल निवास करने थे। इन विभिन्न दलों में महत्ता के लिए सघर्ष अनिवार्य था। दस राजाओं का युद्ध उत्तर-पश्चिम में पट्टन के बस हुए सागा तथा द्रष्टावन के बाल के दल के सागा में हुआ। एसी सम्भावना है कि इस युद्ध में सम्पूर्ण ऋग्वेदिक भाग्य (अनार्यों समेत) सम्मिलित था। विजयान्त का भवना से दस राजाओं का एक सघर्ष बनाया गया ताकि

भरता के राजा सुदास पर आक्रमण किया जाय। मघ का निर्माण ता हा गया पर भरता के राजा सुदास न इस पराजित कर दिया। मुत्तम पर अविना पक्वा शिवा मतानमा और विपाणिना न भी आक्रमण किया था पर उसम मुत्तम का सफलता मिनी। पूव म भी मुत्तम का सधप करना पडा था। मत्त की जध्यता म अज शिशु तथा यम्बु ने भी मुत्तम पर आक्रमण किया था किन्तु मुत्तम न इहे भी यमुना के निकट पराजित कर लिया। इस प्रकार सुदास न अपना विजया द्वाग जयना प्रसुत्र सम्पूर्ण ऋग्वेदिक भारत पर स्थापित कर दिया। पुराहित का निवाचन ही युद्ध का कारण था।

**ऋग्वेद में वर्णित अनाय**—ऋग्वेद म अनायों का जा न्परखा दा गइ है उस पर भी एक विहंगम दष्टि डान लना आवश्यक है। सम्पूर्ण ऋग्वेद म इन अनायों की मन्ना की गइ है। इहे दाम दस्यु या अमुर कहा गया है। पिशाच तथा राक्षसा का ताव भी ऋग्वेद म आया है। पहले हम ऋग्वेद म वर्णित अनायों पर ध्यान दें। ऋग्वेद क अनुमार व अनाय (चिपटी नाकवान) त्व पीय (दवताआ क विराधा) अन्वयु (वैदिक दवताआ के प्रति उदात्तमान) जयवन् (यन न करनवान) शिन् दस्यु (निगपूजक) अकमन् (क्रिया अनुष्णाना म रहित) अन्यवन् (पयव धमवान) मध्रवाक (अम्प भापा भापी) अत्राह्यण आदि थे।

यहाँ हम विवरण क आधार पर आयों का ज. टाका की ग है वह मा उल्लेखनाय है। ऋग्वेद म अनायों क उपराक्त विनपण आयों क त्रिए भी तामू हाते हैं। मुत्तम क मत्त दम राजा तथा उनके सहयागिषा का अन्वय (यन न करनवाले) अनिद्रा (इन्द्र की पूजा न करनवाले) कहा गया है।

अनायों का हम पूणतया असम्य नहा मानेना चाहिए। ऋग्वेद पर ध्यान दन म यह मान होता है कि उहाँन रहने क त्रिए मवान बनवाये थ जिम आयों न जना लिया।<sup>१</sup> दामा और दस्युआ के अपन नगर थे जिनक विनाश की प्रायना आयों न बार-बार इन्द्र से की है।<sup>२</sup> इसी प्रकार रक्षा तथा युद्ध के त्रिए व मेनाए भी रक्त थ और किला का निर्माण करक उनम अपना राजाना रक्त थे।<sup>३</sup> अनाय और कम म कम उनके सन्तान का निश्चय ही बनवान् थे क्याकि ऋग्वेद क कुछ मत्रा म इन्द्र म यह प्रायना की गइ है कि य उनका मारकर उनका इकटठा घन इहे (आयों का) कर दें। इस प्रकार हम दवत हैं कि अनायों का भी असम्य नहा कहा जा सकता। हा मवता है उनकी सम्यता आयों म कम रही हो—कम म कम सनिक त्रिटिकाण म ता व आयों म त्रय थ हा।

आयों-अनायों का मघप पर्याप्त समय तक चलता रहा। अत म आयों न दस्यु या दाम जाति वाला (अनायों) का बुरी तरह पराजित कर लिया। युद्ध म काम आन के पचात्र बहुत अधिक सध्या म दस्यु या दाम जाति बध गई। इन मघ तामा का विवध हाकर या ता आयों स बही बहुत दूर जगन गिरि-कन्तराआ का शरण उनी पी या था उहा की अधानता स्वाकार करनी पी। फलत इस दस्यु या ताम जाति क इनम अपेक लाग गुलाम बनाये गये कि दान कर क, अप ही मुत्तम हा गया।<sup>४</sup> इनक नत्राआ<sup>५</sup> का घष कर लिया गया हागा।

<sup>१</sup> ऋग्वे० ७।५।१६॥ <sup>२</sup> ऋग्वे० १।१०।३।२॥१।११७।२१।२।२०।६-७॥ आदि।

<sup>३</sup> ऋग्वे० ७।१।३॥

<sup>४</sup> ऋग्वे० ७।८६।७॥८।५३।३॥१०।६२।१० आदि। दाम की अपजो ५।१०

है इस तरह की व्यस्तति भी रोमनों द्वारा हलाक जानि का पराजित करके उछे गुलाम बना लेम से हुई थी।

<sup>५</sup> ऋग्वेद में इन नेताओं के नाम पित्र, धुनि, यमुनि, सम्बर आदि दिया गया है।



करन पर भी पर्वण्य समय एव ध्येय चाहना था। जत ऐसी दशा म यह जतिवाय था कि सम्पूर्ण समाज म से कुछ लोग ऐसे बन निय जाय जा अपना पूरा समय या जतिकाम समय पूजा पाठ एव धार्मिक कृत्या म नगवें। वदिक मन्त्रा क स्पष्टीकरण क लिए भी कुछ विद्वाना का आवश्यकता थी। अकेल साम यन क तिरण कइ पुराहिता का आवश्यकता थी उदाहरणार्थ एक हान चाहिय था—मन्त्र मुनाय एक अम्नु चाहिय था जा क्रिया काण कर और जनिष् का निवारण कर एक उपाय चाहिय था जा साम गाय। इनका कई सहायका की आवश्यकता था। ऋग्वेद न जान पन्ता है कि ऐसे यन्त्रा म बहुधा सात पुराहित नगन थे। एक ऋचो म नव गिनता म प्रकार का गद है—हान पात नेष्ट अन्नाय प्रणास्तु अवय जीर रक्षत। अम्नु एक पुराहित वग वनन नगा जा ब्राह्मण कहनाया ।<sup>१</sup> धार्मिक कृत्या का जटिनता के विषय म ऊपर प्रकाश डाला गया है। जत इतना जटिन बाध सीपना बदन उनके नि ही समव था जिहें तत्सम्बन्धा शिभा विषयक प्रत्येक सम्भव माया उपनय थे। ये साधन रात्रण के पुत्र प्रपौत्रा का ही सम्भव थ। जत जीर जीर न ब्राह्मणा का एक पथक वग वनता गया। यद्यपि इहें वैवाहिक सम्मन्त्र म्यापिन करन का पूष वनवता थी किन्तु य अय वयो से ब्यायें नना बट्टया ह्य समवते थ आर मरगाय वैवाहिक सम्भव स्थापित करन म इहें विशेष मुविधा मा पती थी। जत्र ब्राह्मण वग का न्या पर भी यान विचार किया जायगा। ऋग्वेद की कुछ श्रचात्रा म यह जान नाना है कि उहें समाज म काफी जात्र मिनत था जोर उनका पन वाफा ऊचा था। पुराहिता को डान रूप मिकक समुपण वम्य न्य मरन पनु जाति दन का मा उरन किया गया है।<sup>२</sup> ब्राह्मणा क पुराहित रूप क अतिगिन उनक नार रूप का भी हम वाय हाता है। विवामित्र तथा वजिष्ठ जाति ऋषिया न तत्र मत्र ग्रण किया था।<sup>३</sup>

जत्र हम जायी क दूसरे महत्वपुण वग पर प्रकाश डारेंग। जिम प्रकार धार्मिक आवश्यकताजा न जायी म रात्रण वग का जम दिया उमी प्रकार सनिक जात्रपरताजा न क्षत्रिय वग का उत्प किया। सनिक आवश्यकता न जायी का भाग्न म पत्रण करन के शास्त्र पत्रान् म ही पत्र गई ता क्या उमी समय क्षत्रिय वग वन गया था यह एक प्रान उपस्थित हाता है। किन्तु हम ऋग्वेद म यह जान नाना है कि उन समय प्रत्येक आय सामान रूप म रणक्षेत्र म उत्पता था।<sup>४</sup> तम प्राग्मिनर अवस्था म यद्व क निय किमी वग विाप की आवश्यकता न थी। वाकालर म कम म कम मत्र ब्राह्मणा या एक पूवक वग वन गया और क पत्रन-भात्रन पूजा पाठ म वम्य रन नता स्वभावन जत्र एक एम वग की आवश्यकता पी जा अम्य मत्र मभात्र—अनायी म

<sup>१</sup> देखिय डा० बनीप्रसाद की हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता पृष्ठ ४२-४३

<sup>२</sup> ऋग्वे० १।४४।१०।, १२।।२।८।।२।४।९।।१।१।१।।।३।२।।५।१।१।।७।३०।४।। धादि

<sup>३</sup> ऋग्वे० ३।३३।।७।१।।

<sup>४</sup> ऋग्वे० ४-२४।४।।६।२६।१।। रणक्षेत्र में जनता एकत्रित होता है जनता अपना पीदय दिग्लती है' अथवा ऋग्वे० ७।७१।२।। उवा इस प्रकार आता है जने यद्व के लिए तयार जनता।'

आगे का रक्षा करे और इस प्रकार प्राथिक कृत्यां में बाधा न पड़े पावे। १२ ऋग्वेद १०। १८॥ में यह स्पष्ट रूप में ज्ञात होता है। हम (गाय) चारा और गेहूँ आदि में पिए हैं। यह मानव गदा है। आ शूद्रहन्ता ? उनका मार करों। काम क्या ना किया करे। एता परिस्थिति में यह आवश्यक था कि मनुष्य मैनिक मनुष्य विना जाय। मैनिक मनुष्य का मनुष्य मनुष्य में मनुष्यवा स्वेच्छानुसार ही आन को इस काल में मनुष्यवाता का किया गया जाया। पर मैनिक काल यज्ञ का ही होता है और इसका मनुष्य भी अत्यन्त दुःख ही है। मैनिक मनुष्य की व्यवस्था भी मुष्कल मनुष्य मैनिक काल का पुनर्जा ही मनुष्य मनुष्य थी। दूररी बात यह भी है कि अत्यन्त पूज्य काल का मनुष्य का कुछ मनुष्यवाता कारण भी महायज्ञ होने है अतः पीर धारे क्षत्रिय का भी एक यज्ञ यज्ञ गया। यह यज्ञ भी ब्राह्मणों की मैनिक कालान्तर में अपना एक एक मनुष्यवाता गया जिगम दूमग का प्रवेश दुःख में हा गया। वीर पुरुष हिमी चार का पुनर्जा है। (जिगम वीरगंगा हान की अधिष्ठा मनुष्यवाता थी) व्याह करने में अत्या मनुष्य मनुष्यवाता मनुष्यवाता। अतः ब्रह्महृत्क सम्बन्ध में विना विना प्रतिबन्ध कालान्तर में मनुष्य अत्यन्त काल मीमित हा गया। इस काल का उत्तराधिकार अत्यधिक मनुष्यवाता था। ईश्वर अत्यन्त काल मनुष्यवाता थी। मैनिक काल स्वभावतः आत्मगम्मान में आत्मप्राप्त हाता है। ऋग्वेद में मनुष्यवाता की महत्ता का उत्तरम है और माय ही उन कालों की निम्न की गई है जो मनुष्य ही क्षत्रिय होने का दावा करते थे। १ इगम यह भी परिनिर्वात हाता है कि क्षत्रिय हाता इतना महान् समझा जाता था कि कुछ अत्यन्त मनुष्यवाता मनुष्यवाता हान का दावा करते थे।

इन मनुष्यवाता की अतिरिक्त कुछ अत्यन्त मनुष्यवाता भी थे जिनका विषय में हम ऋग्वेद काल मात्र करता है। ऋग्वेद के प्रथम नौ मण्डल (जिनका रचना-काल दसवें मण्डल के पूर्व माना जाता है) हम अत्यन्त काल का बोध नहीं कराते। इनसे हम केवल इतना ज्ञात हाता है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रियों का पञ्चात् शय आय जनता को विश्व कहा जाने लगा। विश्व का सम्बन्ध प्रारम्भ में सम्पूर्ण आय जनता से होता था। वास्तव में विश्व का शांति अत्यन्त अत्यन्त है। जब तक आय इधर उधर भटक रहे थे तब तक उनका जीवन भ्रमणशील था पर जब वे धरती पर बैठ गये अर्थात् जमीन पर स्थायी रूप से जम गये तब से उनकी वास्तविक विश्व कही जाने लगी और फिर इसी से वे विश्व का बोध किया जान लगा। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों से विश्व एक अलग वेग इस प्रकार प्रमाणित हा जाता है कि ऋग्वेद के एक मात्र में क्षत्रियों के लिये बल की प्राप्ति की गई है और फिर विश्व के लिये भी वही प्राप्ति की गई है। १ क्षत्रिय और विश्व दोनों के लिये प्राप्ति करने का अर्थ है कि यदा वेग हैं। जसा कि बताया जा चुका है ऋग्वेद के प्रथम नौ मण्डल प्राचीनतम हैं और फिर उनके बाद दसवें मण्डल की रचना हुई। इसी दसवें मण्डल से हम यह ज्ञात हाता है कि विराट पुरुष से चार जातियां का जन्म हुआ। ध्यान रहे कि ये चार जातियां वही हैं जो उत्तर वैदिक काल महाकाव्य काल आदि से

१ यज्ञादि में बाधक राक्षसों (जो अनाय थे) के हनन के लिए विश्वामित्र से जो क्षत्रिय राजा वराह के पुत्रों को भगवाया गया वह ऋग्वेदिक कालीन अवस्था की पुनरावृत्ति तो नहीं है ?

१ ऋग्वेद ७।१०।१३॥

२ ऋग्वेद ८।३५।१७-१८॥

अब आज तक हिन्दू समाज में बना है। इस प्रकार जातियाँ (ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य तथा शूद्र) की इस वर्णिक उत्पत्ति का उल्लेख ऋग्वेद के उन मन्त्रों (पुरषसूक्त) में प्राप्त होता है जो अपक्षवृत्त बाद के हैं। यहाँ यह भी स्मरण रखें कि ऋग्वेद का प्रथम नौ मण्डला में वहीं भी वश्य शूद्र नहीं आया है। अतः इसमें बना यह सम्भव नहीं कि या तो विश्व ही वश्य थे क्योंकि क्षत्रियाँ के लिये प्रायना कर्क फिर विश्व के लिये प्रायना की गई और शूद्रा के लिये प्रायना करने की आवश्यकता नहीं क्योंकि वे दास या श्लेष्य थे या यह भी सम्भव हो सकता है कि दसवें मन्त्रों के पहलेवाले मण्डला में वश्य शूद्र का प्रयोग न होना यह प्रमाणित करता है कि यह वग प्रथम दो वर्गों के वनन के पश्चात् बना और यह तत्काल ही जान पड़ता है। किन्तु दसवें मण्डल पुरषसूक्त में जो चारों जातियाँ का साथ उत्पत्ति का विवरण प्राप्त होता है वह इसमें अपवाद है। इसका अनुसार तो उन आदि पुरुष के मुख से ब्राह्मण भुजाजा में क्षत्रिय जघा से वश्य तथा चरणा में शूद्रा की उत्पत्ति हुई। पर इस वक्तव्य पर अधिक टीका न करके यही बतल इतना ही कहना श्रेयस्कर होगा कि हम वर्णों की उत्पत्ति का सामाजिक कारण का धारणा ध्यान देना चाहिये जिसके अनन्त समाज में वर्गों की स्वाभाविक उत्पत्ति आवश्यकतानुसार होती है। वश्या का कायस्थो बहुत विकसित था। ब्राह्मणों के पूजापाठ तथा क्षत्रियों के सैनिक काय में लग जान के पश्चात् जब यही एक ऐसा वर्ग बच गया जिस पर समाज की अधिक व्यवस्था आघातित था। शूद्रा का तो चरणस्य उत्पन्न होने के कारण चरण-सेवा से घृसन न था अतः उत्पन्न तथा वितरण का काय वश्या पर आ गया। यदि यो रीति बर्णालय हम विश्व का अर्थ वश्या में तो 'वे लाग खनी, पशुपालन तरह-तरह की दस्तकारी आदि बहुत में व्यवसाय करते थे।' ऋग्वेदिक काल में समाज का जो विभाजन हुआ उस वर्ग-व्यवस्था कहना ही उचित है क्योंकि यह बवल समाज का वर्गीकरण ही था—(यह भी उद्योग समान स्तर पर) वर्णव्यवस्था का काफी बाद में पनपती है यद्यपि उसका मूल समाज के इसी वर्गीकरण में निहित है। दासा का उपवर्ग इन्हीं शूद्रों में मन्त्रों एक था। ये अज्ञात थे और या तो युद्ध के बन्दी थे या अन्य प्रकार से आत्मसमर्पण किये हुए व्यक्ति थे। किन्तु भारतीय दाम प्रथा तथा पुनान आदि की दाम प्रथा में महान् अन्तर था। जहाँ विश्वाम दामा-दासा या कामा-पशुआ के हिसके शूद्रा का दानन के लिये दास प्रथा प्रचलित थी वहीं भारत में बवल इनमें मवा-काय लिया जाता था। कामा के प्रति भारतीयों की क्या धारणा या इसका सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण हम ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों में प्राप्त हो जाता है। एक स्थान पर एक ऋषि पुत्री के साथ माय दासा के लिये भी प्रायना करता है।<sup>१</sup> दासा का सम्पत्ति भी समझा जाता था और तब ऐसी दशा में उनका विनाश या उन्हें किसी प्रकार

<sup>१</sup> देखिये डा० बनी प्रसाद को 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता' पृष्ठ ४७। 'विश्व' ब्राह्मण क्षत्रिय से पक्ष्य थे। एसी दसा में अधिक से अधिक यह सम्भव है कि शूद्र भी ये काय करते रहे होंगे पर वे दास या नीकर के रूप में ही रहे होंगे। अतः उपरोक्त उद्यम के कर्ता वश्य ही ठहरते हैं।

<sup>२</sup> विश्व-इतिहास में 'सिडिपेटर' या मल्लों का पद प्रसिद्ध है। दो दामों को या एक दास और एक हिंसक पशु को पोजड़े में छोड़कर उन्हें तब तक लड़ते रहने देना जब तक विश्वस्य धायल न हो जायें या सर न जायें सम्पत्ता के निर्माताओं पर बलक का एक टीका है।



बहुत कम आगवा रहती थी क्योंकि कुटुम्ब के सदस्य पारम्परिक प्रेम में बंधे थे। मातृ-श्वशुर नए दवर जादि के साथ रहकर भा बहू अपना अस्तित्व बनाय रख सकती थी। वह अपने पति के साथ यज्ञादि करती थी दान दती या सामरस बनाती और पाती थी।<sup>1</sup> पति-पत्नी का साथ धार्मिक कार्य करने तथा अपनी सतान के साथ आनंद करने का उदाहरण ऋग्वेद में प्राप्त होता है।<sup>2</sup> पत्नी का जादर घर में किन्ता होता था, उमर अधिकार और कतव्य क्या ये इन सब का सांकेतिक विवरण हम ऋग्वेद में प्राप्त हात है। एक स्थल पर यह बतलाया गया है कि स्त्री घर का प्रबन्ध करती थी तथा जय जामा के अतिरिक्त वह ताना बुनने का कार्य भी करती थी।<sup>3</sup> गृहपत्या की महानता का वाच ता हम तब जाना है जब हम देखते हैं कि वही वही अग्निपत्या की उपमा गृहपत्या से दी गई है जो कुटुम्ब के सभी सदस्यों का स्वयंसेवकी रहती है।<sup>4</sup> ऋग्वेद में उपात्वा के विषय में यह कहना कि वह गृहपत्या का साति मोनवाता की गणनी हुई जाती है<sup>5</sup> यह प्रमाणित करता है कि गृहपत्या पर घर का पूरा उत्तरदायित्व था और वह कुटुम्ब के गृहस्था की उनसे दैनिक कार्यों के निम्ने प्राण कान जगाया करता था। पत्या ही घर है पत्नी ही गृहस्थी है पत्नी आनन्द है जो जिन प्रमाण हम ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में मिलते हैं।<sup>6</sup> इतना सब होने पर भी गृहपति पत्या पर उचित जकृश कौटुम्बिक मामला में अवश्य रहता रहा हागा क्योंकि स्त्रियाँ का बुद्धि-दुबलता तथा उनके चित्त का समय न हान का उत्पन्न भी ऋग्वेद में किया गया है।<sup>7</sup>

उपर के विवरण में यह स्पष्टतया ज्ञान होता है कि गृहपति और गृहपत्या दोनों के साथ एक साथ का कतव्य कौटुम्बिक जावन के संपन्नता सम्बन्धा कार्यों के सम्पादन के लिये अधिक विस्तृत था। ऋग्वेदिक काल में कुटुम्ब में तरलम्बधा जय विपत्ताओं के अति रिपत एक प्रमुख विषयता यह स्थान का मिलती है कि पुत्र की कामना बहुत जसिब था। हमारे घर मन्तान में भर-पूरे हा, हम वार पुत्रों की कामी न हा जादि के उपा हरण अनेक मन्त्रों में प्राप्त जाते हैं।<sup>8</sup> आधुनिक युग में सामाजिक एवं आर्थिक रिपमताओं के कारण साधारणतया वन-सन्तान का कामना नहीं का जाना किन्तु उन प्राग् भिक युग में जब मनुष्य के रहने एवं वृषि-कार्य करने के लिये भूमि का जमाव न का उद्योग एवं व्यवसाय में काफी क्षेत्र था हम प्रकार की कामना स्वाभाविक थी। यथा रहे कि व वार पुत्रों का कामना करते थे वह भा काफी अधिक मन्त्रों में। वीर पुत्रों की अविष्य के अविष्य समस्या में उत्पत्ति जान का कामना का जय स्पष्ट है जिसका अभिप्राय सामरिक है। अपने स्वाभाविक शत्रुओं अतार्यों का दजान के लिये या जतिक से अधिक जमान पर अपना जितार स्यापित करने के लिये उन जागा की वार पुत्रों की आवश्यकता थी। यथा कारण है कि जार-जार वार पुत्रों की कामना का कथन ऋग्वेद में आया है।

जामा कि जामा जा चुका है कि गाँ जन की प्रथा भा प्रचलित था। पुत्र-जेन पिता दगर के पण का गाँ ने जता था। पर एक मन्त्र में यथा परिचित ज्ञान है कि मोन जिय हुए ल के पुन के बराबर नहीं जान थे। समाज में निचग का उम जन्म पुत्र का बह म्यान नया रहा हागा जा कि बाल्यविक पुत्र का दगका कारण यथा हो

<sup>1</sup> ऋग्वे. १।१३१।३।।५।४३।१५।।

<sup>2</sup> ऋग्वे. ७-२।१५-८।।तृप्या १०५।२।।

<sup>3</sup> ऋग्वे. २।३।६।।२।३।४।।

<sup>4</sup> ऋग्वे. १।६६।२।।

<sup>5</sup> ऋग्वे. १।१२।४।।

<sup>6</sup> ऋग्वे. ३।५।३।४।।३।५।३।६।।

<sup>7</sup> ऋग्वे. ८।३।१।१।।

<sup>8</sup> ऋग्वे. ७।१।११-१२।१९।।

७।१।२।४।।२।१६।५-६।।





वर-वधू चुनने का अवसर प्राप्त हो जाता था। पर माता पिता भी शांती तय कर दते रहे हांग क्याकि प्रत्यक तरुण या तरुणी के जीवन में स्वयं वर-वधू निर्वाचन सम्भव नहीं। इस या किसी अन्य विधि द्वारा शादी तय हो जाने के पश्चात् वही घूम से ववाहिक प्रथायें पूरी की जाती थी। वर पक्ष के नाग सज घज वर वधू के घर जाते थे जहाँ उनका पूण स्वागत होता था। पुरोहित द्वारा बनाये गये शुभ समय एवं मूहृत में वर वधू का पाणिग्रहण करता था और तत्पश्चात् वर-वधू अग्नि की परिक्रमा करत थे। पाणिग्रहण के पश्चात् बहुत ही विराट उत्सव होता था—जिसमें ममा लाग सुन्दर सुन्दर वस्त्र एवं जामूपण पहनकर शामिल होने थे।<sup>१</sup> विवाह-मस्कार के समय जा मन्त्री च्चारण होता था उनसे हमें यह पता होता है कि वधूआ का हमारे हानवाने घर में कितना सम्मान होता रहा होगा उनसे वर कितनी मंगल-कामनायें करता था। नीचे एक इसी प्रकार के मन्त्र का हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है—

प्राणिया के स्वामी हम सन्तान से कृताय करें अधमान् हम वद्धावस्था तक परिणय के मूत्र में आवद्ध रखें। हे वधू ! पति के घर में तुम्हारा प्रवेश मंगलकारी हो। हमारे कुल एवं डगेरा पर क्षेम की वर्षा करो।

हे वधू ! अपनी सास और दाम्पत्य को वशीभूत कर लो अपनी नन्दा तथा दवरा के बीच में रानी की मूर्ति शानायमान हो।<sup>२</sup>

विवाह सस्कार हो जाने के बाद वर वधू का रथ पर बिठाकर अपने घर लाता था। पर ऋग्वेद में अनेक व्याह का भी वर्णन प्राप्त होता है और राजा-महाराजा या सम्मानित पुरोहित कमी-कमी अनेक व्याह कर लेते थे।<sup>३</sup> अनेक व्याह का अर्थ है नारियों का पिसना। पर साथ ही अनेक व्याह करने पर आधुनिक युग में जिस प्रकार कोई व्यक्ति परेशान हो सकता है ठीक उसी प्रकार ऋग्वेदिक काल में भी बहुत विवाह करने वाला कौण्डिक कसह से परेशान रहता था।<sup>४</sup> बहुत विवाह केवल उच्च वर्ग (राजा महाराजा या बड़े पुरोहिता) में ही प्रचलित था। अतः माधारण नारियाँ इसके कुप्रभावा से मुक्त थी।

नारी-जीवन का दूसरा अग्रिशाप वधव्य है। जिस समाज में विधवाओं का व्याह करने की अनुमति नहीं दी जाती उसमें न केवल नारियाँ के साथ अन्याय किया जाता है वरन् समाज में दुराचार का विष बोने का जान-बूझ कर प्रयास किया जाता है। ऋग्वेदिक काल हमारे आज के इस सम्य हिन्दू समाज से इस विषय में बड़ी आगे बढ़ा था। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों से विधवा-जीवन का कारुणिक दृश्य तथा उनसे सम्बन्धित दृश्यों का बोध होता है। एक मन्त्र में इस प्रकार का वर्णन है—

उठो स्त्री ! तुम उससे पास पड़ी हो जिसका जीवन समाप्त हो चुका है। अपने पति से दूर हट कर जीवितों के मसार में आओ और उसकी पत्नी बनाओ जो तुम्हारा हाथ पकड़ता है और तुमसे व्याह करने को तयार है।<sup>५</sup> उक्त मन्त्र से यह पता चलता है कि विधवा विवाह की प्रथा प्रचलित थी किन्तु पति के शव के पास सम्मान में बनी हुई नव विधवा से तुम्हें उमी समय कोई ववाहिक सम्बन्ध स्थापित करने और

<sup>१</sup> ऋग्वेद ० ४।५।८।९॥

<sup>२</sup> ऋग्वेद ० १०।८।५।४३-४६॥

<sup>३</sup> ऋग्वेद ० १।६।१।११॥१।७।१।१।७।१।८।२॥७।२६।३॥

<sup>४</sup> ऋग्वेद ० १।१०।४।३॥१।१०।५।८॥

<sup>५</sup> ऋग्वेद ० १०।१।८।८॥ १०।४०।२॥से भी विधवा विवाह का प्रमाण मिलता है।

सकता है कि मोद रूप में पुत्र केवल उन्हीं से प्राप्त किया जा सकता रहा होगा जो किसी कारणवश अपने पुत्र का मरण-मापण सुचारु रूप से रहा करता पाते रहे होंगे।

**समाज और नारी**<sup>१</sup>—गृहपत्नी के रूप में नारी का कुछ व्यक्तित्व हमारे सम्मुख आ चुका है पर केवल वहाँ नारी का पूण स्वरूप नहीं है। वह तो कुटुम्ब और नारी की व्याख्या मात्र रहा। अब हम समाज और नारी पर विचार करेंगे। इस सम्बन्ध में भा हम पूणतया ऋग्वेद का सहारा लेना पड़ेगा।

आर्यों का सामाजिक संगठन ही कुछ इस प्रकार का था कि जो पितृसत्तात्मक होते हुए भी नारी का ऊँचा स्थान देने के लिये बहुधा बाध्य करता था। नारियाँ का जसा शारीरिक गठन है उस आधार पर यह आवश्यक हो जाना था कि वे जब तक कुमारी रहती थी तब तक पिता या भ्राता का संरक्षण में रहती थी जब विवाहित हो जाती थी तो पति के देख रेख में रहती थी और पति के अभाव में युवक पुत्र या इसी प्रकार के किसी अन्य संरक्षक के निरीक्षण में रहती थी। पदा प्रथा का वही नाम न था। तत्कालीन शिक्षा पद्धति के अनुसार उन्हें भी शिक्षित किया जाता था। उनके विद्युपी होने से उदाहरण ऋग्वेद में रचित उनका रचनायें हैं।<sup>२</sup> इसी प्रकार विद्या के क्षेत्र में वे पुरुषों से किसी प्रकार पीछे नहीं थी। पर रणक्षेत्र में भी वे कम काशन नहीं दिखलाती थी। ऋग्वेद में नारियाँ का रणक्षेत्र में जान का उल्लेख मिलता है। इसमें ज्ञात होता है कि विष्पला नामक एक स्त्री रणक्षेत्र में गई थी और जब यद्ध करत करने वह घायल हो गई तो आश्विनो ने उसका उपचार किया।<sup>३</sup> विद्युपी एक वीरराग्नाओं को हर प्रकार की स्वतंत्रता हाता स्वाभाविक है। उन्हें विवाह आदि में पूण स्वतंत्रता थी। तरुण पुरुषों और स्त्रियों को मिलन-जुलन की पूण स्वतंत्रता था अपना रुच्यानुसार प्यार करते थे और अपनी इच्छा के अनुसार याह कर लेते थे।<sup>४</sup> नारा-सीदय एक सी-दर्यानुभूति का उदाहरण भा हमें ऋग्वेद से प्राप्त होता है। एक स्थान पर यह बताया गया है कि कुछ नारियाँ तो अपने रूप पर फूली नहीं समाती थी और अपने प्रेमियों के चित्त का लुभान में बड़ी दक्ष होती थी। समाज में नारियाँ का प्रेम रूप भी उपस्थित था जिसका एक उदाहरण ऊपर दिया जा चुका है। अत्र भी हम इसी प्रकार का उदाहरण प्राप्त हो रहा है जिसके अनुसार एक युवक मंत्र द्वारा अपनी प्रेमिका के घरवाला का मुलाना चाहता है।<sup>५</sup>

इस सम्बन्ध में हम वैवाहिक प्रथाओं का भी विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि नारियाँ का दशा का उच्चता या हानता अविकाशत इसी पर आधारित होता है। आदेश व्याह केवल एक व्याह करना था। अब हम पहले आदम व्याह का वर्णन करेंगे। नारियाँ एवं पुरुषों को मिलने की जा स्वतंत्रता दी गई थी साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने में कोई बगमद नहीं रक्खा गया था उससे लागू की स्वत

<sup>१</sup> ऋग्वेदिक काल की नारियाँ की दशा के लिए डा ए० एस० अल्डर की *The Position of Women in Hindu Civilization* सी० वेयर की *Women in Ancient India* इन्द्र की *State of Women in Ancient India* देखिये।

<sup>२</sup> ऋग्वे० १।११७।।१।१७९।।५।।२।।६।।१०।।२।।८।।११।।

<sup>३</sup> ऋग्वे० १।११२।।१०।।१।११६।।१५।।१।११७।।११।।१।११८।।८।।

<sup>४</sup> ऋग्वे० १।११५।।२।।९।।३।।५।।९।।५६।।३।।

<sup>५</sup> ऋग्वे० ७।५५।।५ ६ ८।।

वर-वधू चुनन का अवसर प्राप्त हो जाता था। पर माता पिता भी शान्ती तप कर देने रहे हांगे क्योंकि प्रत्येक तरुण या तरुणी के जीवन में स्वयं वर-वधू निर्वाचन सम्भव नहीं। इस या किसी अन्य विधि द्वारा शान्ती तप हो जान के पश्चात् वही धूम से वैवाहिक प्रयास पूरी का जाती थी। वर-पक्ष के लाग मज घज वर वधू के घर जाते थे जहाँ उनका पूण स्वागत हाता था। पुराहित द्वारा बताया गये शुभ समय एक मुहूर्त में वर वधू का पाणिग्रहण करता था और तत्पश्चात् वर-वधू अग्नि की परित्रमा करत थे। पाणिग्रहण के पश्चात् बहुत ही विराट उत्सव होता था—जिसमें सभी नाग मुन्त्र मुन्त्र वस्त्र एवं आभूषण पहनकर शामिल होत थे।<sup>१</sup> विवाह-सम्कार के समय जा मन्त्रोच्चारण हाता था उनमें हमें यह बात हांगी है कि वधुआ का हमारे हाथवाले घर में कितना सम्मान हाता रहा हागा उसे वर कितनी मंगल-कामनायें करता था। नीचे एक इसी प्रकार के मन्त्र का हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है—

प्राणिया के स्वामी हम मन्तान में वृताय करें अयमानु हम वद्धावस्वा तव परिणय के मूत्र में आबद्ध रखें। हे वधू ! पति के घर में तुम्हारा प्रवेश मंगलकारी हो। हमारे कुल एवं डगरा पर क्षेम की वर्षा करा।

हे वधू ! अपनी सास और स्वमुर का वशीभूत कर लो अपना नन्ना तथा दबरा के बीच में रानी की भाँति शामायमान हो।<sup>२</sup>

विवाह संस्कार हो जाने के बाद वर वधू को रथ पर बिठाकर अपने घर लाता था।

पर ऋग्वेद में अनेक व्याह का भी वर्णन प्राप्त होता है और राजा-महाराजा या सम्मानित पुराहित वमा-वमी अनेक व्याह कर लेते थे।<sup>३</sup> अनेक व्याह का अर्थ है नारियाँ का पिना। पर साथ ही अनेक व्याह करने पर आधुनिक युग में जिन प्रकार कोई व्यक्ति परेशान हो सकता है ठीक उसी प्रकार ऋग्वेदिक काल में भी बहु विवाह करने वाला कौटुम्बिक बन्धुस परेशान रहता था।<sup>४</sup> बहु विवाह केवल उच्च वर्ग (राजा महाराजा या बड़े पुरोहितों) में ही प्रचलित था। अतः माघारण नारियाँ इसके कुप्रभावों में मुक्त था।

नारी जीवन का दूसरा अभिशाप वधव्य है। जिन समाज में विधवाओं को व्याह करने की अनुमति नहीं दी जाती उसमें न केवल नारियाँ के साथ अत्याय किया जाता है वरन् समाज में दुराचार का विष बाने का जान-बूझ कर प्रयास किया जाता है। ऋग्वेदिक काल हमारे आज के इस सम्य हिन्दू समाज से इस विषय में कहीं आगे बढ़ा था। ऋग्वेद के कुछ मन्त्रों से विधवा-जीवन का कारुणिक दण्य तथा उनसे सम्बन्धित कृत्यों का बोध हाता है। एक मन्त्र में इस प्रकार का वर्णन है—

‘उठो स्त्री ! तुम उसके पास पड़ी हो जिनका जीवन समाप्त हो चुका है। अपने पति से दूर हट कर जीवितों के मसार में आजा और उमकी पत्नी बना जा तुम्हारा हाथ पकटना है और तुमसे व्याह करने को तयार है।<sup>५</sup> उक्त मन्त्र में यह ता बात हो जाता है कि विधवा विवाह का प्रथा प्रचलित थी किन्तु पति के शव के पास समाप्त में बड़ी हुई नव विधवा से सुगन्ध उमी समय कोई वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने और

<sup>१</sup> मन्० ४।५।८।९॥

<sup>२</sup> ऋग० १०।८५।४३-४६॥

<sup>३</sup> ऋग० १।६।१।११॥१।७।१।१।७।१।८।२।।७।२६।३॥

<sup>४</sup> ऋग० १।१०।४।३॥१।१०।५।८॥

<sup>५</sup> ऋग० १०।१।८।८॥, १०।४०।२।।से भी विधवा विवाह का प्रमाण मिलता है।

हाथ पकड़न का तयार हो जाता है यह वस्तु कुछ गटकती है—खटकता इमतिम है कि यह बाय डीक शब्द-दाह के समय होने जा रहा है। वास्तविकता जा भी है—चाह विधवा अपने पति की मृत्यु के शीघ्र पश्चात् ग्राह कर लती हो या कुछ काल पश्चात् करता रहा पर विधवा विवाह की मनाही नहीं थी।

विवाह प्रथा के सम्बन्ध में एक वस्तु और भी महत्वपूर्ण है। ऋग्वेद के एक मंत्र से ऐसा ज्ञात होता है कि दहेज प्रथा भी प्रचलित थी।<sup>१</sup> पर जहाँ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने का पूरा स्वतंत्रता दी गई थी<sup>२</sup> वहाँ इस प्रकार का पनपना कुछ कठिन माना जाता है।

भारतीय आर्यों की विवाह पद्धति से जब हम अथ प्राचीन सम्य दशा का पद्धति की तुलना करते हैं तो यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि इनमें महान् अन्तर था। जब कि  
 मोतिक  
 का वही

दैनिक जीवन—दैनिक जीवन के अन्तर्गत हम आर्यों का वंश मूपा उनके रहन-सहन खान पान आमा प्रमा आदि का अध्ययन करते हैं।

आप तीन प्रकार का वस्त्र धारण करते थे। पहना नावी (जा नाच की घोटा था) दूसरा वास<sup>३</sup> और तीसरा अधिवास<sup>४</sup> था। ऊनी तथा भूना दाना प्रकार के वस्त्रों का प्रयोग वे मली भाँति जीवते थे। धनवान साने के काम के रगान वस्त्र धारण करते थे। उत्सवों पर वे विशेष वस्त्र धारण करते थे। एम अवसरा पर वे सुनहरे आभूषण भी पहनते थे।<sup>५</sup> आभूषण में कुण्डल हार अग वलय गजर आदि मुख्य थे।<sup>६</sup> प्रमिया का चित्त प्रसन्न करने में (नारियाँ) कुशल होतीं थीं<sup>७</sup> इसमें यह ध्वनित होता है कि नारियाँ सजावट शृंगार आदि से पूणतया परिचिन ही नहीं थीं वरन वे उसमें दम्भ भी थीं। वे अपने बाना को कंधा से सवारतीं थीं और तन (सम्भवत सुगन्धित तन) से उन्हें बनाती थीं। कुछ पुरुष भी बड़े-बड़े बान रखते थे और उन्हें सवारत थे।<sup>८</sup> दाग रखन का भा प्रथा थी।<sup>९</sup> किन्तु कुछ लोग दागी बनवाने भा थे।<sup>१०</sup> सम्पूर्ण आय जाति स्वच्छ जीवन बिताना चाहती थी अन् स्वच्छता का ईश्वर ध्यान बना रहना था। ऋग्वेद में एक स्था के चार वेणी (चोरा) करन का उल्लेख आया है।<sup>११</sup>

आर्यों के मोजन में दूध का महत्वपूर्ण स्थान था।<sup>१२</sup> देही<sup>१३</sup> तथा घन<sup>१४</sup> का भा थे मली भाँति उपयोग करते थे। शौर पक्कम-आकम (दूध में पक हुआ जत्र) का भा

प्रयाग ये किया करते थे और एक प्रकार का पीर भा पीन थे।<sup>१</sup> ये रात्रियाँ जार वावन थी के साथ खात थे।<sup>२</sup> ये नाराहारी नो थे और म भवत त्रि म मार गये पशुआ, मँ-अकरा का माम खा। गाय को इहाने अय या (ऋग्वेद ८।१०।१।१ - १६।) घोपित कर दिया या। अत उसका वव नही किया जाता या। ऋग्वेद ८।१०।१० स यह बात हाता है कि सुरा पीन म कमा-कमी समाज में राचार हा जाना या। अत इम वजित कर लिया गया।<sup>३</sup> इनका सत्रम मपुर पय पत्तय माम या मानरन या जिसका गुण-मान और उसका प्राप्ति-म्यता रामायनिक उत्पादन आदि का रि-नत वणन हम ऋग्वेद क सम्पूर्ण नवें मण्डल म प्राप्त होता है।<sup>४</sup>

आर्यों के आमात् प्रमोत् पर भा ऋग्वेद स पयाप्त प्रकाश पन्ता है। यद्यपि पुत्रो- नृत्य तथा सगान उनका आमात् प्रमाद के प्रमुक्त मावन थ। तौ उमक मत्र की नाप आदि का पूण विवरण हम ऋग्वेद ५।३७।७।।८।४।४।।८।८।८।। आदि म प्राप्त होता है। ऋग्वेद २।२९।९ म हम बात हाता है कि जुजारी पुत्र पिता द्वारा दण्डित किया जाता या। अत जुआ मत्रनका प्रया भा प्रचरित थी। पुत्र तथा स्त्रियाँ दोना नृत्य करते थे।<sup>५</sup> राद्य प्रथा का भा मुत्त प्रयाग थ मत्रा मति जानन थे। दुहुमा (ऋग्वे० १।२८।५।।) ककर (ऋग्वे० २।४।१।।) उण (ऋग्वे० १०।३२।६।।) नाी (ऋग्वे० १०।१ १३।।) आदि का भा उन्नेय किया गया है।

### आर्थिक अवस्था

आर्यों का सामाजिक अवस्था का बात प्राप्त कर तेन क पचात इम उनका आर्थिक व्यवस्था पर एक विहगम ऋषि टात्रेण। जमा कि-अय प्राग्मिक मन्व त्ता म कृषि गृह उद्योग पद्य तथा छात्र-व्ये पमान पर व्यवसाय जावन मावन का गानन रण इ उमा प्रकार भारत म भी मनुष्यों का उद्यम कृषि पशु-पालन घरतू-उद्योग पत्र तथा व्यापार था। मुविद्या के त्रिये अनका पृथक-पथक विवरण किया जायगा।

पशु-पालन—आर्यों की आर्थिक व्यवस्था का मूलाधार पशु-पालन था। ताँ तथा वरा म त्त जानन का काम लिया जाता था। ये अन्नगार तथा म्याद्यात्र तान तथा अय मामान-तान क लिय गाठी सावने क काम में भी त्राय जान थ। इनका जय पानतू पशुआ का उन्नेय हम ऋग्वेद ५।१ १६।।८।२०।२।।३। १।२।। म प्राप्त जाता है जिनम में ड प्रका, गत्त तथा कुत्त प्रमुख है। त्मी प्रकार चरगाहा (गाच्छ' ऋग्वे० १।१०।१।।) चरवाण (गापान ऋग्वे० १०।६०।३।।) का भा उन्नेय ऋग्वेद म किया गया है। स्वाभिल के चित्त के त्रिय पशुआ के बानों पर चित्त बना लिया जाता था।<sup>६</sup> ऋग्वे० १।९।१०।३।। म यह बात त्ता है कि पशु-हरण भा पृजा करता था। गायन का मार कल्याण का जाड मानन थे। घाडे का महत्व भा उन त्रिा काय था। य त्त-पचातन क काम म त्राय जान थे।

कृषि—पशु-पालन क पचात कृषि का हा म्यान आता है। कृषि का ऋग्वेद म बारा मत्त प्रदान किया गया है। कुछ इतिहासकारा ता ममा मन है कि कृषि जयों का प्रचातनम पथा था। प्रमाण-रूप क वरा त्त का त्त है। वरा क त्रिय

<sup>१</sup> ऋग्वे० ६।४८।१८।।

<sup>२</sup> ऋग्वे० १०।४५।९।। <sup>३</sup> ऋग्वे० ७।८६।६।।

<sup>४</sup> ऋग्वे० १।९।३।६।। <sup>५</sup> ऋग्वे० १।९।६।। <sup>६</sup> ऋग्वे० १।९।६।। <sup>७</sup> ऋग्वे० १०।९।३।। <sup>८</sup> ऋग्वे० १०।९।३।। <sup>९</sup> ऋग्वे० १०।९।३।। <sup>१०</sup> ऋग्वे० १०।९।३।।

<sup>११</sup> ऋग्वे० १०।९।६।। <sup>१२</sup> ऋग्वे० ७।१२।१०।।

भारतीय आय ईरानी आय दोनों कृषि धातु का प्रयोग करते थे। अतः इससे यह परि-  
रक्षित होता है कि इन दोनों शाखाओं के पथक हान क पूर्व में कृषि-वृत्ति इनमें  
प्रचलित हो चुका थी। बला द्वारा हल जाता जाता था। उस समय आजकल का  
भाँति बवल दो बला से हन नहीं जोता जाता था अपितु ६,८ या ११-१२ बला तक  
का हल खाने का काम मनाया जाता था।<sup>१</sup> य चव तथा घाय' की खती करते थे।<sup>२</sup>

पानी की कमा पत्न पर सिंचाई भी की जाती थी। पशुओं तथा मनुष्यों के पथक  
पथक कुआ का उत्कल ऋग्वेद १०।१०।१।७॥ म किया गया है। कुएँ से पानी निकाल  
कर एक बड़े ताल या नहर में सिंचाई के लिये भरा जाता था।<sup>३</sup> कुल्य' तथा झीला  
म भी सिंचन काय क लिये जल प्राप्त किया जाता था।<sup>४</sup>

व खाद का भा प्रयोग जानते थे उसको करिय कहते थे। इस प्रकार भली भाँति  
जुताई-बजाई करके तथा खाद द्वारा खती की उबरता बनाकर और सिंचाई के समुचित  
साधन एकत्रित करके ऋग्वेदिक काल के मनष्य काफी अच्छी फसल तयार करते थे।  
फसल तयार हो जान क पश्चात् उसे सिनी या हेंसिया से काटते थे और उसका गटठर  
या बोन बनाते थे।<sup>५</sup> ऋग्वेद १०।४८।७॥ तथा १०।७।१।२॥ से यह बात होता है कि  
वे अन्न को रादकर टल म अलग कर लेते थे और फिर उस आसाते थे। आसानवात  
का घायकृत कृत थे।<sup>६</sup> कृषि का क्षति पहुँचानेवाले कीड़े मको ग पक्षिया आदि का  
भी उत्कल ऋग्वेद १०।६८।१॥ म किया गया है। कमी-कमी अनावृष्टि तथा अति  
वृष्टि से भी कृषि का क्षति पहुँच जाती थी।

आखेट—कृषि तथा पशु पालन के पश्चात् इनका अय उद्यम आखेट भी था।  
पर ऐसा बात हाता है कि जासू केवल निम्न वर्ग के लोग करते रहे हाय। कम से  
कम आर के लिये या या कहिये कि जीवन-यापन के लिये तो केवल निम्न वर्ग के  
लोग ही आखेट करते रहे हाय। घन्युप-बाण जाल पत्न। आदि इनके आखेट सम्बन्धी  
हथियार थे। शर का गड्ड में गिरा कर उस पकड़ते थे।

गह उद्योग या दम्नकारी—विभिन्न प्रकार की दस्तकारी भी उस समय होती  
था। बर्त या तक्षण का उन दिना काफी पूछ थी। यह रम तथा गान्ध्या बनाता  
था। वह सब की पर सुंदर नकशी भी करता था।<sup>७</sup> इसके बाद कर्मकार' या  
नहार को म्यान दिया गया है। कर्मकार के कार्यों एवं विधियों का पूण ज्ञान हमें ऋग्वेद  
१०।७२।७॥५।९।९।११२।२।५।३०।१५।९।१।२॥ से हाता है। 'हिरण्यकार' या  
सुनार हिरण्य से आमूषण बनाता था।<sup>८</sup> ऋग्वेद से हम यह भा बात हाता है  
कि सिंघ जसी नशिया में सोना प्राप्त कि जाता था।<sup>९</sup> स्वर्ण निष्करणो कहा गया  
३।<sup>१०</sup> पर कमी कमा यह धरती से खान कर भा निकाला जाता था जसा कि ऋग्वेद  
१।११७।१॥ से ज्ञान हाता है। कर्मकार या विभिन्न प्रकार की वस्तुयें बनाता था।  
उन्हें चमटा पकान का बला का भली प्रकार जान था। बतार्ड-जुनाई क काय म भी  
य पण दप था। बिना का काम बहुधा सिनी या करता थी।<sup>११</sup>

१ ऋग्वेद ८।६।४८।१॥१०।१०।१।४॥

२ ऋग्वेद १।११७।२।१॥६।१३।४॥

३ ऋग्वेद ८।६९।१।२॥

४ ऋग्वेद ३।४५।३।१।१९९।४॥ ५ ऋग्वेद ८।७८।१०।१०।१०।१।३॥

६ ऋग्वेद १०।९४।१।३ ७ आखेट सम्बन्धी विवरण के लिये देखिए ऋग्वेद

३।४५।१॥ ९।८३।४॥१०।५।१।६॥१०।२८।१०॥ आदि

८ ऋग्वेद ९।११२।१॥ तथा ३।३३।९ ९ ऋग्वेद १।१२२।२॥

१० ऋग्वेद १०।८६।५॥ ११ ऋग्वेद ६।६१।७॥ १२ ऋग्वेद १-९२।३॥

विभिन्न प्रकार के उद्योग घाघा के करने की स्वतंत्रता प्रत्येक व्यक्ति को प्राप्त थी जसा कि पिछने पष्ठ म हमने उल्लेख किया है मैं कवि हूँ मेरे पिता वध हैं और मेरा माता पिसाहारिन है ।'

व्यापार—उस प्राचीन युग में भारतीय आर्यों ने इस क्षेत्र में जो उन्नति की वह उनके सीमित साधनों को लपते हुए पर्याप्त थी । देशीय तथा अन्तर्देशीय दोनों व्यापारों में य 'योग लगे हुए थे । पहले हम उनके घन मूल्य तथा विनिमय के साधनों पर ध्यान देंगे ।

आर्यों ने सिक्का का निर्माण नहीं किया था । कुछ विद्वानों ने निम्न को सिक्का माना है<sup>१</sup> पर यह किसी प्रकार का एक टाटा आभूषण था । विनिमय द्वारा ही इनका व्यापार होता था । ऋग्वेद में इन्द्र की एक मूर्ति का मूल्य १० गाव लिया है ।<sup>२</sup> ऋग्वेद में व्यापारी को वणिक् कहा गया है ।<sup>३</sup> ऋग्वेद में एक स्थान पर सींग नय करने के 'आगा-पीठा' का वणन भी आया है और यह भा उल्लिखित है कि जो सींग एक बार लप हो गया उसका निवहण करना आवश्यक था ।<sup>४</sup> ऋग्वेद का मा विवरण ऋग्वेद में प्राप्त होता है ।<sup>५</sup>

ऋग्वेद ७।९५।२॥ में समूह का प्रयोग किया गया है जिसका ध्वजाय महासागर में है । इनके सामुद्रिक व्यापार के सम्बन्ध में हम ऋग्वेद के कुछ मंत्रों को सम्मूह में लपते हैं ।<sup>६</sup> ऋग्वेद १।११६।३ में भुज्य की वधा है जो वडा सुदूर असहाय पेशान प । है क्योंकि उसका जनमान टूट गया है । यद्यपि कुछ विद्वान् इससे सहमत नहीं हैं कि आर्यों को ऋग्वेदिक काल में सामुद्रिक यात्रा का ज्ञान प्राप्त हो चुका था, तथापि उपरोक्त साक्ष्य के आधार पर—हम यह स्वीकार करना कि वे सामुद्रिक यात्रा करते थे । तबसगत ज्ञान परता है ।

विभिन्न उद्योग घाघा द्वारा उत्पन्न वस्तुओं की रिखा विनिमय द्वारा पुर या गाव में होती थी । आंतरिक व्यापार वृद्धा गादियों से जाता था । भक्ति पशु हा घन से अत विनिमय द्वारा प्राप्त पशुओं को लाने में कुछ कठिनाई का बोध करके लोग अग्रेष पडोस से ही व्यापार करते रहेंगे । ऋग्वेद में तो घन की परिभाषा बड़ी 'विस्तृत' है । उसमें पशु का घन माना गया है ।<sup>७</sup> अब का घन बताया गया है ।<sup>८</sup> इसी प्रकार 'वीर' का भी घन की मजा ली गई है और याग्य पुत्र को भी घन बताया गया है ।<sup>९</sup>

उपरोक्त विवरण में हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि ऋग्वेदिक काल में आर्थिक विधमता न थी और लोग सुखमय जीवन बिताते थे ।

### धार्मिक अवस्था

ऋग्वेदिक काल भारतीय आर्यों का वह प्रभात काल है जब उन्होंने अध्यात्म जगत में प्रथम पल्पण किया था । पर इस प्राग्भिक मान में ही उन्होंने इतना अधिक

<sup>१</sup> ऋग्वेद १-१२६।२॥ में १०० निम्न तथा १०० स्तदिया के घन का उल्लेख आया है । <sup>२</sup> ऋग्वेद ५।२।१॥३ <sup>३</sup> ऋग्वेद १-१२२-११॥

<sup>४</sup> ऋग्वेद ५।२४।१०॥ <sup>५</sup> ऋग्वेद २।२७।१॥१०।३४।१०॥८।७।२७॥

<sup>६</sup> ऋग्वेद १।४८।३॥१।९।७।४४॥१।१७।६॥ आदि

<sup>७</sup> ऋग्वेद ५।४।११॥ <sup>८</sup> ऋग्वेद ६।४।१।५॥ <sup>९</sup> ऋग्वेद २।१।१।५॥



उन्नति करती थी कि उनकी मायतायें, उनकी आस्थायें आज तक अकाट्य हैं। निश्चय ही आध्यात्मिक क्षेत्र की इस महती उन्नति के पीछे शताब्दियों की शिक्षा और योग्यता है जिसके योग स आर्यों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया। शिक्षा के अभाव में किसी भी विकसित धार्मिक आस्था का होना असम्भव है। अतः हम सर्वप्रथम ऋग्वेदिक कालीन शिक्षा पर प्रकाश डाल लाना आवश्यक समझते हैं।

**शिक्षा**—अपने विभिन्न क्षेत्रों में अजित थाता का सँजाय रखने के लिये शिक्षा का आवश्यकता प्रत्येक समाज का पती है। उस प्राचीनकाल में भी सम्मता एक सञ्चति की रक्षा के लिये शिक्षा का व्यवस्था करना अनिवार्य था। विभिन्न प्राचीन सभ्य देशों से नगमग मिश्र शिक्षा-पद्धति भारत में प्रचलित थी। यही प्रत्यक्ष ब्राह्मण का घर ही पाठशाला तथा प्रत्यक्ष ब्राह्मण शिक्षक था। ब्राह्मण शब्द का प्रयोग यही जान-बूझ कर केवल इसलिये किया गया है कि मह शब्द अध्यापक गुरु पण्डित आदि का घातक है। अपने घर में अध्यापक विद्याभियो का शिक्षा देते थे। वे विद्यार्थी और कोई नही स्वयं अध्यापक के पुत्र प्रपौत्र भतीजे आदि होते थे। इस प्रकार इस हम कौटुम्बिक शिक्षा पद्धति कह सकते हैं। ऋग्वेद में कहा भी लिखने का उल्लेख नहीं किया गया है। वे क मन्त्र रट जाते थे। विद्यार्थी द्वारा अध्यापक के कथित शब्दों की पुनरावृत्ति का उल्लेख एक मन्त्र में प्राप्त होता है।<sup>१</sup> उच्चारण आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता था। पाठ सम्बन्धी नियम भी कुछ मन्त्रों में दिय गये हैं<sup>२</sup> और अन्यत्र यह बताया गया है कि विद्यामित्र का बधिक पाठ कितना प्रौढ़ था।<sup>३</sup> पर हम शिक्षा की प्रमुख पद्धति तप की ही मान सकते हैं। तप का तपस्या द्वारा आत्मशिक्षण सम्भव हो सकता था। विद्यार्थी स्वयं पानाजन के नियम प्रयास करते थे और गुरु की सहायता आशिक रूप में आवश्यक थी। विद्यार्थी के आत्म शिक्षण का प्रमाण हमें ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों से प्राप्त होता है।<sup>४</sup> आत्मानुभूति के लिये विद्यार्थी तप करते थे जिससे वे मुनि विप्र आदि पद को प्राप्त करते थे।<sup>५</sup> ऋग्वेद में हम कुछ ऐसा संकेत भी प्राप्त होता है जिससे पाठशाला की-सी कोई संस्था थी ऐसा अनुमान किया जा सकता है क्योंकि एक स्थान पर यह बताया गया है कि विद्यार्थी दादुरा की भाँति पढ़ते थे।<sup>६</sup>

उपरोक्त विवरण से हम यह ज्ञात होता है कि शिक्षा का यह प्रारम्भिक रूप भी अत्यन्त ठास था। यत्कि मन्त्रों का कठोर नियम बिना किसी प्रकार काम चल ही नहीं सकता था अतः उनके लिये दूसरी कोई शिक्षा-पद्धति उपयोग नहीं सिद्ध होती।

**देवता**—ऋग्वेदिक काल की धार्मिक अवस्था का अध्ययन उनके देवताओं से आरम्भ करना ही अधिक सुगम होगा। अतः हम पहले उन पर ही प्रकाश डालेंगे।

मनुष्य उस आदि काल में प्रकृति के कितना निकट था इसका उदाहरण हम प्रागति हासिक काल की सम्मताओं का अध्ययन करते समय प्राप्त हुआ था। आर्यों ने भी उस प्रारम्भिक काल में सर्वप्रथम प्रकृति की उपासना आरम्भ की थी। प्रकृति ने उन्हें अधिक प्रभावित किया और जिस शक्ति ने सबसे अधिक प्रभावित किया उसका महत्त्व

<sup>१</sup> प्राचीन आर्यों की धार्मिक अवस्था के विषय अध्ययन के लिये प्रिंसवॉट ड होप की *Religion of the Rigveda* देखिये।

<sup>२</sup> ऋग्वे० ७।१०।३।४॥

<sup>३</sup> ऋग्वे० ३।५३।१५॥

<sup>४</sup> ऋग्वे० १।११।१।१५।२॥१०।१९०।१॥ आदि।

<sup>५</sup> ऋग्वे० १०।१३६।२॥१।२९।२॥५।२६।१॥

<sup>६</sup> ऋग्वे० ७।१०।३।५

अधिक बढ़ गया। ऋग्वेद में कुल ३३ देवता माने गये हैं। इनमें सबसे श्रेष्ठ इन्द्र अग्नि तथा सोम हैं। इन्द्र के लिये २५०, अग्नि के लिये २०० तथा सोम के लिये १०० से अधिक मंत्र रचे गये हैं। धी और पृथ्वी<sup>१</sup> को जगदमाता पिता कहा गया है और ६ मंत्रों में इनका गुणगान है। इसी प्रकार वर्षा के देवता पृथ्वी<sup>२</sup> तथा पराशर<sup>३</sup> के देवता 'धम का भी उल्लेख तीन-तीन मंत्रों में किया गया है। प्राचीन सभी सम्प्रदायों में सूर्य देव पर पाता रहा। भारत में भी इसका देवत्व प्राप्त हुआ था और सम्भवतः अपभ्रंशित अधिक ऊँचा स्थान दिया गया था। सूर्य की पूजा उसके लगभग पाँच अंशों में आती थी (१) सूर्य अपने वास्तविक रूप में, (२) सवितृ जिसकी प्राप्ति में सुप्रसिद्ध गायत्री मंत्र है।<sup>४</sup> (३) पूषण जो सूर्य की माधन शक्ति का चीन्हा है। (४) इसका एक अंश मित्र भी था। मित्र की आराधना ईरान में भी अधिक महत्वपूर्ण थी। (५) विष्णु भी, सूर्य का ही एक अंश माना जा सकता है क्योंकि उमर<sup>५</sup> सम्भवतः यह कहा गया है कि वह 'तीन छलांग भरता है'। इसी दृष्टिकोण से आधार पर ऐसा अनुमान लगाया गया है कि वह भी सूर्य का एक अंश था। पर कालान्तर में यह एक स्वतंत्र देवता हो गया। इनके अतिरिक्त कुछ अन्य देवता भी अधिक महत्वपूर्ण थे। इनमें धी की पुत्री तथा प्रभात की पुत्री देवा उषा प्रसिद्ध है जिसके लिये अनेक मन्दिर मंत्रों की रचना हुई थी। कुछ मन्त्र ऋचाएँ नाचे दी जा रही हैं—

सह वामन न उषा व्युच्छा दुहितृदिव ।

सह सुमनू वहना विभावरि गया दधि दाम्बती । (ऋग० १।४८।१॥)

अर्थात् हे देव कश्यपे उषा ! धन सहित हमारे लिये प्रभात करा। विभावरि उषा काल देवता प्रभूत अन्न देकर प्रभात करा। देवी ! दानशाला हाकर पशु रूप-धन का साय प्रभात करा।

अग्ने छत्रे मत्र (मण्डल वही) में उषा की शक्ति तथा उमर के गुणा का मन्त्र मिलता है—

वि या मज्जति समन व्यपिन उदे न वेर्योन्ति

यथा न विष्टे पितृवास आसते व्युष्टो वाजिनोवति ।

अर्थात् सम्पन्न प्रयत्नशील व्यक्ति को तुम (उषा) काय में नियुक्त करती थी। मिथुना तक का तुमसे प्रेरणा मिलती है। तुम नौहार-वर्षा हो और अधिक क्षण तक महा-उहरती। अप्रयुक्त धनसम्पन्न उषा तुम्हारा आगमन जानकर उदयेवाने पत्नी अपने धामना में बस नही रह सकती।

उपराक्त मंत्र मसार में प्रकृति-वाच्य और प्रीति वाच्य का पहला नमूना है।

धो के दूसरे पुत्र अश्विन हैं। ये सारा करण और सुन्दर रहते हैं। रुद्र का नाम भी इन देवताओं में विशेष उल्लेखनीय है। आगे चल कर ये शिव का रूप धारण कर लेते हैं। अस्त रुद्र का पुत्र मान गये जा अत्यन्त भयकर और मत्तवाने थे। वायु और वात भी रुद्र की मूर्ति जीवन-वधक देवता थे।

ऋग्वेद-काल में महत्वपूर्ण देवता इन्द्र पर कुछ अधिक प्रकाश डालना विषयवस्तु नहीं था। इन्द्र की शत्रु-हन्ता या शत्रु विनाशक शक्ति का ही मुख्य माना जाता रहा होगा तथा उनमें बार-बार शत्रुओं का नाश करने की प्रायश्चात की गई है। देखिये—

<sup>१</sup> 'स्वर्ग एवं पृथ्वी' ऋग० १।१४३।२॥

<sup>२</sup> ऋग० १।६२।१०॥

<sup>३</sup> डॉ० बमोप्रसाद, 'हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता', पृष्ठ ६३

उन्नति कर ली थी कि उनकी भायतायें उनकी आस्थायें आज तक अकाट्य हैं। निचय ही आध्यात्मिक क्षेत्र की इस महती उन्नति के पीछे शतादियों की शिक्षा और योग्यता है जिसके योग से आयों ने अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय दिया। शिक्षा के अभाव में किसी भी विकसित धार्मिक आस्था का होना असम्भव है। अतः हम सबप्रथम ऋग्वेदिक कालीन शिक्षा पर प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

**शिक्षा**—अपने विभिन्न क्षेत्रों में अजित माती को सजोय रखने के लिये शिक्षा की आवश्यकता प्रत्येक समाज को पती है। उस प्राचीनकाल में भी सम्म्यता एवं सस्कृति की रक्षा के लिये शिक्षा की व्यवस्था करना अनिवार्य था। विभिन्न प्राचीन सम्म्य देशों से लगभग मिश्र शिक्षा पद्धति भारत में प्रचलित थी। यहाँ प्रत्येक ब्राह्मण का घर ही पाठशाला तथा प्रत्येक ब्राह्मण शिक्षक था। ब्राह्मण शब्द का प्रयोग यहाँ जान-बूझ कर कवन इसलिये किया गया है कि यह शब्द अध्यापक गुरु पण्डित आदि का यातिक है। अपने घर में अध्यापक विद्याधियों को शिक्षा देते थे। ये विद्यार्थी और कोई नहीं स्वयं अध्यापक के पुत्र प्रपौत्र भतीज आदि होते थे। इस प्रकार इसे हम ऋग्वेदिक शिक्षा पद्धति कह सकते हैं। ऋग्वेद में कहीं भी लिखने का उल्लेख नहीं किया गया है। वं के मंत्र रट जाते थे। विद्यार्थी द्वारा अध्यापक के कथित शब्दों की पुनरावृत्ति का उल्लेख एवं मंत्र में प्राप्त होता है।<sup>१</sup> उच्चारण आदि पर अधिक ध्यान दिया जाता था। पाठ सम्बन्धी नियम भी कुछ मंत्रों में दिये गये हैं<sup>२</sup> और अथर्व मह बताया गया है कि विद्यार्थि का बधिक पाठ कितना शौढ़ था।<sup>३</sup> पर हम शिक्षा का प्रमुख पद्धति तर्प को ही मान सकते हैं। तर्प का तर्पस्या द्वारा आत्मशिक्षण सम्भव हो सकता था। विद्यार्थी स्वयं नानाजन के लिये प्रयास करते थे और गुरु की सहायता आशिक रूप में आवश्यक थी। विद्यार्थी के आत्म शिक्षण का प्रमाण हमें ऋग्वेद के अनेक मंत्रों से प्राप्त होता है।<sup>४</sup> आत्मानुमति के लिये विद्यार्थी तर्प करते थे जिससे वे मुनि विप्र आदि पद का प्राप्त करते थे।<sup>५</sup> ऋग्वेद में हम कुछ ऐसा सबेत् भी प्राप्त होता है जिससे पाठशाला की-सी कोई सस्या थी ऐमा अनुमान किया जा सकता है क्योंकि एक स्थान पर यह बताया गया है कि विद्यार्थी दादुरा की शक्ति पढ़ते थे।<sup>६</sup>

उपरोक्त विवरण से हम यह ज्ञात होता है कि शिक्षा का यह प्रारम्भिक रूप भी अत्यन्त ठोस था। बधिक मंत्रों को कठोर किये बिना किसी प्रकार काम चस ही नहीं सकता था, अतः उनके लिये दूसरी कोई शिक्षा-पद्धति उपयोगी नहीं सिद्ध होती।

**देवता**—ऋग्वेदिक काल की धार्मिक अवस्था का अध्ययन उनके देवताओं से आरम्भ करना ही अधिक सुगम होगा। अतः हम पहले उन पर ही प्रकाश डालेंगे।

मनुष्य उस आदि काल में प्रकृति के कितना निकट था इसका उदाहरण हम प्रागैतिहासिक काल की सम्मताओं का अध्ययन करते समय प्राप्त हुआ था। आयों ने भी उस प्रारम्भिक काल में सबप्रथम प्रकृति की उपासना आरम्भ की थी। प्रकृति ने उन्हें अधिक प्रभावित किया और जिस शक्ति ने सबसे अधिक प्रभावित किया उसका महत्त्व

<sup>१</sup> प्राचीन आयों की धार्मिक अवस्था के विषय अध्ययन के लिये प्रिन्सटन के होदय की *Religion of the Rigveda* देखिये।

<sup>२</sup> ऋग्वेद ७।१०।३।४।

<sup>३</sup> ऋग्वेद ३।५३।१५।

<sup>४</sup> ऋग्वेद १०।१०९।४।१०।१५४।२।१०।१९०।१। आदि।

<sup>५</sup> ऋग्वेद १०।१३६।२।११।१२९।२।५।२६।१।

<sup>६</sup> ऋग्वेद ७।१०।३।५।

अधिक बढ़ गया। ऋग्वेद में कुल ३३ देवता माने गये हैं। इनमें सबसे श्रेष्ठ इन्द्र अग्नि तथा सोम हैं। इन्द्र के लिये २५०, अग्नि के लिये २०० तथा सोम के लिये १०० से अधिक मंत्र रचे गये हैं। द्यौ और पृथ्वी को जगदमाता पिता कहा गया है और ६ मंत्रों में इनका गुणगात है। इसी प्रकार वर्षा के देवता पञ्चम तथा परनाक के देवता 'यम' का भी उल्लेख तीन-तीन मंत्रों में किया गया है। प्राचीन सभी सम्य दशा में सूर्य देव पद पाना रहा। भारत में भी इसकी देवत्व प्राप्त हुआ था और सम्भवतः अपभ्रष्ट अथवा अधिक ऊँचा स्थान दिया गया था। सूर्य की पूजा उसके लगभग पाँच अंशों में की जाती थी (१) सूर्य अपने वास्तविक रूप में, (२) सवितृ जिसकी प्रायः नामें सुप्रसिद्ध गायत्री मंत्र है। (३) प्रपण जो सूर्य की सर्वधन शक्ति का धोतक है।

(१) इन्द्रवय महाधन इन्द्रम मे हवामह । यजद्वयप वज्रिणम । (ऋग० १।७।५॥)  
अथवा (२) इन्द्र त्वातास आ वय वय धना ददामहि । जयेमसयुधि स्पध (ऋग०  
१।८।३॥) अर्थात् (१) इन्द्र हमारे मिन और सहायक हैं जो शत्रुओं के लिये वय  
धारण करते हैं । जो हम धन और प्रभूतधन के लिये इन्द्र का आह्वान करते हैं ।

(२) इन्द्र ! तमसे रक्षित होकर हम कठिन अस्त्र धारणकर द्वय रखनेवाले  
शत्रु को पराजित करेंगे ।

इसा प्रकार अय ऋचाओं से भी इन्द्र की शत्रु हनन शक्ति का बाध होता है।<sup>१</sup>  
वरुण 'याय व दवता माने गये हैं । इनका निवासस्थान आकाश माना गया है। इनसे  
'याय तथा साय हा दया की प्रायता जनक मन्त्री म की गई है । कुछ उदाहरण देखिये—  
ह वरुण दव ! हमारे पूजका द्वारा किये गये अपराधों का क्षमा करा । व्यक्ति  
गत रूप से किये गये भेरे अपराधों का भी क्षमा करो । हे वरुणराज यमिष्ठ की तरह  
अपने खूट से गाय व वृद्ध का मक्त करा अपहृत पशु का भाजन करनेवाले चार का  
जा दण्ड मिलता है उससे मक्त करो ।

हे वरुणदव ! यह मार्ग अपराधों के निवारण का हम से बन पा है । प्रसाद अथवा  
सुरा भाव अथवा दूत या अविवक के कारण अपराध हुआ है । या भाई भी कभी  
कभी छोटों को पस मार कर देता है । अपराध तो हमसे स्वप्न में भी हो जाया करते हैं ।

इसी प्रकार व अय उदाहरण ऋग्वेद में उपलब्ध है जिनमें वरुण दवता का रूप  
एक मायावीश का भाति आया है । उनसे अपराधों को क्षमा करने की प्रार्थना की  
गई है और कभी कभी उनसे अपराध भी पूछा गया है और इस प्रकार उनके अप्रसन्न  
हान का कारण पूछा गया है ।

उपरोक्त विवरण से हम ऋग्वेदिक काल के मनुष्यों की धार्मिक स्थिति का बोध  
हो जाता है और इस विवरण से यह बात होती है कि इनके धर्म में बहुदेववाद और  
प्रकृति उपासना का सम्बन्ध है । यहाँ ता निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह प्रकृति  
पूजा अपने स्थूल रूप में न होकर नाक्षत्रिक थी । वास्तव में प्रकृति के स्थूल रूप में  
उसकी पूजा तो ऋग्वेदिक काल के हजार या हजार वर्ष पूर्व सिंधु घाटी के निवासियों  
में प्रचलित थी । प्राकृतिक वस्तुओं में किसी देवी-देवता का आराधन करना जितना ही  
प्रकृति-पूजा के निकट है उतना ही बहुदेववाद के भी पास है । इसका मूल कारण यह  
है कि ब्रह्मदेवता की हान के लिये अर्थात् विभिन्न देवी-देवताओं की कल्पना के लिये उनमें  
किसी असाधारण या अमानवी ( दवा ) शक्ति की कल्पना करना अनिवार्य है और  
कल्पना तभी सम्भव है जब कल्पित वस्तु का कभी साक्षात्कार हो चुका हो । प्रकृति  
( बिजली महान सागर भयंकर आँधियाँ अग्नि आदि ) की शक्ति का साक्षात्कार  
मानव का सर्वप्रथम हुआ जो इसी शक्ति में उन्होंने देवताओं का आराधन किया  
होगा । इस प्रकार इनका धर्म प्रकृति-पूजा पर आधारित बन गया था ।

किन्तु ऋग्वेद काल में या या कहें कि ऋग्वेद में एक-द्वैतवाद की आरंभ जो स्पष्ट  
संकेत किया गया है वह भी इनका आध्यात्मिक उत्पत्ति का पराकाष्ठा है । इन मार  
देवताओं के परे उन्होंने एक एकी सत्ता का कल्पना की जो सर्वोपरि है और समस्त  
सृष्टि की जन्मदात्री है । वह सर्वोपरि शक्ति और कुछ नहीं है । 'याय' का  
कुछ ऋचाओं से यह स्पष्ट हो जायगा—

<sup>१</sup> ऋग० १।८।४॥

<sup>२</sup> ऋग० १।१४।५॥

सृष्टिकर्ता वास्तव में महान् है वही सबका मजन तथा पावन बना है सबके ऊपर उमी का अनुशासन है। भाग्यशाता लाग अपना इच्छाया की पूति उम तक म पान है जहाँ पुरुष सप्तपिया व परे निवाम करता है।

उपराकिन मत्र में इश्वर का शक्ति, उमके निवास-स्थान या जा मधेत प्राप्त जाता है वह प्राचीन आयों व एकश्वरवाद का पुष्ट प्रमाण है। उमी प्रजार दमवें मान्य म ८२वाँ मत्र का सक्त भी उसा आर है।

अब हम ऋग्वेदिक काल व देवताया तथा मनुष्यों म क्या सम्बन्ध था इम पर था। विचार करेंगे। प्रकृति-पूजकी का प्रकृति-पूजा की धारणा बहूना प्राकृतिक शक्ति म मयमीत हाकर प्राप्त होनी है उम मयानक शक्ति स अपनी रया व निमित्त व उम दवता का रूप दत हैं पर प्रकृति की महान शक्तिया वरुण मरुत, मूय आदि का पूजा आरम्भ करन म इसा मय का हाय है एना आयों व निये नहा कहा जा मयता क्याकि ऋग्वेद म ऐस उगाहरण मने प है जिमम हम देवताया आर मनुष्या व मत्रीपूण सम्बन्ध का बोध हाता है। उनके देवता उनके मित्र पिता रगव जादि थे। व उनक शत्रुओ स उनकी रक्षा करते थे। इस सम्बन्ध की अनक ऋचाया का उल्लख पिछन पछा म किया जा चुका है। अग्निदेव को रक्षक घर का मानिक तथा निवट सम्बन्धा तव घोषित किया गया है। इमी प्रकार एक दूसर स्थल पर अग्नि को वृषाकाती मित्र पिता, भ्राता, पुत्र तथा सबका पासक बतलाया गया है।<sup>१</sup> अग्नि का गृहपति भी कहा गया है।<sup>२</sup> इसा प्रकार इन्द्र को भी पिता-सा माना गया है। एक ऋचा म ऋषि कता है कि इन्द्र 'पिता की मति तुम हमारी बात सुना।'<sup>३</sup> सम्पूर्ण देवताया म प्रम भाव विद्यमान था ऐसा हम ऋग्वेद की कुछ ऋचाया स तात हाता है। ऋग्वेद म यह ना कहा गया है कि जा देवताओ स प्रम करत हैं उनम दवता भा प्रम करत हैं।<sup>४</sup> साम का प्रम माना गया है<sup>५</sup> तथा अयत्र व ई-का ऋषि देवताया का अपना प्रम मानते हैं।<sup>६</sup>

ऐसी ह। अनक ऋचाये हैं। जिनक अजार पर कुछ विद्वानों न भारतीय धम-साधना का एक प्रमुखपद्धति मकिन का वाज ऋग्वेद म निर्मित था। है। मकन एक मगवान का पिता, माता, सखा सभ्यकी भावा के लिए निम्ननिविः ऋचाएँ उच्य ह

ऋ० ४।१७।१७ऋ० ४।२५।२, ६।१।५ ५। ६।४ ८।८।१।०० ८।० १३ ८।० ८।११ तथा १०।७।३ आदि।

अपन देवताया का प्रसन्न करन व लिए प्रायण्ये करत थे। दूय धन सामग्य तथा अय याद्यान्न चदान थे। यथा की भी प्रधानता र्हा जा प्रत्यक घर म हाता था। धानिक वृत्या वा बितना महत्व था इमका पूण विवरण आयों व वर्गोवरणवाने परिच्छेद म दिया जा चुका है। अत उमका पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं।

<sup>१</sup> ऋगू० १।९४।१५॥२।१।९॥६।१।५॥

<sup>२</sup> ऋगू० ५।१।५॥५।६।८॥८।४९।१९॥

<sup>३</sup> ऋगू० १।१०४।९॥

<sup>४</sup> ऋगू० ४।२३।५-६॥

<sup>५</sup> ऋगू० ८।९८।७॥

<sup>६</sup> ऋगू० ६।२५।१॥८।४७।२॥

नतिक आदश—ऋग्वेदिक कालीन आयों के नैतिक आदर्शों पर भी दुष्टिपात करना आवश्यक है। ऋग्वेद में नतिक आदर्शों पर काफी जोर दिया गया है। नतिक आदर्शों की महानता पर ही किसी घम की उत्तमता माय हो सकती है। बुरा दशन ही घम में सब कुछ नहीं। नतिक आदर्श मानव मनुव के निकटतम सम्बन्ध को सुन्दरतम बनाने में सहायक होते हैं। ऋग्वेद में उल्लेख किया गया है कि देवता मित्रवरण अनत को जीत कर ऋत का पालन करते हैं।<sup>१२</sup> अथवा इस बात का भी उल्लेख है कि वरुण स्वभावतः अनत से घणा करते हैं और ऋत की वृद्धि करते हैं।<sup>१३</sup> देवता ऋत में पदा होते हैं ऋत को पालते हैं और वृत्ते हैं अनत से वी घणा करते हैं।<sup>१४</sup> ऋत की रक्षा के लिये मनुष्यों पर देवता कितना ध्यान रखते हैं इसका भी उदाहरण हम प्राप्त होता है। एक मंत्र में कहा गया है कि ऋत की वृद्धि के लिये मित्रवरण मनुष्यों पर वसी ही दुष्टि रखते हैं जैसे गेरिया अपने भेरे पर।<sup>१५</sup> चरित्र की शुद्धता पर ऋग्वेदिक काल में काफी जोर दिया गया था। ऋग्वेद ५।४४।३।५।६।३। आदि मंत्रों में यह ज्ञात होता है कि मनुष्यों के चरित्र निरीक्षण के लिये देवताओं ने निरीक्षक नियुक्त किया है। इसी प्रकार ऋग्वेद १।१४।७।५।१०।१।५। आदि ज्ञेय यह स्पष्टतया ज्ञात जाता है कि झूठ को अत्यधिक घणित समझा जाता था क्योंकि उक्त मंत्रों में झूठ का वाफा निन्दा का गई है। प्राचीन आयों में अतिथि सत्कार का बहुत बड़ा महत्त्व था। प्राचीन भारतीय सभ्यता के पोषक भारतीय ग्रामों में आज भी इसका वाफा महत्त्व है। यद्यपि आधुनिक भौतिकवादी युग में यह प्रथा समाप्त प्रायः है। ऋग्वेद में अग्निदेव का अतिथि का नाम से संबोधित किया गया है।<sup>१६</sup> इसी प्रकार राजा दिवाङ्गस अतिथियों की इतनी अधिक सेवा करता था कि उसे अतिथिदेव की उपाधि प्रदान की गई थी।<sup>१७</sup> अथवा यह उल्लेख किया गया है कि घर का सर्वोत्तम कमरा अतिथि के लिये दिया जाता था।<sup>१८</sup>

सदाचार एवं सज्जनता को वे कितना महत्त्व देते थे इसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

एक ऋषि वरुण से प्रायना करता है कि यदि उसने भाई मित्र साथी पाली या किसी अपरिचित का कुछ अहित किया हो तो देवता उसका पाप हर लें।

### ७-६ राजनीतिक अवस्था

ऋग्वेदिक काल का राजनीतिक अवस्था का अध्ययन की सुविधा के लिये निम्न लिखित भागों में विभक्त कर सकते हैं—

- (१) कुटुम्ब ( गृह या कुल )
- (२) ग्राम ।
- (३) विश ।
- (४) जन तथा
- (५) राष्ट्र ।

नाच इन पर पृथक्-पृथक् प्रकाश डाला जायगा।

कुटुम्ब—ऋग्वेदिक काल की सामाजिक अवस्था का वर्णन करते समय यह बताया गया है कि उनका कौटुम्बिक जीवन काफी सुसंरचित था। यहाँ कुटुम्ब शासन की भी

<sup>१</sup> ऋग्वेद ७।६६।१३॥

<sup>२</sup> ऋग्वेद ७।६६।१०॥

<sup>३</sup> ऋग्वेद ४।२५।४३॥

<sup>४</sup> ऋग्वेद ७।३।५॥ <sup>५</sup> ऋग्वेद १।५।१।६॥१।१।१।१।१।२।२।६।३॥ आदि।

<sup>६</sup> ऋग्वेद १।७।३।१॥

<sup>७</sup> ऋग्वेद ५।८।५।७॥

न्यूनतम इकाई था। कुटुम्ब का वृद्ध-बूढ़ा गृहपति होना था। प्रत्येक कौटुम्बिक समस्या का समाधान इसी के हाथ में रहना था। कुटुम्ब बहुधा बड़े-बड़े होते थे।

✓ ग्राम—कई कुटुम्बों का एक जगह बस जाना तथा इस प्रकार उस स्थान की आवासीयता का बढ़ जाना राजनीतिक क्षेत्र में कुछ नई आवश्यकताओं का कारण बन गया। प्रत्येक कुटुम्ब की व्यवस्था के लिये तो कुटुम्ब विशेष का गृहपति पर्याप्त था किन्तु अनेक कुटुम्बों की सम्मिलित व्यवस्था के निरीक्षण के लिये किसी अन्य पदाधिकारी का एक एक दूसरे सगठन की आवश्यकता थी। अतः कुटुम्बों के इस गिरोह का ग्राम<sup>१</sup> कहा जान लगा और ग्राम के अधिकारी को ग्रामणी<sup>२</sup> कहते थे। ग्रामणी की निर्वाचन-प्रणति क्या थी इस विषय पर काँ प्रकाश ऋग्वेद में नहीं पड़ता है। अतः यह कहना कठिन है कि वह राजा द्वारा निर्वाचित होता था या उसका पत्र वशानुगत था। पर इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसका पत्र काफी ऊँचा था और ग्राम शासन व्यवस्था का कर्णधार ग्रामणी ही होता था। ऋग्वेद में कहा-कही 'ग्रजपति' आया है पर यह सम्भवतः ग्रामणी का ही पर्यायवाची शब्द है।

विश—विश का सम्बन्ध में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि ऋग्वेद का विश कोई स्थानांतरण तहसील (sub division) परगना या कोई बग विशेष था।<sup>३</sup> ऋग्वेद ८।३५।१७।१८। संयुक्त पाठ होता है कि विश कोई बग विशेष था।<sup>४</sup> विश का प्रधान 'विशपति' होता था।<sup>५</sup>

जन—कई विश मिलकर जन बनते थे। जन का प्रधान गोप<sup>६</sup> कहलाता था। ऋग्वेद ८।६।४६।४८। में प्रतिष्ठ पञ्चजन का उल्लेख किया गया है। पञ्चजन पंच तुल्य यदु अनुस तथा द्रह्यु थे। प्रायः राजा ही जन का प्रधान अर्थात् गाप होता था।

✓ राष्ट्र—शब्द का लिय राष्ट्र शब्द का प्रयोग किया गया है।<sup>७</sup> इसमें महात्मक सरकार हान का अनुमान किया जाता है।

कुछ अन्य राजनीतिक सगठन भी रहे होंगे जिनका उल्लेख = वेद १०।१७९।२॥ तथा ५।७।११११। में किया है पर इनके सम्बन्ध में कुछ अन्य सामग्रियाँ नहीं प्राप्त होती।

✓ राजा—ऋग्वेद-काल के राजनीतिक विभाजन का अध्ययन करने के पश्चात् उसका शासन-व्यवस्था का अध्ययन करना सुगम है। राजा जो शासन प्रबंध के कर्णधार होता है हमारा विवेचना का प्रमुख विषय होगा।

प्रारम्भ में हम राजा की उत्पत्ति पर प्रकाश डालेंगे। ऋग्वेद में राजा शब्द का प्रयोग तो बार-बार किया गया है किन्तु इसका उत्पत्ति के विषय में वहाँ कोई उल्लेख नहीं है।<sup>८</sup> किन्तु वाचक हिन्दू ग्रन्थों में जिनमें एतरेय ब्राह्मण तथा तत्तिरीय ब्राह्मण

<sup>१</sup> ऋग्वेद १।४४।१०॥      ८ ऋग्वेद १०।६२।११॥१०।१०७।५॥

<sup>२</sup> देखिये श्री राधा कुमुद मुखर्जी की (Hindu Civilization p 78)

<sup>३</sup> देखिये पिछले पृष्ठों में आर्यों की सामाजिक व्यवस्था।

<sup>४</sup> ऋग्वेद १।२७।८॥

<sup>५</sup> ऋग्वेद ५।४२।१॥

<sup>६</sup> ऋग्वेद १०।१२४।८॥ ने यह उल्लेख किया गया है कि राजा बिहोन जन का एक प्रयोग बड़ा कार्यणि रहता (अर्थात् उन्हें राजा के अभाव में हारना पड़ा)

<sup>७</sup> देखिये एतरेय ब्राह्मण १।१४॥ राजनम करवामहे . आदि।



प्रमुख है दो कथाएँ आती हैं जिनसे हम राजा की उत्पत्ति का बोध होता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि इन दोनों ब्राह्मणों की सामग्रियाँ इतिहास के कितना निकट हैं पर राजा का उत्पत्ति सम्बन्ध कल्पना का बाध कर लेना भी आवश्यक है।

एतरेय ब्राह्मण का कथा इस प्रकार है—

एक बार देवताओं और असुरों में युद्ध हुआ। युद्ध में असुरों की विजय हुई और देवताओं का पराजय। देवताओं ने कहा कि हम लोग अराजकता अर्थात् राजा न रखने के कारण पराजित हुए हैं। हम लोग का अपना राजा बनाना चाहिए। इस प्रस्ताव का सब ने स्वीकार कर लिया।<sup>१</sup>

तत्तिरीय ब्राह्मण की कथा इस प्रकार है—

एक बार देवताओं तथा असुरों में युद्ध हुआ। प्रजापति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र इन्द्र को इसलिये छिपा दिया कि कहाँ असुर उस मार न डालें। उधर कथाओं में पुत्र प्रह्लाद ने अपने पुत्र विराचन का इसलिये छिपा दिया कि कहीं देव उस मार न डालें। किन्तु कथा का ऐसा न बनना कि राजा के बिना युद्ध नहीं हो सकता था। अतः उन्होंने देव प्रजापति के पास जाकर कहा राजा के बिना युद्ध करना अभिभव है। तत्पश्चात् यज्ञ करके उन्होंने इन्द्र से राजा हान का प्रार्थना की।

इस पारार्थिक कथा का यदि हम आनाचना का कसौटी पर कम तो यह मिलेगा कि तत्काल जान पड़ेगा कि हम देवासुर संग्राम (आय अनाय) संग्राम का पूर्ण विवरण प्राप्त हैं। संग्राम का विजय को घन स दखन पर यह बात होना है कि संग्राम में विजय एसी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जो सर्वशक्तिमत्पन्न सर्वाधिकारवाला है तथा जो लोगों की सुरक्षा कर सकता है। आर्यों का प्रारम्भ में अनायों से घोर संघर्ष करना पड़ा था और इन संघर्षों में न केवल सैनिक संगठन की आवश्यकता थी बल्कि संग्राम के नियमन के लिये अशान्तियुग में शान्ति-स्थापना आदि के लिये राजनतिक संगठन की आवश्यकता थी—अर्थात् सुन्दर शासन-व्यवस्था स्थापित करने तथा उसके संचालन के लिये किता राज का आवश्यकता पडा थी।

राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम एसी अनमान का सहारा लेना पड़ेगा कि अनायों से संघर्ष करने के लिए यह एक आवश्यकता थी।

ऋग्वेद में मित्र वरुण और अग्नि देवताओं ने अपने राजत्व के विषय में जो बातें कहाँ है उससे अनुमान जाता है कि इस लोक के राजा के शानदार हाथ थे। शान्ति और व्यवस्था कायम रखते थे और नये जनको आना का पालन करते थे।<sup>२</sup>

राजा का उत्पत्ति स्वभाविक गति से हुई और उसका पद स्वभावतः उच्च हो गया। राजा के उच्च स्थान का बाध हम ऋग्वेद की ऋचाओं से जाना है। पुराणों का राजा प्रसन्नस्यु कहना है देवता मनुष्य के कार्यों में सम्मिलित करते हैं। मैं राजा वरुण हूँ। देवता मनुष्य के शक्तिपूर्ण दत्त हैं जिनसे असुरों का नाश होता है

<sup>१</sup> इतिहास तत्तिरीय ब्राह्मण १।५।१५।

<sup>२</sup> उक्त उद्धरण डॉ० बनीप्रसाद की पुस्तक हिन्दुस्तान की पुरानी सभ्यता, पृष्ठ ६८ से लिया गया है। विज्ञान संसद ने इस सम्बन्ध में ऋग्वेद की निम्नलिखित ऋचाओं की ओर संकेत किया है—

३।४३।५।६९।१।७।६४।२।८।५६।१।६७।१। इत्यादि।

<sup>३</sup> ऋग्वेद ४।४२।

में इन्द्र हूँ, मैं वरुण हूँ ।<sup>१</sup> इससे एक आरत। राजा का महानता का बोध हाता है माय हा दूसरा आर इससे रह भी ध्वनि आता है कि राजा क देवा अधिकार म उनका विन्वास रहा होगा। राजा की आना सवमाय थी और जा लाग राजा की आना का नही मानत थे उनका साथ बल का प्रयोग किया जाता था।<sup>२</sup> लोगो मे राजमन्त्रि था मन्वका मकत हम ऋग्वेद ४।५०।८॥ से प्राप्त हुना है। राजा स हर प्रकार का सहायता का आशा का जाता थी। राजा यायाधीश के पद से याय करता था दीवानी आर फौजदारी दाना प्रकार क मामना वा फसला करता था और फौजदारी के मुकामा म यह एक विस्तृत विधान-महिता का उपयोग करता था।<sup>३</sup> राजा अण्यथा आर प्रजा का अपराधी पर दण्ड देता था इस काय म वह गुप्तचरो स भी काम लता था।<sup>४</sup> जहां वह अपराधिया का दण्ड देता था वहां वह तीन-दुपिया का महायता भा करता था। राजा स गाक उपहार भी लिया करत थे।<sup>५</sup> एक स्थान पर यह कहा गया है कि जा राजा रक्षा चरित्रवाल ब्राह्मण का सहायता करता है उमरा रक्षा देवता करत है।<sup>६</sup>

राजा तथा प्रजा के पारस्परिक सम्बन्ध (राजा क कृतव्य तथा अधिकारा) का उल्लेख कर उन क पञ्चान् राजा क रहना-महन पर भी दक्षिणत करना आवश्यक ह। राजा क सुगन्धमव का बोध हम ऋग्वेद की कुछ ऋचाओ स स्पष्ट हा जाता है। एक स्थल पर यह कहा गया है कि राजा मित्र और वरुण हजार यम्माशाने महल म रहत थ।<sup>७</sup> इतन विशाल भवन की कल्पना यह बताती है कि राजाआ र महन अत्यन्त मय एव सुन्दर थे। राजाआ की पाशाक का भी बोध हम ऋग्वेद स जाता है जिनम द्वा म्ना गया है कि राजाआ की आर दखना बहूत कठिन है क्याकि व स्वण स चमकते हैं।<sup>८</sup>

शामन प्रश्न पर प्रकाश डालन क पूर्व ऋग्वेद क शाब्दिक राजय तथा सम्राट पर भा विचार कर जेना आवश्यक है। राजन्य का प्रयोग ऋग्वेद म बार-बार किया गया है। इसका प्रयोग दो अर्थों म किया गया है—(१) जमादार तथा (२) राजा। एसा पात हाता है कि राजा क चारो आर जमादार (राजय) रहत थे जा राजा का प्रमुना का स्वीकार करत थे और माय ही के कुछ विषया में स्वतंत्र रूप स भी शासन करत थ। इसा प्रकार सम्राट् शाब्दिक का भी प्रयोग किया गया है। इसम यह पात हाता है कि कई राजे जिना बडे राजा की प्रधानता स्वीकार कर उन थे और तब उन सम्राट कहा जाता था।<sup>९</sup> पर इस सम्बन्ध म कुछ अधिक प्रामाणिक ढग स नहीं कहा जा सकता क्याकि तत्सम्बन्धा साक्ष्या का सवया ०भाव है।

✓ राजा के मन्त्री—शामन-नाय चाह जितना भी प्रारम्भिक रूप में हा उमम राजा क अनिरिक्त कुछ अय कर्मचारियो की आवश्यकता प ती है। ऋग्वेदिक काल म भा राजा का सुन्दर शासन-व्यवस्था क लिये कुछ सहायका की आवश्यकता था। पुरोहित इनम प्रधान था। पुरोहित का प्रभाव राजा पर अधिक रहता था। अन्त म अग्नि

<sup>१</sup> ऋ० ४।४२

<sup>२</sup> ऋग्वे० ७।६।५॥९।७।५॥

<sup>३</sup> ऋग्वे० १।२५।१३॥४।४।३॥

<sup>४</sup> ऋग्वे० ८।४७।११॥

<sup>५</sup> ऋग्वे० ५।५०।८-९॥

<sup>६</sup> ऋग्वे० २।४१॥५॥७।८।५॥

<sup>७</sup> ऋग्वे० १।१८५।८॥८।६३।८॥

<sup>८</sup> दक्षिण मन्त्रादिनि और कीध *Vedic Index* पृ०, ४३२॥

<sup>९</sup> ऋग्वे० १।६७।१॥

प्रमुख है दो कथायें आती हैं जिनसे हम राजा की उत्पत्ति का बोध होता है। यद्यपि यह कहना कठिन है कि इन दाना ब्राह्मणा की सामग्रिया इतिहास के कितना निकट है पर राजा की उत्पत्ति सम्बन्धी कल्पना का बोध कर लेना भी आवश्यक है।

एतरेय ब्राह्मण की क्या इस प्रकार है—

एक बार देवताओं और असुरों में युद्ध हुआ। युद्ध में असुरों का विजय हुई और देवताओं की पराजय। देवताओं ने कहा कि हम लोग अराजकता अर्थात् राजा न रखने के कारण पराजित हुए हैं। हम लोगों को अपना राजा बनाना चाहिए। इस प्रस्ताव का सब ने स्वीकार कर लिया।<sup>१</sup>

तत्तिरीय ब्राह्मण का क्या इस प्रकार है—

एक बार देवताओं तथा असुरों में युद्ध हुआ। प्रजापति ने अपने ज्येष्ठ पुत्र इंद्र का कसलिये छिपा दिया कि वही असुरों को मार न डालें। उधर कण्व ने पुत्र प्रह्लाद ने अपने पुत्र विरोचन को इसलिये छिपा दिया कि वही देवों को मार न डालें। किन्तु देवों को ऐसा ज्ञान हुआ कि राजा के बिना युद्ध नहीं हो सकता था। अतः उन्होंने देव प्रजापति के पास जाकर कहा, राजा के बिना युद्ध करना असम्भव है। तत्परचायन करके उन्होंने इंद्र से राजा हान का प्राथम्यता का।

इस पारमार्थिक कथा का यदि हम आलोचना का बर्णना पर करें तो यह बिल्कुल ही तर्कसंगत जान पड़ेगी। हम देवताओं सग्राम (जाय-अनाय) सग्राम का पूरा विवरण प्राप्त है। सग्राम की विधियाँ का ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट होता है कि सग्राम में किमा एसी शक्ति की आवश्यकता पड़ती है जो सबशक्तिसम्पन्न सर्वाधिकारवाला तथा जो लोगों की सुरक्षा कर सकता है। आर्यों का प्रारम्भ में अनायों से घोर सघर्ष करना पड़ा था और इन सघर्षों में न केवल सैनिक संगठन का आवश्यकता थी बल्कि सग्राम के लिये घनसंचय उस अशांतिपूर्ण में शान्ति-स्थापना आदि के लिये राजनतिक संगठन की आवश्यकता थी—अर्थात् सुदूर शासन व्यवस्था स्थापित करने तथा उसके संचालन के लिये किसी राज की आवश्यकता पड़ी थी।

राजा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में हम इसी अनुमान का सहारा लेना पड़ेगा कि अनायों से सघर्ष करने के लिये यह एक आवश्यकता थी।

ऋग्वेद में मित्र वरुण और अग्नि देवताओं ने अपने राजत्व के विषय में जो बातें कहा है उससे अनुमान होता है कि इस लोक के राजा के शानदार होते थे। शान्ति और व्यवस्था कायम रखते थे और लोग उनकी आज्ञा का पालन करते थे।<sup>२</sup>

राजा की उत्पत्ति स्वभाविक गति से हुई और उसका पद स्वभावतः उच्च हो गया। राजा के उच्च स्थान का बोध हम ऋग्वेद के ऋचाओं से होता है। पुरुषों का राजा असदस्यु कहता है देवता मुख वरुण के कार्यों में सम्मिलित करते हैं। मैं राजा वरुण हूँ। देवता मुख वह शक्तियों देने हैं जिनसे असुरों का नाश होता है

<sup>१</sup> देखिये तत्तिरीय ब्राह्मण १।५।९॥

<sup>२</sup> उक्त उद्धरण डॉ० बनीप्रसाद की पुस्तक हिन्दुस्तान की पुरानी सम्मति, पृष्ठ ६८ से लिया गया है। विद्वान् लाल ने इस सम्बन्ध में ऋग्वेद की निम्नलिखित ऋचाओं की ओर संकेत किया है—

१।४३॥५।६९॥१॥७।६४२॥८।५६॥१॥६७।१॥ इत्यादि।

<sup>३</sup> ऋ० ४।४२।



को बड़ा पुरोहित तथा यन म सहायक कहा गया है।<sup>१</sup> उसका कार्यालय 'पुरोहिती और पुरोष' कहलाता था।<sup>२</sup> पुरोहित राजा का अभिन्न हृदय मित्र पयप्रदशक दाशनिव तथा सहायक होता था। बशिष्ठ विद्वामित्र आदि पुरोहितों का उल्लेख ऋग्वेद किया गया है। पुरोहिता का प्रमुख कार्य राजपरिवार के धार्मिक गुरु के रूप में था पर वे राजा के साथ रण क्षेत्र में भी जाते थे जहाँ वे अपने मन्त्रा द्वारा राजा की शक्ति एवं सुरक्षा की वृद्धि करने की प्रार्थना करते थे।<sup>३</sup> इस प्रकार धार्मिक कृत्यों में सर्वे सवा हान के अतिरिक्त वह राजनतिक कार्यों में भी अपना प्रमुख हाथ रखता था। पुरोहिता के विषय में डा० कीच का निम्नलिखित मत भी विशेष उल्लेखनीय है—

पुरोहित राजा के साथ रण-क्षेत्र में जाता था और अपनी प्रार्थनाओं तथा मन्त्रा द्वारा राजा की विजय का प्रयत्न करता था। अपनी इस सेवा के लिये उस बड़े-बड़े पुरस्कार प्राप्त करते थे। ऐसा जान पता है कि पुरोहितों के सबसे बड़े पुरस्कार प्राप्त होते थे। उन दिनों की सामाजिक अवस्था ऐसी थी कि पुरस्कार में व्यक्तिगत सम्पत्ति भी जाती थी भूमि-दान की प्रथा नहीं थी परन्तु उस काल में भी हम एमी कल्पना कर सकते हैं कि राजा अपने पुरोहित अथवा मन्त्रेय का राज्य की आय का एक बड़ा भाग पुरस्कार में दे सकता था।

डा० कीच के उपरोक्त कथन से यह बात होता है कि पुरोहिता को काफी सम्मान प्राप्त था और उन्हें आधिक अभाव भी नहीं था।

पुरोहित के बाद सनानी का पद आता है। यह भी राज्य का प्रमुख पदाधिकारी था। सनानी सनाध्यक्ष होता था।<sup>४</sup> इसकी नियुक्ति सम्भवतः राजा स्वयं करता था।

कुछ अन्य पदाधिकारियों का भी उल्लेख ऋग्वेद में किया गया है जिनमें ग्रामणी का स्थान प्रमुख है। ग्रामणी के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जा चुका है। ग्राम शासन का सम्पूर्ण भार इसी पर था।<sup>५</sup> उपरि तथा इम्य नामक पदाधिकारियों का भी उल्लेख किया गया है।<sup>६</sup> कुछ समाचारवाहक दूत तथा रक्षा के प्रबंधकों का भी वर्णन प्राप्त होता है जो अपने कार्य में काफी कुशल बुद्धिमान तथा राजमकल थे। इस प्रकार विभिन्न राज-पदाधिकारियों से उक्त राजा शासन करता था।

**समा समिति**—राजपदाधिकारियों के परचात हम उन सत्त्याओं पर विचार कर लेना आवश्यक है जो स्वयं राजा तब के निर्वाचन का अधिकार रखती थी तथा प्रजा का प्रतिनिधित्व करती थी। ये सत्त्याएँ समा या समिति हैं। ऋग्वेद के अनेक स्थलों पर समा का उल्लेख किया गया है।<sup>७</sup> किन्तु दुख है कि इन सत्त्याओं से समा के कार्यों का कार्य ठाक-ठाक नहीं हो पाता है। समा में बटन योग्य व्यक्ति को सम्म' कहा

<sup>१</sup> ऋ० १।४४।१०।३।२।८॥ पुरोहित को महत्ता के लिये ऋ० १।१।१॥ देखिये।

<sup>२</sup> ऋ० ७।६०।१२॥ ७।८३।४॥

<sup>३</sup> ऋ० ७।१८।१३॥

<sup>४</sup> ऋ० ७।२०।५॥९।९६।१॥

<sup>५</sup> ऋ० १०।६३।११॥

<sup>६</sup> ऋ० १०।९७।२३॥ तथा १।६५।४॥ अन्ता

<sup>७</sup> ऋ० ७।६१।३॥ १।२५।३॥६।६७।५॥७।६।१६॥ आदि।

<sup>८</sup> ऋ० १।२८।६॥८।७।९॥९।३।५॥

नवकुलीन व्यक्तिता (मुजात) की एक समाजा भी उल्लेख किया ग

यों को समा थी। किन्तु इस सम्बन्ध में बहुत ही मत-विभेद है जि  
 का सा टाला जायगा। यहाँ पहले मत-विभेद के कारण स्वरूप उपस्थित  
 एक दूसरी सस्या पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। इस सस्या का  
 मति था। समा की भाँति समिति का भी ऋग्वेद में यद-स्य उल्लेख किया  
 है किन्तु उसके कार्यों का भी स्पष्टाकरण इन मन्त्रों से नहीं होता। समिति में राजा  
 उपस्थिति का विवरण प्राप्त होता है और यह ज्ञात होता है कि वह समिति के  
 प्रधान का आसन ग्रहण करता था।<sup>३</sup> समिति में राजा के प्रभुत्व का संकेत हम कुछ  
 अन्य मन्त्रों से भी प्राप्त होता है।<sup>४</sup>

समा और समिति एक ही सस्या है या दो अलग अलग सस्याएँ हैं और यदि  
 अलग-अलग हैं तो उनका कृतव्य और अधिकार क्या था इस विषय में इतिहासकारों में  
 मतभेद है। लुडविग के मतानुसार समा में उच्चकुलीन (मयवन एवं ब्राह्मण) भाग  
 लेते थे और समिति में जनसाधारण भाग लेते थे। मिमर यह तो स्वीकार करते हैं कि  
 समिति में सागरे जाता भाग लेती थी किन्तु समा के विषय में उनका यह विचार है कि  
 यह कवन गाँव के लोगों की थी। वीथ महोदय कहते हैं समिति सम्पूर्ण जाति के  
 कार्यों के लिये जनता की बैठक होती थी और समा समिति के एकत्रित होने का स्थान  
 होता था जहाँ सामाजिक बठकें हुआ करती थी। इस बात का स्पष्ट रूप से संकेत  
 किया गया है कि समिति में राजा उपस्थित रहता था और इसमें सन्देह करने का कोई  
 कारण नहीं कि महान् अवसरों पर जाति के सभी लोग उन समझौता पर विचार  
 करने या कम से कम निर्णय देने के लिये वहाँ एकत्रित होते थे जो उनके सम्मुख जाति  
 के महान् व्यक्तियों द्वारा रखी जाती थी।<sup>५</sup>

किन्तु समा और समिति को १ मानने के लिये हमें एक भारतीय मान्य भाषा  
 करता है।<sup>६</sup>

समा और समिति चाहे दो सस्याएँ हों, अथवा एक पर इनका राजनीति में अधिक  
 महत्त्व जान पड़ता है। समा में उच्चकुलीन (समा) समा और समिति में  
 सामान्य (चाहे वे ग्राम से सम्बन्धित ह  
 विचार विमर्श इन्हीं सस्याओं में होता था। य निश्चय ही राजा का निरकुस हान में  
 बचानी रही होगी।

आय-व्यवस्था—ऋग्वेद में समा सम्बन्ध में बहुत कम जाना जा सकता है। अत  
 जो कुछ माध्य उपनय हैं उन्हीं आधार पर ऋग्वेदिक काल की आय-व्यवस्था का

<sup>१</sup> ऋग्वेद २।२४।१३॥, १०।७।१।१०॥ तथा ४।२।५॥ भी देखिये।

<sup>२</sup> ऋग्वेद ७।१।५॥

<sup>३</sup> ऋग्वेद १०।१७।६॥ ९।१२।६॥

<sup>४</sup> ऋग्वेद १०।१६।५॥

<sup>५</sup> देखिये कीथ, (Cambridge History of India Part I p 61)

<sup>६</sup> देखिये अथर्ववेद ७।१२।७॥ जितने समा और समिति को प्रजापति की धी

पुष्टिदा बहा गया है।

लगाया गया है। यह प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग है और हमें पृथक् पृथक् बबर या को बड़ा प्य लागाना या बोलबाला था जिनके 'याय का मापदण्ड था धून का बदला मून और 'यपि जपन विस्तृत जय म तो यह आज भी लागू है पर उस प्रागतिहासिक युग में दाशईसका प्रयाग सीमित अथ म होता था अथवा यदि किसी न किसी व्यक्ति को नाक काट लाता उसका भा नाक काट ला जाता थी। इस मापदण्ड की श्राप ऋग्वेदिक काल के आर्यों पर निश्चय ही पड़ी होगी पर इन्होंने जपन बौद्धिक विज्ञान के कारण कुछ सुधार ला दिया। यह सुधार था जीव का मृत्यु निर्धारित करना। मनुष्य का शतदाम कना गया है।<sup>१</sup> अर्थात् एक मनुष्य का मूल्य १०० गाय है। हमी प्रकार वरदय शान् भी आया है।<sup>२</sup> इससे यह स्पष्टतया पता हो जाता है कि मनुष्य के जीवन का मूल्य पहले ही निर्धारित कर दिया गया था और जो व्यक्ति उन् जान से मार डालता था उसका उस मत्त मनुष्य के सम्बन्ध या उत्तराधिकारी का निश्चित धन देना पता था। हमें स प्रभावित होकर धर्मसूत्रा म एक कदम और आगे बढ़कर यहाँ तक निश्चित कर दिया गया कि अमुक व्यक्ति का हत्या पर इतना और अमुक का हत्या पर इतना गायें दनी होगी।

पर इससे अतिरिक्त कुछ अन्य दण्ड भी थे। ऋग्वेद में देनाजा तथा मनुष्य के मन्त्राण्ड का उल्लंघन किया गया है।<sup>३</sup> मन्त्रवत् कुछ अपराधा पर जलखान का भा सजा था। दाघव्यास का क्या के आधार पर कुछ जशा तब यह अनुमान किया जा सकता है कि अपराध साबित करने के लिये पाना और जाग का पगाना का भी प्रचलन था।<sup>४</sup> मध्यमशा शान् भा कइ म्भवा पर जाया है जिससे यह अनुमान लगाया जाता है कि कुछ शगवा का निपटारा पच बाच म कर लिया करते थे। अपराधा के विषय म हमें ज्ञात होता है कि चारा (अधिकतर पाना का चारा) ला करता था पर व अन्न वस्त्र द्रव्य आदि भा चारा न जान थे और पता नग जान पर उनका दुर्गा का जाता था।<sup>५</sup>

इस प्रकार हम देखते हैं कि इनका ज्ञान व्यक्त्या जमी पणतया प्रारम्भिक अवस्था म था पर ही यह सुधार की ओर निरन्तर बढ़ रहा थी और आगे चलकर इसमें जनक परिवर्तन आ गया।

✓ युद्ध प्रणाली—युद्ध प्रारम्भिक आर्यों का विज्ञान गुण था (यद्यपि उन्हें उनकी सम्मता के मूल मूल-तत्वा के आधार पर सामरिक प्रवृत्ति का कहना उचित नना क्याकि युद्ध सम्बन्धी उन्नति इन्होंने बड़े का अनर्यों का पराजित करके अपना मन्कुनि एवं सम्मता के हित म किया)। युद्ध के विषय म ऋग्वेद म सामग्रिया का वाच्य है। युद्ध बहुधा आत्मरक्षा या विजया के लिये तथा कमा-कमा नूट के लिये हाने थे।<sup>६</sup>

सन म पदर तथा रथ का अधिक महत्व था। रथा म न जान या चार साहसी घोड़े लगाये जाते थे। ऋग्वेद म बलिगि म्भ्र शम्भ निम्ननिम्नित थे —

- १ ऋग० २।३२।४॥
- २ ऋग० ५।६२।८॥
- ३ ऋग० ४।१२।५॥
- ४ ऋग० १।१५।८।५॥
- ५ ऋग० १।१५।१॥१।४२।३॥।८।२।१।६॥।४।३।८।५॥
- ६ ऋग० १०।१४।२।४॥
- ७ ऋग० १०।३३।५॥ तथा २।१८।१॥

(१) घनुष (८।७२।४॥) चाण (६।७५।१७।), (२) ववच (१।३१।१५॥, १०।१०।१।८॥), (३) हस्तघ्न (वाहुरक्षक-६।७५।१४) तथा (४) जय अस्त्र शस्त्र जम अमि (तलवार) माला बर्छा आदि।

गण की मयूरत का वणन हम दस राजाओं के युद्ध में प्राप्त होता है जिसका वणन किया जा चुका है।

ऋग्वेदिक काल का समस्त परिस्थितिया का अध्ययन करने के पश्चात् हम इस निष्पत्ति पर पहुँचते हैं कि किसी उत्थन्न विशाल एवं सर्वोत्तम सम्पत्ता के लिये जिन मूल मूल-शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है वे साग तत्व ऋग्वेदिक कालीन मय्यता में विद्यमान हैं कुछ तो इतनी विकसित अवस्था में हैं कि उनमें कोई भी विक्रम परि वर्तन परिवर्तन हम आज तक नहीं कर सकें। इस काल की सम्पत्ता एवं सस्कृति के इतने विकसित रहने का एकमात्र कारण यह है कि यह शताब्दियों की साधना का अथवा युगों का तपस्या का बरदान है।



## ६ | उत्तर वैदिक काल

वास्तव में सम्यता के काल का विभाजन अत्यन्त कठिन है और साथ ही सम्यता के काल विशेष में विभाजन करना भी एक समस्या है। किसी भी सम्यता के पीछे शक्त्यादिवा की शारीरिक मानसिक क्रियाओं प्रक्रियाओं का कद्रामूल प्रतिकूल रहता है—उसमें प्रारम्भिक माध्यमिक तथा पूर्ण विकसित अवस्थाओं का समन्वय रहता है। इतनी मिश्रित प्रवृत्तियों का परिष्कृत रूप लेकर कोई सम्यता आग बरना है। इसी प्रगति में जो काल विशेष असंख्य असाधारण देन दे जाता है उस अवधि तक उस सम्यता का नामकरण उसी काल विशेष के आधार पर कर देते हैं। जिस ऋग्वेदिक काल की सम्यता का उत्तम पिछले परिच्छेद में किया गया है वह आर्यों के भारत प्रवेश से लेकर ऋग्वेद की रचना तथा उसके बहुत पश्चात् तक की सम्यता है। पर ऋग्वेद के पश्चात् जब कुछ अन्य महत्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थों की रचना हो जाती है तो इस काल की सम्यता की ऋग्वेदिक काल की सम्यता से पयक करने का प्रश्न क्यों उठ खड़ा होता है? क्या यह सबका मौलिक नवीन या कोई भिन्न सम्यता है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर केवल यही है कि सम्यता भिन्न नहीं है सम्यता के मूलभूत तत्व भिन्न नहीं है पर हाँ कुछ ऐसे कान्तिकारी परिवर्तन-परिवर्धन अवश्य हो जाते हैं जो एक ही सम्यताधारक दो धारा में विभक्त-सा कर देते हैं। इस महान् परिवर्तन को हम किसी प्रकार प्रगति का सना दे सकते हैं। इसमें कुछ परिष्कार कुछ सशोधन और साथ ही कुछ अधानुकरण भी हैं। अतः इस हम किसी काल विशेष की सम्यता न कहकर उत्तर वैदिक काल के धर्मों में वर्णित सम्यता कहें ता अधिक उपयुक्त होगा। क्योंकि वैदिक कालीन सम्यता के समस्त परिवर्तन का बोध हम इसी धर्मों से होता है।

### साधन

सबप्रथम हम उन साधनों के विषय में जान लेना चाहिए जिनसे वांछित सम्यता पर प्रकाश पड़ता है।

ऋग्वेद के पश्चात् आर्यों ने जिस धर्म का सजन किया वह सामर्थ्य है। ऋग्वेद के ही कुछ मंत्रों का संग्रहान करके इस दूसरे वेद की रचना हुई थी। इसमें कुल ७५ मंत्र मौलिक हैं। तत्पश्चात् यजुर्वेद का रचना हुई। यजुर्वेद का संस्करण है—(१) कृष्ण तथा (२) शुक्ल। कृष्ण की चार संहिताएँ हैं निम तान (तत्पश्चात् काक तथा मन्त्रायणी) पूर्ण हैं तथा चौथा अपिष्टल अथुरा है। यजुर्वेद की वाजसनेय्य संहिता का शुक्ल कहते हैं। इसमें ४ अध्याय हैं। यजुर्वेद को धर्मों में अध्वर्य (प्रथम पुरा हिन्दू) पठते थे। चौथा तथा अन्तिम वेद अथर्ववेद है जिसका रचना सम्भवतः यजुर्वेद के पश्चात् हुई या किन्तु इससे कुछ अग ऋग्वेद के समान ही प्राचीन है। अथर्ववेद के २० भाग हैं जिनमें कुल ७० मंत्र हैं।

अबला ऋग्वेद का लगभग एक हजार वर्षों का मानवान् सामर्थ्य एवं विभिन्न भौतिक तथा आध्यात्मिक विकास का प्रतिनिधित्व करता है यद्यपि यह मा ठाक है कि वेद-वर्णित विचार सर्वोत्तम साधनान और साधनानुमानिक अथवा बहुध्वनित

नहीं है। जहाँ मनीषिया द्वारा जनता जनादन की आवाज श्रुचाभा के रूप में दुहराई जा रहा थी वही कुछ नये प्रयोग भी किये जा रहे थे जिन्होंने सब साधारण को उस युग में सहमत होना ही आवश्यक न था। ऋग्वेद संहिता के बाद शेष तीन संहिताओं का स्वर समान ही रहा और वैदिक धर्म भावनाओं में सर्वोच्च एवं सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषय यज्ञायुक्तमवाण्ड एवं ज्ञान-सुखान्त हो रहे। ऋग्वेद के सामाजिक और राष्ट्रीय नाश-जीवन के बहुत निकट आनेवाला संहिता है अथर्ववेद संहिता जिसमें घरलू पारिवारिक, जीवन तत्व के अनेकानेक पहलुओं से सम्बन्धित मन्त्र हैं। रोग निवारण जादू-टाने में लकर प्रमगीत तत्व यहाँ उपलब्ध हैं। संहिताओं में चार ब्राह्मण आज हैं जो भारतीय गद्य-साहित्य के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इनमें वेदा के एक विषय यज्ञोक्त कमवाण्ड का पूरा विस्तार दिया गया—इतना अधिक कि उसका सूक्ष्म से सूक्ष्म भाग का विवरण किया गया। कथाओं द्वारा इनमें कमवाण्ड का महत्व भी समझाया गया और साथ ही कमवाण्ड की उत्पत्ति पर भी विचार किया गया। इन कमवाण्डों तथा कथाओं की धराहर हम महाकाव्या से हाने दूये पुराणा के माध्यम से मिलता है।

वेदों की रचना समाप्त हो जाने के पश्चात् कुछ ऐसे ग्रन्थों की आवश्यकता पड़ी जो वेदों के संपन्न विषय एवं प्रतिपादित तथ्यों का स्पष्टीकरण कर सकें। वेदों के अधिकांश भाग्य या भाष्यमयी भाषा में हैं। अतः सर्वसाधारण के लिए गद्यमयी या श्लोकगद्य मय या ओचापशीली में ब्राह्मणों की रचना हुई। इन विभिन्न ब्राह्मणों का सम्बन्ध पद्यक-पद्यक वेदों से है जैसे ऐतरेय तथा कौपीतकी ब्राह्मण का सम्बन्ध ऋग्वेद से पञ्चविंश तथा छान्दोग्य ब्राह्मण का सम्बन्ध सामवेद से, शतपथ का सम्बन्ध शुक्ल यजुर्वेद से तत्तिरीय ब्राह्मण का सम्बन्ध दृष्ट्य यजुर्वेद से तथा गोपथ ब्राह्मण का सम्बन्ध अथर्ववेद से है। ऐतरेय ब्राह्मण में यज्ञ, अग्निहोत्र, रात्र्याभियन्त्र एवं कुछ प्राचीन अनिष्टित राजाओं का वर्णन प्रस्तुत होता है। कौपीतकी ब्राह्मण में कुल ३० अध्याय हैं और यह प्रतिपाद्य विषय भा ऐतरेय ब्राह्मण के समान है। इस ब्राह्मणों से प्रचुर ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त होता है जिसके पक्ष विवरण की आवश्यकता नहीं, प्रत्युत प्रसंग रूप में इनका उल्लेख आगे किया जायगा।

ब्राह्मणों का उपमहारूप रूप में एक भाषा आरम्भ्य है। इस नामकरण का मूल्य कारण यह प्रतीत होता है कि इनके गूढ मन्त्रों का अध्ययन सम्भवतः अरण्य (वन) में ही सम्भव था। उपमन्त्र आरम्भ्य ऐतरेय कौपीतकी और तत्तिरीय नामक ब्राह्मणों के अन्तिम भाग हैं।

आरम्भ्य के पश्चात् उपनिषदों का स्थान आता है। ये पूजायुक्त श्रम-ग्रन्थ हैं। उपनिषदों में छान्दोग्य, बृहदारण्यक, ईशा केन बठ प्रश्न मूण्डक माण्डूक्य ऐतरेय, तत्तिरीय आदि अधिक महत्वपूर्ण हैं। इनमें अधिवाश बहुत बाल के आभासित हात हैं और इनका परम्परा सम्भवतः बुद्ध काल के कुछ पूर्व तक चलती है।

जित्वा सम्यक्ता का अध्ययन हम इस परिच्छेद में करने जा रहे हैं उसमें प्रमुख साधन उपररत्न ग्रन्थ ही हैं। इनके आधार पर ही हम सम्यक् कि ऋग्वेदिक कालीन जायों आयों में इतने लम्बे अर्थ में (लगभग १००० ई० पू० में ७०० ई० पू० तक) किम शत्रु के क्या प्रगति की या उपम क्या परिवर्तन मान का प्रयास किया। किन्तु हमें पूर्व कि हम उनकी विभिन्न सामाजिक आधिक, धार्मिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं का वर्णन करें हम आयों के नव प्रकार पर प्रकाश डालना चाहिए क्योंकि इनका मीमांसित स्थिति का साथ किये बिना इनके विभाग के साधना एवं सुविधा-असुविधाओं का

ज्ञान नहीं प्राप्त हो सकेगा जिससे उनकी उन्नति के सही मूल्यांकन में बाधा उपस्थित हो सकती है।

### भौगोलिक सीमा का सार

ऋग्वेदिक काल की सभ्यता केवल पंजाब तक सीमित थी किन्तु अब आर्यों का अधीनता में भारत के अधिकांश भाग जा गया था। सुरक्षित इस यग की सभ्यता का क्षेत्र था। मध्यदेश भी इससे सम्बन्धित था। आधुनिक दिल्ली उत्तर प्रदेश तथा बिहार का गणना मध्य देश में होती थी। यहाँ कुरु पाञ्चजन वंश तथा उशीनर आय ममत्त था। हिमालय तक कुरुआ के निकट उत्तरमद्र थे। उत्तर बिहार में विन्धु तथा पूर्वी बिहार में जग था। यमुना के किनारे पारावत निवास करते थे। उनके उत्तर में ककय तथा बल्हीका का प्रभुत्व था। इन काय समूहों के अतिरिक्त कुछ अन्य आय समूह भी थे जिनमें शिवि वत मत्स्य हव्य विदम आदि अधिक प्रसिद्ध थे। इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तर भारत मध्य भारत (विशपतया पूर्वी भाग) तथा कुछ दक्षिणी भाग में आय फल चुभ था। एतरेय ब्राह्मण में आध्रजाति का उल्लेख आया है।<sup>१</sup> किन्तु यह अनाय था। पुण्ड्र मूतिव पुलिन्द तथा शबर आदि का भी उल्लेख प्राप्त होता है पर यह भी अनाय था।

**कुरु-पाञ्चाल**—उपर अनेक आय समूहों का उल्लेख किया गया है। इनमें से कुछ प्रमुख समूहों का विस्तृत अध्ययन करना आवश्यक है। ममस्त आय समूहों में मध्य देश के कुरु पाञ्चजन अधिक प्रसिद्ध हैं। इनकी सस्कृति तथा सुदूर भागों की प्रशंसा शतपथ ब्राह्मण में की गई है।<sup>२</sup> शतपथ ब्राह्मण में जो यह कहा गया है कि य सबसे सुदूर मस्कृत बोलते थे इसका सम्बन्ध कौषीतकी ब्राह्मण से भी हो जाता है जिसमें यह बतलाया गया है कि लाग गृह भाषण के लिए उत्तर की ओर जाते थे।<sup>३</sup> निम्नचय ही उत्तर से अभिप्राय उत्तराखण्ड के आयसमूह अर्थात् कुरु-पाञ्चाल से है यद्यपि इनके भी उत्तर में भूत्त थे किन्तु इनके पास में कोई अन्य साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।

कुरु राजा पराक्षित तथा जनमेजय के शासन-काल में कुरु अपना चरमोन्नति का प्राप्त कर चुके थे।

**तिसल कापी तथा विदे**—ये तीनों पौरवर्षीय राज्य उत्तर वैदिक काल के प्रमुख राज्य थे। इनका पथ-पथ अध्ययन करना कुछ कठिन पता है क्योंकि कुछ ऐसी उल्लेख इन्हें सामग्रियों प्राप्त होता है जिससे यह कहना कठिन पता जाता है कि ताना का अन्तग अलग क्या अस्तित्व था। 'एक पञ्चान् कालिक निम्न में जल जानुक्थ्य विन्धा काशिया और कौशला का पुराहित कहा गया है। यदि यह सत्य है तो एमा अन्तमान करना पता है कि सम्भवतः य ताना राज्य क्या एक था। साम्यायन गीत सूत्र में भी राजा पर कामल तथा विन्धु का शासन कहा गया है।<sup>४</sup>

ऋग्वेदिक काल के आर्यों के पूर्व में आन का उल्लेख हम शतपथ ब्राह्मण में प्राप्त करता है। उक्त ग्रन्थ में विन्धु-जरायु माधव के वैदिक सभ्यता के कुरु सरस्वती में कामल का नामा का पार कर विन्धु आन का वपन प्राप्त होता है। तत्वानान प्रमद

<sup>१</sup> एतरेय ब्राह्मण ८।२॥

<sup>२</sup> शतपथ ब्राह्मण २।२।३।१५॥

<sup>३</sup> कौषीतकी ब्रा० ७।६॥

<sup>४</sup> सा० धी० सू० १६।१।११॥

राजाओं में विदेह के जनक तथा काशी के अजातशत्रु का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उपरोक्त परिवारों में से कासन भी एक था। आधुनिक अवधि इसके अंतर्गत था। इक्ष्वाकु कुल वाला का सम पर अधिकार था। यह बहुत दिनों तक बल्कि सम्प्रदाय की पूर्वी सीमा बना रहा। अयोध्या इसकी प्राचीनतम राजधानी थी।

काशा का सर्वश्रेष्ठ शासक जसा कि ऊपर बताया जा चुका है अजातशत्रु था। अजातशत्रु ब्रह्मदत्त कुल का था। ब्रह्मदत्ता के पूर्व काशी में जो राजा राज्य कर रहा था वह मरता व विरह्यात पूवज पुरुरवा का अपना आदि पुरुष स्वीकार करता था। अजातशत्रु को वदिक साहित्य में दानिक एक विद्वान् बना गया है।

बुराआ के पश्चात् विदेहा का उदय हुआ। विदेह आधुनिक तिरहुत था। विदेह का सर्वश्रेष्ठ राजा जनक था जो प्रकाण्ड विद्वान एवं दानिक था। जनक व राजदरवार में दानिक एवं विद्वानों की भी लगा रहती थी। मात्रवल्क्य उसके दरवार का प्रसिद्ध दानिक था। इसके अतिरिक्त 'वनवतु उद्दालक' आरणि सत्यवाम जावान् प्यथानादि अन्य दानिक एवं विद्वान भी उपस्थित थे।

मगध और अय तथा अय राजनतिक सगठन—मगध तथा अय के विषय में यह कहा जाता है कि यह आर्यों की मत्ता व बाहर था कम से कम आय धम के स्तर ता यह था ही। अथर्ववेद में इस अनाय श्रेण मानकर ही इस प्रांत की जीर एक ऋषि उवरादि व्याधिया की पंक्ता है। १० स्त्री ग्रथ में इन्हें ब्राह्म्य कहा गया है। १२ अयत्र कहा गया है व जा भापा बानन में मरन है (ममृत) उमका बोलने में बटिन प्रनात है। १३ अर्थात् ममृत जमा मरन भापा भी वे नहीं बान पात।

गापय ब्राह्मण में अय मगध का उल्लेख है। १४ सम्भवत मगध तथा अय अब तक ब्राह्मण धम में दीक्षित नहीं हो पाय थे। यह भी संभव है कि य अनाय नहीं थे बल्कि आय हात हुए भी य अन्य आय वग का सम्मना एवं सम्मृति व पात्र में मुक्त थे।

इनके अतिरिक्त मिथु नदी के दाला तटा पर गांधार जनपद था जिसके तपशिना तथा पुष्यरावनी प्रसिद्ध नगर थे। इनो गांधार तथा ध्याम के मध्यम्य केक्य था। अय आय वर्गों का उल्लेख प्रारम्भ में ही किया जा चुका है।

ऊपर उत्तर बल्किबानीन आर्यों व राजनतिक सगठन पर प्रकाश डालने का एक मात्र उद्देश्य उनका प्रसार बताना था। उनकी राजनतिक व्यवस्था का बाप कराने के अतिरिक्त में विभिन्न वर्गों या समूहों के आर्यों व सगठन का उल्लेख उपर नया किया गया है उनका राजनतिक व्यवस्था पर अन्यत्र प्रकाश डालना होगा। यहाँ ता इस विवरण द्वारा आय सम्मृति व केवन प्रमाण-श्रेण का बाप कराना था। अब हम जिस प्रकार ऋषयन्तिक बदन के आर्यों की विभिन्न अवस्थाओं का विवरण दे चुके हैं उसी प्रमाणसार उत्तर वदिक काल का सामाजिक आर्थिक धार्मिक तथा राजनतिक अवस्थाओं पर प्रकाश डालेंगे।

१ अथर्ववेद ५।२।७॥ इगम सुदूर पश्चिम के कुछ सगठनों का सङ्गत है।

२ " १५।२।१-५॥ ब्राह्म्य का अय नीच कुलेन से है।

३ पञ्चविंश ब्राह्मण १७।१।१॥

४ गो० बा० २।१॥

## सामाजिक अवस्था ✓

## वर्गीकरण या वर्ग व्यवस्था

ऋग्वेद के प्रथम नौ मण्डना में आर्यों के समाज का जो वर्गीकरण हो चुका था उसका उत्तरवर्ति ऋग्वेदिक काल का सामाजिक अवस्था का वर्णन करते समय किया जा चुका है। यह वर्गीकरण अब धारण धारण जटिल होता जा रहा था। किन्तु यह जटिलता ऋग्वेदिक काल की लाच तथा सूत्रा के काल का कठोरता के बीच की स्थिति में थी। धार्मिक कृत्या की उत्तरात्तर बढ़ती हुई महत्ता तथा जीवन की बढ़ती हुई भावनाओं का इन परिवर्तन के मूल में हैं। ऋग्वेदिक काल में वैवाहिक नियमों की सरलता में भी अब काफी जटिलता आ गई जिस पर आगे प्रकाश डाला जायेगा। ब्राह्मण क्षत्रिय तथा वश्य ये तीनों वर्ग अत्र पूणतया वर्ण बन चुके थे। अर्थात् अब इनमें परम्परा का पुत्र आता जा रहा था। पुरोहित पिता का पुत्र भा पुरोहित (ब्राह्मण) होता था। इसी प्रकार शासक एवं यादवा (क्षत्रिया) का पुत्र भी क्षत्रिय होता था। किन्तु ऋग्वेदिक काल में एसी काइ वान न था। वश्य पिता के कवि पुत्र तथा तिस्रहारिन माता का उत्तरवर्ति इस सम्बन्ध में किया जा चुका है। शूद्रा का मा उत्पन्न उस काल में किया गया था। परन्तु मत्त में अब मत्त परिवर्तन आ गया था। वास्तव में परिवर्तन तो वस्या से आरम्भ होता है जितना भिन्न भिन्न प्रकार के कार्य आरम्भ कर दिये थे। शूद्रा के विषय में जानने के पूर्व हम जानें तथा अनाथों के पारस्परिक सम्बन्ध पर एक बार पुनः दृष्टि डालनी होगी। हम आरम्भ में ही यह जनाया था कि ऋग्वेदिक काल की मध्यमा वास्तव में ऋग्वेद के नवें मण्डल तक में वर्णित मध्यमा है। दसवाँ मण्डल इतने बाद का है कि उसकी सामग्रियाँ के। हम उत्तरवर्तिक काल का मध्यमा के लिए ग्रहण कर सकते हैं। हम जानते हैं कि आरम्भ में आय मित्त और यमना के वाच में निवास कर रहे थे और इन दो नरियाँ पृथिवी का भूमि पर अधिकार स्थापित करते समय अनाथों से इनके जो सघष हुए उसका विवरण ऋग्वेद के नौ मण्डला में प्राप्त होता है और इस सघष का तब तक अर्थात् नौ मण्डला के समय तक अन्त में आ जाता है। किन्तु धार धीरे धीरे आर्यों के पूर्व की आर जपना प्रसार करना आरम्भ किया तो फिर उसी सामरिक दृष्टि की पुनरावृत्ति हम ऋग्वेद के दसवें मण्डल में प्राप्त होती है। एक स्थान पर एक ऋषि कहता है कि हम धारा आर मत्स्य आर मत्स्य हैं। वयन तथा करते किमा बात में विश्वास नहीं करते उनका शत्रु और हैं व मनष्य नहीं हैं इ शत्रुता। उन्हें मार डालो। दास जाति का नाश करो।<sup>१</sup> इसी प्रकार दसवें मण्डल में स्वयं कहता है कि मैं मत्स्य आर मा आय नाम से वचन कर लिया है मैं दासा के दास टुके कर लिया है इसी के लिए व पदा आये हैं।<sup>२</sup>

उपरान्त जमा में यह स्पष्टता परिलक्षित होता है कि दस्युओं का आय बनाने का अधिकार नहीं प्राप्त था। अब वे मार दस्यु बनाने लगे थे जो सम्भवतः अनाथों के विगी बड वर्ग का नाम था। किन्तु माय रहने का अधिकार तो उन्हें स्वतः प्राप्त आ गया क्योंकि उन्हें आर्यों का मका करना था। जिस प्रकार ऋग्वेदिक काल में अनाथों (जिन्हें अब शूद्र कहा जाना गया) या दस्युओं के घना हान का प्रमाण मिलता है उमा प्रकार

<sup>१</sup> ऋग्वेद १०।१२।८॥

<sup>२</sup> ऋग्वेद १०।४९।२ ६-७॥

ग्रथ जा प्रसगत एत पर कुछ प्रकाश डालते हैं।<sup>१</sup> इनके आधार पर ही मगध के इतिहास पर प्रकाश डाला जायगा।

**बिम्बिसार**—पुराण के अनुसार मगध राजवंश का मस्थापक शिशुनाग था। मन्वावश से भी इसका समयन हो जाता है कि बिम्बिसार नाग कन का था। उक्त ग्रथ ने बिम्बिसार के अन्तिम राजकुमार का नाम दामक बताया है। पुराणों ने बिम्बिसार के पूर्व भी चार राजाओं द्वारा मगध पर शासन करने का उल्लेख किया है पर इस पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि बिम्बिसार को पालि अनुश्रुतियों में 'सैनिय' कहा गया है। सैनिय का अर्थ सनापति से है। तब यह कैसे सम्भव है कि बिम्बिसार के पूर्व उमके कुल के चार राजा राज्य कर चके थे। सम्भवत जिस प्रकार सनानी पुष्यमित्रशरग न मौर्य वंश के अन्तिम शासक कल्य का (जिसका वंश मेगापति था) वध करके राज्य अपने साथ म न लिया उसी प्रकार सम्भव है बिम्बिसार ने भी अपन सनापति पद पर चकर ही राज्य को अपने अर्धीन प्रचार बना लिया। किन्तु स्वयं महावश का यह कथन है कि बिम्बिसार १ वध की आय म मितामनाकृत हुआ।<sup>२</sup> यह कथन उपरावत जनमान को मानने म बाधा उपस्थित करता है क्योंकि एतनी अल्पाय म कई वंशानगत राजा ही हो सकता है नवीन राज्य का मस्थापक न हो सकता।

जब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि बिम्बिसार के पूर्व मगध पर किस राजवंश का शासन था। डी० आर भण्डारकर मन्त्रालय का इस सम्बन्ध म स्याव माय-सा लगता है जिस हम नाच दे र है —

इस प्रश्न को दृष्ट ग्रथ सुत्त निपात पृष्ठ १८५ ५।३८॥ म वंशाली के निय मागधन पुरन (जहाँ मगध की राजधानी) का प्रयोग किया गया है। यदि यह सच है कि वंशाली मगध की राजधानी थी ता वत सम्भव है कि वज्जि से ही बिम्बिसार को मगध प्राप्त हुआ था। किन्तु पुराणा क अनमार मगध पर सबसे प्रथम ब्राह्मण वंश का शासन रना। तत्पश्चात वज्जि वंशवाता ने इसे वनपुत्रक अपने अर्धीन पर लिया और बिम्बिसार न रहें गया नरा की आर भगावर मगध पर अपना अधिकार स्थापित करके राजगह का अपनी राजधानी बना लिया।

**बिम्बिसार का परिवार**—मन्वावग बिम्बिसार की ५० रानियाँ बताता है जिनम स एक विष्णु कुमारा थी। पर ५ रानियाँ अत्योक्ति का उत्तम उदाहरण मान है। उसकी दूसरी रानी छतना थी। यह वंशाली के निष्कृषी गण राज्य के प्रभव चतक की पुत्री थी।<sup>३</sup> तीसरी पत्नी काशन देवी थी जो प्रसन्नजित के पिता मन्नाशरु का पुत्रा थी। जातक म पात गता है कि दण्ड में मन्नाशरु ने बिम्बिसार को काशी का राज्य द दिया था।<sup>४</sup> विदेही कामवा क सम्बन्ध मे अमितायुष्यानि मून म यह वना

<sup>१</sup> श्री भण्डारकर न पुराणों के समक्ष महावग की सामर्थियों को अधिक प्रामाणिक सिद्ध किया है और इस सम्बन्ध में उन्होंने त्रिपिरकर राजाओं के नाम तथा उनके सम्बन्धित अनुक सामर्थियों को अष्टाष्ट सिद्ध करने का सफल प्रयास कारमाकृत सचवर' पृष्ठ ६७-७ में किया है।

<sup>२</sup> महावग २।२९ ३०॥

<sup>३</sup> Jacol: Jain Sut as I XII XV S B E Quoted by Dr Moonerji

<sup>४</sup> जातर २-४० ३।१५॥

गया है कि इसन विद्राही पुत्र अजातशत्रु द्वारा बन्नी किये गये अपने पति की रक्षा की थी। परछलना व सम्बन्ध म भी इसी प्रकार की कथा बही गई है जिससे कुछ इतिहासकारा न छलना और वासवी का एक ही माना है। विम्बिसार के अनेक पुत्र थे—अजातशत्रु कुणिक) हल्ल तथा वेहल्ल जो छलना से उत्पन्न थे अथवा जो अम्बपानी से उत्पन्न (या नत्सिन मेघकुमार आदि। अजातशत्रु को चलनवग म विन्नेत्थियुक्क' कहा गया है जिसे यह स्पष्टतया पात होता है कि वह विन्नेही वासवी (जो सम्भवत छलना ही है) का ही पुत्र था अजातशत्रु की नशमता के भय से ही सम्भवत उमक जय भाइया न मगध का त्याग कर दिया और वे मिथ्र हो गये।

विम्बिसार का शासन तथा सिक्की विजयें—विम्बिसार की राजधानी गिरिव्रज थी पर वात् म उमन इस बदल दिया और राजगृह म नवीन राजधाना की स्थापना की। महाभारत क अनुसार गिरिव्रज जरासन्ध का राजधानी थी। बद्धपाप न राजगृह को विम्बिसार परी बताया है।

विम्बिसार न कौशाम्बी का राज्य स्थानीक द्वारा विजित अग राज्य को अपन अधिन बनाकर अपन राज्य की सीमा काफी विस्तृत कर ली थी। उमन अग का एक पृथक् प्रान्त बनाकर कुणिक को उसका गवर्नर बना लिया। कुणिक चम्पा म रुक्क अग का शासनभार संभालता था।<sup>१</sup> अग के अन्तगत अनेक वड़े-वड़े नगर थे जिनमें अब व सभी विम्बिसार की राज्य-सीमा के अन्तगत हो गये। इसके राज्य म ८०,००० गाँव सम्मिलित थे। इसका क्षत्रपल नगमग ९०० मील से भी अधिक था और जिन अजातशत्रु न अपनी अथ विजया द्वारा १५,००० मील कर लिया।<sup>२</sup> विम्बिसार क राज्य म कुछ गण राज्य भी थे जिनके शासन राजकुमारा क हाथ म था।

विम्बिसार का शासन बहुत ही बढोर था। दण्ड विधान म विभी प्रकार की दया का स्थान न था। महामात्र 'संवाकत्यक' 'घातारिक' 'सनापति' आदि राजकम चारिया का उन्मय मिलता है।

विम्बिसार का धर्म—विम्बिसार क धर्म क सम्बन्ध म कोई निश्चित मत निर्धारित करना कुछ कठिन इन्तयि हा जाता है कि ब्राह्मण जन तथा बौद्ध ताना धर्म इन अपन अपन मत का बताने का प्रयास करते हैं। जन मतावतन्विया का यह कहना है कि बहू जन था और महावार स्वामी का अनन्य भक्त था। उत्तराध्यायन सूत्र २०।१८। में कथा गया है कि विम्बिसार बहुत ही श्रद्धा एक आदर्श क माय महावार स्वामी क पाम गया था और अपनी पत्निया नोकरा तथा सम्बन्धिया क माय जन मनावलम्बी हो गया। अनन्य भी देख छलना क माय विम्बिसार का मन्वीर की पूजा क निय उनक पाम जान का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार बौद्ध ग्रन्था म यह पात हाता है कि विम्बिसार गौतम म गिरिव्रज म मिल चुका था और यद्यपि अभी वे बद्ध नत्ता हा पाय थे तथापि बहू उनम बहूत प्रभावित हुआ। महात्मा बद्ध से भी वन् अपनी नई राजधानी राजगृह म मिल चुका था और तब उमन बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया।<sup>३</sup> उमक बौद्ध होने क अन्य साक्ष्या म एक महत्वपूर्ण यह है कि उमन अपन गजवध जावक को बद्ध के गवा म नियुक्त किया। दूसरे साक्ष्य से यह भा प्रम्नुत किया जाता है कि उमन बौद्ध मिधुआ के लिय निशक जनयात्रा करने की आज्ञा ली थी।<sup>४</sup>

<sup>१</sup> भगवता सूत्र ३००—चम्पार्या कुणिको राजा बभ्रव ।

<sup>२</sup> विनय १।१७९॥ सुमगल १।१४८॥ डा० मज्जां द्वारा उद्धृत।

<sup>३</sup> सुत्तनिपात ४०८ तथा विनय १।३९॥

<sup>४</sup> सल्लतवित्तर ५।५२६॥ Quoted by Dr. Mookerji

मृत्यु—अजातशत्रु न अपन पता बिम्बिसार का अन्त बुद्ध भगवान् के निर्वाण क आठ वष पूव अर्थात् ५५१ ई० पू० म कर दिया।<sup>१</sup> सम्भवत इसके पूव ही बिम्बिसार न हत्या पर तुल अजातशत्रु का सिंहासन दे दिया था।<sup>२</sup>

अजातशत्रु—अजातशत्रु क प्रारम्भिक जीवन क विषय है हम कुछ प्रामाणिक ढंग स जान नहा है। पिन हन्ता अजातशत्रु को जन्मजात क्रूर सिद्ध करने क अभिप्राय स ही एक बड़ी विचित्र पर अविश्वसनीय कथा का उल्लेख है जिसस यह ज्ञात होता है कि जब वह गम मे था तभी पिता के रक्त का प्यासा था इसीनिये उसका नाम अजात शत्रु रक्या गया।<sup>३</sup> पर यह कथा पूणतया हास्यास्पद है। अजातशत्रु से हमारा प्रथम परिचय उस समय होता है जब वह पिता द्वारा जग का युवराज निर्वाचित किया गया था। बौद्ध ग्रन्थ विनय स हम अजातशत्रु क काल कारनाम का बोध होता है। उक्त ग्रन्थ मे यह बताया गया है कि महात्मा बुद्ध क विरावी देवदत्त ने अजातशत्रु को भडका कर बिम्बिसार के विरुद्ध कर दिया और उसन इस राजकुमार का इतना बरगलाया कि एक दिन व छग लेकर पिता की हत्या क लिये उसक अन्त पुर म पहुच गया पर प्रहरियान उस पकड़ लिया। जब बिम्बिसार का पुत्र का यह कुटृत्य तथा उसका मन्तव्य जान हुआ तो उसन उस न कवल क्षमा कर दिया वरन् अपना राज्य भी उस दे दिया। पर अजातशत्रु को इस पर भी सन्तोष नही हुआ और उसन पिता का वध अपने हाथ ही कर दिया। दक्षन्त न उसस कहा था कि जीवन थो दिना का होता है और शासन सूत्र उसके हाथ म काफा दिना म आ सकता है। अत राजकुमार अपन पिता का वध कर और राजा बना।<sup>४</sup> अजातशत्रु न स्वय ही महात्मा गौतमबुद्ध के सम्मुख यह स्वाकार किया कि उसन अपन पिता का वध राज्य के लिय किया। आवश्यक सूत्र म यही कथा कुछ दूसरे रूप म इस प्रकार कहा गई है। यद्यपि बिम्बिसार न अपने अन्य पुत्र क स्थान पर कवन अजातशत्रु को ही राजा बनान का निश्चय कर लिया पर उतावन अजातशत्रु न बिम्बिसार का बन्गह म डालकर राज्य-सत्ता अपने हाथ म ल ली। बन्गीगह मे छसना अपने पति का दख रेख करती रही। पर सहमा अजातशत्रु की माना न उससे यह बताया कि उसके पिता उस कितना प्यार करत थ कि एक बार उमका पका उँगनी का भा जिसस मवात् निकल रहा था पुत्र की पीडा हरन क लिय उहान घूसा था। इतना सुनना था कि अजातशत्रु शीघ्रता स नोहे का हथौडा लेकर पिता का बडिया नोडन का ली। बिम्बिसार न इसका अथ कुछ उलटा ममज्ञा और जहर खाकर आत्महत्या कर ला।<sup>५</sup> जन तथा बौद्ध धर्मो म जिन प्रकार प्रतिस्पर्धा यत्र-नत्र मिनता है उसा प्रकार एतिहासिक घटनाओ के वणन म भा उनम कुछ विचार-तनाव आभासित होता है। उपराक्त विवरण उसका एक उदाहरण है। बौद्ध ग्रन्थ न अजातशत्रु का जब वह घरना पर भा नहा गिरा था तमा स पिन हन्ता सिद्ध करने का

<sup>१</sup> महावग। यह भी ज्ञात होता है कि उसन ५२ वष राज्य किया था। अत उसकी राजमारोहण तिथि ६३ ई० पू० रही।

<sup>२</sup> बुद्धवग ७।७५।।

<sup>३</sup> जातक ३।१२१-२।।

<sup>४</sup> विनय २।१९०।।

<sup>५</sup> उक्त विवरण आवश्यक सूत्र के आधार पर डा० मुञ्जो द्वारा वणित कथानक पर पूणतया अवलम्बित है।



प्राप्त किया है पर जन प्रयकारा न इनका मण्डन करने का अभिप्राय से विम्बिसार सही आत्महत्या करा दी। वास्तविकता क्या है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

अजातशत्रु की विजय—लगभग ५५ ई० पू० म अजातशत्रु सिंहासनाख्त हुआ। उसर पति की अकरमात मत्यु से प्रपीडिता कौशलदेवा भी अधिक दिन तक वधव्य न स्वाकार कर सका और उसका देहावमान हो गया। प्रारम्भ म ही बताया गया था कि प्रमनजित क पिता महाकाशल ने अपनी पुत्री कौशला देवी का व्याह अजातशत्रु क पिता विम्बिसार स करने के पचात ही काशी नगरी को दहज रूप म दे दिया था। जब जा विकर परिस्थिति अजातशत्रु क सम्मूल उपस्थित हानी है उसक मूल म दहज म प्राप्त कामा नगरा है। अजातशत्रु पिता क राज्याधान अय नगरा का नाति कामा का भी अपन अधान समझता था और इस प्रकार बहुत दिनो तक (निश्चित नियि वताने म अमा कुछ कर्नाई है) मम्मवत भावी अन्वेषणा स इस पर कुछ प्रकाश प सव काशा नगरी स कर वमूल करता रहा। पर कौशल देवा की मत्य क पचात उसका माइ प्रमनजित यह कदापि स्वीकार नहीं कर सकता था कि पितृ-हन्ता अजातशत्रु का अधि कार कामा पर अब भी पूर्ववत् बना रहे। अत उमन इसका विराध किया और फन स्वरूप काशल मगध म सपय छिड गया। प्रारम्भ म प्रसनजित का पराजित हाकर श्रावस्ती भाग जाना पडा पर बाद म वह अजातशत्रु की सम्पूर्ण सना का उसक नाय बिला बनान म सफल हा सका। जातक म इन दाना क सघर्षों का वडा राक विवरण मन्ता है।<sup>१</sup> अजातशत्रु स पराजित होकर निराश प्रमनजित जय श्रावस्ता लौट गया था तो मगधान बुड अपन कुछ मिथुआ क साथ जिनम म कुछ राजकमचारी रह चुक था वहा कही निवट हा रक थ इनम स दो भिलु एक तिन आपन म युद्धमन्व-धी वाता कर रहे थ और एक ने बलपूर्वक घोषणा की कि यदि प्रमनजित मकटव्यूह का रचना करक युड कर ता वह अजातशत्रु का मछनी की भाति फना सकता है। प्रसनजित क दून न उस इस बिलक्षण विधि स अवगन किया और उसी उपाय द्वारा प्रमनजित न अजातशत्रु को बली बना लिया। इसम कितना सत्य है नहीं कहा जा सकता।

अन्त म दोना म सयि हो गई और प्रसनजित ने अजातशत्रु का सन उतक राय आदि लोटा दिया साथ ही अपनी पुत्री वजिरा का पाह भी उमसे कर दिया।<sup>२</sup>

अजातशत्रु का दूसरा मयध वशाना क निच्छि गया म हुआ। हम जान है कि अजातशत्रु वही पुत्र था अर्थात् उसका माना वदेहा अथवा निच्छि वि राजकुमारी था। अब दन्ही लिच्छिविया (वजिरिया) स अजातशत्रु न सपय छः दिया। मुमगवित्तासिनी म य जान हाता है कि गगा क तः पर हीर का एक सान था जिसक आय सतिज पण्य पर लिच्छिविया तथा अजातशत्रु का आपा-आपा अधिकार निश्चिन हो चुका था। निच्छिविया न इस समझौते को तोड दिया जिसक फलस्वरूप अजातशत्रु का आक्रमण करना पडा। जन साय्या द्वारा इस मयध का एक दूसरा हा कारण माना जा सकता है। कहा जाना है कि विम्बिसार ने अपन पुत्र बहान को कुछ वन्मुय वन्मुयें ण था त्रिन्स करक वह अजातशत्रु क मय स चतक की शरण म वशाना बना आपा। अजात शत्रु न चतक क। सेनावनी दा कि वह बहलन को उसक मुतु कर द पर उमन शरणगणन

<sup>१</sup> डा० आर० भण्डाकर द्वारा पुनरुचित क्या क आपार पर हम जातर क तन्मन्व-धी विवरण का उत्सल कर रहे ह।  
<sup>२</sup> जातक २।२३७ तथा ४०३-४।५।३४३॥ धम्मपड टीका ३।२५९॥

को (जो कि उसका पोता भी था) देना स्वीकार नहीं किया। इस पर क्रोधित होकर अजातशत्रु ने चेतक से युद्ध छेड़ने का निश्चय किया। अब उपर ३६ विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों के अगुवा लिच्छिवी तथा चेतक दोनों उसके शत्रु हो गये।

वास्तविकता जो भी हो अजातशत्रु को इस द्वितीय सग्राम में बहुत बड़ी शक्ति का सामना करना पड़ा था जिसमें अनेक सम्मिलित शक्तियाँ थीं। केवल लिच्छिवी ही काफी शक्तिशाली ही नहीं थी। उनका सामरिक शक्ति सञ्चरितता नियमितता तथा कष्ट सहिष्णुता की धर्चा स्वयं भगवान् बुद्ध ने की है और कहा है कि वे अजेय और अभय हैं क्योंकि वे एक गणराज्य की शक्तिशाली बनाने के लिए समा आवश्यक तत्वों का पालन करते हैं स्वतन्त्र एक परिपूर्ण समाज करते हैं मत एवं नीति में एकता रखते हैं, प्राचीन प्रथाओं की रीति रिवाजों एवं विश्वासों का पालन करते हैं व ईश्वर का आदर करते हैं तथा नारियाँ एवं सत्यासियाँ का सम्मान करते हैं आदि-आदि।<sup>१</sup> निश्चय ही अजातशत्रु लिच्छिवियों को पराजित करने में काफी परेशान हो जाता जोर सम्भवतः अन्त में भी उस विजय में मिनता। पर उसे यह भलतन्त्र ज्ञात हुआ कि लिच्छिवियों को सभ्य मनुष्य उत्पन्न करके उनका नाश किया जा सकता है और अन्त में उसने किया भी यही।

निर्यावलि सूत्र से ज्ञात होता है कि उपर चेतक ने भी मिन-सभ्य के समस्त सभ्य राज्यों को आमंत्रित करके यज्ञ प्रदान किया कि वे अजातशत्रु से युद्ध करेंगे अथवा नहीं। यह बठक अजातशत्रु की शक्ति का चुनौती देने के लिये हुई होगी। किन्तु अजातशत्रु ने पूर्वकथित नाति से काम लिया और उसने अपने एक चतुर या अधिक स्पष्ट शत्रु में कृत्तिन मन्त्री वस्साकार को लिच्छिवियों की संगठित शक्ति में फूट के बीज बोने के लिए वैशाना भज दिया जिसने निरन्तर तीन वर्षों तक यहाँ निवास करके अपने उपाय में सफलता प्राप्त कर ली जोर लिच्छिवियों में सामाजिक तथा राजनतिक क्षत्रों में सबभ्रम भ्रमद हुआ गया। उनकी सचिद 'अजयता' में दीमक लग गई। इस प्रकार अजातशत्रु छत्र बन्धन तथा कौशल हीनो विधियों को अपनाकर लिच्छिवियों (वज्रियों) का सामना करने में समर्थ हो गया जोर तब उसने घोषणा की मैं इन वज्रियों को जल से उग्रा फूकगा जोर ध्वंसित कर दगा मनुष्यों के शक्तिमत्पन्न एवं वारहा उनका सवनाश कर दगा।<sup>२</sup> अजातशत्रु के लिये राजगृह से गया कि उस पार लिच्छिवी सभ्य से युद्ध करना असम्भव था। अतः उसने अपने राज्य की सीमा पर स्थित पाटलिग्राम (जो प्रायः चलकर पाटलिपुत्र हुआ) को ही युद्ध केंद्र बनाने का निश्चय किया और यहाँ पर अत्यन्त मूर्ख दुर्ग का निर्माण तजी से किया जाना लगा। इस दुर्ग का निर्माण अजातशत्रु के दो योग्य एवं वशत्रु मन्त्री मुनाथ तथा वस्साकार के निरादेश में हुआ। यहाँ उन मन्त्रियों ने गोतम बुद्ध को आमंत्रित भी किया और तभी महात्मा बुद्ध ने यह भविष्यवाणी की थी कि पाटलिपुत्र आर्यावर्त की एक प्रमुख नगरी होगी। दुर्ग बन्धन जान कि पांचान अजातशत्रु ने रणभरा वजा दी।<sup>३</sup> उसकी कृतनाति वास्तव में पूण रूप में सफल हुआ था

<sup>१</sup> देखिये ३१० राधाकुमर मन्त्री *Hindu Civilization* pp 190 and 191

<sup>२</sup> महापरिनिर्वाण सूत्र

<sup>३</sup> जन प्रायः निर्यावलि सूत्र से ज्ञात होता है कि अजातशत्रु ने यहाँ सत्सर्प चेतक पर आक्रमण कर दिया। चेतक ने जसा कि पहले ही कहा गया है पूण तयारा कर ली थी। 'उसकी सहायता के लिये लिच्छिवियों के नौ मित्र सभ्य मन्त्रों के भीमत्र सभ्य प्राये। देखिये ३१० आर० भण्डारकर का कारमाह्वल लखर ५० ७९।

और लिच्छिविया म परस्पर वादविवाद हान लगा कि कौन पहल आग बढ। अततोगत्वा अजातशत्रु की विजय हुई पर उस इस युद्ध म, जनप्रन्यो के कथनानुसार १६ वष तय।<sup>१</sup>

अजातशत्रु का बन्ती हुई तावत का प्रतिस्पर्धी अवन्ति का चण्डप्रद्योत था। चण्ड प्रद्योत तथा अजातशत्रु के पिता बिम्बिसार म सुन्दर पारस्परिक व्यवहार था—क्याकि बौद्ध ग्रन्था स यह नात होता है कि जिम समय चण्डप्रद्योत पाण्डु रोग स प्रपीडित था उस समय उमना चिकित्सा क लिय बिम्बिसार न अपन राजवद्य जीवक को भजा था। किन्तु अजातशत्रु म इसके सम्बन्ध अच्छ नही जान पडते क्याकि प्रद्योत के आश्रमण के मय स ही उमन राजगह को किलबन्दी करवाइ थी।<sup>२</sup>

अजातशत्रु का धम—यदि यह स्वीकार कर लिया जाय कि बौद्ध तथा जन ग्रन्था न अपन अपन समयक राजाआ क साथ पक्षपात किया है और अपने विराधी या इतर धमवान राजाआ का भरसक निन्दा की है (जिसका प्रमाण इतिहास म उपनय है) तो अजातशत्रु का प्रारम्भ म जन मनावनम्बी मान मकत ह। उम पितहन्ता गने या न होन क प्रश्न म सम्बन्धित ग्रन्थ इसक उदाहरण है। इसक अतिरिक्त कुछ अय प्रमाणा म भी उम प्रारम्भ म जनमनावनम्बा मिद्ध किया जा सकना है। उम नात पास आया करता था जिसम बहु मवराज क पत्न पर वशानी में रहा तथा जब वट वगाना से था तब ना उमन महावीर स्वामा म मों का था। यहाँ उमन जन मिशत्रा क प्रति अपन म मन्त्रिक उद्गार प्रकट किय थ।<sup>३</sup> उमन महावीर द्वारा प्रशस्त माग की प्रामा मवन यही अनुमान लगाया जा सकना है कि सम्मनन महात्मा बुद्ध क परिनिवाण क पञ्चानु हा क बौद्ध हुआ। हमन पिछनेपुष्टा मग्गा था कि महात्मा बुद्ध क प्रतिस्पर्धी प्रवृत्त का उग पर किन्ता अधिक प्रभाव था कि उसका मन्थना म बहु अपन पिता की हत्या कर सकना था। हमन यह मानना था कि महात्मा बुद्ध क ममथ अजात शत्रु न अपना यह जपय पाप स्वाकार किया था और धमा-याचना की था। किन्तु इसो यत् नही कहा जा सकना कि उमन बौद्ध धम स्वाकार कर लिया था।<sup>४</sup>

त्रिनाय शताब्दा ई० पू० क भरतृत प्रस्तर मय म पान हाना है कि अजातशत्रु तथा नगवान् बुद्ध म मोंट हुए थी। अजशत्रु मगवता बन्त पञ्चवना जा उवन प्रस्तर पर उत्तीण है महापरि निवानमुत्र क मागया अजातशत्रु बन्दि पुत्रा मगवता प गिरमावन्ति का समधन करता है।<sup>५</sup> अजातशत्रु का बौद्ध हान का एक अय प्रमाण भी प्राप्त होता है। महात्मा बुद्ध क परिनिवाण क पञ्चान जय उनका दात-मन्त्राग म

१ धर्माचार्य गोसाल म जिनकी मत्प ५६२ ई० पू० में हुई थी हम यद्ध का इसा था और ३६ मगराग्यों का मित्रसय जिनके विरुद्ध यद्ध हो रहा था ५४६ ई० पू० तक बसना रहा। अत १६ वर्षों तक यद्ध का जारी रहना सम्भव मात होता है।

२ मग्गिम निकाय ३७॥  
३ औपपातिक सूत्र १२ २७ ३०॥ हेमचन्द्र परिनिग्ट पवत ४ सग ॥ आवापक मय ६८४ ६८७ आ० मन्त्रों द्वारा उद्धृत।  
४ आ० मन्त्रों Hindu Civilization p 194  
५ बहो।

गया तो भगवान के भस्मावशेष के लिये अजातशत्रु ने एक दूत यह कहलाकर भजा, भगवान बुद्ध क्षत्रिय थे मैं भी क्षत्रिय हूँ। अतः मैं उनके भस्मावशेष का अश्व का अधिकारी हूँ। मैं भगवान बुद्ध के भस्मावशेष पर एक स्तूप निमित्त कराऊँगा।<sup>१</sup> अतः अजातशत्रु को भस्मावशेष का एक भाग मिला और उनसे राजगृह में एक स्तूप निमित्त किया।<sup>२</sup> तत्पश्चात् राजगृह में महारामा बौद्ध के अनयायिया १ अजातशत्रु से एक ऐसा स्थल माँगा जहाँ वह बुद्ध के उपदेशों का मकलन कर सके। अजातशत्रु ने इन मिश्रणों का प्रायना स्वीकार कर ला और बभार का पत्नी में स्थित सप्तपर्णी गढ़ा का भातर एक सभा भवन बनवा दिया। यही बौद्ध मिश्रणों की प्रथम सगति हुई जिसमें धम्म एवं विनय का क्रमशः आनन्द तथा उपालि ने सूत्रपाठ किया। स पाठ त्रिपिटक के प्रथम और द्वितीय प्रामाणिक संग्रह माने गये।<sup>३</sup>

इससे यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित हो जाता है कि अजातशत्रु अपने जावन के प्रारम्भिक काल में मनोजन धर्म की ओर झुका था परन्तु महात्मा बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् (जो सम्भवतः उसके राज्यारोहण के आठवें वर्ष में हुआ) वह बौद्ध मतानुयायी हो गया। वास्तव में

कोशल का इतिहास कस से प्रारम्भ होता है। कस के सम्बन्ध में केवल इतना पता है कि इसने ही काशी राज्य की कोशल में मिला लिया था पर इसका भी कोई विस्वसनीय प्रमाण नहीं प्राप्त है। कोशल का सर्वश्रेष्ठ बौद्धकालीन राजा परमनित या प्रसेनजित कस के ही वंश का था? वास्तव में प्रसेनजित के शासन-काल में ही कोशल का विकास हुआ था।

प्रसेनजित ने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की थी। वह अपने दान के लिए विद्यालय था और उसने दो ब्राह्मणों को दो नगर दान दिये थे। उसके कुछ मंत्रियों का नाम बौद्ध ग्रन्थों में इस प्रकार मिलता है—(१) मृगधर (२) निरिबद्ध (३) दोनचारा यण। प्रसेनजित का पांच राजाओं के दल का प्रधान कहा गया है जिससे यह आभासित होता है कि शाक्यों ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। प्रसेनजित के पिता महाकाश्रन ने अपना पुत्री का ब्याह मगध-नरेश विम्बिसार से कर दिया था। इस ब्याह के सम्बन्ध से प्रसेनजित और विम्बिसार में पारस्परिक भय था पर कालान्तर में विम्बिसार का मृत्यु के पश्चात् यहाँ सम्बन्ध अजातशत्रु तथा प्रसेनजित के मध्य का कारण बना जिस पर प्रकाश डाला जा चका है।

कोशल के तत्पश्चात् प्रसिद्ध नगर अयोध्या साकेत तथा रावन्नी थे। जसा कि प्रारम्भ में ही बताया गया है। प्रसेनजित अत्यन्त उत्तम और दाना था। महात्मा बुद्ध और उमके सम्बन्ध का उत्तम हम बौद्ध ग्रन्थों में मिलता है। सरहूत के एक प्रस्तर तब में भी एक निकट सम्बन्ध का बाध होता है। मज्झिम निकाय में प्रसेनजित कहा है—

मगधात् आसाटिका अहमपि आसाटिका अर्थात् मगधान् बुद्ध ८० वर्ष के हैं अ - मैं भी ८० वर्ष का हूँ। भगवान बुद्ध से एक बार उमने आश्चर्यपूर्वक पूछा था कि किस प्रकार मगधान् बुद्ध अपने विशाल मध्य में शान्ति रखते हैं जब कि वह राजशासक रखते हुए भी अपने कुल तथा मंत्रियों के पक्ष से क्षय रहता है। प्रसेनजित सर्वमुक्त

<sup>१</sup> बीप २।१६६।

<sup>२</sup> महापरिनिर्वाण सुत्त ।

<sup>३</sup> सुमगल विलासिनो ।

अन मथिया द्वारा पुत्र के पञ्चमीं म क्षुध था। इसका प्रमाण यह है कि एक बार जब वह भगवान बुद्ध म मिनन के लिए शाक्य प्रदश म गया था ता उसकी अनुपस्थिति म उनक एक मन्त्री शीष न विनाह कर लिया और प्रमनजित क पुत्र विडडम का गणी पर बटा लिया। यह समाचार पात ही प्रमनजित अज्ञानशत्रु (जो उसका नाम था) की मरण म चना पर राजगह पहुंचत पञ्चन मिन्टार पर ही उसका मत्य ना गई। धम्मपद म इसी कथा का विस्तार देकर लिखा गया है जिसत उक्त घटना का प्रामाणिकता सिद्ध हा जानी है।

प्रमनजित के पञ्चात उसका पुत्र विडुडम काशन क मिन्टामन पर आरू हुआ। य प्रारम्भ म कहा गया है कि विडुडम न पिता क विरुद्ध विनाह किया था। इस विनाह क पूर्व भा निश्चय ही वह कडे प्रयाम कर चुका होगा। पिता द्वारा विडडम तथा उसकी माता कामम-व्रतिया<sup>१</sup> का अपमानित हाना भी इन विनाहा के फल म हा मकना है। ज्ञान हाता है प्रमनजित न बुद्ध भगवान क प्रति अमाम श्रद्धामाव म प्रगित हाकर उनक ही कुल शाक्य कुन स एक शाक्य कुमारा विवाह म मांगी। शाक्या न आमाभिमान म चूर हाकर शाक्य कुमारा न देकर एक दासी कथा का भज दिया।<sup>२</sup> इसा दासी कथा वासम-व्रतिया स विडुडम उत्पन्न हुआ था और जिन समय प्रमनजित का इन रण्य का वाव हुआ तो उसने इन दासा का राज्यव्युत् कर दिया। किन्तु महात्मा बुद्ध के समझाने-बुझान पर प्रमनजित न उन्हें पुन सम्मानित किया। इन सार कार्यो न विडुडम को विनाहा बनाने म माग लिया। किन्तु अपन अपमान का प्रतिकार केवल पिता से लेकर ही वह मान रहनवाता न था। इस अपमान का मून कारण शाक्या को ना वह मना भाति ध्वसित कर देना चाहता था। अत उसने इन पर आक्रमण कर लिया। अचिरवती नना पर विडुडम तथा शाक्या का मुठमे<sup>३</sup> हुई। कहा जाता है कि उसने शाक्या का पूणतया ध्वसित कर दिया पर अचिरवती नना मे ऐसी वाइ आ गई कि उसमे विडडम सम्मन सेना सहित बग गया।<sup>४</sup>

अन म कोशल मगध का चढता हुई ताकत म विनीन हाकर उसका एक विजित प्रेत हा गया।

बुद्ध कालीन भारत की इस राजनीतिक अवस्था क अधनाकन के पञ्चात यह पात हाता है कि सम्पूर्ण उत्तरी भारत म अनक छोट-छोट गणराज्य विद्यमान थे जिनम शासनिक प्रजातन के अधिकान तरव विद्यमान थे। यद्यपि उन गण राज्या म कुछ धुन हुए व्यक्तिग द्वारा ही शासन होता था तथापि बहुमत माय था। गण राज्या के माय माय स्वतंत्र राज्य भी उत्पन्न अवस्था म थे। मगध राज्य उत्पान क प्रथम सामान पर पञ्चात कर रहा था। गणराज्या को अपन म विनीन करव तथा कुछ नपनत्र राज्या का भा पराजित करके वह एक शक्तिशाली राज्य बनता जा रहा था। फिर भा गण राज्या का पूणरूपेण अन्त नही हा गया। विरविजय की महती कामना म प्ररित आक्रमकारी विकार का भा इनम स कुछ गणराज्या का सामना करना पडा था। हम आज का दूमरा विप्लवता गजाभा का बुद्ध या जन धम की ओर आकषण है। अधिकाश गजा इन प्रा आशुय लियाइ पडत है। पर पशपात मुक्त विवरण क कारण य

<sup>१</sup> मज्झिम निकाय २।१२४॥

<sup>२</sup> भातक ३।४०५॥ से ज्ञात होता है कि प्रसेनजित की एक पत्नी का नाम मलिखा भी था। यह किती पत्नी क मन्त्री प्रमुत्त की (जो भावली था) पुत्री थी।

<sup>३</sup> धम्मपद अट्टकथा १।३५॥

निश्चयपूर्वक कहना कठिन हो जाता है कि कौन-कौन से राजा बौद्ध धर्म तथा कौन-कौन जन धर्म के समर्थक थे। यह भी एक विशय उल्लेखनीय वस्तु देखने का मिलती है कि राजनीति में अब भी क्षत्रियों की वदिकवालीन महत्ता बनी रही।

### Lucknow University

(1) Give a short history of Magadha and Kosala at the time of Buddha (1945)

(2) Give an account of the political condition of Northern India at the time of Buddha (1946)

(3) Give a short history of Magadha under Bimbisara and Ajatsatru. What led to the downfall of the Bimbisaran dynasty? (1947)

(4) Trace the ascendancy of the kingdom of Magadha from the time of Bimbisara to the end of the Nanda rule and mention the factors which had helped its growth (1949)

(५) गौतम बुद्ध तथा महावीर के समय की उत्तर भारत की राजनतिक परिस्थिति का वर्णन कीजिए। (१९५०) १६६

(६) बृहत्कालीन भारतीय गणराज्या की शासन प्रणाली का विवरण लिखिए। (१९५२)

(७) नद राजाओं की उत्पत्ति के विषय में आप क्या जानते हैं? उनकी सत्ता का अंत किन परिस्थितियों के कारण हुआ? (१९५२)

(८) बिम्बिसार तथा अजातशत्रु के राजकाल का संक्षिप्त इतिहास लिखिए। बिम्बिसार वंश के पतन के क्या कारण थे? (१९५३)

(९) बिम्बिसार के काल से लेकर नद वंश के अंत तक मगध के राजनतिक उत्थय का संक्षिप्त इतिहास लिखिए। (१९५४)

(10) Describe the political condition of Northern India in the sixth century B. C. (1955)

(11) Trace briefly the successive stages in the growth of Magadha from Bimbisara to Asoka (1956)

(१२) भगवान बुद्ध के समय उत्तरी भारत की क्या दशा थी? (१९५७)

### Agra University

(1) Describe briefly the political condition of the Gangetic basin at the time of the Buddha and Mahabir (1943)

(2) Discuss the relations of the state of Magadha with its neighbours during the period 500 to 300 B. C. (1944)

(3) Write a note upon the careers of Bimbisara and Ajatasatru. What was their attitude towards Buddhism and Jainism? (1945)

- (4) Describe the political condition of India in the time of Buddha in the 6th C B C (1947)
- (a) Write a note on the political condition of India when Buddha preached his religion with particular reference to the kingdoms and republics which were the field of his activities (1952)

### All India University

- (1) Give an account of the Republican States of Northern India in the Sixth century B C (1956)
- (2) Discuss the contribution of Vandas to the growth of Magadha Empire (1956)
- (3) Describe briefly the growth of the power of Magadha under the Naryanka, Saisunigra and Nanda dynasties (1957)
- (4) What was the political condition of India in the 6th century B C ? (1957)
- (5) Describe the decay of the republican type of Government in ancient India from 600 B C to 300 A D (1957)
- (6) Discuss the origins of the Nandas. What was their contribution to the growth of the power of Magadha ? (1958)
- (7) Trace the rise of Magadha from the time of Bimbisara to the reign of Mahapadma Nanda (1959)
- (8) What do you know of the nonmonarchical communities of Northern India at the time of the Buddha (1959)
- (9) छठी शताब्दी ई० पू० विषय रूप से महान सामिक उत्थान का युग था। (1959, 1959)

# जैनधर्म का अभ्युदय | ६

जैन अनुश्रुतियाँ व अनसार जनधर्म कापी पुराना है और महावीर के पूर्व भी २३ तायकर हो चक है। २४ तायकरा के नाम इस प्रकार है —

(१) ऋषभदेव (२) अजितनाथ (३) समवसाथ (४) अभिनन्दनाथ (५) सुमतिनाथ (६) सुपथनाथ (७) सुपावनाथ (८) चन्द्रप्रभ (९) सुष्यन्त (१०) शातलनाथ (११) धेयामनाथ (१२) वसुपथ (१३) विमलनाथ (१४) अनन्तनाथ (१५) धमनाथ (१६) सल्लनाथ (१७) कुमनाथ (१८) अरनाथ (१९) मल्लनाथ (२०) मुनिमग्ननाथ (२१) नमिनाथ (२२) नेमिनाथ (२३) पावनाथ तथा (२४) वधमान महावीर।

प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव व सम्बन्ध म इनका कहना है कि य एक राजा थ और अपने पुत्र भारत व लिए सिंहासन रिक्त करके य सयासा हा गये। तेइमयें तीर्थकर ही वास्तव म एतिहासिक व्यक्ति नात होने हैं। इनकी तिथि अनुमानत ई० पू आठवाँ सदी है।

पावनाथ—जसा कि ऊपर बताया गया है पावनाथ एतिहासिक व्यक्ति नात होत है। कल्पसूत्र व अनुसार ये इक्ष्वाकु वंशीय क्षत्रिय राजा अश्वसन् के पुत्र थ। उनकी माता का नाम वामा तथा पत्नी का नाम प्रभावती था। उनके पिता बनारस के राजा थ। पावनाथ ने वनी आश्रमपद नामक उपवन म ३३ दिन तक उपवास करने व पांचान समास ग्रहण कर लिया। ८३ दिनों तक गहन चिन्तन के उपरान्त उन्हें ज्ञान (केवल कवलय) प्राप्त हुआ। पावनाथ के मरने आठ गण तथा आठ गणधार थ। इनक नाम इस प्रकार थ—(१) जम (२) आयषोष (३) वशिष्ठ (४) ब्रह्मचारिण (५) मीम्य (६) शीघर (७) वारम तथा (८) यत्तम।

इनक साथ अनेक धर्मन तथा सयानियों का भी उल्लेख मिलता है। जैन अनुश्रुतियाँ के अनुसार पावनाथ म न १०० वर्षों की आयु सम्पन्न पवत पर शिवीण प्राप्त किया। पावनाथ व प्रमुख धारसिद्धान्त थ —(१) अहिंसा (२) मर्य (३) अस्तेप तथा (४) अपरिग्रह।

पावनाथ व सिद्धान्त तथा उनके परवर्ती तावका महावीर व सिद्धान्त म एक सूत्रता स्थापित करवाना भी एक प्रमाण उपनय है। पाव व अनपापी कर्म तथा महावीर व शिष्य गौतम का ममाग्रण ही हम पाव तथा महावीर के विचारा को एक सूत्रता का परिचय देता है।

## महावीर

महावीर का जन्म काश्यप शास्त्राय क्षत्रिय सिद्धाय व घर म हुआ था। सिद्धाय बुद्ध्याम (वशावा) व एक सम्मान्य व्यक्ति थ। य किसी अपने काम व एक छात्र म बुल व प्रधान थ जिसका नाम नाशिक बुल था। सिद्धाय का प्रसिद्धि एक उनका स्थान अपने समय व बुल प्रधान म वमलिए ऊचा हा गया था कि उनान प्रसिद्धि ति उवा राजा जनक का बहुत म अपना स्था किया था। मन्वार व दिना सिद्धाय व नाम जिन्ये जान है—(१) अशम्य (२) यमाम्म। इस प्रकार इनका माता व ना



अनेक नाम दिये गये हैं—(१) त्रिशाला (२) विदेहदत्ता (३) प्रियकारिणी। माता पिता की भाँति महावीर व भी अनेक नाम बताये गये हैं—(१) वधमान जो घर का नाम था (२) श्रमण (३) महावार।

महावीर की जन्मतिथि पर भी विचार कर लेना आवश्यक है। डा० मुक्जर्जी न इनकी तिथि पर प्रामाणिक साक्ष्य का आधार पर इस प्रकार तक उपस्थित किया है — परम्पराओं का अनुसार महावीर का देहावसान विजय की मृत्यु में ४७० वर्ष पूर्व हुआ। विजय मवत ५८ ई० पू० में १८ वर्ष पश्चात् जारम्भ हुआ। इस आधार पर महावार की निधन तिथि (४७० + ५८ + १८) ५४६ ई० पू० निश्चित होती है। जन तयव हेमचन्द्र न चन्द्रगुप्त का शासन ३१३ ई० पू० में मानकर और इमे महावीर की मृत्यु १५५ वर्ष बाद मान कर यह तिथि ४६८ ई० पू० निर्धारित की है। बौद्ध ग्रंथों में महावीर वृद्ध तथा अज्ञातशत्रु को समसामयिक कहा गया है और वृद्ध निधन तिथि ५४३ ई० पू० मानी गई है (जिस पर आगे विस्तारपूर्वक विचार किया जायगा) अतः जसा कि प्रारम्भ में ही निष्कर्ष निकाला गया है ५४६ ई० पू० में महावीर निधन मानना अधिक तर्कमग्न जान पड़ता है।

महावीर का व्याहृ यशोदा से हुआ था जिसका अन्तर्जा या प्रियदशना नामक पुत्री भी उत्पन्न हुई।<sup>१</sup>

तीस वर्ष गृहस्थ जीवन व्यतीत करने के पश्चात् माता पिता के स्वर्गवान के उपरान्त अपने बड़े भ्राता नालिचन से आज्ञा लेकर वधमान ने गत्याग दिया। घर छोड़ने समय उनके साथ असंख्य राग चले जिन्हें वधमान ने शाल्वन में आकर लौटा लिया। आचा रांगमूत्र से भाना हाता है कि वधमान ने इस वन में बुद्धार नामक ग्राम में निवास किया जहाँ इन्होंने एक अटल तपस्वी-सा ध्यान लगाया। रागमग एक वर्ष तक ताप वस्त्र धारण किया रहे तत्पश्चात् इन्होंने अपने वस्त्र मुक्कण बालका नामक नदी में फेंक दिया। अब उनका पास कोई पात्र नहीं था। धीरे धीरे हाथ में श्री भोजन करते थे। बारह वर्षों तक की कठिन तपश्चर्या शारीरिक यत्नना के पश्चात् उन्हें जन्मिका ग्राम में निकट सिन्धु पानिका नामक नदी के तट पर शाल के वध के नाचे निर्वाण प्राप्त हुआ और वं जिन या अरहन् २०।

महावीर की विभिन्न स्थानों में श्रमण करना पड़ता था। वे वर्षाऋतु में ही किमी किमी स्थान पर रुकते थे। अष्टिक ग्राम में एक वर्षाऋतु तीन वर्षाऋतु में चम्पा तथा पृष्टि क्षपा में १२ वर्षाऋतुओं में वशाना तथा जतिग्राम में १५ वर्षाऋतुओं में आनमिका में १० वर्ष पणितमूमि में एक में थावन्ता तथा एक और अन्तिम वर्षाऋतु में उन्होंने पावा में विधाम किया था।<sup>२</sup>

आचारान्ग मुत्त में उनका है कि इस समय पावाआ में महावीर का किना शारीरिक कष्ट सहना पड़ा था कितनी बटोर याननायें दुःख अपरिचित आदि मिनी थीं। विमुक्तिहीन मन को कर श्रमण करने लग। तोर उन्हें मार्ग और चिन्तन थे। पात्र में यहाँ के निवासियों ने उन पर काफी अपाचार किया और उन पर कुत्त छोड़े। वे हर्ष में पीत थे और उन पर सात से प्रहार करते थे। वे लोग पत्र मित्र्य हत्या और वनना के टुकड़ों से उन्हें मारते थे। नाना प्रकार के अत्याचारों में व उनका शान्ति का भंग करना चाहते थे।

<sup>१</sup> आचारान्ग सूत्र २।१५।१५। डा० मुक्जर्जी द्वारा उद्धृत।  
<sup>२</sup> उक्त विवरण के लिये देखिये डा० मुक्जर्जी Hindu Civilisation 1 232

लाय या राघ पश्चिमी बंगाल का भू भाग कहलाता था। यहाँ अनेक बबरजातियाँ प्रयी थीं जो मृता वस्त्रा के स्थान पर घास के वस्त्र पहनती थीं।

महावीर—धम प्रचारक के रूप में—महावीर के जीवन की कठिनाइयों की दृष्टत हुए यह कहना पड़ता है कि उनमें जो कष्ट-सहिष्णुता थी वह सचमुच अनुभवेय था। महावीर ने अपने नाम का प्रचार हर प्रकार की यातनायें सहकर भी करने का निश्चय किया। प्रारम्भ मत्ता वे अकल ही घूमा करते थे पर कुछ काल पश्चात् उन्हें घापाल नाम का एक महत्यागो भामिन मया। महावीर तथा घीपान की पहला भेंट नालन्दा म हुआ। कात्याग नामक स्थान पर ये दोनों लगभग ६ वर्षों तक साथ रहे। पर तत्पश्चात् इन दोनों उपदेशक म कुछ मतमतान्तर हो गया और वे पथक हो गये। घापाल महावीर का तथा महावीर घापाल की आलोचना करते थे। घापाल को ही आजीविक सम्प्राय का निर्माता कहत है।

महावीर का धम प्रचार करने म साधारण कठिनाइया का ही सामना नहीं करना पया। उस समय भारत म प्राञ्चान बर्दिव धम के अनेक सम्प्रदाय तथा कुछ नवीन धार्मिक न विद्यमान थे। इनम बौद्ध वाहस्पत्य नास्तिक या चार्वाक वेदान्तीय सात्य अप्य नादाय जाजावक त्रैशिक तथा शाय मत प्रधान है। महावीर क समय म जसा कि पिछा अयाय म बताया गया है अनेक धार्मिक प्रचारक और उनके मत प्रचलित थे। पुरानकस्मय मकवलि घापाल अजितकसकम्बलिन पकुधकच्चायन आदि क नाम मत स्थापना म प्रमत्त थे। क्रियावा अक्रियावाद अज्ञानवाद आदि अनेक वात्ता का प्रचन वरफा जा र पर था। इन ममस्त वात्ता का प्रतिस्पर्धा म महावीर का अपना मत स्थापित करना था। महावीर क कुछ अनुयायिया का बद्ध स मिल जाने का भी उल्लेख मिलता है।<sup>१</sup>

जन तथा बद्ध धम क उत्थान म योग दन वाला जासत्रस बः कारण है वह राजाभा का सत्याग है। पिछा पूया म हमन दखा था कि इनके सममामयिक राजा किसी न क्रिया मत क समर्थक अवश्य थे। इनम स कुछ तो पूर अवसरवाणी थे और स्वायसिद्धि क लिए ही क्रिया धम विषय का स्वाकार कर लत थे या उस पर अपनी विवेक कृपाणि रवत थे आर कुछ सच्च अर्थों म अनयायी थे। महावीर का जो राज-सहयोग मितता उनम उनक वकारिक सम्बन्ध का ही विषय हाय है। हम जानते हैं कि महावीर का माना तिच्छिवा राजा चतक की बन था। चतक का हीच पुत्रिया थी जिनका ब्याह समय राजकुता म हुआ था और जो सम्बन्धा होन क नाने महावीर के प्रति विशेष उदार थे। चतक की एक पुत्रा छत्रता का याह मगध-नरेश त्रिम्बिसार से हुआ था। दूसरी पुत्रा प्रभावता जा मवम क। या मिघ-सौवीर क राजा उत्पन म ब्याही गई था। इसका अय पुत्रिया पद्मावती मगावता तथा शिवा क मश चम्पा-नरेश दधिवाहन कौशाम्बा नरेश स्तानिक तथा अर्बान्ति-नरेश घण्टप्रद्या म ब्याहा गई था। इस प्रकार हम देखत है कि महावीर अग अवन्ति तथा मगध जम विशाल राया स महावीर का यनिल सम्बन्ध था। इन राजाभा क सम्बन्ध म कवन इतना हा कहना पर्याप्त होगा कि ये समा जावन पयल जन मनावनम्बाता नहा रह सक पर इन्हने जन धम क प्रसार म पर्याप्त यासिया। पद्मावता तथा शिवमन स उत्पन चन्नाता प्रथम जन मिलणी हुई और चम्पा नगरा जन धम का क हाग। कौशाम्बा क स्तानिक तथा उमका राना मगा वना मम्बवत अन्त तक बौद्ध मनावनम्बा रह। राना मगावता मा पति क दहावमान क पन्वान् मि मगा हा ग था। नपत्र राया क अतिरिक्त कुछ मग रायों न मा महा

वाग तथा उनके धर्म के प्रति काफी सहानुभूति लिखलाई। स्वयं महावीर मा गण राय्या स अधिक स्नान रखत थे। इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि उन्होंने अपने मरण काल व १२ वर्ष लिच्छवी गण राज्य वशात्ता म विताम। वशाला क लिच्छविया पर इनका बहुत बड़ा प्रभाव था। चर्चि तथा पापिक भी इनका काफी आदर करत थे। मत्वा क दश म हा महावीर न उनक राजा मस्तिपाल क राजभवन म पचत्व का प्राप्त किया।

महावार का धर्म प्रचार म उनक कुछ प्रमुख शिष्या न काफी योग दिया। इनम (१) आनन् (२) कामदेव (३) चुलानिपिया (४) सुरदेव (५) चुल्लसपग, (६) कुम्भकानिय (७) सडालपुत (८) महासपग (९) नन्दिनीपिया (१०) साल्हीपिया आदि विगण उल्लेखनीय है।

अपने अथक परिश्रम स अमरुय अनुयाया बनाकर तथा कुछ एस शिष्य तयार करके जा जन धर्म का म्थाया बना सर्वे महावीर न ५६६ ई० पू० म निर्वाण प्राप्त किया। इस तिथि का उनका निघन तिथि मानकर तथा ७२ वर्ष उनका जीवन-काल मानकर महावार का जन्मतिथि ६१८ ई० पू० मानो गई है।

### जन सिद्धान्त

महावीर कवल दार्शनिक न थे। उन्होंने दान का जीवन की व्यावहारिकता की कमी पर बसकर हैं। किसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनका सिद्धान्त अधिकांशतः प्रायोगिक है। पर कुछ विशुद्ध दार्शनिक है जिनका मौलिकता म सत्त्व हाता स्वाभाविक है। परन्तु भारतीय दर्शन या काफी प्रभाव इन दार्शनिक सिद्धान्त पर पात हाता है। जनधर्म क कुछ प्रमुख सिद्धान्त पर नीचे प्रकाश डाला जायगा।

आत्मा—आत्मा के सम्बन्ध म मत निर्धारण ईश्वर म विश्वास या अविश्वास पर निर्भर है। जन सिद्धान्त म सृष्टि का कर्ता धर्ता किंसा अलौकिक व्यक्ति का कल्पना नशुका गई। ईश्वर म उनका कोई विश्वास नहीं है। जब सत्तर अनादि और अनन्त है ता जाव भा अनादि और अनन्त है। सम्भव दर्शन सम्भव ज्ञान तथा सम्भव चरित्र आत्मा या जाव क तान स्वाभाविक गुण हैं। पर समस्त आत्माओं म ये तीना गुण अपने स्वाभाविक रूप म दसलिए नहा भिन्नत है कि कर्मों का गहन आवरण उन्हें ढँके रहता है। इस प्रकार जा जीव समस्त स्वाभाविक गुणों से युक्त रहत है व शुद्ध जीव है और उन्हें प्राप्त हा चुका है, जो जीव कुछ शुद्ध है और कुछ विद्वृत है व मिथ्य जाव है पर जिनम स्वाभाविक गुण बिबुल ही विद्वृत हा चुके हैं व अशुद्ध जीव है। इसस यह परिलक्षित हाता है कि जन सिद्धान्त आत्मा को विद्वृत तो मानता है पर विकार दूर भा किंसा जा सकता है। सम्भव दर्शन स सम्भव ज्ञान और सम्भव ज्ञान म सम्भव चरित्र प्राप्त जाना बताया गया है। सम्भव चरित्र हा मोक्ष-द्वार है। अत सम्भव चरित्र पर जनियान अधिक जार दिया है।

तत्त्व—जिनिया न सात प्रकार क तत्व बनताये हैं —

(१) जीव (२) अजीव (३) आमक, (४) बच, (५) सवर, (६) निजरा तथा (७) माण।

जीव क सम्बन्ध म ऊपर प्रकाश डाला जा चुका है।

अजीव क पाँच भेद हैं—(१) पुद्गल (२) धर्म (३) अधर्म (४) आकाश

१ धर्म तत्त्वार्थी सामग्री डा० यनीप्रसाद की 'हिन्दुस्तान की पुरानी सम्प्रदाय' की है जिनका मे आभारी हूँ।

तथा (५) काल। स्पष्ट, रस गंध एक वण युक्त द्रव्य पुद्गल कहलाता है। मात्र तोर पर पुद्गल के ३ प्रकार हैं—(१) अणु जो अविभाज्य है तथा स्वयं जो अणुओं का समूह है। ठमरा द्रव्य घम है। यह अमूर्तक और सबव्यापी है। यह जीव और पुद्गल की गति में सहायता प्रदान करता है अर्थात् चलन में योग देता है। अणु भी अमूर्तक और सबव्यापी है और यह पुद्गल तथा जीव का स्थिति में ठहराव लाता है अर्थात् ठहरने में योग देता है। आकाश जो चौथा द्रव्य है सब पदार्थों को अवकाश देता है। आकाश के दो भू-लोकाकाश तथा जनीकाकाश है। पाचवाँ द्रव्य कान ममस्त का परिवर्तन में योग देता है।

कर्म का सम्बन्ध में जिनको का यह मत है कि राग-द्वेष के कारण शरीर मन या बचन से जो क्रियाएँ का जाती हैं उनमें कमपरमाणु आत्मा का पास लिच आता है। यहाँ जासब कर्मात्मा है। कम ही मावी जीवन का निर्धारण करता है। इसमें किमा अतीतिक शक्ति का गय नही रहता जत कम का सुत्ततम यनामा चाटिए।

राग-द्वेष आदि स प्रभावित कम का आखव का अर्थात् किये के प्रकार के अनुसार कमरूपी द्रव्य का आत्मा स मलगन का जान का बघत्व कहत हैं।

राग-द्वेष आदि क प्रभाव से कम का आखव का राकत का ही सवर कहत हैं।

जा कम हमारा आत्मा स बद्ध है उनको तप याग आदि में दूर करने का निगरा कहत है।

मोक्ष कम-बचन (मन-वरं च प्रकार के कम) से मक्ति पाने की कहत हैं।

ऊपर जन घम का त्पानिक पत्तू पर मक्षेप में प्रकाश डाला गया था। अब उनका व्यावहारिक नियम (आचार) पर प्रकाश डाला जायगा। महावीर स्वामी ने अपनी आँखा देखा था कि हिन्दू धर्म के सिद्धान्त साधारण जनता का लिए उसी प्रकार बाह्य नहीं जिन प्रकार कुछ ब्राह्मण धर्माधिष्ठानाओं या धर्मरत व्यक्तियों का है। जिन नियम हिन्दू विचारका न प्रस्तुत किये हैं वे सम्पूर्ण मनुष्यों द्वारा प्रयोग में नहीं लाये जा सकते। समा तप नया कर सकते सब लाग योग नहीं कर सकने और न ममी धन कर सकत हैं। जत उपाय का प्रकार का घम का उपदेश देना आवश्यक समझा—

(१) स्यामिषा का निर-या (२) गन्ध या धावका के लिए। महावीर ने सब साधारण का लिए निम्नलिखित पाँच (अणुवत) नियम बताये—

अणुवत—(१) हिन्दू-छाना धीयाना पी। पहचाना काफी जधिक बाज्रा सात्ता मात्रन पाना राहता रिया है।

(२) सत्य—सत् नता बानना चाटिए। अप्रिय निच कतर एक पापमया वान का योग करना चाटिए।

(३) अचोप या अस्तय—च का करना चारा का मात्र तना माल में मिताव करना कम न तना गत्रा का आना का उल्लंघन चारा में सम्मिलित है और चरा स्वयं एक प्रकार का हिन्दू का व्याक्ति मम भा किमी का हृदय पर आधान पहुँचना है।

(४) ब्रह्मचर्य—कान वामना का मारना हा दस्तवय है।

(५) अपरिग्रह—मात्र का बचन में मक्ति पान का अपरिग्रह कहत है। धन मग्ना में मनष्य का चर राना चाटिए। दूमरी का धन में तनिक मग्ना नया रक्ती चाटिए। जावन का लिए आवश्यक धन तक का मनष्य का साधित राना चाटिए।

गणवत—उपरास्त पाच अणु-धना का अनिरिक्त्तान गुणवत मा बनाय ग्य है—

(१) दिग्वत—रियाया में मग्ना का मर्गाय बाधना (२) अत्य-धन—

प्रयोजनहीन पाप-उत्पादक वस्तुओं का परित्याग तथा (३) भोगोपभोगपरिमाण—  
मास्य पत्नियों का परिमाण निर्धारण।  
शिक्षाव्रत—शिक्षाव्रत चार हैं —

(१) देशावकाशिक—दिशाशा म भ्रमण का पर्याप्त म कमी जान (२) सामा  
यिक—पाप रहित होकर धर्म चिन्तन करना (३) प्रीयोषोवासप—विपत्त म समय पर  
उपवास करना तथा (४) धर्मावत्य—दान-भूजा जादि करना।

धर्म के लक्षण—जन मिद्वान्त म उपराकन समस्त तत्वा प्रवृत्तिया व आधार पर  
धर्म व दस लक्षण बताय गय हैं —

- (१) उत्तम क्षमा—काय का पूण हनन ( ) उत्तम मादक—गन्ध का अन्त कर  
मघरना लाना (३) उत्तम भाजक—कुटिलता व म्यान पर मरना ग्रहण करना  
(४) उत्तम शौच—माया व अनेक रूपा वात वजन म मकन होकर आत्मा का शब्दी  
करण करना (५) उत्तम सत्य, (६) उत्तम सधर्म (७) उत्तम तप (८) उत्तम  
आदिधर्म—आत्मा व तान स्वाभाविक गुणा म विग्राम करना आर य ममयना कि  
इसक तर हमारा कुछ नह। और न मै किना का हू (९) उत्तम व्रतधर्म तथा (१०)  
उत्तम त्याग।

आन्यतर तप—महावार न तप म पान प्राप्त किया था आर जिन कृत्याय।  
अन जन धर्म म तप पर भा विज्ञाप आर किया गया है। स्वाध्याय का तप म उचा  
म्यान दिया गया है और इसक परि म बताय गय हैं—पठना पूठना अनुष्ठान  
(बार-बार अथ का मनन करना) अभ्यास तथा धर्मोपवास। इसक अतिरिक्त परि  
अथ आन्यतर तप हैं —

(१) प्रायश्चित्त (२) वित्त (३) वधावरः अर्थात् ग्नातिरहित आकर टुटिया  
का उपकार करना (४) कापोत्तप जयान् माया-मात्र जाति म रजित जाना आर ममय  
आन पर भाजन आदि छाःकर शरार छःः दना तथा (५) ध्यान विनन अनेक म  
बताय गय है। ध्यान म एक प्रकारस मममन जन मिद्वान्ता की पुनराकन कर गह है।  
परिषह—अगर जा निधान बताय गय हैं व माधारण तागा व विर है पर मया  
मिया व लिए कुछ अर्थक कठार नियम बताय गय हैं। य ध्यान परिषह है जिन्हें  
मायागिया का जीतना आवश्यक है —

- (१) शूदा (२) तथा (तप्या) (३) ज्ञान (४) उज्ज (५) नग्न (६)  
याचना (७) अरति (८) अज्ञान (९) दशमगवाति (१०) आशाम (११) राग  
(१२) मत्त (१३) तपस्या (१४) अपान (१५) अज्ञान (१६) प्रमा (१७)  
सत्कार पुरस्कार (१८) शय्या (१९) धर्म्या (२०) कपवपन (२१) निषया तथा  
(२) स्त्री।

धर्म—धर्म व ध्यान म मुनि पान १०, ज्ञान प्रदाय स्वल्प पराक नियम  
तप मिद्वान्ता का मन्त्र हुआ था अन धर्म व धर्म्य म मी जनिया का म्प धारणा  
है और जिसका विषय व धर्म्य जन प्रया म मितता है। म्प जनिता म य प्रवर्ण  
पूण है अन इसका पूण ध्यास्या करना विषय व न धर्म्य दुष्ट बनाना है म्प कुछ  
धर्म म विषयतरह ता मा है। अतः यहाँ धर्म्य जान मना पनाज है कि जनिया  
न धर्म व भाट म्प बनाय है —

(१) ज्ञानवर्धय धर्म—जिमम आत्मा पर शुद्धम परता पडा रहता है तिमस  
लक्षण नह। हो पाना।

- (२) दग्नावर्णोय कर्म—जिसमें यथाय तत्त्वज्ञान नहीं हो पाता।  
 (३) देवनीय कर्म—जिसमें कुछ दिन भल ही सुख का अनुभव हो पर अन्त दुःख से हाता है।  
 (४) आयु कर्म—जिससे आवागमन का कारण जुटता है।  
 (५) नामकर्म—जिससे आत्मा देव मनुष्य जादि की गतियां निर्धारित हानी हैं।  
 (६) गोत्रकर्म—जन्म के मात्र की उच्चता लघता का निश्चय होता है।  
 (७) अंतराय कर्म—जिससे मत्कर्म दान लाभ में बाधा उपस्थित होती है तथा  
 (८) मोहनीय—जिससे आत्मा मदिरलसित-मी हो जाती है।

गण-स्थान—इसी प्रकार चौदह गुण-स्थानों का उल्लेख किया गया है। गणस्थान से जीव की विभिन्न स्थितियों का अभिप्राय है। ये १४ गुणस्थान निम्नलिखित हैं—

(१) मिथ्यात्व (२) सामादन (३) मिश्र (४) अविरति (५) देशविरत (६) प्रमत्तसमय (७) अप्रमत्तसमय (८) अप्रवृत्त (९) अनिवृत्त (१०) मूढ (११) सापण्य (१२) उपशान्तमोह (१३) क्षीणमोह (१४) सयोगि केवलजिन तथा (१५) जयागीकेवलजिन। चेतनावस्था से लेकर (अर्थात् जयसे मनुष्य में झूठ मत्प पाप पुण्य जादि सम्बन्धी क्रियाओं का बोध होता है) मोक्ष के मार्ग तक की समस्त अवस्थाओं का बोध उपरोक्त १४ गुण-स्थानों में कराया गया है।

ज्ञान—ज्ञान का स्थान जन सिद्धान्त में काफी महत्वपूर्ण है। ज्ञान के पाँच भेद बताये गये हैं—

(१) इन्द्रिय ज्ञान—जिसमें पाँच इन्द्रियां तथा मन से ज्ञान प्राप्त होता है। इसके भी चार उपभेद हैं—अवग्रह ईहा अवाय तथा धारणा।

(२) अतज्ञान—इसका सम्बन्ध मतिज्ञान में मोघा है क्योंकि उसके निमित्त में ही यह होता है। इसके दो भेद हैं—अव्यथृत तथा भावथृत।

(३) अवधिज्ञान—जो इन्द्रिय के सहयोग बिना ही आत्मा को ही जानता है।

(४) मनःपश्यतज्ञान—यह भा इन्द्रियजय नहीं होता अपितु आत्मा के स्वभाविक विकास से होता है।

(५) कवलयज्ञान—जब आत्मा का चरमोत्कृष्ट हो जाता है तब उसे कवलय या कवलय का प्राप्ति होता है। तब उसमें भक्त भविष्य जानने की क्षमता तक आ जाती है।

उपरोक्त भेदों के भी अनेक उपभेद हैं जिनके सम्बन्ध में यहाँ प्रकाश जानना बाधित नहीं।

प्रमाण—पन्थाय के संवर्ण के ज्ञान प्राप्ति करने की विधि को भी प्रमाण कहते हैं। इसके भी भेद हैं—(१) प्रत्यक्ष तथा (२) परोक्ष। इनके उपभेदों के अन्तर्गत उपरोक्त पाँचों प्रकार की ज्ञानगत स्थितियाँ आ जाती हैं। अतः उनका पुनरावृत्ति आवश्यक नहीं।

नय—प्रमाण द्वारा जिस पन्थाय का ज्ञान प्राप्ति किया जाता है उस पन्थाय के विधी एक धर्म का विधानरूप से जानना नय कहलाना है। द्रव्याधिक नय तथा पदार्थाधिक नय इसका भी भेद है।

समादवाह—एक ही वस्तु का यदि विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जाय तो उसका मूलरूप हमारे उम्भल नय-नय दृष्ट में आयागा। एक वस्तु के कई रूप या धर्म हो सकते हैं, अतः जिनका नै इस पर जार किया कि किमा भा वस्तु का केवल एक ही दृष्टि में देखकर मत छोड़ो। हिन्दू आचार्यों ने इस मशयवाह या अनिश्चयवाह कर्मका इसकी कर्म आलोचना की पर व्यावहारिक दृष्टिकोण में यह बिदुष्य सत्य है।

महावीर की मृत्यु के पश्चात् जैनधम की अवस्था।

महावीर स्वामी के सहयायी या शुभचिन्तक राजाओं के विषय में पिछले पृष्ठों में प्रकाश डाला गया है और वही यह भी बताया गया है कि गणराज्य की उन्नाइसवीं प्रति कितनी अधिक थी। यहाँ हम यह विचार करेंगे कि उनकी मृत्यु के पश्चात् जन धम की क्या दशा रही।

महावीर स्वामी के त्यागद्वारा शिष्यों में से उनकी मृत्यु के पश्चात् बचल एक आद्य भुवमन बच गया था जो महावीर के पश्चात् जनधम का जाचाय हुआ। सम्भवतः महावीर के जीवनकाल में उनके जामाता जमालि तथा एक भ्रातातामसुत्त न जनधम में कुछ उपद्रव मचाया था। इसका प्रामाणिक कारण नहीं पता है। यह मधु म प्रधानता प्राप्त करने के लिए तो नहीं रहा? जन अनुश्रुतियों से यह पता चलता है कि महावीर स्वामी की मृत्यु के पश्चात् माइने धम का राजकीय सहयोग मिलना रहा। अजातशत्रु के उत्तराधिकारी उत्तयिन के चढ़ते अनुश्रुतियों में जनमनावलम्बी माना गया है। इस प्रकार शक्तिशाली मगध राज्य में प्रारम्भ से ही जन धम का पञ्चहात्र उत्तयिन तक चलती रही और तत्पश्चात् जय नन्दा का उत्थ हुआ तो उन्होंने भी धम प्रश्रय दिया जमा कि हाथी गुम्फा के अमिनख में इसका मकेत मिलता है। उनके अमिनख में प्रथम जिनकी मूर्ति का नन्दा राजा के अधिकार में डाला बताया गया है। मगध में जनधम ने निश्चय ही अपनी जगह जमा ली थी (यदि जन अनुश्रुतियों पर विश्वास किया जाय) और मौर्य साम्राज्य का स्थापक चक्रवर्ति विक्रमादित्य का विजया का विजया कागद ने भी अन्त में जन धम स्वीकार कर लिया जमा कि भाग बनाया जायेगा।

जनाचाय भुवमन का सम्भवतः ५०८ ई० पू० में दहावसान हुआ गया और तत्पश्चात् उनके उत्तराधिकारी जम्बू ४६४ ई० पू० में मरे। इसके बाद हम जन धम का पर्याप्त विवरण प्राप्त करनेवाला धर्म का पम्पूत्र मिलता है जिस पर अलग प्रकाश डाला जायगा।

पाटलिपुत्र की सगीति—कल्पमूत्र के रचयिता भद्रबाहू तथा सम्भूतिविजय इन दोनों भ्रातृ (स्यविरा) के निरीक्षण में बहुत दिनों तक जनधमचरिता रहा। सम्भूति विजय की मृत्यु कागुप्त मौर्य के शासन-काल में हुई थी। इधर भद्रबाहू मगध के १२ वर्षीय भावण अकाल से मधु में उत्पन्न होनेवाले अनतिक आचरणा के मधु से दक्षिण की ओर श्रवण-बल्लोना का चतुर्थे। इनके साथ इनके मधु के अनेक भ्रातृ मगध में थे। अकाल समाप्त हो जाने के पश्चात् इनके सम्भूति अनुयायी तो नीचे आये पर बचल मगध कागुप्त में वही एक मगध भिक्षु की भाँति उपवास द्वारा शरीर त्याग लिया था। १६वीं सताब्दी ईसा के एक अभिलेख से मगध में काद्वगिरि का चादी पर मगध कागुप्त तथा कागुप्त के पञ्च विद्वा के पाय जान का उल्लेख किया गया है। नन्दाहू मा मगध मौर्यकर नन्दा आये बरन् के मगध चतुर्थ मज्ज जर्जतप द्वारा उन्नी शरीर त्याग लिया। अपनी मृत्यु के पूर्व ही इन्होंने स्थूलभूत का मधु का नन्दा प्रदान कर लिया था। इसी बीच में जनधम में अनेकानेक परिवर्तन उपस्थित हो चुके थे। नन्दाहू के मधु मगध हुए जन मगधों जब मौर्य मगध आये तो यहाँ एक हुए जन मगधियों ने उनका कुछ आलोचना का करा कि उन्होंने पवन मन्त्र धारण करके आरम्भ कर लिया था। नियमा एक भिक्षुओं में मगध में हान का कारण प्रचलित मगधों के जान का अन्तना हा था। इस प्रकार के मगध विद्या का अन्त कर धम के सिद्धांतों का एक निश्चित रूप में के अभिप्राय में ही मगध के मगधियों ने पाटलिपुत्र में एक बठक की आयोजना की। यह प्रथम मगध में जन धम के इतिहास में एक महत्वपूर्ण है। उनके बठक में नीचे हुए

संयासियों ने भाग नहीं लिया। यहाँ यह भी बता देना आवश्यक है कि प्राचीन धार्मिक ग्रन्थों में (जिनमें ११ अंग तथा १४ पूर्व सम्मिलित हैं) केवल मद्रवाहू का ही याग्यना प्राप्त थी। अथ किसी व्यक्ति का जन्म जान नहीं था। स्थूलमन्त्र का भा मद्रवाहू ने केवल प्रथम १० पर्वों की शिक्षा का प्रचार लागा म करने को कहा था जब वे दोनों नेपाल में मिले थे। इस प्रकार पाटलिपुत्र में जा सगीति हुई और उसमें जिस सिद्धान्त का निरूपण हुआ वह काफी विगल था। अब वस्त्रधारी जनियों को श्वेताम्बर तथा प्राचीन संयासियों का जा जब भा नग्न रहते थे दिग्म्बर कहा जाने लगा।

बल्लभी की सगीति—पाटलिपुत्र के पश्चात् जन घर्मानुयायियों की दूसरी बठक गुजरात में बल्लभी नामक स्थान में हुई। यह काफी दिना पश्चात् लगभग छठी शती ई पू० के आरम्भ में दक्षिणगण्डि या क्षमाश्रमण के नेतृत्व में हुई थी। इस सगीति का उद्देश्य ब्रह्मचर्य हो तथा अथ नियमों को प्रामाणिक ढंग से निरूपित करना था। श्वेताम्बरों का पहला बठक म सङ्गठित सिद्धान्तों का हा य पुनरावृत्ति (लिपिरूप में) रहा। अतः इसमें भा प्राचीनतम जन साहित्य नहीं आ सका।

जनघम का क्षेत्र—यह बताया जा चुका है कि अपने समय में महावीर ने अथ अवन्ति मगध आदि राज्या पर अपना प्रभाव छोड़ा था मगध राज्या में मल्ल लिखवा जादि उनसे बहुत प्रभावित थे। उनकी मयु के पश्चात् भी मगध के मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त के अन्त में जन होने का बोध होता है। पर जनघम का प्रसार-क्षेत्र केवल यहाँ तक सीमित न था। उज्जैन तथा मथुरा उन दिना जन घम का केंद्र था गया था। मथुरा में इतना अधिक माना म जनअभिलष प्राप्त हुए है कि उन उपरोक्त मत का समर्थन स्पष्टतया हो जाता है। उज्जैन और जन सन्त कालकावाय का सम्बन्ध तो एक बहुत ही रोचक कथा जो कर जन अनुश्रुतियां में दर्शाया गया। जन घम का प्रचार भारत में काफी हुआ और वास्तव में यह अपने प्रतिस्पर्धी बौद्ध धर्म की अपेक्षा भारत में अधिक सफल हो सका। भारत में आज भा इस धर्म के अयुयाया काफी सह्या में पाये जाते हैं। जन घम का इस सफलता के मूल में हिन्दू धर्म से इसका साम्य ही है। इसमें बठिन तप ज्ञान मोक्ष आदि की जा बातें बताई गई हैं वे श्रुतियों का नवान या विचित्र नहीं जगीं और वे अपनी रूढ़िवादिना का न त्यागत हुए भी इस नवीन धर्म का स्वाकार करने के लिए प्रस्तुत हो सके। आज इसलिए भारत के बड़े बड़े नगरों में जन मन्दिर धर्मशालाएँ पाठशालाएँ आदि काफी हैं।

विद्वान् अधिकतर जनघम का पयक धर्म स्वीकार करने में हिचकते थे। लेकिन अब यह पूणतया स्पष्ट हो चुका है कि बौद्धधर्म की मति ही जनघम भा पूणतया पयक धर्म था। देविय —

Buddhism and Jainism were not related to each other as parent and child but rather as children or common parent born at different intervals though at about the same period of time marked by distinct characteristics though possessing a strong family of resemblances

—M. Williams

हृत्तर मन्त्रम न मा हमार इमा मन का अनुमान किया है —

Jainism is as much independent from other sects especially from Buddhism as can be expected from any sects. Notwithstanding certain similarities it differs from Buddhism in its ritual objects of worship

—H. H. Hunter



# १० | बौद्ध धर्म का अन्वेषण

छठी शताब्दी ई० पू० का धार्मिक क्रान्ति का युग मानने में हमें जाग्रदृष्टि बौद्ध धर्म का अन्वेषण सहायता है उनका अर्थ विभीषण धर्म से नहीं। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस धर्म में एक यात्रा विद्वान् का अधिकांश भाग का प्रभावित किया था और इसके अन्तर्गत सन्तों से सम्पूर्ण विश्व का शान्ति-स्थापना का प्रेरणा मिली थी। पहले बौद्ध धर्म का प्रवर्तक महात्मा गौतम बुद्ध का जीवन चरित्र पर संक्षेप में नीचे प्रकाश डाला जायगा।

## गौतम बुद्ध

गणराज्या का उल्लस करते हुए यह बताया गया था कि गौतम बुद्ध का पिता महान् कपिलवस्तु का शासक का गणराज्य के 'राजपुत्र' थे। इनकी माता का नाम मायादेवी था जो कोलिय गणराज्य की राजकुमारी थी। मूल निवास में गौतम का कुल का उच्च एवं अशुभ बताया गया है।

गौतम का जन्म तिथि का निश्चय उनका मृत्यु तिथि का आधार पर इस प्रकार किया गया है —

मिहन्नी अनुश्रुतियों के अनुसार गौतम की निधन तिथि ५४३ ई० पू० है और वह ८० वर्ष तक जीवित रहे। अतः जन्म तिथि ६२३ ई० पू० हुई। पर इस सम्बन्ध में विद्वान् का मतभेद नहीं है और कुछ यह तिथि ५६६ ई० पू० बताते हैं। परिनिर्वाण का तिथि ४८३ ई० पू० भी माना गई है।

मज्झिम निकाय तथा निदान कथा में महात्मा बुद्ध का जन्म की कथा का वर्णन है। जिस समय महामाया अपने मायके देवदेह जा रही थी उसी समय रास्ते में सुम्बिना में गौतम का जन्म हुआ। दुर्भाग्यवश जन्म के सात दिन पञ्चान्त हुआ था कि वह दहान्त हो गया और बालक का पालन-पोषण उसकी विमाना महाप्रजापति गौतमा द्वारा हीन लगा। महात्मा गौतम बुद्ध का जन्म-स्थान का एक प्रमुख साक्ष्य अशाक का सुम्बिनी या सुम्बिनी (सम्भिनयेया) अभिनय (२५० ई० पू०) है। उन अभिलेखों में लिखे हुए जाते शाक्यमुनीना (अर्थात् शाक्य मुनि बुद्ध यहाँ पैदा हुए थे) उत्पन्न है। यह स्थान नेपाल में स्थित है।

अगुत्तर निकाय १।१४५।। से ज्ञात होता है कि गौतम बुद्ध का बाल्यजीवन विद्यालय में ही बीता। हर प्रकार के सुन्दर वस्त्रों का उपयोग करते थे और नृत्य संगीत का भी आनन्द लेते थे। इनकी पत्नी का नाम यथायुक्त है। बुद्धका १११ म महाव्रतों जानक-टीका २८१ ४८५ तथा महाव्रतों मूल में लिखा तन्निवृत्तियों में गौतम तथा उत्तरी बौद्धधर्म में महाव्रतों बताया गया है।<sup>१</sup> मज्झिम निकाय का कथाकारी प्रवर्तित है जिसमें यह बताया गया है कि सिद्ध प्रकाश जरा राग तथा मृत्यु भाँति का कारण मृत्यु का नाम नृत्य देकर गौतम जीवन का प्रति उत्पन्न हुआ था।

<sup>१</sup> देहिदे राधाकृष्ण मन्त्री *Hindu Civilisation* p 24 जितकर आधार पर उक्त विवरण दिया गया है।

जिस समय गौतम घर छा ने का निश्चय कर चुके थे उसी समय उन्हें पुत्रोत्पत्ति की सूचना मिली और गौतम के मह से निकला राहुत (बचन) जो बालक का नाम पड़ गया। पर य नारे बचन गौतम को न बाँध सके और उन्होंने २९ वष का अवस्था में घर छो दिया।

ज्ञान का खोज में—लज्जितविस्तर त नात होता है कि शाक्य कोलिय मल्ला आदि के राज्या का पार करत हुए वे जनवमय नामक स्थान पर पहुँचे। यहाँ अपना समस्त आवरण उतारकर इन्होंने छदक की दे दिया और स्वयं पात्र वस्त्र धारण कर लिया।

सब प्रथम गौतम आलार बालाम नामक सयामी के पास जाये। इनके ३०० शिष्य थे। इन्ही शिष्या के साथ आलार कालाम से गौतम भा शिक्षा लेन लग पर जिस प्रकाश की खोज में गौतम निकल था वह यहाँ नहीं मिला। अत वे और अग बढ़। इन्हें एक दूसरा धर्मशिक्षक मिला। इस धर्माचार्य का नाम उत्क रामपुत्र था जिसके ७०० शिष्य थे। यहाँ भी गौतम को निराश होना पड़ा। तत्पश्चात् गौतम भगव रायामोन उर्वेला नामक स्थान पर जाये। यहाँ उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ कर दा। जन का विलुप्त ही त्याग कर लिया और केवल रस से प्राण रक्षा करने लग। कुछ ही दिनों में उनका शरीर सूखकर काँटा सा गया। यहाँ उनके साथ इनके पाँच ब्राह्मण साथी भी रहे। पर गौतम ने देखा कि इस कठिन तपस्या से भी कोई लाभ नहा होने को अत उन्होंने तपस्या भग करके आहार ग्रहण किया जिस पर उनके ब्राह्मण साथियों ने उन्हें पट्टे बहकर उनका साथ छोड़ दिया। बद्ध का ६ वषसी प्रकार बीत गया। ३५वें वष में एक दिन जब वे एक पीपल के पेड़ के नीचे (जा आग चलकर बाधिवक्ष कलाया) बैठे थे तब उन्हें बद्धत्व प्राप्त हुआ। गौतम का जिस प्रकाश का खोज था वह मिल गया। इस ज्ञान प्राप्ति के पूर्व की अनेक कथायें महावस्तु तथा जातक आदि में मिलती हैं।

धर्मप्रचार—मसार के दुख से क्षाप्त होकर ही महात्मा बद्ध ने भोग विलास का ठकराया था और अब वे उम प्रकाश को जिससे उन्होंने जीवन के सत्य का स्वयं ज्ञान प्राप्त किया था मसार के प्राणी प्राणी को बताना चाहते थे जिससे विश्व का कल्याण हो सके। महात्मा गौतम बद्ध को वे पुराने माया स्मरण रत्। जन सबप्रथम उन्होंने उनका ही अपने ज्ञान की शिक्षा देन का विचार किया। वे पाँच ब्राह्मण बनारस के शिक्षक मारनाथ के ऋषिपत्तन मगदाव में मिल जहाँ बद्ध भगवान् ने उन्हें अपना प्रथम उपदेश दिया। यह धर्म चक्रप्रवर्तन के नाम से विख्यात है।

प्राचीन मत्स्य गौतम बद्ध के अनेक अनुयायी बनारस में मिल जिनमें धर्म का नाम विशेष उल्लेखनीय है। बद्ध के अनुयायियों का संख्या अब लगभग ६० तक पहुँच गई। इनका प्रथम बोद्धमय का सिद्ध कहा जा सकता है। बद्ध बनारस में पले उठना ली। माग में इनकी ० अनुयायी मिल जिनमें मत्स्य प्रचल था। उर्वेला में ता गौतम बद्ध के पठुवन था एक धार्मिक क्रान्तिवा आ गत् और जतिव कम्मव के ५०० शिष्य तथा ३०० शिष्य गया के २०० शिष्य अथवा कुल १० जतिव सम्प्रदायवान अपने घरआ के साथ बौद्ध धर्मनयायी हो गये। इनके साथ गौतम बद्ध रात्रगु की बात प जहाँ इनका विभिन्नार सं सं हुई। यहाँ सात्त्विक तथा मागनायन नामक दो धर्मिक मिल जित्ति मत्स्य भा बद्ध का धर्म प्रचार में वे ग माग लिया जिनके फलस्वरूप मज्ज तथा उनके २ अनुयायी बौद्ध हो गये। विभिन्न गण राजा का सम्मन करने हुए बद्ध भगवान् अपना जन्मममि कपिलवस्तु आये। अब तक लगभग सम्पूर्ण उत्तरी भारत में उनका प्रचार हो चुका था। कपिलवस्तु में उन्होंने धर्मोपदेश दिया। इनके उपदेश में इनका सोतेना भाइ नत् तथा पुत्र रामल मिले हा गये। नत् उमा माता का पुत्र था जिनमें

गौतम बौद्ध का पानन-आपण किया था। जिस समय जन्म मिला हुआ उमा तिन उसका रा-पानियक तथा एक अत्यन्त रूपवती लडकी से व्याहृति माना निश्चित था। तत्पश्चात् जन्म-भगवान् बौद्ध कपिलवस्तु से राजगृह लौट रहे थे ता माग म अनुपिय नामक म्यान पर उहने माक्य राजा मद्रिक को उसका महचरो अनरुद्ध आनन्, उपालि तथा श्रेवदत्त के साथ बौद्ध धम्म में शिक्षित किया और वे बौद्ध धम्म के इतिहास में अपना प्रमुख हाथ रखते हैं। धम्म प्रचार के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना राजा मद्रिक की है। बौद्ध भगवान् मातावन (राजगृह) में एक थे। यही उनमें प्रभावित होकर मुत्त नामक एक व्यापारी ने बौद्ध धम्म स्वीकार किया। हम सुदान्त के दान की मन्ना क्या का साथ होता है। फिर हमसे जान जाता है कि सुदान्त ने बौद्ध भिक्षुओं के लिए जन राजकुमार के उपवन की लन का इच्छा प्रकट की पर जन ने उस उपवन का मन्त्र बताया उसकी पृणतया एक नम भग मोना। सुदान्त तयार हो गया। इस क्या के प्रमाण-स्वरूप मद्रिक की प्रसन्नमूर्ति है जिस मर उपाण है—

अतएव अनशपेत्तिको देति कीटिसमव्यतेत केता (अनशपेत्तिक या अनाशपेत्तिक मुत्त का उपाधि था।<sup>१</sup>

इसी प्रकार पुरवर्मा ने भी गौतम बौद्ध का बहुत बड़ा दान विमान द्वारा प्राप्त हुआ। जब राजगृह कपिलवस्तु तथा श्रावस्ती ताना स्थाना पर बौद्ध धम्म स्थापित हो चुका था। यह महात्मा गौतम बौद्ध के कर्मों का धर्म के प्रयास का प्रतिफल था।

अब तक भगवान् बौद्ध ने कवन पुरुषों का ही शिक्षण करने की आज्ञा दी थी। पर धम्मप्रचार के पश्चात् धम्म में एक ऐसा घटना घटी जिसमें द्रविड जाति महात्मा बौद्ध ने नारिया का भी बौद्ध धम्म में सम्मिलित होने की आज्ञा दी थी। पर भिक्षुओं का आज्ञा देने में महात्मा बौद्ध को कितना शिचक था और धम्म के लिए आज्ञा का कितना परिश्रम करना पड़ा यह उल्लेखनीय है। वशात् म कुशाग्रशीला ने भगवान् बौद्ध को यह कि उन्हें पिता के दण्डमान का भूखना मिली। तब भी श्रावस्ती का नारिया म राशिना तथा के जन के लिए जो श्रमण धम्म रखा था उसका अन्त करने के लिए पर लौटना पड़ा। यही आज पर विषवा माना महाप्रजापति गौतमी ने बौद्ध में भिक्षुओं होने का प्रारम्भ की पर भगवान् बौद्ध ने लाना बार उसका प्रायश्चित्त जन्मान्तर कर था। अन्त में आज्ञा के बहुत करने पर उन भिक्षुओं को हान की आज्ञा मिली। भिक्षुओं का आज्ञा मिल जाने पर गौतम का पुत्रा नन्दा तथा स्वयं बौद्ध की पत्नी गाथा ने भी बौद्ध धम्म में प्रवेश किया। यही गाथा ने लगभग ७०-७५ भिक्षुओं का उद्धार किया गया है। भगवान् बौद्ध का उद्धार करने का और वे उत्तरी भारत के अन्त राज्यों में आज्ञा उद्धार करने पर। बौद्ध धम्म में इन यात्राओं का बहुत ही शक्तिवान् भिक्षु है। अन्त में भगवान् गौतम बौद्ध श्रावस्ती में स्थायी रूप में रहने लगे। अब तक गौतम बौद्ध का वैयक्तिक गणपक के रूप में निरवाचित हो चुका था। श्रावस्ती जा धम्म गौतम का बौद्ध भगवान् का विराय हो गया। भगवत् धम्म में अज्ञानमय तथा लगे पिता विभिन्न मर इमने कितने बटना उत्पन्न कर था था धम्मका अन्तम पिछले अध्याय में किया जा चुका है। यह धर्म सब कवन प्रयान्ता प्राप्त करने के लिए कर रखा था।

अज्ञानमय धम्मधर्म म भिक्षुओं के विच्छेद बौद्ध करने के लिए कितना करवा रखा था। यही महात्मा गौतम बौद्ध का आज्ञा के और उद्धार के भिक्षुओं का था कि बौद्ध

जिस समय गौतम घर छोड़े ने का निश्चय कर चुके थे उसी समय उन्हें पुत्रारति की सूचना मिली और गौतम के मन से निकला राहुने (बचन) जा वानक का नाम पड़ गया। पर य मारे बचन गौतम को न बीस मक और उन्होंने २० वष का अवस्था में घर छोड़ दिया।

ज्ञानकी खोज में—तनितविस्तर सनात हाता है कि शाक्य कालिय मन्ना आदि के राजा का पाग करत हुए वे अनुवेमय नामक म्यात पर पहुँचे। यहाँ अपना समस्त आवरण उतारकर इन्नि छत्रक की दे दिया और स्वयं पाग वस्त्र धारण कर लिया।

सर्वप्रथम गौतम जालार कालाम नामक सन्यासा के पास आय। इनके ३० शिष्य थे। इन्ही शिष्या के साथ आलार कानाम से गौतम का शिष्या बनत तब पर जिस प्रकाश की खोज में गौतम निकलत वह यहाँ नहीं मिला। अतः व और अग वड। इन्हें एक दूसरा धर्मशिक्षक मिला। इस धर्मशिक्षक का नाम उरुक रामपुत्र था जिसके ७०० शिष्य थे। यहाँ भी गौतम की निराश होना पड। तत्पश्चात् गौतम भाग्य रायाजीन उर्वेला नामक म्यात पर जाय। यहाँ उन्होंने कठिन तपस्या आरम्भ करत। अतः का विलुत भी त्याग कर लिया और कवल रस से प्राण रक्षा करत लग। कुछ दिना में उनका शरीर सूखकर बचत हा गया। यहाँ तक साथ इनके पाँच ब्राह्मण साथी भी त। पर गौतम ने कहा कि तम कठिन तपस्या में आ काइ काम नया ज्ञान की अत उरुने तपस्या भग करके आहार ग्रहण किया जिस पर उनके ब्राह्मण साथिया न उरें पर कहकर उनका साथ छोड़ दिया। वड का ६ वष इमा प्रकार बात गया। ३५वें वष में एक दिन जब वे एक पापन के पर के नाच (जा आग चलकर बाजिवला कहलाया) वड में ता उन्हें बद्धत्व प्राप्त हुआ। गौतम का जिस प्रकाश का खोज थी वह मिल गया। तम ज्ञान प्राप्ति के पूव की अनेक कथायें महावस्तु तथा जतक आदि में मिलती हैं।

धर्मप्रचार—मसार के युव में शत्रु हारकर ही महात्मा वड ने भाग विलास का ठुकराया था और जब वे उम प्रकाश की जिससे उन्होंने जीवन के साथ का स्वयं ज्ञान प्राप्त किया था मसार के प्राणी प्राणी का बनाना चाहत थे जिनमें विद्व का कर्मा था मक। मन्नामा गौतम वड को वे पुरान साथी स्मरण त। अतः सर्वप्रथम उन्होंने उनका भी जपन नान की शिष्या बन का विचार किया। वे पावा ब्राह्मण बनारस के निकल भारनाथ के ऋषिपत्तन भगदाव में मिल जहाँ वड भगवान न उरें अपना प्रथम उपदेश दिया। यह धर्म चक्रप्रवतन के नाम से विख्यात है।

तत्पश्चात् मन्नामा गौतम वड के अनेक अनुयाया बनारस में मिले जिनमें धन का नाम विप उल्लसतनाथ है। वड के अनुयायिया की सं या अब लगभग ६० तक पहुँच गड। इनका प्रथम बोद्धमथ का सिध कहा जा सकता है। वड बनारस से पुन उर्वेला सी। नाग में इनको ० अनुयाया मिल जिनमें भू प्रधान था। उर्वेला में तो गौतम वड के पंचत १ एक धार्मिक कालिमा आ गई और जतिन कम्प के ५० शिष्य नया के ० शिष्य गया के २०० शिष्य अर्थात् कुल १० जतिन सम्प्रदायवात अतः मुहुरा के साथ वड धर्मनियामी हो गए। इनके साथ गौतम वड राजगह की बन पें जहाँ उनका विधिमार न भेत् है। यथा सारिपुत्र तथा भाग्यनाथन नामक दो शिष्य मिल जिनने मन्नामा वड का धर्म प्रचार में बग याग दिया जिनके फलस्वरूप मज्ज तथा उनके २०० अनुयाया बोड हा गय। विभिन्न गण राया का भ्रमण करत हुए वड भगवान् अपना जन्मभूमि कपिलवस्तु आय। अब तक लगभग भम्भूण उतरी भारत में उनका प्रचार था चला था। कपिलवस्तु में उन्होंने धर्मोपदेश दिया। इनके उपदेश में इनका सौतेला भाई तथा पुत्र राजन भिम्भु हा गये। नया उमा माना का पुत्र पा जिनन

गौतम बुद्ध का पानन-शापण किया था। जिस समय नन्द मिथु हुआ उमा त्ति उसका राधाभिषेक तथा एक अत्यन्त रूपवती लडकी से व्याहृ हाना निश्चित था। तत्पश्चात् जब मगवान् बुद्ध कपिलवस्तु में राजगृह नीट रहें थे तब माग में अनुपिम नामक स्थान पर उद्दिष्टे शाक्य गजा भण्डिक को उसका सहचरान् अनरुद्ध आनन् उपासित तथा देवन्त के माद बौद्ध धर्म में दीक्षित किया और व बौद्ध धर्म के इतिहास में अपना प्रमग हाथ रखते हैं। धर्म प्रचार के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना राजगृह में हुई। बुद्ध मगवान् सीतावन (राजगृह) में स्थित थे। यही जनम प्रभावित होकर सुगत नामक एक व्यापारी ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया। इस सुदात्त के दान को महती क्या का बोध हाता है। फिर इसमें जान हाता है कि सुगत ने बौद्ध मिथुआ के लिए जन राजकुमार के उपवन का लन की इच्छा प्रकट की पर जन ने उस उपवन का मूल्य बनाया उसका पृणतया एक जन भर सीता। सुदात्त तयार हो गया। इस क्या के प्रमाण-स्वरूप भरहुत की प्रस्तरमति है जिस भर उत्थाण है—

जतवन अनथपेदिक्को देति कोटिसमुच्चयेन वेत्ता (अनाथपण्डित या अनाथपण्डित सुदात्त का उपाधि था)।<sup>१</sup>

इसी प्रकार पञ्चम में भी गौतम बुद्ध का बहुत बड़ा दान विगत द्वारा प्राप्त हुआ। जब राजगृह कपिलवस्तु तथा थावन्ती ताना स्थाना पर बौद्ध मध स्थापित था चुका था। यह महात्मा गौतम बुद्ध के कवल दो धर्म के प्रयास का प्रतिफल था।

अब तक मगवान् बुद्ध ने ध्यान पुण्या को ही शिक्षा करने का आना था था। पर धर्मप्रचार के पंचम धर्म में एक एसी घटना घटी जिसमें इतिहासकार महात्मा बुद्ध ने मानिया का भी बौद्ध मध में सम्मिलित हान की आना था था। पर मिथुणा तान का आना तैन में महात्मा बुद्ध को कितना निश्चिन्त था और इसके लिए आनन् का कितना परिश्रम करना पडा था उल्लेखनीय है। वशाही में कुत्तारशाता में मगवान् बुद्ध एक धर्म के उद्दिष्टे पिता के दहावसान का सूचना मिली। तमा उद्दिष्टे पाक्या एक कानिया में राक्षिणा नाम के जन के निष् जो सगृह चल रहा था उसका अन्त करने के निष् पर नीटना पडा। यही आन पर विषया माना महाप्रजापति गौतमा ने बुद्ध ने मिथुणा होन का प्रायना की पर मगवान् बुद्ध ने ताना बार उसका प्रायना अन्वाहर कर था। अन्त में आनन् के बहुत करने पर उस मिथुणी हान की आना मित। मिथुणी जान का आना मित जान पर गौतम की पुत्री नन्दा तथा स्वयं बुद्ध का पत्नी गाथा ने भा बौद्ध मध में प्रवेश किया। धरागाथा में उगमग ७०-७ मिथुणिया का उल्लेख किया गया है। मगवान् बुद्ध का उमण करना रहा और व उत्तरा माग्न के अनन् राधा में अपने उपदेश देने रहे। बौद्ध धर्म में इन धाराधारा का बहुत ही राक्षक ध्यान मितडा है। अन्त में मगवान् गान्तम बुद्ध थावन्ती में म्याया रूप में उदयग। जब तक गान्तम बुद्ध का वयस्वित्त ग्यायक के रूप में निर्वाचित हो चुका था। देवन्त जो कमा था था बुद्ध मगवान् का विराया हो गया। मगध राजन में अज्ञानानु तथा उगन् पिता विगिरगार में इसने कितने कर्ता उत्पन्न कर ही थी इसका उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है। वह यह सब कबल प्रयाजता प्राप्त करने के लिए कर रहा था।

अज्ञानानु पाननिशाम में निष्कणिया के विरुद्ध बुद्ध करने के लिए निश्चिन्त करवा रहा था। वही महात्मा गौतम बुद्ध का आज ध और उद्दिष्टे निष्कणिया का था कि व

बहुत ही उपनिषाल जगह हांगा। यहाँ से वे बशाली गय जहाँ बलुआ नामक गाँव में वे बीमार पड़े। यहाँ उन्होंने भविष्यवाणी की कि अब मत्तोसर महाने का अन्त में उनका परिनिर्वाण होगा। यहाँ से बुद्ध अनेक ग्रामों से होते हुए पावा आय जहाँ चण्ड लुहार का दिया हुआ अन्तिम भोजन किया। भोजन करने के बाद ही उन्हें उदर राम हा गया। यह पंचिंश बड़ी मयानक सिद्ध हुई। पर महात्मा बुद्ध ने यहाँ रचना उचित नही समझा बुद्ध का अपन अन्तिम हा कहा पर सब मौन अन्तिम क्षण है तुम कुशानारा के भत्ता का सूचित कर दा। यहा ८० वय का अवस्था में महात्मा बुद्ध का परिनिर्वाण प्राप्त हुआ।

महात्मा बुद्ध के पारोनिर्वाण के तुरंत बाद ही विभिन्न राज्यों के दूत मस्मावशय के लिए भेजे गए। अजातशत्रु के दूत भजन की बात पहले ही बताइ जा चुका है। आवुनिक रुदाइया द्वारा अनेक स्तूप तथा समाधियाँ प्राप्त हुई हैं जिनसे महात्मा बुद्ध के मस्मावशयों के समावेश किये जाने का वाद्य होता है। १५५५ (नेपाल) पशावर तथा शिला गुटुर आदि में इस प्रकार के प्रमाण वहाँ के स्तूपों या समाधियों से प्राप्त हुए हैं।

### बुद्ध के मूल सिद्धान्त

गातम बुद्ध के सिद्धान्तों को समझने के पूर्व यह जान लेना आवश्यक है कि गौतम बुद्ध (१) इसल म विश्वास नहीं रखते थे (२) आत्मा को नित्य नहीं मानते थे, (३) किसी धर्म का स्वतः प्रमाण नहीं मानते थे तथा (४) जीवन प्रवाह को इसी शरार तक पारमित नहीं मानते थे।

### चत्वारिंश आय सत्यानि

गातम बुद्ध ने चार आय सत्यां का निरूपण इस प्रकार किया—(१) दुःख (२) दुःखसमुदय (३) दुःखनिरास तथा (४) दुःखनिरासगामा भाग।

नाम इन पर पथक पथक प्रकाश डाला जायगा।

(१) दुःख—बुद्ध ने कहा—जन्म या दुःख है बुढ़ापा या दुःख है मरण या शोक घटन—मन का खिन्नता—हेराना दुःख है। अप्रिय से सयाग प्रिय से वियोग भी दुःख है इच्छा करके जिस नहीं पाता वह भी दुःख है। संक्षेप में पांचो उपादान स्वयं) दुःख है। १ पांच उपादान स्वयं रूप बदना सजा सस्वार तथा वियान है।

(२) दुःखसमुदय—दुःख का कारण तण्णा है। काम का तण्णा भव (उत्पन्न होना) का तण्णा, विभव का तण्णा आदि हां दुःख के कारण है। काम का तण्णा से दुःख किस प्रकार उत्पन्न होता है इसका व्याख्या भगवान् बुद्ध ने इस प्रकार की है— काम (प्रिय भाग) के लिए ही राजा राजाओं से उडत है क्षत्रिय क्षत्रियों से ब्राह्मण ब्राह्मणों से गृहपात गृहपतियों से माता पुत्र से पुत्र माता से पिता पुत्र से पुत्र पिता से माई माई से बाहिन माई से माई बाहिन से भ्रत भ्रत से सडते हैं। वे परस्पर कलह विपट्ट विवाद करते हैं, एक दूसरे पर हाथ से दण्ड से शस्त्र से भी आक्रमण करते हैं। वे मर भा जाते हैं और मरण समान दुःख का भा प्राप्त हात है।<sup>२</sup>

१ महासत्तिपटठान मुत्त (शोध निकाय २।९)

२ मज्झिम निकाय १।२।३।।

(२) दुःख निरोध—जब कर्म मूल तन्त्रों के अन्त करके वा दुःख निरोध कहते हैं। तन्त्रों के अन्त में जानने में उपानान का निरोध होता है। उपानान निरोध में भय (भीति) का निरोध होता है और सब निरोध से जन्म का निरोध हो जाता है। जन्म का निरोध में दुःख का उपकरण—यथाया मरण जन्म आदि का अन्त हो जाता है।

(४) दुःख निरोधगामी मार्ग—दुःख निरोधगामीमार्ग का प्रथम उपदेश भगवान् ब्रह्म ने अपने पाँच माधिसा का दिया था जो धर्मधर्मप्रवचन का नाम से विख्यात है। भगवान् ब्रह्म ने कहा—

मिथ्या १। इन में अनिष्टों का नष्ट करने का चाहिए। (१) काम गुण का जन्म जानना (२) शरीर-यानना में लग जाना। इन दोनों अनिष्टों का त्याग (मन) मध्यम मार्ग का निवारण है (जो) जन्म-मरण का चक्र चक्रान् घाटा शान्ति-मनवाना है। वह (मध्यम मार्ग) यथा-या अष्टांगिक मार्ग है। सम्यक्-चिन्ता (ज्ञान) सम्यक्-वचन सम्यक्-कर्म सम्यक्-जीविका सम्यक्-प्रयत्न सम्यक्-स्मृति तथा सम्यक्-समाधि। १

उपर्युक्त आठ अष्टांगिक मार्ग मध्यम-ज्ञान, अर्थ-ज्ञान तथा अन्तिम तीन समाधि के अन्तर्गत आते हैं।

वाचिक वाचिक मानसिक अर्थ-ज्ञान का ही सम्यक्-चिन्ता कहा गया है। वाचिक अर्थ-ज्ञान का ही सम्यक्-वचन (धर्मिचार) आदि है और अर्थ-ज्ञान का ही सम्यक्-कर्म का ही सम्यक्-जीविका है।

शुद्ध बोध करना ही सम्यक्-चिन्ता कहलाता है। ब्रह्म ने बताया कि सम्यक्-कर्म का अर्थ ही राग-प्रतिहिंसा रहित सकल्पः। यथा-ज्ञान का अन्तर्गत है।

ज्ञान का अन्तर्गत सम्यक्-वचन सम्यक्-कर्म तथा सम्यक्-जीविका है। सम्यक्-वचन तथा सम्यक्-कर्म का अन्तर्गत ऊपर बनाया गया वाचिक तथा वाचिक कर्म आते हैं। सम्यक्-जीविका मनुष्य का अर्थ-ज्ञान से संबंधित है। प्राणि-हिंसा-सम्बन्धी जीविका ही बुरी जीविका है। अगुण-निवारण का अन्तर्गत हृदय-विचार का अन्तर्गत प्राणि-विचार का अन्तर्गत धर्म का अन्तर्गत विचार का अन्तर्गत आदि ही शुद्ध जीविका है।

सम्यक्-समाधि का सम्यक्-प्रयत्न सम्यक्-स्मृति तथा समाधि है। सम्यक्-प्रयत्न का अर्थ ही इन्द्रिया पर नियंत्रण करने का प्रयत्न बुरा-भावनाओं का नष्ट तथा गुण-भावनाओं का उत्पन्न का प्रयत्न उत्पन्न उत्पन्न भावनाओं का अन्तर्गत मन का प्रयत्न करना। वाचा-वचन, चिन्ता-आशय का धर्म का ठाक-स्मिन्तिसा—अन्तर्गत-मन, अन्तर्गत-विषयों आदि-ज्ञान का अन्तर्गत अन्तर्गत सम्यक्-स्मृति है। चिन्ता का अन्तर्गत का समाधि का अर्थ है। २

अब तक जिन सिद्धान्तों पर कुछ प्रमाण दाना गया है वे अन्तर्गत मन-बुद्धि का अन्तर्गत विचार का अर्थ ही अन्तर्गत दार्शनिक विचारों पर विचार करेंगे।

१ धर्मधर्मप्रवचनसूत्र—समुत्त निबन्ध ५५।२।१।।

२ अन्तर्गत निबन्ध १।५।४।।

## क्षणिकवाद

अगुत्तरनिकाय ३।१।३४ म अनित्य दुःख अनात्म बुद्ध भगवान् के सम्पूर्ण दर्शन का प्रताक है। इसमें ही उनका सारा दर्शन आ जाता है। अनित्य उनका क्षणिकवाद का यातक है। भगवान् बुद्ध ने तत्त्वा को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त किया—

(१) स्क्व (२) आयतन तथा (३) धातु।

स्क्व के भी पाँच उपविभाग हैं—रूप, बदना, सप्ता सस्कार का विज्ञान। रूप में पृथ्वी आदि चारों महाभूत सम्मिलित है। सुख-दुःख की अनुभूति ही वेदना है। चेतन एव ज्ञान का सप्ता कहते हैं। मन परपी छाप या वासना का सस्कार कहते हैं। चेतना एव मन का विज्ञान कहते हैं। बुद्ध ने इन्हें मन्वर बताया है।

आयतन के बारह रूप हैं—६ इंद्रिया (चक्षु श्रोत्र घ्राण जिह्वा काया मन) तथा उनके ६ विषय (रूप शब्द गंध रस स्पृष्ट द्रव्य तथा धर्म)।

धातु का सा १८ रूप है—उपरोक्त ६ इंद्रिया उनका ६ विषय तथा उनका पारस्परिक सम्पर्क से जनित ६ विज्ञान। महानिदान सुत्त तथा अगुत्तर निकाय म इन सार तत्त्वा का अनित्य या क्षणिक कहा गया है।

प्रतात्य-समुत्पाद—एक वस्तु के विनाश के पश्चात् दूसरी की उत्पत्ति होती है इसी नियम को भगवान् बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद कहा है।

अनात्मवाद—शरीर व नष्ट हो जाना के पश्चात् आत्मा नाम की किसी स्याया वस्तु में उनका विश्वास न था। उपनिषद् में आत्मवादी की जा वकालत का गद्द है भगवान् बुद्ध के मतानुसार वह असत्य है।

अभातिकवाद—अनात्मवादी होने हुए भी भगवान् बुद्ध भौतिकवादी (जडवादी) कदापि न थे। शास्त्रों में भौतिकवाद में उनका ब्रह्मचय और समाधि का उसी प्रकार विरोधी है जिस वह आत्मवाद का विरोधी है। अतः उन्होंने कहा—

वही जाव है वही शरीर है (दोनों एक हैं) ऐसा मत हान पर ब्रह्मचय-वास नहीं हो सकता। जाव दूसरा है शरीर दूसरा है, ऐसा मत (दृष्टि) होने पर भा ब्रह्मचय-वास नहीं हो सकता।<sup>४</sup>

अनीश्वरवाद—अब-अब मा भगवान् बुद्ध से ईश्वर के सम्बन्ध में पूछा जाता था तो वे या तो बिल्कुल मौन हो जाते थे या कुछ परिहासमय वचनावला म उसके विद्यमान हान म सन्देह प्रकट करत थे। उहान एक स्थल पर यह बताया है कि आत्मानव को ही परवर्ती मानव ने श्रमवश ईश्वर मान लिया।

दस अक्षयनीय (अप्याहृत)—बुद्ध ने निम्नलिखित दस समस्याओं पर मौन रहन का अनुमति दी है—

- |              |   |                                      |
|--------------|---|--------------------------------------|
| (अ) लोक      | { | (१) क्या लोक नित्य है?               |
|              |   | (२) क्या लोक अनित्य है?              |
|              |   | (३) क्या लोक अन्तवान है?             |
|              |   | (४) क्या लोक अनन्त है?               |
| (ब) जीव शरीर | { | (५) क्या जीव और शरीर एक हैं?         |
|              |   | (६) क्या जीव दूसरा और शरीर दूसरा है? |



का एकना	}	(७) क्या मृत्यु के पदचान् तयागत (मृत) होते हैं ?
(स) निर्वाण		(८) क्या मृत्यु के पदचान् तयागत नहीं होते ?
के		(९) क्या मृत्यु के पदचान् तयागत = त भी हैं और नहीं भी होते हैं ?
बा		(१०) क्या मृत्यु के पदचान् तयागत होते हैं नही ही होते हैं ?

सत्यता में अविश्वास—मज्झिम निक्काय समहपातहाला है कि मगधान बुद्ध सब ज्ञान का गलत मानते थे। एक स्थान में इस प्रकार लिखा है—

मुना है मने ! श्रमण गौतम मवन सर्वदर्शी है—(क्या ऐसा कहनेवाला) यथाय कहनेवाला है ? मगवान् की असत्य स निन्दा ता नना करत ।

वम ! जा का मुझ ऐसा कहते हैं वह पर त्रिपय म यथाय कहनेवाला नही है। वह असत्य स मरी निन्दा करत है ।

मज्झिम निक्काय में ही अयत्र कहा है—

एसा श्रमण ब्राह्मण नही है जा एक हा बार सब जानगा मव देग्गा (सबन सर्वदर्शी होगा) ।

विचारस्वातंत्र्य—गौतम बुद्ध ने लोगो का अधानुकरण के स्थान पर स्वयं उचित अनुचित पर विचार करने का अनुमति दी। धरापुत्र ग्राम के बानामा न मगवान् बुद्ध से एक बार यह कहा कि विभिन्न श्रमण अपना-अपना मत बताते हैं और दूसरे के मत पर अमनाप प्रकट करत हुए नाराज होते हैं। एसा अवस्था में हम मन्त्र होता है— बौद्ध सब कहता है बौद्ध झूठ। इस पर बुद्ध ने उत्तर दिया— बालामा ! तुम्हारा मन्त्र ही बौद्ध है मन्त्र के स्थान में ही तुम्हें मन्त्र उत्पन्न होता है। जब बानामा ! तुम स्वयं ही जानो कि ये धर्म (बाय या वान) अच्छे अशुभ विद्यासंनिहित हैं यह मने ग्रहण करने पर हित सुख के लिए होते हैं, ता बानामा ! तुम उन्हें स्वाकार करा ।

निर्वाण—निर्वाण का शाब्िक अर्थ है बुद्धता। गौतम बुद्ध ने उस सम्बन्ध में कुछ अधिक कहना अत्याहत बताया है। तणा के शीघ्र हो जाने का अवस्था को ही बुद्ध ने निर्वाण कहा है। आश्व के न रहने पर ही निर्वाण होता है ।

बुद्ध के सिद्धान्तों के उपरान्त विवरण से हम जान सकते हैं कि बौद्ध धर्म की पतन का काफी अवसर था क्योंकि हिन्दुओं के लिए बौद्ध सिद्धान्तों में अनेक प्राण थे। बौद्ध धर्म के प्रचार का विवरण अन्यत्र किया जायगा। मगवान् बुद्ध ने अनेक जा कुछ प्रयास किया उसका उल्लेख किया जा चुका है। बौद्ध धर्म का बँटव के लिए पिछले पन्ना में प्रजापत की समाज का बँटव का विवरण किया। बौद्ध धर्मनिर्वाण का यथास्थान उल्लेख किया जायगा ।

### बौद्ध धर्म की उत्पत्ति के कारण

बौद्ध धर्म का जन्म मगध राज्य के अशोक प्रचारक के समय में हुआ था। यहाँ के विचार का मूलप्रमाण धर्म बौद्ध धर्म माना जा सकता है। मगधमूलक धर्म न कहा है—

And even at present day Buddhism counts in Asia a more numerous array of believers than any other faith not excluding Mohammedanism and Christianity

—Max Muller

कर दिया था। उनकी दृष्टि में मनुष्य मनुष्य में कोई भेद नहीं था। इन सत्र गुणों के कारण बौद्धों के व्यक्तित्व में बुद्धकायों का उपपन्न हो गया था। बुद्ध के प्रभावशाली व्यक्तित्व से कोई भी जा उनका सम्पर्क में जाया प्रभावित हुए बिना नहीं रहा। जिस सबब्राह्मण तक के साथ ब्राह्मण पंडितों के विवाहों का महत्त्व उत्तर दिया करते थे वही कथना मना दिया जादि जिन मानव भावनाओं से उनका उपपन्न संप्रण हो जाते उनके कारण क्या पुराहित क्या राजा जाँर क्या प्रजा समा सन्तुष्ट हान व । १

(४) जाति प्रथा का विरोध और समानता की भावना—बुद्ध ने जाति प्रथा का विरोध किया और बताया कि जाति में अनावश्यक ही नहीं बल्कि अस्वाभाविक है। उत्तर वैदिक कालीन सामाजिक रचना में ब्राह्मणों और क्षत्रियों का निश्चय ही बना और शूद्रों की अपेक्षा ऊँचा स्थान प्राप्त था। उच्च ब्राह्मणों और क्षत्रियों में भी सामाजिक श्रेष्ठता के प्रश्न पर काफी वादविवाद हुआ करता था। ब्राह्मण धर्म अथवा वैदिक धर्म जाति प्रथा के औचित्य का पाठन करते हुए ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का स्थापन करता था। ऐसा होने पर यह स्वाभाविक हो था कि अन्य जातियों का सामाजिक स्तर निम्न अथवा हीन प्रतीत हो। फल यह हुआ कि ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी जातिवालों के लिए बौद्ध धर्म अधिक हितकर मानूँगे। क्योंकि यह धर्म मानव मानव का समानता के सिद्धान्तों का पोषक था। उच्च पर लिख चिन्तनशील ब्राह्मणों का भी बौद्ध धर्म का आर आकर्षण बना क्योंकि वे बौद्धों के कमकाण्डों का अनावश्यक तथा व्यर्थ समझते थे। इस प्रकार से मनुष्य मनुष्य के भेदों को मुक्त करनेवाला जाति-व्यवस्था का विरोध करके महात्मा बुद्ध ने आर्षात्मिक के नक्षत्रों को लागा का श्रद्धा और भक्ति अर्जित का जा आग चलकर उनका प्रति सक्रिय आनाकारिता में परिवर्तित हो गई और लागा ने उनके द्वारा चलाय हुए धर्म को स्वीकार कर लिया।

(५) लोक भाषा का प्रयोग—सर जाज प्रियमन ने महात्मा तुलसीदास के विषय में लिखते हुए कहा है कि वे महात्मा बुद्ध के बाद उत्तरा भारत के सबसे बड़े लोकनायक थे। प्रियमन महात्मा का लाकनायक शब्द का बुद्ध के लिए प्रयोग सबसे उचित है ठीक उसी प्रकार जैसे कि गोस्वामी तुलसीदास के लिए। यदि हम ललितविस्तर के साथ का मानें तो हम विदित होता है कि महात्मा बुद्ध ने कहीं भाषाओं पर अधिकार किया था और वे महान विद्वान् थे। किन्तु उन्होंने विद्वानों और पण्डितों की भाषा में अपने उपदेश नहीं देकर लोकभाषा में अपना शिक्षाओं का प्रचार किया। यदि गोस्वामी जा ने अपने अमर महाकायों की रचना सस्कृत में की होती तो सबसाधारण में उसका इतना अधिक प्रचार नहीं हो सकता था जितना कि आज है। इसी प्रकार यदि बुद्ध ने अपना शिक्षाओं का प्रचार लाकभाषा में नहीं किया होता तो उन्हें इतनी शान्ति सफलता नहीं प्राप्त हुई होती जमा कि उन्हें अपने जीवनकाल में मिला थी। किसी बौद्ध ग्रन्थ में इस बात का उल्लेख मिलता है कि एक बार बुद्ध के किमा ब्राह्मण शिष्य ने उनसे प्रश्न किया कि आप सस्कृत में अपने उपदेश क्यों नहीं देते। इस पर त्यागन ने उत्तर दिया मैं गरीबों का भाषा द्वारा गरीबों तक पहुँचना चाहता हूँ। बुद्ध भना जाति जानते थे कि सस्कृत का प्रयोग केवल सुशिक्षितों में ही प्रचलित है। अतएव सस्कृत में उपदेश देने से उनका शिक्षाओं का प्रचार केवल था। सपुत्र निम्न व्यक्तियों के बीच ही सफल अतएव अपने हृदय का संस्था ताकानुरागता का परिचय देने हुए बुद्ध ने जनभाषा में

१ कथा ह्यते अददा पत्तरेणा अष्टादशोत्तमणं वर पय कम  
एतच्छेयोडभिनदति मूढा जरासत्य ते पुनरेवापि याति।

हा उपपन्नं त्विजिससं उनका शिक्षायें जनसाधारण तव पट्टव सक्ता । वद्ध धमं का माघ्न हो बहुत अधिक उन्नति हान का यह एक प्रधान कारण था ।

(६) प्रचार गली की रोचकता—बौद्धधर्म का प्रचार ही सायं उद्भव न जिस प्रचार-शाला का अपनाया वह नितान्त मरल सुवाय जीव लाव रुचि व अनूतन थी । उन्नत साधकवासा लाव किये जाओर महावरा का अपना शिक्षाआ म प्रचरता स प्रयाग किया । अपन सिद्धान्ता का समझान के लिये व जिन उदाहरणा और उपमाआ का प्रयाग वत थ उनका सीधा सम्बन्ध मनुष्य के दैनिक जीवन म हाता था । व जपन उपपन्ना म हान और व्यय का भी उचित मात्रा में पुट दिया करत थ जिसस उनम राचकता आ जाती था । बुद्ध ससार क उन थोड म व्यक्ति म स थ जा गूढ तत्त्वज्ञाना हान क साय व्यावहारिक जावन म म निपुण थ । उनके द्वारा त्विजिसस दन्तान्त उनका व्यावहारिक निपुणता का परिचय दते हैं । उनका जीवन स एक उदाहरण द दना अनुचित नही प्रतान हाना क्याकि इसक द्वारा उनक व्यक्तित्व पर ना कापा प्रकाश पडता है । एक बार एव ब्राह्मण न प्राय म आकर बुद्ध भगवान का मकडा गानिया मुनाइ । बुद्ध चुपचाप गानिया मुनत रह । ब्राह्मण अन्त म निराश हाकर चुप हो गया । जब उमका प्राय शान्त हा गया ता बुद्ध न उस अपन निवट बुलाया आर कहा ब्राह्मण तुम्हारे घर कमी कार अतिथि आया होगा । ब्राह्मण न सपारात्मक उत्तर दिया । फिर बुद्ध न पूछा कि तुम न उसका सत्कार मा किया होगा ? इस पर उत्तर है 'न हा था । अर्थात् बुद्ध भगवान न पूछा कि यदि तुम न अतिथि के स्वागतार्थ जा भाजन बनाय उनका वह ग्रहण न कर ता भाजन किमका समया जाता । ब्राह्मण न उत्तर दिया वह भाजन मरा समझा जायगा और उस में ग्रहण करुगा । बुद्ध न कहा कि मैंने तुम्हारे द्वारा दी हुई गानिया अस्वाकार का अय इहें तुम अपन साय वापस ल जाओ । इस पर वह ब्राह्मण बडा लजित हुआ और उसन तयागत से क्षमा मागा । इस उदाहरण स यह स्पष्ट प्रकट हाता है कि बुद्ध म जहाँ अपन विराधिया का शान्त कर दन की कला विद्यमान था वहा उनका अन्तर यह भा गुण था कि लोच चित्त क ऊपर व अपना प्रभाव जमा सत थ । पानी-प्रया म बुद्ध द्वारा प्रयुक्त एस अन्क दन्तान्त मिलत है जा यह स्पष्टतया सिद्ध करत है कि वद्ध मानव मनावकाय क भी प्रगाढ़ पण्डित थ और सयामाहान पर भी उनको जावन का निवटतम अनुभव था । लोचभाषा क प्रयाग तथा प्रचार शाला की मरतता स बुद्ध का अपनी शिक्षाआ का प्रचार करन म बहुत बडी सहायता मिली । उन्हनि अपने शिष्या का मा इसा नीति का अनुसरण करन का शिक्षा दा जिमम बौद्ध धम का प्रचार-वाय सरन हो गया ।

(७) मठों की स्थापना—महात्मा बुद्ध कवल एक महान दागनिव और धम प्रचारक हा न थ वरन् उनम सगठन का ना अपूव क्षमता था । उन्हनि यह मता नीति समझ लिया कि मुख्यवन्धित सगठन क अभाव म कोई मा धम अधिक त्ति तत्र त्ति नही सक्ता । अतएव उहने अपन अनुयायिया को एक मुन्द सगठन म बंध जान का सलाह दी । उहनि बौद्ध शिक्षा का लिए सध-यद्धति की व्यवस्था की । सध-यद्धति उन्नत अपन समकालीन गणतंत्रों स सी था जिनक विषय म उनका काफा गान था । बौद्ध धम क शिक्षा का आवास क निण बद्ध भगवान् न मठा का निर्माण कराया । एम काय म उनक धार्मिक गृहस्थ अनुयायिया न उनका श्या की । बौद्ध मठा म रखर नियुक्त सामूहिक जावन व्यक्त करत थ और सध-यद्धत म काय व शान्तत्व की सामाय धरना स अनुयायित हा जात थ । इसम कर्त्तव्य काड अर्थात् नही कि बौद्ध धम क

प्रचार का सबसे प्रमुख कारण इसका अनुपम संगठन शक्ति था। न्यून तमा ता म्मिथ न कहा है—

The well organized body of monks and nuns were the most effective instrument in the hands of this religion — J. Smith

(८) राज प्रथम—यह पत्र ही कहा जा चका है कि बुद्ध का व्यक्तित्व का प्रभावशाली था और उनका प्रभाव सभी वय के जागो पर था। उनका समकालीन नरेश उनका व जादर और श्रद्धा का दृष्टि म न्यत थ। विम्बिसार (मगध का राजा) तथा प्रसन्नजित बुद्ध क अनुयायी थे। बुद्ध का उदयन भी बुद्ध धम की शिभाजा सं कुठ प्रभावित हा गया था। इसका अतिरिक्त वशावा शाक्य मारिय तथा बुद्ध क समय क गणतन्त्रा क शासका पर मा उनका काफा प्रभाव था। य सत्य है कि राज पश्य म कोई धम वाकप्रिय नगी न सवता किन्तु इसम कोई सत्य नगा कि राजकीय सत्तायता से धम प्रचार क काय का बने प्राप्त हाता है। बौद्ध धम म अय गुण ता थ हा जब इसे राजाजा और श्रीमाना का सत्तायता प्राप्त हात लगी तो इसके प्रचार का काय मुगम हा गया। अशाक महान क प्रयत्ना ने गगा की घाटी क एक सम्प्रदाय का विन्त्राया धम म परिणत कर दिया। बनिष्क और ह्य जस राजाओ का भी इस धम का ध्रुय प्राप्त था। समाज के घना मानी रोग भी बौद्ध धम के प्रति आकृष्ट हा थ। उनका दान म मठा का खच चरता या जिनम रहनवान मिशु उत्साह से अपने धम का प्रचार करते थ। यद्यपि इस धान म का सदेह नही कि भारत म धार्मिक महिष्णता का सत्ता म प्रचलन होने के कारण मना सम्प्रदाया को राजकीय सहायता प्राप्त हाती रही तथापि यह स्वाकार वरन म का जापनि नही कि राज प्रथम से बौद्ध धम के प्रचार म वरन महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई और इसका अभाव हा जान पर इसके प्रचार की गति अचरद हा गई।

(९) प्रचारका का उत्साह—मनात्मा बुद्ध न अपने अनुयायिया म अय उत्साह का मचार किया था। स्वय उही क त्यागपूर्ण व्यक्तित्व से शिक्षा नेकर उनके अनुयाया मा धम के प्रचाराय सब मुखा का परित्याग करने का तत्पर हो जाते थे। सब प्रकार का कर्त्ताइया का अवहता करते हुए व अपने गुरु और उपशक के विव्यापना का प्रचार करने के लिए सुदूर प्रान्ता का यात्रा करते थे और देश क बाहर भी जात थ। बौद्ध मिक्षा क जदम्य उत्साह क फनस्वरूप ही इसका प्रचार न केवल देश क प्रत्यक मू भाग म ही जपितु समार क जय क देशा म भी हा गया।

प्रचार  
स बौद्ध  
धम काफा समय तक दश क एक कान से नकर दूसरे कान तक फरना पूरता रग।  
बौद्ध धम की दन

बौद्ध धम का उदय मारा मस्कृति क लिए कइ विषया म बडा ही हितकर प्रमा पित हुआ। भारतम मस्कृति या श्रीमम्प्रता म म धम क कारण काफा जनिबदि हुए जात इस दश क तागा का जावन क प्रति अपन एक विगिष्ट नष्कान का विकास करन म काफा सत्तायता प्राप्त रग। बौद्ध धम का दना का विवचन हम अध्ययन का मुविधा क लिए कतिपय पापना क अन्तगत करेग।

(१) कला का उद्गम—बौद्ध धर्म की मूल प्रभुत्व का जन्म हुआ है। यद्यपि प्राचीन कला का परम्परा काफी प्राचीन है तथापि हम सिन्धु घाटी का कला का छात्र मानते हैं जो कि जर्मनी के प्राचीन कलाकारों द्वारा है। उनमें से अनेकों बौद्ध कला के हैं। मूल कला और सिन्धु कला का ना सम्बन्ध या सम्बन्ध बौद्ध धर्म के द्वारा है। एक बात यह भी महत्वपूर्ण है कि बौद्ध कलाकारों ने जिन कलाकृतियों का निर्माण किया उनका मान्य और मौलिक साधन नहीं है। प्राकृतिक वास्तु का उद्गम है कि यह स्पष्ट है कि बौद्ध कला का अन्वय यह था कि एक गम्भीर अनुभव होने चाहिए। मसी धर्म से—जिस कला में मान्य में वास्तु कला में जो बारागिरा में—बौद्ध धर्म ने एका कलाकृतियों उद्गम का जन्म लाया कला का उद्गम कलाकृतियों का जन्म ला सकता है।<sup>१</sup> बौद्ध कला के कुछ गुणों का पश्चिम का अन्वय कला का जन्म ला सकता है। इसका गति तथा उन्नतता और सर्वनाशना का पश्चात् कला में जन्म है।<sup>२</sup> इस प्रकार कला में मान्य और अन्वय कला की शक्ति में भारतीय कला में अधिक है। सिन्धु सिन्धु में इन्का का कथन है कि कला का उद्गम कलाकृतियों का जन्म का उद्गम कला बौद्ध कला है जो जन्म कला तथा जापान में बौद्ध धर्म का प्रवेश हुआ तब से लेकर इस कला के कला में युग का जन्म कला बौद्ध है और कला कला तथा मान्य का जन्म कला कला कला है बारागिरा का स्तूप का जन्म है और कला तथा कला का धार्मिक कला का उद्गम कला बौद्ध कला है।<sup>३</sup> यद्यपि हम अभी मान्य के इस उद्गम कथन का पूरा तरह से नहीं मान सकते तथापि हम मान्य का उद्गम नहीं कि बौद्ध ने भारत में कला का जन्म लाया जो सिन्धु पर भारत प्रदान का और भारत कला का मान्य का पर बौद्ध का कला प्रभाव है।

(२) साहित्य-मूल में बौद्ध धर्म की दृष्टि—कला कला ही नही बल्कि साहित्य मूल के क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म का महत्वपूर्ण है। यह सिन्धु न साहित्य ग्रन्थों के प्रथम पर भी प्थान किया। बुद्ध धर्म में महावाक्य तथा साहित्य प्रकाश नामक नामक बौद्ध का जन्म है।<sup>४</sup> मन्त्रों के मन्त्रों में कला तथा सिन्धु नामक ग्रन्थ जिनमें भारत के प्राचीन इतिहास के विषय में काफी महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होता है यह ग्रन्थ है। यह एक उद्गम कला का है कि बौद्ध साहित्यकारों ने सन्धु नाम

<sup>१</sup> It is clear that the experience of Buddhist art must have a profound experience for us. In all fields—in painting, sculpture, architecture and handicraft—Buddhism has produced works of art that can be placed by the side of the highest creation of western art.

Quoted by Christmas Humphreys in *Buddhism* p. 2105

<sup>२</sup> The finest Indian art up to the sixth century A.D. and the finest of Chinese and Japanese art at any period since the introduction of Buddhism is Buddhist art that all great in Ceylon, Burma and Siam is Buddhist art that the stupas of Borobodur is Buddhist art and that the religious art of Tibet and Nepal is equally Buddhist.

मे भी ग्रंथों का प्रणयन किया यद्यपि उनके आदि-ग्रंथ पानी में ही हैं। पानी के विम्वन धार्मिक साहित्य का सक्षिप्त विवेचन यहाँ पर सम्भव नहीं किन्तु इनका कर्त्तव्य म कोई हितक नहीं कि बौद्धों के धार्मिक ग्रंथों की उपयोगिता केवल इसीलिए नहीं है कि उनके द्वारा हम इस धर्म के सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त होता है वरन् उन्होंने प्राचीन भारत के इतिहास के पुनर्निर्माण जैसे कुछ-कुछ काम में विद्वानों की काफी सहायता की है। ज्ञान क्या-आ का महत्व इस दृष्टि से काफी है। इन क्या-आ का प्रभाव विज्ञान में अरेबियन नाइट्स का क्या-आ पर छोड़ा है। थरागाथा और येरीगाथा के गीत बड़े धार्मिक और प्रभावोत्पादक हैं। 'नितविस्तर' और 'मद्दमपुण्यगीक' जैसे महत्त्व ग्रंथ विशद साहित्य की दृष्टि से भी काफी महत्वपूर्ण हैं यद्यपि मूलतः उनकी रचना धार्मिक उद्देश्यों की प्रतिष्ठति के लिए की गई थी। मिलिन्द पहा तथा मन्वस्त्व नामक ग्रंथों में भी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हुई है। बौद्धों के सम्पूर्ण साहित्य को देखकर यह मन्वस्त्वपूर्वक कहा जा सकता है कि यह प्रचुर ज्ञान विशाल है।

( ३ ) ज्ञान की उन्नति—बौद्ध धर्म के उदय के पश्चात्स्वरूप भारत में एक नवीन दार्शनिक साहित्य का सञ्जन हुआ। जयवाद तथा माध्यमिक दर्शन के प्रतिपादक नागाजन का भारत के ही नहीं किन्तु विश्व के दार्शनिकों में गौरवपूर्ण स्थान है। बौद्धों का दार्शनिक साहित्य केवल प्रचुर और समृद्ध ही नहीं अपितु विचारात्मक भी था। स्वयं बौद्ध धर्म के अन्तर्गत ही अनेक दार्शनिक सम्प्रदाय उत्पन्न हो गये। प्रतीत्य समत्या जयवाद योगाचार सर्वास्मिन्वाद सौनान्तिक विज्ञानवाद और अनित्यवाद आदि कितनी ही दार्शनिक विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ। अलग-अलग दिग्दर्शन और धर्मकानि आदि बौद्ध दार्शनिकों का दृष्टिकोण का अध्ययन बिना किये हुए कोई भी व्यक्ति भारतीय दर्शन का आचार्य नहीं कहा जा सकता। बौद्धों के दार्शनिक विचारों का वर्णन करने के लिए जय अनेक दार्शनिक ग्रंथों हैं जिनमें भगवान् शक्यराज्य का नाम जयगण्य है। यदि हम भारत के परवर्ती दार्शनिक साहित्य का विवेचन करें तो यह सिद्ध ही जाता है कि उसके सञ्जन में बौद्ध दर्शन का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष योगदान रहा है।

( ४ ) भारतीय सस्कृति का विदेशों में प्रसार—बौद्धों की भारतीय सस्कृति की यह एक बड़ी सफलता है कि उन्होंने भारतीय साम्राज्य के बाहर सूदूर देशों में इसकी प्रसारण किया। सम्राट् अशोक के समय में बौद्ध शिक्षा के जत्य पश्चिम के देशों में तथागतों का शिक्षा का प्रचार करने गये थे। फिर उसके बाद कनिष्क के समय में महापान बौद्ध धर्म का प्रचार दक्षिण पूर्वी एशिया तथा मध्य एशिया में हुआ। इन देशों में बौद्धधर्म ने अपना जन्म बहुत गहरी जमा ली। यहाँ के निवासियों के लिए भारत एक पवित्र देश हो गया। उन्होंने तथागतों की शिक्षाओं के साथ भारतीय सस्कृति के अनेक तत्वों का भी ग्रहण किया। भारत का सूदूर पूर्वी एशिया के भाग घनिष्ठता का जो सम्बन्ध स्थापित हुआ उसका श्रेय बौद्धधर्म और उसके उत्साह मन्वस्त्व प्रचारकों का ही दिया जा सकता है।

( ५ ) ब्राह्मण धर्म पर बौद्ध धर्म का प्रभाव—यह कहा जा सकता है कि बौद्धधर्म का उत्पन्न धार्मिक प्रान्ति के पश्चात्स्वरूप हुआ था किन्तु धर्म अथवा ब्राह्मण धर्म के कमवाच्य प्रदान पक्ष के विरुद्ध का गर्भ था। जब ब्राह्मणों ने अपने धर्म का प्रचार कमजोर और बौद्धधर्म का प्रचारन हाव में देखा तो उन्होंने अपने धर्म में सुधार करने का ज्ञान ध्यान लिया। ब्राह्मण धर्म में अहिंसा का महत्व बहुत अधिक समझा जाने

गया। यह ठाक है कि अन्तिम व मितान्ता का प्रतिपादन आत्म्य उपनिषद् म किया गया है तथापि उनका व्यापक प्रचार वाङ्मय के द्वारा ही हुआ। वाङ्मय ने वाङ्मय का बहुत-सा श्रेष्ठ वाता वा प्रवृत्त कर दिया और अपन धर्म का परिष्कार किया।

(६) वाङ्मय का स्थापना—मम का मन्द नही कि वाङ्मय का स्थापना नगवान् मुद्द व मन्त्रिक का मानिक पन या आर गीठ धर्म का यह एक प्रमत्त न था। मयान वा आश वद न म मय का प्रवृत्त मन्त्रिक विद्या धरा न प्रवृत्त विद्या वा पन्तु मन्त्र मन्त्र म कृष्ट पदितन किया। यह बात ठाक है कि वाङ्मय व पून वा वाङ्मय मया वा न कयाण का तावन जितत ध ममाय का उनत दूत। म न य। व नमाय का नित्त आर जाचार मन्त्र का मायन का नका मयना मन्त्र वृष्ट करण एकादा हा मन्त्र वा नता ना नत ध तथापि वा मन्त्रिक ज वन विना का शिवा वा और आन म्भा मन्त्रिक प्रति व निर मन्त्रि नका की ज मिया। वद व पूव नात म गणतत्र ध परन्तु धामिक मध म्भा व। धामिक मध वद्वि का अपना विशिष्ट न था।

वाङ्मय का जन धर्म जाता वा उन नामाय धामिक तथा जाध्यामिन् चतना के प्रतिन व शिमका मन्त्र नारन म मानवा अथवा छडवा मन्त्र का पूव व माना म्भा था। जएव मन्त्र वृष्ट पारम्परिक समानताया का मन्त्र स्थापनामि है। दाता धर्मो न समान रूप म धर्मि कमवाण्ड जाति नत तथा वाङ्मय का सामाजिक श्रेष्ठता का विराय किया। वन का अयोग्य न ता जनिया न हा माना जाय न गीठ न थी। अन्तिम पर मन्त्रा धर्मो न वाय किया। मन्त्र व प्रति दाता वा उन्मान तथा माय (कनय तथा निवाण) जाति विचारमाय का स्वरान करत है। मन्त्र व पुनज म म्भा नाय कि यन् विचारमाय ममन्त्र नारनोय धर्मो का सामाय रूपति है ना वाय किया। वीदा न अपन धर्म पावो नाया म शिम और जनिया न प्रावृत्त म। परन्तु कामान्तर म मन्त्रा न हा मन्त्रुत नाया को अपना किया। वाङ्मय और धर्मो म म विधी न ना मन्त्रुत वा मन्त्रा का विराय तथा किया। वाङ्मय की मन्त्रि जनिया और वीदा न मीपीयोगिक कयाआ की मन्त्रि वा। जनिया और वीदा का पीयोगिक कयाआ म कृष्ट सामाय तत्र थ। यद्यपि मयान जीवन की मन्त्रा वा मन्त्राया म प्रधातता दनमाई म्भा है तथापि मन्त्रुय धर्म का जावयचना का मन्त्रा न ही स्थापार किया है। मन्त्रा तथा म्यामिन् व लिए कतिपय विभिन्न आसार म्पिमा का विराय म्भा न ही किया है। हा० आर० मा० मन्त्रमन्त्र का मन्त्रा है कि प्रतिमाया का मन्त्र धारा का प्रभाव है। हा० आर० मा० मन्त्रमन्त्र का मन्त्रा है कि प्रतिमाया का मन्त्र धर्मि आयो व धर्म तथा धा म्भा धनायो का मन्त्र धर्म का न है। जन और गीठ मन्त्राया म मन्त्रि व प्रभाव का मन्त्रा कर मना हा मन्त्र का धातन करता है कि मन्त्राया का मन्त्रा ही मन्त्राया म अन्वय है और मन्त्रा ही जीवन का जाव मन्त्र म्भा मन्त्राया व मन्त्रा हा मन्त्र वीद और जन धर्मो म परन्तर विरमन्त्रो की मन्त्राया का मन्त्रा ही जीवन का दु मन्त्रा मानन है आर मन्त्रा मुक्ति पान का एक नै है। यद्यपि मन्त्रा ही जीवन का दु मन्त्रा मानन है आर मन्त्रा मुक्ति पान का एक

मात्र साधन कवलय या निवाण ही समझत है तथापि लभ्य प्राप्ति क माध्यम या साधन क विषय म दाना धर्मों का विचारधारा म महान् अंतर है। हम दख चुक हैं कि बौद्ध धम निवाण प्राप्ति क लिए मर्ग ज्ञमा पटिपदा अथवा मध्यम पथ का आवश्यक बतलाता है किन्तु जन धम म उपवास उग्र तपस्या तथा प्राण-त्याग आदि कठिन कर्मों को कवलय प्राप्त का साधन बतलाया गया है। बाढ़ा का निवाण सम्बन्धा धारणा जना का कवलय सम्बन्धिता धारणा स काफा भ्रम है। बौद्धा क निवाण स अमिप्राय उस स्थिति स है जब मनुष्य क हृदय म का वासना नहा रह जाता और वह अपन यकितत्व का पूण रूप स समाप्त कर देता है। बाद्ध लाग यह विवास करत है कि निवाण क लिए मत्यु आवश्यक नहा है। इस जावन म भा इसका प्राप्त सम्भव है। जन विचारधारा क अनुसार टुखा स मुक्त हा जानवाला स्थिति का नाम माक्ष जयवा कवलय है जिसकी प्राप्त मत्यु क बिना सम्भव नहा है। यद्यपि दाना सम्प्रदाया म अहिंसा पर व । जार दिया गया है तथापि बौद्ध धम म अहिंसा का महत्व उतना अधिक नही है जितना कि जन धम म। जनिया क लिए हत्या आदि का विचार करना भी पातक है परन्तु भारत क बाहर बाद्ध लाग सत्ता स मासाहार करत आय ह। जनिया का अहिंसावादिता परा काष्ठा तक पहुँचा गा गइ है और कुछ लाग का दृष्टि म ता यह उपहासास्पद प्रवात होती ह। बाद्ध ला अनात्मवादी ह किन्तु जन विचारधारा क अनुसार प्रत्येक जीव म आत्मा का निवास है। डा० स्मिथ का कथन है कि बौद्ध धम म भिक्षुआ का जितना अधिक महत्वपूण स्थान प्राप्त है उतना उपासका (गृहस्था) का नहा। किन्तु एक विपरीत जनधम म स यासिया की अपक्षा गृहस्था का हा अधिक महत्व दिया गया है। जनधम न हिंदू धम स कमा भी स्पष्ट पथकता का सम्बन्ध नहा स्थापित किया जब कि बौद्धधम न पथकता का नाति का हा अवलम्बन किया। बात यह था कि बौद्धा का दृष्टिकोण आरम्भ स हा क्रान्तिकारा या जिसस व प्रचलित धार्मिक विश्वासा क साथ सामञ्जस्य स्थापित नहा कर सक। परन्तु जन धम का दृष्टिकोण सहिष्णुतापूण था। यद्यपि जनमत का शिक्षाआ म भा जाति भेद का विरोध किया गया यह विरोध बौद्ध क विरोध का तुलना म कहा अधिक नम आर हल्का ह। स्वयं भगवान बुद्ध ने कई स्थाना पर जाति भेद का तीव्र शा म निंदा का आर यज्ञयागादि का खण्डन भी किया। परन्तु जनिया न तत्कालीन जावन की प्रचलित व्यवस्थाआ का खण्डन भी किया। परन्तु जनिया न तत्कालीन जावन की प्रचलित व्यवस्थाआ पर कई प्रबल कुठाराघात नहा किया। कानांतर म जनिया और बण्णवा म आचरण का इतनी अधिक समानता हा गइ कि उनम भेद करना कठिन हो गया। आज भा जनिया और बण्णवा का आचरण बिल्कुल एक सा है। सम्प्रदाया म त्रिरत्ना का विधान है किन्तु इनक त्रिरत्न विभिन्न है। जनिया क त्रिरत्न म सम्यक दान सम्यक पान तथा सम्यक आचरण हैं और बाढ़ा क त्रिरत्न ह बुद्ध धम तथा सघ।

### बाद्ध धम का स्रोत

यह विचार करना श्रमपूण है कि बौद्ध धम का आदि सान काइ अमरतीय विचार धारा थी। स्मिथ साह्य न बौद्ध धम क सस्थापक भगवान बुद्ध का मगाल कहा है। किन्तु उनका यह कथन बिल्कुल निराधार है। जिस प्रकार उनका यह मन कि लि-डबी गणतंत्र क नाग अमरतीय ध अमाय है उमा प्रकार यह साचना तनिक भा तकसगत नही है कि बुद्ध किसी विन्गी जाति क ध। बुद्ध न भारतीय जनता का जा शिक्षायें दी व अपन मूर्तरूप म उपनिषत्ता म विद्यमान था। मन इत्यादि का खण्डन अहिंसा



जाति भेद का व्ययता इत्यादि बातें उपनिषद् में मिलती हैं। कमवात् का सिद्धान्त पुनश्चम का धारणा निश्चु जावन का कल्पना इत्यादि बातें क लिए बुद्ध उपनिषद् में पाये। इनविषयों का सिद्धांत उनका जिस रूप में रक्षता उमम अवश्य मान्यता थी। बुद्ध जन्मा क सामन उन्होंने उनका जिस रूप में रक्षता उमम अवश्य मान्यता थी। बुद्ध न अपन अन्य सिद्धांत में उपनिषद् से ग्रहण किये। बौद्ध धर्म का निराशावादिना का सात में उपनिषद् में राजा जा सचता है। बौद्ध धर्म का निराशावादिना सकारण विद्यमान नहीं है। बौद्धधर्म में जा वेद विरागा स्वर मिलता है मन्का स्पष्ट अतुर कठोपनिषद मुठक तथा बहुरारण्यक आण उपनिषदा में नाहिन है। कठोपनिषद में स्पष्ट धारणा का गद है कि न ता आत्मा वर तान से मिलता है न मघा से जाँर न बतुत पाया क पत्न से। इतना ही नहीं उमन ममस्त अपराविद्या का जिमम वेद में सम्मिलित है बायधा (मन्का) विद्या का अभाव) स्वानार नया है। मुण्डक न मा सम्मिलित है बायधा (मन्का) विद्या का अभाव) स्वानार नया है। मुण्डक न एव स्थान पर (१।२।३) यथाय कमवाड का अर्थकर मानेन बला का मूड तक धारण किया है और स्वर में स्वर भिलान दुय बहुरारण्यक (१।६।१०) में दवा का आर्तुति देन बाल व्यक्तियों का पुनता उन पशुआ से का गृ है जा अपन स्वामा क लिए काय करत है। अत मुधार का भावना उपनिषद् में ही जाग्न कर ता था। इन मन्वाता का ध्यान में रगत हुए यह साचना प्राटपूण नहीं है बौद्ध धर्म एक तुनार का आन्तान था और सव बाज भारत का परम्परागत आध्यात्मिक तथा धार्मिक विचारधारा में ही सन्निहित था।

### बौद्ध कालान संस्कार

पिछल परिचय में हमने बुद्धकालान भारत का राजनानिक अवस्था का अध्ययन किया था यही तत्कालान सामाजिक एव आर्थिक व्यवस्था का विवचन करा। पट्टन सामाजिक अवस्था पर ही विचार किया जायगा।

सा जिह कर्णोकरण—सृष्टिवा । जाति-व्यवस्था का समर्थन एवं निम्नता ब्राह्मण । का मुनाता दत्त हुए महात्मा गान्धेय बुद्ध ने जाति भेद एव कर्ण मत् का समूच विनाश न कर लिए सतत यथाय किया था जिसका प्रमाण में उनका अमर उपनिस आज भी विद्यमान है। मानव का समानता का सत्ता महात्मा बुद्ध ने वग भेद का जकारा में जब हुए अउहाय हिन्दू समाज का मुनाथा बार मु रत डार सबक लिए मान लिया। विभुजठता का भाग चतनता का यह चिन्ता उतना प्रभावशाली एव प्रभावशाली नहीं सिद्ध हा सका जितना जावन क अन्य क्षत्रा में इसन अपना जादू श्रितताया। समाज में अध्ययन का राग पूषवत बना रहा जिसका उदाहरण इतनतु जातक (मृताय २२२) में प्राण रता है। उक्त ग्रन्थ में यह दिखलाया गया है कि एक ब्राह्मण किना चाण्डाल क पाप से म्प नय से अभिमूच होकर माग रहा है। इस प्रकार का एक दूसरा उदाहरण मानव जातक (चतुप २८८) में प्राप्त हाता है जिसमें यह लिखा गया है कि किना चाण्डाल का घर न । क बहाव का आर (नाच का आर) कवन इगर्तिए कर लिया गया कि उतना दानुन स्नान करत ममम किना ब्राह्मण का सिगा में उतना कर था। एक भय उदाहरण चतममूत जातक (चतुप ३९१-९२) का दणिय—एक शासन ना दा चाण्डाल नाइया का ता ना द रहा है कर्णाक व दा मन्गान्त माहलाभा क सम्मान आ गय क जिमक पनरवरूप महिनाभा का मान्दर-गमन म्यगिन करना पडा था और इगर्त ना प्रत्यागित माजन और पान क विवरण में कचित रह गय। जिन सुचारणय का सामा इतना भाग बड़ ग पा कि उस मानवता का अति

ही कहा जा सकता है और उस समाज में चाण्डाल की दशा कमी रही होगी इसकी कल्पना हम सहज में ही कर सकते हैं। बुद्धकालीन भारत में पूव जव यहाँ ब्राह्मणों का बोनवाला था उस समय की स्थिति की आर एक बार पुन दृष्टिपात कीजिये। गौतम ने यथापणा की थी कि अगर शून्य कभी वेद मून ल तो कान में लाख मर देनी चाहिये अगर उच्चारण कर तो जवान काट लनी चाहिये अगर यात्रा रक्म नो शरीर के दो टक कर दन चाहिये।<sup>१</sup> जातक तथा उक्त ब्राह्मण ग्रन्थ में उद्धरणों को देखने से यह बात होता है कि उक्त व्यवस्था में था। नोब मर आ अया था जो सम्भवत राजनैतिक कारणों वश था जयया समाज में अब भी अछत समझ जानना न था और उन्में दण्डित किया जाता था। जातकों में जीर बहुत ऐसे उदाहरण प्राप्त नान हैं जिनसे स्पष्टास्पष्ट की भावना का बोध होता है।

महात्मा गौतम बुद्ध के पूव उममग सम्पूर्ण भारत में ब्राह्मणों का प्रभुत्व स्थापित था। उनके वर्गीकरण समस्त देश में माय था किन्तु बौद्ध धर्म में उत्थान में पंचान नामाजिक परिस्थिति में परिवर्तन आ गया उसा काल में राजनैतिक मतान्तरना में भी परिवर्तन आया। पश्चिमी भारत में ता अब भी ब्राह्मणों का वही दबदबा था और सम्पूर्ण जनता ब्राह्मण कमकाण्ड गव ब्राह्मण व्यवस्था को मानती थी। ब्राह्मणों के विरुद्ध घनन का साहस उनमें न था। इस प्रकार समाज में ब्राह्मणों का सर्वोच्च स्थान था। उनके नीचे क्षत्रिय तथा जय लाग था। किन्तु पूर्वी भारत में अतस्या कुछ भिन्न थी। यहाँ क्षत्रिया का प्रायास था। वे अपने को ब्राह्मणों से किसी प्रकार नीचा समझने का प्रस्तुत न था। वे स्वयं को ब्राह्मणों के समवक्ष मानते थे और ब्राह्मणों के समान ही धर्माधिष्ठिता तथा धर्म रक्षक समझते थे। यह ब्राह्मण-क्षत्रिय विद्वय भी समाज की जाति न्मन्वन्था रूपता का अंत नहा कर सका और न ता इन दाना की मत्ता का हा ममूल नाश हा सका कि समाज में जाति भेद का प्र न ही समाप्त हो जाया।

जातकों में जहाँ चाण्डालों के स्थान के तपणित उदाहरण लिये गये वनी य शिभा भा ता जाता है कि जन्म आर जाति से अभिमान उत्पन्न होता है देवा के लोच में तो सभी—वृत्तिय ब्रह्मण वेस्त शून्य चण्डाल और पृक्कम—समान मा। तद्वैग यन्त्रि के प्र न्म लोच में मन्वाचार का पान न कर चक हैं। ब्राह्मणों के जातीय मान मन्म का भा प्रयास जातकों में किया गया है और उनमें स्थान में यन्त्रि जन्म र ही विचार किया गया ता सामाजिक विधान में क्षत्रियों के विशेष स्थान न्ना गचित समझ गया है। २६ के प्रमाण ८ में जनक बौद्ध ग्रन्थों में प्राप्त होते हैं।<sup>२</sup>

किन्तु हम मन्म नहा मूल जाना चाहिये कि स्त्रुय बौद्ध शिक्षा में समाज में भी जातिपाति का विणश्रुता का बा ध्यान रखना जाता था। वे मा रक्त का प्रधानता प्रदान करत थे। इसका सबसे बडा प्रमाण यह है कि शाक्यों ने कौशत्र-नरेश प्रसेनजित का शाक्यपुत्री न देकर दामीपुत्री ली।

ब्राह्मणों द्वारा स्थापित जाति-व्यवस्था में लाख निन्चय हा आ गया था जमा कि जातकों में नात नाना है पर उसका मूलरूप अपविचनित ही रन्म। जातकों तथा कुछ जन प्रथो में आधार पर तम तरकानीन समाज का निम्नलिखित वर्गों में विभक्त कर सकत है —

<sup>१</sup> म तम का धर्मसूत्र १२।४-६॥

<sup>२</sup> अम्बष्ठ सुत्त अस्तलायन सुत्त सम्भव जातक (पट्टवम २७) आदि।



गया है पर साथ ही वह उदाहरण भी हमारे सम्मुख है कि शाक्य दामापुत्री को ग्रहण करना हम समया गया। इन उदाहरणों में हम ध्वज यहां निष्कप निवात मरत है कि जहाँ जहाँ ब्राह्मणों का प्रभुत्व पूर्ववत् बना था वहाँ तो बग म् कुड कठोर था पर जो क्षेय इनके प्रभाव से जिस मात्रा में मुक्त था उसा अनुपात से वहाँ लचानापन अधिक था। स्वत का शुद्धता पर बौद्ध भिक्षु भा जोर देते थे यह निश्चयपूर्वक तथा क्ता जा मरता क्योंकि इससे तिए जो प्रसेनजित का उदाहरण दिया जाता है राजनीति का विषय है और दासा पुत्री प्रदान करने में अपमान करने का भावना का अंश अधिक पात हाता है। वास्तविकता जा भी ही समाज की प्रारम्भिक वराइया में जो कुछ सुधार इस काल में हुआ वह बहुत सन्नाहप्रद नहीं कहा जा सकता।

नारी का स्थान—स्त्रिया की दशा व मन्वच में हम ब्राह्मणों का म भाकतिक उदाहरण प्राप्त हाता है। प्रारम्भ में महात्मा बद्ध भा इनकी आत् में उन्मान-में जान पत्त है। जिस समय इनकी विमाता तथा इनका पालनवाता महाप्रजापति तथा न कपितवस्तु में आकर एक भिक्षणा व रूप में सध प्रवेश करने का आदेश बद्ध भगवाता से मागा था तो उन्होंने उनकी प्रायना अस्वीकार कर ली थी। भगवान स्त्रिया का सध प्रवेश की अनुमति देने के पक्ष में नहीं दिगलाइ प त है।<sup>१</sup> किन्तु कानानर में उन् अपन म नियम में परिवर्तन करना प ता क्योंकि जिस समय व वशाता में स्व थ ता महा प्रजापति न पुरुष-वेश धारण करके अपन साथ अनेक शाक्य स्त्रिया का नकर राता हुई भगवान से सध प्रवेश की प्रायना की जोर बद्ध भगवान के प्रिय शिष्य आनन् न काफा निकारश की थी। फलत उन्होंने स्त्रिया का सध प्रवेश का अनुमति प्रदान कर दा पर साथ ही आठ एस कठार प्रतिवध भा लगा दिय जिनसे उनका सध-जावन बृहत् बट् ट्यक हो गया और साथ ही इससे उनका स्थान भी निम्नतम हा गया। इन आठ क्ता नियमों में से एक यह भी था कि मी वध की भिक्षणी का भा प्हा निर का जम्पना करनी प ती थी उसके सम्मुख जासन रिक्त करके सडा हा ज ना प ता था जोर करबद्ध प्रायना करी प ता था चाह भिक्षु कवल एक दिन का ता क्या न दाक्षित हुआ हो।<sup>२</sup> भिक्षणियों भिक्षा के पास स्वच्छा से जाकर वार्तालाप न्हा कर सकता था पर भिक्षुओं के लिए यह स्वतंत्रता प्राप्त था कि वे भिक्षणियों के पास जाकर बात चान करें।<sup>३</sup> इन नियमों से यह स्पष्टतया परिलक्षित होता है कि समाज में नारिया का स्थान निम्न था तथा उस दिन में (मध में प्रवेश करते ही) भिक्षणिया का भिक्षा के साथ सहायाप करना निषिद्ध कर लिया जाता था । इससे यह भी प्रतिधानन जाता है कि इनको समयहीन तथा असुमगठित चरित्रा भी माना जाता था। ओन्ववग महादय ता भिक्षणिया द्वारा भिक्षा की वन्ना करान वात नियम का व्याख्या इस प्रकार करत है कि भिक्षणियों को यह अधिकार नहीं प्राप्त था कि वे किसी भिक्ष पर दायारापण करें किन्तु भिक्षा का म् अधिकार प्राप्त था।

भगवान बद्ध न मध में स्त्रिया की प्रवेश वत की अनुमति तो न्ता पर उनके आग व प्रवचन में एसा परिनिक्षित हाता है कि वे इस काय से प्रमन्न न थ। उन्होंने आनन् मय वाचय क्ता— पर जजब स्त्रिया का प्रवेश हा गया है आनन्<sup>४</sup> धम चिरम्याया न रह सकता जिस प्रकार एम घरा में जिनमें अधिक स्त्रियों और कम पुरुष

<sup>१</sup> विनय का प्रथम नियम (नियमपिटक चत्तलवग १०।१॥)

विनय का आठवां नियम वही।

<sup>२</sup> विनयपिटक (चत्तलवग १०।१॥)

हात है चारा विना रूप मरना है कुट्ट ना प्रकार का स्वयं म मून जीव विनय का सममना चालि जिनम म्त्रिया घ- म् पत्त्याग करन म्त्रियाण जावन म प्रव- करन उग गता है। धम चित्तव्याया न्ना म्त्र मग्गा जिन प्रकार जान क उन पर पात्रा प- ताप ता वह अधिक न्ना जिन मक्ता जयदा जिन प्रकार गने न। न्ना ताव वानाग म जिनम पीडा म का उग जात है जिनम म्त्रिया का घर छा-ब-ग- जान-। म नून और विनय का न्ना गता है जिनम म्त्रिया का घर छा-ब-ग- विना जान म प्रवश करन का अतिकार मित जाय। व- धम चित्तव्याया न्ना म्त्रिया का घर छा-ब-ग- मक्ता। फिर ना आन-। मनप्य जम नविष्य का माच-र- गलाशय क लिए वा- वनवा त्ता है जिनम जव वाहर न वान उग जाय न्ना प्रकार आन- मावी क लिए मिन य वा- क- नियम गता जिन है जिनका पावन निधाणिया क लिए अतिवाप है उन तक धम है उन नियमा क पावन म प्रमा- न गता चाहिय। ९

भगवान बुद्ध क उक्त वाक्या पर आनाचनात्मक अति टावन म यह जान हाता है कि समाज में म्त्रिया का स्थान पहन म गिरा न्ना था और न्ना चरित्र पर भगवान बुद्ध जम निम्न अतिव का भी वि-वाम न था। मम्मवत वन्तुम्यिति ना कुट्ट एमा हा न्ना गता। एम धरा म जिनम अतिक म्त्रिया जीव कम पुण्य हात है चारा विनय रूप मे गता है न भगवान बुद्ध का आशय य- ना न्ना है कि स्वय व म्त्रिया न परम्पर मितकर वाद्याना का चारा करती है जमा कि आज ना ग्रामाण म्त्रा म अधिक गता है ? यदि एमा म्यिति न्ना तो नि-चय न सामायता या म्त्रिया का नतिक पतन हा चका था जिनम भगवान बुद्ध न उ- मय प्रवश की मह्य अनमति न्ना न किन्तु भाय हा न्नाते इनक चारित्रिक उत्थान क लिए ना कोई मुनि-चित्त माग न्ना वनाया जा- न न्ना ना कठार प्रति-ग- द्वारा न्ना मिशणा वनन म भा हनात्साहिन किया जिनम का- विनय नाम न्नी द्वारा हा यदि अधिकाश म्त्रिया मिशणी हा ग- हाता ता मम्मवत कापा मुधार हो मका गता। मधप्रवश क प-चात उगमग सो निक्षणिया न मिलकर धरणाया नामक बौद्ध गानमग्रह का उचना का था जिसम मय प्रवश क प-चात उनक बौद्धिक विकास का परिचय मितता है।

नामिया का साधारणतया घर का चहार-वा-रा म र-ना प ता था। गह-चानुय तथा मगत उनक मुख्य गुण मान जात थ। उडकिया का विराह बहु-ग- माना पिता या अनिमावक हा नि-चित्त करत थ किन्तु किमा विगोप अवस्था म उन्हे अपना क स्वय चुनन का अधिकार था।

ग्राम तथा नगर संगठन एवं आर्थिक व्यवस्था

बौद्धधर्या म नगर तथा ग्राम-संगठन पर ना कुछ प्रकाश डाला गया न जिनका अध्ययन डविहस महा-य न वचानिक एवं विस्तृत रूप स किया है। उनक अ-ग-र पर हा हम यहाँ ग्रामा तथा नगरों क साठन पर प्रका- हा-गे।

ग्राम-संगठन—ग्रामा पर न सामाजिक संगठन आधारित था किन्तु उनक संगठन के सम्-य म हम पूरा विवर-ना न ज्ञान है। य- ता निश्चयपूर्वक क- ना मक्ता है कि विभिन्न विना क मिन्न मिन्न ग्रामा में राति रिवाज नूनि-व-र-त तथा ग्रामाया क सामाजिक अधिकार मिन्न मिन्न थ। इम विभिन्नता क मून म प्राकृ-तिक तथा राजनानिक विभिन्नता हा रहा। किन्तु इम विभिन्नता म भा एक साम्य था जा पारम्परिक मितन का-न था। त्राग मुट्ट वनाकर जयान संगठिन हाकर ग्रामा म र-न थ। जियी अकिचन

घर का उल्लेख हम वहाँ नहीं मिलता है। ग्रामाण घरा क बीच म पतना पनला गत्रिया थी। घरा के क्षत्र क चारा आर बन्धा धान क खन प्रसारित थ। ग्रामा म चरागाहा का मा व्यवस्था थी जिनम सामूहिक रूप स ग्रामाणा क पशु चरा करत थ। कुछ जगन मी छोटा दिय जाते थ जिन पर समस्त ग्रामीण जनता का समानाधिकार था। ग्रामीण जनता सामूहिक रूप स चरवाला गा पानक नियुक्त करत थ जा खन कट जान क पचात उन क्षत्रा म पशुआ का चराया करत थ।

खत की बर्खासाथ हानी थी और सिचन काय क लिए सामूहिक नात्रिया यनी थी जिनम जन प्राप्त करने क लिए नियम बन हुए थ। ग्राम प्रमत्त इसका निराक्षण करता था।

ग्रामाण अथ-नीति भूमि क स्वतन्त्र स्वत्व पर आधारित थी। यद्यपि कृषक अपनी भूमि का स्वामा था तथापि वह ग्राम-पचायत अथवा परिषद का अनुमति बिना अपना खन बँच या रेहन नहीं रख सकता था। किसान या तो अपन खत को स्वयं जोतन या अथवा कृषि-श्रमिका या दासा द्वारा जतवाता था। पर इससे उसका भूमि-स्वतन्त्र छाना जा सकता था। कुछ ग्रन्था स भूमि विक्रय के तीन उदाहरण प्राप्त होत है। इनमे से एक वन भूमि था। एक ब्राह्मण ग्रन्थ म बलि शुल्क के रूप म भूमि देने का उल्लेख किया गया है। किन्तु इसके ठाक बाद क लख से श्रात जाता है कि भूमि का हस्तान्तरण उचित नहीं था।<sup>१</sup>

विनी की व्यक्ति को राज की नय भाग गत्रिकार स से भाग्य उचित प्र पाय विकार-

।

नमी भाइया म बराबर वराजर बाटा जाती था। कुछ पूर्ववर्ती ग्रन्था (गौतम धर्मसूत्र आदि) म इसका उल्लेख मिलता है कि ज्येष्ठ पुत्र का कुछ अतिरिक्त भाग भी प्रदान किया जाता था किन्तु परवर्ती ग्रन्था म इस प्रथा का लोप हो जाता है। वस्त्राभूषण नारिया की व्यक्ति क सम्पत्ति थी जिस पर पुत्रिया का अधिकार था। ममि पर उनका कोई अलग अधिकार नहीं होता था क्योंकि अपने पति या भ्राता क हिस्से मे प नवाल उत्पादन के उपयोग का अधिकार उन्हें दिया जा चका था।

जब व्यक्ति क भूमि का विक्रय कठिन था तो भला सामूहिक भूमि चरागाह आदि क विक्रय का तो कोई प्रश्न ही नहीं था। कोई भी व्यक्ति किमा प्रकार क्रय या उत्तराधिकार द्वारा इस पर स्वत्व नहीं प्राप्त कर सकता था। राज्य का भूमि पर कबल दाना अधिकार था कि वह कृषका से कृषि कर प्राप्त करे। यह कृषि कर कृषि उपज का १/१२ वां भाग तब हुआ करता था। कृषि-कर बमूल करने के लिए राज्य का आर स ग्राम भोजक नामक पन्नाधिकारी नियुक्त था। ग्राम भोजक का पन् कमी ता पतक होता था और कमा ग्राम ममा राज्य के लिए इसका निर्वाचन करता थी। इन पन्नाधिकारिया का वनव्य था कि वे स का का निर्माण करें और किसी राजकुलान व्यक्ति या उच्च अधिकारिया क जागमन पर उनके भोजन की व्यवस्था करें। ग्राम भोजक कृषका पर किसी प्रकार का अनचित दबाव नहीं डाल सकते थ क्योंकि कृषका को यह स्वतन्त्रता प्राप्त थी कि वे उच्च अधिकारिया क सम्मम अपनी कठिनाया को रख सकें।

१ विनय पिटक २।१५८।। जातक १।६७।।

२ गतपय ब्राह्मण १३।७ १५।।

वाद घम का अन्वय

मन्त्रेण इत्येति न्नत्र वागं मा नहा वा जाता था। कर्मी-जना ग्रामाण जनता मत्कारिता क बायाग पर मन्मिन्त्रि श्रम-गत द्वारा अपन प्रामा म नना का मरम्भन कत थ वागाच तगात थ तना दना प्रकार क अय मामुलिक म्याना विग्रामगह् आदि कानिमाग कत थ। मावजनिक काय म नाग तेन मन्त्रिया अपना गव नमपना थी।<sup>१</sup> ग्रामा का आधिक व्यवस्था क मन्त्रेण में उचित मन्त्राप्य न तिता है—  
 एन ग्रामों का आधिक व्यवस्था मन्त्रेण में कान ना घर आनुनिक मन्त्राप्य म घनी नना बन सकता था पर साय हा यहा सायाग्य आवश्यकताका का पूरि क सादन थे मुरगा जार म्बतवता था। न ता वहा जमात्तर थ आर न मिखाया।  
 ग्रामा म अपराय वन्त बन हात थ। बहुता मन्कार इन पर पूण नियन्त्रण ग्वता था। इकता जम व न्त्र अपराया का राकन क निर मरकार मन्त्र तत्पर रहता था विमन ग्रामाया का जीवन शान्तिमय था।<sup>२</sup>

ग्रामाण जनता का बना यदि मन्त्राप्यन स्थिति का मामना करना पन्ता था ता वट् तुनिश द्वागशा। उचित मन्त्राप्य न यह बतया है कि यद्यपि मगम्यनीज न यत् तिवा है कि निचाइ का समुचित व्यवस्था क कारण अकान नना प त थ प् ट्म एम साहगण मिनन है कि म्ना म तुनिश क कारण ग्रामाण तथा अन्य जनता प्रपारि त था। म्बय पन्ता क निकटवर्ती जिना में हा जर्ग याता रुका था एम तुमित पये थ। पात्राक प्रमण-कानआर विचारागीन कान नकुछ अन्तर भाधा अत यात्रा क विवरण पर जन्म विग्राम करना यहाँ उचित नहीं अथवा यत् ना मन्त्रेण है कि तुनिश निर्रेक श्रया कना मो बय पाट यात्री जाता है जब परिस्थितिया पन्वितन ना चुका हाता। इम मन्त्रियाण म यात्रा क विवरण का पूणतया काग मा नगी जा सकता है हीं इनम कुछ अनिश्चयकित हो सकता है और इत्येति इसम कुछ मुनाग का आवश्यकता है जसा कि मगम्यनाज क अधिकाज विवरणों में करना पन्ता है।

नगर—बौद्ध ग्रयों म बहुत कम नगरा (निगमा) का उल्लेख मिनता है। बौद्ध ग्रन्था म उल्लिखित कुछ प्रमुख नगर य ह—

मगया का राजधाना राजगह (राजगह) बल्ल का वीणाम्वा वागल का मावत्या (थावन्ता) वज्रिया का वसना (वसना) अग का चम्पा शाक्या का कपितवस्तु अवनता का उजना (उजयिना) वाराणसा अजा ज्ञा (अयाध्या) मयुग पानन तयानिना आदि।<sup>१</sup> मगय का दूसरा राजधाना पाटलिपुत्र प्रभा कवन एक ग्राम पाटलि ग्राम क नाम स विख्यात था। उगराकन नगर मारा मारा नन्धिया क नगों पर हा बन थ अत य अन्तर्गत व्यापार क प्रमुत्त कद्र थे। शोधिकाय क अनुसार उज कान क छ प्रमुत्त नगर थ—

- (१) चम्पा (२) राजगह (३) मावत्या (४) माकन (५) वीणाम्वा तथा (६) वाराणसा।<sup>२</sup>

नगरा का मन्त्राता हम अत्रिफ नों नाउ हाता म् जारन म्दूत नव निमित नारा का हा उतन प्राप्त गता है, हीं कवल उम पर-ना का प तन अवश्य निचाइ पन्ता

<sup>१</sup> जातक १।१९९॥  
<sup>२</sup> विनय २।२२०॥ जातक २।१४९ ३६७॥ ५।१९३॥ ६।४८७॥  
<sup>३</sup> मुत्त निपात श्लोक ९७७।  
<sup>४</sup> महापरिनिम्बान मुत्तत (शोधिकाय)

है कि समस्त सुप्रसिद्ध नगर नग्नियों के तट पर ही स्थित हैं। प्राचीनकाल की सम्पत्ताओं की यह विपणनता हम प्रौढ़कालीन भारत में देखने की मिनती है। मगध के तट पर अयोध्या राप्ती के तट पर श्रावस्ती गंगा के तट पर वागणमी (काशी) यमुना के किनारे मथुरा एवं कौशाभ्मी तथा गोदावरी के तट पर पौतन (अम्बक प्रदेश की राजधानी) नगर बसा था।

इन नगरों के अतिरिक्त जातकों में कुछ अन्य नगरों का भी उल्लेख किया गया है जिनमें तक्षशिला प्रमुख है। तक्षशिला प्राचीन भारत का सर्वोत्तम नगर था। इसका महत्व शिक्षा की दृष्टि में ही बहूत बड़ा था। तक्षशिला विश्वविद्यालय में श्री पाणिनी जीवक कौटिल्य जैसे विद्वान स्नातक निकले थे जिनने भारतीय दर्शन एवं साहित्य को अभिवृद्धि में अद्वितीय योग दिया।

नगर साधारणतया दुर्गाकार एक दीवार (पाकार) से घिरे हुए होते थे। रक्षा के लिए गाइयाँ थीं परन्तु इस प्रकार के नगरों का उन्नाहरण अब उपरान्त नहीं है। नगरों में घनाडम और निम्नतम दोनों प्रकार के वाग निवास करने थे अतः यहाँ मिश्र मिश्र ऊँचाई और बनावट के भवन थे। श्रीमानों की उच्च अट्टानिकायों इटा की बनी होती थी और उनमें चित्रकारी तथा रंगाई की कला रहता था। भवन निर्माण में पत्थर का प्रयोग नाम मात्र का होता था बल्कि मकान लकड़ी तथा रट के होते थे। भवन में प्रकाश एवं वायु का विशेष ध्यान रक्ता जाता था। उनमें सभ्यता की ओर खुलनेवाली गिरणियाँ भी थीं। भवनों के सम्बन्ध में बौद्ध ग्रन्थों में पर्याप्त सामग्री प्राप्त होता है जिससे हम भवनों में प्रयुक्त सामग्रियों तथा उनकी बनावट के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से पता होता है।<sup>१</sup> उच्चकालीन भवितयों के निवासस्थानों के सम्बन्ध में बताते हुए विनय पिटक में भवन की पूर्ण बनावट पर प्रकाश पड़ता है।<sup>२</sup>

यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि जिन रेलिंग और सम्मो का उल्लेख इन ग्रन्थों में किया गया है वे लकड़ी के निर्मित थे अथवा पत्थर के। छठी शताब्दी ई०पू० से पहले के भी हम भवन निर्माण में पत्थर के प्रयोग का उल्लेख मिनता है—गिरिव्रज में एक गण्ठी (टुंग) का पत्थर की दीवारों से घरा गया था। किन्तु बद्धकालीन भारत में पत्थरों का प्रयोग निश्चय ही स्वल्प हो गया था और केवल स्तूप या जीने में ही इसका प्रयोग होता था। पत्थर की इमारतों का उल्लेख केवल एक बार किया गया है वह भी परिया की दुनियाँ में बताया गया है।<sup>३</sup> इन समस्त प्रमाणों के आधार पर हम अपने पूर्व निश्चय मत अर्थात् भवनों में इट तथा लकड़ी के प्रयोग का ही माय समझना होगा। घनाडमों के भवनों के चित्रित हान का उल्लेख हमने पिछले पत्र में किया था इस सम्बन्ध में भी बौद्ध ग्रन्थों में विस्तारपूर्वक लिखा गया है। चित्रकारों के नमूने उप बनावट की चित्र (plaster) जिन पर ये चित्र बनाये जाते हैं आदि का विस्तृत विवरण विनय में दिया गया है। चित्रकारों के चार प्रमुख नमूनों के भाषा बतान्त सुरक्षित हैं। वे इस प्रकार हैं—

- (क) मानाकार (Wreath work)
- (ख) रताकार (Creeper work)
- (ग) पंचसूत्राकार (Five ribbon work) तथा
- (घ) नागदंताकार (Dragon's Tooth work)।

<sup>१</sup> विनय विवरण के लिए देखिये रीज डविड्स *Buddhism in India* pp 47-51

<sup>२</sup> विनयपिटक ३।१६॥ १०४-११५ १६०-१८०॥

<sup>३</sup> जातक २। २६१॥



चित्रकला के उदय आदशा का जान कर हम हम निष्कप्य पर पत्र उत है कि यद्यपि  
वामी दीवारी पर चित्र बनाने की कला उतना उन्नति न कर सकी थी तितनी अजन्ता  
की कला में पाई जाती है तथापि यह तो मानना ही प गा कि अब हममें कतरमकता  
का पुट अधिक दिया जाने लगा था और यह उन्नति क पय पर अग्रसर थी।

विशान भवनो का प्रवेश द्वार भा विशाल था जिसमें दायें-बायें खनाना था अत्र  
मण्डार थ। प्रवेश द्वार में जान क बाद भा भातरा बरगम थ तिनक ऊपर चौडी  
छत (उपरिषददत न) थी जिण पर भवन का स्वामी बटता था। यह बक्ष भाजन गह  
कार्यालय तथा शृंगार बक्ष का भी काम दता था।

राजाआ ने महला में सम्पूर्ण राज-काज क लिए स्थान था। रनिवासा का मुदरता  
निश्चय ही अग्नीय रही हगा। सम्भवत राजमन्त्र क रत्न कोट भा एसा कार्यालय  
नहीं था जहा राजकीय काय किया जाता हा अत एसा जान पता है कि ममस्त  
सरकारी कार्यान्वया का राजमहल क भातर हाना ही आवश्यक था।

द्विडस महोदय न बौद्ध ग्र या म सात मजिलवाल भवन का भा उत्लक्षपाया है  
जिसे सप्त भूमक पासना कहते थ। दुर्भाग्यवग अब इनम म किना का भी भग्नावशय  
तक नहीं रह गया किन्तु एक परवर्ती काल का एसा भवन आज भी पुनर्गितपुर (लका)  
में है तथा दूसरा जो एक हजार पापाण रतग्ना पर २ शताब्दा ई० पू० अनुरादपुर  
में खटा किया गया था इसी द्वीप का दक्षनीय अवगाय है।

हम सामूहिक द्यूत गहा का भी विवरण कुछ ग्र या स प्राप्त हाता है। इन  
द्यूत-गृहा का मन्व घ राजमहल स था और य राजमहल क सामाय भाग थ। आप  
रतग्म २।२५॥ म यह उत्तख आया है कि एस सावजनिक द्यूत गहा की व्यवस्था करना  
राजा का कत य था तथा परवर्ती पुस्तकें हम रहस्य का उद्घाटन करता है कि द्यूत  
की जीत म राजा को भी कुछ भाग मिलता था और वह धन राजकाय म सगहीत हाता  
था। एव जातक म द्यूत सम्ब धी विज्ञाप सूचनायें प्राप्त होता है।

स्नान भवना का भी इन दिना अपना स्थान था। य अत्य त वनानिच ढग सँबन  
होते थ। इनम एक साथ सक्डो आदमिया क बटने के लिए स्थान था। विनय ३।१०५-  
११० २१७॥ म इमका पूण विवरण प्राप्त हाता है। आधनिक टकिश वाय जसा  
स्थान इन दिना भी यहाँ होता था यह कुछ ला चय की बात है। स्नानागार दा प्रकार  
के थ—एक उष्ण वायु स्नान भवन (Hot air baths) तथा दूसरा सामाय स्नाना  
गार जो खुला हुआ होता था। इन स्नानागारा को काफी मजाया जाता रहा होगा  
और उपवन-वाटिकाभा से इहें शोभायमान किया जाता रहा होगा।

द्विडस महोदय न आग निघना की क्षापि या का मग्न चित्रण करते हुए लिपा  
है कि पनादया के भवना की सस्या कम थी। निघना क एक मजिल वाल भवन नगर  
की बदबूदार तग गलिया म घन बन थ द्विडस महोदय क ही वाग्म्या स—

There was probably a tangle of narrow and evil smelling  
streets of one storied wattle and daub huts with thatched roofs  
the meagre dwelling places of the poor

१ जातक १।२२७ ३४६॥ ४।३७८॥ ५।४२६॥ ६।५७७॥

२ Mr Cave की Ruined Cities of Ceylon (Plate २१)

मैं इसका चित्र दिया गया है।

३ जातक ६।२८१॥

नगरा में बाजारा की पक्किया थी जहाँ दुकानें साधारण रूप में सजा रहीं थी। बाजारा का पथक-पथक क्षत्र रहा होगा यह भी सम्भव है।

नगरा में बरसाती पानी निकालने के लिए छाया उठा नाकिया थी और बरसात दुर्गों में भी प्रशान्तिकाय रही जिनसे पानी बाहर जाता था। नगर में सफाई रखने के लिए साधारण व्यवस्था थी।

श्रामाना तथा अन्य धुआना के शवा का शवदाह के पश्चात् उनका सम्भावना पर स्तूप बनाने के चिरस्मरणाय बताया जाता था। साधारण लोग के शव सम्भवतः या ही खुले छा दिया जाते थे जो पक्षियों का जाहार बनते थे। स्त्रियों का भी बुद्धकावत नवना में विशेष स्थान है।

शिल्प-कला—मन निर्माण के सम्बन्ध में विचार करते समय हमें तत्सम्बन्धी कला का निवेश किया था। यहाँ शिल्पकला पर विचार किया जायगा। बुद्धकावती कला विकास मसी थी। चित्रकारों की भाँति स्वर्णकार कुम्भकार तथा अन्य वास्तु विशारदों की कला दशनीय थी। इनके सम्बन्ध में विस्तारपूर्वक वर्णन उद्याना में किया जायगा।

### आर्थिक व्यवस्था

बुद्धकावत जय-व्यवस्था की मूलतः पर मूल इकाई कृषि के सम्बन्ध में हमें पिछले पृष्ठों में पता था यहाँ कृषि-सम्बन्धी उद्योग-व्यवसाय सहायक उद्योग तथा कुछ प्रमुख उद्योग घाटा एवं व्यापारों पर विचार किया जायगा।

कृषिसम्बन्धी उद्योग घाटा तथा अन्य सहायक उद्योग घाटा—कुल जनसंख्या का अधिकांश भाग ग्रामों में बसता था जिनका प्रमुख पेशा कृषि था किन्तु कृषि के अतिरिक्त वे तत्सम्बन्धी उद्योग तथा सहायक उद्योग घाटे भी किया करते थे।

जातक में कुछ १८ प्रकार के उद्योग घाटा का उल्लेख किया गया है पर दुर्भाग्य से उनकी सूची प्राप्त नहीं है केवल चार प्रकार के उद्योग का ही नामांकन किया गया है—जैसे वस्त्रकार लोहकार चमकार तथा चित्रकार। डविंस महोदय ने इन ४ प्रकार के उद्योग घाटा की सूची (अनुमान से) इस प्रकार दी है—

(१) वस्त्र (२) तहार (३) प्रस्तरवार (४) वनक (५) चमकार (६) कुम्भकार (७) हाथादात के कारागर (८) रगरज (९) जोहरा (१०) मछल (११) कसाई (१२) बनेनिया (१३) वावर्नी (१४) नाई (१५) भाता (१६) गाविय, (१७) टाँसों बनानेवाले (आधुनिक परिवारों के ग्रामीण क्षत्रियों में आज भी टाँसों बनाने का काम करते हैं) तथा (१८) चित्रकार।

उपरोक्त शिल्पियों में से कुछ ने अपनी श्रमिया स्थापित कर ली थी और कुछ असम्पत्ति रूप में कार्य करते थे। इनमें अधिकांश ग्रामीण छात्रों में निवास करते थे और कृषक ही उनकी आय के प्रमुख साधन थे। उच्च जाति के कलाकार नगरी में रहते थे।

नाम के शिल्पियों पर पथक-पथक विचार किया जायगा।

(१) वस्त्र—वस्त्र केवल तकड़ी के सामान्य कार्य ही नहीं करते थे प्रत्युत वे शिल्पियों—जलयान मचन आदि भी बनाते थे। इनका जय-क्षेत्र अधिक विस्तृत था अतः अधिक व्यवस्था में इनका महत्वपूर्ण हाम रहा होगा।

- (२) लुहार—य आधुनिक लुहार व लामग समस्त काय करत थ। वृषि जीजारा का बनाना सम्भव इनका मुल काय रहा हागा। य हथियार भी बनाने थ।
- (३) प्रस्तरकार—भवना म प्रयुक्त पत्थरा का य सुन्दर और सुडौन बनाते थ। मानिया छत्र आदि बनाने म य काफी निपुण थ। प्रस्तर सम्म मा य सुन्दर बना लेते थ। इनका महत्वपूर्ण वृत्तिया बिल्ली की प्यालियां (Crystal bowl) तथा त्रिशा रिया था जिनके उदाहरण प्राप्त हुए हैं।
- (४) बनक—इस काल न बुनक बनना कता म काफी लगत थ। व न केवल साधारण कपण बन लेते थ बरन् सुन्दर-सुन्दर निम्न व वस्त्र मा तयार करले थे।
- (५) चमकार—य जना उनाने व अनिरिक्त चम का मूयवान वस्तुयें भी बनात थ। वन केवल व वहुम य कम्बल तथा कानान आदि भी बनाने थ।
- (६) कुम्भकार—निम्न प्रयोग व मिट्टी क बरतन य पी कुशना से बनाते थ। उन जवस्था म था। इस काल व कारीगरा न इस काल म अभिवृद्धि का और ये हाथाने हा साधारण वस्तुया से लेकर कामना वस्तुयें तक भी बनाते थे। इनक बनाय हुए आमृषण सुन्दरता म अतिनाथ थ।
- (७) हाथीदात क कारीगर—हाथीदात का काम भाग्य म पहल से हा काफी हाथाने हा साधारण वस्तुया से लेकर कामना वस्तुयें तक भी बनाते थे। इनक बनाय हुए आमृषण सुन्दरता म अतिनाथ थ।
- (८) रंगरेज—य कप ना रंगाई करत थ।
- (९) जौहरी—इनकी वृत्तिया आज भी उपलब्ध हैं जिनहे देखकर हम उनकी कला का प्रोत्साहन का अनुमान लगा सक्ते हैं तथा उनका शौकी का भा वाज कर सकते हैं।
- (१०) मछण—राज डविडस मन्थ्य का यह विचार है कि ये केवल नदिया म हा शिकार किया करत थ। मछणा मछना का शिकार य नहीं करले थ।
- (११) कसाई—इनका दुकाना तथा कसाईवान का उल्लेख ग्रन्थ म यत्र-त्रन प्राप्त हाता है।
- (१२) बहेनिया—इनक सम्बन्ध म भा पुलका म विवरण प्राप्त होता है। य न पजा तथा पाया का शहरा म गांविया पर जाकर बिका व लिए लात थ। वन उपजा व अनिरिक्त पशुआ का खाला का भी काफी माग थी अन इनक व्यवसाय की काफी प्रोत्साहन दिया जाता रहा हागा। यह निश्चयपूर्वक नग पहा जा सकता कि इनका काई धंधा बना था जयवा नहा।
- (१३) चावची तथा हलवाई—इनक बायां व सम्बन्ध म हमारा बात स्वल्प है। सम्भवत इन्हे अपनी धंधा बना था।
- (१४) नाई—नाइया न भा अपना मण्डन बना लिया था।
- (१५) माली—मानिया का काम फून बचना था। य सम्भवत साधारण फल व बगोचे भी लगाते रहे हाग।
- (१६) नाबिर—प्रमुख नगर वरा-वरा नदिया क तर परत बने थ। अन अल्प श्रेणाय साधार तथा गमनागमन म इनका महत्वपूर्ण तथा था। य नामुक्ति यात्रा मा करत थ। जातना म सामुद्रिक यात्रा का यत्र-त्रन उन्नत किया गया है।
- (१७) टोकरो बनानेवाले—इनक सम्बन्ध म विशद बातें बात नहा हैं।
- (१८) चित्रकार—भवन निर्माण व सम्बन्ध म लिखत समय इनका कला का अग्रगण्य किया गया है। बहूया चित्रकार भित्ति चित्रा म हा अधिक भित्ति चित्रा थ।

निगम या धनो—निगमों के संगठन का निर्देशन ऊपर किया गया है। इन संगठनों को निगम अथवा धनो कहा जाता था। उद्योग सभी प्रमुख उद्योगों के कारीगरों ने अपनी श्रमिका बना ली थी। इन श्रमिकों में प्रशिक्षण प्राप्त करनेवालों का अलग श्रेणिक कहते थे। अंतर्वासिक का शाब्दिक अर्थ वहाँ के रहनेवाले हैं। निगम का प्रधान 'जेटठक' (ज्येष्ठक) कहलाता था। जातक-पथ (११३०८॥ ३४ ॥ ४।१३७॥) में मालिया नादिका वाणिजात व्यापारिका, रक्षका तथा डाकुजा ने जेटठका का उत्तरण किया गया है।

सेटिठ—युद्ध प्रथा में सेटिठ शब्द प्रयुक्त हुआ है जो सम्भवतः प्रमुख अथवा प्रधान व्यापारी थे। इस का अर्थ में सेटिठ का प्रयोग होता रहा होगा। जातक में महासेटिठ तथा अनसेटिठ शब्द आये हैं जिनसे यह ध्वनि निकलता है कि मालिकों में भी उनकी स्थिति में अन्तर्गत छोटे व पथ थे।

वाणिज्य और व्यापार—अन्तर्देशीय तथा विदेशी दोनों व्यापार उन्नत अवस्था में थे। रेशम, मन्मल, मत्स्यवान् वस्तु अथवा शस्त्र पत्र जरी व काम या नक्काशी कालान्, औषधि हाथीदात की वस्तुय आभरण आदि निर्यात का प्रमुख वस्तुयें थी। व्यापार के सम्बन्ध में डचिडस महादय ने विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला है जिसे पता होता है कि काफिला प्रकार अथवा नाव द्वारा व्यापारी दूर-दूर तक यात्रा करने के लिए हर दूसरे देश में प्रवेश करते समय उन्हें चगी देनी पती थी।<sup>१</sup>

सब जातक में एक ब्राह्मण व्यापारी का उल्लेख मिलता है जिसने एक नाव को सुवर्णमणि की यात्रा का विभिन्न व्यापारिक वस्तुओं से भरा।<sup>२</sup>

इन विवरणों का आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यद्यपि अन्तर्देशीय व्यापार के लिए यातायात की पूर्ण सुविधा नहीं थी किन्तु द्वारा हानि का व्यापार को डाकुजा से रक्षा पहुँचाने की आशंका नहीं रहती थी तथापि ये दोनों व्यापार हुआ करते थे भाग की प्रबल शक्ति का ही प्रथम प्रमुख हाथ रहा होगा।

there were merchants who conveyed their goods either up and down the great rivers or along the coasts in boats or right across country in carts travelling in caravans. These caravans long lines of small two wheeled carts each drawn by two bullocks were a distinctive feature of the times. There were no made roads and no bridges. The carts struggled along slowly through the forests along the tracks from villages kept open by the peasants. The pace never exceeded two miles an hour. Smaller streams were crossed by gullies leading down to fords the larger ones by cart ferries. There were taxes and octroi duties at each different country entered and a heavy item in the cost was the hire of volunteer police who let themselves out in bands to protect caravans against robbers on the way. The cost of such carriage must have been great so great that only the more costly goods could bear it.

—Buddhist India pp 60 61

<sup>१</sup> जातक ४।२१ में इसका उल्लेख है। सुवर्णमणि का संकेत वर्णों तथा नाम से है—देखिये Dr Mabel Bodin the Sasana Jamsa p 12 Quoted by Mr Phys Davids

व्यापार-माग—पूर्ववर्ती बौद्ध ग्रन्थों में व्यापार-मार्गों के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता है किन्तु उनमें बाद के ग्रन्थों में इनका निर्देशन किया गया है। ये माग दोनो प्रकार के अर्थात् जनाय और स्वनाय थे। ढाँचि से महान्त्य न इन व्यापार मार्गों का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत का है—

(१) उत्तर से दक्षिण-पश्चिम का माग—सावत्या से पतित्यान (पठान) तक जिसमें पठनवाल प्रमुख स्थान महिम्सति उज्जनी गानध विदिशा, कौशाम्बी तथा साकत थे।

(२) उत्तर से दक्षिण-पूर्व का माग—सावत्या से राजगृह (राजगृह) तक जिसमें सनध्य, कपिलवस्तु, कुसानारा पावा, हत्थिगाम माँटिगाम वशाला पाटलिपुत्र तथा नागार्जु प्रमुख स्थान पठत थे जहाँ व्यापार रतत थे। यह माग सीधे न जाकर काफी घूमकर जाता था।

(३) पूर्व से पश्चिम का माग—यह प्रयागता जल माग था और बनी-बनी नदिया द्वारा यातायात होता था। गंगा में घुस पश्चिम सहजाति तक तथा यमुना में उसा शिवा की धार कौशाम्बी तक नावें जाता था। आगे चलकर नावें गंगा के मुहान तक जान लगा और वहाँ से सामुद्रिक माग पककर बर्मा चला जाती थी।

जानता तथा अन्य ग्रन्थों में इन मार्गों के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यापार मार्गों का भी उल्लेख किया गया है। इनमें निम्नलिखित विशेष उल्लेखनाय हैं —

- (१) विन्हु से गांधार तक
- (२) मगध से सावार तक,
- (३) मरकच्छ से बर्मा तक
- (४) धनारस से बर्मा तक (गंगा के मुहान से हान हुए) तथा
- (५) चम्पा से बर्मा तक।

जानता ६१,७११ में हम मरकच्छ (सम्भवत म १४) बरग्याह का उल्लेख मिलता है। शत्रुघ्न महाकथ तथा धम्मपद-टीका में सुप्पारक (७१० वा० सा० ला के मतानुसार सुपारा) नामक दूसरे बन्दरगाह का उल्लेख किया गया है।

बानार, विनिमय का माध्यम तथा साझेदारी—उद्योगियों तथा कृषि-द्वारा उत्पादित वस्तुओं की बिना के लिए स्थान-स्थान पर बाजार थे। वस्तु विनिमय (Barter) प्रथा का पूरा पान हा चुका था। जब बाणपण (कार्यारण) नामक एक

१ कार्याण का प्रयोग पाणिनी ने भी प्राचीन काल को प्रबलित मन्त्रों के रूप में किया है। श्री दुर्गाप्रसाद ने अत्रन निबंध में (ज० अ० १० ए० १० टी० मुनिस्मटिक सन्तोमस सतारालनका भाग २९३ ७३) मोरपुत्र मुद्राओं पर बिचार करते हुए बताया है कि मुद्राओं के ऊपर विन्हु विनिमय प्रकार के मन्त्रिन वि ह हान है, जैसे मूय, तोर का तोर, बल के प्रनाक मोर कुत्तों, यम अथवा पहाडो हाथी बारहसिया, मेडक, जानि। मुद्राओं के दूसरी धार जाल विन्हु मन्त्रों को जाच करन बाल गरकों तथा पदव करन वालों के हैं।—प्र० ए० १० १० धाय द्वारा उद्धृत।

राज्य ही मन्त्रों का निमाता था सवालक न था अत्र उनका अधिकारी अथवा बड-बडे धणिज 'जेडक' आदि भी अत्रना अत्रना प्रतीक इन पर अकिन करते जाते थे। इस प्रकार जित मन्त्रों पर जितन ही अधिक वि ह हाँ उ हें उनकी ही पुरानी सम्भना चाहिये।

प्रकार के सिक्के का व्यवहार प्रथम विभाग में होता था। काहापण तथा का यन्तरा जिसकी तीन १४६ ग्रन या गौर जिस पर विविध चित्र अंकित होते थे। चाँदा १ सिक्के का प्रयोग नहीं होता था। सम्भवत आधा तथा चौथा काहापण ही प्रभाग में पाये जाते थे अन्य किसी प्रकार के काहापण का प्रयोग नहीं किया जाता था। स्वर्ण-मुद्रायें भी प्रचलित नहीं हैं थी। अतः तब राज्य द्वारा वस्तुओं का मूल्य नियंत्रण नहीं हुआ था आग चन्द्र मन्स्मृति में हम इस प्रकार की व्यवस्था का वाद्य ज्ञाता है। छठी शताब्दी ई० पू० में मलय निर्धारक का उत्तम मितता ही जिसका काय बाजार में वस्तुओं का मूल्य निर्धारण नहीं था बल्कि वह राजप्रासाद के लिए त्रय का जानकारी वस्तुओं का मूल्य तय करता था। व्यापार में उधार चलता था। याज पर रुपये भी दिया जाता रहा होगा क्योंकि याज का उत्तम प्राचीन ग्रंथ या म किया गया है यद्यपि याज की दर का निर्देशन नहीं है।

व्यापार में साजदारों का हाता भी जिसका उत्तम कूट वाणिज्य जातक में विज्ञा गया है। साक्षात् ईमानदारी न बरतने का भी विवरण प्राप्त होता है आर बर्मानों करनेवाले को असफल होकर अंत में बराबर-बराबर अश दत्ता पन्ता है। सुधारक जातक से भी साजदारी का विवरण प्राप्त होता है। क्या इस प्रकार के—कुछ सामाजिक व्यापारियों ने व्यापार के लिए नाका टीक करके उसे एक अध नाथिन व सरक्षण में दिया जो हर प्रकार की सामुद्रिक आपत्तियों को क्षत्रकर तथा उन पर विजय पाकर सफ ततापूर्वक नौका वापस कर आया। नाम में प्राप्त वामय वस्तुओं का बराबर बराबर वितरण सभी साजदारा में कर दिया गया। यह आर्थिक व्यवस्था प्रारम्भिक रूप में हाते हुए भी काफी उन्नतिमान पात हाती है।

## भाषा और साहित्य

बुद्धमानीन भारत की सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्थाओं पर विचार कर लन के पचास तत्कालीन भाषा और साहित्य का गतिविधियां पर एक विंगम गिट टाता।

संस्कृत भाषा का उदय और विकास—यहां हम भारत के साहित्यिक पर विचार कर रहे हैं जो प्रथम एक हजार वर्ष पूर्व से स यन्तरा ४२२ में वि व म अपना प्रमुख स्थान रखता चला आ रहा था जिसके प्रथम धार्मिक ग्रंथों का निर्माण हो चुका था और उनका धार्मिक अनेक धार्मिक ग्रंथों पर जन्म चली थी। यह वह काल है जहां तब पहुंच कर भारत ने अपने वैदिक विकास के चतुर्थ अद्वितीय उदात्तरण प्रस्तुत किया है। पिछले परि छटा में हमने ब्राह्मण ग्रंथों के सम्बन्ध में पता था य सार ग्रंथ अपनी विशिष्टता तथा साहित्यिकता के लिए आज भी विख्यात है। किन्तु आश्चर्य यह है कि भारतीयों ने अब तक निखना पटना नहीं मारा था। य सार ग्रंथ विना तिरा पन्ती रख गये थे। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य प्रारम्भ में तपना से अछत रह गौर के पेशेन ब्राह्मणों के मणितक पर उनका जिह्वा के बार बार पिरटपण से तिरा गये थे। अनमानत सातवां आठवां शताब्दी ई० पू० से पहा भारत में तपन बना का विकास नहीं हो सका था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि उस समय का हिन निरपिया पुस्तकों आदि का गार्निर्देशन किसी ग्रंथ में नहीं मिलता जब कि तत्कालीन अथवा कुछ पचास वर्ष पूर्व यस्ति या समुदाय की वदवितक या सामाजिक वस्तुओं को गिनाते समय उनका छटी से छटा वस्तुओं से लेकर भारी से भारी वस्तुयें तप गिनाई जाती हैं। हस्तनिरपिया अथवा पुस्तकों का भागपना उक्त मूला में का गई हनी किन्तु इनका अनपरिचित में इसका कोई प्रान नहीं उठता था।

यह विचारणाएँ बन्धु हैं कि मानव जन उत्तम दाम्भिक धर्म के दान बाद में विद्या का प्रारम्भ किया गया किन्तु समय प्राणिक रहस्य है। ब्राह्मणा को अपने स्वर्गीय मन का इतराव परक नया बनाना था व जन्म पान का जन्म वष तक ही सीमित रहना चाहत थे। एसा दशा में दक्षिण ग्रन्था का अध्ययन करने के स्थान पर उन्हें निम्न के वष प्रथम मित मकता था।

दूसरा कारण यह था कि उस उच्च बौद्धिक स्तर पर पहुँचकर शिक्षा का इस प्रारम्भिक अवस्था निम्नता पाना पर लौटना उन्हें हेय मगता था हा हागा अतः प्रारम्भ में उन्होंने हमका अध्ययन की शो जो सामाजिक मो है।

तामरा कारण यह रहा हागा कि जिस समय उन्हें लगन-काम का पान प्राप्त हुआ उस समय तक वे लगन-मन्व-का ममा आवश्यक सामग्रियाँ न परिचित नया हा मक व पर किसी विषय का कटाव करने का अत्यन्त भरल-मा हा गया था क्योंकि यह प्रथा पीलिया न चला आ रही था।

विनय लनाय ७६ चतुस्य ०५ पञ्चम ७ आदि म हा मधुप्रथम तस्य (विनये) का उल्लेख मिलता है।

उन प्रथा का उदाहरण के आधार पर इतिहास मन्त्रालय न इस मन्व-धर्म में अपना मन-म प्रकार प्रकट किया है—

इत (विनय आदि) ग्रन्था का रचना के समय लिखन का प्रचार था तसमा प्रयोग ग-याद-हा के प्रकाशन तथा मविनया के निजी पत्र ध्यन-गर म जाता था। मगन कला जानना जाविना का मन्व-धर्म तथा मन्मानित माधन का मन्व-धर्म का साधना किसी वग विशेष का रूप ही न थी बरिधे संवसाधारण तथा स्त्रियाँ मा सीपली था।

किन्तु विचम म्हा-दय न आग यह भा उताया है कि अत तक जिस स्तर पर लिखन कना पक सकी था वह पुनक रचना के निग पयात न थी और अभी इसम काफी समय मगन की था जय यह स्तर पर पक मकता कि मन्व-धर्म का कठस्य करन कर रथ न पर निग जाता। विनय पुनक के उल्लेख का जभाव ता हमका सबसे बडा प्रमाण है ही जसा कि पिछन पपटा म बताया गया है माथ हा कुछ एसा मा म्हा-दय प्राय है कि आत्रार पर यन नि चयपूर्वक कहा ता मकता है कि तत्र तक पुनका का विनय रूप नहा प्राप्त हा नका पा। जगन-निवाय २।१०७।। ११३९।। विनय पित्रक १। ६ ।। आदि के उल्लेखा से इतिहास मन्त्रालय न मफलतापूर्वक यह सिद्ध कर दिया है कि उस समय तक मन्व-धर्म धार्मिक नियम तथा अन्य विषय म्हा-दय विम जान थे और इनका मगन का अथवा इनका स्थिति सन्व बनाने मगन का सतत प्रयास किया जाता था अत यह नि-यथात्मक मगन कना जा मकता है कि जब तक वे मगन प्रथ विद्वाना के महिषा म य किसी प्रकार के कागज पर नहीं विनित नहा किया गया था।

हम जब प्रारम्भिक मगनाय वषमरार पर विचरते बरला हागा। जिस समय मक प्रथम मगन कना का उदय म्हा-दय ना-ताया न उत्तरी ममाइट जमका दक्षिणा म्हा-दय का वषमाना का अन्व-धर्म किया।<sup>१</sup> हम मन्व-धर्म म तक विनय के पञ्चान विचम

1 the conclusion hitherto drawn has been either with Weber and Fuhler that the Indian Alphabet is derived from the Northern Semites or with Dr. Decke, Max Tylor and others that it is derived from that of the Southern Semites in South Aral ——— *Buddhist India* p 71

महोदय ने अपना विचार प्रकट किया है जो उपरोक्त मत का गण्डन करता है और वह भारतीय लिपि वणमाला का प्रणालाखत पूर्व ममितिक चरमशरी के मूल सार को बतलाता है जिसका प्रयोग दजला नदी का घाटा में होता था।<sup>१</sup>

सातवां शताब्दी ई० पू० अथवा आठवां शताब्दी ई० पू० के अन्तिम चरण में ही सम्भवतः बैबीलोनिया में व्यापार करनेवाले भारतीय व्यापारियों द्वारा सैमिटिक लिपि भारत में लाई गई होगी। इस लिपि में कालांतर में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार काफी परिवर्तन परिवर्धन हुआ और इसी लिपि का लगभग १ हजार वर्ष बाद ब्राह्मी लिपि कहा जाने लगा किन्तु इस बीच में इसका क्या नाम था यह जान नहीं है। वणमाला के आविष्कार के पश्चात् लखन मन्वी सामग्रियों का भी प्रथम आविष्कार हुआ किन्तु जसा कि बार-बार बताया गया है सहीग मनोवतिवान हिन्दू धर्म के ठके द्वारा ने अपनी धार्मिक पुस्तकों का लिपिवद्ध करना उचित नहीं समझा क्योंकि इससे उनका रहस्यात्मक धर्म सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य हो जाता था या उस पर दखल दे सकते और इस प्रकार धार्मिक ग्रन्थ का अपवित्र बना सकते थे एवं अनौगत्वा उनका राज गार मारा जाता। डविडम महोदय ने निम्नोक्तक ढग से यह कहा है कि—

हम इस पर आश्चर्य नहीं करना चाहिए कि छान या पत्थर पर लिखी हुई प्राचीनतम भारतीय हस्तलिपि बौद्ध ग्रन्थ की हैं पत्थर अथवा लौह पत्र पर उत्कीर्ण प्राचीनतम ग्रन्थ भी बौद्धा के हैं बौद्ध मन्वावलम्बिया ने हा सबप्रथम अपने पौराणिक ग्रन्थों का रचना में लिखन का प्रयोग किया ।<sup>२</sup>

इस प्रकार साहित्यिक एक विज्ञानों द्वारा संकीर्णता में बाधित साहित्य को असाहित्यिक व्यापारियों के परिश्रम द्वारा किया गया लखन कला के प्रचार से पूर्ण विवास का रूप मिला। प्रारम्भिक तब पाली में अधिक लिख गम (सम्भवतः केवल पात्रों में लिख गम) और सस्कृत का स्थान वाच्य में आया यद्यपि यह हजारों वर्ष से जाना जा रही थी।

भाषा—भाषा के सम्बन्ध में बहुत तब बिलक प्रस्तुत किया जाता है। कुछ विज्ञानों ने सम्स्कृत का प्रारम्भ स्थानित करने का भी प्रयास किया है किन्तु यह तब मगत नहीं है। छठी शताब्दी ई० पू० तथा उमक पश्चात् काफी समय तक ब्राह्मणों का ठकेपरा का दस्तावेज कम होता रहा। सम्स्कृत भाषा सर्वसाधारण का वाचन का भाषा नहीं हो सकता था ब्राह्मण इसके लिए जरूर मां नहीं दे सकते थे। सम्स्कृत भाषा के नाटकों के अध्ययन से हमें सम्बन्ध में यह अनुमान लगा सकते हैं कि सम्स्कृत ता किसी प्रकार मां जनभाषा नहीं था। सम्स्कृत नाटकों के उच्चतुलान पात्र तो शब्द सम्स्कृत में समायाग करते हैं किन्तु व्यवहारण पात्र प्राकृत भाषा का प्रयोग करते हैं किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि प्राकृत या जनसाधारण की भाषा था। वास्तव में साहित्यकारों की जनभाषा में भी बनावट बनाकरना और साहित्यिकता का पुट होता है। वह शब्द प्रामाण्य या जनसाधारण का वाचन को मां साहित्यिक रूप प्रदान करके उमक प्रयोग करते हैं। जन यह निष्कर्ष निकलता है कि न ता सम्स्कृत हा जन भाषा ना और न प्राकृत थी।

Indian letters were derived neither from the alphabet of the North nor from that of the Southern Semite but from that source from which these in turn had been derived from the pre-Semitic form of writing used in the Euphrates Valley — देई य वही

<sup>१</sup> दक्षिण Buddhist India pp 74-75



अब हम तत्कालीन भाषा के लिए एक दूसरे पहलू पर विचार करना होगा जिसमें वस्तुस्थिति काफी स्पष्ट हो जायगी।

छठी शताब्दी ई० पू० में अनेक धार्मिक सम्प्रदायों का उदय हुआ चुका था। इनमें परिव्राजकों का स्थान प्रमुख था। ये गाँव-गाँव तथा नगर-नगर में घूमते थे और अपनी शिक्षाओं का प्रचार जनता में करते थे। ये अन्य शिक्षकों का भी धार्मिकविवाद के लिए आमंत्रित करते थे। ऐसा अवस्था में उनका भाषा क्या था यह साबित जा सकता है। निश्चय ही उनका भाषा लोक भाषा या इससे काफी भिन्नता-जुलनी भाषा रहा होगा। साथ ही इन परिव्राजकों का भाषा का प्रचार एवं विकास भी काफी सम्भव था क्योंकि ये देश के बहुत से भाग में निरन्तर भ्रमण किया करते थे। कौशिक राज्य की स्थापना का इस भाषा पर बाधा उत्पन्न बहुत प्रभाव पड़ा क्योंकि इस विस्तृत राज्य की सीमा में इस भाषा का पर्याप्त प्रश्रय दिया गया। किन्तु स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार अन्य बोलियाँ भी काफी प्रचलित थीं। मरुत भाषा उच्चकुशल ब्राह्मणों तथा ब्राह्मण विद्वानों में प्राकृत साहित्यकारों का रचनाओं में तथा उसका विकृत रूप कुष्ठ क्षेत्र में लोगों में और पात्रों उत्तर प्रदेश के अविकाश भाग में प्रचलित रही होगी।

साहित्य—पालिग्रन्थ—विचारगामन काल में हिन्दू जन तथा बौद्ध विद्वानों का निपिबद्ध करने का प्रयत्न सर्वोच्च धर्मविश्वविद्यालय में किया होगा क्योंकि अब तक त्रिपि का पर्याप्त विकास हो चुका था। हिन्दू ग्रन्थों के सम्बन्ध में पहले ही विचार किया जा चुका है जन ग्रन्थों की रचना सम्भवतः उस काल में नहीं हो सकी थी यद्यपि जनों अपने धार्मिक ग्रन्थों की प्राचीनता धारित करते हैं। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में ही और उनकी रचनातिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। अनुमानतः उनकी रचना चौदह शताब्दी ई० पू० में उत्तर प्रदेश शताब्दी ई० पू० के अन्तिम चरण के बीच में है। कुष्ठ पुस्तकालिका प्रमाणों (मरुत-सूची आदि के अन्तर्गत) के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मौर्य तथा शकवर्ष के उत्थान के पूर्व धर्म और विनय का रचना हो गया था। साहित्यिक मूल्य मित्रों पक्ष में भी यह बात जाना है कि तीनों पित्र तथा पौत्रों के नाम उक्त पूर्व विद्यमान थे। महावग्ग तथा चत्तवग्ग की रचना अगस्त पूर्व में रचना होगी क्योंकि वेनाय बौद्ध मनीषी के सम्बन्ध में यह मीत है। चत्तवग्ग में मुनिविमल तथा पांचा निकाय का उल्लेख किया गया है। जन में ग्रन्थ और भा प्राचीन मित्र माने हैं। त्रिपिटक में न अल्प अविश्वम्भितिक का उल्लेख उक्त ग्रन्थ में नहीं है। जन उक्त शताब्दी ई० पू० के आरंभ पश्चात् से उत्तर ५०-७० ई० पू० के बीच में विनयपिटक के पदान्त भाग तथा मुत्तिका के प्रथम भाग निकायों का रचना हो गया था।

उत्तर १४ में धार्मिक पात्रों ग्रन्थों का अन्वयधर्मिका का मूल्य अध्ययन करने के पश्चात् उनका उनकी प्राचीनता के आधार पर इस प्रकार खरा है—

- ( १ ) बौद्ध मित्रिका का मूल्य निरवगण जिनका पुनरावृत्ति अब सभी पुस्तकों के पात्रों में जन उक्त में उक्त पात्रों में पात्र जाता है।
- ( २ ) उपासना ज्ञान ज्ञान या धर्मिक उपदेश पुस्तकों में समान शब्दों में मिलते हैं।
- ( ३ ) सौल मधिका छः कर १६ कविताओं का मूल्य पारायण चार या सातह कविताओं का मूल्य अष्टक सिद्धयथा।

- ( ४ ) द्विध प्रथम भाग मन्त्रिम सयत्त, अगतर तथा १५२ त्रियमा म यत्त प्रारम्भिन पातिमोक्ख ।
- ( ५ ) ाध भाग त्रितीय तथा ततीय यरा यरी-भाभा ५०० जातक मुत्तविनग पत्तिसम्भदामग पुग्गलपत्तति तथा विभग
- ( ६ ) महावग्ग च्चल्लवग्ग पातिमोक्ख (२२७ नियम) विमानवय पतवय धम्मपद क्यावत्थ
- ( ७ ) च्चल्ल तथा महानिद्दस, उदान इतिवत्तक मुत्त निपात धातुक्या यमक पत्थान ।
- ( ८ ) वद्धवत्त चर्यापिटक अपदान ।
- ( ९ ) परिवारपाठ ।
- ( १० ) खुद्दक पाठ

धार्मिक साहित्य के इतर अथ पाली साहित्य की रचना भी ८<sup>वें</sup> शताब्दी तक की रचना है। प्रारम्भ में नागा का प्रवृत्ति धार्मिक ग्रन्थों का आरंभ ही रहा।

### छठी शताब्दी ई० पू० के कुछ प्रमुख धार्मिक सम्प्रदाय

पिछले पन्ना में हमने महावार तथा गौतम बुद्ध के विषय में प्रकाश डाला है वास्तव में बौद्धिक श्रान्ति का इतिहास न तो उतना ही धार्मिक नताना तक ही सीमित है और न इससे ही इसका इतिहास होता है। महावार तथा गौतम बुद्ध पूर्व तथा उनके समय में भी भारत में जनक विचारकों के सम्प्रदाय विद्यमान थे। इन सम्प्रदायों की संख्या अतिरिक्त रूप में बढ़ती जाती है। पाली ग्रन्थ ब्रह्मजात में बताया गया है कि जिस समय भगवान् बुद्ध ने अपना मत का प्रचार आरम्भ किया उस समय देश में २ विभिन्न सम्प्रदाय थे। उनमें से एक सुनसुत्तग मता यह मर्यादा ३६३ बताता है। किन्तु यह दोनों संख्यायें अतिरिक्त लगती हैं। जान पता है कि उन तथा बौद्ध ग्रन्थकारों ने सम्प्रदायों का वास्तविक संख्या में उस भावा सम्प्रदायों का संख्या में बताया है जिससे उन सम्प्रदायों का भाव न जानकरना जा जाय और अविष्य न भावों व्यक्त इन धर्मों (उन बौद्ध) के इतर किन्हीं धर्मों का स्थापना करने। वास्तविकता जानना है इतना ही निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अतः पाली धर्मों के अर्थ होने के पूर्व भाषण में कुछ अन्य धार्मिक सम्प्रदाय विद्यमान थे और जगत्तर निवास की शान्तिवादी विभिन्न दलों सम्प्रदायों का अन्तर्गत किया गया है काफ़ी प्राथमिक है। तात्पर्य इस प्रकार है—

- |                     |                    |
|---------------------|--------------------|
| ( १ ) मजाजादिक      | ( ६ ) मार्गाधर     |
| ( २ ) निगय (निग्रय) | ( ७ ) तर्णादक      |
| ( ३ ) मन्सावक       | ( ८ ) अविन्दक      |
| ( ४ ) जटिनक         | ( ९ ) गेनमक तथा    |
| ( ५ ) परिव्राजक     | ( १० ) स्वपम्पिक । |

नीचे इनका विशेषतया संक्षेप में बताया जायेगा।

- (१) मजाजिक—इस सम्प्रदाय के अनुयायी नग रहने के लिये और जादियों का पूजन के सम्बन्ध में विशेष जटिन नियमों एवं विधियों का अनुसरण करते थे।
- (२) निगय (निग्रय)—जन मनावलम्बियों का निग्रय कहा गया है।
- (३) मन्सावक—बुद्धों ने निग्रय तथा मन्सावक सम्प्रदाय का एक ही सम्प्रदाय स्थापना किया है।



वे तिथ्यकर (सम्प्रदायों के जन्मदाता) कह गये हैं। बौद्ध ग्रन्थों में इन धार्मिक नेताओं का विवरण प्रभावोत्पादन रूप में दिया गया है।<sup>१</sup>

य नेता भगवान् बुद्ध से पहले के थे क्योंकि स्वयं बौद्ध ग्रन्थों में यह स्वीकार किया है कि उनकी तुलना में बुद्ध कम आयु के थे और धार्मिक जीवन में अभी बिल्कुल नये थे। नीचे इन धार्मिक नेताओं पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा —

(१) पुराण-कस्सप—इन्होंने अकायवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था जिसके अनुसार न तो मत्त एवं शुभ काय करने से कोई पुण्य और न किसी की हत्या करने से कोई अशुभ काय होता है। पुराण-कस्सप किसी प्रकार के शुभ अशुभ काय की आवश्यकता में विश्वास नहीं करते थे अतः काय की नतिकता अथवा अनतिकता उनके लिए कोई महत्व नहीं रखती थी। ये ब्राह्मण थे और कहा जाता है कि अपने ज्ञान का पूणता के कारण ही इनका पुराण नाम पड़ा था। इनके ८० हजार अनुयायी थे।

(२) मक्खलि गोसाल—इन्होंने कम और उसके प्रभाव दोनों का सपन्न किया है। उन्होंने यह स्वीकार किया है कि मनुष्य के चरित्र में दोष और दूषण आ सकते हैं किन्तु पुनर्जन्म ही उनके दूर करने का प्रमुख साधन है। मक्खलि गोसाल ने मनुष्य के भाग्य जीवन तथा चरित्र पर उसके शुभाशुभ कर्मों का प्रभाव नहीं स्वीकार किया है। उनके मतानुसार चौरासी लाख यानियों में निरन्तर जन्म तथा मृत्यु के चक्र में पड़े रहने से मत्त तथा विज्ञान सभी जपने दुःखों से छटकारा पा लेंगे। मक्खलि गोसाल के अनुयायी आजादिक कहलाते थे। अशोक के समय में भी इनका अस्तित्व महत्वपूर्ण था तथा तरहवी शताब्दी के अभिलेखों तक में इनका उल्लेख किया गया है। इस सम्प्रदाय के संस्थापक वत्त प्राप्त होते हैं किन्तु यह आजादिकों द्वारा निरृत हुए न होकर मक्खलि गोसाल के आलायकों द्वारा निरृत हुए हैं।

(३) अजित कसकम्बलिन—इनका मत था कि मत्त के पश्चात् सब कुछ नष्ट हो जाता है और कम के द्वारा किसी प्रकार के जन्म की आशा नहीं है। शरीर के विनष्ट हो जाने पर मूत्र तथा विज्ञान सभी समान रूप से विनष्ट हो जाते हैं और मत्त के पश्चात् वे नहीं रह जाते। अजित कसकम्बलिन का सिद्धान्त 'उक्तदवाद' कहलाता था।

(४) पञ्चुथ के चायन—इनका सिद्धान्त था सनातनचिन्तित विनासा असतानाचिन्तित सम्भवा अर्थात् जो कुछ है उका विनाश नहीं किया जा सकता और जो नहीं है उसका (हानि की) सम्भावना नहीं। इन्होंने यकिनगत उत्तरदायित्व का सङ्केत करते हुए सान स्याया पत्थर्यों के अस्तित्व का कल्पना का है जो (१) भूमि (२) जल (३) अग्नि (४) वायु ( ) मनु (६) वस्त्र तथा (७) आत्मा है।

(५) निगमनायपुत्त—सम्भूत वचनता में मत्त हानि के कारण ही इसे निगम्य (निर्णय) रत्त जाता था। इनके जन्म के संस्थापक थे।

( ) सजप वल्लठपुत्त—इनके जन्म अति प्रज्ञा का विचित्र उत्पन्न विनाशता तथा मत्त के प्राचीन निवासियों के विनाश और चिन्तन का विषय बन हुए

१ समान शब्दों में सधियागिनिगणावाय नाता यस्तस्मिन्ना तिथ्यकरा साधसम्भता बहुजन ये अयं न थमग तथा ब्राह्मण धार्मिक नेता सम्प्रदायाध्यक्ष सम्प्रदायावाय तथा सम्प्रदाया के जन्मदाता के रूप में विख्यात तथा बहुत से लोगों द्वारा सम्मानित। इस प्रकार उनका प्रभावपूर्ण विवरण बौद्ध ग्रन्थों में दिया गया है जिससे उनकी महत्वपूर्ण स्थिति का बोध होता है।

ये। उदाहरणार्थ क्या अच्छे और बुरे कर्मों का क्या परिणाम होता है इसके उत्तर में उन्होंने कहा—

(१) परिणाम जाता है (२) परिणाम नहीं जाता (३) परिणाम होता भी है और नहीं भी होता है (४) नतीजा परिणाम होता है जो कि नहीं है कि परिणाम नहीं है। मज्झिम निकाय प्रचारक के उत्तर में बजाव का किन्तु सम्भावना है यह स्पष्ट ही है। सम्भवतः वे कुछ भी निश्चयपूर्वक रूप में नहीं कहना चाहते थे।

उपर्युक्त धार्मिक नेताओं के सिद्धान्तों पर जातिवादों के प्रति बालन में यह बातें जाना है कि पथम काय नेताओं के विचारों में पद्यों का भाग्यवान् भौतिकवादी या अपन शक्ति में अत्रिवादी थे। उन मंत्र न मनोर के व्यक्तिगत उत्तरदायित्व तथा उभय शक्तियों के गुणावगणना का पूर्ण सम्बन्ध किया है किन्तु वे पुनर्जन्म में विश्वास करते थे जो नपम्मा भी करते थे। वे पुनर्जन्म की कारण प्राकृतिक नियम का भी मानते हैं न कि कर्मों की।

बौद्ध धर्म के नेताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य धार्मिक नेताओं के नाम भी प्राप्त होते हैं जो अपनी साधुता और शक्ति के लिए काफी विद्वान् थे। महाविराजित पर एक वारारि नामक ब्राह्मण का उत्तम मित्रता है जिनके सोलह शिष्य थे और इनके भी बहुत से अनुयायी थे। ये महाविद्या तथा मस्तिष्क के कर्मों का प्रमाण दिया करते थे।

### भागवत सम्प्रदाय

बौद्ध धर्म के अस्तित्व का बाप हम समसामयिक ब्राह्मण धर्म में होता है। महाविराजित तथा परवर्ती उपनिषत् सत्ता जाना है कि ब्राह्मण धर्म में जिन भागवत सम्प्रदाय का उदय उपनिषत् युग में हुआ था उसका चरम विकास प्रायः इस युग में होता है। यह समय पाश्चात्तिक नाम से यह सम्प्रदाय चलता है। वासुदेव इस सम्प्रदाय के आराध्य देव थे। भगवान् कृष्ण को भी महत्व मिलना आरम्भ हो जाता है। भक्ति तत्त्व की प्रचलना ही इस ब्राह्मण धर्म की विशेषता रही। उभय समय नियुक्त तथा सगुण दोनों प्रकार की भक्ति प्रचलित थी।

ऊपर आजीविका का जो उत्तर दिया गया है उनमें सम्भवतः में भी कुछ महत्वपूर्ण तथ्यों का विवरण नहीं कर सके जायगा है। महावीर (४०० ई० पू०) में महावीर तथा आजीविक भक्तियों का शासन का यात्रा का जो विवरण मिलता है उसमें उनके स्थानों पर वासुदेव के बलदेव के मन्दिरों का उल्लेख है तथा गोमाल का चार घण्टीय वस्त्र के मन्दिरों में ही घटित चर्चा है। बगदमिन्दिर ने आजावको का जो उल्लेख किया है और उसके टीकाकार उत्पल ने उसकी जा यह व्याख्या की है— अश्वत्थस्यैव ग्रहणम माह्वार आशितानाम् इसके आधार पर बन महात्म्य ने आजीविका को बट्टर वस्त्र कहा था और बूह्वर ने इन मत का समर्थन किया था। किन्तु डा० डी० आर० मण्डारकर ने इन मत का आरंभ सम्बन्ध किया है और डा० बरजा ने तथ्य इनका मूर्ति मूर्ति प्रशंसा करते हुए लिखा है डा० मण्डारकर ने उत्पल भाष्य को उस व्याख्या की संशयक मूल के मुष्ठा द्वारा बहुत बनी सवा की है जिसमें प्रो० बन तथा बूह्वर और उदमट मस्तिष्क पदिका को यह साधन की प्रणय दी था कि आजाविक नारायण के उपासक अर्थात् भागवत थे।

## बौद्ध धर्म का इतिहास एक आलाचनात्मक अध्ययन

महात्मा बुद्ध का ज्ञान का प्रकाश पापन हुआ। एक नूतन प्रतिभा मन्दिष्व को स्तगन हुई। ससार के प्रति जब उनको एक अमिन्न शक्ति उभरियन हुई। वस्तुतः एक दानि था। महात्मा बुद्ध के जीवन में पूजन का परिचय था। तयागत ज्ञान का विचार को उठ। उहान एक विचित्र विजय प्राप्त हो था। गर एडविन एरनोल्ड (Sir Edwin Arnold) ने महात्मा बुद्ध के मकारिण म म जूव जयमर पर निम्ना कित ग कहनाए है—

Many a house of life  
Hata held me seeking ever him who wrought  
These prisons of the sense sorrow fraught  
Sorrow was my cruel staff  
Fit now  
Thou builder of this Tabernacle—Thou  
I'll now Thee! Never shalt thou build again  
These walls of pain  
Nor raise the roof-tree of deceits nor lay  
Fresh rafters on the clay  
Broken Thy house is and the ridge-pole split  
Defusion fashioned it  
Safe pass I thence deliverance to obtain

इस अपतिम ज्ञान चक्षु से मयज्ज हान महात्मा बुद्ध ने विचित्र के कल्याण के लिए अपना अमूल्य ज्ञान वितरित करने का निश्चय किया। धम्म के ही प्रचार के लिए इस मानवजाती को शक्ति ने दश के काने काने में पल्यानाए का। इस महत्वि ने यह घोषणा करना दा—

विचित्र के शक्ति म मैं जमरत्त का होन पाग्या। सबसे प्रथम प्रवचन के पात्र थे व पात्र उनके सत्यागा जिहानि कि तयागत का साथ कुछ मास पून छो दिया था। वारोपती का ओर प्रयाण कर सारनाथ नामक स्थान पर जनाई का पूजमाती का उहानि उस चक्र प्रवचन सूत्र किया। इस प्रवचन में तयागत ने तन तया यो के दो अतिमार्गों का ओर मध्यम मार्ग का ओर जा मवर म प्रम पय इन को अतिमार्गों के मध्य स्थित है इन शिष्या का दक्षिण जाकियन का। उभने चार स या का शिष्या दी। दुस एव दुस का कारण दुस का निरास तया दुस के निरास के लिए शिष्यागिक मार्ग का उल्लाप किया। काग्न म महात्मा बुद्ध का प्रथम शिष्य बना। महात्मा बुद्ध का यह धम प्रारम्भ म गौरवशाता म य म गौरवशाता य न में गौरवशाता था।

घार धारे तयागत के अनुमायिया का सत्या म वृद्धि हुई। इस महान धम प्रचारक के शिष्य अपने गुरु के विचारों से पूज्य प्रभावित हो अपना स्वधर्म ही बौद्ध धम के प्रचार के लिए लगान के लिए तत्पर हो उठे। इन शिष्या ने जित्त कमठशाता तयाग उरक

मन्मथ एव लगन का परिचय दिया " व इतिमम म वजा" है। बौद्ध धर्म के विस्तृत प्रचार का यही रहस्य है। महात्मा तयागत न अवन शिष्या का धर्म प्रचार क विरू जा-दान करत रहे कता मा।

ह मित्रया विव क प्रति कथा म यक्त कता क कथाण क नि बहुता क नाम क विरू मानवता तथा त्वता आ क मनाइ नाम एव कथाण क ।, अपना धर्म पर प्रयास करा।

महात्मा बुद्ध क जनपायिया न जरा इस स्याताय धर्म का विचारना धर्म बना दिया। इस चान जापान का विचार कथाणिया अज्ञानशिया वमा लका तथा विद्यन नाम म फला दिया तथा तयागत न मा अपन जावन परन्त अपन धर्म क प्रचार क विरू विभिन्न स्वना म पयायाण का। उनक इस अध्ययनाया जावन म उनक शिष्या का प्रणाम मिता थी। त्वत्त नामक एक शिष्य न तयागत क जावन म साध म पर जावन का प्रयास किया था। मागावन तथा मारिपन नामक बुद्ध क शिष्या न इस दरार जावन जान का तपन लका म प्रभावित कर उम पुन बौद्ध मध म जान क लिए उमात्ति किया। त्वदत जन म मध का मन्मथ बन गया और अपना नयायन्त बौद्ध धर्म का प्रचार कता रहा। इस प्रकार बौद्ध धर्म म पर का आविर्भाव न हो सका। ४७ वर्षों तक महात्मा बुद्ध न इस धर्म का प्रचार किया जोर अन म पावा नामक स्थान पर क निर्वाण का प्राप्ति हुए। तयागत क अन्तिम शब्द थ—

Decay is inherent in all component things! Work out your own salvation with diligence

मसार का त्वरणा का विचार पाटने हण मन्मथ म बुद्ध मा जान के प्राप्त बन गए। जम्भिरता का वायु द्वारा बुद्ध क पकाश का शान्त कर दिए जान पर पुन ससार अधकार क वातावरण म था गया। मतमना एक व्यक्तिगत व्याख्या न इस धम्म म एक नद-सी मचाता। धर्म प्रवचन का मृत्यु उपरान्त धर्मानुपायिया म विभिन्न विषया पर मतमनातर प्रारम्भ हो गए। तयागत क जावन म ही देवत्त न अपना विशिष्ट परंपरा अपना कर इस क्षण म—इन सिध्दतकारा प्रवृत्तिया म—एक जावन-सा फूल दिया था। यद्यपि तयागत क जान जा यह पूर किया गत नह हा सता थी। लेकिन आधुनिक मतमना का तब स्वयं अवसर प्राप्त हुआ जब कि गौतम बुद्ध का प्रभावशाली हाथ अन पर स मन्व क लिए उठ गया।

मध का एक अधिवेशन आमंत्रित किया गया जिसमें कपिलका क मूलरूप निर्वाचित किया जाये। यह अधिवेशन राजगृह (राजगृह) म हुआ था। वस्मप न इस सम्मेलन क सम्मानित किया। उपालि न विनयपिटक का सहायन किया। उपालि सबसे कयोवर्ष शिष्य था। उन मध क अनुशासन क नियम न पूण परिचय था। आनन्द न सुत पिटक का सबसत किया। यह पिटक प्रवचना का सार है। कम्मप न अग्निधम्मपिटक का सम्पादन किया। यह पिटक बौद्ध धर्म क आधिभारिक मनोविज्ञान एव दर्शन का सग्रह है।

परन्तु सगार्थिया का श्रुतला का म् प्रारम्भ था। १०० वर्ष वशाली म बौद्ध धर्म का दूसरी सगार्थि का सम्मेलन हुआ। सध क एक सम्प्रदाय न जब बौद्ध धर्म क बटोर नियम म कुछ शिथिलता किए जान की माँग का। यह दल युग के माँग के अनुसार धम्म म मा कुछ सहायन का समिताथा था। यह प्रथितवापी दल महासधिक नाम म विख्यात है। अन्त म अवन ध्यय में असफल हो जाने पर इन्होंने बौद्ध धर्म स

अपनी को अलग कर लिया। स्थविरा का यह प्रचार न बौद्ध धर्म के दशन पर पण प्रभुत्व स्थापित रहा। यही स्थविरा आधुनिक काल में अरवादिना के नाम से प्रसिद्ध है।

लकिन बौद्ध सध में इस नीपण दरार का कारण था दोना दाना में कुछ मन्त्रपूर्ण सद्भावितक मतभेद। स्थविरा एव महासाधिया के बद्धत्व प्राप्त करने के साधना में विभिन्न मत थे। स्थविरा का मत था कि बद्धत्व तथा प्राप्त हो सकता है जब नियमा का कर्त्तव्यता से पालन किया जाय। महात्मा बद्ध ने द्वारा निर्देशित मार्ग का दृष्टापूर्वक अनुगमन किया जाय। लकिन महासाधिया के अनुसार बद्धत्व पूर्व में ही आत्मा में विद्यमान है। उसका बंधन विकास ही जाना चाहिये। महामार्गधिया ने स्थविरा से अपने का पक्षों पर अपने अनयाधिया का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। यह प्रचार महात्मा बद्ध के मरने के १०० वर्ष पश्चात् ही उनके धर्म का स्पष्ट गाना में विभाजित हो गया।

इस संगीति के पश्चात् बौद्ध धर्म का इतिहास लगभग १० वर्षों तक अस्पष्ट एवं अनिश्चय के वातावरण में पनपा। हमका इस शताब्दी के बौद्ध धर्म के विषय में कुछ भी प्रामाणिक ज्ञान उपलब्ध नहीं है। यह अधकारपूर्ण आवरण का दर करनेवाला का सम्राट अशाक। २७० ई० पू. में यह मगध नरेश भारत का शासक घोषित हुआ। कर्त्तव्य के सश्रम के पश्चात् यह विजिता धर्म का उपासक बन गया। तत्पश्चात् इसने अपने विश्वापानुराग के कारण इस स्थानाय धर्म का विचार्यपी धर्म बना दिया। उसका धर्म था दया एवं सहानुभूति का समस्त जीवा के लिए बंधुतुल्य स्नेह का भाव्य एवं मृत्यु का एक श्रेष्ठ जावन के लिए अथक प्रयास था। उसने अपनी जनता के लिए अपने जीवन निर्वाह द्वारा एक आदर्श भी उपस्थित किया। उसने उनके लिए चिकित्सानय स्तुनवाय। कृप एवं मरारकर स्वदेवाय। प्रत्येक स्थान पर गौरवशाली मूर्तियों की रचना की। इन मानवताप्रिय कार्यों से अशाक ने बौद्ध धर्म के प्रति मानवमान का आवरण बनाया। शीघ्र ही यह धर्म भारत का प्रमुख धर्म बन गया।

अशाक ने केवल धर्म प्रचार का ही कार्य नहीं किया बल्कि उसने धर्म में परते हुए विभाजना को भी दूर करने की जीतोड़ कोशिश की। पाटलिपुत्र में उसने बौद्ध विद्वानों का एक सम्मेलन आमन्त्रित किया। यह सम्मेलन बौद्ध धर्म की तृतीय संगीति के नाम से विख्यात है। तिससे इस संगीति का समापति था। तिससे मोग्गलि का पुत्र था। ब्राह्मण धर्म के अनुयायी बौद्ध धर्म में नाना प्रकार के आडम्बर जाने में प्रयत्नशील थे। इन कमवाण्डी प्रवृत्तियों से सध को मुरक्षित रखने के लिए ही अशाक ने एक बार फिर से पिठकी का सशोधन एवं पुष्ट करने की अनिवार्यता का अनुभव किया था। यही सब कारण थे जिनसे विवश ही महान सम्राट ने अपने तत्वावधान में यह सम्मेलन आमन्त्रित किया था। कुछ विद्वानों ने इस संगीति की प्रामाणिकता में भी सन्देह उपस्थित किया है। इन विद्वानों के मत का आधार है उत्तरी सिद्धांत के सध में इस संगीति का न उल्लिखित जाना। ऐसा प्रतीत होता है कि यह अधिवेशन केवल धेरवादिना के ही द्वारा सम्पन्न हुआ था। इस प्रकार बौद्धधर्म में भारी दरार की प्रतीति एवं सावर्जनिक तथ्य बन गया था।

इस परिस्थिति से लाम उठा ब्राह्मण धर्म की प्रतिनिमावाणी शक्तियों बौद्ध धर्म में प्रवेश पान को आतुर हो रही थी। अशाक की मृत्यु ने इन शक्तियों में एक जावन पूर्व दिया। वे सिद्धांत जिनके लिए बौद्धधर्म का अपना विशिष्ट स्थान था अब अपना महत्व खान लगे। इनके स्थान पर ब्राह्मण धर्म के सिद्धांतों ने जिनसे महात्मा बुद्ध को अत्यधिक चिड़ थी बौद्ध धर्म में अपना घर करना प्रारम्भ कर दिया। ब्राह्मण



धर्म का अपना उस सफलता के लिए बौद्धधर्म की महिष्णुता ही उत्तरदायी कही जा सकती है। उत्तर मत का उत्तर धर्म न अपने में प्रवेश पाती हुई कुरीतियाँ का नष्ट राखा। इसका परिणाम यह हुआ कि शास्त्रों की तयागत धर्म में कई सम्प्रदाय हो गए। महायान का उदय म इस तथ्य का अभाव न ओषण नही किया जा सकता। यद्यपि महायान के उदय का कारण और मा बन्त म हैं किन्तु भवप्रमुख कारण तो हमने प्रस्तुत कर ही दिया है। अय कारणों का मा हम तर्कों मलिन उपस्थित करने का प्रयास करेंगे। महायान तथा हीनयान शब्दों का मय तथा अय के विषय म मलिन्यता है। यान शब्द का साहित्यिक अय हाता है माय आवागमन का माघन या गाली। मय का अय है वय तथा हान का अय है छान। इन शब्दों का आविष्कार महायानिया न किया था क्यकि उनका मिद्वान्तानुसार मानव माय की मोन का अधिवार प्राप्त है। हीन यानिया न अपने की धरवात्ति या म्यविरा का मिद्वान्त का अनुयायी बहा है। इनका दावा है कि व महात्मा बुद्ध का द्वारा बनाए गए माय का ही प्रचार करत हैं और उनका निश्चानुसार ही बौद्धत्व प्राप्त करत हैं।

महायान की उत्पत्ति—महायान की उत्पत्ति का विषय म दा अतिमार्गी मत है। एक मत है कि यह महात्मा बुद्ध का व्यक्तिगत मिद्वान्त था जो उमने अपने अनुयायियों का दिया था। दूसरी आर यह बौद्धधर्म विराधा निश्चनीय विचारा का समूह माना जाता है। इसी समूह न महात्मा बुद्ध के शुद्ध मिद्वान्त का कवकित किया। दोनों अतिमार्गी मय। म मत्यता का पर्याय अश है। महायान मत म विमा मा अन्य धर्म का तुलना म अधिक मात्रा म व्यक्तिगत प्रतिमा का सकलन है। इस मन न नत्र का मुकाबल 'हृदय' की प्रमत्त म्यान दिया है। इस प्रकार म महात्मा बुद्ध का सन्का का मत रूप है न कि उनका मशासन या परिवर्द्धन। दूसरी आर आधुनिक काल के महायान म कई ऐन मिद्वान्त। न अपना म्यान कर लिया है जो कि महात्मा बुद्ध द्वारा बनाए गए मय म विवकुल विपरीत हैं। इस प्रकार हमने दोनों अतिमागिया म मत्यता का अश पाया।

महायान का उत्पत्ति का लिए दूसरा लय मनावनातिक है। कई विद्वाना न यह वान का प्रभावशाली रूप म कनी है कि महायान का उदय वस्तुतः धरवाद म एक विद्वान था और यह विद्वान् अनिवाय था। भारतीय जनजीवन हीनयान का नागम एव नतिक सिद्धाता ने पूणतया मनुष्ट हा चुका था। वह इन कठोर प्रतिबंधों म कुछ राहत चाहता था। दूसरी वान यह था कि भारतीय मस्तिष्क न रहस्यवाता तर्कों का श्रष्टतम प्राप्ति का धराहर का रूप म प्राप्त किया था अतएव उनका इस आर उमय होना स्वाभाविक था। हीनयान वस्तुतः आरम-मयम का काय स मून्य म का आत्मिक उत्साह म एव हास्य के भाव म रोहत जावन का प्रक था। सामान्य जनता का लिए इन सिद्धाता म कई आक्षेपण नदी था। राधाकृष्णन (Radhakrishnan) न भारतीय दान (Indian Philosophy) म हीनयान की वस्तुस्थिति इस प्रकार प्रकट का है—

Such a cold passionless metaphysics devoid of religious teaching could not long inspire enthusiasm and joy. The Hin yana ignored the grouping of the spirit of man after something higher and wronged the spiritual side of man

इस प्रकार हीनयान का नकारात्मक दशन लोकप्रिय धर्म बनन म समय न हा मवा। जना जनातन कमी मा एस धर्म का अनुगमन नहा कर पाती जिसम उमय दिन प्रतिदिन का जावन में व्यय का प्रतिबंध आरापित किय जात हैं। जनता का मक्ति

एक मध्यम क जन्मगत आण हुए धम की जनता म प्रचलित हान है। जय जनता म कोई बठार नियमा वाता धम नावप्रिय हा जाय ता अनिवाय रूप स जनपुञ्ज उन नियमा म शिखिता वा ता है। जब बौद्ध धम त्रिष्व-व्यापा धम बन गया और उसकी आत्मा का क्षन मकुचित न । न गया ता जय अभिनापाआ क अनुसार उमका ढाना जाना अनिवाय बन गया। हीनयान का कठारता विवम क दा ग। जब एक उदार तथा आत्म मयमी जीवन क प्रति माहण्णु ल्पिनाग वान धम का उत्पत्ति आवयक हा ग। यहा रूप महयान म तिपर आया।

सम्राट अशाक का मत्य क १०० वष म न वाद्धम म शान्तिकारा परिवतन हा गए। जय उन सिद्धाना न भा दस धम म प्रवेश पा तिया जिमक तिए नम धम के प्रवतक न आजावन मग्राम किया ग। महात्मा बद्ध न मनुष्यत्व प स उठाकर उनम लेवत का म्यापना क री गई। जय बौद्धधम म विभिन्न स्वी क्वताआ ने अपना प्रवेश पा तिया। हिन्दू धम न नम नग परिवतन म अपना प्रभावकारी हाय तियाया वा। जत सिद्धान न जिमम एक मनुष्य लुगम प्रयत्ना म बुद्धत्व का प्राप्त होता है अब वाधि मत्र का रूप तिया। यह वाधिमत्र मानवमात्र क कल्याण क तिए है। अब प्रता क स्थान पर कर्णा का स्थान सर्वोपरि ग गया। जब मास्य प्राप्ति क तिए विनास का महारा तिया गया। जया क कल्याण के लिए अपन पुण्या के स्थानान्तरण का विधान किया गया। नकिन-याग का याव्यारिक रूप दिया गया। अब धरवाद कनकारात्मक लशन क स्थान पर अमर सिद्धाना का मकारात्मक रूप उपस्थित किया गया।

इान शान्तिकारा परिवतना क हात हुए भा कमी भी म्नायान न यह मत प्रचारित न्ना किया कि उम धरवाद या उमक किमी अश पर आपत्ति है। उमन हीनयान का कमा भा तिरस्कार न्ना किया। चान एव जापान म अब भी कितन सम्प्रदाय हैं जो पाता ग्रन्था का स्वाध्याय करते हैं। मकगवन (Mc Govern) न महायान बौद्धधम का भूमिका (Introduction to Mahayan Buddhism) म लिखा है—

While Hinayana regards Mahayan as a corruption of the original Buddhism or at the best a false and decadent branch Mahayana regards Hinayana not as false or contrary to true Buddhism but simply as incomplete or the superficial doctrine which Sakyamuni taught to those who were incapable of comprehending the more profound truths of Mahayana

यहा नहा महायानिया न कमा भा अपन का एक पथक धम की सत्ता नहा दा है। उाने अपन धम का हीनयान का विस्तार ही कहा ह। था जान ब्लोफल्ड (John Blofeld) न अपना पुस्तक The Huang Lo Doctrine of Universal Mind का भूमिका म लिखा है—

The Hinayana view is that Mahayana is a later development which constitutes a great departure from the real teaching of the Buddha. The Mahayana view is that the Buddha taught various aspects of truth at different stages in his life specially adapted to the capabilities of people whose powers of understanding were at different levels

दाना सम्प्रदाया म एक विशिष्ट पद्यकता का अस्तित्व अनिनाय रूप से उभर आया। इन सम्प्रदाया म चाह कितनी भी समता क्या न हो तबिन आज यह दा पूण पद्यक मन है। दाना क अपन सिद्धात ह अपन नियम है और अपन विचार है। क्राइस्ट-मस हम्फराज (Christmas Humphreys) न लिखा है—

The Mahayana refused to be inhibited the Hinayana was bound by the Canon The former was speculative metaphysical the latter rational and authoritarian The Mahayana was fearless in its logic and its mystical flights the Theravada was content to be the guardian of Dhamma as handed down The closed circle of intense self development became a religion for all and a formula of salvation branched out into a heterogeneous mixture of apparently opposed and incompatible teaching

**चतुर्थ सगीति**—अशोक की मृत्यु क पश्चात बौद्धधर्म का इतिहास पुन अधकार युग म प्रवेश करता है। नागसन तथा मिलिंद क वार्त्तालिपा म जाकर यह अधकार नष्ट हो जाता है। मिलिंद ग्रीक-बकिट्रियन नरेश मिनण्डर (Menander) था। यह नरेश एना पूव प्रथम या त्तरी शताब्दी म भारत आया था। मिलिंद प्रश्न म नागसन न स्यविरा क अनुसार बौद्धधर्म की व्याख्या की है। लेकिन इस पुस्तक म हम महायान क नो मन्त्वपूर्ण सिद्धात भी प्राप्त होते हैं। एक तो है विन्वाय क आधार पर निवाण तथा दूसरा वाधिसत्त्व सिद्धात। मिलिंद क शासन के शीघ्र पन्चात भारत म कुपाणा का प्रभुत्व स्थापित हुआ। कनिष्क इस वश का सबसे महान सम्राट था। इसका शासन का प्रथम शताब्दी ईसवी माना जाता है। इसन बौद्धधर्म क प्रचार म अथाक जती लगन प्ररिगत की और उसी नरेश क पन्चिह्ता का अनुगमन करते हुए एक मगीति का आयोजन भी किया। यह सगीति चतुर्थ सगीति के नाम से विख्यात है। महायान सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व अशाक द्वारा बुलाई गई मना म नहा या अतएव उहाने उम समा का अपना पुस्तका म उल्लेख ही नहीं किया है लेकिन इस सम्मलन म महायान सम्प्रदाय की पूरी छाप था। कवल थर वादिनो क एक छोट से सम्प्रदाय म जिस सार-वस्तिवादिन कहा जाता है इस सम्मलन म सहयोग दिया था। इस अधिवेशन द्वारा कनिष्क महायान एव हीनयान की वार्त्ता हुई खाइ का पाटन का प्रयाम करना चाहता था लेकिन मन्त्रा अपने उद्देश्य म आशिक रूप से ही सफल हुआ। ललित विस्तर नामक ग्रन्थ न कनिष्क की इस भावना को काफी ठस पटुवाई थी।

**भारत म बौद्ध धर्म का पलायन**

ईसा की सातवीं शताब्दी क आते-आते बौद्धधर्म का ह्वाम हाना प्रारम्भ हो गया। भारत क जनमानस म बौद्धधर्म अपना स्थायी घर न बना सका। हिन्दू धर्म न अपना पननायुग अवस्था से ऊपर उठकर पुन राष्ट्रीय धर्म का रूप ग्रहण किया। यद्यपि ह्य न बौद्धधर्म क जीण भवन का पुनरोद्धार करान का प्रयास किया था तबिन हिन्दू धर्म क उदित हान हुए उल्हाह क मम्मूय इस नरेश क यह प्रयाम अमफल हो ग। हूणा न बौद्धधर्म की शक्तिनाय अवस्था का और भी गम्भीर रूप प्रदान किया। उहाने मन्त्रा स्तूपा का मूना-मन्त्रा और उहें अग्नि दाना का मंत्र चला ग। हूणमार्ग जा भारत म सातवा शती म आया था इस चिन्ताजनक स्थिति म हम अवगत कराना है। एस्विग (सातवीं शताब्दी क अत म) बौद्धधर्म का मृत्यु पर जीमू गिराता हुआ खद व्यवन

करता है। पाल वंश के अतगत बौद्धधर्म की झलक फिर से एक बार हमारे सम्मुख उपस्थित हुई। लेकिन १० ईसवी के आते आते मुसलमानों को नष्ट मष्ट करने के लिए बौद्धधर्म के कम ही स्मारक प्राप्त हुए थे। इसका कारण था भारत में बौद्धधर्म का द्रुतगति से पलायन। यद्यपि बौद्धधर्म अपनी जन्म भूमि में सातवीं शताब्दी में पतनो-मुख हो गया था लेकिन दश के बाहर दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में यह अब भी फल फूल रहा था और चीन, जापान, कम्बोडिया, इण्डोनेशिया, बर्मा एवं लका में १४वीं शताब्दी तक प्रमुख धर्म रहा और अब भी यह कई देशों का राष्ट्रीय धर्म है।

### Questions

#### आगरा विश्वविद्यालय

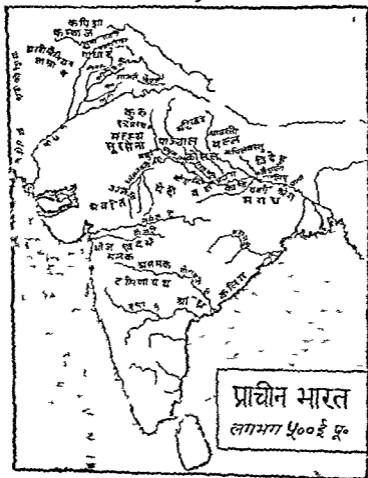
- (१) बुद्ध के जीवन चरित्र तथा धर्म प्रचार सम्बन्धी कार्यों का संक्षिप्त वर्णन काजिए (१९४२ १९४८)
- (२) गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र पर एक टिप्पणी लिखिए। उनकी शिक्षाओं की मुख्य बातें क्या हैं। (१९४६)
- (३) बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित प्रमुख स्थान कौन से हैं? आप हीनयान और महायान से क्या समझते हैं। (१९५०)

#### इलाहाबाद विश्वविद्यालय

- (१) गौतम बुद्ध के जीवन चरित्र पर एक टिप्पणी लिखिए। उनकी शिक्षाओं की मुख्य बातें क्या हैं? (१९४५)
- (२) बुद्ध एवं महावीर की शिक्षाओं में क्या अंतर है? (१९४५)
- (३) बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धांतों पर प्रकाश डालते हुए उसके पतन के कारण लिखिए। (१९४६ १९५१)

## मगध साम्राज्य का उदय | ११

पिठल अध्याय म हमन एठा शताब्दी ८० पू० का राजततिक अवस्था का वणन करतहुए माय परबुद्ध प्रवाश दाराथा । चौथी शती ४०० पू० तक मगध एक साधारण राज्य क रूप म रहता है । त्रिम्बिसार तथा उसके पुत्र अजातशत्रु क समय म अगम



का उत्तरान का विवरण दिया जा चुका है । यहाँ अजातशत्रु का उत्तराधिकारिया पर प्रकाश दारा जायगा ।

## अजातशत्रु क उत्तराधिकारी

अजातशत्रु के उत्तराधिकारियाँ क सम्बन्ध म विभिन्न अनुश्रुतियाँ या ग्रन्था म प्रतिपादित है। इनम सिहना अनुश्रुतियाँ अशाकावन्तन परिशिष्टपवन पुराण आदि मन्मिन्नित है। इन समस्त साक्ष्या म बौद्ध भाष्य अधिक प्रामाणिक है जिनका आधार पर अजातशत्रु क उत्तराधिकारियाँ क सम्बन्ध म विचार किया जायगा।

उदयमत्त या उदायन—जमा कि ऊपर कहा गया है अजातशत्रु क उत्तराधिकारी के सम्बन्ध म साक्ष्या का मतव्य नहीं। पुराणा के अनुसार अजातशत्रु के पञ्चान उमका पुत्र दशक मिहासनात्त हुआ। इसी आधार पर महाकवि भास ने अपन नाटक स्वप्न वासवन्ता म दशक का उल्लेख किया है और बताया है कि दशक का बहन का नाम कौशाम्बी क राजा उदयन क साथ हुआ था। पर इसके समयन म काल प्रमाण नहीं है। पुराणा न दशक का राज्य २ वष तक बताया है।

महावश क आधार पर अजातशत्रु का उत्तराधिकारी उदयमत्त था। बौद्ध ग्रन्था ने इसे अजातशत्रु का पुत्र स्वीकार किया है। जन ग्रन्था स यह पता चलता है कि उदयमत्त कुणिक का पुत्र था। बौद्ध अनुश्रुतियाँ उदयमत्त को भी अजातशत्रु की भानि पितृन्ना बताता हैं किन्तु जिस प्रकार अजातशत्रु के सम्बन्ध म इनका नाम (जन तथा बौद्ध) ग्रन्था का मतवामिय है उमा प्रकार उदयमत्त के सम्बन्ध म भी है और जन जन ग्रन्थियाँ उदयमत्त का पितृत्वा नया स्वीकार करती। उनका अनुसार अपने पिता का मत्य पर उदयमत्त शोकातुराकार मूर्छित हो गया था।<sup>१</sup> उस समय वह चम्पा का वाइसराय था। सम्भवत पिता का मत्य के पञ्चान वह चम्पा स पाटलिपुत्र आया। वायपुराण के अनुसार उदयमत्त (उदयमत्त) न कुमुदपुर (नवान पाटलिपुत्र) का स्थापना का। आवश्यक सूत्र स पात हाता है कि उदयमत्त जनमतावन्तम्बी था और उमने नगर के मध्य म एक चत्यगृह का निर्माण करवाया था। अवन्तिराज को सम्भवत उदयमत्त ने पराजित किया था। अवन्ति तथा मगध की परम्परागत शानता का महा स अन्त हाता है और अब उत्तर म मगध राज्य क समान दूसरा काइ राज्य न था। कथासहितमागर के अनुसार अवन्ति क राजा का नाम पातक था। वह उदयमत्त के पिता क शत्रु प्रघात का पुत्र था। एक अनुश्रुति न अनुसार उदयमत्त एक पडयत्र द्वारा मार डाला गया था। इस पञ्चयत्र का कारण यह बताया जाता है कि उदयमत्त ने किमा राजा का यद्ध म पराजित करके मार डाला था और अवन्तिनरेश पातक ने उस राजा के पुत्र का पञ्च करके यह पञ्चयत्र किया था। महावश इसका राज्य-काल ५३ ई पू तक बताता है।

उदयमत्त के उत्तराधिकारी—उदयमत्त क पञ्चान अनरुद्ध और मुण्ड का नाम आता है। इन्हन ८ वष तक राज्य किया था अर्थात् ४९५ ई० पू० तक राज्य किया। अगस्तनिकाय म इसके सम्बन्ध म बताया गया है कि अपनी पत्नी का मत्य के पञ्चात् वह शव का नहीं छाटना चाहता था।<sup>२</sup>

बौद्ध ग्रन्था क अनुसार मुण्ड क पञ्चान नागाशक राजा हुआ। इसन २४ वर्षों तक (४७१ ई पू तक) राज्य किया।

<sup>१</sup> परिशिष्टपवन आवश्यक सूत्र आदि।

<sup>२</sup> अगस्तनिकाय ३, १५७-६३॥ डा राधाकुमद मुर्कजी द्वारा उदघत। इसमें यह भी बताया गया है कि मुण्ड पाटलिपुत्र में निवास करता था। एक घर द्वारा इसे ध्यावासित किये जान का वृत्तात सम्भवत धार्मिक प्रचार से सम्बन्धित है।

पुराणा में उदयिन के उत्तराधिकारी नन्दिबन्धन तथा महानन्दिन थे। जन साय्या के अनुसार उसका कोई उत्तराधिकारी ही नहीं था।<sup>१</sup>

उदयमद्र अनुद्ध मुण्ड नागदाशक जाति का उत्तम पुराण कहा नहीं करत है। पुराणा का दशक ही सम्भवतः नागदाशक है। नागदाशक के पञ्चात महाभाग मित्यमनात्त हुआ। उसने १८ वर्षों तक (४५३ ई० पू० तक) राज्य किया। शशुनाग के सम्बन्ध में बनते हुए कि वह एक मन्त्र था जो तब प्रजा द्वारा राजा बनाया गया। मिहिरा अनुधनिया यह भी सूचित करता है कि जजातशत्रु मन्त्र नागदाशक तक मन्त्राग्नेय पितृहन्ता थे और इमीनिज जनता ने विद्रोह करके मन्त्राग्नेय का राजा बनाया। पुराणा में शिशुनाग राजा का उत्तम है जिसने अग्नि राज्य के प्रजात के पराजित करके मगध में मित्यमनात्त किया। इसने जब राजधानी पाटलिपुत्र में हटाकर पन मन्त्राज में कर ली और अपने पुत्र का वनागम का प्रान्तीय शासक बना लिया। किन्तु कुछ इतिहासकारों ने इसकी ऐतिहासिकता में (विशेषकर इस विम्बिसार नाम जजातशत्रु का उत्तराधिकारी मानने में) अविश्वास किया है।<sup>२</sup>

शशुनाग के पञ्चात उसका पुत्र कानाशाक मित्यमनात्त हुआ। कानाशाक का दूसरा नाम काकवण (पुराण) तथा काकवणिन (जाकावणन) भी मिलता है। उसने सम्भवतः २८ वर्षों तक (४२५ ई० पू० तक) राज्य किया।

कालाशोक के पञ्चात उसका दस पुत्रा न ४० वर्षों तक (४० ई० पू० तक) सम्मिलित राज्य किया।

नन्दिबन्धन का उदय

नन्दिबन्धन के अभ्युदय के सम्बन्ध में हम देशाय तथा विश्वाय दाना सामग्रियाँ उपलब्ध हैं। दशोय सामग्री बाण का रूप चरित है। उक्त ग्रन्थ में यह बात आता है कि काकवर्णी शशुनाग को छुरा भाँककर मार डाला गया था। बाण की दस घटना का ग्रन्थ सम्भवतः कटिपस की निम्न घटना से है —

कटिपस ने किया है कि अग्रमाज का पिता नाम था जिसने विमा प्रकार राजा का प्यार पा लिया और अन्त में उसने राजा का वध कर दिया। राजा कानाशाक के वध के पञ्चात वह उसके १० पुत्रों का अभिभावक बना और अन्त में उनका भी वध करके राजा बन बैठा। किन्तु अग्रमाज का पिता में कटिपस का क्या अभिप्राय है? महाबायि वंश में नन्दिबन्धन के मस्थापक का नाम उग्रमन बनाया गया है। उग्रमन का पुत्र श्रीग्रमय सम्भवतः युनानी भाषा का अग्रमाज है। यूनानी लेखक नन्दिबन्धन के मस्थापक को नाई बताते हैं। भारतीय साहित्य इसका समर्थन करता है। जन ग्रन्थ परिशिष्टपवन न नन्द का नाई का पुत्र कहा है। पुराणा में भी उग्रमन का उदय कहा है।

कानाशाक के १० पुत्रों में से एक का नाम नन्दिबन्धन भी था जिससे पुराणा में नन्दि का पूज्य माना है पर इसका खण्डन उपरान्त घटना कर जाता है।

महाबायि वंश में कालाशाक के १० पुत्रों के नाम उग्र प्रकार दिये गये हैं —  
मन्मन कारणवण मगुर मरवजह जातिक उम्भक मजय कारव्य नन्दिबन्धन तथा पञ्चमक।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> परिशिष्टपवन ६।३३६॥

<sup>२</sup> देविय रायानुमुद मुकजी *Hindu Civilization* p 273

<sup>३</sup> *Political History of Ancient India* fifth edition p 222

किन्तु इन नामों में से केवल नन्दवधन का उल्लेख ही पुराणों में किया गया है। खारवेल के हाथिगुम्फा अभिलेख में इस राजा का नाम उत्कीर्ण है।

श्री राधाकुमुद मुर्कजी ने मगधोद्योग वंश द्वारा प्रस्तुत ९ नन्द शासकों का नाम इस प्रकार गिनाया है —

(१) उग्रसेन, (२) पण्डक (३) पण्डुमति (४) मृतपाल (५) राष्ट्रपाल (६) गावशाक (७) दाससिद्धक (८) कवत तथा (९) घन।<sup>१</sup>

कटियस द्वारा दिया गया मत पर प्रकाश डाला जा चुका है जिससे यह ज्ञात होता है कि नन्दवंश का संस्थापक हीन कुल का व्यक्ति था। पौरशिष्टपवन भी इस नाई-पुत्र बताता है। आवश्यक सूत्र में इस नापितदास (नाइ-पास) धारित किया है।

पुराणों के अनुसार प्रथम नन्द शासक का नाम महापद्म या महापद्मपति तथा महाबाधिवंश के अनुसार उग्रसेन था। पुराण इस श्रृंगभोदमव बताते हैं।

महावंश की टीका में प्रथम नन्द शासक का एक योद्धा बताया गया है जो चार डाकुओं का शक्तिशाली नायक-सा लगता था। यह भी उसका हीन कुलीन होने का संकेत है। ये सारे साक्ष्य नन्द-वंश के संस्थापक का शूद्र घोषित करते हैं। कटियस ने जो यन्त्र लिखा है कि (जग्रमाज) का पिता वास्त्व म नाई था और उसने राजा का प्यार पाकर उसके राज्याधिकारी बन गया तथा अन्त में पुत्रों की भी हत्या करके राज्याधिकारी बन गया यह कुछ दूसरी ओर का भी संकेत करता है। राजा का हत्या से अभिप्राय कानाशाक-काकवण का हत्या से हो सकता है जिसका निम्न हत्या के सम्बन्ध में हम हथिखरित बताता है। जिन पुत्रों के सम्बन्ध में कटियस महान्य लिखते हैं वे इसी कानाशाक-काकवण के ही संकेत हैं। सिंहला अनुभूतिया द्वारा प्रस्तुत शशनाग वंश के पतन एवं नन्दा के उदय तथा यूनानियों द्वारा वर्णित जग्रमीज वंश की उदय का घटनाओं परस्पर काफी साम्य रखती हैं किन्तु यूनानियों का विवरण पुराणों से मेल नहीं खाता जो अन्तिम शशनाग की शूद्र नारी से उत्पन्न पुत्र का ही प्रथम नन्द शासक बताता है और पुत्रों का कोई उल्लेख नहीं करता। किन्तु जसा कि पहले ही बताया गया है जग्रमाज संस्कृत का औग्रसेन अर्थात् उग्रसेन का पुत्र हो सकता है।

महापद्म—पुराणों में नन्दवंश के संस्थापक महापद्म का संवत्सरातक (समस्त क्षत्रिया का विनाशक) कहा है। उस एक राट का भी उपाधि प्रदान की है। इससे यह परिलक्षित होता है कि उसने शशनाग राजाओं के समकालीन इक्ष्वाकु पांचाल वाशा हैहय, कालिग अम्बक कुर् मालव मूरसेन वातिहात्र आदि राजाओं का पराजित कर दिया था। जनमेजय से भी नन्दा के विशाल साम्राज्य का बाव होता है।<sup>२</sup> कथासरित्सागर तथा हाथिगुम्फा अभिलेख से नन्दा द्वारा कालिग विजय का दिग्दर्शन होता है। नन्द-वंश 'ददरा' नामक नगर (गाणवरा-तट पर नादर) से यह बोध होता है कि दक्षिण मन्दा का सत्ता स्थापित था। मसूर के कुछ प्राचिन अभिलेखों से कुन्तल (बम्बई का दक्षिण भाग तथा मसूर का उत्तर-पश्चिमी भाग) पर नन्दा का आधिपत्य पान

<sup>१</sup> Age of Imperial Unity, p 31

नन्द नदों से नवीन नदों का अर्थ भी लिया गया है। इस प्रकार पुराणों के गणनाग वंश के अन्तिम दो शासकों नन्दवधन तथा महानन्दिन को पूर्व-नन्द माना गया है जिनके बाद 'नव' नदों का अधिकार स्थापित हुआ।

<sup>२</sup> समुद्रवसनो तेम्य आसमुद्रमपि धिय ।

उपाय हस्तराष्ट्रप्य तदे सो कृत नदसात् । परिशिष्टपवन ७।८१॥



हाना है। इनमें से अधिकांश साक्ष्य पौराणिक साधन का समर्थन करते हैं। कुछ भी हो इतना तो स्वाकार किया ही जा सकता है कि नन्दा ने एक बहुत बड़े मूमाय पर अपना मुद्रा साम्राज्य स्थापित कर लिया था।

महापद्मनन्द का हाँ हम भारत का प्रथम महान् एतिहासिक सम्राट मान सकते हैं और यदि यह शूद्र था (जसा कि वह था) तो यह भारतीय इतिहास का एक विशिष्ट घटनाहाना है कि मगधम क्षत्रियों की राजनीतिक सत्ता की तिरस्कृत करके, धर्म म ब्राह्मणों का अन्तना करके, शूद्रों ने राज्य स्थापित किया। इस सम्बन्ध में डा० मुकुर्जी ने अपने उद्गार में ही प्रस्तावार्पादक शब्दों में प्रकट किया है जिनमें उन्होंने क्षत्रिय सरदार गौतम बुद्ध तथा महावीर की ब्राह्मणों की धर्म में ही छेड़ डकेने लगे हुए तथा शूद्रों का राजनीति में पथक करके हुए दिखलाया है।<sup>१</sup>

मन्थपुराण प्रथम नन्द शासक का शासन-काल ८८ वर्ष (अष्टाशानि) बताया है पर यह २८ वर्ष (अष्टाविंशति) का जगह पर मूल से उल्लिखित है क्योंकि वायु पुराण में इसका शासन-काल २८ वर्ष ही बताया गया है। तिज्जती इतिहासकार लामा लारानाय ने नन्द का शासन २९ वर्ष बताया है। सिंहला विवरणों के अनुसार नन्दा ने २२ वर्ष तक राज्य किया।

महापद्म उग्रसेन के पदचाल उसके जाठपुत्रों ने बारह वर्ष तक (पुराणों के अनुसार) राज्य किया। महाबोधिवंश द्वारा दी गई ९ नन्दा का तालिका पिछले पृष्ठ में प्रस्तुत की गई है। इसमें अन्तिम धन ही सम्भवतः यूनानियों का अग्रमीज है।

कटियम के अनुसार प्रथम नन्द शासक ने अपने उत्तराधिकारियों को न केवल एक विस्तृत साम्राज्य छोड़ा वरन् उसने एक सुसंगठित विशाल सेना भी जिन्में २०००० अस्वारही, २०००० पदल २००० रथ तथा २००० हाथी थे। तिवा डारस (Diodorus) तथा प्लूटार्क भी इसका समर्थन करते हैं। वे हाथियों का संख्या क्रमशः ४००० तथा ६००० बताते हैं। मिलिन्द पन्हव में सेनापति मद्रसाल का नाम आया है।

नन्दों का अतुल धनराशि का विवरण हम आंक दशम तथा विदशीय साक्ष्यों से प्राप्त होता है। धननन्द नाम ही सम्भवतः लक्ष्मीपति होने के कारण पण था। कथा सरित्सागर के अनुसार इसके पास ९९० करोड़ स्वर्ण मण्डों थे।<sup>२</sup> महावंश में इस प्रकार का उल्लेख है—

सबसे छोटे भ्राता का उस धन लिप्सा के कारण धननन्द कहा जाता था उसने ८० काटि धन नन्द (गंगा) का तलहटी का सडड में सन्तुलित किया था। कौशों गहरी खुदाई करके उसने वहाँ धन गाँव था चमड़ा गाँव पत्थर जादि पर तथा अनेक वस्तुओं पर भी कर लगाकर ही उसने उसी प्रकार दूसरा कौश भी गाँव कर रखा। चौथी पाथी ह्येनसाग ने भी इसकी अतुल धन राशि का उल्लेख किया है। उसने

<sup>१</sup> In any case sixth and fifth centuries B C hold out strange phenomena before us—Kshatriya chiefs founding popular religious sects which menaced the Vedic religion, and Sudra leaders establishing a big empire in Arya-vart on the ruins of Kshatriya kingdoms

<sup>२</sup> टानी इत अग्रजी अनुवाद १।२१॥

पाटलिपुत्र के पाँच स्तूपों का सम्राट् नन्द के सात प्रकार के अमूल्य रत्नों के पाँच घन बोधों का प्रतीक बताया है।

नन्दी के सम्बन्ध में कुछ और अधिक प्रकाश जन ग्रन्थ आवश्यक मूल में जाना जाता है। प्रथम नन्द का मना बरपक था। उसी ने प्रथम नन्द को क्षत्रिय राजवंश के विनाश के लिए प्रोत्साहित किया था। नन्दा के शासन काल में मन्त्री का पद वशानगत होता था। नव नन्द के मन्त्री का नाम सक्तान (Saktana) था जिसके दो पुत्र स्यूलमद्र तथा श्रीयक थे। पिता की मृत्यु के पश्चात् स्यूलमद्र का पद दिया गया पर उसने उसका त्याग कर दिया और जन शिक्षा बन गया। तब श्रीयक पद्मनीन हुआ।<sup>६</sup>

नन्दवंश का अन्तिम शासक धननन्द सिक्खर के अन्तर्गत के समय मगध पर राज्य करता था और नन्दवंश के चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा उसका जन्म कर लिया गया जिससे मगध में दूसरा राजवंश प्रतिष्ठित हुआ।

नन्दी का महत्व राजनीतिक दृष्टिकोण से अधिक है। इन्होंने ही त्रिमित्र छोट छोटो टुकड़ों में विभक्त भारत का राजनीतिक एकता के पथ पर अग्रसर किया जिसमें भावी सम्राटों का एक विस्तृत साम्राज्य स्थापित करने में पर्याप्त योग्य मिला। नन्दी के सामरिक महत्व का उपरान्त की जा सकता यद्यपि उनका आधिकारिक शासन पर आधारित था। नन्दा के पतन तथा मौर्य वंश का स्थापना के इतिहास पर अगले परिच्छेद में विचार किया जायगा।

### Question

बलाहावाद यूनिवर्सिटी

(१) नन्द कौन थे? नन्द नवित के उत्थान एवं पतन का वर्णन कीजिए। (१९४८)

<sup>६</sup> देखिये *Age of Imperial Unity* pp 34-35

# १२ | विदेशी आक्रमण

पारसीक अभिधान

पिछले पाँच-छह महीने भारत का राजनीतिक एकता का निमाण का शकव का न देखा था। मगन साम्राज्य म लश क जानकिये भाग क अनक राज्य सम्मिलित न क कय किन्तु अन्तर-राज्यी-प्रथिमा भागन क राज्य छान छान टुक म विभक्त हावे जा रह थ। उठी शताब्दी २० पू० क त्रितीय चरण म उत्तरापय मध्यस्था नन विभिन्न राया म विभक्त हा चुका था जिनम कम्बाज गाघार तथा म प्रमुख थ। पूव मता उमी समय स मगध राय उत्कप न पय पर अयमर था और जय म असन महापय न ममस्त पूर्वी राया को एक मूत्र म बाध दिया किन्तु उत्तर या उत्तर-पश्चिम भाग म म प्रकार का का पराक्रमी सम्राट नहा हुआ जा हुवनता का मूल इस राजनीतिक अनकता को विच्छिन्न कर देण क महत्वपूर्ण भाग का विधानया सामरिक अन्विकण स जतिक महत्वपूर्ण भाग का राजनीतिक एकता स्थापित करन मभवत बनाना। उनकी म त्वनता का परिणाम मी उन्हें शाघ्र मगनता पग जीर फारम साम्राज्यवाता अखामना (Achaemenian) सम्राटा क ताव वन अन्विकण पर पी।

कमा य राता मित्र क रूप म भारतमा म व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित निय गण थ कमा व परस्पर एक स्थान पर निवास भा कर चुक थ और सम्भवत उना समय का द्वय (द्वामूर-मगध म पराजित हो जान का द्वय) बना रण जिमम हजारों वय पचात य पुन भारत पर आक्रमणकारा रह।<sup>१</sup>

<sup>१</sup> प्राचीन बोलानिया में उत्तम वस्त्रों के लिए सिन्धु नदी के प्रयोग का पता लगना तथा भारतीय काष्ठ का उस देश के भग्नावशेषों में मिलना हमें यह सक्षत करता है कि प्रागैतिहासिक काल में भी भारत तथा पारचात्य देशों का सामुद्रिक व्यापार होता था। फूनिशियन अरब तथा भारतीय पसियन गल्प अन्न तथा पूर्वी अफ्रीका क बंदरगाहों पर मिलते थ और अपने देश की वस्तुओं (बहुमूल्य पथर तथा मोती वस्त्र और अन्य आवश्यकता का वस्तुओं) का विनिमय करत थ। वामु जातक से भी हमारे विदेशी व्यापारिक सम्बन्ध का बोध होता है। उक्त प्रथ में बबिलोन स भारतीय व्यापारी द्वारा घोर पहुषाने का उल्लेख किया गया है। यह घटना जातकी क सग्रह क पूव की होगी। यद्धकालीन भारत की कला एवं साहित्य पर प्रकाण हालते समय हमन बताया था कि विदेशियों के सम्पर्क के फलस्वरूप ही यहाँ लयन-कला कर ना जम हुआ और इसका थय भारतीय व्यापारियों को है जिन्होंने आठवीं-सातवीं शताब्दी ई० पू० में विदेशी-यात्रा करक इस काल से भारतीयों की परिचित कराय। अमी हाल में ही (१९०७ ई० में) बोगजवाई (पश्चिमी एशिया) में कुछ भग्नावशेष प्राप्त हुए ह जिनमें मिलानि जाति के राजाओं तथा हुती राजाओं का एक सन्धिपत्र प्राप्त हुआ है। उक्त सन्धिपत्र पर ह्युगो विकलर महीदय न इन्द्र वरुण आदि वदिक देवताओं क नाम प, ह जिहें सम्भवत सन्धिपत्र में साक्षी बनाया गया है। ईरानी धार्मिक

साइरस—अखामनी साम्राज्य के निर्माता म। रस न ५१ स ५२९ ई० पू० अपन राय के बीच जि लेसिया होकर कमी भारत पर आक्रमण किया था किन्तु इतिहासकार स्ट्रबो के कथनानुसार उस किसा प्रकार कवन सात आक्रमिया क माय आक्रमणा करक वापस लौट आना प ।<sup>१</sup> किन्तु साइरस को मारुल की उपत्यका म अधिक मऊनता मिली । हेरोडोटस टीसियस एक्सनाफन तथा स्ट्रुवा एव एरियन के विवरणा से हम इसके सम्बन्ध म कुछ अधिक जानकारी प्राप्त होनी है । अपना पूर्वी विजया म उनम ड्रेन्जिअना (Drangiana) सतगीडिया (Satragidia) गाडारिम (Gadara) पर अधिकार स्थापित कर लिया था ।<sup>२</sup> य जिल ईरान आर भारत का सीमा क नि निम लगे ।

क रहे हागे । एक्सनाफन ने लिखा है कि साइरस न ककिया के लोग तथा भारतीयों को अपने शासनाधीन किया और उसने अपना माग यरीथियन (Ersthran) सागर तक अर्थात् हिन्दमहासागर तक प्रसारित किया । एक्सनाफन न आग यह बताया है कि किसी भारतीय राजा द्वारा धन प्राप्त करक सम्भवत कर रूप म साइरस वापस लौट गया । इन विदशा इतिहासकारों के विवरणा के आधार पर हम यह निष्पत्तिका ल सक्न है कि साइरस ने भारत ईरान-सीमा भूमि को विजित किया और उत्तरी भारत के एक राजा स कर भी प्राप्त किया ।

हमन साइरस क भारत आक्रमण क निष्फल प्रयास का उद्व प्रारम्भ म ही किया था जिमम साइरस का निराश लौटना पना था । प्राय सभी यनानी लेखक जो सिक्क दर क समकालीन य भारत पर फारस के सफल आक्रमण को जस्वीकार करत है । मगस्थनीज न लिखता है भारतीय कमी भी विदशा युद्ध म नटो प थे और न तो उन पर किसी विदशों द्वारा आक्रमण किया गया या उन्हें पराजित किया गया कवन हेराक्लीज (Heracles) तथा डायोनिसस (Dionysus) द्वारा और वाट म भक्दनिया निवासिया द्वारा पराजित होन का छो कर । मगस्थनीज ने समिरमिस (Samaris) नामक असीरियन रानी का उद्व किया है जा भारत पर आयोजित अपन आक्रमण क पूर्व विरशान्ति को प्राप्त हा जाता है । दूत आग लिखता है यद्यपि पारसिया न भारत का न क जाति क्षुद्रकों को रख दिया था तथापि उसने उन देश पर आक्रमण नटो किया । एरियन न मगस्थनीज के कथन की पुनरावृत्ति करते हुए लिखा है कि

प्राय अवेस्ता तथा वेद में जिस भीषण सधाम (जिसे हम देवामुर सधाम कहने ह) का उल्लस समान रूप स प्राप्त होता है उस आधार पर भी हम दोनों के कभी एक साथ रहने का सक्त मिलता है । इस युद्ध में ईरानी नताओं को पराजित होकर भागना पडा था ।

देखिये *Political History* राय चौधरी १ Edition page 240

<sup>२</sup> डा० राधाकुमर मऊजी ने ड्रेन्जिअना की सीस्तान का भाग बताया है तथा सतगीडिया के ठीक-ठीक स्थिति निर्धारण में असमर्थता प्रकट की है । उन्होंने बताया है कि कुछ विद्वान् इसे गजनी और गिल्जई में रखते ह तथा कुछ हजारा म । देखिये—*Age of Imperial Unity* पृष्ठ ३९ ।

<sup>१</sup> देखिये वही पृष्ठ ४० ।

सिकन्दर के पूर्व चिमी विदेशों ने भारत पर आक्रमण नही किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि नियरकम तथा मगम्यनाज दाना ही का मत है कि भारत पर साइरस ने कभी भी आक्रमण नही किया। किन्तु यानाही लेखक सिन्धु का भारत का पश्चिमी सीमा मानते हुए और यहाँ यह सम्भव है कि साइरस सिन्धुपुत्र भारतीय सीमा पर आक्रमणकारी हुआ हो। प्लाना का मत भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है। उसके अनुसार धारवन्द घानी म कपिसा पर साइरस ने विजय प्राप्त की थी। इसक समयमें म एरियन का कथन भी महत्वपूर्ण है कि सिन्धु तथा काबल (काफेन) नदियों के बीच में रहनेवाले भारतीय प्राचीन काल में अमीरगियन मिडी तथा अत म साइरस के समय में पारसिया के अधीन रहकर साइरस द्वारा लगाया कर उस दत्त थे। एड० मीयर (Ed Mayer) ने इस साक्ष्य का मुख्यतः निष्पत्ति इस प्रकार निवाला है 'लगता है साइरस ने पना पनिसस (हिन्दु कुश) तथा काबल की घाटी की भारतीय जालिया का अपनी प्रजा बनाया—विशपतया गाघारवाता को डरियस स्वयं सिन्धु तक आगे बढ़ आया।'<sup>१</sup>

साइरस का मयू (५५० ई० पू०) के पश्चात् उमक उत्तराधिकारी कम्बिसस ने आठ वर्षों तक शासन किया किन्तु आन्तरिक विद्रोहों में बुरी तरह फसा रहने के कारण उसे भारत की ओर ध्यान देने का बिल्कुल ही अवसर नहीं मिला।

डेरियस—डेरियस (द्वारा मा दारायवका) अरामनी राजवंश का तृतीय सम्राट था। इसने ५२२ से ४८६ ई० पू० तक शासन किया। इसके भारतीय आक्रमण या अनाक्रमण के सम्बन्ध में स्वयं उसके अभिलेख बताते हैं। ये अभिलेख निम्नलिखित हैं—

- (१) बहिस्तून-अभिलेख ५२० से ५१८ ई० पू०।
- (२) पसिपोलिस-अभिलेख ५१८ से ५१५ ई० पू०।
- (३) नवशरस्तम-अभिलेख ५१५ ई० पू० तथा
- (४) हमदन अभिलेख।

बहिस्तून अभिलेख से डेरियस के सम्पूर्ण साम्राज्य के २३ प्रान्तों की सूची प्राप्त होती है किन्तु इसमें भारत का कोई निर्देश नही किया गया है। इससे यह बात हाता है कि भारत उमक राज्य-सीमा के बाहर था और उक्त अभिलेख के समय तक डेरियस ने भारत पर कोई आक्रमण भी नही किया था।

पसिपोलिस तथा नवशरस्तम के अभिलेखा से यह बात हाता है कि हिन्दुआ (गाघार दश के निवासा) पर मा इसका अधिकार था क्योंकि उक्त अभिलेखा में सूची में यह नाम भी सम्मिलित है।<sup>२</sup> इस आधार पर यह बात किये जा सकता है कि डेरियस ने उत्तरी पंजाब पर ५१८ ई० पू० के पश्चात् विजय प्राप्त की थी।

हममें स्वयं एक रजत पत्र-लेख भी सिन्धु का अलामनी साम्राज्य का एक प्रान्त बताता है किन्तु इन सार अभिलेखा के अध्ययन से यह नही स्पष्ट हाता कि भारतीय मू भाग पर अलामनी साम्राज्य की सत्ता डेरियस ने स्वयं स्थापित की था अथवा ये भाग उस साइरस द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे किन्तु चिमी प्रकार यह परिनिमित्त

<sup>१</sup> Geschichte des Altertums III 97 Quoted by Dr R K Mukherji in The Age of Imperial Unity p 40

<sup>२</sup> In - - -

प्रायः एक ही आयु रक्त शोथों की मृत्यु में वृद्धमान है। उनकी मायाओं और परंपराओं में काफी समानता है तथा इसी प्रकार उनके धार्मिक विश्वासों में भी काफी समानता है।<sup>1</sup>

यह तो प्रागैतिहासिक काल का बात रही। ऐतिहासिक काल में भी इनका पारस्परिक सम्पर्क का प्रमाण प्राप्त होता है जिसके विषय में परिच्छेद के प्रारम्भ में भी बताया जा चुका है। यह भी बताया गया था कि व्यापारियों ने फारस में लखन कला की धानी लाकर भारतीयों का मौपी किन्तु केवल व्यापारियों द्वारा ही लखन कला का प्रचार हाना कुछ कठिन-सा लगता है। निश्चय ही इसमें फारसी लखन का हाथ होगा जिसे भारत में अखामना राज्य की स्थापना के फलस्वरूप इन दोनों देशों में प्रतिष्ठान्त राजनैतिक व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध के पश्चात् यहाँ आने का अवसर प्राप्त हुआ होगा। इन्हीं फारसी लखनों ने भारत में अरेमिक (Aramic) ढंग की लखन प्रणाली का प्रचलन किया जिसका विकास अशोक-काल तथा उसके पश्चात् एरानी लिपि का नाम से हुआ। यह अरबी लिपि की मूल दार्शनिक सहाय और की विख्यात जाती था। भवन निर्माण-कला के क्षेत्र में भी कुछ विद्वान फारसीक प्रभाव का अनुमान करते हैं और उनका ऐसा विचार है कि अशोक का पाटलिपुत्र का स्तम्भोद्धाराला विशाल भवन-स्तम्भों एवं शिलाओं पर उत्कीर्ण अभिलेख तथा स्तम्भों का घण्टाघीय आदि यमारी शिलियाँ फारसीक देने हैं। इस मत में काफी सत्यता भी प्रकट होती है। अशाक कालीन तक्षण कला का नमूना इससे पूर्व भारत में नहीं प्राप्त होता है और सम्भवतः अशोक के पूर्व तो स्तम्भ खड़ा करने की परिपाटी ही नहीं थी।<sup>2</sup>

कृष्ण विद्वान भारतीय राजाओं के दरबारी जीवन पर भी इस सम्बन्ध का प्रभाव दिखाते हैं और उनका अनुमान है कि चन्द्रगुप्त का राज दरबार में केश सिन्धु फारस के सम्राटों की सौ प्रथा का आधार पर प्रचलित हुआ था। फारसीक आक्रमण और फारसीक सम्पर्क की स्मृति लगभग आठवीं शताब्दी तक बनी रही इसका माय प्रमाण स्वयं अशाक अभिलेख हैं जिसमें राजा फारसीक सम्राटों का और सकेत करता है—

दवाना पिया पियदसि राजा एव आह-धातिय दारयवीय क्षयाधिय ।

उपरोक्त साक्ष्य का आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि फारसीक आक्रमण का प्रत्यक्ष प्रभाव भारतवर्ष पर पड़ा। यह प्रभाव अपना तात्कालिक परिणाम लखन कला के प्रचलन में लाते हैं जसा कि अधिकांश भारतीय विद्वानों का मत है तो हम अपने विचारों को व्यक्त करने के लिये कयाकि अभिलेखों के अभाव में हमारे इतिहास के अनेक क्षेत्र तिमिराच्छादित ही रह गये और कुछ इतिहासकारों को इतिहास लिखने के स्थान पर इतिहास गाना पड़ता।

<sup>1</sup> *Cambridge History of India Part I* p 341

<sup>2</sup> To the Persians is also attributed the introduction of the *Khara* the alphabet the Persepolitan capital and words like *dipi* (rescript) and *nyushita* ('written') occurring in the inscriptions of Asoka. Persian influence has also been traced in the preamble of Asokan edicts — रायचौधरी, *Political History* p 243

## उत्तर-पश्चिम भारत

पारसीक आक्रमण के समय उत्तर पश्चिम भारत के राज्यों का उल्लेख पिछले पन्ना में किया गया था। जयन यह भी सकेत किया गया था कि जत में हरियस तृतीय के शासनकाल में साइरस द्वारा स्थापित भारत के उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेशों का पारसीक राज्य अब शिथिल होना जा रहा था। सिक्न्दर के आक्रमण के समय तक तो यह सीमांत प्रदेशों का ही अवसर छोट छोट राज्या या राजनीतिक विभागा में सम्पूर्ण हो चुका था। सीमांत प्रदेश के इन विभिन्न राज्या में से कुछ प्रमुख राज्या का उल्लेख कर देना आवश्यक है। यहाँ यह भी सूचित कर देना आवश्यक है कि इनमें कुछ तो राजनैतिक तथा और कुछ गणतन्त्रात्मक।

(१) अस्पेसियन (Aspasian)—यह काजल की सहायक अक्सिस-बुनार बजौर की घाटिया में था। यहाँ के निवासियों का नाम ईरानियों के अस्प से लिया गया है जो ससृष्ट का अर्थ अथवा जन्म है। इस आधार पर अस्पेसियन की अवक की पश्चिमी शाखा का माना जा सकता है।

(२) गुरेइन या गौर—(Guraeans) यह अस्पेसियन तथा अस्केनियन के मध्य में पजबौर नदी की घाटी में था।

(३) अस्सकेनस या अश्वक (Assakenos)—यह पूर्व में सिन्ध नदी तक प्रसारित था। इसकी राजधानी मससग थी जो मालकन्द दर्रे के निकट स्थित थी। इसका नाम कभी सुवासु या उद्यान भी था। इनकी सना में २० हजार अस्वारीही ३० हजार से अधिक पैदल तथा ३० हाथी थे।

(४) नीसा (Nisa)—यह काबुल तथा सिन्धु के मध्य एक पर्वतीय राज्य था जिसका शासन गणतन्त्रात्मक था। एरियन के कथनानुसार नीसा के निवासी भारतीय न होकर डायोनिसस के साथ आये हुए लोगों के वंशज थे। यूनन-बम्बोज का एक साथ उल्लेख मज्जिम निकाय में किया गया है। गौतम बुद्ध तथा आस्सलायन के समय में यूनन राज्य का उल्लेख विशिष्ट है। होल्डिक के मतानुसार आधुनिक स्वात नगर में कीटैनूर का घाटी में ही कभी नीसा नगर स्थापित था।

(५) प्युकैलाटिस (Peukelaotis)—एरियन के मतानुसार यह काबुल से सिन्धु के मध्य में पश्चिम में था। यह ससृष्ट का पुष्करावती है जिससे प्राचीन पश्चिमी गांधार का बोध होता है। इसकी राजधानी पुष्करावती पशावर के उत्तर पूर्व १७ मील पर आधुनिक मीरजियारन तथा चारसडडा थी। सिकन्दर के आक्रमण के समय यहाँ का शासक अस्तस (Astes) हस्ति अथवा अष्टक था।

(६) तक्षशिला (Taxila)—सिन्धु तथा झलम के बीच में यह नगर स्थित था। स्ट्रबो ने लिखा है—सिन्ध तथा हैडम्पीज (Hydaspes यलम) के मध्य सुन्दर नियमा द्वारा अनुशानित एक विद्यालय नगर तक्षशिला था। इसकी राजधानी गांधार की प्राचीन राजधानी के पूर्वो भाग में थी।

(७) अरसक या अरसा (Arsakes)—यह आधुनिक हजारा जिला तथा बम्बाज का एक भाग था।

(८) अभिसार (Abhisar)—इसमें काश्मीर का पश्चिमात्तर भाग सम्मिलित था। उरशा का भाति यह भा प्राचीन कम्पाज का हा एक भाग था जिसमें उत्तर पश्चिमा सामाप्रान्त के हजारों जिन का एक भाग भा सम्मिलित था।

(९) पारव राय (Parderos)—यह पलम तथा चनाब के बीच बाधु नैक गुजरात तथा शाहपुर का भाग था। स्ट्रबो<sup>१</sup> के कथनानुसार यह एक उर्वर एवं विशाल जिला था जिसमें ३०० नगर थे। डायोडोरस<sup>२</sup> के अनुसार पारस की सना में ५० हजार पदल ५ हजार जवारों का एक हजार सजायक रथ तथा १३० हाथी थे।

(१०) ग्लागनिकाई (Glaunikai)—इनका राय चनाब के पश्चिम में था। इनमें अनेक समाजशाला नगर थे जिनमें ५ हजार से कम जनसंख्या न थी और कुछ नगरों में तो यह मरया १० हजार तक था।

(११) गांदरिज (Gandaris)—यह राय साधारण काटि का था और चनाब तथा रावा नदियों के बीच का भूमि में स्थित था।

(१२) अद्रस्ताई (Adraistai)—य सम्भवत महाभारत के आद्रिज हैं। य रावा के पूर्वी तट पर बसे थे। पिम्प्रेम इनका प्रमुख नगर था।

(१३) कठ (Katharoi)—यह पलम तथा चनाब के मध्य में कठ जाति का गणतंत्र था। कुछ इतिहासकार इस रावा तथा चनाब के मध्य में बताते हैं। युद्ध कला में य अद्वितीय थे। य सुंदरता के भा उपासक थे और सुंदरतम पुरुष इनका राजा बना जाता था।<sup>३</sup>

(१४) सौभूति राय (Kingdom of Sophytes)—यह सम्भवत झलम के तट पर स्थित था। स्थिर महादय के विचार में सौभूत राज्य का स्थिति स्ट्रबो के विवरण के आधार पर पलम से सिंधु तक का मध्यस्थ भाग में निर्धारित की जा सकती है जिसमें नमक का बहुत बड़ा चट्टान था। किन्तु यह अधिक तकसगत इसलिए नहीं जान पता कि प्राचीन लखनान इस झलम के पूर्व में बताया है। कोटमस इनके विषय में लिखता है कि असम्या का दृष्टि में य बहुत सुंदर और अनपमिंत जावन बिता रहे थे। इनका अनुशासन बहुत सुंदर था। माता पिता एवं आभिभावक का इच्छा पर बंधे का पालन-पालन नही होता था प्रत्युत यह कार्य चिन्तित्साधिकारियों पर निर्भर था क्योंकि यदि इनका राय में बंध के अवयव में किसी प्रकार का दाप रहता था तो वे उसका हत्या की आज्ञा दे देते थे। बवाहिक सम्बंध स्थापित करते समय उच्च कुल का ध्यान नही रखा जाता था वरन् सुन्दरता का जिससे सुंदर सन्तान उत्पन्न हो सके।

(१५) फेगल (Phagelas)—यह सम्भवत ससृष्ट का भगल है जो क्षत्रिया का है एक गात्र है। इनका गणतंत्र रावा तथा घ्यास नदी के बीच में था।

(१६) सिबोई (Siboi)—ससृष्ट ग्रन्थ तथा जातक में इनका उल्लेख विभिन्न रूप में किया गया है। क्रवद में शिव लागा का उल्लेख किया गया है। जातक शिवि नगर का उल्लेख करता है और इसके अन्तर्गत अरिष्यपुर तथा जतुत्तर नगरों का निर्देश

<sup>१</sup> H and F Str III p 91

<sup>२</sup> Invasion of Alexander p 274

<sup>३</sup> मर्दिनिङ्गल Ancient India as described in Classical Literature p 38



करता है।<sup>१</sup> बहुत कुछ सम्भावना है कि शिव, शिवि सिवि तथा सिवाई ममान है। शारकोट अभिलेख में उल्लिखित सिविपुरा से इसकी समता की जा सकती है और यह तबसगत है।<sup>२</sup> उस समस्त साक्ष्यों का आधार पर शिवि या सिवा राज्य का शैलम तथा चनाव के संगम के नीचे क्षत्रजित में माना जा सकता है।<sup>३</sup>

महामारत में भी सिवि राष्ट्र का उल्लेख किया गया है जिसके शासक का नाम उत्तिर दिया गया है और उक्त राष्ट्र का यमुना से दूर नहीं बताया गया है।<sup>४</sup>

(१७) अगलेसाई (Agalassoi)—ये सिवाई या शिवि राज्य के निकट थे और इनके पास ४० हजार पैदल तथा ३ हजार अस्वारोही थे।

(१८) क्षुद्रक (Oxydraka)—कटियस तथा डायोडोरस के बयानानुसार हम उन्हें उपराज्यता जातिता के पास ही नहीं मान सकते हैं। यलम तथा चनाव के संगम के नीचे की भूमि पर इनका अधिकार था। यूनानियों के 'आक्सड्राका (Oxydraka)' के लिए, महामारत में क्षुद्रक शब्द आया है।<sup>५</sup> य पञ्जाब की प्रसिद्ध लडाकू जातिता में से था।

(१९) मालव (Malloi)—इनका राज्य सम्भवतः रावा के निचले भाग का आर दाहिने तट पर था। इनका राज्य में ही चनाव का सिन्धु से मिलन का उल्लेख मिलता है।<sup>६</sup> मन्लोई का अर्थ संस्कृत में मालव से है। कार्यायन ने क्षत्रक मालव का साथ साथ उल्लेख किया है। कटियस के अनुसार क्षुद्रक और मालवा के पास ९० हजार पैदल १० हजार अस्वारोही तथा ९०० रथ थे। धी मण्डारकर महादय ने पाणिनी के आधार पर मालवा का शम्भोपजीवा बताया है।

(२०) अम्बष्ठ (Abastanoi)—विभिन्न विद्वानों ने इनके मिन्न मिन्न नाम दिये हैं। चनाव के नीचे की आर मालव के निकट (चनाव सिन्धु-संगम के ऊपर) कहीं इनका राज्य था। संस्कृत तथा पालि ग्रन्थों में अम्बष्ठ का उल्लेख किया गया है। एन्द्रेय ब्राह्मण में अम्बष्ठ राजा का उल्लेख है जिसका पुरोहित नारथ था। महामारत में अथ उत्तर-पश्चिमी जातियों सिवि-क्षुद्रक, मालव आदि के साथ इनका उल्लेख करता है। विभिन्न धर्म-ग्रंथों में इनके व्यवसाय के सम्बन्ध में प्रकाश डाला गया है। सिन्दर के आक्रमण के समय अम्बष्ठ एक शक्तिशाली जाति थी जिसका शासन गणतन्त्रात्मक था और जिसके पास ६० हजार पैदल, ६ हजार अस्वारोहा तथा ५०० रथ थे।

(२१ २२) क्षत्रितया वसति (Lathroi and Ossadiroi)—मकसिडाल के अनुसार अक्षमथ्रै (Lathroi) संस्कृत का क्षत्रि है जिसका मनु ने वणतकर बताया

<sup>१</sup> वेसतर जातिक ५४७।

<sup>२</sup> *Invasion in India by Alexander* p 232

<sup>३</sup> Cf Siba Cunn A G I revised edition pp 160 161  
Quoted by Jay Chaudhuri

<sup>४</sup> महामारत ११ ५२ १५, ७१६८ ९

<sup>५</sup> *Magasthenes and Arrian* 2nd edition 1961 राय बीपरी महोदय ने इसे उद्धृत करते हुए इस सम्बन्ध से अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है—

The accuracy of this statement may be doubted. The Mallo territory seems to have included part of the Jhang district besides a portion of South Lyallpur West Montgomery and perhaps North Multan.

है। इसी प्रकार यूनानी ओस्साडिवोई (Ossidior) महामारत का यमानि है। ये चेनाब के निचले भाग में चेनाब रावी तथा चेनाब सिंधु के संगम के मध्य में बस था।

(२३-२४) सोद्र तथा मस्सनीई (Sodra and Massanoi)—पंजाब की नदियों के संगम-स्थल के नीचे पंजाब (मिठान-कोट क्षेत्र) तथा बहावलपुर रियासतों के निकटवर्ती भू-भाग पर उत्तरी सिंधु पर इनका अधिकार था। 'सिंधु नदी के प्रतिकूल तटों पर इन दोनों जातियों का सघ था'।

(२५) मुषिक (Mushkanos)—मुषिक राज्य में आधुनिक सिंधु का जीविका भाग सम्मिलित था। सरखर जिले के अनोर में इसकी राजधानी थी। एरियन के कथनानुसार यहाँ ब्राह्मणों का नगर में काफी प्रभुत्व था।

य सांख्यिक रूप से खलें में भोजन करते थे। इनका आहार आलू का होना था। यद्यपि इनके पास सोन चाँदा की खानें थीं किन्तु य इन धातुओं का उपयोग नहीं करते थे। दासों के स्थान पर वे जपन तरुणा से काम लेते थे, चिकित्सा विज्ञान का वे सर्वोपरि विज्ञान मानते थे और उसका विषय अध्ययन करते थे। उनके कानून में बंध एवं व्यभिचार के अतिरिक्त जीव किसी अपराध का विधान नहीं क्योंकि उनका कहना था कि यदि राजानाम तो जाते हैं तो प्रतिपन्न का अपने अनुचित विवाह का दण्ड भिन्न ही चाहिए।<sup>१</sup>

(२६) ओखान (Oxkanos)—कनिषम के अनुसार सरखान के पास सिंधु के पश्चिम में ये बसे हुए थे।

(२७) सम्बस या गाम्ब (Sambos)—मुषिक के निकट सम्बस किसी पर्वतीय प्रदेश का शासक था। इसकी राजधानी सिंधु के तट पर सिन्दिमान (=सैहवान) थी।

(२८) पटल (Patulene)—यह सिंधु प्रांत के दक्षिणी भाग में सिंधु नदी के मुहाने पर स्थित था और इसकी राजधानी पटल आधुनिक महमनाबाद में थी।

डियोडोरस ने इसका विषय में लिखा है—

(यह) विशाल नगर था और इसका शासन विधान स्पार्टा की भाँति था। दो विभिन्न कुलों के दो वंशगत राजाओं में युद्ध का नेतृत्व निहित था और सम्पूर्ण राज्य की शासन-व्यवस्था बड़ा की एक समा करती थी।

पारस्परिक राजनीतिक सम्बन्ध—पिछले पन्नों में सिकन्दर कालीन उत्तर पश्चिमी भारत के कुछ प्रमुख राजनीतिक सत्तायुक्त जातियाँ एवं राजनीतिक संगठनों का उल्लेख किया गया है। यहाँ उनका पारस्परिक सम्बन्ध पर एक विहंगम दृष्टि डालना आवश्यक है जिससे उनका वास्तविक शक्ति का बोध हो सके।

उपरोक्त राज्यों की यह सामान्य प्रवृत्ति थी कि वे परस्पर मत्री स्थापित करके राजनीतिक एकता की प्रयत्न देना नहीं चाहते थे। कटियस के अनुसार लक्षशिला-निदेश आग्नी तथा अग्निमार और पारस में युद्ध होता रहा। इसी प्रकार एरियन के कथनानुसार पोरस तथा अग्निमार कबल लक्षशिला के ही शत्रु थे वरन् स्वायत्त शासनवादी पटोलियों पर भी इनकी वक्रदृष्टि गी हुई थी और वे उनका भी शत्रु थे। सत्क तथा मालव के विरुद्ध भी इन दोनों न रणयात्रा की थी। एरियन ने यह भी बताया है कि पारस तथा उसका भ्राज म भी शत्रुता थी। शम्ब तथा मुषिक में भी शत्रुता का सम्बन्ध पाया जाता है।

<sup>१</sup> स्ट्रबो, Ancient India पृष्ठ ४१।

## यूनानी आक्रमण

उपरोक्त विवरण से यह ज्ञात होता है कि उत्तर-पश्चिम भारत न केवल विभिन्न छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था बरन इनमें पारस्परिक द्वेषों एवं दौष का इतना प्राबल्य था कि इनकी शक्ति उत्तरोत्तर क्षीण होती जा रही थी। राजनीतिक अनेकता की दशा में किसी भी सुसंगठित साम्राज्य को यह स्वण अवसर प्राप्त होता है कि वह उन समस्त छोटे-छोटे राज्यों का उन्मूलन सरलतापूर्वक कर दे। भारत में ही इस प्रकार का एक विशाल साम्राज्य मगध में स्थापित हो चुका था। नन्दा की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ रही थी किन्तु मगध साम्राज्य व साम्राज्यवादी शासकों में से किसी ने उत्तर (उत्तर-पश्चिम भारत) के इन छोटे-छोटे राज्यों के उन्मूलन का विचार नहीं किया और यह कार्य उन्होंने एक विदेशी के लिए छोड़ दिया।

पारसी आक्रमण व सम्बन्ध में हम पिछले परिच्छेद में पढ़ चुके हैं। यहाँ भारत पर उस तुफाना आक्रमण का वर्णन किया जायगा जिसमें एक बार न केवल उत्तर-पश्चिम भारत बरन् विश्व के अधिकांश भागों को दहला दिया और अपनी भयकरता एवं मापणता का स्मारक बहुत दिनों के लिए स्थायी बना दिया। यूनानियों को भारतवर्ष व सम्बन्ध में विशेष जानकारी पारसियों से प्राप्त हो चुकी थी। जसा कि पहले ही बताया जा चुका है भारतीय सेना ने पारसीक सेना के साथ कई स्थलों पर उनके शत्रुओं व विरुद्ध युद्ध किया था। किन्तु इससे पूर्व भी यूनानियों को भारतवासियों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त थी।

प्रो० रोलिंसन (Rawlinson) ने सुकरात तथा किसी भारतीय दार्शनिक के मिलन की कहानी यूसीबियस (Usebeus) के आधार पर उद्धृत की है। इससे यह परिलक्षित होता है कि भारत तथा यूनान में पारस्परिक सांस्कृतिक सम्बन्ध पहले से ही स्थापित था।

३३१ ई० पू० सिकन्दर ने गौगमेल (Gaugamela) अथवा अरबेला (Arbela) के युद्ध में अखामनी साम्राज्य की नौवें शकशोर कर और ३३० ई० पू० में पर्सियालिस (Persepolis) नामक उनकी राजधानी का भस्मसात् कर अखामनी साम्राज्य के शासक डरियस तृतीय को युद्ध में पृथक्करा कर दिया। तत्पश्चात् उसने भारत विजय के स्वप्नों को सत्य बनाने के लिए सशक्त कदम बढ़ाये। सर्वप्रथम उसने सीस्तान पर अधिकार स्थापित कर लिया। तत्पश्चात् उसका आग्रह अफगानिस्तान पर हुआ और वहाँ मार्गों की सज्जि पर उसने अरकासियों का सिकन्दरिया (Alexandria among the—Arachosians) काकोसिया का सिकन्दरिया (Alexandria under the Caucasus) नामक नगर बसाया प्रथम नगर आधुनिक रूप पर है तथा द्वितीय हिन्दुकुश पर्वत के निकटस्थ आधुनिक चारिकारकटना (वग्राम) का स्थान पर निर्मित किया गया था। बक्ट्रिया पर अपना अधिकार स्थापित करना व स्थान पर निर्मित किया गया था। बक्ट्रिया पर अपना अधिकार स्थापित करना सिकन्दर ने सामरिक दृष्टिकोण से आवश्यक समझा था। इसीलिए उसने बक्ट्रिया तथा उसका समीपवर्ती भू-भाग पर आक्रमण कर दिया और वहाँ अपना पूर्ण अधिकार स्थापित कर लिया। बक्ट्रिया से सिकन्दर काबुल की ओर मुड़ा और अब वहाँ से भारत विजय की तयारियाँ करने लगा। सेना के बड़े भाग का उसने खबर के दर्रे से प्रस्थान करने का आदेश दिया। इस प्रकार ३२७ ई० पू० तक सिकन्दर ने बक्ट्रिया तथा आधुनिक बालारान पर सरदरिया तक छापा मारकर पूर्वी ईरान पर हिन्दुकुश तक विजय प्राप्त कर ली थी। मई ३२७ ई० पू० में वह भारत की ओर मुड़ा।

सीमांत जतिपाँ—उत्तर पश्चिमी भारत की राजनीतिक अवस्था का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि सम्पूर्ण भाग छोटे छोटे राज्या एव गणतन्त्रीय विभक्त था। इन राज्या की पारस्परिक कूट का दिग्गमन हमने किया था। इन राज्यों की अपनी वृद्धि का उतना ध्यान न था जितनी पश्चिमी क पतन की चिन्ता था। अतः इन राज्या ने ही स्वयं अपने हाथों विदेश के विनाश क लिए आक्रमणकारी को तैयार खान दिया। हिन्दुकुशक उत्तर शशिपुत्र नामक एक भारतीय राजा था जो ईरानिा के साथ सिक्न्दर के विरुद्ध था। किन्तु हार जाने के बाद वह सिक्न्दर का मित्र हो गया और उसने उस भारत आक्रमण में सहायता दी। कुछ विद्वानों का यह मत है कि निकाइया स ही सिक्न्दर ने तक्षशिला के राजा सिन्धुपूर के अथ राजकुमारों के पास अपना दूत अपने उद्देश्य के प्रकाशनाथ भजा था। उसने इस सम्बन्ध में बातचीत करने के लिए उन्हें आमन्त्रित भी किया था। कहा जाता है कि जब सिक्न्दर बोखारा में था तभी तक्षशिला के शासक आम्माक ने सिक्न्दर क पास भारत आक्रमण का निमन्त्रण भजा था और उसने अपने राज्य का आक्रमण मकन करने की प्रायना की थी। कटियस क कथनानुसार उसने सिक्न्दर क पास रामपादक उपहार भा भजे थे जिनमें ६५ हाथी विशिष्ट आकार प्रकार का जनक मत्तया उत्तम नस्ल के तीन हजार बल थे। आम्मा ने अथन स्वयं युक्त क्षत्र भावा स प्रेरित होकर एसा किया था। उसने अपने पत्नी सशक्त पारस (पौरव) का जो झलम त्या रावी नदिया क मध्यस्थ भूमि का गार्सन का विनष्ट करन क अभिप्राय स ही एसा किया था। पौरस अपन समीपवर्ती भ भागा पर तात्रता से अधिकार जमाता जा रहा था और उसने रावी तक अपना अधिकार स्थापित करके तक्षशिला क सीमान्त का पश्चिम में दहला दिया था। इसकी वृत्ती हुई ताकत को राकन क लिए हा आम्भी ने सिक्न्दर का आमन्त्रित किया था। यदि पञ्जाब के ये दो शक्तिशाली नरेश आपस में मिलकर आक्रमणकारी का सामना किये हान तो सम्भवतः प्रारम्भ में ही सिक्न्दर को भारत प्रवेश का कल्पना छोड़नी पड़ी होती और इस प्रकार भीषण नरसंहार एव खतपात स दश बच गया होता। किन्तु इसक प्रतिकूल आक्रमणकारी को निमन्त्रण मिना और वह निर्भीक होकर भारत की सीमा पर पहुंचकर आक्रमण का तयारियाँ जार शोर स करन लगा।<sup>१</sup>

<sup>१</sup> भारत की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति एव नीति पर प्रकाश डालते हुए एक विदेशी लेखक ने लिखा है—

At this time north western India was occupied by a number of small heterogeneous principalities and village communities

these Principalities and free communities differed much in manners and religion they had no tendency to unity or combination the free tribes feared and hated the princes the princes strove with one another And these states were not all of the same race

An invader therefore had no common resistance to fear he had to deal with the states one by one and he could be assured that many would welcome him out of hatred for their neighbours The prince of Taxila hoped great things from the Macedonian conqueror especially the downfall of his rival Porus He visited Alexander at Nicaea laid himself and his kingdom at the great

अस्पसी मस्सग नीसा—बाबन नन्दी के उत्तरवर्ती भाग में अभियान करने हुए कुनार एव स्वात घाटिया के पवतीय प्रदेश में सिकन्दर को मवप्रथम अश्वक नामक वीर भारतीय आदि का सामना करना पड़ा। वही वागता में अश्वक ने आक्रमणकारों का सामना किया। एरियन महात्म्य में मानके भयकर यद्ध का उल्लेख किया है। उनकी वीरता का समयन अन्य इतिहासकारों ने भी किया है।<sup>१</sup> उनका विजय और उससे पूर्व के ४० हजार मर्दों तथा २ लाख ० हजार बला को पकड़ा। उत्तम नरुन वाने वारा को ना उमन कृपि-नाय के लिए मकानिय मज लिया तथा अश्वक का अपन माय मंता के प्रयाग के लिए रक्ता।

अश्वक का अतक यद्धों में पराजय अवश्य ही किन्तु उन्हें एक शरणार्थन प्राप्त हो गया। यह था उनका सुन्दर दाम्पत्य। यहाँ सम्भवतः इनको जस्पनिया (Aethasian) के अश्वक की पूर्वी शाखा निवास करता था। इनका पाम २० हजार आकाराण ० हजार पदल तथा २० हाथी थे। इनका राजधानी मस्सग का प्राकृतिक बनाकर पर दक्षिण में प्रकृति ने विशाल चट्टानों का निर्माण करा था। मस्सग के पूर्व में एक तीव्रगामिनी पवताय नदी थी जिसका तट विकृत नदी का था। पश्चिम में दक्षिण में प्रकृति ने विशाल चट्टानों का निर्माण करा था। पश्चिम में एक प्राकृतिक रक्षा के अतिरिक्त ऊँची चौड़ी प्राचीरों तथा एक गहरी खाई का अश्वक रक्षा के लिए निर्मित थी। सिकन्दर की सारी युद्ध बला यहाँ स्थित पर गहरी विजय-श्री असम्भव-सी लगत लगी। दमन्यवश अश्वक के नेता अश्वक का एक तीर लगे गया और वह धराशायी हो गया।<sup>२</sup> नेता के घराणायों का जान के पश्चान्ताराय युद्ध प्रणाली में शप सेना का कोई अस्तित्व नहीं जाना था अश्वक की भाषा अश्वक ही थी और सिकन्दर ने उन्हें आत्मसमर्पण के लिए बाध्य किया। मस्सग अश्वक का परती का सिकन्दर ने बलपूर्वक छीन लिया जिसमें जस्पिन मन्त्रियों के कथानामार का एक पुत्र उत्पन्न हुआ।<sup>३</sup>

भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर उन दिनों एमा वार जातिवाँ था जिनकी जाविका ही किमी के आरस युद्ध करना था। मस्सग के यद्ध में भी अश्वक की जार में ७ हजार एस आयुधजीवियों ने भीषण मराम किया था। यद्ध के पश्चान्ताराय मस्सग का सचिव हूँ उसने अनुसार इन आयुधजीवियों का शान्तिपूर्वक लौट जान उन का भी शत था जिसे सिकन्दर ने स्वीकार किया था किन्तु इनका नापण प्रयोग का आक्रमणकारी न मूल सवा और उसने अपनी प्रतिज्ञा का अवहलना करने हुए आयुधजीवियों पर दुष्ट से बाहर निकल जाने तथा अरक्षित स्थान में पलायन करने का आक्रमण कर दिया और अधिकांश सन्निवा का बध कर दिया। उन्होंने उनका हम व्यवहार का अनुभव प्रतिष्ठा किया और कहा कि सिकन्दर ने शपयपूर्वक का हूँ सचिव ही उन का नाग है और हम प्रकार उसने उन दवताजा का भी अपवित्र कर दिया है जिसे साम्राज्य बनाकर

emperor's feet and promised his aid in subduing India. Other chiefs on the other side of the Indus also made submission —

१ मकसिण्डल Ancient India p. 63  
 २ इरियस ८।१०॥ मकसिण्डल पृष्ठ १९५।  
 ३ एरियन ४।२७॥ मकसिण्डल पृष्ठ ६८।  
 ४ १।२।७॥ मकसिण्डल, पृष्ठ ३२२।

साँघ का गई थी।<sup>१</sup> किन्तु सिक्न्दर ने छत्रपूज उतर दिया कि उसने उन्हें दुःख से बाहर निकल जान देन के लिए शपथ ली थी न कि उनसे मंत्री स्थापित रखने की। अन्त में आयुधजाविया ने भी शस्त्र उठा लिये और तब सिक्न्दर का जिस भाषणता का सामना करना पड़ा जिस प्रकार उस ऊपर विजय प्राप्त करनी पड़ी वह बड़ी महंगी पड़ी। सिक्न्दर के सम्मुख और सम्भवतः विश्व के सम्मुख यह पहला उदाहरण रहा कि जिस समय पुरुष धराशायाहान लग स्थिया ने उनका काय मारसमानाजार युद्ध को जारी रखा। किन्तु कहा जतना विशाल यूनानी सेना और वहाँ कुछ हजार आयुधजावी। अन्त में सिक्न्दर ने भाषण खतपात का दिग्दर्शन कराया और आयुधजाविया की मृत्यु गारव सिद्ध हुई जिसके बदल परतत्र जावन स्वाकार करना उन्होंने अत्यन्त घणित समझा।<sup>२</sup> सिक्न्दर अस सनिक का यह काय सदैव घणित है। एक सनिक के लिए साँघ के नियम इस प्रकार तो दना उसके चरित्र पर घब्रा लगना है। सिक्न्दर के पराक्रमसनिक जावन पर भा यह एक काला धवा है जिस इतिहास मुला नहीं सकता। स्वयं यूनानी इतिहासकार प्लूटार्क ने उसके इस काय की निन्दा करते हुए लिखा है— यह आचरण उसके सामरिक यश पर एक काला धवा है।

अश्वका के कुछ पश्चिम तथा कोहमूर का निचला शृखला में नासिया का गणतत्र था जो अपन का यूनानी देवता डायानिसस का बशज मानते थे। सिक्न्दर को सगोत्र सिद्ध कर देन के पश्चात् नासा ने उस अपना हितपी बना लिया। आज्ञामणकारी भा विनामस्थल चाहत थे वह इससे सुन्दर नहीं और नही मिल सकता था। निदान सेना का कुछ दिनों तक यहाँ विनाम करने का आदेश मिला। यूनानी सुरा-मुन्दरी मत्तलीन हा गय।

नासियन का अपन को यूनानी जाति से सम्बन्धित बताना छल या वास्तविकता था यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। अधिक सम्भावना छल की है क्योंकि आज्ञामणकारी का भयकरता एवं प्रचण्डता से उनका भयभीत हो जाना स्वभाविक था किन्तु इस सम्बन्ध में ब्यूरी महादय ने लिखा है —

The name Nesa immediately awakened in the minds of all the Greeks the memory of their god Dionysus. For mount Nysa was the mythical place where he had been nursed by nymphs when he was born from the thigh of Zeus. The mountain was commonly supposed to be in Thrace but an old hymn placed it near the streams of Nile it had no place on the traveller's chart. But here was an actual Nysa and close to the town was a hill whose name resembled meros the Greek word for thigh and whose slopes were covered with the god's own ivy. Therefore Nysa they said was found by Dionysus the god had fared eastward to subdue India and now Alexander was marching on his tracks. Every where on their further march the Greeks and Macedonians were alert to discover traces of the progress of the bacchic god.

<sup>१</sup> हिप्योडोरस १७।८४।। मककृष्णल पृष्ठ २६९

<sup>२</sup> वही।

उक्त विवरण से ता यह परिलक्षित होता है कि नीसा शहर से डायानिसस का सम्बन्ध स्थापित करने में स्वयं यूनानी ही पहल प्रभावित हुए थे। वास्तविकता जो हो नासा को यूनानी आक्रमणकारी ने विध्वंस नहीं किया और वहाँ वह कुछ दिना तक विलास में लाने रहा।

अष्टक<sup>१</sup>—नासा में विध्वंस करता हुई यूनानी सेना का अपने दूसरे दल के आगमन का सूचना मिली। यह दल खबर के दर के पार करके पनावर में उतर रहा था। पनावर का भी भाग जसा कि पिछले परिच्छेद में बताया गया है अष्टका के अधीन था। अष्टका के राजा ने आत्मसमर्पण नहीं किया और वह दल-बल के साथ अपनी राजधानी पुष्कलावता के दुर्ग में चला गया। किन्तु आक्रमणकारियों ने सम्पूर्ण उस युवना पड़ा। अन्त में सिक्न्दर ने निकन्दरनी उत्तरा पवताय जातिया का विनाश कर पुष्कलावता का भी अपने अधीन कर यहाँ फिलिप नामक व्यक्ति का अध्यक्षता में एक यूनानी स्व-घावार की स्थापना की। मारन का उत्तरा पश्चिमी सीमा पर अपना स्व-घावार स्थापित करना सिक्न्दर ने आवश्यक समझा था। सिन्धु नदी के पश्चिमी इलाका का भी उसने निकानेर का अधीनता में कर दिया था। इस प्रकार यहाँ दो स्व-घावार स्थापित कर दिए गए। आक्रमणकारी ने अपना सेना के एक भाग को नीका द्वारा सिन्धु नदी पार करने का आदेश दिया और स्वयं ओहिन्द्र नामक स्थान में अष्टक से १६ मील ऊपर का शार अपनी प्रमुख सेना से जा मिला जहाँ पर सिन्धु पार करने की व्यवस्था नौका-सेना का निर्माण करके उससे सेनापतियों ने पहल से हाँ कर दे दी। सिन्धु तट पर भी सिक्न्दर को उसी प्रकार लोहे के चने चवान पते जसा कि जलम-तट पर पता किन्तु हमें ज्ञात है कि सिन्धु के ठीक पूर्व में तपशिला का राज्य था जिसके शासक आम्भीक ने अपने हाथों भारत का द्वार विदेशी के लिए खोल दिया था। सिक्न्दर का सेना विना किता दुषटना का सामना किया हुए नदी पार कर गई। सिक्न्दर ने आम्भीक को उसके देशद्रोही हान का पुरस्कार दिया और उस अपना सामन्त बनाकर तपशिला में ही अधिष्ठित कर दिया।

भारतीय साधुओं से भेंट—अप्रासंगिक हाँत हुए सा भारतिय साधुओं से सिक्न्दर का भेंट का उल्लेख करने के लिए आवश्यक जान पड़ता है कि एक ता सिक्न्दर जर्मियान के अधिकांश लेखकों ने इसका उल्लेख किया है और दूसरे इससे तत्कालान्तर यतिमा का शारीरिक यातना का भी बोध अधिक स्पष्ट हो जाता है। इस समय का सबसे प्रथम उल्लेख इन्हीं विदेशी लेखकों ने किया है।

जिस समय सिक्न्दर तपशिला में था उसी समय उस भारतिय साधुओं का सूचना मिली जिससे आकर्षित होकर उसने अपने एक वचनचारा आनसिक्त्रिस (Onesicritus) को जा डायोजेनीज (Diogenes) का शिष्य था उन साधुओं का सादर बलान के लिए भेजा। स्ट्रबो महात्म्य ने आनसिक्त्रिस का सख्त सुरक्षित किया है जिसमें ज्ञात होता है कि नगर से लगभग १० मील की दूरी पर उस पन्द्रह साधु दिखाई पड़े थे जो बड़ी भूष में जिसमें चट्टानों पर नग पर चलना तक असम्भव था जे का तरह बिल्कुल नग तट हुए थे। आनसिक्त्रिस ने उन साधुओं को सिक्न्दर का यह सवाल सुनाया कि वह उनसे कुछ ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। अत्यन्त लापरवाही से एक साधु

<sup>१</sup> सिक्न्दर ने काबुल में ही अपनी सेना को दो भागों में विभक्त कर दिया था जिसमें से बड़ा भाग खबर के दर से चला था।

ने उसका उत्तर दिया— कोई भी विजिता का अभिमान लेकर योरापाय वष म—घो पर चढ़कर सवादा पहने हुए चौड़े सिरो की टोपी लगाकर तथा ऊँचे जूते पहन हुए (जसा कि मकदूनिया वाल पहनते थे) उनसे ज्ञान प्राप्त करने का अधिकारी नही हो सकता ।<sup>१</sup> एक दूसरे साधु ने सिक्न्दर की तत्व-ज्ञानाजन सम्बन्धी जिज्ञासा क लिए प्रशंसा की किन्तु उन्ही यह भी बताया कि बवल बर्मायिका के माध्यम स ज्ञान कराना तथा ज्ञानाजन दाना जम्भव है । साधुआ न आनेसिजिन्स से यह पूछा कि क्या यवनो ने भी तत्व चिन्तन किया है । उत्तर मे उनन पाइयागोरस (Pythagores) मुक्रान (Socrates) तथा अपने गुरु डायोजिनेज का उल्लेख किया । अन्त म आम्ब्रीक के विज्ञप भाग्रह पर एक भाष न लौकिक बस्था म सिक्न्दर के साथ जाना स्वाभार किया जिसके लिए अय भाषआ न उसकी निंदा की । यनानिया ने इस साधु का नाम जाना नास खला जा सम्भवत इमलिए पडा कि यनानिया न इस साधु का अपन ग्वाभिया से विदा तते समय बल्याण का उच्चारण करत हुए सुना या ।<sup>२</sup>

पुरुह—तशशिता के आत्मसमपण के पचात अय निक्टवर्ती राया न भा मयमात होकर आत्मसमपण कर दिया । तक्षशिला से ५ हजार योडा तथा पर्याप्त रस लकर निक्न्दर पूव की ओर बग और बह चलम क तट तक च आया । तशशिला स ही सिक्न्दर न पुर (पारस) का आत्मसमपण कर देन क लिए निमत्रण भजा या त्रिसक उत्तर मे उनन दूत से य कहला दिया कि वह सिक्न्दर से रणक्षत्र म हो मलगा । चलम तट पर पहुचकर सिक्न्दर न उस उस पार सेना निण खग पाया । पुर न अनिकर क राजा स सहायता मागी था किन्तु उसन ठाक अवसर पर सहायता दना अस्वाकार कर दिया था ।

सिक्न्दर न राह चुराई—अनम के इस पार यूनाना सना तथा उस पार भारतय सना खडी थी । सिक्न्दर का बनी हुई झलम को पार करना बस ही क्तिन था इनरे भारतय सना का दत्त कर साहस देवता जा रहा था । अन्त म उसन चारा स पार करना<sup>३</sup> निश्चित किया । सिक्न्दर के उस वाक्य की स्मृति यहाँ सहेना आ जाना है सिक्न्दरविजय चरायगानही । ईरान जातन क पहल जबघाक सना रात्रि म दारापुरु की विस्तत सना क सम्मल खी थी कुछ यूनानी सनापतिया न इस नय स कि बही दिन के प्रकाश म असह्य ईरानी सेना को दत्त यूनानी सना डर न जाय सिक्न्दर को सनाह दी थी कि रात्रि के अघकार म हा ईरानिया पर आक्रमण कर दिया जाय । इस पर उन्ने धिक्काने हुए सिक्न्दर ने कहा था कि सिक्न्दर विजय चुरायगा नहा पर आज यह राह चरान क लिए भी प्रस्तुत है । सिक्न्दर न अपन स्वघावारा म नाच रान चल-तमागा का व्यवस्था कर दी जिमस शत्र का यह विवास हा जाय कि इस समय यनाना आक्रमण नहीं हागा । किन्तु यनम क बहाव क ऊपर १६ माल की दरी पर उन्म्य न स जर्ग नगी क बाध म एक द्वाप बन गया था सिक्न्दर न अपना सना की ११ हजार का एक चनी हुइ टकडी पार उतार गी ।<sup>४</sup> स्वघावारा का सुभा के

*Cambridge History of India Part I p 354 तथा Strabo*  
XVIC 151

<sup>१</sup> एरियन, सप्तम २-४ स्ट्रुबा (c 1-4 1)

<sup>२</sup> डेलिये एरियन का सल ।

<sup>३</sup> कुछ विद्वानों न यह गका प्रकट की है कि यूनानी बलान्तों से यह निरक्षप करन कठिन है कि सिक्न्दर ने १६ माल ऊपरी अथवा निचले भाग की ओर जाकर नही पार की थी ।



लिए उसने ऋतिरस का एक प्रबल सेना देकर नियुक्त कर दिया तथा स्वघावारा एव पार उतरने के स्थान के मध्य में मिलिगर को रख दिया। तीर्थ वर्षा एव विजयिया की कौर म सिक्कर ने राह चुरा ली और जब पुरु को यह ज्ञात हुआ तो उसने अपन पुत्र पौरव को २ हजार यादवा तथा १२० रथ देकर आक्रमणकारियों का सामना करने का आज्ञा किन्तु कहीं सिक्कर जस बार सनानायक की अध्यक्षता म युद्ध करनेवाली सतना बड़ी सेना और कहीं दो हजार की एक छाटा-भी टक् की जिसका सचालक बीम वर्षीय राजकुमार। पौरव की सेना का ध्वज यूनानिया ने सरलतापूर्वक कर लिया और तब स्वयं पुरु रणक्षेत्र म उतर पया। यूनाना तबका के कयनानुसार पुरु की सेना म ५० हजार पदल ३ हजार अश्वारोही १०० रथ तथा १३० हाथी थ।<sup>१</sup> पुरु की यह रचना भी अपने रथ की अनाथा थी। उनन सामने ता हाथिया को खरा कर दिया और इनक अगल-अगल तथा पीछ पदाति सेना थी। दोना पावा म अश्वाराज्ञा तथा उनक सामने रथ खरा त्रिय गया। पुरु की सेना इस प्रतीक्षा म थी कि यूनानी आक्रमण करे। इस प्रकार तयार तयार सेना सनाये करीं क रणक्षेत्र में आमने-सामने म। या। शत्रु की सेना देखकर शिन्कर का भी साहम घुटन लगा।<sup>२</sup> सिक्कर ने कहा— आज का खतरा मर माहस का अनिक्रमण कर रहा है आज का युद्ध बनले जनुजो एव अना कारण बारा स है। तभी यूनानी अश्वारोहिया ने भारतीय सेना का ध्वज टक्नी घार तारो की वर्षा प्रारम्भ करी। इधर भारतीय अश्वारोही कुछ शिथिल पड़े। भारतीय सनिका का मवस वी सुविधा यह पड़ी कि वे अपने तम्बे घनुष का वर्षा जल स भागा गीली भूमि पर स्थिर नहीं कर पाते थ। रथा का मा इन जलवटि न अनुपयाया सिद्ध किया। प्लूटाक के कयनानुसार (पिछली रात की) वर्षा क कारण बन हुए दलदल तथा काच म व बराबर फस जाया करल वे तथा किसी प्रकार भी आग नहीं बढ़ पात थ।<sup>३</sup> तत्पश्चात म्वय मिक्कर सम्मूल आया। शिन्कर भी भारतीय सेना वीरता म लक्ष्मी रही और प्लूटाक क कयनानुसार दिन की आठवा घी तब युद्ध भूमि म उठले अपना प्रजापता दिखलाई। किन्तु दलदला भूमि म पुरु का जिन पर अधिक भरोसा वे घनुषर तथा रथ विलुन जममय हो गये। इधर शिविया की भा दशा बड़ी शाचनीय थी। चतुर यूनानी सनिका न भारतीय सेना के विलुन पाम आकर आर जान हयत। पर रथक कुल्हाटिया स इनके पर काटने आरम्भ कर लिय तीरदाना न उननी जीवा का अपना निशाना बनाया जिसस य हाथी पागन हो गये और भागत ममय इन्ने अपना सेना को ही काफी क्षति पहुचा। सेना म भगदर मच चुकी थी पर वीर पुरु अपन हाया पर बठा बार पर बार करता रहा और यह श्रम तब तक चना रहा जब तक उनकी नसा म रथन-मचार जारी था। अन्त म वह मूछिन हाकर धरता पर गिर पडा और मूर्च्छितावस्था म ही बन्दा बनाया गया। युद्धो क पुनन मिक्कर ने भा अपने जीवन म एना बार नहा दत्ता था। पुरु का वीरता स प्रभावित तथा राजनातिक चाला से प्ररित मिक्कर न यहाँ दयानु हान का सुन्दरतम अभिनय किया और उमने पुरु का न कवल उसका राय गीना दिया प्रत्युत पूर्व क अधिष्ठत प्रदशा का भी उसमें सम्मिलित करक उस अपना महायक मित्र बना लिया।

१ प्लूटाक ने यह सख्या इस प्रकार बताई है—२० हजार पदल तथा २ हजार अश्वारोही-मकक्रिण्डल, पृष्ठ ३१०।  
 २ कटियस, १४। मकक्रिण्डल, पृष्ठ २७९।  
 ३ कटियस अष्टम् पृष्ठ २०८।

सिकन्दर के लिए यह महान् विजय थी, अतः उसने इगवा स्मृति में दा नगरा का स्थापना की—(१) निकाइया तथा (२) अपन मृत अश्व बुधपना के नाम पर ब्रह्मफला नगर।

ग्लाउसाई अथवा ग्लाउगनिकाई एव कनिष्ठ पोरस की पराजय—पुरु विजय के पश्चात् यूनानियों ने देवताओं की पूजा एवं नाचरंग में कुछ दिन बिताया। तत्पश्चात् सिकन्दर ने ग्लाउसाई के ३७ नगरों को छान लिया। तभी सिकन्दर का अपन विरुद्ध विद्रोह की सूचना प्राप्त हुई। सिन्धु के पश्चिमी प्रदेश का यूनानी क्षत्रप निकानर था। विन्नाहिमा ने उसका हत्या कर दी। सिकन्दर के मित्र शशिगुप्त ने जा सिकन्दर की ओर से औरनस के दुग का रक्षक था। यह सूचना उसके पास गयी। सिन्धु की इन पाँचवर्ती जातियों का सिकन्दर बहुत पहले पदाभ्रान्त कर चुका था किन्तु इनका विद्रोह यह सिद्ध करता है कि सिकन्दर से पराजित होने वाली इन वीर जातियों का अपनी स्वतन्त्रता अब भी प्यारा थी और वे उसके लिए मारी से भारी खतरा उठाने को तैयार थी। सिकन्दर को जब यह सूचना प्राप्त हुई तो उसने कुछ विशेष चिन्ता हुई। पर पड़ोसी क्षत्रप तिरियास्प तथा तक्षशिला के रेजिडेंट फिलिप ने विद्रोह का दमन कर दिया। तभी उसने नवान सेना आ जान एवं अप्रत्यक्ष रूप से विद्रोह में सम्मिलित होनेवाले अभिसार के राजा के पुत्र आत्मसमर्पण के पश्चात् सिकन्दर आगे बढ़ा और उसने चनाव पार करके राजा पुर के मंत्री कनिष्ठ पारस का पराजित कर उसके राज्य को पुरु के राज्य में सम्मिलित कर दिया। ग्लाउसाई का राज्य भी पुरु की हाँद दिया गया।<sup>१</sup>

पिप्रमा पर अधिकार—तदनन्तर सिकन्दर ने ३२६ ई० पू० की वषा के अन्त में राबा का पार करके अपस्तैड (आद्रिज) के प्रमुख दुग पिप्रमा पर अधिकार स्थापित कर लिया।

कठ या कथवाप—साहस एवं रणवीर्यमय कठों की अग्निाय प्रसिद्धि थी।<sup>२</sup> कठों ने बड़ी वीरता से सिकन्दर का सामना किया और युद्ध की भयकरता के कारण सिकन्दर की सहायता में अपने मित्र पुरु को बुलाना पड़ा। पुरु ५ हजार सैनिकों के साथ पहुँच आया।<sup>३</sup> यह वस्तु सम्भव था कि पुरु की इस सहायता के अभाव में सिकन्दर का विजय प्राप्त करना कठिन हो जाता। एरियन ने भी इसका समर्थन किया है और लिखा है कि जब सिकन्दर ने कठों के समूह नामक दुग का धरा तब उन्होंने यूनानी सेना के छत्रों छुड़ा दिये।<sup>४</sup> कठों के १७ हजार सैनिक काम आय तथा ६० हजार बन्नी हुए जिनमें ५०० अश्वारोही तथा ३ गाड़ियाँ भी रही। इन ६० हजार बन्ना जना में निश्चय ही सामान्य नागरिकों का भी रहना होगा। कठों के भयकर युद्ध से प्रभावित होकर सिकन्दर ने दुग का पूरा विध्वंस कर दिया। विद्रोहों के मय से पृथक् भाग की रक्षा के निमित्त ग्रीक सेना नियुक्त कर सिकन्दर आगे ब्यास की ओर बढ़ा। सीमूति तथा वेगन ने पहले ही आत्मसमर्पण कर दिया था।

ग्रीक सेना का विद्रोह—ब्यास के तटपर पहुँच जाने के पश्चात् यूनानी सेना ने सहना आगे बढ़ने से इंकार कर दिया। महान् सगठनकर्ता बुसान सेनानायक एवं वार

<sup>१</sup> स्ट्रबो मरुक्किण्डल पृष्ठ ३७।

एरियन ५।२२। *Invasion by Alexander* पृष्ठ ११५।

<sup>२</sup> वही ५।२४ वही पृष्ठ ११९।

<sup>३</sup> वही ५।२४। मरुक्किण्डल, पृष्ठ ११९।

<sup>४</sup> वही।

सिकन्दर को मुख्य-स्थित मना का यह विद्रोह आश्चर्यजनक ही रहा। सिकन्दर के जाशान भाषणा के सम्मेलन या सना केवल औसू बहाकर रहे गये।<sup>१</sup> सना न आगे बढ़ने सकया "कारण" कर लिया "स मन्वन्त्र मद्रति"मकारा नग पकार क कारण बताया है। पहला आन्तरिक तथा दूसरा बाह्य। आन्तरिक कारणों में सनिका का शिथिलता "यात्रि-प्रस्तता चम्पामात्र तथा उनका गन्त-मायहाना सम्मिलित है तथा बाह्य कारणों में भारत के सनिका का गणकुशनता एवं भावी खतरे की आशंका है।

किन्तु आन्तरिक कारण सम्बन्धा कठिनाइया ता सभी लम्बे अभियान में पत्र सक्ती है जिसके लिए सनिका तयार रहते हैं और कवल इन्ही कठिनाइया से पराजित होकर गणमेरा बन्धन कर ली गई है। यह तन्मयन नहा जान होता। निश्चय ही बाह्य कारणों का इसमें अधिक हाथ है। प्लूटार्क के विवरण में भी इसका बोध होता है। वह निश्चयता है कि पारस के मार्च में मक्दूनिया वाता के दिन बड़ा दिव्य और भाग्य में और आगे चलने की उनकी कामना सबका नष्ट हो गई। वे जानते थे कि केवल २० हजार पदल तथा दस हजार अश्वारोहियों की सनावाले उस पोरस का जीवन में उन्हें बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ा था और इमीलिए जब उसने गंगा पार करने की जिज्ञा की तब उन्होंने उसका आदेश स्पष्ट रूप से अस्वीकृत कर लिया।<sup>२</sup> भारतवाय सना का वीरता का प्रथमा करत हुए एरियन ने भी यह लिखा है कि गशिया में उस समय जितनी जातियाँ बसती थी उनमें भारतीय यद्ध-कला में सबसे अग्रगण्य थी।<sup>३</sup> सिकन्दर अपना सना का आगे चलने के लिए जितना ही ललकारता था सनिका का विद्रोह उतना ही भयंकर रूप धारण करना जा रहा था। उन्होंने मृत रक्वा था कि आगे भयानक नशियाँ कर्णकर मन्मभि तथा विनाल मना युक्त लड़ाई जातियाँ हैं। कथियम ने इसका विवरण इस प्रकार दिया है गंगा के उस पार गगरिपाई तथा प्रेसियाई की जातियाँ निवास करती हैं जिनका राजा अग्रमिस अपने देश का रक्षा के लिए मामा पर २० हजार अश्वारोही का लाख पत्तानि चार घोड़ावाले २ हजार रथ तथा इन सबमें भयानक २० हजार गज सना तयार रखता है।<sup>४</sup> प्लूटार्क ने भी इस कथन का समर्थन ही जात। है जिसने लिखा है कि गगरिपाई तथा प्रेसियाई उनका (यूनानियों का) माना करने के लिए २० हजार अश्वारोही का लाख पत्तानि २० हजार रथ तथा ६ हजार गज-सना लिय प्रताप्ता कर रहे थे। इसमें निश्चय ही कोई अत्युक्ति न थी क्योंकि इसका शोध बाद ही ए.ट्रोक्लम ने जो तब तक गद्दी पर बैठ चुका था मिल्कूम का ५०० हाथा दिय और स्वयं ६ लाख सना से सम्पूर्ण भारत का रौंद डाला।<sup>५</sup> निश्चय ही यूनानी सना ने भारत की भयंकर लड़ाई जानिया के भय से आगे चलने में इकार कर दिया और जसा कि एरियन ने लिखा है जब उन्होंने अपने मघाट का खतरा पर खतर मोन मन और प्रयास पर प्रयास करके पर कमर बसने दगा सन उनका जिन बैठ गये।

<sup>१</sup> प्लूटार्क, ६२, *Invasion by Alexander* पृष्ठ ३१०, एरियन ५।०२। वही ६२। वही ३१०। यहाँ यह जान लना चाहिये कि प्लूटार्क ने व्यास को गंगा बना दिया है और पोरस की सेना ने सनिका की सहायता नहीं दी है।

<sup>२</sup> एरियन, ५, ४।

<sup>३</sup> कथियस १, २, *Invasion by Alexander* पृष्ठ २२१-२२।

<sup>४</sup> प्लूटार्क ६२, वही पृष्ठ ३१०।

ग्रीक सेना ने अपना जलज समाओ का भा आयाजन किया। समाओ का आयाजन अथ है सगठित विद्रोह। सना की समाओ के सम्बन्ध में लिखते हुए एरियन ने लिखा है जिनम (समाओ म) अपक्षाहित शान्त योग ने अपनी दशा पर विलाप किया और तीव्रतर सनिका ने स्पष्ट कह दिया कि सिक्न्दर चाहे स्वयं ही उनका नन्तव क्या न करे वे कदापि आग नहीं बरेंगे।<sup>१</sup>

कटियस के कथनानुसार यह ज्ञात होता है कि सिक्न्दर ने सेना में अपील की— मनिवा ! मुझे ज्ञात है कि इस देश के निवासिया न पिछल दिना में अनक प्रकार की किवदंतिया प्रचारित कर रखी हैं जिनका अभिप्राय तुम्हारे अन्तर केवल भय का संचार करना है। किन्तु तुम्हारे अनुभव में इस प्रकार के मिथ्यासवाद नय नरा हैं।<sup>२</sup> सना पर इसका कोई प्रभाव नहीं पडा और बोद्धनम ने कहा यद्यपि यह सत्य है कि बवरा का सख्या सम्बन्धी अफवाहा में सचेत अत्युक्ति है तथापि उन मिथ्या अफवाहा से भी अधिक होगी।<sup>३</sup> डाल

की दया पर और इन आतंक से भर रहे हैं मैं सिक्न्दर के इन वाक्या का होकर कहा निस्सन्देह हित करता रहा हूँ जिनके

हृदय श्रास से भर गये हैं।<sup>४</sup> अन्त में सिक्न्दर को स्वप्न की ओर सना का मह माँ दना प।

पूर्वामिमुख विजय सामा के निर्धारण के निमित्त सिक्न्दर ने यूनानी देवताओं के नाम पर १२ वादका-स्तम्भा का निर्माण सम्भवतः व्यास के दक्षिणी तट पर किये और तब स्वदेश-यात्रा की तयारी की।

सिक्न्दर की वापसी—स्पदेश लाटन के पूर्व सिक्न्दर ने विजित प्रदेशों के शासन की व्यवस्था कर देना आवश्यक समझा अतः उसने अपने मित्र पोरस को व्यास और बलम नदियाँ की सम्पूर्ण मध्यवर्ती भूमि तथा ५ हजार नगरों से युक्त १५ गुणतंत्रा का शासन बनाया। उसने जाम्मा का क्षेत्र की पश्चिमवर्ती भूमि का तथा अभिसार के राजा को काठमार एवं उर्पा का शासन बना दिया। इन भारतीय राजाओं के भावा विरोधी के दमनाथ सिक्न्दर ने भारत में निमित्त यूनानी नगरों में पर्याप्त यूनानी सैनिक रख दिये।

सौमति ने सिक्न्दर का आत्मसमर्पण कर दिया तब जलयात्रा की तयारियाँ होने लगीं क्योंकि क्षत्रम में उत्तर जान के बाद सिक्न्दर किसी प्रकार के खतरों को घबसित किये बिना अपने को सुरक्षित नहीं समझ सकता था। अक्टूबर के अन्त में सिक्न्दर की नावें नदी में उतर गईं। इन नावों की रक्षा के लिए दोनों तटों पर अफिस्तियन तथा अतिरस की अध्यक्षता में कुशल सैनिक दल चले। इसी प्रकार सिक्न्दर रावी एवं चनाब के संगम पर पहुँच गया।

<sup>१</sup> एरियन ५ २५, *Invasion by Alexander* पृष्ठ १२१।

<sup>२</sup> कटियस १ २ वही पृष्ठ २२३।

<sup>३</sup> वही १ ३ वही पृष्ठ २२९।

<sup>४</sup> वही पृष्ठ २२६।

<sup>५</sup> वही।

## सिकन्दर के भाग अवरोधक

सिकन्दर की सेना चिन्ताविहीन हो विजय के गौरव में फलकर स्वयंश लौट रही थी। मना का अपन विद्रोह का सफलता पर भी कुछ प्रसन्नता लगे लोगों पर वह बना जानते थे कि अभी उन्होंने जितने मयकर मग्राभा का सामना किया है उनमें अधिक मयावह युद्ध का सामना करना बाकी था। सिकन्दर का भाग राजनवाता उन भारतीय जातियाँ का नाम इतिहास में अमर है।

शिवि या सिबोई और अग्लसाई—राज्य और चुनाव के मगम की समीपवर्ती भूमि पर शिवि तथा अग्लसाई जातियाँ थी। व अमश ४०-४० हजार पश्चिमी एवं ३ हजार अश्वारोही लकर सिकन्दर की प्रतीक्षा कर रही थी। शिवि का दमन ता मिरन्दा न सफलतापूर्वक कर लिया किन्तु अग्लसाई जाति (अग्रथेणा) आक्रमणकारी का सामना करना रही और उन्होंने उमचा सना का कुछ क्षति मा, पश्चिम। पर सिकन्दर का अमल्य सना न उन्हें हतप्रभ कर दिया। कटियस न भिया है कि जब इस बार जाति न यह दया कि अब पराजय अनिवार्य है तो वह अपने घरा में आग लगा कर स्विया एवं अन्धा मन्त्रि आग की घषकता लपटा में जल मरे। महम्मन्वत भारतीय इतिहास में जौर प्रत का प्रथम उदाहरण है।

मालव और क्षत्रक—यदा परस्पर विरोधी जातियाँ विन्नी आक्रमणकारी का सामना करने के लिए मित गह और इन्होंने मयुक्त शक्ति से युद्ध की तैयारियाँ की। १० हजार पश्चिमी १० हजार अश्वारोही तथा १०० ग्या की एक विशाल सेना लेकर इन की जातियों ने यूनानिया पर आक्रमण कर दिया। जिस समय सिकन्दर मालवा के दुग पर आक्रमण कर रहा था उस समय उस एक बहुत घातक चाल लगा। अत्यधिक नर-अहार एवं रक्त-प्लावन के पश्चात् की कठिनाता से वह युग को विजित कर सता। यह युद्ध इतना मयावह रहा कि सिकन्दर के सैनिक झला कर फिर विद्रोह के अन्त में अपने राजा को बुरा भला कहने लगे। वे मन्दह करन लग कि सिकन्दर न युद्ध मन्त्रि विषा है करने यद्यन्तल बदल दिया है। 'मुने भारत में गौरवमय लौट जान दा मया' की भाँति भागन का वाध्य न करा। ये करण वाक्य आक्रमणकारी के मुह से निकल जिसका अनुकूल प्रभाव सैनिकों पर पड़ा। फिर क्या था सेना में काय करन वात निन्द्ये मालवी पर यूनानी सेना टिहना अन्त-मा टूट पड़ी। मह आक्रमित आक्रमण मला बीन रोक सकता था मालवा का लोभा से लेते पट गये। अन्त में कुछ ने समीप के उग्रम शरण ता तथा कुछ ब्राह्मणा के एक नगर में शरणाय चले गये। किन्तु 'जकि मालव कीर य उनमें कबल कुछ ही बन्ना किये जा सक और शेष मृत्यु के शिकार हुए।<sup>१५</sup> एरियन के अनुसार सिकन्दर ने तल्पचान् आयनिक अग एवं मान्गुमरी जिना का भीमा पर स्थित मालवा के दुग पर आक्रमण कर दिया जहाँ उस भाषण युद्ध का सामना करना पडा और जमा कि ऊपर बनाया गया है स्वयं सिकन्दर का इस युद्ध में घायल हो जाना पन्ना। सिकन्दर को घायल होत दण यूनाना मना मालवा पर भूषे

<sup>१</sup> कटियस १, ४।

<sup>२</sup> वही, *Invasion by Alexander* पृष्ठ २३४।

<sup>३</sup> वही पृष्ठ २३५।

<sup>४</sup> एरियन ६, ६, *Invasion by Alexander* पृष्ठ १४०।

<sup>५</sup> एरियन ६, ७, वही पृष्ठ १४४।

सिंह-मा टूट प। और फिर ता जिम शरता म मानव मनों स्त्रिया-बन्धों की निमम हत्या की गई वह यूनानियों की यज्ञ-नीति पर एक दूसरा काना घ बा है। यहाँ मित्र पर न यह चालाना का थी कि मानवा जीर शत्रुओं की शक्ति के मग्नित एव समय नों के पूव ही उनमें मानवा पर आक्रमण कर दिया था। क्षुब्धता व पास शक्ति न थी कि व सिक्न्दर का जयन मामना करते जत उन्हेन संधि कर ली। मित्र पर ने इन दोनों गणराज्या की भा फिलिप की अध्यक्षता म कर लिया जिससे यूनाना सत्ता स्थाय ही सक।

अवस्तनोई—सिक्न्दर का माग राकन क लिए अवस्तनोई अथवा अम्बल नामक जाति भी ६० हजार पत्तानि ६ हजार अवारानो तथा ५०० रथा क साथ तयार था पर इनका सामना करन के लिए पडिक्स पत्तन ही भज दिया गया था और सिक्न्दर घनाव तथा सिज के मगम पर पडिक्स की प्रनीक्षा में तब तक रुका रहा जब तक व अम्बल्टा की विजित कर नहीं लौट आया। अम्बल्टा ने स्वतंत्रता की रक्षा क लिए काफी प्रयत्न किया पर वे असफल रह।

सिंध घाटी के निचल भू भाग की विजय—सिंध नदी क भूतान तक पहुंचन म निर्म्नान्वित जातिवा न आत्मसमर्पण किय—

क्षत्रि वसाति शून्य तथा अवस्तनोई। इनक सम्बर में कुठ अधिक पात नहीं। यहा सिक्न्दर ने मयिक प्रास्थ तथा शाम्ब की पराजित किया।

ब्राह्मण विरोध—उस समय इन प्रेमा म ब्राह्मणों का राजनाति म बहुत ब। प्रभाव था। विदवा व सम्भुग इस प्रकार शक जाना उन्हें सह्य न था। अत उन्हेन मुयिक एव प्रोत्स्य का विना क लिए सलकारा। फलत इनके साथ ब्राह्मणा का भा वध कर लिया गया। एरियन न ब्राह्मणा का वार नना की उपाधि दा है।<sup>१</sup> शत्रु शत्रु के सनिका न शत्रु-क्षत्र म पदापण किया यह काइ आश्चर्य की बात न थी क्योंकि प्राचीन भारत म एस अनक उदाहरण है जब ब्राह्मणों ने क्षात्रधम स्वीकार कर लिया।

पटल—यह सिक्न्दर द्वारा अधिकृत अन्तिम नगर था। सिक्न्दर ने इस सरसता पूवक जात लिया था।

अन्तिम विदा—२५ ई० पू के सितम्बर क आरम्भ मे ही भारत छोडने क लिए पटल म ही सिक्न्दर न अपना सना के कई भाग कर दिय जिनम स एक दल निपाकस (Nearchus) क सरक्षण म जत्रमाग स चल पडा तथा दूसरा शत्ररस (Creteru) की अधीनता मे वातन क रें स चला। स्वय सिक्न्दर एक तीसरे दल के साथ अत्यन्त कष्टमय महममि स हाकर चला। अनेक बाघा रें शलता हुआ वह अपने साथिया स इरान के महस्थल म मिला।<sup>२</sup>

### आक्रमण का प्रभाव

यहाँ यह विचार करना आवश्यक है कि आखिर इस तूफानी आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पडा। सिक्न्दर क आक्रमण का बहुत कम प्रत्यक्ष प्रभाव पडा हौ अप्र त्यक्ष प्रभावा की मह्या भा कम नहीं है। सिक्न्दर के आक्रमण के क्षत्र बहुत सीमित थ और साथ ही दश क सीमान्त भाग पर। मला एसी अवस्था म वह देश पर कोई स्थाया प्रभाव कम छा सकता था। भारतीय साहित्य म इस आक्रमण का वहा भी

<sup>१</sup> एरियन ६ ७ वही पठ १४४।

<sup>२</sup> अत्यन्त कष्टप्रद माग घनने में सिक्न्दर का क्या अभिप्राय था यह स्पष्ट नहीं हो पाता। क्या वह कष्टघातना द्वारा अपनी जिम्मेता की फिटाना चाहता था ?

उत्पन्न नहाना इसका सबसे बड़ा प्रमाण है। फिर भी कुछ सामां तक तो इस आक्रमण न भारत को प्रभावित किया ही। १० म्मिष न लिया है—

मागस्य अपरिवर्तित रहा। यद्ध का घाव शीघ्र ही भर गया। जैसे सन्नोपी बर्ना तथा वनस अण्ण सन्नापी विमाना १ अपन अपन अवरद्ध कार्यों को प्रारम्भ किये वस ही विनष्ट क्षत्र पुन नहाना उठे और वह स्थान जहा असह्य नर-हत्यायें हुई थी पुन असह्य प्राणियां भ परिपूष हा गय। १ भारत पर यूनानियों का प्रभाव नहा पया। भारत अपना मय एकाका जीवन बिताता रहा और शीघ्र ही यूनाना तूपान को मर गया। हिंदू बाद अवया जन किसी भा भारतीय लग्य न मिक-दर या उसक कार्यों का नाममात्र का भी मकत नही किया है।

इनक सभयक अनक इतिहासकार है। राधाकृष्ण मुक्जी न भा नारदार शऱा म यह घापणा की है कि मिक-दर क आक्रमण का कई स्वाया प्रभाव नपी प । उरनि ता महां तक बऱा है कि यनानी और भारतीयों का सच्चा लड़ाई ता हा ही नऱा पाई, बवऱ एक पवतीय या सामान जातिया का पराजित कर देन म हा यह काय सम्पन्न नहा हा गया। वास्तविकता जा भी हो एम आक्रमण का तात्कालिक राजनीतिक प्रभाव ता पऱा ही।

राजनीतिक प्रभाव--भीमा त प्रदशा का दानी छोटी जातिया का पराजित करव मिक-दर न एक एसी पष्ठममि तयार कर दी जिनक चद्रगत को भारत म राजनीतिक एवता स्थापित करने का अवसर मिला।<sup>१</sup> पश्चिमात्तर प्रदेश म स्थापित उसरा क्षत्र पीय श्रवम्बा यद्यपि म्का मरु क प चान ही ममाप्त हा गइ तयऱपि उसम भारतीय राजनीति का प्रेरणा मिला।<sup>२</sup> भारतीय इतिहास क कुछ पठा का मिक-दर के लग्य साधिया न प्रकाशित करने म भा पाग दिया।

सातायात एव वाणिज्य पर प्रभाव--मिक-दर क आक्रमण क पनस्वरुप स्थल एव जन के चार स्परट मार्गों की धाज हुई जिससे भारत तथा पश्चात्य दशा म व्यापारिक एव सांस्कृतिक सम्बन्ध म जा पहले से ही स्थापित था घनिष्ठतर हा गया। इन दोनों व्यापारिक सम्ब धा की घनिष्ठता का परिचय बर्बीलीनिया की डला प्रचुर मद्रायें हैं जो उत्तर पश्चिम भारत म काफी मात्रा म मिला हैं। यह व्यापारिक सम्पक पहले से स्थापित था किन्तु वाणिज्य मार्गों की मोज क परचात् हा इसम अभिवद्धि हुई। भारत म स्थापित यूनाना नगरों की मोज न मी यूनान तथा भारत क व्यापार का बढ़ाया हागा।

सांस्कृतिक प्रभाव--राजनीतिक एव आर्थिक प्रभावा क अतिरिक्त इस आक्रमण का सांस्कृतिक प्रभाव भी पया। यूनानो नागरिका क सम्पक म आकर भारतीय नागरिका न उनम कुछ सासा और इस प्रकार मस्कृति का आदान प्रदान हुआ। एशिया म मिक-दर न अनेक उपनिवेशों की स्थापना की था जिनम एक बकिट्रया म भा था। बकिट्रया क यूनानी शासक न अशक के डुबल उत्तराधिकारिया क शासन काल म भारत पर आक्रमण किया और पजाब तथा भारत का पश्चिमात्तर सीमा पर उहान पुन यूनाना सना

<sup>१</sup> रामधौदरी सहोदय न ठीक ही सिता है कि उपसेन महापद्य (महापद्यनद) चद्रगत भीय क पुयी शाखा य करण्डिया शासक था तो उस शाखा क की मीव उत्तर पश्चिम सीमा प्रा तमें बड़ बरनश ता मिक-दर था। *Political History* 1 Edition पृ० २६३

<sup>२</sup> हेतिय क० हिंदू भाग १ पृ०, ४३३-३४।

स्थापित की। इन शासकों ने भारतीय मृग का परिष्कार किया। तत्पश्चात् में इण्डो ग्रीक शासकों की मुठायें प्राप्त हुई हैं। वे सुन्दरता की दृष्टि में महत्वपूर्ण हैं। इन मृगों की सुन्दरता से ही प्रभावित होकर सम्भवतः आगे चलकर भारतीयों ने भी इनका अनुकरण किया और प्राचीन मृग निर्माण शैली का त्याग किया। भारत में यूनानी उत्सु शैली तथा चांदी के द्रुम (दाम) मिश्रण का प्रचलन विशेष उत्तमनाम है। यहाँ बकिट्टिया प्रदेश कर्त्तव्य के शासन काल में भारतीय शासन के अन्तर्गत था और इसके पतन के पश्चात् जिस प्रकार भारत में गांधार शैली का उदय हुआ इसके सम्बन्ध में हम जाग पड़ेंगे।

किन्तु ये सारे प्रभाव गितन भर का ही हैं। इनमें किमा में उनकी सम्मिलित नयी है। वास्तव में कुछ काल तक हिंसक नगम आक्रमणकारी के रूप में रहनेवाला जाति किसी जाति पर जिस पर वह आक्रमण कर रही है और जो उस इस आक्रमण के कारण घृणित दृष्टि में देखनी है क्या प्रभाव डाल सकता है वह भा उम देगा में जब प्रभावित का जान वाली जाति उसमें सम्मिलित एवं मस्तिष्क के क्षेत्र में किनी प्रकार पिछी न हा।

## Questions

### Lucknow University

1 Give a short account of the political condition of the Punjab and Sind at the time of Alexander's invasion

### Agra University

1 Show how far the Indian rulers were responsible for the success of Alexander the Great in his Indian Campaign (1942)

2 Give a short history of Alexander's campaign in the Punjab with special reference to the Battle of Hydaspes (1943)

3 Discuss the main incidents in the retreat of Alexander the Great. Why did he not advance beyond the Beas? (1944)

4 Describe the political condition of the Punjab when Alexander invaded India (1948)

5 Discuss the part played by (a) the kings and (b) the republics of the Punjab and Sind in resisting Alexander's invasion of India (1952)

6 From the Indian standpoint its importance lies chiefly in the fact that it opened up a free intercourse between India and the west. For the rest there is nothing to distinguish this raid in Indian history. Do you agree with the above remark of Dr P. C. Majumdar about the invasion of Alexander?

Give a brief account of Alexander's invasion of North western India (1959)



# मौर्य-काल | १३

चन्द्रगुप्त मौर्य

यूनाना आक्रमणकारों मिकन्दर जिस समय भारतवर के सामान्य प्रजा पर अपना फाता आक्रमण कर रहा था और दुबन एवं वैमनस्य स्वतन्त्र भारतीय राजाओं का कितने का अपहरण करने में लगा था उन्ही समय मगध के विज्ञान साम्राज्य में एक भारतीय नववयस्क अपना राजनैतिक शक्ति का संचय कर रहा था। वह युग राजनैतिक अनकता का युग था। मगध भारतवर्ष में (कम से कम उत्तरी भारत) मगध ही एक शक्तिशाली एवं सुमर्यादित राज्य था। मिकन्दर के आक्रमण का उन्मुख करने हुए पिछले सिन्धु नदी के तट पर जनाया था कि विश्व विजिता मिकन्दर की अजय सेना न किस प्रकार नन्द-सम्राज्य का विनाश का कल्पना मात्र में थी मयातुर शोक आग प्रदान में अममयना प्रयत्न का था। दूसरी ओर एक अकता व्यक्ति हम विज्ञान साम्राज्य को पग जित करने का साधक रहा था। उन्का महत्वाकांक्षी कविकृत कल्पना मात्र न थी बरन उसने नन्दों का समूल नष्ट करके मगधुच भारतीय इतिहास में एक नये युग का निर्माण किया। इस उत्साहा वार युग का नाम चन्द्रगुप्त मौर्य तथा उन्का साम्राज्य का नाम मौर्य साम्राज्य है।

मौर्य साम्राज्य के सम्बन्धक चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डाल देना आवश्यक है।

चन्द्रगुप्त का प्रारम्भिक जीवन—उन्का जन्म पुत्रा के विख्यात पुत्र चन्द्रगुप्त का जन्म लगभग ३४५ ई० पू० में हुआ था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि मगध साम्राज्य के उन्के वंश के समय मौर्यों का मगध का अन्त हो चुका था। इन्हा मौर्यों के प्रधान का पुत्र चन्द्रगुप्त अपना विधवा माता द्वारा किया प्रकार पाला जा रहा था। इसक शेष प्रारम्भिक जीवन पर प्रकाश डालने के पूर्व इनका जन्म का जटिल समस्या का सुलझाने का प्रयास किया जाएगा। भारतीय इतिहास में किताबों में मगध का जन्म के सम्बन्ध में इनके मत नहीं प्रचलित हैं किन्तु कि चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म के सम्बन्ध में प्राप्य है। इतिहासकारों तथा अनुसन्धीयों एक वाक्यवादा में चन्द्रगुप्त का जन्म पर मतभेद है। कुछ इस क्षत्रिय मानते हैं तथा कुछ शूद्र धारण करने हैं। यूनाना नये जस्टिन के कथनानुसार चन्द्रगुप्त का जन्म निम्न कुल में हुआ था। जन्म जन्म के अनुसार ना यह किताब बहुत ऊँचे कुल का नहीं था अपितु इसका जन्म एक गरीब के प्रधान के घर में हुआ था जिसमें 'सुरपायक' (मारपालनकार) रहा करने थे। सुरपायक कुल में उत्पन्न हाने के नाते चन्द्रगुप्त का माय का पालन प्राप्त हुई। चन्द्रगुप्त मौर्य का निम्न कुल का वतानुज्ञान दूसरा साधन विष्णु-पुराण है। मौर्य शब्द के आशय पर हा विष्णुपुराण में यह निम्न निम्नता गया है कि चन्द्रगुप्त का जन्म नन्द राजा की मुग नामक स्त्री में हुआ था। किन्तु सम्भूत-वाक्य के अनुसार मुरास मौर्य शब्द वना न कि मौर्य। टाकाकार वास्तव में चन्द्रगुप्त का सम्बन्ध राजपूत में जाहना चाहता है किन्तु दत्तवादा एवं अनुसन्धीयों का छोर उन्का मति है कि परन्तु जिसके फलस्वरूप उन्का चन्द्रगुप्त का माता का नाम शूद्र स्थापना रख दिया। या राजाहुनु मुगना न

लिखा है कि विष्णुपुराण का 'टीकाकार व्याकरण वैश्यामा का पासन करने का अपेक्षा चन्द्रगुप्त को एक माँद ड दन के लिए अधिक इच्छुष है। मुवर्जी ने यह भी बतनाया है कि टीकाकार ने मुरा को शत्रु भी नहीं लिखा है। बृहत्कथा म भी चन्द्रगुप्त का तुच्छ कुल का बतलाया गया है। विशाखदत्त द्वारा रचित मुद्राराक्षस नाटक म चन्द्रगुप्त मौर्य का वपल शब्द से सम्बन्धित किया गया है। वहाँ-वहाँ इस कुल होने भी कहा गया है। कुछ विद्वान् इन शब्दों का अर्थ शू अथवा निम्न जाति से लेते हैं। किन्तु कुछ विद्वानों का यह मत है कि कुलहान का अर्थ जाति बहिष्कृत न होकर छोटे परिवार से है। वही प्रकार वपन का अर्थ भी वप अथवा राजाआ का प्रधान से लिया जाता है। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि मुद्राराक्षस की रचना बृहत्कथा के आधार पर हुई है। अतः इस विषय म इसका कोई मालिकता नहीं है।

इस प्रकार हम दण्ट है कि जल्दिन साहब विष्णुपुराण की टीकायें बृहत्कथा तथा मुद्राराक्षस चन्द्रगुप्त मौर्य को तुच्छ कुल का बतलाते हैं। इनके अतिरिक्त अय कोई

कहता है दक्षिण अर्ध क्षत्रिय वच पत्राष्ट परिमक्षयामि अर्थात् देवि में क्षत्रिय हूँ प्याज कसे प्या सकता हूँ। स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय ही रहा होगा तथा उसका वंश अशोक स्वयं का क्षत्रिय घोषित करता है। वही प्रकार एक अन्य बौद्ध ग्रन्थ महावश चन्द्रगुप्त को मारीय क्षत्रिय कुल का मानता है।<sup>२</sup> मारीय क्षत्रिया की उपस्थिति का प्रमाण हम एक अन्य प्रामाणिक बौद्ध ग्रन्थ महापरिनिब्बान मुत्त<sup>३</sup> से प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ म मौरिया का पिप्पलि वन का शासन बतलाया गया है। इस ग्रन्थ म यह लिखा हुआ है कि पिप्पलि वन के मारियो ने मल्लाक पास महात्मा गौतम बुद्ध के पावनादणप का कुछ अंश मागन के लिए एक दूत यह कहला कर भजा कि महात्मा गौतम बुद्ध क्षत्रिय वंश के थे और हम लोग भी क्षत्रिय हैं। इस विवरण से मौरिया क्षत्रिया का उपस्थिति का प्रमाण प्राप्त हो जाता है और साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य निश्चय ही इन्हीं मौरियो से सम्बन्धित क्षत्रिय कुल का रहा होगा। दिव्यावदान का क्षत्रिय होना प्रमाणित होता है। इनके अतिरिक्त जन ग्रन्थ से भी चन्द्रगुप्त का क्षत्रिय होना सिद्ध हो जाता है। इन जन ग्रन्थों में परिशिष्टपवण तथा कल्पमुत्त विशय उत्तरखनीय हैं।

एलियन सर जान माशात तथा टा० हमचन्द्र राय चौधरी<sup>४</sup> भी चन्द्रगुप्त मौर्य को क्षत्रिय स्वीकार करते हैं।

<sup>१</sup> काबिल तथा नील का संस्करण, पृष्ठ ३७०। इसी ग्रन्थ में अशोक अपने को क्षत्रिय कहता है।

<sup>२</sup> मौर्यघातान क्षत्रियानाम वचो जातः।

<sup>३</sup> SBE Sacred Books of the East XI pp 134 135

<sup>४</sup> The ancestry of Chandragupta is not known for certain Hindu literary tradition connects him with the Narda dynasty of Magadha Tradition recorded in Mediaeval inscriptions however represents the Maurya family from which he sprang as belonging to the solar race From M. A. S. L. a piece of that race appears

चन्द्रगुप्त मौर्य की जाति पर प्रकाश डाल लेने के पश्चात् इसकी तिमिराच्छादित प्रारम्भिक जावन पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया जायेगा। इस विषय में हम बौद्ध अनुश्रुतियों का ही महाराज लेना पता है। इनके अनुसार चन्द्रगुप्त मारिया के प्रधान का पुत्र था। पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी पुष्पपुर (कुमुमपुर अथवा पालिपुत्र) में रहने लगी या जहाँ उसने चन्द्रगुप्त का जन्म लिया। यानके विभिन्न कठिनाइयाँ का सामना करना हुआ महा कुर्यातिन चाणक्य का दृष्टि में पता जिसने उसका अद्वितीय प्रतिभा का रूप कर उस अपने साथ तथाशिला लेने का निश्चय किया। चाणक्य तथा चन्द्रगुप्त की भेंट-सम्बन्धी कथाओं का सत्या अगणित है। इस विषय में प्रामाणिक ढंग से कुछ कहना कठिन है। कहा जाता है कि चाणक्य ने चन्द्रगुप्त का विभिन्न प्रकार का कथाओं एवं विचारों की शिक्षा दी। कुछ दन्तकथाओं तथा अनुश्रुतियों के अनुसार चन्द्रगुप्त और चाणक्य की भेंट उम समय हुआ है जब एक आर्य नन्द राजा का सनापति चन्द्रगुप्त अपने स्वामी से किसी कारणवश असन्तुष्ट होकर प्रतिकार की भावना से राज्य छोड़ रहा था तथा दूसरे ओर अपना बुरूपता के कारण नन्द राजा द्वारा अपमानित चाणक्य नन्दवश का समूल नाश करने का प्रण करके प्रयत्नगत होने जा रहा था। चन्द्रगुप्त तथा अन्तिम नन्दराजा के मध्य का कथा मिलित्यहो पुराण मुद्रारामस नाटक महाकाव्य टीका तथा परिशिष्ट पवन म मित्रजी है। वास्तविकता जा माँही इतना समी इतिहासकार स्वाकार करते हैं कि चन्द्रगुप्त तथा चाणक्य दोनों ही नन्द राजा से असन्तुष्ट थे। साथ ही नन्द राजा का बुरा एव नृशमता में प्रपीडित जनता का मुक्ति की प्रार्थना कर रहा था। इतना ही नहीं मारुतवप पर निवृत्त द्वारा स्थापित विन्शा शासन का मार्गाय जनता का प्रिय न था। कौटिल्य के अथशास्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि नैम-वासिया का इस विन्शी शासन से विनता अधिक घणा था। चाणक्य ने अपने मय में इस बात का स्पष्टीकरण किया है कि विन्शी विजेता किस प्रकार दण का अधिक शोषण करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त के सम्मुख दो मारा समस्यार्थ उपस्थित था (१) नन्द वश का अन्त करके नैम-वासिया का नृशमता एवं निरपता से मुक्त कराना तथा (२) विदशा शासन का अन्त करके नृश का स्वतंत्रता का रक्षा करना।

कुछ इतिहासकारों का कथन है कि अपने प्रथम उद्देश्य का पूर्ति के लिए चन्द्रगुप्त पञ्जाब में निवृत्त से मित्रा और उसने विन्शा शासनकार का मगध पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। उस समय तक मगध की सत्ता विद्रोह हो चुका था। अतः यह कुछ न कर सका। यूनानी इतिहासकार गेन्टिन के कथनानुसार चन्द्रगुप्त अत्यन्त

to the Maurya line In the Pajputana Gazetteer the Moris (Mauryas) are described as a Pajput Clan

In the Mahaparinibban Sutta the Moryas are represented as the ruling clan of Pippalivan and as belonging to the Kshatriya caste As the Mahaparinibban Sutta is the most ancient of the works referred to above (Parisistaparvan Mahavamsa and Divyavadan) and forms part of the early Buddhist cannon its evidence should be preferred to that of later compositions It is therefore practically certain that Chandragupta belonged to a Kshatriya community viz the Morya (Maurya) clan

दत्त युवक था। उससे अहकार ने यूनाना विजिता का इतना अप्रसन्न कर दिया कि चंद्रगुप्त का विवेश होकर यूनानी कम्प छा ना पया।<sup>१</sup> इतिहासकार प्लूटार्क भी चन्द्रगुप्त का सिक्न्दर के पास जागे स्वीकार करत है।<sup>२</sup> किन्तु इम बात का काँ त्वमगत प्रमाण नही मितता कि चन्द्रगुप्त न सिक्न्दर का मगध पर आक्रमण करके नद राजा का पतन करन के लिए आमंत्रित किया था। सम्भवत चन्द्रगुप्त ने यह साचा हो कि यूनानी आक्रमणकारी अपना मगधत सना नारा नद सना का विवेश करके वापस नी जायगा और तब राजनातिक अव्यवस्था द्वारा प्रस्तुत दुःखना से नाम उठा कर मगध राज्य पर आधिपत्य स्थापित किया जा सकता है। इमा भावना से प्ररित हाकर कुछ इतिहासकार चन्द्रगुप्त द्वारा सिक्न्दर को मगध आक्रमण के लिए आमंत्रित करन का बार्ने करत है। भारतीय यूनानी रायो का राजनातिक दुबलता पर ध्यान देत हुए यूनाना अधिकार के पश्चान मगध राज्य का दुःख हो जाना भी त्वमगत जान प ता है जा दूरदर्शी चाणक्य की कल्पना के अदर आ सकता था। चाणक्य भीमा प्रान्त का मूल निवासि था। नद राज्य म भी उनम काफी समय व्यतीत किया था अत उस दानी स्थाना की राजनातिक परिस्थि निया का विशेष जान रहा हागा। किन्तु यहा भी वही प्रान उठ खडा हाता है कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य की भेट इस घटना के पूव हाता है अथवा-मन्त्रात्। अत जब तक की दिशप त्वमगत प्रमाण नही प्राप्त हो जाता सिक्न्दर नारा मगध राज्य का विनाश करान की बात सदिग्ध ही रह्या। चन्द्रगुप्त आर चाणक्य का किसी प्रकार भी नद्वश का अन्त करके शामन सता का अपने हाय म लना था और इमके लिए वे दोना प्रयत्नशील थे।

अब हम विदेशिया से देश को मकन करान की समस्या पर प्रकाश डालेंगे। इसके लिए तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति का कुछ जान प्राप्त कर नना आवश्यक है। यह पहले ही कहा जा चुका है कि भीमाप्रान्त का जनता यूनानी शामन से असंतुष्ट थी। उसने अपने यूनानी क्षत्रप फिनिप की हत्या कर दा था। चन्द्रगुप्त ने इस अशान्ति से पूरा लाभ उठाया। उसने विनाही जनता को प्रारमाहित करन म अपना सारी शक्ति लगा दी। विनाह उत्तरातर बढता गया। सिक्न्दर का जब य मूचना मिला तब वह पूणतया विवेश था। उसकी सना किसी प्रकार भा विनाह दवाने का नी नही सकता थी। अत उस अपने भारतीय मित्र राजाआ पुर तथा आम्मी पर भरोसा करना पया। उसने उनसे सीमा प्रान्त के यूनाना शामक युद्धो की अध्यक्षता म इस विनाह का दमन करन की इच्छा प्रकट की किन्तु वे कुछ न कर सक। २३ ई पूव के जन म जब सिक्न्दर की अवात मत्य हा गई तो चन्द्रगुप्त तथा विनाहिया के लिए परिस्थिति और भी अनकू

<sup>१</sup> This man Chandragupta was humble origin but was stimulated to aspire to regal power by supernatural encouragement for having offended Alexander by his boldness of speech and orders being given to kill him he saved himself by swiftness of foot

<sup>२</sup> Androkottus (Chandragupta) himself who was then a lad saw Alexander himself and afterwards used to declare that Alexander might easily have conquered that whole country as then the king was hated by his subjects on account of his mean and wicked disposition —Life of Alexander XII

हो गई। चन्द्रगुप्त का जन्मवानी मालव तथा क्षुद्रक जातियाँ की राष्ट्रपिता एक स्वतंत्र प्रियता का प्रमाण मिल चुका था। वह उस वार जाति मन्त्राका प्रभावित था। महावश टाका व अनसार चन्द्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त ने साम्राज्य का विभिन्न जातियाँ से सना व लिए रणभटा की मूर्तों का थी। चन्द्रगुप्त की सना का उत्तर जस्टिन साह्य ने भा किया है और उहने चन्द्रगुप्त व नतिना का पजार व गणतंत्र का निवासो धननाय है। हिमायम राजा पवनक मंत्री चन्द्रगुप्त ने अपन उद्देश्य का पूर्ति व लिए मित्रता स्थापित कर ती थी जिनका उत्तर मद्रास तथा परिगुप्त पवन (जन ग्रम) भ किया गया है। पवनक द्वारा चन्द्रगुप्त का मन्त्रि महायता प्राप्त था जिसका प्रमाण मुहाराधम है। चन्द्रगुप्त ने भारत व यनाती शानक फिनिष तथा मय स्वामी की मत्य व वाच दीवर्षों (३२५- २२० पूव) में मनातयार चन्ना था। जस्टिन महात्म व विवरण स यह निष्कप निकाता जा मयता है कि चन्द्रगुप्त ने मन्त्रि मगठन कर उन व पचात स्वयं का राजा घोषित कर दिया और तत्परांत उमन मित्र र व प्रतिनिधियाँ व विन्द युद्ध ले दिया जिनम उसका मयता प्राप्त है। यनाती मयका व विवरणा व जाया पर यह भी निष्कप निकाता जा मयता है कि चन्द्रगुप्त ने २२१ अथवा ३२ ई० पूव व पहली मिय घाटी व निचन काठ म स्वातंत्र्य मग्राम आरम्भ किया था और उम ३१७ ई० पूव म पूण मयता प्राप्त हुई था क्यकि म मय यनाती क्षत्रप यूनान भारत को हमशा व लिए छा लिया था। म प्रकार १७ ई० पूव म चन्द्रगुप्त पजाव तथा मिय का शासन उन गया।

राज्याराहण—अ चन्द्रगुप्त अपन प्रथम उत्तर्य ता पूर्ति की आर जुका क्यकि यह वेवन मिय या पताव का शासक नया हुना चान्ना था वन उम ता नला व विनाय साम्राज्य चाहिए था।

चन्द्रगुप्त द्वारा मय राय अधिकत किय जान व प्रामाणिक विवरण का अनाव है। महावश टाका म एक कहाना जाना है जिनम चन्द्रगुप्त व प्रथम प्रयास की मूल का वाच हुना है। एक माता अपन बन्ध का मयमा का चनाता का वाच स याना है और ऊपरी टिलक का फेव दे रहा है चन्द्रगुप्त मयता है जा मय राय पर जात्रमण करन म पत्रा बार विषय हा चुका था। एक जन अनुभूति ना मया प्रकार चन्द्रगुप्त व मगध आक्रमण का तुतना मय वच म करता है जा जनता हराता का विनाय क ठ मगध स नता करवाच सताता है। इन विवरणा म मया परिर्लिन हाता है कि चन्द्रगुप्त ने मगध राय पर पन्न म आक्रमण किया था जिनम व अनयन रहा। राड अनुभूति चन्द्रगुप्त की दूसरा मन्त्रि मूल का उल्लय करती है। मय आसार चन्द्रगुप्त ने इस वारतामा प्राप्त म मन्त्रि प्रयाण किया और उसन जनक राष्ट्र तथा जनपदा ता जा मा म पराजित किया। किन्तु उसन एक मय मूल यह की कि अपना विजया को स्थापित व प्रदान करन के लिए मन्त्रि दन का मियनि विजिन प्रदता म नहा की थी। जब चन्द्रगुप्त अपना मूला का सुरार करक ३१४ ई० पूव म मगध राय पर आक्रमण करी हुआ। किस प्रकार चन्द्रगुप्त ने नन्द सना का विवस करक मगधराय पर अपना आधिपत्य स्थापित किया इसका विस्तत किन्तु अत्युक्तिपूण विवरण मिनि पदह पुराण कौटिल्य का अधशास्त्र तथा मुनरायस नायक म प्राप्त हाता है। मिनि पदह म मगध सना के विनाश का विस्तत वणन किया गया है। ब्राह्मण ग्रम नया व विनाश का थय कौटिल्य अथवा चाणक्य का दन हैं। कौटिल्य व अयमास्त्र स भी नया व विनाश तथा चन्द्रगुप्त का राय दिनान का थय चाणक्य का लिया जाना ता परिर्लिन होता है। मया रासस नायक म चाणक्य द्वारा यह कहलाया गया है कि उसने नला का स्वय

नाश किया। इन क्याओ मे ऐतिहासिक तथ्य कहीं तक निहित है यह नहीं कहा जा सकता और इसीलिए यह निश्चय करना कठिन है कि चन्द्रगुप्त और चाणक्य में नन्द वंश का विनाश करने का श्रेय किसको दिया जाय। वास्तविकता जो भी हो इतना निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि पञ्जाब तथा सीमाप्रान्त से एक बड़ी सेना तैयार करके चन्द्रगुप्त ने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया और उसने धनान्न की मार डाला। विष्णुपुराण में यह उल्लेख प्राप्त होता है— ततश्च नववतान्गान् कौटिल्यो ब्राह्मण समुद्धरिष्यति। तेषामभावे मोर्षा पथिवी मोक्ष्यन्ति। कौटिल्य एव चन्द्रगुप्तमुत्तम राज्यभिवदयति। चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का विधि क विषय में कुछ प्रकाश डाल देना आवश्यक है। नन्दवंश का अन्त सम्भवतः सिकन्दर के सौम्य के शोघ्न पश्चात् हुआ। इससे चन्द्रगुप्त के राज्यारोहण का विधि लगभग ३२१ ई० पूर्व मानी जा सकती है। एक अन्य प्रमाण द्वारा भी स्थिति का समर्थन हो जाता है। सिंहली प्रमाण के अनुसार शिशुनाग वंश का अन्त ३४३ ई० पूर्व में हुआ तथा नन्द राजाओं ने केवल २२ वर्षों तक राज्य किया। इस संक्षेप के आधार पर गणना करने से नन्दों का अन्त तथा चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण (३४३-२२) ३२१ ई० पूर्व में माना जा सकता है।

**चन्द्रगुप्त मौर्य की दिग्विजय**—कुछ वर्ष पूर्व का एक माघारण युवक मगध के सुविख्यात राज्य के सिंहासन पर आसूढ़ हुआ निश्चय ही यह एक बन्त बड़ी बात थी। अब तक के भारतीय इतिहास का सम्भवतः यह पन्ना उजाहरण था कि अनेक बल बूने एवं पौरुष पर एक माघारण स्थिति का प्रकृत सम्प्राप्त बना। चन्द्रगुप्त के लिए सर्वोप का अधिक अवसर था किन्तु महत्वाकांक्षा चन्द्रगुप्त के हृदय में एक अत्यन्त विस्तृत एवं सुसंगठित साम्राज्य स्थापित करने का इच्छा थी। वह किसी प्रकार भी इस सीमित मगध राज्य से मनुष्य नही हो सकता था। मौर्याग्यवश ससार्थ का सम्भवतः पहला साम्राज्यवादी नीतिन चाणक्य उमका मन्त्री तथा आचार्य था। अतः दो साम्राज्यवादियों का संयुक्त इच्छा ने साम्राज्य विस्तार के निज सैनिक प्रयाण को आरम्भ किया। मगध चन्द्रगुप्त का केवल महत्वाकांक्षा का ही इस दिग्विजय का कारण नहीं कहा जा सकता अपितु स्वयं मगध राजनीतिक एकता म्यापित करने के विदेशियों से इसकी रक्षा करने की भावना भी उस सैनिक प्रयाण के मूल में है। दिग्विजय का एक तीसरा महत्वपूर्ण कारण यह था कि चन्द्रगुप्त ने सिकन्दर कालीन भारत की राजनीतिक अवस्था का भली भाँति अध्ययन किया था। उसने यह देखा था कि दश का छान्छा छान्छे विभिन्न राज्यों में विभक्त रहना कितना हानिप्रद होता है जोर इसमें बाह्य आक्रमणकारी का सफलता तथा देशों राज्या की जमकलना को कितना प्रोत्साहन मिलता है। चन्द्रगुप्त ने जिस परिणाम द्वारा मगध का राज्य प्राप्त किया था उस स्थायित्व तथा दृढ़ता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि वह अपनी साम्राज्य साम्राज्य का विस्तार करे जिसमें विशाल साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् सैनिक तथा आर्थिक स्थिति काफी अच्छी हो सके। इस प्रकार हम देखते हैं कि साम्राज्यवादी स्वतन्त्रता तथा सुरक्षा के दृष्टिकोण से चन्द्रगुप्त की दिग्विजय के लिए रणधोरण करना आवश्यक था। एक चतुर्थ किन्तु गौण कारण इस रणधोरण का यह भी था कि सिंहासनारोहण के पश्चात् भी नन्द कुल से सम्बन्धित अथवा उनके ही राजा चन्द्रगुप्त से द्वेष एवं ईर्ष्या रखने थे। मुगधराजस में चन्द्रगुप्त के अनेक वैरियों का उल्लेख किया गया है। नन्द राजा का मन्त्री राक्षस चन्द्रगुप्त के विरुद्ध अनेक प्रकार का पथ्यन करता हुआ उक्त नाटक में उल्लेखित गया है। मन्त्री राजस मल ही

एतिहासिक व्यक्ति न हो और वह विशालदत्त का कल्पना-जनित व्यक्ति हो, पर इतना तो स्वीकार ही करना पड़ेगा कि राज्यारोहण के पश्चात् भी चंद्रगुप्त का अपने शत्रुओं से भय था। वे शत्रु निश्चय ही राज-कुल के रहे होंगे और उनके दमन के लिए विस्तृत एवं सुसंगठित साम्राज्य की स्थापना तथा सैनिक शक्ति की वृद्धि आवश्यक थी। चंद्रगुप्त के शत्रुओं की उपस्थिति का प्रमाण हम मगधस्थलीय व विवरण से भी प्राप्त हो जाता है। उसने लिखा है कि चंद्रगुप्त का जीवन सदैव सकटमय था। फलस्वरूप उसे गति में कभी बदल बदल कर सोना पड़ता था।

सबप्रथम चंद्रगुप्त ने पंजाब पर आक्रमण किया और वहाँ से यूनानी विजय के अवशेष चिह्न का सर्वदोष के लिए अंत कर दिया। अब भारतवर्ष में यूनानी राज्य का नाम तक नहीं अवशेष रह गया था। देश का विदेशिया व हाथ से मुक्त कराने के पश्चात् चंद्रगुप्त ने भारत व अश्वघाता की जीतने का निश्चय किया। चंद्रगुप्त की इन विजयों का विस्तारपूर्वक वर्णन हम प्राप्य नहीं है पर कुछ विदेशी लेखकों से हमें इन विजयों का संकेत प्राप्त होता है। चंद्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार का वर्णन करते समय उसकी विजयों का उल्लेख किया जायेगा। यहाँ केवल इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि चंद्रगुप्त ने सम्पूर्ण उत्तर भारत तथा दक्षिण भारत के अधिकांश भूभाग के बीच के राजाओं का अपनी अधीनता स्वीकार कराने पर राध्य किया। चंद्रगुप्त का सैनिक शक्ति का सब श्रेष्ठ उदाहरण हमें जिस घटना से मिलता है वह सिल्यूकस की पराजय है।

सिल्यूकस की पराजय—जिस समय चंद्रगुप्त मौर्य साम्राज्य के विस्तार में सत्सीन था उसी समय भारत पर एक नई आग जाई जिससे पूरव की भाँति पुनः देश को राजनीतिक तथा आर्थिक क्षति होने का आशंका थी किन्तु जसा कि ऊपर कहा जा चुका है चंद्रगुप्त ने राज्यारोहण के पश्चात् ही अपनी सैनिक शक्ति इतनी प्रबल कर ली थी कि वह बड़ी स बनी आपन शलन तथा भयकरतम आक्रमण रकने में समर्थ था। यह आनी थी यूनानी सनापति सिल्यूकस का आक्रमण।

यूनानी विजयान सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् उसका विशाल साम्राज्य छिन्न भिन्न हो चुका था। सनापतियों में महत्त्व के लिए स्पष्टता स्वाभाविक था। उहाँ प्रतिस्पर्धी सनापतियों में सिल्यूकस नामक सनापति अत्यधिक शक्तिशाली तथा महत्वाकांक्षी था। वह सिकन्दर के साम्राज्य के पूर्वो भाग का अधिकारी था। यूनानी सिकन्दर द्वारा विजित स्थानों पर अपना उत्तराधिकार समझत था। सिल्यूकस ने भी भारत का पूर्व भाग जिस पर सिकन्दर ने विजय प्राप्त की थी अपने अधीन कराने का निश्चय किया। ३०५ ई० पू० तक उसने सम्पूर्ण पश्चिमी एशिया पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। तदुपरान्त उसने भारत का ओर अपना विशाल सना व मह माँ दिया। किन्तु दुर्भाग्यवश वह भारत को तत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति से पूर्णतया अनभिज्ञ था। उस ३२४-२३० ई० पू० के भारत तथा ३०५ ई० पू० के भारत का राजनीतिक परिस्थितियों का अन्तर नहीं जान था। सिकन्दर का तीन मृत्यु तथा चंद्रगुप्त का तीन भारत में महान अन्तर था। सिकन्दर का छान-छाने वाला भारत का राजा का सामना करना पड़ा था, उसका समय उन राजा में हुआ था जिनमें न केवल सैनिक दुर्बलता थी प्रत्युत् उनमें पारस्परिक द्वेष एवं द्वेषी भा कूट-कूट कर मरी हुई थी। इसके प्रतिकूल सिल्यूकस एक ऐसा शक्ति का सामना करने जा रहा था जो अपने राजनीतिक एवं सैनिक संगठन में अब तक के भारतीय इतिहास में अद्वितीय है।

१०७ ई० प० म सिन्धुवन सिध चर्चा। सिन्धुवन या युनायो म आगारा विव विमान या जी १०० न प्रतीना न अर्चिचि विमा शा गति क विप युनायो मना वा दमन उममनव न, वा वनि अवय था। सिन्धु या चन्द्रगुप्त न युना गिरि म डम १०० प्रपना का सिधा प्राप्त की था। अत एव मक मिठाना सिन्धी एक चना न युगतवा परिचित था। सिन्धुवन मथा चन्द्रगुप्त मीय क मधुपों क विन्तन वान का अनाद है जी मनानी १०० मयु का परिणाम माय वल्लक वा न जय है।<sup>१</sup> किन्तु यह अनुमान ठाया ज मवना है सि १०० न शक्तिया म कु उ मना एक अवय ही मधुप टुजा हा। अत म सिन्धुवन का चन्द्रगुप्त क मामन मयु न क न प। मक इसी समय सिन्धुवन का अपन एक जय मनु अनाकानम म युद्ध कान क निर पचि न लीट जाना था। चन्द्रगुप्त का अतीय शक्ति तथा आना मरिय सिन्धिनि का ध्यात एवन दूरे सिन्धुवन का चन्द्रगुप्त द्वारा प्रसूत मधि का मना शनों का स्वचार करना पना। इन मधि क अनुना सिन्धुवन न चन्द्रगुप्त का निम्निनित्रि चा प्रसूत वि — एरिया (हरात) एरानमिदा (कवार) परानिमाम (परानिमाम—जवन का धारा) और मरानिदा (वचिन्तान)। अत म चन्द्रगुप्त न सिन्धुवन का १०० मयु मयु न क सि। सिन्धुवन न १०० नय क हादिया का प्रमा अ अना कानम न १०० मयु म मयुवन क मयुवन म युद्ध कान मयुवन सिन्धी। एना प्रतीति है कि मधि का अति वदतिक सम्बन्ध था है।<sup>२</sup> इमक अनुसार सिन्धुवन न अरना युना का विवा चन्द्रगुप्त न क निया। य का अतिम क किन्तु सिन्धुवन नहा कहा जा मवना।<sup>३</sup> कु उ अतिमका जिम म का म चन्द्रगुप्त का ध्या ज्ञा था म

1 It will be seen that the classical writers do not give us any detailed record of the actual contact between Seleucus and Chandragupta. They merely speak of the results. There can be no doubt that the invader could not make much headway and concluded on alliance which was cemented by marriage contract —  
दा रायबाधरा Political History

२ इस सम्बन्ध में मनुअन्त्रिय हान हुए ना इस बात का प्रमाण सिन्धी है कि युद्ध का अत मधि हुआ आर मधि में वदतिक सम्बन्ध भी स्थापित हुआ। डा० राय चौधरा न वम सम्बन्ध में कुछ प्रकाय टाला है—

3 It appears from the fact that the fight went on until the Seleucid and Indian king came to an understanding with each other and contracted a marriage relation (Kotes) of the Nanda and Maurya peoples (edited by H. A. Nilakant Sastri)

३ चौधरा महाराय न वद हिक सङ्घ का युद्ध क निर अ म युद्ध का उदरन प्रसूत किया है अिम सङ्घा र्चि मथा र्चिधा में सिधत मधुनों का नमाकन करत हुए वतएन है कि इन मधुना धर सिध दूर का आधिपत्य था दूर का शालर में सत्युवन न इन दगा का र्द्ध हय में म मय सङ्घ क इकात का सिध --

Seleucus gave them to Sandrocottus (Chandragupta) in return for intermarriage (Eurydice) and of receiving in exchange five hundred elephants



सिल्यूकस की पुत्री न वतलाकर का जय यूनानी राजकुमारा बननात हैं।<sup>१</sup> का भी त्वसगत ऐतिहासिक प्रमाण इस सम्बन्ध में नही प्राप्त होता है। जत इसक सत्यासत्य का निणय करना प्रामाणिक ऐतिहासिक नाश्या क अभाव में कठिन है। पर चद्रगुप्त तथा सिल्यूकस की पारस्परिक मित्रता का वनाम रचनगाला एक अन्य माधन का एतिहासिक प्रमाण हम प्राप्त है। सिल्यूकस न चद्रगुप्त क दरबार में मगम्यनाज नामक राजदूत का भजा जिसन पाटलिपुत्र में बहन टिना तक निवाम करक भारत का विभिन्न परिस्थितिया का ज्ञान प्राप्त किया। मगम्यनाज न भारत पर एक पुस्तक लिखा जो ऐतिहासिक दृष्टिकोण से काफी महत्त्वपूर्ण है। यद्यपि यह पुस्तक अपन मूल रूप में नही प्राप्य है तथापि अय लखका द्वारा उन्नत उद्धरणों में हम तत्कालीन भारत क इतिहास का कुछ ज्ञान हा जाना है।

**अंतिम दिन**—इसक पश्चात् चन्द्रगुप्त क शप जावन का इतिहास नही मिलता है। उसक साम्राज्य विस्तार की दृश्यत हुए एसा अनमान गगाया जा सकता है कि चद्रगुप्त का शप जावन भी साम्राज्य विस्तार क निणयता में व्यतान ग्या। जत अनधरिया क अनुसार चद्रगुप्त जन मतावलम्बी राजा अपन शासन का क अन्तिम दिन में मगध में मयकर अकाश पथन क कारण राज्य का परिहास करक जनजाय मद्राह साय दक्षिण में मसूर की आरंभला गया था। मसूर में (जो खवण जनजाय के नाम से प्रसिद्ध है) अब भी कुछ अभिन्न मद्राह तथा चन्द्रगुप्त का जन माँआ का मानिवास करने का सक्न करत हैं। वहाँ जिस पत्नी पर मद्राह क माय चद्रगुप्त निवाम रता था वह आज भी चद्रगिरि क नाम में प्रसिद्ध है। वहाँ चन्द्रगुप्त द्वारा निमित्त चद्रगुप्त बस्ती नामक मीदरे भा गया जाता है। जन जन श्रितिया क अनुसार चद्रगुप्त न एक सच्च जन मिश्र की भाति उपवास करक अपना प्राणांत कर दिया।<sup>२</sup> इसका मूल्य तिथि २९८ अथवा ३०० ई० पूव वतना जाता है। यूनानी लेखकों के विवरण से उक्त जैन अनुश्रुति का गहन हो जाता है। इन लेखकों क मतानुसार चद्रगुप्त न हिंसा का कभी नही छोटा था। एसी स्थिति में चन्द्रगुप्त का जनजाय मद्राह क साय मसूर आना तथा वहाँ अनशन करक प्राण त्यागना सम्भव नही है। किन्तु जब तक कोई त्वसगत प्रमाण नही प्राप्त हो जाना तब तक हम सम्भव में कुछ भी निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता है।

<sup>१</sup> डॉ० स्मिथ न लिखा है कि हमें इसका ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता कि सिल्यूकस न अपनी ही पुत्री का यह चद्रगुप्त क साथ किया था य प्रमाण केवल 'बेबाहिक सम्बन्ध का सनयन करते हैं। दक्षिण डॉ० स्मिथ का 'अतोक्' तताय संस्करण पृष्ठ १५—डॉ० चौधरी द्वारा उद्धृत।

<sup>२</sup> Jain tradition avers that towards the end of his life he became a convert to the religion of the Tirthankaras after the rival teachers had been discomfited in a synod. It is also affirmed that when Magadha was confronted with a famine of twelve years Chandragupta abdicated in favour of a son named Simhasena and retired to Sarvan Belgola in Mysore with the Saint (Śruta Kevahn) Bhadrabahu. There he starved himself to death in the Jain fashion —  
Age of the Gandas and Mauryas p 165

## साम्राज्य विस्तार

बहुधा चंद्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार के सम्बन्ध में प्रश्न उठता है। हमारे पास इस प्रश्न को सुलझाने के लिए कुछ ऐतिहासिक सामग्रियाँ हैं जिनके आधार पर चंद्रगुप्त मौर्य के विस्तृत साम्राज्य की सीमाओं का निर्धारण किया जा सकता है। यूनानी लेखक प्लूटार्क तथा जस्टिन के कथनानुसार चंद्रगुप्त का अधिकार सम्पूर्ण भारतवर्ष पर था। प्लूटार्क महोदय ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि चंद्रगुप्त ने ६ लाख सैनिकों की विशाल सेना लेकर सम्पूर्ण भारत को रौंद दिया था।<sup>१</sup> इस सत्य का समर्थन कुछ अन्य प्राप्त साक्ष्यों द्वारा हो जाता है। हम ज्ञात हैं कि अशोक ने अपने जीवन-काल में केवल एक बार कनिष्क राज्य से युद्ध किया। उसके पिता बिंदुसार ने साम्राज्य विस्तार के लिए कोई प्रयास नहीं किया था। अशोक के अभिलेखों के प्राप्ति स्थानों पर विचार करने से हम चंद्रगुप्त के साम्राज्य की सीमाओं का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। यह अभिलेख दक्षिण में मसूर तथा भारत के प्राकृतिक सीमा से प्रसा के सरहद पर उत्तर पश्चिम में पाय जाते हैं। अतः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस साम्राज्य पर अशोक ने राज्य किया उसका निर्माण चंद्रगुप्त मौर्य ने ही किया था।

एक दूसरे प्रमाण से भी चंद्रगुप्त के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा का निर्धारण किया जा सकता है। वह है जूनागढ़ का शक राजा रुमन का अभिलेख। इस अभिलेख में यह बात होता है कि सोराष्ट्र मौर्य साम्राज्य का एक प्रान्त था। यहाँ चंद्रगुप्त द्वारा निर्वाचित प्रान्तीय शासक पुष्यगुप्त वश्य शासन करता था। सपारा (आधुनिक धाना जिले में) प्राप्त अशोक के अभिलेख से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सपारा भी चंद्रगुप्त के साम्राज्य का एक अंग था।

तमिल ग्रन्थों में भी चंद्रगुप्त की साम्राज्य-सीमा पर कुछ प्रकाश पड़ता है। यहाँ के दो लेखक ममुलनार तथा परणार के लेखों से यह बात होता है कि मौर्यों ने सुदूर दक्षिण में त्रिचनापल्ली जिन का पादियिल पहाड़ी तक आक्रमण किया था। निश्चय ही यह आक्रमण चंद्रगुप्त मौर्य के काल में ही हुआ होगा। जस्टिन साहब भी दक्षिण भारत पर चंद्रगुप्त का अधिकार स्वीकार करते हैं।<sup>२</sup> बौद्ध ग्रन्थ महावग्ग में सम्पूर्ण जम्बूद्वीप पर चंद्रगुप्त का आधिपत्य स्वीकार करता है। डा. राधाकुमुद का भी यह मत है कि चंद्रगुप्त ही प्रथम सम्राट् था जिसने उत्तरी तथा दक्षिणी भारत का एक शासनसूत्र में बांधकर राजनीतिक एकता स्थापित की थी। किन्तु अर्थशास्त्र में वर्णित चक्रवर्ती क्षेत्र बंधन उत्तरी भारत से सम्बन्ध रखता है। डा. एन० पी० चक्रवर्ती चंद्रगुप्त का दक्षिण भारत पर अधिकार होना स्वीकार नहीं करते। उनका यह मत है कि चंद्रगुप्त के पुत्र बिंदुसार ने कनिष्क विजय की थी।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> With an army of six hundred thousand men (Chandragupta) overran and subdued all India —Quoted by Dr H C Poychaudhuri

<sup>२</sup> इ०चीधरी ने भी विध्यतर भारत पर चंद्रगुप्त का अधिकार बताते हुए लिखा है—

When the statements of Plutarch Justin Mamulahar and the Mysore inscriptions referred to by Rice are read together they seem to suggest that the first Maurya did conquer a considerable portion of trans Vindhyan India —Political History of Ancient India Sixth edition p 20

इस प्रकार हम देखते हैं कि चन्द्रगुप्त के साम्राज्य विस्तार का प्रश्न काफी जटिल है। कथिनाश विद्वान् उसका राज्य बंगाल से हिन्दुश तक भारतवा गुजरात सीराष्ट्र तथा दक्षिण भारत-का कुछ मू भागों पर मानते हैं।

### चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन प्रबन्ध

चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध के अध्ययन के पूर्व तत्कालीन अमुविद्या का निर्देश कर देना आवश्यक होगा। चौथी शताब्दी के पूर्व में यानायात तथा मन्थ-वाहन के माधना की हानावस्था की कल्पना सरलतापूर्वक ना जा सकती है। तब तक काइ भी विशाल साम्राज्य महा स्थापित हो सका था और इसके अभाव में मन्था नम्बी मन्था मराया आदि का हाना अनम्भव था। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन समय की अमुविद्या शासन प्रबन्ध के सम्बन्ध में यानायात तथा संदशवात्ना तथा साम्राज्य विशानना का पी। प्रशासन केवल दक्षिण भारत तक विस्तृत इस साम्राज्य का समन्वित शासन प्रबन्ध करता निश्चय हो एक बठिन काय था। मौर्य-साम्राज्य का राजधानी, पाल्तिपुर में साम्राज्य के कौल-बाल में शक्ति तथा मुख्यवस्था स्थापित रखना बठिन ही नहा अपितु अनम्भव था। किन्तु चन्द्रगुप्त मौर्य एक कुशल शासक तो था हा मौर्यायवश उस काणकप उस राजनानिष का मन्थाल प्राप्त था। चन्द्रगुप्त के अपने विस्तृत साम्राज्य का शासन कर्त्रीयकरण का पद्धति परम बरक प्रान्तीय शासन व्यवस्था का नाव हा तबकर किया जिसके विभिन्न रूप पर आगे प्रकाश डाला जायगा।

चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध का मान हम मगम्यनीज की इंडिया तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्राप्त होता है। जैसा कि पत्र प्रनताया जा चेका है मगम्यनीज को यह पुस्तक उपनध नहीं है पर ग्रीक तथा यूनानी लगना द्वारा उपनध अगा में हमें चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध का विवरण प्राप्त होता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से तो चन्द्रगुप्त के शासन की मूलभूत प्रकृतिया का स्पष्ट रूप हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाता है। कुछ विद्वान् अर्थशास्त्र के रचयिता का तथा उन ग्रन्थ का चन्द्रगुप्त कालीन महा स्वीकार करते हैं। किन्तु उनका यह सन्दर्भ अतिक्रम भाव नहीं है और अर्थशास्त्र को चन्द्रगुप्त कालीन अथवा उससे काफी निकट का मानना हा युक्तिमगत है।<sup>१</sup>

<sup>१</sup> अर्थशास्त्र की तिथि के सम्बन्ध में डा० हेमचन्द्र रायचौधराने लिखा है—  
‘निश्चय ही बाण (सातवीं शताब्दी ई०) तथा जनियों के नदिसूत्र (जो पाँचवीं शताब्दी ई० के बाद का नहीं है) के पूर्व अर्थशास्त्र विद्यमान था। किन्तु यह सन्देहात्मक है कि अपने वर्तमान रूप में यह प्रथम मौर्य सम्राट के काल-मा प्राचीन है।’

इस सम्बन्ध में डा० चौधरी ने जातक उपस्थित किया है उसका कुछ अर्थ मूलरूप से उद्धृत किया जा रहा है—

‘The work was known not only to Bana the author of the Kadambari who flourished in the seventh century A D but to the Nandi utra and Paimnas of the Jainas which may have existed in the early centuries A D and probably also to the Vyasa Bhashya of Vatsyayana which is criticised by Dignag and perhaps by Yasubandhu too According to some scholars the Arthashastra literature as later than the Dharmasastras and dates only from about the third century A D

साम्राज्य शासन—चन्द्रगुप्त स्वयं शक्तिशाली था। वह शासन-गता पूणतया अपन हाथ में रखना चाहता था। अतः उस शासन में साम्राज्य का केन्द्र और प्रधान राजा होता था जिसके हाथ में मना 'याय व्यवहार' आदि सम्प्रधी काय थी। मगस्थनीज के कथनानुसार राजा शासन में बहुत बड़ा हाथ बटाना था। उसके कथन से यह ज्ञात होता है कि राजा दिन रात राज्य के कार्यों में लगा रहता था और अपनी प्रजा की प्रायतन सुनने के लिए वह हर समय तयार रहता था। युद्ध काल में राजा का अनुष्ठानतत्त्व करना पड़ता था और युद्ध सम्बन्धी नीतियों पर वह मनापति से विचार विमर्श भी करता था। मगस्थनीज के इस कथन की पुष्टि कि राजा दरबार में आबनमा बलना से अपन शरीर की मालिश कराते समय भी प्रजा का सुन-सुन सुनने के लिए मिल सकता था काटिलिय के जयशास्त्र से भी हो जाती है। कौटिल्य ने अपन जयशास्त्र में यह बात गाया है कि राजा का राजद्वार पर 'याय का प्रतीक्षा में वाला प्रतिवाणिया का ग' रखना उचित नहीं है। उस चर्हिण कि वह बिना विमर्श ही उनका आवेगन सुन और उस पर अपना निश्चय दे। राज का दत्तरा महत्वपूर्ण काम यह था कि वह साम्राज्य के उन पदाधिकारियों का नियुक्ति स्वयं करता था। आय-पय का निरीक्षण भी राजा के हाथ में था। परराष्ट्र-जाति शासन का महत्वपूर्ण अंग है अतः राजा इस विषय पर राजदूतों से स्वयं परामर्श करता था। गुप्तचरों से देश की आन्तरिक अवस्था तथा भंगों के विषय में ज्ञान प्राप्त करना भी राजा का कर्तव्य था। कौटिल्य के जयशास्त्र के अन्तसार राजा को यह अधिकार था कि वह नया कानून का निर्माण कर सके। वह प्रजा के लिए शासन की घोषणा भी करता था। उपयुक्त विवरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि मौर्य शासन प्रणाली के अन्तर्गत राजा या सम्राट का महत्वपूर्ण हाथ था। उस हर प्रकार के विशेषाधिकार भी प्राप्त थे परसाथ ही उसके कृत्य भी असीमित थे। सम्पूर्ण साम्राज्य में शान्ति एवं सुखवस्था स्थापित रखने के लिए उस राजनीतिक उद्यम युद्ध के युग में राजा का शक्तिशाली बनाना आवश्यक था।

श्री के० ए० श्रीरामचन्द्र शास्त्री ने भारतीय राजत्व सिद्धांतों की ओर दृष्टि डालते हुए कहा है कि प्राचीन काल में राजा विधानों का संरक्षक मात्र था निर्माता नहीं। विधानों की अनमति घम एवं सामाजिक परम्पराओं के समन्वय द्वारा हाती थी और शासक का भी इन दोनों बंधनिक अधिकारों के साधना का पालन करना पड़ता था। श्री शास्त्री ने इस सम्बन्ध में कात्यायन का निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत किया है—

Johnston (J I A S 1929 January p 77 ff) points out that the Kautilya Arthashastra is not separated by a great interval from Asvaghosha and is distinctly earlier than the Jatakmalā of Aryasura (who flourished before 434 A D Winternitz Ind Lit Vol II 76) An early date is also suggested by the absence of any reference to the Denarius in Bk. II Chs 1, and 19. But the mention of Chinabhumī and Chinapatta in Bk. II Ch. II precludes the possibility of a date earlier than the middle of the third century B C A post Chandraguptan date for the Arthashastra is also suggested by (a) the reference to parapets of brick instead of wooden ramparts (II 3) in connection with the royal seat and (b) the use of Sanskrit at the Secretariat (II 10) —Political History of Ancient India 6th edition p 10

१ - 'यावशांशाविरोधन देशदष्टस्तथव च ।

यत्त य म म स्थापयन् राजा यावाम न राजम आमनम ।

शास्त्रा महात्म्य न आग वताया है कि कौटिल्य न प्रादिकाल स प्रचलित म राजत्व सिद्धान्त क विरुद्ध अपना नया सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसके अनुसार राजा क प्रभुत्व का अपना पथक अस्तित्व और मायता था और यह प्रभुत्व धर्म व्यक्तित्व मर्षि या ममदीन तथा सामाजिक सम्प्रदाय क विरुद्ध मा स्थापित हा सकता था । कौटिल्य न न्याय का पालन न मा वश माना है और पहले का प्रधानता प्रदान की है (एक अवसर पर जय नाला म विज्ञा प्रकार का मनमन्त उल्लिखित हा जाय) ; उमन अपन तर्क का पूर्ण म प्रकार की है कि समय का लम्बा मन्त्रित तय करन क साथ साथ शास्त्र नापयक न जाना है ।

मन्त्री परिषद—राजकाय का सुचारुरूप स मचानित करन क लिए एक मन्त्रि परिषद मा था । राजा याग्य व्यक्तियों का निवाचन इस परिषद म करता था । कौटिल्य क जब शास्त्र स हम् १८ पन्थाधिकारिया का बाय हाता है । य पन्थाधिकारा अपन अपन विभाग क अध्यक्ष हाते थ । ये निम्नलिखित थे —

- |                                    |                                 |
|------------------------------------|---------------------------------|
| ( १ ) मन्त्री                      | ( १० ) प्रच्छा कमिन्ता          |
| ( २ ) पुराहित                      | ( ११ ) नायक नगर रक्षक           |
| ( ३ ) मनापति                       | ( १२ ) पौर कानवाज               |
| ( ४ ) यवराज                        | ( १३ ) व्यवहारिक प्रदान यावादास |
| ( ५ ) दौवरिक द्वारा का रक्षक       | ( १४ ) कर्मातिक जाकर तथा        |
| ( ६ ) अन्तरवशिक अन्तपुर का अध्यक्ष | ( १५ ) कारखाना का अध्यक्ष       |
| ( ७ ) प्रशास्त्रीय कारागाराध्यक्ष  | ( १६ ) नवान वनिम का प्रधान      |
| ( ८ ) समाहर्ता आपदग्रहकर्ता        | ( १७ ) रणपाल                    |
| ( ९ ) सन्निधाता कायाध्यक्ष         | ( १८ ) अन्तपाल 'मामात्रा क रदाक |

अधिकारिया का उपयुक्त तांत्रिका न यह बात होता है कि च गुप्त मीप न तत्कालीन राज्य क लिए जिन आवश्यक विभागों का हाता आवश्यक समझा उनका स्थापना करके उन विभागों की सेवा के लिए योग्य पन्थाधिकारिया की नियुक्ति की

1 According to the general theory of Hindu Polity the King was only the guardian of law not its maker laws depended for its validity on their intrinsic conformity to the standard of equity (Dharma) and on the sanction of social usage and every decree of the king had to conform to both these sources of legal right With Kautilya on the other hand the royal decree has an independent validity of its own moreover its validity is of so overriding a character that it must be taken to prevail against equity private treaty or contract and social usage Kautilya also exalts reason (Nyaya) the prescription of texts (Sastras) in cases of conflict between the two and boldly justifies the course on the plea that texts become corrupt with lapse of time —Age of the Nandas and Mauryas p 174

थी। उपयुक्त पदाधिकारी अपने विभाग के उपप्रधान थे। इनके अतिरिक्त कुछ विभागों के स्वामी भी थे जिन्हें अध्यक्ष कहा जाता था। इन अध्यक्षों में निम्नलिखित विशेष उल्लेखनीय हैं —

- (१) नापाध्यक्ष
- (२) आकाराध्यक्ष
- (३) लौहाध्यक्ष
- (४) नक्षत्राध्यक्ष टक्काल का स्वामी
- (५) लवगायत्र
- (६) सुवणाध्यक्ष
- (७) कुप्याध्यक्ष वन सम्बन्धी आय का प्रवचकता
- (८) प्रडयाध्यक्ष सरकारी व्यवसायों का अध्यक्ष
- (९) जायुवाध्यक्ष अस्त्र शस्त्र का रक्षक
- (१०) पौनवाध्यक्ष बटलर जादि का निरीक्षक
- (११) मानाध्यक्ष समय तथा स्थान का निर्णायक
- (१२) साताध्यक्ष सरकारी खती का प्रवचकता
- (१३) शुक्वयक्ष
- (१४) सूनाध्यक्ष कतार्ई-बुनाई विभाग का अध्यक्ष
- (१५) सुराध्यक्ष
- (१६) सूताध्यक्ष कताइखाने का अध्यक्ष
- (१७) मद्राध्यक्ष पासपाट का अध्यक्ष
- (१८) द्विताध्यक्ष
- (१९) विविताध्यक्ष चरागाह का अध्यक्ष
- (२०) बंधनागाराध्यक्ष
- (२१) नवाध्यक्ष पशुनिरीक्षक अध्यक्ष
- (२२) नौकाध्यक्ष
- (२३) पत्तनाध्यक्ष बंदरगाहों का अध्यक्ष
- (२४) गाविकाध्यक्ष सना के विभिन्न विभागों के अध्यक्ष
- (२५) सस्याध्यक्ष
- (२६) देवताध्यक्ष

उपयुक्त अध्यक्षों की अधीनता में अथ छोट-छोट पदाधिकारी भी थे।

प्रान्तीय शासन—जसा कि पहले बताया जा चुका है शासन की सुविधा के लिए सम्पूर्ण साम्राज्य प्रान्तों में विभाजित कर दिया गया था। प्रान्तीय शासन भी अत्यन्त सुव्यवस्थित एवं सुसंगठित था। राजधानी के निकटवर्ती प्रान्तों का शासन तो स्वयं सम्राट की देख रेख में होता था किन्तु दूरस्थ प्रान्तों का शासन 'राजकुमार' अथवा राजकुलीन व्यक्तियों द्वारा होता था।

चन्द्रगुप्त के समय में प्रान्तों की संख्या का स्पष्ट ज्ञान नहीं प्राप्त है किन्तु उसके प्रपौत्रों के शासन-काल में सम्पूर्ण साम्राज्य निम्नलिखित पाँच प्रान्तों में विभक्त था।—

१ डा० हम्बट्ट राय चौधरी ने उपरोक्त पाँच प्रान्तों में से उत्तरापथ, अश्वतिरग्य तथा प्राय की चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्याधीन बताया है किन्तु उन्होंने आगे यह भी लिखा है 'यह बिल्कुल ही असम्भव-सा नहीं है कि दक्षिणापथ भी चन्द्रगुप्त के प्रान्तों में से एक था'—*Political History of Ancient India 6th edition p 288*

१	उत्तरापथ	गजराजा	सप्तशिखा
२	अत्रनिगथ		उज्जयिनी
	दक्षिणापथ	,	मुद्रगमिनि
४	प्राच्य		पाटलिपुत्र
	वर्तिग		तापति

प्रान्ताय शासना का शायिक आय १०००० पण थी।

पूर्वी तथा मध्य तथा व प्रान्ता का शासन मन्त्रिभारती की मन्त्रायना म मन्त्राट स्थ वरता था। चन्द्रगुप्त का मन्त्रा शासन करता था किन्तु अन्तिम म प्रसिद्ध है। उन इमका मन्त्रपा म चन्द्रगुप्त नग पत्तचर विनाय का जाग सिन्धु स्थान किया था। प्रान्ताय शासका तथा नौवशाखा व शिकरणा का शक्तिविधिया का पूरा जान प्राप्त करने क अमिप्राय म चन्द्रगुप्त न सम्पूर्ण साम्राज्य म गुप्तचर का जात-मा क्रिय किया था। य गुप्तचर प्रान्ताय शासका क कार्यों की सूचना मन्त्रा का उपाय किया करते थे। उन गुप्तचर का गजराजा म हमनिष्ठ विशेष मन्त्र था कि य प्रान्ताय शासका तथा अय अधिकारियों का मनमाला म प्रजा का रक्षा करते थे। निश्चय का एक अभाव म प्रान्ताय शासक प्रजा पर उत्तार कर सकते थे और हम प्रकार प्रजा म एक-सम्पत्ति प्रण करने के अपना आर्थिक स्थिति का भी जहडा उपाय कर सकते थे। यद्यपि यह प्रान्ताय शासक राजकुमार अथवा राजकुमार व्यक्ति हो ये तथापि चन्द्रगुप्त य कर्तापि नया चान्ता रहा होगा कि व उन मन्त्र ही था कि मन्त्रवक्त आदि का भाति विश्व या पटवत कर सकते। काठिय व अथशाम्भ म इस विभाग का विशेष बान किया गया है।

नगर-शासन—या तो चन्द्रगुप्त का कद्राय तथा प्रान्ताय शोना शासन उच्चवाटि का था किन्तु उसका नगर शासन अपनी शक्तिवृद्धा तथा विजयता क लिए भारतय इतिहास म अज्ञा उचा स्थान रखता है। नगर शासन (म्युनिस्पर शासन) का पूरा विवरण हम मगस्थनाज के विवरण म प्राप्त होता है। म्याले से कि राजत मगस्थ नीज ने साम्राज्य का राजधानी पाटलिपुत्र म ही निवास किया था जत उसका विवरण पाटलिपुत्र की शासनपालिका था या वर्णन ममयता चाहिए। मगस्थ है पाटलिपुत्र के अतिरिक्त अय नगर म भी नगर शासन र्था हा पर उनका शासन हमसे कुछ निम्न अवस्थ र्था होगा। पाटलिपुत्र शक्त बना नगर था जत हमके लिए विप प्रवार क प्रवार का आवश्यकता थी। हम से नगर म ही शिया कर्ताकाग विन्शिया या पाणिमा आदि की माग र्था र्था होगा। हम से नगर म उपाय पध भी से जर्त अधिक मात्रा म स्थान न र्था था। यहाँ का जनमख्या भी अय नगर का अथवा अधिक था। उपरकन शाखा म य आवश्यक था कि नगर म एक मुमगति एक मुख्यस्थित मगस्थनाज का रूप।

नाच मगस्थनाज के विवरण के आधार पर नगर शासन का वर्णन किया जा रहा है। मगस्थनीज ने कहा है कि नगर के प्रत्येक-क-विप पांच-पांच मगस्था का ६ समितिवा होता था। इन समितियों के अधिकार तथा कार्य निम्नलिखित थे—

(१) गिल्डकला समिति—जसा कि पट्टन बननाया जा चका है पाटलिपुत्र म बला कारा का नाम थी। औद्योगिक कला का कला उन्नति कर चकी था। उन औद्योगिक कला का निराकरण के लिए गिल्डकला समिति का निर्माण किया गया था। य समिति कलाकारों की समिति और अय शक्ति का पाणि मित्र भी निर्धारित कर्ती था।

औद्योगिक कलाकारों की सुरक्षा के लिए भी यह समिति उत्तरदायित्व लिये थी। पर पथ ही साथ वह उनके उत्पादन की शुद्धता पर भी कठोर दृष्टि रखती थी।

(२) घरेलूक समिति—यह समिति राज में निवास करनेवाले विदेशियों की देख रण को लए बनी थी। उसका कतव्य यह था कि विदेशियों के आवागमन उनके निवास स्थान आवश्यकता पान पर जीपधि आदि का प्रबंध कर साथ ही इस समिति के ऊपर उनके सुरक्षा का भी भार था। विदेशियों का मृत्यु के पश्चात् उनकी अंतिम क्रिया भी यहाँ समित्त करता था तथा उनके धन सम्पत्ति का उचित उत्तराधिकारियों को द दता था।

मगस्थनीज के इस विवरण से यह परिलक्षित होता है कि मौर्य साम्राज्य में विशेषकर पानलिपुत्र में विदेशियों का सरपा इतनी अधिक थी कि उनके लिए एक पथक विभाग का स्थापना करनी पड़ी थी। विदेशियों की उपस्थिति तत्कालीन भारत के सामाजिक जीवन पर निश्चय ही प्रभाव डालता रही होगा और इस प्रकार इसका विशेष सांस्कृतिक महत्व है क्योंकि चौथी शताब्दी ई० पू० के विषय इतिहास के अध्ययन से यह पता जाता है कि उस समय लगभग सभी देशों में छठी शताब्दी ई० पू० में उदित धार्मिक एक बाढ़क क्रांति के परिणाम-स्वरूप जनसाधारण में नई चेतना एक नव जागरण का प्रभुटन हो रहा था।

(३) जनसंख्या समिति—यह समिति जन्म मरण का लखा जाता रखना था। इसका जीमप्राय कवन जनसंख्या का गणना करना ही न था या इसके आधार पर कवल राज कर हा नहीं लगाना था अपितु जन्म मरण की रजिस्ट्रार के आधार पर सरकार को नगरिकों के जन्म मृत्यु चाह वह उच्च कुन की हा जयवा निम्न कुन की का पूण नान कराना भी था। जनसंख्या का वृद्धि अथवा कमी का नान प्राप्त करन का उद्देश्य स्पष्ट है और इसका कवल राजकीय कर से सम्बंध नहीं है। निश्चय ही इस जनगणना के रजिस्ट्रार का राजनातिक महत्व की अपक्षा आर्थिक महत्व अधिक रहा होगा ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है। मौर्य कालीन औद्योगिक विकास का ध्यान रखने हुए यदि हम इस विषय को समझन का प्रयास करें तो हम जनगणना का महत्व स्पष्ट हा जायगा।

(४) वाणिज्य व्यवसाय समिति—इस चौथा समिति का महत्व विशेष उत्तरेकनाय है। यह समिति व्यापारियों एवं वणिकों के कानून की दृष्टि के लिए निमित्त का गू था। एक आरंभ यह उनके वस्तुओं का जनता की सूचना द्वारा उचित समय पर विक्रय दान का प्रबंध करता थी तथा दूसरी आरंभ जनता के हित के लिए इस बात का ध्यान रखती थी कि व्यापारियों तथा बणियों के शूठ तोड़ या माप से जनता ठगान जाय। कोई भी व्यक्ति बिना आना के एक वस्तु से अधिक का व्यवसाय नहीं कर सकता था और जो व्यक्ति एक वस्तु से अधिक का व्यवसाय करता था उस अनुपात में अधिक कर भी देना पता था।

(५) वस्तु निरोधक समिति—पानलिपुत्र मौर्य साम्राज्य के औद्योगिक स्थानों में से प्रमुख था। अतः वस्तुओं के उत्पादन का दखल रखने के लिए एक पथक समिति का आवश्यकता था। इसा जीमप्राय से उद्योगपतियों के उत्पादन पर निराक्षण करना इस पथकी समिति का मुख्य कतव्य निश्चित किया गया था। यह समिति इस बात का दखल रखकरता थी कि औद्योगिक उत्पादन में किसा प्रकार का मिनावटक हक उद्योगपति अनुचित लाभ न उठावें। नई तथा पुरानी वस्तुओं किसी प्रकार भी नरी मिलार्ई



जा सकता था और उक्त समिति इस बात का ध्यान रखना था कि य पयक-ययक वचा जाय। नियम भंग करने वाले व्यवसायियों का जुमाना देना पता था।

(६) कर समिति—यह समिति विना का वस्तुआ पर कर वसूल करना था। यह भी काफी महत्वपूर्ण समिति थी। जा व्यापार कर से वचन का प्रयत्न करना था उस प्राण-दण्ड दिया जाता था।

ऊपर नगर शासन का जा विवरण दिया गया है वह यूनाना राजदूत के वचन पर आधारित है। काटल्य के अथशास्त्र में नगर शासन अथवा उसका इस प्रकार विवरण का उल्लेख नहीं मिलता है। किसी किसी स्वतंत्र पर इसका निर्देशन मात्र है। इस विषय में अथशास्त्र का मौन रहना यात्रा के विवरण अर्थात् ६ समितियों तथा उनके कतव्यों अथवा विवरण का सत्यता में किसी प्रकार भी संदेह नहीं उत्पन्न कर सकता। अथशास्त्र में मथवा मौन नहीं है उसमें नागरिक अथवा नगराध्यक्ष का नगर का शासन बतलाया गया है और उमके अधीन स्थानिक तथा भाष नामक पार्षदकारियों का उल्लेख किया गया है।

मगस्थनाज ने नगर शासन का विवरण समाप्त करते हुए यह लिखा है कि वसुता अपन-अपन पथके विभाग का निराकरण समितियों करता ही था पर साथ ही सामूहिक रूप से नगर के सामान्य इतरे सम्बन्ध विषयों से भी उनका सम्बन्ध था। उदाहरणार्थ सावजनिक इमारतों का सुरक्षा तथा उनका मरम्मत कराना मूल्य सम्बन्ध नियमों पर ध्यान देना बाजार नियंत्रण ब्रह्मरक्षा तथा मोदरा की दस्त रख करना सामूहिक उत्तरदायित्व का विषय था।

जिला-शासन—नगर शासन के अतिरिक्त मगस्थनाज ने चन्द्रगुप्त के जिला शासन पर भी प्रकाश डाला है। वह जिला शासन के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के अधिकारियों का उल्लेख करता है जिनके ऊपर नौदमा का दस्त रख भूमि का पमाइश तथा निचाइ का नहरों का शाखा प्रशासकों के निरीक्षण का भार था। इन भूमि तथा निचाइ के आयकारियों के अतिरिक्त मगस्थनाज ने कृषि, जंगल संरक्षण खान आदि के अधिकारियों का भी उल्लेख किया है।

जनपद या देहात शासन—ग्राम शासन का निम्नतम इकाई था। इसका शासन प्रायिकः बहुलता था। पाँच या दस ग्रामों का शासन गाँव कहा जाता था। गाँव के ऊपर स्थानिक नामक अधिकारियों का था। यह जनपद के चतुर्ध भाग पर शासन करता था। पूर्वलिखित पदाधिकारों प्रदष्टा और समाहता का दखल रख में काम करते थे।

### सैन्य संगठन

नए वंश का अन्त कर देने के पश्चात् चन्द्रगुप्त को मगध का एक विशाल सेना प्राप्त हुई थी। इस सेना की विशालता के सम्बन्ध में विवेकान्तियों अनुभव है यूनाना विजिता निकेदर की अजय सेना का साहस छूट गया था और उमने आगे बढ़ने में साफ इकार कर लिया था। मगध का इस पुराना सेना के अतिरिक्त माघा-प्रज्वलि एव दश का सेना के लिए चन्द्रगुप्त ने काफी सख्या में नये सैनिकों का भर्ती भी करवा।

राजदूत मगस्थनाज चन्द्रगुप्त के सैन्य-संगठन का भी पूरा विवरण देता है। उसके वचनानुसार इस सेना में ६०,००० सैन्य से भी अधिक पट्टे मिथिली थे। मोथ-काल के अर्थ अर्थ इस प्रकार

३ ००० जव ९ ०० गज तथा १००० रय ।

चेइतना विशाल मना क प्रबन्ध एक रण रल क तिए एक अलग सनिक विभाग का आवययता था जिसका स्थापना चण्गुप्त न जत्यत कुणवतापूर्वक का था । एम सनिक विभाग द्वारा सगन्त ६ समितिया द्वारा हुआ था । प्रत्येक समिति म ५-५ मन्स्य बात थ । एनका पुण विवरण एम प्रकार है—

समिति	न	(१)	ना मना
	न०	(२)	पताति-मना
	न०	(३)	जव मना
	न०	(४)	रय मना
	न०	(५)	गज मना
	न	(६)	सना-यातायान तथा यड्ड मामया वाग्नि

मगस्थनीज न छटा समिति का वाय वतलात हए तिया है कि य ए समिति मना सम्भवा मामग्रिया का नवानी वनगाया क अधिकारिया का मन्शग दना थी ।

मगस्थनीज क कथनानसार समाज म किसाना के पचात सनिका की ही मया अधिक थी । एनक वतन क विषय म मगस्थनीज न य तिया है कि उहें नियमित रूप से वतन मिनता था । राय भाग उहें अस्त्र शस्त्र द्वा मिनता था । मगस्थनीज न सनिका की राय द्वारा प्राप्त सुविधा म पर प्रकाश डालते हए तिका है कि उनका वन इतना था कि व एसन सुगमय जीवन ज्यनीत कर सकत थ । मीय सनिक स्वन्ता का भोग पूरणपण करते थ । यड्ड वान म ही उहें कम्नि पश्चिम करना प ता था पर अवकाश क समय व इगनमार मनारजन करन क लिए स्वतत्र थ । यड्ड काल म भा जय के शिविरा म रतन थ ता उहें नौकर मिनते थ जा उनके अस्त्र शस्त्र का साफ करत थे थी । की दय रय करत थ तथा उनके रथो का सचानन करते थ ।

### याय विधान

मीयकालान याय प्राचान भारतीय इतिहास म उचकाति का है । राजा सब एड यायाधीन जाता था । मायकारीन ए का कठाला का उतन मगस्थनीज तथा कौटिल्य एना न किया है । उमना स नकर म ममे तपो प्राण्ड तक का विवरण प्राप्त गा है । प्राण क थन्धा कताकार वा पुग् कर एन अथवा वित्री की वस्तुजा पर कर न देन क अभियान म तिया जाना था । ध्यमिचारिया तथा चोरा को अग भग का एड दिया जाना था । राजकमचाग्निा का चारी क छटा अपराधा पर भी प्राण ए तिया जाता था । अपराधा म अपराध स्वाकार करान क तिए जनक प्रकार क कष्टमक मानना का प्रमाण किया जाता था । एम प्रकार एम दलत है कि चण्गुप्त का एड विधान आवययता न अधिक क्कार था जिस यदि जमानपिक क्ता जाय तो अनविन न गा । किन्तु एम एमा निषय दन क एव तकारीन गजनातिक एव मामागिक परिस्थितिया पर भा एक चण्गुप्त एडि डालनी गा । चण्गुप्त मीय क विराम तथा नरराजा के पमच्छ एा क अत के पचात भी जावित थे । मदारा एम म य वन काया गया है कि माय गजा (चण्गुप्त) अपन विराधिया का वन्त क्कोर एा ता ह जा प्राण एा जाता है । गभम मत्रा क मित्र एव महायक एक मट्टजन का घमना

एतद्दृष्ट्वा उक्तं नाटकं यथा वाच्यं यथा कथयामास राजा । इमं विवरणं स चन्द्रगुप्त  
के कथनं विवरणं विवरणं विवरणं का जायमानं नयाता अत्रिणु इमं यह भा परिनि  
नाता है कि नया राजा क हिनवा वन्त त्तिना तन वन । उनक पडयता क त्मनाय  
तथा उस राजनानिक उयन पुयन क यग म व्याप्त अयवध्या का समाप्त करव जन  
जावन का सुवी एव शांतिमय बनान क लिए नया विवरण का वरगता जावयव था ।

अथशास्त्र क अनुसार नया प्रकार क यथायथ विचमान ५ ।

{१} धर्मस्थायि (निवाना) तथा {२} कृषकशासन (कजन्तारी) एत । यथा  
यथा क अतिरिक्त ग्राम पचायते भा अपन प्राग्भिक रूप म चव रही था जा छोट माटे  
पग । का अत्र बहधा समयाता द्वारा करा त्पिया करती था ।

### जाय प्रय क माधन

भूमि-करहा जाय का मुख्य माधन था । यद्दृष्ट्वा उपज का १/५ भाग कर रूप म लिया  
जाता था किन्तु दश-काव क अनुसार यह कम-वमा भी हुआ करता था । भूमि कर क  
अतिरिक्त वन-भामाया पर लगनवाव विधा कर घाटा पर लगनवाव कर जुमाना  
जाकर (गालें) भी जाय के माधन थ ।

व्यय क माधन भी बहुत थ । सना नीकरशास प्रजातिवारा जाति बापों म  
काफा जाय लर्चहा जाता था । राजा तथा राज-न्याय क ऊपर भी जाय का काफा भाग  
लभ हा जाया करता था ।

### सम्राट् का नगर, राजमहल तथा उमका व्यक्तिगत जीवन

एतद्दृष्ट्वा हम चन्द्रगुप्त क नगर पाल्निपुत्र का वणन करेंगे ।

मगस्थनाज न त्रिया है कि पाल्निपुत्र गया तथा मान त्रिया क सगम पर स्थित  
है । यह भारत का सबसे बड़ा नगर है । यात्रा न नगर का लम्बा ८० मीलिया  
(९ १/२ माय) तथा चौड़ा १५ मीलिया (१ माय १२७० गज) यन्ता है । नगर का  
सुरक्षा क लिए ६० फाट गदरो तथा १०० गज चौी खाई नगर क चारा आर बना  
हुइ था जा सदा सान क पानी स भरी रहती थी । यान क अतिरिक्त लकी का एक  
दीवार भा बना हुई था । इम प्रकार नगर का सुरक्षा क लिए हर प्रकार क प्रयत्न  
किए गए थ । नगर की चत्वारणावारी म ६४ फाटक नया ५७० मीनारें था ।<sup>१</sup>

अथ हम चन्द्रगुप्त क व्यक्तिगत जीवन तथा उमक राजमहल पर प्रकाश डालेंगे ।  
एतद्दृष्ट्वा उमक राजमहल काहा लेंगे । यन् विवरण भी हम यूनाना लेखका द्वारा प्राप्त

1 The largest city in India named Palimbothra is in the land of the Prasians where in the confluence of the river Erannobaos and the Ganges which is the greatest of rivers Magasthenes says that on the side where it is longer this city extends 80 stades (11 miles) in length and that its breadth is fifteen (13 miles) that the city has been surrounded with a ditch in breadth 6 plethra (600 feet) and in depth 70 cubits and that its wall has 170 towers and 64 gates — *Africans India* Chapter X Quoted by Dr H C Raychaudhuri in his *Political History of Ancient India* 8th ed. p. 24

होता है। चन्द्रगुप्त ऐश्वर्यमय जीवन व्यतीत करता पसन्द करता था। अतः अपने निवास के लिए उसने एक बहुत विशाल एवं सुन्दर मन्दिर का निर्माण कराया था। राजमन्दिर के चारों ओर सुन्दर उद्यान बना हुआ था। 'उसके स्तम्भ मनहले थे तथा उद्यान कृत्रिम मत्स्य तट तथा निम्नतः कुञ्ज थे। तत्कालीन भवन निर्माण कला की प्रचलित प्रणालियों तथा कुछ मौखिक शक्तियों के सम्मिश्रण से बना हुआ यह राजमन्दिर पुणर्व काष्ठ का था। पत्रस्वरूप वह काल के कराल काल में विनीत हो गया और आज उसका स्मृति चिह्न भी अवशेष नहीं। तथापि यूनानी लेखकों के प्रामाणिक विवरणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन भारतीय भवनों में इस राजमन्दिर का स्थान अत्यन्त ऊँचा था। इस राजमन्दिर के मीठय के समान शमा तथा इकबताना के ईरानी राज प्रसादों की सुन्दरता भी फीकी पड़ जाती है।' जमा कि ऊपर बतलाया जा चुका है काष्ठ निर्मित होने के कारण राजप्रसाद के तीनों अक्षों का अवशेष विग्रह रूप से नहीं पाया जाता किन्तु आधुनिक पटना के समीप बुम्भार गाँव में इस राजमन्दिर के आधार व जवगण चक्र भी पाये जाते हैं।

चन्द्रगुप्त के चारों ओर शरीर रक्षिकाओं की भीड़ लगी रहती थी। इतिहासकारों के कथनानुसार ये नारियाँ एक प्रकार की ग्लाम होती थी जिन्हें उनके माना पिता से खराद लिया जाता था। अथशास्त्र के अध्ययन और चन्द्रगुप्त के वैयक्तिक जीवन के सम्बन्धित अध्ययन से यह परिनिक्षित होता है कि अथ कार्यों की भाँति चन्द्रगुप्त

१ चौधरी महोदय ने इस सम्बन्ध में एलियन का जो उद्धरण प्रस्तुत किया है वह विग्रह महत्वपूर्ण है—

In the Indian royal palace where the greatest of all the Kings of the country resides besides much else which is calculated to excite admiration (and with which neither Susa nor Ekababana can vie for methinks only the well known vanity of the Persians could prompt such a comparison) there are other wonders besides. In the parks tame peacocks are kept and pheasants which have been domesticated there are shady groves and pasture ground planted with trees and branches of trees which the art of the woodsman has deftly interwoven while some trees are native to the soil others are brought from other parts and with their beauty enhance the charms of the landscape. Parrots are natives of the country and keep hovering about the king and wheeling round him and vast though their number be no Indian ever eats a parrot. The Brahmans honour them highly above all other birds because the parrot alone can imitate human speech. Within the palace grounds are artificial ponds in which they keep fish of enormous size but quite tame. No one has permission to fish for the king except the king's sons while yet in their childhood. The youngsters amuse themselves while fishing in the unruffled sea of water and learning how to sail their boats —

मन्त्रिण्डल *Ancient India as described in Classical Literature* pp 141-42

के दैनिक काय तथा उसका व्यक्तिगत जीवन भी कौटिल्य के अर्थशास्त्र के द्वारा अनुशासित था। चन्द्रगुप्त जब मगधा के लिए जाता था तब भी वह नारियों द्वारा रीत रूहा था। मगधा के समय भा उमक पाम ने या तीन शत्रुयुक्त नारियाँ रूती थी। कौटिल्य ने भी अपन अर्थशास्त्र में यह लिखा है कि प्रातः काल शया में उठने समय ठा राजा का स्वागत घन घोरिणा नारियाँ द्वारा होना चाहिए। राजा का रूहा के लिए यवनिया की नियुक्ति का प्रयास भारत में भीयकान के बहुत बाल तब चरनी रू। इसका प्रमाण हम कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल तथा विद्यमोवशीय नामक नाटका से प्राप्त होता है जिनमें नाटककार रगमच पर शाग रूता यवनी का प्रवेश कराना है। मगधा का अपने चाग आर पत्यत्रा का किनना अधिक भय बना रहता था उमका उल्लस हम मद्राराधन नाटक के आचार पर पिछन पछा में कर चुके हैं। मम्मवत गुप्त शत्रुआम सुरक्षा के लिए घनघोरिणा नारियाँ अथवानारी शरीर रूकों की नियुक्ति अधिक लाभप्रद सिद्ध हो सकता थी। रूतना ही नही मगधा की सुरक्षा के लिए अज अधिक लाभप्रद उपाय भी किए गए थे। जिस समय मगधा मगधा के लिए राज प्रामाण्य वाचन निरूतता था उस समय उमका भाग रम्मिया से घिग रूता था। जो व्यक्ति रून रम्मिया के लोचन का प्रयास करता था उस प्राणरूड दिया जाता था। राजा केवल चार जममग पर राज प्रासाद से बाहर निरूतता था—(१) युद्ध (२) यानाठान (३) याय विद्यान तथा (४) आषट रूम राजमा ठाल-वाल का वणन भी याना त्वरता में प्राप्त होता है। घामिक या अर्थ भावजनिक उत्सव के अवसरा पर मगधा सुनदती पाननी पर निरूतता था। घामिक उत्सव के अवसरा पर शाहा जनम की चमक-रूमक अन्तीय होती थी। अनेक माने चानी में सुमज्जिन हाया रूय चावदार वनपशु तथा पानतू सिहा एक पथिया से यह जलूस भरा रूता था। चन्द्रगुप्त का अधिक समय राज काज में ही व्यतीत होना था पर उमें सल-रूद आदि मकाफा शौक था। नैनों सागे पाथिया ग-गौ आदि का नगई दवन में उम विणय आनल आना था। रूय-रूड तथा घ-रूदों ना इमक मतारजन के साजन थे।<sup>१</sup>

उपयुक्त विवरण से यह बात होता है कि मगधा जहाँ एक आर कुशान शासक कठोर सैनिक तथा योग्य रूवरी का जीवन व्यनात करता था वहा टमरी आर विनाम मय जीवन भी व्यतीत करता था।

चन्द्रगुप्त का भारतीय इतिहास में स्थान—एतिहासिक वात के वयपात के माय जिस सम्राट का आविर्भाव भारतवर्ष में आर वरु केवल रूमानिण विणय महत्वपूर्ण नहीं है कि वह इम कान का प्रथम सम्राट था अपितु उमका चरित्र कुछ एम अनाम रूम का था जो उम भारतीय इतिहास तो क्या विश्व इतिहास के अरू सम्राटा की रूणा में रूवता है। चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक जीवन के अध्ययन में यह बात आता है कि जिस

<sup>१</sup> डा० चौधरी ने चन्द्रगुप्त के व्यक्तित्व जीवन की जो झाँकी प्रस्तुत की है वह 'वह (चन्द्रगुप्त) कभी-कभी मदिरापान भी करने से नहीं शिक्तता था पर सम्भयत केवल बाल के समय किंतु कभी भी इतना अधिक नहीं पीता था कि महत्त्वपूर्ण नारियों के अनुचित पश्यत्रो का निगाना घने। वह दिन में नहीं सोता था और रात्रि भी यदा-यदा पश्यत्रो से आत्मरक्षा के ध्यान से उसे बिन्तर घल्ला पड़ता था'—  
Age of the Vandas and Mouryys p 100

निम्न स्थिति में उसका जन्म हुआ था उग्र स्थिति में जन्मा कोई विद्वान्नाज्ञा इतने ऊँचे पत्र पर पहुँच सकता है। ऐसी आदत्तयजनक प्रगति का उत्पन्न नपानियन जस दा एक व्यक्ति ही मिल सकता है। बाल्यकाल में विधवा माता द्वारा पापित यत्न गमभय जनाय दानक भारत में मगल बड़े साम्राज्य का सम्राट बनता है। यत्न आर कुछ नये व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं उसके विकास का एक जांचपत्र है। बाल्यकाल में मघर्षों पर ध्यान दान परतथाप्रारम्भिक जावनक जगणितकठिनाइया पर विचार करन पर हम चन्द्रगुप्त का चरित्र और निर्वरा हुआ जान पता है। भारत में साम्राज्य-संस्थापक का इतिहास दखन पर यह बात हाता है कि गुप्त हय खिनजा या मगल साम्राज्य जस सुप्रसिद्ध एवं सुविस्तृत साम्राज्य के संस्थापक म स किमा सम्राट म बह तत्व नहा जा चन्द्रगुप्त मौर्य म था। चौथा शताब्दी ई पूव के पश्चान सातहवा शताब्दी ई० पूव म मगल साम्राज्य का संस्थापक कवन बावर ही एक ऐसा साम्राज्य-संस्थापक मिलता है जिनमे जपन वात् बल द्वारा भारत म मुगल साम्राज्य की स्थापना की। किन्तु वावर के पाम छाटा हा सही पतक सम्पत्ति के रूप म एक रियासत थी जपनी एक सना थी अत साम्राज्य संस्थापक के रूप म चन्द्रगुप्त अन्तिम कहा जा सकता है।

चन्द्रगुप्तप्रारम्भ सही विनाहा प्रकृति का था। कुछ इतिहासकारा के अनुसार नन्द राजा का दरवार म केवल इतिहास छाडना पता कि अपने स्वामिमान का रक्षा के लिए यह भारी से भारी वस्तु म टकरा सकता था। सिक्न्दर के शिविर का मा इस इसा लिए छाटना पता कि वह किमा के सम्मुख कबना नहा चाहता था। चन्द्रगुप्त<sup>१</sup> के चरित्र का यह वास्तविक रूप था किन्तु कुछ साहित्यिक साध्या न इसका चरित्र कुछ और हा चिन्तित किया है। मगलराक्षस का नाम इसम विशेष उल्लेखनीय है। नाटककार विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त को चाणक्य के हाथ का विलोना प्रदर्शित किया है। तब से चन्द्रगुप्त को चाणक्य का कणकटुक मानने का एक परम्परा निकल पड़ी। परन्तु यह किमा मा तथा म सेत्य नही। चन्द्रगुप्त स्वतन्त्र प्रकृति का व्यक्ति था और अपने कार्यो म किमा का अनुचित हस्तान्तरण उस सह्य न था।

एक निम्नजया के रूप म भा चन्द्रगुप्त अतः सम्राट समया जा सकता है। उत्तर पश्चिम में भी नाम पर अत्यधिक सफलतापूर्वक शासन कर लता चन्द्रगुप्त के वश का हा बात थी। यत्न प्रत्या भारत में सभी काना म सभी सम्राटा से अटूता रह गया है।

<sup>१</sup> यहा हमें जस्टिन के उन वाक्यों पर ध्यान देना अनिवार्य है जिसमें वह बताता है कि सिक्न्दर ने चन्द्रगुप्त मौर्य की निर्भीक वाकपटता देखकर उसकी हत्या का आदेश दिया था—

having offended Alexander by his boldness of speech and orders being given to kill him

<sup>२</sup> जो व्यक्ति सिक्न्दर जैसे विजिता के सम्मुख नहीं झुक सकता और निर्भीक होकर बोलता रहा भला वह चाणक्य के हाथों की कठपुतली कैसे हो सकता है। एक बात और ध्यान देने योग्य है। उपरोक्त साक्ष्य हमें यह बताता है कि चन्द्रगुप्त में वाक निर्भीकता (boldness of speech) थी और यह मनोवैज्ञानिक सत्य है कि जिसमें यह गुण होगा वह व्यक्ति किसी के हाथ का विलोना बनने की अपेक्षा मर जाना सुन्दर समझता है। अतः हमारे विचार से मद्राराक्षस के चाणक्य की यह चारित्रिक दुबलता स्वयं विशाखदत्त की कल्पना की देन है।

महान् विजिता ता भारत क अय सम्राट भी हुए जिनम प्राचिन भारत म ही समद्रगप्त का नाम विणय रूप स लिया जा सकता है किन्तु अय साम्राज्य-संस्थापकों न राष्ट्र-निर्माण क ध्यान सन्निविजय नहा का। चद्रगुप्त क सम्मुख जसा कि पहन ही बननाया जा चुका है न प्रमुख समस्याए थी—(१) विदेशियों का दश न बाहर निकानना तथा (२) मगध राज्य का उमूनन अधिन भारत का एक राजनीतिक सूत्र म वापना तथा राष्ट्र का निर्माण करना। साम्राज्य निर्माण क साथ-साथ राष्ट्र निर्माण का ध्यान रचना चद्रगुप्त का एक बहुत बड़ी विशेषता है। उत्तर पश्चिम क जतिरिक्त पश्चिम म भी चद्रगुप्त ने अपनी विजय पताका फहराई। इस प्रकार हम दखत है कि साम्राज्य निर्माता तथा राष्ट्र निर्माता क रूप म चद्रगुप्त काफा उचा स्थान रखता है।

विजिता बाहर न भा मगध साम्राज्य की स्थापना की था किन्तु शासन प्रबन्ध क विषय म उसका कुछ नया किया। चद्रगुप्त मौर्य न एक महान् विजिता की भाति बवल विन्तत साम्राज्य का स्थापना ही नकी था वरन उसन अपन विज्ञान साम्राज्य म शान्ति एक मुख्यवस्था स्थापित करन क लिए मुसगठित शासन प्रबन्ध का भा व्यवस्था की थी। उमन भारतीय सम्राटा का इस धरन म प्ररणा ना। बिन्दुमार क नगण्य शासन तथा अगोक क धार्मिक राज्य क समय म मौर्य साम्राज्य जितनी शांतिना स बना था उतना हा शौर्यता स समाप्त हा गया हाता पर यह चद्रगुप्त मौर्य क शासन प्रबन्ध का हा विशेषता था कि वह इतन दिना तक चल सका। जिन सता का मगधन चद्रगुप्त मौर्य न किया था वह अणक क धमपरायण यग म अस्त्र शस्त्र स विना जन क पचात भा इतनी मगवत एक मयकर थी कि किसी भा आन्तरिक या बाह्य प्रमाघना द्वारा साम्राज्य का शान्ति भग न हा सका। चद्रगुप्त के शासन प्रबन्ध क अन्तगत अष्ट विज्ञान म कठा रता का समावक प्राप्त हाता है और इसी आधार पर जस्टिन सम्राज्य न उम तिया एक क्रूर कहा है। किन्तु मुनाराक्षम म चद्रगुप्त का अवतरित स्वता घोषित किया गया है जो सुख तथा समृद्धि प्रदान करन क लिए स्वग म उतरा है। मगस्थनीज न भा चद्रगुप्त के शासन प्रबन्ध का भूरि भूरि प्रशंसा का है। अष्ट विज्ञान का कारता तत्कालीन परिस्थितिया की भांग थी।

सौभाग्यवश चद्रगुप्त का तत्कालीन भारत क सब अष्ट राजनीतिज्ञ वाणव्य का सहवास प्राप्त हो गया था जिसम वह कूटनाति म भी पूर्णरूपण दम हो गया।

चद्रगुप्त की बलाप्रियता का सब अष्ट उदाहण उमका राजमहन है। जिन राजसी ठाट-बाट स चद्रगुप्त अपना जावन व्यताते करता था वह आदश विलासिता का जा सकता है। आठ विलासिता म हमारा अभिप्राय नतिकता का रक्षा करत हुए विलासा जावन स है।

इन प्रकार हम दखत है कि चद्रगुप्त मौर्य साम्राज्य निमाता राष्ट्र निर्माता शासक तथा मनुष्य प्रत्येक रूप म पूण था।

## विन्दुसार

चद्रगुप्त क पचात उसका पुत्र बिन्दुमार मौर्य साम्राज्य क गिहासन पर आसन हुआ। इतिहासकार एबो क बयनानुसार मनुद्वाराजस (चद्रगुप्त) का पुत्र तथा उत्तराधिकारी का नाम एलिगेट म था। कुछ अय इतिहासकार बिन्दुमार की अनेक नामा स पुनर्रते है। य समी नाम समृद्ध के अमित्रपाल (रिघुवातक) क रूपान्तर प्रन त

हते हैं।<sup>१</sup> उन प्रथम राजवंशियों तथा म विदुसार को सिंहसेन कहा गया है। उन सभी विदेशी लक्षकों तथा भारतीय ग्रथों ने चन्द्रगुप्त मौर्य का जो नामकरण किया है उनमें पराणा द्वारा दिया गया नाम ही ग्रहण किया गया है और उसके आधार पर ही हम उस विदुसार कहते हैं। विदुसार का शासन का पूर्ण विवरण नहीं प्राप्त होता। चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन काल के पश्चात् रचित ग्रथां में यों बहुत नामग्री विदुसार का विषय में मिन जाती है।<sup>२</sup> पर वह भी बिल्कुल अपर्याप्त है। यदि आयमजुषी मूलकृत्य का लक्षक तथा तिबतान् इतिहासकार लामा तारानाथ का विश्वास किया जाय तो चाणक्य ने कुछ समय तक विदुसार का भा मंत्रित्व किया था। तत्पश्चात् दिव्यावदान में वर्णित खलनाटक विदुसार का प्रधान सचिव निर्वाचित हुआ था और उसका राजगण मत्रा हुआ।

**विद्रोह—**चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल का वर्णन करते हुए यह बतलाया गया था कि मौर्य साम्राज्य में जमी विद्रोहों की संख्या काफी थी। गुप्तरूप से घड्यत्र रचने वाला की संख्या तो और भी अधिक थी। दिव्यावदान के वर्णनानुसार हम बिन्दुसार के शासनकाल में हानेवाल उपजावा का ज्ञान प्राप्त होता है। निश्चय ही चन्द्रगुप्त को ब्रह्म शक्ति का सम्मुख इन विद्रोहियों को दबाना पना था और इन्हीं सभी सर उगान का साहस नहीं किया किन्तु नये राजा को दुबल समझकर विद्रोहियों ने विद्रोह कर लिया। परन्तु हम इस धारणा को अक्षरशः मत्य नहीं मान सकते क्योंकि दिव्यावदान तमशिला में हानेवाल जिस विद्रोह का वर्णन करता है उसका दमनाथ जिस समय बिन्दुसार ने अपने पुत्र जमाक का राजा तो वह तमशिला पहुँचकर माग में ही जनता से मिला जिसने निम्नलिखित बयान दिया— न तो हम लोग राजकुमार के विरुद्ध हैं और न सम्राट का अपितु उन निन्धा मरिया का विरोधी हैं जो हमारा अपमान करते हैं।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिन्दुसार के समय में प्रान्तीय शासकों का नशस्ता काफी अधिक बढ चुकी थी। इससे बिन्दुसार के प्रान्तीय शासन की इलाह का बाध होता है। यहाँ तिबतान् इतिहासकार लामा तारानाथ का निम्नलिखित उल्लेख का वर्णन कर देना विषयतर न होगा—

अमारा तथा १६ नगरा का राजाजा का विध्वंस और पूर्वी एवं पश्चिमी समग्रा का मध्यस्थ राज्यों का अधिकारी बनाने में चाणक्य साधने सिद्ध हुआ। कुछ विद्वान तारानाथ का उपयुक्त वर्णन से यह जय लगाते हैं कि विदुसार ने दक्षिण विजय की थी किन्तु विषय पर तब कितना जयत्र किया जायगा। यहाँ तारानाथ का वर्णन के प्रथम भाग का सम्बन्ध हम किसी जनविद्रोह से स्थापित कर सकते हैं जिनके दमन में चाणक्य ने विदुसार का मदद दी हागी। अमारा से तारानाथ का जमिप्राय उच्च कुलीन व्यक्तियां से है तथा १६ नगरा का राजाजा का जमिप्राय जनपदा से हा सन्तता है क्योंकि तमिष विजय में अमारा का विध्वंस का काई प्रान न था।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> जमिप्रायत गद का प्रयोग पतजलि के महाभाष्य ३।२।२। से मिनता है। एतरेय ब्राह्मण तथा महभारत में जमण अमिशाना हता तथा अमिशघातिन् उपाधियों का प्रयोग योद्धा राजकुमारा के लिए किया गया है।

<sup>२</sup> दिव्यावदान, पृष्ठ ३७२।

<sup>३</sup> The statement of Taranath is based on authentic tradition need me in nothing more than the suppression of revolts of the type alluded to in the Divyavadan in the vast stretch of territory



वाह्यनाति—विन्दुमार का पालन-यापण उम राजप्रासाद में हुआ था जिसमें न केवल एक यूनानी राजा थी अपितु यूनानी युवतियाँ का एक बहुत बड़ी संख्या थी। सम्भवतः उन विन्शियाँ क प्रति विन्दुमार का कुछ आकर्षण रहा होगा। उममें अपने पिता चन्द्रगुप्त तथा यूनानियों क सम्बन्ध का नाम था। विन्दुमार न यह भी दावा था कि विन्शियाँ का देश राज क लिए चन्द्रगुप्त न एक पथक विभाजन का निर्माण किया था। यह था उमकी वाह्य नाति का प्रभावित करने वाली पट्टभूमि। दुर्भाग्यवश हम विन्दुमार क विभिन्न वर्णिक सम्बन्धों का विवरण न प्राप्त करके केवल यूनानियों से उसक सम्बन्ध का नाम प्राप्त होता है। यूनानी इतिहासकारों न अन्तिमोक्त प्रथम मानते तथा विन्दुमार क पञ्चव्यवहार का एक नमूना मुद्रित रखा है। उममें जात होता है कि मौर्य सम्राट विन्दुमार न सीरिया के सम्राट अन्तिआक से मगुर मरिया अजाफ और एक दार्शनिक का मौर्य को थी। उमक यूनानी मित्र न विन्दुमार की प्रथम दा माया का प्रति करत हुए जा उत्तर दिया है वह इस प्रकार है—

मय इन्हें भजन न ता की प्रसन्नता हाता है परन्तु अमाव्यवश आपकी सामरी इच्छा पूरा न कर सकगा क्योंकि दण का कानून दार्शनिक भजन क विन्द है।

मगस्थनीज क पञ्चाज डमाकम नामक एक दूसरा राजदूत 'भारिया सम्राट द्वारा विन्दुमार क स्वीकृति मन्ता गया था।<sup>१</sup> पिता क कथनानुसार अजिष् क राजा टाग्मी त्ताय पिन्डिपफम ( १ - २४७ ई० पूव ) न भा टायनामन नाम का राजत नागताय 'राजपति' म भजा था पर वह मिचयपूर्वक नहा कहा जा सकता कि टायनीमय विन्दु सार अथवा अजाक म से विमक राज-दान म आया था।

दक्षिण विजय—मौर्य सम्राट क सम्भावक चन्द्रगुप्त मौर्य क साम्राज्य विन्दुमार का वषण करत है यह बात यथा गया था कि दक्षिण क अधिकांश म भाग पर चन्द्रगुप्त न अपना अधिकांश स्थापित कर दिया था। अगले परिच्छेद म हम यह भी देखेंगे कि अजाक के साम्राज्य म दक्षिणापथ का विस्तार म सम्मिलित था। मया यह विचारणीय है कि दक्षिण का विस्तृत देश किस प्रकार अजाक का अधिनता म आया। अजाक न ता अपने प्रथम तथा अन्तिम यद्ध कर्तव्य-मुद्ध क रक्तयान से ही हीन हाकर मन्व क लिए अन्य शम्भ्रा का मूय का विरणा म दूर कर दिया अतः यह दृढनापूर्वक कहा जा सकता है कि दक्षिण विजय अजाक न रहा था। दक्षिण विजय का श्रेय या ता हम चन्द्रगुप्त का दे सकते है या विन्दुमार का। तिब्रता इतिहासकार नामा ताराताय क कथनानुसार विन्दु सार न पूर्वी एवं पश्चिमा ममता की मारा भूमि का अपने का स्वामी बना दिया। ताराताय क इस विवरण क आधार पर ता दक्षिण विजय का श्रेय विन्दुमार का न दिया जा सकता है। 'मक अतिरिक्त अमिधानक (शत्रुघातक) इस विचार का जोर

between Surashtra and the Gangetic delta No Greek or Indian record of any date connects the name of Bindusara Amtraghata with the conquest of any large tract of Peninsular India Inscription of Kalinga and Mysore which tell us so much about the Nandas Chandragupta and Asoka are silent about the second Maurya Age of the Nandas and Mauryas p 168

१ स्ट्रुबो २।१।९॥ मेगस्थनीज तथा एरियन पृष्ठ १२ १९

होते हैं।<sup>१</sup> उन प्रथम राजवंत कथा म बिन्दुसार को सिंहसन कहा गया है। इन ममी कित्थी लसको तथा भारतीय ग्रथा ने चन्द्रगुप्त मीय का जो नामकरण किया है उनमें पराणो द्वारा दिया गया नाम ही ग्रहण किया गया है और उसके आधार पर ही हम उस बिन्दुसार कहते हैं। बिन्दुसार के शासन का पूण विवरण नहा प्राप्त हाता। चन्द्रगुप्त मीय के शासन काल के पचात् रचित ग्रथा म खोी बहुत सामग्री बिन्दुसार क विषय म मिल जाती है।<sup>२</sup> पर वह भी बिल्कुल अपर्याप्त है। यत्ि आयमजुश्री मूलरूप के लगभग तथा तिवती इतिहासकार लामा तारानाय का बिश्वास किया जायता चाणक्य न कुछ समय तक बिन्दुसार का भी मंत्रित्व किया था। तदुपरान्त 'दिव्यावदान' में वणित खलनाटक बिन्दुसार का प्रधान सचिव निर्वाचित हुआ था और उसने बाद राघवपत्त मंत्री हुआ।

विद्रोह—चन्द्रगुप्त मीय क शासनकाल का वणन करते हुए यह बतलाया गया था कि मीय साम्राज्य म जमी कित्थिया की सभ्या काफी थी। गुप्तरूप स पडयत्र रचने वाला की सभ्या ती और भी अधिक था। दियावदान के कथनानुसार हम बिन्दुसार के शासनकाल म होनवान उपद्रवा का ज्ञान प्राप्त होता है। निश्चय ही चन्द्रगुप्त की अन्त्य शक्ति के सम्मुख इन विद्रोहियों का एक जाना पडा था और इहाने कमी सर उठाने का साहम नही किया किन्तु नय राजा को दुबल समझकर विद्रोहियों ने कित्थी कर लिया। परन्तु हम इस धारणा का अक्षरशः सत्य नही मान सकते क्योंकि दियावदान तथा शिला म हानेवाने जिस बिनाह का वणन करता है उसके दमनाय जिन समय बिन्दुसार ने अपने पुत्र अशोक को भजा तो वह तथाशिला पहुचकर माग मे ही जाता से भिला, जिसने निम्नलिखित वयान दिया— न तो हम लोग राजकुमार के विरुद्ध हैं और न सम्राट क अपितु उन निदया मंत्रिया क विराधी हैं जो हमारा अपमान करते हैं।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिन्दुसार के समय म प्रान्तीय शासकों का नशसता काफी अधिक बढ़ चुकी थी। इससे बिन्दुसार के प्रान्तीय शासन को फिलान का बोध होता है। यहाँ तिवती इतिहासकार लामा तारानाय के निम्नलिखित उल्लेख का वणन कर देना विषयतर न होना—

अमीरा तथा १६ नगरा क राजाआ क विध्वंस और पूर्वी एव पश्चिमी समुद्रा क मध्यस्थ राज्यों का अधिकारी बनाने मे चाणक्य साघन सिद्ध हुआ। कुछ विज्ञान तारा नाथ क उपयुक्त वणन से यह अर्थ उगाते हैं कि बिन्दुसार ने दक्षिण विजय की था बिन्दु विषय पर नक वित्तव अयत्र किया जायगा। यहाँ तारानाय क वणन के प्रथम भाग का सम्बन्ध हम किसी जनविद्रोह से स्थापित कर सकते हैं जिनके दमन म चाणक्य ने बिन्दु सार का मदद दी होगी। जमारा से तारानाय का अभिप्राय उच्च कुलीन व्यक्तियों से है तथा १६ नगरा क राजाआ का अभिप्राय जनपदा से हा सकता है क्योंकि दक्षिण विजय म जमारा क विध्वंस का कार्य प्रान्त न था।<sup>३</sup>

<sup>१</sup> जमिप्रघात शब्द का प्रयोग पतञ्जलि के महाभाष्य ३।२।२। से मिलता है। एतरेय ब्राह्मण तथा महाभारत में क्रमशः 'अभिप्राना हुता तथा अभिप्रघातिन् उपाधिभो का प्रयोग पौढा राजकुमारो के लिए किया गया है।

<sup>२</sup> दिव्यावदान पृष्ठ ३७२।

<sup>३</sup> The statement of Taranath if based on authentic tradition need mean nothing more than the suppression of revolts of the type alluded to in the Divyavadan in the vast stretch of territory

वाह्यनीति—विन्दुमार का पालन-मापण उम राजप्रासाद म हुआ था जिसमे न कवन एक यूनानी राजा थी अपितु यूनानी युवतिया का एक बहुत बड़ी सख्या था । सम्भवत उम विदेशिया क प्रति विन्दुमार का कुछ आकर्षण रहा होगा । उमन अपन विन्दुसार न यह भा ल्या विभाग का निमाण किया ।

विन्दुसार के विभिन्न वंशिक सम्बन्धों का विवरण न प्राप्त है कवन यूनानिया म उमक साक्षर का पाल प्राप्त हुआ है । यूनानी इतिहासकारा न जन्मिआक प्रथम मालर तथा विन्दुसार क पत्र-व्यवहार का एक नमूना सुरक्षित रखा है । उममे जात जाता है कि मौर्य सम्राट विन्दुसार न मारिया क सम्राट अन्तिआक म मधर मालिा अजोर और एक 'राजतिक' का माँग का थी । उसक यूनानी मित्र न विन्दुसार का प्रथम न माया की वृत्ति करन हुए जा उत्तर लिया है वह उस प्रकार है—

मुझ इन्हें भजन न ता क । प्रमत्तता जाता है परन्तु अमात्यरम आपका नीनरी इच्छा पूरा न कर सकगा क्याकि दश का कानन दानिक भजन क विन्द है ।'

मगधनाज क पञ्चान डमाकम नामक एक समरा राजदूत 'मारिमा मघाट द्वारा विन्दुसार क खवार म भजा गया था ।<sup>१</sup> प्लिना क कथनातमार 'जिण क राजा टातमा लिपि लिखित म ( ८ - ४७ २० पू ) न मा हायनामम नाम का राजत नारनाय 'राजवार म भजा था पर यह निश्चयपूर्वक नता कता जा सकता कि हायनामम विन्दु सार क्या अशाक म स विमके राज-खार म आया था ।

दक्षिण विजय—मौर्य साम्राज्य क सस्थापक चंद्रगुप्त मौर्य क साम्राज्य विस्तार का कान करन हुए य खननाया गया था कि दक्षिण क अशिकाण म भाग पर चंद्रगुप्त न अपना अधिकार स्थापित कर लिया था । अगत परिच्छेद महम य मी दक्षिण कि अशान के साम्राज्य म दक्षिणापथ का विस्तार दश सम्मिलित था । यहाँ यह विचारणीय है कि दक्षिण का विस्तार दश किस प्रकार अशाक का अधानता म आया । अशाक न ता अपन प्रथम तथा अन्तिमयुद्ध काल-मुद्ध क रक्तपात स न क्षुब्ध कर सक्ष क लिए अत्र मन्त्रा का मूय का किण्णा म दूर कर दिया अत म उल्लेखपूर्वक कहा जा सकता है कि दक्षिण विजय आशक न नहीं का । दक्षिण विजय का श्रेय मा ता हम चन्द्रगुप्त न स मत है या विन्दुसार का । तिखना इतिहासकार 'नामा ताराणाय क कथनानुसार विन्दु सार न पूर्वी एवं पश्चिमा समुद्र की मारा भूमि का अपन का स्वामा बना लिया । ताराणाय के उस विवरण क आधार पर ता दक्षिण विजय का थय विन्दुसार का न दिया जा सकता है । उस अतिरिक्त अमिदघातक (मघघातक) इस विचार का और

between Surashtra and the Gangetic delta No Greek or Indian record of any date connects the name of Bindusara Amittaghata with the conquest of any large tract of Peninsular India In cryption of Kalinga and Mysore which tell us so much about the Nandas Chandragupta and Asoka are silent about the second Maurya Ag of the Nandas and Maurya p 168

१ स्तबो २।१।९।। मेगास्थनीज तथा एरियन पृष्ठ १२,१९

भी प्रौढता प्रदान करता है किन्तु जमा कि ऊपर कहा जा चका है तारानाय क इस विवरण का सम्बन्ध किसी विद्राह से है। दक्षिणापथ क, जीतना मरल काय न या और इतनी बड़ी सनिक सफ नता बरनवान व्यक्ति क इतिहास क विषय म पयाप्त मामश का अभावहो यह कुछ तब सगत नही जचता। जन अनु र्तिया क अनसा भी चग्पत द्वारा दक्षिणापथ का विजय की स्वीकार करना अधिक तत्रमगत है क्याकि क चग्पत का सम्पक ममूर से जा ती है।

**बिदुसार का परिवार**—केवन जशाक ही बिदुसार का जकना पुत्र न था क्याकि अशोक ने पांचवें शिालख म यह बतनाया है कि उसके कर् माँ जार बहनें थी। शिवात्रदान म अशाक क दा भाइया का नाम मुसीम तथा विगनाशाक बनलाया गया है। सिहनी अनु र्तिया इ ह त्रमश मुमग तथा तिप्य कना है।

**बिदुसार की तिथि**—जब हम बिदुसार की तिथि पर विचार करेंग। पुगणा के जनमार चग्पत तथा बिदुसार ने त्रमश २४ तथा २५ वष तक राय किया। बौद्ध अ र्तिया क आवार पर बिदुसार का शासनकाल २७ या २८ वष माना जा मकता है जत यदि हम यह स्वाकार कर रें कि ३२४ ई० पूव म चग्पत सिहामनास्ट हाकर २००० पूव तक राय करता हैता हम बिदुसार का शासन काल लगभग ० ई० पूव म २७३ ई पूव तक मान सकते है।<sup>१</sup>

## अशोक

बिदुसार की मृत्यु के पचात पाटलिपुत्र क सिमामन पर उम महान सम्राट का पदापण होता है जो भारत ती क्या विश्व इतिहास म अपना प्रमन स्थान रखता है। यह सम्राट केवन अपन साम्राज्य की विशालता के लिए ही विख्यात नही है बरन बयकिनक चरित्र तथा अपने उद्देश्य एव आदश के त्रिण भी यह विशपरूप त प्रतिद्ध है। इस महान् सम्राट का इतिहास म अशाक महान कहा जाता है। अशोक ने जित साम्राय पर शासन किया वह भारत का सबसे ब साम्राय था। विश्व म विशालता क दष्टिकाण स अनक साम्राज्य तथा उनक शासक प्राप्त हो सकत है। किन्तु विस्तत साम्राय का सवश्रष्ट सम्राट हान क साथ साथ मवश्रष्ट मानव हाना कर्तिन हा नही असम्भव है। श्रष्ट सम्राट कुशल शासक तथा आदश मानव एव साथ एक यकिन ही हो यह और कुछ नही प्रकृति का आचय है। इस परिच्छ म हम उमा महान विभि। अशाक क विषय म पंगे।

**अशाक का राज्याभिषेक**—चग्पत ३२४ ई पूव म गद्दा परवता और २०० ई० पूव म उसक। मृत्यु हा ग। तदुपरात बिदुसार सिहासनारूढ मना है जिसन पुराणा के

<sup>१</sup> बिदुसार की तिथि के सम्बन्ध में डा० हेमचन्द्र राय चौधरी न लिला है— 'जसा कि प्लूटार्क तथा जस्टिन के प्रमाणों से परिलक्षित होता है चद्रगुप्त ३२६-२५ ई० पू० तक सिहासनारूढ नहीं हुआ था और पुराणों के अनुसार उसने २४ वर्षों तक राय किया, (अत) उसका उत्तराधिकारी ३०१ ई० पू० के पहले राजसिंहासन किसी प्रकार नहीं प्राप्त कर सका होगा निश्चय ही इस नये सम्राट ने २७०-६९ ई० पू० से राज्य करना प्रारम्भ किया होगा बिदुसार क शासन-काल सम्बन्धी साक्ष्या में मतभय नहीं है। पुराण इसे २५ वष बताते है। बर्मा तथा तिहली अनु र्तिया क मग २७ तथा २८ वष घोषित करती है। — *Age of Vedis and Mauryas* p 168

अनुसार २५ वर्ष तक राज्य किया। इस माघन मत्ता विन्सुमार का निम्न निधि २७१-० पूर्व माना जा सकता है। ये माघ विवर्ण पुगणा क जागार पर लिय गय है तिनक अनुसार अशाक क राज्याभिषेक रा तिथि २७ ० पूर्व माना चाहिए किन्तु बाड अनश्रुतिया क अनुसार विन्सुमार न २७-०८ वर्ष तक राज्य किया। यदि हम इस माघ्य का मत्य मानें तो विन्सुमार की निम्न निधि ७-७ ० पूर्व सिद्ध होता ह। सिन्हा अनश्रुतिया क अनुसार अशाक का राज्याभिषेक विन्सुमार का मय क चार वर्ष पश्चात अर्थात् २६८-६ २० पूर्व म हुआ।

राज्याभिषेक का यह चार वर्ष का अंतर (यदि वास्तव में का अंतर रहा माहा<sup>१</sup>) निम्नकारणों के समूह एक बहुत व। प्रथम उपस्थित कारण है जो माघ अशाक क चरित्र से सम्बन्धित है। इस चार वर्ष का अंतर का कारण भी मिह्ला अनश्रुतिया म प्रामाणिक हो जाता है। मिहली अनश्रुतिया क अनुसार अशाक अर्थात् निदया तथा रत्नपिपासु था जिसने अपन पिता का मत्य क पश्चात् ९९ भाइया की हत्या करके गंग प्राप्त की था।<sup>१</sup> डा० स्मिथ इतना मा स्वाकार करते है कि मिह्लासन के लिए अशाक का मघय करना पना था जोर इनीलिए राज्याभिषेक म दर हुई किन्तु य ९९ भाइया का हत्या करना स्वाकार नहीं करत। कवनसौतन वने मा<sup>२</sup> मुसीम मे मघय हाना व स्वाकार करत ह।<sup>३</sup> मा० नडाकर भी मिहली अनश्रुतिया का खडन करत हुए स्मिथ महादय

<sup>१</sup> श्री नालकात शास्त्रा ने लिखा है कि जिस समय बिन्दुसार मत्स्य-गण्ड्या पर पडा हुआ था उसी समय अगोक उज्जनी छोडकर पुष्पपुर (पाटलिपुत्र) चला आया और उसने साम्राज्य के शासन भार को ग्रहण किया। नालकात महादय ने यह बताया है कि अनुश्रुतिया के कथनानुसार अशोक ने बिन्दुसार की इच्छा के विरुद्ध शासन-सत्ता पर अपना अधिकार जमाया।

मिहली अनश्रुतिया दो भिन्न विवरण प्रस्तुत करती ह—एक यह है कि अगोक ने अपने ९९ भाइया की हत्या करके साम्राज्य प्राप्त किया जसा कि ऊपर बताया गया है कि पाटलिपुत्र का सिंहासन करवा दी (महावग ५।४०।)

दूसरा यह है कि पाटलिपुत्र का सिंहासन करवा दी (महावग ५।४०।) तब गण्ड्या पर पडे हुए बिन्दुसार ने अपन पुत्र मुसीम को राजतिलक देन का निश्चय किया तो उसके भयिमा न मुसाम के स्थान पर अगोक को राज्याधिकारी निर्वाचित कर दिया और जब बिन्दुसार का इस छल का पता चला तो वह बहुत कोपित हुआ। उस समय अगोक ने दबो शक्तिया दबा देयताओं का आवाहन करके राज्य पर अपना अधिकार प्रमाणित किया। किन्तु इसी प्रय में अशाक अपन गजुओं को मारकर राज्य-सत्ता प्राप्त करने की बातें करता है।

<sup>२</sup> "The fact that his formal consecration or coronation (abhisheka) was delayed for some four year until 269 B C confirms the tradition that his succession was contested and it may be true that his rival was an elder brother named Susima —The Oxford History of India P 93

डा० स्मिथ ने अपन दूसरे प्रय 'अशाक' में, जो कुछ महीना बाद ही प्रकाशित किया गया था, लिखा है—“यह सम्भव है कि यह दूरी क्षण में पडे हुए उत्तराधिकार क कारण ह। हुई जिसमें अधिक रत्न-पिपासु हुआ किन्तु ऐसे किसी सघय का स्वतंत्र प्रमाण नहीं प्राप्त होता है। देखिये Political History of Ancient India p 70-

का समर्थन करते हैं। बौद्ध अनुश्रुतियाँ स यह भी पात होता है कि सिंहासन के लिए अशोक को सघप करना पड़ा था और उसने राघगुप्त की सहायता से अपने सौतेले भाई सुसीम के समर्थ विजय पाई थी। राज्याभिषेक में चार वर्ष देरा हान का एक दूसरा कारण डा० जायसवाल ने यह बतनाया है कि राज्याभिषेक के समय अशोक का आयु २५ वर्ष से कम थी और उन दिना २५ वर्ष से कमवाल राजकुमार का राज्याभिषेक नहीं होता था। इसलिए राज्याराहण में तीन चार वर्ष का देरा हुई।<sup>१</sup> किन्तु राय चौधरी जो सिंहासन का खंडन किया है और अपने मत के समर्थन में यह लिखता है कि पुराणा में विचित्र ईश के राज्याभिषेक उसके बाल्यकाल में हाना कहा गया है।<sup>२</sup> दीपवश में ९९ भाइयों का पक्षहत्या का जो वर्णन किया गया है वह भी तबसगत नहीं। अब हम उपयुक्त मतों की वास्तविकता पर थोड़ा विचार करेंगे अर्थात् हम इस निष्पत्ति पर पहुँचने का प्रयास करेंगे कि अशोक को सिंहासन के लिए ९९ भाइयों की हत्या करना पड़े अथवा बवल सुसीम के साथ सघप या उसका बध करना पड़ा अथवा बिना सघप के ही उसका राज्याभिषेक हुआ गया। अशोक स्वयं अपने अमिलराम में इस बात का निश्चय करके कि उसका राज्याभिषेक गद्दी प्राप्त होने के चार वर्ष पश्चात् हुआ हमें यह स्वाकार करने को प्रेरित करता है कि बिना किसी कारण के राज्याभिषेक में चार वर्ष बीत जाना सम्भव नहीं। हम यह भी जानते हैं कि जिस समय अशोक अपने पिता बिदुसार के शासनकाल में उज्जना का शासक था उसी समय तक्षशिला का शासक अशोक का अग्रज सुसाम अथवा सुमत था। जिस समय तक्षशिला की जनता ने विद्रोह किया उस समय सुसीम की अयोग्यता का परिचय सम्राट को प्राप्त हुआ। सुसीम किसी प्रकार भी विद्रोह का दमन न कर सका पर अशोक का तक्षशिला पहुँचना था कि जनता उससे मिल गई और बिनाह शात हो गया। निश्चय ही यह सुसीम के लिए बहुत अपमानजनक घटना हुई। बिदुसार की मृत्यु के पश्चात् अशोक का अग्रज सुसीम गद्दी पर बठना चाहता था पर ऐसा नहीं हुआ। अपने अधिकार के लिए सुसीम का अशोक के साथ सघप करना अनिवाय था। मौर्य साम्राज्य पर अशोक का शासन स्थापित होता है तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सुसीम तथा अशोक में जो सघप हुआ उसमें या तो सुसीम का बध कर दिया गया या उसने सवत्ता के लिए अशोक को अधानता स्वाकार करने पर अधिक सम्भावना उसके बध की ही की जा सकती है।

जहाँ तक ९९ भाइयों के बध करने का प्रश्न है यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इसमें कोई सार नहीं। इन ९९ भाइयों अशोक तथा सुसीम को लेकर बिदुसार का १०१ लड़कें हुए? यह पूर्णतया कपात्रकल्पित एवं हास्यास्पद बात है। जब ९९ भाइयों का होना ही असम्भव है तो उनके बध का कोई प्रश्न नहीं।

उपयुक्त तब से हम यह निष्पत्ति निकाल सकते हैं कि अशोक को सिंहासन के लिए बवल अपने अग्रज सुसीम से सघप करना पड़ा था। स्वयं अशोक ने अपने शिवालय चतुप तथा पचम में सम्बन्धिता के साथ अनचित व्यवहार करने की अवहलना की है और उनमें अपने भाई बहना तथा सम्बन्धिता के साथ सुन्दर व्यवहार का वर्णन किया

<sup>१</sup> JBORS 1917 page 438 Quoted in the above book

<sup>२</sup> विचित्रवीर्यश्च तथा  
बाल अप्राप्तयौवनम्  
कुहराग्रे महाबाहुर  
अभ्यसित घ तदनंतरम् । महाभारत १।१०।१।२

है। अतः अशाक व ये अमिलख सिद्ध कर देते हैं कि अशाक किसा प्रकार भी अपन माइया का हत्या नहीं कर सकता था। पर यहाँ सन्देह यह है कि तब व अशाक और अमिलख व अशाक ममत्र हूँ। बौद्ध ग्रन्थों में अशाक का प्रारम्भ म क्रूर प्रताप जान व आधार पर भी उसका माइया का वध करने वाला मानना तर्कमत्त नहीं। क्योंकि इस बालाशाक या चंडाशाक धारित कर्म म बौद्ध ग्रन्थों का अपना निजा स्वाय निहित है। व बाद धर्म स्वीकार करने व पूर्व अशाक की क्रूर वनाकर बाद धर्म का शक्ति म धर्मकार का स्वीकार कराना चाहते हैं।

सम्राट अशाक की कलिंग विजय—सिंहासन पर बैठने व पूर्व अशाक उज्जैन का शासक रहे चुका था। सम्राट हान व पदचाल व द्रुगुप्त का प्रयोग अशाक का मा साम्राज्य विस्तार का महत्वाकांक्षी रहा होगा। बौद्ध ग्रन्थों में अशाक का अनुमान अशाक न स्वम नगर का पराजित किया था किन्तु अशाक व अमिलख म हम इस प्रकार का वधन एक ही घटना का विवरण प्राप्त होता है और वह है कलिंग विजय।

महानदा तथा गण्डावरी व बीच स्थित कलिंग राज्य चन्द्रगुप्त मौर्य का दिग्विजय का सन्नाह भूत रहे गया था और इस प्रकार वह अब मा स्वतंत्र था। कुछ इतिहासकारों का यह मत है कि नन्दराजा महापद्म न इ० पूर्व चौथा शताब्दी म काल का पराजित कर दिया था और वहाँ स विजयनगरिका व रूप में एक जन नायक-मूर्ति पाटलिपुत्र चला साइ गइ था। बिन्दुसार व राज्यकाल म जब विद्रोह का प्रारम्भ हुआ तो सम्भव कलिंग राज्यपुन स्वतंत्र हो गया। वास्तविकता जो मा हा, अशाक व समय म कलिंग स्वतंत्र और शक्तिशाली राज्य था। अशाक व १२ व शतमानत स हम कलिंग विजय का विवरण प्राप्त होता है। किन्तु कल्हण के राजतरंगिणी स यह बात बताता है कि अशाक न सर्वप्रथम काश्मीर पर विजय प्राप्त का था। काश्मीर व इतिहास व अध्ययन स भी यह प्रतीत होता है कि अशाक न काश्मीर पर विजय प्राप्त का था क्योंकि इस इतिहास म अशाक का मौर्य वंश का प्रथम सम्राट धारित किया गया है। कल्हण लिखता है कि अशाक न अशाक न धरता पर राज्य किया। इस राजा न जिसने पापा स मुक्ति पा ता है और जन मत स्वीकार कर लिया ह मुरावलय व तथा वितस्ताम का स्तूप स इव मिया है। वितस्ताम नगर म धर्माण्य बिहार की सामा म उसका वनवाया हुआ एक अल्प है जिसकी ऊँचाई तब मीट का पट्टवना कठिन है। इस सुप्रसिद्ध सम्राट न थानगरी का स्थापना का। इस पापूनि राजा न विजयेश्वर व प्राचीन धर ( enclosure ) का हटाकर उसका स्थान पर पत्थर का एक नवान धरा बनवा मिया। उसने विजयेश व धर व मानर तथा उसका निकट दा मीर का निर्माण करवाया जिन्हे अशाक-धर कहा जाता था।

इस आधार पर यह अनुमान किया जा सकता है कि काश्मीर चन्द्रगुप्त तथा बिन्दुसार का शासन-काल स मुक्त था और अशाक न सर्वप्रथम उस पर अधिकार स्थापित किया। किन्तु अशाक के रूप में कहा जा चुका है अशाक न वधन एक ही कारण प्रमाण किया और उसका फल था कलिंग विजय। कल्हण व राजतरंगिणी का काश्मीर इतिहास का वान एक दूसरे रूप म सत्य मा ही सकती है। सम्भव है का मौर्य न सर्वप्रथम अशाक का अज्ञानता स्वीकार की हो और इससे पूर्व वहाँ स्वायत्त शासन रहा हो। क्योंकि चन्द्रगुप्त व शासनकाल म भी कुछ स्वायत्त शासनकाल छान-छाट राज्यों का पता चलता है। बिन्दुसार न काश्मीर पर आक्रमण किया ह। इसका का प्रमाण उपलब्ध नहीं है अतः अशाक का काश्मीर पर आक्रमण करना तथा उस पर विजय प्राप्त करना कुछ अश

यह तीसरा पूर्णतया धार्मिक दृष्टि से रही, ऐसा इतिहासकारों ने मनमाना लगाया है।

(४) कुछ इतिहासकार शिलालेखों का मुख्य उद्देश्य बौद्ध धर्म का प्रचार बतनाते हैं। वे अपनी पुष्टि में चार लघु-स्तम्भ-लेख दो तराई स्तम्भ-लेख बराबर ऋरी गृह के तीन अभिलेख चौदहवाँ शिलालेख तथा विनायक मन्थु शिलालेख का उल्लेख करते हैं।

(५) ह्वनसांग के कथनानुसार अशोक ने एक विशाल सेना के साथ बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। वे अपनी पुष्टि में चार लघु-स्तम्भ-लेख दो तराई स्तम्भ-लेख बराबर ऋरी गृह के तीन अभिलेख चौदहवाँ शिलालेख तथा विनायक मन्थु शिलालेख का उल्लेख करते हैं।

(५) ह्वनसांग के कथनानुसार अशोक ने एक विशाल सेना के साथ बौद्ध धर्म का प्रचार किया था। वे अपनी पुष्टि में चार लघु-स्तम्भ-लेख दो तराई स्तम्भ-लेख बराबर ऋरी गृह के तीन अभिलेख चौदहवाँ शिलालेख तथा विनायक मन्थु शिलालेख का उल्लेख करते हैं।

(६) अशोक ने अपने प्रथम लघु शिलालेख में सघउपपीत लिखा है। इस शब्द को लेकर विभिन्न विद्वानों ने भिन्न भिन्न मतों का प्रतिपादन किया है। पाठों की भिन्नता यहाँ समस्या की अधिक जटिल बना देता है। अशाक का सघउपपीत से क्या अर्थ था यह कहना बड़ा कठिन माना जाता है। क्या उसने बौद्ध धर्म को अपना निवास-स्थान बना लिया अथवा सघ का सहायक बन गया—अथवा उसने बौद्ध धर्म का दौरा किया? इससे अशाक का बौद्ध भिक्षु होना भी प्रमाणित होता है और दूसरी ओर यह भी परिलक्षित होता है कि एक धार्मिक सम्राट के नाते अशाक ने बौद्ध धर्म का दौरा किया।

(७) अशोक सघउपपीत के आधार पर बौद्ध भिक्षु हुआ गया था इसका समर्थन इतिहास के इस विवरण से ही जाया जाता है कि उसने भिक्षु के रूप में अशाक की एक मूर्ति देखा था।

(८) दापवश तथा महावश आदि बौद्ध ग्रंथों में अशोक का एक बाल पंडित द्वारा बौद्ध धर्म में शिक्षित हान का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है।

(९) अशाक ने लगभग ८ हजार स्तूपों का निर्माण करवाया जिनका मतलब स्पष्ट है।

(१०) अशाक के बौद्ध हान का एक बहुत बड़ा प्रमाण यह है कि उसने मार्गानि पुनः तिष्य के समर्पण के तृतीय बौद्ध मंगीति का आयोजन किया जिनका उद्देश्य महात्मा बुद्ध के उपदेशों के पाठ आदि का शब्द कराना था।

(११) सम्राट अशाक ने अपने साम्राज्य में पण्डितों को नियुक्त करवाया था। उनमें अशोकों से यह भी पता चलता है कि उनमें स्वयं भास भक्षण तथा मंगया का त्याग कर दिया था। उनमें ब्राह्मण यथा तथा अनुष्ठाता का भी नियुक्त कर दिया था। यह सत्त्वमन्त्रों का ब्राह्मण धर्म का विरोध था।

(१२) बौद्ध अनुश्रुतियाँ हमें यह भी बतनाती हैं कि अपने अग्रणी स्तूपों में अशाक ने आठ स्तूपों में सुरभित महात्मा गौतम बुद्ध के महावश को वितरित करवाया था।

(१३) बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अशाक ने बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों को देश-विदेश भेजा था।





सुन्दर पारस्परिक सम्बन्ध पर आधारीत था और इसी सुन्दर पारस्परिक सम्बन्ध से व्यक्त तथा समुदाय व्यक्ति तथा समाज और व्यक्ति तथा विश्व के पारस्परिक सुख व्यवहार का मूल निहित है। अशोक का यह दृष्टि-विषय या विषय का प्रारम्भ था जो चतुर्विधकारी का भाग है और यही सिद्ध होकर सम्पूर्ण विश्व का प्रभाव के मूल म बांध लगा है। राजाजिजीवीवन में व्यक्ति को जिजीविषा तथा प्रथम प्रथम के सम्बन्ध में आना पड़ता है उनका साथ सुन्दर सम्बन्ध दृष्टि हो घम के मूल उद्देश्य की पूर्ति है। चरित्र आचरण तथा व्यवहार धार्मिक समानता न बट्टी उर्वे है। साम्प्रदायिकता को प्रथमम दत्ता घम की अवहेलना है। साम्प्रदायिकता का अन्त कर के अभिप्राय से ही अशोक ने जमा विपत्ति की दृष्टि जा चुका है विश्व के मूल घमों के समान तथा का ग्रहण करके उर्वे प्रयाता दान का प्रथम किया। इस का मे उसने दूसरा प्रयास यह किया कि किमी भी घम की बट्ट आनाचना करना जतिव ठहराया। इसका प्रतिरिक्त उसने धार्मिक समानता से विभिन्न धर्मावलम्बियों का नित्य लित ज्ञान का प्रारम्भ दिया। चौथा उपाय उनका यह किया कि राजा का धर्म ज्ञान की प्ररणादी जिनम से अर्थ घमवाला के दृष्टन नित्य आदा तथा कमकाण्ड आदि से परिचित हो सके और इन प्रकार तेषाण दृष्टिवाणका कर घमसात्पण बन सके।

अशोक के धार्मिक उपदेशों को स्पष्ट रूप से समझ लेने पर हम उनका घम की मली भाँति जान सकते हैं। अशोक के धार्मिक उपदेश निम्नलिखित थे —

(१) अपचित (२) समप्रतिपत्ति (३) सचेय (४) सोचय (५) दधमकितता (६) मत्ती । अशोक के इन सिद्धांतों का पथक-पथक स्पष्ट किया जायेगा।

(१) अपचिति—जसा कि ऊपर बतलाया गया है अशोक घम का श्रीगणेश घर से करना चाहता था अतः सनमाता पिता गुजनी तथा बेटाका सेवा पर जार किया।

(२) सम्प्रतिपत्ति—मम-बयदायी अशोक ने विभिन्न सम्प्रदाय या जय योगी में सुन्दर सम्बन्ध स्थापित करने के लिए ही आज्ञाणा श्रमणा सम्बन्धियों मित्र-बन्धु आदि के प्रति दान एवं उचित व्यवहार की प्रशंसा की है।

(३) सचेय—दान दया तथा सत्य।

(४) सोचय—चित्त शक्ति

(५) दधमकितता—साधना समय इतनता दधमकितता

(६) मत्ती—माधय।

अन्तिम तीन सिद्धांत अशोक द्वारा घम के गण बतलाये गये हैं। (तृतीय स्तम्भ देख सप्तम शिखरे)।

तृतीय स्तम्भ तक में अशोक ने यह बतलाया है कि प्रायः निष्ठरता अभिमान ईर्ष्या आदि से उत्पन्न पापों से मक्ति पाना ही घम है। अशोक ने भावनाओं का उच्च धार्मिकता के विकास एवं आचरण के उद्योग के लिए मनुष्यों को आत्म निरीक्षण (पीठवला) करने का कहा।

अशोक के उपमकन धार्मिक सिद्धान्त जिसमें सम्पूर्ण मानव के हित की व्यवस्था की गई है विश्व के किया सा घम में पाये जा सकते हैं। अतः अशोक को किमा घम विश्वम बोधना तक समन नयी।

अशोक के घम की विशेषता—अशोक के धार्मिक सिद्धान्तों का विनियमन करत हुए यह बतलाया है कि अशोक का घम सभी धर्मों का सार है अर्थात् इसके सिद्धांत

अय धर्मों के मिदालना के समान ही है। फिर भी इस धर्म की कुछ अपनी मौनिकता एवं विघ्नपता है। इन विघ्नपताओं का हम निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं —

**सावर्भौमिकता**—अशाक के धर्म में कहा जा साम्प्रदायिकता नहीं मिलती। साम्प्रदायिकता में रहित इस धर्म में विश्व के सभी धर्मों के मूल मूल तत्व निहित हैं। यह सावर्भौमिकता साधारण बात नहीं है।

**असौसा**—प्रथम शिखरान्त से हम जानते हैं कि अशाक अहिंसा का कितना बड़ा पुजारी था। उनमें उन यज्ञों का पूणतया वर्णन किया जा चुका है जिन्हें पशु-वलि भी जाना जाता था। ब्राह्मणों का पशु-वलि नियम का जाना जाता था किन्तु अहिंसा का कट्टर पुजारी अशाक इस विषय पर बौद्ध समझना करने का तयार न था।

**धार्मिक सहिष्णुता**—साम्प्रदायिकता में रहित होने के कारण अशाक के धर्म में किसी भी धर्म में रूढ़ि एवं द्वेष करने का जगह नहीं था। प्रत्येक धर्मावलम्बी का आचार्य करना और उनके धर्म का अपने धर्म में ही समझना अशाक के धर्म की एक बड़ी विशेषता है।

**नतिक आदर्शों का प्राधान्य**—धर्म के चार अंगों में नतिक आचार्य के समकालीन तथा कला में न अशाक ने नतिक आचार्यों पर हा विजय जार दिया। अपने धर्म का सावर्भौमिकता महिष्णुता तथा इसी प्रकार का अय विशेषताओं में युक्त करने के लिए नतिक आदर्शों पर जार देना अशाक के लिए अत्यन्त आवश्यक था।

**प्रायोगिकता**—धर्म में दशन कवन विद्वानों एवं जाचार्यों की वस्तु ज्ञानी है। धर्म का उद्देश्य अपने अनयायियों के सामाजिक ज्ञान का विकास करना ही नहीं है अपितु उन्हें सत्य मार्ग पर चलाना ही उनकी उद्देश्य-शक्ति है। पर धर्म का प्रायोगिकता का बहूतव महत्त्व-ज्ञान है। दान का महत्त्व न दे कर व्यावहारिक कृत्यों का प्रधानता देने का एक बहूतव महत्त्व है। अशाक ने विद्वानों का प्रधानता को। बहूतव यह देना जाता है कि किसी धर्म सम्प्रदाय अथवा मत का बराबरी तथा कर्मियों का दूर करने के लिए तितन मुद्दों का न प्रयास किया उन्हीं प्रकार के एक नय मत या सम्प्रदाय का जन्म दे दिया। इस प्रकार कृष्ण साफ करने के नाम पर कृष्ण के नय-नय दूर जग गये। इसका एकमात्र कारण यह था कि उन धार्मिक नेताओं तथा मुद्दों का न व्यावहारिकता पर या तो ध्यान ही नहीं दिया या दिया जा तो बहूत कम।

**बौद्ध धर्म प्रचारक असौक**

अब तक हमने अशाक के व्यक्तिगत धर्म का अध्ययन किया है। अब हम यह देखेंगे कि उस धर्म-प्रचारण सम्प्रदाय ने बौद्ध धर्म के प्रचार में क्या उद्योग किया।

कृष्ण यज्ञ के पञ्चान अशाक ने यह प्रतिज्ञा की थी कि वह रणधोष के स्थान पर धर्म-ध्यान करेगा। अपने मत्तम स्तम्भलन में भी उसने कहा— मैं धर्म की धारणा करूँगा। धार्मिक शिखाओं का प्रचार करूँगा। जो नाग उस मुद्दे पर उससे अनुसार आचरण करने के लिए प्रेरित जग उनका आध्यात्मिक विकास होगा और धर्म का बद्धि के माय उनमें अमिबद्धि होगा। यह नय हम अशाक के धर्म प्रचार के उद्देश्य का बोध कराना है। इसा उद्देश्य का उद्देश्य अशाक ने धर्म प्रचार के लिए निम्नलिखित मापना का अपनाया —

**अहिंसा का उपासक बनना—**अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए यह आवश्यक समझा कि वह पहले इस धर्म के प्रधान सिद्धांत अहिंसा पर जोर दे। स्वयं इस सिद्धान्त का आदर्श अनुयायी बन कर जनता को अहिंसा का पुजारी बनावे। बौद्ध धर्म का सबसे बड़ा विरोधी ब्राह्मण धर्म था जो अपने कमवाण्डा म पशु-वध तथा अन्य कार्यों में हिंसा को प्रोत्साहित करता था। अतः असह्य जनता को बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट करने के लिए यह आवश्यक था कि उसमें अहिंसा भाव का संचार किया जाय। अतः अशोक ने अपने मोजनालय के लिए समाजा के लिए अथवा राजकाय मोजा के लिए होनेवाले जीव-वध को एक राजा का देकर (प्रथम शिलालेख) बन्द करवा दिया। पचम स्तम्भ-लेख द्वारा अशोक ने उस पशु वध को भी बहुत कुछ कम कर दिया जो प्रजा द्वारा किया जाता था।

**बौद्धधर्म को राज धर्म घोषित करना—**अशोक ने बौद्ध धर्म का राज धर्म घोषित कर दिया। इसका फल यह हुआ कि अशोक की प्रजा भी बौद्ध धर्म स्वीकार करने को प्रेरित हुई। अशोक के उत्तराधिकारियों ने भी इस अपना पतक धर्म समझकर स्वीकार किया जिससे यह धर्म बहुत दिनों तक राजधर्म बना रहा। यहाँ यह कह देना विषय-तर न होगा कि अशोक ने इसे राजधर्म स्वीकार करके भी अन्य धर्मों वनम्बियों को बौद्धधर्म स्वीकार करने के लिए बदायि बाध्य नहीं किया। इतिहास में धर्म प्रधान सम्राट द्वारा जनता से अपना धर्म (राजधर्म) बन पूवक स्वीकार कराने के उदाहरण का अभाव नहीं।

**दान—**अशोक ने दीन हीन निरीह तथा साधु-मता को सहायता देकर बौद्ध धर्म के प्रचार में जो योग दिया वह विशेष प्रशंसनीय है। वह स्वयं तो दान देता ही था साथ ही अपने मार्क वचुआ परिवार के अन्य सदस्यों तथा सम्बन्धियों से भी दान दिलवाता था। सप्तम स्तम्भ लेख में यह पात हाता है कि उसने दान विभाग की देख रेख के निमित्त कमचारियों की नियुक्ति की थी जो उसके तथा उसकी रानिया एवं राजकुमारों के दान का पूण विवरण रखते थे। इस प्रमाण में हम गलाहाबाद स्तम्भ पर उल्लेख रानी के अमिलख को रख सकते हैं जिसमें आम्र वाटिका का प्रमोदोदान दान गह तथा अय वस्तुओं के दान का उल्लेख है। सप्तम स्तम्भ लेख में हम अशोक के दान का उद्देश्य स्पष्टतया पात हा जाता है। हम स्तम्भ लेख में यह निश्चय है कि मैं यह इस उद्देश्य से किया है कि लोक धर्म का मथानसार पालन करें

**धर्म विभाग की स्थापना—**अशोक के पचम शिलालेख से यह पात होता है कि राज्याभिषेक के तुरन्तवें वष उसने धर्म महामात्रों का नियुक्ति की है। स्मिथ महोदय ने उन धर्म महामात्रों की वितय के निरीक्षक की सजा दा है किन्तु यह उपपन्न नहीं है। स्मिथ महोदय के विचार में धर्म महामात्रों का काम गुप्त रूप में नतिक अथवा धार्मिक नियमों का पालन न करनेवालों का पता लगाना तथा उनकी सूची तयार करना था। वास्तविकता यह है कि यह धर्म महामात्र प्रजा में धार्मिक भावों का संचार करने तथा उनकी नतिकता का पाट पना कर अशोक द्वारा निश्चित माग पर ल जाना चाहते थे जिससे वह सुखी जीवन बिता सकें। धर्म महामात्र धर्म विभाग का प्रधान हाता था। इसकी सहायता के लिए अय छोट छोट पदाधिकारी भी थे। निश्चय ही इस विभाग ने बौद्ध धर्म के प्रचार में काफी योग दिया है।

**धर्म-यात्रा—**अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचाराय रण-यात्रा के स्थान पर धर्म-यात्रा

की व्यवस्था की। वह स्वयं धर्म-शास्त्रों किया करता था तथा अपन अधिकारियों का मा धार्मिक स्थानों की यात्रा करने का भजता था।

**धार्मिक प्रदान—**धर्म विभाग की देख रक्ष में अशाक धार्मिक दानों का प्रदान की भी व्यवस्था करता था। वहाँ स्वयं लक्ष्मण कर्मस्थ स्थितियों में जानें थे जिससे जनता का प्रेरणा मिलती थी जिन्हें वह धार्मिक कार्यों में दत्तचित्त कर स्वर्गिक सुख का आनन्द प्राप्त कर सके।

**मठों का निर्माण—**अशाक ने अपन राज्य के विभिन्न भागों में मठों का निर्माण कराया तथा पुराने मठों का आर्थिक सहायता का। इन मठों में बहुत अधिक मिश्रु तथा भिक्षुणियाँ रहा करता था।

**धर्म-श्रावण—**अशाक ने धार्मिक विषयों पर वाद विवाद तथा भाषण का व्यवस्था का था। यह आयाजनों धार्मिक विषयों में रुचि रखनेवाले एवं सवमाधारण के हित के लिए किया जाता था। राजकुं व्यक्त प्रादेशिक युक्त आदि पदाधिकारों इस आयाजनों का सफल बनाने के उत्तरदायी थे।

**धर्मलिपि—**धर्म प्रचार में विशेषतया उमका स्थायित्व देने में अशाक ने जो प्रयास किया उसमें धर्म लिपि का व्यवस्था का प्रमुख स्थान है। पर्वत की शिलाओं, पाषाण के स्तम्भों तथा गण्डाओं पर धार्मिक सिद्धान्तों एवं उपदेशों की लिखा कर अशाक ने सवमाधारण का इनसे परिचित कराया। धर्म लिपि की व्यवस्था के मुख्य में उद्देश्य थे —

१ पाषाण स्तम्भों या शिलाओं पर उत्काण्ड हान के कारण धर्म-नसल स्यादा रहेंगे।

२ इससे भविष्य में भी जनता का नाम होगा और वे अशाक द्वारा बतलाये गये भाग का अनुसरण करगी।

**धर्म-संगल की व्यवस्था—**अशाक ने धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का समाप्त करके धर्म के वास्तविक रूप का जनता के सम्मुख रखने का प्रयास किया। धर्म लिपि उमने जन्म मृत्यु शांति-ध्याना तथा अन्य अवसरों पर ज्ञान प्राप्त निरर्थक अनपठानों का वर्ण कराने का आदेश द दिया। इस प्रकार बलि प्रत्येक यथा का मा बन् करा दिया गया। इन सब का प्रभाव बौद्ध धर्म के प्रचार के पक्ष में प।

**लोकहित कार्य—**अशाक ने सम्पूर्ण जावधारियों के सुखपूर्वक जावन विज्ञान के प्रसाधना का एकत्रित करने का सफल प्रयास किया था। पण्डितों की चिकित्सा के लिए उमने औषधालयों का निर्माण कराया था। इस प्रकार मनुष्यों का चिकित्सा के लिए भी औषधालय खाने गये थे जहाँ उन्हें निशुल्क दवा तथा भोजन दिया जाता था। राजपथों का निर्माण तथा-वर्गीयों के विद्यालयों की स्थापना, बुद्धों का निर्माण आदि धर्म कार्य थे जिन्होंने अत्यन्त रूप में बौद्ध धर्म के प्रचार में योग दिया।

**पाली भाषा में बौद्ध धर्मों के लिखने की व्यवस्था—**जाने-नापा पाणों में बौद्ध धर्मों का लिखना कर अशाक ने धर्म प्रचार में काफी योग दिया।

**पशुवध निषेध—**बौद्ध धर्म के मूल मंत्र अहिंसा पर अधिक से अधिक जोर देकर अशाक ने बौद्ध धर्मों का प्रसारण किया। उमने पशु-वध का मनाया कर दी। राजकीय कार्योंवाले में भी अब पशु-वध नहीं होता था। मत्तों में पशु-वध करने का अनुमति न देकर अशाक ने क्षात्रपण धर्मावधारणों का एक अवश्य कर दिया पर उसमें धर्म प्रचार में कोई बाधा नहीं प।

बौद्ध गीत का आशान—मिथली अनुश्रुतिरा से यह पाल जाता है कि अशाक न बौद्ध न का सम्मान पत्त तिष्ठ क ननुत्त म पाटलिपुत्र म अपन राषाभिषेक क अटठ रहव धर तथा मन्त्रात्मा गोतम वद्ध क परिनिर्माण क २ ६ वर पत्ताने एक बौद्ध संगति का जायोजन किय थ। कुछ विज्ञाना ने मगानि का एतिहासिकता पर मदह किया है किन्तु यह तर्कगत नी है। इसका सबम वशा प्रमाण अशाक का मात्र अभिलेख है। इस अभिलेख म हम अशाक का स्वय भिक्षु का सम्मुख मगय नरेश क नाम से अभित्ति करत ए पात है। डा मन्त्रात्कर का उपयक्त मत मवथा तर्कसगत है क्पाकि जाभि न संगति म एकत्रित हुए थ इनम कुछ मगय साम्राज्य के बाहर से मी आय थ इमीत्रि अशोक न मगय क साम्राज्य के रूप म अपना परिचय देना जायत्यक सम्झा। उक्त अभिलेख म सम्राट अशाक न कहा है मगय क प्रियदर्शी सम्राट सध का अभिवादन कर मधवासिया क स्वाम्य्य तथा निष्पटक रूप से विचरण करन की कामना करते हैं। अशाक न सध क आचार्यों का स्वागत करते हुए उक्त वाक्य कता है। इसी अभित्ति म आग इस प्रकार आता है पूय भन्त यह ता आपका विन्ति गी है कि बुद्ध धम्म पीर सध म हमारा कितनी महनी पढा है। जो कुछ भगवान वद्ध ने उपदेश गिय है ह मत्त वे कितन अच्छे रग से श्यक्त किय गय परन्तु ह मत्ते यदि हम इस मगनमय धम का दीघकाशीन स्थिति क निमित्त कुछ निश करे ता यह यक्त करनी हम अपना कलव्य सम्झते हैं। म न य धम्म विषयक ग्रन्थ ह। धम विषयक ग्रन्थ का नाम सम्राट आग गिनाना है ना मुत्त पिष्क तथा विमय पिष्क आदि हैं। तत्पचात अशाक बौद्ध भिक्षु एव भिक्षु गिना का बौद्ध ग्रन्थ का जायपन करन का इच्छा प्रगट करता है— जितन मा (मन एव भिक्षु गिया हैं उनम न अधिक से अधिक मग्या म इन ममी ग्रन्थ का पाठ मुत्तन रहें मुत्तन के पचात उन पर मनन किया करें। १

अभित्ति म बौद्ध भिक्षु का पाठा का श्रवण का जागत कहा गई है उससे एसा परिनिमित्त होता है कि तत्कालीन बौद्ध सध म कुछ मन भेद आत जा रहे थ जिनके निवारणाय ता अशाक न उमें धम क मूल तत्वा का ग्रहण करन क लिा कहा। इस प्रकार इस संगति द्वारा अशाक न बौद्ध धम म आई हुई वराइया एव शिथिलताओं का समाप्त कर क उस नव जावन प्रदान किया। इतना गी नरा इस मगानि द्वारा अशाक न संगति परम्परा का आग बनाने म योग दिया और सम्भवन कनिष्क द्वारा वा नग ति का यवस्था से मूल म अशाक का ततीय बौद्ध संगीत ही है।

सम्भवन तथाप बौद्ध संगति के पचात ही अशोक ने सारनाथ कीमाध्वी तथा साची क त्पु स्तम्भ तैला म बौद्ध सध म उत्तम सध म १ क दमनाथ अनुशासन दिया है। एम प्रकार हम देखत है कि बौद्ध संगति तथा उनके पचात क अभिनेला द्वारा अशाक न बौद्ध धम का काफी प्रचार किया।

विज्ञाना में उद्ध था के प्रचरहा से जितना—मिथली अनुश्रुतिरा से यह पाल जान है कि अशोक न विज्ञाना म बौद्ध धम क प्रचराय प्रचर मन्त्रात्कर मत्री था।

१ अशोक ने उक्त तिलालेख में सध के भिष एव भिषणियों को जिन पाठों का अध्ययन स्वीकृत किया है वे निम्नलिखित ह —

(१) विनय-सङ्गमत्त मुत्त (२) अलिप वस (३) अनामन नय (४) मुनिपापा (५) मोनय मुत्त (६) उपतिस्सपसिना एव (७) राहुलो वान्। उपयक्त पाठों में प्रथम एव पट्टम को छोड़ कर शेष पाठ त्रिपिटक क माने गय ह।

मिहल जानवान डम मडनी का नम व आक क पुत्र मद्र तथा डमकी पुत्री मधमिना ने किया था। जब यह प्रचार-मडनी मित्रन द्वाप पञ्चा ता वहाँ क राजा तिरम ने उनका स्वागत किया। इसी प्रकार आक क न दक्षिण का विभिन्न तामिन रियामना घर्मा मीयि मिश्र, मायरिन मकदूनिया चान तथा जापान आदि देशा म बौद्ध धम के प्रचाराय व ड मिश्र एव मिक्षुणिया का भजा था। अपना इस धम विजय क विषय मे सम्पाट आक स्वय कहता है दवानाम प्रिय धम क द्वारा इस विजय का मुख्य विजय समझना है। यहाँ प रोमा तथा, यहाँ तक का ६०० यात्रन पर क तथा म नो यह विजय दवानाम प्रिय का मिली है।

अशाक क समय म गजिया क श्रिणा तथा पश्चिमा भाग म शानपान बौद्ध धम का काका प्रचार हुआ था।

### अशाक की धार्मिक नीति

अशाक क धम तथा उसके धम प्रचार क विषय म आवश्यक ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात हम उसका प्रामिक नाल पर भा विचार करना होगा। सम्पूर्ण साम्राज्य म जन वाद तदा ब्राह्मण मत बन्वा आदि जनक सम्प्रदाय क ना निवास कर रहे थे। नरमाल एक सम्पाट क क म आशाक का प्रवहार कर घटक कठिन समझा था। आशाक न बौद्ध धम प्रान्त म तथा म यह हम स्पष्ट रूप म नात है। माय ना हम यह भा त्व चक है कि म वभासित मिद्वान्त पर आशाकित उसक कुछ व्यक्तिगत धार्मिक मिद्वान्त मा व। जहा तक कि मिद्वान्त क जनघाय ज्ञान का प्रान है जसा कि हम त्व चक है कि मा म त उसका मिद्वान्त म त सा सकत था किनु बौद्ध अशाक प्र रक मन्त्रेणमनाता का प्रथम रत्न संत यह कुछ कठिन काय था। ब्राह्मण धम बौद्ध धम क मन मिद्वान्त अनावरवात् क कारण उसका विरासा था। अस्ता क प्रान पर भा तक नान ब्राह्मण त्व तथा शूद्र धम म काका मन्मद था। जन धम बौद्ध धम क प्र नड था जो अशाक क साम्राज्य म प मार मनाबन्वा विप्रमान थ। किनु बौद्ध अशाक न इन प्रमप गैरियतिराकाव मुद्र त्व म काव म किया। सबसे पहन ता उनन धार्मिक साम्राज्य म काय निरा तिमम प्रत्यक सम्प्रदायजाल समान समय जान लय। सबसामनाय पर म नानातिक अरिवात् लिये गय। उनक सामाजिक व्यवहार मा समान थ। कृत्ति रकारा न आशाक का धार्मिक मन्त्रिगता पर यह आ त्व नात है कि अशाक न उल्लिखक यता का मनाती करक ब्राह्मण मता वलम्बिया ता धार्मिक न ता पृ चाया है किनु यह नरनगत तथा। का मा सरकार अवन नात न नर न न स्वाकार मता कर सारी। अशाक क दिव क्या पर क्या तर मर समान थ। क प्रत्यक म समान आत्मा समानता था जोर प्रत्यक त्वता का समान त्वता मन्मत था। तथा तथा म क पनु-वन्दि क प्रान पर ब्राह्मणा स किया प्रक म मन्मतीता नती कर मन्मता था। उनन पानति निरव बौद्ध धम क मिद्वान्त क अनमात् या नगे किया अपिनु इस निरम क पाए उनना व्यक्तिगत चरित्र है। अशाक क काशिक त्व म हम उया समय म परिचित न जस यह कविता क रण त्व म एक नेतापति ज्ञान दुःख भी खतरान्त एव मुद्रमात् ना दम्पर काप उता था। उता समय सम्पाटकाल चरमपत का प्रतीत तथा मयन का-सम्पाट हारे हुए मा उनन ज्ञान तिका का तनिक ध्यान न रगत हा तयाय क न्यान पर धमघाप का प्रतिपात। एम सम्पाट म पान-वति निरव क अतिरिक्त अन्य किस वस्तु का आशा

की जा सकती है ? अतः अशोक ने पशु-बलि निषेध की जा आज्ञा दी। यह सबदा उचित थी। अशोक की धार्मिक नीति की एक दूसरी विशेषता यह थी कि उसने प्रत्येक धर्मावलम्बी को बहुश्रुत होने की प्रेरणा दी। वह यह चाहता था कि साम्प्रदायिकता का अन्त हो जाय और सम्पूर्ण विश्व में बहुत्व की भावना का प्रसार हो। यही लिए उसने अपनी प्रजा को प्रत्येक धर्म के विषय में जानकारा रखने की अनुमति दी।

विद्वेषियों से मन्त्राभाव स्थापित करने में उसकी धार्मिक नीति ने बहुत कुछ योग दिया। इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्राह्मण श्रमण आज्ञाओं का प्रसन्न रखते हुए अशोक ने सफलतापूर्वक अपने धर्म का प्रचार किया। उसका धार्मिक नीति की सफलता का सबसे बड़ा प्रमाण तो बौद्ध धर्म का प्रचार तथा ब्राह्मण आदि का कोई विद्रोह न करना ही है। अशाक जसा कि हम जानते हैं पशुवध निषेध करके ब्राह्मण यज्ञों की अवहेलना कर चुका था। ऐसी दशा में ब्राह्मणों का विद्रोह करना कोई भी कार्य न था किन्तु अशाक ने अपना प्रजाप्रियता तथा अत्यन्त चार्ित्रिक गणना द्वारा अपने धार्मिक नीति का सफल बनाया।

### अशोक के साम्राज्य का विस्तार

यह पहल ही बतनाया जा चुका है कि अशाक ने अपने शासन काल में केवल एक बार रण-यात्रा की थी जिसके फलस्वरूप उसने बलिया राज्य प्राप्त हुआ। इसके बाद अशाक ने अत्यन्त विजय नडा की अतः अशाक के साम्राज्य विस्तार का अध्ययन का अर्थ है अशाक के पूर्वजों द्वारा उन विजित राज्या का अध्ययन करना जिन पर अशोक का अधिकार बना रहा। अशोक के साम्राज्य विस्तार का बोध हम उसके अभिलेखा द्वारा अधिक स्पष्ट हो जाता है अतः हम अशाक के साम्राज्य विस्तार को उसके अभिलेखा के आधार पर निर्धारित करेंगे। पहल हम यह देखेंगे कि दक्षिण पश्चिम में उसका राज्य विस्तार कहाँ तक था क्योंकि दक्षिण पश्चिम सीमा में सनिक दक्षिण स अधिक महत्वपूर्ण थी। अशोक के चतुर्श शिलालेखों की एक प्रति कर्नाल जिन्ना में श्रावणी नामक स्थान पर प्राप्त हुई थी। धौला (पुरी) जिन्ना (गजाम) नामक स्थानों में चतुर्दश शिलालेखों की दो प्रतियाँ मिली हैं। इसी प्रकार बलित्त नद (मसूर राज्य) से भी लघुशिलालेखा की तीन प्रतियाँ प्राप्त हुई थी जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि उत्तर मसूर अशोक के साम्राज्य का दक्षिणी भाग के भीतर था।

कान्हा (देहरादून) में मिन्दर निम्नाव (नपाव का तराई) में अशोक के जा अभिलेख प्राप्त हुए हैं उनका आधार पर हम यह कह सकते हैं कि हिमालय पहाड़ तक अशाक का साम्राज्य फैला हुआ था।

उम्बिनी सम्बाज गण तथा मनसहरा के अभिलेखा से भी देहरादूनवाले पजाव तथा सम्पूर्ण उत्तर पश्चिमी सीमाप्रायतः को अशाक के साम्राज्य का अन्तर्गत किया जा सकता है। उक्त अभिलेखिक प्रमाण का समयन हूँनसांग के यत्न से हो जाता है। गिरनार (जुनागढ़ के निकट) तथा सापारा (धाना जिला) में भी चतुर्श शिलालेखों की अत्यन्त प्रतियाँ मिली हैं जिनके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि सौराष्ट्र तथा दक्षिण पश्चिमी भारत पर अशाक का आधिपत्य स्थापित था। रत्नदामन जनागढ़वाले शिलालेख से विदित होता है कि सौराष्ट्र पर तुपास्य नामक अशोक का प्रांतीय शासक शासन करता था। कान्हा पर अशाक का आधिपत्य होने का बृहत्तम कर्तव्य का राजतरंगिणी से प्राप्त होता है। हूँनसांग भी उसका समयन करता है। इसी प्रकार उल्लिखित तथा रामपुरवाले स्मारकों से चम्पारन जिन्ना तथा नेपाल की घाटी पर



अशोक का अधिकार ज्ञात जाता है। बगान पर भा अशोक का अधिकार था इसका बोध हमें दिव्यावदान तथा द्विनमार्ग के वक्तान्त म जाता है। अशोक का तृतीय एवं चतुर्थ शिलालेख स यह बात होता है कि चण्डय पाठ्य करलपुत्र सतियपुत्र उमका सत्ता का अधीन नहा रहे।

### अशोक के अभिलेख

विश्व इतिहास म अशोक का उच्च स्थान प्राप्त करने का प्रमुख कारण म उमका अभिलेख भी हैं। अभिलेखा का विषय अशोक की महानता का निर्माण मात्र हा नहा करत अपिपुत्र मौर्य कालीन भारतीय इतिहास पर नीपुण प्रकाश डालत हैं अत अशोक का अध्ययन करते समय हम उमका अभिलेखा का अध्ययन करना आवश्यक है। अभिलेखों का महत्त्व—नीच हम अशोक का अभिलेखा का काफी महत्त्व है— साग्राज्य सीमा का निर्धारण—अशोक का साग्राज्य विस्तार का अध्ययन करत समय हमने देला या कि इस विषय म हम पूणतया उमका अभिलेखा पर ही आश्रित रहना प ता, है। अभिलेखा का प्रति स्थान का जाचार पर हा हमन यत् निष्कप निष्काषा या कि सुदूर दक्षिण के पाठ्य चीन सत्यपुत्र कर्णपुत्र आदि का छा कर सम्पूर्ण भारत अशोक का अधीन था।

अशोक के धर्म का निर्धारण—यह विषय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अशोक वाद मतानुसारी था इस मत का समयक इन्ही अभिलेखा का सहारा तत हैं। अशोक का व्यक्तिगत धर्म का बोध भी हम इन्ही अभिलेखा म हाता है।

अशोक का चरित्र का निरूपण—इन अभिलेखा म अशोक का हृदय प्रतिबिम्बित होता है। दान दया सेवा आदि नतिक आदर्शों का पापक का रूप म अशोक हमारा सम्मुख इन्ही अभिलेखा के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। कसिग विजय के पश्चात अशोक न अपने अभिलेखा म उस हृदयपाक घटना तथा युद्ध न करने का निश्चय का प्रकाशन किया जिसम उसका दृढ निश्चय तथा कामन हृदय का बाध हाता है। अभिलेखा स ही हम उसका महादानी हान का पान प्राप्त हाता है।

अशोक का वैदेशिक सम्बन्ध—अशोक का अभिलेख हम हम बात का पान करात हैं कि अशोक न सीरिया एपीरस मिस्र मागन आदि देश म अपने राजदूत भज कर इन राया स मत्री सम्बन्ध स्थापित किया था। इन अभिलेखा स हम अशोक की विदेश नीति का बहुत कुछ पान प्राप्त हाता है।

अशोक कालीन शासन-व्यवस्था का अन्वोलन—यद्यपि अशोक का अभिलेखा का उद्देश्य पूणतया धार्मिक (नतिक) था तथापि उनम तत्कालीन शासन-मन्वन्ता राया पाका का बाध हाता है जिन्हें अशोक न समय-समय पर प्रकाशित का था। अशोक न प्रजा के हित के लिए जा कुछ किया उमका भा बाध हम अभिलेखा स हाता है। अथ हम अशोक का अभिलेखा पर पर्यक-अधिक प्रकाश डारेंगे। माट तीर पर अशोक का अभिलेखा को निम्नलिखित तान भागा म विभाजित कर सकते हैं—

- (अ) शिलालेख
- (ब) शिलालेख

(ब) स्तम्भालेख तथा

(म) गुहालेख।

चतुर्थ शिलालेख—इनकी संख्या १४ है। अ इन्हें चतुर्थ शिलालेख का नाम दी गई है य १४ शिलालेख निम्नलिखित स्थान म प्राप्त हुए हैं—  
 स (१) रडवाज गढ़ी (पशावर जिता) (२) मनमहरा (हजारा जिता)

- |                          |                             |
|--------------------------|-----------------------------|
| (३) बालमी (दहरादून जिला) | (४) गिनार (जूनागढ़ के निकट) |
| (५) घौली (पुरी जिला)     | (६) जौग (गजाम जिला)         |
| (७) इरागडा (कर्नाल जिला) | (८) मापारा (धाना जिला)      |

कलिंग के लख—एकान्श द्वाण तथा वयोण शिलालेखों के वजाय निच हुए घौली और जौग के पापक बरिग अभिलेख हैं।

दो लघु शिलालेख—उन में प्रथम लघु शिलालेख निम्नलिखित स्थानों में प्राप्त हुआ है—

- (१) रूपनाथ (जबनपुर जिला) (२) मन्मराम (जारा जिला) (३) बराट (जयपुर के निकट) (४) ममकी (रायचूर जिला) (५) मिडपुर (६) ब्रह्मगिरी (७) जतिग य ताना स्थान ममूर राज्य के चीनर दुग जिन में हैं।

द्वितीय लघु शिलालेख (१) मिडपुर (२) जतिग तथा (३) ब्रह्मगिरी में पाया गया है।

#### (ब) स्तम्भ-लेख

गया है। स्तम्भ लेख व अलगले मप्त स्तम्भ लेख तथा नधु स्तम्भ लेख सम्मिलित किये जाते हैं।

सप्त स्तम्भ लेख—य निम्नलिखित स्थानों में प्राप्त हुए हैं—

- |                      |                  |
|----------------------|------------------|
| (१) टापरा—दिल्ली     | (२) मरठ—दिल्ली   |
| (३) कौशांबी—इलाहाबाद | (४) रामपुरवा     |
| (५) कौरिया—अरराज     | (६) कौरिया—अरराज |

लघु स्तम्भ लेख—य लेख स्तम्भ लेख मारी कौशांबी (इलाहाबाद) मारनाथ (बारांस) सम्मिलित तथा निर्मित आदि स्थानों में प्राप्त हुए हैं।

#### (स) गुहा-लेख

गुहा-लेख में बारांस दरगाह के तीन अभिलेख सम्मिलित हैं। गया से लगभग १९ माय उत्तर का चार बगवत नामक पहाड़ी स्थित है। इसी पहाड़ी की चार गुहाओं का तीन दीवारों पर ये अभिलेख अंकित हैं।

अभिलेखों की भाषा एवं लिपि—मानसहरा तथा माहवाज गुफा के लेखों के अतिरिक्त शेष सभी अभिलेखों की भाषा प्राकृत तथा ब्राह्मी है। ब्राह्मी लिपि की वर्तमान नागरा लिपि का मूल रूप जाना है जो जोई से दाहिनी ओर का लिखा जाता है। मानसहरा तथा साहवाज गुफा के अभिलेखों की लिपि मरोस्थी है। यह ऊपर की भाँति दाहिना ओर से बाँह ओर लिखा जाती है।

यहाँ उपयुक्त अभिलेखों से जिन ऐतिहासिक तथ्यों का वर्णन प्राप्त होता है उनका संक्षिप्त वर्णन किया जायगा।

चतुर्था शिलालेख का निर्माण काल २५७ तथा २५६ ई० पूर्व माना गया है। इन अभिलेखों में हम अशाक के शासन तथा उसके नतिक सिद्धान्तों का बारीकी से जानना शक्य है। कलिंग अभिलेखों में नव क्रिस्त कलिंग राज्य तथा पत्नी उषती जतिगिया पर का जानना शक्य है।

पाँच शिलालेख २८ २५७ ई० पूर्व के हैं जिनमें प्रथम लघु शिलालेख अशोक के व्यक्तिगत जीवन पर प्रकाश डालता है तथा अशोक की मूर्ति एवं उसकी घमनिष्ठा का दाव करता है। सप्तम स्तम्भ लेख २४३ २४२ ई० पूर्व के हैं। उनमें अशाक की मूर्ति का वर्णन होता है।

लघु स्तम्भलक्ष्य धार्मिक प्रवृत्तियां व विषय म लिल गय =। इनकी तिथि २४२ और २३२ ई० पूर्व है। मरू शिलालेख वीर घम व इतिहास म अधिक महत्त्व रखता है। तराई स्तम्भ लेख द्वारा अशोक का तापशत्रु का विवरण प्राप्त होता है। बराबर दरीगढ़ के गुहालेख अशोक की धार्मिक महत्त्वात्ता का बोध करा है। इनकी रचना-तिथि २९४ ई० पूर्व है।

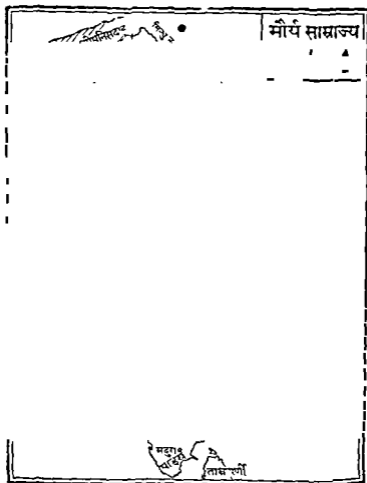
चट्टान अभिलेख एक लघु चट्टान अभिलेख स्तम्भ अभिलेख मभावित सीमा—

- |                   |  |
|-------------------|--|
| १ पाण्ड्य         | काता                                   |
| २ चान             | प्रयाग                                 |
| ३ करलपुर          | २४ चमनवता नदी                          |
| ४ ताम्रपर्णी      | ५ बराह (भागा)                          |
| ५ नल्दौर          | ६ मयरा                                 |
| ६ सतियपुर         | १७ यमुना नदी                           |
| ७ सिन्धुपुर       | ८ गंगा नदी                             |
| ८ कोपवल           | ९ मिगट                                 |
| ९ मास्का          | ४० चन्द्रप्रस्थ                        |
| १० कृष्णा नदी     | ४१ टापर                                |
| ११ आघ्र           | ४२ काता                                |
| १२ कलिग           | ४३ शत नदी                              |
| १३ गीतावरी नदी    | ४४ विपाशा नदी                          |
| १४ जीगद           | ४५ बरावता नदी                          |
| १५ धोत्री (सासनी) | ४६ अमिन्दिना नदी                       |
| १६ राष्ट्रिक      | ४७ कितामा नदी                          |
| १७ सापारा         | ४८ सिच नदी                             |
| १८ पुलिन्द        | ४९ मानसरा                              |
| १९ पिटिनिक        | ५० महबाज गंगा                          |
| २० ताप्ती नदी     | ५१ परापनिसदाई                          |
| २१ नमदा नदी       | ५२ बरावाशिया                           |
| २२ गिरनार         | ५ चन्द्रगुप्त द्वचरा सेल्युक्स निकटरसे |
| २३ सोराष्ट्र      | प्राप्त भाग                            |
| २४ महानदी         | ५४ कपितवस्तु                           |
| २५ ताम्रलिप्ति    | ५५ श्रावस्ता                           |
| २६ रूपनाय         | ५६ निगलिव                              |
| २७ सांची          | ५७ चमनदई                               |
| २८ चम्पा          | ५८ ललित पाटन                           |
| २९ सहसराम         | ५९ रामपुरवा                            |
| ३० पाटलिपुत्र     | ६० लौरिया नदनग                         |
| ३१ माय            | ६१ लौरिया बरराज                        |

अशोक का शासन प्रबन्ध

अशोक को उत्तराधिकार का रूप म केवल एक विस्तृत साम्राज्य ही नहीं प्राप्त

हुआ था अपितु सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था भी जो कुशल शासन चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा प्रतिपादित की गई थी प्राप्त हुई थी। चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-व्यवस्था में थोड़ा बहुत परिवर्तन एवं परिवर्धन करने ही अशोक ने शासन प्रवर्ध किया। अशोक के शासन प्रवर्ध का आधार चन्द्रगुप्त मौर्य की ही शासन-व्यवस्था है। अशोक को अपने पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन प्रवर्ध में जो कुछ भी था वह बहुत परिवर्तन-परिवर्धन करना पड़ा उसका मूल कारण उसकी नतिकता एवं घामिकता है। अशोक के शासन प्रवर्ध का अध्ययन करने के पूर्व हम उसके राजत्व सिद्धान्त पर विचार कर लेना आवश्यक है।



अशोक का राजत्व सिद्धान्त—अशोक एक आदर्श मानव था। उसकी नतिकता उसके जीवन की अनुपम विशेषता थी। वर्णिग विजय के पूर्व का अशोक साम्राज्यवादी था किन्तु इस स्वतन्त्रावित घटना के पश्चात् का अशोक पहले मानव और तब सम्राट

था—सम्राट् मा इस अर्थ में कि वह कम से कम अपने साम्राज्य की सम्पूर्ण प्रजा का अपना पुत्र समझ सके, उसका रक्षक बन सके। मानव होने के नाते तो वह सम्पूर्ण घर्ती के विभिन्न जीवघातियों का शुभचिन्तक था। कलिम शिलालेख अशोक तथा घर्ती के सम्पूर्ण मनुष्या के निवृत्ततम सम्बन्ध का निर्देश इस प्रकार करता है 'सर्व मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों का हित और सुख चाहता हू उसी प्रकार मैं प्रजा के लौकिक एवं पारलौकिक हित की कामना करता हू।' अशोक अपने अमि सत्वा में यह अंकित करते हुए नहीं अघाता है कि सर्व लोक हित से बंधकर दूसरा कोई कर्तव्य नहीं है। प्रजा के लिए मैं उद्योग (परिग्रह) तथा अध-वम (राज काज) करने में अघाता नहीं।

अशोक अपने चौथे स्तम्भनेत्र में प्रजा के प्रति उत्पन्न हो फल पडनेवाले अपने हार्तिक उद्गारा को इस प्रकार प्रकट करता है— 'जिस प्रकार मनुष्य अपनी सन्तान का निपुण घार् का मौपकर निश्चित्त हा जाता है और सोचना है कि वह घार् मेरे बालक का सुख पहुचाने की भरपूर चष्टा करेगी उसी प्रकार प्रजा के हित और सुख के अमिप्राय से रञ्जुक (राचुक) नाम के कमचारी निपुक्त किये हैं। इसमें अधिक स्पष्ट और कोई प्रमाण अशाक का प्रजाप्रियता का नहीं हो सकता। प्रजा का सेवा में वह कितना दत्तचित्त जागरूक तथा सलम था इसकी सुख समद्वि के लिए वह कितना सचेत था तथा प्रजाहित काय में निरन्तर प्रयत्नशील रहने का वह कितना आनासायें रखता था इसका माक्षात प्रमाण उयका अनुय स्तम्भनेत्र हा है— "मैंने यह प्रवचन किया है कि सर्व समय में—चाहे मैं मोजन करता होऊँ चाह अन्तपुर में रूँ चाह शयनागार में चाहे उद्यान में—सर्वत्र मर प्रतिवेदक प्रजा के कामा की मुझ सूचना द। मैं प्रजा के काय मवत्र करूंगा। यदि मैं स्वयं जाना द कि मभूव काय किया जाय और यत्नि महामात्रा में उस विषय में कोई मतमद उपस्थित हों अथवा मयि परिपद उये अम्बीकार करेता त्र घी और हर समय मुझ इस बात की सूचना दी जाय क्याकि मैं कितना ही परिग्रह क्या न कर कितना हा राज्य काज क्यों न करू सुख पूण मताय नहीं होता। प्रजा हित काय करने के उद्देश्य एक उत्तरदायित्व को बनलात हुए अशाक अपने उक्त अमिनेत्र में आग इस प्रकार कहता है— मैं जो कुछ पराक्रम (श्रम) करता हू वह कबल इसलिए कि प्राणिया के प्रति जो मरा क्रण है मैं उससे उक्रण त्र। जाऊ और इस लोक में लामा को सुखा करू तथा परलोक में उन्हें स्वर्ग का अधिकारा बनाऊ। आशाक प्रजा की सुख-समद्वि के लिए उसक लौकिक एवं पारलौकिक जीवन को सुन्दर बनाने के लिए किन्तना चिन्तित रहता था यह हम उसक निम्ननिवित्त कथन से मा स्पष्टतया पात हा जाता है—

यह घमलेत्र चिरम्बायी हो और मेरी पत्नी पुत्र पौत्र तथा प्रपौत्र लोक हित के लिए प्रयत्न (पराक्रम) करें। अत्यधिक प्रयत्न के बिना यह काय बनन कठिन है।

आशाक ने अपना प्रजा का बहुभूत हान की अनुमति मा थी और जसा कि उसका नियम था प्रजा का किसी काय के लिए प्ररित करन के पूव वह स्वयं उस काय का करता था। अतः अशोक स्वयं बहु भूत था। विभिन्न राजत्व सिद्धान्ता का उस पूण जान था। राजनीति के आग्ण सिद्धान्ता का वह पडित था। उसका राजनाति में चाणक्य का कूटनाति का समावेश न था या यत्नि था मा ता अपने घम-मरिचकन के साथ-साथ उसने इस पूणतया भुला दिया था। पविप्रता आदेशवादिना प्रजाप्रियता, नतिकता तथा मौलिकता इसक राजत्व सिद्धान्त का प्रमुख विद्यपतायें हैं, मौलिकता इसलिए

कि अशोक के पूर्व या पश्चात् भी मौर्याय प्रतिगम म द्य प्रथम का कोई सम्राट नहो जो प्रजा के लिए जीने मरने को धारण हो।

इस पूर्वभूमि में हम अशोक के शासन प्रवचन को राजा मति ममज्ञ सवत है।

**वादन्त शासन—**अशोक के पूर्ववर्ति शिलाशिल के आचार्य का यह इतिहासकार। पण्डित जनाने बताया है कि अशोक के अर्थात् कुछ मम प्रभु भी थे ज। अप्रवचन रूप में। अशोक का अधिनता स्थापित करने थे किन्तु उन्हें स्वशासन का अधिकार प्राप्त था जिस मवन कम्बोज नामक शासनपति आध्र माल तथा पारिजात आदि। विद्वानों ने उक्त प्रश्ना में स कुछ की स्थिति का अनुमान इस प्रकार बताया है— यवन तथा कम्बोज राज सम्भवत उत्तरा पश्चिमा सामान्त प्रदेश में आज पश्चिमी सम्प्रदाय अथवा बरार में और आध्र सम्भवत कृष्णा तथा गोदावरी नदिया के ताल्य प्रदेश थे।

**मंत्र परिषद—**वाद्य त के शासन प्रवचन के विपर म विवृत रूप यह कहा गया था कि उसके शासन प्रवचन में मंत्रि परिषद का वहेत व म महत्व था। अशोक ने मंत्रि परिषद का स्थापित रगा। वह भी राज काज में मंत्रिया का राय का मायता प्रदान करता था। उसका छठें शिलालेख में यह बात होता है कि मंत्रि परिषद का इस बात की काफी स्वतंत्रता थी कि सम्राट से किसी गत विषय पर वाद विवादा कर सक तथा अपना मत सम्राट का उत्तरी (महामात्रा के) को दानसम्बधी अथवा मरे द्वारा का गई किसी मौखिक घापणा के सम्बन्ध में अथवा महामात्रों के मुपुत् कर दिय गये किसी आवश्यक काय के विषय में विवाद या सुधार का प्रस्ताव उपस्थित किया जाय तो उसकी सूचना मुझ उसी क्षण मिनना चाहिए मैं कही भी रह और कोई भी समय हो।

अशोक अपने मंत्रियों को नतिक एव धार्मिक शिक्षाओं में दक्ष हाना आवश्यक समझता था अतः उसके मधी सवदा उरी की मति सोचते थे।

**प्रातीय शासन—**शासन के दृष्टिकोण से जसा कि अमितला से ज्ञात होता है सम्पूर्ण साम्राज्य चार वेदों में विभाजित था। ये निम्नलिखित थे —

(१) तक्षशिला (२) उज्जनी (३) तोसली तथा (४) सुवर्णगिरी।

राजा का सहायक उपराज होता था। यह राजकुलीन व्यक्ति हाना था। अशोक का भाई तिष्य उसका उपराज था। युवराज भी राजकाज में सम्राट की सहायता करता था। इसी प्रकार अप्रमात्य भी राजा का प्रमुख सहायक था। अशोक के समय में राय-मुत् अप्रमात्य थे। राजकुमारों (कुमार अथवा आयपुत्र) से भी सम्राट शासन प्रवचन में सहायता नेता था। इनकी नियुक्ति सुदूरस्थ प्रान्तों में की जाती थी क्योंकि उनसे राजमक्ति की पूण आशा थी और सुदूरस्थ प्रान्तों में इसी बोर्ड के शासक की आवश्यकता थी।

ऊपर जिन चार प्रमख वेदों का वणन किया गया है उनका शासन भी राजकुलीन व्यक्तियों द्वारा होता था। दिव्यावदान के अनुसार अशोक का पुत्र कुणाल तक्षशिला का वायसराय था। फाहिमान इसे घम अमिबधन कहता है उसे गांधार प्रांत का वायसराय बताता है।

**अशोक के पदाधिकारी—**अशोक के अमिनेवा से हमें विभिन्न प्रकार के पदाधिकारियों का बोध होता है उनमें से अधिकांश अधशास्त्र में उल्लिखित पदाधिकारियों से मिनते-जुत है। केवल घम सम्बधी पदाधिकारी नवीन हैं। डा हेमचन्द्रराय

चौधरी ने निम्नलिखित वाग्द प्रकार क पदाधिकारिया का उल्लेख किया है —  
 (१) महामात्र (२) राजुक (३) रथिक (४) प्रादेशिक (५) युत अथवा  
 यक्त (६) पुलिण (७) पतिवदक (८) ब्रच भूमिका (९) लिपिकार (१०) त्त  
 (११) आयकन तथा (१२) वारणक ।

नाच इन पदाधिकारिया पर सभ्य म प्रकाश डाला जायगा ।  
 धम महामात्र—चत्तपत् के शासन-काल म घच महामात्र नव पदाधिकारी  
 नहीं था । अशा न इनका नियमित सबप्रथम की थी । स्मिथ महामात्र न घम महामात्र  
 का निरीक्षक (Censor) कहा है । पर स्मिथ महोदय ७ उनक वन्या का समनन  
 म कुछ भूल की है । वास्तव म घम महामात्र का काय बवन निरीक्षण ही न था  
 बरन उनक ऊपर कुछ ओ भी धामिकता एव नतिकता सम्बन्धा उत्तरदायित्व थ ।  
 अशाक का पचम शिलानग्य स्वय ही घम महामात्रा क कतव्या का स्पष्टीकरण कर  
 देता है—

आज क पूव निक्त् जतीत म कमी घममहामात्र नहीं रह । अपन राज्याभिषक  
 क तरह वप क पचात मीनही उनकी नियमित की । व ममी सम्प्रदाया क बीच नियुक्त  
 किया गय हैं और उनका काय घम की स्थापना करना घम का घापणा वग्ना तथा  
 घमनुरागिया की सतत सुरक्षा एव आनन्त् क लिए प्रयत्न करना है । समा वग क  
 लोमो के बीच उपस्थित रह कर क्या ब्राह्मण क्या गृहपति क्या अनाय और क्या बद्ध  
 अथवा बहु-सतान के मार म दर हुए अथवा शोषित जन जयवा घम टक प्रहण कर  
 मयकरी या मिश्रात्र पर निर्वाह करतवान ममी व्यक्तिया का उनकी आन-यकतानुसार  
 उचित सहायता देना इन्हा घममहामात्रा का कतव्य था ।

महामात्र—माम्नाज्य क जिल तथा नगरा म महामात्र स्वतन्त्रतापूर्वक विचरण  
 किया करते थ । अशोक क शिलानल्ल स हम यह भी पात हाता है कि पाटलिपुत्र  
 कीशाम्बी तोपली स्वर्णगिरा समाया तथा इसिल म महामात्रा की नियुक्ति की गई  
 थी । विभिन्न प्रकार के महामात्रा का उल्लेख अशोक क शिलालला म किया गया है  
 उदाहरणाय कलिय शिलानल्ल में नगरक तथा नगर विपोहनक महामात्रा का  
 उल्लेख किया गया है । डा० हमचन्द्र राय चौधरी के मतानुसार य क्रमश अयशास्त्र  
 के नागरक तथा पीर व्यावहारिक हैं । प्रथम स्तम्भनल्ल म भी अन्तमहामात्र का  
 उल्लेख मिलता है । यह सम्भवत अयशास्त्र का अतपाल है । इसी प्रकार वारुवें  
 शिलानल्ल म 'इषिअक महामात्र' का उल्लेख किया गया है । यह सम्भवत स्त्रीव्यय्य है ।  
 उपयुक्त विवरण म एसा पात हाता है कि विभिन्न कार्यों के लिए भिन्न भिन्न  
 प्रकार के महामात्रों की नियुक्ति की गई था । य महामात्र अपन अपने विभागा क अध्ययन  
 के तथा उस विभाग का पूण उत्तरदायित्व इनके ऊपर था ।

राजक—डा० स्मिथ क कथनानुसार राजुक मा गवनर हाता था किन्तु उसका  
 पद कुमार म नीचा था । य भूमि तथा पाय क अधिकारी थ । इनक अधिकार विस्तृत  
 थे । अशाक क चतुर्थ स्तम्भनल्ल का उल्लेख प्रारम्भ म नी किया गया है जिसम अशाक  
 रजुक (राजक) की नियुक्ति की घोषणा करता है । इन अभिलेख स राजुक क  
 महत्त्व का वाप हाता है और यह भी पात हाता है कि वह कई लाख मनुष्या पर शासन  
 करता था । जनपत् का दत्तपाल करना इसका प्रमुग काय था । किसी को सम्मानित  
 एव उचित करन का भी इन्हें पूण अधिकार था । रथिक तथा युक्त राजुका का मदा  
 यता करत थ ।

प्रादेशिक—प्रादेशिक या म्यान भी काफी महत्वपूर्ण था। अशोक के शिलालेखों में यह बात होती है कि ये प्राचीन शासन के प्रधान थे तथा वाइसराय के नीचे थे। एन्डामन के जूनागड अभिलेख में मीयकानान को प्रांतिक गवर्नर के नाम प्राप्त होते हैं (१) पुष्यगुप्त जो चंद्रगुप्त के समय में सोराष्ट्र का गवर्नर था तथा (२) तुषास्प जो अजोध्या के समय में माराष्ट्र का गवर्नर था। तुषास्प पारमात्र नाम है अतः इससे पता चलता है कि राज-कर्मचारी का नियुक्ति में सम्राट अशोक किसी प्रकार जातीय या दण्ड विन्ना भेद नहीं रखता था। यह उसका धार्मिक सहिष्णुता का भाव परिचायक है।

युक्त अथवा युक्त—प्रादेशिक के बाद युक्त अथवा अयशास्त्र के यक्षों का उल्लेख अभिलेखों में किया गया है। ये अपने सहायक उपयुक्तों की सहायता से जिना-काय के दखलें राजकाय सम्पत्ति का निराक्षण मानगजारी वसूली तथा खर्च करना तथा जाया करना आदि काम करते थे। मनु ने भी अपने स्मृति में इस पदाधिकारी का उल्लेख किया है और उनका कर्तव्य खड़े हुए वस्तुओं की पुनर्प्राप्ति के पश्चात् रक्षा करना बतलाया है। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में युक्तों का उल्लेख करते हुए उस राजसम्पत्ति का प्रबंधक बतलाया है।

अशोक के अर्थिकारों से बड़ा इस बात का ध्यान रखते थे कि कोई भी ऐसा काम न करें जिससे अशोक का धार्मिकता का ठस पड़ूँ। प्रतिवन्दकों को उसने यह आदेश दिया था कि वे महामात्रों या मंत्रिपरिषद के कार्यों की सूचना उस दरावर देते रहें। इस प्रकार पूर्व लिखित पदाधिकारियों को भी उसने सत्त्व प्रजाहित काय में सचष्ट रहने की आज्ञा दी थी।

अशोक का शासन सुधार

अशोक के राजत्व सिद्धान्त के विषय में लिखते हुए यह बतलाया गया है कि वह राजा का प्रमुख कर्तव्य प्रजा का सेवा करना समझता था। अतः प्राचीन शासकप्रणाली में कुछ सुधार करना अत्यन्त आवश्यक था। सर्वप्रथम उसने घममहामात्रों की नियुक्ति का जो प्रजा के नातिक एवं जाघ्यात्मिक विकास के लिए प्रयत्न करते थे। घममहामात्र प्रजा का सुखा बताने के लिए उनमें दान वितरण भी करते थे। अशोक के पंचम शिलालेख में यह भी लिखित है कि वे घममहामात्र वद्ध अथवा अधिक सतानवाले यक्षों का मुक्ति अथवा कारागारों का जबकि काम करने को भी सिफारिश करते थे। दूसरा नवान सुधार जो आशोक ने किया वह यह था कि राज्य के प्रधान कर्मचारी राजक प्रादेशिक युक्तों आदि पंचवर्षीय अथवा त्रिवर्षीय अनुमधान (दौरा) किया करते थे जिसे वे ग्रामाण जनता के निकट सम्पर्क में आकर उनका आर्थिक सामाजिक तथा धार्मिक समस्याओं का अध्ययन कर सर्वे और उनके कष्टों का दूर करें। अशोक का तृतीय शिलालेख तथा प्रथम कनिष्क शिलालेख में हम उपयुक्त बातें पता होते हैं। अब तक गणतन्त्र विभाग के राजनीतिक विषयों का सूचना सम्राट को देने रह चुके हैं कि ये सम्पूर्ण शिलालेखों में अपने राजा

निष्पत्ति का वपतिषि के तिन वल्लिया को मुक्त कर देता था और प्राणदण्ड पाय हुए अपराधियों का जीवन जबकि तान तिन और बढ़ा देता था (पाँचवा तथा चौथा शिलालेख)। तत्कालीन भारतीय राजनितिक सिद्धान्त के अनुसार दण्ड पडासी राज्य बड़ी समर्थ जाते थे और शक्तिशाली राजा अपने पैसे राजा को हर प्रकार से शक्तिहीन बनाने का प्रयत्न किया करता था किन्तु अशोक ने अपने पैसे राजा को जानिया के अमरगण



का धारणा इस प्रकार की— सीमा त जातिर्या मुक्षसे भय न खाए व मज्ज पर विवास करे और भुयस सुख प्राप्त करे। वे कमी दुःख न पावें और इस बात का मन्व विश्वास रखें कि जहाँ तक क्षमा करना सम्भव है राजा उनके साथ करगा।

सम्राट अशाक न शासन प्रबन्ध में सबसे बड़ा सुधार यह किया कि उमन सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाकर जीवन-स्तर ऊँचा करने का प्रयास किया। इसके लिए उमन कुछ हिंसात्मक समाजा एव उत्सवा की बन्द करा दिया। मन्त्रि-मास नृत्य आदि में समय अथवा धन का अपव्यय हाता था उसे राकन का भी अशाक ने पूण प्रयास किया।

पशुवध नियम भी इस क्षेत्र में नवीन एव महत्त्वपूर्ण सुधार था। भारतय इतिहास तथा विश्व-इतिहास में कोई ऐसा सम्राट नहीं मिलता जिसने पशु-वध नियम की चप्टा काँही और वह इस कार्य में इतना अधिक सफल हुआ हो।

प्रजा के हित के लिए प्राचीन भारत के अधिकांश सम्राटों ने अनक काय किए किन्तु अशाक के सम्मुख उनके प्रजा हितकारी काय फीके प जाते हैं। यद्यपि इन सुधारों का काटि में नहीं रखा जा सकता पर अशोक ने इस अपना प्रमुख कृतव्य बना लिया था अपन शासन प्रबन्ध का प्रमुख उद्देश्य घोषित कर चुका था। धन यह एक प्रकार का सुधार-काय कहा जा सकता है।

उपयुक्त विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि अशाक के शासन प्रबन्ध तथा तत्सम्बन्धी सुधारों पर उमकी नतिकता प्रधान धार्मिकता का पूण छाप था। जिन नये पदाधिकारियों का नियुक्त अशोक द्वारा की गई वे राजनीतिक क्षेत्र में मल ही महत्त्व पूण काय न कर सके ही पर सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक क्षेत्र में उद्दामे प्रशसनीय काय किया। तब तक के सांस्कृतिक इतिहास में जिन नवीन पट्टों का जोन करजिस आदर्श भारतीय संस्कृति का उदाहरण अशाक ने प्रस्तुत किया वह विस्मरणाय है। अशाक के शासन प्रबन्ध में उसके शिविल सनिक संगठन के सम्बन्ध में कुछ मा कहना उस अद्वितीय शासन प्रबन्ध की मौलिकता एव महत्ता को घनाना है। चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा संगठित सना अशोक के शासन-काल में अस्त्र शस्त्रों के स्थान पर नतिक आदर्शों की पूजा कर रही थी। अशोक की सनिक दुबलता के सम्बन्ध में अगल पट्टों में निम्ना जायगा।

### अशोक के निर्माण-काय

अशोक केवल इसलिये नहीं प्रसिद्ध है कि उसने धार्मिक क्षेत्र में अद्वितीय प्रगति कर ली थी अपितु वास्तु-कला के क्षेत्र में मा उसने आश्चर्यजनक प्रगति ला दी था। इस क्षेत्र में अशाक ने सबसे महान काय यह किया कि उसने लकड़ियों तथा इटों के स्थान पर पत्थरों का प्रयोग कराया। उस नगरों का निर्माण तथा उन्हें सुसज्जित करान का काफी शौक था। अनुश्रुतियों के अनुसार अशोक ने कापीर में धीनगर तथा मैपास में ललिता पाटन नामक नगरों का निर्माण कराया था। अनुश्रुतियाँ अशोक का महान निर्माता के रूप में उपस्थित करते हुए बतलाती हैं कि उसने नगरों की सज-धज का काफी प्रयास किया। महावक्त्र के अनुसार अशोक ने अपन उप राजाबा द्वारा सम्पूर्ण भारत में चौरासी हजार स्तूपों का निर्माण कराया था। हूनसांग ने मा अनुश्रुतियाँ का समयन करत हुए सिखा है कि अशोक ने महात्मा गौतम बुद्ध के आठ स्तूपों में सुरक्षित अस्थि-अवशेषों को चौरासी हजार स्तूपों में रखवाया।

फाहियान ने पाटलिपुत्र में अशाक का राजमहल देखकर चकित मान रहा था कि इसे कोई भी मानव हाथ इस मगार में न बना सकता।

धरावर नामक जिन गुफाओं का निर्माण गया जिने में आज्ञाकारिता का निवामाय बरखाया गया था उनकी छत्रों तथा पीरों बनाने का कारण शाक-मा चमरना है। अशोक के महल निर्माण कार्यों में स्तम्भ निर्माण में प्रथम है। ये स्तम्भ चुनार के पत्थरों के बने हैं जो नीचे काफ़ी मात्र ऊपर पतल हैं। इनका ऊँचाई ४५० फुट तथा वजन लगभग ५० टन है। शिखर पट्टिका पर ये घटाकार हो गये हैं और किराजुन ऊपर सिंह बने हुए अथवा जख का आकृतियाँ बनाई हैं। पर आकृतियों अत्यन्त सजावट हैं। इनकी पानिभ तथा सजीवता का दाय कर ही पाश्चात्य बना विचारणा में हैं। विन्शी प्राकृत अथवा पारुसा शताब्दी प्रभावित बतलाया है। इनका पालिश तथा निचय ही आश्चर्यजनक है और अनेक विद्वानों ने प्रारम्भ में इन्हें पाषाण निमित्त न जानकर धातु निमित्त समझने की भ्रम का थी। म्मिय महोप्य ने इन स्तम्भों की प्रणाम में लिखा है कि इनका निर्माण स्वानांतर तथा स्थापन मीय कानून शिल्पाचार्यों एवं शिना तकका की बुद्धि और कृशानता का अत्यन्त प्रमाण प्रतिष्ठित करते हैं। स्तम्भों की सुदरता में भी अधिक विनक्षण वस्तु उनका एक स्थान से दूसरे स्थान को ल जाना था। चुनार का पत्थर का काटकर बनाये गये स्तम्भ पाँच या छ मील दूरमेरठ जस स्थान पर न जाकर निमित्त किए जायें और वह भी उस यग में जब यातायात का साधन बहुत सीमित था एक आश्चर्य ही था। म्मिय महोप्य ने तारीख ए फ़िराजशाही के आधार पर स्तम्भों के स्थानान्तरण की कठिनाई का उदाहरण प्रस्तुत किया है। वणन इस प्रकार है कि फ़िराजशाह तुगलक अम्बाना के निकट टापरा नामक स्थान से एक स्तम्भ जिसे अब टापरा दिखती स्तम्भ कहते हैं केवल बारह मान दूर लिली जाना चाहता था। उस ४२ पहिया वाली गाड़ियों में ८४ हजार आग्निया के लगाने मयप्रथम हाथिया का प्रयोग प्रकार हम देखते हैं कि जिन लची पहाड़ियों तथा तीव्रगति वाली गहरी नदियों का पार कर आठ-नौ सौ मील दूर चुनार से हैदराबाद राज्य में २५१ ई० पूर्व के लगभग न गया था उही स्तम्भों में से एक को केवल १२ मील दूर लें जान में १३५१ ई० में फ़िरोज तुगलक को नाका बने बवाने पड़े।

### अशाक का शासन सुधार

अशोक के व्यक्तिगत जीवन के विषय में उससे अभिलेखों से बहुत कुछ ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। पचम शिलालेख में उसने अपने भाइयों बहनों तथा अन्य सम्बन्धियों के प्रति अपनी जाति में इच्छाओं प्रकट की हैं उससे स्पष्टतया ज्ञान हो जाता है कि वह पारिवारिक जीवन का काफी महत्व देता था और उसे सुखी बनाने का सतत प्रयास करता था। स्तम्भलेख मान से यह बात होना है कि अशोक की कई रानियाँ तथा पुत्र थे। माहित्यिक सा या से अशाक की पाँच रानियाँ का बोध होता है (तपु स्तम्भलेख में उल्लिखित कारणों को छोड़ कर अन्य चार रानियाँ)। सबसे यह भी पता चलता है कि अशाक के जन्म पुत्र का नाम महेंद्र तथा ज्येष्ठ पुत्री का नाम सप मित्रा था जिनका माता का नाम शाक्यकुमारी था। अशाक ने अपने सम्बन्धियों की दान-धर्यवस्था का भी प्रबंध कर दिया था जिससे उनमें उच्चकोटि की नतिकता का संचार हो सके। इस प्रकार हम अनुमान लगा सकते हैं कि अपने परिवार में मानव

अशाक का स्थिति काफी सुन्दर था और उसका परिवार का सम्बन्ध उस अपना परंपरागत मान कर उसका अनुकरण करने में लग गया।

अशाक ने स्वयं अपने अभिप्राय में कहा है कि वह राज-काज करने में अपना नया था। उसमें महा परिवर्तन होता है कि उसका अधिकार समय प्रचा का भवा में होता है। जो कुछ समय राज-काज के पक्ष में जाना था उसमें वह उस प्रचार धर्मशास्त्र धर्म चिन्तन आदि करता था। ब्राह्म विद्वान्मताओं में दूर रहनेवाला अशाक मौर्य विद्यालय का क्या महत्त्व होता रहा होगा इस स्पष्ट रूप में नहीं कहा जा सकता किन्तु ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि अशाक वास्तविकता का अनुयायी होने के नाते राज-सुख में सात्त्विकता में ही मनुष्य रहा। उसने अपने अभिप्राय में अपना प्रजा का शासन तथा परनाम में सुखा रहने का विधान प्रकट किया है। किन्तु अशाक 'हृदाय' के सुख में क्या अर्थ लाना था वह उसका अभिप्राय में नहीं बताया गया है। फिर मौर्यशासन में मौर्य शासन के मौर्य शासन के लिए निष्कष निष्कष जा सकता है कि अशाक अपना प्रजा का अधिक एक जीवन सम्बन्ध जोय उत्तम के लिए इच्छुक रहता था जिसका प्रयोग वह अपने वैयक्तिक जीवन में भी करता था।

मौर्य शासन में स्थान

अशाक के क्रांतिवादी कार्यों के विषय में उसका उल्लेख शासन प्रणाली के विषय में एक कुशल अधिक एक सामाजिक सुधारों में हमें जल पूणतया परिचित हैं। मौर्य शासन जैसा मौर्य शासन में स्थिति में ही मौर्य शासन में ही प्राप्त हुआ किन्तु है। विभिन्न विद्यालयों में उसका तुलना विभिन्न प्रसिद्ध मौर्य शासन का है। कुछ शासन में उस शासन मौर्य शासन का शासन में मौर्य शासन का शासन है। जो मौर्य शासन का शासन के पक्ष में स्थिति पर शासन का उत्तराधिकारी शासन है इस ही अशाक का उद्देश्य धर्म शासन करना है उसका मौर्य शासन प्रयोग करने में उद्देश्य का कारण था। डॉ० राज डेविड (Dr I has David) ने लिखा है—

Asoka's conversion to Buddhism and his munificent endowments to the Samgha were the first step in the downward path of Buddhism — the first step to its extinction from India (Buddhism)

परन्तु मौर्य शासन का शासन में मौर्य शासन के शासन के लिए उत्तराधिकारी शासन का शासन में मौर्य शासन का शासन है। शासन एक शासन के शासन में—

Constantine enjoyed a narrow career where Asoka put himself at the head of a religion which had made little headway. Constantine was calculating shrewd, subtle, often cruel, cynical whose one great instance of common sense (foresight) entitles him to be called Great

परन्तु मौर्य शासन के अनुयायी अशाक ने बौद्धधर्म का एक शासन धर्म में उस विचारधारा धर्म बनाया था। उन्हा के शासन में—

Asoka on the other hand was possessed of lofty ideals and employed his shrewdness and calculating powers to take Buddhism from a narrow provincial sect that it was to the position of a

worldwide religion

कॉन्स्टेंटाइन राजनतिक कारणों के कारण ही मष्पिण बना था। परन्तु अग्रीक की सहिष्णुता सहृदयता एक श्रद्धा भक्ति वा प्रत्यक्षीकरण थी। क्योंकि किसी भी प्रकार के राजनतिक मष्पिण से वह प्रभावित नहीं था। अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में कॉन्स्टेंटाइन धर्म के प्रति उसके विचार परिवर्तित हो गए थे। वेदिका भगवत् महोदय के शब्दों में तोना सम्राटों के विचारों में आकाश पातार का अन्तर—

Constantine displayed a reaction toward paganism and at its best his religion was a transcendental Ascle never evinced such moral degeneration and from beginning to end he held fast to the true Dharma

मकफन (Maximian) ने अपनी पुस्तक में अग्रीक की तुलना मार्क मौरिनियम एण्टानियम (Marcus Aurelius Antoninus) से की है जिसने कि १२१ ई० स १८ ई० तक रोम पर शासन किया था। यद्यपि वह व्यक्तिगत सन्धार के लिए अशाव की कोठि में रखा जाता है परन्तु आदश की श्रेष्ठता तथा उत्साह एवं उगत का एकदत्ता के प्रदान में भारतीय सम्राट औरनियम को मान कर देता है। और नियम के विषय में कहा जाता है—

He was Roman in civil nobility and pride Roman in tenacity of moral aim and that the profession of Christianity remained under the inner Han and the Christian such were judicably liable to death just because the prevalence of Christianity was incompatible with his ideal of Roman propriety

परन्तु सम्राट अग्रीक इस प्रकार की सजीण मनोवक्तियों से सन्धानित एवं प्ररित नहीं था। उसने सम्पूर्ण मानव समाज का उन्नति एवं प्रगति के लिए अथक प्रयत्न किया था। तएव औरनियम से भी उसकी तुलना नहीं की जा सकती है। सम्राट अग्रीक विश्व का अन्तिम एवं अन्त में समाज रखा था एवं रखा।

मकफन नाम सम्राट की तुलना में कुछ अथ नरेणा के नाम उन्धन किए हैं जस अल्पक चालमें उमर सजीफा प्रथम आदि। यद्यपि विश्व में वन्त में कृशत शासक एवं निष्ठा यादों नरेण हुए हैं परन्तु सम्राट अग्रीक की जसी विजय शायद ही किसी न प्राप्त की थी। सम्राट का विषय जनता जनान के हृदय एवं दिल पर विजय थी। उसकी विषय स्थायी एवं अमर विजय है।

कहा किम सम्राट से उसकी तुलना वस्तुतः सायक एवं तथ्यक है वह सम्राट भारत का ही एक विभक्ति है और जिसने मध्यवर्तीन युग में देश में राष्ट्रीयता की नहर में सवका आन्धानित किया था। अकबर मन्ान ने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए एक रूपना जनता की सन मुविषा के लिए कठोर अध्यवसाय किया था। परन्तु किम मन्त्र में उसका तुलना सम्राट अशाव से की जाती है वह है उसकी धार्मिक मष्पिणता। उसने नान वनानी नामक एक एकेववाद धर्म की स्थापना भी की थी। परन्तु अन्त अकबर की यह सब नीतियाँ राजनतिक स्वाय से प्रेरित होती थी। तभी तो एक विधान न कहा है—

Alex was before all things a politician and a man of the world and was in no mood to endanger his sovereignty for the cause of religious truth

यही नतीजा था जो प्रचार के लिए उसमें उत्कट तनय एवं अश्ववमाय को बनाया जा चुका था यद्यपि वह एक अतिशय शक्तिशाली सम्राट था किन्तु वह भी दीनकारी सम्प्रदाय अपना साम्राज्य में पर नही व्याप्त हो सका और मन्त्रापक की मर्यदा कायम रखकर मन्त्रप्रदाय की भाँति अन्तिम मन्त्राण्ड्रिया कायम रखा।

विश्व के महान इतिहासकार विश्व के महानतम सम्राटों में अश्ववमाय को मानते हैं। वे दस्तुतः राजा के बन्धु के भाँति महान योद्धा एवं महान शासक थे। परन्तु विश्वी का याददा एवं शासक में महान हाना उस महान सम्राट का उपाधि से विमूर्षित नही करता। एच. जी. वेल्स (H. G. Wells) सूचना है—

What were their permanent contributions to humanity—the three who have appropriated to themselves so many of the pages of our history?

इन तीन व्यक्तियों में अश्ववमाय का नाम प्रथम स्थान पर है। यद्यपि बहुत कुछ किया था परन्तु मानवता के बल्याण के लिए इन तीनों ने कुछ विशेष कार्य नहीं किया था। परन्तु अश्ववमाय का अन्तिम उपलब्ध तथ्यावधि महान सम्राटों में मिला था। जनता जनानों के बर्याण के लिए असीम प्रयत्न किया था। अतएव उस समय प्रत्येक अश्ववमाय सम्राट का कांठ में रखा सजत है। तभी तो एच. जी. वेल्स ने लिखा है—

Amidst the tens and thousands of names of monarchs that crowd the columns of history the majestics and praconnesses and serene and royal highnesses and the like the name of Ashvama is a shrine and shines almost like a star. From the Volga to Japan his name is still honoured in China, Tibet and even India though it has left its doctrine preserves the tradition of his greatness. More living men cherish his memory today than have ever heard the names of Constantine or Charlemagne.

डॉ. कॉप्लेण्टन (Dr. Copleton) ने अश्ववमाय का एक अमूल्य तथ्यावधि के लिये बताया है।—

He was not merely the Constantine of Buddhism. He was Alexander with Buddhism for Hellenism—an unselfish Alexander with mettem in the place of glory.

डॉ. हेमचन्द्र राय चौधरी ने अश्ववमाय के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

Ashvama is one of the most interesting personalities in the history of India. He had the energy of a Chandragupta, the strategy of a Samudragupta and the holiness of an Akbar. He was titelless.

in his exertion and unflinching in his Zeal—all directed to the promotion of the spiritual and material welfare of his people whom he looked upon as his children

### अशोक के उत्तराधिकारी

अशोक का मृत्यु के उपरान्त मौर्य साम्राज्य का इतिहास अत्यन्त विचित्र हो जाता है। उसके उत्तराधिकारियों का जो विवरण बौद्ध जन तथा ब्राह्मण ग्रंथों में मिलता है वह इतना जस्पन् और परस्पर विरोधी है कि उनके आधार पर मौर्य साम्राज्य के परिवर्ती इतिहास का निर्माण करना अतीव दुष्कर काय प्रतीत होता है। इतना निश्चित है कि अशोक के बाद मौर्य साम्राज्य को शक्ति गिनाग्नि मिली ही गई। ऐसा एक भा प्रतापी और पराक्रमी नरेश नहीं हुआ जो पतन की इस तीव्रगामा प्रक्रिया का रोककर अपने वंश के गौरव का प्रतिष्ठित करता। परिणाम यह हुआ कि पराक्रमी चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित साम्राज्य शीघ्र ही ध्वस्त हो गया।

अशोक के पांच पुत्रों का उल्लेख विभिन्न स्रोतों में किया गया है। इनके नाम हैं कुणाल तावर महेंद्र, कुस्तन और जालोक। इनमें से अशोक के उपरान्त सिंहासनासन कौन हुआ इस बात पर बौद्ध जन और ब्राह्मण अनुश्रुतियों में परस्पर कानी अंतर है। दियावदान के अनुसार अशोक के बाद कुणाल का पुत्र सम्पती या सम्प्रति राजा हुआ। वायु पुराण का साक्ष्य है कि अशोक के राज सिंहासन का उत्तराधिकारी उसका पुत्र कुणाल हुआ जिसने आठ वर्षों तक शासन किया। किन्तु एक अन्य अनुश्रुति उस अध्यायतलाता है। कहा जाता है कि उसके नशकी सुश्रुता के कारण उसका नाम कुणाल पड़ा और अपनी विमाता त्रिप्यरक्षिता का ईर्ष्या के कारण उस अपने नशसे हाथ धोना पड़ा। यदि वह अध्यायता सम्भवत उसकी स्थिति महामारत के घतराष्ट्र की सी थी और यद्यपि वह सम्राट समझा जाता था तब भी उसकी शक्ति नामात्र की ही थी। शारीरिक दृष्टि से अयोग्य होने के कारण राज्य भार उसके प्रिय पुत्र सम्प्रति को दे दिया गया जिसका बौद्ध और जन लता न अशोक का उत्तराधिकारी बताया है।<sup>१</sup>

कुणाल के उत्तराधिकारियों के विषय में भी अनुश्रुतियों परस्पर विरोधी बातें कही हैं। वायु पुराण के अनुसार अशोक का पुत्र बहुपालित था। दियावदान तथा जिन रमसूरि के पाण्डितपुत्र कल्प के अनुसार वह सम्पती या सम्प्रदी या सम्प्रति था और तारानाय के अनुसार विगनशोक महान सम्राट अशोक का पुत्र था। या तो ये राजकुमार एक ही व्यक्ति थे अथवा ये भाई थे। यदि भाई होनेवाला सिद्धान्त ठीक होना बहुपालित का समाकरण दशरथ के साथ किया जा सकता है। दशरथ की ऐतिहासिकता के प्रमाण उपलब्ध हैं। दशरथ की प्रवृत्ति धर्म की ओर अधिक थी। उसने नागाजना का पहाड़िया में आजीविका के लिए कदरा-गृहों का निर्माण करवाया था। इससे मान्य है कि इस समय भी आजीविका का सम्प्रदाय विद्यमान था। दशरथ के समय में मगध साम्राज्य से कौलिंग का प्रान्त पक हो गया था। अग्नि नश में अशोक का भाति दशरथ के लिए भी देवानामपिय का उपाधि का प्रयोग किया गया है। दशरथ सम्भवत पुत्रहाने या जनैव उसका भाई सम्प्रति उसका

उत्तगधिकारी हुआ। सम्प्रति का नाम अधिकांश पाराणिक वशावतिया में आता है। हमें अतिरिक्त ज्ञान तथा बौद्ध उत्पत्तिका नाम उमका उल्लेख किया है। अतएव सम्प्रति का भी ऐतिहासिक भगव का शासक मानना ममाधान जान पता है। अशाक का शासन मौर्य वंश में जितने भी शासक हुए उसमें मौर्य महत्वपूर्ण सम्प्रति ही था। उमन भगव का समा भागा पर अपना अधिकार बनाये रक्खा। डा० स्मिथ का कथन है कि दक्षिण और सम्प्रति एक ही समय में पश्चिम-पूर्वी भारत में शासन कर रहे थे। स्मिथ साहब का कथनानुसार अशाक का शासन मौर्य साम्राज्य का भाग में विभक्त हो गया था। परन्तु अतः विद्वानों का स्मिथ की यह धारणा मान्य नहीं है। सम्भवतः सम्प्रति ने ही राजधानियाँ का प्रयोग किया था। उमकी एक राजधानी पाटलिपुत्र और दूसरी अद्विज में थी। जन फ्रांसीसी सम्प्रति का सम्पूर्ण भारत का राजा कहा गया है। बौद्ध अनुश्रुति में जो स्थान अशाक का है वहाँ जन अतः सम्प्रति में सम्प्रति का है। सम्प्रति ने जन धर्म का राजाध्यय प्रदान किया था और जिनप्रममूरि का अनुसार वह एक महान अहन्त था जिसने अनाथों में मा भ्रमणा का निष्ठ विहार प्रयोग था।

सम्प्रति का बाद मौर्य वंश का इतिहास और मा अधिकांश जयकारण है। किन्तु सम्भवतः यह दान ठीक जान पता है कि वह द्रव्य मौर्य वंश का अन्तिम सम्राट् था। यह विलामा और अवमण्य था और सना का सम्भवतः स मवया विनग होता था। परन्तु उसका सनापति पुष्यमित्र शुंग ने सना का मामा ही उमका वध कर दिया और मौर्य साम्राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर दिया।

### मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

मौर्य साम्राज्य का पतन अपत्याहत शासन ही हुआ। जिस राज्य की नाव चलाए जाये मौर्य जन्म महान सम्राट् ने टाला था और जिस की वृद्धि जन्म बुद्धिमान दूरदर्शी तथा बुद्धिमान अमात्य का सुविकसित तथा सुशासन व्यवस्था में परिष्कृत किया था और जिसका शासन का भीमबद्धि अशाक महान ने का था उमका इनका शासन घराशासन ही जाना कुछ विस्मय अवश्य उत्पन्न करता है। मौर्य पतन मौर्य साम्राज्य का पतन का कारण पर महामहापाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री ने विचार किया था। किन्तु पश्चिम अतः तक वितन का शासन इन तर पर पहुँच कि अशाक का शासन विरा धिना नीति में मौर्य साम्राज्य का नीव का ग्रावण कर दिया और अतः एक ब्राह्मण सनापत्यक ने ही इसका उत्पादन में किया। किन्तु डा० राय चौधरी ने प्रत्यक्षपक्ष में तर्कों द्वारा महामहापाध्याय प० हरप्रसाद शास्त्री का प्रत्येक तर्क का खण्डन कर दिया है।<sup>१</sup> इसका अतिरिक्त राय चौधरी महान्य ने उन कारणों का उल्लेख भी किया है कि जिनने मौर्य साम्राज्य का पतन का एक ग्राह्यगमा प्रक्रिया और वास्तव में एक अव्यवस्था तथ्य बना दिया। हम उक्त कारणों पर मक्षेप में विचार करेंगे।

मौर्य साम्राज्य का पतन का सबन प्रबल और महत्वपूर्ण कारण था इसका विषयना हमें प्रबन्धि। अशाक का समय तक तो इस विषयना साम्राज्य का ऊपर एक सुदृढ़ शासन सत्ता का प्रभाव जमा रहा किन्तु बाद में जहाँ उमका मृत्यु में साम्राज्य का विभिन्न भाग इसका पथक हुआ का विचार करने लगे। अतः प्राप्त ज्ञान पर विभिन्न

<sup>१</sup> इस विषय का पूर्ण विवरण का लिए दलिये *Political History of Ancient India* pp. 34-36।

प्रान्तों के शासकों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। काश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासकार बल्हण के अनुसार अशोक का दूसरा पुत्र काश्मीर में स्वतन्त्र शासक बन बठा। उसने कन्नौज तथा के देश की विजित भी किया। उसके लिए यह भा कहा है कि उसने 'मन्च्छो के आक्रमणकारी दल का दमन किया। इस दमन से तात्पर्य सम्भवतः विक्रमयन यूनानियों के आक्रमण के दमन में है। एक प्रान्तीय शासक का इतना अधिक शक्तिशाली हो जाना इस बात का मिक्ष है कि इस समय साम्राज्य का केन्द्रीय शक्ति का सवेग ह्रास हो रहा था। तिब्बत इतिहासकार ताराणाय के अनुसार अशोक के एक वीरसन नामक उत्तराधिकारी ने काश्मीर में अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया। कन्नौज वीरसेन मौर्य साम्राज्य का एक प्रान्तीय शासक था किन्तु जब उसने साम्राज्य का शक्ति को क्षीण होते देखा तो तुरन्त अपना स्वतन्त्रता का घोषणा कर दा। महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक मन्विकरिग्नि मित्र में पना चलता है कि विदम भा साम्राज्य से पथर हा गया था। यूनाना लवक पोलिवियम ने उत्तरी पश्चिमा साम्रा के एक स्वतन्त्र भारतीय शासक का उल्लेख किया है। इसका नाम सोफ ग सानस (Sphragis) (सुमगसेन) बतनाया है। सुमगसेन शासक वीरसन का भा एक उत्तराधिकारी था। पोलिवियस के कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि सुमगसेन एक स्वतन्त्र नपति था छात्र मोटा सरदार या प्रान्तीय शासक नहीं। इसी प्रकार जशाक की मत्य के बाद किसा समय कलिग का राज्य भी मौर्यों के हाथ से निकल गया। इस तरह हम नेपते हैं कि अशाक के मरने के बाद मौर्य साम्राज्य में विक्रमयण का प्रवृत्ति इतनी बढ़पता हो ग कि उसका वाट में राका न जा सका। इसका रागन के लिए किसी शक्तिशाली नरेश की आवश्यकता था किन्तु अशाक के उत्तराधिकारियों में से कोई भी प्रभावशाली न निकला। अतएव मौर्य साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावा हो गया।

इस बात के प्रचर प्रमाण है कि प्रांतीय शासकों का प्रजाजनों के साथ अज्ञान्यवहार नहीं था। वे उनका उत्पीडित करते थे। दिव्यावदान नामक ग्रन्थ द्वारा इस विषय पर काफी प्रकाश पता है। विदुमार के समय में तक्षशिला के लोग ने मंत्रिया के प्रजापा के शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। दिव्यावदान का कथन है—  
जयराता विदुसारस्य तक्षशिला नाम नगर विरुद्धम्। तत्र राजा विदुसारेण अशाकः विमजितः यावत् कुमारस्चतुरगणः ब्रह्मकथनतक्षशिला गतः श्रुत्वा तक्षशिला निवासिनः पीरा प्रत्युद्गम्य च कथयति न वयं ब्रह्मरस्य विरुद्धं नापि राज्ञो विदुमारस्य अपिदुःखं दृष्ट्वा मोत्या अस्माकं परिभव कुर्वति। जयान तक्षशिला का नगर राजा विदुमार के विरुद्ध था गया। वहाँ पर राजा विदुमार के द्वारा अशोक भजा गया। तब तक कि कुमार चतुरगिणा सेना लेकर पहुचते है उनके आगमन का समाचार सुनकर तक्षशिला नगर के निवासा नागरिक पहुचकर कहते हैं हम कुमार के विरुद्ध नहीं है जोर न राजा विदुमार के ही। किन्तु दुष्ट मंत्रिगण हमारा अपमान करते हैं। अशाक के समय में एक बार फिर तक्षशिला के नागरिका न विद्रोह कर दिया और उस बार भी विद्रोह का कारण मंत्रियों का प्रजापा था था। इस बार जशाक ने विद्रोह का दमन करने के लिए अपने पुत्र कुणान को भजा। कुणान को भा नगरनिवासियों द्वारा बड़ा उत्तर प्राप्त हुआ जा कुछ समय पूर्व अशोक को मिला था। दिव्यावदान के साक्ष्य में यह स्पष्ट हो जाता है कि मौर्य साम्राज्य के प्रान्तीय अधिकारों प्रभावमय नटा थे। अशाक के एक अभिलेख से भी दिव्यावदान के कथन की पुष्टि पता है। इस अभिलेख से पता चलता है कि राक्षसीय पन्थिकारियों का



कुशासन बबल गांधार व दरवनों प्रान्त तब ही मौमिन नही था वरत उज्जैन यात्रि प्रान्तों का स्थिति गांधार की स्थिति से कुछ विशेष अच्छी न थी। इस प्रकार जब जनता का विचार मौयों का धामन मन्ना के प्रति न रह गया तो उनके पतन की प्रतिया और अधिच ताव हा गई।

मौय साम्राज्य के पतन में अशाक वंश तब उत्तरदायी था इस विषय में लिखता यह मनमोद है। कुछ विद्वानों का कथन है कि अशोक की अस्तिमावाणी नीति ने साम्राज्य को मजिद शक्ति और सामरिक प्रवृत्ति का अधिचल कर दिया। परन्तु अन्य विद्वान यह कहते हैं कि यद्यपि अशोक ने बेरा धीप के स्थान पर घमघास मृतन का प्रण कर दिया था तथापि इस बात का काल प्रमाण नही है कि उसने अपनी मध्य शक्ति कम कर था। लेकिन हमारा विचार है कि अशाक की अस्तिमात्मक नीति साम्राज्य के विकास अथवा उमका चिरस्थायी बनन की दृष्टि में अनुकर नही थी। उमा रण नीति का त्याग करके अपने साम्राज्य में घम और अध्यात्मवाद के जिन वायमण्डल का निर्माण किया उनके लिए कोद भी इतिहासकार उमकी प्रशंसा किये बिना नही कर सकता परन्तु उमका इस नानि न मजिदका भी रण-कुशासन और सामरिक प्रवृत्ति का निष्कर्ष देना दिया। यह एक मनमोदनिष्ठ लक्ष्य है कि घम और अध्यात्मिकता के म वातावरण में जन्म म समा प्रकार का शिवा का निर्वाहन नही कियाय था मजिदों की रणकुशासन का का प्रोत्साहन प्राप्त नही हो सकता। अशोक के शांतिमय शासन बाद न पर एम यह का उम दिया जिनमें शान्ति साम्राज्य उमनि घम प्रकार का व्यापक रूप ने प्रसार होता है किन्तु उमका मध्य था राजनीतिक अचेतनता और कर्तव्य मतिर दृष्टता भी ला जाती है जिसका परिणाम यह था कि मध्य साम्राज्य का मजिद बलि धारे धारे नष्टप्राय हो जाती है। अर्थात् साम्राज्य का मजिद शक्ति व ह्यम व कारण हा प्रान्तीय शासकों का स्वाधीनता की घाण्टा करन का प्रेरणा प्राप्त था ही क्योंकि उमने मभाभाति मौच किया कि उमका विचार का कर्तव्य व लिए मौय मण्डल व निवृत्त ममचित भासन नही है। उमा प्रकाश साम के युवाना गया न अशाक की घमनिगागिता की नीति को उसके जीवनकाय नही ता स्वाका किया किन्तु उनके मरत ही उनका दृष्टिकोण परिधित हो गया और उमने भारतीय मौमा पर अपना गढ़ टि असायी। परन्तु उमे य कमा न मरना चाहिए कि अशाक का शांति और अस्तिमा नीति मौय साम्राज्य के पतन के अन्त कारणों में म वरत एक कारण व भी रूप में थी इसका मममय कारण बनाना पैलि हासिक साम्राज्य का अवतनता करना है।

विद्यावान स एक अन्य बात का सा मभवत प्राप्त होता है जिसमें मौय साम्राज्य के पतन का उमा उच मिला। विद्यावान की एक कथा में उमम था कि अशाक की उमका मभा प्रभुत दात था गया कि उमका साम्राज्य काफी उमा मने मया। एक उम उमन फिर एक बौद्ध मण का बासी दात नेने का विचार कि उम उमका उमा न उमका विराय किया था उम बात का निष्कर्ष कि साम्राज्य मभा मना था था है। एक अन्तधनि काता मने तब कन्ना है कि अशाक का मण छा दना था और उमका मण मजिदमन उमके पीड मण्डलि का प्राप्त मजा। यद्यपि हम उम अनुधुनिया का अशाक मण नही मान सकते तथापि इस बात की सम्मानना मया प्रयत्न प्रतीत मती है कि अशाक की शासनानि साम्राज्य की अधिच स्थिति का उमा प्रकार मभवता कर रहा था जिन प्रकार घम नानि मजिद शक्ति का

ज्ञान कर रहा थी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अशोक की दानवीरता उस व्यक्ति के एक उज्वल पक्ष हमारे सम्मुख प्रस्तुत करता है किन्तु राजनीति के दृष्टि से उनका यह उज्वल पक्ष दूरदर्शितापूर्ण नहीं कहा जा सकता।

उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त अन्य छोट छोट कारणों में भी मौर्य साम्राज्य का पतन हुआ। मौर्य साम्राज्य की सामार्यें इतनी दूर तक फैली थी कि एतना वैश्व-व्यवस्था द्वारा सम्पूर्ण साम्राज्य के ऊपर नियंत्रण स्थापित करना असम्भव था किन्तु कष्टमाध्य अवश्य था। उन दिनों जब कि मातापति जागृत्मानस के सुविधमिन्त साधना का अभाव था मौर्य साम्राज्य का एक शताब्दी तक सुखवर्धित शासन के अभाव में अत्यन्त अवस्था रहना सचमुच विस्मय उत्पन्न करता है। परन्तु योग्य शासकों के अभाव में इतने विशाल भूभाग का एक ही शासन मता के अभाव में असम्भव था। अतएव अशोक के बाद जब अन्य उत्तमशासकियाँ के हाथ में शासन मून गया तब साम्राज्य के टुकड़-टुकड़ होने लगे। इस प्रकार अन्तपुर तथा राजदरवारियाँ के पड़ोसों से भी साम्राज्य का शक्ति का एक प्रबल जापान पहुँचा होगा। मालविकाग्निमित्र से पता चलता है कि बहूदर्थ के समय में मौर्य सम्राट की राजमन्त्री से दूर-दूर विराटों के दलों का निर्माण हो गया था। एक दिन सनापति का था और दूसरा प्रयाग सचिव का। इन दोनों दलों में सर्व पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता बना रहना था जिससे सहयोगपूर्ण वातावरण का सृष्टि नहीं हो पाता था। फलतः यह हुआ कि सम्राट तथा साम्राज्य का शक्ति का अन्तर्गत ज्ञान ज्ञाना गया। अतः बहूदर्थ के समय में पुष्यमित्र शुंग ने मौर्य सम्राट का बन्धन राजसिंहसूतन पर अपना अधिकार जमा लिया।

## Questions

### Lucknow University

1. Describe after Mead Jones the municipal administration of Chandragupta Maurya (194)

2. Write a critical note on Chandragupta Maurya under the following heads (195)

(a) his ancestry

(b) date of accession

(c) his conquests

(1946)

3. Give an account of the ancestry and early life of Chandragupta Maurya (1946)

4. मेगस्थनीज (Megasthenes) ने चन्द्रगुप्तमौर्य के राज्य विभाग के संगठन (Literary Organization) के विषय में क्या लिखा है विस्तार पूर्वक लिजिए। (1950)

5. चन्द्रगुप्तमौर्य कीन था? उसकी प्रारम्भिक जीवन और राज्य विस्तार के विषय में आप क्या जानते हैं? (1951)

6. मेगस्थनीज के उक्तान्त के अनुसार चन्द्रगुप्तमौर्य के समय में पाटलिपुत्र नगर की शासन व्यवस्था का उल्लेख लिजिए। (1953)

7 What do you know about the Maurya administration ? Describe it in detail (1955)

८ चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन प्रणाली तथा तत्कालीन सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालिए। (१९५७)

9 What do you understand by the Dhamma of Asoka ? State the doctrines and practices making up the Dhamma which the empire presents in his edicts (1945)

10 State the innovations introduced by Asoka in the Mauryan system of administration (1946)

11 Classify the inscriptions of Asoka. What light do their first spots throw on the question of the extent of his empire ? What are the other sources to be taken into consideration for the purpose (1947)

12 State the evidence bearing on Asoka's personal religion (1948)

13 What are the main principles of Asoka's Dhamma ? Specify the measures adopted by him for the propagation both within and outside his empire (1949)

१४ अशोक ने भारत तथा विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए क्या किया ?

१५ अशोक के 'उलूक' किन स्थानों पर प्राप्त हुए हैं ? उनके आधार पर उसके राज्य का विस्तार निर्धारित कीजिए। (१९५२)

१६ अशोक के धम्म की विवेचना कीजिए। भारत में तथा विदेशों में उसके प्रसार के लिए उमने कौन-कौन से साधनों का उपयोग किया ? (१९५३)

१७ मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षात्मक विवेचना कीजिए। (१९५४)

१८ अशोक ने अपने 'धम्म' प्रचार के लिए किन किन साधनों का प्रयोग किया ? (१९५५)

१९ मौर्य युद्ध के पतन के कारणों का विवरण कीजिए। (१९५६)

२० अशोक को जातीय सम्राट कहा जा सकता है। इस कथन की पुष्टि कीजिए।

### Agra University

1 Indicate the plan on which was modelled the Mauryan Municipal administration with its various departments and specify their respective functions (1943)

2 Describe the successive stages of the growth of Mauryan empire. Draw also a map of India showing the provinces in the empire of Asoka over which Kumar Gupta I held no political sway in c. 430 A.D. (1945)

3 Describe the career and achievements of Chandragupta Maurya. Compare the extent of his empire with that of Chandragupta II of the Gupta dynasty. (1946)

4 What light does Megasthenes and *Arthashastra* throw on the civic administration and economic condition in the empire of Chandragupta Maurya. (1941)

5 Describe the successive stages of the growth of the Mauryan empire under Chandragupta and Bindusara. (1952)

6 Classify the inscriptions of Asoka and indicate their find spots. (1942)

7 What are the special features of the Dhamma of Asoka? What are the measures adopted by that emperor to popularize his religion both within and outside his empire? (1943)

8 What were the ideals of kingship that were followed by Asoka? What was his contribution towards the unification and security of India? (1944)

9 Amidst the tens and thousands of names of monarchs that crowded the columns of history, the name of Asoka shines and shines almost alone a star. (H. G. Wells)

Comment upon the above remark.

10 Write a short note on the inscription of Asoka and assess the value of these inscriptions for an estimate of the great empire? (1941)

11 State the innovation which Asoka introduced in the Mauryan system of administration. (1948)

12 State the religious policy of Asoka. (1948)

13 (a) What are the evidences that Asoka was a Buddhist? (1951)

(b) State his religious policy. (1951)

14 Discuss the causes of the downfall of the Mauryan empire. (1951)

15 Asoka was a great builder. How far does the testimony of his monuments bear the truth of this remark? (1959)

### Allahabad University

1 Describe the administrative system under Chandragupta Maurya on the basis of Indian and Greek sources. (1955)

2 Discuss fully the nature and importance of the various sources of Mauryan history. (1955)

3 Form an estimate of the achievements of Chandragupta Maurya. (1955)

- 4 What do you know of the origin and early life of Chandragupta Maurya ? (1959)
- 5 Comment on the religious policy of Asoka and how far it was responsible for the downfall of India (1955)
- 6 What do you understand by Asoka's Dhamma Describe the methods adopted by him for its propagation (1956)
- 7 Describe the Dhamma of Asoka and his missionary activities (1957)
- 8 Give a critical estimate of Asoka's administration (1957)
- 9 Analyze critically the causes of the downfall of Mauryan Empire (1957)
- 10 How did the Kalinga war make a new era in the history of India (1958)
- 11 Form an estimate of Asoka as a ruler (1959)
- 12 Analyze the causes of the downfall of the Mauryas (1959)

### I A S Questions

- 1 Give with reference to sources full account of the administrative system of the Mauryan empire indicating the changes introduced into it by Asoka (1947)

# १४ | मौर्यकालीन सभ्यता, संस्कृति और समाज

माय यग का माननाय इतिहास में विाप मान्यपण स्थान है। मान्ृतिक उप  
 त्रिया ( Achievement ) और सामाजिक मगन क क्षण म इसका गौरवशातिना  
 सफलतायें जान भा इतिहास क विद्यार्थी का विम्मय म डान दना हैं। सुदूर यापिनी  
 कान  
 त्रिक  
 और

संस्कृति की पुष्टता प्राप्त हु। जय दशा क इतिहास म नी प्राय यत् न्त्वा गया है  
 कि गणनातिक गौरव क माय नी साथ सांस्कृतिक अभ्यत्यान का अध्ययन भी प्रारम्भ  
 हाता है। पराकवीज क समय का एथन्स जागस्टस क समय का साम्राज्यवाणी राम  
 और मगना एनिजावथ क कान का इग्नड इसी प्रकार की विचारधारा को पुष्ट  
 करते ह। यदि हम भारताय इतिहास से नम प्रकार क उदाहरण चाहते ह। ता हमारी  
 दष्टि म सबसे प्रथम स्थान मौर्य यग को ही प्राप्त होता है। आग चनकर गणो क  
 शासनकाल और मगन सम्राट जकवर के समय म भी हम यही बात दिख नाई पत्ती  
 है। एक बात ध्यान म रखकर कि कभी कभी सांस्कृतिक विकास की यह धारा प्रति  
 कून परिस्थितिया म पत्कर भी प्रवहमान रहती है हम मौर्य साम्राज्य का राजनीतिक  
 सफलताआ पर केवल विन्गम दष्टि डालते हए इसकी सांस्कृतिक और सामाजिक  
 विणयताआ पर विचार कर नना चाहते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य क साम्राज्य की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर लिखते हुए डा० विन्मेट  
 स्मिथ क्त है इस प्रकार भारत के प्रथम एतिहासिक सम्राट ने आज से दो हजार  
 वर्षों में भी अधिक पूव उम वैज्ञानिक सीमा को पार किया जिसके लिए उसके ब्रिटिश  
 उत्तराधिकारी यथ म आते भरते रहे और जिसे सोलहवी तथा सत्रहवी शताब्दी में  
 मुगल सम्राटा न भा पूणतया अपने अधिकार म नहा रक्खा। भारत की इस  
 वैज्ञानिक सीमा का अतिक्रमण कर हिंदूकुश की चोटा पर अपना काति ध्वजा फह  
 रानवाल पराक्रमा चन्द्रगुप्त मौर्य न सुदूर दक्षिण तक अपना सय-सफलताआ का सिक्का  
 जमाया। विदुसार और अशाक क मन्िक सफलताआ न न केवन इस विस्तृत साम्राज्य  
 सीमा को मुत्त और पूण बनान म सहायता की अपितु इसका और अधिक विस्तार  
 भी किया। कर्नाग का समृद्ध प्रांत मौर्य साम्राज्य का एक अग बन गया और सुदूर  
 दक्षिण क तामिन राय भा इसम मिला लिय गया। इस विशाल भू भाग पर उचित  
 रूप स शासन करन क लिए चन्द्रगुप्त मौर्य ने एक सुमगठित शासन-व्यवस्था का विकास  
 किया। एक ही कानान शासन अवधि तक मौर्य सम्राटा न इसी शासन व्यवस्था की  
 सहायता न भारतवर्ष का बाह्य जात्रमणा और अन्तरिक विद्राहाएव विप्लव। स विमुक्त  
 रक्मा। शासन-व्यवस्था कुछ कठोर अवस्थायी नयावि अपराधो का कम करने के लिए  
 सम्राट न एक जीत कठोर दण्नाति का आश्रय ग्रहण किया लकिन कठोरता के बावजूद  
 ही इस शासन-व्यवस्था म अनक गुण थ जिहें हम मुला नही सकत। प्रतिद विन्गन

श्री इ० वी० हवेल न उन गुणा की प्रशंसा करते हुए ठीक ही कहा है चन्द्रगुप्त  
 द्वारा के द्वारा की मानि निरंकुश नहीं था उसने कमा ना ईरानी ढग के एकत्र  
 शासन का व्यवहार में नान का चेष्टा नहीं की—उमका नीति ता वास्तव में जार्या  
 वन का शक्तिशाली बनाता था इसलिए उमने कई जायकुला में प्रचलित शासन के  
 प्रजातांत्रिक स्वरूप का समान रूप नही हान दिया और ग्राम पंचायतों के परम्परागत  
 अधिकारों और जाके स्थानीय स्वायत्त शासन का एक उच्च काटि के कमचारितन  
 का स्थापना करके वास्तव में अत्यन्त नया नान था। जायादेन के प्रचलित विधान  
 के अनुसार वास्तव में सदा एक वैधानिक शासक के रूप में व्यवहार करता था। जयशाम्भर  
 के कठोर नियमों का व्यवस्था में नही की गयी थी किन्तु यह राजा के सभी अधिकारों  
 का पालन करना नहीं करता। जनता के प्रति उमके विभिन्न और अनुरक्तता का भाव  
 उत्तरा उमने बार बार मिनता है। चिकित्साशास्त्र और स्वच्छता की ओर जा ध्यान  
 दिया गया था दमिष्ठ के समय में कृपका और एरिद्री के लिए जो व्यवस्था का गई  
 थी तथा कर बमुन करन के लिए गिन नियमों की मानवानी के साथ रक्षा का गई  
 साम्राज्य में श्रमिकों का आर्थिक समृद्धि के अनुरक्त मिनत प्रस्तुत किये जिमसे  
 उनके वमवपूर्ण भौतिक जायन की नीव पड़ी। जाधिक समृद्धि के कारण उनके हृदय  
 में मनुष्य के इच्छाएँ परक जावन के प्रति अनुरक्त उत्पन्न हुआ जिमसे सभ्यता का  
 विकास हुआ। शांति सुख और समृद्धि के वातावरण में मफल बनाया और ममस्त  
 विद्याओं का विकास के लिए अनुरक्त परिस्थितियाँ प्राप्त हुईं जिमसे साम्बन्धिक  
 उन्नति का माग निष्कण्टक हुआ गया। श्रमण रक्षिते राष्ट्र शासन चिन्ता प्रवर्तित का  
 नानाविध माय नान में पूर्ण रूप से चरितार्थ हो गई।

### सामाजिक विनिर्दिष्टाएँ

मौर्य कालीन भारतीय संहति के विभिन्न स्वरूपों पर हम कुछ विस्तार के साथ  
 विचार करेंगे किन्तु पहले उमरी कल्पित सामाजिक विशिष्टताओं पर दृष्टिपान कर  
 ता सामाजिक प्रवृत्तियों हैं। माय कान प्रजा रूप में विचारों का स्वतन्त्रता का  
 युग था। विचारों का स्वतन्त्रता (Freedom of Thought) की जायकता पाश्चात्य  
 संहति का एक विशिष्ट गुण समझा जाता है किन्तु भारतीय संहति में इस संभव  
 ही एक सम्मानित स्थान प्राप्त नहीं है। मात के प्राचिनतम ग्रन्थ क्रमिक में ही हम  
 विचार-स्वातन्त्र्य के दान मिलते हैं जहाँ पर प्रायः नाममात्र सूचन में मलि के रचना  
 पर विचार करता है। उपनिषदों का रचना करने में ही वातावरण में सम्भव नो  
 मकनी थी जहाँ पर गुण रूप में विचार-स्वातन्त्र्य विद्यमान रहा है। मौर्य नान में  
 इस विचार-स्वातन्त्र्य के कारण अनेक बौद्धिक क्रियाओं का एक प्रबल उत्पन्न हुआ  
 जिमसे तनना में अत्यन्त के इतिहास में अत्यन्त सहा मिन मन्त्रा है। जन जा  
 बौद्ध धर्म भाग्यन धर्म विचारधारा तथा दान के पटमप्रदाय मौर्य युग  
 का विचार नगन में प्रमथ उपनिषदों का यद्यपि यह कहा जा सकता है कि नाना  
 इनका उद्देश्य समान था जो श्राद्ध विद्या के परम्परा की समान थी।  
 ही जहाँ पर किन्तु अनेक दार्शनिक स्वरूपों का निर्माण मौर्य-युग में हुआ।  
 नाना प्रकार के विचारों नान का इच्छा नान का विचारों के लिए नान सामाजिक  
 नाना प्रकार के मौर्य सामाज्य और उमका मुनिवर्ति शासन-व्यवस्था का पाना  
 की संरचना।

भाषा, साहित्य और कला के क्षेत्र में जो प्रगति हुई उसका लिए मौर्य कालान्तर्गत कला का महत्त्व विशेष है। वैदिक मस्त्रुत में स्थान पर पाणिनीय व्याकरण के नियमों द्वारा परिचालित साहित्यिक मस्त्रुत का विकास प्रमुखतया इसी युग में हुआ। प्राकृत में विभिन्न रूपों का जन्म भी मौर्य काल में ही सम्भूत हुआ। तबसे कला का विकास मौर्य काल का एक उत्कृष्ट प्रमुख दन है। राजनीति विज्ञान और आयुर्वेद आदि विषयों पर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का रचना हुई। विशुद्ध साहित्य के क्षेत्र में काव्य और नाटक का जन्म इसी युग की विशेषता है।

भारतीय कला का इतिहास वास्तविक रूप में इस युग से प्रारम्भ होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पूर्ववर्ती युगों में कला का अवश्य क्या-क्या साहित्यिक कृतियों में कला का विभिन्न शाखाओं में उत्कृष्ट प्राप्त हुआ है किन्तु केवल सिन्धु घाटी की कलाकृतियों का छाँट कर हम किसी प्राचीन मौर्य कालान्तर्गत भारतीय कला का नमूना नहीं प्राप्त हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य काल में पहले कलाकृतियों का निर्माण में ईंट और काँच का प्रयोग किया जाता था। इस समय से ईंट और काँच के स्थान पर पत्थर का प्रयोग किया जाने लगा। पत्थर का कला हुआ विशाल इमारतों और मूर्तियों का निर्माण मौर्य काल से बनना प्रारम्भ हुआ और कला का एक स्वदेश परम्परा निर्मित हो गई। यह एक अचरज का विषय है कि मौर्यकाल का कुछ कलाकृतियाँ जिन्हें भारतीय कला का प्रथम नमूना कहा जा सकता है निर्माण-कौशल एवं साठवें का दृष्टि से आज भी अनुपम है। उनका तुलना में कोई अन्य वस्तु उपस्थित करना मरन नहीं। अशाक के स्तम्भ क्षाप कला-नपुण्य का एक पराकाष्ठा का निदर्शन करत है। किन्तु मौर्य काल का कलात्मक उपलब्धि को सवथा ध्यान में रखते हैं भी हम फेरमूसल महान्याय का यह कथन नहीं स्वीकार कर सकते कि भारतिय कला का इतिहास उसका क्रमिक पतन को सूचित करता है (The History of Indian Art: written in decry)। जाग चतुर्कर कला के क्षेत्र में भारतवासियों ने जो अधिक उन्नति का और उनका कला का स्तर कभी भी अत्यधिक निम्न नहीं होना पाया।

मौर्यकालान्तर्गत कला का गौरव एक विशेष कारण से इसलिए भी है कि इस युग में भारतवासियों का विदेशियों के साथ अधिक निकट का सम्पर्क स्थापित हुआ। विदेशी जातियों के सम्पर्क से उन्होंने कुछ नवीन बातें सीखी और उनकी अपनी जातीय विशेषताओं के अनुसार अपना राष्ट्रीय कलाकृतियों में मिलावट कर लिया। मौर्य-युग की कलाकृतियों का उदाहरण और दृष्टिकोण का विशालता के सिद्धान्तों पर आधारित था। इस समय लोगों का जीवन परम्पराओं के बाँध से मुक्त था। उनकी विचारधारा में गतानुयायिता का समावेश नहीं था। समुद्र पार कर जय देशों का यात्रा करने और वहाँ अपना कलाकृतियों का प्रचार करने में उन्होंने निसा प्रकार का धार्मिक अथवा नैतिक बाधा का अनुभव नहीं होना दिया। यह सत्य है कि भारतवासियों का विदेशियों के सम्पर्क में काफी पटन हो जा चुका था किन्तु इस कारण में वह सम्पर्क बरफा पुष्ट हुआ और सांस्कृतिक आदान-प्रदानवाक्य इस समय से प्रारम्भ हुआ। अशाक के प्रथम महामात्रा ने महात्मा बुद्ध के दिव्य उपदेशों और भारतिय कलाकृतियों के सिद्धान्तों का प्रचार विदेशों में किया। कुछ ही समय में भारतिय जन न केवल मध्य एशिया, सारिया और चीन में बस गये अपितु अफाका और यावज्ज महात्माओं के कुछ भागों में भी उन्होंने अपना कलाकृतियों का प्रसार किया। अशाक के दशक में भारतिय उपनिवेशों का स्थापना का कार्य भी प्रारम्भ



हुआ और बहतर भारत की नीव डालने का गौरव इस कारण से मौर्य काल का ही दिया जा सकता है।

मौर्यकालीन संस्कृति का एक अर्थ विशेषता यह थी कि इसमें इहलोकपरक तत्त्व का उचित मात्रा में समावेश था। इस समय के भारतवासी अपने दृष्टांतिक जीवन के प्रति उत्साहित नहीं थे यद्यपि उनका ध्यान मनुष्य के पारलौकिक जीवन का आरंभ जाता था। इस काल के भौतिक जीवन का मान हमें उससे पूर्ववर्ती किसी भी युग के भारतीयों की अपेक्षा अधिक है। लागा का जीवन साधारणतः सरल और सादा रहता हुआ भी एश्वर्यमय था। विशेष अवसरों पर वे मूर्ति मूर्ति के सुन्दर आभूषण आरंभ करके वस्त्र धारण करते थे। लागा की आभूषण इत्यादि से काफी अनुराग था। उनका पाशाक पर जरी का काम किया जाता था और उसमें रत्न जड़ होते थे। इसका अलावा वे भारीक मलमल के जालादार कपड़े पहनने के भी शौकान थे। उनका रुचि बलात्मक था। दश में धन प्रायः का प्रचुरता था।

## सामाजिक अवस्था

### समाज की रचना

मौर्यकालीन समाज की रचना का नाम हम अर्थशास्त्र और मगस्थनीज के विवरण द्वारा जानते हैं किन्तु इन दोनों साक्ष्यों से जो सूचना प्राप्त होती है वह परस्पर कुछ विभिन्न प्रतीत होता है। अर्थशास्त्र में चारों वर्णों का उच्चत्व मिलता है—ब्राह्मण क्षत्रिय वश्य और शूद्र। इनके कर्तव्यों और साधारण जीवन के वर्णन में अर्थशास्त्र अथवा धर्मशास्त्रों से पर्याप्त समानता रखता है। कौटिल्य ने स्पष्ट कहा है कि राज्य का कर्तव्य है कि वह इन चारों वर्णों और उनके आश्रम धर्म का रक्षा करे। मगस्थनीज ने जाति-व्यवस्था का वर्णन कुछ विभिन्न प्रकार से किया है। उसमें जातियों का उल्लेख किया है और लिखा है कि सम्पूर्ण जनता इन्हीं जातियों में विभक्त है। ये जातियाँ निम्नलिखित थीं—(१) दाशनिक् (२) कृषक (३) गाणिक (४) कारागिर (५) सैनिक वगैरे (६) मूलचर या निरीक्षक और (७) अमात्य या राज्य के उच्च पदाधिकारी। मगस्थनीज ने इन जातियों का वर्णन कर चुकने के बाद लिखा है कि विमा का भी अपनी जाति के बाहर विवाह करने का अधिकार नहीं है और न कोई व्यक्ति अपना जाति तथा व्यवसाय परिवर्तित ही कर सकता है। जानियत नियमों की यह कठोरता निस्सन्देह ब्राह्मण-श्रमियों का अनुसरण करती है परन्तु इस विषय में स्पष्ट किया जा सकता है कि मगस्थनीज का यह कथन उस युग की वास्तविक स्थिति का सूचित करता है। अन्तर्जातीय विवाह मौर्य-युग में प्रचलित थे और लागा के व्यवसाय परिवर्तन के उदाहरण भी मिल जाते हैं। अन्तर्जातीय विवाह का पूर्ण कौटिल्य ने भी कहा है। मगस्थनीज के इस जाति-वर्णन के विषय में यह जान लेना आवश्यक है कि इस से यह प्रतीत होता है कि उसमें भारत का नवजात सामाजिक अवस्था का मर्मज्ञान में पुष्टि का। उसमें श्रमका नाम के व्यवसायों और उद्योगों का उनका जातियों समझ दिया। मान्य होता है कि जानिया का अर्थ यह नाम के व्यवसायों में ही अधिक परिचित था। मगस्थनीज ने अपने विवरणों में कहा भी चतुर्वर्ण का उल्लेख नहीं किया है। इसमें चतुर्वर्ण यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि मौर्य-युग में समाज का विभाजन अधिकांश रूप में जानिया और व्यवसायों के

सम्मिश्रण पर ही आधारित था। ब्राह्मण धर्म का नियमों का जिस कठोरता का उन्मुख किया गया है वह समाज में प्रायः अज्ञान थी।

मेगास्थनीस के विवरणों का जानि-पचस्था के सम्बन्ध में हम चाहें जसा मर्मों परन्तु इस विषय में हमें नयी कि उन्मुख तथा सामाजिक का सामाजिक। उन्मुख पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। प्राचीन के विषय में उमरत जा कुछ भाग निम्न है काफ़ी महत्वपूर्ण और महत्त्वपूर्ण है। उन्मुख प्राचीन वग का भाग में विभाजित किया है (१) ब्राह्मण और (२) श्रमण। ब्राह्मण प्राचीन में अभिप्राय सामाजिक ब्राह्मणों से है और श्रमण वग के अंतर्गत बौद्ध मत्तयासा मान है जा किना भाग जानि के सक्त थे। जय धार्मिक सम्प्रदायों में सम्प्रति सचामी भाग श्रमण के जान थे।

मेगास्थनीस के ज्ञान के अनुसार ब्राह्मणों का जीवन का अवस्थाओं में विभाजित था। प्रथम अवस्था वह था जय ब्राह्मण सरव जीवन यथात करता था। वह नगर के सम्मुख किमा कुञ्ज में निवास करता था और मद्य मांसादि वस्तुओं एवं ममस्त इन्द्रिय सुखा के उपभोग में विरत रहता था। उमका सम्पूर्ण समय नानापत्नी के श्रमण अथवा नागा के विद्याभ्यास करने में यथात जाता था। जीवन के मत्तम वर्षों तक इन नियमों का पालन के न के बाद वह गृह सुविधायक जीवन में प्रवेश करता था। उस समय वह अपना अन्तर्गत वर्ष म्त्रिया में विद्या करता था और मन्त्रों वस्त्रों तथा सामंत्तयादि का प्रयोग उमके लिए वजित रहता था। मेगास्थनीस का यह वर्णन ब्राह्मणों के जात्रमा ब्रह्मचर्य और गृहस्थ के उम वर्णन से काफी भिन्नता ज्ञानता है जा हम स्मृतियों अथवा धर्मशास्त्रों में मिलाता है।

दाशनिता का दूसरा वर्ग ज्ञान श्रमण दो वर्गों में विभक्त था। श्रमणों में जा नाग काफ़ी विख्यात थे व वनों में उपस्था और साधना का जीवन वितात थे। व वनों का पत्तिया और फलों पर जीवन निवास करते थे और वृक्षा की छांव के हा वस्त्र पहनाते थे। श्रमणों के अर्थ वर्ग में व नाग जात थे जा चिन्तितमक होते थे। व नागों का निःशब्द चिन्तितमक वस्तु थे और इसमें वदन में समान उनके भरण पापण के लिए उत्तरदायी जाता था।

यूनानियों का ज्ञान मेगास्थनीस के अनुसार य चिकित्सक नागों की चिकित्सा करने में अधिकतर उन्मुख भाजन में निष्पन्न रहता पर जाय देत थे जीपत्तिया के सवन पर अपभ्रष्ट कम। सन्तों का चिन्तितमक में भारतीय चिकित्सक बड़े निपुण जात थे जब कि यूनानियों का अस्का ज्ञान विज्ञान नहीं था।

समाज में ब्राह्मणों और श्रमणों का य सम्मान होता था। जय वर्गों का अज्ञान ये मन्त्रों में अथवा उन्मुख किन्तु सम्मान का दृष्टि में उनका स्थान सर्वोत्कृष्ट था। राजाओं और उनके अनिच्छित तथा सम्पन्न अविनया की व उनके धार्मिक कर्तव्यों के सम्मान में सम्मानता वरत थे। उन्मुख ब्राह्मण तथा श्रमण नागों के साधारण म्त्रास्थ्य एवं उन्मुख इत्यादि के सम्मान में अनिच्छितमक करते थे जिनका ज्ञान का काफ़ी ज्ञान पच्छता था। मेगास्थनीस के इस वर्णन का पट्टि कि दाशनिता का समाज में अत्यन्त जात्रणीय स्थान था जय पत्तियों ज्ञानता तकता न भा का है।

ज्ञान के अभिप्राय नागों का माय ज्ञान के सामाजिक सम्मान पर प्रकाश पड़ता है। परिव्राजकों और विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों का उन्मुख स्थान स्थान पर मितता है। परिव्राजकों और जिनका ज्ञान पटना दृष्टि के अनुसार मत्त का प्रचार वरत थे। य उपस्था और अन्तर्गत नाग ज्ञान का प्रसार करत थे। अभिप्राय में चारों वर्गों

वा मा उत्नव हुआ है। य वण हैं ब्राह्मण सनिक और उनक सामत (भटमाय) जो क्षत्रिय थ इम्य जयवा बश्य जार दास तथा सबक (दासभटक) अर्थात शूद्र। जसाक क अमिलखा आर कतिपय बौद्ध ग्रन्था स स्पष्ट सूचित हाता है कि वर्णा के नियमा म इस समय पयाप्त विनमनशालता थी। लोग अपना यवसाय बदल सकते थ अन्तर्जातीय विवाह मा प्रचलित थ।

विवाह प्रथा—

पारिवारिक जीवन की जागर शिला उन दिना मा आज की भाति विवाह सस्या हा था। जयशास्त्र म विवाह की निम्नलिखित आठ विधिया बतलाई गई हैं—

(१) ब्राह्म विवाह—इस विवाह पद्धति म कया का पिता वर की अपन घर पर बलावर अपनी पुत्रा का वस्त्रामूषणा से सजाकर उस सौप देता था। इस विवाह म सस्वारा की प्रधानता था। वर क चुनाव म उसक कुल शान सनायता आयु विद्या वित्त आर वपु (शरार) पर ध्यान दिया जाता था।

(२) दय विवाह—इस विवाह पद्धति म कया का पिता किसा एस कृत्विकज का अपना पुत्रा सौप देता या जायोग्य और सुशील हाता था एव अपन धामिक कनया क सम्पादन म जिसस वह (पिता) सहायता प्राप्त करता था।

(३) आप विवाह—इस विवाह म कया का पिता वर पन की जार स गौआ का जा प्राप्त करता था। बाद म वह विवाह हा जान पर पुन इम वर का दान म द देता था।

(४) प्राजापत्य विवाह—इस विवाह का प्रधान लक्ष्य सतान का जमिनाप्ति था। इस विवाह पद्धति म धम जय जार काम न कया और वर का जविवाग समान हाता था। इसम कया का पिता वर कू का यह जागान्ति देना या नि तुम दाना साथ मिलकर धम का आचरण करा। यह जागान्ति देन थ जि तुम दाना का वर क हाथ सौप देना था। यह जागान्ति देन थ उपरांत वह कया

(५) आसुर विवाह—जिस विवाह पद्धति म कया क साथ या वर पक्ष की जार स अपना पुत्रा याहन क निए स्वच्छानुसार धन प्राप्त करत थ उस आसुर विवाह कहा जाता था। स्पष्ट ह कि इस विवाह म कया का विद्वय किया जाता था।

(६) माधव विवाह—इस विवाह म वर जार कया बिना अपन अपन माता पिता का आता क एक दूसर म सयुक्त हो जात थ। एम पद्धति म पारम्परिक जीवनपण का प्रधानता प्राप्त था।

(७) राक्षस विवाह—किसा कया का ब्यापूवक अपहरण कर लन जार उसक साथ विवाह कर लन का राक्षस विवाह का मना था गर था।

(८) पशाघ विवाह—इस विवाह पद्धति म किना नाई हुई मादक वस्तु का सवन करा देन म उमत्त हुए जयवा मूर्च्छित कया क माय छन या ब्या द्वारा विवाह कर लिया जाता था।

इन आठ विवाह पद्धतिया म स सामान्यत प्रथम चार का स्थापन किया गया ह जार शय चार का धृति बतलाया गया ह। जकिन इन समस्त विवाह पद्धतिया की परमानुसूता क विषय म समा शास्त्रकार एकमत नहा ह। जकि प्रथम चार पद्धतिया का प्राय समा शास्त्रकारा न स्याकार किया है अय पद्धतिया म स कुछ न आसुर और माधव का मा शास्त्रानुमान्ति ठहगया है। राक्षस विवाह का बवन

धर्मियो के लिए ही उचित बतनाया गया है अथ जातियो के लिए इसे विगन्तित ही कहा गया है। पश्चात् विवाह की समी न एक स्वर से निम्न की है। इन आठ-पद्धतियो की तुलनात्मक शास्त्र सम्मतता के विषय में शास्त्रकारों में मतव्यभिचय मन ही हा इस वान में सन्देश नहीं किया जा सकता कि ये समी पद्धतियाँ प्रचलित अन्त्य थी। मेगास्थनीस का विवाह पद्धति के सम्बन्ध में एक कथन द्रव्य मन्त्रपूर्ण है। वह कन्ता है कि भारतीयों की विवाह पद्धति में वान के एक जोड़े के उपहार को प्रधानता प्राप्त है। इस कथन से एसा मान्य पन्ता है कि मीय वान में आप पद्धति सबसे अधिक लोकप्रिय थी।

सामान्य रूप में अपनी ही जाति के अन्दर विवाह करना उचित समझा जाता था। लेकिन सिद्धांत के रूप में चाहे जो कुछ रहा हो वास्तविक स्थिति बिल्कुल सिद्धांतानुसार नहीं थी। समी म्मोना से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि समाज में अनजानीय विवाह प्रचलित थे और उस समय का कानून उनका स्वीकार भी करता था। अपनी ही जाति के अन्दर विवाह सम्बन्ध करने पर भी कतिपय नियन्त्रण को स्वीकार करना पता था। अपने ही गोत्र अथवा प्रवर की कन्या के साथ विवाह निषिद्ध समझा जाता था। एसा प्रकार सपिण्ड विवाह भी अनिच्छित ठहराया गया था। किन्तु कुछ जातियाँ जैसे शक्य और मीय में सगोत्र विवाह का भी प्रचलन था। दक्षिण में मानुस कन्या से विवाह करने की प्रथा थी किन्तु उत्तर में एसा नहीं था। मन तथा अन्य शास्त्रकारों ने एसा प्रथा को स्वीकार नहीं किया है। अथशास्त्र में विवाह योग्य अवस्था का भी उल्लेख किया गया है। वारह वष का अवस्था में कन्यायें दौलत का प्राप्त करती थी और सोनह वष के हो जाने पर वानक युवा ही जाते थे। कौटिल्य ने इन्हीं अवस्थाओं का विवाह योग्य बतलाया है। विवाह में दहेज भी मान्य था।

उस समय की विवाह पद्धति से यह स्पष्ट है कि समाज में पुरुष को नारा की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त थे। यद्यपि नारी को भी पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था तथापि यह अधिकार पुरुषों के अधिकार की तुलना में काफी कम था। पुरुष अपनी इच्छानुसार अपनी एक परिणीता पत्नी के जावित रहने पर ही कई अन्य स्त्रियों से विवाह कर सकता था। अथशास्त्र और मेगास्थनीस दोनों स्रोतों से पुरुषों के बहु पत्नात्व पर प्रमाण पता है। कौटिल्य ने यह स्पष्ट किया है कि एक पुरुष अनेक स्त्रियों से विवाह कर सकता है क्योंकि स्त्रियाँ पुत्र उत्पन्न करने के लिए हैं। मेगास्थनीस ने कहा है कि कुछ स्त्रियों को लोग सन्तान के लिए अपनी पत्नी बनाने से और कुछ का शवद शारीरिक सुख के लिए। स्त्रियों को भी फिर से विवाह करने का अधिकार था किन्तु इसके लिए उनके सामने कुछ शर्तें थी जिनका उन्हें पालन करना पता था। ये शर्तें थी—यदि पति वन्त दिनों से विदेश से न आया हो और स्त्रा की व्यवस्था न कर गया हो अथवा पति में कोई शारीरिक मानसिक विकार हो इत्यादि। तनाव के विषय में कौटिल्य ने स्त्रा और पुरुष को सामान्य रूप में समान अधिकार दिये हैं और इस सम्बन्ध में व मन का अपेक्षा काफी उदार प्रतीत होते हैं। यदि स्त्रा के दुराचरणों का हान का कोई प्रमाण मिल जाता था तो पुरुष को इस वान का पूरा अधिकार था कि वह उसका परित्याग कर दे। इसी प्रकार यदि किसी स्त्रा के बहुत दिनों तक पुरुष सन्तान उत्पन्न न करता था तो उसका पति उसे त्याग सकता था। किन्तु ऐसी अवस्था में स्त्रा के पति का उसका भरण-पोषण की समुचित व्यवस्था करनी पत्नी थी। कौटिल्य का यह विधान मनु के विधान की तुलना में कहीं अधिक उदार

है क्योंकि मन ने तो यहाँ तक कह दिया है कि स्त्री के कटुभाषिणी होने या अधिक बालने पर उसका परित्याग किया जा सकता है।

कौटुम्बिक जीवन और नारी का स्थान — मध्य काल में संस्कृत परिवार की प्रथा विद्यमान थी, यद्यपि कभी कभी संस्कृत परिवार का विच्छेद भी हो जाता था। जैसे साधारण तौर पर पति पत्नी का सम्बन्ध पारम्परिक स्नेह और सच्चाई पर आधारित था किन्तु दाम्पत्य जीवन में कुछ कमियाँ भी आ सकती थीं। वधुपत्नीत्व की प्रथा न कर्मियों के लिए उत्तरदायिनी थी। अपनी ही जाति की कन्या के विवाह सम्बन्ध द्वारा जो सत्तान उत्पन्न होता था उसका सामाजिक स्तर उन सत्तानों के सामाजिक स्तर की अपेक्षा कम अधिक ऊँचा था जिनका जन्म अन्य जातियों की कन्याओं के गम से होता है। उत्तरदायिनी इत्यादि के प्रश्न पर इस प्रकार की असमानताएँ काफी महत्वपूर्ण समझी जाती थी जिससे पति पत्नी के सम्बन्ध में कलह उत्पन्न हो जाता रहती होगी। वधुपत्नीत्व की प्रथा ने न केवल पारिवारिक जीवन का रूप विकृत कर दिया अपितु इसमें परिवार के जीवन में पत्नी का स्थान काफी निम्न हो गया।

पारिवारिक जीवन में पत्नी का स्थान अपेक्षाकृत निम्नतर हो जाने पर भी मध्य काल में स्त्रियों की स्थिति कुछ विषयों में सत्तापजनक बढ़ा जा सकती है। इस ऊपर देख चुके हैं कि विच्छेद (तलाक) के सम्बन्ध में कौटुम्बिक न स्त्रियों का पुरुषों के वगाव अधिकार प्रदान किया है। विधवा विवाह की भाँति इस समय यवस्था थी। पति के दुःखद्वारा करने पर स्त्री यामानय से यथोचित व्यवहार का माँग कर सकती थी। उसे परिवार की सम्पत्ति में भाग का अधिकार प्राप्त था। उद्ये विवाह के अवसर पर स्त्री अथवा उपहार आदि के रूप में जो सम्पत्ति प्राप्त होती थी उस पर उसका पूर्ण अधिकार होता था और वह अपनी इच्छानुसार उनका प्रयोग कर सकती थी। स्त्रियों के प्रति विभिन्न प्रकार का अनौचित्य कठोर सख्ता दण्ड का विषय था। इस सम्बन्ध में वाग्दानी और वस्त्रियों के कर्मचारियों के कृत्या पर भी नियंत्रण था। स्त्री कन्या का अपराध उत्तम ही गुरुतर समझा जाता था जिसका दण्ड उत्तम का (अथशास्त्र पृ० १४६)। इस समय नियोग की भी प्रथा का प्रचलन था जिसका विस्तृत उल्लेख हम महाभारत में मिलता है।

स्त्रियों का काम-शौच पुरुषों के वायक्षेत्र में काफी भिन्न था। इस विषय में कौटुम्बिक का विधान अथ ग्राहण स्मृतिकारी के विधानों में काफी भिन्नता-अन्यता है। कौटुम्बिक ने स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा का निषिद्ध वतनामा है। कौटुम्बिक का यह मन उनका दृष्टिकोण से स्वाभाविक ही प्रतीत होता है क्योंकि वे स्त्रियों का सत्तान उत्पन्न करने का साधन मात्र समझते थे। स्त्रियाँ प्रायः घर में ही रक्ती थीं और बाहर जा के लिए सावधानीपूर्वक जाँचों से स्वतंत्रता में भाग लेने की कार्य व्यवस्था नहीं थी। शिक्षा से वचित होने पर साधारण रूप में स्त्रियों का मानसिक क्षितिज मरुचित होता था। वे नाना प्रकार के विधि विधानों में विश्वास करती थीं। अशाक के एक शिक्षात्मक से इस बात का प्रमाण मिलता है कि प्रायः स्त्रियाँ अपनी मंगल-उद्देशों की प्रतिपूर्ति के लिए विभिन्न प्रकार के अंधविश्वासों का अपनाना करती थीं।

संस्कृत उपपन्न चित्र सामाजिक जीवन का चित्रण एक ही पट्टी है। इसका दूसरा पहलू कुछ अधिक उच्च और गौरवपूर्ण है। समाज में कुछ ऐसी स्त्रियाँ भी थीं जो बौद्धिक जीवन व्यतीत करती थीं और उच्च दार्शनिक चिन्तन एवं मनन में अपना समय का समुपयोग करती थीं। ये प्रकार की शिक्षिता स्त्रियों का उत्पन्न प्राप्त होता है,

ब्रह्मवादिनी जो घामिक प्रथा का आज में अध्ययन करता थी और सद्योवाग जो अपना अध्ययन प्रथम बंधन विवाह पश्चात् ही जारा रगती थी। कात्यायन ने अपनी योग्यता में एसी स्त्रिया का उल्लेख किया है जो अध्ययन काय करता था। इन्हें उपाध्याया अथवा उपाध्याया कहते थे और अमापका का पत्निय उपाध्यायिनीय समित्त हाता था। कात्यायन की वातिक से एसा प्रतीत हाता है कि महिला शिक्षा की सख्या समाज में अधिक थी। बौद्ध और जन धर्मों ने नारिया का निमित्त उच्च बितन और अध्ययन की पर्याप्त सुविधायें प्रस्तुत का था। बौद्ध और जन धर्म-प्रथा में बार-बार एसा महिाशा का उल्लेख मिलता है जो अपना अध्ययन निरन्तर जारा रखने के लिए अविवाहित जावन बितानी था। बौद्ध परिव्राजिकाया के अनुक गाना का मन्वन धरोगाथा में किया गया है। ये परिव्राजिकायें कुतान एवं सुशिक्षिता हाता था और अपन जाध्यात्मिक बिकाम के लिए ससार का त्याग कर देता था।

नारिया का कलाशा की शिक्षा प्राप्त करने का मा सुविधायें उपलब्ध था। कुछ स्त्रिया सगात नृत्य तथा चित्ररत्नन जाति नलित कलाया में निपुणता प्राप्त करती था इतना ही नहान निव्य व्यवसाय अपनाका माग भी स्त्रिया के लिए सबथा जव रुद्ध नही था। मगास्थनाज ने चरमपुत का महिना अगर्गा काका का उल्लेख किया है। वह कहता है कि कुछ स्त्रिया रथा पर कुछ अथा पर एवं कुछ गायिया पर जातु हाता है जार के प्रथम प्रकार के शस्त्रास्त्र से सुसजित रहता है। एसा मानने पर ता है जस के विमा क्रमण के लिए जा रहा हा। परन्तु मय व्यवसाय प्रदण करने वाला स्त्रिया में जावकाशत विदशा जाणिया का हाता था। महिला अगर्ग शिक्षा का उल्लेख अध्यात्म में मा हुआ है।

समाज में व्यावृत्ति प्रचलित था। कार्त्तिक्य के अध्यात्म द्वारा इस व्यवस्थाप काफा प्रकाश पता है। समाज में वारागनाया का अपना एक पथक स्थान हाता थी और उच्च उपथा या घणा का दृष्टि से नहान देखा जाता था। ये समाज में नित्त कलाया का पठार किया करता था जार इस काय के लिए उहें समाज का पार में नग्गा प्राप्त हाता था। यह एक स्मरणाय तय है कि भारत में माय काल के पूर्व न गणकाया का नभाजक स्तर निम्न था अथवा ह्य नहा था। महात्मा बुद्ध के समय में वारागनाय सुविधाय नगरशाभिता जाध्यापाता तहा। तान समाज में काफा जाध्यापाता था। प्राचीन एवमध प्रजातन्त्रात्मक राज्य का छा कर समाज के लिए मा जाध्यापाता में व्याया का उला गम्मान तहा दिया। तान या जितना कि प्राचीन भारत में जाध्यापाता का पथक प्रथम प्रकाश प्रमिद्ध गणकाया नहान एसा ही तान प्रकाश पता है। तान जार कि एवम में वारागनाय के ऊपर एम पदिया मा गम्मान स्थापित करने का जारिप तयाया गया बशाया में जाध्यापाता का ज्ञान मानने के सबस प्रतिद्ध मतात्मा गतम बुद्ध का मानने के लिए आम तान के नहान सीभाय प्राप्त हाता था। बुद्ध जार तान निम्नण का स्वाकार का ज्ञान मानने वाला नहान उदारता एवं भारत का सुन्दर नतिक मान्यता का परिचय दिया। तानात्र के प्रणना व वेत्ति का राज्य के लिए प्रचर आय का साधन बतारा है और साथ ही साथ इस व्यवसाय के नियंत्रण का मा जाध्यापाता है। प्रत्येक वारागनाय का प्राथमिक अपनाया दिया का साथ साथ का देना पती था। जपन नायक योवन और गणा के कारण जा वारागनाय मवम अधिक विख्यात हाता था व एम मध्य पथा का मामिक आय पर साथ का और से समस्त वारागनाया की निराशिका नियंत्रण कर ता जाना था। राज मवन में सवाय भी उनकी निपुणित

करना जाती थी। कुछ बर्षों में हमर का विचार जानन की कला भा भीखती था  
 आर सुगन्धित द्रव तथा विभिन्न प्रकार क हार बनान म निपुणता प्राप्त करती था।  
 आमाद पमा

मौयकाल = रागा का जावन अत्यन्तमुता और आमा प्रमात्मय था। उनक  
 मनारञ्जन क साया का प्ररता एव वि विता म उनक लौकिक जीवन की समष्टि  
 का स्पष्टतया निदान होता था। म मय म राग रा और आमा प्रमा क विषय  
 म रिमा प्रकार क नैतिक प्रतिपन्न क। काई स्थान प्राप्त नया था। जीवन म इनके  
 मन्त्र और स्तरी आवाचकता का अनुभव पठा तरह म किया जा चुका था। समाज  
 म राग मनारञ्ज क साया का वि विता म उनक लौकिक जीवन का निदान  
 यकसाय ग्रन्थ किय थ जिनक द्वारा थ समाज क वि विता म उनक लौकिक जीवन का निदान  
 प्रस्तुत करत थ। आमा प्रमा द्वारा सत्का करना स्वय एक एग उद्यम बन गया था  
 जिनक द्वारा इन प्रकार क ननका जी ननकिया सायका आर सायिका तथा कुपा  
 नया (जिनता और अभिनयिया) का जावन यापन जाता था (गणित १० १०  
 आ० सी० पयादश पष्ठ मस्याय ७ ८० ८०-८२)। अथवा प्रकार न नः  
 मनारञ्जन का आवाचकता समथक मय वि वि विविध सायना का वि विता म उनक लौकिक जीवन का निदान  
 उन्म यह विधान बना दिया था कि जा यवि जतना थ जानतायन क मगठ म  
 सहायता न थ व अथदण क भागा बनये जाय। गारा म सायनिक सायायें म  
 करती थी जहा सामूहिक रूप म उलगवा त्यादि का आयाजन जाता था। आमा क  
 शिना नेय म उल्लेख तथा समाज का उल्लेख मिलता है। इन नाम एक  
 पर नाम मस्त होकर गात प्रजात थ। विभिन्न प्रकार क बाद्य-साय का प्रान्त  
 अथवा पर एक प्रमुख कृय समथा जाता था। समाज जा उल्लेख क मगठनरत। म  
 का इस नाम क लिए राज्य का आर न लौकिक सायना प्राप्त जाता था। समाज  
 और उलगवा का मगठन सरस्वती शिव ब्रह्मा आदि देवता का नाम म किया  
 था। एम सरसरा पर मत्तपद हुआ करत थे जिनमें माय नन क लिए दू मय  
 मत्तबानि आया करत थे। एतियन Jehan नामक यूनाना उलग न इन मत्तबानि  
 क विषय म लिखा है। उमन मनारञ्ज जा हरियें ता अय पया का दृढता का  
 उल्लेख किया ह। उमन गया का शैल क विषय म उ है कि पाणिनीय मय य-  
 दौ अविश्वता म दृष्टा करत थी जिनम जउ जष्ठ बल जात था जुने ग्ठन थ।  
 मनप्या और पया क मत्तबानि म प्राय सायन रत्नपन हा गया करता था। इ  
 लिए आवा न एम समाज पर प्रतिपन्न लया गया था। परन्तु अय प्रकार क जात  
 प्रमा का आवाचकता क, जान या समना था। उमन मनारञ्जन क सायना का  
 एक उल्लेख उद्यय मत्तबानि क नित उद्ययन का प्रतिपुति का सायन जाता।  
 अपन एक अभिनय म आवा कहता है कि उमन मत्तबानि जी पया का मुठन  
 दू मय शैल और उमन स्थान प मयन आवा म नानि नानि क साया क विविध  
 की मत्तबानि का जिनम रागा का मनारञ्जन ता का हा साय हा मत्त उहें मगठ  
 मतिक शिमा म मित। एम प्रजात हाता है कि मय म नारायण का सायना का  
 का मनारञ्जन हाता था।

माया पा-

मौय-जातीय भारत का आधिक समष्टि का परिचय हम मय समय क रागा क  
 भाजन पाव के द्वारा भा प्राप्त होता है। माया का भाजन मुश्चिपूण और पुष्टिक

होता था। सामान्य रूप से वे परिमित और स्वच्छ भोजन ही ग्रहण करते थे। भोजन में विविध प्रकार के अन्न दूध और मांस का समावेश होता था। यद्यपि जैन और बौद्ध धर्मों की अहिंसावादिता में मांस भक्षण को कोई स्थान नहीं प्राप्त था तथापि अग्नि काश लोग मांस खाते थे। नगरों में आजकल की भाँति अनेक दुकानें होती थी जहाँ पर भोज्य सामग्रियाँ हर समय तयार मिलती थीं। इन दुकानों पर पक्वान्न मांस रोटी चावल आदि वस्तुओं का विक्रय होता था। कौटिल्य के कथनानुसार राज्य की ओर से पशु पक्षियों की प्राप्ति के लिए घना की व्यवस्था होती थी और पशुओं के बचाव वनिदान गृह बनाए जाते थे। दूध भारतीयों का प्रमुख पेय पदार्थ था किन्तु अन्य पेय सामग्रियों का भी उत्तम मिलता है जिनमें अमूर का रस मय शरबत (य आम जम्ब तथा अन्य विविध प्रकार के फलों से तयार किया गया था) और फलों के रस सम्मिलित थे। फलों और वनियों से भी पेय पदार्थों का निर्माण किया जाता था। मुरा का प्रयोग प्रचलित था किन्तु इसके अत्यधिक प्रयोग पर राज्य का नियंत्रण होता था। कौटिल्य ने विविध प्रकार की मदिरा का उत्तम किया है और उनकी निर्माणविधि भी बतलाई है। उन्होंने इस बात का भी स्पष्ट निर्देश किया है कि मुरा ध्वन कुठ धो से नाचकुशीन व्यक्ति का ही दी जानी चाहिए और वह भी परिमित मात्रा में। मेगास्थनीज ने लिखा है कि विशय अवमरो को छोड़कर साधारणतया भारत में मद्य से दूर रहते हैं। परन्तु मेगास्थनीज का यह कथन ध्वन ब्राह्मणों के नियम ही मान्य नहीं सकता है अन्य जातियों में मुरा सेवन का प्रचलन था। अथशास्त्र का साध्य इस विषय में विलक्षण स्पष्ट है कि क्षत्रियों में मद्य पान की रीति काफी प्रचलित थी। बौद्ध और जैन धर्मों ने इसके प्रचार को कम करने का प्रयास अवश्य ही किया होगा किन्तु जन साधारण में इसका प्रयोग कभी भी पूरी तरह वज्रित नहीं समया जा सका। मेगास्थनीज ने भारतीयों के भोजन करने के ढंग पर लिखा है जब भारतीय भोजन करने बैठते हैं तो प्रत्येक व्यक्ति के सम्मुख तिपाई के आकार की मेज रख दी जाती है। इसका ऊपर एक सौंन का प्याना रखा जाता है जिसमें सबसे पहल चावल डाला जाता है। उसके ऊपर उबलता है जैसे उबने जो। इसके बाद दूसरे बर्तन में पक्वान्न रखा जाता है जो भारतीय विधि से तयार होते हैं। वह आगे यह भी लिखता है कि भारतीय जन अन्न ही भोजन करते हैं और सामूहिक भोजन के लिए उनका यहाँ कोई समय निश्चित नहीं होता। जब जिसकी इच्छा होती है भोजन करता है।

### दास प्रथा—

दास प्रथा अति प्राचीन काल से ही भारतीय सामाजिक जीवन का एक भाग व्यवस्था रहा है। मौर्य काल में भी यह प्रचलित थी यद्यपि यूनानी लेखकों के प्रमाण कम विरल है। एरियन लिखता है कि सभी भारतीय स्वतन्त्र हैं और उनमें से एक भी दास नहीं है। मेगास्थनीज ने भी इसी प्रकार की बात कही है और स्ट्रबो ने उसका मत को उद्धृत करते हुए लिखा है कि कोई भी भारतीय दास नहीं रहता। परन्तु अन्य साध्यों से दास प्रथा के अस्तित्व के प्रमाण इतनी प्रचुरता से प्राप्त होते हैं कि यूनानी लेखकों का कथन अत्यन्त प्रतीत होता है। अथशास्त्र तथा स्मृतियों में दास प्रथा का उत्तम किया गया है। अशाक ने अपने जमिनदारों में दासों तथा भू के मजदूरों में विभक्त किया है और सत्य के साथ दया का व्यवहार करने का आदेश दिया है। यह सम्भव है कि मेगास्थनीज का भारत के किसी विशय में भाग में दास प्रथा



विश्वक न दिखाई पटी है। जिससे उसने समझ लिया कि भारतवर्ष में दास प्रथा है ही नहीं। इसके अतिरिक्त मेगास्थनीज के यह लिखन का कि भारत में दास प्रथा है ही नहीं एक मन्त्रपूषण कारण यह भी हो सकता है कि यहाँ पर यमन के ठीक विपरीत कामों के साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था। प्रसिद्ध विद्वान रीज डविडसन ने लिखा है कि 'भारत में दास अधिकांश रूप में धरत नीकर ज्ञान से एक उनके साथ परा-व्यवहार नहीं किया जाता था और उनकी सभ्यता भी मन्त्रपूषण होती थी।'

### समाज का उच्च नैतिक स्तर

धीयकालीन भारतीयों के सामाजिक जीवन का सबसे महत्वपूर्ण और प्रशंसनीय पक्ष है उनका उच्च नैतिक स्तर। यदि हम वास्तविकता के कामचलाव को इसी युग की रचना मानें तो हमें इसके द्वारा सामाजिक जीवन पर जो प्रकाश पड़ता है उसमें यह प्रतीत होता है कि समाज के एक बड़े विप्लव का जीवन विनाशितापूर्ण था। लोग का अभिर्भाव केवल और सामाजिक कार्यों की ओर काफी अधिक था और उनके सामाजिक जीवन में गुरा मुन्नी का स्थान काफी महत्वपूर्ण था परन्तु हममें हम यह निष्कर्ष नहीं निकाल सकते कि समाज में चारा और रोमन गणतन्त्र के अंतिम दिना की भाँति कामचलाव और कामचलाव का साम्राज्य था। जसा कि हम आगे चलकर देखेंगे कि भारतवासियों ने निरवच्छिन्न रूप से काय की उपासना नहीं किया अपितु हम जानने का एक प्रावश्यक अंग मानकर समर्पित मात्रा में ही इसका भजन किया। हमें अतिरिक्त अन्य विषयों में जो साधारण के उच्च नैतिक स्तर का प्रशंसा मेगास्थनीज ने सुनने बख्त की है। उनके गणना का प्रशंसा करने हुए यह लिखता है 'अपने आचरण में सौदे और भित्तियही ज्ञान के कारण भारतीय काफी सुध में रहते हैं। यहाँ की छोटी-छोटी बस्ती मुरापात नहीं करती। चारों ही घन्टा बहुत ही कम पानी है। वे अपने घरों और अपनी सम्पत्तियों को गुरुघा घरेलित व्यवस्था में छाने जाते हैं। उनके बानना और ममझीया की सरचना इन बान में मिद्ध जाती है कि वे बहुत ही कम पाय की शरण लते हैं। आगे चलकर लिखता है 'सत्य और गम् का वे आचरण करते हैं। हमारे वे बड़े जना को कोई विशेष बहुमान नहीं प्रदान करते जब तक कि उनके आचरण उत्कृष्ट जान नही जाता।'

### सामाजिक जीवन की विवेचना

धीयकालीन युग के सामाजिक जीवन का विशेषताओं के सम्बन्ध में पाने ही कुछ कहा जा सकता है। हमें यह पहले देखना है कि लोग का अभिर्भाव उनके इन्तजानपरक जीवन के प्रति बढ़ता जा रही थी। उस समय के धर्मग्रन्थों में जीवन का निगूणा धारिता का ही प्रातपादन अधिकतर किया गया है परन्तु लोगों का जीवन के प्रति अल्पयोग विभी भी प्रकार उदात्तमक नहीं था। हमें यह के कुछ पहले महामा धृष्ट के समय में मायास प्रण की प्रवृत्ति रहे जारा पर था। मायास मायास का पढ़ने पर ही जीवन में मय मायास का संसार त्याग देना एक सामाजिक बाने हा गई थी। सांसारिक सुखों का उपनोग बाने हुए भी स्वास्थ्य-सम्पन्न नयययक परित्राजक का जीवन व्यतीत कराने गत थे। योद्ध प्रथा में हम प्रकार की अन्तर घटनाओं के

'मेगास्थनीज के इस बयन को पुष्टि मनुस्मृति के इस प्रसिद्ध श्लोक द्वारा हावी है— न मेन बद्धा भवति यनास्य परित्तिरि । युवाप्यो धीयानस्य देया स्वविरिधु ।'





(बगर जुती हुई भूमि) (३) स्थल (ऊर्ची और सूता जमान), (४) बदार—पसला से बांध हुए खेत, (५) आराम-कुञ्ज (६) ईण्ड—फल इत्यादि फल-वक्षा व आरापण, (७) मूल-नाप—व खेत जिनमें विभिन्न जड़ें या गाँठ जस उदरल हूँ सल-जम मूला इत्यादि उगाई जाती थी (८) वात—गन्ध व आरापण-स्थान, (९) वन जहाँ सड़-वन का सामग्री तथा आवश्यक वस्तुय प्राप्त होती थी (१०) विवाल—ग्राम पशुआ व लिए चरागाह और (११) पाव—राजमार्ग का भूमि।<sup>१</sup> उपर्युक्त भागा व अतिरिक्त उस समय व ग्रामा म निम्नलिखित वस्तुआ का हाना भा आव-यक था—(१) वास्तु—वह क्षेत्र जिसमें घर वन हात थ। यह वस्ता का भाग हाता था। (२) चत्प—पावत्र वक्ष (३) दवगूह—मादर (४) सतुव-व (वाय इत्यादि) (५) स्मशान (६) सत—दान-गह (७) प्रपा—पान योग्य जल व एकत्र करन का स्थान (८) पुष्यस्थान पावत्र जगह आर (९) प्रक्षागूह—जहाँ पर जनसाधारण व लिए सावधानक आमाद प्रेमाद का व्यवस्था हाना था।

कृषि की उत्पत्ति व लिए राज्य का भार स हिनकर कानूना का निमाण किया गया था। किसान का सुविधा का ध्यान रक्खा जाता था और उन पर किसा प्रकार का अत्याचार नहीं हान पाता था। सिचाई का उत्तम व्यवस्था था। मगास्थनाज सिचाई व्यवस्था का वर्णन करत हुए एस अधिकारिया का उल्लेख करता है जिनका कर्तव्य भूमि का नापना और उन छाया नालिया का निराक्षण करना था जिनमें हाकर दाना सिचाई की नहरा म जाता था जिसस प्रत्यक व्यक्ति का अपना सहा भाग मिल सक। एक स्थान पर यूनाना राजदूत न लिखा ह कि भूमि का अधिकांश भाग सिचाई के अंतगत ह जिसस वर्ष म दाना फसल तमार हा जाता है। अयशास्त्र म मा जल सिंचन व्यवस्था का उल्लेख प्राप्त हाता ह। एक स्थान पर सिचाई का चार प्रणालिया का निरक्षण पाया जाता ह—

- (१) हाव के द्वारा सिचाई
- (२) माटा व द्वारा सिचाई
- (३) कतिपय जलधना व द्वारा सिचाई

सिचाई का व्यवस्था का उल्लेख हदरदामन व जूनगद्वान अभिनस म भा किया ह जिसमें यह वर्णन आता ह कि पुष्यगुप्त न एक दुग और एक चट्टान व बीच बहनवान एक जलसात का बांधकर सुशान नामक धान बना लिया। परन्तु उस पूरा तुपास्य न किया। जूनगद्वान सीराष्ट्र प्राप्त व अंतगत था और पुष्यगुप्त व द्रगुप्त व समय म वहाँ का शासक तथा तुपास्य अराक व समय म शासक रहे चुका था।

जन सिंचन का वनानिक प्रणालिया व द्वारा जिनका प्रमाण हम मयाभ्यनीज कौटिल्य आर हदरदामन व जूनगद्वान अभिलेख स मिलता है भूमि का उत्तरा शक्ति वृद्ध व ग् हागा। अयशास्त्र म उन तमाम पसना का उल्लेख किया गया है जा इस समय उत्पन्न व जाता था। य फसलें इस प्रकार था—विभिन्न प्रकार व चाबन काव—माटा अनाज तिन प्रियग वइ तरह का दालें जस मुदग भास आर मसूर

कुलुष्य मव गावूम (गहू) कलाय अरसा, सपय शाक आर मूल (तरावरिया) तथा विभिन्न प्रकार के फल (जनम कल जगूर तथा गन्ना इत्यादि) मूल्य ५। कौटिल्य ने कृषि पर लगाय जानवाल विभिन्न करा का मा उल्लेख किया है—(१) भाग—कृषि सहानवाता आमदना पर राज्य का भाग (२) बनि—यह एना कर था जो भाग के अतिरिक्त मा कृषका पर लगाया जा सकता था (३) कर—यह ममय-ममय पर सम्पत्ति के आधार पर लगाया जाना था (४) विवात—चरागाहा पर लगाया जान वाला कर (५) रज्जु फसल का उपज के नाप-जात के लिए लगनवाना कर जोर (६) चारा-जु—चोरा-पारा का कर। युद्ध और दुर्भिक्ष के समय कृषि का फसला पर अतिरिक्त कर मा लगाया जा सकता था। इसके अलावा कमा कमा किसानों से व गार मा कराई जाती थी।

**उद्योग धंधा—**मौर्य-युग में उद्योग तथा का मा बहुत अधिक उत्पन्न हुई। इस युग का सत्रम महत्त्वपूर्ण उद्योग धंधा वस्त्र तथा करना था। यह उद्योग भारत के प्राचीनतम व्यवसायों में से है। बर्तिका माहित्य में तन्तु शानु तमर बमन आदि जो शान्त मिलते हैं उनसे सिद्ध होता है कि बर्तिका काल में मा यह एक लाक्षणिक धंधा था। वस्त्र तयार करन के धंधे में समस्त पहला स्थान सूता वस्त्र का था। इस देश का उष्ण जलवायु के कारण यहाँ पर सूता वस्त्र का जावश्यकता सबन आवश्यक पता था। सूता वस्त्र का बना हुआ वेशमूपा का उल्लेख वाङ्मय तथा जार मूनानिना के लेखों में प्रचुरता सहित है। भारतवर्ष गणतंत्र के द्वारा सिक्कर का जो बस्तुयों उपहार रूप का गद्दे का जन्म सूता वस्त्र का मा बड़ परमाणु में सम्मिलित था। यहाँ पर सूता वस्त्र का उद्योग धंधा सम्पूर्ण देश में प्रचलित था तथापि कुछ स्थानों में इस उद्योग के केंद्र बन गये थे। प्राचीन वाङ्मय तथा में बनारस के वडिया वस्त्र (कासाकुत्तम् या कामिकावत्य) का उल्लेख किया गया है। इसके अलावा सिन्धु देश के वस्त्र (मिम्ब्यर) का भी जिक्र जाता है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में सूतावस्त्र-उद्योग के केंद्रों का कुछ अधिक विस्तृत सूची मिलती है। ये केंद्र थे—(१) मदुरा—पाटल्य देश की राजधानी (२) अपरान्त—काकिन या पश्चिमोत्तर (३) काता (४) बग (५) कत्म-काश्या का निकट वर्तमान प्रदेश और (६) महिषा। इनमें प्रसंग में अर्थशास्त्र में विशेषरूप से उन तान प्रकार के वस्त्रों (कुवूल) का उल्लेख हुआ है जो अपने रंग आर स्थान के कारण एक दूसरे से भिन्न थे। ये वस्त्र इन स्थानों के थे—(१) बग—पूर्वी बगाल (२) पुत्र उत्तरा बगाल और (३) मुवणकुट्टप्रकामरूप में एक स्थान था। वे क्रमशः इन कालों में उदयहात हुए मूल्य के रंग के थे। इसी सम्बन्ध में कौटिल्य ने सन के वन वस्त्रा (वाम) जो काशा तथा पुत्र में तयार किए जाते थे का मा उल्लेख किया है। मगध तथा मुवणकुट्ट के सन के वस्त्रों का मा जिक्र अर्थशास्त्र में किया गया है। प्राचीन बौद्ध ग्रन्थों में मा इनका (वाम) का वर्णन प्राप्त होता है।<sup>१</sup> अधिक बहुमूल्य वस्त्रों में

<sup>१</sup> प्राचीन स्मृति-ग्रन्थों में कृषक का आय पर राज्य कर का दर  $\frac{1}{6}$  से लेकर  $\frac{1}{4}$  तक रखता गया। कौटिल्य ने सामान्य रूप से  $\frac{1}{6}$  भाग ही राज्य का वसूलाया है। अर्थात् न सिम्बनीग्राम जो कि बृद्ध जी का जन्म स्थान था का कर घटा दिया था। यह कर  $\frac{1}{6}$  भाग ही गया था।

रूप में सबल था। कौटिल्य ने उन स्थानों का उत्पन्न किया है जहाँ से विभिन्न वस्तुएँ प्राप्त की जा सकती थीं। एक अनम उपाध्याय के अनुसार जैसे कौटिल्य ने उद्योग किया है वह मूल्य वस्तुओं में हाथी घाड़े, मुर्गाघृत पशु हाथी दाँत, पशु चम साना तथा चीनी आदि हिमालय में बहुलता से मुलम था। कौटिल्य का सम्मति में कम्बल पशु चम और घाँस की छाँटकर अन्य वस्तुओं विशेषतया शल हीर रत्न मानिया तथा साना इत्यादि मूल्यवान वस्तुओं का आवश्यकता दोनों में था। इसके अतिरिक्त कौटिल्य ने अन्य वस्तुओं और उनके उत्पत्ति-स्थान का जो सूचा दा है उससे भारत के आन्तरिक और विदेश व्यापार पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इन वस्तुओं और इनके उत्पात्त स्थानों में से ये प्रमुख थे—बंगाल आसाम बंगाल काकण और पाण्ड्य के वस्त्र चीन के सिल्क नेपाल के ऊना वस्त्र हिमालय प्रदेश के पशु चम जामाँस लकड़ा तथा हिमालय के मुर्गाघृत पदार्थ लकड़ा अलकनन्दा और विष्णु के रत्न तथा अन्य इसी प्रकार के वस्तुएँ।

इस बात के अनेक प्रमाण हैं कि भारत के प्राचीन विदेशी व्यापार का भोयों का सुभवास्यत राज्य तस्या द्वारा काफी प्राप्ति प्राप्त हुआ। सल्मूकस का पराजय के उपरांत चंद्रगुप्त मौर्य ने पडास के यूनानी राज्य के साथ मित्रता का जो बुद्धिमत्तापूर्ण तालाक अपनाई उससे उसका उत्तराधिकारियों ने जारी रखा। इस नीति ने भारत के विदेशी व्यापार का पाँचमाँ एशिया तथा मित्र में फला दिया। यूनानी लखका के अनुसार भारत और यूनानी राज्यों का व्यापार जल और स्थल दोनों मार्गों से होता था। भारत के लिए पाँचम जगत के साथ यह व्यापारिक सम्बन्ध काफी महत्वपूर्ण और महत्कर था। यहाँ से हाथी दाँत कछुएँ का पाठ मातियाँ नाल आदि रत्न और बहुमूल्य वस्तुओं का निर्यात मित्र देशों का होता था। व्यापारियों के सघों जिनका निर्माण काफी पहले ही हुआ था का संगठन इस युग में काफी सुगुँ ही गया।

व्यापार और उद्योग के प्रति राज्य की नीति के सम्बन्ध में कुछ कहना अनुचित नहीं प्रतीत होता। इस सम्बन्ध में राज्य की नीति नियंत्रण का नीति कही जा सकती है। राज्य तस्याने राजस्व इत्यादि के निर्माण में जो कार्यशीलता दिखलाई उससे व्यापार का स्वाभाविक रूप से प्राप्ति प्राप्त हुआ गया परन्तु कौटिल्य ने व्यापारियों और कारागारों के प्रति आवश्यकता से अधिक उदारता नहीं दिखलाई। कौटिल्य ने उनका नाम से तो नहीं कि तु वास्तव में चार कहे हैं। इसलिए उनसे जनता की रक्षा करने के लिए उसने अनेक विधान बनाये और बड़मानी रोकने के लिए कठोर दण्ड का व्यवस्था का। परन्तु ये विधान जनहित के दृष्टि से कठोर नहीं कहे जा सकते। इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि भाषा के उदय ने भारत के देशी और विदेशी दोनों व्यापारों का काफी प्रतिपदुचाया। हम यह ध्यान में रखना चाहिए कि कारागारों को हानि पहुँचाने वाला कठोर दण्ड का भागी होता था। स्ट्रुबा के कथनानुसार बाद के दशक में कि सा शिल्पी के हाथों काट डालता या आँखें फाड़ देता था तो उसका पासा दा जाता था। चन्द्रगुप्त मौर्य की सरकार मुद्रा नियंत्रण पर बहुत ध्यान देता था। अथशास्त्र में सान चीनी और ताँबे के सिक्कों का बिल्कुल स्पष्ट उल्लेख मिलता है। सान के सिक्के का मुवण या निष्का कीर्ति के सिक्के का कार्यापण या धरण और ताँबे के सिक्के का भणक तथा कार्यापण कहते थे। अधिकतर चीनी के सिक्कों का ही प्रयोग प्रचलित था। ताँबे के कार्यापण सिक्के का वजन १४९ ग्राम

स कुछ अधिक था। चादा व कापापण मिकक का तील, जिस पुराण या धरण कहा जाता था ५८ घन स कुछ अधिक हाता था।

### धार्मिक अवस्था

मौर्य काल व मोतिक ब्रमव और राजनातिक एवम का दलकर उनका प्राग्बताता स हमार नव सहमा चकाचाव हा जान है किन्तु हम इस युग व धार्मिक जीवन व महत्व का मुला न्ना सकत। जिस समय भारत व राजनातिक नभामणल म भगव राय एक विशाल साम्राज्य रूपा सूर्य व रूप म उदित हा रहा था उना समय भारत व धार्मिक विचारा म महत्वपूर्ण पारवतन हा रह थ। यन्ि हम न्ना व उचान का भा अपन युग व अतगत मान लें ता १ मौर्य युग व धार्मिक जीवन का महत्व वहुन अधिक ब् जाता हा। धम व दष्टिकाण म भगवक उत्पान व प्रारम्भिक दिन भार ताय इतिहास म सबसे अधिक घटनापूण िता म थ। ब्राह्मण धम व भातर महान पारवतन घाटत हुय। प्राचीन विचार पारवतित हा गय। नव विचारा का एक मशकत रूप म उण्य हुआ। लार्प्रिय धम-मप्रदाया और विद्वामा का उच्च वग व लागान स्वाकार।कथा और जस-जस उपनिपण म मवप्रधम आभामिन स्वतन्त्र विचार शक्ति व उदय व साथ लागे का पशु-यज्ञा और वध्या रीनिवा के प्रति विवास कम हाता गया मानववाण और आस्तिक आणालन न शक्ति तथा वग प्राप्त किया। ब्राह्मणा का पावत्र भूमि व बाहर आध्यात्मिक नरत्व पुराहिती ब्रह्मणानिया धार मानिका व हाय म निकल कर सयासिपा और परिभाजका व हाथा म चना गया जा ममस्त जावा व प्रात अहिंसा और मसार की वस्तुजा व प्रति लमितापा त्याग दन पर सबसे अधिक जार दत थ।

इस युग का धार्मिक अवस्था का ज्ञान प्राप्त करने व निए हम बौद्ध धम ग्रन्था अशाक व अमिनला आर यूनानी लेखका व विवरणा पर अवलम्बित हाता पन्ता है। समा मादया का अवलम्बन करन पर यह निष्कष निकलता है कि इस समय मुख्यत य धम-मप्रदाय प्रचलित थ—ब्राह्मण सामान-आणालन बूद्ध धम जन धम आजा

१ न द-युग को धार्मिक विचारधारा को मौर्य-युग क धार्मिक जीवन क साथ सम्बद्ध करन का हमारा यह प्रयास निराधार नहीं है क्योंकि जिस स्तूल रूप में हम राजनातिक घटनाओं का विभाजन कर सकते ह उसी रूप में हम सांस्कृतिक प्रवृत्तियों को विभाजित नहीं कर सकते। कारण यह है कि राजनीतिक घटनाओं जब कि सीमित रहती ह सांस्कृतिक प्रवृत्तियाँ और मायतायें युग-युगीं तक जारी रहती ह। साम्राज्य का उदय हाता है व विकास को प्राप्त होते हैं और काल के विनाशकारी प्रभाव में पड़ कर भूगम म समा जाते ह किन्तु सस्कृति की धारा किसी न किसी रूप में बहना हा रहती ह। नर्दाक साम्राज्य क पतनोपरान्त उस क ध्वसावगव पर मौर्यों क विनाश साम्राज्य की भित्ति लड़ी होनी है और मौर्यों के उग्वलतर प्रकाश में नर्दा की आभा धूमिल हो जाता है (So doth the greater glory bloomd) परन्तु नर्दा क समय म जो धार्मिक हलचल होती है उसका असय प्रभाव मौर्य युग का धार्मिक विचारधारा पर पडता है और इसदृष्टि से दोनों युग परस्पर एक दूसरे से बड़ भूत्वमा में आबद्ध हा जाते ह।

१ An Advanced History of India Part I pp 81 82

विक और आस्तिक आगमन। हम इन सब की जगजग सद्भिन्नविवेचना करेंगे।

ब्राह्मण धर्म—इस युग के ब्राह्मण धर्म में अथ यगा की भांति बल्कि तथा गृह्य रीतियों का प्राधान्य था। मगास्थनाज के मत से जिसे हम गामाजिक जीवन के जगजग उद्घाटन कर चके हैं उस कथन की पुष्टि होती है। ब्राह्मण योग यज्ञों में उग रहते थे। जशाव ने अपन अमित्रों के म जिन देव पूजना का उत्तल किया है उनमें अमित्राय उहो ब्राह्मण पुराणिं स हे जा यत किया करते थे और ताके उन के आत्मा लून से पथक रहा करते थे। बौद्ध ग्रंथों में वैदिक ज्ञान और रीतियों का जो उत्तल किया गया है उसके द्वारा भा इस युग में उनका महत्व सिद्ध होता है। बौद्ध-ग्रंथ ब्राह्मणों के एक ऐसे वग का उतग करते हैं जिन्हें ब्रह्मण मन्मन्ना कहा जाता था। इन तागा का राजा द्वारा दान में ही हई भूमि का कर प्राप्त होता था। ये ब्राह्मण बने पनाठघ होते थे और ययमाध्य यज्ञों की अनपठान करने की क्षमता रखते थे। वे अपने धरा में बन्त में गि ताविया को रखते थे जो देश के विभिन्न भागों से आते थे और उनके चरणा के निकट बैठकर धार्मिक शिक्षा ग्रहण करते थे। कमी कमी उन शिक्षाधिया की सरया तान से स लकर पाच सौ के बीच में होती था। ये ब्राह्मण बने सम्मानित होते थे और न केवल जन्म द्वारा नितान्त विशद्ध होते थे बल्कि उन्हें देवा रग (ब्रह्मवर्णि) और त्वा चमक (ब्रह्मवचस) प्राप्त हानी थी। वे मघरवाणा सम्पन्न हाते थे। लकिन बल्कि अनुपठाना का पालन करनेवाल ममी ब्राह्मण ऐसे निकट तक और विशद्ध चरित्र के नहा हाते थे। कुछ ब्राह्मणों में नाम का दुगण अवय आ गया हागा। यज्ञों में निरीह पना का वध से हिंसा को प्रोत्साहन मिता था। सुत्त निपात में ब्राह्मणों के ऊपर जा दोष लगाये गये हैं वे पूरी तरह निराधार नयी प्रतीत हात।

केवल वैदिक यज्ञ का अनुपठान ही ब्राह्मण धर्म का सबस्व नही था। इसमें कुछ सूक्ष्म तत्व भी थे जो मनष्य का आत्मा का परिष्कार करके उसे ऊपर उठाने की क्षमता रखते थे। यदि वैदिक त्रियावाद ब्राह्मण धर्म का स्थूल रूप था तो उपनिषदों का ज्ञानवादी स्वरूप सूक्ष्म रूप। यह सम्भव है कि इस युग के ब्राह्मण धर्म में अभी भी वैदिक कर्मों और अनुपठाना का प्राधान्य था किंतु ब्राह्मण धर्म के बौद्धिक और गार्ध्यात्मिक पक्ष में भी अनेक ताग प्रभावित थे। हमने पीछे जिन अरण्यवामी ब्राह्मणों के जीवन का वर्णन किया है उनमें जीवन में कमकाण्ड प्रधान धर्म का कोई मन्त्र नपा था। तप और मनन द्वारा अपन जावन को शद्ध बनाना एक मन वचन तथा कम का विशद्धता द्वारा ब्रह्म का साक्षात्कार करना ये ही उनके लिए कर्तव्य कम थे। न तो उन्हें मत्स्य की शका हानी थी जार न सामारिक वस्तुओं के प्रति कोई अनुराग। ज्ञान का प्राप्ति और दूसरों का ज्ञान का ज्ञान दन में ही वे अपना सम्पूर्ण समय यतान करते थे। मगास्थनाज ने मन्त्रिम नामक एक ऐसे ही ब्राह्मण का उत्तल किया है। उमने जितना ह कि एक वाग सिक्त्तर ने मेडनिस के यज्ञ से प्रभावित होकर उसे अपना राज समा में वतान के लिए अपना एक दत्त मजा। दत्त ने जाकर उस तपस्वी ब्राह्मण को सिक्त्तर का सन्तुष कह सुनाया और विपुल धन का प्रतीजन दिया। किन्तु ब्राह्मण ने सिक्त्तर के निकट ज्ञान में स्कार किया और मत्स्य की धमकी का भी उसका चित्त पर काट प्रभाव नपा प। उसने सिक्त्तर को यज्ञ उत्तर भित्वाया सम्राट का सम्राट इन्वर दुप्यता का कता नहा है अपितु प्रकाश शांति जीवन जल मानव शरीर और आत्मा का सजनहार है और जब उनको मत्स्य (आत्माजा) मुक्त कर



दती है, क्योंकि व किसान प्रकार भा दूषित कामनाओं के अधीन नहीं रहता, तब वह उनका स्वागत करता है। वहाँ मर सम्मान का दवता है जो नर-महार स धूणा करता है और युद्ध का कामा प्रारम्भ नहीं देता । इस मली भाँति जान ला कि सिक्-  
 'दर मुझ जा कुछ दे रहा है जयवा जा कुछ मँट करन का वचन दे रहा है व मर  
 लिए नतात नरयक वस्तुय ह किन्तु जिन वस्तुओं का मैं मूल्य समझता हूँ और  
 जा मर लिए यथाय गुण और प्रयोग का वस्तुय हे व हैं— य पत्तियाँ जिनस मैं अपना  
 पर प्रनाता हूँ य लहनहात हुए पादप जा मुझ कोमन भाजन प्रदान करत है और  
 जल जिस मैं पीता हूँ। जब मैं व सग्री वस्तुय जिनका सग्रह लाग बड़ी हा आतुरता  
 और सावधानी स करत है सचयकर्ता का लिए बिनाशकारा प्रमाणित हाता ह और  
 कबल ल तयाचिताहाउत्पन्नकरता है जिनस प्रत्येक दान मरणशाल प्राणा (मनुष्य)  
 पूरा तरह स आजात है। जहा तक मरा प्र न ह म वन का पत्तिया पर लदता हूँ  
 और अपन निकट कुछ मा रक्षणाय पदाय न रखन व कारण मैं अपन नत्र एक प्रशान्त  
 निरा म बंद कर लता हूँ लकिन यदि मुय अपन धन का रखा करना हाता ता मरा  
 निरा नष्ट हा गइ होता । सिक्-दर मरा शाश कटवा सकता ह किन्तु बट मरी  
 आत्मा का नाश नहा कर सकता। कबल मरा शाश जा इस समय चप है रण जायगा  
 परन्तु मरा आत्मा शरार का एक जाण वस्त्र का भाँति पथवा पर छाँकर जहाँ स  
 मह (शरार) लिया गया था वहा अपन स्वामा व पास घना जायगी। उस समय  
 म एक आत्मा व रूप म हाकर ईश्वर व पास पहुँच जाऊँगा। मगाम्यनाज का यह  
 विवरण बिल्कुल यथाय प्रतीत हाता है क्योंकि बौद्ध-ग्रन्था म भा इस प्रकार क जनक  
 ब्राह्मण का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण धम का हमन जा अध्ययन किया है उत्तस  
 यह स्पष्ट सिद्ध हाता है कि नन्द मौय युग म बहिक अनुष्ठान एव आपनिपत्तिक विचार  
 शारा ला हा धार्मिक जावा का सत्रिय शक्तियो था। राजाओ सामन्ता आर सम्पन्न  
 ब्राह्मण का विवास वना क कमवाण्ट म हा अधिक धा परन्तु दूसरा आर समाज  
 म एम भा विचारमान जन थ जा ब्राह्म जाटगुरा म न प कर सत्य क यथाय रूप  
 का जानना चाहत थ। य राग जनता। नगरा स दूर जिनकनवामा हाकर कठार तप  
 और सधम का जावन बितात हुए ब्रह्म का साक्षात्कार करन का चप्टा किया करत थ।

सयाम आन्दोलन—हमन ऊपर जिन तपोन्वया का उल्लेख किया है व ब्राह्मण  
 हात थ परन्तु समाज म श्रमण कह जान वाल अय मयामा भा हात थ। हमन मामा  
 जिक अवस्था क सम्बन्ध म इनका जिक किया है। बौद्ध ग्रन्था म चार प्रकार क  
 श्रमण वनदाय गय है—(१) मग जिता जा माग क अ त तक पहुँच चुक थ और  
 जिदान निर्वाण प्राप्त कर लया था ( ) मगसक—व राग जा उन्वन्तम लक्ष्य  
 का माग दिपलात थ (२) मग जीवात—जा माग क अनुसार रहत थ और (४)  
 मगमा—जा ध्यानमाता वाचाल और सधमदान हात थ और जा धार्मिक पुणा का  
 वप नूदा धारण करक अपन सम्प्रदाय अ गुरु का वन्दाम करत थ।

अजाविक—अजीविक सम्प्रदाय का उत्पत्ति ता महात्मा बुद्ध क समय म या  
 उसम भा पूव हा चुका था किन्तु इसका उन्नति क विषय म मौय वाद क पूव का  
 विवरण नहा प्राप्त हाता। भक्वात माशाल इस सम्प्रदाय क सम्भाषक थ। आज्ञा  
 विना क विवासा का उल्लेख पतञ्जलि न अपन महामाष्य म किया है। य लाग  
 भाष्यवाता हात थ और किमा प्रकार क कारण-परिणाम म विवास नहा रखत थ।  
 अजाविका क विषय म हम जा कुछ भा गान प्राप्त हाता है वह मव बौद्ध-ग्रन्था स।  
 आग चतुस्वर इस युग म अशाक क अभितला द्वारा भा अजीविक-सम्प्रदाय क ऊपर

प्रकाश पता है। अशोक अपने सम्मन तब मात्र म आजीविता का बौद्ध और निगया के साथ उत्तरग करता है और कर्ता है कि मैंने उनके कर्ण और उन्नति की तब रण करन क त्रिण मन्मामत्र नियकन कर त्रिये हैं। ततना भी नगी अपने रायकाव के वारहवें वष म अशोक न वारवरा पन्नाय्या की त्ने गफायें आजीविता का तान में द डानी। इम सम्प्रदाय का पूरे मीय-यग तर वाफी मान त्ना पन्तु तान म त्रिये धीर त्सका प्रभाव घटता ही गया और आग चतवर यत् त्रिन्त त्तत नी त्ना गया। अशाक के पौत्र दशरथ न भी नागाजनी पन्नाय्या की वृत् गफायें आजीविता त्ना ती थी। आजाविक तान श्रमण वग क थ। य मा प्राय वना म त्तत थ। आजाविक सम्प्रदाय म ब्राह्मण और जगद्गण त्नेना मयामी थ किन्तु उनसे भिन्न भिन्न ममत्ता म विभक्त तान का कर्त्त प्रमाण नगी मितता।

**जन धर्म**—चण्डगुप्त क शासन काल म जन धर्म क अतगत एक मन्त्वपण घटना घटित हुई और त्सक स्वरूप म एक मन्तन परिवर्तन उपस्थित त्ना गया। मन्वात् चण्डगुप्त मीय का समकालीन और जन धर्म का छठवा वर (स्यविर) था। जन जन श्रुति क जनसार उसी न मीय मन्वात् का जन धर्म म श्चित कर त्रिया था। जब कि मन्वात् जन धर्म क वर थ मगध म एक मीयण दक्षिण पण और ग्यामियो को शिक्षा प्राप्त करना जयन्त त्त्कर प्रतात होने त्गा। अनित्त की आगका म मन् वात् न मगध ठा कर कर्णा देश की रात् पक्की। वहुन से जन स्थलमत् क नतत्व म मगध म हा त्त गय। त्मिक्ष ममान त्ना जान के वात् मन्वात् के वन्त म त्रिये मगध नी जाय परन्तु मन्वात् स्वय नपान चल गय। जनिया का कर्त्ता है कि चण्डगुप्त मीय मी आचाय मन्वात् क साथ दक्षिण गया था और मन्वर के श्रवण वन मान नामक स्थान म उसन जन्तार वन द्वारा अपन प्राण याने थे। नपाल म मन् वात् न मा तपन्तार अपना शरीर त्याग किया। मगध म जा जन माध वचे थ उन्नि पात्रनिपुत्र म एक बहून विज्ञान ममा का आयाजत किया। उनका विन्वाम था कि जन धर्मशास्त्रा का शद्ध रूप काफी त्रिन्त त्ने चका है इमत्रिय इनका परिष्कार करना चाहिए और प्रामाणिक धर्मशास्त्रा का मन्त कर्त्ता चाहिए। इस सन्ना का आयाजत इसा उद्देश स किया गया था। इसा तान जो जन मान मन्त चने गय व उनम और जो यत् त्त गय थ त्क मन्मत् उन् त्तत्ता हुआ। मगध के जनियो ने स्वत वस्त्र धारण करना आरम्भ कर दिया परन्तु मन्वात् के शिष्या ने मन्वीर की शिक्षात्रा का पानन करत हुण नगा त्तना ती पमत् किया। इम प्रकार प्रथम मध मद की नीव पनी जिमस जन मध त्रिगम्बरा और त्वताम्बरो म विभक्त हो गया। कर्त्ता जाता है कि अशोक का नीन और उत्तराधिकारी जिसका नाम सम्प्रति था जन धर्म का अतयायी था और इमन अपन पितामह की भाति अपने धार्मिक विश्वासो को फलाने का प्रयास किया। परन्तु मीय काल म जन धर्म का वन्त अधिक प्रचार न त्ने सका। वात् म अवश्य यह धर्म पश्चिमा और दक्षिणा भारत म फन गया।

**बौद्ध धर्म**—यद्यपि अशाक के पूव नी बौद्ध धर्म का काफी उन्नति होचका थी तथापि इसक दशयायी प्रचार और विदशा म इसक प्रसार का त्त इमी मीय मन्वात् को दिया जा सकता है। उसने न क्वन बौद्ध धर्म को राजाश्रय प्रदान किया वकि त्मकी उन्नति क लिए अनक प्रयत्न मी किय। त्नक विषय म आप अशोक बाल अध्याय म पढ़ चक हैं। यहाँ पर हम उस बौद्ध-मन्वात् के विषय म जान तेना चाहिय जो अशोक क शासन काल म हुई थी। इस सगीति म अध्याय पन् को आचाय मोगनिपुत्र तिसम



ह कि गृहस्थ लोग भी बौद्ध धर्म ग्रहण कर रहे थे। परन्तु बौद्ध धर्म का निरीस्वर वादिता और एक कृष्णाशाल देव के पुण्यप्रसाद के एकान्त अभाव ने जनसाधारण की आध्यात्मिक और धार्मिक पिपासा को तृप्त करने में असफलता हाँ पाई होगी।<sup>१</sup> भागवत धर्म की सरलता और भक्तिवादता ही ऐसे तत्व थे जिनके साथ जनसाधारण का धार्मिक मनावृत्ति मेल खा सकती थी परन्तु इस धर्म का अन्तर्पर्याप्त प्रचार नहीं होने पाया था जिससे यह धर्म भी लोकधर्म न हो सका।

नाक धर्म में मूनि-पूजा का प्रधानता था। दश में बहुत से मंदिर होते थे जहाँ पर लोग मूर्तियों का पूजा करते थे। कार्तिल्य ने उन जनक देवा-देवताओं का नाम गिनाया है जिनकी जनसाधारण द्वारा पूजा का जाता था। मंदिर (काष्ठ) नगर के उत्तरा पश्चिमी भाग में बनाये जाते थे। जिन देवा-देवताओं के सम्मान में मंदिरों का निर्माण कराया जाता था उनके नाम इस प्रकार थे—अपराजित अप्रतिहत जयन्त वज्रयन्त शिव वधवण (कुंवर) आश्विन और धा (लक्ष्मी)। वास्तु और दिक् का पूजा भी प्रचलित था। प्राकृतिक विपत्तियों के निवारण और प्रकृति के वरदानों का आमप्राप्त के लिए लोग जगन् की पूजा करते हुए देवा देवताओं के सन्तुष्ट करने के लिए उनकी सेवा में विविध प्रकार के उपहार समर्पित करते थे। नादिया पवती बना, राक्षसा के चर्मों तथा समुद्र-तेटा का भी लोग पूजा करते थे। नाग यज्ञवा साथ यात्राय किया करते थे। नाग प्रातमाया या ध्वज प्रातमाया का भी, जो कि हाँ देवताओं की प्रतीक स्वरूप होना था लोग पूजा किया करते थे। जो लोग जादू का क्रियाओं में विश्वास किया करते थे वे इन लोगों का जावाहन करते थे—बलि सम्बर वराचन अनेक नरका के अधिपति देव नारद देवल सार्वणि गानव और मन जाति साधु, देवा तथा देवताओं के विद्वे पाण्डिता इन्द्रा तापसा ब्रह्मा ब्रह्मणा पालादि तन्तु कच्छा—एक असुर और उसी के वग के अय नाग। लोक धर्म में अध्यात्मिकता का पर्याप्त मात्रा में समावेश था। स्वर्ग और नरक में लोगों का बहुत अधिक विश्वास था। अशाक ने लोकधर्म के इस हाँगत स्वरूप का ज्ञान करके एक सरल एवं उन्नत धर्म का लागा के सामने रखने का चपटा का था परन्तु इसमें उस कहीं तक सफलता प्राप्त हुई इसका विवरण हमें प्राप्त नहीं। यह एक स्मरण रखने योग्य तथ्य है कि बौद्ध ग्रन्थों में महात्मा बुद्ध स्थान-स्थान पर लोकधर्म का निर्दा करते हुए दिक् नाय गय हैं क्योंकि उसमें अन्तर्ध कुरातया और अभाव-वासा का प्राचाय था। बौद्ध ग्रन्थों में उस समय के लोक धर्म के प्रत्येक पक्ष का विस्तृत उल्लेख मिलता है और उसका तीव्र शक्ति में निर्दा का गन्तु है जिससे लोग उससे प्रयत्न रहे। परन्तु इन प्रयत्नों के उपरान्त भी लोकधर्म जारी रहा।

## शापा और साहित्य

जिम युग का सांस्कृतिक और सामाजिक अवस्था का अवतल हमने अध्ययन किया है उनका मूल्य इस बात में भी है कि इस युग में न केवल प्राकृत जसा लोक भाषाओं की ये न आवक उन्नत हुई वरन् इनमें साहित्य मूल्य का भी काय हुआ। लिख का

<sup>१</sup> हमें यह न भूलना चाहिए कि अभी तक बौद्ध धर्म में महायान सम्प्रदाय का उद्भव नहीं हुआ था जो लोकधर्म के अधिक निकट था। होनयान धर्म की बड़ी आचारवांता और गण्य सद्भावित्वता को ठीक-ठीक समझना साधारण लोगों के मानसिक नितान्त के बाहर की बात थी।

व्यापक रूप से प्रचार इस युग का एक प्रमुख सांस्कृतिक दान है। लिखने की प्रणाली का संवसाधारण में प्रचार था कवल साहित्यिक रचनाओं आदि के लिए नहीं बल्कि सांख्यिक उद्योग के लिए और नित्यप्रति के व्यवहारा के लिए भी। अशाक के अमिलता से पता चलता है कि ब्राह्मी और खराष्ट्रा लिपियाँ हम जिन्हें कहते हैं उनका कितना अधिक प्रचार था और वे कितने पहले से व्यवहृत होना जा रहे थे। ये लिपियाँ भारत के वर्तमान प्रचलित भाषाओं के लिए प्रयोग में लाई जानवाला सस्कृत और फारसी लिपियाँ की जनना है। अमिलता का भाषा भाग्य प्राकृति है जिसमें स्थानाय प्रयोग और व्यवहारा का पुट पाया जाता है। इससे एक बात लाभ तो यह हुआ कि संवसाधारण उस पर और समय सक्त थे। इससे यह भी पता चलता है कि भारत का कितना अधिक प्रचार था और वह कब ब्राह्मणों तक ही सीमित नहीं था। लिखने का प्रयोग पत्र-व्यवहारा में लागू प्रायः नियमित रूप में करते थे और निश्चित पत्र आदि सुसंस्कृत रखे जाते थे। इस युग के साहित्यिक विकास का एक प्रमुख विशेषता है इसलोकपरक साहित्य की रचना। इसका यह तात्पर्य नहीं कि इस समय धार्मिक अथवा दार्शनिक ग्रंथ ही नहीं गये बल्कि हमारे इस कथन से अमिलता यह है कि पाणिनि के व्याकरण का छात्र बन जाय कितना लौकिक साहित्य के अन्तर्गत आने वाले ग्रन्थ का प्रणयन इस युग के पहले नहीं हुआ था जब कि इस युग में पद्यकव्य, नाटक आदि साहित्य शाखाओं का हम मानते हैं देवत हैं और अथशास्त्र की रचना से तो यह स्पष्ट हो जाता है कि एक शास्त्रनिद ब्राह्मण न राजर्जाति जैसे लौकिक और शुद्ध विषय का सस्कृत छान्दा का विषय बनाया। कामसूत्र का रचना काल में कुछ विद्वानों का मत है

कात्यायन का पाणिनाय व्याकरण पर भाष्य इस युग का रचना कहा जाता है। यह कथा के सस्कृत सस्करण हीरण्य के जन बह्वक्या काय और बौद्ध-ग्रंथ मञ्जुश्री मूल रूप में नन्द चन्द्रगुप्त तथा बिन्दुसार के एक ब्राह्मण मन्त्रा सुवन्तु का उल्लेख किया गया है। अमिलतागुप्त ने नाट्यशास्त्र पर अमिलतावर्तमान नामक जो टाका लिखा है उसमें उन्होंने सुवन्तु का कुछ विस्तार के साथ उल्लेख किया है, और उसका वासवदत्ता नाट्यधारा नामक एक विचित्र नाटक का रचयिता बताया है। जन बह्वक्या काय में एक अन्य मन्त्रा कवि का उल्लेख मिलता है जिसका चर्चा चाणक्य और सुवन्तु के साथ का गई है। कवि इस समय का प्रमुख साहित्यकार जान पड़ता है किन्तु उसका रचनाओं का हम कोई विवरण नहीं जानते हैं। पतञ्जलि के महाभाष्य द्वारा इस युग का साहित्यिक समृद्धि पर प्रकाश पड़ता है। महाभाष्य में वेद विहित बरहृच काय का उल्लेख मिलता है। भाज के शृंगार प्रकाश में वसन्तनिवका वल्ल का एक आधा नाक उद्धृत किया गया है जिस कात्यायन द्वारा प्रणयित बताया गया है। अन्य काव्या का प्रणयन जिनका पतञ्जलि ने उल्लेख किया है इस समय ही हुआ होगा—इस प्रकार यथात यवकृत प्रियगु सुमनांतरा नामक वासवदत्ता और देवासुर एक राक्षसासुरह आदि कथाओं के आधार पर आख्याना तथा आख्यायिका की रचना हो चुकी थी।

धार्मिक साहित्य के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण रचना-वाय हुआ। इस समय जनना के धार्मिक जावनमजालीन प्रमुख धारार्ये थी उनके अनुसार धार्मिक साहित्य का रचना हुई। बौद्ध धर्म बौद्ध धर्म और जन धर्म ताना के धार्मिक साहित्य का प्रचुर विकास हुआ। बौद्ध धर्म के अन्तर्गत इस काल में अनेक गृह्यसूत्र धर्मसूत्र और वनाय प्रका

का प्रणयन किया गया। बौद्ध साहित्य की दृष्टि में यह युग काफी महत्व रखता है। बौद्ध विपिनिका का रचना का समय तत्काल बौद्ध-भगीति जो मग्राज अशोक के राजत्व काल में हुई था वह बड़ा बड़ा बताया जाता है। इस सगीति के अध्यक्ष मोग्गलिपुत्त तिस्स ने अभिधम्मपिटक का कथावस्तु की रचना की। जय कई स्तूपों की रचना भी कुछ विद्वानों का अनुमान मौर्य-युग में ही हुई था। जन घम के प्रसिद्ध नयका जम्ब स्वामी प्रभव और स्वयम्भुव का रचनायें इसी युग में निररी गईं। इस काल के जन नयको में शीष-स्थान को अधिकृत करनेवाले जाचाय म् वाहू द्वितीय चन्द्रगुप्त मौर्य का समराजान घ और जन जनधति का अनुमान उद्दोने मौर्य मग्राज को अपने घम में लौकिक कर दिया था। मद्रवाह ने नियुक्ति अर्थात् प्रारम्भिक घम-प्रया पर एक भाष्य का प्रणयन किया। जनिया के धार्मिक साहित्य के पजन और मकनन की दृष्टि में तो मौर्य युग और भी अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि आचार्य मूत्र ममवायाग मूत्र भगवता मूत्र उपासक दशाग प्रदन यावर्ण आदि महत्वपूर्ण जन प्रया के अधिकांश भाग इसी समय निरवे गये।

कला की उन्नति—हम मौर्य-युग की कला के क्षेत्र में उपलब्धियाँ और उनके महत्त्व पर इस अध्याय का प्रारम्भ में ही विचार कर चुके हैं। मौर्य कला का प्रारम्भ जाक का राजत्व काल से आता है। अजाक का यश केवल उनकी घम विजय पर ही नहीं बरन का और वास्तु का क्षेत्रों में उनके निर्माण कार्यों पर भी अवलम्बित है। जनवत्त न काश्मिर में थानगर तथा नपाव में नितल पाटन नगर के निर्माण का ध्य उस किया है। फाल्गुन का लखानसार उसने राजमवन और राजधानी के सम्बन्ध में भी प्रभव निमाण किया। परन्तु अजाक के शासन काल का कलात्मक उपलब्धियाँ केवल वास्तु का क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है अपितु उसमें अन्य प्रकार का कलात्मक निर्माण का भी निमाण कराया। श्री आर० मा० मजमदार ने अजाक के शासन काल का कलात्मक उपलब्धियाँ का विम्वनित शापका में विभाजित किया है—

- (१) स्तूप
- (२) स्तम्भ
- ( ) गफायें और
- (४) निवास सम्बन्धी भवन

अजाक या मजमदार पत्थरों का बन हुए ठास गुम्बदा को स्तूप बना जाता था। इन स्तूपों का निर्माण बौद्ध या जन जाग किया करते थे। इनका निर्माण का उद्देश्य था ताकि मन्त्रपूर्ण घटना अथवा पवित्र स्थान का स्मृति का संरक्षित रखना या अथवा बद्ध भगवान या अन्य धार्मिक मन्त्रों का अध्ययन का रक्षा करना था। स्तूपों का जाकार छान में छान १ फुट से भी कम ऊँचा और बस वही भी हो सकता था। अजाक ने विशाल स्तूपों का बनन ही मन्त्रों में निर्माण कराया था। अन धुनि का अनुमान उसने ८४००० स्तूप बनवाये थे। नौ मी बर्षों का चीनी यात्रा जनमाण ने अफगानिस्तान और भारत में विभिन्न स्थानों पर इन स्तूपों का देखा था। इसाग्य में अजाक द्वारा बनवाये गये स्तूपों में से अब केवल कुछ ही अवशिष्ट रह गये हैं। साँची का विशाल स्तूप अजाक का ही बनवाया बताया जाता है परन्तु जिम म् में इसका अजाक ने निर्माण कराया था उसमें आज बसकर काफी परिवर्तन हो गया। अशोक के समय में साँची स्तूप का निर्माण इत्यादि द्वारा हुआ था। एक शताब्दी बाद



# मौर्यों के बाद का भारत | १५

ब्राह्मण साम्राज्य

माघ साम्राज्य के अन्तर भारत का दशा—मौर्य साम्राज्य का प्रथम मूर्धन्य भारत के राजनातिक गगन पर एक शताब्दी तक अपने पूर्ण प्रकाश के साथ चमकता रहा परन्तु इसके उपरांत उसे भी अस्ताचल का आरंभ करना पड़ा। अर्थात् के उपरान्त ही विशाल साम्राज्य जिसके लिए उसने चतुर्दश शिलालय मलिया था महानक हि विजित अर्थात् मरा साम्राज्य सुविस्तृत है अपने मध्याह्न मूर्धन्य के उत्कृष्ट स पतेन का आरंभ अगसर हान लगा। सम्राट अशोक के उत्तराधिकारियों में से काइ भा अपने पूर्वज (चन्द्रगुप्त) की तरह परानमा नहीं हुआ और न किसी में अशोक का या शासननिपुणता हा था। अशोक के इतने दे राय के लिए उस जस या उससे भा अधिक याय यचित का आवश्यकता थी किन्तु दुर्भाग्य से उसके उत्तराधिकारी राजनातिक का अष्ट स अकमण्य पमाणित हुए मौर्यों के अधान जिस भारत न एक प्रकण्ड राजनातिक सांस्कृतिक आर रात्राय एकता का अनुभव किया था उसा भारत में अशोक की मृत्यु के अनंतर शीघ्र ही विवद्राकरण का प्रवृत्ति प्रदान हा गई। इस बात में सन्देह नहा कि अशोक के बाद मा मौर्य-वंश के नरेश भारत पर राय करते रहे किन्तु अशोक मौर्य वंश का अन्तिम महान सम्राट था क्योंकि उसके बाद कौन सिंहासनारूढ हुआ हम इस बात का ही ठाक-ठाक जानकारा नहा हाा पाता। इस विषय में विभिन्न माक्ष्या में जा जानकारी मिलता है वह परस्पर एक दूसरे से इतना भिन्न आर सांख्य है कि हम यत् सुनिा चत रूप से नहा कह सकत कि उसके बाद मौर्य-वंश का राजाहा पर कौन बठा। बात यह मानूम प ता है कि अशोक के मरते हा दश में विवद्राकरण आर राय विवद्राह का प्रवात इतनी अधिक प्रदान हा गा कि पाटलिपुत्र और उसके स्वामी का जिह कुछ ही दिना पूर्व कभश समस्त भारत का राजधानी और उसके पञ्चवर्ती सम्राट हान का गौरव प्राप्त था महत्व विरकुत घट गया। यदि का प्रतापा राजकुमार जयवा सम्राट विवद्राकरण का इस वन्ता हुई प्रवृत्ति को राक कर जया वंश के गुप्त मारके का पुन प्रतिष्ठापित करता ता उसके विजय सक्तितन मा ता हम उस समय के साहित्य द्वारा सुनन का भि ता या उसके विजय विह्वल के अवशप हा हम प्राप्त हान। परन्तु स्थिति का सुधारता ता दूर रहा दिनादिन इसके विगत रहन का भी काँ राक न सवा। शन शन मौर्य-साम्राज्य के विभिन्न प्रान्त इससे पथक हान लग आर कनीय शक्ति का प्रभाव कम हा जान पर चारा आर अराजकता तथा अयवस्था पतन लगा। जया हा पाटलिपुत्र के कर्द्रीय शासन शिपित प। कई प्रान्ता न विवद्राह का पण्डा ल। कया और अपना-अपना स्वाधानता का दुःखनिता किया। उस वान के स्पष्ट प्रमाण है कि अशोक के मरते ही उसके पुत्र जालोक ने अपने का काँमार का स्वतन्त्र राजा थापित कर दिया आर इसा प्रकार बोरसेन मौर्य का चार प्रदेश का अधिकारी बन बठा। दूर के प्रान्ता का यह हाल देखकर निकटवर्ती प्रान्ता न भा उमा नाति का अनुसरण किया। स्वाधानताप्रिय कलिगवासिया न जिनका अपने अधान करने में अशोक का अयकर नरसहार करना पग था उसके मरते हा अपना खाई हुए स्वतन्त्रता पुन



प्राप्त कर ली। परोस व महाराष्ट्र प्रदेश न भी ऐसा ही किया और आंध्र भी अपनी स्वतंत्रता मत्ता स्थापित करने म पीछे न रना। मौर्य-वंश का प्रभाव अस्तावलगामी अभिप्लविकरण मूय की भांति सिन्हा दिन मामित होता और सिक्ुता गया। दक्षिण का प्रदेश न वजन साम्राज्य स पथक ही ना गया अपितु उमन विशाल मौर्य साम्राज्य के नव अवशिष्ट भाग व राजनीतिक गौरव को चुनौती भी नेना आरम्भ किया। देश की विखरित राजनीतिक स्थिति म लाम उठान की इच्छा रखनवाने युवना ने भाग्न की उत्तरी पश्चिमी मामा को पार किया और गाघार (उत्तरी पश्चिमा सीमा) साकल (उत्तर मध्य पजाप) तथा अय स्थाना पर अपन शक्तिशाली राज्या की स्थापना की। मगध म भा एक मत्ता राजनातिक उत्क्रान्ति हुई जिसक फलस्वरूप एक नया राज्यवर्ष मत्ताम्भ म्भा। यह वश था शगवश और इम शान्ति का नेना था पुष्यमित्र शग।

पुष्यमित्र शग न अति म मौर्य नरुश वन्द्य का वन करके राज्य पर अपना अवि पार जमा किया। पुराणा म इस राजनीतिक शान्ति का विवरण प्राप्त होता है।<sup>१</sup> शाणमट्ट न अपन प्रसिद्ध ग्रन्थ हपचरित म लिखा है कि जिम समय बहद्रव अपनी सेना का निरीक्षण कर रहा था मनानो (पुष्यमित्र) ने उसका तबवार व घाट उतार दिया।<sup>२</sup> पुष्यमित्र व विषय म कुछ जानन व पहने हम शुगा की जाति व विषय म अवश्य कुछ जान लना चाहिए।

### शुगा की जाति

शगा की जाति व विषय म काफी मतविमिश्रता दिखलाई पन्ती है। द्विव्या यदान नामक बौद्ध ग्रन्थ पुष्यमित्र द्वारा मौर्य साम्राज्य के ध्वस किये जान की वान ता कहता है परन्तु इम ग्रन्थ म उम मौर्यवंश का ही बतलाया गया है। कुछ विद्वाना ने शुगा का इगन का बतलाकर अमारताय प्रमाणित करने का चेष्टा की है। उनका कहना है कि चकि इगन म मित्र (मूय) की उन्त पूजा की जानी थी और गग वश के प्रत्यक नरुश व नाम म मित्र अवश्य लेगा हुआ है इसस यह वश ईरानी प्रतीक हाता है। परन्तु य म्भत तवम्भत न्ना प्रतान होता। बवल नाम के आघार पर गगा की ईगना प्रमाणिकरने का हमे कोई औचित्य नहा दिखलाई पन्ता। अधिकांश मत हैं कि व किम गात्र व है। महाकवि कालिदास न मालविकाग्निमित्र नाटक म अग्निमित्र का बन्धक वश और क्रायप गात्र का वननाया है। महर्षि पाणिनि न शगा का विद्यमान नरुश गात्र का वननाया ह। आबनायत श्रौतमूत्र म शगा का आकाय कूहा है। उपनिषदा म भा शुगुन का उन्त मिनता है। गुगुन का एक पुत्रा म उत्पन्न एक प्रसिद्ध विान का जिन् आता है तन्तु शौमापुत्र क्ता गया है। तिन्वती इतिहासकार तारानाय न स्पष्ट रूप स शुगा का ब्राह्मण कहा ह। एक स्थान पर तो तारानाय न पुष्यमित्र का ब्राह्मण राजा कह लिया है। इन सब मास्या व आघार पर शगा का अनागतीय हाता ता तारायार प्रमाणित हा ही जाता है उनका ब्राह्मण जाति का साचना कुछ अधिक समीचीन प्रवान होता है।

<sup>१</sup> पुष्यमित्रस्तु सेनानो समदृश्य बहद्रवम

<sup>२</sup> प्रशादुबल व बलदानव्यपदेगादगिताय स म सेनानारनायो मौर्यम ए विषय पुष्यमित्र स्वामिनम।

अब प्रश्न यह उठता है कि बुद्धिजीवी ब्राह्मण न जिस प्रमत्त कर्तव्य तत्व-चिन्तन शास्त्रों का अध्यापन और आत्मिक विकास करना था अपन राय में शस्त्र-ग्रहण क्या किया। लेकिन पुष्यमित्र का अपन हाथों में तलवार पकड़ना और एक राजा का सिंहासन च्युत करना उसके लिए कोई अनातिक्रमशाल बात नहीं थी। भारतीय साहित्य और इतिहास में इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि आवश्यकता पाने पर ब्राह्मण न शास्त्राध्ययन छोड़कर शस्त्राभ्यास को अपनाया है। परशुराम जिनको भगवान का अवतार माना गया है एक परम पराक्रमी ब्राह्मण योद्धा थे। इन्हीं प्रकार महाभारत में द्रोणाचार्य कृपाचार्य तथा जखत्यामा आदि ब्राह्मण हमारे सम्मुख यादों और शस्त्राभ्यासों के ही रूप में आते हैं शास्त्र चिन्तक के रूप में नहीं। दश और घम की रक्षा करने के लिए मिथु की निजनी घाटी में ब्राह्मणों ने यवन आक्रमणकारी सिकन्दर का सामना किया था और विदशी विजिता कि बृहद पत्नीस के क्षत्रिय राजाओं और उनके प्रजाजनों का प्राप्ताहित किया था। यहाँ पर जगत विजिता सिकन्दर को एक एम समुदाय से लाहा लेना पड़ा था जो अपने राज्य की कुछ साम्राज्य का रक्षा के लिए प्रयत्नशील न था वरन् अपने घम का पवित्रता और अपनी राष्ट्रीय परम्पराओं का म्लच्छों से बचाना चाहता था। इसी उदाहरण को ध्यान में रखकर सम्भवतः पुष्यमित्र शूरा न अपने हाथ में शस्त्र ग्रहण किया था। इसके अतिरिक्त उसके सम्भव कुछ ही शताब्दों में पूर्व के एस राजनतिक विप्लव का उदाहरण था जिसका नियामक एक ब्राह्मण ही था। यह ब्राह्मण था इतिहास प्रसिद्ध ब्राह्मणवर्जासन स्वयं तथा कर्णवित् शस्त्र नहीं ग्रहण किया परन्तु जिसकी बुद्धिमत्ता कूटनीतिज्ञता ने नन्दा का उन्मत्त करने में चन्द्रगुप्त मौर्य की सहायता की। चाणक्य के इस उदाहरण को ध्यान में रखने पर हम पुष्यमित्र के कार्य का औचित्य समझ में आ जाता है।

### पुष्यमित्र का साम्राज्य निर्माण

बृहद्रथ की हत्या करने के उपरान्त पुष्यमित्र मगध राज्य का स्वामी तथा बन गया परन्तु उसके राज्य की स्थिति अन्ना बड़ी डीवाडाल थी। हम देख ही चुके हैं कि प्रडोस के राज्यो बलिंग आंध्र और महारष्ट्र में अपनी स्वाधीनता का घोषणा कर दी थी और मगध राज्य का वे चुनाती देने पर तुल हुए थे। मगध के हाथों से साम्राज्य प्राप्त निकल जाने से इसकी शक्ति खोखला हो गई थी और पडास केराया का बन्ती हुई शक्ति उसके स्वामी के लिए एक अत्यन्त विकट समस्या थी। अतएव मगध पर अधिकार जमा लेने के बाद पुष्यमित्र न सबसे पहल आता शक्ति का सुदृढ़ करने का आरंभ ध्यान लिया। प्राचीन वासन जाकर वत्स और अवन्ति को जो अन्ना भी मगध के अधीन थे पुष्यमित्र न पुन सगन्त किया और इन प्रान्तों पर अपना सत्ता का दंड सिक्का जमान का पूरा प्रयत्न किया। अवन्ति का राज्य मगध से कुछ दूर पता था और मौर्य साम्राज्य के बाद अराजकता की स्थिति उत्पन्न हो जाने से शासन-व्यवस्था क्षिप्त तथा विश्रुलक्षित हो गई थी जिससे पाटलिपुत्र से अवन्ति पर कर्णवीय शक्ति का अधिकार पूर्ण रूप से जमा रखना दुस्साध्य प्रतीत हो रहा था अतएव पुष्यमित्र न आकर प्रान्त के मुख्य नगर विन्दिशा का अपनी दूसरा राजधानी बनाया। विन्दिशा में उन्मत्त अपने पुत्र अग्निमित्र को राज्य प्रतिनिधि के रूप में रखवा। अग्निमित्र का उन्मत्त आकर अवन्ति प्रान्त सुदृढ़ कर लेने बाद पुष्यमित्र न अपना ध्यान साम्राज्य विस्तार का आरंभ दिया। परन्तु देश का विकट राजनतिक अवस्था के कारण वह सुदूर राया को अपने अधिकार में नहीं कर सका। विदम राज्य के साथ उमका संधि हुआ जिसमें उमके आने का मित्रता अच्छी तरह से जम गया।

विदम्ब के साथ पुष्यमित्र की सफलता—पुष्यमित्र व पुन और विदम्ब राज्य के साथ जो संधय हुआ उसका विवरण हम महाकवि कालिदास के नाटक मालविकाग्नि मित्रम् से प्राप्त होता है। नाटक में इस संधय का घटना का विवरण इस प्रकार स दिया गया है—दोक्षण म विदम्ब राज्य था जो आग्नीमित्र का राजधाना (वाल्शा) व काफी निकट था। विदम्ब राज्य की स्थापना अमा कुछ ही दिना पूर्व हुई थी और उसका शक्ति सुदृढ़ नहीं हो पाई था। विदम्ब का शासन यज्ञसन १ अधीन था जोसे कुछ विद्वान आन्ध्रम भीय सम्राट् बहुद्वय का सम्बन्ध मानत है सम्भवत वह माय सम्राट का और स विदम्ब का शासन करने की लिए नियुक्त किया गया था परन्तु बहुद्वय का मृत्यु व बाद उमन अपना स्वतंत्रता का घोषणा कर दी। कदाचित् वह पुष्यमित्र शुंग था उसका पुत्र का अधानता स्वाकार करने के लिए तानिक मा तयार नहीं था। नाटक के आधार पर डॉ० राय चाधरा<sup>१</sup> ने यह अनुमान लगाया है कि बहुद्वय के राजत्वकाल में ही राज्य के दो परस्पर विरोधी दल खे गये। एक दल था माय-सत्तापात पुष्यमित्र शुंग का और दूसरे दल का नेतृत्व कर रही थी मोषी-साचव। इन दोनों दलों में पारस्परिक वमनस्य अवश्य ही रहा होगा। पुष्यमित्र का पुत्र आग्निमित्र वादशा का शासक नियुक्त किया गया था यह हम ऊपर दल चुक है। विदम्ब का शासक इस समय यज्ञसन था जो भीय साचव का साला था। नाटक में यज्ञसन का शुभा का स्वाभाविक शत्रु कहा गया है जिससे दल के पारस्परिक वमनस्य के विचार का पुष्टि होता है। यज्ञसन का चचेरा भाई माधवसुत, अपन भाई का साथ न दकर आग्नीमित्र का मित्र था। यज्ञसन का बिना किसी प्रकार की सूचना दिये वह विदिशा में गुप्तहथ से आग्नीमित्र से मिलने जा रहा था। किन्तु ऐसा करने के पूर्व ही उस यज्ञसन के सामारक्षकानु बन्दा बना लिया। इन पर आग्नीमित्र का वी क्रोध आया और उसने यज्ञसन के पास इस आशय का संदेश भजा कि माधवसुत का शास्त्र ही मुक्त किया जाय। किन्तु यज्ञसन ने माधवसुत को इस शत पर मुक्त करने का वादा किया कि यज्ञसन का साला, जो मोषी का सचिव था और जो इस समय शुंग का बन्दा था, अविलम्ब कारागृह से छोड़ दिया जाय। इस शत का सुनकर आग्निमित्र के क्रोध का ठिकाना न रहा और उसने वारसन का तुरन्त विदम्ब पर आक्रमण करने का आग्रह दे दा। वारसन के आक्रमण का फल यह हुआ कि यज्ञसन का आरम्भ समर्पण कर देना पड़ा। माधवसुत कारागृह से मुक्त हो गया और विदम्ब राज्य का दाना चचेर भाइया के बाब बाट दिया गया। वरदा नदी उनके राज्या की सीमा निर्धारित हुई। दोनों ही राज्या न शुंगी का अधानता स्वाकार कर ली। इस प्रकार दोक्षणपथ के कुछ भाग पर पुन मगध राज्य का अधिकार हो गया। सम्भवत पुष्यमित्र और उसके पुत्र मगध राज्य की सीमा का विस्तार करने का प्रयत्न करत परन्तु एक बहुत बड़ी विपत्ति ने उनका ध्यान उस ओर स बिल्कुल हटा दिया। यह विपत्ति थी—यवना का आक्रमण।<sup>२</sup>

यवना का आक्रमण—पुष्यमित्र शुंग के शासन-काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी यवना का आक्रमण और उसका शुंगी द्वारा प्रबल प्रतिरोध। भीय-वश के पतना

<sup>१</sup> इसी बात को कहने के लिए महाकवि कालिदास ने अपने बचिजनोचित शब्दों का प्रयोग किया है। वे विदम्ब राज्य की नूतनता बतलाने के लिए 'अचिराधिष्ठित' विषयण का प्रयोग करते हैं और उसकी उपमा 'नवसरोपणगिधितस्तथरिव' से देते हैं।

मग के समयसे भी देश की उत्तरी पश्चिमी सीमा अर्रांशित प्रतीत होने लगी। उसके निकट ही चारत्री यवनी के राज्य स्थापित हो चके थे। य यवन राज्य भारत पर अपनी गूढ़ शक्ति सत्त्व प्रगाम रखते थे। पुष्यमित्र के समय भयवत्ता ने पूरी नयाग के साथ भारत पर आक्रमण कर लिया। इस आक्रमण का विवरण हम पतञ्जलि के महाभाष्य एवं गार्गी संहिता के द्वारा मिलता है। तारानाय ने भी किया है कि पुष्यमित्र ने राज्य काल में भारत पर सबसे पहले विशेषी यवना का आक्रमण हुआ था। पतञ्जलि जा पुष्यमित्र के समकालीन थे<sup>१</sup> इस आक्रमण का उल्लेख करते हैं। जनसतनमय क्रिया के उदाहरण देते समय उन्होंने इसका उल्लेख किया है जो घटना का नेत्रक के काल से पूर्व परन्तु उसकी स्मृति में मरक्षित कर देता है। उदाहरण इस प्रकार है अग्नात् यवन भाकेत (ग्रीको ने साकेत का घेरा) अरुणात् यवना माध्यमिका (ग्रीका न माध्यमिका घरी)। इस प्रमाण को गार्गी संहिता भी य कहकर पुष्ट करती है कि दक्ष विक्रान्त यवनी ने मयूरा पचात्र देश (गंगा का द्वार) और सावन का जीत लिया और व कुसुमध्वज (पाण्डिपुत्र) जा पहुंचेंगे।<sup>२</sup> लेकिन यवना का पाण्डिपुत्र से पीछे लौट जाना पया। प्राफसर राधा कुमूद मक्जी का विचार है कि यवनी का ये आक्रमण सम्भवत उम समय हुआ होगा जिस समय पुष्यमित्र मार्यों का सेनापति रहा होगा और यह असम्भाव्य नहीं है कि यवना के विरुद्ध उसकी सफलता ने शार्यसिंहासन के लिए सफल उद्योग करने के लिए स्थिति पद और शक्ति प्रदान की।<sup>३</sup> प्रोफसर एन० एन० घोष की धारणा है कि पुष्यमित्र शग का भी यवन आक्रमण का सामना करना पया। पहले आक्रमण का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। दूसरे आक्रमण का विवरण मानविनाग्निमित्रम से प्राप्त होता है। यह उम समय था जब पुष्यमित्र निश्चय बढ हो चला था उसका पौत्र भी इतना बला था कि उसके नायकत्व में राजकीय मनावें बढ के लिए मजी जा सकती थी और जिसके विक्रम का नाटक में खूब प्रशंसा की गई है। यह यवन-युद्ध जिसका सम्बन्ध पुष्यमित्र के जन्मसमय से है निश्चित रूप में उसके शासन के अन्तिम भाग में हुआ प्रतीत होता है। कानिदास न अग्निमित्र के पुत्र कुमार वसुमित्र और एक यवन सरकार के मध्य का उल्लेख किया है। यह संघर्ष उम समय हुआ जब कि वसुमित्र यज्ञ के अन्व की रक्षा के लिए मसय विचरण कर रहा था और यवन मरदार न घात बंध लिया। यवना न वसुमित्र की मना को सिंधु नदी के दाहिनी तट पर राफा। धार सद्राम के पनस्वरूप यवना का वरी नग पराजित होना पया और यन का अन्व आदर-महित वापस लाया गया। यवना के साथ पुष्यमित्र शग के पात्र वसुमित्र का मध्य कानिदास के कथनानुसार सिंधु के दक्षिण तट पर रहा। इस मिना का स्थिति के विषय में विद्वानों में परस्पर काफी मतभेद है। कुछ विद्वान ऐसे

<sup>१</sup> पतञ्जलि न पुष्यमित्र शग के अन्वमेध यज्ञ का उल्लेख करते हुए लिखा है, यह पुष्यमित्रम यात्रयाम यतमान काल के प्रयोग से यह सिद्ध है कि यज्ञ अभीज समाप्त नहीं हुआ था और महाभाष्यकार पतञ्जलि जो यज्ञ के प्रधान पुराहित थे पुष्यमित्र शग के समकालीन थे।

<sup>२</sup> तत सचकतमाश्रम्य पाञ्चालान मयरा तथा यत्रना कुष्टविधातवे प्राप्स्यति कुसुमध्वजम्।

<sup>३</sup> *Age of Imperial Unity* I 96—Chapter VI *The Fall of the Magadhan Empire*

राज्य की सिंधु नदी बतलाते हैं और कुछ के विचार में यह इसी नाम की मध्य भारत का एक नगर था।<sup>१</sup>

हम संस्कृत ग्रंथा में जिनके द्वारा यवन आक्रमण का विवरण प्राप्त होता है यवन मरदाव के नाम का कोई भी उल्लेख प्राप्त नहीं होता। कुछ इतिहासकारों के अनुसार भारत पर यवन आक्रमण का नरत्व डेमेट्रियस कर रहा था और कुछ के विचार में डेमेट्रियस नहीं बल्कि मीनंडर आक्रमणकारियों का नेता था। प्राप्ते एन० एन० पोप की धारणा है कि 'गार्गी मन्त्रिता म वणिता एव पतञ्जलि महामाष्य म उल्लिखित पाणिपुत्र के यवन आक्रमण का अधिनायक सम्भवतः डेमेट्रियस (Demetrius) था।' दूसरे आक्रमण का नरत्व प्रोफेसर घाप के मतानुसार, मीनंडर ने किया था।

अश्वमेध यज्ञ—अपना संपन्नताओं के उपलक्ष्य में पुष्यमित्र शगन अश्वमेध या करन का निश्चय किया। उसके लिए यह यज्ञ करन का महत्वपूर्ण कारण था। पहली बातें तो यह कि विदेश राज्य का ऊपर उसकी प्रभुता का सिक्का अच्छा तरह जम चुका था और विदेशी आक्रमणकारियों को दा आगे निराश होकर लौट जाना पड़ा जिससे शगराश के गौरव में अभिवृद्धि हुई। इसी यज्ञ-गौरव को अभिवृद्धि को प्रदर्शित करने के लिए पुष्यमित्र ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। अश्वमेध या क्रिय जाने की पुष्टि आभिलषित और साहित्यिक दोनों साक्ष्यों द्वारा होती है। इस विषय में पातञ्जलि महामाष्य का साक्ष्य हम देख चुके हैं—(देखिए पाद टिप्पणी २ पृष्ठ ३५१)। अथाध्या क एक अभिलषित स यह पता चलता है कि पुष्यमित्र न एक नहीं अपितु दो-दो अश्वमेध यज्ञ किये। उमम कहा गया है— कौमलाधिपेन द्विरश्वमेध याजिन सेनापते पुष्यमित्रस्थ।' अश्वमेध के विषय में मालविकाग्निमित्र का साक्ष्य इस प्रकार है यज्ञमूर्ति से सेनापति पुष्यमित्र स्नहातिगन का पश्चात् विदेशा स्थित कुमार अग्निमित्र का भूचित करता है कि मैं राजसूय-यज्ञ की दीक्षा लेकर सका राजपुत्र का साथ वसुमित्र की सरसता में एक वय में लौट आने के नियम के अनुसार यज्ञ का अश्व वापस में मुक्त कर दिया। सिंध नदी के दक्षिण तट पर विचरते हुए उस अश्व को यचना में पकड़ लिया। जिससे शोका सेनाया में घार मुद्ध हुआ। फिर वीर वसुमित्र न शत्रुता का परास्त कर मरा उत्तम अश्व छड़ा दिया। जम पौत्र अशु भान का द्वारा वापस लाये हुए अश्व से राजा सगर न वस में भी अपने पौत्र द्वारा रक्षा किये हुए अश्व से मन करुगा। अतएव तुम्हें यज्ञ-दशन का लिए वसू जन-समेत शोघ्र आना चाहिए।<sup>२</sup>

पुष्यमित्र की राज्य सीमाएँ—पुष्यमित्र का शासन काल छत्तीस वर्षों (१८७-१५१ ई० पू०) तक रहा। उमका राज्य दक्षिण में उमदा नदी तक फैला था। पञ्जाब का पश्चिमांतर भाग सम्भवतः उसकी राज्य-सीमा का बाहर था। मगध का निर्वचर्त्ती

<sup>१</sup> विसेट सिंघ *Early History of India* 4th Edition का विचार है, कि कालिदास द्वारा उल्लिखित सिंधु अब वू डेल्लण्ड और राजपूताना के समय की सीमा का निर्माण करती है। परंतु इस विषय पर काफी मतभेद हैं। इसके लिए देखिये *Indian Historical Quarterly* p 214— और *J U P Hist Soc* July 1941 pages 9 to 20

<sup>२</sup> मालविकाग्निमित्रम्—पञ्चमोऽङ्क

समस्त दश उसक राय म सम्मिन्तित था। विहार जीर जायुनिक उत्तर प्रदेश निचय हा उसक राय म थ। प्रगात म समुद्र तट तक उसका जीवकार था। आयुनिक ब्रुल्लखण्ड पर भा पुष्यमित्र शुग का अधिकार था। उसका राजधाना पाटलिपुत्र थी। विवाशा म भी उसन एक राजधाना का निमाण किया था।

पुष्यमित्र शुग जीर बौद्ध धम—वृत्तिपय बौद्ध धम म पुष्यमित्र शुग क ऊपर यह आरोप लगाया गया है कि वह बौद्ध धम का प्रवल शत्रु था। विवावदान क लेखक को कथन है कि पुष्यमित्र ने यह धमपण निकलवादा था कि जा मुझ एक धमण का सिर लाकर दगा उस सो दीनार दगा।<sup>१</sup> तिबता इतिहासकार तारानाय न भी लिखा है कि पुष्यमित्र धार्मिक प्रदना म बडा जसाहपु था। उसन बाद्धा पर भाति भाति क अत्याचार किये और उनक मठा तथा सधारामा का वह जवा दिया करता था। प्राफमर नग द्रनाव घोष इन बौद्ध साध्या का यथाथ मानत है और उस एतिहासक पण्डितमूमि का जसक द्वारा पुष्यमित्र का मगध का सिंहासन प्राप्त हुआ ध्यान पूर्वक पढ़वडा करके इस निष्कष पर पहुचत है कि प्रसिद्ध ब्राह्मण सापति बौद्धो का प्रपा क था। व इस विचार का भा नही मानते कि भरहुत क स्तूप पर तारणा एव सूचया का निमाण पुष्यमित्र क समय म हुआ था। किन्तु उनक इस कथन से भानत है भा कि इन तारणा का निमाण पुष्यमित्र शुग क बहुत बाद हुआ हम यह नही कह सकत कि पुष्यमित्र शुग न बौद्धा पर अत्याचार किये। प्राफसर घोष न अपन कथन का जिन साध्या पर आधारित किया है व तर्कसम्मत और प्रत्ययोत्पादक नही प्रनात हात। विवावदान तथा तारानाय क प्रथम पुष्यमित्र की धार्मिक नीति क विषय म जो कथाय मिलता है उनम शत्रुकारा का निराधार और विचित्र कल्पना का इतना बढलता स समावश है कि हम उन पर विरवास नही कर सकते। घोष महादय न महामहापा यामप० हरप्रसाद शास्त्रा क इस कथन का बिल्कुल ठाक स्वीकार कर लिया है कि भाया क शासन काल म ब्राह्मणा का कुछ यत्रणापूण असुविधायें थी जिनक कारण उनक असन्ताप क आधारयुक्त कारण थ और पुष्यमित्र शुग असुष्ट ब्राह्मणा का प्रातिनिधि था। अतएव अपन कग क असन्ताप का प्रतिकार करने कानर उसन बौद्धा का प्रयासत किया। परन्तु प० हरप्रसाद शास्त्रा क प्रत्यक आरोप का हा हमचंद्र राय चावरा न अपना प्रसिद्ध पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास म सबल जीर प्रमाणयुक्त तर्का द्वारा अच्छी तरह स खण्ण कर दिया है। राय चावरा महादय पुष्यमित्र का बौद्धा का प्रयासक नही मानते। हमारा दष्टि म बौद्ध अनुभातया का यह साधक न कवन निराधार हा है अपितु ईश्या और असन्तोप का भावना द्वारा प्रणादित है। पुष्यमित्र न बौद्ध सम्राट बहुदय की हरया करके राज सिंहासन हस्तगत कर लिया था जसस बौद्धा का जवश्य उस पहुचा हागा और वे दष्ट भा हुए हाग। उसन अंतरावन उसन चिर-काल स पुष्ट अश्वमघ यन का पुन रकार किया जसस बौद्ध धमण अवश्य विधु व हुए हाग। बौद्ध-धर्या म पुष्यमित्र कानर जिन शत्रु का प्रयाग किया है व स्पष्टतया प्रत्यकारा क राय और अमन्ताप का यनन करत है। इस बात का ध्यान म रखकर हम यह नही कह सकत कि पुष्यमित्र शुग का दाष्टिनाण बौद्ध धम क प्रति शत्रुतापूण था। हां एक बात हम साच समत है वह यह कि पुष्यमित्र न कुछ बौद्धा को तलवार क घाट उतारा जीर कुछ बौद्ध-साध्या का विध्वंस कराया लाकिन इसानर नही कि उसक ह्मण म बौद्धा या बौद्ध

<sup>१</sup> 'यो म धमणगिरा दास्यति तस्याह दानार गत दास्यामि'

धर्म व प्रति कांड घणा अथवा इत्यां या अतिक्रमण कुछ वाद प्रजा-जन आर वाद-मधु अपन धार्मिक कृतव्या को भला कर राजनीतिक बुद्धका मे पट गय थ । व पुष्यमित्र की ब्राह्मणवादिना वैदिक नीति से असन्तुष्ट हाकर उसक विरुद्ध यवना क साथ मित्रकर युद्धयुत्त रच रह थ । यह बहुत सम्भव है कि पुष्यमित्र शुंग उनक इस राष्ट्र विराधी नाम से नाफा रष्ट हुआ हा आर उसक अपराधियों को जा दुनाग्य से बौद्ध हा रह हा, कठार दण दिया जिसस विद्रोहिया क साथी उनक उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करें और दश क सत्कृति के प्रति विध्वंसक कार्यों से विलग रहें । हमारा यह विचार है कि बौद्ध साग इस समय दश क कुछ भागा मे पचमागिया का काय कर रह थे मवया निरामार नहा है । इस बात का ता विभावदान भी मानता है कि पुष्यमित्र न 'मो म श्रमणशिरा दाम्यति तस्याह दीनारशत दास्यामि' का भाषणा स्थालकट म का था । यह घाएणा पाटलिपुत्र विदिशा, अयाया अथवा अय किसा नगर म नहा अपितु सीमा क एक नगर म को गद्द जहाँ पर यूनाना प्रभाव विद्यमान था इस बात का सिद्ध करता है कि बौद्धा बो दवान म पुष्यमित्र शुंग का एक राजनीतिक उद्देश्य था । ऐसा करने म वह धार्मिक पक्षपात की सकीण भावना से उत्साहित नहा था । हम इस विषय म W W Tarn क प्रसिद्ध ग्रंथ *The Greeks Bactria and India* से भी कुछ महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त होती है । क्या कारण था कि यूनानिया की भारत का पश्चिमोत्तर सीमा म सरलता से सफलता मिल सकी जब कि व आगे बढ़ने म अममय रह ? इसके उत्तर म टान मरुदय न दो कारणों का अनुमान किया है । पहला कारण ता यह था कि पश्चिमोत्तर सीमा की जनता में विशेषी तत्व प्रभूत परिमाण म विद्यमान थ और दूसरे यह कि वहाँ बौद्ध लाग यूनानिया की सहामता करत थे । इस दूसरे कारण से पुष्यमित्र का अपन राज्य की सुरक्षा और दशहित को दष्टि से रष्ट होना स्वाभाविक ही नही आवश्यक भा था । सुविख्यात अग्रज विद्वान् था ई० बी० हवल् ने इस विषय म जो कुछ लिखा है म वही सबसे अधिक तर्कसंगत और युक्ति-संगत जैचता है । उन्होंने लिखा है कि पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धा का दमन इसलिए किया कि उनक सभ राजनीतिक शक्ति क कट वन गय थ । इस लिए नहा कि व एक एस मम का मानने थे जितने वह विश्वास नही करता था ।<sup>१</sup>

पुष्यमित्र के कार्यों की विवेचना—दुनाग्य से पुष्यमित्र हमार सम्मुख एक राज होता और राज्यहता क रूप म आता है । स्वयं ब्राह्मण हात हुए भा बाणभट्ट न इस ब्राह्मण सनानी का अनाय कहा है । किंतु एक तटस्थ पयबक्षक की दष्टि म राजा का धातक हात हुए भी वह अनाय नही हो सकता । उसने एक ऐसे समय म मौर्य राजा ब्रह्मद्रय को हत्या की जिस समय न केवल दश म विषयनात्मक प्रवृत्ति का बालग्रासा था वरन् विदेशी आक्रमणकारिया क प्रबल घनका म पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश के द्वारा अनावत्त हो गये थ और व देश क आतिरिक्त भाग म भी घुमन लगे थ । अरुणाद् यवन साकतम् और अरुणाद् यवन माध्यमिकाम क द्वारा उन युग का

<sup>1</sup> Whatever truth there may be in the stories of the persecution of Buddhism by Pushyamitra Buddhist chroniclers allege that he burnt their monasteries and killed many of the monk —it is certain that it was not against Buddhism as a religion but the Sangha as a political power, that such violent means of suppression were directed —*Aryan Rule in India* p 123

भोषण आपत्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। आशका यन् थी कि यन् म समय इन यवना को एक प्रयत्न अवरोध न प्राप्त होता तो वे थोड़े ही समय में देश के बहुत बड़े भाग में फल जाते। उम समय देश की क्या अवस्था होती यन् तो हम केवल अनुमान ही कर सकते हैं किन्तु हम इतना तो अवश्य कह सकते हैं कि यवनों का सारे देश में फल जाना देश की प्राचीन सभ्यता के लिए नितकर कमी नहीं हो सकता था। विदेशी आक्रमणकारियों को जिनको उम समय की जनता अच्छे समझती थी पीछे धकेल दन वाता यकिन अनाय नहीं बना जा सकता यन्पि वह एक राजहन्ता है। हमारे पास इस बात के सबल प्रमाण तो नहीं हैं कि पुष्यमित्र शग ने अपन व्यक्तितगत स्वार्थों के लिए राज्य हस्तगत नहीं किया परन्तु हमारा ऐसा मानना बिल्कुल निराधार नहीं समझा जा सकता। उमने बृहद्रथ को मारकर जिम ताज को अपन मिर पर धारण किया वन् सोने का नहीं काँटो का ताज था यन् हम देव चके हैं। अपने छत्तीस वर्षों के शासनकाल में वह आपत्तियों से जड़ता ही रहा विनाम और भोग से वह दूर रहा। यदि राजा हो जाने पर वह भोग विलास में लिप्त हो जाता तो देश की रक्षा असम्भव हो जाती और उसकी धार्मिक नीति की वन् आनो चना करन बाल बौद्ध-ग्रन्थ जिनके प्रणेताआने उसके लिए कुछ अमद शक्त का प्रयोग किया है उसकी विनासिता और अकल्प्यता का अनिरञ्जनपूण वणन करते। राज्य हस्तगत करन पर भी इस बौर और निस्पृह ब्राह्मण ने कमी सम्राट की उपाधि नहीं धारण की। वह मौर्य-सेना का सेनापति था और सदैव अपने को सेनानी ही कहता रहा। आध्या क। जमिलख गव से कहता है कि उसने दो बार अश्वमेध यन किये परन्तु उमके लिए उम अभिलेख में भी सेनापति विभषण ही प्रयत्न किया गया है। मानविकामिनिमित्र नाटक में भी पुष्यमित्र शग को सेनापति ही कहा गया है जब कि उमके पुत्र अग्निमित्रकेलिए कुमार शक्त प्रयत्न हुआ है। एक विशाल म् भाग का एकच्छत्र स्वामी होन पर भी अपने लिए किमी विष्णु या पदवी का प्रयोग न करना पुष्यमित्र शग की निस्वार्थ देशभक्ति को सचित करता है जब कि हम देखते हैं कि अय नरेशा को जावपक विशेषणों और बने विष्णु से विशेष अनराग था। जिस भाग पर उसने अपना अधिकार स्थापित किया उमे उमने पौरुष एक मयबल से शान्ति तथा सुयवस्था प्रदान की। उसने देश में सभ्यता और कला को प्रथम प्रदान करने के लिए एक जनकल वातावरण की मृष्टि की। ब्राह्मण धर्म का वन् प्रबल परिपोषक था और जवमध यन का अनुष्ठान करके उसने इस धर्म के प्रति अपने अनय अनराग को अभिवक्त भी किया। परन्तु उमकी ब्राह्मण धर्म में दन् आस्था था केवल उस अनुमान और बौद्ध अनुश्रितियों के आधार पर हम उसे सकीण मृष्टि मानवाता नहा वन् सकत। उस विचार के औचित्यानीचित्य का विनयण म ऊपर पर चक है। उमन का मन्ता मनिव विजय नहीं की इसलिए वह एक मन्त विजिता नहीं कन्नाया जा सकता परन्तु अपनी मकटापन्न परिस्थितिया की पक्षमि में उमन जो कुछ किया उमके लिए एक निष्पन्न इतिहासकार उसकी प्रशंसा किये बिना नहा वन् सकता। एक अय बात के लिए भी हमें पुष्यमित्र शग की प्रशंसा करना पडता है। उमन विष्णु राज्य के साथ जो व्यवहार किया उमसे उमकी कन् नानिचता का परिज्ञय प्राप्त होता है। यज्ञसेन की पराजय के बाद विष्णु का राज्य उमके अयान हो चका था और यदि वन् चाहता तो उस अपने राज्य में मिला लिया हाता किन्तु उसने विष्णु का म् भागा में विभक्त कर यचमन् एव माधवसन को दे दिया और उन पर केवल अपनी सरभुता ही रखी। इस नानि का अवलम्बन कर



उसने समुद्रगुप्त का गृहात प्रतिबुद्धत वाली नाति सिललाई और अपने का महा-  
कवि कालिदास के शर्मा म घमावजयी प्रमाणित किया। अत म पुष्यमित्र शग  
क विषय म हम स्वर्गीय डा० काशा प्रसाद जायसवाल क व वाक्य स्मरण रखने चाहिए  
जिनम उन्हान उसका तुलना आलवर त्रामवेल स की है।

### पुष्यमित्र शुग के उत्तराधिकारी

पुष्यमित्र शुग न ३६ वर्षों तक राज्य किया। उसका शासनकाल लगभग १४८  
२० पू० तक रहा। उसकी मृत्यु क अनंतर उसका पुत्र अग्निमित्र महामत्त पर आसीन  
हुआ। यहा अग्निमित्र महानाव कालिदास क प्रसिद्ध नाटक मालविकाग्निमित्रम का  
नामक है। यह हम देख चुके है कि यह विदिशा का शासक रह चुका था जिससे हमने  
राज्य-संचालन म अनुभव प्राप्त कर लिया था। इसका शासनकाल म कोई महत्वपूर्ण  
घटना नही घटित हुई। उत्तरा पञ्चाल (रहलखण्ड) म कुछ मुद्रायें प्राप्त हुई हैं  
जिन पर अग्निमित्र का नाम उत्कीर्ण है परन्तु यह सब अमा सात्त्व्य ही है कि यह  
अग्निमित्र पुष्यमित्र शुग का पुत्र ही है अथवा उम प्रदश क किसी स्यानाय शासक  
का नाम है। अग्निमित्र शुग क पंचात् उसका भाइ मुजुष्ठ मगव राज्य का अधिकारी  
हुआ। उमका शासन काल म भी कोई महत्वपूर्ण घटना नही हुई। मुजुष्ठ क बाद  
अग्निमित्र का बार पुत्र बसुमित्र मगध क सिंहासन पर बठा। इमने ही सिन्ध नदी  
क दीक्षणा तट पर यवना का सना का पराजित किया था। ह्यचरित क लयक  
बाणभट्ट क अनुसार बसुमित्र नाट्यकला म बड़ा जासकत रहता था और मित्रदेव नामक  
एक ध्याकत न अभिनताओ क मध्य छिपकर इसका शासक काट किया।<sup>१</sup> बसुमित्र  
क उपराज्ज जोद्रक राजा हुआ। इसका उत्तरक सम्भवत वीशाम्बी के निकट परामा  
क शिलालाल म हुआ है। शुग वंश क नव राजा भागवत अथवा भागमद्र के शासन  
काल म तक्षशिला क यवन शासक अतलिकित (Antialk das) न उमकी राज  
सभा म द्वियो (Dion) क पुत्र हेलिआदार (Hehodorus) का अपना राजदूत  
बनाकर मजा था। इस घटना से यह सिद्ध होता है कि इस समय भी शग वंश की  
शक्ति कम नही होन पाई वा क्योंकि यवन राजा जल्लिकित मग नरेश भागवत क  
साथ मन्त्रा-सम्बन्ध स्थापित करन क लिए सचष्ट था। हेलिआदार न अपन का भाग  
वत घमावतम्बा बताया है। विदिशा म उसने वासुदेव के आराधनाथ गुरु वज्र  
स्थापित किया था। शुगवंश का अन्तिम राजा देवभूति था। विष्णु पुराण म लिखा  
है कि उसका मन्त्री वासुदेव कण्व न उसका वध कर दिया और स्वयं राजा बन बठा।<sup>२</sup>  
इस बात का पुष्टि ह्यचरित क लेखक बाणभट्ट न मा की है।<sup>३</sup> इस प्रकार मगध का  
राज्य शगा क हाथ से निकलकर कण्व वंश क हाथ म चला गया।

<sup>१</sup> अतिदपितलाएवचगालूपमध्यास्य मूढनिमसिस्तया मणालमिष अलुनात  
अग्निमित्रात्मजस्य शुमित्रस्य मित्रदेव । ह्यचरितम घट्टम उच्छवास ।

<sup>२</sup> देवभूति तु शुगराजान ध्यसतिन तस्यवोमात्य कण्वो वसुदेवनामा त निहय  
स्वयमयनी भोक्ष्यात ।

<sup>३</sup> अतिस्त्रोसगरतमनापरवण शुगममात्यो वसुदेवोदेवभूतिदासीदुहित्रा देवी-  
ध्यर नया धीतजोषितमशरयत ।

## शुंगकालीन संस्कृति और कला

शुंगों के शासनकाल में ब्राह्मण धर्म को बहुत अधिक उन्नति हुई। कला और संस्कृति का भी पर्याप्त विकास हुआ। इस काल से भारतीय इतिहास में शुंग वंश का एक महत्वपूर्ण स्थान था। शुंगकालीन संस्कृति गणकालीन भारतीय संस्कृति का एक अंशवावस्था था। पुष्यमित्र और उसके उत्तराधिकारियों ने जगोक् के पूर्ववर्ती मंगध की परम्परा का बनाया। धर्म विजय की अभिप्राप्ति का साधन यद्ध से बना नहीं अपितु सभ्यसंगठन का निर्माण समझा गया। राजनीति का रूप यथाय हो गया। यद्यपि न उत्तर भारत के एक विशाल भू-भाग पर अपना अधिकार जमाया यवन आक्रमणकारियों को पराजित किया और विदेशी राजाओं का सम्मान प्राप्त किया। उन्नत कला साहित्य और वस्तु के पुनरावतन का पोषित किया। मध्यदेश में बद्धि जीवित तथा बद्धिमानों की दृष्टि में सभ्यसंगठिकों का आक्रमण नष्ट हो गया। धर्म की शक्ति सुदृढ़ की गई स्मृति-शास्र का सत्ता को पुनः पूरी तरह से स्थापित किया गया। साम्राज्य उत्साह की नया उत्तर ने बौद्ध धर्म के प्रति मध्य के दक्षिण में एक अधिक समृद्ध तथा पूर्णतर जीवन की खोज में यद्धदेवता कानिक्केय के सम्प्रदाय में भागवत सम्प्रदाय के पुनरुत्थान में तथा हिन्दू देवमण्डल में वासुदेव कृष्ण की प्रधानता में अभिव्यक्ति प्राप्त की।<sup>१</sup> जसा कि पहल हम देख चुके हैं पुष्यमित्र शुंग ने दो बार यन्त्र करके सनातन धर्म की मर्यादा को पुनः प्रतिष्ठापित किया। शुंगवंश के शासनकाल में ही प्रसिद्ध पुस्तक 'मनुस्मृति' या मानवधर्मशास्त्र की रचना हुई। इस पुस्तक में हम ब्राह्मण आदर्शों को समीक्ष में पुनः पूर्णरूप से प्रचलित करने का प्रयास सुस्पष्ट देखते हैं। गृहस्थ जीवन का महत्व पिछल गया और बौद्ध धर्म की प्रधानता के कारण कुछ कम हो गया था परन्तु इस युग में मनुस्मृतिकार ने इसके महत्व को स्पष्ट किया। हिन्दू समाज में जाति प्रथा के बंधन काफी कठोर कर दिए गए और स्थिया का स्थान भी पहले की अपक्षा निम्नतर हो गया यद्यपि मनु महाराज ने यन्त्र नायस्तु पूज्यत तत्र देवता इत्यादि शब्दा द्वारा स्था-जावन का महत्व समझाया। मनस्मृति में आदि से अन्त तक इसी बात का प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन ब्रह्मिक

<sup>१</sup> Pushyamitra and his succes or carried forward the pre Aryan Tradition of Magadha. Dharm Vjaya was no longer to be achieved by abjuring war but by building up military strength politics became real. The Sungas maintained their hold over a vast part of North India vanquished Greek invader and were respected by foreign kings. They fostered a revival of art literature and architecture. In Madhyadeva and among the wise and the intellectuals the aesthetic outlook lost its attraction. Dharm was strengthened the authority of the Smriti law was completely restored. The new wave of collective enthusiasm found its expression in a combative attitude against Puddhism in a search for a fuller and richer life in the cult of Kartikeya the god of war in the resurgence of Bhagvata cult and in the unchallenged supremacy of Vasudeva Krishna in the Hindu Pantheon.—Shri K. M. Munshi in Foreword to *The Age of Imperial Unity*

धर्म समाज में प्रचलित हो। परन्तु हम यह न भ्रमना चाहिये कि मनुस्मृति तत्कालीन स्थिति का उतना निष्पन्न नहीं कराती जितना कि यह समाज के सम्मुख एक आदेश प्रस्तुत करती है। हम यह नहीं कह सकते कि उस समय में सामाजिक अथवा धार्मिक जीवन के जिन नियमों का उल्लेख है वे सब इस समय समाज में प्रचलित थे। मनुस्मृति के अध्ययन से यह पता चलता है कि इस समय के सिद्धांतों में मर्यादा और कठोरता प्रवेश कर चुकी थी किन्तु आधुनिक मादय में जो सुचना प्राप्त है वह इसके विपरीत है। वैमनस्य के स्तम्भों में यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि यूनानी भी इस समय हिन्दू धर्म में लीनित कर लिये जाते थे। उसमें यह भासित होता है कि तब का सिद्ध धर्म आज का मानि मनुस्मृति न था और इसकी छाया में विश्वास भी सामने नहीं आता था। यद्यपि वैदिक धर्म का पुनरुत्थान करने के लिए पुष्यमित्र ने काफी प्रयत्न किये तथापि बौद्धधर्म का ही इस समय प्रचार था। यदि हम भरहुत स्तूप के मुगनम रत्ने की पुष्यमित्र के कान का न भा मानें तो भी हम इतना तो कम से कम अवश्य मानना पड़ेगा कि उनके उत्तराधिकारियों की बौद्ध धर्म के प्रति असहिष्णु नीति नहीं थी। इसके अतिरिक्त भागवत धर्म का प्रचार और विकास इस युग के धार्मिक जीवन का विशेषता थी। विशिष्ट तथा धोमण्य के शिलाशाला में यह स्पष्ट प्रमाणित होता है कि इस समय जनता में भागवत धर्म का मूव प्रचार था। साहित्य के क्षेत्र में हम देख सकते हैं कि मनीषिपति-जलि पुष्यमित्र शक समकालीन थे जिन्होंने पाणिनि के अष्टाध्यायी पर एक भाष्य लिखा। मनुस्मृति का रचना प्रसिद्ध विद्वान् डा० ब्रुहलर के मतानुसार २०० ई० पू० एव २०० ई० के मध्य किसी समय हुई होगी। अधिक सम्भावना अभी वक्त की है कि शकधर्म का प्रारम्भिक युग में ही इस शक्य का प्रणयन किया गया। पुष्यमित्र शक और मन्तराज मनु के ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान करने के प्रयत्न में दृष्टिकोण का एक गहरा ममानता है। पति-जलि ने पूर्ववर्ती युग की साहित्यिक समृद्धि पर जो प्रकाश डाला है उससे यह कल्पना करना अत्युक्ति-भगत प्रतीत नहीं आता कि शकधर्म के शक्य-काल में भी साहित्य-मजत की परम्परा जारी रही होगी। परन्तु हम ऐसे प्रत्यक्ष उपलब्ध नहीं हैं जिनका रचना-काल हम सुनिश्चित रूप से शक्यधर्म के शासन काल के अंतर्गत निर्धारित कर सकें। इस काल में अवश्य अनेक अत्युक्ति-भगत महारथिया का भी प्रदुभाव हुआ था जिनके नाम आजकाल के शक्य में आये हैं।

**कला की उत्पत्ति**—शक्य-काल में कला की भावना अधिक उत्पत्ति हुई। इस समय का कला की यह एक प्रमुख विशेषता है कि इसके द्वारा अधिकांश जनता के मानस सांस्कृतिक आदेश तथा उत्सवों परम्परा का प्रतिबिम्ब प्राप्त होता है। इस बात में यह भी-युग से भिन्नता मित्र है। शक्य-काल का एक अमरी विशेषता है कि वह अपने समय के जन्म जीवन का चित्र बने ही यथायथ रूप में प्रस्तुत करती है। भरहुत

① The art of the time of the Sungas and Kanvas which immediately follows that of the Mauryas is clearly a negation of the Mauryan attitude. Indeed the base reliefs on the railings of Bharhut, Bodhi Gaya and Sanchi, or on the friezes of the Khambadgiri, Ldadagiri (Bhuvaneshwara) etc. that chronologically speaking follow closely on the art of the Mauryan court and from the point of view of subject matter are predominantly Buddhist reflect more of the mind tradition and culture ideology of the larger

स्तूप में दो हजार वर्षों पूर्व के भारत के दैनिक जीवन का सजीव चित्रण है। लीगो क घर, देवताओं की मूर्तियाँ साधुओं के आश्रम तथा साथ ही साथ गाँवियाँ रथ, नौकाएँ, वेशभूषा शस्त्र तथा जामुपण जिनका प्रयोग साधारण रूप से किया जाता था ये सभी वस्तुय निरान्त यथार्थवादी और स्पष्ट रूप में प्रदर्शित की गई हैं। ये स्तूप-स्थापत्य धार्मिक भावनाओं और विश्वासों का, वेशभूषा परिधान तथा शिष्टाचार सम्बन्धी व्यवहारों को सूचित करते हैं और वही ही सांगी तथा प्राणवत्ता के साथ बनाय गया है। हम भारत के जनसाधारण के मानस और जादना के सम्बन्ध में एक अतद्विष्टि प्राप्त करते हैं और जीवन के जातद तथा मुक्ता का भावना उन सब को परिचायित किया हुए प्रतीत होती है। प्राचीन भारत अपनी स्वस्थ आशावादिता तथा जीवन के प्रति सशक्त विश्वास के साथ इन पापाणा के द्वारा एक ऐस स्वर में बोलता हुआ प्रतीत होता है जो कुछ उन प्राचीन धर्म ग्रन्थों के जन्मवात्स्य निराशावादी दृष्टिकोण से एक तीव्र परन्तु मधुर विराघ प्रस्तुत करता है जो इनकी दोहराते हुए कभी शकते नहीं।<sup>१</sup> इन स्थापत्य चित्रों के उत्तकन का उद्देश्य जनता को महात्मा बुद्ध के जीवनका घटनाओं तथा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों से परिचित कराना था परन्तु चित्रों के अवलोकन से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह उद्देश्य गौण हा गया और कलाकार जीवन का चित्रण करने में इतना सलमन हो गया है कि उस जनता के नतिक उन्नयन का कोई विशय ध्यान नहीं है। प्राकसर कुमारस्वामी न ठाक हा कहा है कि इन चित्रों का प्रधान कद्बिदु न तो आध्यात्मिक है और न आचारवादी बल्कि सम्पूर्णतया मानव जीवन से सम्बन्धित है।<sup>२</sup> महत् स्तूप के कारण द्वारा पर

section of the people than Mauryan art was capable of doing. Sunga Kanva art formally and spiritually is opposed to all that Mauryan art stands for and is different in motive and direction technique and significance.—Dr. Nihir Ranjan Ray *Age of Imperial Unity*—Chapter XX Art p. 510

<sup>१</sup> The sculptures represent the religious faiths and beliefs, the dress, costumes and manners and are executed with wonderful simplicity and vigour. We get an insight into the minds and habits of the common people of India and a keynote of the joys and pleasure of life seem to pervade them all. Ancient India with its robust optimism and vigorous faith in life speaks as it were through the stone in a tone that offers a sharp but pleasing contrast to the dark pessimistic views of life which some of the old religious texts are never tired of repeating.—R. C. Majumdar *Advanced History of India* Volume I p. 231

<sup>२</sup> The main interest is neither spiritual nor ethical but altogether directed to human life. luxury and pleasure are represented interrupted only by death and the latter are nothing but facts endorsed by inherently sensual quality of the plastic language.—R. K. Coomaraswamy *Indian and Indonesian Art* p. 27 (1921)

पशुओं एवं वक्षलताओं का जो चित्र खुदे हैं उनका दलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इनकी उत्पत्ति करनेवाले बौद्ध कलाकारों का केवल मानव-जीवन से ही अनुराग न था वरन् उनके हृदय में मूर्ष्टि के प्रत्येक प्राणी के लिए स्नेह का भावना विद्यमान थी। प्रकृति के प्रति अनन्य प्रेम इन चित्रों की विशेषता है। इस दृष्टि से बहुत के चित्र भारतीय संस्कृति के सर्वभूतानुराग एवं जैविक मूर्ष्टि के साथ अनुराग स्थापित करनेवाले सिद्धांत का अभिव्यक्त प्रदान करते हैं। माद हम इस सिद्धान्त की परिपुष्टि चाहते हैं तो हम संस्कृत और पाला के साहित्य-ग्रन्थों का अध्ययन करना चाहिए जिनमें जब प्रेम और प्रकृति प्रेम की भवनाएँ बड़ी ही सहृदयता और मजावता के साथ अभिव्यक्त की गई हैं। साँचा के असाधारण द्वार-तारण जिनका निर्माण डॉ० फ्रूश के मतानुसार विदिशा के गजदत्त शिल्पि ने ही किया था, इस दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। डॉ० नीहार रजन के शब्दों में A rich world flora and fauna finds a feeling and naturalistic expression at the hands of Sanchi artists the elephants deer and antelopes the lotus creepers pipal and the host of other trees and plants which lend their characteristic form and colour and charm to Indian art are portrayed for the first time here and in certain panels of the Kanj Gumpha near Bhuvaneswara

डॉ० नीहार रजन के मतानुसार बहुत, बोध गया और साँचा की कलाओं में पश्चिमी एशिया के कुछ स्थापत्य कृतिपथ कला चष्टाओं का प्रयोग किया गया है परन्तु इनकी सुदरता के साथ दश का निजी कला-परम्परा के साथ मिलाया गया है कि इनका विशेषी रूप लुप्त हुआ प्रताप होता है। इस दृष्टि से विचार करने पर शक्य है कि कला भारत के राष्ट्रीय कला का सूत्रपात करती है जिसका पूर्ण विकास आद्य चोलवर गुप्त काल में हुआ जब कि भारत कला के सम्बन्ध में विदेशी प्रभावा से विमुक्त हो चुका था और वह मजसत एशिया का गुह था।

### कण्व का शासन-काल (लगभग ७५-३० ई० पू०)

शुंग वंश के पतन के सम्बन्ध हम दस्त चूकें हैं कि किस प्रकार राज सत्ता जतिम शुंगनरेश दशमूर्ति के हाथ से निकलकर कण्व वंश के संस्थापक वसुदेव के हाथ में चला गई। शुंग वंश के शासन काल का अन्त ७२ ई० पू० के लगभग हुआ जो इसी समय से कण्व वंश का शासन आरम्भ होता है। कण्व-वंश में ब्राह्मण था। वसुदेव ने दशमूर्ति की पडयंत्र द्वारा हत्या करा के ही राज्य हस्तगत किया था यह हम पढ़ चुके हैं। इस सम्बन्ध में विष्णुपुराण तथा ह्यचरित के विवरणों का भी हम अध्ययन कर चुके हैं। कण्व वंश का काण्वायन भी बना जाता था। सम्भवतः यह नाम गात्र के आधार पर पड़ा था। इस वंश में चार नरेश हुए। इनके नाम वामुदेव भूमिभित्र, नारायण और सुशमण जिन्होंने क्रमशः ९ १४ १२ और १० वर्ष तक शासन किया। यद्यपि पुराणों में भविष्यवाणी की प्रणाला द्वारा यह कहा गया है कि वे पड़ोस के राजाओं का अपन अधीन रखेंगे और धर्मनुसार राज्य करेंगे तथापि कण्व-नरेशों के इतिहास के सम्बन्ध में हम कोई विवरण नहीं प्राप्त होता। कण्ववंश का अन्त २८ ई० पू० आघ्रा अथवा आघ्रभर्त्यों द्वारा हुआ।

वायुपुराण के एक कथन द्वारा कि 'आघ्र नरेश सियूक अथवा सियुक ने सुशर्मा काण्वायन एवं शंका की शपथ शक्ति का नष्ट कर वसुधा का राज्य प्राप्त

विद्या १ गगो और कण्वो के वानप्रमम म कुछ भ्रम उत्पन्न हो जाता है। स्वर्गीय रामकृष्ण देवदत्त भण्डारकर ने इस कथन का यह अर्थ निकाला कि 'जब शग के राजकुमार दुःख हो गये तो कण्व ने सम्पूर्ण शक्ति उनसे छान ली और आधुनिक शग के पशवाओं की भाँति अपने स्वामियों के वश का बिना उच्छेदन किया हा किन्तु उनको केवल नामधारी सम्राट्टा का स्थिति म बनाकर शासन किया।' था भण्डारकर जो अपने इस विचार के अनुसार इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि पुराणा म गगा व शासन काल का ११२ वर्षों का जो समय दिया गया है उसमें कण्व का ४५ वर्षों का शासन काल भी सम्मिलित है। किन्तु भण्डारकर महोदय के इस विचार का जय विद्वानों ने समर्थन नहीं किया है। यह पुराणा व इस स्पष्ट कथन का कि दशम शग-नरश का कण्व-वश व सस्थापक न मान डाला विरोध करता है। पुराण व कथन का कदाचित्त यह अभिप्राय है कि दक्षभूति की मृत्यु व और शग वश के नाश व पश्चान भा इस वश के कुछ लोग बहा पर शासन करत रजस कि विदिशा म। वास्तव म शासका को नाममान व लिए राजा की उपधि धारण करन दिया। आध्र वश न कण्व व साथ-साथ उनक वश का राजसत्ता को भी समाप्त कर लिया। अतएव हम कह सकत है कि चार कण्व राजाओं ने ७५ ई० पू० से लेकर ३० ई० पू० तक राज्य किया।<sup>१</sup>

### आध्र सातवाहन वश

आध्र जाति का प्राचीन इतिहास—पुराणा म सातवाहन वश के राजाओं व लिए आध्र शब्द का प्रयोग किया गया है जब कि अपने अभिलेखों म वे अपने को सक्ता और सक्ता सातवाहन अथवा शातकनि घातित करत हैं। इन अभिलेखा म आध्र शब्द कहीं नहीं मिलता। परन्तु आध्र और सातवाहनों के पारस्परिक सम्बन्ध निश्चय करने के पूर्व आध्र जाति व प्राचीन इतिहास का ज्ञानाजन आवश्यक प्रतीत होता है। आध्र लोग गण्डवरी और कण्व नदिया व बीच की तलम देश म बसने वाली जाति के थ। एतरेय ब्राह्मण म सबसे पहले इस जाति का उल्लेख पाया जाता है। इस जाति का आय सम्भूति व प्रभाव से मकत बताया गया है। इस ग्रन्थ के अनुसार विन्वामिन व वशवा न गोदावरी और कण्व के बीच के प्रदेश में जाकर आर्यत जातियों से विवाह किया। इन विवाहों के परिणाम-स्वरूप जिम जाति का उद्भव हुआ उसे आध्र का सजा मिली। बद्रगुप्त मौर्य के समय में आध्र जाति का राजनीतिक शक्ति काफी बढ़ी चली थी। मेगास्थनीज ने उनकी प्रचण्ड सय शक्ति का उल्लेख किया है। प्लिनी ने लिखा है कि कालिंग के राजा के पास ६०००० पत्नी १० अवारान और ७० गज सजा थी। मम्मवत मेगास्थनीज की इण्डिया व हा आधार पर प्लिनी ने यन् विवरण लिया है। अशोक व गिबानव म भा इस जाति का उद्भव मिलता है। अशोक ने आध्रों का उल्लेख उन जातियों व अंतर्गत किया है जा उमक राजनीतिक प्रभाव के अंतर्गत थीं। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अशोक व बाद इस जाति की क्या दशा हुई परन्तु य साधना कुछ अधिक सम्भावना जान पत है कि व स्वतंत्र हो गय।

<sup>१</sup> काण्वायनस्ततो भत्य सुगर्भाज प्रसह्य तम। गगानो चव यच्छय क्षपयित्वा बल तदा। सिधय। आध्र जातीय प्राप्स्यतीमा वसुधराम।

<sup>२</sup> इस विवरण व लिए देखिए *Age of Imperial Unity* pp 99-100 और *Political History of Ancient India*

सातवाहन वंश—अब प्रश्न यह उठता है कि आंध्रा और सातवाहना में क्या पारस्परिक सम्बन्ध था। जसा कि हम ऊपर कह ही चुके हैं कि सातवाहन नरेश अपने का कमी भी आंध्रजाति का नहीं बताते जबकि पौराणिक अनश्रुत व अनुसार उनका वंश का सस्थापक सिमक या शिशुक या सिचुक आंध्रजातीय था। सातवाहन राजाओं के अमिलखो में जिनका नाम मिलते है व ही नाम पुराणा में भी प्राप्त होत है। परंतु क्या कारण है कि जब कि सातवाहन राजा अपने का कमी आंध्र नहीं कहते वाय पुराण उनके वंश के सस्थापक को आंध्र ही कहता है। इस परस्पर विरोधी मत में किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है ? सातवाहन अपने को ब्राह्मण कहते है किंतु आंध्रा को प्राचीन प्रथो म आय-संस्कृति के प्रभाव से मकत कहा गया है जिससे स्पष्ट होता है कि आंध्र लोग द्रविड मूल के थे। वास्तव में आंध्रो और सातवाहना में कोई सम्बन्ध नहीं था। व लोग आंध्रा से सवथा मिन्न थ और महाराष्ट्र प्रदेश का निवासी थे। आंध्र लोग जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, गोदावरी और कृष्णा नदिया के बीच के प्रदेश के रहनेवाले थे। सातवाहनो ने अपनी शक्ति का विकास महाराष्ट्र प्रदेश से हा किया और आंध्र प्रदेश में अपना उपनिवेश स्थापित किया। परंतु कुछ समय के बाद शक-आभीरा के आक्रमणों के फलस्वरूप उनकी सत्ता केवल आंध्र प्रदेश तक ही सीमित रह गई और पश्चिमी प्रान्ता पर उनका अधिकार नहीं रह गया। इस प्रकार आंध्र ही तक सीमित रह जाने के कारण सातवाहन लोग आंध्र कहलाय। इस सम्बन्ध में स्वर्गीय प्रोफेसर एन० एन० घोष का कथन सवथा मायप्रतीत होता है एसा प्रतीत होता है कि जिस समय पुराण लिख जा रहे थे उस समय सातवाहना ने अपने उत्तरो और पश्चिमी अधिकार क्षेत्र खो दिये थे और आंध्र देश के रहनेवालों के साथ इस प्रकार मिल-जुल गये थे क्योंकि शासक के रूप में उन्हें आंध्रो के साथ निकटतम सम्पर्क में आने का अवसर था ही मिल गया था कि पुराणकार ने उस प्रदेश के शासकों को भी आंध्र ही कहना उचित समझा और तदनुसार प्रथम सातवाहन नरेश सिमूक को आंध्र वंश का सस्थापक बना दिया।

सातवाहना की जाति—जसा कि पहले बताया जा चुका है सातवाहन नरेशा ने अपने अमिलखा में अपने को ब्राह्मण कहा है। नासिक के अमिलखा में गौतमीपुत्र के लिए एक ब्राह्मण विशपण प्रयोग किया गया है। उनको क्षत्रियों के दण और मातृ का दलन वाला' खतियन्पमानमदनस तथा शक्ति में परशुराम के तुल्य कहा है। इन सब विशपणा को जब हम एक साथ पढ़ते हैं तो इस बात में सन्देह का कोई कारण नहा रह जाना कि सातवाहन लोग ब्राह्मण थे। इस सम्बन्ध में यह भी जान लेना चाहिए कि डा० भण्डारकर और कुमारी भ्रमर घोष ने नामिक अमिलख के इन विशेषणों को 'ययम्या कुछ दूसरे दण से की है और उसकी सम्मति में सातवाहन लोग ब्राह्मण नहीं थे। उनका कहना है कि एकब्रह्मण शात्र का जय ब्राह्मण जाति से नहोकर ब्रह्मण्य में है और 'खतियन्पमानमदनस में जिस खतिय शात्र का प्रयोग किया गया है उसमें क्षत्रियों का नहा वरन उन Xathroi Khatrija जाति का बोध होता है जिसका उल्लेख यूनानी लेखकों ने किया है। डा० भण्डारकर और कुमारा भ्रमर घोष ने एक और तर्क उपस्थित किया है जिसके द्वारा वे सातवाहना का ब्राह्मण होना ठीक समझते हैं। उनके मतानुसार गौतमी बालश्री के लिए राजपि बधू का प्रयाग किया गया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सातवाहन नरेश ब्राह्मण नहीं थे अथवा ब्रह्मपिबधू शब्द प्रयुक्त किया गया होता। परंतु यह दूसरा

तक भा हलका प्रताप होता है। यदि गौतमा बालश्री के लिए राजपिबू का प्रयोग किया गया है तो उससे यह नहीं सिद्ध होता कि वह एक अब्राहम कुल की वधु थी। जैसा कि डा० रायचौधरी ने सिद्ध किया है<sup>१</sup> राजपिबू का प्रयोग हमेशा ही अब्राहम का लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है बल्कि भारत के साहित्य में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनमें ब्राह्मणों का भी राजपिबू का प्रयोग हुआ है। इससे अतिरिक्त सातवाहन नरेशों के लिए ब्राह्मणों का प्रयोग उपहासास्पद माना गया कि उन्होंने अपना हाथ में शस्त्र ग्रहण कर लिया था। इन सब कारणों से डा० रायचौधरी का मत है कि सातवाहन ब्राह्मण जाति के थे किन्तु उनमें नागा के रक्त का सम्मिश्रण था। वे कहते हैं<sup>२</sup> इस बात पर विश्वास करने के लिए अनेक कारणों के आधार पर अन्वेषण अथवा सातवाहन नरेश ब्राह्मण थे परन्तु नाग रक्त का उनमें कुछ सम्मिश्रण था। इतिहासक पुत्तालिका में सातवाहनों का ब्राह्मण और नागा का मिश्रित उत्पत्ति का बतलाया गया है। नागा के इस सम्बन्ध का पूर्ण स्फूर्द-नाग मतके और नागनिकाजस नामा से भी होती है जब कि उनके ब्राह्मण होने का प्रमाण एक शिलालेख से प्राप्त होता है। डा० रायचौधरी ने तिम अमिलस का उक्त किया है उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

सातवाहन कुल का संस्थापक—पुराणों के अनुसार सिमुक या शिशुव अथवा सिमुक (६ ३७ ई० पू०) ने शुगा और कण्वा का शासक का उन्मूलन करके गांधार-वंश का स्थापना का। यह शिशुव ही सातवाहन कुल का प्रथम नरेश था। शुगा और कण्वा से शिमसू ने सम्भवतः विदिशा के निकट का प्रदेश हस्तगत किया था। उसका राज्य दक्षिणापथ में ही था। उसकी राजधानी प्रतिष्ठान अथवा पठन थी जो उत्तरी गंगा-तट पर स्थित था। डा० सरकार का राय में इस बात के लिए का प्रमाण नहीं है कि सातवाहन का अधिकार मगध या उत्तर भारत के किम्वा प्रदेश पर था। मध्य या पश्चिम भारत के कुछ भाग वदाचित उनके राज्य में सम्मिलित थे परन्तु यहाँ शिशुव के राज्य में पश्चिमी भारत का काई भाग शामिल था तो उसने उस या तो शुगा या कण्वा से अथवा यूनानियों से जाना था। शिशुव के विषय में हम किसी अन्य बात का पता नहीं लगता।

कृष्ण—शिमसू के उपरान्त उसका भाई कृष्ण अथवा कर्ह राज्य का अधिकारी हुआ। उसके शासन-काल में सातवाहन का साम्राज्य-साम्राज्य के कुछ अधिक विस्तृत हो जाने का प्रमाण मिलता है। नासिक के एक शिलालेख से विदित होता है कि उसके समय में बहाम पर गुफा का निर्माण किया गया था। इससे यह सिद्ध होता है कि उसका अधिकार नासिक तक पहुँच चुका था।

शातकनि—शिमसू का पुत्र शातकनि सातवाहन-कुल का तृतीय नरेश था। यह एक महान विजया और अपने वंश का प्रतापी राजा था। इसने मगध राज्य के संस्थापक विम्बिसार के प्रति सत्य विजय और ववाहिक सम्बन्ध द्वारा अपना स्थिति सुदृढ़ करने का आरम्भ किया। नायानिका के नानाघाट अमिलस में शातकनि का सफलता और विजय का वर्णन किया गया है। उस शिमसू के वंश का घन सिमुक-

<sup>१</sup> *Physical History of Ancient India* p. 413 footnote

<sup>२</sup> वही पृष्ठ ४११



सिमुकसातवाहनस वशवधनस' कहा गया है। उसने महाराष्ट्र के महाराष्ट्री को वसा मे विवाह करके अपन राजनीति पमाच म अभिवद्धि की। इस प्रकार व लगभग सम्पूर्ण दक्षिणापथ का अधिकारी हा गया। नानाघाट अभिलेख म उसे 'अप्रतिहत चक्र दक्षिणापथपति' कहा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने पूर्वी मालवा पर भी अपना नियंत्रण स्थापित किया। प्रायमित्र शग की मति उसने भी लो वाग अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया और ब्राह्मण धर्म क प्रति अपने श्रद्धा प्रदर्शित की। नानाघाट का अभिलेख हा इस विषय म साम्य प्रस्तुत करता है जिसमे उसके लिए 'अश्वमेध यज्ञ द्वितीय रूप' कहा गया है। मंची अभिलेख से यह प्रमाण मिलता है कि ज्ञान कणि न पूर्वी मालवा पर ही विजय प्राप्त का थी। इस बात की पुष्टि उसके सिक्का एक पुराणा क डम कथन मे भी होती है कि शगमत्त्व काण्वायन नरेशो के हाथ मे निवृत्त कर य पृथ्वी आध्र जानियो क अधिकार म धनी जायसी। ऐसा प्रतीत होता है कि शातकणि प्रथम राजकुमार था जिसने सातवाहना का विध्य-पार मार्ग के मवसत्ताधारक सम्राट्टा का स्थिति तक उठाया। इस प्रकार से गौतमवरी की धाने मे पहल महान साम्राज्य का उदयान हुआ जा विस्तार तथा शक्ति म गगा की घाटी के शग साम्राज्य और पचनद प्रवेश के यनानी साम्राज्य की बराबरी करता था।<sup>1</sup> इस शक्तिशाली नपति का भी अपन एक समकालीन नरेश से नाम लेना पना। कनिग नरेश नारवेन क हाथा गम्फा अभिलेख से यह प्रमाण मिलता है कि ज्ञानकणि की शक्ति का कुछ भी न समझते हुए उनम अपने शासन के द्वितीय वष म ममिक नगर पर आक्रमण कर दिया और सातवाहन-नरेश म बर ठान लिया। परन्तु इस बर से सात वाहन वश के गौरव का कुछ भी घक्का नग नगने पाया। नारवेन की शक्ति स्थायी नहीं होने पाई और शातकणि का गौरव प्रवचन ही बना पना। विन्तु शातकणि के बाद सातवाहन वश का इतिहास कुछ अचकारमय हो जाता है।

शातकणि का मृत्य के अनन्तर उसकी रानी नायात्रिका ने जा अगीयक नीम मग (या) नशकियरा का दुहिता थी राजवाय सम्राट्टा। उसके दो पुत्र शक्तिथी और वेदथी अभी अल्पवयस्क कुमार ही थे अतएव उनका मरक्षक वाकर उसी ने शासनमत्र अपन हाथ म ग्रहण किया। कुमार शक्तिथी को इतिहासकारा ने प्रतिष्ठा के नरेश शातिवाहन का पुत्र शक्ति कुमार ही बतनाया है। उनके विचार म ये लोना व्यक्ति एक ही हैं। शातिवाहन क पुत्र शक्ति कुमार का उल्लेख साहित्य ग्रन्था म प्राप्त होता है। शातकणि क नाम के सातवाहन राजाआ म हाल का नाम विशेष उ-लेखनीय है। परन्तु उसके प्रसिद्धि किसी महत्वपूर्ण सय सफलता के कारण नहीं अपितु उसके साहित्यानुराग और स्वयं उसके एक मगन कवि होने के कारण है। हा न प्राकृत भाषा का एक महाने कवि था। 'मन गाय्या मप्तशती नामक एक मरम प्राकृत काव्य की रचना का। यह एक मकतक काव्य है और इसमें सात मी सुन्दर पना का मकलन है। भारतम साहित्य म हा न का अपना एक विशिष्ट स्थान है। बह्वचया के लेखक गुणाध और मस्कृत 'वाकरण कातत्र के लेखक उसकी राजमभा को मुशामित करते थे।

यह ऊपर कहा जा चुका है कि ज्ञानकणि क पन्नाल उसके वश का गौरव कम हा न लगा। *The Periplus of Erythraean Sea* 'एरथ माग की परिभ्रमा' नामक ग्रन्थ क द्वारा जा पूर्वी अफीका और भारत के साथ मिथी वापार का वर्णन

करता है, इस बात का पता चलता है कि मूरपारक (आधुनिक मापारा) नामक ब दरगाह शातकणि व बाद मुरा इत न रह गया क्योंकि उसके उत्तराधिकारियों की शक्ति काफ़ी क्षीण हो चला था और विदेशी आक्रमणकारों प्रबल हो गए थे। मालूम पड़ता है कि इस समय शका का द्वितीय आक्रमण भारतवर्ष पर हुआ जिससे सातवाहना का शक्ति की राफ़ा चाट पड़ना। उनके हाथ से महाराष्ट्र प्रदेश का राज्य निकल गया और उस पर शका न अपना अधिकार जमा लिया। महाराष्ट्र में शका व जिस वंश ने अपना राजतन्त्र स्थापित का था उनका नाम क्षहराता था। क्षहराता और सातवाहना का राजनीतिक प्रभुता के लिए परस्परिक संघर्ष चलता रहा। नहपान के समय के एक नासिक गुहा अभिलेख से शक मातवाहन संघर्ष पर काफ़ी प्रकाश पता है। नहपान एक क्षहरात सरदार था। इस संघर्ष में कभी शक विजय होते थे और कभी सातवाहन। क्षहरात सरदार नहपान के सिक्कों और अभिलेखा से यह सिद्ध होता है कि उसका राज्य काफ़ी दूर तक फैल गया था और उसने सातवाहना का उनका मातदेश महाराष्ट्र से निकाल बाहर कर लिया था। उसके राज्य की सामर्थ्य नासिक एवं पूना से लेकर मानवा गुजरात काठियावाड़ और राजपूतान में पुष्कर तक फैला हुआ था। किंतु उसने सातवाहना के गौरव का मूलुच्छिन्न कर जा विजय प्राप्त का वह जानक काल तक टिक न पाई और शानव्राह्मि वंश के प्रबल प्रतापी नरेश गौतमापुत्र शातकणि ने उसका पराजित कर अपने वंश की मान और प्रतिष्ठा को पुन प्राप्तपापत किया।

**गौतमपुत्र शातकणि**—गौतमा पुत्र शातकणि अपने वंश का सबसे प्रतापी और पराक्रमा राजा था। उसका माता गौतमा बल ग्री के नासिक गुहालया से उसकी विजया, शासन-समर्थ्य धना उसका याम्यताया और सफलताया तथा उसके प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व के प्रशंसनाय गुणा पर काफ़ी प्रकाश पता है। उसके राजनीतिक कार्यों का सबसे अधिक महत्त्व इस बात में है कि उसने अपने वंश के लुप्त गौरव की पुन प्रतिष्ठापना का और विदेशी आक्रमणकारों शका का अपनी मातभूमि से निर्वासित कर दिया। उसने अनेक समकालीन राज्या से लड़ा लिया और उनको युद्ध में पराजित किया। शक-युधन पहनव-क्षहराता का नाश करके गौतमपुत्र ने अपने वंश का मान मर्यादा का बनाया इसका विवरण नासिक के अभिलेख में प्राप्त होता है। क्षहरात सरदार नहपान का उसके द्वारा जा पराभव सहना पना उसकी पुष्टि मुद्रा साम्य द्वारा भी होता है। हम यह पीछे देख चुके हैं कि नहपान के सिक्के इस बात का सिद्ध करते हैं कि उसका राज्य नासिक और पूना से लेकर मानवा गुजरात काठियावाड़ तथा राजपूतान में पुष्कर तक फैला हुआ था। जागलयम्बा से चादा के सिक्के की जो निधि प्राप्त हुई है उसमें बहुत से ऐसे सिक्के मिले हैं जिन पर नहपान का राजमण्य के ऊपर गौतमा पुत्र का राजमुद्रा अंकित है जिससे स्पष्ट होता है कि क्षहरातराज नहपान का उसने पराजित कर दिया था।

गौतमापुत्र का दिग्विजया का वर्णन भी नासिक गुहा-लेख में प्राप्त होता है। उसने एक बहुत बड़ी सेना लेकर अपना विजय यात्रा प्रारम्भ की। उसके वाहनों ने तान समग्रा (पूर्व पश्चिम पश्चिमसागर और दक्षिण में हिन्द महासागर) का जल पिया। X X X उसका राज्य ऋषिक (गानावरा और कृष्णा के मध्य का प्रदेश) अम्बक (गानावरा का तटवर्ती प्रांत) मूनक (पठन का तटवर्ती प्रदेश) मुराष्ट्र कुकुर (उत्तर काठियावाड़) अवरान्त (बम्बई प्रांत का उत्तरी भाग) अनुप (नामा)

जिना विदम (बराबर) आकर (पूर्वा मालवा) अर्वात (पश्चिमा मालवा) क ऊपर विस्तृत था। x x x समा राजाजा न उमक शामन का स्वाकार किया। अभिलेख क इस कथन से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि गातमापुत्र शातकनि क राज्य म आधुनिक गुजरात सोराष्ट्र, मालवा बराबर उत्तरा काकण तथा पूना आर नासिक क चारा आर का प्रदेश सम्मिलित था। इसा अभिलेख म गानमापुत्र का अनक पवतथणिया का अधिपति कहा गया है जिससे सिद्ध होता है कि वह विध्य क उस पार सम्पूर्ण भारत का स्वामा था। उसक अधिकार मय पवत थ--विध्य (मध्य और पूर्वी विध्य और सतपुडा का पवत थणिया), ऋक्षवन (मालवा क दक्षिण म विध्य पवत थणिया का एक भाग) पारियात्र (पश्चिमी विध्य आर अरावली की पहाडियाँ) सल्ल (नील गिरि का पहाडियाँ क उत्तर तक पश्चिमा घाट) मलय (त्रिवाङ्कुर का पहाडियाँ) महान्द्र (पूर्वी घाट) और दक्षिण भारत क प्रायद्वीप का घेरन वाना अय अनक पवत थणिया।

गौतमापुत्र कवल एक महान्द्र विजता हा न था वरन् एक गणवान व्यक्ति भी था। नासिक अभिलेख म उसके गुणो का भा प्रचुरता से उल्लेख किया गया है। वह एक रूपवान् व्यक्ति था। उसका मुखमण्डल दाप्तमय तथा प्रभावपूर्ण था। उसकी चान सुन्दर तथा उसकी मुजायें लम्बा और बलिष्ठ थी। उसका स्वभाव अत्यन्त मद्दु और बरण था। समा का रक्षा करन की वह सब उद्यत रहता था। अपनी माता का वह एक आज्ञाकारा पुत्र था और विधातक शत्रु का भी चान पहचाने म वह चिन्तक का अनुभव करता था। वह गुणियो का आश्रयल्ला सीमाध्य का वासस्थान एक श्रेष्ठ व्यवहार का सात था। इन गुणा क साथ हा साथ उसम एक आदेश शासक के भा गुण विद्यमान थ। अपन प्रजाजना क सुख-दुख का वह अपन ही सुख दुख क समान समनता था। वह अपनी प्रजा पर आत्मकता से अधिक कर नहीं लगाता था और अपराधिया क साथ भा वह दयापूर्ण व्यवहार करता था। अभिलेख म गौतमी पुत्र शातकनि का इस बात का गौरव भा प्रदान किया गया है कि उसन अपन राज्य म ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान किया। उसन न कवल बौद्ध अनुष्ठाना का स्वाकार करके उहें प्रशानता म आपनु ब्राह्मण धर्म क लिए जा तत्व धानक थ उनक उन्मूलन का भा प्रयत्न किया। बौद्ध धर्म क प्रभाव और विदशिया क सम्पर्क क कारण, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वण और शूद्र इन चारा वर्णो म परस्पर जा वणसकरता उत्पन्न हो गई थी उसरी गौतमीपुत्र शातकनि न दूर किया।

कुछ विद्वाना क मत म गौतमीपुत्र शातकनि और भारतीय जनश्रुति क विक्रमादित्य एक ही व्यक्ति थ। परन्तु यह मत ग्रान्तिपूर्ण और निराधार प्रतीत होता है। राजना क विश्वमाम्थ्य और प्रातिष्ठान क मानिवाहन का नाक कथाआ म जा उल्लेख किया गया है उनम परस्पर स्पष्ट विभिन्नतायें हैं। इसन अतिरिक्त गौतमापुत्र शातकनि न किना सम्भत् का प्रचलन नहा किया कथाकि उसक उत्तराधिकारिया न किना भा सम्भत् का प्रयोग नहा किया आपनु अपन शासन-काल क वर्षों का म उल्लेख किया है। विश्वमाम्थ्य का विश्वम सम्भत् का सम्सापक बतलाया गया है। इस बात का हम बाद प्रमाण नहा प्राप्त होता कि गातमापुत्र न कथा भा विश्वमाम्थ्य की उपाधि धारण का था। उसक लिए अभिलेख म बर-वरण विश्वम चाण विक्रम विशषण का प्रयोग किया गया है परन्तु इस विशषण और बल तथा शीघ्र क सूचक विश्वम विश्वमाम्थ्य म

१ यतिमदपमानमदनस सस्यधनपहनपनिमूनवनस परवरातयसनिरयसेसकरस सातपाहन कुलयसपति थापनकरस।

वाँ सम्बन्ध नहीं है। इसी प्रकार इस विचार में भी कोई तथ्य नहीं है कि वह नागजन का समयकालीन सातवाहन नरेश था। जनसाग ने जिस अनश्रुति का उल्लेख किया है उसमें इस राजा के लिए यह कहा गया है कि उसका अधिकार कोसल प्रदेश पर था। परन्तु गौतमीपुत्र शातकर्णिक का राज्य में कोसल किसी भी प्रकार सम्मिलित नहीं था। कुविद्वानों का यह कथन कि गौतमीपुत्र ने अपने पुत्रवाशिष्ठीय पुत्र पुलमावी के माथ-माथ शासन किया पवन तर्कों द्वारा सम्मत एवं प्रमाणित नहीं प्राप्त हुआ। इस ऐसे सिद्धके प्राप्त नहीं होत जिनमें गौतमीपुत्र और वाशिष्ठीयपुत्र का माथ-माथ उल्लेख किया गया हो और टाण्डीय व भगोल में प्रतिष्ठान को केवल पुनमावी की ही राजधानी कहा गया है जिसमें सम्मिलित शासन वाता उपयोग्य मत अत्यधिक असम्भाव्य प्रतीत होता है।<sup>१</sup>

वाशिष्ठीयपुत्र श्री पुलमावी—गौतमीपुत्र शातकर्णिक के पश्चात् उसका पुत्र श्री पुनमावी १३ ईस्वीय मन के लगभग सिंहासनारूढ हुआ। उसका शासनकाल लगभग पन्द्रह वर्षों तक रहा। पुनमावी भी अपने पिता की भाँति पराक्रमी और विजया था। उसने अपने पूर्वज शातकर्णिक प्रथम की विवाह-सम्बन्ध द्वारा मन्त्री स्थापित करने तथा मन्त्र विजया द्वारा अपनी स्थिति सुदृढ़ करने की नीति का अनुसरण किया। उसने उज्जयिनी व शक क्षत्रपट्टदामन का व यासविवाहकियाया। इस विवाह-सम्बन्ध द्वारा पुलमावी शक क्षत्रप व साथ चिरकारीन मन्त्री तो स्थापित नहीं कर सका तथापि उसे इसमें लाभ अवश्य हुआ। ट्टदामन व जनान्त वाले अभिलख मन्त्र यह स्पष्ट लिखा है कि उसने दक्षिणापथ व स्वामी कोट्ये वारयद्ध में पराजित किया परन्तु उसे नष्ट न करके उसने यश प्राप्त किया क्योंकि वह (पुनमावी) उसका निकट सम्बन्धी था।<sup>२</sup> वाशिष्ठीयपुत्र श्री पुनमावी ने सातवाहना का राजनीतिक प्रभुत्व आंध्र-देश तक फैलाया। उसके समय में सातवाहन वंश का गौरव अप्रतिहत न रह सका। सम्भवतः उसके शासन काल में शका के पवन हुआ जान व कारण मध्यभारत और गुजरात के प्रदेश फिर से सातवाहना व हाथ से निकल गये। वाशिष्ठीयपुत्र श्री पुनमावी लगभग १५५ ई० में मरा।

यन्त्री शातकर्णिक—यन्त्री शातकर्णिक अथवा श्रीयन्त्र शातकर्णिक सातवाहन वंश का अंतिम प्रनापी और शक्तिशाली नरेश था। उसका शासन काल लगभग १६५ ई० में १९५ ई० तक रहा। यन्त्री शातकर्णिक को अपने एक अंतिम प्रनापी पूर्वज गौतमीपुत्रशातकर्णिक की भाँति अपने वंश व मन्त्रिणित गौरवको पुनः प्रतिष्ठापित करने का गौरव प्राप्त है। याना और नामिक व जिना मजा अभिलख मित्रत है उनमें इस बात का विवरण है कि उसने अपना साम्राज्यसाम्राज्य का विस्तार किया। उसने सिक्कगजरात काठियावाड़ पूर्वोत्तर भागों परात (दक्षिण पठार का पूर्वी चोटा भाग) मध्य प्रांत एवं कृष्णा नदी के किनारे पर टूटे हैं। सिक्का व इन विस्तृत प्रदेशों में पाय जान के कारण हमारा यह धारणा नरमगत प्रतीत होता है कि यन्त्री शातकर्णिक का राज्य काफी दूर तक फैला था और उसका राज्य में महाराष्ट्र और आंध्रदेशों में सम्मिलित थे। उसने शका के मन्त्रियों की जनकृति पर अपने सिक्क वदवाय था। य चाँगी के सिक्क प्रभुत्व मात्रा में पाय गया है जिसमें डॉ० विमल मिश्र का अनुमान है कि यन्त्री शातकर्णिक ने उन प्रशासकों पर भी अपना अधिकार जमा लिया था जिनका शका ने कुछ ही दिनों पूर्व सातवाहना से हटा लिया था। गुजरात और सुराष्ट्र में भी प्रवेश था। कुविद्वानों का

<sup>१</sup> इस सम्पूर्ण विवेचनके लिए देखिए, *Age of Imperial Unity* pp 203-204

<sup>२</sup> दक्षिणापथपते सातकर्णिकोंद्विरपिनिर्याजमवर्जित्यावर्जित्यसम्बन्धवाविद्वुरतपाल  
इसादनत्प्राप्तयगाता।

विचार है कि यन्त्री एमा अकेला सातवाहन नरेण था जिसके अधिकार में महाराष्ट्र और आंध्र देश प्रदत्त थे। उसके शासन काल में व्यापार की भी काफी उन्नति हुई थी। उसके कुछ मित्रों पर जनयता व विभ्र आंकत हैं जो यह सूचित करते हैं कि यन्त्री के समय में सामुद्रिक व्यापार काफी उन्नतिमान दशा में था।

सातवाहनों का पतन—यन्त्री शासकणिक उपरान्त सातवाहनों की राजनतिक प्रभता निरान्ति क्षाण हुआ गद। उसके उत्तराधिकारिया में स सभी निबल जकमण्य तथा अयाग्य निकत। इम समय आवश्यकता था किभी यौनमा पुत्र शातकणि का जो अपन वश क युष्ण गौरव का फिर स प्रतिष्ठित करता परन्तु सातवाहनों के तुभाग्य स यन्त्री क उत्तराधिकारिया में म कोई भी उनक या यौनमीपुत्र क समान पराक्रम तथा योग्य नहा हुआ। कुछ पुराणा क अनुसार यन्त्री क उत्तराधिकारा थे—विजय (२०२-०९ म ० ००) चन्धी या चन्धी (२०९-१९ स ० ३०)। ये दोनों कवल नाम क ही राजा थे। वास्तविक सत्ता उनके हाथों में केंद्रित नहा रह गई थी। किमी प्रकार ये सातवाहनों का क्षाण शक्ति का प्रतिनिधित्व करते रहे परन्तु सन् २२५ ई० के लगभग सातवाहन वंश का दीपक का समय तक काफी हलप्रम हो चुका था। विशा आक्रमण कारिया क प्रबल स्यावात में पत्कर बिस्कुल ही बच गया। सातवाहन वंश की कुछ शाखायें किन्हा प्रभा पर शासन वात् में भी करती रहीं परन्तु वे का मूल गौरव युष्ण हा गया।

सातवाहन साम्राज्य क पतन क कार्द नवान या विस्मयकारक कारण नहा ये। उत्तराधिकारिया का निबलता एव अयाग्यता शासन प्रतिनिधिया का उत्तरदायित्व हानना एव अपन स्वतंत्र राय स्यापित करने की तिष्ठा तथा शासन-व्यवस्था की शिथिलता इन सब कारणों से सातवाहनों की शक्ति खोखला हा गई। हम यह एक चक है कि अपन साम्राज्य निमाण के शहर वात् स ही सातवाहन नरेण का एक प्रबल बिष्ठी शक्ति, शका स लाहा देना परा था। इस समय क कारण अकम उनकी जन धन और समय शक्ति का हानि हुई होगी। उनका ध्यान उतन अवाय रूप में शासन-व्यवस्था को सुत् करने का आर न गया हागा जितना कि किमा राजवश क गौरव का विरस्थापा दमान क लिए अभिनत तथा आवश्यक हाता है। जब कभी योग्य शासन का अभाव हुआ आक्रमणकारिया का वन आर् जोर उहाने अपन हाथ बलान शर कर दिए। अर र। य क सामता और राज्य प्रतिनिधिया (Vicere) ने रायपित जोर दगहित को गौण समय कर अपना अपना स्वतंत्र धायित करक अपन अपन मन्त्र राय स्यापित कर दिए। इम प्रकार आन्तरिक शासन की दुबलता और बाह्य आक्रमण ने निबल सातवाहन वंश का रायपा का उन्मूलित कर दिया। सातवाहनों क वात् क्षाण में नई राजनीतिक शक्तिमा का उदय हुआ। ये शक्तिमा था महाराष्ट्र में आमार की शक्ति और पूर्वी दक्षिण में इक्ष्वाकुशा और पल्लवा का शक्ति।

सातवाहनों के समय में शक्ति की सभ्यता और मस्कृति—

सातवाहनों का शासन काल में सभ्यता और मस्कृति

प्रधान सातवाहन

मीमायें।

यन्त्री का

यन्त्री का शासन काल में सभ्यता और मस्कृति थी। इम समय दक्षिण का सामाजिक जीवन किम प्रकार का था उनका धार्मिक एव आध्यात्मिक चेतना में कौन-सी प्रवृत्ति प्रमुख रूप

स विद्यमान थी उमक जीवन की अधिक स्थिति सुट्ठी थी जथवा निम्न जीर उम साहित्य मजन का काय एव कलाओं का उपासना नो रही थी जथवा नहा इन मव विषयों का विवरण हम सरलतापूर्वक प्राप्त हो जाता है। सातवाहन नरशा क अनक अभिलष तथा कतिपय साहित्यिक साध्य इन विषयों पर प्रचुर प्रकाश डालत है। आभिलषिक एव साहित्यिक साधना का सहायता म हम सातवाहन युग का सांस्कृतिक समृद्धि जीर सम्यता की प्रगति का सहज ही अनुमान कर सकत हैं। सबप्रथम म सामाजिक जीवन का ही लत है।

सामाजिक जीवन—सातवाहन युग की दक्षिणी समान की अवस्था का अध्ययन करन म हम कतिपय विशेषतायें स्पष्टतया द्ष्टगत हाना हैं। प्रथम विशेषता है, स्त्रा का सम्मानपूर्ण स्थान। सातवाहनयुगान दक्षिण भारत के सामाजिक जीवन म नारिया का एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। आवश्यकता पन पर व शासनसूत्र नी अपन हाथा ग्रहण करना था। शातकणि प्रथम की पत्नी ने अपनी पति की मृत्यु के बाद पुत्रा क अल्पवयस्क होने क कारण स्वयं राज्यसंचालन का काय किया था। गौतमीपुत्र वाशिष्ठीपुत्र माठरापुत्र आदि मातपरक उपाधिया इस बात का सकेत करती हैं कि समाज म स्त्रिया की जादर का द्ष्ट स देखा जाता था। व अपन पतिया क साथ धार्मिक कार्यो म सहप भाग लती थी। नायानिका क नानाघाट अभिलष म इस बात का उल्लेख प्राप्त होता है कि उमन अपन पति क साथ अश्वमेध यना म भाग लिया था। अभिलषा म जिन रानिया ना उल्लेख किया गया है उनके प्रति प्रभत जादर और सम्मान प्रकृत किया गया है। माता क रूप म स्त्री का बहुत अधिक सम्मान किया जाना था। बधव्य का जीवन व्यतात करन पर नी उस यत्रणाम नही सहन करती प ताथा। नार्मिक क एक लय स इस बात का विवरण प्राप्त होता है कि एक पवित्र विधवा किस प्रकार का जीवन व्यतात करता था। गौतमा बालथा क त्रिण कहा गया है कि वह सत्य दान धय एव जावानुकम्पा आदि गुणा स आनंद प्राप्त करता था। तपस्वर्या जात्म नियंत्रण और सुज्ञापयोगो से विरक्ति उसके चरित्र क उदकन गुण थ। उसके पुत्र का इस बात के लिए बहुत अधिक पशमा का गन है कि वह अपना जनना क प्रति सत्क आज्ञाकारिता प्रदर्शित करता था।

जाप्रा क युग की सामाजिक अवस्था का विशयता इस बात म भा था कि यह सामाजिक जीवन व्यय के नियंत्रणा द्वारा बाधित नहा बना दिया गया था। सातवाहन नरेश ब्राह्मण थ और ब्राह्मण धम क पुनरुत्थान क लिए सचेष्ट भा थ। वर्णोत्थम धम क प्रचारा क त्रिण भा व प्रयत्नशांते थ। गौतमीपुत्र शातकणि क त्रिण यत् आनि त्रिक साध्य प्राप्त हाता है कि उसन चारा वर्णों का पारस्परिक वणसंकरता का दूर करन का प्रयत्न किया। क्षत्रियत्पमानत्नस विशयण स एसा प्रतात होता है कि क्षत्रिया क प्रति उसके हृदय म कुछ विराध भावना विद्यमान थी। यह क्षत्रिय विराधिता आर भा वधिक स्पष्ट रूप म हमार सम्मस बाता ह जब हम गौतमापुत्र की द्विजा (ब्राह्मणा) और जवरा (छात्रा जानिया अत्यजा) का अपना विशिष्ट श्रुपा का पात्र नमपत हुए दंत है। गौतमापुत्र का क्षत्रिया का तना विराधा क्या त्रिण नाया गया ह इमका एक प्रबत कारण हमारा समय म जाता है। उस समय शक पल्लव और यवन आनि जानिया क्षत्रिय वण म प्रचरतास प्रवश पा चुका था जिसस ब्राह्मण स्मृतिकारा की द्ष्टि म क्षत्रिया का तम विगुडता बाधा दूषित हो चुका था। ब्राह्मण धम क कट्टर अनयाया गौतमीपुत्र न विरानिया की अपनी जानि म मिताने

का काम अनिश्चित समझा जीर वणसवरता का दूर करन का प्रयत्न भी किया। किन्तु व्यवहार में सातवाहन नरशा ने ऐसा ही किया जोर इसमें उन्हें सफलता प्राप्त हुई यह बड़े सक्ता असम्भव प्रतीत होता है। सातवाहन राजाजा ने ब्राह्मण कथाओं से विवाह करके इस बात का प्रमाण प्रस्तुत किया कि स्मृतिकारों के सद्दर्शनिक निरि-निषेधा का स्वप्न ही माय नहीं समझा जा सकता। स्वयं गौतमीपुत्र के पूर्वज शात-कणि प्रथम ने जिसके लिए यह कहा जा सकता है कि उसने सातवाहन वंश के गौरव का नाव डाला एक जमीयकुत्र के महारथी प्रयत्नकरा का दुहिता नायानिका से विवाह किया था। वाशिष्ठीपुत्र श्री पुत्रुमावा ने शकराजकथा से विवाह किया था। इन दो प्रमाणों के आधार पर यह कहना समाचीन प्रतीत होता है कि अतर्जातीय विवाह प्रचलित थे और वण सम्बन्धी नियमों में व्यवहारिक रूप में विशेष जटिलताएँ नहीं थी पाई थीं। एक अन्य बात से भी हम युग के सामाजिक जीवन का विनमनशीलता और उदारता का परिचय प्राप्त होता है। वस यह युग स्मृतिकारों का था जो अनक नियमों और निमन्त्रणा से जीवन को जटिल बना रहे थे। इन नियमों और निमन्त्रणा में से समुद्र यात्रा पर निषेध भी एक था। परन्तु सातवाहन युग के समाज ने जीवन में बृहस्पण्डकता लाने वाले इस नियम को स्वीकार नहीं किया।

चारों वर्णों के आधार पर समाज का विभाजन यहाँ के सामाजिक जीवन की विशेषता थी। सातवाहन राजाजा के उत्तराण अभिनवा महाह्मण क्षत्रिय वंश और गूढ़ इन चार वर्णों का उल्लेख पाया जाता है। परन्तु 'यवसाय के आधार' पर अन्य जनक जातियाँ भी उत्पन्न हो गई थी जिनका विकरण हम समकालीन अभिलेखा में प्राप्त होता है। इन्हीं अभिलेखा से हम यह भी विदित होता है कि समाज में किस वग का स्थान अधिक उच्च था और किस वग का निम्न। समाज में चतुर्वर्ण्य की व्यवस्था तो थी ही और ब्राह्मणों का सम्मान भी सबसे अधिक किया जाता था किन्तु व्यवसाय के आधार पर सामाजिक सम्मान के विभिन्न स्तरों की सूचना भी हम इन अभिलेखा द्वारा प्राप्त होती है। सबसे ऊँचा स्थान अधिगत करनवाला वग महारथिया, (महाराष्ट्रिका) महामाजा एवं महासेनापतियों का था। जमात्य महामात्र और महाभाण्डागारिक आदि राजपदाधिकारियों का उग सामाजिक सम्मान का दृष्टि से द्वितीय पंक्ति था। इसी वग में निगम (श्रष्टिगण) साधवाह (यापारी गण) और श्रेष्ठिन् भी सम्मिलित थे। निगम एक साधारण व्यापारी तथा साधवाह सौदागरों के एक क्लिष्ट का संगठन होता था। श्रेष्ठिन् से अभिप्राय श्रेष्ठिमुख्य में था। इक्ष्णु और आयररण के नगर की व्यवस्था के अधिकारी आल्डरमन (Alderman) की नाति साधवाह का काम नगरों की व्यवस्था और देखरेख करना था। तीसरे वग में बंध लानक (राजकीय अथवा स्वतंत्र) सुवर्णकार गायिक हालकीय (वृषक) आदि सम्मिलित थे। मालानकर (माला) वर्षकौ (बढई) साहवाणिज्य (गुहार) एवं दास्तक (मध्य) इत्यादि पेशवरों से चतुर्थ वग की रचना होती थी। सामाजिक सम्मान की दृष्टि से यह चतुर्थ वग सबसे निम्न स्तर का था। समाज की इकाई कुटुम्ब होती थी। इसका अध्ययन का कुटुम्बिन कहते थे। कुटुम्बिन का परिवार के अन्य सदस्य काफ़ी सम्मान करते थे और उसकी आनाजा को शिरानाय करने के लिए गुरु प्रस्तुत रहते थे।

यदि हम किसी साहित्य ग्रंथ का इस युग की सामाजिक परिस्थितियों का दिग्दर्शक मानें तो हालहृत गायी सप्तशती से हम इस दिशा में काफ़ी महत्प्रता प्राप्त कर सकते हैं। इस ग्रंथ में हम इस समय के सामाजिक जीवन के अत्यन्त मनोरम और हृदयग्राही

चित्र मिलते हैं। कवि कल्पना से मित होने पर भाये चित्र उस समय के लोकजावन के पथायवाणी पक्ष की अभिव्यक्ति करते हैं। सरस पत्नी के इस मकलन में मानव के इहलोकपरक जीवन की ही प्रधानता प्राप्त है। न तो कहीं वेदिका का चर्चा है और न यज्ञ का जिक्र। ममूक्षा का वात वरण भी कहीं नहीं दृष्टिगत होता। गंधा मन् शती की पत्नकर यह आभास होता है कि समाज के निम्न स्तर के लोगो का जीवन भी सुखपूर्ण होता था। उन्हें किसी प्रकार का यत्रणा महन नहा करनी पता थी। इस प्रथम मनुष्य के शृंगारमय पक्ष का जो वर्णन किया गया है उससे जीवन के प्रति एक स्वस्थ और आशावाणी दृष्टिकोण का परिचय प्राप्त होता है।

**धार्मिक अवस्था**—सातवाहन युग के दक्षिणी भारत की धार्मिक विचारधारा अत्यंत उदार और सहिष्णु थी। यद्यपि लगभग सभी सातवाहन नरेश ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे तथापि उन्होंने जय धमावलम्बियों के प्रति किसी प्रकार का अत्याचार नहीं किया। उन्होंने बौद्ध धर्म का अपन राय में पत्तन फूलने का पूरा अवसर प्रदान किया। उनके शासन का म बौद्धधर्म का काफी अधिक प्रचार था और कला के क्षेत्र में बौद्धों ने अपना महत्वपूर्ण योग भी दिया। इस बात के लिए अनक प्रमाण हैं कि धनी उपासका न बौद्ध भिक्षुओं के लिए चत्त्या और दरीगहा का निमाण कराया था। वे भिक्षुओं के लिये एक अच्छी रकम जमा कर देते थे जिसके लिये स बौद्ध विहारों को काफी आमदनी होता था। कमी कमी भिक्षुओं की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए धनार्थ योग गाव दान कर देते थे। इस बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध धर्म का लोगो के ऊपर काफी गहरा प्रभाव था।

सातवाहन-युग में ब्राह्मण धर्म का बहुत अधिक प्रचार था। जमा कि पत्तन बना जा चुका है सम्भवतः समस्त सातवाहन नरेश ब्राह्मण धर्म के कट्टर अनुयायी थे और इस धर्म के पुनरुत्थान के लिए उन्होंने अनेक प्रयत्न भी किये। मौर्य साम्राज्य के पतन के पचास पुष्यमित्र युग में बौद्ध धर्म का अतिशय अहिंसावादिता और राजनीतिक चिन्ताशून्यता के विरुद्ध जा प्रतिक्रिया प्रारम्भ की उसका प्रतिफल धार्मिक क्षेत्र में हम बौद्धिक यज्ञ के मोहमात् जनलान में ही देखते हैं। बौद्धिक प्रतिक्रिया का प्रबल समर्थन सातवाहन राजाओं ने भी दिया। अवमेष यज्ञ ता किये ही गये बीस प्रकार के अय यज्ञों का भी उल्लेख मिलता है। जय यज्ञ में गवामयनम अग्न्याध्वेय 'राज सृय आप्तोर्याम जागिरमायनम शतानिरात्र जाति थ। यज्ञो म ब्राह्मणों का विपुल दक्षिणा प्राप्त होती थी।

बौद्धिक कमकाण्ड प्रदान श्राद्धण धर्म साथ शव और के वण्णव धर्मों की भा वत्त

अधिक बढ़ गया। प्राक्कर मण्डारकर का कथन है कि सातवाहन युग के अभिनवा म गोपात्र विष्णुदत्त विष्णुपानित शृष्ण आदि नामों का उल्लेख मिलता है उससे पता चलता है कि इस समय वण्णव धर्म का बहुत व्यापक प्रचार था। नामों के आधार पर मण्डारकर मान्य न धार्मिक अवस्था के विषय में अय अनुमान भी किये हैं।



# यशोमयः

ब्राह्मण साम्राज्य

३७३

## ना दर्शन

कर्म अनिराज्यं न हागा।  
 पुनर पुनरामिक घटनाओं म  
 एनर आन से वर पर एक लम्बा  
 । यथा मंगलपुत्र गुणवत् कर्मिक  
 शा म य छ लिन मनाया जाता है  
 व लिन साधारणत अन्वय इमका  
 न तक रहता है ता कहीं मात्र तान  
 १) भारतपर दर्शा मिजा प्रिलिग

शिवधाम, शिवपालित शिवमूर्ति शिवदात मवगाप  
 रिताक्षित होता है कि दक्षिण म शवधर्मानुयायिया की  
 १) भारतपर का यह अनुमान बिनुकुल ठीक प्रतीत होता  
 भार वैष्णव धम स भी अधिक था। नामा क आधार  
 गुरु धर्ते है कि शिव क वाहन नदिन स्क दतया नाग का  
 कुवर वर, ऋषभदात इत्यादि नाम नदिन-पूजा का हा मकत  
 वत श्रीनासित गयस्कर्त्तल, और शिवम्ब-दगुप्त आदि नाम  
 ही ससाक्षा भी पूजा स्वतंत्र रूप स अथवा शिव क साथ हा  
 ह अता ल जस नाम नागपूजा क धानक है।  
 और म जा वि

जीवन का अध्ययन करत समय यह दम चुक ह कि विदशा जातियां शक पह्ले व  
 बग स हिन्दुजा का सामाजिक रचना म प्रवेश पा रह थ। यह इसलिय मम्मव हा सका  
 कि उन्हान हिन्दू धम ग्रहण कर लिया और तत्कालिन धर्माचार्यों न उनक डम कण  
 का स्वाकार भी कर लिया। शग वश क शासन कार  
 भागवत धम स्वाकार करत  
 कर लन का यह  
 पर अपन नाम म

अभिलता म स्थान-स्थान पर चत्या और विहाग क दान क सम्ब ध म यवना का नाम  
 आया है। कानों अभिलख क टा यवना म एक का नाम मीन्धाय (हिहध्वज) और  
 दूसर का धम मिलता है। जुप्रर म तान का उल्लख हुआ है—इसिल चिट (चित्र)  
 एव चद्र। नासिक म कवल एक यवन का नाम जचित है—धमदव का पुत्र इन्द्राग्नि  
 दत्त। इन समा यवना न बौद्ध धम म उपासक व ग्रहण कर रक्वा था और एक का  
 छा कर समी न हिन्दू नाम नी रन लिय थ। विदशिया का भारतीय धर्मो म  
 दाक्षित कर लिया जाना वार विभिन्न धर्मावतम्बिया का एक दूसरे क प्रति तोहाद्र  
 तथा सहिष्णता प्रदर्शित करना निस्सन्दह भारत का धार्मिक चतना का हमारे सम्मुख  
 एक अत्यन्त दिग् और उज्ज्वल पथ रवते है।

आर्थिक व्यवस्था—मातवाहना क मुनीयकालान शासन म दक्षिण आर्थिक दृष्टि  
 स सम्पन्न व समृद्ध था। लाग का आधिक जीवन विभिन्न क्रिया कलापा स युक्त हान  
 क कारण अत्यत समृद्धिशाता था। हम युग क जमिनाता द्वारा लाग क आर्थिक  
 जीवन पर मा काफी प्रकाश प ता है। कृषि उद्योग व ध और यापार म तीन ही  
 समाज का आर्थिक व्यवस्था क अंग है और सातवाहन कार का दक्षिण इन तीना दृष्टियों  
 स सम्पन्न था। आर्थिक जीवन वस समय मी प्रमग्यतया कृषि पर हा अवतम्बित था  
 परनु उद्योग धर्या और यापार की मी बन्ग अनिक उन्नति हुई। विभिन्न व्यवसायिया  
 न अपना-अपनी ध्रणियां संगठित कर ना थी। यदि यह कहा जाय कि इस समय क  
 आर्थिक जीवन की प्रमुख विशेषता था ध्रणिया का संगठन—ना अत्युक्ति न हागा।  
 कई ध्रणिया क उल्लख मिलते हैं—घजिक (अप्रविक्रता) कुम्हार कानिक निकाय  
 (जुनाह), तिलपिपक (तली) कासावर (काम क वतन इत्यादि बनानवाले) धमकार

१ प्रोफसर एन० एन० घोष द्वारा उदघत, भारत का प्राचीन इतिहास,  
 पृष्ठ, २२७

(धाम की वस्तुयें बनानेवाले)। इन धणियों के विषय में प्रोफसर एन० एन घाप का कथन है—एस अनेक निकायों का उल्लेख जातक ग्रन्थ में मिलता है जो ईसा पूर्व छठी शताब्दी के सामाजिक जीवन का दिग्दर्शन कराते हैं। इससे यह साफ निष्कर्ष निकलता है कि छठवा शताब्दी ई० पू० से लेकर तीसरी शताब्दी ई तक उत्तर और दक्षिण भारत दोनों निकायों से परिपूर्ण थे। शिल्पियों के इन निकायों की बहुलता इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि भारत में स्वाम्यशासन सम्बन्धी समस्यायें साधारण सी बात मानी जाती थी और उनका काफी प्रभाव था। धणियों केवल शिल्पियों का निकाय ही नहीं था बल्कि उनमें कुछ आधुनिक बका का भी काम निकलता था क्योंकि लोग उनमें धन जमाकर उस पर 'याज' वसूल करते थे। यहाँ तक कि बहुधा उनमें जाजावन सम्पत्ति बना दान की व्यवस्था थी जिस अन्वय नीवि कहते हैं। उपवदात न एस हा तो अक्षय नीवि दो कानिक नियमों तथा धेणियों को प्रदान कर रखते थे जिसमें से पहला कपास वस्त्र (चीवरिकानि) तयार करने के नियम और दूसरा भाजन का साधारण आवश्यकताओं (कृपात्र) की प्रति के नियम थे। मन्त्रा का वस्तुता से प्रचलन गौना भा इस युग की जाधिक समृद्धि को सूचित करता है। कई प्रकार के सिक्का का प्रचार था। सबसे अधिक मय्य क सिक्का को मुवण कहा जाता था जिसका मूल्य चाण्ड के २५ कार्पाण के बराबर होता था। इसके बाद चाण्ड का एक दूसरा सिक्का गौना था जिसे कृपण कहते थे। कार्पाण चाण्ड और तौब के सबसे छोटे सिक्के होते थे जिनको लोग साधारण व्यवहार में प्रयुक्त करते थे। 'याज' पर रुपये उधार देने की प्रथा विद्यमान था इसका उल्लेख पीछ किया जा चुका है। उपवदात के ७१ निकायों का अक्षय नीवि में एक पर १२% वार्षिक 'याज' दर और दूसरे पर १०% वार्षिक 'याज' होता था। यदि 'याज' की आधुनिक दर से हम इस दर की तुलना करते हैं तो निस्सन्देह यह कुछ अधिक प्रतीत होती है परन्तु सम्भवतः प्राचीन भारत में इसे अधिक नहीं समझा जाता था।

सातवाहन युग में दक्षिण भारत में आन्तरिक और बाह्य दोनों प्रकार के व्यापार उन्नतिशील अवस्था में थे। व्यापार की सुविधा के लिए देश के विभिन्न भागों में राजमार्गों की समन्वित व्यवस्था थी। अनेक सड़कें बनी हुई थी जिनके द्वारा व्यापारियों के कार्पण अपनी अपनी सामग्रियों के साथ देश के एक भाग में दूसरे भाग तक पहुँचा सकते थे। दक्षिण भारत में पठन नगर नासिक जम्नार कर्णटक (करहाड) आदि व्यापार के प्रसिद्ध केंद्र थे। ये नगर राजमार्गों द्वारा एक दूसरे से मिले हुए थे। विदेशी व्यापार भी काफी समृद्ध अवस्था में था। पारसिया जगत के साथ दक्षिण भारत का व्यापारिक सम्बन्ध था। इस व्यापारिक सम्बन्ध पर एरथ सागर की परिचयना (Periplus of the Erythraean Sea) नामक ग्रन्थ द्वारा प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इस व्यापार और कल्याण प्रसिद्ध बन्दरगाह में जहाँ से व्यापारी जलयानों में बैठकर व्यापारिक यात्रायें किया करते थे। विदेशी व्यापार से देश की काफी लाभ हुआ था।

शासन व्यवस्था—सातवाहन युग की शासन व्यवस्था के विषय में हमें समन्वित जमिन्दागी का विशेष विवरण प्राप्त नहीं होता। सातवाहन नरेश ब्राह्मण धर्म के कट्टर अनुयायी थे जिसमें यन्माचना अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता कि उनकी शासन व्यवस्था में कुछ बमाला रण गणा जमा कि तत्कालीन स्मृति ग्रन्थों में जाण्ड रूप बनना पड़े है। इसमें कोई संदेह नहीं कि स्मृतिग्रन्थों का छाप सातवाहन नरेशों की शासन व्यवस्था पर पड़ा था। मौर्यकालीन शासन-व्यवस्था का प्रभाव भी सिन्धुसिद्ध

पता है। राजत्व के सिद्धान्तों में इस समय बने हुए कुछ परिवर्तन उपस्थित हो गया रहा है। परन्तु मूल भावना बहुत कुछ मौखिक युग का भी थी। अथवा मन्त्रिकों के समय का कि राजा को नौकराने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। उस युग के नरेश भी पालन करने थे। अर्थात् वे अपना प्रजा का मन्तान-तुल्य समझना इस काल के राजा का भी आशय था। यह बात हम गौतमपुत्र के मन्त्रिकों में पा सकते हैं। जिन प्रान्तों पर यवनादि और मारिचकादि का आधिपत्य रहा था उनमें अर्थात् द्वारा माय शासन प्रणाली भी प्रचलित थी। राज्य शासन का जिसके नियम सम्बन्धित जयविद्या प्रपञ्च किया गया है उस समय विविध अध्ययन किया जाता था जो अमिलता में राजकुमारों की शिक्षा-शिक्षा उच्च पदाधिकारियों का नियुक्ति के नियमों आवश्यक सामान्यता पर आग्रह मंत्रियों का वर्गीकरण नगरपालिका तथा ग्रामपालिका के हित-संरक्षण और संवर्द्धन तथा कर विधि और प्राण्य आदि करों का संग्रहण करना आदि बातों का जो विवरण प्राप्त होता है उस पर निम्नलिखित ही अध्ययन का प्रभाव स्पष्ट पता है। मौखिक शासन प्रणाली की भाँति इस युग का राज्य मन्त्रियों में भी नौकराने प्रधान स्वायत्त मन्त्रियों की उपस्था नही का गयी थी। व्यवसायिक निकायों का बहुरता में इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि सातवाहन शासन स्वायत्त मन्त्रियों का भरोसा भाँति सम्बन्धित था।

सातवाहन युग में मन्त्रिपरिषद् की व्यवस्था थी। मंत्रियों का इस समय पदों की अपेक्षा कुछ अधिक सम्मान और अधिकार प्राप्त था। स्त्रियमन के जनानों का अभिलक्षण में मन्त्रिपरिषद् की चर्चा कुछ विस्तार के साथ मिलता है। उत्तरा पश्चिमी भारत की राज्य मन्त्रियों में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये बर्याकि यहाँ पर कितने भी वर्षों तक विदेशी आक्रमणकारियों का शासन बना रहा। प्रान्तीय शासन की व्यवस्था इसी प्रकार के एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का निर्देशन करती है। तन्मशिता मधुरा उज्जैन तथा अन्य कई स्थानों में फारसी युग के पत्रों की नियुक्ति की गयी थी। कुछ क्षत्रप राजकाय में मंत्रियों का परामर्श किया करते थे। परन्तु अन्तिकक्षत्रपों का शासन विलुप्त होय शासन का सा था। सातवाहन नरेश अपने राज्य में जिलाधिकारियों की जो नियुक्ति करते थे उस पर मन्त्रिपरिषद् प्रणाली की उस व्यवस्था पर System of military governors का प्रभाव स्पष्टतया स्पष्ट पता है। जिलाधिकारियों को महासनापति कहा जाता था।

ऊपर हमने इस बात का संकेत किया है कि सातवाहन शासन व्यवस्था में स्वायत्त शासन का समचित स्थान प्राप्त था। यद्यपि इस युग में कर्नाटकी मन्त्रिक शासन का प्रचलन था तथापि वहाँ भी स्वायत्त शासन की सम्पूर्ण पूर्णरूप में नहीं पायी जाती है। नगर सभाओं और नगरपालिका नामक अधिकारियों के उल्लेख काफी प्रचलन में प्राप्त होते हैं। इनका माध्यम हम मौखिक युग की नगरशासन व्यवस्था के साथ स्थापित कर सकते हैं जिसके सम्बन्ध में हम 'नगर विधानिका' का नाम सुनते हैं। नगर विधानिका की भाँति ग्रामपालिका का भी शासन की प्रचलन सुविधार्थ उपन्यास था। इस काल में गाँव का मन्त्रियों का ग्राम शासन का अध्ययन होता था और कई पदाधिकारियों की महासनापति में शासन-कार्यों का संचालन करता था। गाँवों में ग्राम सभाएँ होती थी जिनके माध्यम में राजाओं और ग्रामपालिका के बीच सम्बन्ध स्थापित होता था। सातवाहन युग के अभिलेखों में इस बात का ता स्पष्ट प्रमाण मिल जाता है कि ग्राम धनी निगम तथा जनपद के अपने अपने विधायक हाते थे जिनके बन्ध

अधिकार तथा उत्तरदायित्व एक दूसरे से बाफा भिन्न होते थे। ही एक बात अवश्य है कि कृतव्यो और उत्तरदायित्वा के सम्बन्ध में स्वशासन मूलक एक सद्भावितक समानता तथा एकरूपता हाता थी।

**कला और साहित्य**—कला का विकास और साहित्य-मजन का दाल स सात वाहन-यग महत्वशून्य नही था। जसा कि हम ऊपर बहू आय ह बौद्ध धर्म न इस यग का कलात्मक प्रगति का जन्म दिया। अधिकतर रूप में इस समय वास्तु कला की ही उन्नति हुई। गुहा मंदिरा एव सलयरा (शतगुहा) क रूप में वास्तु कला का बहुत अधिक विकास हुआ। दाल में लगभग जितने भी शतगुहा और गुण मन्दिर इस समय मिल है उन सब का निर्माण सम्भवतः सातवाहनयुगमें ही हुआ था। चलयगह जयवा मन्दिर और नयन या निलजा क आवाम क रूप में गुहाय दो प्रकार की बनान जाती थी। नासिक कारल और भाजा में गुहा विहार और गुहा चलय क अत्यन्त सुन्दर भवनों का निर्माण सातवाहन युग में ही हुआ था। सातवाहन नरश प्राप्त भाषा क परिपोषक और प्राप्त कविया क आश्रयदाता थे। उनक सभी अभिनय प्राकृत भाषा में उल्काण है। उनक शासन काल में प्राकृत भाषा और साहित्य का बन्ध अधिक उन्नति हुई। हान नामक सातवाहन राजा स्वयं प्राकृत का एक रससिद्ध कवि था। उमन प्रसिद्ध काय गाथा सप्तशती का उन्नत पीछ किया जा चुका है। उमा का राजसभा में गुणा घ नामक सुविख्यात नखक रता था जिनमें बरकथा नामक ग्रथ का प्रणयन किया था। यह ग्रथ पशावा प्राकृत में लिखा गया है और मनारञ्जक तथा विचित्र कथाका का विशान भण्डार है। एतन महोदय क कथनानुसार कातत्र नामक या करण ग्रन्थ की रचना सबवमन न इसा समय क लगभग की थी। इस युग में मन्वु ग्रथा क प्रणयन का हम कोई सुस्पष्ट विवरण नहीं प्राप्त होता किन्तु इस काल कात प्राकृत रचनाआ पर सरकृत की छाप स्पष्टतया परिचयित होता है।

### कलिङ्गराज खारवल

प्राचीन भारत में कर्निग का शाय अत्यन्त समद्ध था। इस राज्य का बम्पा तथा जय नगरिया का समद्धि का वणन जातका में मिलता है। कर्निग राज्य में पुरी और गजाम क जिन कर्क का कुछ भाग तथा उत्तर और उत्तर पश्चिम क कुछ प्रदेश सम्मिलित थे। दाल भारत क आधुनिक तेनग भाषा भाषी प्रात का कुछ भाग भी उसक अन्तगत था। नर मगटा का कर्निग देश पर अधिकार था। कुछ इतिहासकारों की सम्मति में मीय सम्राट चण्डगुप्त क साम्राज्य में भा कर्निग का राज्य सम्मिलित था। किन्तु उसका मत्य क अनंतर कर्निगवासिया न विद्राह कर लिया और स्वाय विजय का विवरण प्राचीन भारत क इतिहास की एक अत्यन्त चिरपरिचित घटनाआ में से है। कर्निग देश क रतवान अपना स्वतन्त्रता क दण अनुगगा था जिस कारण बन् मन्त्र जन शक्ति क बाट ही अशाक उनका अपन अधीन करने में सफल न सका। मीयों क समय में कर्निग तथा सम्भवतः दो भाषा में विभक्त कर दिया गया था। यह विभाजन शासन मन्वची मुविधाआ क दालिकोण से हा किया गया रहा होगा। अशाक क बाट कर्निग का क्या हा न हुआ यह स्पष्ट पान नहा परन्तु अनुमान करने ठाक प्रमान होता है कि यह एक स्वतन्त्र राज्य हा गया। अशाक की मत्यु क अनंतर ईसा का प्रथम शती पूर्व मगध साम्राज्य क जो शत्र उठ खडे हुए थे उनमें से कर्निग का राज्य भी एक प्रबल शत्र था। हाथा गुम्फा अभिलेख से हम यह ज्ञात हाता है कि जिस समय पश्चिम में शातकणि राज्य कर रहा था कर्निगाधिपति खारवल न उत्तरा

भारत में अपनी सेना लेजाकर राजगृह में राजाको पददलित किया। यह पारवल चेदि-  
वश में महामघवाहन परिवार का था। श्री ११०० पा० च० के निर्देशानुसार, चन  
राजकुमारका उत्तलेव वेम्भतर जातक में किया गया है। मलिदपण्णो में एक कथन  
में यह मालूम होता है कि चेत लोग चदि या चंति वश में सम्बन्धित थे। इस प्रथम  
में चन राजा सूर में विषय में जो बातें बताई गई हैं वे चदि नरेश उपरिचार के विषय  
में हमें जो कुछ जानने हैं उनसे काफी मिलता है। अशाक की मृत्यु के बाद स  
चंति राजवश में उत्थान तक में समय का कलिग का इतिहास तिमराच्छत्र है।  
सम्भवतः ईसा की प्रथम शताब्दी पूर्व में ही (नन्द्य में तान मी वर्षों उपरांत) चंति  
वश का कलिग राज्य पर अधिकार हुआ। हायागुम्फा अभिलेख में प्रथम दो चदि  
सम्राटों के नाम स्पष्टतया नहीं मिलते। पारवल इस वश का तृतीय सम्राट था।

महागज पारवने प्राचीन भारत में अत्यन्त विख्यात सम्राटों में अपना स्थान  
रखता है। हाथीगुम्फा अभिलेख में जो भुवनेश्वर (उडासा) में निकल उत्पगिरि  
पहाड़ी की एक गुफा में उत्कीर्ण है पारवल के शासन काल का घटनाओं का अत्यन्त  
सविस्तार वर्णन है। इस अभिलेख के वर्णन के अनुसार राजकुमार पारवल ने अपने  
जावन के प्रारम्भिक पदों में राजाचित शिक्षा प्राप्त करने में यत्न किया। उसने  
शासन से सम्बन्धित विषयों का अध्ययन किया। सालहून वर्ष में राजकुमार पारवल  
यवराज की पदवी से विभूषित किया गया। इसके उपरांत आठ वर्ष उमर में मुद्रा  
गणना, यवहार विधि (भासासा तक आदि) तथा अन्य विद्याओं सीखने में विताये।  
अपनी आयु के चौदावें वर्ष में समाप्त कर लेने के उपरांत पारवल कलिग का महाराज  
हो गया। उसने कलिगपतिपति और कलिगचक्रवर्तिन का पदविया धारण की।  
सम्भवतः उमर में महाविजय का विरोध में ग्रहण किया।

अपने शासन के प्रथम वर्ष में महाराज पारवल ने अपना राजधानी के बाह्य  
वर्षों को सवारण की ओर ध्यान दिया। उसने उन मुख्य द्वारों और प्राकारों की पर-  
स्मन कराई जो वान के मह में प कर नष्ट हो गये थे। उसने लाकहित का प्रति स कुछ  
नयी वस्तुओं का निर्माण कराया जिनमें शासन जन से युक्त और सीमा से अलङ्कृत  
तडागा का स्थान प्रमुख था। दुर्गों की उसने अच्छा तरह से मरम्मत कराई। जनहित  
के कारणों में उसका प्रभूत धन खर्च हुआ जो पत्नीय नान मुद्रायें खर्च महाराज  
पारवल ने जनता के मनोरञ्जन और आमोद प्रमाणों का व्यवस्था का। अपने राज्य  
वान के प्रतिष्ठित वर्ष में उसने अपने स प वल और आतक का परिचय किया। जाध्र  
नरेश शातकनि की शक्ति का कुछ समयते हुए उसने अथव हाथी रख और पत्नी

१. ११०० पा० च० के निर्देशानुसार, चन राजकुमारका उत्तलेव वेम्भतर जातक में किया गया है। मलिदपण्णो में एक कथन में यह मालूम होता है कि चेत लोग चदि या चंति वश में सम्बन्धित थे। इस प्रथम में चन राजा सूर में विषय में जो बातें बताई गई हैं वे चदि नरेश उपरिचार के विषय में हमें जो कुछ जानने हैं उनसे काफी मिलता है। अशाक की मृत्यु के बाद स चंति राजवश में उत्थान तक में समय का कलिग का इतिहास तिमराच्छत्र है। सम्भवतः ईसा की प्रथम शताब्दी पूर्व में ही (नन्द्य में तान मी वर्षों उपरांत) चंति वश का कलिग राज्य पर अधिकार हुआ। हायागुम्फा अभिलेख में प्रथम दो चदि सम्राटों के नाम स्पष्टतया नहीं मिलते। पारवल इस वश का तृतीय सम्राट था।

आग विजय प्राप्त करने में वीररत्ना प्राप्त हो गई। उसने राजगृह नगर पर धावा किया और वहाँ के निवासियों को सत्रस्त किया। खारवेन ने इन शौर्यपूर्ण कार्यों के समाचार में एक यवन नरेश के हृदय का इतना अधिक भयभीत कर दिया कि वह भागकर मयुरा चला गया। यह यवन राजा जिसका नाम कर्मा कर्मी कुछ सिद्धि रूप से विदित अथवा विदित (डमट्टियस) पड़ा जाता है सम्भवतः पूर्वी यज्ञ का एक परवर्ती यज्ञ-यज्ञानी शासक था। दसवें वर्ष में सेना संधि और साम आदि विभिन्न उपायों का अवलम्बन करके खारवेन ने भारत विजय के लिये भारतवर्ष की ओर प्रस्थान किया। यहाँ पर भारतवर्ष शासन का जो प्रयोग किया गया है उसमें अग्निप्रायः अतर्वेद अथवा उत्तरी भारत में है। अपने राज्यकाल के खारवेन के वर्ष में उसने पिथण्ड नगर को विनष्ट किया और उसके प्रासादों पर हल चढ़ा दिया। इसी समय उसने अपने पलायित शत्रुओं के माल को लूटकर अस्तगत किया। उसने भगधवासियों का सत्रस्त किया और सम्भवतः गंगा के तट पर भगध नरेश बहुस्पति मित्र का पराजित भी किया।<sup>१</sup> खारवेन ने अपने शासन के आठवें वर्ष में ही राजगृह पर आक्रमण करके वहाँ के निवासियों का भयावृत्त कर दिया था और इस बार भी उत्तरापथ के जय नरेश खारवेन का प्रचण्ड रणवृत्ति से भयभीत हो चुके थे। अतएव बहुस्पति मित्र ने जिसे राजगृह का स्वामी कहा गया है संधि की प्रार्थना की। संधि का इस प्रार्थना का स्वाकार करके महाराज खारवेन ने बहुस्पति मित्र से अपनी पाद बन्धन कराए। उत्तरापथ की सभ्य सफलताओं के वृत्त में हाथीगुम्फा अभिलेख का प्रशस्तिकार कहता है कि खारवेन ने अपनी सेना के हाथी घोड़ों का गंगा में नहलाकर भगधजनों में विपुल भय उत्पन्न कर दिया।<sup>२</sup> इसी समय वह कर्लिग देश का जिनमति को अपने साथ ले आया जिस नन्द राजा भगध में गया था। भगध के राजा को यज्ञ में पराजित करके महाप्रतापी खारवेन ने नन्दों और मौर्यों के समय में किया गया कर्लिग के राष्ट्रीय जपमान का प्रतिहार किया। उसने इस बार भगधवासियों की बहुत सी सम्पत्ति भी लूटा। इसी वर्ष उसने दक्षिण के पाण्ड्य नरेश पर भी आक्रमण किया और मुक्ता मणि रत्न का अनन्त राशि प्राप्त की। सभ्य विजयों के उपरान्त अपने शासन के तेरहवें वर्ष में कर्लिग नरेश खारवेन ने एक धार्मिक कार्य किया। वह स्वयं जन धर्म का अनुयायी था अतएव उसने कुमारी पवत (उदयगिरि खण्डगिरि) में अहता के वर्षावास तथा जय मुहूर्ता के लिए पत्तल ताल से भी अधिक चयन कर गहारे बनेवाड़े।

हाथीगुम्फा अभिलेख के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कर्लिग का राजा खारवेन एक महान विजयता तथा अपने समय का एक प्रभावशाली सम्राट था। जिस कर्लिग पर भगधवरा (नन्दों और मौर्यों) ने अपनी राजसत्ता स्थापित की थी उसी देश के शासक ने अपने भजवत में अपने समय के भगध सम्राट का नतमस्तक हान के लिए बाध्य किया। एक बार नन्दों अपितु दो-तीन बार उत्तरापथ पर आक्रमण करके खारवेन ने अपनी शूरता का परिचय दिया। शातकर्णिक के वन का अवहलना करके उसने मूषिक नगर का विध्वंस किया पिथण्डनगर का उसने विनष्ट किया और दक्षिण (तामिळ देश) के पाण्ड्य राजा से अपने विजय स्वरूप प्रचरण प्राप्त किया। तीसरे भयभीत होकर एक यवन नरेश ने भागकर मयुरा में शरण ली—इन सब प्रमाणों के आधार पर यह निष्कर्ष कहा जा सकता है कि खारवेन अपने समय का

<sup>१</sup> म (1) गद्य में च विपुल भय जती ह्यस गगाय पायसति।

<sup>२</sup> डा० जायसवाल का यह कथन कि हाथीगुम्फा अभिलेख का यहसतिमित्र और पुष्यमित्र नाम एक ही व्यक्ति हैं निराधार और तर्कशून्य जान पड़ता है।

मन्त्र प्रचल पादा और विजेता था। मन्त्र अभिनेत्र म हमें उसकी किसी पत्राय का विवरण नहीं प्राप्त होता जिससे यह प्रतीत होता है कि उसकी विजय-व्ययती मन्त्र फहराना ही रहा। विन्व क अथ मन्त्र शासन की भाँति महाराज गारवेन म अथ गण भी विद्यमान थे। उमन ताकत्ति के जो काय किये उनके द्वारा उनका प्रजावत्सलता सिद्ध होता है। वह एक मन्त्र दानी तथा जन धर्म का परिपोषक भी था। हाँ यह अवश्य है कि उमन अपन महान मन्त्र के प्रचलन भी एक सुसंगठित साम्राज्य का निमाण नहीं किया। एक महान विजेता हान पर भा वह एक महान साम्राज्य निमाना नहीं था। उमना शासननिपुणता का विवरण उसके अभिनेत्र द्वारा हम नहीं प्राप्त होता अतएव हम यह नहीं कह सकते कि वह एक सुयोग्य शासन भी था। भारत के राजनीतिक तमामन्त्र पर अर्कनिगाधिपति का उदय एक ऐसे नक्षत्र के रूप म हुआ जो उज्वलता था किन्तु जितका आभा केवल अल्प काल के ही लिए बसवता था। उसका विजया का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पया।

खारवेल के तिये धर्म का विचार—खारवेल क शासन का क विषय में विद्वाना में कुछ मतभेद है। कुछ विद्वाना की सम्मति में खारवेल का समय द्वितीय शताब्दी ई० पू० का प्रथमाद्ध है। परन्तु यह राय अत्यन्त मयी है। इस बात क तिये कुछ प्रबल प्रमाण प्राप्त होत हैं कि उसका काल कुछ बाद का है। खारवेल ने 'महाराज की जा पत्नी धारण की थी वह मन्त्राजाधिराज की ही भाँति भारत के विन्वा शासकात्तरा चर्चाई गई थी।' 'मा पू० तियाय शताब्दी के प्रथमाद्ध के यनाती राजात्रा ने य पत्नियों म प्रथम धारण की थी। कतिग देश का एक नये जो विदेशी मन्त्र के प्रभाव से मुक्त था इस उपाधि का जितका उत्पत्ति का की अपनी राष्ट्रीय परम्परा द्वारा न होकर विन्वा प्रभाव द्वारा हुई थी कुछ बाद जाने समय म ही धारण कर सकता था। अतएव यदि इस प्रन्त का आरंभ बनाकर खारवेल के समय पर विचार करें तो हम कतिपय विद्वाना क मत को स्वीकार नहीं कर सकते कि वह २०० प० तियाय शताब्दी क प्रथमाद्ध म हुआ था। कतिग क ममकानीन मगध नरेश का नाम हायोगम्पा अमिलख में वन्मतिमित्र अ वदस्पतिमित्र दिया गया है जिसका साध्य हम शुक या काण्व वध क किसी भी शासक के साथ नहीं स्थापित कर सकते। अतएव यह स्पष्ट है कि वन्मतिमित्र का समय शका क (१८७-१५१ ई० पू०) बहुत बाद का होना चाहिये। इस त्ति म वन्मतिमित्र क समकालीन नरेश खारवेल का समय का बाद का होना चाहिये। अमिलख की लिपि म भी खारवेल के समय के प्रन्त पर प्रकाश पता है। हायोगम्पा अमिलख की लिपि बेमनगर अमिलख की लिपि म बाद की है। बेमनगर अमिलख का लिपि ई० पू० तियाय शताब्दी का है जब कि हायोगम्पा का लिपि का दखने से ऐसा जान पता है कि यह ई० पू० प्रथम शताब्दी में उत्थापन किया गया होता। इससे अतिशय हायोगम्पा अमिलख की प्रशस्ति म परवर्ती युग का वाच्यज्ञानी का प्रकल्प सिद्धाई पता है परन्तु बेमनगर अमिलख का मना नितान्त साध है। इस बात से यह प्रमाणित होता है कि बेमनगर का अमिलख हायोगम्पा क अमिलख की अपेक्षा अधिक प्राचीन है और यह प्राचानता मन्त्र एक शताब्दी तक का तो होना ही चाहिये। कला-मन्त्र का साध्य से भा हम कतिगगना खारवेल की लिपि निर्धारित करने म महामता प्राप्त जाता है। भारतीय कला क विशेषता की मन्मति म मचपुरा गुना क स्थापत्य, जिनकी महामन्त्रवाहन शासन-काल म उत्थापन किया गया था निश्चय रूप से मन्त्र क स्थापत्य (जिनकी रचना १७ युग म हुई थी) से काफी बाद के हैं। इस बात से यह सिद्ध हो जाता है कि महामन्त्रवाहन वध

मीर्यों के सुयवस्थित शासन से भारतवर्ष के एक बहुत बड़े भूभाग का राजनीतिक एकता शान्ति तथा सुयवस्था प्रदान की थी। प्रथम मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त के समय में सिल्यूकस नाइकेटर ने भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर आक्रमण किया था और सिन्धु नदी के महत्वाकांक्षी से उत्साहित होकर वह स्वयं भी भारत पर स्थायी यूनानी शासन का स्थापना करना चाहता था। परन्तु चंद्रगुप्त मौर्य की विशाल सेना ने यूनानी सवामानायक की महत्वाकांक्षी का धूल में मिला दिया और उस एक अपमानजनक संधि करन के लिये विवश होना पड़ा। इसके पश्चात् भारतीय सीमा के उम्र पार कुछ ही दूर रहनेवाले यूनानी शासकों की इस बात का हिम्मत नहीं हुई कि वे भारत की हिरण्यगर्भा वसु धरा की तूटें-खसोटें और यहां के निवासियों का उत्पीड़ित या मनस्त करें क्योंकि उनके ऊपर मौर्य कालीन भारत की प्रचण्ड रण शक्ति और अतुलित सय बल का सिक्का खूब ज्जाली तरह जम चुका था। चंद्रगुप्त मौर्य के बाद उसके पुत्र बिन्दुसार के साथ प्रथम साटर से पास एक पत्र भेजा जिसके द्वारा उसने अपने यूनानी मित्र समथुर मदिरा अजगर और एक दार्शनिक मागा। ग्रीक राजा ने उसे उत्तर में लिखा कि मदिरा और अजगर भजन में तो उस अत्यधिक प्रसन्नता होगी किन्तु दार्शनिक का बचना या किसी का उपहार में समर्पित करना यूनानी राज्यों के कानून के विपरीत है। एशिया के अन्य यूनानी राज्यों के साथ भी बिन्दुसार ने मित्रतापूर्ण व्यवहार बनाय रखा। सारिया नरेश जितियाक प्रथम (Antiochus I) ने उसका राजसभा में डायमेकस (Dimechus) नामक राजदूत भेजा था। इस प्रकार मिस्र के टोलमी (Ptolemy) सम्राट ने भी अपना एक राजदूत भेजा था जिसका नाम डायोनिसियस (Dionysius) था। अशोक ने मंत्री का इस परम्परा का न केवल जम्भुण ही रखा अपितु इसका सुन्दर भी बनाया। उसने अपने घमप्रचारकों को सारिया मिस्र साइरीन मकदूनिया तथा एगिप्टस के यवन राज्यों में भेजा। इन राज्यों में इस महान भारतीय सम्राट की घम सवर्द्धिना नीति को शिरसा स्वाकार किया। किन्तु ज्यादा अशाक का मत्य के बाद मौर्य साम्राज्य का शक्ति शिथिल पतन गयी यवन राज्यों के दृष्टिकोण में परिवर्तन उपस्थित हो गया। दश का अशांतिपूर्ण अवस्था और एक सुन्दर शासन के जमावजनित आपक श्रमराजकता से बल उठाने का साधन लग। डा डी० सा सरकार का कथन है कि जिन तत्वों के कारण साम्राज्यवाद मौर्यों के वश का नाश हुआ उनमें से एक तत्व यह भी था कि भारत के उत्तरी पश्चिमी द्वार से यवन आक्रमणकारियों का उत्पन्न हो चुका था। मौर्य वश के समूनामूलन का ता यह एक कारण बना जा सकता है किन्तु हम यह नहीं भूल सकते कि मौर्य शासन का शक्ति क्षीणता न यवनों का देश पर आक्रमण करने का आमंत्रण दिया और जब कि सा यवन सनान्तायक ने अपने आक्रमण से द्वार खान दिया तो अन्य विदेशी जातियों के लिए भी तूट खसोट और आक्रमण का माग प्रशस्त हो गया। मक पश्चात् ता विदेशी आक्रमणों का एक वाट भी जा जाता है और इतिहास के अध्याय का सजस मनारजक भाग यही है कि देश के काफी हिस्सा में



विन्शिया का राज्य स्थापित हो जाते हैं। उत्तरापथ, अपरांत (पश्चाद्भाग) गार् मय-दश का निकटवर्ती प्रदेश पर शत जन बड़े विदेशी जातिया का गणनातिक प्रभुत्व स्थापित हो जाता है। यूनानों लाग इन आक्रमणकारियों में म सर्वप्रथम आय इस-निये हम सबसे पहले इन्हीं का विषय में पढ़ेंगे।

यवन शब्द का अर्थ—मध्यकालीन भारतमें साहित्य में यवन शब्द का अन्विष्टाया पदच्छेद म था और किसी भी विन्शा का लिय इमका प्रयोग किया जा सकता था। परन्तु ईसा सन का प्रारम्भिक शताब्दियों में ही 'यवन शब्द का प्रयोग यूनानियों का लिय किया जाना लगा था। भारतवासियों का लिय अब यवन शब्द में किन्ना भा विन्शा जाति का नहीं अपितु यवन यूनानियों का ही वाय होता था। इस शब्द की उत्पत्ति फारसी का शब्द 'यौन' से हुई जिसका प्रयोग पहले जायानियों का यूनानियों का लिय हो किया जाना था। परन्तु बाद में समा यूनानियों का लिय 'यौन' शब्द प्रयुक्त किया जाना लगा। उत्तरापथ के निवासियों का ईसा पूर्व पाँचवाँ अथवा छठा शताब्दी में ही यूनानियों से परिचय था। यौन शब्द का जिसका सर्वप्रथम प्रयोग द्वारा प्रथम का अन्विष्टाया म हुआ था और जिससे यूनानियों का वाय होता था भारत के निवासियों ने कुछ स्थापित करके ग्रहण कर लिया। पाणिनी की अष्टाध्यायी में ही सर्वप्रथम इस स्थापित करके शब्द 'यवन का प्रयोग किया गया है। अणव के अन्विष्टाया म इसका प्राकृत रूप यौन का ही प्रयुक्त किया गया है।

बकिट्ट्या के यूनानियों—मिक दरमहानक सनानायक सिल्यूकम ने एक विशाल राज्य का अपन आधान रक्त्वा था परन्तु उसका राज्य में विभिन्न जातियाँ रहती थी जिन्में परस्पर काई मूलभूत सांस्कृतिक अथवा राष्ट्रीय एकता विद्यमान न थी। ये जातियाँ शक्ति के जार में दबाकर रक्त्वा गई थी। अतएव जब तक सिल्यूकस का बाहु म बल था ये चुपचाप उसका शासन का स्वाकार करती रहीं परन्तु ज्याही बाद में यूनानों शासका का शक्ति क्षिप्त होना लगा ये अपना स्वतंत्रता का दुर्गमिनात करन का अवसर ढवने लगा। अंत में अवसर प्राप्त होना ही यूनानों राज्य का जो महत्वपूर्ण और विस्तृत प्रान्त—पाथिया और बकिट्ट्या में विद्रोह हो गया और ये स्वतंत्र हो गये। सिल्यूकस साम्राज्य का पाथिया (कुसस्थान और कस्पियन सागर का दक्षिण पूर्व तक मिला हुआ प्रदेश) और बकिट्ट्या (बल्ल के निकट का जिला जिस प्राचीन काल में भारतवासी बाल्हिक बहुत थे और जो हिन्दु कुश का उस पार उत्तर अफगानिस्तान में अवस्थित था) दो जिन थे। २५० ई० पू० का लगभग इन दोनों प्रान्तों ने अपन यूनानी शासक एटिडोरस के लिये एक विद्रोह विद्रोह का झण्डा लाना कर दिया। पाथिया का विन्शा अन्विष्टाया कुनान द्वारा संचालित न होकर एक जन विद्रोह था। इस विद्रोह का नन्तर अणक (Araces) नामक व्यक्ति ने किया जो निश्चय रूप से अन्विष्टाया कुन का नहीं था। उसका जन्म एक साधारण परिवार में हुआ था। उसने अपन विद्रोह का सन्तुष्ट एक राजवंश की स्थापना की। २४८ ई० पू० इस राजवंश का सम्स्थापन हुआ और पाँच शताब्दियों तक यह चलता रहा। बकिट्ट्यावासियों का विद्रोह जन विन्शा न होकर सामन्तों द्वारा संचालित था। यहाँ के विद्रोह का नेता योना का यूनानों सयकर लिया डोटस (Diodotus) था। नती एटिडोरस द्वितीय और न उसका उत्तराधिकारियों का म सिल्यूकस लिये (२४६-२२६ ई० पू०) और सिल्यूकस तृतीय (२२६-२०० ई० पू०) का काई विन्शा प्रान्तों को कुचलन में समर्थ हो गया। बाद में एटिडोरस लिये न बकिट्ट्या और पाथिया का विद्रोह का कुचलकर अपन अधिकार में करन

का प्रयत्न किया। परन्तु शीघ्र ही उसने इस कार्य की दुष्करता का अनुभव कर लिया क्योंकि विद्रोह बड़े ही सबल और सगठित था। एंटिओकस तृतीय ने इन दोनों प्रान्तों का विद्रोहिया सन्धि स्थापित कर ली और 'यावहारिक' रूप में उनकी स्वायत्तता भी स्वीकार कर ली।

**डियोडोटस प्रथम और डियोडोटस द्वितीय**—डियोडोटस प्रथम ने पंद्रह कुछ दिनों तक सिल्यूकस के राजवंश की जार से गवर्नर के रूप में बक्ट्रिया पर शासन किया था। परन्तु बाद में उसने एक स्वतंत्र नरेश के रूप में शासन करके एक नवीन राजवंश का नाव डाली। वह एक शक्तिशाली राजा था और उसके पौत्रों उससे काफी भयभीत रहते थे। जस्टिन के बचन और मद्राआ द्वारा प्राप्त होने वाले माध्यम यह स्पष्ट है कि डियोडोटस के बाद उमा नाम का उसका पुत्र बक्ट्रिया का शासक हुआ। डियोडोटस प्रथम ने पाथिया के राजा के साथ मन्त्रा सम्बंध स्थापित नहीं किया था किन्तु उसके पुत्र ने उसका इस विरोधितामयी नीति का अवलंबन न करके पाथिया-नरेश से समझौता कर लिया। इस पारस्परिक सन्धि से पाथिया के शासक को तुरन्त नाम हुआ। उसके ऊपर २४ ई० पू० और २३५ ई० पू० के मध्य में जब सिल्यूकस तिस्रो ने आक्रमण किया तो उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर आक्रमण का भामना किया। सिल्यूकस द्वितीय का विफल प्रयत्न होता पड़ा और उसकी निराशा ने बक्ट्रिया के राज्य का भी बचा लिया। इस प्रकार डियोडोटस द्वितीय का परराष्ट्र नीति नितान्त रूपण सफल रही। उसका शासन-काल सम्भवतः २४५ ई० पू० से लेकर २३० ई० पू० था। उसका अन्त एक सामरिक पयटक युधिडमस (Euthydemus) द्वारा हुआ।

**युधिडमस**—युधिडमस ने डियोडोटस द्वितीय की हत्या करके राज सिंहासन हस्तगत करने का प्रयत्न किया था परन्तु शांति और सुख से राज्य करना अभी उसके भाग्य में नहीं था। उसके सिंहासनाह्वार होते ही सिल्यूकस के राजवंश के सीरियस-सम्राट एंटिआकस तृतीय (लगभग २२३-१८५ ई० पू०) ने अपने राज्य के विद्रोही प्रान्तों को जिनमें अब स्वतंत्र राजवंश स्थापित हो चके थे फिर से अपने अधिकार में करने का प्राणपण से चयन की। २८ ई० पू० के लगभग एंटिओकस तृतीय को बक्ट्रिया में सफलता नहीं प्राप्त हो सका। अन्त में विवश होकर उसने युधिडमस के साथ सन्धि करके बक्ट्रिया का स्वतंत्र राजसत्ता स्वीकार कर ली। इस सन्धि के प्रमाण स्वरूप उसने अपना बन्धु का विवाह युधिडमस के पुत्र डेमेट्रियस (Demetrius) के साथ कर लिया।

एंटिआकस का जिन इम सन्धि के फलस्वरूप यदि बन्धी नहीं तो कम से कम मुद्दतता अवश्य होना था। उसने अब अपना ध्यान पूर्व दिशा में साम्राज्य विस्तार की ओर दिया। यद्यपि जान गता जावश्यक प्रतीत होता है कि अभी तक हमने इन यूनानी राजवंशों के विषय में जो कुछ भाग्य प्राप्त है उसका भारतीय इतिहास के साथ कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। जिन उनका नाम प्राप्त करना आवश्यक इसलिए माना हुआ कि यूनानियों का इस समय भारत पर आक्रमण करने का प्रधान कारण यही था कि उनके राज्य में एक भयंकर राजनीतिक उद्यम पुषल मंच गई जिससे दो प्रान्त स्वतंत्र हो गये। इस विद्रोह के विषय में हम ऊपर पढ़ चुके हैं। यह साधना सम्भवतः अतिशय नती कि सन्धि एंटिआकस तिस्रो का युधिडमस के द्वारा पराजय में सहन करना पतीता उसका ध्यान पूर्व का ओर बन्धी का तरफ नहीं जाता। जिन युधिडमस का फिर अपने राज्य में मिलाने का जार से निराश हो जाना के कारण अब

उसके सम्मुख बाइ दूररा भाग भा नहा था सिवाय इसके कि वह भारतीय मामा म अपना राज्य नमान की साबता। अतएव उसने २०७ अथवा २०६ ई० पू० म हिन्दु-कुश लार्थ कर गांधार का सामा म प्रवेश किया। इन समय गांधार का राजा सुभागमन (Sophaganeus) था जिमन एटिजाकस क प्रति आत्म-ममपण कर दिया। इतिहासकारा का ऐसी धारणा है कि सुभागमन बागमन का उत्तराधिकारी था। तारानाम नामक बौद्ध इतिहासकार क अनुसार वारमिन अशाक के उत्तराधिकारिया की पत्नियमा शाखा का प्रतिनिधि आर गांधार का शासन था। अशाक का मन्त्रु क बाट क स्वामी था गया था।<sup>१</sup> इसके बाद वारमन स उपहार-स्वरूप कुछ जाया तथा अथ वस्तुयें लेकर एटिजाकस ततीय समापान्तमिया नी लाया क्याकि वहाँ एक प्रबल क्रांति मचा हुआ था।

मृग-शब्दवा माग्ना म विरिक्त जाता है कि युधिष्ठिरम न एक विस्तृत राज्य सीमा पर काफा अधिक समय तक राज्य किया। उसके चाँगे क सिक्क बन्प (बकिन्पया) और बत्तारा म वस्तु बने मस्या म पाय-गय है। विज्ञाना का विचार ह कि अपन शासन-कार क अन्तिम त्तिना म सम्भवत १८७ ई० पू० क बाद जब कि एटिजाकसम अपन पदिचया राया क मामन म बुरा तरह म ध्यस्त हो गया था युधिष्ठिरम न अग्निण म अफगानिस्तान क निम्न प्रन्ध तक अपन राज्य का सामायें बन्प गा। इरान म लग हुए प्रदेश और उत्तरा पर्व चर्मी भारत के कुछ भागा पर भा उसन अपना अधिकार जमा लिया। वह एक चतुर राजनानिन था। उसन म बात का भोतामिति ममझन की चष्ठा का कि उस समय भारत का राजनातिक स्थिति क्या था। उसन यह अच्छा तरह स समझ लिया कि मीय साम्राज्य की शक्ति छिन्न भिन्न हो जान क कारण नार तीय मामा क निवृत्तता प्राप्ता का स्थिति वही निजल है। वह भारत क ऊपर अपना राज्य स्थापित करना चाँता था किन्तु मत्स्य न उसका महत्वाकांक्षा की परबता नहीं हान दिया। उसके प्रताप पुत्र डमिद्रियस न अपन निवृत्त पिता की इच्छा का पूरा करन का दङ्ग निश्चय किया। सम्भवत अपन पिता का सनादा का नेतत्व करन क काम म डेमिद्रियस न सय सचालन और रणनीति का पयाप्त अनमव प्राप्त कर लिया था और भारत का राजनीतिक परिस्थितिया का उसन अच्छा तरह स समझ भी लिया था।

**डमिद्रियस**—डमिद्रियस का उत्तम भारतीय प्रदेश क विजिता क रूप म यूनानी सेवका न किया है। म्द्रवा उसका उत्लस मिनटर क साथ करता है। यूनानिया की भारतीय विजया का उत्लस करत हुए म्द्रवा लियाता है ग्रीक, निन्तने विनाह किया (अपनी युधिष्ठिरम और उसका कुल) बटिया का उवर भूमि और अथ सुविप्राभा क कारण इतन शक्तिशाला हा गय कि अन्तान बादमिन्प क अपानाकारम क अनुसार एरियाना और द्रिष्टिया पर अपना स्वामित्व स्थापित किया। उनक मरगारा न विनोय कर मिनटर न (यदि उसन सचमच पूव म हारपनाज<sup>२</sup> पार का और बादसमम सव पटुचा), सिक्कर म भा अधिक दसा का निजित किया। इन विजया म कुछ

<sup>१</sup> खीरसेन क उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि बगोक क मरण क गोध्र बाद ही उसके साम्राज्य का शक्ति गिरित पड़ गई। विघटनात्मक प्रवृत्ति, एक सुदृढ कट्टीय शक्ति क अभाव में बहुत क्षुब्ध हुई और विनाश कीय साम्राज्य क प्रा तीय उपगासक अपना स्वतंत्र राजसत्ता का घोषणा करने से ही अपना शित समझने लगे।

<sup>२</sup> हाइफसिस (Hyphasis) या विपागा (ध्यास)।

अशा तब मिनेडर ने और कुछ अशो तक बकिट्या के नरेश यविडमम के पुत्र डमि  
ट्रियस ने सम्पन्न किया। उन्होंने पतलिनी<sup>१</sup> (Patalene) पर सिंगु डल्टा हा नहीं  
वरन सराओस्तस (Saraostos) (सुराष्ट्र अथवा काठियावा) तथा सिगडिस Siger  
dis (कदाचित सागरद्वीप) के राज्या पर भी अपना अधिकार नमाया जिनम समग्र  
समुद्रतटवर्ती देश सम्मिलित था। सक्षप म जपालाडारस कहता है कि बकिट्या सम्पूर्ण  
एरियाणा का आभूषण है। उन्होंने अपने साम्राज्य की सीमा सीरीज (Seres) तथा  
फिनाई (Phryni) तक बना ली।<sup>२</sup> इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतनाय विजयो  
का गौरव स्ट्रबो कुछ ता डमट्रियस का देता है और कुछ मिनेडर को। लेकिन स्ट्रबो  
का यह कथन जिसम वह डमेनियस और मिनेडर की सनिक सफलताया का एक साथ  
मिला कर कहता है कालक्रम के जनकूल नहा जन प ता अतएव इस कथन का  
ऐतिहासिक प्रामाणिकता कुछ अशा म यनतर हो जाती है। डमट्रियस बकिट्या अफ  
रानिस्तान और उत्तरी भारत के पच्छिमा भाग का अधिपति था और मिनेडर के  
सहल हुआ था<sup>३</sup> परन्तु स्ट्रबो मिनेडर को जिसका बकिट्या के साथ कोई सम्बन्ध  
नहीं था डमट्रियस क पहल रखता है। यहां पर स्ट्रबो गतनी करता है। भारतीय  
साहित्य म भी यवन आक्रमणा का उल्लेख किया गया है। पीछ पुष्यमित्र शग क सम्बन्ध  
स हम इस समस्या पर विचार कर चक हैं। युगपुराण गार्गी संहिता के और पत-  
ञ्जलि क 'महाभाष्य म यवना के जिस आक्रमण का जिक्र मिलता है उसका नता  
डमट्रियस था। यगपुराण म यवना के सम्बन्ध म लिखा है कि वे साकत (अयोध्या  
के निकट जो वतमान फजावाट जिन में है) पाञ्चाल (कुछ अशा तक वतमान रहेल-  
खण्ड कहा जा सकता है) और मथुरा को आक्रान्त कर कुसुमध्वज पहुंचेंगे।<sup>४</sup> पत-  
ञ्जलि न अपने महाभाष्य म जगना यवन साकतम अरणाद यवन माध्यमिकाम  
ज्ञाया जिस आपत्ति का साकत किया है वह डमट्रियस के नरत्व में यही यवन आक्रमण  
था। परन्तु सा प्रतात जाना है कि इसके आग डमट्रियस व नहा सका और उसे दौट  
जाना प। इस विषय म यगपुराण का ही कथन है यद्ध में कठिनापूर्वक मन्त्र  
करने याव्य यवन मध्यदेश म नहा ठहरेंगे। उनम परस्पर जवन्मव वमनस्य उत्पन्न  
हो जायगा जिससे उनम आपस म अपन ही साथ को उखा दनेवाला परम दारण  
और घार मुद्ध हागा।<sup>५</sup> डमेनियस के आग न वन का यह कारण था कि जब वह

<sup>१</sup> त्रिसामा। भागवत पुराण में इस नाम की एक नदी कौणिकी भरारिनी  
यमुना इत्यादि के साथ उल्लिखित की गई है।

<sup>२</sup> Quoted by Dr H C Poy Choudhary *Political History  
of Ancient India* p 351

<sup>३</sup> टान महोदय का यह विश्वास कि डमेनियस और मिनेडर साथ मिलकर  
भारतीय विजय कर रहे थे तक सम्मत नहीं प्रतीत होता। डमेनियस का काल निश्चय  
ही पहिल समझना चाहिए।

<sup>४</sup> तत साकतमात्रम्य पाञ्चालान मथुरास्तया  
यवना बुष्टविक्राता प्राप्स्यति कुसुमध्वजम्।'

<sup>५</sup> मध्यदेश म स्यात्स्यति यवना यद्धुमदा तेषामयोयसभावा भविष्यन्ति  
न सगय। भारतमचक्रोत्थितम घोर यद्ध परम दारणम्।' पुराणों के निम्नलिखित कथन  
से भी यवनों के परस्परिक सगर्हों का उल्लेख मिलता है। यवन लोग घम अथ  
और काम से (पतित) होंगे। उनके राजा नियमपूर्वक अपना रायाभिषेक नहीं रखा

अपना भारतीय विजया में सलग्न था यूक्रेटाइडज (Euclid) नामक एक पराक्रमी व्यक्ति ने जनजाति का चण्डा ऊचा किया जिससे घबड़ाकर डेमेट्रियस को इस शक्ति को दमन के लिये बकिट्टिया लौट जाना पड़ा। परन्तु वहाँ भी उस सफलता न प्राप्त हो सकी। उसने अपने मरम्भक प्रयत्न किया किन्तु यूक्रेटाइडज को जा डेमेट्रियस की अनुपस्थिति में बकिट्टिया के मिहामन पर आक्रमण हो गया था उसके स्थान से चमूत न कर सका। यही कारण है कि अपना भाग्याय विजया में भी डेमेट्रियस को पंजाब तक की विजय से ही संतुष्ट होना पड़ा। पुष्पमित्र शुंग के प्रबल प्रतिरोध ने मा भवनी के दाँत खट्ट कर लिये। ब्राह्मण मनानायक की बलवद्विरापिता के फलस्वरूप यूनानियों को मध्येश तथा पंजाब के कुछ भागों से हाथ धान पड़े।

भारत के माय डेमेट्रियस का सम्बन्ध साहित्यिक और पुरातात्विक दोनों सातों से प्रमाणित होता है। उसने बगावत आकृति के मित्रक चलवाय जिस पर सराप्पी लिपि में ग्रीक और भाग्याय भाषा में उल्लेख रचद हुए हैं। मध्येश से नीट जान के बाद भारत के किन भागों पर डेमेट्रियस का अधिकार था निश्चित रूप से यह कह सकता बठिन है परन्तु एसा प्रतीत होता है कि उसने उत्तरापथ और अफगान के ऊपर अपना स्वामित्व बनाय रक्खा था।

यूक्रेटाइडज—ऊपर हम पहले कह चुके हैं कि यूक्रेटाइडज ने जन विद्रोह का सफल संचालन करके बकिट्टिया का राजमिहामन हस्तगत कर लिया। यह सिन्धुकेस के राजवंश का शासक था। उसने बकिट्टिया में यूक्रेटाइडिया नामक नगर का निर्माण कराया था। यूक्रेटाइडज केवल बकिट्टिया में ही संतुष्ट नहीं रहा। उसने हिन्दुकुश की उत्तुग चान्तियों का अतिक्रमण करके भारत के यूनानी राज्या पर आक्रमण कर दिया। जस्टिन नामक यूनानी लेखक के कथनमनुसार उसने भारत का जीता और बह हजार नगरों का स्वामी बन गया। उसका विजया के फलस्वरूप यूनानी भारत का दो भागों में विभाजन हो गया—(१) पूर्वी भाग जिसके ऊपर यथिडमस के वंशजा का राज्य था। इस राजवंश का राजधानी साकल (म्यालनाट) थी (२) पश्चिमी भाग का राजधानी तक्षशिला थी। इस भाग पर यूक्रेटाइडज के वंशजा का अधिकार था। इन दोनों राजवंशों का मिलकर लगभग चालास राजाओं ने शासन किया। उनके कियय में मुगल साक्ष्य द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है। पर इन राजाओं के विवरण के सम्बन्ध में हमें जो कुछ ज्ञान प्राप्त होता है वह अत्यल्प है। यूक्रेटाइडज का राजसुयों का उपभोग करने का अवसर नष्ट प्राप्त हो सका। उसके पारिवारिक बलता ने उसके जीवन का अन्त दुःखमय बना दिया। जस्टिन का कथन है कि जब यूक्रेटाइडज अपना भारतीय आक्रमण से लौट रहा था तब उसने पुर और सहकारी एलिगोनरीज ने उसका घब कर दिया। सम्भवत यह रूपद घटना १५६ ई० पू० के लगभग हुई। यूक्रेटाइडज के बाद उसका राज्य हेलियाननीज के अधिकार में चला गया।

योग : ये राजा युगदोष के कारण दुराचारी हुए। स्थिरा और बचा तथा परस्पर भा एक दूसरे का घब करेंगे।

'भविष्यताह घटना घमत कामतायत नव भूधाभिधिक्वास्त नविष्यति नराधिमा । युग दोष दुराचारा भविष्यति नवास्तु ते, स्त्रीणा बालवधनन हत्वा घव परस्परम् ।'

\* Cambridge History of India Part I p 554 विसेन्ट स्मिथ साहब का कथन है कि यूक्रेटाइडज की एपिलोडोटस ने धारा था। दान महोदय ने जस्टिन के कथन का अर्थ कुछ दूसरा ही लगाया है। ये विनूवष को इस घटना को सत्य नहीं मानते।

हेलियोक्लीज—हेलियाक्ला—अपन वंश का एक प्रतापी राजा था। उमन भारत और बेक्ट्रिया के यूनानी राज्या पर अपना अधिकार जमाय रक्का। परन्तु यह बाद रखना चाहिय कि हेलियोक्लीज बेक्ट्रिया का अन्तिम शासक था क्योंकि उसके बाद ही शका ने मध्य एशिया पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। परन्तु बेक्ट्रिया का राज्य छिन जान पर मा इस वंश का समूला-ममन नहा था मना। हम कुल क कुछ राज कायुन और भारत के सामावर्ती प्रश पर वा म भी कुछ समय तक राज करते रहे परन्तु इन राजाआ क विषय म हम कुछ विशेष बात मानुम नही है। इनके नामा का ता पता हम अवश्य लग जाता है कि उनक शासन का क घटनाओं जयवा उनक कायों क विषय म इतिहास बिबुन मक है। हाँ इस वंश के एक ग्रीक राजा का उल्लेख प्राप्त हाता है। इसका नाम था एट्रियाक्लिडस ( Antiochid ) इसका उल्लेख इसकी विजय अथवा द्रमका किसा जय प्रकार का राजनीतिक सफरता के कारण नहा किया गया है अपितु वण्णव घम क प्रति अपनी अनुय भक्ति क कारण वह जाना जाता है। एट्रियाक्लिडस के उन्हाहरण मे जग एक आर भारतीय धार्मिक विचारधारा की मोहण्णता और सजीवना शक्ति का परिचय प्राप्त हाता है वनी दूमरी ओर इसक द्वारा भारत क यूनानी राजाआ की पतना-मुख राजनातिक शक्ति का भी स्पष्ट सबत मिलता है। एट्रियाक्लिडस न भारनाय नरेशा क माय जा मश्री सम्बन्ध स्थापित किया उमस पता चलता है कि इस समय भारतीय मीमा पर राय करनेवाल राजाआ म युद्ध द्वारा राय विस्तार करने का शक्ति नहा रहे गए था व सन्धि द्वारा ही अपना जम्तिव बनाय रखना चाहत था। वसनगर के स्तम्भ लख म एट्रियाक्लिडस का उल्लेख इस प्रकार किया गया है दक्खे वामुद्ध का यह गर ध्वज तन्मशिला निवासी लियन क पुत्र भागवत (धर्मनिुयाया) हर्नियोडारम क द्वारा वनवाया गया जो तक्षशिला क महाराज एट्रियाक्लिडस का राजममा से राजदूत होकर राजा काशी पुत्र भागभद्रनाता के पास आया जिसक बधिष्णु राय का चौन्हवाँ वष चल रहा था। मुद्रा साध्या से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवत एट्रियाक्लिडस ने कुछ विजयें भी की थी। अय इण्णायूनानी राजाआ का मानि उसके भी बहुत से सिक्के प्राप्त हुए है जिन पर तो भापाआ यूनानी और भारताय म नस मुद्र हैं। उसके एक प्रकार क चापा क सिक्का पर केवल एक शक 'ख' विजयी राजा एट्रियाक्लिडस खुदा है जिसस यह पता चलता है कि वह विजता भी था।

भारत क सीमावर्ती प्रदेश पर शासन करनेवाल युक्रटाइडज के राजकुल क यूनानी राजाआ म अन्तिम नरेश का नाम हर्मियस ( Hermaeus ) था। इसका रायकाय प्रथम शताब्दी ई० क उत्तरार्द्ध म था। हर्मियन का राजधानी सम्भवत कपिशा थी। यही म वह काबुलप्रदेश पर राय करता था। उसक राय की सामा पहल की अपेक्षा काफी सकीण हा गर् थी और उसका शक्ति भी हम समय काफी क्षाण हा चका थी। वास्तव म हम समय तक भारत क इन यूनानी राजाआ क पाम न ता काई पीरप शप रहे गया था और न का वन। चारा आर से आक्रमणवागिया का वृफान बना आ रहा था। इधर आन्तरिक अव्यवस्था और पारस्परिक मपय क कारण यूनानी

टान की ध्यास्या इस प्रकार है 'युक्रटाइडज की हत्या किसी मत्त ययिडमी कुलीय राजा के पुत्र द्वारा हुई थी। यदि हम बेक्ट्रिया की सत्कालीन राजनीतिक परिस्थितिया की अपन ध्यान में रखकर इस समस्या पर विचार करें तो हमें टान महोदय का यह अनुमान निराधार नहीं जान पड़ेगा। क्या यह सम्भव नहीं है कि हर्मिद्रियस न्तिीय न दरेण्डर का वध किया हो ?

काफ़ी दुबल हो गया था। बुजुर्ग कड़वाइसिज के मतत्व में कुपाणो की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई थी। उसका प्रबल शक्ति के सामने दुबल यूनानी राजा हमियस अल्प काल के लिये भा ठहर गयी सका और भारत से यूनानी राजसत्ता का उन्मूलन हो गया। युश्टाइडज के राजवश का मृत्यु सदव के लिय अस्त हो गया।

**युधिडमस का राजवंश—**युधिडमस के राजकुल के विषय में हम अवश्य जान लेना चाहिये। हम पहले ही पढ़ चुके हैं कि डेमेट्रियस के नेतृत्व में युधिडमस के राजवंश का स्थापना हुई था। युधिडमस के राजवंश में डेमेट्रियस के उपरान्त अगाथाक्लीज (Agathocle) पटालियन और (Pantalion) ऐंतिमकस (Antimachus) के नाम मिलते हैं। इन राजाओं के नाम हमें उनके सिक्के द्वारा मालूम होते हैं। उनके विषय में किता उल्लेखनीय बात का विवरण हम प्राप्त नहीं होता। शिमथ साहब का विचार है कि जपालाटास और मिनडर भी इसी राजकुल के थे। टान महादय का कथन है कि मिनडर युधिडमस के वंश का नहीं था वरन् डेमेट्रियस का दामाद था। शिमथ और टान के कथनों में म कौन भा कथन सत्य है यह बिल्कुल निश्चय पूर्वक ना कहा जा सकता परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि मिनडर किसा न किसी प्रकार राजवंश में सम्बन्धित अवश्य था।

**मिनडर—**भारत के यूनानी शासकों में केवल मिनडर ही ऐसा राजा है जिसकी स्मृति भारत का साहित्यिक अनुश्रुति द्वारा सुरक्षित है। अन्य इण्डो ग्रीक राजाओं के विषय में हमें जो कुछ भी पान प्राप्त होता है वह लगभग सम्पूर्ण जगत् में मुद्राओं द्वारा ही उपलब्ध होता है। मिनडर ने बौद्ध धर्म में जो अभिरुचि दिखाई उसका परिणाम उसका वंश था की दृष्टि से हितकर ही हुआ। अपना धर्मानुरागिता और दार्शनिक जिज्ञासा-वृत्ति के कारण वह भारतीय इतिहास में अमर हो गया है। 'मिलिंद पण्ठी' नामक बौद्ध ग्रन्थ में मिलिंद नामक जिस यूनानी नरेश का उल्लेख किया गया है वह निश्चय रूप से मिनडर था। इस ग्रन्थ में वह एक महान् विद्वान्, तर्कशील जिज्ञासु व्यक्ति तथा बौद्ध धर्म के संरक्षक के रूप में चित्रित किया गया है। वह प्रसिद्ध बौद्ध भिक्षु नागसेन से बौद्ध धर्म के विषय में सूत्रातिशृम्भ प्रश्न करता है। नागसेन उसकी समस्त जिज्ञासाओं को शान्त कर उस बौद्ध धर्म में दीक्षित कर लेता है। श्रेय के अवदानकल्पलता ग्रन्थ में भी मिनडर का उल्लेख किया गया है और उसका मुद्र सङ्कृत नाम मिलिंद दिया गया है। बौद्ध साहित्य में उसका बनी ही प्रतिष्ठा है जैसा उपनिषद् में जिन्हें सद्गुरु जनक की। उसका राजधानी शाकल था जिसका वर्णन मिलिंद ग्रन्थ में एक महान् व्यापारिक बन्दर के रूप में हुआ है, जो समुद्रीय मूलच्छेद बरसा हुआ था और जिसका नाम आराम उद्यान उपवन-तडाग पुष्करिणी से युक्त होने के कारण वन पवन और नदी के स्वर्ग के समान हो रहा था। इस ग्रन्थ में मिनडर के विषय में कहा गया है कि उसने अपना राज्य अपने पुत्र का सौंपकर सत्तार सत्तयास निया और न केवल एक बौद्ध भिक्षु बल्कि अहत्त ही गया। शान्त काल में प्राप्त लक्ष्मिणी की डिब्बिका के अभिलेख से जिसमें मध्याह्न मिडनैर के राजत्व काल में भगवान् बुद्ध की यातु (दहावर्ष) के उत्सव का वर्णन आता है उसमें बौद्ध सत्तावतम्बी होने का साहित्यिक प्रमाण मिलता है। प्लूटार्क के एक कथन से भी मिनडर को लाकप्रियता और उसके बौद्ध होने का संकेत प्राप्त होता है। प्लूटार्क का कथन है कि मिनडर की मृत्यु के बाद उसके राज्य के विभिन्न नगरों में इस प्रश्न पर परस्पर प्रतिद्विष्टता उत्पन्न हो गई कि कौन-सा राज्य उसके अम्प्यवशेषों को

सुरक्षित रखे। जब इस विषय का निणय न हो सका तो सभी नगरों ने यह निर्दिष्ट किया कि उसके अस्पृश्यवश्या का विभाजन कर लिया जाय और सभी नगरों को उसका कुछ भाग प्राप्त हो जिससे वे उस पर जलग्न अलग स्तूपों का निर्माण करा सकें। प्लूटार्क का यह विवरण तथागत के महापरिनिर्वाण की कथा से स्पष्टतया मिलता जुलता है। इस कथा से यह सिद्ध हो जाता है कि मिनेडर के प्रति उसके बौद्ध प्रजा जनो के हृदय में गहरी श्रद्धा विद्यमान थी। 'मिलिन्द प्रश्न' का यह कथन कि मिनेडर ने अपना राज्य अपने पुत्र को सौंपकर सत्यास ल लिया और न केवल बौद्ध भिक्षु प्रत्युत अहृत हो गया बल्कि न अनुकूल जान पड़ता है। क्षमद्व न मिनेडर के विषय में एक कथा का उल्लेख किया है जो कभी कभी कतिपय के विषय में कही जाती है जब कि एक इंडोचीनी जनधृति उसका सम्बन्ध इण्डोचीनी की सर्वस प्रसिद्ध बौद्ध प्रतिमा के साथ स्थापित करता है। वस्तुतः इस प्रकार की दंतकथायें सर्वदा प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती परन्तु इस सम्बन्ध में सबसे मनोरञ्जक बात यह है कि इस विद्वान् शरेश के यकित्व का यहाँ की जनता के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

मिनेडर के बौद्ध भक्तावलम्बी हान के प्रश्न पर मल ही विवाद किया जाय परन्तु इस बात में सन्देह नहीं कि उसकी प्रवृत्ति धर्म और ज्ञान का आर थी। नकिन वह सामरिक वृत्ति का मनुष्य भी था और उसका गौरव इस बात में भी सन्निहित है कि उसने यूनानी राज्य की सीमा का विस्तार किया। यह हम पढ़ने हा दख चुके हैं कि स्ट्रेबो ने मिनेडर का उल्लेख डमिदियस के साथ किया है और उस भारतीय विजया का गौरव भी प्रशंस किया है। उसने यह भी लिखा है कि मिनेडर ने सिन्दर से भी अधिक देश जात और वह हाइफनाज (यास-न्या) को पार कर जाइसमस न्या तक पत्रा गया। स्ट्रेबो के इस कथन से यह पता चलता है कि सम्भवतः मिनेडर यमुना नदी तक बढ़ा जाया था। मिनेडर के भिक्षु वृत्तन विस्तृत भूभाग पर पाये गये हैं कि स्ट्रेबो के इस कथन की पुष्टि कि उसने सिन्दर से भी अधिक देश जात स्वयं मव ग जाती है। मिनेडर के सिन्दर काबल में नकर मथुरा और बुन्देलखण तक पाये गये हैं। मद्रा सम्बन्धी प्रमाणा के आधार पर यह कट मचना अनुचित नहीं कि मिनेडर का राज्य मथुरा तक पना हुआ था। मद्रा साक्ष्या के द्वारा स्ट्रेबो के इस

कतिपय विद्वानों की सम्मति है कि मिनेडर बौद्ध धर्म का अनुयायी नहीं था। मिलिन्दप्रश्न के जिस खण्ड में यह लिखा है कि मिनेडर राज त्याग कर बौद्ध भिक्षु हो गया यह प्रक्षिप्त अंग है और उसकी रचना बाद में किसी बय ध्यक्षित न का थी। इन विद्वानों के मतानुसार मिनेडर के हृदय में कुछ श्रद्धा अवश्य थी जिसको बौद्ध लक्षकों ने आवश्यकता से अधिक महत्व दिया है। वास्तव में उसे बौद्ध धर्म का अनुयायी मानना समीचीन नहीं प्रतीत होता। इसके विपरीत अन्य विद्वानों की सम्मति से मिनेडर असांदाय रूप से बौद्ध भक्तावलम्बी था। अपने विचार की पुष्टि में ये विद्वान् अनेक तर्क प्रस्तुत करते हैं जिनमें एक तर्क मद्रा साक्ष्य पर अवलम्बित है और अधिक प्रत्ययोत्पादक जान पड़ता है। कुछ सिधकों पर जो मिनेडर के ही ह धर्म चक्र की आहृति और 'ग्रमिहस विर' खदा हुआ है। इससे यह सिद्ध होता है कि मिनेडर बौद्ध था। प्लूटार्क की भांति एक ह्यामी अनुधृति भी उसे अहृत बताती है। हमारे वर्तमान ज्ञान की सीमा में इस विषय पर निश्चय रूप से कोई सम्मति देना उचित नहीं मालूम पड़ता।



कथन का सत्यता प्रमाणित हो जाती है कि व्यास नदी का पारकर मिनेडर आइसमस (अथवा यमना नदी) तक बढ़ आया था। (आइसमस का समीकरण के लिये पीछे देखें)। परिप्लस का परिष्कार नामक ग्रन्थ से भा मिनेडर का राज्य विस्तार पर प्रकाश पता है। इस ग्रन्थ का अनुसार अपालाटोस का निकका का साथ मिनेडर के सिक्के भा बरागाजा (मडाच) के बाजारा में प्रथम शता ईस्वा के तीसरे चरण के लगभग चलते थे। इस कथन से मञ्च का भा मिनेडर का अधीन होना सिद्ध होता है। जस्टिन के ग्रन्थ का चौवातासवें अध्याय का शीपक में भा मिनेडर का उल्लेख अपालाटम का साथ किया गया है ग्रीक उम भारताय नरश कहा गया है। जस्टिन और परिप्लस का साध्या का मिला दन पर यह सम्भावना अतिव ठाक प्रतीत होती है कि मिनेडर का अधीन में था भा था। अभी हाल में ही एक अमिलखच की खोज हुई है जिसका नाम बजोर रलिक कास्कट इन्फ्रेशन (Bajur Relic Casket Inscription) है। इस अमिलख पर मिनेडर नाम दिया है। डा० राय चौधरी की सम्मति में यह अमिलख पश्चिमी दिशा में मिनेडर का राज्य विस्तार की पुष्टि करता है। (दक्षिण-*Political History of Arcut In a fifth Edition* 362 मिनेडर का साम्राज्य विस्तार का विषय में विशेष विवरण के लिये देखिए--*Age of Imperial Unity II* 144-45)

महाकवि बालिदास का मालविकाग्निमित्र में जिस यवन सद्य का उल्लेख हुआ है उसका नत्व सम्भवतः मिनेडर ही का रहा था। इस विषय में प्रायः एन० एन० घोष का कथन है मद्रा सम्बन्धी प्रमाणा से पूर्व में मथुरा तक उसका राज्य का अतगत स्पष्ट है और यन्ति मथुरा तक उसका राज्य ही मध्यभारत का कुछ प्रवेश अपने राज्य में मिलान का प्रयत्न किया हुआ जहाँ मग का शासन स्थापित था। उस दशा में मालविकाग्निमित्र में उल्लिखित यवना से अभिप्राय मिनेडर का अकाराधिया से ही जान पता है जिन्हें वसुमित्र ने सिंधु का किनारे पराया था। मिनेडर उस समय जाहित था जब कि पुरयमित्र राजमहिमान पर अभी विद्यमान था यद्यपि, नाटक में वर्णित अ वमघ (सम्भवतः शिताय) का सम्पादन उसका वाता होता है।

एन० एन० घोष मिनेडर की मृत्यु १५०-१४५ ई० पू० के लगभग हुई। उनकी मृत्यु का कारण उसका राज्य कापी दुबल और शक्तिहीन होना था। उसका उत्तराधिकारिया का स्थिति प्राप्त हुए हैं जिन पर स्टुटा प्रथम और स्टुटा शितीय का नाम खद हय हैं। परंतु उनका सम्बन्ध मूल अर्थ किसी महावपूण बत का पता नही लगता। मिनेडर का उत्तराधिकारिया का नाश शका द्वारा था। इस प्रकार युधिष्ठिर का वृत्त का राजमत्ता का भा भारत मुनि का नाम निशान मित्र गया।

दक्षिणों का प्रभुत्व--यवना का इस मुद्राधिकार न संपन्न का भारत का सभ्यता और संस्कृति पर का महावपूण प्रभाव पना अदवा नही। इस विषय पर विद्वानों का मत कापी मित्र मित्र है। कतिपय का ध्याय शिानु भारत का उपर यनान का क्रम को बढ़त बना कर कहते हैं और भारताय साहित्य कला तथा धर्म और विज्ञान पर यूनानी प्रभाव दर्शाते हैं। परंतु अतिशयोक्तिपूर्ण हान का कारण इस मत का स्वीकार नहीं किया जा सकता। रालिस्न आदि विद्वानों का मत में यूनान और भारत का सम्बन्ध कापी प्राचान था और दाना न एक दूसरे से सीखा और प्राप्त किया था। परंतु एक बात ध्यान में रखना चाहिये कि यवना का आक्रमण न भारतीय जीवन

को ऊपरी सतह का ही स्पश किया उसकी जात्ता अछना ही रही। भारत पर सब प्रथम आक्रमण करनेवाला यूनानी जगद्विजय सिक्न्दर था परन्तु उसके आक्रमण का भारताय सस्कृति पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। उसके मलिक अभियानों का फलस्वरूप आवागमन के अभिनव माग खुल गया जिससे यूनानी देशों में सम्पर्क बढ़ गया, लेकिन सिक्न्दर के समय के यूनानी भारत के जीवन पर कोई भी प्रभाव नहीं डाल सके। कारण यह था कि वह इस देश के केवल पञ्जाब प्रान्त तक ही पहुँच पाया था और यहाँ वह रहा भी केवल उन्नीस महीना तक ही। इस अल्प काल में ही उसका सारा समय और श्रम यूनानियों को विजित करने और लागा का तलवार के घाट उतारने में ही व्यय हुआ। वह भारत में एक बकर विजिता के ही रूप में प्रविष्ट हुआ सस्कृति प्रचारक के रूप में नहीं। ऊपर हमने जिन यूनान आक्रमणों का अभ्ययन किया है उनका प्रभाव अवश्य ही भारतवर्ष के ऊपर पड़ा। इस प्रभाव का कारण सुस्पष्ट है। ये ग्रीक आक्रमणकारी जगमग डल्ले मी वर्षों तक देश में रहे और इन्होंने अपने नाम से नगर बसाये तथा देश की जनता के साथ सम्पर्क स्थापित किया। सिक्न्दर का मूर्ति आक्रमण करने के पञ्चात्तय लौट नहीं गये बरन इन्होंने इस देश में अपना राज्य स्थापित किया। फलतः यूनानी सभ्यता और भारतीय सभ्यता का एक दूसरे के साथ कुछ निकट का परिचय हुआ। दोनों सस्कृतियों के परस्पर मिलन जलन से सास्कृतिक आदान प्रदान का कार्य सम्पन्न हुआ परन्तु कीध जाति पश्चात्य विद्वानों के मन का हम नहीं स्वीकार कर सकते कि भारतीय सस्कृति पर यूनानियों का ऋण बहुत अधिक है। हम यह कभी न भूलना चाहिये कि यूनान की जिस सस्कृति के साथ भारतवासियों का सम्पर्क हुआ वह परीक्वनाज के समय का मजबूत मौलिक और प्राणवती सस्कृति नहीं था बरन अतिनिस्तिक सभ्यता था जो यूनान की मौलिक सस्कृति का एक विकृत रूप था। इस सस्कृति की मौलिकता नितान्त कुण्डित हो गई थी। इसका आचार यूनान का नगर राज्या की सस्कृति ही था परन्तु अनुकृति प्रधान होान के कारण इसमें सप्रणता नहीं थी। इस प्रकार का सस्कृति भारत के ऊपर कोई गम्भार प्रभाव नहीं डाल सकती था। भारताय के पास अपना एक निजी राष्ट्रीय सस्कृति था जिसकी परम्परा यूनान से अधिक प्राचीन था और जिसमें जीवत तत्व भी यूनानी सस्कृति का अपना कहीं अधिक थे। इस समय के भारतवासियों अपनी सस्कृति को समझ बनाने के दृष्टिकोण में विनिश्चया से उनकी सभ्यता के तत्व ग्रहण करने में सकोच नहीं करते थे परन्तु जिस प्रकार सागर विभिन्न नदियों के जल का ग्रहण कर लेने पर भी अपना वास्तविक स्वरूप नहीं छानता उसी प्रकार भारतवासियों ने भी अपना राष्ट्रीय सस्कृति के मौलिक स्वरूप का कभी न भूलना होन दिया कारण उन्होंने अब प्रजा का आशय ग्रहण करके अनकृति का प्रवृत्ति का कभी भी अवगमन नहीं किया। इहा कारणों से इन्डो ग्रीक सम्पर्क का भारत के ऊपर कोई गम्भार तथा अक्षय प्रभाव नहीं पड़ा। मध्य आनांड नामक प्रसिद्ध अंग्रेज कवि और समालोचक ने अपनी एक कविता में लिखा है कि जब जब विश्वो सनाआ का तूफान आया पूरे ने कुछ काल के लिए मिर चुकाया उनका प्रशान्त तथा गम्भीर घणा के साथ अवनादन किया उनको वापस चला जान दिया और वह पुनः अपने स्वाभाविक विचार वित्तन के विषय अतमुन हो गया।<sup>१</sup> अपनी

<sup>१</sup> The East bowed before the blast  
In patient deep disdain  
She let the legions thunders past  
And plunged in thought again

इस प्रवृत्ति के कारण भारत न अपना इण्डोप्राक शासकों से कुछ अधिक तत्व ग्रहण नहा किया। ही कुछ बातें तो उन्होंने अब यही जिनका अध्ययन हम करेंगे।

यूनाना सम्भव का सबसे सुस्पष्ट प्रभाव भारत की मुद्राओं पर देखा जा सकता है। यूनानियों के आगमन के पूर्व प्राचीन भारत में छात्रे-छात्र चीनी और तांबे के सिक्के ही अधिकतर चलते थे। मुद्रा मद्राओं का भा प्रचलन था परन्तु भारतवासी मुद्राओं के निर्माण पर कोई विशेष ध्यान नहा देना था। उनकी मुद्राओं में न तो मुडोलता ही जाना थी और न कलात्मकता। किन्तु उन्होंने यूनानियों से सीखा ही मुद्राओं का निर्माण सीखा लिया और वे-वे कलापूर्ण सिक्के बनवाने लगे। प्राक शाक द्रव्यम (J.P.C.) का भारतीयों ने अपना भाषा में ले लिया। बकिद्रया के प्राक शासकों की मुद्राओं पर अक्षर घुंटे हुए थे और किन्हा किन्हा में तो वे लिपियों की कृतया कराटा का मद्रात्मलता में व्यवहार हुआ मिलता है। भारत के पूर्व प्राक के सिक्के अमिन्धों से शून्य होते थे—प्राक मुद्राओं का ही आधार पर हम दोष का आगे चल कर दूर किया गया।

ज्यातिष के क्षेत्र में यूनानियों का काफी महत्वपूर्ण ऋण था और भारत के प्राचीन मनीषियों ने बिना किया हितक के इस ऋण का स्वीकार भा कर लिया। गार्गी महिता मलिखा है कि यद्यपि यवन मन्त्र है तथापि ज्यातिष के मूल निमाता हान के कारण वे ऋषितुल्य पूज्य हैं।<sup>१</sup> भारतीय ज्यातिष के प्राक सिद्धान्तों में से रामक सिद्धान्त तथा पौण्डिस सिद्धान्त निश्चय ही प्राक प्रभाव का सूचन करते हैं। फलित ज्यातिष का कुछ ज्ञान भारतीयों का था परन्तु ज्यातिष विद्या का ज्ञान बबालानियों वाला का बन्धन अधिक था। इनका ज्यातिष जगल विद्या से अयायात्रित रूप से सम्बन्धित था और गगान विद्या वेदोपनिषद् में बतन विकसित रूप में था कि प्राचीन विश्व में यह दश विद्या का भाग' के रूप में विख्यात था। ग्लिडियन जाति के गार्गी ने भा देन बिना के विकास में अपना महत्वपूर्ण योग दिया। यूनानियों ने बबालोन के इस विकसित ज्यातिष का ज्ञान भारतीयों को प्रदान किया जिस उन्होंने सटप और कुशल भाव से ग्रहण किया।

भारतीय भाषा गौर साहित्य पर यूनाना मन्त्रुति का तनिक भी प्रभाव नहा था। सबसे पहल ईसा की दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में भारत किन्वाम ने कहा था भारत के निवासियों का वाच्य भाषा है जिन्हाने उनका अनुवाक अपनी भाषा में कर लिया था। बाद के यूनाना लेखकों प्लूटार्क और एरिथियन ने भा इस कथन का पुष्टि का। परन्तु एसा मानने में जाता है कि यूनाना लेखकों ने मभवश ही एसा कह दिया। उनका कथन में अगमात्र भा आधार मूल सयता नगे है। उन्होंने हमर के इलियड गौर आदसी की ही भाति इस भाषा में समापण और मन्मभारत के रूप में महाकाव्य का परम्परा देना और इन देवियों का बाह्य ममानताओं का देनकर उन्होंने यह सप्रमा कि भारतीयों ने यूनाना महाकाव्य को परम्परा ग्रहण कर ही है। बान में बनेकर बनिष्य पा चातम विद्वानों ने भा जिनम बल का नाम अग्रगण्य है इस मन का पाराग किया। किन्तु केवल कथानक का ऊपरी ममानताओं का आधार पर यह कहना कि भारत

१ "स्फुट्टा हि घवनास्तेषु  
सम्पन्नं शास्त्रमिदं स्थितम् ।  
'विद्यते पि पुत्र्यते  
कि पुनर्वैववद्भिज ।'

के महाकाव्यों की रचना यूनानी महाकाव्यों की अनुकृति व आधार पर हुई है एक उपहासास्पद बात है। यह सत्य है कि रामायण का मुख्य विषय इलियड का क्या वस्तु से काफी मिलता जुलता है। दाना म नायिका का अपहरण किया जाता है और उसके मुनश्चरार व लिए वाद म एक अति भयकर युद्ध होता है। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि रामायण की मूल कथावस्तु का प्रणयन उसा समय हो चका था जब कि यूनानी इस देश म प्रवेश ही न कर पाय थ। मकडानेल महादय का धारणा है कि कतिपय स्पष्ट प्रक्षपका का छा कर रामायण क मून की रचना ५०० ई० पू० ही हा चुकी हागी।<sup>१</sup> प्रापसर वि टरनित्स की राय म रामायण क प्रणयन की सबसे प्राचीन तिथि २०० या ० ई० पू० मानी जाती है। इन दाना विज्ञाना का सम्म तिया म कुछ मद अवश्य है परन्तु इसम काई सादेह नही कि रामायण का रचना यना निया क भारत प्रवेश क पूर्व हो चका था। भारत क महाका यो की रचना बीर कथाआ क आधार पर हुई है जा क परम्परा का अर जी क प्रसिद्ध करती हैं वास्तव म जसा कि प्रोफसर वि टरनित्स ने ताया है क का स्र त वैदिक साहित्य म ही विद्यमान है। इन सब प्रमाणा को ध्यान म रखन पर यह कहना सवथा अनचित प्रतीतहोता कि रामायण और महाभारत के उपर यूनान क म्का या का प्रभाव है। यही बात भारत क नाटक साहित्य के सम्ब ध म भा कही जा सकती है। भारतीय नाटक की उत्पत्ति नितान्तरूपेण स्वदेशी और इसका विकास भी स्वतन्त्र रूप मे देश का अपनी परम्पराजा और परिस्थितिया क अनुकूल हुआ है। यवनिका श द के आधार पर यह कहना कि भारतीय नाटक क ऊपर ग्रीक नाटक का प्रभाव है ठीक नही जान प ता। सम्भव है यह श द यूनाना भाषा का हा परन्तु पके का प्रयोग भारतीय नाटक का काई जविमा य अग नहा मानम प ता। वास्तव म यदि देखा जाय ता भारतीय और यूनान, नाटका म परस्पर का सुट साप्य नहा है। दाना की मूल भावना एकदुमरे से विस्तृत मित्र है अत यह नहा स्वीकार किया जा सकता कि भारतीय नाटक ग्रीक डामा क माडल पर आधारित है।<sup>२</sup> वसी प्रकार भारत के चिकित्सा विज्ञान पर भा प्राक प्रभाव ग्राउन का प्रयत्न निराधार है। वागल नामक विज्ञान का विचार है कि चरक के ग्रन्थ पर टिपाक्रटीज का स्पष्ट और दृढ प्रभाव है अतएव भारतीय चिकित्सा विज्ञान पा चात्य प्रभावा का स्पष्ट मकेत करता है। किन्तु अय विज्ञाना न वागल क इस व्थन का मानन से क कार किया है। भारतीय चिकित्सा विज्ञान की परम्परा महाका य और नाटक का परम्पराआ की ही भाँति काफी प्राचीन है और उस पर पा चाय प्रभाव ग्राजना यथ है। यूनानी भाषा भी भारतीय भाषाआ पर काई प्रभाव नही डाल सका। कुछ विज्ञाना का विचार है कि यूनाना राजाजा के सिक्का पर प्राक भाषा म त्त लदे हुए मिनते हैं जिससे यह सिद्ध हाता है कि यूनानिया क अधीनस्थ प्रदेश म भारतीय जनता ग्राक समघती था। परन्तु यह अनमान घनत है और वस्तुस्थिति क भव विपरीत हा मानम प ता है। इन सिक्को पर दूसरा आर प्राकृत भाषा म गरीखी निधि म निर्य ह्य त्त मि त्त है जा क्म बात का स्पष्ट सक्त करते है कि साधारण जनता यूनाना भाषा हा समघता था। यह

<sup>१</sup> A History of Sanskrit Literature p 309

<sup>२</sup> सिमथ साप्य के इस कथन को कि महाकवि कालिदास कवल दिन डर ही नहीं अपितु टरेस क नाटकों की भी पढ़ सकत थ गाजकल को भी विज्ञान नहीं मानता। सिमथ क इस कथन का कोई आधार नहीं है (मिनेट्ट टरेस और स्पटस हैलिनिरिट्क युग के ग्रीक नाटककार थ।)

। अवश्य है कि सस्कृत में यूनानी भाषा के कुछ शब्द मिल जाते हैं परन्तु ये शब्द बहुत ही थोड़े हैं और अधिकांशतया जातिविद्या के हैं जो किसी प्रकार मा भाषासम्बन्धी प्रभाव की सूचना नहीं देते ।

१। कला के क्षेत्र में अवश्य कुछ अंशों तक यूनानी प्रभाव है परन्तु यह प्रभाव भी अत्यन्त सीमित और नगण्य है । यूनानी वास्तु कला का भारतवासी ग्रहण नहीं कर सके क्योंकि दानो देशों की जलवायु भिन्न होने के कारण इनकी वास्तु कला की परम्पराएँ एक दूसरे से काफी भिन्न थीं । ग्रीक शली पर निर्मित इमारतें आज हम उपलब्ध नहीं होतीं जा एकाध है भी उनका कोई विशेष महत्त्व नहीं है । क्वल तक्षशिला में कुछ ऐसे मकान मिल हैं जिन पर ग्रीक वास्तुकला का कुछ प्रभाव देखा जा सकता है । एक मन्दिर का भी उदाहरण उपलब्ध है जो ग्रीक शला में प्रभावित जान पड़ता है । मूर्तिकला के क्षेत्र में यूनान का प्रभाव कुछ अधिक अवश्य है परन्तु यह प्रभाव अल्पकालिक ही प्रमाणित हुआ । गांधार की बृद्ध प्रतिमाजा पर यूनानांतक्षण कला (Sculpture) की स्पष्ट छाप दिखलाई पती है । गांधार में मूर्तिकला की जिस विशिष्ट पद्धति का उद्भव और विकास हुआ उसका विद्वानों ने इच्छा ग्रीक शली का नाम दिया है क्योंकि इस कला के विषय में भारतीय हैं परन्तु इसकी शली ग्रीक है । महात्मा बुद्ध की जो प्रतिमाएँ इस शली में मिलती हैं उन पर सुस्पष्ट रूप में यूनान की तक्षणकला का प्रभाव दृष्टिगत होता है । हम गांधार कला के विषय में आगे जो कुछ पढ़ेंगे उसमें यह स्पष्ट हो जायगा । परन्तु यह एक सम गीय तथ्य है कि भारत में कलाकारों ने नातिचिरादेव अपने को ग्रीक प्रभाव समवत कर लिया और मूर्तिकला की अपनी राष्ट्रीय परम्परा का विकास किया ।

घम और दशन के क्षेत्र में भारत को देने के लिये यूनान के पास कुछ भी नहीं था । यूनान के दशन पर विशेषकर पाइथागोरस और सुकरात के विचारा पर भारतीय दर्शन के प्रभावों का उल्लेख हम नहीं करेंगे क्योंकि इस प्रकार विवेचन अत्यन्त दुर्लभ और विस्तृत होने के कारण इस पुस्तक की सीमित परिधि के अंतर्गत नहीं आता ।<sup>१</sup> घम के क्षेत्र में हम यह स्पष्ट देखते हैं कि यूनानियों ने भारत की महत्ता को स्वीकार किया । मिलि दया मिन्डर का बौद्ध घम और हेलेनोडोरस का भागवत को स्वीकार कर लना इस बात की सिद्ध करता है कि इस क्षेत्र में विजिता यवना को भारतवासियों से हार खानी पड़ी । स्वात से एक कलम प्राप्त हुआ है जिसके अभिलेख में भी यह स्पष्ट होता है कि पियाडरस (Pithecus) नामक एक ग्रीक ने बौद्ध घम ग्रहण कर लिया था । सातवाहन युग की सांस्कृतिक अवस्था का अध्ययन करते हुए हमने देखा था कि अनेक विदेशियों ने भारतीय घमों को अंगीकार किया था और अपने नाम भी भारतीय नामों के अनुकूल रख लिये थे । यूनानियों के भारतीय घमों को स्वीकार कर लने का एक कारण था । हमारे युग में यूनान में जिस धार्मिक विचारधारा का प्रादुर्भाव हुआ उसमें क्वल दवताओं की ही कल्पना प्रधान

<sup>१</sup> क्वीय जैसे विद्वान भारतीय विचारों के प्रभाव को मानने के लिये किता प्रकार भी तयार नहीं ह । उल्टे ये भारतीय विचारों पर यूनानी विचारकों का प्रभाव इतना देते ह । उनके मत के लिए देखिए, *Journal of Royal Asiatic Society* 1909 इसके विपरीत रिचार्ड गार्ब और विल्हिम जोस भारतीय दर्शन के प्रभाव को स्वीकार करते ह । इस मत का प्रतिपादन *Richard Garb* की प्रसिद्ध पुस्तक *Philosophy of Ancient India* (Chicago 1897) में अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया गया है ।

थी। भक्तिवादी या आचारवादी तत्वों का उसमें अभाव था। एक उदात्त नतिक या आध्यात्मिक भावना के अभाव में उसमें प्रायः व्यापारिक बद्धि का ही अधिक समावेश था। इस धार्मिक विचारधारा में प्रीति का बीज विद्यमान नहीं था अतएव यह मानवात्मा का पिपासा को अभिनत करने में अशम था। यही कारण है कि हेलेनिस्टिक युग में यूनानी धर्म में पूर्वोक्त धर्मों की अनेक विचारधाराओं का समावेश हो गया। बाद में भारतवासियों के निकट सम्पर्क में आने पर यूनानियों का साक्षात्कार एक सुविकसित आर प्रीति धार्मिक चेतना से हुआ जिससे वे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इस सम्बन्ध में एक बात ध्यान में रखने योग्य है कि अपने धार्मिक विचारों से यवनों को प्रभावित करने की प्रक्रिया के ही द्वारा भारतवासियों ने उनका भारतीयकरण प्रारम्भ कर दिया और कालान्तर में कितने ही यवन भारतीय समाज में घुल मिल गये। इसी विधि के द्वारा शक कुषाण पल्लव और हण आदि बबर जातियाँ भी भारतीय जातियों में मिल गईं यद्यपि वे आक्रमणकारी के रूप में भारतीय साम्राज्य में प्रविष्ट हुईं थीं।

इण्डो ग्रीक सम्पर्क का प्रभाव भारत के विदेशी व्यापार की दृष्टि से बड़ा हितकर पड़ा। पाश्चात्य जगत से भारत का जो व्यापारिक सम्बन्ध पहले से ही स्थापित हो गया था वह और अधिक सुन्दर हो गया। व्यापारिक मार्गों के खुल जाने से भारत का वस्तुयें विदेशी बाजारों में प्रभूत परिमाण में बिकने लगी। भारत की विनास सामग्रियाँ रोम के घनाल्पों और बमवशाली सम्राटों के लिये आवश्यक वस्तुयें हो गईं।

भारतीय इतिहास का यह अध्याय इस तथ्य को सिद्ध करता है कि दो सम्प्रदायों का मिलन और सम्पर्क प्रभावशाली जयवा निरर्थक नहीं हो सकता।

-----

# १७ | शकौ का आक्रमण और भारत में शक-शासन

भारतीय साहित्य में जिन विंशा जातियों का उल्लेख आता है उनमें सबसे प्रथम स्थान शक जाति का प्राप्त था। उसका वाद यवन और पल्लव जातियाँ आता था। संस्कृत साहित्य में अनेक स्थानों पर शक यवन पल्लव शाह का प्रयाग भिन्नता है जिससे विदेशी जातियों का ही वाद आता था। माने में जितने भा विंशी कवील आय और यहा बस गये उन सबका परवर्ती जग में काय ? क्षत्रिय कहा जाने लगा। परन्तु यह वास्तव में उनका हिन्दू वंश में भिन्न का प्रयत्न का प्रतिफल था। य सभी जातियाँ विदेशी थी और इनके लिये साम्राज्यता मन्त्र शाह का प्रयाग किया जाता था। इन जातियों में सबसे प्रथम यूनानियों ने ही भारत में प्रवेश किया जिनके विषय में हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं। जिन विंशा विजयताओं ने उत्तरा-पश्चिमा भारत से यूनानी सत्ता का उन्मूलन किया व था शक पल्लव या पाथियन और यचा-अथवा कुषाण। शका के लिये सीदियन शाह का ना प्रयाग किया जाता है। य लोग मूल रूप में मध्य एशिया का घुमक्कड़ जातियों में से किसी एक शाखा से सम्बन्ध रखते थे। अपने पौसा कबाला का आक्रमण से नयमान होकर और अपना स्वाभाविक सक्रमणशालता के कारण शका ने विभिन्न स्थानों में अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये थे। फारस के हखमनी वंश के प्रारम्भिक मरणा के लम्बा में तीन शक उपनिवेशों का उल्लेख किया गया है जो उनके प्रजाजन थे। भारत में घुमक्कड़ जातियों का प्रवेश का सम्बन्ध में चीनी इतिहासकारों के द्वारा हम महत्वपूर्ण सूचना प्राप्त होती है। १७५-१६५ ई० पू० के लगभग हियंग-नु (Hiung nu) हूण लोगों ने मुयह-चीके महान और शक्तिशाली कबीले का पश्चिमा चीन से निकाल बाहर कर दिया। मुयह ची लोगों को टोकरियन (Tocharians) और तुर्षक भा कहा जाता है। हूणा द्वारा पश्चिमी चीन से निकाल दिये जाने पर ये लोग पश्चिम दिशा की ओर बढ़े जहाँ पर उनकी मुठभट्ट एक अन्य घुमक्कड़ जाति से हुई। इस जाति का नाम से (Sse) या शक था जो मरदरिया (Jaxarted or byr Darva) के तट पर रहते थे। यह मठमे संभवतः शका के आदि देश में हुआ था जहाँ पर युवा जाति से पराजित होने पर उनको दक्षिण की ओर हट जाना पड़ा। अपने घर में निकाल जाने पर उनको भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में शरण लेनी पड़ी। कुछ निम्न वाद विजयता यु-ची लोगों को बु-नन नामक एक अथ जाति के द्वारा पराजय सहन करनी पड़ी और जो मूनाग उहाने शका से हस्तगत किया था उस उन्हें छादना पड़ा। व आक्रमण का कार जनान लग। यु-ची लोगों द्वारा स्वस्थान से निकाल जाने पर शका ने अपनी विश्रुयलित शक्ति का मग्न करना आरम्भ कर दिया और बकिट्टया के इण्डो-ग्रीक शासन पर आक्रमण करने लग। साम्राज्य का एगनाशिया (Arachosia) और

१ मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्रों में प्रायः क्षत्रिय उक्त क्षत्रियों को कहा गया है जो अपने धार्मिक और सामाजिक नियमों का परिपालन न करने के कारण नष्ट और पतित समझ जाते थे।

उत्तरी गड़ोशिया (North Gedrosia) तथा पजाब में दिल्लीसाई पडन लग । परंतु काबुल में उनका प्रवेश नहीं हो सका क्योंकि वहाँ पर अब भी यूनानियों की राज सत्ता कुछ सक्रिय थी । अतः शक लोग भारत में खबर दर्र के माग से होकर नहीं अपितु बलूचिस्तान की घाटुई पर्वत श्रणियों और मोलन के दरों सहोकर प्रविष्ट हुए । कुछ लोग सम्भवतः एक अधिक प्रत्यक्ष माग के द्वारा गए । यह एक उत्तरी माग था और काश्मीर तथा उद्यान से होकर जाता था । इसी माग के द्वारा प्रसिद्ध चीना यात्रा फाह्यान ने भी भारत में प्रवेश किया था । पिछले अध्याय में हम पण्डितों के हैं कि इस समय १४० और १२० ई० पू० बकिट्ट्या के मवन राया का शक्ति अत्यन्त शीघ्र हो चली था जिससे वह इन वंश आश्रान्ताओं के सामने ठहर नहो सके । आगे बढ़कर शक लोग एरिमाना (पश्चिमी और दक्षिणी अफगानिस्तान) तथा पूर्वी ईरान में बसे गए । दक्षिण पश्चिम का जार मु न पर शका न पायवों से लाहा गया जिसका Oxus वस्तु नद के पार राज्य था । पायवों का राज्य शका के प्रसार को रोक नहीं सका । फलतः द्वितीय नामक पायव नरेश उनकी रोकने के प्रयास में मारा गया । पायवों के बाद आतवानुस प्रथम का मा जयने प्राण इसी काय में खान पें । परन्तु जब शका के प्रतापी पायव नरेश मियदात द्वितीय (१२-८८ ई० पू०) से लाहा लना पण्डितों उनका न केवल प्रसार ही रोक गया बल्कि इस शर शालक ने उनका दक्षिण पश्चिम की ओर खदेडकर हजमण घाटी की तलहटी में कर दिया । बाद में इस स्थान का नाम ही शक स्वान प गया । मूस शक लोग आशिया (काश्मीर) तथा बलूचिस्तान से होकर भारत पश्चिम और सिंधु नदी के निचले किनारे में बसे गये । उनके इस नवीन आवास को भारतीय य यकारा न शक लोग और प्राक भूगोल वताओं ने इण्डीमीथिया कहकर अभिहित किया । यह स्थान शका के निवास के लिये पर्याप्त सुविधाजनक था अतएव यहाँ रहकर भारत के विभिन्न भागों में उद्यान अपने राज्य और उपनिवेश स्थापित किए । शका न पाँच विभिन्न राजकुलों का स्थापना की । ये राजकुल इस प्रकार थे—(१) सिंधु और पश्चिमी पजाब में शक-कुल (२) उत्तर पश्चिम के क्षत्रप (३) मयरा के क्षत्रप (४) महाराष्ट्र का क्षत्रप कुल और (५) उज्जैन के क्षत्रप । हम इन राजकुलों का अध्ययन अलग अलग करेंगे ।

## (१) सिन्धु और पजाब का शक कुल

भारत के अभिलेखों में जिन शक राजाओं का नाम उल्लिखित मिलता है उनमें समय की प्राचीनता के दृष्टिकोण से सर्वप्रथम स्थान माउस (Mau) का है । इस माउस का समाकर्मण विज्ञानों न माग के साथ भी किया है जिसका उल्लेख हम तथा शिना के साम्राज्य पर मिलता है । माउस एक पराक्रमी योद्धा और प्रबल विजया था । उसने गांधार और तक्षिला के प्रदेशों का यूनानियों से हस्तगत कर लिया था । उसका उद्योग सम्भवतः मूस के जानवल में हुआ था । माउस भाग एक शक्तिशाली सम्भार (महाराज) था ।<sup>१</sup> उसके राज्य में चुम्भा सम्मिलित था जो तक्षिला के निकट अवस्थित था और जिन पर एक क्षत्रप शासन करता था । मुगल साक्ष्य से इस

<sup>१</sup> उसका शासन पर ग्रीक भाषा में सत्राणों के नामों महान माउस तथा उ० और खरोष्ठी लिपि में राजातिराजस महानम मोडूत लिखा मिलता है । तक्षिला से मित एक साम्राज्य में उसका महाराज' कहा गया है ।



बात का सबत प्राप्त होता है कि उसका अधिकार कापिशि और पुष्पलावती तथा साय डी साथ तक्षशिला पर विद्यमान था। उसका धत्रपा न सम्भवत मथुरा के चारों ओर के प्रदेशों से इण्डोस प्राक आर यूनानों राजमत्ता का उन्मूलन कर दिया। कदाचित यहिडमस के राजवश का पतन हा जान के बाद पूर्वी पंजाब के कुछ भागों और कतिपय निकटवर्ती प्रदेशों में दश के कुछ स्वातन्त्र्यानुरागा और स्वामिमाना वग जिनके अंतर्गत त्रिगत कुनिथ योनय तथा अजनायन प्रमसथ अपनी स्वतंत्रता का दुन्दुमि नाद करने लगे थे। माउस न यकटाइडम और डामथियस के सिक्कों का शकल के सिक्के चलवाय परन्तु एथना एल्किस् (Athena Elks) प्रकार के सिक्के के अभाव में टान न यह अनुमान किया है कि माउस न मिनरर के गृह राज्य (अर्थात् साकल का समावर्ती प्रदेश) का अपन राज्य न ना मितया।<sup>१</sup> माउस न सम्भवत इण्डो यूनानों के बाद ही शासन किया होगा जिनके सिक्के का अंकुश के आकार पर उसने अनेक सिक्के चलवाये। इस प्रकार से उसका शासन का ७२ ई० पू० मानना चाहिए।<sup>२</sup> उनसे सिक्का पर ग्रीक शब्दावा के साथ साथ बुद्ध और शिव का भी अंकुशों से निर्यात है।

मुना-माथ्य के द्वारा यह विनिता जाना है कि माउस का उत्तराधिकारी एजस (Azes) था जिनसे हिपास्टस के राज्य को जपन राज्य में मिलाकर पूर्वोत्तर पंजाब से यूनानों शासन के अवशिष्टों का भा उन्मूलन कर दिया। उसने हिपास्टस के सिक्कों का पुन मुद्रित किया जिसमें उपयुक्त धारणा का पुष्टि होता है। इसमें कार्डे संह नही कि उसने अपन पिता से जा राय उत्तराधिकार द्वारा प्राप्त किया उस पर उमन अपना स्वामित्व बनाय रक्खा था। माशन का सम्मति में उसने यमुनाघाटी का भा विजित किया जहाँ पर विक्रम सवन का प्रचलन था। कुछ विद्वानों को यह राय है कि एजस न ५८ ई० पू० में प्राग्मम हानवान विक्रम मवत् को चलाया था परन्तु इस प्रकार का धारणा के लिए कार्डे आभास्युक्त तक नही है। सिक्के के प्रमाण पर यह अनुमान किया जाता है कि एजस प्रथम के उपरांत एजितिसम (Azilises) राजा हुआ। कुछ मुनाजा पर एक आर यूनानों भाषा में एजस का और प्राइत भाषा में एजितिसम का नाम जिकित है जिसमें यह पना चलता है कि दाना न सयुक्त शासन किया। एजितिसम के पञ्चान पंजाब और मिनर के शक राजकुल का शासनाधिकार एजस निनाय का प्राप्त हुआ। कुछ विद्वान दाना एजसा का एक ही मानत हैं परन्तु उनका पयक मानना हा ममावान जान पता है। डा० स्मिथ के विचार में महाइद द्वारा जा सिक्के प्राप्त हुए हैं उनमें से ऊपर से स्मरों में पाये गये सिक्के एजस निनाय के तथा नाच मिल हुए सिक्के एजस प्रथम के हैं। माशल ने भी इसी

१ देखिए *Political History of Ancient India* V Edition pp 437-438

२ विभिन्न विद्वानों ने माउस का जो तिथि बतलाई है उसमें परस्पर काफी विभिन्नता है। यह तिथि १५५ ई० पू० से लेकर १५४ सन ईस्वी तक बतलाई गई है। डा० रायचौधरी ने अनेक तर्कों के आधार पर यह अनुमान किया है कि माउस ने ३३ ई० पू० के बाद, परन्तु प्रथम गना ईस्वी के उत्तरार्द्ध के पूर्व शासन किया। देखिए, वही, पृष्ठ संख्या ४३८-३९ परन्तु स्टनशानों का मत उस सम्बन्ध में कुछ दूसरा है। उनका विचार है कि माउस न ९० ई० पू० के लगभग शासन करना गर किया।

मत की पुष्टि की है और एजस प्रथम तथा एजस द्वितीय को दो विभिन्न व्यक्ति माना है। एजस द्वितीय के बाद शक राजसत्ता इस प्रदेश से विनष्ट हो गई और उस पर गोडोफरनीज का अधिकार स्थापित हो गया। यह एक पहलूव नरस या जिम्मे विषय में हम आगे पढ़ेंगे।

## (२) उत्तर पश्चिम के क्षत्रप

शक क्षत्रप राजकुला का इतिहास जानने के लिये यह आवश्यक है कि हम क्षत्रपों के विषय में कुछ ज्ञान प्राप्त करें। क्षत्रप एक उपाधि था। यह उपाधि पारस के बहिस्तून अभिलेख में मिलती है जहाँ पर उसका प्रयोग क्षत्रपवान अर्थात् राज्य की रक्षा करनेवाला के रूप में हुआ है। क्षत्रप स्वाधान राजा नहीं होता था वरन् शक सम्राट के प्रतिनिधि रूप में प्रान्तीय शासन का भार वहन करता था। सिंध में अपनी राजसत्ता स्थापित करने के बाद माउसस क्षत्रप यवस्था का प्रयोग किया था। पश्चिमी पंजाब में उसने चवक्षा के त्रियाक तथा पतिक का अपना राज्य प्रतिनिधि (क्षत्रप) नियुक्त किया था। राजराज की उसने जिस उपाधि का धारण किया था वह केवल सिंध्या गव पर आधारित नहीं वरन् एक यथाय वात थी। एजस प्रथम अथवा एजस द्वितीय में से किसी ने क्षत्रप अस्पवमन का अपना राज्य प्रतिनिधि नियुक्त किया था। जिस प्रकार मोग के प्रतिनिधि त्रियाक और पतिक थे उसी प्रकार सम्भवत एजस द्वितीय का प्रतिनिधि स्टेटगस (Stratego) अस्पवमन था। क्षत्रप यवस्था में एक अन्य विशेषता भी पाई जाती है। प्रत्येक प्रांत में दो क्षत्रप हुआ करते थे— एक महाक्षत्रप और दूसरा क्षत्रप जो प्रायः महाक्षत्रप का ही पुत्र एवं उत्तराधिकार होता था। इनका सम्बंध बहुत कुछ उसी प्रकार का था जसा कि किसी प्रांतीय अधिपत्य का एक समय एक ही अथवा निम्न स्थानों से शासन करनेवाले राजन् और मुबराज का।

डा० राय चौधरी के अनुसार उत्तरी भारताय क्षत्रप तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त किये जा सकते हैं —

- (१) कापिशि पुष्पपुर और अमिसारप्रस्थ के क्षत्रप
- (२) पश्चिमी पंजाब के क्षत्रप और
- (३) मयरा के क्षत्रप।<sup>१</sup>

माणिक्याना अभिलेख में कापिशि के क्षत्रप का केवल उल्लेख भर ही हुआ है। यह गण यहूक नामक क्षत्रप का पुत्र था। कानूल संग्रहालय के एक पाषाण अभिलेख से पुष्पपुर के एक क्षत्रप का पता चलता है जिसका नाम निवहण था। पुष्पपुर (फनों का नगर) नामक नगर का उल्लेख हो सकता है कि पुष्करावती (कमल नगरी) के नियंत्रित किया गया हो। अमिसार प्रस्थ नगर के क्षत्रप का नाम निवसन था। यह नाम तांब की एक मील पर मिलता है जो पंजाब में मिली है। इन तीन क्षत्रपों की राज्य सीमा में योन गांधार और काम्बोज सम्मिलित रहे होंगे जिनका उल्लेख हम अशोक के अभिलेख में प्राप्त होता है।<sup>२</sup>

डा० राय चौधरी ने पंजाब के क्षत्रपों को तीन कुलों में विभक्त किया है जो विभिन्न भागों पर शासन करते थे। पहला कुल था कुसुलक का। इस कुल में त्रियाक

<sup>१</sup> *Political History of Ancient India* p 443

<sup>२</sup> देखिए वही, पृष्ठ ४४४।

तथा पतिक वे जो सम्भवतः क्षत्रप कुल थे।। इनका शासन चुक्षा जिले में था। पनीट के अनुसार दा पतिक थे। परंतु माशल की सम्मति में पतिक नामक क्षत्रप एक ही था। कुमुलक वश के क्षत्रपा का मथुरा के क्षत्रपा के साथ निकट का सम्बन्ध था। लिपाक कुमुलुक के सिक्के इस बात की सूचित करते हैं कि उसके पूर्वी गांधार का प्रदेश युक्राइडज के वंशजों के हाथ में निवलकर शकों के अधीन हो गया था। तक्षशिला के एक ताग्रपत्र से हम यह पता चलता है कि लिपाक माउस अथवा मोग का क्षत्रप था और लिपाक का पुत्र पतिक महानामपति था। दूसरा क्षत्रप कुल मनि गल (Mangul) तथा उसके पुत्र जिहोनिक (Jihonika) का था। मुद्राशास्त्र बत्ताभा की राय में एजस ग्नीय के शासनकाल में पुष्कलावती के क्षत्रप थे। परंतु तक्षशिला के सिलवर बज इस्क्रिप्शन से पता चलता है कि जिहोनिक तक्षशिला के निकट चुक्षा का क्षत्रप था। तीसरा कुल इद्रवमन का था। इद्रवमन के उपरांत उसका पुत्र इस्पवमन क्षत्रप हुआ था। इस्पवमन ने एजस द्वितीय और गो डोफरनीज सेना के राज्य प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया था। इस्पवमन के पचास उसके भ्राता सस (Sasa) ने राय प्रतिनिधि का कार्य किया। यह गोडोफरनीज तथा भवोर्राज दोनों का उपशासक था। क्षत्रपों के उपयुक्त दो उदाहरणों से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि क्षत्रप व्यवस्था का तत्कालीन शासनपद्धति में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि शका का राय जब नाट हो गया और उनका स्थान पल्लव राजकुल ने ग्रहण कर लिया तब भी यह व्यवस्था प्रचलित रही और पल्लवों ने क्षत्रपा को उनके पत्नी से च्युत करना भी अनुचित समझा। यह सम्भव है कि क्षत्रप उस समय की शासन प्रणाली के मेर दण्ड स्वरूप थे जिनका सहसा बदल देने से राज्य की केंद्रीय सरकार को धक्का पहुंच सकता था इसीलिये इस्पवमन को प्रतापी पल्लव नरेश गो डोफरनीज ने क्षत्रप के पद से अलग नहीं किया। क्षत्रप व्यवस्था का महत्व हम और अच्छी तरह तभी समझ सकते हैं जब आगे आनेवाले कुपाणा की शासन पद्धति का अध्ययन करें। कुपाणा ने पल्लवों का ध्वंस करके राज्य हस्तगत किया था किन्तु उन्होंने अपने विजिता से क्षत्रप व्यवस्था ग्रहण कर ली जिस प्रकार कुछ समय पूर्व शका की राजसत्ता का उमलन करनेवाले पल्लवों ने अपने विजिता का क्षत्रप व्यवस्था को ग्रहण किया था। इनका ही नहीं कुपाण मन्ना का विनाश हो जान पर भी क्षत्रपों का राय बना रहा। डा० डॉ सी सरकार ने लिखा है कि पश्चिमी भारत के शक क्षत्रपजो, कुपाणों की अपी नता स्थापित करते थे उन प्रायः भारत में कुपाणा की साम्राज्य सत्ता के पतन के बाद भी काफी लंबे समय तक शासन करते रहे। (The Saka Satraps of Western India owing allegiance to Kushanas continued to rule in those regions for a long time after the decline of Kushan imperial power in India The Age of Imperial Unity p 130)

### (३) मथुरा के क्षत्रप

पुत्राभा और अमित्रता की गहापना से मथुरा के क्षत्रपा के राजनीतिक इतिहास का हम काफ़ी अंश में समझ सकते हैं। अमित्रता और मुद्राभा का प्राप्ति के पूर्व मथुरा के क्षत्रपा का इतिहास अचकारमय था। सम्भवतः मथुरा के शक क्षत्रपा ने मथुरा का राय गुगवश के अन्तिम नरेश अथवा किसी कब्र राजा से हस्तगत किया था। इन कुल के प्रारम्भिक राजा ह्यान और ह्यामस थे जिन्होंने कुछ काल तक एक

साथ मिलकर राज्य किया था। इन तीनों परम्पर पिता पुत्र अथवा माता-पिता का सम्बन्ध था यह कह सकता बर्तन है। परन्तु कुछ मुआमला यह पता लगता है कि हगामस ने अक्सर शासन किया और कुछ सिक्का के द्वारा यह भी विदित होता है कि उसने हगामस के साथ राज्य किया। उसके बाद डा. स्मिथ के अनुसार राजस (२ जबल) उसका उत्तराधिकारी था। जीमनेवा द्वारा उसके कार्यों पर काफी प्रकाश पड़ता है। मारा अभिलेख में उन महाक्षत्रप कटा गया है। उसकी मुद्राओं में भी उसके नियम महाक्षत्रप विशेषण का प्रयोग किया गया है। इससे अनुमान यह होता है कि पहले वह क्षत्रप था बाद में महाक्षत्रप का पदवा उसने ग्रहण की। उसके स्वतंत्र अथवा स्वतंत्र प्रायः रूप में शासन करने का अनुमान उसका उपाधियाँ एव मुद्रा-सबधी प्रमाणा सहाना है। राजकाय में उसका पुत्र शाडास (सुदास) क्षत्रप के रूप में उसका सहायता करता था जो उसके बाद महाक्षत्रप हुआ। राजुन अथवा रज्जुवुन एक प्रतापी शासक था। डा० त्रिपाठी के शब्दों में उसने स्टेटो प्रथम जीर स्टूटा त्रितीय के सिक्का का अनुकरण किया था और इससे यह निष्पन्न निकालना वजा न होगा कि रज्जुवुन ने प्राकृत शासन का पूर्वी पंजाब में अंत कर दिया। मथुरा के सिंह मस्तक बाल अभिनयन के अनुसार वह उस समय क्षत्रप था जब कि पांडक अथवा पतिक (जात शिशुता तय का पतिक है) महाक्षत्रप था। इस प्रकार हम दोनों का समसामयिक मान सकते हैं। रज्जुबुल के उपरांत उसका पुत्र शाडास क्षत्रप हुआ। अपने पिता के शासन काल में वह सम्भवतः क्षत्रप था किन्तु बाद में उसने महाक्षत्रप की उपाधि धारण कर ली। शाडास के बाद का इतिहास अंधकारपूर्ण है। स्टन वानो के विचार में शाशास के काल १५ ई० स० के निकट रहना चाहिए। शाडास के बाद मथुरा के शक क्षत्रप कुल का शासन बहुत ही कम ही गई। कुपाणा के आक्रमण ने इसका अंत कर दिया। मथुरा के क्षत्रपों के भारतीयकरण का प्रक्रिया पूर्णरूप से सकल हो गई थी। उनमें से कुछ ने जन धर्म और कुछ ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया।

### (४) महाराष्ट्र के क्षत्रप शक-क्षत्रप

शक क्षत्रपों के विषय में हम ऊपर अमाप चर्चा है किन्तु पश्चिमी क्षत्रप कुल का इतिहास जितना महत्वपूर्ण है उतना महत्व शक राजकुल की किस्सा भी शाशास का नहीं है। पश्चिमी क्षत्रप-कुल का दा शाशास था महाराष्ट्र के क्षत्रप कुलान क्षत्रपों का आर दूसरा उद्भूत के शक क्षत्रपों का। क्षत्रप कुल की उत्तरी उत्पत्ति का निश्चय उनसे सिक्का के ऊपर का खराठा लिपि सहाना है। डा. रमाशंकर त्रिपाठी ने भी अनुमान किया है कि महाराष्ट्र के क्षत्रप सम्भवतः छहर के ही रहनवा न थे। क्षत्रप भूमक महाराष्ट्र के क्षत्रप कुल का प्रथम व्यक्ति था। उसके सिक्के गुजरात तथा काठियावाड़ के समस्त राज्य प्रदत्त में पाये गये हैं और उसका कुछ मद्राज राजपूताना के मानवा तथा अजमेर प्रदेशों में भी मिला है। भूमक के मुद्रा लखा में खराठी और ब्राह्मी लिपियों के प्रयोग से इस तथ्य का पता चलता है कि क्षत्रपों के राज्य में नक्षत्र मानवा गुजरात और काठियावाड़ के प्रदेश ही सम्मिलित थे जहाँ पर ब्राह्मी लिपि प्रचलित थी वरन् राजपूताना और सिंध के कुछ भाग भी इसके अंतर्गत थे। भूमक ने जिस राजकुल का स्थापना का उमका विस्तृत तथा स्पष्ट विवरण हमें प्राप्त नहीं है। उसके पंचान नहपान क्षत्रप कुल का अधिकारी हुआ। प्रोफेसर रफ्तन

न मूमक और नहपान के सिक्कों का जो तुलनात्मक परिशीलन किया है उससे व इसा  
निष्कर्ष पर पहुँच है कि मूमक नहपान का अग्रवर्ती था। उनका विचार है कि मूमक  
के सिक्कों के मुखपृष्ठ का नहपान ने अपन सिक्कों में उट्टा कर रखा है। सिक्कों  
के इन नये गठन उसके आकार प्रकार एवं लिखावट से स्पष्ट है अनुसार इस बात के  
लिय सन्देह का कोई कारण नही बचता कि नहपान मूमक का निकटतम उत्तराधिकारी  
था। (स्पष्टन कटलाग आव आध्र क्वाइस पृष्ठ ८७ स्वर्गीय एन एन घाप द्वारा  
उद्धृत) लेकिन नहपान के साथ मूमक का क्या सम्बन्ध था इस विषय पर सभी  
साध्य मूल है। मूमक उस समय पहुँचा का क्षत्रप था जिस समय कुपाणा का राज  
नासिक शक्ति का भारत में उदय हुआ। वह केवल क्षत्रप ही था बल्कि राजा जयवा  
महाक्षत्रप नही था। उसके कुछ सिक्कों पर एक सिंह स्तम्भ तथा घमचक्र खुदा हुआ  
मिलता है जिससे कुछ विद्वान उसका सम्बन्ध मथुरा के क्षत्रपों के साथ जाते हैं जो  
अपने एक बाइब्लियार के सिंह मस्तक के लिये विख्यात हैं। मूमक के शासन काल  
का पटनावा का कोई विवरण नही उपलब्ध है।

नहपान—महाराष्ट्र के क्षत्रप तुल का सबसे प्रसिद्ध शासक नहपान था। उसके  
विषय में उसके सिक्कों और अभिलेखा द्वारा प्रचुर सूचना प्राप्त होती है। अपने पूर्ववर्ती  
रखा में नहपान क्षत्रप कहा गया है जब कि ४६६ वर्ष के अभिलेख में उसने महा  
क्षत्रप का उपाधि धारण कर ला है। लेकिन इन सभी अभिलेखा में वह राजन् की  
उपाधि से भी विमुक्त है जो सम्भवतः यह सूचित करती है कि राजनीतिक स्थिति  
मूमक के रूप में भी शासन करता रहा यद्यपि उसने कभी भी कुपाण सत्ता का तुल  
कासक के रूप में भी शासन नहीं किया। नहपान के सिक्के राजपूताना के अजमेर जिले और दक्षिण  
में नासिक में प्राप्त हुए हैं। उसके साम्राज्य विस्तार का प्रमाण अभिलेखिक साध्य  
द्वारा प्राप्त होता है। आठ गुहा-अभिलेख जापानुलना में (पूना जिले के नासिक ज़ुमर  
आर काल के निकट) खोजे गये हैं इस बात का सिद्ध करत है कि उसके राज्य में  
महाराष्ट्र का काफी भाग सम्मिलित था। इन अभिलेखा में से सात तो उसके जामात  
उपवदात (ऋषभदत्त) के दानों का वर्णन करत हैं जब कि आठवां अभिलेख अमात्य  
(मन्त्रा अधवा नगर शासन का अधिकारी) अयम के उदारतापूर्ण कार्यों का विश्लेषण  
तथा वर्णन करता है। उपवदात के अभिलेख इस बात को सूचित करत हैं कि नहपान  
का राजनातिक प्रभाव कदाचित् पूना (महाराष्ट्र प्रांत) और मूंगपारक (उत्तरी कांठण)  
से लेकर कात्यावाड में प्रभास मालवा में उज्जैन और मदनसार तथा अजमेर के जिले  
तक फैला हुआ था। उसके राजनीतिक प्रभाव के अंतर्गत पुष्कर में सम्मिलित था  
जो एक तांबेस्थान था। मालव या मालव लोग पर विजय प्राप्त करने के बाद वह  
(उपवदात) अमिषक के लिये यही आया था।<sup>१</sup> महाराष्ट्र में सानवाहना के जो  
आभिलेख मिले हैं उनसे यह विदित होता है कि इस प्रदेश पर उन्हीं का अधिकार  
था। किन्तु नहपान के भी सिक्के और अभिलेखा का महाराष्ट्र प्रदेश में पाया जाना  
यह सिद्ध करता है कि उसने प्रारम्भिक सातवाहन नरणा से महाराष्ट्र छीन लिया  
था और उस पर अपना अधिकार स्थापित किया था। इस बात के भी पुष्ट प्रमाण  
है कि महाराष्ट्र पर शासन-सत्ता जमानेवाला व्यक्ति नहपान ही था मूमक नहीं।

<sup>१</sup> देखिए *Political History of Ancient India* 1 Edition

ममक को मुद्राआ के प्राप्ति स्थाना मे यह पता चन जाता है कि उसका शासन मन्वी काठियावाड अजमेर और पुष्कर तक ही सीमित था। पाण्डन (नासिक) म जिनके अभिलेख मिल है उनमे से किमी म भी ममक का नाम न्पी आया है। इसक विपरीत न्हपान क चाँदी के सिक्के बहुतायत से महाराष्ट्र म मिल जाते हैं और नासिक के बित्तन ही गहाभिलेखा म उसके और उसके जामाता उपवदात (ऋषभदत्त) के नाम जाये हैं। इससे स्पष्ट है कि महाराष्ट्र म शक राज्य का विस्तार करनेवाला न्हपान ही प्रथम क्षहरात था — (ग्री एन एन घोष)। पुष्कर म उपवदात के स्नान का उल्लेख नासिक अभिलेख मे मिलता है। इस अभिलेख के अनुसार मानवी के आक्रमण इस समय बड़ प्रबल रूप म हा रह थ जिनको रोकन का प्रयत्न उत्तममद्र लोग कर रहे थे। न्हपान ने अपने दामाद उपवदात का उत्तममन्वी को सहायता करने का आदेश दिया। श्वशुर का अनुशासन पाकर उपवदात न उत्तममद्रका की सहायता की और मालवा को युद्ध मे पराजित किया। अपनी इस विजय के उपलक्ष म उपवदात ने पुष्कर ताथ की यात्रा की। वहा उसने स्नान किया और ब्राह्मणा को प्रचुर मात्रा म गायें और सुवर्ण दान म दिया। उपवदात के इस कृत्य स यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय शक लग काफी अशा म भारतीय हो चुके थे। उसकी पत्नी दक्षमित्रा के नाम से स्पष्ट है कि नामो म भी शक योग अब भारतीयता अपनाने लगे थ। शका के भारतीयकरण का ज्वरन्त उदाहरण हम महाक्षत्रप रुद्रदामन के जीवन म देखने का मिलता है जिसके विषय म हम जाये पंगे। उपवदात की धमपत्नी दक्षमित्रा ने पुण्यसचयाय एक गहावास दान किया था।

न्हपान के अभिलेखा म तिथियाँ खूनी हुई हैं जा किमी सवन की ४१ से लेकर ४६ तक की वष-मख्याओ के अंतगत हैं। चकि यत् सवन कनिष्क की राज्य गणना को ध्यानकर काई दूसरा नहा नो सकता जो कि शक सवत् ७८ से प्रारम्भ होता है अतएव न्हपान सम्भवत ११९-१२५ के समय ही हुआहोगा। जोमलयम्बी के सिक्का का ह् यह बतनाता है कि गौतमापुत्र शातकणि न न्हपान के सिक्को को फिर से प्रणि किया था। जिन क्षहरात राज्य के उमन्न का वह दावा करता है उसका अधिकार इस समय न्हपान के ही अधीन था उसके किसी उत्तराधिकारी के अधीन न्पी। न्हपान और गौतमीपुत्र शातकणि इसनिये एक दूसरे के समकालीन थे। टोलमी के भूगोल के साध्यानसार गौतमीपुत्र शातकणि का पुत्र प्रतिष्ठान (सानवात्तनो की राजधाना) के राजमिहासन पर १४ सत स क लगभग समामीन था। अतएव गौतमापुत्र शातकणि और उसके समकालीन न्हपान न त्तीय शताब्दी के प्रथम चतुर्थांश म शासन किया हागा।<sup>१</sup>

न्हपान का तिथि के सम्बन्ध म हम यत् ख चके हैं कि उसक शासन का अन्त गौतमीपुत्र शातकणि न किया था। इस प्रतापी सानवात्तन नरेश ने न खवन न्हपान का पराजित ही किया अपितु शका को महाराष्ट्र मे निर्वासित भी कर लिया। परन्तु दक्षिणी प्रांत सानवात्तना क नायो म चन जाने पर भी क्षहरात वश क राज्य का उत्तरी भाग शका क अधिकार म रना। न्हपान के उत्तराधिकारियों के विषय म

<sup>१</sup> इस विवेचन क लिए देखिए *The Age of Imperial Unity* p. 160 f. note 1 राय चौधरी महोदय भी न्हपान की उपयुक्त तिथिय ही मानते ह। द्दिविमे *Political History of Ancient India* 1 p. 480-49

हमारा मान बिल्कुल शक्य है। यह सम्भव है कि उनकी मृत्यु के बाद भी क्षत्रप कुल का शासन कुछ और समय के लिए टिका रहा था परंतु नहपान के बाद इस वंश का गौरव मिट गया।

### (५) उज्जैन के क्षत्रप

यदि यह कहा जाय कि शका के राजकुल में सबसे अधिक महत्व उज्जैन के क्षत्रपों का था तो सम्भवतः अतुल्य न होगा। उज्जैन के शक-क्षत्रपों के कुल ने काफी समय तक शासन किया और देश का राजनीतिक उथल-पुथल तथा सामाजिक नव निर्माण में काफी महत्वपूर्ण भाग लिया। इस वंश के एक प्रसिद्ध शासक रुद्रदामन का इतिहास हम स्पष्टतया बतलाता है कि आक्रमणकारा शक इस समय तक देश की जनता के साथ बिल्कुल घुल मिल गए थे। वे न केवल देश का प्राचीन संस्कृति और परम्पराओं का ही ग्रहण कर चुके थे अपितु वे उनके पापक भी बन गये थे। भारत के प्राचीन इतिहास में इस वंश का अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है।

उज्जैन के क्षत्रप राजवंश का संस्थापक यमामतिक था जो चण्डन का पिता था। यमामतिक का नाम सीदियन उत्पत्ति का है। उसके एक वंशज का जो चन्द्रगुप्त द्वितीय के द्वारा मारा गया बाण न अपने हृदयचरित में शक राजा कहा है। इसलिये विद्वान् इस बात का मानते हैं कि उज्जैन का क्षत्रप-कुल शक जाति का था। इस वंश का ठीक-ठाक नाम नहीं मालूम। रघुन का कथन है कि यह नाम कादम्बक ही सकता है। रुद्रदामन की पुत्री इस बात पर गव प्रकट करता है कि उसका जन्म कादम्बक वंश के नरगा के परिवार में हुआ है परन्तु यह सम्भव है कि इस बात के लिये वह अपनी माता की श्रद्धा रखा था। स्पष्टतया कादम्बक नरगा के नाम का उद्भव फारस का एक नया कर्म से हुआ है।<sup>१</sup>

चण्डन उज्जैन का प्रथम शक शासक था। उसके पिता ने उसके वंश की प्रतिष्ठा पना अवश्य का था परन्तु उज्जैन में अपने वंश का शासन प्रारम्भ करने वाला चण्डन ही था। चण्डन ने सम्भवतः कुषाणों के एक सामन्त के रूप में मौर्य परशासन किया था।<sup>२</sup> नहपान की मृत्यु के बाद एसा प्रतीत होता है कि दक्षिण पश्चिमी भागों का उपशासक कुषाणों ने चण्डन का ही नियुक्त कर लिया और उस सातवाहना से अपने शासनात्तगत उन भागों का पुनः अधिकार में करने का आदेश भी दिया जा नहपान के समय में गौतमीपुत्र शातवाण ने जीत लिया था।

हम क्षत्रप-व्यवस्था के सम्बन्ध में यह जान चुके हैं कि कभी कभी महानक्षत्रपों का उपशासक के रूप में जो नियुक्त की जाता था उसमें उनकी सहायता के लिये कभी कभी क्षत्रप भी नियुक्त कर दिये जाते थे। जब अपनी वृद्धावस्था में चण्डन एक महा क्षत्रप हुआ गया तो उसने अपने पुत्र जयदामन के क्षत्रप नियुक्त कर दिया। जयदामन की मृत्यु शीघ्र ही हो गई जिससे उसके पुत्र रुद्रदामन प्रथम ने उसका स्थान ग्रहण कर लिया। अथाऊँ में जिन अभिलेखा की खोज हुई है वे यह सिद्धि लाते हैं कि शकवष ५२ अर्थात् १३०-३१ में राजा चण्डन अपने पुत्र राजा रुद्रदामन के साथ सम्मिलित

<sup>१</sup> Political History of Ancient India p 505

<sup>२</sup> इ. बी. आ. नामक विद्वान् चण्डन को 'गौतमीपुत्र' का सामन्त मानते हैं।

रूप में शासन कर रहा था। एसा प्रतीत होता है कि उस नियम में चण्डन महाक्षत्रप और रुद्रदामन क्षत्रप था।<sup>१</sup>

रुद्रदामन—जसा कि ऊपर बताया जा चुका है जयदामन अर्थात् चण्डन महाक्षत्रप में शासनमूर्त उनके पुत्र रुद्रदामन को ग्रहण करना पड़ा। लगभग १३०-५१ ई. सन में रुद्रदामन महाक्षत्रप हुआ। उसके मकी मिके उस समय के हैं जिन कि वह मन्त्र क्षत्रप था। उसका शासनकाल का इतिहास जानने के लिये हमारे पास एक जनपद साधन है। वह साधन है जनागढ़ का उसका अभिलेख। इस अभिलेख की तिथि शक सम्बन्ध ८२ अर्थात् १५०-५१ ई. है। गिरनार पर्वत पर जनागढ़ की यह प्रशस्ति उत्कीर्ण है। इस प्रशस्ति की मस्कृत का ओज इम गण्य प्रग के मस्कृत का स्मरण लिखाना है। इस प्रशस्ति से रुद्रदामन की मतिक सफरनाआ और उसने व्यक्तित्व के गणा पर प्रचर प्रकाश पडता है।

रुद्रदामन एक महान योद्धा और पराक्रमी विजिता था। उसने मन्त्रक्षत्रप की उपाधि उत्तराधिकार स्वरूप न प्राप्त करके स्वयं अधिगत की थी (स्वयमधिगत-मन्त्रक्षत्रप नाम्ना)। शतकणि नपति को उसने दो दो बार यद्ध में पराजित किया था परन्तु अपना निकट सम्बन्धी होने के कारण उसने उसे मक्त करके यज्ञ प्राप्त किया था (दक्षिणापथपते सातकर्णोत्तरिपि निर्याजमवजित्यावजित्य सम्बन्धाविद्वरतयानामान्ना प्राप्तयज्ञमा)। रुद्रदामन ने यौधेयो को यद्ध में करारी मार दी। दक्षिणी पञ्जाव और निकटवर्ती प्रदेशों में यौधेया का एक प्रबल गणतन्त्र था और अपनी स्वतन्त्रता रागिता व द्वारा व मन्त्र शासकों को नग किया करते थे। रुद्रदामन ने इनको विजित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली और अपने साम्राज्य विस्तार के माग में उसने एक मन्त्र कण्टक निमन कर लिया। उसने अपने मन्त्रवत्त में एक विशाल भूभाग को अपने अधीन किया। अभिलेख में उसके राज्य विस्तार के विषय में यह वाक्यमण्डल मिलता है—पर्वपरा करावयनपनावदानतमुराष्ट्रवम्भ (म) रुक्छमिधमोवीरक्वरापदान्तनियादानीनी समयाणा) वमसे स्पष्ट होता है कि उसके राज्य में ये प्रदेश सम्मिलित थे—आकर (पूर्वी मानवा जिसकी राजधानी विदिशा थी) अवन्ति (पश्चिमी मालवा इसकी राजधानी अवन्ति थी) अन्ध्र (आधुनिक मद्राशा या मालवे) आनन (उत्तरी काण्डिया वाड) मुराष्ट्र (दक्षिणी काठियावाड) वम्भ (सावर्गनी की घाटी) मर (मालवा का प्रान्त) व छ (कच) सिन्ध (निचनी सिन्ध घाटी का पश्चिमी भाग) मोवीर (निचनी सिन्ध घाटी का पूर्वी भाग) वृकर (उत्तरी काण्डियावाड का वृकर जिला जो आनन व निकट अवस्थित था) अपरान्त (उत्तरी कोक) नियाष्ट्र (पश्चिमी विन्ध्य और अरावली की पर्वत श्रृणियावाडा भाग)। इस प्रकार इम लेखने हैं उसके राज्य में व मन्त्रा प्रान्त सम्मिलित थे जिन पर क्षत्रपों का अधिकार था। मगिक और वना जिन व प्रान्तों पर रुद्रदामन का अधिकार नहीं था। इनमें से कुछ प्रदेशों पर गौतमी पुत्र शतकणि का अधिकार था। परन्तु रुद्रदामन ने इन पर अपना जो स्वामित्व स्थापित किया उसमें स्पष्ट है कि उसने गौतमीपुत्र के उत्तराधिकारी को पराजित कर उसमें कुछ प्रान्त छीन लिये थे।

<sup>१</sup> देखिए *The Age of Imperial Unity* p. 183 चण्डन और रुद्रदामन के सम्मिलित शासन की बात डा० भण्डारकर ने भी स्वीकार की है परन्तु दूबोआ इस मत को नहीं मानते और अर्घाऊ के लेखों को रुद्रदामन के शासन काल का मानते हैं।



रुद्रदामन केवल एक महान विजेता नहीं अपितु एक सफल एवं योग्य शासक भी था। अपने सुशासन द्वारा उसने अपने राज्य से गोगा प्रदेशों वय तथा और अन्य कण्डको का सम्मिलित कर दिया था। वह एक स्वतन्त्रात्मी शक नरु या वरुन आर्यावत के नियमा का परिपालन करने वाला एक प्रजावर्तमान राजा था। उन्निरेय के कथनानुसार सब वर्षों अभिसमय रक्षणाय पतिवे वत्सेन मठ जातिया न मिनकय उने अपनी रक्षक या स्वामी मनानीत किया था। उनकी हम भावप्रियता का कारण था उसका अत्यंत सात्वतजन। प्रजा के सुशासन वरु आर्चिन्तता किया करता था और वह हम इतु को भी काय कन्देक तिये तापर करता था। जनानु की प्रशानि से उसका लोकानरुजन की साठना का एक श्रेष्ठ उदाहरण प्राप्त होता है। उसने सुराष्ट्र प्रांत में स्थित सुत्तान धीन का वाद्य किन्तु म धनवा दिया। हम धीन में यहा के निवासियों को वत्त नाम होता था। उघि न जान में उनका कतिना का अत मव हानि तथा त्रिमके निराकरणाय रुद्रदामन ने मदगन धीन का पुननिर्माण करने का निश्चय किया। परन्तु उसके अमात्रा ने उसके हम मूर्तिचय का आग्रिष कारण का कारण पर स्वागत नया किया। किन्तु प्रजा के कल्याण की निरन्तर इच्छा करने वाला यह शासक सावजनिक हित के हम काय में कने विमग होता ? अतएव हमन वस पुण्यकाय के व्यय मार की स्वय वत्न किया और प्रजा के उपर प्रिना को अति रिक्त कर लगाये पुननिर्माण का साग मच अपने व्यक्तित्व कोप में लिया। वह अपने अमात्रा के सत्यपरामर्शों का मन्व स्वागत करता था और उनके निश्चयानुसार काम करता था। लोककल्याण के काय का सम्पादन करते समय श्री रुद्रदामन ने अपने मंत्रियों का वात मान ली और अपने जब से उस काय का खच लेकर उसने उनको सत्कार किया। मनस्मृति के राजा प्रकृतिरुजनात के अनुसार वह एक सच्चा राजा था।

एक सफल शासक और महान विजेता होने के साथ साथ रुद्रदामन सस्कृत भाषा का परिपोषक था। उसके अमित्रत के उसके मस्कृतानुसंग का परिचय प्राप्त होता है। वह स्वयं भी एक मूर्तिचित व्यक्तित्व था। व्याकरण राजतन्त्र मज्ञान तथा काय का प्रकाण्ड पण्डित था। वह अपनी मस्कृत रचनाओं (गद्य और पद्य दोनों) के कारण मूर्तिचयात था। कादम्बक शासकों के राज्यकाल में उज्जयिनी विद्या की एक मगन रचनापत्नी थी जिसका यश सारे भारतवर्ष भर में परिचयाप्त था। इस बात में को मन्दह नहीं कि भारत के शक शासकों में रुद्रदामन भाषा स्थान का अग्रिष्ठ करता है।

रुद्रदामन के उत्तराधिकारी—रुद्रदामन के उपरान्त उसके वंश का गौरव दिनान्दिन क्षीण होता गया। यद्यपि रुद्रदामन के बाद दो सौ वर्षों तक हम वंश का शासन बान बना रहा तथापि इतने लम्बे काल में भी हम वंश के शासकों ने कोई महत्वपूर्ण काम नहीं किया। वे नाममात्र के ही शासक थे। उनकी शक्ति काफी क्षीण हो गई इसी लिये उनका शासन काल की घटनाओं का वर्णन करना किसी ने आवश्यक भी नहीं समझा। रुद्रदामन के बाद उसका पुत्र रामजट या दामजट्टी उज्जैन के सिंहासन पर बसा। अपने पिता के जीवनकाल में ही उसने क्षत्रप के रूप में अपने नाम के लिये चलेवाये थे। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिता का मन्मथप और पुत्र का क्षत्रप के रूप में अभिहित शासन करना हम शासन-पद्धति का एक साधारण नियम था। १५०-५१ ईस्वी मन् के बाद किसी समय उसने अपने पिता के मन्मथप पर की प्रण

१ सम्भव है कि अन्तिम का यह कथन परम्परागत प्रथाओं के अनुसार प्रगता मात्र ही हो।

किया। इसके बाद भी उज्जैन के शक राजवंश में कई क्षत्रप और महाक्षत्रप हुए परन्तु उनके राजकाल का कोई महत्व नहीं है। ईश्वरदत्त के नेतृत्व में आमीरा का ममुत्या प्रबल हो गया और उन्होंने क्षत्रपों के राज्य से प्रान्ता की छीनकर अपने अधिकार में करना शुरू किया। परन्तु जामीरा की शक्ति भी शक का पूरा रूप से नाश नहीं कर सकी। गुप्ता के उदय के कुछ समय बाद तक इस वंश की शासन परम्परा जस-तस करके चलती रही। अंत में चंद्रगुप्त विक्रमादित्य ने शक राजा का वध कर दिया और उसके राज्य को गुप्त साम्राज्य में मिला लिया। इस प्रकार से भारत में शक शासन का पूरा तरह से उन्मूलन हो गया।

### पल्लवों का शासन काल

पल्लवों का इतिहास शकों के इतिहास के साथ इतना मिश्रित है कि इसका ठीक-ठीक विवरण प्राप्त करना असाधारण परिश्रम का कार्य है। फिर भी पल्लवों का इतिहास अध्यायपूर्ण ही रह जाता है और इस असाधारण परिश्रम के कार्य का करने पर भी हम उनका विस्तृत विवरण नहीं प्राप्त होता। कालक्रम का जहाँ तक प्रश्न है हम पल्लवों के सम्बन्ध में कोई निश्चित कालक्रम दे ही नहीं सकते। इन सब कठिनाइयों के बावजूद भी मिकका और कतिपय अभिलेखों द्वारा हम पल्लवों का कतिपय इतिहास जान सकते हैं जिससे अध्ययन का हम यहाँ प्रयास करेंगे।

पल्लव राजकुल का प्रथम व्यक्ति वानोज था। उसने अपना सत्ता एराकाशिया और सीस्तान में स्थापित की। रप्सन का मत है कि वह पूर्वी एरान पर शासन करता था। उसके सिक्कों से पता चलता है कि उसने महरजस रजरजस महतस अर्थात् महाराजाधिराज का विरुद्ध धारण किया। उसके सिक्कों पर उसके भाई स्पतिराइसिस (Sp. I) और स्पलहारिस (Sp. II) तथा उसके भतीजे स्पलगमिस (Sp. I) के नाम भी खदे हुए हैं जिससे यह प्रकट होता है कि वानोज को शासन कार्य में इनके सहायता प्राप्त होती थी। संभवतः ये विजित प्रान्तों के उसके प्रतिनिधि शासक थे। वानोज ने जो सिक्के चलवाये उन पर युक्टाइ ज तथा उसके वंशजों द्वारा चलवाये गए सिक्कों की स्पष्ट छाप है।

वानोज का उत्तराधिकारी स्पतिराइसिस था। उसने भी संभवतः अपना नाम से सिक्के चलवाये। उसके सिक्कों से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि वह पश्चिमोत्तर भारत के पञ्चम शासक एजस का सम्राट था। कुछ सिक्कों पर सामने का आरम्भ एराइसिस का नाम खना है और खरापी लिपि में पीछे की ओर एजस का। यदि एजस स्पतिराइसिस का प्रतिनिधि शासक था जसा कि वह था तो यह अंश तरह से पकट जा जाता है कि पल्लवों का राजसत्ता वास्तविक अर्थों में इस समय तक नष्ट नहीं हो चुकी थी।

स्पतिराइसिस के भाई ने भी प्रतिनिधि शासक के रूप में कार्य किया था परन्तु उसके शासन का कोई विषय महत्व नहीं है। इण्डियायन नरशा में मन्त्र प्रसिद्ध और प्रतापी राजा का उल्लेख है। डा. डी. सी. सरकार के मतानुसार गोडफरिसिस एराकाशिया का पाषाण उपशासक था। उपशासक के रूप में उसका सम्बन्ध एक अन्य अधीनस्थ शासक के साथ था जिसका नाम गुद अथवा गुदन था। यह नाम कभी-कभी आयगनाज के सिक्कों पर अक्षर खुला हुआ मिलता है, जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि गोडफरिसिस और गुद दोनों ही आधीनस्थ उपशासक थे। गोडफरिसिस ने अपने शासन अपना शक्ति को बढ़ाया और सम्राट बन गया। उसने

बायेंगनीज व सिक्का का आधार पर अपन भी सिक्के चलवाय जिसमें उसके पूर्वी इरान पर अधिकार का सबेता मिलता है।<sup>१</sup> मभवन उसने पाण्डियन साम्राज्य के कति पय प्रवेशो का भी विजित किया। उसके सिक्का से इस धान का पता चलता है कि पूर्वो ईगन और पश्चिमानर भारत का शक पहलव दाना राज्या का वह स्वामी बन बना था। एस्पवमन का कुछ सिक्को से यह प्रकट है कि गाडोफरनिस ने शक राज एजम द्वितीय के अधीनस्थ कुछ प्रदेशों पर भी अपना अधिकार जमा लिया था। इन सिक्का पर जा लख मिलने से उनसे विदित होता है कि अस्पवमन पहल एजेस द्वितीय का सामन्त-नपति था परन्तु बाद में उसने गोडोफरनिस की अधीनता स्वीकार कर ला और उसका कर देना भी आरम्भ कर दिया। सेंट टामस नामक प्रसिद्ध धर्मप्रचारक ने जा उमक राज्य में आया था उस भारत का राजा कहा है।

डा० स्मिथ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक प्राचीन भारत का इतिहास *Early History of India* में गोडोफरनिस के ईसाई धर्म स्वीकार कर इन और सेंट टामस का अत्म-बलिदान की कथा काफी विस्तार के साथ दी है। यद्यपि स्मिथ सात्व न जिन अनुश्रुतिया को अपनी पुस्तक में स्थान दिया है उनका प्रचलन इसा की तीसरी शताब्दी में ही था तथापि इनकी सत्यता में विद्वानों को संदेह है। किन्तु इतना तो जवश्य सत्य है कि सेंट टामस ने गोडोफरनिस के शासन काल में भारत का कुछ भाग का पपटन किया था और ईसाई मत के प्रचार का प्रयत्न किया था। इस ईसाई मत का समाधि आज भी मद्रास का एक निकटवर्ती स्थान में दबी जा सकता है। गोडोफरनिस का शासन काल सेंट टामस की भारत-यात्रा का कारण प्रसिद्ध है। उसका इस यात्रा में मह सुस्पष्ट है कि ईसाई धर्म का प्रवेश यूरोप से भी पहल भारतवर्ष में ही हुआ था। स्मिथ साहब ने एक किंवदन्ती का अपनी पुस्तक में उल्लेख किया है जिसका पता पर संक्षेप में उल्लेख करना अनुचित नहीं जान पड़ता। कहा जाता है कि सेंट टामस ने गोडोफरनिस से धन मांगा और यह कहा कि वह उम धन का द्वारा उसका लिए एक भवन का निर्माण करेगा। गोडोफरनिस ने सन्त का एक लाख मुद्राय की धनका प्रयाग उसने गरीबा का बाँट देने में किया। भवन का निर्माण न होने पर क्रुद्ध होकर गोडोफरनिस ने सेंट टामस को कारावास में बन्दा का रूप में डाल दिया। एक दिन पाण्डियन राजा कारागृह में सन्त से मिलने गया और उससे पूछा कि उमने उन रूपया से जिस भवन का निर्माण कराया वह कहा पर है। इस प्रश्न का उत्तर में सन्त ने आकाश का ओर हाथ उठा दिया जिसका अर्थ यह हुआ कि उसने वह धन गरीबा का बाँट दिया है। इस दान का फलस्वरूप सम्राट का लिए स्वयं भी एक विशाल भवत तयार हो जायगा।<sup>२</sup> स्मिथ साहब ने सन्त का बलिदान की जा कथा उद्धृत की है सम्भवतः उसका आधार पर अग्रजी के सुप्रसिद्ध लेखक और समालोचक लसलस एबरक्राम्बा (*Laucelles Abercrombie*) सलभाव सेंट टामस नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया है। इस ग्रन्थ में बड़ी ही शक्ति और सजावता के साथ बलिदान का विषय का वर्णन किया गया है। इस सन्त के बलिदान की अर्थ कथा का अनुसार टामस का मयलापुर (मद्रास) में अपने प्राणा सहाय धरने पड़े थे। इस कथा का कुछ लाग अधिक विवरण

<sup>१</sup> *The Age of Imperial Unity* p 128

<sup>२</sup> सेंट टामस का यह रूपन ईसाई धर्म के जन्मदाता प्रभु ईसा मसीह की उस शिक्षा का नितात अनुकूल है जहाँ पर वे धनवान व्यक्ति को यह उपदेश देते हैं कि अपनी सारी धनबोलत गरीबों की बाँट दे और मेरे साथ चल। तुम अपना धनना स्वयं से सुरक्षित मिलगा।

नाय मानत है परन्तु जसा कि ऊपर बहा गया है इसकी सत्यता पर विद्वानों को सन्देह है। तत्पश्चात् गांधीजी द्वारा गांधीफोरमिस का तिथि पर प्रकाश पड़ता है। इस तथ्य में ही हुई तिथियाँ के आधार पर इस पाथियन नरेश ने सन् १९४० सन् ४५ सन् ५० तक छ-बीस वर्षों तक राज्य किया। ईसा पूर्व अनुश्रुति का जो गांधीफोरमिस का सत्त टामस का समकालीन बनलगा है तत्पश्चात् गांधी तथ्य की तिथि के साथ अच्छा साम्य स्वरूपता है।

गांधीफोरमिस ने अपने बाहुबल से जिस साम्राज्य का निर्माण किया वह काफी विशाल था परन्तु उसके पश्चात् यह छिद्र भिन्न होने लगा। प्रोफेसर रथसन ने इस वश के सिक्का पर छापे हुए गामा का पता है जिससे पता चलता है कि पनाराज (Lokores) पश्चिमोत्तर पंजाब में और मनेवरीज सीस्तान में शासन कर रहा था। ये दोनों भूमिगत गांधीफोरमिस के उत्तराधिकारी थे। इनके राज्यकाल में पहलव वंश की शक्ति काफी घट गई और कुषाणा ने भारत से पाथियन राजसत्ता का मली च्युत्त कर दिया।

## Questions

### Allahabad University

१ शक कौन था ? शकों के मुख्य क्षत्रप कुलो (भारत से) का वर्णन कीजिए। सबसे अधिक प्रसिद्ध महाक्षत्रप कौन था और उसके जानकारी के विषय के मुख्य साधन क्या हैं ? (१९५०)

2 Give an account of the establishment growth and downfall of Saka power in N W India (19०8)

(१) भारत में इण्डो ब्रिटिश शक्ति की स्थापना और अभ्युदय का वर्णन कीजिए। (१९४९)

## १८ | कुपाण-शासन

शक पद्धत और यवन जातियों की तरह कुपाण लोग भी एक विशेष जाति थे। भारत की विन्धी आक्रान्ता जातियों में सबसे अधिक प्रभावशालिनी कुपाण जाति शायी। इस जाति ने देश का राजनीति पर अपना प्रभाव छाया और कला के विकास तथा धार्मिक जीवन में भी इसका मूल्यपूर्ण योगदान था। कुपाणों के मूल और प्राचीन निवास का विवरण हम चीनी ग्रन्थों में प्राप्त होता है। चीना इतिहासकारों के अनुसार कुपाण लोग यू ची जाति का शाखा थे। मूलतः यू ची लोग उत्तरा पश्चिमा चीन के कानसू नामक प्रदेश में निवास करते थे। शकों के विषय में पता हुए हम यह जान चुके हैं कि १३५-१६५ ई० पू० के लगभग ह्यगनू लोगों ने यू ची का महान और शक्तिशाली कबान का पश्चिमा चान से निकाला और कर दिया। ह्यगनू जाति के द्वारा पराजित और पश्चिमी चान से निर्वासित कर दिये जाने पर ये लोग पश्चिम का और वहाँ पर एक अथ सानोन्दोश जाति से उनकी मुठभड़ हुई। यह जाति थी स (Sse) अथवा शक जो सर दरिया (Iaxartes or Syr Darya) के तट पर रहती थी। पश्चिम की ओर आगे बढ़ने के पहले यू-ची लोगों की इसी नदी की घाटी में निवास करनेवाली एक जाति ने मुठभड़ हुई थी। इस जाति का नाम वु-सुन था। इस मुठभड़ में व-सुन जाति के सरदार को समरूमि में अपने प्राणों में हाथ घोलने पड़े और यू-ची लोगों की गहरी जीत हुई। व-सुन जाति को पराजित और उसके सरदार का वध करने के उपरान्त यू-ची जाति के लोग एक उपयुक्त निवास स्थान का खोज में पश्चिम दिशा की ओर बढ़े। इसी समय यह जाति का शाखाओं में विभक्त हो गई। इस जाति के कुछ लोग दक्षिण दिशा का आरंभ परे और निम्नतः की सामा में निवास करने लगे। यहाँ पर रहनेवाले लोग सिखाव यू ची अथवा छोटी यू-ची जाति के कहलाये। अथ लोमा न पश्चिम की ओर ही अपने प्रवास को जारी रक्खा। ये लोग मुख्य शाखा थे। जसा कि पहले निर्देश किया जा चुका है यू-ची जाति के लोग न सर दरिया के उत्तर में बसे हुए शकों को पराजित कर लिये और उन्हें निर्वासित कर उनकी भूमि पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु अपने इस नवीन आवास में वृहत्तर शाखा के यू-ची अधिक काल तक के लिए टहरने लगे। जिस जाति का उन्होंने पहले पराजित कर दिया था उसी जाति ने इस समय उनसे बदला लेने का विचार किया। इस विचार में ही प्रेरित होकर व-सुन जाति के नये नये जो पुंगन सरदार का हाथ पुनः या ह्यगनू की सहायता से १४० ई० पू० के लगभग यू-ची लोगों का उनके नये निवास-स्थान से खदेड़ दिया। विश्व होकर व-सुन (वश) नाम पर नारिया या तुपार प्रदेश में प्रविष्ट हुए। तातिया प्रवास के निवास अधिवासनया ध्यापारी थे। उनके समाज में राजनीतिक संगठन नहीं था और उनकी प्रवृत्ति मद्ध की ओर भाविक नहीं था। फलतः उन्होंने यू ची लोगों का अधीनता स्वीकार कर ली। यही पर रहकर यू-ची जातिवातों ने अपना शक्ति का संगठन किया और वातों के निवासियों का उत्पीड़ित किया। धीरे धीरे उन्होंने वास्तवी और सातियाना का विजित कर लिया और ईसा पूर्व का प्रथम शताब्दी में अपने समकालीन का परित्याग करके म्याथा जीवन ध्यनीत करना आरम्भ कर लिया। इस समय यू ची लोग पाँच भागों में विभक्त हो गये जिनके चीनी नाम इस प्रकार

बीम वर्तमान के गिना। ग उम महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य पर मा प्रकाश  
 प ता है जिगवा उत्तर हम पिछन अध्याय म (गावात्त रान की ससृति की  
 कालान धार्मिक अवस्था ता शा। स सम्भ ध ग) पर चुक है और जिगवा इम स्थान  
 पर पुन उत्तर करना अगमत ता जा प ता। यह महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य का  
 भारताय ससृति का प्रबन जायत शरित और विविधिया की अपन में पचा सने की  
 उसका अमृत धमता। हम प्रथम कुपाण सम्राट के विषय म अध्ययन करन हुए दन  
 चुक है कि उसन जिन प्राचा पर अपना अधिकार स्थापित किया था वही का भारतीय  
 जनता के धार्मिक विश्वासा का प्रभाव उमन उपर पडा था। यह प्रभाव कर्मिजेव  
 त्नाय के उपर आर अधिक स्पष्ट रूप म स्मिताइ प ता है। उमक सिक्का पर मह  
 श्वर लिखा मिलता है और उन पर एक आर शिव तथा नन्दा की आकृति बना हुई  
 है। इससे यह स्पष्ट प्रतीत हाता है कि धाम कर्मिजेव अपन धार्मिक विश्वासा म

राजा राजाका का राजा समस्त ससार का स्वामी माहेश्वर (धम) रमक ।  
 कनिष्क

धाम कदफिसज के बाद समस्त कुपाण राज्य सिंहासन पर समानान हदेवाना  
 कनिष्क हा था। निम्नान्त कनिष्क कुपाण वश का सबसे प्रतापा और प्रभावशाली  
 सम्राट था आर प्राचीन भारत के महान् सम्राटा का पक्ति म उसका स्थान अत्यन्त  
 गारवशाली है। उसके व्यावस्त्व और कार्यों का विवचन हम आगे कहेंगे पहल उमका  
 तिथि के सम्भन्ध म सक्षिप्त रूपण कुछ विचार कर लना आवश्यक प्रतीत होता है।

उसकी तिथि—कनिष्क के तिथि निर्धारण की समस्या प्राचीन भारत के इतिहास  
 का जोडलतम समस्याआ म से एक है। यह अत्यन्त विवादप्रस्त प्रश्न है कि कनिष्क  
 का शासन काल कब से कब तक था आर अनेक पाण्डित्यपूर्ण लला तथा मुपाण प्रदे  
 तका के वात् मा विज्ञान लाग इस विषय म एकमत नहीं है। इस मत विमय के बीच  
 हम अपना कोई स्वतन्त्र मत नहीं दे सकत। विभिन्न मतों पर विचार कर लना और  
 बिना तर्कमया सभावना का आर निर्देश कर देना ही हमारे लिए अन्त होगा। डॉ०  
 पत्रा का मत है कि कनिष्क ने पाना कदफिसाजा के पहल शासन किया और उनन  
 उससेवन का प्रचनन मा किया जा कावात्तर में विक्रम सबसे नाम से विख्यात हुआ।  
 इतना ही नहीं पलाट साम्य का विश्वास है कि कनिष्क हा नला वरन उसके अन्या  
 विचारिया के बाद पाना कदफिसाजा न राज्य किया। इस मत का समर्थन कनिष्क  
 तथा डॉ०मन ने किया था और बाद म प्राच ने मा इसको स्वाकार किया था। कद  
 मा दम मत के समर्थका म से था। परन्तु माशल ने इस मत का बी ही माथना ।  
 खण्ण किया है। माशल का खाना के बाद अब डॉ० पत्रीट के उपमक्त मत के  
 स्वानार नहीं किया जा सकता। जमिस्ता सिक्का तथा हुमन साग के साम्य से इ  
 वात् का स्पष्ट पता चलता है कि कनिष्क के राज्य म गाचार मी सम्मिन्ति था पर  
 चाना सा या के अनसार प्रथम शताब्दी के उत्तरार्द्ध म यिन मोरू विमिन (कपिश  
 गा चार) पर शासन कर रहे थे, कुपाण लाग नहीं। एलन का विचार है कि कनिष्क

६५-७५ मन् ई० के मध्य निश्चित किया जायता कनिष्क की तिथि को प्रथम शताब्दी के अन्तिम चतुर्थांश के बाद नहीं रखा जा सकता। कनिष्क के सिंहासनाखण्ड का तिथि ७८ सन् ई० मानने में जो विवादजनक प्रश्न उपस्थित होते हैं उनका निराकरण डा० सरकार महोदय ने किया है।<sup>१</sup> कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध में ७८ ई० सन् वाले मत का समर्थन करते हुए प्रापेसर एन० एन० घाष ने लिखा है 'बाद का तिथि (अर्थात् ७८ ई० सन् वाली) इसलिये विशेष रूप से समाय है कि अय कारणों के बीच यदि कनिष्क के शासन का प्रारम्भ हम दूसरी शती ई० में रखते हैं तो रुद्रदामन की स्वतंत्र राजसत्ता के लिये जिसने १३०-१५० ई० में शासन किया आधार नहीं मिलता। रुद्रदामन की स्वतंत्र राजसत्ता का जिसका विस्तार सिन्धु घाटी के निम्न प्रदेश की ओर सम्पूर्ण पूर्व में भारत में था, कनिष्क के भारतीय साम्राज्य विस्तार के साथ किसी प्रकार सम्बन्ध नहीं स्थापित हो पाता। यह केवल उसी दशा में सम्भव है जब कि यह मान लिया जाय कि कनिष्क की मृत्यु के उपरांत तथा उसके उत्तराधिकारी के निवृत्त शासन काल में पश्चिमी क्षत्रपा ने अपनी खोई हुई स्वाधीनता प्राप्त कर ली जो उन्होंने कनिष्क प्रथम के नतृत्व में कुपाणा की कृती हुई लहर के आगे खी दी थी। कनिष्क के काल के सम्बन्ध में विद्वानों के पारस्परिक मत में एक जल्लेख करते हुए इसी मत का समर्थन डा० रमा शंकर त्रिपाठी ने भी किया है। घाष निम्नवत् है, 'इस अन्त में विवाद के बावजूद भी हम कनिष्क द्वारा ७८ ई० के एक सवत् का संचालन मानी जान पता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने एक सवत् चलाया या क्योंकि उसकी गणना पश्चिमी उत्तराधिकारियों द्वारा भी प्रयुक्त हुई और उत्तर भारत में प्रचलित हम किसी अय सवत् को नहीं जानते जिसका प्रारम्भ उससे सत्रहवीं शती ई० के प्रथम चरण में हुआ था जो तिथि कनिष्क के राज्या खण्ड के सम्बन्ध में दी जाती है। उसका अतिरिक्त यदि प्रथम शती ई० के अन्तिम चरण के मध्य में कुजुल के फाडसिस मरा तब कनिष्क उम तिथि से बहुत दूर नहीं हो सकता क्योंकि अरसी वष तक जीवित रहने के कारण, वाम के फाडसिस का शासन अल्पकालिक ही रहा होगा।'

कनिष्क का मय रूप रत्ताये--कनिष्क ने कवल कुपाण वंश का सबसे प्रतापी सम्राट का बरत वह एक और विजिता तथा महत्वाकांक्षी शासक भी था। अपने पिता और त्रिमह के द्वारा स्थापित साम्राज्य की सीमाओं को बढ़ाया।

उत्तर, १. १५ ने अपनी विजया द्वारा अपने राज्य की सीमाओं को बढ़ाया। सबसे प्रथम उसने काश्मीर की मुन्दर घाटी को अपने कौंगर में किया। काश्मीर के प्रसिद्ध इतिहासकार कन्हूण के अनुसार कनिष्क का शासन काश्मीर में कई नगरों को स्थापना भी कराई गई थी। कनिष्क ने पाणिपत प्रदेश को घट में पराजित किया। उसके पश्चात् काश्मीर को हराया था। अपनी पराजय का बदला के शासन काल के प्रारम्भ में ही उस पर १. १५५५। परन्तु उसका मनोरथ सफल न हो सका। यद्यपि अभी कनिष्क अपने राज्य का ठाक स संगठन में न कर पाया था तथा उसने यहुवा का युद्ध में पराजित कर दिया और इस बात फिर उनकी विजिता के हाथों अपना मान महना पडा। चीनी और तिब्बती अनुश्रुति के अनुसार कनिष्क

<sup>१</sup> देखिए The Age of Imperial Unity pp 145-46

ने साकेत और पाटलिपुत्र पर भा अपना अधिकार किया था। यहाँ के शासकों के विरुद्ध उसके सैनिक प्रयत्न पूर्ण रूप से सफल हो गये। कहा जाता है कि पाटलिपुत्र का विजय के सम्बन्ध में ही उस प्रसिद्ध विद्वान् अश्वघोष ने भेंट करने का सीमाग्य प्राप्त हुआ था। अश्वघोष का जन्म मालवे में हुआ था।

ही प्राप्त हुई

कर दिया। चीन के साथ कनिष्क के समय का विवरण बौद्ध अनुश्रुतियों द्वारा प्राप्त होता है। चीन देश का सुप्रसिद्ध सेनानायक पान चाऊ वंग वीर योद्धा और सफल विजता था। लुंगमग ईसा की पहली शताब्दी के अन्तिम भाग में उसने चान देश के पूर्वोत्तर राज्या पर एक के बाद दूसरा, इस प्रकार से घावा बोलना शुरू कर दिया और रण पर अपन शक्ति का विजय पताका फहराने लगा। तैलते ही दगल काशगर, माउकन्द और मृतन पर पान चाऊ का प्रभुत्व स्थापित हो गया। पश्चिम के राज्यों में भा उसका आतिक और प्रभाव का सिक्का जम गया। स्वयं भी, एक महत्वाकांक्षी शासक होने के नाते कनिष्क पान चाऊ की बन्नी हुई शक्ति का सन्त तहा कर सका। उस-अपने राज्य के लिये भा उसकी आर स भय या अतएव उसने चीनी सेनानायक से यद्ध ठामन का विचार किया। यह एक साक्ष्य की बात है कि इस समय चीन की साम्राज्य-सत्ता कितना मूढ और प्रभावशालिनी थी जिसका चुनौती दना साधारण काम नहा था। पान चाऊ लुंगमग के स्थितन सागर के तट तक पहुँच चुका था और रोमन साम्राज्य की सामा पर ल १ था। अपनी विजया के फलस्वरूप उमन चीन देश के राजनातिक गौरव का मिक्का लोमा के हृदया पर जमा दिया था। परन्तु इत वात वा-तानिक भी विचार न करत हुए कनिष्क ने चान के सम्राट की भाँति देवपुत्र की उपाधि शरण का और अपना एक राजदूत, मजकर चीनी राजकुमारा के साथ विवाह करने की अपनी इच्छा प्रकट का। पान चाऊ का यह प्रस्ताव, अपन सम्राट, और देश के निय वंग ही अशामन आर अपमानजनक जान-मंग। उसने भारतीय राजदूत-को बन्दी बना लिया और चान मज लिया। जब स्पष्टतया यद्ध की घोषणा कर देने के अतिरिक्त कनिष्क के पास कोई दूसरा माग, नहीं था। उसने अपन सेनानायक की अधीनता में सत्तर हजार आचारारिहियों का एक सु-ई सेना चान सेनानायक के विरुद्ध मज की। माग में देवनाय प्रश का कठिनाइया द्वारा कनिष्क की सेना का भयकर क्षति लाना प । परिणाम यह हुआ कि कनिष्क की बुरा तरार हार हुई। सपि स्वरूप कनिष्क न चान के सम्राट की वापिस कर देना स्वीकार किया।

परन्तु यह सपि कनिष्क का अनाव कृपकर जान प । वह उपयक्त अवसर की ग्राह में बठा था कि वह अवसर मिल और वह चाना सम्राट का कर दना बंद करे तथा उमन साथ अपना बराबरा दिलनाय। इधर पान चाऊ का मृत्यु हो जाने से पान चाऊ के दशा पर चान का जो चान पहले जम चुकी था वह कम हो गई। पान चाऊ का युवा पुत्र पान-यांग जिसके ऊपर अपन पिता के उत्तरदायित्व बहन का भार था पहा था एक अनुभववान् सेनानायक प्रमाणित हुआ। वा-मीर प्रश के माग द्वारा पामीर का उपयकाओं में हाता हुआ कनिष्क एक ब । सता लेकर यद्ध के निय पहुँच गया। इस यद्ध में कनिष्क का विजय हा गई। चान के सम्राट का वापिस कर मजने के अधमानजनक क्लण से वह उच्छेद हा गया। इतना हा नहा पारकव भोजन और वाशगर के प्रान्त का कनिष्क न अपन साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

कनिष्क का साम्राज्य विस्तार—कनिष्क के साम्राज्य में भारत के बाहर का काफी विस्तृत भूभाग सम्मिलित था। अफगानिस्तान, बकिंदे की काशगर, सोनान और पारकव



तिरिचतही उनके राज्य के क्षेत्रगत थे। उनके आधिकारिक साध्या में उस बात का प्रमाण मिलता है कि कनिष्क का अधिकार क्षेत्रतिक उत्तर प्रदेश, पंजाब, उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रांत तथा सिंध के उत्तर में भावज्ञपुर राज्य पर था। कनिष्क के अनेक लक्ष ममुरास में मिले हैं जिससे ममुरा का उसका जयोन हुआ स्वर्ण सिद्ध है। परंतु चीनी जनशक्ति उस साकेत और पाटलिपुत्र का भी विजेता मंत्रालाती है। उसके सिद्धि भी प्रावस्ती सारनाथ तथा कौशांबी इत्यादि में प्राप्त हुए हैं। पूर्व में गाजीपुर तथा गोरखपुर तक उसका सिद्धि प्राप्त हुए हैं। तथा प्रतीति होगी है कि पूर्व में वाराणसी तक वा अवश्य ही उसका अधिकार था। कनिष्क के तीसरे संध्याक-म सारनाथ में प्रतिष्ठित एक शिवसूक्तमूर्ति के पाद-पीठ पर खद हुए सिल स-विदित हाता है कि उस समय सारनाथ कनिष्क के साम्राज्य में थी। यद्यपि बंगाल और बिहार में भी कनिष्क के सिद्धि मिले हैं तथापि इन प्रांतों का उसका साम्राज्य में सम्मिलित हाता सिद्धि है। प्राचीन साम्राज्य के अन्त अन्त्य प्रदेशों पर भी उसका अधिकार था।

के नाम का एक जो प्राचीन दान

॥ ५१-उसके एक उन्नाधिकारी का

सम्बन्ध मिलता है। पालकमा भारत में शशा के अमान क्षेत्रों का जो शासन व्यवस्था थी उसका अन्तर्गत कुरंग का हा हाथ में था। इस सब प्रमाणों के आन्तर पर यह कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि सिन्धु राजधानी मालवा और काठियावा में कनिष्क के राजनीतिक पैमाने के तीनों कि तु उनके राजनीतिक प्रभाव के अन्तगत अवश्य थे। काठियावा पर कनिष्क के अधिकारों के एक में अधिक प्रमाण मिलते हैं।

राजपूताना में कनिष्क के काश्मिर में शासन करने का उल्लेख मिलता है। जोड़ अनुसूचना के द्वारा भी कनिष्क के काश्मिर पर अधिकार होने का प्रमाण मिलता है।

इस प्रकार यदि हम कनिष्क का साम्राज्य सामान्यता विचार करें तो हम स्वाकार करते हैं कि वह एक बहुत बड़े साम्राज्य का स्वामी था। अपने समय के समस्त प्रभावशाली शासकों में वह अवश्य ही रहा होगा।

शासन प्रणाली—कनिष्क की शासन प्रणाली का विस्तृत विवरण तो हम प्राप्त नहीं है किन्तु कुछ सूत्रों वाले अवश्य मानने हो जाता है। उनका सारनाथवाले अमल से उनका शासन व्यवस्था-पर कुछ प्रकाश अवश्य पता है। इन अभिलेखों से पता होता है कि वे अनेक उन्नत विज्ञान सामान्य का शासन अनुभव शासन-व्यवस्था द्वारा करता था। उसका साम्राज्य का पूर्वी भाग महाजनपद विवरण-दान तथा उन्नत वन्दन पर द्वारा शासित होता था। उत्तर तक उनका महाक्षेत्र था जो शासन ममुरा में था और ममुरा पर शासन करने वाले थे। यद्यपि वे उत्तरी भाग में हल सनातायन चल

१. क. ग. ने अनेक प्रमाणों से अनेक के राज्य की अथ राजाओं का भी उल्लेख किया है। उसने लिखा है "अनेक अनेक नामों पर तीनों नगर यज्ञान यज्ञे हुए अथ और कनिष्क नाम के तीन राजा हुए। उनमें राजपूतान में काश्मिर क्षेत्र में बीड़ों का ही प्राधान्य था।"

१. अथर्ववेद स्वनामाङ्कपुरव्यवस्थापित ।  
 हुकमुककनिष्कश्यास्यमन्त्रय पापिय ॥  
 २. प्रायः राज्याण सेषा प्रायः काश्मिरमण्डलम् ।  
 भोजमस्ते सम्योदानां प्रयोजितवेत्समा ॥

और वेसपति तथा सियाव नामक क्षत्रपों का नाम सुनते हैं। बिसेट स्मिथ माहब का अनुमान है कि महाराष्ट्र का क्षहरातवशा नहपान और उज्जैन का क्षत्रप चण्डन कदाचित् कनिष्क के ही सामंत थे। कनिष्क की राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी। उसने अपनी राजधानी को अनेक मध्य भवना सावजनिक शालाओं और बौद्ध विहारों से समलङ्कित किया था। काश्मीर की कनिष्कपुर नगरी को भी समवत उसने ही बसाया था। परन्तु डा० राय चौधरी को धारणा है कि इस नगर की स्थापना आरा जमि लेखवाले कनिष्क के द्वारा कराई गई थी।

कनिष्क का धर्म—जसा कि डा० राय चौधरी महोदय ने कहा है कनिष्क का यश उसकी विजयों पर उतना अधिक अवलम्बित नहीं जितना कि साक्यमुनि के धर्म को उसके राजाध्वय प्रदान करने पर।<sup>१</sup> उसकी मुद्राओं तथा पेशावर (Casket) अभिलेख से यह विदित होता है कि उसने वास्तविक रूप में समवत अपन शासन काल के प्रारम्भ में ही बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। पुरुषपुर अथवा पेशावर में उसने एक बौद्ध मघाडाम का निर्माण कराया था। यह बौद्ध विहार एक बौद्ध ताय का रूप में नवीं शताब्दी तक बतमान था जब कि प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान बीरदेव ने उसकी यात्रा की था जो मगध के नरेश देवपान के समय में नालंदा का महास्वयंभिर निर्वाचित किया गया था। कनिष्क के चर्य का उत्पन्न अलबरूनी नामक प्रख्यात मुस्लिम यात्री ने भी किया है।

परन्तु भारतीय जीवन की परम्परा के अतकूल कनिष्क ने धार्मिक विषया में अपने उदार दृष्टिकाण का परिचय दिया। उसके विशाल साम्राज्य में विभिन्न धर्मों के अनुयायी निवास करते थे जिनमें सबके साथ उसने धार्मिक निष्पक्षता तथा सहिष्णुता का व्यवहार किया। उसने मिकको से उसकी धर्म सम्बन्धित धारणा का परिचय हम स्पष्टतया हा जाता है। उसने मिकका पर यूनानी ईरानी और हिन्दू देवताओं के चित्र मिलते हैं। इन देवताओं का नाम इस प्रकार था—हेराक्लीज, सेरापिज मृष चन्द्र शिव और अग्नि आदि। उसकी राजसभा की जो गुणवान् व्यक्त समलङ्कित करते थे उनमें सभी धर्मों का अनुयायी सम्मिलित थे।

कनिष्क के व्यक्तित्व का महत्त्व—प्राचीन भारत के इतिहास में कुषाण सम्राट कनिष्क का अपना एक निश्चित स्थान है। अपनी सय सफलताओं से जहाँ वह एक और हम समद्रगुप्त का स्मरण दिनात्ता है वही दूसरी ओर अपनी धर्मानुरागिता तथा बौद्धधर्म का करने रायप्रथय प्रदान करने के कार्य से वह महान अशाक की याद कराता है। बौद्धधर्म का इतिहास में तो उसका अत्यन्त गौरवपूर्ण स्थान है। जसा कि हम आगे इसी अध्याय में पढ़ें उसी का शासन काल में बौद्धों की चतुर्थ संगीति हुई थी जिसमें महायान पथ का बौद्धधर्म का एक स्वीकृत रूप प्रदान किया। कहना न होगा कि महायान बौद्धधर्म हा लाक रचित का अधिक निकट था और जित बौद्धधर्म का विदग्धों में प्रचार हुआ वह महायान ही था। अशाक की मूर्ति उसने भी बौद्ध धर्म के प्रचार का प्रयत्न किया और अपनी समस्त प्रजा का साथ धार्मिक सहिष्णुता प्रदर्शित करने में था उसने इस महान सम्राट के द्वारा दिखाय हुए मार्ग का अनुगमन किया। अशाक की ही मूर्ति कनिष्क भी बलानुरागी तथा भवन निर्माता था। उसके द्वारा निमित्त

<sup>१</sup> Kanihska's fame rests not so much on his conquests as on his patronage of the religion of Sakyamuni. Political History of Ancient India V Edition p 475

बौद्ध विहार का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। जिस प्रकार पाटलिपुत्र में अशोक द्वारा बनवाये हुए राजप्रासाद की प्रशंसा आगे चलकर<sup>१</sup> फाह्यान नामक तीर्थयात्री ने की थी उसी प्रकार कनिष्क के बौद्ध धर्म का प्रशंसा मिश्रित उल्लेख अलबरूनी ने किया था। अनशुनि अशोक का नेपाल में ललितपाटन तथा काश्मीर में श्रीनगर की स्थापना का श्रेय प्रदान करती है। हम देख चुके हैं कि कनिष्क का भी नगरो की स्थापना का श्रेय प्राप्त है। यहाँ भी अशोक और कनिष्क दोनों एक साथ ही उठते हैं। एक बात में कनिष्क अशोक से भी अधिक भाग्यवान् था और यहाँ वह समुद्रगुप्त अथवा अधिक जीवित्य के साथ कहना चाहिए चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का समकक्ष है। हमें इस बात का कोई स्पष्ट विवरण प्राप्त नहीं कि अशोक की राजसभा में गुणवान् व्यक्तियों का सम्मेलन लगा रहता था। किन्तु कनिष्क का राजसभा का गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय की राजसभा की भाँति कई गुणवान् व्यक्ति अपनी उपस्थिति द्वारा समलकृत करते थे। चन्द्रगुप्त के नवरत्नों की भाँति इन व्यक्तियों ने भी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में निपुणता तथा श्रेय प्राप्त कर ली थी। न केवल बौद्ध धार्मिकों अथवा पारस और यमुनिन ही उसकी विशिष्ट रूपा के पात्र य अपितु एक अथ विद्वान् सधरस भी सम्भवतः उसका पुरोहित था। नानाजून नामक प्रसिद्ध दार्शनिक, जिसने जूयवाद के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और जो महायान धर्म का प्रबल समर्थक था तथा धृष्टक, जिनका आमुवेद विषयक चरक संहिता नामक ग्रन्थ अब भी चिकित्सकों के लिए अद्भुत और विम्वय का कारण है कनिष्क की राजसभा की सुशोभित करते थे। माघर नामक कुशल राजनीतिक कुषाण सम्राट् के मित्रिया में से एक था। यनाली इन्जीनियर एजे सिनअस (Agelius) भी कनिष्क का समकालीन था। ये तथा अथ गुणवान् व्यक्ति कनिष्क के शासन काल के धार्मिक साहित्यिक वैज्ञानिक दार्शनिक तथा कलात्मक कार्यों में महत्त्वपूर्ण भाग लेते थे।<sup>२</sup> विद्वानों को राज्यरक्षण प्रदान करने और गुणवानों को समादृत करने की दृष्टि से भारत के सम्राटों में कनिष्क का निदरघ्य ही एक महत्त्वपूर्ण स्थान है।

हमने ऊपर कनिष्क के जिन गुणों का उल्लेख किया है उनमें द्वारा वह अशोक के साथ बैठता है। परन्तु जिस प्रकार प्रोफेसर राधाकुमुद मुखर्जी ने हय में सम्राट् समुद्रगुप्त और महान् सम्राट् अशोक का स्मृतिया का समन्वय निरालाया है उसी प्रकार हमने भी कनिष्क के व्यक्तित्व में उन गुणों की उपस्थिति का निर्देश किया है जिनके कारण वह समुद्रगुप्त तथा अशोक की स्मृति एक साथ दिलाता है। समुद्रगुप्त की भाँति कनिष्क भी एक महान् विजयता था। उसकी दिग्विजय का वृत्तांत हम पीछे पढ़ चुके हैं। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने मुजवत द्वारा ही कनिष्क ने भारत में एक विशाल नू भाग पर अपना विजय-पताका फहराई थी। अपने पूर्वजों द्वारा उत्तराधिकार रूप में उमने जो राज्य प्राप्त किया था उसकी उसने बज्ज रक्षा ही नहीं की अपितु उसकी सीमा का विस्तार भी किया। उसका महत्वाकांक्षा अदम्य थी। यद्यपि उसकी विज्ञान वाहिनी चीना सेनानायक पान चाऊ के साथ युद्ध करने में परवर्तीय मार्गों की कनिष्क के कारण बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गई थी और इसी कारण से उसकी पराजय भी उजानी पड़ी तथापि उसने कुछ समय बाद अपने ही पराक्रम से अपने अपमान का प्रतिकार किया और अपनी महत्वाकांक्षा को सन्तुष्ट किया। -

<sup>१</sup> पाटलिपुत्र के राजप्रासाद का निर्माता तो सम्भवतः चन्द्रगुप्त मौर्य था, परन्तु उसको बहान, पुनर्निमित्त बनाने तथा अधिक सुन्दर बनाने का श्रेय अशोक को ही है।  
<sup>२</sup> Political History of Ancient India p 478

— कनिष्क की शासन-व्यवस्था का कोई मुम्पत्त विवरण हम ज्ञात नहीं जिसके आधार पर हम यह कह सकते हैं कि वह निम्न का—

युग की प्रचलित  
रखे उसने अपनी  
न्यय म विचार

युग की व्यवस्था, व जसून सम्भवत वात-गणना की तीसरी पद्धति भी ग्रहण कर ली थी। उसके द्वारा दो पद्धतियों की स्वीकृति का विषय भाषों काई सदेह है ही नहीं यदि जासूरी पद्धति का ग्रहण कर लना का हमारा अनमान सत्य होता उसके आधार पर—

जुनता का पयाप्त, सुधिया हुआ थी। कनिष्क के इसाकाफस भी उसकी राजनी-  
तिक, दूरदर्शिता का परिचय प्राप्त होता है।

11. कनिष्क को शासन काले बहुत बौद्ध भोगीति के लिए विख्यात है। सम्राट अशोक के समय में भी एक बौद्ध भोगीति का जायानन किया गया था जिसमें कुछ महत्वपूर्ण निष्पत्ति विम गये थे जिनके द्वारा बौद्धधर्म के प्रचार को एक विशिष्ट गति और एक विजय दिशा प्राप्त हुई थी। यही बात कनिष्क के शासन काल में भी हुई जिसने बौद्ध लेखकों को दक्षिण में कनिष्क को स्थान अशोक के ही बराबर है। अतएव अब हमें कनिष्क के राज काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना का अध्ययन करना। यह घटना थी, बौद्ध भोगीति का जायोजन।

12. कनिष्क के समय को बौद्ध भोगीति—सम्राट कनिष्क ने अपने बौद्धधर्म स्वाकार हो लने के लिए बरत इसका सिद्धान्त का समर्थन का उसने चष्ट भी की। परंतु इस कार्य में उसका कनिष्क का अनभव हुआ क्योंकि इस समय तक पंचवर बौद्ध धर्म का स्वरूप काफी अस्पष्ट हो गया था। सिद्धांतों और धर्म के मूल तत्त्वों के प्रान पर नाना प्रकार के विवाद उठ खड़े गये थे। विभिन्न धर्माचारों के मता में-भारत स्थितिक द्वंद्व काफी प्रचुर परिमाण में उत्पन्न हो गये थे। विभिन्न धार्मिक सिद्धान्तों की सूक्ष्मता के बोधों और जटिलता का भार में बौद्धधर्म का सरल और बायगम्य सिद्धांत बन गये थे। एसी स्थिति में उनको हृदयगत करना व-कठिन था। इसके अतिरिक्त कुछ धार्मिक प्रानों पर विभिन्न धर्माचारों के एकमत होने की आवश्यकता भी बहुत बलवती होती है। इही सब कारणों से कनिष्क के समय में बौद्ध भोगीति का आयोजन करना अनिवार्य हो गया। बौद्ध प्रानों में स्पष्ट लिखा है कि कनिष्क ने राजा के काल में बौद्ध भोगीति का उत्सव मई में उदय उदय दिशा में किया था। इस चतुर्थ को

यथा था। वसुधैव कुटुम्बकम्  
इस वाक्य का कायमार्थ न  
स्वर्गों की परस्पर तक वि-  
वाद विवाद हुए उनका माध्य रूप में सकलित कर दिया गया। य माध्य विभाषाशास्त्र कहलाये। निम्पित पर ही प्रमाणिक माध्य का रचना हुई जिसे कनिष्क ने साम्प्रदायिक पुनर्नवना काया। उनको एक परवर का मूल में रखकर उनमें उनमें ऊपर से एक नियम का निर्माण कुछ दिशा प्राप्त इस समाति न ही मुख्य कार्य किये। एक तो उसने यह किया कि नय विचारों और बौद्ध दर्शन का कतिपय नवान विचार सरणिया का

विवास के प्रकाश में धर्म-मार्गों को नये ढंग पर लिपिबद्ध किया। नवीन लिपिकरण में सिद्धते भाषा का व्यवहार किया गया था। सगीति को दूसरा भाषा महायान बौद्ध शास्त्रों की राजधर्म रूप देना था जिसके प्रकार के लिए कनिष्क उसका सरसक यानों के इस बौद्ध सगीति में पाच ही विद्वानों से माग लिया था जो देश के प्रत्येक भाग से आया थे। सगीति का अविवेकनाछ मामूली तक ही रह रहा। (प्रोफ सर एन० एम० घोष) ११।

महायान मत का उदय—बौद्ध धर्म के इतिहास में कनिष्क के राजत्वकाल में होनेवाली चतुर्थ सगीति का विशेष महत्वपूर्ण स्थान है। जसा कि रालिन्सन महोदय ने लिखा है, यह बौद्धधर्म के इतिहास में नवीन युग के आरम्भ होते को सूचित करती है। यहाँ (मधीन युग) या महायान का उदय जा हानयान के प्रारम्भिक बौद्धधर्म से उत्तरी ही भिन्न है जितना कि मध्यकीलीन ईसाई धर्म प्रथम शताब्दी ईसवी में ईसाई धर्म का सरल सिद्धांतों से भिन्न है। रालिन्सन का विचार है कि महायान धर्म का उदय कुछ तो अश्वघोष सरीखे विद्वानों द्वारा प्रयत्ना का प्रतिफल था जिन्होंने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था और जो इस ईश्वर धर्म का कुछ निवृत्त लोगों चाहते थे। परंतु इसके उदय का कारण अधिकांश रूप में यह बात थी कि उत्तरी-पश्चिमी भारत में अनेक अभिनव प्रमाणा का प्रवेश हो चुका था। या प्रभाव य—चुनती ईसाई धर्म का उदय तथा मध्य एशिया के अनेक प्रभाव। जब बौद्ध धर्म विदेशों अतिमण कारिया का धर्म हो गया तो इसका मूल समापूर्ण रूप से विलुप्त हो गया। विसन्त स्मिथ साहब का भी मत इस सम्बन्ध में रालिन्सन का विचार से मिलता-जुलता है। स्मिथ साहब का कथन है कि जब से बौद्ध धर्म भारत की सीमा पार करके दूसरे देशों में गया तभी से उसके प्राचीन रूप में परिवर्तन होने लगा और उसमें भिन्न भिन्न प्रयोगों का सम्मिश्रण आ मिला। परंतु कतिपय भारतीय विद्वानों का स्मिथ और रालिन्सन का यह मत मान्य नहीं है कि महायान के उदय का मूल कारण विदेशों आदर्शों का प्रभाव है। वास्तव में हम रालिन्सन साहब का वह मत अधिक मान्य प्रतीते होता है यद्यपि वे स्वयं इस पर अधिक बन्ध नहीं प्रदान करते कि यह अश्वघोष सरीखे विद्वानों द्वारा प्रयत्नों का प्रतिफल था जो बौद्ध धर्म को द्वि-धर्म के निकट ज्ञान चाहते थे।

111. K. R. Loka & Council at Kashmir marks the beginning of a new epoch in the history of Buddhism. This was the rise of the Mahayan or Northern Church which differs as much from the primitive Buddhism of the Hinayana or Little Vehicle of the South as the Mahayan faith differs from the simple creed of the Hinayana of the first century.

112. H. G. Rawlinson on India—A Short Cultural History p. 66

113. The change was partly due to attempts of uneducated Brahmin converts like Asvaghosha to reconcile Buddhism with Hinduism. But it was due still more to the fact that in North Western Asia a number of new influences—Greek Christian Zoroastrian and Central Asian—had crept in. When Buddhism became the religion of the foreign invaders from the northern steppes it entirely lost its original character. वही, पृष्ठ ९६-९७।

महायान पथ के ऊपर विदेशी प्रभावों की अपेक्षा भागवत धर्म का प्रभाव अधिक स्पष्ट तथा परिलक्षित होता है। महायान का उदय कनिष्क के पहले ही हो चुका था। जैसा कि प्राक्पर एन० एन० धोप ने लिखा है महायान के वोज हीनयान सम्प्रदाय में ही निहित थे। प्रोफसर नलिनाथ दत्त का भी कथन है कि पाली निकायो में ही ऐसे स्थल हैं जो महायान सिद्धांत की शिक्षा देते हैं। आपने महायान धर्म के उदय काल पर विचार किया है जिससे मालूम पता है कि कनिष्क के समय में महायान पथ पहले ही से एक सजीव शक्ति के रूप में था। प्रसिद्ध विद्वान की सम्मति में महायान बौद्धधर्म का एक स्वीकृत रूप कनिष्क के ही समय में बना।<sup>१</sup>

हीनयान और महायान धर्मों में एक मौलिक अन्तर है। हीनयान धर्म का मोक्ष पर विषय आग्रह है और मोक्ष के लिए वह व्यक्ति की इस काय के हेतु निरन्तर प्रयत्नशीलता को ही सबसे बड़ा साधन धरता है। बुद्ध ने अपने शिष्य से इस बात की जोर देकर कहा था कि तुम अपने शरण्य आप बनो अपने लिए दीपक बनो जादि। उन्होंने यह भी कहा कि अपने निर्वाण का प्रयत्न तुम स्वयं परिश्रमपूर्वक करते रहो। परन्तु महायान मत में भक्ति का समुचित स्थान दिया गया। एक कर्णामय उपास्य देव की कृपाशीलता पर जोर दिया गया। हीनयान धर्म में बुद्ध केवल एक शास्ता के रूप में ही थे परन्तु महायान धर्म में उन्हें देवता का स्थान दिया गया। उनको परमात्मा समझा जाने लगा और उनकी मूर्ति बनाकर लोगो ने उनकी पूजा करने प्रारम्भ कर दी। महायान धर्म में अवतारवाद के सिद्धांत को स्थान मिला। रालिंसन ने लिखा है कि बुद्ध जी अब एक दिवगत गुरु के रूप में नहीं रह गये बल्कि एक जीवित रक्षक देवता बन गये जिन्होंने रोम अथवा कृष्ण की भाँति मानवता की मुक्ति के लिए अवतार ग्रहण किया था। अवतारों का सिद्धांत जिसका प्रयोग बौद्ध धर्म तथा जन धर्म में ही रहा था बौद्ध धर्म के द्वारा ग्रहण कर लिया गया। ऐतिहासिक बुद्ध आदि बुद्ध के अवतारों की एक श्रृंखला की अन्तिम की ही रूप में समझे गये और अधिकाधिक रूप में वे पृथ्वी में पड़े गये।<sup>२</sup>

अवतारवाद और भक्ति के समावेश से बौद्ध धर्म का स्वरूप काफी परिवर्तित हो गया। हीनयान धर्म शुष्क और सिद्धान्तपरक था। इसकी दृढ़ आचारवादिता साधारण जनता की मनोवृत्ति के अनुकूल नहीं थी क्योंकि ज्ञान और वराग्य उसकी शक्ति के बाहर की बातें हैं। साधारण जन ऐसे इष्टदेव की खोज करते हैं जो उनके जीवन के सघन विषयों में उनकी सहायता करें और जिसकी उपासना के लिए उन्हें सत्कार का परिष्कार करना पड़े। जीवन के हास विलास सुख-दुःख हृष्य शोक जय-पराजय

<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में विशेष विवरण के लिए देखिए *The Age of Imperial Unity* Chapt XIX Religion and Philosophy

<sup>२</sup> Buddha ceased altogether to be a dead teacher and became a living saviour God incarnate like Rama or Krishna for the salvation of human race The theory of Avatars or incarnation which was being applied to Vaishnave Hinduism and Jainism was adopted by Buddhism The historical Gautama was regarded as merely the latest of a series of incarnations of the Adi Buddha or Primeval Spirit and fell more and more into the Background

तथा रुदन-हास का अनुभव करते हुए ही साधारण जन इस भवसागर से पार उतरना चाहता है। इस काम में इष्टदेव उसकी सहायता करते हैं और उनकी पूजोपासना में उत्सान रहकर वह अपनी अमौल्य सिद्धि करता है। हीनयान प्रमुख रूप से ज्ञान और पाण्डित्य सम्पन्न व्यक्तियों तथा सत्यासिधों के लिए था। इसकी सुष्कता निरोत्तर वादिता और स्वावलम्बन पर इसके प्रबल आधार आदि ऐसे तत्व थे जो जनसाधारण के लिए नितान्त दुर्बोध थे। यह बात स्मरणाय है कि अशाक को भी बौद्ध धर्म के प्रचाराय इसका कतिपय सिद्धान्तों को लोकचर्च के अधिक निकट लाने का प्रयत्न करना पड़ा था। उसने हीनयान धर्म के मोक्ष के आग्रह के स्थान पर अपनी प्रजा के सम्मुख स्वयं का दिव्य दृश्य प्रस्तुत किये। महायान धर्म में उन तत्त्वों का समावेश किया गया जिसके द्वारा यह जनसाधारण को आध्यात्मिक पिपासा को अभितुष्ट करने का योग्य हुआ। भक्ति और सबभूतानुभवा इस धर्म के अभिन्न अंग बन गये।

महायान बौद्ध धर्म ने विदेशों में बौद्ध धर्म के प्रचार को सुगम कर दिया। एक समय में भारत के अन्दर बौद्धधर्म बड़ा ही लोकप्रिय था जिसका कारण महायान पथ का उदय था। कुछ विद्वानों का विचार है कि जब साधारण जनता ने बौद्ध धर्म स्वीकार किया तो महायान का उदय अवश्यम्भावी हो गया। महायान के उदय के कारणों पर विचार करने हुए डॉ० त्रिपाठी ने अपनी यही सम्मति प्रकट की है। वे लिखते हैं 'यद्यपि प्रमाण सबथा प्रस्तुत नहीं तथापि इस बात को मान लेने के लिए विशिष्ट कारण है कि महायान का उदय वास्तव में कनिष्क के काल से काफी पहले हो चुका था। इसका प्रारम्भ बौद्ध धर्म में भक्ति समावेश के साथ माना जाना चाहिए। बौद्ध धर्म का साधारण जनता में प्रचार कुछ हद तक इसका कारण हो सकता है क्योंकि उस हीनयान के आदर्शवाद से ऊपर उदार जनधर्म की आवश्यकता थी और हीनयान में उसकी भक्ति का प्रवर्धित करने की सामर्थ्य नहीं थी।' भारतीय सीमा के बाहर भी बौद्ध धर्म के प्रचुर प्रचार का श्रेय महायान को ही है, हीनयान को नहीं। महायान मत ने प्राचीन बौद्धधर्म में नवजीवन का सम्भार कर दिया जिससे अपने नये रूप में वह भारतीय सीमाओं को लाँचकर शीघ्र विदेशों में जा फला। तिब्बत, चीन, जपान और जापान ने बौद्ध धर्म के नये रूप को उसी क्षण अंगीकार कर लिया।

कनिष्क का निधन—कुछ दत्तकप्राप्तों द्वारा विदित होता है कनिष्क का निधन दुःखद और बरुण रूप में हुआ था। उसके सेनापतियों ने उसके विरुद्ध षडयंत्र करके उसका वध कर दिया। उसके सरदार और सेनापति उसने युद्धों से तंग आये थे जिससे उन्होंने रात्रि के समय उसकी हत्या कर डाली। कुछ विद्वानों का कथन है कि कनिष्क ने ४५ वर्ष तक राज्य किया। परन्तु अन्य विद्वानों का विचार है कि उसने २३ वर्ष तक राज्य किया था। यही मत में अधिक माय्य प्रतीत होता है। इस प्रकार उसका निधन (७८-२३) १०१ सन् ईसवी के लगभग हुआ।

कनिष्क के उत्तराधिकारी—कुपाण वंश का सबसे प्रतापी सम्राट कनिष्क था जिसके देहावसान के अनन्तर इस वंश का राजनीतिक गौरव क्षीण होने लगा। कनिष्क के उत्तराधिकारियों में से कोई भी उसका समान पराक्रमी अथवा प्रभावशाली नहीं हुआ। उसके उत्तराधिकारियों के विषय में हमारा ज्ञान अत्यन्त स्वल्प है। कनिष्क के बाद वामिष्क उसका उत्तराधिकारी हुआ। वामिष्क के विषय में इतिहास नितान्त सूब है। उसका सिक्के भी प्राप्त नहीं हुए हैं। सम्भवतः उसने अपने नाम से सिक्के चलवाये ही नहीं। हुविष्क के विषय में हमारा ज्ञान अपेक्षाकृत अधिक है। उसका एक अभिलेख काबुल के निकट बारदक में प्राप्त हुआ है जो यह सिद्ध करता है कि

दृविष्क को अधिकार अफगानिस्तान पर था। सम्भवतः दृविष्क वहाँ दृष्क है जिसके विषय में फ्लोरेन्स ने 'राजतरंगिणी' में लिखा है कि वह आर्यों के दृष्कपुर नामक नगर को स्थापित की। फ्लोरेन्स के विवरण से यह अनुमान होता है कि दृविष्क ने दृष्क और कनिष्क अर्थात् वाविष्क और आर्य अमिलिय (५१वें वर्ष) बाल कनिष्क

(मरपिस) अस्तवगा (Manabago) (Mao प्राचय का दया/एरदाक्षा सूय दयता एनिआ देवी/ओनाना या अअनिदा (The goddess Onis or Onida) यह देवता शओरीरो Shaororo (फोरमी/शाहूरवर) और भारतीय देवता बाना (विष्णु) मासेनो (महास) मसासेन की जड़ितिया हैं का वाधितिया उकाण है

एक भारतीय देवता की आकृति दिखाई पता है जिसका हाथ म एक घनप है और 'गणेश' की ह्या संज्ञा स्पष्ट रूप से मिलता है। सम्भवतः यह देवता शिव है। एक सोनस नामी दृविष्क की धताई जाती है यह धता 'धतना' है कि वह विष्णु का भवत था। इस बात का हमें कारण मिलती है कि दृविष्क का मन्त्राणापर बद्ध भगवान का आकृति क्यों सुधी नहा मिलता। 'धवन' इस मन्त्राणापर हम यह नहा 'वह' सकते कि दृविष्क बौद्ध धर्म में प्रति उदागीत था अथवा उसकी युद्ध के प्रति अट्टा नहीं था। बौद्ध अनुश्रुति कनिष्क का भाति उसे भाबौद्ध धर्म का अनुयायी तथा पापक बतलाती है। दृविष्क स्वयं बौद्ध धर्म का रक्षक था और मयरा क एक अभिनय से एक एस-विहार का, उत्तम प्राप्त होता है जिसका निर्माण महाराज, राजातिराज देवमुत्र ने करवाया था। यह मा सम्भव है कि विहार का नामकरण उसी के नाम से कर दिया गया है। दृविष्क ने लगभग ० वर्षों तक शासन किया।

बामुदेव—दृविष्क के अनन्तर बामुदेव कृपाण म म्मा-म का स्वामी बना। इस भयति का नाम यह स्पष्टतया सूचित करता है कि कृपाण धर्म का भारतीयकरण धर्म पूण रूप से सम्पन्न हो चका था। उक्तकी ज्ञात तिथियाँ ६७ (से ७८) तक की हैं जो कि १४५ और १७६ तिथियाँ हैं। उक्तक तक और सिकक केवल मयरा पजाय और मयकत प्राप्त हो गये हैं जिसमें यह सिद्ध होता है कि उक्तका अधिकांश प्रदत्ता तक मीमित रह गया था और कृपाण साम्राज्य का परिचालन सीमा का निर्माण कनिष्क प्रदेश, उक्तक जायो स निकल गये थे। अफगानिस्तान का मीर विम मानवा भादि दशौ मर तिचितकम से उस समय कृपाणों का अधिकार नहीं था।



वामुदेव व सिक्का पर विभिन्न दशा-दवताओं का आकृतियाँ नष्टा प्राप्त होता । उसकी अधिकांश मुद्राओं पर, शिव तथा उमक वाहन त्रिलो का ही आकृति खी हुई है । यद्यपि नाम, स द्रसक बणव धर्मानुयाया होने का अनुमान लगाया जा सकता है तथापि बाबुदेव, गव या बणव ही ।

वामुदेव कृपाण वश का अन्तिम मन्त्र या जिमका राजनीतिक प्रमुख विस्तृत शीर्षक नष्टा हान पाया था । किन्तु उसके समय ही हम राजवश का पतन धारण ही गया था । उसका वाक्य के कृपाण राजाओं का इतिहास प्रायः निमित्तावत भी है । इस बात में कोई सन्देह नहीं कि भारत में वामुदेव के राजवशाल (१४५-१०६ मिन इस्वा) के शीघ्र वाक्य हा कृपाण राजमता का ज्ञान होने लगा । शक क्षत्रप जो मूलतः कतिपय प्रथम के प्रति अपना दासभाव स्वीकार करने के अब स्वतन्त्र शासकों की भाँति साम्प्रतिक रूप-रूप । पश्चिमी-और-मध्य-भारत-के-विशाल-म-मार्ग-पर-उत्तरी-प्रदेश-प्रजमता-स्थापित-है-यह-संभव-है-कि-मार्ग-ने-मार्ग-विधेय-पता-वेत-मान-उत्तर-

भक्तक लोका क्रिया और यह नारायण शक्ति का उन्नत-रूप दिया गया जहाँ पर एक-साध-सिद्धि-सत्ता-है-है-या-या-का-अर्थ-निरा-म-भारत-म-एक-गण-शक्ति-का-मन्त्र-वहा-जिमक-प्रवले-वेग-म-कृपाणा-को-साम्राज्य-वद-रूप-।

**कृपाण-युग की मन्व्यता और मस्कृति**

कृपाण-युग का मन्व्यता और मस्कृति के निमित्त म्पा पर विचार करने में पूर्व यह आवश्यक प्रतीत होता है कि हम इसके मास्कृतिक गौरव पर प्रतिपाद करें । मीय युग का भाँति इस बात का मन्व्यता और मस्कृति का उन्नति के पौडें नों एक विशेष साम्राज्य द्वारा प्रदत्त भुविपायों था, जिनके अभाव में मन्व्यता की विधि उन्नति सम्भव न था । मीय साम्राज्य के पतन के उपरान्त प्रथम बार कृपाण साम्राज्य ही इतना विशाल था जिसके अन्तर्गत न केवल सम्पूर्ण उत्तरा-भारत अपितु इसके बाहर के भाग पश्चिम में मध्य एशिया तक के थे । इस प्रकार भारत का विष्णु के नाम के प्रतिपत्तर) मन्त्र स्थापित हुआ । इस युग में कृपाण युग भारतीय मस्कृति के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । इस युग में उनीयमान प्रमाद धर्म पण विकसित बौद्ध धर्म के साथ एशिया तथा मिस्र के साटशाशात्रा और योत्रारा में मिला, जब कि दाना धर्म बालावरम के मूर्ति पुजावादिना के प्रभाव के निम्न अन्व म्पा में उमकन से और अमन्व्य वनाक्रियाओं के प्रभाव से भाँति मन्व्यता बहुधर्मवाद के म्पा का अमि-स्वच्छि प्रमाद था । फारस के साम्राज्य धर्म में मानव-विकार के उवाक-के निम्न अपना योगदान किया जो मन्व्यता के विकसित मयुता तथा प्रतिष्ठिता, सम्पदाओं के बीच संपन्न थे उत्तमिन हुआ था (हिमय) । स्वयं बौद्ध धर्म में एक नितान्त व्यक्तिगत जीवन दर्शन से विरत-धर्म में परिणत हो गया और, साम्राज्य द्वारा मन्व्य एशिया में व्यापार मार्गों से होकर फैल गया जहाँ पर मूल और चीन एक दूसरे से मिले ।

The Kushan Period is one of the important in the history of Indian culture - During this period of ancient Christianity met full grown Buddhism into the academies and

markets of Asia and Egypt while both religions were exposed to the influences of surrounding paganism in many forms and of the countless works of art which gave expression to the forms of polytheism. The ancient religion of Persia contributed to the ferment of human thought excited by improved facilities for international communication and by the incessant clash of rival civilisations. Buddhism itself was transformed from a highly individualistic philosophy of life into a world religion and along the central Asian trade routes through Khotan where India and China meet to China itself.

कुषाण युग में कई नवान तत्त्वा का उदय हुआ जिनका बाद में भारतीय संस्कृति में काफी महत्वपूर्ण स्थान हो गया। महायान धर्म को बौद्ध धर्म का ही स्वरूप समझने की स्वीकृति गुप्तर कला तथा बुद्ध प्रतिमाएँ ऐसे ही कुछ तत्व थे। बुद्ध तथा हिन्दू देवी-देवताओं की मानव आकृति में प्रतिमाएँ इसी समय से बनाई जाने लगीं। कुषाण युग की मास्तूतिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में डा० राय चौधरी का कथन है 'कुषाण युग महती साहित्यिक क्रियाशीलता का युग था। इसका प्रमाण हमें अश्वघोष नागार्जुन तथा अन्य विद्वानों की कृतियों से प्राप्त होता है। यह धार्मिक उत्तेजना तथा धर्म प्रचार सम्बन्धी कार्यों का भी युग था। इसी युग में शक धर्म तथा इससे सम्बन्धित कार्तिकेय सम्प्रदाय महायान बौद्ध धर्म और मिहिर तथा वासुदेव कृष्ण व सम्प्रदायों का विकास हुआ और इस युग में काश्यप मातंग (६१-६७ सन् ईसवी) द्वारा चीन में बौद्ध धर्म का प्रवेश करत हुए देखा। कनिष्क के वंश ने भारतीय सभ्यता के लिए मध्य और पूर्वी एशिया का द्वार खोल दिया।

That the Kushan age was a period of great literary activity is proved by the works of Asvaghosha, Nagarjuna and others. It was also a period of religious ferment and missionary activity. It witnessed the development of Saivism and the allied cult of Karttikeya of the Mahayan form of Buddhism and the cults of Mihir and Vasudeo Krishna and it saw the introduction of Buddhism into China by Khyapa Matanga (C. A. D. 61-67). The dynasty of Kanishka opened the way for Indian Civilization to Central and Eastern Asia.

सबप्रथम हम कुषाण-युगीन सभ्यता की सबसे प्रमुख विशेषता पर विचार करेंगे। यह विशेषता थी—विदेशों के साथ इसका घनिष्ठ सम्पर्क। कनिष्क ने जिस साम्राज्य की स्थापना की थी उसकी विस्तृत सीमाओं का अध्ययन हम पीछे कर चुके हैं। हिन्दू कुश पर कनिष्क का राज्य स्थापित हो जाना और काशीगर, खोतान तथा यारकन्द के उसके राज्य में सम्मिलित हो जाने में गमनागमन और यातायात की सुविधाएँ बहुत बढ़ गईं। एक ओर व्यापारियों के कानिष्ठे अपनी विक्रय-सामग्रियों के साथ विभिन्न भागों में आन जाने लगे और दूसरी ओर धर्म प्रचारक अपने धर्म को पताने के लिए विदेशों की यात्रा करने लगे। डा० राय चौधरी का यह कथन बड़ा महत्वपूर्ण है कि कनिष्क



और नतिकार का पुजारी था परन्तु शायद संश्लेष पहले वह एक कवि या इमीति

उपयोग कर बैठता है। जम्बरबुद्धि के लीत्य-वर्जन में वह वास्मीकि में प्रभावित जान पड़ता है। अथ स्यनी पर भी रामायण का बोध शशो का प्रभाव सुस्पष्ट है। अथ घोष की दूसरी कविता वृत्ति सोन्दरानन्द काय है जिसके अन्तर्गत मर्गो म बुद्ध द्वारा अपने स्वधरे भो नन्द को अपने मत में लीनित कर लेने की घटना का वर्णन है। अथ घोष काश्या म कतिपय ममस्पर्शा स्थल है जो उसके भौतिकता का सुन्दर परिचय देते हैं। महाकवि होने के साथ ही अथघोष नाटककार भी था। उसने अनुष्टुप् के अनुसार तीन नाटका का प्रणयन किया था। मौरिपुत्र प्रकरण निश्चित रूप से उसी की कृति है। बज्रमूरी का भा कुष्ठ विज्ञान अथघोष या रचना बतलाते हैं जिसमें लेखक ने जाति-व्यवस्था की निंदा करने में ब्राह्मण ग्रन्थों के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं।

नागाजने नामक प्रसिद्ध दार्शनिक न दशन के ग्रन्थों की रचना की। 'मध्यमक' कारिका और सुहृत्लेखा उसके दो विख्यात ग्रन्थ हैं। प्रतीपारमिता सूत्र में उसने मान्यमिक दशन के सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। नागाजने का जन्म विदर्भ के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वह ब्राह्मण शास्त्रों में भी पारंगत था। उसे इस बात का गौरव प्राप्त है कि महायान धर्म का अग्रिणो उसने इस रूप में का कि यह धर्म वृत्ति गीतियों और विज्ञानों की भी सृष्टिकर लगा। महायान धर्म पर लिखने वाला नागाजने ही सबसे प्रथम विज्ञानिया। बसुमित्रिभी इस युग का प्रसिद्ध दार्शनिक था। चरक का कनिष्क का राजशासन का अन्तर्गत में चरक ने लिखित का अन्तर्गत में महात्त्वपुंग ग्रन्थ लिखा।

है। यद्यपि यह ग्रन्थ एव शैली में नीरमता बर्हा भी नहीं है। इस ग्रन्थ का महत्त्व इसी बात से समझा जा सकता है कि आज से बहुत पहले ही इसका अनुवाद अरबी और फारसी भाषाओं में किया जा चुका था। चिकित्सा विज्ञान के सम्बन्ध में चरक के विज्ञान आग के विस्तृत वैज्ञानिक ग्रन्थ में भी माने जाते हैं। चरक ने चिकित्सा के लिए आचार के जिस उन्नत मान्यता का व्यवस्था की है वह मवयास्तुत्य है। यह कृता ग्रन्थ है कि चरक के ग्रन्थ पर यूनाना प्रभाव है।

कुषण युग की कलात्मक प्रगति—महायान धर्म की भक्तिवादिता में कला के धन में कुछ नशीनता उत्पन्न करती। इस युग के पूर्व बुद्ध का प्रतिमाया का निर्माण नहीं किया जाता था। भक्त और साँचा के स्तूपों में बुद्ध का उपस्थिति की मूर्तियाँ अथवा प्रताना द्वारा चित्रित किया जाता था। यदि बुद्ध के भगवतिनिक्रमण के समय को चित्रित करना हुआ तो एक आरा में रहित अथवा शिवला दिया जाता था जिसका अग्निप्रणय यह होता था कि इसा अत्र पर आहूत कर लयागन न परम्पगमन किया था। परन्तु उपाय्या बौद्ध उपासना के हृत्त्या में भक्ति भावना का सञ्चार जाता गया

The effect on art was tremendous for the spirit of worship released and gave expression to the higher emotions in which the roots of all great art found --Christmas Humphreys Buddhism p 290

व भगवान् बुद्ध की प्रतिमा का निर्माण करने-लगते निरक्षर रूप से मक्ति भावना का उदय कला के विकास के लिए बड़ा ही हितकर प्रमाणित हुआ और अद्यत्त चलकर भारत में कला का जो प्रचलन उत्पन्न हुआ उसमें इसका बहुत महत्वपूर्ण योगदान था। एक स्वयं की शक्ति में कला कठोर प्रभाव से उत्पन्न हो कर कला के विकास में भावना में उदय उच्चतर भावों का अभिव्यक्ति प्रदान का जिनमें समस्त मनुष्य कला के मूल पाये जाते हैं। भारत में बुद्ध का मूर्ति का प्रथम प्राचीन समूह गान्धार बना के है जन्म-दस पर-जन्म से। विचारों के राजा जायसिक प्रभाव होता है।

गान्धार कला-गान्धार कला के तीनों प्रमुख निम्नो विकास-  
 निरक्षरों में  
 स्वतंत्रता का  
 मी-अभिहित किया जाता है क्योंकि इस कला के विषय में भारतीय हैं किन्तु उनकी शैली यूनानी है। बुद्ध भगवान की आभूषणों इस शैली की शिल्पविधि द्वारा निर्मित हैं। उनका मुद्रा है परन्तु भूमिगत के।

में अर्द्धत मूर्तियों से प्रथम प्रथम कला की प्रभाव है क्योंकि कला का निर्माण करना, इसका ज्ञान होना कि नवीनतम नयी-ग्रहण करने पर अपने देश में दिया है। इसी प्रकार धीमे-धीमे मूर्तियों पर भी युनानी कला की छाप झलकती है। श्रोत्रिय-यूनानी राजाओं की तरह लगते हैं। उनके वस्त्र में कीर्ति है और वे रत्न-मणियों में मण्डित हैं। वे किमा प्रकार में आध्यात्मिक-जगत के प्रथम नवी प्रतीक होकर उनको देवों में एसा जाना जाता है कि माना वे किमा देवों के नपति हैं। यही मूर्तियों भगवान बुद्ध की मूर्तियों-प्रथम के पूर्व उनके मूर्तियों में उच्च श्रेणीय-वैशेष्य तथा शैली से युक्त दिखलाई गया है। इस प्रकार से यह सिद्ध हो जाता है कि मूर्तियों की मूर्तियों में देवों की होने पर भी उनकी शिल्पविधि, धार्मिक-प्रथम यूनानी अवस्था रोमना है। प्रथमक मूर्तियों ध्यान मुद्रा धर्म-मुद्रा और धर्म-मुद्रा आदि विभिन्न मूर्तियों में मूर्तियों का निर्माण किया गया है।

यह बात धर्म-पा-चात्य-कला-समा-की-का यह विचार-या कि-भारत का सबसे-श्रेष्ठ कला का निर्माण गान्धार कला द्वारा हो जाता है परन्तु यह-भारतीय-निर्माण-भारत-जो-प्रति-है। मौर्य-ओ-पु-विश्व-की-कला-मूर्तियों-या-प्रथम-परम्पर-एक दूसरे-क-इतनी-विरा-विना है कि एक-विश्व-कला-शिल्प-क-साध्य-द्वारा-दस-क-धार्मिक-ओ-आध्यात्मिक-भावना-का-सम-चित-अभि-प्रति-नहा-प्राप्त-है-सकता-। कला-क-एक-भ-भारत-क-ऊपर-पु-विश्व-का-प्रभाव-क-सा-सक-ओ-इ-म-क-द्वारा-एक-महत्वपूर्ण-ए-विश्व-मध्य-क-पु-विश्व-है-कि-भारत-धार्मिक-या-विश्व-प्रभाव-की-प्र-करने-का-म-तथा-उ-अ-द-श-क-मौ-परम्प-रा-म-प-लेने-की-ज-म-स-या-। भारत-क-क-ग-न-ग-क-सा-द्वारा-क-साध्य-द्वारा-म-नि-निर्माण-की-की-शिल्प-प्राप्त-की-उ-उ-स-द्वारा-चलकर-ध-क-या-क-ह-चा-हिए-कि-इ-स-स-ए-क-दूसरे-क-वि-द-म-य-रा-। म-मौ-ल-क-ओ-स्व-त-र-रूप-से-वि-का-स-क-या-। यह-क-ह-ना-स-क-या-अ-नु-चित-है-कि-ग-य-र-क-ला-ए-क-अ-म-न्व-उ-च-क-क-की-क-ला-है-। जिस-सा-द-न-ओ-भ-भ-ओ-अ-भिव्य-क-क-र-ने-के-लिए-इ-स-क-ला-का-उ-द-य-न-ह-उ-आ

था उसको पश्चात्प कलाकार ठीक से समझ न पाय जिससे वे अपने काय में सफल न हो सके। प्रोफेसर ए० कुमारस्वामी ने ठीक ही लिखा है कि पश्चिमी रूपों का समस्त परवर्ती भारतीय तथा चीनी बौद्ध कला पर प्रभाव सुस्पष्ट रूप से लीजा जा सकता है परन्तु गांधारकी वास्तविक कला निगूढ मिथ्यात्व का आभास देती है क्योंकि बोधिसत्वा की सन्तुष्ट अभिव्यक्ति और कुछ-कुछ आहम्बरपूण के शमूपा तथा बुद्ध मूर्तियों की स्त्रण तथा निर्जीव मुद्रायें बौद्ध विचारधारा की आध्यात्मिक शक्ति को अभिव्यक्ति नहीं प्रदान कर पाती।<sup>१</sup> गांधार की मूर्तियों में कलाकार की सच्चाई का अभाव दृष्टिगोचर होता है। डा० नीहारजन रे के शब्दों में ऐसा मालूम पता है कि वे किसी सिद्धहस्त कलाकार द्वारा निमित्त न होकर मशीनों से तैयार की गई हो।

They seem to have been turned out in large numbers from workshops established for the purpose almost in a mechanical manner as it were This explains why in spite of their depicting the entire Buddhist legendary and historical cycle in all its minutest details the reliefs appear to be mechanical and without any character bereft of any emotional sympathy or spontaneity, and lacking in sincerity.<sup>२</sup>

शुषाण युग में गांधार के अतिरिक्त और भी कलाक्षेत्र थे जहाँ पर कला की काफी उन्नति हो रही थी। ये कलाक्षेत्र सारनाथ अमरावती और मथुरा में थे। इनमें से प्रत्येक की एक अलग शली थी एक दूसरे से अप्रभावित। हाँ सारनाथ और मथुरा से प्राप्त मूर्तियाँ की निर्माण-कला में कुछ समानता अवश्य पाई जाती है। अमरावती से प्राप्त पाषाण शिल्पियों पर उत्कीर्ण चित्रों की अन्तिय कारीगरी शिल्प का विलक्षण नमूना प्रस्तुत करती है। गांधार और मथुरा युषाण युग की कलात्मक प्रगति के क्षेत्र थे। गांधार कला का अध्ययन हम कर चुके हैं। मथुरा की कलात्मक प्रवृत्तियों का विवेचन कर चुकने के बाद हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

मथुरा में भी इस समय बुद्ध और बोधिसत्वों की प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता था। यह एक विवादास्पद प्रश्न है कि मथुरा की मूर्तियों पर गांधार कला का किस सीमा तक प्रभाव है। पश्चात्प विद्वानों का विचार है कि मथुरा की मूर्ति-कला पर न केवल गांधार-कला का प्रभाव ही है अपितु उसका उद्भव ही गांधार कला की अनन्त द्वारा हुआ है। परन्तु इस कथन को अन्य विद्वान स्वीकार नहीं करते। रालिंसन महादय का कथन है कि उसी समय समकालीन कला का एक विशद देश सम्प्रदाय जिसका भरहुत और सौची से उद्भव हुआ था मथुरा भीटा बेसनगर तथा अन्य क्षेत्रों में प्रचलित था। पहले यह प्रवृत्ति थी कि बुद्ध महावीर

<sup>१</sup> The influence of the Western forms on all later Indian and Chinese Buddhist art is clearly traceable but the actual art of Gandhara gives the impression of profound insincerity for the complacent expression and somewhat foppish costume of the Buddhistras and the effeminate and listless geture of the Buddha figures but faintly expres the spiritual energy of Buddhist thought —Ananda Kumar Swamy *Buddha and the Gospel of Buddhism* p 323

<sup>२</sup> *The Age of Imperial Unity* p 510

और हिंदू देवताओं की मूर्ति निर्माण के आविष्कार का विशेषी प्रभाव का कारण बताया जाता था परन्तु अब सामान्यतया इस बात पर विद्वान सहमत हैं कि इसका उत्पन्न मयरा क दशा कलाकारों के द्वारा खोजा जाता चाहिए न कि गांधार के।<sup>१</sup> रालि-सन के मत का समर्थन विस्टरस हम्फ्रीस ने भी किया है The latest opinion indeed is that the earliest Buddha images of the Mathura school were pro Gandharian and that the latter's history runs parallel to and independent of the main current of Indian art (Buddhism p 210) डा० नीहार रजन रंन इस सम्बन्ध में कहता है कि मयरा की सबसे प्राचीन मूर्तियाँ का मगदूत की कला से जातीय शताब्दी ईसा म पूर्व के मध्य की है सम्बन्ध हैं। आपने आगे बताया है कि गांधार का बद्ध प्रतिमायें मयुरा में अजात नयी वास्तव में अनेक नमूने में उनका जनकृति और कतिपय Reliefs तथा अलकरण के तरिका में भी गांधार शिल्प विधि का संशयना ला गई है परन्तु मयुरा का कला में अनुकरण का यह प्रवृत्ति का दूसरा शताब्दी के पूर्व नहीं दिखता पता। डा० रे के कथन सम्बन्ध में डा० फोगल का मत है कि मयुरा की कला की स्वदेशी उत्पत्ति मानते हैं कि नहीं। डा० फोगल का मत है कि मयुरा का कला में भाव का रूपना तथा जनकरण का विधि निदानरूपेण भारतीय है। परन्तु व इन कला पर गांधार-कला का कुछ प्रभाव अवश्य स्वीकार करते हैं। आपका विचार है कि इस कला में प्रकार की कला परम्पराओं का सम्मिश्रण पाया जाता है। एक शताब्दी भर तक तथा मूर्तियों की प्राचीन कला शरीर विद्यमान है और दूसरा भाग गांधार कला का भी चरित्रित्व प्रभाव दिखता पता है। वास्तव में डा० रे और फोगल का मत ही ठीक प्रतीत होता है। इस कोई सन्देह नहीं कि मयुरा कला का उदभव स्वदेशी श्रान्तों से हुआ था और इसका विकास भी अनेक अंशों में उन्हा के आधार पर हुआ था परन्तु आगे चलकर इसके ऊपर गांधार कला का कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा।

मयुरा कला की समस्त वृत्तियाँ सरलतापूर्वक पहचानी जा सकती हैं। कारण यह है कि इनके निर्माण में मानव पत्थर का प्रयोग किया जाता था जो मयुरा के समीप वर्तमान मिकरा नामक स्थान से प्राप्त होता था। इसा मन की प्राग्भिक शताब्दी में मयुरा का कलात्मक क्रियाशीलता बहुत अधिक बढ़ गई। यहाँ का मूर्तियाँ बाद में मध्य एशिया और तथाशाना एवं सागनाम तथा खावन्नी का मजी जाना थी। भगवान बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं का गांधार और मयुरा दोनों स्थानों में उल्लेख किया गया है। ये घटनायें हैं—(१) जन्म (२) सम्बन्धि, (३) धर्मचक्रप्रवर्तन (४) महापरिनिर्वाण। इन चार प्रमुख घटनाओं के अतिरिक्त बुद्ध के जीवन का तान शीघ्र घटनाओं का भी उल्लेखित किया गया है। ये घटनायें हैं—(१) इन्द्र का भग

<sup>१</sup> At the same time a purely indigenous school of contemporary art lineally descended from that of Bharhut and Sanchi appears to have flourished at Mathura Bhita Besnagar and other centres. It was formerly the custom to attribute to foreign influence the innovation of making representations of the Buddha Mahavira and the Hindu god but it is now generally agreed that this must be traced to the indigenous artists of Mathura rather than to Gandhara India—A Short Cultural History pp 101 102

वान बुद्ध का दशन (२) बुद्ध का त्रयास्त्रश स्वर्ग से माता का पान देकर वापस भा जाना और (३) लावणा नी द्वारा बुद्ध का भिक्षापात्र अपण करना।<sup>१</sup> मथुरा की कुषाण कालीन मूर्तिया का अपना वातपय विशेषताय है। मथुरा का मूर्तियों अपना अनगणता और विशालता के लिए विख्यात है। मस्तका का मूषजयुक्त नहीं दिख लाया गया है। गा और कर्ना का तरह मथुरा का मूर्तिया पर मूछ बिलकुल नहीं है। बाजा और मूछा से रीत प्रतिमाओं के निर्माण का परम्परा विशुद्ध रूप से भारतीय है और इस दृष्टि से गा धार और मथुरा का बुद्ध तथा बाधसत्त्व प्रतिमाएँ एक दूसरे से निता त भिन्न है। मथुरा का कुषाण कालीन मूर्तिया के दाहिने कंधे पर वस्त्र नहीं रहता। दाहिना हाथ आधकतर अमय मुद्रा में पाया जाता है। हम देख चुके हैं कि गा और कला में बुद्धजा का बहुधा पश्चासन अथवा कमलासन में समासान रखलाया गया है किंतु मथुरा का मूर्तिया में सिंहासन पाया जाता है। खड़ी मूर्तियों के दाना परा के नाच सिंह का आकृति बना रहता है। मूर्तिया में प्रामाण्डल का प्रयोग हम गा धार तथा मथुरा दाना का तक्षण कलाओं में देखलाइ पता है और दाना के हा प्रामाण्डल जलकृत है। किंतु मथुरा का प्रतिमाओं में किनारों पर वक्ताकार चिह्न नोटगत होता है। यदि हम मथुरा और गा धार का प्रतिमाओं का सूक्ष्मरूप से अध्ययन कर लें तो यह शांति हा स्पष्ट हो जाता है कि कला का इन दो विभिन्न शक्तियों का उद्भव और विकास पृथक्-पृथक् तथा स्वतंत्र रूप से हुआ। जसा कि पहले कहा जा चुका है कि मथुरा का कला स्वदेशी या अतएव गुप्त युग के कलाकारों ने इसी कला शैली का अपनाया और इसका चरम विकास पर पहुंचा दिया। प्रोफसर आनंद कुमारस्वामी यह विचार करते हैं कि गुप्त-युग का मूर्ति-कला का आदि स्रोत मथुरा का ही कलाकला है।

मथुरा-कला का एक प्रमुख प्रवृत्ति पर हम विचार करना उचित जान पड़ता है। यह कहा जा चुका है कि मथुरा का कला का भरहुत और सांची की कलाओं के साथ निकट का सम्बन्ध है और रालन्सन के शब्दों में *Lineally descended from that of Bharhut and Sanchi* इसका उद्भव ही भरहुत तथा सांची का कला से हुआ है। परन्तु मथुरा का कला एक बात में अपना पूर्ववर्तिनी कला-शैली से निता त भिन्न है। सांची और भरहुत का कलाकृतियों में एक प्रकार की सूक्ष्म प्रताकात्मकता और साकारित्वता का आभास मिलता है जिसका मथुरा की कला में एकान्त अभाव है। वक्ष लतादिक गुल्मा के मध्य स्थित या खड़ी हुई नारी प्रतिमाओं में सांची तथा भरहुत का कला शैली में उम उन्नत ऊर्जा और विकसित नितम्बा का देखकर प्रकृति का उबरता का आभास प्राप्त होता है। इन सांची और भरहुत का कला शैली मूल्य और स्थापत्य चिन्ता से हम यह अवश्य विदित होता है कि इनका निर्माण करनेवाले कलाकारों का जीवन के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण नहीं था और प्रकृति तथा मानव शरीर के प्रति उनका दृढ़ अनुराग था परन्तु उनमें ईद्वयपरकता

<sup>१</sup> यह ध्यान रखें कि बुद्ध के जीवन का जिन तीन गौण घटनाओं को उल्लेख कराया गया है, वे ऐतिहासिक बुद्ध के जीवन से किता प्रकार भी सम्बन्धित नहीं हैं। इन घटनाओं की कल्पना उस समय की गई जब महात्मा बुद्ध को ईश्वर का अवतार समझा जान लगा। उनके जीवन का अन्त रहस्यमय और विचित्र कथाओं से सजक कर दिया गया। इस प्रकार की कल्पनाय ब्राह्मण धर्म की पौराणिक कथाओं के साथ गहरा साम्य रखती है।



की वृत्ति नहीं आता। उनका ध्वयात्मकता और अभि यक्ति मानसिक है शारीरिक नहीं। मनुष्य व इहलाकपरक जीवन का चित्रण करत हुए भी व दशका को मानसिक और आध्यात्मिक अनुभूति प्रदान करत है। परन्तु मथुरा की कला इस बात म भरहुत आर साची स भिने है। इस कला शली म हम स्वत स्फुति (spontaneity) क अभाव आर कुछ कृत्रिमता व दशन होते हैं। इसम इन्द्रियपरकता भी काफी अयव है। मथुरा का यक्षिणिया की प्रतिमाय हमारे चित्त पर प्रभाव कम डालती है हमारी इन्द्रिया का व अवश्य आन्दालित करती हं। मथुरा क कलाकार का उद्देश्य, मालूम पडता है इन्द्रियपरक और कामुकता से परिपूर्ण था। मथुरा का यक्षिणी मूर्तिया क विषय म डा० रजन र न लिखा है

An intimate connection with Gupta and Kushan terracottas is at once suggested both in theme and treatment and a lineal relationship with the Yakshinis and Vrishtas of Bharhut. Budh Gaya and Sanchi is also equally undeniable. But what had been spontaneous movement has now become conscious gestures and what stood for symbols or emblems have now become vehicles of sensuous and erotic suggestiveness. Full round breasts and full heavy hips are no longer just conveyors of the idea of fertility but suggest warm and living flesh relaxed or tight.

यदि यक्षिणी प्रतिमायें प्रथम शताब्दी के बाद की हो तो यह अनुमान ही सक्ता है कि इन पर गांधार-कला का प्रभाव स्पष्ट था क्योंकि गांधार कला म मानवावृत्ति व हृवहू चित्रण पर अधिक ध्यान दिया जाता था। किन्तु यदि गांधार के प्रभाव की बात भूठा हो तब भी यह तो स्पष्ट है कि इस काल क कलाकार म कालिदास के शला म शायतसमाधिता का दोष आ गया था जिनका परिहार गुप्त-युग के कलाकारा न किया।

Agra University

### Questions

- 1 Sketch the history of the reign of Kanishka I (1947)
- 2 Describe briefly the reign of Kanishka I with special reference to his sciences in the cause of Buddhism (1949)
- 3 कनिष्क (प्रथम) के शासनकाल का भारतवर्ष के धार्मिक तथा कला कौशल क इतिहास में क्या महत्व है? (१९५०)

यहाँ पर हमें एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि यथाय गुप्त काल को मूर्ति कला का उद्भव मथुरा को तक्षण कला से हुआ है, तथाय इससे कृत्रिमता और इन्द्रियपरकता का विशेषभाव भी समावग नहीं है। गुप्त काल के कलाकार को तो दय वृत्ति तोड़ थी कि तु उसको उदात्तवतिक मा यथाय, जो उसको आध्यात्मिक प्रवृत्ति क साथ समुन्नत था, उत सा दयवृत्त का संयमित तथा नया प्रत कर देती थी। यहा कारण है कि गुप्त कालीन तक्षण कला का दशक के चित्त पर स्थायी एय अवश्य प्रभाव पडता है।

४ कनिष्क (प्रथम) के शासन काल का भारत के धार्मिक तथा कलाकौशल के इतिहास में क्या महत्व है ? (१९५२)

५ कनिष्क प्रथम के राजकाल का इतिहास लिखिए तथा उसके साम्राज्य के विस्तार की विवेचना कीजिए। (१९५३)

६ कुषाण कौन थे ? कनिष्क की विजया एवं सफलताओं पर एक नोट लिखिए। (१९५६)

7 Define the extent of Kanishka's empire and relate the conquests by which it was won. Examine his work as a patron of Buddhism. (1943)

8 Who were the Kushanas ? When did they rule and where ? Who was most notable ruler of their dynasty ? What do you know of his Career ? (1947)

### Allahabad University

1 Describe the growth and extent of the Kushan Empire (1956)

2 Who were the Kushanas ? Bring out clearly growth of their empire under Kanishka (1957)

3 Who were the Kushanas ? Bring out clearly the growth of their empire under Kanishka (1958)

4 Discuss the importance of Kanishka's reign in the history of the Buddhism and of Indian art (1958)

## १६ | कृपाणो के वाद का उत्तरी भारत

कृपाण साम्राज्य का पतन इतिहास की कोई नवान घटना नहीं है। सभी साम्राज्य एक न एक दिन धूल में अवश्य मिले हैं। राम का विशाल साम्राज्य भी काल के क्रूर थपड़ा के सम्मुख अधिक दिना तक टिक नहीं सका। इस प्रकार लगभग डेढ़ सौ वर्षों के पश्चात् कृपाणा का साम्राज्य भी विनष्ट हो गया। इस बात पर विद्वानों में परम्पर मतभेद है कि किस शक्ति ने कृपाण सत्ता को उन्मूलन किया। स्वर्गीय वाशा प्रमाण जायसवाल ने अपना यह विचार प्रतिपादित किया था कि नागा की शक्ति ने भारत में कृपाणा का उन्मूलन कर दिया। बाद में प्रवरमन प्रथम के नतत्व में वाका टका ने कृपाणा के उन्मूलन का कार्य सम्पन्न किया। परन्तु डा० जायसवाल के इस मन का डा० अनन्त सदाशिव अल्टेवर स्वीकार नहीं करते। आपका कथन है कि गंगा की घाटी में कृपाण सत्ता के लुप्त हो जाना के रहस्य का हमें तभी समझ सकते हैं जब कि हम समकालीन राणा के अभिलेखा और सिक्का का अच्छा तरह से अध्ययन करें। यदि हम ऐसा करते हैं तो हम पता चलगा कि यादव कुनिन्द मालव नाग और माघ जिहान तासरा शताब्दी में स्वतंत्र राजसत्ताओं का भाति अपने अपने सिक्के चलवाये उन सबने कृपाणा का निकालने में अपना योग दिया। आगे अल्टेवर साहब कहते हैं कि यद्यपि इस समय तक कृपाण नागा का भारतीयकरण सम्पन्न हो चुका था तथापि यहाँ के निवासा यह अवश्य साबित है कि वे लोग (कृपाण) विभिन्न वंश के हैं और उनके पेशानियाँ न जिनकी गणतन्त्रात्मक परम्पराय काफ़ी प्राचीन था अपना स्वतंत्रता का डुडुमनाद करने का सुवर्ण अवसर हाथ से न जाने दिया जब उन्होंने देखा कि कृपाणा का राजसत्ता नितान्त क्षीण हो गई है। इस समय जो साक्ष्य उपलब्ध है उनसे हमें विचार का पुष्टि नहीं होता कि समस्त गण राज्याँ न परम्पर मगठित होकर एक सामान्य नतत्व के अधीन कृपाणा का बाहर निकालने का प्रयत्न किया था। सम्भवतः योधमा का गणराज्य सबसे अधिक शक्तिशाली था और इसी ने कृपाणा का विनाश-मुखा राजसत्ता के उन्मूलन का कार्य प्रारम्भ किया। इस कार्य में उनके निकटवर्ती पेशानियाँ कुनिन्दा और अजुनायना ने उनका साथ दिया। जब इन नागा के अपने कार्य में सफलता मिली तो पेशानियाँ के नागा और राजपूताना के मालवा के भाँ उल्लाह बढ़ा और उन्होंने भी उनके पदचिह्न का अनुसरण करते हुए अपना स्वतंत्रता का घोषणा की।

इस प्रकार यदि हम इस युग के सिक्का और अभिलेखा का भलीभाँति अध्ययन करें तो हमारे सम्मुख कृपाणा के बारे में सकेर गुप्ता के अन्य तर्कों के राजनीतिक इतिहास का एक चित्र साँटित जाता है। अतएव हम इस युग का भाँ भाग्य शब्द हमें का अध-युग Dark Age in Indian History नहीं कह सकते जसा कि

१. वेलिए ए. ए. एस. अल्टेवर, *A New History of the Indian People* Chapter II Vol VI और आर० सी० मजमदार और ए. एस. अल्टेवर *The Palatala Gupta Age*

डा० विलेड स्मिथ ने कहा है। अमिलेया और मुन्नाआ के अतिरिक्त पुराणा में भी हम इस युग के इतिहास को समझने में यत्किञ्चिन् महायत्ना प्राप्त होती हैं। मय साक्ष्यों को मिला देने से इस युग के विषय में हमारा ज्ञान काफी अधिक हो जाना है। हम इन गणराज्य के इतिहास का मशिक्षण अध्ययन करने हुए इस युग की घटनाओं पर भी प्रकाश डालते चलेंगे। यदि हम मय में इस युग की राजनीतिक प्रगति का विवेचन करना चाहें तो हम कहेँगे कि यह युग विदेशी सत्ता के विरुद्ध देश के विभिन्न राज्या द्वारा प्रबल प्रतिरोध का युग था। विदेशी सत्ता का उमलन हो जाने पर देश में एक राष्ट्रीय भावना का प्रादुर्भाव होता है घम की पुनरुत्थापना होती है और बला साहित्य तथा सस्कृति की जन्मपूर्व उत्पत्ति का श्रीगणेश होता है। नाग मारशिवो के अधीन ब्राह्मण घम का पुनरुत्थान होता है और यन् युग के महान राजनीतिक नया साम्प्रतिक उत्कृष्ट का माग प्रशस्त हो जाता है। सबसे पहले हम उन गणराज्य का अध्ययन करेंगे जिन्होंने कृपाणा की सत्ता नष्ट करने में अपना अपना योग दिया। बाद में नाग मारशिवो के इतिहास पर प्रकाश डाला जायगा।<sup>१</sup>

**यौधेय**—वास्तव में कृपाणो की शक्ति को प्रथम धक्का देने का येय योययो को ही मिलना चाहिए और यह एक अमृत बात है कि इस सम्बन्ध में उनकी उपन्यासियों का विवेचन अनेक आधुनिक इतिहासकारों के ध्यान में नहीं आया।<sup>२</sup> यद्यपि योययो के विस्तृत इतिहास का विवरण हमें उपलब्ध नहीं है तथापि उनकी प्रबल राजनीतिक शक्ति और महान प्रभाव के प्रमाण हम मिलते हैं। कृपाण-साम्राज्य के उदय के पूर्व यौधेया की शक्ति काफी सुदृढ़ थी और उनका राज्य उत्तरी राजपूताना तथा दक्षिणी पूर्वी पंजाब के एक विशाल भूभाग तक फैला हुआ था। किन्तु शीघ्र ही विदेशी कृपाणो का राज्य उत्तरी-पश्चिमी भारत में स्थापित हो जाने पर कनिष्क के अधीन जब इस वंश की राजनीतिक सत्ता काफी बल गई तो योययो की शक्ति को काफी धक्का पहुंचा। जमा कि पिछले अध्याय में हम पढ़ चुके हैं कनिष्क ने उत्तरी भारत के राज्या को पराजित कर पूर्व में बतारस तथा अपना अधिकार जमा लिया था अतएव कनिष्क के समय योययो की शक्ति का काफी क्षय हो गया। कनिष्क और हविष्क के शासन काल में जब कि कृपाणो की शक्ति अपने उत्कृष्ट की पराकाष्ठा पर थी योययो को लगभग एक जब शताब्दी के समय तक सिर उठाने का अवसर नया मिल सका। परन्तु उनकी स्वायत्तप्रियता अधिक काल तक देवाये न सके सकी और १४५ ई० के लगभग उत्तरी पूर्वी राजपूताने में उन्होंने अपनी स्वतंत्रता का झण्डा लहरा किया। उनके इस उत्थान का दमन करने का कार्य शक मन्नाभद्रव रुद्रामन प्रथम को सौंपा गया जो अपना जनागत प्रशस्ति में इस बात का महान उल्लेख करता है कि उसने किस प्रकार न योययो का मानमर्दन किया जो समस्त क्षत्रिया द्वारा अपने जीव के लिए सम्मानित किए जाने के कारण अभिमानी हो गए थे और जिन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर ली थी। परन्तु रुद्रामन के द्वारा पराजित किये जाने पर भी योययो का उत्थान इत नया हुआ। कुछ दिनों तक वे प्रतीक्षा करने लगे और दूसरी शताब्दी की समाप्ति के निकट उत्थान फिर एक बार अपनी स्वतंत्रता का लक्ष्य बना लिया।

<sup>१</sup> हम इस अध्याय के लिए *A New History of the Indian People Vol VI The Vakataka Gupta Age* और *The Age of Imperial Unity* के पूरा रूप से आभारी हैं।

<sup>२</sup> *The Vakataka Gupta Age* p. 28

यद्यपि उपर्युक्त मत का आधार पूण रूप से मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्य है तथापि इस बात में सन्देह की कोई गंजाइस नहीं कि यह मत एक मम्मत् प्रदान होता है। यह सत्य है कि कुपाणों और यौधेयो के मध्य का कोई प्रत्यक्ष विवरण नहीं उपलब्ध है तथापि सिक्कों से यह स्पष्टतया सूचित हो जाता है कि कुपाणों को पराजित करने के बाद ही यौधेयो को अपनी सत्ता स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई होगी। कनिष्क तृतीय (१८० से लेकर २१० मन् ईसवी तक) और वामनदेव द्वितीय (२१० से २४० मन् ईसवी) के सिक्के सतलज के पूर्व में प्राप्त नहीं हुए हैं इसलिये यह स्पष्ट है कि सतलज के पूर्वीय प्रदेशों पर उनका अधिकार नहीं रह गया था। इसके विपरीत यौधेयो के वे सिक्के जिनका प्रचलन उन्होंने कुपाणों की राजनीतिक शक्ति का द्वाय से जान के बाद किया था और जिन पर तीसरी अथवा चतुर्थ शताब्दी की ब्राह्मी लिपि में लेख खुदे हुए हैं प्रमत्त परिमाण में सतलज तथा यमना के मध्यवर्ती प्रदेश में प्राप्त हुए हैं। यही प्रदेश इस समय यौधेयो की निवास भूमि बन गया था जिसमें वनमान सहारनपुर, देहरादून दिल्ली, रोहतक लधियाना और बागपत के जिन्हे सम्मिलित थे। इससे यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि इस प्रदेश पर यौधेय लोग कुपाण शक्ति को विनष्ट करके ईसा की तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ में शासन करने लगे थे। यौधेयो के सिक्कों पर 'यौधेय गणस्य जय' लेख लिखा हुआ मिलता है। आज भी सतलज घाटी का सारा प्रदेश भावलपुर राज्य तक इन्हीं यौधेयो के नाम पर योनियावार कहलाता है।

यौधेयों की उपरोक्तलिखित सफलता निस्सन्देह काफी महान और विस्मय उत्पन्न करनेवाली है। कुपाणों की राजसत्ता वैकित्या से लेकर विहार तक के विस्तृत प्रदेश पर थी जिसके माघन काफी प्रचुर थे और जिसके राजाओं ने एक शताब्दी में अधिक समय तक देवपुत्र की उपाधि धारण की थी। यौधेयो के विद्रोह की कुचलने के लिए कुपाणों ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा प्रान्त और मध्य एशिया की अपनी बनी हुई मैथिली कुपाणों का प्रयोग किया होगा परन्तु कोई भी शक्ति यौधेय गणराज्य की देशमक्ति तथा वीरता का दमन नहीं कर सकी।

यौधेयो ने कुपाणों के ऊपर जो विजय प्राप्त की उससे उनके सम्मान तथा शक्ति में बहुत अधिक अभिवृद्धि हुई। रघुदामन की जनान्त प्रशस्ति में प्राप्त शानवाने माध्य द्वारा हमें विदित होता है कि यौधेय लोग अपनी वीरता के कारण सभी दात्रियों द्वारा सम्मानित किये जाते थे। अब उन्होंने विदेशी कुपाणों के ऊपर विजय प्राप्त कर ली जिससे यह विश्वास किया जाने लगा कि उनके पास कोई जादू मंत्र था जिसकी मन्त्र यना से वे सभी परिस्थितियों में और सभी आपत्तियों पर विजय प्राप्त कर सकते थे।

विदेशियों की सत्ता का उन्मूलन करके अपनी विजय के उपलक्ष्य में यौधेयों ने नये सिक्के चलावाये। ये सिक्के तौल आदि बातों में कुपाण मूनाओं से काफी अधिक मिलते-जुलते हैं। लेकिन कुपाणों के सिक्कों पर विदेशी लिपियों यनानी तथा खरोष्ठी में लेख मिले हैं, किन्तु यौधेयों ने अपने सिक्कों पर देश की राष्ट्रीय लिपि ब्राह्मी में लेख उत्कीर्ण कराये। सिक्कों पर 'यौधेयगणस्य जय' से उनकी विजय घोषणा सूचित होती है। वास्तविक की जो महामारत के समय में लेकर यौधेयो का देवता थे, इन सिक्कों पर सम्मान का स्थान प्राप्त है।

लधियाना में यौधेयों के सिक्कों के साथ एक मिट्टी की मुहर प्राप्त हुई है जिस पर यह लेख लिखा है, 'यौधेयाना जयमन्त्रघराणाय'।

अपन स्वाधीनता सप्राप्त मे योधिया को सम्भवत अपने पत्नी कुणिन्ना से काफी महत्वपूर्ण सहायता प्राप्त हुई थी। सतलज और व्यास नदिया का ऊपरी घाटिया में योधिया के गणराज्य के उत्तर में कुणिन्नी ने अपना राज्य स्थापित किया था। योधिया का भाति कुण्ड लागा वा भी प्रथम शताब्दी के मध्य के पूर्व एक स्वतंत्र गणराज्य था और सन् ७० इ० के लगभग उनकी मा कुपाणा के सम्मुख आत्मसमर्पण करना पड़ा। छत्रश्वर नामक एक कुण्ड शासन के सिक्के प्राप्त हुए हैं जिन पर २०० सन् इसका जशरा में महात्मन् तथा भागवत की उपाधि उल्लेख है। ये सिक्के बजन आकार तथा अन्य वस्तु में योधिया के सिक्के में काफी भिन्न जूते हैं जिनके ऊपर दूसरा नार कात्तिकय का आठनि खुदा हुआ है। सिक्के की इस गहरा समानता के द्वारा इस विचार का बल प्राप्त होता है कि कुणिन्नी और योधिया के गणराज्य एक दूसरे के समकालीन थे और तीसरी शताब्दी के प्रारम्भ में अपना स्वतंत्रता पुन प्राप्त करने के लिये उन्होंने साथ मिलकर प्रयत्न किया। योधिया का तुलना में कुणिन्ना का गणराज्य काफी छोटा था और ऐसा प्रतीत होता है कि कालांतर में कुण्ड लागा योधिया में मिला गया। कुणिन्ना के सिक्के के प्रसार से यह प्रतीत होता है कि यह गणतंत्र सिक्कानिक पहचान या के नाच यमुना और सतलज के बीच के एक सक्काण भूभाग में अवस्थित था और जमा ऊपर कहा जा चुका है इसमें सतलज तथा व्यास का ऊपरी घाटा का भाग सम्मिलित था। कुणिन्ना का एक राजा अमाधभूति जिसका उल्लेख महाभारत में महाराजा के रूप में किया गया है इण्डो-यूनाना आकार के सिक्के द्वारा जाना जाता है। इनमें से कुछ सिक्के पर ब्राह्मी तथा खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए हैं और कुछ सिक्के पर बज्र ब्राह्मी में ही। कुणिन्ना का एक दूसरे प्रकार का सिक्का भी मिला है जो कुपाणा के नाच के सिक्के के आकार का है और जिस पर शिव का आठनि तथा ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ भगवत छत्रश्वर महात्मन लिखे उल्लेख है। छत्रश्वर के रूप में शिव इस गणराज्य के पूज्य देवता थे जिनके नाम पर सिक्के चनाय जाते थे। जामतौर से यह विश्वास किया जाता है कि अमाधभूति ने इण्डो-यूनाना साम्राज्य के ध्वसावापा पर लगभग प्रथम शताब्दी इसी पूर्व के अंत के निकट अपने राज्य का निर्माण किया था और छत्रश्वर सिक्के कुपाणा के पतना परांत द्वितीय अथवा तृतीय शताब्दी के अंत में चनाय गये थे। यद्यपि यह धारणा असंगत नहीं प्रतीत होता तब भी यह भावना तर्कसंगत प्रतीत होता है कि दोना प्रकार के सिक्के एक ही युग में चनाय गये थे। यह मन्त्र सम्बन्ध साध्य के विरुद्ध नहीं है यदि अमाधभूति जिसका शासन काल काफी नन्दा या का काल ईसा के दूसरे अथवा तीसरी शताब्दी के निकट निर्धारित किया जाय। उससे सिक्के के खरोष्ठी लेखों और यूनाना सिक्के के माय उनकी आकारसंश्लेष से सम्भवत इस बात का संकेत मिलता है कि उनका सत्ता उन प्रांता पर भी विद्यमान थी जहाँ पर यूनाना सिक्के का प्रचलन इस समय में था। इस बात के प्रमाण हैं कि प्राचीन और मध्यकालीन भारत में किन्हीं भाग सिक्के का प्रचलन पूर्णरूप से बर्बाद नहीं होता था। यह प्रतीत होता है कि अमाधभूति के पश्चात् कर्मा कुण्ड लागा कुन्ना के द्वारा पराजित कर लिये गये।<sup>२</sup>

<sup>१</sup> छत्रश्वर का अभिप्राय छय या क्षत्र के स्वामी से है जो सम्भवत कुण्डों के राजधानी थी।

<sup>२</sup> *Age of Imperial Unity* p 161 Footnote 1

कुषाणों की सत्ता का उन्मूलन करने के काम में भाग लेनेवाला तीसरा गणतंत्र आजुनायना का था। आजुनायन लोग अपने को पाण्डववंश के अजुन की सत्तान बतलाते थे। इसी प्रकार यौधेया का भा यधिष्ठिर का वंशज बताया गया है। आजुनायनों का गणराज्य यौधेयों के राज्य के दक्षिण पश्चिम में था। इसमें आगरा जयपुर का क्षेत्र सम्मिलित था। इस बात में कोई सन्देह नहीं कि यौधेया और कुणिन्दा की भाँति आजुनायना में भी कुषाणों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था और अपना एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में उन्होंने भी सफलता प्राप्त कर ली थी। आजुनायना का गणराज्य चतुर्थ शताब्दी के मध्य तक फलता फूलता रहा। समुद्रगुप्त के द्वारा विजित राज्या में आजुनायन गणराज्य का नाम भी मिलता है। इस गणराज्य के सिक्के मिले हैं जिन पर प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के अंतिम दशाब्दी की ब्राह्मी लिपि में आजुनायना जय लिखा हुआ मिलता है। इस बात का कारण आज तक भाँति नहीं बतायी जा सकी है कि आजुनायना के और अधिक सिक्के कुषाणों के पतन के बाद प्राप्त किये जा सकते हैं। जब कि यौधेयों के इस प्रकार के सिक्के प्रचुर परिमाण में मिले हैं। समुद्रगुप्त द्वारा विजित कर लिये जाने पर भी आजुनायनों का अस्तित्व पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हो सका। छठी शताब्दी में बाराहमिहिर ने आजुनायना का उल्लेख उत्तर अथवा उत्तरी पश्चिमी भारत की महत्वपूर्ण जातियों में किया है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि यौधेयों कुणिन्दा और आजुनायना में परस्पर स्नेह सम्बन्ध था और कालांतर में इन तीनों का एक साम्राज्य संगठन भी बन गया था। डॉ० अन्तल सदाशिव अल्तेकर के हों शब्दों में जिनके हम इस अध्याय के लिए पूरी तरह से ऋणी हैं इस समय चलाय गये यौधेयों के कुछ सिक्के पर हम लोगों का दृश्यपूर्ण शब्द द्वि (दो) और त्रि शब्द मौधेयगणस्य जय जल के बाद लिखे हुए मिलते हैं। इन शब्दों का कोई सन्तोषजनक अर्थ इस समय नहीं दिया जा सकता। परम्परागत विश्वास के अनुसार आजुनायन और यौधेय पाण्डव भाइयों के धर्म तथा अजुन की सन्तान थे। यह सम्भव है कि इस विश्वास में इन दो पड़ोसी राज्या के बीच एक प्रकार के संधि के निमाण में सुविधा प्रदान की हो। हमने यह पहचान ही देखा है कि किस प्रकार कुणिन्दा के २५० सन् ईसवी के बाद यौधेयों में मित्र जान की सम्भावना प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि समय पाकर इन तीनों गणराज्यों में एक प्रकार का संधि बन गया होगा। यह काम इस आवश्यकता के अनुभव में भी किया गया होगा कि इन तीनों राज्यों की मिलाकर एक शक्तिशाली राज्य का निर्माण किया जाय जो सीधियन आक्रमण का यदि यह फिर कभी आ पड़े तो सफलतापूर्वक सामना कर सके। यौधेयों के कुछ परिवर्तित सिक्के पर दो और तीन शब्द बर्दाचित्त यौधेय गणसंध के दूसरे और तीसरे सदस्य कुणिन्दा तथा आजुनायना का संकेत करते हैं।

मद्रों का भी एक गणराज्य था जिसमें अपनी स्वतंत्रता की घोषणा का था। यौधेयों के सफलता से उत्साहित होकर मद्रों में भी अपनी स्वाधीनता स्थापित करने का प्रयत्न किया और वे रावी बेगाब के दोआब में अपना एक स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफल हुए। सम्भवतः उनका राजधानी सिवालकाट में था। मद्रों के इतिहास के विषय में डॉ० अल्तेकर ने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्राचीन भारत का शासन पद्धति में लिखा है मद्र लोग समस्त बठाला से मिले थे किन्तु प्रजासत्तात्मक राज्य का उत्पन्न

सिकंदर के वक्त तक नहीं किया है। इनकी राजधानी स्यालकोट थी। शत्रु के सम्मुख सिर झुकाकर प्राण बचाए स इन्होंने अन्त तक सिकंदर के विरुद्ध लड़ते लड़ते मर जाया ही अच्छा समझा। इनका गणराज्य चौथी सदी ईसवी तक बतमान था। ऐसा प्रतीत होता है कि मद्रा न अपना सिक्के नहीं चनवाये कम से कम उनका सिक्का प्राप्त हो नहीं ही हुय है। मद्रा के स्वतंत्र गणराज्य की स्थापना का मुगल सम्वन्धी मास्य ता नहीं प्राप्त होता किन्तु समद्वगधत की प्रयाग प्रशस्ति में मद्र गणराज्य का नाम जाना है जिससे यह प्रतात होता है कि मद्रा का अपना एक गणराज्य था।

कुपाण साम्राज्य के पूर्व औदम्बरो का भी एक गणराज्य था। इसके इतिहास का कुछ उल्लेख डा० स्निश चन्द्र सरकार ने इस प्रकार किया है औम्बरो का स्थान कागरी घाटी के पूर्वी भाग तथा गुम्दासपुर और होशियारपुर के जिला द्वारा निर्मित हानवाला भूभाग बताया जाता है। वे प्राचीन सात्व जाति के छ भागों में से एक का प्रतिनिधित्व करते थे अथ पाँच थे तिलखल मन्वार (मन्वार सम्भवतः मने के साथ इनका सम्बन्ध था) युग्यर मलिना और मदद। सबसे प्राचीन औदम्बर सिक्का पर जिनका प्रचलन महादेव या शिव के नाम से किया गया था ब्राह्मी तथा खराष्टी दोनों लिपियाँ म प्राकृत भाषा में भगवती मन्वैवस्य राजराजस्य लिता मिलता है। प्राचीन औम्बर शासक जोस धरधोय (जिसकी सतानो के सिक्को पर विन्धमित्र की जाहूति मिलती है) शिवदास तथा हृदाम के सिक्को पर अमक नाम का राजा औदम्बरि मन्वदेव का इस प्रकार के लक्ष मिलते हैं। औम्बरा के कुछ चौकीर तावे के सिक्का पर एक शव मन्त्रि की आकृति खी हुई है जिसमें स्वज विशून तथा माने के चित्र भी बने हैं। म्द्रवमत नामक एक राजा के सिक्के मिले हैं। यह राजा कम्बो जाति का था जिसका सम्बन्ध औम्बरा के साथ बताया जाता है। ऊपर जिन सिक्का का उल्लेख किया गया है वे सब प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व के अंत तथा इसा की प्रथम शताब्दी के प्रथमाद्ध के काल में रखे जा सकते हैं। कुछ अन्य राजाओं का विवरण भी हम उनके सिक्का से प्राप्त होता है। इनके नाम हैं अजमित्र (या आयमित्र) महीमित्र भूमिमित्र और मन्ममिमित्र। ये सब राज औदम्बर ही बताये जाते हैं। इस सम्बन्ध में इस बात का निर्देश कर देना चाहिये कि जोहिया राजपूता के अदमविर या अदमर वर्गों के नाम प्राचीन औदम्बरो के नामों से बहुत निकटतापूर्वक मिलते जुते हैं।<sup>१</sup> डा० जल्लेकर मन्वोदय का कथन है कि औम्बरो के पूर्व कुपाण-यग के सिक्का का बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं किन्तु कुपाणों के बाँके उनका सिक्का नहीं प्राप्त होते। इनका कारण सम्भवतः यह ही सकता है कि औम्बरो का तासरी अथवा चतुर्थ शताब्दी में अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित करने में सफलता नहीं मिल सकी। कर्नाचित वे मद्रो में मिल गये थे।

मालवों का गणतंत्र—मानवा ने अपने पड़ोसी क्षत्रियों के साथ सिकंदर के अभियान का प्रबलतम प्रतिरोध किया था। मानवा के पास एक लाख सौदाय जिन्होंने जम्बर युनायिया से संधि किया और उनका हकके छुड़ा लिया। यहाँ तक कि मानवों के एक गण पर आक्रमण करते समय सिकंदर के प्राण खतरे में पड़े गये थे किन्तु अपने कुछ विन्वासपात्र सैनिकों की मन्वयला में उमन प्राण बचाये। सिकंदर के समय में मानव गणराज्य रावी मतनज दोआब में बसा हुआ था। किन्तु बाद में विन्धी आक्रमण



मणा के कारण इस प्रदेश में अपनी स्वतंत्रता की निरापेक्ष न समझकर मालव लोग दक्षिण की ओर बढ़ आये और समय पाकर उन्होंने अजमेर-टाक मेवाड़ प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। यहां पर ईसा की प्रथम शताब्दी के अंत तक उनका एक स्वतंत्र राज्य फलता फूलता रहा। दुपाणा और उनके मामन्ता पश्चिमी शक क्षत्रपा के उदय से मालवों की शक्ति पर लगभग एक शताब्दी तक ग्रहण नगारा रहा। उनका विजयशयो ने पराजित कर दिया और उनके राज्य पर पश्चिमी क्षत्रपा ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया।

किन्तु मानवा ने जिनकी स्वतंत्रतायान रागिता का प्रमाण मिश्र-दर के वस्तु लेखकों ने दिया है क्षत्रपा की अधिक दिनों तक चन से शासन नहीं करने दिया। वे बग़र विजय कर रहे। कभी कभी ये अपने विजेताओं के मिश्र राज्या पर गुप्त धाक भी बान दिया करते थे। नहपान को अपने अधीनस्थ उत्तममदो की रक्षा के लिए अपने जामान उपवदात की भजना पड़ा था। उपवदात ने यद्ध में मालवा को पराजित कर उत्तममदो की रक्षा किया। शका के विरुद्ध मालव लोग अधिक दिनों तक जम न मके क्योंकि इस समय शक क्षत्रपा की शक्ति काफी सुदृढ़ थी। ईसा की दूसरी शताब्दी तक मानवा को शक शासन स्वीकार करना पड़ा।

परन्तु अवसर प्राप्त होने पर मालव वीर चकनेवाले न थे। उपर्युक्त अवसर को ताक म तो वे बड़े ही थे। शक क्षत्रपों में जिस समय उत्तराधिकार के प्रश्न पर बग़र छिड़ गया मालवों की मनचाहा अवसर प्राप्त हो गया। शक राज्य के उत्तराधिकार के लिए जीवदामन तथा उसके चाचा रुद्रसिंह के बीच एक घोर मघप छिड़ गया जिससे क्षत्रपा की शक्ति की पारस्परिक कलह द्वारा एक प्रबल आघात लगा। इस अवसर का लाभ उठाकर मालवा ने अपनी स्वतंत्रता की भेरी बजा दी। मालवा के एक नेता श्री मोम ने विजय का चण्डा ऊँचा किया और २२५ मत ईसा में अपने गणराज्य का स्वतंत्रता को घोषणा करने के लिए उसने एक घोषण पत्र का अनुदान किया। यह मचमुच एक विस्मय की बात है कि जिन लेखों में मानवा को इस विजय का उल्लेख किया गया है उनमें पराजित शक का नाम नहीं दिया गया है। परन्तु यह स्पष्ट है कि मानवा ने पश्चिमी क्षत्रपों को ही पराजित किया था।

मालव लोग ऐसी सबसे प्राचीन भारतीय जाति के हैं जिसके विषय में यह कहा गया है कि यह एक सम्बत का प्रयोग करती थी। मानव सम्बत का समीकरण विज्ञानों ने ५८ ई० पू० के विक्रम सम्बत के साथ किया है। कुछ विद्वानों के अनुसार मानवा ने अपना इतिहास की किसी प्रमुख घटना सम्बत राजपूताने में उनके गणराज्य की स्थापना की स्मृति में एक सवत बनाया था। परन्तु डा० डी० सी० सक्वार का मत है कि मानवों ने ५८ ई० पू० के विजय सम्बत को शकों से ग्रहण कर लिया और इस सम्बत का प्रचार उनके साथ राजपूताने में भी हो गया। यही विजय सम्बत जिसका प्रयोग मानव लोग राजपूताने में करते थे वहाँ में किसी महान मानव नेता जिनके विजयशयो के चतुर्दश से अपनी जाति की स्वतंत्रता के घोषण किया था के नाम में वृत्त सम्बत पड़ गया। इस नेता का नाम सम्बत वृत्त था।

राजपूताने में मानव गणराज्य की राजधानी मानवनगर था जिसका समीकरण आधुनिक नगर अथवा जयपुर राज्य में उनीयन के करोट नगर में करना चाहिए जो कि के दक्षिण-पूर्व में लगभग पच्छीव मीठ तथा चण्डो के उत्तर पूर्व में लगभग पताविम मीठ की दूरी पर स्थित है। ईसा की दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में ही दक्षिणी जयपुर

के मालवा ने अजमेर के उत्तममद्रा से युद्ध किया था। इसका विवरण पहले किया जा चुका है। कुपाणा के पतन के बाद मालवी ने अपनी राजनीतिक प्रभुता निकट के प्रदेशों पर जमा ली। इस अनुमान के निम्न प्रमाण मिलते हैं। भरतपुर काया तथा उदयपुर के राया में जा लख प्राप्त हुए हैं उनमें वृत्त सम्बन्ध का प्रयोग किया है जिससे यह प्रतीत होता है कि इन प्रदेशों पर अमिलख के अनुमात्र मानवा के स्वयं स्वतन्त्रता तथा समृद्धि उस तिथि के बाद पुनः लौट जाया थी। इस महान् काय का श्रेय अमिलख से। जिस वार सरदार का दिया गया है उमका नाम जमा तक पता नहीं जा सका है। यह अमिलख सम्भवतः शका के विरुद्ध मालवा का विजय का ही उत्पन्न करता है। यह सम्भव है कि मौखरा महासेनापति वन जिसका परिचय हम २८ सन इसका के बुद्ध अमिलख द्वारा प्राप्त होता है मालव गणतन्त्र के प्रति अपना दासत्व प्रकट करता था।<sup>१</sup>

मानवा का गणराज्य २२५ सन् ईसवी से लेकर समुद्रगुप्त के समय तक बना रहा। इस काल में इसका स्वतन्त्रता अधुण्डन रहा। ईसा के तीसरे और चौथे शताब्दी में उन्होंने जनक सिक्के चलाये जिन पर साधारण तौर पर मालवाना जय और मानवगणराज्य जय लिखा हुआ मिलता है। मानवा का स्वाधीनतानुराग अत्यन्त सुन्दर था।

गणराज्या का पतन—जिन गणराज्यों ने विदेशी कुपाणा तथा उनके सामन्तों शक क्षत्रपा का शक्ति का प्रतिरोध करके अपनी अपना स्वतन्त्रता की घोषणा का उनका पतन किन्तु कारणों और किन्तु परिस्थितियों में पड़कर हुआ यह हम ठाक-ठाक पता नहीं। स्वर्गीय डा. जायसवाल ने समुद्रगुप्त की साम्राज्यवादिता का गणतन्त्रा के पतन का कारण बतलाया है। आपका कथन है कि समुद्रगुप्त ने सिक्खर की सौति देश का स्वतन्त्र जातमा का बंध कर दिया। उसने मालवा और यौधया तथा उनके वंश के अनेक (गणराज्या) का नाश कर दिया जो स्वतन्त्रता का पीपण करनेवाला पाठशास्त्राभा के रूप में थे। परन्तु इस मत को डा० अल्तेकर स्वाकार नहीं करते। अल्तेकर का कथन है कि गणतन्त्रात्मक परम्पराओं के शिथिल पड़ जाने से गणराज्या का पतन हुआ गया।

उपयुक्त गणराज्या के अतिरिक्त कुपाणा के बाद और गुप्ता के पूर्व के काल में उत्तर भारत में अनेक राजतन्त्रात्मक राज्य थे जिनमें नागा का राज्य सबसे अधिक प्रसिद्ध था। ऐसा प्रतीत होता है कि कुपाणा के बाद नागा न उत्तरी भारत के अनेक प्रदेशों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया था। कई वाक्यों से लेखा में इसका उत्पन्न मिलता है कि रुद्रसन्निताय जा चन्द्रगुप्त द्वितीय का सामयिक था भवनाग के पात्र का पात्र था। भवनाग भारद्वाज नागा का राजा था। इससे विदित होता है कि उत्तर भारत में गुप्ता का साम्राज्य स्थापित होने के पूर्व नागा का राज्य था। (प्रफसर एन. एन० घाष) पुराणा से विदित होता है कि नागा की शक्ति के विनिशा पद्मावती (पद्मपवाया) काणिपुरा (मिजापुर जिले में कर्तित) और मथुरा थे। पुराणा के अनुसार नाग वंश की दो शाखाएँ थी—एक शाखा के सात राजाओं ने गुप्ता के उदय के पूर्व मथुरा पर शासन किया था और दूसरी शाखा के नौ राजाओं ने पद्मावती पर। इससे यह स्पष्ट होता है कि पश्चिमा संयुक्त प्रांत और ग्वालिअर राज्य पर दो नाग परिवारों का शासन था। एक शाखा का राजधानी मथुरा थी और

दूसरी की राजधानी पश्चावती थी। प्राचीन पश्चावती की स्मृति सम्भवतः आज भी खालिसर राज्य के एक छोटे से गांव पदमपवाया जो मथुरा के दक्षिण में १२५ मील का दूरी पर स्थित है के रूप में सुरक्षित है।<sup>१</sup> यह सम्भव है कि इन दोनों नाम परिवारों में परस्पर कुछ सम्बन्ध रहा हो परन्तु इस विषय में हम कोई सुनिश्चित प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

नागा के एक प्राचीन राजा वीरसेन ने मथुरा में जन्म कुषाणा की शक्ति का कर्षण और उत्तरी भारत में यहाँ उनके प्रभाव का गढ़ था फिर म हिन्दू सत्ता की प्रतिष्ठापना थी। डा० जायसवाल के कथनानुसार वीरसेन की विजय नागा के प्रतिष्ठापन में ही नहीं बरन सम्पूर्ण जयान्त के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना थी। किन्तु जसा कि पहले हम देगे चुके हैं डा० जायसवाल के इस मत का कि नागा ने कुषाणा सत्ता का निकाल बाहर कर दिया सम्बन्धन डा० अल्तेकर नहीं करते।<sup>२</sup>

परन्तु हम जायसवाल महान्य के उपयुक्त कथन को न मानें तो भी इस बात के कई प्रमाण मिलते हैं कि नागा की शक्ति इस समय तक काफी बढ़ गई थी। पुराणा अभिरथ्या तथा मुद्राओं के साक्ष्यों का एकीकरण कर देने में यह स्पष्ट सूचित होता है कि नाग लोग गुप्ता के उदय के पूर्व एक महान सत्ता के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। ऊपर हमने देखा है कि उत्तरी भारत में नागा की दो शाखाएँ थीं जिनमें पश्चावती पर शासन करनेवाले अधिक महत्वपूर्ण थे। ये लोग ही सम्भवतः भारशिव कहे जाते थे। यह एक सुविज्ञात तथ्य है कि भारशिव लोग अपने स्वयं पर सर्व शिवानुग का भार वहन करते थे। पश्चावती के नाग राजाओं ने अपने मिकको में शिव के चिह्न और उनके वाहन नदी की वन गौरवपूर्ण स्थान दिया है। इस वंश के एक प्रनापी नरेश का नाम भवनाग था। उसके अनेक सिक्के प्राप्त हुये हैं जो यह सिद्ध करते हैं कि भावनाग चतुर्थ शताब्दी के प्रथमाद्ध में हुआ था। वाक्यांकों के इतिहास में भी यही चलता है कि भारतीय शासक भवनाग इसी समय हुआ था।

भारशिव नाग शासक कहे शक्तिशाली थे। उन्होंने उम भागीरथी (गंगा) के पावन जल से अपना अभिषेक कराया था जिसके ऊपर उन्होंने अपनी शक्ति नगर विजय प्राप्त की थी। इस जमिलखिक कथन से भारशिव नागा की दूरव्यापिनो मध्य विजया का सबैत मिलता है। भारशिव का शासन पश्चावती पर था जहाँ से गंगा काफी दूर पड़ती है। यद्यपि इस बात का कोई सबैत नहीं प्राप्त है कि भारशिव लोग

शताब्दियों में उत्तर भारत के काफी भाग पर नाग शासन के प्रचलित होने का प्रमाण हमें आभिलखिक और मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्यों द्वारा ही पता है। इन छोटा से हम जिन नाग राजाओं के नाम मिलते हैं उनका समीकरण पुराणों द्वारा उल्लिखित नाग कुट्टों में से किया न किसी कुट्ट के शासकों के साथ किया जा सकता है।

<sup>१</sup> 'भारत की मूची' नामक ग्रन्थ में डा० अल्तेकर, और सर रिचार्ड ब्रन ने अलग अलग मुद्रा सम्बन्धी साक्ष्यों का परीक्षण किया है। इस परीक्षण के आधार पर वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि जायसवाल का मत साक्ष्यों के ऊपर सम्बन्धन आधारित नहीं है।

ध  
नी  
पी

यना का अनुष्ठान किया जिसका विवरण हम उही क एक अमिलस द्वारा प्राप्त हागा है ।<sup>१</sup> अपनी सय सफलताओ का स्मति का बनाय रखन क उद्दय स भारशिवान एक दा नहा वरन् पूर दस अश्वमध यज्ञ किय । किन्तु हम यह नहा समचना चाहिए कि व चरवर्ती सम्राटा क पद का प्राप्त कर चुक थ । कवल दश अश्वमधा यज्ञा क अनुष्ठान स हा यह सिद्ध नहा हाता कि भारशिवान महान् सावभौम शक्ति प्राप्त का थी । डा० जायसवाल न यहा सिद्ध करन का प्रमास किया है कि दस अश्वमध यज्ञा का अनुष्ठान कई साधारण बात नहा था और भारशिवान अपनी सावभौम सत्ता का स्थापना कर चुकन क बाद ही एसा किया हागा । डा० अल्लकर न डा० जासवाल क मत का खण्डन करत हुए कहा है कि दस अश्वमेघ यन कर लेन स हा सावभौम विजयो और शक्ति-स्थापन का निश्चित प्रमाण नहा मिल जाता । एस दष्टात कई शासका क ह जा कभी चक्रवर्ती नरश नहा थ किन्तु जिन्हान अश्वमध यन किए है । उदाहरण-स्वरूप, शान्तमूल इक्ष्वाकु न जा कवल दा तीन जिला का शासक था लगभग २२५ ई० म एक अश्वमध यज्ञ किया था । कदम्ब नरेश कृष्णावमन न जा एक स्वधान राजा भा नही था लगभग ४५० ई० म यसा हा अश्वमध यज्ञ किया था । विष्णु कुण्डिन नरश माधव वमन प्रथम न ता ग्यारह स कम अश्वमध यज्ञ नही किय, यचाप उसका राज्य काफा छाटा था ।<sup>२</sup>

दस अश्वमध यना क अनुष्ठान स भारशिवानागी की सावभौम राजसत्ता का प्रमाण मत ही न प्राप्त हा किन्तु इस बात म सदेह की कई गुजाइश नहा कि इस काय स उनक गौरव म अमिवाद् अवश्य हुई होगी । अपनी राजधानी पद्मावती स नकर गगा क तट तक उन्हान अपने प्रभाव का सिक्का अवश्य ही जमाया जिसस उनको धाक समकालीन शक्तिया पर काफी जम गई थी । भवनाग की पुत्री का वाकाटक राज-कुमार गानमीपुत्र क साथ ३०० सन् ईसवी म विवाह इस बात का स्पष्ट निर्देशन है कि भारशिवान की शक्ति इस समय काफी अधिक थी । वाकाटक अमिलसाम इस बात का स्पष्ट उल्लेख बार-बार किया गया है कि भवनाग रद्रसेन प्रथम का नाना था । राजवशा की तालिकाआ म नाना के नाम का उल्लेख काफी महत्त्वपूर्ण विषय है । नाना का नाम तभी उल्लिखित किया जाता था जब कि वे स्वय महान् शासक होत थ अथवा उन्हान अपन नातिया की कई महत्त्वपूर्ण सहायता की होती था । वर्तमान उदाहरण म सम्भवत दाना शर्ते सम्मिलित था । एक शताब्दी के बाद नाग राज्य काफी सुष्ठु शक्ति क रूप म झा चुका था । अतएव प्रवरसेन न सोचा कि अपन राज कुमार का विवाह यदि वह भवनाग की दुहिता स कर दगा तो उसक उदायमान वश का शक्ति मजबूत हा जायगी । यचापि इस बात क कोई स्पष्ट प्रमाण हम प्राप्त नहा हात कि भवनाग न प्रवरसेन अथवा उसके पुत्र क आश्रमणा म भाग लिया था या नही तथापि एसा विचार करना असम्मत नहा प्रतात् होता ।

भवनाग का दामाद गीतमापुत्र अपन पिता क पूव हा मर गया जिसस राजसिंहासन पर उसक पुत्र रद्रसेन प्रथम का अधिकार हुआ । किन्तु सिंहासनारूढ़ हात हा रद्रसेन प्रथम का अन्क कठिनान्या का सामना करना पना जिनका दूर करन म उस अपन

<sup>१</sup> 'पराक्रमाधिगत नागारभ्यमलजलमूर्द्धाभिपिबितानां दगादशमेधाव भयस्तानां भारतिगवानाम ।

<sup>२</sup> *The Yakataka Gupta Age* 1 26 footnote 2

व्यावृद्ध तथा वीर नाना सबूत अधिक सहायता मिला। इस सहायता द्वारा हा रद्रसन प्रथम सिंहासन पर अपना अधिकार जमा सका।

भवनाग का मृत्यु व समय (३४० सन इसवा) नाग लागा का शक्ति आधुनिक उत्तर प्रदेश म काफी अच्छी तरह स जम चुकी थी। भवनाग न बाकायका की जा महत्वपूर्ण सहायता की उससे नागा का प्रतिष्ठा म अभिवृद्धि हुई। दो नाग परिवार इस समय उस भू भाग पर शासन कर रहे व जिसम मथुरा घोलपुर आगरा ग्वाँदियर वानपुर क्षाँसी तथा बाँदा सम्मिलित थे।

चतुर्थ शताब्दी व मध्य म नागमन और गणपति नामक दो नाग नृपति शासन कर रहे थे। नागसन सम्भवत पद्यावती का और गणपति मथुरा का शासक था। व गुप्ता का उठनी हुई शक्ति व सामन टिक न सक। समुद्रगुप्त न इन दोनों का पराजित कर दिया और उनका राज्य का अपन साम्राज्य म मिला लिया। समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति म उसका द्वारा पराजित राजाआ व नाम की जा सूचा मिलता है, उसम अब्युत (जिम्हे सिक्क रामनगर जिला बरली म पाय गये हैं) तथा नन्दि व भी नाम मिलन है। य दाना भा सम्भवत नाग शासक हाँ थ। आ एन० एन० घाप के शब्दो म इस प्रकार नागवंश कुषाणा के पतन एव गुप्ता की सावभौम शक्ति के उदय व मध्यवर्ती काल म पथक सम्राटा के अन्तगत मध्य दश पर जिसम मथुरा मध्य भारत और पजाब सम्मिलित थे शासन करता रहा। नागा क पाँचवी शती के अन्त तक उत्तर भारत के कुछ भाग पर अधिकार जमाये रखन का प्रमाण इस बात स मितता है कि एक नाग कया कुबर नाग चक्रवर्ती गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय द्वारा अभिलपित की गई थी जिस उमने अपनी रानी बनाया।

## २० | गुप्त वंश

जिम मगध साम्राज्य का उत्पन्न छोटी शताब्दी ई० पू० से आरम्भ हुआ और तीसरी शताब्दी २० पू० तक जिनमें अपनी चरमोन्नति को प्राप्त कर लिया उसी मगध साम्राज्य को लगभग ५०० वर्षों तक इतिहास में गौण स्थान प्राप्त हो जाता है और उसका पुनरुद्धार तब तक नहीं होता जब तक तीसरी शताब्दी में मगध राज्य सिन्धुसत पर गुप्त वंश आरम्भ नहीं होता। इतना ही नहीं गुप्त राजाओं के संरक्षण में मगध ने जितनी उन्नति का उतना जय किमा कान में नहीं कर सका था। गुप्ता के राजा रोहण के समय बुद्धधर्म तथा मध्य प्रान्त में वाकाटक नरेश राज्य कर रहे थे। उत्तरी भारत में कोई भी ऐसा शक्ति नहीं जो भारतीय इतिहास की गौरव-वर्द्धि कर सक। किमी भी प्रभावशाली शासन के अभाव में भारत की एकता को तो खतरा था जो साथ ही उसकी स्वतंत्रता के भी ह्रास का मय था। भारतीय मस्कुति के पीछे भारतीय राष्ट्रियता के रक्षक तथा भारतीयता के उन्नायक इन गुप्त सम्राटों पर इतिहास का गव है। इनमें शास्त्र और शास्त्र का जो सम्बन्ध देखने को मिलता है वह कुछ इन गिन केवल भारतीय सम्पत्तों में ही प्राप्त होता है।

गुप्तों की जाति—गुप्त वंश का इतिहास जानने के पूर्व उनकी जाति के सम्बन्ध में जान प्राप्त कर लेना आवश्यक है। चण्डगुप्त मौर्य की जाति गुप्तों की जाति के सम्बन्ध में भी इतिहासकारों में बहुत मतभेद है। कुछ इतिहासकार इन्हें क्षत्रिय और कुछ शूद्र मानते हैं। श्री गौरीशंकर आषा इन्हें क्षत्रिय स्वीकार करते हैं किन्तु जायसवाल ने इन्हें शूद्र बतवाते हैं। जायसवाल जी का कहना है—

(१) कौमुदी महोत्सव नामक नाटक में चण्डसेन (चण्डगुप्त) को कारस्कर बताया गया है और ऐसे नाच जाति के पुरुष को राजा हान के अयोग्य बताया है।<sup>१</sup>

(२) उक्त नाटक में यह भी वर्णित है कि चण्डसेन तथा निच्छिबिभो में वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित था और निच्छिबिभो अतः चण्डसेन अर्थात् गुप्त भी शूद्र थे।<sup>२</sup>

(३) वाकाटक महारानी प्रभावती गुप्ता के एक लेख में जिसमें गुप्तों की वंशावली दी गई है धारण गौत्र उल्लिखित है। आज भी अमृतसर के निवासी जाण्ड में भी धारणी गात्र हैं। ये दावा समान हैं गुप्तवंशवान् भारद्वाज की अधीनता में पञ्जाब में कौशाभ्यो च आये थे।

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर यह जायसवाल महोत्सव ने गुप्ता की शूद्र घोषित किया है किन्तु यह सार तक निवृत्त है।

नामका महोत्सव के कारस्कर के आधार पर चण्डसेन का शूद्र मानना उचित नहीं। उक्त ग्रन्थ में पक्षपात का अधिक अंश है। यह नाटक उस समय अभिनीत हुआ

<sup>१</sup> बर्ह एरिस वण्टस से रा असिरि। कौमुदी महोत्सव पृष्ठ ३० धो वासुदेव उपर्याय द्वारा उद्धृत।

<sup>२</sup> देलिय कौमुदी महोत्सव पृष्ठ ३० मूल निच्छिबिभो सह सम्बन्ध।

जब चण्डमन का विषया राजकुमार करमाण वमन क्षत्रियकन था। अत उमकी प्रशसा और चण्डमन का निरा आवश्यक था। इस जायार पर जाति निर्वारण उचित नहा।

पूना नामपत्र क धारण क जाघार पर यह निरुचम नया त्रिया जा सकता कि गुप्त जट थे। पन्ने ना जन्म माम्य अपन का प्रतिकफल हो सकता है और जाना क मून रूप मिश्र हा सकत है। हमर मिश्र मिश्र जातिवानो ने भी गान समान हा सकत है क्याकि अपन पुराणिता क नाम पर बढुवा गान निर्वारण हुआ करता था जा आज तक प्रचलित ह।

गुप्ता ना क्षत्रिय मान क पचाप्त प्रमाण प्राप्त है—

(१) सुन्दर वमन का क्षत्रिय स्वाका विद्या जाना है अत उसन जिम चण्डमन का गान लिया उस अपना वृत्तक पुत्र बनाया उमका मा क्षत्रिय हाना अनिवाप है क्याकि हिन्दू धर्मशास्त्रा क अनुसार मजाताय वानव का ही गान त्रिया जा सकता है। मनु न मा अपना स्मृति मन्मका जायार समथन किया है।<sup>१</sup> चण्डमन चन्द्रगुप्त प्रथम क्षत्रिय है अत गुप्त क्षत्रिय वंश के थे।

(२) धारवा (वम्ब) क गुप्तल नरेश अपन का उज्जैन नरेश चन्द्रगुप्त त्रियाय (विक्रमादित्य) का वंशज मानत थ। वम्ब गवटियर म चन्द्रगुप्त विजयनादिय का क्षत्रिय बताया गया है।

(३) यद्यपि गुप्त नरेशा न अपन अभिप्राय म अपना जाति का उल्लेख नहीं किया है और न समसामयिक साहित्यिक ग्रन्था म इस विषय पर प्रकाश छात्रा गया है तथापि पश्चिमी गुप्ता (Later Guptas) ना जाति के सम्बन्ध म हमका उतरण मिलता है। मध्य प्रन्श क गुप्तवशाय नरेश महाशिव गुप्त की सिंगपुर (रामपुर मध्य भारत) का प्रशस्ति म गुप्ता का चन्द्रवागय क्षत्रिय बताया गया है।

(४) गवर्नर जायसवाल न भी मञ्जुश्रामूलकल्प क आधार पर गुप्ता का क्षत्रिय बताया है।

(५) 'कौमरी मत्सव म लिच्छिविया का जिनम गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम का वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित था मन्च्छ बताया गया है। यदि हम लिच्छिविया की जाति का ठीक-ठीक पता लगा सके ता गुप्ता का जाति का दाव हा जायगा—

(क) लिच्छिवा क्षत्रिय थे इसका समन पत्र प्रमाण यह है कि भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण पर उनक अवशेष को प्राप्त करत क निर लिच्छिवियों न य दावा प्रस्तुत किया कि क्वि भगवान बुद्ध क्षत्रिय थ और हम नी क्षत्रिय है इसनिय हम भी अवशेष प्राप्त करत का अनिहार है।<sup>२</sup>

(ग) दूसरा प्रमाण यह है कि भगवान् महावीर क पिता ने लिच्छिवा राजकुमार त्रिनाता म स्था किया था महावीर क पिता क्षत्रिय थ यह मत्य है और उल्ले मन्त्राय व्याह का भी प्रथम त्रिया हुआ अत लिच्छिविया का क्षत्रिय हुना सिद्ध है।

(ग) उपर्युक्त प्रौढ प्रमाणा क अनिखिल अर्थ क प्रमाणा ने भी लिच्छिविया का क्षत्रिय हुना सिद्ध है, जिन मय का यी ज्ञान करना आवश्यक नहा। कवन प्रमाण

<sup>१</sup> औरत से प्रजापच वृत्त इतिथि मय थ।

गुप्तोत्पत्तिप विदमन्ध पामशावाचपाचपट ॥ मनु० १।१११थीवामुदेक उपाध्याय द्वारा उद्धृत।

<sup>२</sup> भगवापि पत्तियो मयपि पत्तिया ।<sup>३</sup> दीघनिकाय

प्रमाणा का निश्चयन पर्याप्त हागा जिनसे चाना यात्रा ज्ञानसांग का विवरण, नपाय का यशावला प्राचान ति जना प्र म दुल्व जाण प्रमुख ह।

इन प्रमाणा व आजार पर हम लाठिवा का क्षत्रिय मान सकत है और इहा धानया का राजकुमारा था कुमार दवा स च गुप्त प्रथम का यह हुआ था। जन गुप्त भा धानय व क्याक प्रमावशाला लाठिवा विसा प्रकार भा जाट का अपनी क्या नही द सकत व। इसक अतिरिक्त गुप्त राजाजा क अय वत्राहिक सम्बन्ध भी क्षत्रिय राजकुला म ७ए। च द्रगुप्त द्वितीय का यह क्षत्रिय नागराज का क्या स हुआ था।

अत गुप्ता का जाट वा शब्द कना उावन नहा। कुछ लाग गुप्त शब्द क आधार पर इ ह वक्ष्य मानन का मूल करत ह पर यह नतात म्प्रमात्मक है। गुप्त शब्द का प्रयाग गुप्त राजाजा न अपन नाम क अ त म कवन इसनिय किया है कि उनक आणि पुरपा का नाम गुप्त था।

### गुप्त वंश का राजनैतिक इतिहास

गुप्ता का उदय—तीसरी सता इसका व तसिर चरण म मध्य देश म किला स्यान पर गुप्ता का उदय हुआ था। माराशव नागा क पश्चात् भारताय इतिहास क रगमच पर गुप्ता का पदापण मगय म पाटलिपुत्र तथा उसक समापवर्ती प्रदेश व स्वामी क रूप म हाता है।

#### श्रीगुप्त

गुप्त अभिलखा म एक विशय महत्वपूर्ण बात यह है कि वे उनकी वशावली के साथ प्रारम्भ हात है। इन वंश-व्या म सबप्रथम नाम श्रीगुप्त का जाता है। अत इनसे यह प्रमाण हाता है कि गुप्ता क आदि पुरुष का नाम श्रीगुप्त था। अब यहाँ यह प्रश्न उठता ह। क नाम कवल गुप्त था या श्रीगुप्त क्याकि श्री शब्द सम्मानाय भी युक्त किया जा सकता था। विद्वाना म इस सम्बन्ध म काफी मतभेद है और सत्र ने अपन अपन मत का प्रतिपादन वही हा विद्वत्ता स किया है। इस सम्बन्ध म हम सब प्रथम नामकरण का प्रवृत्तिया पर ध्यान दना हागा। नामकरण साधकता को ध्यान म रवत हूँ किया जाता है। उक्त वंश म हा चद्रगुप्त, समुद्रगुप्त व मारगुप्त आदि नामा का लाजय। गुप्त का शाब्दिक अय है—सरक्षित। अत उपरोक्त तीना नामा का जय क्रमश चद्र समुद्र तथा कातिकय द्वारा रक्षित हुआ। किन्तु केवल गुप्त का ता का विशय अय नहा निकला। श्रीगुप्त का अय स भी द्वारा रित हुआ जो किला ला क निय अत्यन्त उ युक्त है। यदि चानी यात्री विस। न भी सही नाम समयन म मा मूल न का हा तो रसन भी श्रीगुप्त (चे कि कि-ता) हा नाम बताया है।

किन्तु एलन तथा जायसवाल महाप्य का यह राय है कि गुप्ता क आणि पुरुष का नाम केवल गुप्त था ता तो सम्मानाय जा दिया गया है। इसके मत का समर्थन स्वय समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति स हा जाता है जिसम समुद्रगुप्त ने अपने को महा राजा श्रीगुप्त का प्रपौत्र बत नाया है। समी राजाजा क नाम क पूव थी जो णिया गया ह आर यहा नही जहाँ किला का नाम वास्तव म श्री से प्रारम्भ होता है वहाँ दा था का मा प्रयाग किया गया है।<sup>१</sup>

<sup>१</sup> महाराजा श्रीगुप्तप्रपौत्रस्य महाराज श्रीघटोत्कचपौत्रस्य महाराजाधिराज चद्रगुप्तपुत्रस्य श्रीसमद्रगुप्तस्य।

<sup>२</sup> परमभट्टारिकायां राता महादेव्या श्री श्रीमती देव्यामुत्पन्ना, का० ६० ६० भा० ३ न० ४६ श्रीवामुदेव उपाध्याय द्वारा उद्धृत।



डा० राधाकृष्ण मुखर्जी ने श्रीगुप्त वंश सम्बन्ध में एक भाष्य तत्र प्रस्तुत करने हुए अपना सुप्रसिद्ध पुस्तक 'गुप्ता इम्पायर' पृष्ठ ११ पर लिखा है—

the name of this king is to be taken as Gupta and the prefix Sri as an honorific as is shown in all the names of the Gupta emperors mentioned in their inscriptions. Where Sri is a part of the name as in Srimati in inscription No 46 of Fleet the prefix Sri will still be added in the case of royalty where Sri Srimati (Ibid). Nor is the name Gupta by itself objectionable. We have analogous names as Devak for Devadattak [Katjayana's Varistik on Pannu VII 345] or Harsh for Harsh Vardhan.

कुछ विद्वानों का तो यह विचार है कि गुप्त वंश का अति प्रथम का नाम कुछ और था और गुप्त शब्द का बस उमके नाम का अन्तिम भाग था किन्तु यह अधिक तर्कसंगत नहीं। वायपुराण में मौर्यत गुप्तवंशजा का उल्लेख किया गया है जिससे गुप्त वंश इस पर शासन करेंगे अथ निकलता है। इसमें भी गुप्त नाम ही प्रामाणिक सिद्ध होता है।

कपर हमने इतिहास द्वारा बणित श्रीगुप्त (चलि कित्तो) का उल्लेख किया है। उक्त यात्री ने ६७० म ७०० ई० के बीच भारत भ्रमण किया। यात्री ने लिखा है कि लगभग ५०० वर्ष पूर्व श्रीगुप्त नामक एक महान् राजा ने कुछ चीना यात्रियों के लिये मग शिवावन का निकट एक भित्ति का निर्माण करवाया था। अब यहाँ प्रश्न यह उठता है कि इस आधार पर अर्थात् जान एसन आदि का मतानुसार इतिहास का चित्रित को गुप्ता का प्रथम राजा श्रीगुप्त मानकर हम गुप्ता का प्रथम राजा का तिथि क्या निर्धारित कर सकते हैं? क्या इतिहास का कथनानुसार यह तिथि अधिक से अधिक (७००-५००) = २०० ई० है? इसका पूर्व भी यह जा सकती है। किन्तु विद्वानों ने साम्राज्यशास्त्री ई० के तीसरे अरण्य में गुप्ता का उल्लेख बताया है। पत्राट महान्य इतिहास का ५०० वर्ष पूर्व तथा श्रीगुप्त लिये देन से ही इतिहास के श्रीगुप्त तथा गुप्ता के आदि पुरुष गुप्त को दो भिन्न व्यक्ति मानते हैं किन्तु यह उचित नहीं है। इसका प्रमुख कारण यह है कि पहले तो इतिहास का अतिप्रथम ५०० वर्ष पूर्व से केवल एक अनुमानित तन्त्र युग का निरूपण करना था कि ठीक-ठीक तिथि निर्देशन था दूसरे श्रीगुप्त नाम से घबराने की आवश्यकता नहीं इस श्री का सम्मानमूलक माना जा सकता है। इतिहास ने स्वयं लिख दिया है कि उसने प्राचीन काल से स्वयं द्वारा सुनी हुई अनुभूतिमान का उल्लेख किया है। अतः इन विवरणों के आधार पर ठीक-ठीक काल निर्धारण करना उचित नहीं है।

इतिहास का विवरण से श्रीगुप्त की राज्य-सीमा का भी कुछ ब्योच होता है। उसने आगे लिखा है कि मग शिवावन 'गंगा की ओर निकलना का पूर्व लगभग पचास सोपान (Stages)' दूर था। गंगुली (आई० एच० ब्यू० सितम्बर १९३८) ने इतिहास का ही इस कथन के आधार पर कि 'नानदा महाबोधि के उत्तर-पूर्व में सात सोपान (Stages)' दूर था यह निष्कर्ष निकाला है कि इतिहास का एक सापान ६ मील के बराबर है। इस आधार पर यह ज्ञात होता है कि श्रीगुप्त का शासन बंगाल में मुक्तिबाण के जिले में रहा पर या और इसका शासन काल १७५-२०० ई० रहा। किन्तु यदि हम पुराणों की आधार मानें तो हम चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में प्रारम्भिक गुप्ता का शासन गंगा के तट पर (प्रयाग तथा सारन नगरों में युक्त) मानना पड़ेगा।

एक महोदय न श्रीगुप्तकी स्थापित निति का स्वीकार नहीं किया है जो व गुप्तों के अभिनवा का वशावती म धणित चन्द्रगुप्त के पितामह गुप्त से उमका समता स्थापित करते हैं। किन्तु यह कम सम्भव है कि एक ही वंश म एक नाम क दा राजा (एक इत्सिम द्वारा धणित हुआ अभिनवा म उत्पन्न) अन्त आम पाम रह पाय। किन्तु इसका लिय यह प्रमाण प्रस्तुत किया जा सकता है कि अमा वंश म जो चन्द्रगुप्त और श्री कुमारगुप्त आस पाम म मिलत है। श्रीगुप्त क ठीक दा के उत्तराधिकारा का पना नहीं चलता है। लगना है उन्त प्रमश अपना विश्राम किया था। सम्भव श्रीगुप्त का प्रपौत्र गुप्त एक मामन्व क पत्तन पहुचा था। इसका समयन इस माध्य से हा जाता है कि प्रयाग प्रशस्ति म गुप्त का महाराज कहा गया है और प्रमाणा गुप्ता क पूना म उस ठाक हा जादि राज कहा गया है। म्मिय महोदय न इसका लिय २७१-३०० ई निर्दिष्ट का है।

जायसवाल महोदय क मतानसार भी गुप्त एक मामन्व राजा था जिसने भारगिव राजाभा का अधानता म प्रयाग क ममीप राज्य किया। एक मिट्टी की मुहर श्री गुप्तस्य लिखा हुआ प्राप्त हुई है जो डा० हानने के मतानसार गुप्तों के जाति पुष्प गुप्त का है। श्रीगुप्त के सम्बन्ध म अम सस अधिक और कुछ बात नहीं है।

### घटोत्कच

गुप्त (श्री गुप्त) क पचात प्रयाग प्रशस्ति म महाराज श्री गुप्त क पुत्र महाराज घटोत्कच का उल्लेख है। उक्त अभिलेख क घटोत्कच म गुप्त शब्द तनी सलग्न है पर वशानी म प्राप्त एक मुहर पर घटोत्कच उल्लेख है और डा० ताक (Bloch) इन दाना मे समता मानत हैं। किन्तु इतिहासकारा न इस स्वीकार करना उचित न समथा है। इसका प्रमुख कारण तो यह है कि गुप्त अभिनवा म महाराज गुप्त क पुत्र या चन्द्रगुप्त प्रथम के पिता का नाम वही भी घटोत्कचगुप्त नहीं आया है प्रत्यन वचन घटोत्कच का उल्लेख है। दूसरा कारण यह कि वशानी का मुहर का समय और घटोत्कच के समय म एक शताब्दी का अन्तर पता है। वशानी म म्व प्रथम चन्द्रगुप्त द्वितीय क समय मे गुप्ता क प्रतिनिधि नियुक्त किया गया थ जिनको मुहर निर्माण का अधिकार दिया गया होगा और जहाँ मुहरा की ढरी प्राप्त हुई है वहाँ कहा मुहर निर्माण कार्यालय रहा होगा। जत एक शताब्दी पूर्व के घटोत्कच की मुहर बनाने की यहा का आवश्यकता न थी। उपरोक्त मत का प्रतिपादन श्री डा० आर मण्डारकर न किया है। सम्भव वशानी की मुहरवाला घटोत्कचगुप्त परवर्ती गुप्तो म से का यकिन रहा होगा जबवा वशानी का मुहरा पर श्रीघटोत्कचगुप्तस्य के पूर्व महाराज शब्द नहीं आया है जब कि महाराज का विरु प्रथम दा गुप्त राजाभा ने धारण किया था। जत महाराजा घटोत्कचगुप्त चन्द्रगुप्त तृतीय का समकालीन और गुप्त परिवार का हा

प्राप्त रहा हो

उम समय म

पुलि म्नातियर रॉय म म्मिन नुमन म प्राप्त एक गुप्त शिलालेख से हाता है।<sup>१</sup> इस लेख की तिथि गुप्त मवल १९६ है। इस तार म तृतीय चन्द्रगुप्त कुमारगुप्त तथा घटोत्कच गुप्त का उल्लेख पाया जाता है। जत इस घटोत्कच गुप्त का निर्दिष्ट समय

गु० सं० ११६न ४,६२०) है। अतः २म नख म उत्ति नसित घटात्कचगुप्त गुप्त वंशाय द्वितीय महाराज घटात्कच स मवया भिन्न है। यह घटात्कचगुप्त कुमारगुप्त का छोटा भाई था तथा २मक रायकाल म मालवा का शासक था।<sup>१</sup>

घटात्कच क इतिहास म सम्बन्ध म भी इनम अधिक कुछ बात नहा है। उनका राज्यकाल एतम महान्य न अनुसार १०० स १२० ०० रहा।

### चन्द्रगुप्त प्रथम

प्रयाग प्रशस्ति म गुप्त वंश क तनाय शासक चन्द्रगुप्त का महाराजाधिराज की पत्नी प्राप्त है जब कि प्रथम दा शासका का कवल महाराजा का विष्णु प्राप्त है। इसम यह बात जाना है कि प्रथम दा राजा गुप्त तथा घटात्कच और चन्द्रगुप्त क राजनतिक अधिकारा म अन्तर था। व प्रथम का सामन्त रह (यद्यपि यह निश्चयपूर्वक नहा नहा ना सक्ता कि व किम कर दत थे) पर चन्द्रगुप्त स्वतंत्र राजा रहा हागा तथा उस महाराजाधिराज की पदवी प्राप्त था जा उसक बाद क अय गुप्त राजाजा का भा प्राप्त है।

यह सादय चन्द्रगुप्त क राजनतिक अधिकारा म उपक्षान्त बद्धि हान का पराप्त प्रमाण दता है। निश्चय हा चन्द्रगुप्त न अपना राज्य-साम्राज्य का विस्तार किया हागा और जा भी अधिकारा शासक उसक पूर्वजा म कर उगाहता रहा हागा उमम उनम अपन का स्वतंत्र किया हागा।

एयर महोत्सव न चन्द्रगुप्त क प्रति काफी आस्था स विचार करत हुए उनकी महता का साम्राज्य का अत्यधिक बढान क अभिप्राय म महीला राज स्तम्भ क चन्द्र का चन्द्रगुप्त बतनामा है। किन्तु उक्त अभितय क आराधनात्मक अध्ययन म यह बात जाना है कि चन्द्र तथा चन्द्रगुप्त म का सम्बन्ध नहा है। महरीला अभितय म यह उल्लेख है कि ताम्रायत मुर्वाति म्पत मम मित्राजिना याचिका। इसत यह बात जाना है कि चन्द्र न मित्रु पार करत प्रकल्प म घात मशाम किया और उन पर विजय प्राप्त का। उक्त अभितय क चन्द्र का नाम पराशम शिव्य—उत नमम्न विराया एक मिप्रसध बनाकर उस पर वगाय का जाय म आक्रमण करत ह जाय चन्द्र उन्हें पाछ हटाकर उन पर विजय प्राप्त करला ह। इतना हा नहा उक्त अभितय क चन्द्र का धरता का एकाधिपत्य (एकाधिपत्य) प्राप्त था। इस प्रकार का सूचना चन्द्र क सम्बन्ध म हम महरीला गीहस्तम्भ तब न प्राप्त हाता है।

कुछ विद्वाना न उक्त चन्द्र का वाग्ता का वषण मुनकर उन चन्द्रगुप्त माय बतान क कारण है सादयगत मला है कि चन्द्रगुप्त म्पत न चन्द्र गीहस्तम्भ का निर्माण

० वष पंचानु ममद्र

१ निश्चय ही चन्द्र

गुप्त माय बना प्रताया और यगत्वा गाया था। उनम बकिट्टया का पराजित किया था मम्द्र-नद तक अपनी साम्राज्य का विस्तार किया था और अनन्य विनाशिया का दमन करक अपन साम्राज्य का विशाल बनाया था पर म्द्राला-रज्य का उक्त विवरण चन्द्र गुप्त द्वितीय क साम्राज्य का काफी सागृ हाता है।

एयर महोत्सव जिनका यह पूण शिष्यम है कि महरीलावाता चन्द्र और चन्द्रगुप्त एक हा है ऐसा विचार करत है कि चन्द्रगुप्त न अपन पिता तथा पितामह का

<sup>१</sup> श्री वासुदेव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृष्ठ ४०।

भाति गंगा के तटवर्ती भाग सही प्रारम्भ में शासन आरम्भ किया था। चन्द्रगुप्त ने निश्चय ही अनन्त विजयों की होगी तभी तो उस साम्राज्य स्थापन का इतना अधिक श्रम दिया जाता है। लिच्छिवि राजकुमारी से 'याह करके' उसने अपने मगध और राज्य में अभिवृद्धि कर ली और इस विवाह के फलस्वरूप अन्त उसकी राज्य-सीमा एक जोर बगाल की छ रही थी तथा दूसरी ओर मध्यभारत तथा पञ्जाब का। अन्त बगाल के सीमान्त-क्षत्रियों पर चन्द्रगुप्त का अधिकार स्थापित करना सम्भव है। एयगर महोदय का ऐसा विचार है कि चन्द्रगुप्त ने मुख्यतः उत्तर-पश्चिम तथा पश्चिम के प्रदेशों में विजय प्राप्त की थी। उनकी बलवत् विजय उसे सिन्ध तथा मौराष्ट्र तक ले जाती है। इसका अर्थ शक विध्वंस नहीं है प्रत्युत अन्त विजय का अर्थ उम क्षत्र के नामका की पराजय तथा उमके बाल की संधि है। किन्तु एयगर महोदय का उक्त धारणा अधिक युक्तिसंगत नहीं है और यह केवल चन्द्रगुप्त के विषय में अधिक कल्पनात्मक ढंग से साचना है।

डण्डकर महोदय ने चन्द्रगुप्त प्रथम का बलवत् पञ्चना कुछ अस्मभव सा बताया है। उक्त समुद्रगुप्त का प्रयाग प्रशस्ति के लेख के आधार पर इसकी पुष्टि इस प्रकार का है कि उक्त प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के पिता चन्द्रगुप्त का शासन केवल गंगा की घाटी पर बनाया गया है और इसमें इस बात का कहीं भी संकेत तक नहीं किया गया है कि बगाल के सीमान्त क्षत्रियों पर चन्द्रगुप्त का अधिकार था। चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ तो एकाधिराज्य का प्रश्न ही नहीं उठता। डण्डकर महोदय ने आगे लिखा है कि यदि समुद्रगुप्त के पिता ने ये समस्त विजयें प्राप्त की होती तो समुद्रगुप्त ने निश्चय ही उनका उन्मुख अपने अभिलेख में किया होता।<sup>1</sup> इन आधारों पर डण्डकर महोदय ने महरोली के चन्द्र का किसी प्रकार भी चन्द्रगुप्त प्रथम स्वीकार करना अनिश्चित ठहराया है।

महरोली के चन्द्र के सम्बन्ध में अर्थ इतिहासकारों ने भी अपने अपने विचार प्रकट किए हैं। एयगर महोदय इसको सदाचन्द्र मारशिव बताया है जो वाकाटक प्रवर मैन प्रथम के वैवाहिक भवनाग का उत्तराधिकारी था। इसका राज्य पूर्वी मानवा में विदिशा का रियासत पर ठाक उमा समय रहा होगा जब मगध के सिंहासन पर समुद्रगुप्त या उसके पिता चन्द्रगुप्त राज्य कर रहे होंगे। तब भला यह कैसे सम्भव है कि वह मगध से बिना कौन-से युद्ध के ही सरनतापूर्वक बगाल की सीमान्त रियासतों से मगध करन का भाग पा गया होगा। साथ ही मारशिव वंश के इतिहास के एकमात्र माधन पुराण सनाचर के इस प्रकार के किसी आक्रमण का उल्लेख नहीं करते हैं। हरप्रसाद शास्त्री ने महरोली के चन्द्र को पुष्करन का शासक चन्द्रवर्धन बताया है पर यह भी युक्ति-संगत नहीं है। डण्डकर महोदय ने महरोली लौहस्तम्भ लेख की भाषा और छाप (Expression) तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय की मद्राआ की भाषा और छाप के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि ये दोनों समान हैं। इन्होंने अपने मत के समर्थन में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। उक्त अभिलेख की अंतिम पंक्ति में एक शब्द आया है जिसका बहुत-सा धावन पड़ा जाता है। कुछ लोगों ने इसे भावेन पड़ा है। यदि इस देवन पड़ा जाना सम्भव हो तो यह चन्द्रगुप्त द्वितीय के व्यक्ति का नाम देवगुप्त का आरंभ निरूपण करता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिये यदि वह मद्राआ के लिये भारत में बुधाना का अन्त कर देना चाहता था यह आवश्यक था कि वह

<sup>1</sup> देखिये धी आर० डी० डण्डकर, 4 *History of the Guptas* p. 96

वल्गु पर विजय प्राप्त करे क्योंकि वह वल्गु में ही कृषाण अपनी शक्ति पुन मरुदित कर सकते थे। अपनी स्थिति को देखते गंग चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिये यह आवश्यक था कि वह सम्पूर्ण मगधसिन्धु क्षेत्र पर आक्रमण करे जैसा कि मेहरगढ़ी के लेख में वर्णित है। गंगाल का चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विजित किया था मगध मगधमे वल्गु प्रमाण उक्त म भाग पर चन्द्रगुप्त द्वितीय के उत्तराधिकारियों द्वारा अधिकार प्राप्त करना है। श्री हण्डेकर महोदय ने यह भी बताया है कि मेहरगढ़ी अभिलेख तथा प्रयाग स्तम्भ-लेख की निधि म उक्त अधिक सम्मता है। मेहरगढ़ी अभिलेख के चन्द्र की राजनतिक मन्त्र दक्षिणी देशा पर स्थापित थी। यह चन्द्रगुप्त द्वितीय के मन्त्र म अन्वयण मय है।

कौमन्दी मन्त्रोक्त नामक नाटक के आधार पर लोगों ने उसके गज्यारोहण के इतिहास की रूप रखा गीची है जिसमें अधिक सार नहीं है। कौमन्दी मन्त्रोक्त के चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त प्रथम स्वीकार करने म अनेक बाधाएँ हैं और यदि वह स्वीकार भी कर लिया जाय तो उक्त नाटक के विवरणों को कवि की कल्पना की दृष्टि से देखना होगा न कि इतिहासकार की मति। उक्त मगधे आधार पर चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यारोहण या उसके राज्य विस्तार पर विचार करना मगध-मन्त्र ही होगा।

उसने चन्द्रगुप्त प्रथम तथा त्रिचिन्वि राजकुमारी के ग्याह का निर्देश मिलते पद्य म किया था। इतिहास प्रसिद्ध वैशाली के त्रिचिन्वी अब भी काफी प्रख्यात थे। इन्हीं लिच्छिवियों की राजकुमारी कुमारदेवी ने चन्द्रगुप्त प्रथम ने ग्याह किया था। मगधवाहिक सम्बन्ध ना गुप्त इतिहास में काफी महत्वपूर्ण स्थान है। उक्त वैवाहिक सम्बन्ध का बोध हम चन्द्रगुप्त प्रथम व पुत्र मगधगुप्त की प्रयाग पशुमि म होता है जिसमें मगधगुप्त का त्रिचिन्वी दौत्रि कहा गया है। मगध प्रमाण मगध चन्द्रगुप्त प्रथम की एक स्वण-मन्त्र है जिस पर मगध और त्रिचिन्विय तथा दूसरी ओर चन्द्रगुप्त तथा श्री कुमारदेवी उत्कीर्ण है तथा मन्त्रों का विषय उक्त पर अंकित है। उक्त स्वण मन्त्र का निर्माण चन्द्रगुप्त प्रथम तथा त्रिचिन्विया व वैवाहिक सम्बन्ध के मन्त्र का निमित्तक है। मन्त्र मन्त्रोक्त की तो यह धारणा है कि उक्त महाद्वारों का निर्माण मगध गुप्त नहीं अपन मगध पिता के वैवाहिक सम्बन्ध की स्मृति में तमगों के रूप में मगधवाह या वास्तविकता जो भी हो पर मगधना ता निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उक्त विवाह का उक्त मगध राजनीतिक महत्व था। मगध मन्त्रोक्त ने भी उक्त विवाह के राजनतिक महत्व को स्वीकार किया है और उनकी यह धारणा है कि कुमारदेवी दहेज रूप म अपने पति को महामन्य प्रभाव लेकर आईं जिसके आधार पर चन्द्रगुप्त मगध तथा निवन्तर्नी म भागों पर अपना मन्त्र अधिकार स्थापित कर सका और अपनी स्थिति पूर्ण रूप से सुरक्षित कर सका। वे यहाँ तक स्वीकार करते हैं कि 'त्रिचिन्वी पार्श्वपुत्र के शासक थे और चन्द्रगुप्त मगध वैवाहिक सम्बन्ध द्वारा अपना पत्नी के सम्बन्धियों व अधिकार का अधिकारी हुआ।' किन्तु मगध मन्त्रोक्त की यह धारणा है कि गुप्तों को लिच्छिवियों के माध्यम मगध वैवाहिक सम्बन्ध से कोई आधिक नाम नहीं हुआ प्रत्युत लिच्छिवियों की प्राचीन गतिहासिक मन्त्रा में उनमें मगधना आ गई। किन्तु

१ विवेक विवरण के लिये देखिये श्री आर० एन० हण्डेकर को *A History of the Gupta* no 30 35

२ लिच्छिवीद्वीष्टस्य महादेव्याकुमारदेव्यावत्पुत्रस्यमहाराजाधिराज्योसमूह गुप्तस्य

३ C C G D सूचना प० १८।

मानि गया के तटवर्ती भाग सही प्रारम्भ में शासन आरम्भ किया था। चन्द्रगुप्त ने निश्चय ही अनन्त विजयों की होगी तभी तो उसे साम्राज्य स्थापन का इतना अधिक श्रय दिया जाता है। निश्चिति राजकुमारी से ब्याह करके उसने अपने यश और राज्य में अभिवृद्धि कर ली और इस विवाह के फलस्वरूप अब उसकी राज्य-सीमा एक और बगान को छू रहा थी तथा दूसरी ओर मध्यभारत तथा पञ्जाब का। अब बगान के सीमान्त क्षत्र पर चन्द्रगुप्त का अधिकार स्थापित करना सम्भव है। एयगर महात्म्य का ऐसा विचार है कि चन्द्रगुप्त ने मृत्युत उत्तर पश्चिम तथा पश्चिम में पश्चिम पर विजय प्राप्त की थी। उसकी बलव विजय उसे सिंध तथा सोराष्ट्र तक ले जाती है। इसका अर्थ शक विध्वंस नहीं है प्रत्यत इस विजय का अर्थ उस क्षत्र के शासन का पराजय तथा उसके दास्य की सिंधि है। किन्तु एयगर महात्म्य की उक्त धारणा अधिक यकिनसगत नहीं है और यह केवल चन्द्रगुप्त के विषय में अधिक कल्पनात्मक ढंग से साधना है।

इण्डिकर महात्म्य ने चन्द्रगुप्त प्रथम का बलव तब पहुंचना कुछ असम्भव सा बताया है। उक्तान समुद्रगुप्त की प्रयाग प्रशस्ति के लक्ष के आधार पर इसकी पुष्टि इस प्रकार की है कि उक्त प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के पिता चन्द्रगुप्त का शासन केवल गया की घाटी पर बताया गया है और इसमें इस बात का कहीं भी संकेत नहीं किया गया है कि बगान के सीमान्त क्षत्र पर चन्द्रगुप्त का अधिकार था। चन्द्रगुप्त प्रथम के साथ तो एकाधिराज्य का प्रश्न ही नहीं उठता। इण्डिकर महात्म्य ने आगे लिखा है कि यति समुद्रगुप्त के पिता ने ये समस्त विजयें प्राप्त की होनी तो समुद्रगुप्त ने निश्चय ही उनका उन्मूलन अपने अभिलक्ष में किया होता।<sup>1</sup> इन आधारों पर इण्डिकर महात्म्य ने महरोला के चन्द्र का किना प्रकार भी चन्द्रगुप्त प्रथम स्वीकार करना अनवित ठहराया है।

महरोला के चन्द्र के सम्बन्ध में अथ इतिहासकारों ने भी अपने अपने विचार प्रकट किए हैं। एयगर महात्म्य इसका सदाचन्द्र भारशिव बनाते हैं जो वाकाटक प्रवर मन प्रथम के वैवाहिक भवनाग का उत्तराधिकारी था। इसका राज्य पूर्वी मानवा में विदिशा की रियासत पर ठाक उमा समय रहा होगा जब मगध के सिंहासन पर समुद्रगुप्त या उसके पिता चन्द्रगुप्त राज्य कर रहे होंगे। तब मला यह कैसे सम्भव है कि वह मगध से बिना कोई युद्ध के ही मरुलतापूर्वक बगान की सीमांत रियासतों से सम्पन्न करने की मांग पा गया होगा। साथ ही भारशिव वंश के इतिहास के एकमात्र साधन पुराण सदाचन्द्र के इस प्रकार के किसी आक्रमण का उल्लेख नहीं करते हैं। हरप्रसाद शास्त्री ने महरोला के चन्द्र को पुष्करन का शासक चन्द्रवर्धन बताया है पर यह भी यकिन-सगत नहीं है। इण्डिकर महात्म्य ने मेहरोली लौहस्तम्भ लक्ष की भाषा और छाप (Expression) तथा चन्द्रगुप्त तृतीय की मद्राओं की भाषा और छाप के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर यह बताया है कि ये दोनों समान हैं। उन्होंने अपने मत के समर्थन में अनन्त प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। उक्त अभिलेख की अंतिम पंक्ति में एक शब्द आया है जिसका अर्थ घावने पड़ा जाता है। कुछ लोग ने इस अर्थ में पड़ा है। यदि इस अर्थ में पड़ा जाना सम्भव हो तो यह चन्द्रगुप्त द्वितीय के बर्यविक्र नाम देवगुप्त का आरंभ निश्चय करना है। चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिये यदि वह शब्द के लिये मान्य से कुपाणा का जन्म कर देना चाहता था यह आवश्यक था कि वह

<sup>1</sup> देखिये धो आर० डी० इण्डिकर - *History of the Guptas* p. 76

बल्लभ पर विजय प्राप्त करने क्योंकि वह कितना से ही कृपाण अपनी शक्ति पुन सरक्षित कर सकत थे ! अपना स्थिति को देखते हुए चन्द्रगुप्त द्वितीय के निये यह आवश्यक था कि वह सम्पूर्ण मल्लसिन्ध क्षेत्र पर आक्रमण करे जसा कि मेहरौती लेख में वर्णित है । बंगाल की चन्द्रगुप्त द्वितीय ने विजित किया था उसका सर्वश्रेष्ठ प्रमाण उक्त म माग पर चन्द्रगुप्त तृतीय के उत्तराधिकारियों द्वारा अधिकार प्राप्त करना है । श्री हफडेकर महोदय ने यह भी बताया है कि मेहरौती अभिलेख तथा प्रयाग स्तम्भ-लेख की निधि में बहुत अधिक समता है । मेहरौती अभिलेख के चन्द्र की राजनैतिक मन्ता दक्षिणी देशों पर स्थापित थी । यह चन्द्रगुप्त तृतीय के सम्बन्ध में अमरेश मय है ।

कौमदी मन्थोमक नामक नाटक के आधार पर लोगों ने उसके गणराज्य के इतिहास की रूप रेखा मीची है जिसमें अधिक सार नहीं है । कौमदी मन्थोमक से चन्द्रगुप्त को चन्द्रगुप्त प्रथम स्वीकार करने में अनेक बाधाएँ हैं और यदि यह स्वीकार भी कर लिया जाय तो उक्त नाटक के विवरणों को कवि की कल्पना की दृष्टि में देखना पोगा न कि इतिहासकार की भाँति । अतः इसके आधार पर चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्यागम या उसके राज्य विस्तार पर विचार करना भ्रम मानक ही होगा ।

यह अधिक तर मगध नही जान पता। लिच्छिविया स बवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने सामाजिक स्तर ऊंचा करने का बात कहीं तक ठीक नही मकना है जो कि लिच्छिवी स्वयं यात्य क्षत्रिय कह जाते थे। निम्न ही इस विषय का उल्लेख राजनीतिव रहा होगा।<sup>१</sup> श्री जार० सा० मजूमदार ने नूबलिगित स्वर्ण गुप्ता में लिच्छिविय शासन प्रयाग से जा कि जानाय नाम है और जिसका प्रयाग बहुवचन में हुआ है, ऐसा जनमान्य विषय है कि लिच्छिविया का प्राचीन गणतंत्र अत्र भी अपने बसावस्थाप रूप में विद्यमान था पर कुमारद्वी का राजनातिक अधिकार बशानगत प्रतीत होता है। मजूमदार महादय का यह भी मत है कि उक्त बवाहिक सम्बन्ध से लिच्छिवी तथा गुप्त राज्य का एकाकरण हो सका और समुत्पन्न कृतिय लिच्छिवी दौहित्र का प्रयाग कबल समनिय विषय गया था कि नाना राज्या पर उसका अधिकार स्थापित करने में बल मिल। लिच्छिविया तथा गुप्ता की पथक राज्य सीमा के सम्बन्ध में इतिहासकारों में बहुत मतभेद है जिस पर प्रकाश टानन का यहाँ विषय आवामकता नही बबन इतना ही जान नना पर्याप्त होगा कि उत्तर का कुछ भाग तथा पश्चिमा बगाल पर गुप्ता का अधिकार था और उत्तर बिहार लिच्छिवियों के अधिकार में था। इस प्रकार जब दाना बशो का एकीकरण हो गया तो बिहार का अधिकांश भाग तथा उत्तरी और पश्चिमा बगाल इनके राज्य के अधीन आय।

चन्द्रगुप्त प्रथम का महाराजाधिराज का विरुद्ध प्राप्त है। वस्तु यह पत्नी क्या मित्री संसक सम्बन्ध में कुठ निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता। हमने प्रारम्भ में बताया था कि प्रथम दो गुप्त शासक सामन्त नात हान हैं और उनके विपरीत चन्द्रगुप्त प्रथम स्वतंत्र राजा जान पता है क्योंकि उस उक्त विरुद्ध प्राप्त है। पर क्या उस यह विरुद्ध महान विजया ममत्गुप्त का पिता हान के नात तो नही मिला है? ऐसा साचन का पर्याप्त तबसर हम प्राप्त हैं। श्रीवासुदेव उपाध्याय ने लिखा है— चन्द्रगुप्त प्रथम ने पराक्रम से जय राज्या का जीतकर पार्श्वनिष्ठ में फिर से एक साम्राज्य का नाव डाला तथा उस शुभ जन्म पर महाराजाधिराज पदवा धारण का।<sup>२</sup> किन्तु उसका विजया का काल ऐतिहासिक साध्य नहीं प्राप्त है। महाराजाधिराज कहा जाना का एक अन्य कारण यह ही सकता है कि गुप्त साम्राज्य की नाव डालने का पूरा श्रेय चन्द्रगुप्त का ही है जोर यह उमक नही कायों का फल था कि समद्रगुप्त का लिच्छिविया के राज्य का भी अधिकार मिला। गुप्त साम्राज्य के निर्माण काय का भाग प्रशस्त करनेवाला चन्द्रगुप्त प्रथम ही है। अतः इन सब कारणों से उस महाराजाधिराज की पत्नी मिली। महाराजाधिराज शब्द में उसका एकछत्र राज्य का या विस्तृत राज्य का कल्पना नहीं करना चाहिए। म्मिथ महादय ने इसका अधिकार तिरहुत पश्चिम बिहार अबध तथा इसका समापना प्रशां पर बताया है।<sup>३</sup> चन्द्रगुप्त के राज्य विस्तार के सम्बन्ध में एक पौराणिक दृष्टांत अधिक प्रचलित है जिसका अनुनार साकंत (अबध) प्रयाग तथा मगध (दक्षिण बिहार) उमक राज्य के अंतर्गत थे। अनुगगा<sup>४</sup>

<sup>१</sup> देखिय *History of the Indian People* VI VI  
Jitika Gupta Age p 1-5

<sup>२</sup> देखिय वासुदेव उपाध्याय का 'गुप्त साम्राज्य का इतिहास', पृष्ठ ४२।

<sup>३</sup> देखिय बी० स्मिथ *Early History of India* p 260

<sup>४</sup> अनुगगा प्रयागच साकंत मगधास्तथा।

एतान् जनपदान सर्वाणि भोक्ष्यते गुप्तयज्ञा वा०पु० आ० १९ श्लोक ३८३।



गुप्तवंशका का जख हुआ गुप्त वंशज गंगा व तटवर्ती भू भाग प्रयाग मात्र तथा मगध का राज्य भागों किन्तु विष्णु पुराण म अनुगंगा प्रयाग भागया गुप्तांच भाग यन्त्रि का उल्लेख है अथवा गंगा व तटवर्ती भू भाग प्रयाग तत्र मागध तथा गुप्त राज्य वर्गे । इस प्रकार व विवरण चंद्रगुप्त प्रथम व राज्य विस्तार व स्पष्टीकरण म महामयक नया मत हैं । शकृष्ण स्वामी एषगर व मतानुसार कुमार त्वी म याह कर लन व पचात् वशाला मा चंद्रगुप्त व अधिकार म जा गया किन्तु पौराणिक साध्य वसका ममथन नहा करत । यह टाक भी जात हाता है । प्रयाग प्रशस्ति म भा वशावा का उल्लेख नहा किया गया ह । वशात्री पर सबप्रथम चंद्रगुप्त द्वितीय ने अधिकार स्थापित किया था और उमन अपना एक नामक ( Governor ) वहा नियुक्त किया था ।

**गुप्त सवत**—एसा अनुमान किया जाता ह कि चंद्रगुप्त न अपन सायामिपक की तिथि स एक नय मका गुप्त सवत का निमाण किया । विभिन्न गणनाया व आधार पर चंद्रगुप्त व सायामिपक का तिथि २० दिसम्बर १८ ई० यथा २६ फरवरी २० ई० निश्चित ज्ञात है । जत लगभग ५१०-२० ए म गुप्त सवत का प्रारम्भ हाता है । किन्तु यत्र प्रामाणिक तय मना वना जा सवता कि उक्त मयत चंद्रगुप्त का जालाया हुआ है क्याकि हमार पास इस प्रकार व प्रमाणा का ज्ञान ह । केवल इस आधार पर कि प्रथम ज गुप्त शासक तुत्र जा साधारण थ पर वह (चंद्रगुप्त प्रथम) वना मशकत था यह अनुमान लगाना कि चंद्रगुप्त प्रथम न हा उक्त मयत चलाया जहन कुछ सम्भव ना है पर अधिक स्वाकारमक नया है । था जार० सी० मजमदार न इस सम्बन्ध म अपन विचार इस प्रकार प्रकट विय है —

साथ ज हम उम सम्भारना व और स दष्टि नहा हटाना चाहिय कि उक्त सवन समुद्रगुप्त व राज्याराहण व उत्तर का स्मारक स्वरूप है जिसन निश्चय ज एक विनाल साम्राज्य की स्थापना का । उक्त मत का ममथन समुद्रगुप्त व ती नाम जाल पयास जाना जाल तथा गया म प्राप्त विय गया है हा जाता ह जिनका तिथि प्रमथ पांचवें और नव वय म है । यदि हम यह विचार करे कि यह (नाल जाल का दानपत्र) समुद्रगुप्त व शासन व पांचवें वय म जाल किया गया वा तो इसन स्थान पर कि उक्त सवत का चंद्रगुप्त प्रथम द्वारा थ या हुआ माने इस सम्बन्ध व राज्याराहण व स्मारक म चलाया गया मानना अधिक तनमयन ममथेग । ९

किन्तु मजूमदार महान्य न आग यह भा लिया है कि उक्त सवन का चंद्रगुप्त द्वारा चलाया जाना काफी प्रचलित मत है इसत काइ सन्दह नया । हा जाल एक माय या प्रामाणिक सत्य नहीं है । वास्तविकता जा मा हा जम सवत का ज्ञान म आगामा गुप्त शासन न निश्चय हा काफी धाग लिया क्याकि गुप्त-वशाथ जितन जिनालता प्राप्त हुए हैं उन सब पर गुप्त सवत स हा काल-गणना ना मूठ है ।

द गुप्ता सम्पादक म इस सम्बन्ध म विचार करत हुए डा० राधाकुमु मुखर्जी न पत्राट का आधार मानत हुए लिता है—

According to Fleet Chandra Gupta I marked his accession to the throne of Magadh by founding an era of which the first year was A D 319 320 Fleet also states that this era was also that of the Licchhavis of Nepal from when it was taken over by Chandra Gupta I who was so individually connected with them The time of Jivdeva I of Nepal approximates closely to A D 320 The Valbhi era is also identified with the Gupta era The Valbhi K ngs feudatories of the Guptas introduced the era of their over lords in their own dominion of Saurashtra We find that a son of the founder of the Valbhi dynasty uses the date 207 for one of his grants showing that there was an independent era in K ngs foundation

आग मखर्जी मन्देय न गप्त सवत के आरम्भ के सम्बन्ध में विद्वानों का मकेंत करते हुए उसके समाधान की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है—

The first year of the Gupta era as fixed by Fleet has been the subject of some controversy But the controversy may be settled in the light of the following facts & considerations The date of the Sakasatrapas of Ujjain supports Fleet's conclusion if it is taken for granted that they are in the Saka era It is an established fact that Saka power was extinguished by Chandra Gupta II who issued his silver coins in imitation of those of the Satrapas Now the 1st date of Chandra Gupta is 93 while that of the Saka dynasty is 304 It is only by taking the Gupta era to begin in A D 319 & Saka era in A D 78 that these two phases of Gupta & Saka history can be reconciled & brought together in time

चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु तिथि—राज्यारोहण के समय चन्द्रगुप्त की आयु काफी अधिक थी ऐसा उचित अनुमान लगाया जाता है जिसके आधार पर उसके अल्प राज्य की शका ठीक की जा सकती है। समद्रगुप्त के गया साम्राज्य के अनुसार चन्द्रगुप्त की मृत्यु तिथि २८ ई० चात होती है।



विवादास्पद घटनाओं में एक है। इस पूरा समस्या का ताना बाना घना न कवन एक प्रकार का मुद्रा न। इस एक मुद्रा प्रकार पर ही इस समस्या का भय भवन स्थापित है। यह मन्त्र प्रकार (Coin type) इस प्रकार है—

अग्रभाग (Obverse) में —

राजा का तृती मूर्ति (समुद्रगुप्त के जिस उग्र धारण में हुए) नाम राज म चक्रयुक्त ध्वजा ग्रहण किए हुए एक दाहिने हाथ में जाति त्व में।

१ वाम हस्त में नाच गप्तलिपि में  
काच या काम

२ चारों ओर उभगाति छन्द में  
का-चा-गा-म-व (जित्य दिव)  
क म-मि-र  
उत्त-मर ज (यति)

काचा गामवजित्य दिव कमभिरत्त मजयति पण्ड भाग (Perverse) में—  
वाम भाग में खड़ी देवा का मूर्ति तान-तान वस्त्र पहिने दाहिने हाथ में पुष्प पकड़े हुए एक वाम मुखा में कानुकापिया (Cornu Copial) जशु भागा से युक्त।

वाम भाग में प्रतीक



स-व-रा-जा-च्छ-ता

एलन का मत—एलन (Allan) ने अपने मत के समय में तक देन हुए कहा है कि अग्रभाग का मन्त्रालय (legend) समुद्रगुप्त के ध्वजाधार प्रकार (Archer type) से पूगतया मत खाता है। जतएव इन दोनों मुद्राओं को एक ही नरेश (समुद्रगुप्त) ने प्रचारित करवाया था। उसके अर्थ प्रमाण इस प्रकार है—

(१) वनावट तथा तीन समुद्रगुप्त का मुद्रा जसा है (२) समुद्रगुप्त का दूसरा नाम काच था। (३) समुद्रगुप्त ने अपने अन्य मुद्राओं के सुचरित का जनवाट इस सिक्के में कमभि उत्तम उत्कीर्ण करवाया है। (४) मवराजाच्छता नामक उपाधि कवन समुद्रगुप्त के लिए ही तत्काल में प्रयुक्त की गई है।

एलन (Allan) महीदय अपना पुस्तक गुप्तसिक्के में अपने मत का पुष्टिकरण इन जोरदार शब्दों में करते हैं—

अन्तर्गत ( Inland ) के भाषा या समुद्रपना या प्रयाग या एकपना का प्रमाण नया माना जा सकता है। कर्त्तरा के समुद्रवा का भाषा नया क्या है—यस का उत्तर ज्ञान के अन्तर्गत है।

गुप्तकाल की मराठा की यह स्थिर परिपाटी है कि नरेश का उपाधि नाम या उपाधि ( ver ) के अन्तर्गत ( in line ) परमा वीरा ( Vertical line ) मराठा का मूल के निम्न भाग पर। नरेश के विरुद्ध आदि उल्टा भाग ( reverse ) मया अथवा निम्न स्थान पर उल्टा भाग लिए जाते हैं। गुप्तकाल — इन स्थिर परिपाटी न भाषाएँ एतद एव स्थिति आदि के निदान का मण्डन कर दिया है। क्योंकि 'काच' नाम समुद्रगुप्त का विरुद्ध या अथ नाम नया माना जा सकता है। यथा किमो नरेश का उपाधि नाम है क्योंकि सिक्क के अन्तर्गत मया उल्टा भाग है।

एक जय शाल ध्यान देने योग्य है कि जय किमा गुप्त नरेश के विभिन्न नाम ज्ञात यथा कचन एक या नाम 'सक' सिक्का म अथवा विद्या ज्ञाना या। यदि समुद्र गुप्त का दूसरा नाम काच या ना इन या नामा म स कचन एक ही नाम के सिक्क प्रचारित किए जाते थे। ज्ञाना नामा के सिक्का का स्थिति में यथा पता चलता है कि समुद्रगुप्त का दूसरा नाम काच नया था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य का दूसरा नाम उदयगुप्त था। उचित उदयगुप्त नाम यथा नाम सिक्का पर उल्टा भाग मिनता।

यदि एतद का कचन म कुछ समय के लिए यकिनयुक्त मानें और समुद्रगुप्त न तो काच के सिक्का का चलाया अंगीकार करें तो एक बात यह पता जाता है कि उनमें म सिक्का पर सुचरित का अनुवाद कथमभरतम क्या करवाया? ऐसा अनुवाद किमा अथवा गुप्त नरेश के सिक्का पर नया मिनता। काच का समुद्रगुप्त का सिक्का प्रमाणित करने के लिए मवराजा उता विरुद्ध पर अधिक जोर दिया गया है। परन्तु प्रभावता गुप्ता के लक्ष्य पता चलता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय के लिए भी मवराजा उता का पक्षी प्रयुक्त का गद था। एसा अवया म इस पक्षी पर काँ मिद्वान्त निर्धारित नया जा सकता है। जब तो गुप्त साम्राज्य न मवराजा उता का उपाधि प्राण्य का था तो नरेश नरेश द्वारा भी धारण का जा सकता था।

पृ० ए० गुप्ता ( P L Gupta ) न अतएव कहा है—

In view of the facts Mr Allan's Suggestion is not plausible it is more likely that काच (काचगुप्त) was some person other than Samudra Gupta

राजानन्दम बनेजी ( P D Banerji ) न भाषाया की है—

It is impossible to believe in spite of adjective clauses that Kacha was another name for Samudragupta

डॉ० डी० आर० भण्डारकर ( D P Bhandarkar ) न भी निता है—

That all evidence thus point to Kacha being regarded as the personal name of a king distinct from Samudragupta

राजानन्दम बनेजी का सिद्धांत—प्राप्त नरेश राजानन्दम बनेजी ने काच सिक्का का समुद्रगुप्त द्वारा अपन विद्या निकट सम्बन्ध या घनिष्ठतम मित्र की मन्त्रि म प्रचारित मरारक मन्त्रा ( memorial medals ) का मया नया है। उनका नरेश मन्त्रक काच वानुप्र प्रथम का दूसरा पुत्र या और समुद्रगुप्त का उल्टा भाग था। म

ज्येष्ठ भ्राता न स्वतंत्रता व सधय म अपन प्राणा की आहुति द दी थी। जतएव अपन ज्येष्ठ भ्राता का पुण्य स्मृति म समुद्रगुप्त न इन सिक्का का प्रचारित करवाया था। लाकिन प्राफसर बनजी न अपन इस अनमान व समधन म काई प्रमाण उपस्थित नहा किया ह। बनजी महादय का सिद्धांत ता वस्तुत एलन द्वारा प्रतिपादित एक अय सिद्धांत की प्रेरणा ह। एलन न चंद्रगुप्त कुमारदवा मुद्राआ का स्मारक मडला (Commemorative medals) की सना दा है। इसी सिद्धांत का आधार मान कर बनजी महादय न अपनी रचनात्मक प्रतिमा का चमत्कार दिखाया है। परंतु कुछ हा वष पूव डा० अनन्त सदाशिव राव अल्टकर (Dr A S Altekar) न बड़ी भूतबूझ एव विद्वता स इस सिद्धांत का सूक्ष्म विवचन किया है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि कुमारदवा चंद्रगुप्त सिक्क वस्तुत चंद्रगुप्त प्रथम न स्वय अपन ही शासन काल म प्रचालित करवाय थ। अतएव स्मारक मडला का प्रश्न हा नहा उठता। एतन व इस सिद्धांत पर आधारित बनजी का सिद्धांत भी आधारशून्य एव याम असंगत प्रतात हाता ह।

प्राफसर बनजी व स्मारक सिद्धांत (Commemorial theory) की सब प्रमत्त आपांतजनक बात ता यह है जसा कि डा० अल्टकर ने कहा है कि इन मुद्राआ पर स्मारक रचायता व नाम का अभाव। स्मारक बनाने वाल व हृदय म सबसे बड़ी उमग यह हाता है कि वह अपना नाम मा उस स्मारककृति म अंकित करवाना चाहता है जिसस कि भावी पीढ़ियां उन दा स्नही व्यक्तिया का नाम सदैव स्मरण रखें। समुद्रगुप्त याद स्मारक मडला का प्रचारित करवाता ता निश्चयत उसकी यह अमिलापा हाता कि वह भ्रातृत्व स्नह का तथ्य विश्व के प्रकाश म लाए। कुछ इतिहासकारो ने कहा है कि सब राजाच्छता विरुद स्मारक रचयिता का विरुद अगीकार किया जाना चाहिए। लाकिन यह उपाधि स्वय म ही स्पष्ट नहीं है। हमने अभी देखा है कि चंद्रगुप्त अन्नमादत्य व लिए मा इस पदवा का उल्लेख किया गया है। अतएव इस विरुद का पूणतया किसी एक व्याक्त की पदवा हम स्वीकार नहीं कर सकते। इस प्रकार बनजा महादय का सिद्धांत भी युक्तिसंगत नहीं प्रतात हाता है।

रप्सन का मत—रप्सन (Rapson) न यह मत निर्धारित किया है कि काच समुद्रगुप्त का भ्राता था। इस ज्येष्ठ भ्राता न चंद्रगुप्त प्रथम के पश्चात कुछही महीनो व लिए राज्य किया था। लाकिन जब हम यह देखते है कि समुद्रगुप्त को सिंहासन ता उसका पिता न स्वय प्रदान किया था ता यह सिद्धांत भी योया लगता है।

दाण्डेकर (Dandekar) का सिद्धांत—दाण्डेकर न यह प्रकट किया है कि इलाहाबाद स्तम्भ अभिलेख स हम यह आभास हाता है कि समुद्रगुप्त तथा उसका माइयो म थोडो बहुत खटपट अवश्य हुई थी। जब सिंहासन के लिए समुद्रगुप्त को चुना गया ता उसका माइया न उसका आर ईर्ष्या से दृष्टिपात किया था। चंद्रगुप्त प्रथम की मृत्यु व अनन्तर समुद्रगुप्त व माइया ने छाटा मोटा उपद्रव एक विप्लव किया होगा एसा इस वचन स ध्वानन होता है। इस स्तम्भ लेख म एक लख म यह वाक्यांश उल्लिखत है कुछ का अपना भुजाआ द्वारा सग्राम म विजित किया। इस लख म स्थान-स्थल पर शब्द मिट हुए है। यह सग्राम हम तब उल्लिखित मिलता है जब कि उसका चुनाव युवराज पद व लिए हा गया होता है और वह आर्यावत के विरुद अपन प्रथम अभियान म अपसर हाता है। इस प्रकार यह समभव है कि युवराज पद का प्राप्ति व अनन्तर उस अपन माइया स युद्ध लाना पडा हो और गृह युद्ध स शान्ति पाकर ही वह आर्यावत का पराजित करन व लिए उमुत्त हुआ होगा। आग चलकट

एक अन्य वाक्यांश अभियान पश्चात्ताप में बदल गया। स हम यह अनुमान कर सकते हैं कि समुद्रगुप्त के माइया न अतंत परास्त होकर उसका अधीनता में रहना स्वीकार कर लिया। उन्हें अपने किए हुए सार्हासिक काम का वाद में गण पश्चात्ताप हुआ।

कई इतिहासकारों ने उपयुक्त उल्लिखित वाक्यांशों का कालक्रमानुसार नहीं माना है। उनका दृष्टि में यह काइ आवश्यक नहीं है कि स्तम्भ में बणित घटनाएँ कम ही तर्तावधार हुई हैं। मभवत यह गहमुद्ध तब ममका है जब समुद्रगुप्त अपने प्रथम अभियान के निमित्त अपना राजधानी से दूर चला गया था। चन्द्रगुप्त प्रथम, सम्भवन गया के पार किसा स्थान पर समुद्रगुप्त के पटुचन के पूर्व ही मृत्यु का प्राप्त हुआ था। जब समुद्रगुप्त अपने स्वर्गीय पिता के दशन करने गया होगा तब उससे माइया न इस स्वर्ण अवसर का लाभ उठान का पूरा प्रयास किया होगा। काच ने अपने माइया का नतुत्व कर इस गहमुद्ध का ज्वाला धधकाई होगी। काच वस्तुतः कुछ समय तक सिंहासनाह्वर रहा। उसने इस काल में ही अपने नाम के सिक्के चलवाए। काचसिक्का के स्वर्ण का निम्नकालिता यह प्रदर्शित करता है कि उसने मगध के सिंहासन पर बड़ी तीव्रगति से कदम रखा था। सवराजा छेता विरुद्ध वस्तुतः एक कपटी का खाला बडप्पन था। काच का नाम गुप्तवशावलिता में इसीलिए नहीं जीया गया क्योंकि वह बलात् सिंहासन छीननवाला था।

प्यारलाल गुप्ता (P. L. Gupta) ने इस मत का समर्थन करते हुए लिखा है—

These coins were undoubtedly the coin of काचगुप्त who was the son of Chandragupta I and step brother of Samudragupta

कृष्णाचार्य का सिद्धांत—श्री एम० कृष्णाचार्य (M. Krishnacharya)

भाविप्यात्तर पुराण के कलियुगका वृत्तान्त से एक उद्धरण अपना शास्त्रीय साहित्य का इतिहास (History of Classical Literature) नामक पुस्तिका में निर्दिष्ट किया है। इसमें अनुसार घटात्कचगुप्त के पुत्र की दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम था कुमारदेवी और दूसरी चण्डथी की पत्नी की मणिनी थी। लिच्छिविया की सहायता से वह सवप्रथम मगध की सत्ता का सनापति नियुक्त किया गया था। तत्पश्चात् वह सांद्रयशस्य टाक के पद पर आसन हुआ। महारानी के भडकान से उसने चण्डथी का हत्या कर दी जो कि आंध्र का नरेश था। तत्पश्चात् उसने महारानी के विरुद्ध भी विप्लव किया और उसके पुत्र पुलोमा (Puloma) की हत्या कर दी। अब चन्द्रगुप्त ने अपने पुत्र काच की सहायता से आंध्र का मगध से सडड दिया और स्वयं सात वर्ष तक मगध के सिंहासन पर रहा। उसने अपना स्वयं का शासकत्व प्रचारित किया। उसका पुत्र समुद्रगुप्त मगध के सिंहासन पर अपने पिता की एक अपने माइया की हत्या करके बैठा। यह काम उसने म्लच्छ सना की सहायता से किया था।

लेकिन कृष्णाचार्य के इस सिद्धांत का बहुत बुरा तरह से खंडन किया गया है। डॉ० रामशचंद्र मजुमदार (M. C. Majumdar) ने इस आधुनिक जातसाजी की सना दी है। उन्होंने सिद्ध कर दिया है कि कलियुग राज वृत्तान्त वस्तुतः प्राचीन काल की पुस्तक नहीं है बल्कि शास्त्रीय साहित्य के इतिहास के रचनाकार का स्वयं के दिमाग की उडान है। इस लखन नाम एक घन कमान के लिए हमारे प्राचीन भारतीय इतिहास के साथ मदा मजाब किया है। इस मनगडन्त रचना का प्रस्तुत कर यद्यपि श्रीकृष्णाचार्य ने एक बार नाम तो जरूर किया लेकिन भारतीय इतिहास का अन्तरात्मा पर इतना कुठाराघात कर नाम कमाना महान व्यक्तित्व की शान्दही हता है।

भंडारकर का सिद्धांत—सिद्धांत की इस श्रुति में विष्णु इतिहास का सिद्धांत देना तो अनिवाय सा हो जाता है। उन्नीस अमी तब व मना म पूणतया पशक एक नवान मत को गट्टि का है। भंडारकर महान्य न वाच शब्द को राम शब्द पना है। उनक विष्णु का वाच गुप्त का समस्या हा नहीं। व ता राम गुप्त समस्या का होप्रधानता एने है। उनक मन का मुख्य आधार है त्रिपि की अनिय भिन्ता। उट्टिने कहा है कि गुप्त त्रिपि म क वा पी नकार हट जान म र तथा च का म तनिक असावधानी से हो जाता है। म नवाय काममारशन बापूम (Malviye Commemoration Volume) म लिखत हए उन्नि अपना मन इस प्रकार प्रकट किया है—

It is not unreasonable that I (ungupta the elder brother of Chandragupta II) a misreading of Kachgupta. The letters Ka and Cha of Gupta period are of a such type as are easy to run into Ra and Ma. If the middle bar in the Gupta letter Ka drops it can be read ra only. Similarly if the lower left hook of Gupta Cha extends itself somewhat as it does in cursive writing it must read as Ma.

इस प्रकार भंडारकर के अनुसार एक असावधान उत्काणक के हाथों वाच राम में बदल सकता है।

जिन जिस नरेश ने इन मद्राआ की उलवाया था उसने इस अपनी सर्वोत्तम कृतिया माना है (उत्तमकर्म) और अपन को स्वराजोच्छता मानता है। लेकिन जब हम रामगुप्त की आरंभिक कृतियाँ देखते हैं तो हम ऐसा प्रतीत होता है कि यह कार्य अपन लिए समस्त राजाआ का उन्मूलन वाक्याश प्रयत्न नहीं कर सकता है। रामगुप्त को वही सुगमता से शकाधिपति ने परास्त कर दिया था और समुद्रगुप्त एक चतुर गुप्त विजयादित्य जस पराक्रमी वंश में जन्म देने पर भी इस उरपाक ने अपनी पत्नी तक का मनीत्व वचन का निश्चय कर लिया था। ऐसे वक्तों नरेश का यह कहना कि उसने उत्तम कार्य किए थे और समस्त राजाआ का उन्मूलन किया था—बिल्कुल गलत बात है। अतएव भंडारकर मनीष्य का सिद्धांत भी तर्कसंगत नहीं जचता है।

निष्कर्ष—उपरोक्त विभिन्न मतों एवं सिद्धान्तों का समर्थन एवं खंडन करते हुए हमने देखा कि शकन दाण्डिक एवं प्यारेलान गुप्ता महादय का सिद्धांत ही कुछ सत्य के समान सा जान पड़ता है। यह भी सत्य सा प्रतीत होता है पूण सत्य नहीं है। पूण सत्यता ता तमा प्रतिष्ठापित हागा जब कि नवीन प्रमाण प्रकाश में आयेग। इस आलोकिक ध्यान में हम दाण्डिक एवं गुप्ता के मना का अनमूलन करना चाहिए।

समुद्रगुप्त की दिग्विजय

भारतीय इतिहास के साम्राज्यवादी युग में युद्ध एवं विजया का इतना अधिक महत्त्व रहा कि नगमग सभा में एक-एक एक प्रसिद्ध युद्ध चारणा न सम्राटों का प्रशस्तिया का अम्बर गूँस कर लिया। प्रशस्तिया में अतिशयोक्ति का बड़ा अभाव नहीं बसवया का चारमक है। प्राचीन भारत का समस्त ऐसा प्रशस्तिया में प्रयाग की प्रशस्ति अपना अन्तिम ध्यान रखता है। उक्त प्रशस्ति में समुद्रगुप्त की दिग्विजय का वाच्य रखा है—उक्त सामरिक जय पर पूण प्रयाग पता है। प्रयाग प्रशस्ति उमा मुर्मिड



का शासक बताता है।<sup>१</sup> आरिजिन एण्ड डवलपमेंट आफ बंगाला जंगलज (Origin and Development of Bengal Language) में डा० चटर्जी न पुष्करणा का वांछुला जिले में बताया है। डा० भण्डारकर भी डा० हरप्रसाद शास्त्री के इस विचार से सहमत नहीं कि पुष्करणा पावरण है और वे प्रयाग प्रशास्ति के चन्द्रवर्मान तथा सुमुनिया शिलालेख के शासक का समान मानते हैं।<sup>२</sup> जायसवाल महादय इस पूर्वी पंजाब का शासक स्वीकार करते हैं।<sup>३</sup> विद्वानों में मनबामिन्य हान के कारण इस शासक के सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

(५) गणपतिनाग—इसके सम्बन्ध में निश्चित बातें नहीं हैं। यह नागा का राजधानी पद्मावती (बंगालीपर में नगर के निकट वर्तमान पदम पवाया) में इ० स० २१०-२४४ तक शासन करता था।<sup>४</sup> नारवार तथा बेसनगर में इसका मुद्रायें भी प्राप्त हुई हैं। डा० भण्डारकर के मतानुसार यह सम्भवतः नागा की विदिशा शाखा पर शासन करता था जिसका वर्णन विष्णुपुराण में प्राप्त होता है।

(६) नागसेन—इसका उल्लेख प्रयाग प्रशास्ति में आयावत्त के राजाओं का सूचा के पूर्व में मिलता है। यह नागवशाय राजा था और गणपति नाग के समकालीन नागा का दूसरी शाखा पर शासन करता था। ह्यचरित के इस कथन के आधार पर 'नागकुलज' में सारिका भाषितम प्रस्य आसीत् नागा नागसेनस्य पद्या त्या न' रत्न महादय ने प्रयाग प्रशास्ति के नागसेन तथा ह्यचरित के नागसेन को समान माना है। किन्तु जायसवाल महादय के मतानुसार वाण का नागसेन पद्मावती का शासक था जसा कि ह्यचरित से ही स्पष्ट हो जाता है और यह सम्भवतः गुप्ता के अधीन था। प्रयाग प्रशास्ति का नागसेन मयुरा का शासक जान पड़ता है। अतः यह कहना कि ह्यचरित का नागसेन समकालीन था तर्कसंगत नहीं है।

(७) अच्युत—अच्युत के सम्बन्ध में विद्वानों में काफी मतभेद है। जायसवाल महादय अच्युत तथा नन्दि का एक ही मानते हैं।<sup>५</sup> एलन महादय ने बरला में अहिक्षतर (वर्तमान रामनगर) में प्राप्त मुद्राओं पर अच्युत शब्द पड़ा है। इस आधार पर यह अनुमान किया गया है कि ये अच्युत की ही मुद्रायें हैं। डा० भण्डारकर ने इन मुद्राओं का बनावट तथा पद्मावती की नाग-मुद्राओं का बनावट में भ्रमना पाई है जिसके आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि अच्युत भी कोई नागवशीय राजा रहा होगा और मयुरा के निकट राज्य करता रहा होगा। जायसवाल महादय इस अहिक्षतर का शासन मानते हैं।

(८) नन्दि—पुराणों में नागवशीय नरेशों का सूची में शिशुनन्दि या शिवनन्द का सम्बन्ध मध्य भारत से स्थापित किया गया है तथा ऐंशिएट हिस्ट्री आफ डेक्न (Ancient History of Deccan) में डब्ल्यू रिल महादय ने शिवनन्दि तथा नन्दि का समान बताया है। यह भी सम्भवतः नागवशीय शासक था।

(९) बलवर्मा—इसके सम्बन्ध में भी कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि यह राजा ह्य के समकालीन अस्साम के राजा

<sup>१</sup> Indian Antiquary 1913

<sup>२</sup> Indian Historical Quarterly I p 200

<sup>३</sup> जायसवाल History of India (150-350) p 142

<sup>४</sup> जायसवाल, History of India (२५०-३५० ई०), p 30 or 31

<sup>५</sup> यही, पृष्ठ १२३।

भास्करवर्मन का एवज हो।<sup>१</sup> कि तु जायवित म आसाम नही सम्मिन्ति या अत  
बलवर्मा आसाम का शासक नही हो सकता

### ख—आटविक राज्य

उत्तरी भारत के पूर्व कथित राजाओं का पराजित करने समुद्रगुप्त दक्षिण विजय  
की चिन्ता करने तथा जित्ना भाग में पठवान भू भाग पर अधिकार स्थापित करना  
आवश्यक था अतः समुद्रगुप्त ने आटविक नरेशों को परास्त करके उन्हें अपना मक्क  
बनाया।<sup>२</sup> आटविक राज्य मध्यभारतीय वनपरंपरा में बड़ी था। प्रयाग प्रशस्ति में  
आटविक नरेशों का नाम तथा उपासक शक्तियों का उल्लेख नहीं किया गया है। पचास  
महोदय का मतानुसार आटविक नरेश जाधनिक गाजीपुर से तवापुर तक प्रसारित थे।

कुमारगुप्त प्रथम ने वंशशायी समुद्रगुप्त की प्राप्ति एवं विजय का  
गुणगान करते हुए अपने विजयशिलों में अमिलख में लिखा है—

सवराजा उत पयिधाम प्रतिरवस्य अनुधि-सन्नितास्वादित यजसा भनद  
वरुणद्रान्तक समस्य वत्तान् परशा दायामता नेव गो हिरण्यरात्रिप्रदस्य चिरात्मना  
द्वमेराहत् ।

जितनी इस सम्प्रदाय की प्रशंसा की गई है वस्तुतः वह सत्ता प्राप्त भी है। वह  
भारत का चक्रवर्तिन सम्राट था। भारत के सबमहान नरेशों में उसका स्थान अग्रणी  
है। उसने अपने विभिन्न सन्नि अभियानों से भारत के विभिन्न भागों पर जातिपत्य  
जमाया था। इतना होना पर भी हम उसकी तुलना नपातिपत्य से नहीं कर सकते।  
नपातिपत्य की ता बस यही एक नीति थी कि विजय प्राप्त कर विजित क्षेत्र का अपना  
अंग बना उना। परन्तु समुद्रगुप्त नपूणतया इस नीति का अनुमोदन नहीं किया था।  
उसे हम सनिक्वाट का पुतारी नहीं कह सकते। नपातिपत्य सनिक्वाद का महान  
उपासक था। था जायगर न हमारे मत की पुष्टि इन शक्तियों में की है—

It is most unjust to describe him as a Napolian who regarded  
kingdom taking as the duty of the kings

उसने अपने विजय के दक्षिण भाग में घमविजयी की नीति अपनाई थी। वह  
एक उत्तर एवं परलोक विन्वासी नरेश था। उस कुछ घम के पालन आदि का भी  
ध्यान रखना अनिवार्य प्रवृत्त था। इसी भावना में काम लेते हुए वह ग्रहणमाता  
मुग्रह वानयाश का प्रणता बना। यह वाक्यांश उसका नारा बन गया। कुछ विद्वानों  
को इस भावना का सातिपत्न्य पर सन्देह होना स्वाभाविक है। उहने कहा है कि  
यह सब उदार भावनाएँ सन्धिपुष्टिकाण और कुछ नही बल्कि कूटनीति के दाँव पैच  
हैं। उसका वान म भा अमनिकन का रग नजर आता है। किन्तु पूरा असन्धित क्या  
है यह तो स्वयं सम्राट या सम्राटा का सम्राट भगवान ही बता सकते हैं। तत्कालीन  
परिस्थितियों में पूरे भारतभूष का एक राजधानी से शासन चलाना बड़ी बड़िन बात  
थी। सत्कार व्यवस्था तथा थी जावागमन का साधन नहीं था भाग बड़े बीहड़ एवं ऊँच  
खाबड थे—इन वशाओं में एक प्रतिभावात राजनीतिज्ञ का कार्य होता है कि वह अत्य  
उपाय निवात जिममें उमवा प्रभत्व भी जमा रहे और विप्लव तथा उपद्रव हानि की  
आशंकाएँ भा न हो। समुद्रगुप्त ने ऐसा ही भाग अपना लिए वरण किया। उसने दक्षिण  
का नरेशों का परास्त किया एवं तत्पश्चात् उनके राज्यों का उन्ना का वापस

<sup>१</sup> Epigraphical Indica Pt 12 p 69

<sup>२</sup> परिचारको इत सर्वाटिवराराजस्य (प्रयाग प्रशस्ति)

कर उन्हें साम्राज्य का स्वामाधिकार मिला बना दिया। इस प्रकार एक ओर यह नरेश स्वतंत्र था और इस प्रकार उनके विपन्न या उपद्रव करने का भय नहीं था। दूसरी ओर यह लोग समुद्रगुप्त का धाक स्वीकार करते थे। उमर प्रति अपना जात्य व्यक्त करना अपना पावन कर्तव्य समझते थे।

इसा दक्षिण के विजय में इन्होंने उन निम्नलिखित नगरों का जाला था।

(1) बौद्धिक महेंद्र (काशी का महेंद्र) —

काशी निश्चित रूप से दक्षिण कोशर का निष्पन्न करता है। इस दक्षिण काशी में शिलासपुर रायपुर तथा रायनपुर के जिले सम्मिलित हैं। यह जिले भागत के नूतन मानचित्र के अनुसार मध्यप्रदेश के पूर्वी एवं दक्षिणी भाग हैं। जहाँ तक स्थिति निश्चयन का प्रश्न था वह तादात्म्य गया लेकिन महेंद्र के विषय में हम बिना अन्य स्रोतों से कुछ भी पता नहीं चलता।

(ii) महाकाशी का व्याघ्रराज (महाकाली का भास्कर) —

महाकाशी के महाकाली का एकात्मकता के रूप में व्याघ्रराज का है एवं यहाँ मत्स्य व्याघ्रराज का एकात्मकता कापाठक सामंत युवराज व्याघ्र ने स्थापित करते हैं। इस युवराज के अस्तित्व के चर्चा का तारा तथा गज (मत्स्यप्रदेश) में प्राप्त हुए हैं। कुछ विद्वानों ने इस महाकाशी का व्याघ्रराज के उच्छ्रित रूप का माना है। इस एकात्मकता के विरुद्ध मुख्य बात यह है कि भास्करराज का दक्षिणप्रदेश का माना में ही हात चालिए। उत्तरांचल के शासक में गया। व्याघ्रराज में उमर राय के निश्चयन में यह विस्थापित के उत्तर का नरेश बन जाता है जो यद्योग्यतया नहीं है। दूसरी बात यह है कि व्याघ्रराज के क्षेत्र में भास्करराज का जन्म नहीं जाता था। व्याघ्रराज की उत्पत्ति में अन्य स्थान पर व्याघ्रराज का पूषणपत्र पत्र उत्पन्न है। यद्यपि यह आपत्तियाँ काइ जन्मिज दृष्टांत नहीं है किन्तु फिर भी सुन्दर तरे हैं प्रस्तावित एकात्मकता पर। एक इतिहासकार ने व्याघ्रराज का "दण्ड" का (उनीना में) का भास्कर प्रस्तावित किया है। इस जयपुर बन का मानव भास्कर पुत्र जन्मि जय में बना गया है। अतएव महाकाशी एवं भास्करराज में पर्याप्त समरूपता पर दृष्टि हासिल करने अपना एकात्मकता प्रस्तुत करने ली। परन्तु प्रकाशनात्मक में हम निश्चितपूर्वक नहीं कह सकते कौन-सा एकात्मकता सत्य है।

(iii) कौरालय मण्डराज (कुरान का मण्डराज) —

कालांग (K. 1111) के मतानुसार कुरान कुणान का मन्त रूप है। कुणान का मन्त मन्त अभिजात में आया है। पुलकिशिन शिलालेख में हमें "वस्तु" किया था। जायसवाल ने कुरान शिलालेख (K. 1111) के साथ समीचीन एकात्मकता स्थापित की है। कई विद्वानों ने इस पराल बनाया है। "धारार" में हम मध्यप्रदेश में सानपुर जिले में एकात्मकता किया है। मन्ट (B. 1111) ने काश (K. 1111) में समीचीन एकात्मकता स्थापित की है। एनीट (E. 1111) ने हम यथावितर के आसपास माना है। जायगर (J. 1111) ने कुराल का चेरन मानवर पूर्वी भास्करराज में नागपुर ताजुवा में एकात्मकता माना है। मण्डराज के विषय में हम कुछ भी पता नहीं चलता।

(iv) पण्डुरक महेंद्रगिरि (पिण्डपुर के महेंद्रगिरि) —

गाणवरी शिलालेख में पिण्डपुर का भास्करराज पाण्डुरक है।

इस स्थल पर जाकर पण्डुरक का सब करने में तनिक कठिनाई-सा प्रतीत होता है।

पत्नीट (U. C.) ने वाक्य (पिच्छपुर महेन्द्रगिरि कौहूर स्वामिन्दत्त) का विभाजन इस प्रकार किया है पच्छपुर महेन्द्र तथा गिरि कौहूर स्वामिन्दत्त। वह इसका अनुवाद इस प्रकार करता है पिच्छपुर का महेन्द्र पवत क कौहूर का स्वामिन्दत्त। पत्नीट के इस प्रकार क विभाजन करने के पीछ यणी तर्क है कि महेन्द्रगिरि एक शासक का नाम नहा हा सकता। किन यह प्रस्ताव अमान्य है।

डा० भगवानदास इन्द्रजा'न इसुवाक्य को इस प्रकार से ललित किया है पच्छपुरक महेन्द्रगिरिक अहूरक तथा स्वामिन्दत्त (स्वामिन्दत्त पिच्छपुर महेन्द्रगिरि तथा अहूर का शासक था)। यह मन भी अमान्य है क्योंकि महेन्द्रगिरि एक पवत शणी का नाम तो हा सकता है किन एक शेष का नणी। दूसरी बात याकरण की है। यदि यह शेष या पवत का नाम होता ता इसे 'माहूद्रगिरिक' होता चाहिए था न कि महेन्द्रगिरिक।

विन्सेण्ट स्मिथ (Vincent A Smith) का खड मवमान्य है। वह इस प्रकार से है—पच्छपुरक महेन्द्र गिरि (पिच्छपुर का महेन्द्रगिरि) तथा कौहूर स्वामिन्दत्त (कौहूर का स्वामिन्दत्त)

(v) कौहूरक स्वामिन्दत्त (कौहूर का स्वामिन्दत्त)—

अयगर ने काहूर का कौयम्बटूर से एकात्मकता स्थापित की है। डा० पत्नीट ने काहूर की काहूर-पोलासी (Kohir Polasi) से एकात्मकता स्थापित की है। यह काहूर पोलासी कौयम्बटूर जिले में है। श्री डुब्रेल मन्दीय इसे गजाम जिले का काहूर मानते हैं। गजाम आंध्र प्रदेश का मह्य नगर है। सधियानथायर मन्दीय न तनी (पूर्वी गादावरी जिला) के समीप कौहूरु के साथ इसकी एकात्मकता स्थापित की है। स्वामिन्दत्त क विषय में कुछ भी नणी कहा जा सकता।

(vi) एरण्ड पल्लवदमन (एरण्ड पल का दमन)—

एरण्डपल्लव खानदेश का एरण्डोल माना जाता है। यही प्रचलित मन है। श्री डब्रेल मन्दीय ने इसकी एकात्मकता उणीसा तट पर चिन्ताकोले (Chintale) के समाप एरण्डपल्लव शहर के साथ की है। सधियानथायर महाशय ने इसे पच्छिमी गोंग वरा जिले का चत्तनपुणी तानका (Chhatrapur Taluka) माना है।

(vii) काञ्चीक विष्णुगोप (काञ्ची का विष्णुगोप)—

काञ्ची निश्चित रूप से चिगलपुट जिले में काञ्जीवरम है। विष्णुगोप को प्रारम्भिक पत्तव नरश माना गया है।

(viii) अवमकत नीलराज (अवमकत का नीलराज)—इसके विषय में हमें कुछ भी पता नणी चलता।

(ix) वेंगयक हस्तिवमन—(वेंगी का हस्तिवमन)—

इस वेंगी का वगी या पेडडा-वगा से एकात्मकता अगाकार की गई है। यह वेंगी या पेडडा वगा गादावरी जिले के एनीर तानुका में एक गाँव है। हस्तिवमन की हुल्टश (Hultsch) ने अहोवमन के साथ एकात्मकता की है। यह पल्लव जाति के कन्दर नरश के परिवार का व्यक्ति था। आयगर ने यह प्रस्तावित किया है कि हस्तिवमन एतवार तालके का सालहायन मन्तराज था।

(x) पालकशोषेन (पालक का उग्रसेन)—

स्मिथ ने पत्तक का पातपाट या पातकट माना है। यह मादावरी जिले के दक्षिण में अवस्थित है। डुब्रेल ने इस स्थान को वृष्णा के दक्षिण में स्थिर किया है। यवक्या ने इस नरवार जिले में माना है।

(१) यवराष्ट्रक कुबेर (देवराष्ट्र का कुबेर) —

श्री वाई० आर० गप्ते, पलीट तथा स्मिथ ने — से महाराष्ट्र में स्थिर किया है। महारवर ने इसे देवराष्ट्र (येलाभन्वली क्षेत्र) का देश माना है। उसका जलेश बजगापट्टम जिन् म प्राप्त एक ताम्रपत्र पर हुआ है कुबेर की एकात्मकता के विषय में कुछ लोगों की राय है मह चन्द्रगुप्त द्वितीय की महारानी कुबेर नागा का पिता था। लेकिन तस्या के अभाव में हम कुछ नहीं कह सकते। श्री मथियाभायर ने इस सतना जिले के खानपुर में निश्चित किया है।

(२) कोशकल्लू कथनच्छय (कथनपुर का कथनजय) —

वानेट के अनुसार यह उत्तरी अर्काट म पालर के समीप कुहलपुर है। आयगर की दृष्टि में यह कुस्थलीपुर नदी के आसपास का क्षेत्र है।

समुद्रगुप्त की दिग्विजयाका भाग एवं उसको शासन का विस्तार

श्री स्मिथ (Smith) के अनुसार समुद्रगुप्त ने दक्षिण की ओर उभरने होने के पूर्व गंगा की घाटी में अपना अभियान प्रारम्भ किया था। इस अभियान के उपरान्त ही दक्षिण दिशा की ओर वह उभर आया था। ५० ई० के लगभग दक्षिण में उभरकर अभियान समाप्त हुआ था।

श्री डब्रल (Dubreuil) हृदय का विचार है कि समुद्रगुप्त की दक्षिणी दिग्विजय उसके शासन के प्रारम्भिक वर्षों में घटित हुई थी। उनका गणनातमर समुद्र गुप्त ने दक्षिण का अपना अभियान ४६० या ३४० ई० में प्रारम्भ किया था।

इलाहाबाद मन्त्रम अभिलेख में समुद्रगुप्त का विभिन्न विजयों जिन् क्रम से वर्णित हैं। उसी क्रम से समुद्रगुप्त ने भारत या उत्तर भारत पर विजय प्राप्त की होगी— यह एक विवादग्रस्त समस्या है। किन्तु इतना तो हम कह सकते हैं कि हरिष्य ने इन विजय वर्णना में शतप्रतिशत कालक्रमानुसार का ध्यान नहीं रखा होगा। प्रशस्ति कार का मुख्य ध्येय नरेश का गुणगान एवं आदर वर्द्धन होता है। शतप्रतिशत दृष्टि-हास का वर्णन नहीं। अतएव विद्वाना ने यह मानना अधिक युक्तिमयत्त समझा है कि स्तम्भ का विभिन्न घटनाओं का क्रम वस्तुतः कालक्रमानुसार नहीं निर्धारित किया है।

श्री जे० डब्रल (Dubreuil) ने अपने एक विशिष्ट मत का प्रतिपादन किया है। अपनी पुस्तक के अनुसार समुद्रगुप्त के भाई काञ्ची के परे रहा गया। उसे प्रचलित मत का गण्डन करते हुए लिखा है कि कोयम्बटूर (Coimbatore) तथा मालावार जिन् (मन्ग प्रमीडसा) महाराष्ट्र तथा गानेश समुद्रगुप्त ने कभी गते नहीं थे। जिन विद्वाना ने इस मत का प्रतिपादन किया है उसका एकमात्र कारण है उनकी कुछ भौगोलिक नामों की गलतफहमी और कुछ नहीं। उद्दान नामों की समरूपता देखकर दो नामों में एकात्मकता स्थापित करेना है। यही वास्तविक युक्ति है। श्री डब्रल मन्त्रम ने अपने इसी मत का मजबूती पर गंगा के लिए एक उपकरण का भी निर्माण किया है। उद्दान कहा है कि समस्त नरेशों के साथ न मिलकर समुद्र गुप्त का सामना किया था। यह नरेश गाणवरा तथा कृष्णा के मुद्दाना के समूह शामिल करते थे। इन नरेशों में मन्त्रम शक्तिगानी था विष्णुगाण। दूसरे नरेश थे नीरराज हस्तिवमन, उग्रसेन तथा कुबेर। विष्णुगाण के तीन नरेशों ने समुद्रगुप्त के द्रुतगति से बढ़ते हुए पराजित हुए थे और यही नहीं उसका सन्तानों को भी पीछे हटाने दिया गया था। इस स्थान पर हार खान के बाद समुद्रगुप्त ने उद्दाना के तट पर की गई

## द्व—गणराज्य

उत्तरी एव पूर्वी सीमा के राया को विजित करने के पश्चात् समग्रण्य पश्चिम की ओर मगध की ओर उगन वहाँ के गणराज्य का अन्त किया। मगधवन इसी समय में भारत में मगध शासन का अन्त हुआ। समद्रगप्त ने इनको अपने अधीन शासन करने की आज्ञा दे ली और ये गणराज्य उस कर देते रहे। इनके नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

(१) मालव	(४) मगध	(७) मगधवासी
(२) अजनायन	(५) आसीर	(८) काक तथा
(३) योधेय	(६) प्राजत	(९) यपरिक।

नीचे इनका समीकरण प्रस्तुत किया जायगा।

(१) मालव—सिन्धु नदी के भारतीय आक्रमण के समय में पश्चिम में पश्चिम हुए हमने इनके विषय में ज्ञान प्राप्त किया था। ये अपनी वीरता के लिये प्रसिद्ध थे। उस समय यह जाति उत्तर पश्चिमी सीमा पर निवास करती थी किन्तु कालान्तर में इन्होंने राजपूताना को अपना निवासस्थान बनाया जहाँ शक शासक नृपान के आमाता उपस्थान में इनका युद्ध हुआ था। इनके नाम पर ही उस स्थान (अवन्ति) का नाम मानवा पत्त। इनका सम्बन्ध विजय मगध से भी बताया गया है और इसीलिये विक्रम मगध को कभी कभी मानवसवत भी कहते हैं।<sup>१</sup> समग्रण्य के शासन काल में इस जाति का आधिपत्य मध्यभारत में था। तीसरी शती ईस्वी की बहुत सी मगधों जयपुर राज्य के नागर नामक स्थान में मिली हैं जिन पर जय मालवगणस्य जय उत्कीर्ण है।<sup>२</sup>

(२) अजनायन—बृहत्संहिता में योधेय के साथ इस जाति का उल्लेख किया गया है और प्रशस्ति में इन्होंने मालव एव योधेय के मध्य में। इस आधार पर इतिहासकारों ने यह अनुमान किया है कि इनका निवास स्थान मध्यभारत में मालवों तथा योधेयों के निवासस्थान (पूर्वी पंजाब) के मध्य में बनी रहा होगा। इनकी मगधों भरतपुर एव अलवर राज्य में मिली हैं जिन पर अजनायनाना जय उत्कीर्ण है।<sup>३</sup>

(३) योधेय—पाणिना के समय में भी इस जाति का अस्तित्व बना रहा और उसने इन्हें आयुधजीवी बताया है।<sup>४</sup> महाशत्रुप रुद्रदामन द्वारा ई. स. १५० में क्षत्रियों में वार की उपाधि धारण करनेवाले योधेयों के पराजित किये जाने का उल्लेख मित्रता है।<sup>५</sup> भरतपुर रियासत में वपाना के निकट विजयगढ़ से प्राप्त एक लाल में योधेयों का नाम दिया है जिसमें उनके 'मगधराज मगधसेनापति उपाधि धारण करने वाले अधिपति का उल्लेख है।<sup>६</sup> ऐसा अनुमान किया जाता है कि पंजाब की बगवतपुर रियासत की मालिया नामक जाति योधेयों की आधुनिक वंशधर है तथा योधेयों के नाम पर ही उस प्रदेश का योधियावार नाम पड़ा है। योधेयों का मगधों प्राप्त <sup>७</sup> है जिन पर योधेयाना गणस्य जय अथवा मगधों स्वामिन ब्रह्मण योधेयदत्तस्य उत्कीर्ण है।<sup>८</sup>

<sup>१</sup> मालवाना गणस्थिता याते शतसप्तत्य ग० लख न० १८

<sup>२</sup> J I S 38 ~ p 883

<sup>३</sup> इ० ए० क० पृष्ठ १६१।

<sup>४</sup> अष्टाध्यायी २५।३।११४।

<sup>५</sup> सवधप्रविष्टतयोरगदजातोत्सेकाविधयानां योधेयानां (इ० ए० भा० ८९८४७)

<sup>६</sup> C I I भाग ३ न० ५८, पृष्ठ २५१-५२।

<sup>७</sup> Coins of Ancient India Plate C

(४) मद्रक—इनका नाम गणना पाणिनी ने अष्टाध्यायी में आयुजोविषा व साय की है।<sup>१</sup> ये प्राचीन काल में उत्तर पश्चिम में निवास करते थे। इनमें तथा गर्वी के मध्य का भाग मद्रक व नाम से विख्यात था।<sup>२</sup>

(५) आभीर—सिकन्दर के आक्रमण के समय भी इनकी आस्था बनी रही जिसका विवरण दिया जा चुका है। यूनानी इन्हें शूद्र (Sodrai) कहते थे। पतञ्जलि के महाभाष्य में भी इस ज्ञानि का उल्लेख किया गया है।<sup>३</sup> इनकी दो शाखाएँ थीं जिनमें प्रथम शाखा पञ्जाब तथा दूसरी मध्यभारत में निवास करती थी। दूसरी शाखा की संज्ञा इनका शक्ति काफा वत् गयी। गुण्टा का प्रशस्ति में पात होता है कि आभीरों का सेनापति चन्द्रमन था। इसने पश्चिमी भारत के शासक शक महासत्रप की पराजित किया और स्वयं शासक बन बैठा। झाँसी तथा मिनमा के मध्य भाग को आदिवासी इसी जिनें कहते हैं कि यहाँ आभीर जाति रहती थी।<sup>४</sup> यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि समुद्रगुप्त ने जमाग की दोनों शाखाओं को अपने अधीन कर लिया था।

(६) प्राजुन—इस जाति का निवासस्थान का कोई निश्चित समाचरण नहीं हो सका है। इतना अवश्य है कि ये भी मध्य भारत में कहीं बसे थे और अधिक सम्भावना है कि नरसिंहपुर अथवा नरसिंह गढ़ का इलाका इनका निवासस्थान था।

(७) सनकानीक—चन्द्रगुप्त द्वितीय के उद्योगिरि के उद्योग में सनकानीक मन्त्र राजा का उल्लेख प्राप्त होता है जिसमें यह बताया गया है कि सनकानीक ग्रामक गुप्ता का प्रधान था।<sup>५</sup> इनका निवासस्थान मिनमा के निकट कहीं था।

(८) काक—ये सनकानिका का पाली थे। मन्त्रभारत में इनका उल्लेख किया गया है।<sup>६</sup> यम्बई गजटियर में काक की समता विठुर के निकट काकपुर से भी गई है। समय महात्मा के अनुसार माँची का निकटवर्ती प्रदेश काकना ही काक है।

जायसवाल ने मिलसा न घास मौल उत्तर काकपुर नामक स्थान में काक का निवास-स्थान बताया है।<sup>७</sup> काका के निवास के कारण ही इस स्थान का नाम काकपुर पड़ा होगा।

(९) खपरिक—मण्डारकर महोदय के मतानुसार ये मध्यप्रात का दमोह जिले में बसे थे।<sup>८</sup> रतिहगढ़ का एक खण्ड में खपर जाति का उल्लेख मिलता है। यही आधार पर मण्डारकर ने प्रयाग प्रशस्ति के खपरिक को खतिगु का खपर बताया है।

उपरोक्त समस्त गणराज्य मध्य प्रात तथा मध्य भारत के प्रजासमूह में थे और समुद्रगुप्त ने इन्हें अपनी अज्ञानता स्वाकार करने को बाध्य किया।

<sup>१</sup> मद्रवज्ययो वन ।

<sup>२</sup> R & Surtley Report Pt 2 p 14

<sup>३</sup> महाभाष्य १।२।३

<sup>४</sup> J B U R S 1897 p 81

<sup>५</sup> प्लोट न० ३।

<sup>६</sup> महाभारत ६।९।६४ ॥

<sup>७</sup> J B U R S p 29

<sup>८</sup> मण्डारकर, I H Q 1902 8

<sup>९</sup> Epigraphica Indica p 12 40

है। समुद्रगुप्त के वंशधरा के अभिनेता में इस यण के निय चिरात्सन्नायवमघाहृतु लिखा है जिसका अभिप्राय यह सूचित करता है कि चापवान तक उपस्थित जबस्वामि म प । रहन के पश्चात् समुद्रगुप्त ने इस यण का पुनर्थापन किया था। परन्तु इसमें साध अतिरजना है क्योंकि हम विदित हैं कि भारशिव नागा तथा प्रवरसन प्रथम वायाटके में समुद्रगुप्त से कोई बहुत समय पूर्व जन्ममध नहीं किया था।<sup>१</sup>

समुद्रगुप्त का मूल्यांकन

समुद्रगुप्त की विजया की इस लम्बी तालिका से उसका सामरिक गुणा का अनुमान माना जा सकता है और यह अनुमान सत्य के काफी निकट तक पहुँचता है। इसका दिग्बिजय के आधार पर हा कुछ इतिहासकारों ने इसका तुलना नपासियन से का है जिसके सम्बन्ध में केवल इतना कह देना पयाप्त है कि यह तुलना निराधार है। वहाँ एक साधारण सिपाही और वहाँ राजकुमार। इन दोनों की विजया में भी अन्तर है। नपासियन का युद्ध प्रमुख शक्तियों से हुआ था जब कि समुद्रगुप्त का उन शक्तियों का सामना करना पड़ा था जिनका भारतीय इतिहास में का बहुत बड़ा सामरिक महत्व नहीं था। कभी पराजित न होनेवाली विजयता का यहाँ आशिक जन्म ही जाता है।

समुद्रगुप्त के चरित्र का मूल्यांकन भी अतिरजनात्मक है। इसका मूल कारण यह है कि चरित्र निरूपण का मूलाधार प्रयाग प्रशस्ति है। काय में राजनीतिक घटनाओं का उल्लेख तो बहुधा कुछ समझ कर किया जाता है क्योंकि उसमें सत्यासत्य के स्पष्टीकरण का कुछ भय बना रहता है किन्तु जब कवि अपने स्वामी या नायक का चरित्र चित्रण करने लगता है तो वह समस्त गुणा का उसी में केन्द्रित कर देना चाहता है।<sup>२</sup> ठीक यही दशा हरिषण की है। उसने समुद्रगुप्त में समस्त गुणा का पूजाभूत कर दिया है—

यस्य प्रणानुषगाचितसुखमनसः शास्त्र तत्त्वाधमत्तु (जिसका मन विद्वानों के सत्संगमुख का व्यसनी था जो शास्त्र के तत्त्वाय का समझन करने वाला था) स्फुट-बह्विधाकीतिराय भुनक्ति (बहुतेरी स्फुट कविता से कातिराय का भोग कर रहा है) धमप्राचीरवध शशिकरणचय कोनय सप्रताना—बहुप्य तत्त्वमदि प्रथम— तीर्थम् (धम के बाँध हुए परकाट के सदृश जिसकी कीर्ति चन्द्रमा की किरणों की भाँति निमल और चारों ओर छिटा रहती थी जिसकी विद्वत्ता शास्त्र तक का पहुँच जाती थी) अध्येय सूक्तमाग कविमतिविमवात्सारण चापि काय (जिसने सूक्तों का भाग अपना ध्येय बना लिया और उसकी ऐसी कविता की जो कवियों के मति के विभव का उत्सारण करती थी) साध्वसाधुदयप्रलयहतुपुरुषस्याचि त्स्य भक्त्यवनतिमानभाह्य मनुहृदयस्यानुकम्पावता नेक गोशतसहस्रप्रदायिन कृपणदानानाथ आतुरजनाद्धरणमात्र दीक्षाद्युपगतमनस समिद्धस्य विग्रहवता लोकानुग्रहस्य धनद वरुणद्रातवसमस्य (जिसका मन कृपणों को, अनाथ आतुर जनों के उद्धार और दाक्षा आदि में लगा रहता था जो लोक के अनुग्रह तथा साक्षात् जावल्गमान् स्वरूप था जो कुबेर वरुण

<sup>१</sup> देखिए *Annals of the Bhandarkar Institute* 1 II 11 p 164 G. तथा डा० एल० के० एयंगर *Studies in Gupta History* pp 44 45

<sup>२</sup> हरिषण के शब्दों में ही कोन स्याद्यो स्य न स्याद गुणमति (एसा कौन था जो उसमें न था—)



का। ऐम विजना का राजतानि म अमुरविज्या का उपाधि प्रदान की जाता था।  
आयसवाल राजा का सूचा प्रयागप्रशास्त्र म इस प्रकार का गइ है—

(१) रुद्रदेव	(६) नागसन
(२) मतिन	(७) अच्युत
(३) नागसत्त	(८) नन्दि
(४) चन्द्रवमन	(९) बलवमा
(१) गणपति नाग	

उत्तराखत राज्यों क अतिरिक्त समुद्रगुप्त न अन्य राज्यों का ना पराजित किया  
हारा जना। क आदि अनेक आयावतराज क प्रयाग स परिलक्षित होता है। य समुद्र-  
गुप्त क समापवर्ती राज्य य, अत यह बहुत सम्भव है कि समुद्रगुप्त न पहले इन पर  
हा जावमण किया हा। यहा रप्सन महादय क इस मत का उल्लेख कर दना आवश्यक  
है कि उनक विचार स य नी राजा विष्णुपुराण क नव नाग नरश है। इन नागवशी  
नरशा न एक सम्मिलित राज्य का स्थापना का था जिस उमूलित करके समुद्रगुप्त  
न अपन राज्य म मिला लिया था।<sup>१</sup> किन्तु इसक समयन म काइ विशेष महत्वपूर्ण  
प्रमाण नहीं प्राप्य है। सम्भवत य भिन्न भिन्न स्थानों क शासक थ। इनक सम्भव  
म अब तक जा कुछ तथ्या का बाध हा सका है उनका विद्वरण नाच किया जायगा।

(१) रुद्रदेव—जायसवाल तथा दाहित महादय रुद्रदेव का सम्भव वाकाटक  
वश का स्थापक करत है। व रुद्रदेव तथा वाकाटक-नरश रुद्रसन प्रथम का एक मानत  
है।<sup>२</sup> किन्तु प्रयाग प्रशास्त्र म रुद्रदेव का गणना आयावत के शासक म का गई है  
पर वाकाटक-नरश रु सन प्रथम दािणापथ का शासक था।<sup>३</sup>

(२) मतिल—इनक सम्भव म अना काइ विशेष माय मत निर्दिष्ट नहीं  
सका है। कुछ इतिहासकार इस बुलन्शहर क निकट का शासक स्वाकार करत  
जहा इसक नाम का एक मुहर प्राप्त हुई है। एतन महादय न गुप्त वामन का भूमिका  
। मुहर क मटिल तथा उक्त मतिल का दा भिन्न राजा स्वाकार किया है, क्याकि  
मुहर म नाम क साथ उपाधि नहा उल्लेख है। जायसवाल महादय मतिल का अन्तर  
वदा का शासक नागवशाय नरश मानत है।<sup>४</sup>

(३) नागदत्त—मयुरा क निकट बहुत-सी मुद्रायें प्राप्त हुई हैं जिन पर उत्तार्ण  
नाम क अन्त म दत्त शब्द आता है। इस आधार पर कुछ विद्वानों न नागदत्त का  
ना मयुरा क निकटवर्ती भाग का शासक बताया है। जायसवाल महोदय न इसका  
नागवशाय शासक (ई० स० ३२८-४८८) बताया है।

(४) चन्द्रवमन्—बाँकुश (पूर्वी बंगाल) म सुसुनिर्मा पर्वत पर एक सिलालक्ष  
प्राप्त हुआ है। जिस पर चन्द्रवमन् का नाम उल्लेख है। जिसक आधार पर इस पुष्करण  
तिलक स्वान का शासक हान का अनुमान किया गया है।<sup>५</sup> डा० हरप्रसाद शास्त्री  
पुष्करण और मारवाड स्थित पाकरण का एक मानत है और चन्द्रवमन् का मारवाड

<sup>१</sup> *Journal of Royal Asiatic Society* (1907) p 241

<sup>२</sup> जायसवाल *History of India* (1903-04) 1 77

<sup>३</sup> *Indian Historical Quarterly* 1 p 200

<sup>४</sup> जायसवाल *History of India* (1903-04) p 36

<sup>५</sup> *Epigraphica India* Vol 10

स्तम्भ पर उत्कीर्ण है जिग पर महामानव अशोक के शान्ति मन्त्रेण गुदे हुए हैं। प्रशस्ति का रचयिता हरिषेण समुद्रगुप्त का सनानायक तथा गण-विघ्नहृत्क मना नायक था। अतः सेनानायक द्वारा विजयो का त्रिवरण सत्य के निवृत्त योग्य ऐसा मभी स्वीकार करते हैं का-यात्मकता इसमें मल ही कुछ अत्यविन का समावेश कर सकती है। पत्नी महोत्सव ने सम्राट के यश सम्बन्धी विषय गये विदेशपतिभवनान्तर्गतललितसुखविचरणम वाक्याश के आधार पर यह अनुमान लगाया है कि प्रयाग प्रशस्ति का निर्माण समुद्र गुप्त की मृत्यु के पश्चात् उनके पुत्र द्वारा किया गया। इस मत के समर्थन में कुछ विद्वान् समुद्रगुप्त द्वारा आयोजित अश्वमेध को भी उते है क्योंकि उक्त यज्ञ का उल्लेख इस प्रशस्ति में नहीं है। इस आधार पर कुछ विद्वानों का यह मत है कि प्रयाग प्रशस्ति की रचना समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् हुई किन्तु इससे यह भी निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि समुद्रगुप्त की विजय के पश्चात् तथा अश्वमेध के पूर्व प्रयाग प्रशस्ति का रचना हुई थी। इसमें विजित राजाओं की नामावली दक्षिणापथ के राजाओं में प्रारम्भ होती है किन्तु इसका यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि समुद्रगुप्त ने अपनी विजय यात्रा दक्षिण से प्रारम्भ की थी। दृश्यरिच मन्त्रोत्सव का यह मत है कि विजय यात्रा का वणत का न तम के अनुसार किया गया है।<sup>१</sup> जायसवान महोदय ने कौमुद्या महोत्सव के आधार पर यह मत निर्धारित किया है कि चन्द्रगुप्त प्रथम (चण्डसेन) ने पाटलिपुत्र से हारकर अयोध्या में शरण ली थी और यही से समुद्रगुप्त ने अपनी विजय-यात्रा आरम्भ की थी।<sup>२</sup> प्रयाग प्रशस्ति में विजया की तिथि का निर्देशन नहीं किया गया है। विजया का क्षवत परिगणन किया गया है उसमें पारस्परिक क्रम का उल्लेख भी नहीं किया गया है। इन विजयों का विविध माश्रायें हैं जिनके अनुसार समुद्रगुप्त का विजया को निम्नलिखित छ भागों में विभक्त कर सकते हैं —

क—उत्कूलित राय जिसका समुद्रगुप्त ने असुर विजया नपति की मांति सर्वथ नाश (उत्प्लाय तरसा) कर दिया

ख—जाटविक राज्य जिनके अतिपत्निया का उमन अपना सबक बनाना को बाध्य किया

ग—दक्षिणापथ के राय जिनके अधिकारियों को उसने धर्म विजयी नपति को मांति पराजित करके श्री विन्निता कर दिया किन्तु उनके राज्य को पुन उन्हीं नीति किया

घ—प्रयत्न राय

ङ—गण राय जिन्होंने हतप्रभ होकर स्वयं आत्मसमर्पण कर दिया था और

च—भारतीय सीमा पर स्थित तथा कुछ विदेशी राज्य जिन्होंने समुद्रगुप्त के प्रति आत्म निवेदन किया।

नाचे स्तंभ पर पद्य-जयक प्रकाशाडाना जायगा।

क—उत्कूलित राज्य (आर्यावत विजय)

विध्य तथा हिमानय कर्वाच की ममि का प्राचीन नाम आर्यावत था।<sup>३</sup> समुद्रगुप्त ने समस्त उत्तरी भारत के राजाओं का पराजित करके एकछत्र राय की स्थापना

<sup>१</sup> *Ancient History of Decan* p 32

<sup>२</sup> जायसवाल, *History of India* (1030) p 10-40

<sup>३</sup> अथर्व आर्यावत्तज प्रसभोद्धरणोदयतप्रभादसमहृत । पल्लिट-गुप्त ले० सरया १

इंद्र आर यम क समान था) निशितविदग्धमतिषा उबलालन ब्रौटि विदशाधिपति गुप्तमुद्रानारदा (जिसन अपना ताण आर विदग्ध बुद्धि आर संगीतयत्ता क गान आर प्रयोग स इंद्र क गुरु कायप तुम्बुरु नारद आदि का लज्जित किया था) विद्वज्जनापजिन्वन्वकाव्य श्रयाभि प्रतिष्ठितकविराजशस्य' (जिसन विद्वाना का जाकिना दन याश्रजनककाय इतिपास अपना कविराज प प्रतिष्ठित किया था) एम। हर्षियण का समुद्रगुप्त ह।

उपराजित काव्याचित अतिराजित शला म हरियण न समुद्रगुप्त का जो चरित्रचित्रण किया है इसा आधार पर बहुधा विज्ञाना न भा समुद्रगुप्त का मूलवाकन किया है। समुद्रगुप्त का युद्धनीति का प्रशंसा कुछ इतिहासकारा न मुक्त कठ सं का है। वह समा विजित राया का अपन साम्राज्य म न मिलाकर अधिकांश का मुक्त कर दता था आर उनस कर लता था जसा कि बताया जा चुका है किन्तु इसम उदारता आर कृपाति का क्या अनुपात था यह कहना कठिन है।

किन्तु हरियण का अतिरञ्जना भा निरावार नहा हा सक्ता—समुद्रगुप्त म क गुण विसा न विसा मात्रा म विद्यमान रह हाण जिनस कवि का अत्युक्ति का प्ररणा मिला हागा।

तिथि निष्पत्ति—समुद्रगुप्त का तिथि का वाक करान क सायन सीमित है। उसक स य क प्रयाग एरण तथा गया क शिलालस प्राप्त हुए हैं। इन ताना शिलालसा म स कवल गया का प्रशस्ति म तिथि का उल्लस है जा गुप्त सयन क नवें वष का है आर इसका सन् (३१९-१९) ३२८ वष म पता है। किन्तु इस तिथि का मानन म समा इतिहासकार सहमत नहा। डा० राय चौधरा तिथि पाठ पर तथा डा० फ्लीट स्वय गया प्रशस्ति का प्रामाणिकता पर विस्वास नहा करत। डा० स्मिथ न यह तिथि ११०-३७५ क वाक निर्धारित का है। नालदा तथा गया क तियिकुक्त दानपत्र गुप्त सयन क अनुमानत क्रमश पाँचवें आर नवें वष अकिन हुए थ। इस आधार पर समुद्रगुप्त क शासन-काल का प्रारम्भ ३२४-२५ ई० म माना जा सकता है। चंद्रगुप्त द्वितीय का सम्भवत प्रारम्भिक प्रशस्ति मयुराको प्रशस्ति है जिसका तिथि गुप्त सयन क ६१वें वष का है। अत समुद्रगुप्त क शासन-काल का समाप्ति (३१९-६१) = ३८० ई० तक अवश्य हा गई हागा। विद्वाना न ३७५ ई० तक समुद्रगुप्त का शासन काल बताया है। शासन-काल का प्रारम्भ इसा आवार पर ३३० ई० म बताया जाता है।

### समुद्रगुप्त की मुद्राएँ

समुद्रगुप्त न लगभग आठ प्रकार का स्वण मुद्रा का निमाण करवाया था। इसका मुद्रा का प्रारम्भिक उदाहरण पर ता कुपाणशला का प्रभाव दृष्टिगत हाता है पर आग चल कर विगुद्ध भारतीय शला पर मुद्रा का निर्माण करवाया जान लगा। समुद्रगुप्त की अधिकांश मुद्राएँ ध्वज शला का हैं। इसक अतिरिक्त धनुर्धारि शला, परशु शला, काच शला, व्याघ्र शला, घोषावादन शला अस्वमेष शला आदि विभिन्न शालया की मुद्रा का भी निमाण करवाया गया था।

१ राय चौधरी, *Political History of Ancient India* (1 Edition)

## परिचिष्ट

## रामगुप्त समस्या

वर्ष ५० वर्ष पूर्व किया भा इतिहासकार राजा मा पता नया य नि रामगुप्त नाम का एक महान गुप्त सम्राट न भा भारतवर्ष पर राज्य किया था। गुप्तवंश की वशावतिया राजा नय मृद कर माना जाता की औपे तय मना जब दनाय गुप्तम नाम का एक नाटक एकाएक उनका सम्मुख आया। इस नाटक का रचयिता विशाखदत्त है। यद्यपि यह नाटक मूल रूप में उपलब्ध नहीं होता है परन्तु इसका उद्धरण हम विभिन्न स्थानों पर प्राप्त हात है। समुद्रगुप्त का बाद चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने सिंहासन ग्रहण किया था। यह तत्कालीन इतिहासकारों का दृढ़ धारणा था। परन्तु जब तयारचित दत्तारणा पूणतया यवित अगगत प्रतात हाता है। इस प्रकार राम गुप्त रामस्या हमार सम्मुख उपस्थित हुए।

विशाखदत्त की रचना का ऐतिहासिकता एवं प्रामाणिकता का विषय में मतभेद पाया जाता है। कुछ इतिहासकारों ने तो इस रचनाकार का सजनात्मक प्रतिभा बंद बन्दकार माना है। वे इस एक कपावत्पित कथा मानते हैं। उनका अनुसार एक नाटक में स ऐतिहासिक तथ्य डालना पूर्ण मूलता है। परन्तु इन इतिहासकारों की दलाने नक है। दवीचन्द्र गुप्तम का ऐतिहासिकता का विषय में विभिन्न प्रमाण प्राप्त हुए हैं उनका उल्लेख हम निम्नलिखित करेंगे।

देवीचन्द्रगुप्तम की ऐतिहासिकता—हमचन्द्र के प्रमुख शिष्य रामचन्द्र एवं गणचन्द्र की प्रसिद्ध पुस्तक नाट्य दण्ड में इस नाटक के प्रथम छह अंश आए हैं। हमचन्द्र कुमारपाल (११४२-११७३ ई०) का समकालीन था। कुमारपाल अहिलपातक का बालवयवश का नरेश था।

राजा भाज ने भा जपन शृंगाररूपाक में इस पुस्तक से उद्धरण दिए हैं। भाज एक महान राजनीतिज्ञ था। उसने निश्चयत ही ऐतिहासिक नथ्या को उद्वेत किया था।

सजने प्लटा का प्रमाण यह सिद्ध करता है कि रामगुप्त द्वितीय ने अपन प्राता का हत्या की थी। उसका सिंहासन को बनात छोना था जोर उसकी पत्नीसे विवाह किया था। संस्कृत का मन श्लोक इस प्रकार है—

हत्या भ्रातरमव राज्य हरदेवी च दीनस्तत

विशाखदत्त ने अपन नाटक में इसी घटना को विस्तृत कर माहित्यकार की तूलिका से लिखा है। इस प्रकार घटना की यथाथता एवं मत्थता का प्रमाण हम उपयुक्त नाक से नय जाना है। दवीचन्द्रगुप्तम की ऐतिहासिकता का प्रमावकारी वन उदाहरण है।

बाणभद्र ने ह्यचरित में यह अंकित किया है कि पराई स्त्री को चाहने यागे शकपति को चन्द्रगुप्त ने स्त्री वेषधारण कर मार डाला। मूल वचन इस प्रकार है—

परचनप्रकामुक कामिनी वेपगुप्त चन्द्रगुप्त शकपतिमासतयत ।  
सगती तथा कम्बे प्लटों न भी एमा घटना क माय साहमाक नाम क नरेश का  
सयाजित किया है। साहमाक का वस्तुन चन्द्रगुप्त का अनवात् समयना चाहिये।  
इस प्रकार यह प्लटों ना घटना का प्रामाणिकता का वाय करता हैं।  
राजावर (९०० ई०) न अपना काव्यमामाना न एक पद्य कुमारगुप्त प्रथम  
का सम्पाधित करक निवा हुआ है। एम पद्य का जयजा अनुवाद एम प्रकार है—

The praises (of Chandragupta) are sung by women of  
Khatikya Nagar just on that Himalaya from where Sarma (Pama?)  
Gupta was forced to retreat after giving over his queen to  
the king of Khasas (Shakas)

इस पद्य क शमगुप्त का रामगुप्त मानवर एव एम को शक मानवर इतिहास-कार  
न इस पद्य की भी त्रिा चन्द्रगुप्तम की घटना का मत्यना का प्रमाण अगाकार किया है।  
देवीचन्द्रगुप्तम नाटक का चन्द्रगुप्त चन्द्रगुप्त प्रथम का निश्चित करना है।  
द्वितीय को—दूसरे लिए इतिहासकारों ने चन्द्रगुप्त की महारानी प्रकृतेवी का उपस्थित  
किया है। प्रकृतेवी चन्द्रगुप्त नियाय का स्था था अतएव नाटक का नरेश चन्द्रगुप्त  
द्वितीय है। इसी ने रामगुप्त को विनवा से विवाह कर उस अपनी सभानी बनाया था।  
विशासदत्त भी चन्द्रगुप्त त्रितीय क दरवार का नाटककार था समकालीन माना  
जाता है। हिल्लब्राण्ट (Hille Brandt) टाना (Tawne) वि० स्मिथ (Smith)  
तथा कामा प्रसाद प्रार्यववाल (K P Jaysawal) न अपन उत्तों स विशासदत्त का  
महान गप्त सभ्या का समकालीन सिद्ध कर लिया है। इन प्रकार यह नाटककार  
अनिवाय रूप स अपन काल म घटी इस महत्वपूर्ण घटना का प्रक था और उसी न  
घटना को अमर रूप देने क लिए अपने शायक घटना का प्रक था और उसी न  
। इस प्रकार इन प्रमाणों क आधार पर देवाचन्द्रगुप्तम् नाटक की घटना का ऐति  
हासिकता सिद्ध हो जाती है। अब हम सक्षम स इस घटना का उल्लेख करेंगे।

देवीचन्द्रगुप्तम् की कथा—समगुप्त का मत्यु क उपरांत रामगुप्त महामनाह्व  
आ। रामगुप्त की पत्नी का नाम प्रुवदेवा था। शक नरेश न एक बार युद्ध क सिल  
न में रामगुप्त की सैनिका की वी बुरी तरह से घेर लिया। शक नरेश ने जब देवा  
कि अब विजय पूर्णतया निश्चित है और मरण का साम्राज्य उमा के कर्मा को चुमन  
वाला है तो उनने रामगुप्त के सम्मुख विचित्र धर्म एमा। रामगुप्त ने अपनी दयनीय  
स्विति को देखते हुए अपना महारानी को शकनरेश क पास भेचना स्वीकार कर लिया।  
उसक छाह भाई चन्द्रगुप्त ने इस अक्षममानजनक काय क विरुद्ध विराय प्रदर्शित किया  
और छत्रदेवी क वश म शकाधिपति क कम्प म जान क लिए अपन को प्रस्तुत किया।  
इस छल स वह शत्रु को मारना चाहता था। चन्द्रगुप्त का धयन सफल हुआ।  
चन्द्रगुप्त स साम्राज्य और उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा की। इस घटना न चन्द्रगुप्त का  
जनता की दृष्टि म चढ़ा लिया। महारानी प्रकृतेवा न चन्द्रगुप्त क लिए अपने हृदय म  
स्थान बनाया। रामगुप्त की प्रसिद्धि एव चरित्र न अत्यधिक भाषण आधारित था।  
यही म शाना माहया म सतपद होना प्रारम्भ हुआ। चन्द्रगुप्त का मह कर रहन सगा  
कि कही। समका ज्यष्ठ भाता जयका हत्या न करवा द। अतएव उसने पागलपन का  
स्वीय रचाया। अन्त म चन्द्रगुप्त न रामगुप्त का निमा प्रसार हत्या कर दा और स्वय  
विशासन पर आरुढ़ हुआ। विद्यासनाराहण उपरान उसने प्रकृतेवी क साथ विवाह किया।

यह था घटना जिसका ज्ञान आधुनिक शताब्दी का देन है। इस घटना का निर्माण म. विमानत विद्वानों ने ही धारणा, उद्योग एवं प्रातमा का प्रयोग किया है। इस प्रकार गुप्तवंश का पूणतया अज्ञात अ माय हमारे साम्मुख सुत गया है।

कुछ आपत्तियाँ—भारतवर्ष में ऐतिहासिक सामग्रियों के अभाव का कारण हम प्रत्यक्ष समस्या में भ्रम में। एवं आपत्तियों का सामना करना पड़ता है। रामगुप्त का नाम नहीं अवस्था है। हमने अपूर्वक प्रमाण जो उल्लिखित किए हैं वे इस नही हैं कि उनमें आपत्तियाँ उपस्थित न की जा सकें।

राजशेखर ने अपनी काव्यमीमांसा में जिस रामगुप्त का निर्देश किया है उसे इतिहासकारों ने रामगुप्त माना है। उनका इस एकरूपता स्थापित करने के पाछे केवल एक ही तर्क है—वह यह कि रामगुप्त एवं रामगुप्त दोनों की पत्नियाँ का नाम ध्रुवस्वामिनी था। लेकिन केवल पत्नी के नामों में समरूपता होने से यह आवश्यक नहीं है कि वे केवल एक ही नरेश की पत्नी हों। खसों नाम का राजा का इस पक्ष में उल्लेख है। इसे विद्वानों ने शक स्वीकार किया है। इसका लिए विद्वानों का कहना है कि क्योंकि साहित्यकार एक रामायणिक पृष्ठभूमि एवं काव्यगत विराधाभास का विकास करना चाहता था अतएव उसने इतिहास में पाड़ी सी स्वतंत्रता की प्रवृत्ति ग्रहण का है। लेकिन काशी प्रसाद जायसवाल ने इस दलाल का खण्डन करत हुए लिखा है—

It is unlikely that with a desire of having a romantic background and developing a poetic contrast he may have permitted himself a little liberty with history by changing the name Saka into Khasa

हम यह भी मचीमांति जानते हैं कि रामगुप्त के दिना में खसों में इतनी शक्ति नहीं थी कि गुप्त सम्राट को परास्त एवं पददलित कर सकें। इतिहासकार स्तम्भ लेख (A. D. ) में खसों का वही निर्देश तक नहीं आता। काशी प्रसाद जायसवाल ने खसों की स्थिति का निश्चित करत हुए बताया है कि इन लोगों ने कत पुर तथा नेपाल पर अपना आधिपत्य जमाया हुआ था। यह दोनों राज्य समुद्रगुप्त का सीमांत सामंतीय राज्य थे। इन दोनों में से किसी को भी खसाधिपति की सजा नहीं दी गई है। अतएव जायसवाल महादय ने यह कहा है कि यह उचित नहीं प्रतीत होता कि एक ही पांडों का अन्तगत खस लोग इतने शक्तिशाली हो गए कि वे गुप्त साम्राज्य को एक अधुमानजनक सौ व के लिए विवश करें। उही के शब्दों में—

It is therefore unlikely that within one generation the khasas would have become so powerful as to dictate a humiliating peace to the Gupta empire

अतएव उन्होंने माना है कि खस शब्द वस्तुतः शक के स्थान पर गलती से लिखा गया है। इस प्रकार यह आपत्ति का भी समाधान हो जाता है।

किसी भी गुप्त अभिलेख में जिसमें कोई राजकीय है वशावली में रामगुप्त का नाम नहीं लिखा है। अतएव विराधी इतिहासकारों ने इसी से रामगुप्त का ऐतिहासिकता मानने से इन्कार कर दिया है। लेकिन अभिलेखों में नरेश के नाम की अनुपस्थिति नरेश की ऐतिहासिकता के विरोध में पर्याप्त प्रमाण नहीं हो सकता है। एक इतिहासकार ने हमारे मत का समर्थन भी लिखा है—

Epigraphical lists are usually generic in kind and they are often omit collateral rulers

लेखा में उसकी सूचियाँ अधिकारत वशावल्याँ होती हैं। वे किसी एक ही परिवार के सदस्यों की सूचना देती हैं। अतएव उनसे यथायथा का अपेक्षा करना दुष्कर कार्य है। राजवंशीय सूचियाँ इन अमिलेखा में वही हाता हैं और समकालान शासकों को तो अवसर यह उपक्षित करती हैं।

एरण (Eran) अमिलस से हम पाते हैं कि समुद्रगुप्त के कई पुत्र थे। रामगुप्त सम्भवतः ज्येष्ठ पुत्र था या उनमें से एक। पिता की मृत्यु के अनन्तर उसने सिंहासन संभाला होगा।

कुछ इतिहासकारों ने यह आपत्ति उठाई है कि चन्द्रगुप्त तृतीय का अपन बड़े भाई का विधवा से विवाह करना उचित नहीं प्रतीत होता अतएव वे घटना की प्रमाणिकता में सन्देह करते हैं। लेकिन यह न मानने वाली बात प्रणतया ऐतिहासिक तथ्य है। कुछ लोगों ने यह भी समावना व्यक्त की है कि चन्द्रगुप्त की पत्नी का नाम भी ध्रुवदवा हो सकता है तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय का ध्रुवदवी तथा रामगुप्त की ध्रुवदवी दापयक देवियाँ हैं। लेकिन यह तक भी कोई ज़रदार नहीं है।

इसके अलावा रामगुप्त की आरंभिक सरस्वती न घटना का यह रूप स्वीकार नहीं किया है। इन दो महानभावों के अनुसार ध्रुवदवी दुष्टनावश शक नरेश के हाथों द्वारा पकड़ी गई थी। शकनरेश ने इस अवसर का लाभ उठा उससे प्रेम प्रस्ताव किया। ध्रुवदवा ने किसी नाति इस घटना की सूचना रामगुप्त तक पहुँचा दी। रामगुप्त ने सन्तान का भय बना शकनरेश से एक साक्षात्कार किया। इसी साक्षात्कार के समय उसने शकाधिपति का बंधन करवाया।

घटना की तीव्र-भरोह कर इस प्रकार उपस्थित करना केवल कल्पना में ही यथायमाना जा सकता है। इस घटना के समय में उपयुक्त दोनों महाशयो ने कोई प्रमाण नहीं प्रस्तुत किए हैं। अतएव दिमागी उद्धान का यथाय तथ्य का रूप नहीं लिया जा सकता है।

कुछ लोगों ने रामगुप्त के सिक्कों के अभाव को भी नरेश की अनतिहासिकता का प्रमाण माना है। हम मानते हैं कि नरेश के सिक्कों की अनुपस्थिति काफी गम्भीर आपत्ति है। लेकिन यह समझना ही क्योंकि सिंहासन पर आते ही उसे शकाधिपति यह अपना मुद्राएँ न निकलना सना हो क्योंकि सिंहासन पर आते ही उसे शकाधिपति से अपनी सुरक्षा का प्रबंध करना था। इन्होंने जिन तर्कों के आधार पर यह एक रूपता स्थापित की है उसका वर्णन हमने काय समस्या के अन्तर्गत किया है।

एक इतिहासकार ने लिखा है कि यह विश्वास करना बड़ा कठिन प्रतीत होता है कि महान समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी को एक विदेशी नरेश ने इतनी बुरी तरह से परास्त किया कि वह अपनी स्त्री देने तक को विवश हो गया। अपन शत्रु का स्त्री उपहार रूप में दाना जितना निन्दनीय कार्य है उससे लिए हमारे पास साक्ष्य नहीं। और स्वयंभूत के भारत में उस नरेश द्वारा जिसकी रक्षा में समुद्रगुप्त का मृत्यु बहता था यह कार्य करना घोर अपमान एवं तिरस्कार है। अतएव यह घटना सत्य नहीं हो सकता।

It is difficult to believe that the inheritor of the mighty empire of Samudragupta could be so decisively defeated by a Saka

लेकिन जब हम मजमून-नवागीस में बणित घटना का अध्ययन करते हैं तो स्थिति की गहराई का अनुमान होता है। इसमें यह बणित है कि नरेश रवत (रामगुप्त) तथा उसका दल एक पहाड़ी दुर्ग में घेर लिया गया था। रवत (रामगुप्त) का मना शक नरेश द्वारा पूरा परास्त कर दी गई थी अब नरेश शकाधिपति की दया पर स्थिर था। अतएव ऐसा अवस्था का दायर उसने नरेश की अपमानजनक शत माना। उक्ति इस परिस्थिति में भी हम इस प्रकार के कुटुंब का परिष्कार नहीं मान सकते हैं। इस निन्दनीय काय से तो यही श्रमजनक था कि नरेश अपनी हार माने।

कुछ इतिहासकारों ने यह मत प्रस्तावित किया है क्योंकि रामगुप्त का नाम महान् गुप्त वंशावली में नहीं आता है अतएव सम्भवतः वह सम्राट न रहा हो बल्कि एक प्रान्तीय राज्यपाल रहा हो। यह तर्क निश्चित है कि गुप्तों में शाही खानदान के व्यक्ति गवर्नर नियुक्त किए जाते थे। गोविन्दगुप्त वंशाली का गवर्नर था। रामगुप्त और चन्द्रगुप्त सम्भवतः भाई या भतीज थे जोर वे बुन्दलखंड में राज्य कर रहे थे। शक नरेश ने प्रान्तीय गवर्नर रामगुप्त की पत्नी की मांग की थी न कि सम्राट रामगुप्त की। मुद्राओं का अभाव भी हमारे इस मत का अनुमोदन करता है।

लेकिन इस सिद्धान्त से हम घतमान साहित्यिक प्रमाणों के विरुद्ध जा पेंगे। इन साहित्यिक प्रमाणों में नरेश का उल्लेख है गवर्नर का नहीं। अमोघ वष की सज्जनपत्नी ने भी जनात गुप्त नरेश की आर निदेश किया है। अमोघवष की इन प्लेटों ने इस अनात नरेश का दानवीरता का भय शक्य में बणन किया है। एक राज्यपाल इतने लाख रुपये दान में व्यय नहीं कर सकता। समुद्रगुप्त एक चन्द्रगुप्त महान् सम्राटों ने कभी भी अपने गवर्नर की जो कि उनका निकट सम्बन्धी हो इस प्रकार की दयनीय परिस्थिति नहीं देख सकते। वे अपने वश पर कलक का टीका नहीं घोष सकते। एक शत्रु गुप्तवंश की एक अबला को बलात् ले जाये और ये, सस्कृति का द्विदोरा पीठने वाले शासक हैं बिल्कुल जममव बात है। हमने देखा कि इस विचित्र सभ्यता में रामगुप्त और चन्द्रगुप्त किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करते हैं। यह वास्तव में उनके पूरा प्रभुत्व सम्पन्न सम्राट होने का ही प्रमाण है। यदि वे किसी सम्राट के राज्यपाल होते तो अनिवाय रूप से उन्होंने अपने स्वामी से सहायता की आकांक्षा की होती।

रामगुप्त को सम्राट मान लिए जान पर हमारी एक श्रम समस्या का भी समाधान हो जाता है। यह समस्या यह थी कि प्रारम्भिक गुप्तकालक्रम बड़ा ही अस्वाभाविक प्रतीत होता था। जब से यह निश्चित हो गया कि गुप्त सभ्यता का मर्यादापक कोई विदेशी नरेश नहीं है बल्कि चन्द्रगुप्त प्रथम ही इसका सञ्चालक है तो हम इसका प्रारम्भ ३१९-२० ई० के लगभग कह सकते हैं। इसकी ओर चन्द्रगुप्त द्वितीय निश्चित रूप से ४१२-१३ ई० में राज्य कर रहा था। उस प्रकार प्रथम तीन नरेशों ने लगभग ९३ वर्ष कम से कम राज्य किया था। जब कुमारगुप्त का शासनकाल भी हम इसमें जोड़ते हैं तो चार निरन्तर नरेशों की शासनावधि कम से कम १३० वर्ष बढ़ती है। हमें १० या १५ वर्ष और जोड़े जा सकते हैं क्योंकि चन्द्रगुप्त प्रथम ने सभ्यता स्थापन के १०

king that he had no means of saving his army or kingdom save by consenting to an act which would be regarded as the most ignominious by any king in any age or country not to speak of the mighty emperor of the golden age of India who had the blood of Samudra Gupta running in his veins



या १५ वष ही अपना राज्य कार्य प्रारम्भ कर दिया था। इस प्रकार इन चार नरेशों के लिए ३५ वष औसतन समय का ज्ञान हाता है। प्राचीन भारतय इतिहास में निरन्तर चार नरेशों के लिए यह औसत कुछ अत्रावोगरीक भी लगती है। अतएव ५वें नरेश रामगुप्त के इस श्रृंखला में सम्मिलित हो जाना इस अस्वामाविकता का समाप्ति हो जाती है। इस प्रकार रामगुप्त की इतिहासिकता अब एक पूणतया सिद्ध तथ्य हो गयी है।

शक नरेश का समीकरण—जिस शक नरेश ने रामगुप्त को एसा दयनाम परिस्थिति में पहुँचा दिया था उसकी पहचान के विषय में सम्भीर मतभेद हैं। केवल शकाधिपति के अतिरिक्त नरेश की स्थिति का उसके नाम का हम तनिक भी ज्ञान नहीं। विभिन्न इतिहासकारों ने विभिन्न कल्पनाएँ की हैं। आइए उन कुछ कल्पनाओं से हम आपका परिचित करवायें।

डा० फ्लेट (Dr Fleet) के अनुसार उत्तर पूर्वीय भारत में किमा स्थान पर कनिष्क प्रथम का वंशज समुद्रगुप्त के आक्रमण के समय शासन कर रहा था। अतएव इसी वंश की ही ओर यह शकाधिपति इंगित करता है।

डा० बाख्त दास बनर्जी (Dr R D Banerji) के अनुसार जिस शक ने रामगुप्त के क्षत्र पर आक्रमण किया था, वह कनिष्क के पुत्र का वंशज था।

श्री रंगस्वामी सरस्वती (Rangaswami Saraswati) के अनुसार यह शक नरेश स्वामी सायसिंह का पुत्र स्वामी रद्रसिंह था जिसकी अन्तिम पात तिथि ३१० ई० है। लेकिन यह एकलन उचित नहीं है क्योंकि शक घटना ३७५ के पहचान और ३८० के मध्य घटायी।

डा० अनन्त सन्नाशिव राव अस्तकर (Dr A S Altekar) ने यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि यह शक नरेश पश्चिमी क्षत्रप राजवश का एक शासक था जिसे रद्रसन द्वितीय कहा जाता है। इस नरेश की तिथि ३४८ ई० ७८ ई० के लगभग है लेकिन हमारे पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं था यह बता दें कि पश्चिमी क्षत्रप इनके अधिन शक्तिपाती हो गए कि वे गुप्त सम्राटों का वलात ले जाना में समय दे विनापत अलीपुर क्षत्र से।

श्री वी० वी० मिराशी (V V Mirashi) ने प्रस्ताव किया है कि शक एक कुषाण नरेश था जिसने पञ्जाब एवं काबुल पर राज्य किया था। मिराशी नरेश का नाम नहीं लिखता है।

श्री जगन्नाथ (Jagannath) के अनुसार यह सम्राट् कोई स्वस नरेश था जिसका नाम लिखा नहीं गया।

श्री प्रसाद जायसवाल (K P Jaysawal) ने लिखा है कि ५६० ई० में काबुल का कुषाण नरेश प्रम्बेट शासनियन (Sasanian) की आरस मीस्तान के शका सहित रोमनों के विरुद्ध सघय कर रहा था। एक पीढ़ी बाद राजराज तारमाण जा कि पश्चिमी पञ्जाब में शासन कर रहा था या तो स्वयं चन्द्रगुप्तम् का शकाधिपति था या उसका दूसरा उत्तराधिकारी। इस शासक की सर्वप्रथम बुह्लर (Buhler) ने निर्दिष्ट किया था।

शकाधिपति एवं रामगुप्त के समय की स्थिति निम्नचयन के विषय में मा विभिन्न इतिहासकारों की विविध धारणाएँ हैं।

डा० रालालदास बेनर्जी के अनुसार यह मुठभेद सम्भवतः मयूरा के आस-पास हुई होगी।

डा० वागी प्रसाद जायसवाल ने इस सघष को जालधर शोआब में घटित होना निश्चित किया है।

डा० मडारकर ने कहा है कि सम्भवतः यह पूरा दण्ड गोमती की घाटी में हुआ है। श्री आर० एन० सलेटार ने प्रस्ताव किया है कि यह भूभाग जैलम तथा रावी के बीच काँगडा घाटी में होना चाहिए।

इस प्रकार हम अभी तक नरेश की निश्चितता तथा युद्धस्थल की प्रामाणिकता के विषय में कुछ नहीं कह सकते हैं। भावी अनुसंधान एवं प्रमाण हमें इस दिशा में कदाचित् कुछ सहायता देंगे।

निष्कर्ष—डा० अनन्त सदाशिव राव अल्तेकर महोदय की सम्मति मानते हुए हमें देवीचन्द्रगुप्त की घटनाओं को पूर्णतया एक-एक शब्द सत्य नहीं मानना चाहिए—न ही हम इस नाटक को कपोलकल्पित क्या। देखिए उन्हीं के शब्दों में—

These considerations stand on the way of accepting as historical the strange episode of Ramgupta until at least the existence of this king is established on unimpeachable grounds while the story cannot be dismissed of hand as altogether a figment of imagination we must not rush to the other extreme of accepting in fold plots of drama and popular tales as reliable facts

### चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य

रामगुप्त के अल्प शासन के पश्चात् समुद्रगुप्त का दूसरा पराजयी पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय मिहासनाहूत हुआ। पिछले पन्ना में हमने देखा था कि किस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कापुक्ष्य रामगुप्त की हत्या करके उसकी पत्नी से शाह किया और राज्याधिकारी हुआ। शत्रु की पराजय चन्द्रगुप्त की वीरता का प्रथम उदाहरण है। किन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि चन्द्रगुप्त शत्रु की हत्या करके ही राज्याधिकारी बन सका। कुछ प्रमाणा के आधार पर हम कह सकते हैं कि समुद्रगुप्त ने चन्द्रगुप्त को अपना उत्तराधिकारी मनोनीत किया था। सम्भवतः वह इसका प्रकाश खले दरवार में कर सका था और इसीनिये साधारण नियमानुसार ज्येष्ठ पुत्र मिहासनाहूत हुआ। इसकी स्पष्ट ध्वनि तरारिगृहीत शब्द से होती है। ऐसा नात होना है कि चन्द्रगुप्त ने समुद्रगुप्त के इस मतव्य का प्रकाश राज्यारोहण के पश्चात् कर देना आवश्यक समझा था। समुद्रगुप्त के अनेक पुत्र थे जिनके अनेक प्रमाण मिलते हैं। समुद्रगुप्त के उत्तराधिकारी (का० इ० इ तृतीय पन्ना २०) में भी समुद्रगुप्त को 'मह-पुत्र-वीर' यवन बनाया गया है। इन बहुत से पुत्रों में उसने, चन्द्रगुप्त को ही मनोनीत किया इसमें समुद्रगुप्त की बुशयता का परिचय प्राप्त होता है।

१ चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राजकुमारी प्रभावती गुप्ता का वानपत्र।

डा० राधाकृष्ण मुलानी ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'द ग्रेट्टा इम्पायर' पृष्ठ ४५ पर चन्द्रगुप्त द्वितीय के निर्वाचन के सम्बन्ध में विभिन्न साक्ष्यों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करात हुए लिखा है—

The Eran Stone inscription of Samudra Gupta (Fleet No 2) refers to the many sons and grandsons of Samudra Gupta while the Mathura Stone inscription of Chandragupta II (Fleet No 4) states that he was chosen for the throne out of all his sons (Kafpangrihena) by Samudra Gupta. The same fact is repeated in the Bihar & Bhitari Stone Pillor inscription of year 61 Samudra Gupta in fact gave to his son the same compliment as was paid to him by his father who acclaimed him before all his kinsmen (tulyakulaj) as the fittest to succeed him on the throne'

सत्कालीन राजनीतिक परिस्थिति—यहाँ तत्कालीन राजनीतिक अवस्था का बोध कर लेना आवश्यक है। जिस समय चन्द्रगुप्त द्वितीय सिंहासन पर बैठा उस समय यद्यपि भारत की विभिन्न जातियाँ एक-दूसरों की शक्ति पीण हो चुकी थीं क्योंकि जब सा कि हमने पिछले परिच्छेद में पढ़ा है समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त के राज्य आर्यविक राज्य, दक्षिणापथ के राज्य प्रत्यन्त राय गणराज्य आदि का स्मरण कर लिया था और भी यह दमन स्थायी नहीं रह सकता था क्योंकि दासता में स्थायित्व पाने के लिये अधान राज्यों की समय की सम्झौती दूरी पार करके अत्यन्त कराना आवश्यक था पर ऐसा नहीं हो सका था। समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् ही रामगुप्त जसा कायर शासक सिंहासनाह्वर हुआ जिसका दुबलता का परिचय हम पिछले पृष्ठों में प्राप्त हो चुका है। ऐसी परिस्थिति में तो चारा ओर विद्रोह होना आवश्यक था किन्तु समुद्रगुप्त की मीपणता की स्मृति अब भी अवशेष था अतः केवल शत्रु ने ही विद्रोह किया। उन दिना शत्रु के दो केन्द्र थे—(१) सीमाप्रांत अफगानिस्तान आदि और (२) मानवा तथा पश्चिमी भारत।

चन्द्रगुप्त की नीति—ऐसी परिस्थिति में चन्द्रगुप्त को सतकता से काम करना था। जत उसने युद्ध तथा बर्बादिक सम्बन्ध दोनों अन्त्या द्वारा अपनी स्थिति को सुदृढ़ करना उपयुक्त समझा। पहिले हम उसके बर्बादिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालेंगे। चन्द्रगुप्त ने नागकुल की एक राजकुमारी कुबेरनागा से ध्यात किया। कुबेरनागा में उसका प्रभावती नामक बच्चा उत्पन्न हुई जिसका यह उगने वाक्यटक नरेश मद्रमन द्वितीय से कर लिया। यहाँ यह बात देना आवश्यक है कि मद्रमन में बर्बादिक सम्बन्ध स्थापित करके चन्द्रगुप्त द्वितीय ने एक भारी शक्ति को सरलतापूर्वक अपना द्विपदा बना लिया। समुद्रगुप्त की दिग्विजया का अध्ययन करते समय हमने देखा था कि याका टक नरेश मद्रमन (प्रयाग प्रशान्ति का मद्रमन) उत्तरा भारत का समय अधिक शक्ति शान्ता भागता था। यह राष्ट्रसभ बनाकर गुप्त नरेशों में युद्ध कर गवता था। यद्यपि समुद्रगुप्त का वाक्यटक की शक्ति वाफापीण करती थी तथापि मध्य दक्षिण में मद्रसेत शिवाय के समय में वाक्यटक की शक्ति बनी थी और इंगीतिय चन्द्रगुप्त द्वितीय ने

१ Ep Ind II p 41 तथा भागे ४१६ प्रभावती गुप्ता का पुत्रा ताम्रपत्र छेत् भी दिये।

इससे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। वापायक नरेश कर्मेने द्वितीय क साथ वैवाहिक सम्बन्ध के महत्त्व का बोध हम स्थित महाद्वय क इय कपन से हो जाता है—

वाकाटक महाराज का अधिकार एक एमा भौगोलिक स्थिति पर था जहाँ से वह गुजरात आरसाराष्ट्र क शक क्षेत्र का विषय उभर उतरी आशाना की सहायता या बोधा पहुँचा सकता था।

समुद्रगुप्त न अनक विजयों का और उसने गुप्त साम्राज्यकी सीमाको काफी बढाया परहम यह भा जातहाता है कि उसक साम्राज्य में समस्त विजित राज्य नहीं सम्मिलित थे। समुद्रगुप्त क विशाल साम्राज्य में हा अनक छोट छोट राज थे जो उभर कर दत्त थे। इस प्रकार इस एकछत्र राज्य नहीं कहा जा सकता था। पूव तथा उत्तर के सीमांत राज्य एक प्रकार से स्वतंत्र ही थे, उत्तर पश्चिम सीमाप्रांत की भी लगभग यहा दशा थी। अतः विजया द्वारा भा अपना स्थिति सुन्दर बना चद्रगुप्त क लिये आवश्यक था।

नक विजय—रामगुप्त पर आक्रमण करनेवाले शका को चद्रगुप्त ने पराजित किया। इसका प्रमाण हम पिछले पन्ना में मिल चुका है। एक अन्य प्रमाण उदयगिरि का गुहालेख है जिसमें चद्रगुप्त द्वितीय क युद्धसचिव क लिय लिखा है— सम्पूर्ण विश्व की विजय कामना रखनेवाले अपने स्वामी (चद्रगुप्त द्वितीय) क साथ वह (शक) यहा (पूर्वी मालवा) जाया। ' सनकानिक महाराज (४०१-०२ ई.) तथा आम्र कारद्व (४१२-१३ ई०) क अभिलेखों से भा इसकी पुष्टि हो जाता है। इस प्रकार चद्रगुप्त द्वितीय अपने प्रमुख विरावा गुजरात तथा काठियावाड प्रायद्वीप क शक शासक शक-नरेश रुद्रसिंह तृतीय पर विजय प्राप्त करके पश्चिमी सीमा का जोर अपने राज्य का विस्तार किया। यहाँ यह भी बताना आवश्यक है कि रामगुप्त को वस्तु करने वाले शकपति को चद्रगुप्त द्वारा पराजित करने का बात कहीं तक मत्त है यह निरचय पूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ इतिहासकारों का तो यह भी धारणा है कि 'द्वितीय चद्रगुप्तम् आदि साहित्यिक ग्रन्थों में वर्णित शक चद्रगुप्त-युद्ध वास्तव में चद्रगुप्त द्वितीय की इसा शक-युद्ध का प्रतिध्वनि है। आ आर० सी० मजूमदार क शब्दों में—

It is not unlikely that the literary references to Chandragupta's war with Sak chief mentioned above in connection with the episode of Ramgupta contain an echo of this victory'—*Classical Age*, p 19

शक विजय की तिथि के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने क लिय हमारे पास कुछ पुरातात्विक साक्ष्य तथा मुद्रायें हैं। शका क अन्तिम नरेश रुद्रसिंह तृतीय की मुद्रायों पर (अन्तिम वय की मुद्राओं पर ?) शक सवत ३१० (ई० सन ३८८) अंकित है। शक मुद्राओं के अनुकरण पर बनाई गई चद्रगुप्त का चौदी की प्रारम्भिक मुद्राओं की तिथि ९० (इकाई का सख्या क अभाव में यह ९० तथा ९९ के बीच में भी हो सकती है) का गण है अर्थात् ४९ से ४१८ ई० सन्। ऊपर चद्रगुप्त द्वितीय क सामंत सनका निक महाराज विष्णुदाम के पुत्र क दानपत्र का उल्लेख किया गया है जिसकी तिथि

१ कृत्स्नपम्भीजयार्थेन राजबहू सहायत—उदयगिरि का गुहालेख का०६०६०१६।

२ कृत्स्न Andra Coins। इकाई की सख्या के अभाव में यह ३१० से ३१९ के बीच में भी हो सकता है और फिर ३९७ ई० सन् होगा।

गुप्तसंवत् ८२ (ई० सन ४०१-०२) है। इससे भी उक्त तिथि के निर्वारण में काफी याग मिलता है और इन समस्त प्रमाणों के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि यह युद्ध मौखिकी गनी ईसा की प्रथम दशकाधीन म हुआ।

— **विजय का परिणाम**—इस विजय में चन्द्रगुप्त ने न केवल विदेशियों का भारत में पथक किया प्रत्युत उसमें अपनी राज्य-सीमा के अन्तर्गत काठियावाड़ तथा गुजरात जैसे प्रदेशों का सम्मिलित करके अपने साम्राज्य का प्रसार बंगाल की खाड़ी से ज़रब भांगर तक कर दिया। पश्चिमी तटवर्ती पल्लवा के सम्पर्क में आ जाने के कारण भारत के पारश्चात्य व्यापार पर एक प्रकार से गुप्तों का एकाधिकार हो गया। साथ ही दश पारश्चात्य मण्यता के निवृत्त सम्पर्क में आ सका।

**अन्य विजयें**—अब हम चन्द्रगुप्त का अन्य विजयापर विचार करेंगे जिसका सख्त अभिलेख से मिनता है। चन्द्रगुप्त के युद्ध सचिव शोब के नाम से यह नाम होता है कि वह (चन्द्रगुप्त द्वितीय) विजय विजय करके निकल चला था। चन्द्रगुप्त के सना नामक साम्राज्य के लिये कहा जाता है कि उसमें अबक विजया से स्वाति प्राप्त की थी। किन्तु दुर्भाग्यवश इन विजया के विषय में नामधिया का अभाव है। दिल्ली का कुतुबुद्दीन चन्द्रगुप्त की लौहस्तम्भ (महरोली स्तम्भ) पर चन्द्र नामक विमा राजा का विजय-यात्रा का उल्लेख है। इस स्तम्भलेख में चन्द्रगुप्त ने सिन्धु नदी के सातों मुखा का पाग करके काठिण्ड (बल्ल) के शासक का जाना <sup>२</sup> इस प्रकार का वचन है जिससे यदि यह स्वाकारकर लिया जाय कि मेहराना लौहस्तम्भ लेख का चन्द्र, चन्द्रगुप्त द्वितीय है <sup>३</sup> तो हम यह किन्ति हीना है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय न राय के पूर्वीय तथा पश्चिमा दाना सामान प्रदेश पर आक्रमण किया और उस वन अभिमाना में सफलता प्राप्त हुई। यहाँ यह उल्लेखनाय है कि बल्ल का भाग सिन्धु

१ यत्प्रीद्वतयत प्रतीपमूरसा गयून् समेयार्गतान्।

यगेष्वाहववतिनीभल्लिखिता सगनतीति नूजे,

— तीत्यः सत्यमुलानियन समरे, सि योजिता दालिहका—मेहरोली लौहस्तम्भ लेख

<sup>२</sup> बसाक (H A E Ind 1 p 13 18) तप पलीट (C L I 3) भूमिका, पृष्ठ १२) चन्द्र को चन्द्रगुप्त मानते हैं और बंगाल पर उसके आक्रमण करने का तथा तत्सम अयं प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, बनर्जी {Ep Ind 14 pp 36-1} तथा हर्प्रसाद गाम्भी (वहा, १२ पृष्ठ ३१५ २१, १३, पृष्ठ १३३) चन्द्र को चन्द्रवमन मानते हैं और अपने मत के समर्थन में सुसानिया पर्वत पर प्राप्त लेख को प्रस्तुत करते हैं, जिसमें पुष्करण (जोपुर राय) नामक स्थान से चन्द्रवमन नामक राजा का पश्चिमी बंगाल में आने का उल्लेख है। राय चौधरी इस सदाचन्द्र अपना चन्द्राग मानते हैं। स्मिथ महादय इसे चन्द्रगुप्त द्वितीय मानते हैं (J R 4 S 1947 pp 1 18

मेहरोली लौहस्तम्भ लेख के चन्द्र को चन्द्रगुप्त द्वितीय मानने के लिये पर्याप्त प्रमाण है—चन्द्रगुप्त प्रथम के लिये 'एकाराशिराय' जैसे सम्भव है? चन्द्रवमन इस लिये नहीं हो सकता कि सुसानिया पर्वत लेख में वर्णित पुष्करण राजा का वगन-सालिका का जब उनके भोजों से अभ्यसन करते हैं तो ज्ञात होता है कि चन्द्रवमन समद्र-गुप्त का समकालीन था। भला यह कैसे सम्भव है कि उस प्रतापी धीरे के सामने कौटिल्य काषपुर राज्य से पश्चिमी बंगाल पर आक्रमण करे और समद्रगुप्त उससे कुछ न बोलें ?

नदी को पार कर नहीं जाता अतः जान एवम महोदय का मत है कि 'यात्रिक' शब्द से सिंधु के पार यवन की भाँति किमी अथवा जाति का अभिप्राय है जो कश्चित् चिनो विस्तार के आसपास निवास करती थी। मेहरौली अभिलेख में 'वगप्राहववतिनोमि लिखितपहगन कीनिभज (वग के युद्ध में जितने अपने पराक्रम से शत्रुओं का पीछा किया) आता है इस वग से पूर्वी बंगाल का क्षेत्र माना चाहिये। पूर्वी बंगाल पर चंद्रगुप्त ने आक्रमण किया अथवा बंगवाली ने विद्रोह किया था जिसे दवाने के तिये चंद्रगुप्त को रणयात्रा करनी पड़ी थी यह शका मी आर० मी० भज्मदार ने उक्त है। (Classical Age p 20) पर मेहरौली लेख से ही यह परिलक्षित होता है कि 'जो (बगवाले) संगठित रूप से उस पर (चंद्रगुप्त पर) आक्रमण करने के लिये उद्यत थे अर्थात् उन्होंने विद्रोह कर दिया था जिमने अन्ततया चंद्रगुप्त को आक्रमण करना पडा था। वास्तविकता जो भी हो जितना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि इस युद्ध के पश्चात् गप्तो का पूर्ण अधिकार बग पर हो गया क्योंकि आगे चलकर (पाँचवाँ शती ई० म) हम एक गुप्त नरेश को इस पर राज्य करने देखते हैं।

इस विजय का बहुत ही सुंदर परिणाम हुआ क्योंकि शक विजय द्वारा यदि पश्चिमी समद्र-तट के व्यावसायिक केंद्र और बंदरगाह चंद्रगुप्त के हाथ में आ गये थे और इस प्रकार प्रमुख व्यापारिक केंद्र एवं उत्तर जानेवाले माल की भड़ी उज्ज्वल साम्राज्य की दूसरी राजधानी सा हो गया था तो बग विजय से भारत की अत्यंत उर्वरा भूमि साम्राज्य के अधीन आ गई जिससे उसकी समृद्धि में आशातीत उन्नति हुई होगी।

### चंद्रगुप्त द्वितीय का मूल्यांकन

चंद्रगुप्त द्वितीय भारतवर्ष का महानतम सम्राट माना जाता है। इसकी महानता प्रत्येक क्षेत्र में परिदक्षित होती है। यह क्षेत्र चाहे शासन का हो चाहे साम्राज्य विस्तार का हो चाहे कलापक्ष का हो चाहे आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र हो— प्रत्येक में वह शिखर के अत्यंत भाग पर आरोहण था। चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के ही कारण गुप्त काल स्वर्णकाल कहलाया। चंद्रगुप्त के ही कारण भारत की अस्ती-पुष्टि दिशि प्रकाश फैल गई।

चंद्रगुप्त का साम्राज्य भारत के सागरों को ही छूना नहीं था बल्कि कई विदेशी राज्यों को भी उसमें आत्मसात् कर लिया गया था। नमदा नदी तक की घाटी इसकी दक्षिणी सीमा थी। मध्यशिया इसकी उत्तरी सीमा का दूसरा छोर था। पूर्वी सीमा बंगाल की खाड़ी का स्पर्श करती थी। पश्चिमी सीमा अरब की खाड़ी से जलक्रीड़ा करना था। भारत की भूमि पर फेरों का रूप में वर्तमान विदेशी उपनिवेशों का सफाया कर माता बसुंधरा का इस महान वीर ने कल्याण किया था। भारत को काटि काटि जनता में भारतीय सभ्यता का मंत्र फक कर उन्हें शुद्ध भारतीय बनाने वाला यही अमर सेनानी था।

यह अब पूरातया स्पष्ट हो चुका है कि चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पिता सम्राट के आदेश का अनुगमन करते हुए विजय अभियान में उन्मुक्तता प्रदर्शित की थी। उन्मुक्त गिरि के अभिलेख से हमें चंद्रगुप्त की उत्कट अभिलाषा का पता चलता है। वीरवेन के अभिलेख में चंद्रगुप्त ने विजय विजय की कामना व्यक्त की थी। उदयगिरि का

अमितत्र वस्तुन सम्राट की दक्षिण-पश्चिमी विजय के लिए किया गया अभियान की ओर परोक्ष रूप से प्रकाश डालता है।

इसका प्रशंसा में था आर० सा० मजूमदार ने किया है—



महाराष्ट्र का साम्राज्य

द्वितीय जिवन राजना

पर पहुँचाया उमने

गुप्तसत्ता की भारत का वस्तुनी उन्नति के मन् में इन्ही दोनों सम्राटों का हाथ है। इन्होंने ही अपन सक्रिय सहयोग न इस युग की स्वयं युग की उपाधि प्रदान किया।

चन्द्रगुप्त द्वितीय ने कला एवं साहित्य की जा सरक्षण प्रदान किया, कलाकारों का जो प्रेरणा दी उसकी चर्चा प्राचीन काल से ही दन्तकथाओं का विषय बनी हुई है और इन दन्तकथाओं की ऐतिहासिकता पर सन्देह नहीं किया जा सकता क्योंकि इसका दर-बार में नवरत्ना की जा बात कही जाती है और उसमें कालिदास का नाम गिनाया जाता है वह सत्य है जैसा कि अगले पृष्ठा में स्पष्ट किया जायगा। चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-काल में भारत में लगभग १०-११ वर्षों (४००-४११ ई०) तक निवास करने वाले चाँदा यात्रा काहियान के विवरण से (जिसका सम्बन्ध में हम आगे प्रकाश डालेंगे) यह ज्ञात होता है कि उस समय देश में शान्ति एवं समृद्धि प्राप्त थी। प्रजा का आर्थिक अवस्था काफी अच्छी थी। बिना कठोर दण्ड के ही शान्ति स्थापित रखना चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन प्रबंध का सफलता का प्रमाण है।

मुद्रा निर्माण का और भी चन्द्रगुप्त ने विशेष ध्यान दिया जिसका प्रभाव मुद्रा-निर्माण-कला तथा देश की आर्थिक व्यवस्था पर अवश्य पड़ा होगा। अब तक गुप्तों ने स्वयं मुद्राओं का ही निर्माण कराया था किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय ने तब तथा चाँदी के सिक्के भी प्रचलित कराये जा सक-क्षण का मुद्राओं से प्रभावित है। ताम्र-मुद्राएँ लगभग ९ प्रकार की हैं। मुद्राओं पर एक ओर गधे का चित्र अब भी अंकित किया जाता था तथा दूसरी ओर राजा का चित्र रहता है। कला एवं पूणता में चन्द्रगुप्त का मुद्राएँ समुद्रगुप्त का मुद्राओं से स्पर्धा करता है। चन्द्रगुप्त ने मुद्रा निर्माण में कुछ उल्लेखनीय परिवर्तन ला दिये थे—उदाहरणार्थ चाँद के स्थान पर वह सिंह का बंध करता हुआ दिखाया गया है क्योंकि उस 'सिंह विक्रम' का उपाधि प्राप्त थी। इसी आधार पर कुछ इतिहासकारों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि सिंहबन्ध प्रदर्शित करने-वाला मुद्राएँ चन्द्रगुप्त का गुजरात विजय का संकेत करती हैं क्योंकि उन दिनों वहाँ सिंह का बाहुल्य था। दूसरा अन्तर पिता पुत्र का मुद्राओं में यह देखने का मिलता है कि वीणा वाली मुद्राओं के स्थान पर चन्द्रगुप्त द्वितीय ने पुष्पांकित मुद्राओं का निर्माण कराया। वीणा के स्थान पर पुष्प का स्वीकार करना उसकी कामलतर कलात्मकता का पारचायक है। कुछ नये ढंग का मुद्राओं का निर्माण करके जिनमें उसकी वारता प्रदर्शित होगी, चन्द्रगुप्त ने अपने चरित्र के उस पहलू का भी दिग्दर्शन कराया है जिसमें वारत्वं तथा पुष्पांकित का अंश प्रधान होता है।

चन्द्रगुप्त के विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने के सम्बन्ध में भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि इस उपाधि पर प्रचलित अनेक दन्त कथाओं के नायक चन्द्रगुप्त द्वितीय का हम दाना, उदार, विद्याप्रमी आदि अनेक रूपा में पाते हैं। दन्त-कथाओं में जीवन के किसी शासक विक्रमादित्य द्वारा प्रथम शक विजयताओं का भारत से बाहर निकाल देने का वणन मिलता है। सम्भवतः शकों का पराजित करने के पश्चात् अशाक का भी विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने की प्रेरणा प्राप्त हुई थी। कुछ इतिहासकारों का तो यह भी मत है कि इसका पिता ने भी विक्रमादित्य का विरह धारण किया था और यह सम्भवतः विशेष सामरिक प्रतिभा-सम्पन्न भारतीय विजयताओं के लिये प्रचलित विरह था।<sup>१</sup>

<sup>१</sup> समुद्रगुप्त की मुद्राओं पर भी गधे के चित्र का उल्लेख पाछे किया गया था।



“मेहरोली स्तम्भ अभिलेख”

दिल्ली के समीप एक गाँव का नाम मेहरोली है। इस मेहरोली गाँव की दो वस्तुएँ विश्व प्रसिद्ध हैं। एक तो बुतुवमीनार और दूसरा लोहस्तम्भ। लोहस्तम्भ पर स्मृत में कुछ श्लोक उल्लिखित हैं। इन पंक्तियों में प्राचीन भारतीय इतिहासकारों के लिए एक राजा की ओर निर्देश किया गया है। इस स्तम्भ की अभिलेख में चंद्र, नाम व स्मकता स्थापित की जाये यही समस्या वस्तुतः विवाद का विषय है। विविध विद्वानों ने विभिन्न मस्यौदा से चंद्र की एकात्मकता स्थापित करने का प्रयास किया है लेकिन अभी तक कोई मतोपजनक समाधान नहीं निकला है।

चंद्र को कुछ विद्वानों ने चंद्रगुप्त मौर्य कुछ न कनिष्क प्रथम कुछ न नाग चंद्रवंश कुछ ने भालवा के पुष्कर का चंद्रवर्धन कुछ ने मगध के गुप्तवंश को चंद्र गुप्त प्रथम कुछ ने चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य एवं कुछ ने मिहिर कुल का म्याता माना है। इतनी अपेक्षित विभिन्नता के कारण सत्यता का पता लगना दुष्कर मा हो गया। फिर भी साधारण में हड़की लगाकर असली मूर्तों पाने का हमारा प्रयास ता अकार्य रहगा। हम निम्नलिखित पंक्तियों में प्रत्येक इतिहासकार क द्वारा उपस्थित श्लोकों का सूक्ष्म विश्लेषण करेंगे और युक्तिमय तथ्यों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न करेंगे।

- १११ -

हरिश्चंद्र सेठ का मत—हरिश्चंद्र सेठ, जिन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया था कि अलकजण्डर की भी भारतीय सीमा में प्रविष्ट नहीं हुआ था एवं यूनानी विवरणों में जिन्होंने इस वृत्तान्त का उल्लेख किया है बल्लु अपने देश एवं यूनान की सर्वोच्चता एवं महानता प्रतिष्ठित करने के लिए ही लिख गए हैं, भारतीय इतिहासकार अपनी विशिष्ट भारतीयता के लिए प्रसिद्ध हैं। इनका मत पक्षपात रहित रहे यह, अत्यधिक बलिन बात है। आप सत्य भारत की स्वतन्त्रता के प्रतिमा क प्रदर्शन क लिए इतिहास से भी अन्याय कर सकते हैं। मेहरोली-स्तम्भ के चंद्रक विषय में भी इनका मत दिलचस्प है। इनके अनुसार इस लोह स्तम्भ का निर्माता, चंद्रगुप्त मौर्य या और समुद्रगुप्त न लगभग ६०० वर्षों, ५ पञ्चम, चंद्रगुप्त मौर्य को अपना आराध्य नायक मानते हुए इस स्तम्भ पर वक्तमान प्रशस्ति उल्लिखित करवाए। हरिश्चंद्र सेठ न इससे अतिरिक्त अपने इस मत के समर्थन में कोई अन्य तर्क उपस्थित नहीं किया। केवल कल्पना को उडाना पर आधारित, मत्त-बालू की भाँति की भाँति माना है। एति हासिक तथ्यों की कटि म आने के लिए मत क पाछे प्रभावकारी प्रमाण होने चाहिए। मत महोदय क सिद्धांत की तो यहा बड़ी कमी है। अतएव आधार रहित मत का स्वीकार करना आधार रहित छत पर खड़े जाना है। अतएव असाध्य है।

डा० रमेशचंद्र मजूमदार का मत—डा० रमेशचंद्र मजूमदार प्राचीन भारतीय इतिहास के अनुपम रत्न हैं। इन्होंने मेहरोली क चंद्र एक कनिष्क क एकात्मकता निर्धारित की है। डा० मजूमदार महोदय के मत का मुख्य आधार एक सौदानी पाण्डुलिपि है। इस पाण्डुलिपि में कनिष्क महान को चंद्रकनिष्क क नाम क सहायित किया गया है। लेकिन बल्लु इसी एक प्रत्येक कनिष्क के नाम क आग चंद्र जुड़ जाने से हमारी आत्मा की संतुष्टि नहीं हो जाती। कनिष्क के इसी अनिलय में हम चंद्र

नाम नहीं मिलता है। साथ ही साय चंद्र के नाम से जुड़ी विजयें भी हम कनिष्क का नहीं पाएँ सकते। डा० साहय का मत भी प्रमाणा एव पुष्टियाँ व अभाव में हम स्वाभाविक नहीं हो सकते।

डा० हमधर राय चाधरी का मत—डा० राय चौधरी ने एतिहासिक तथ्या से हटकर एक अस्पष्ट सूत्र से अपना धारणा निर्धारित की है। डा० चौधरी ने पुराणा का सहारा लिया है। पुराणा में नागवश व परवर्ती आध्र नरशा की सूची में चंद्राश नाम का एक नरश उल्लिखित है। इसा चंद्राश का उद्धान महरीला स्तम्भ अनिलेय का चंद्र माना है। इस नरश का विरुद्ध द्वितीय 'अथर्व' (द्वितीय नृपण) लिखा गया है। इस विरुद्ध से राय चाधरी ने यह अनुमान लगाया है कि चंद्राश एक महान शासकशासक सम्राट था। इसा आधार का लेकर डा० राय चौधरी ने अपना सिद्धांत तयार किया है। सिद्धांत तयार करना तो सुगम काम है परंतु तथ्या से उसकी पुष्टि करना दुष्कर है। जमा तक हमने जितने सिद्धांत या मती का अवलोकन किया है व सिद्धांत सिद्धांत के लिए व उद्घाटन से लिये गए हैं। चंद्राश का नाम तो प्राचीन भारतीय इतिहास व विद्याध्याय में कदाचित् इसी समस्था व अध्ययन में, पहला बार सुना में पड़ा होगा। एसा उपाक्षत एव अस्पष्ट नरश का 'चंद्र' से एकात्मकता प्रतिपादित करना ठीकसगल नहीं प्रतीत होता है। इस प्रकार डा० राय चौधरी का मत भी हम अभाव में है।

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री का मत—हरप्रसाद शास्त्री ने महरीली स्तम्भ व चंद्र की चंद्रवमन अगाकार किया है। चंद्रवमन बंगाल की ओर का नरेश था। लेकिन हरप्रसाद महादय का यह मत हमें इस बात पर अभाव है क्योंकि इस नरश का समुद्रगुप्त न पराजित किया था। मेहरीली स्तम्भ का चंद्र तो एक पराक्रमी सम्राट था। उसका विजय वैजयन्ती दिग्दिग्न्ता में फल रही थी। अतएव समुद्रगुप्त द्वारा पराजित 'चंद्रवमन' से उसका एकात्मकता नहीं स्थापित की जा सकती।

डा० पत्नीट एव अयगर का मत—डा० पत्नीट एव श्री अयगर ने यह मत प्रस्तावित किया है कि महरीली का चंद्र वस्तुतः गुप्तवंश का चंद्रगुप्त प्रथम है। राधागोविंद बसाव ने उपयुक्त महानुभावों के मत का अनुमादन किया है। यद्यपि कुछ अंश तक यह एकात्मकता उचित मानी जा सकती है। जस चंद्र एव चंद्रगुप्त प्रथम दोनों भागवत धर्म व उपासक थे। दाना हा ने अपने मुजबल से साम्राज्य का निर्माण किया था। न ता चंद्रगुप्त प्रथम का और न ही चंद्र का विस्तृत राज्य प्राप्त हुए थे। दोनों ने अपने छोट से सामंत क्षेत्र का विद्यात् साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया था। दोनों का शासन बंगाल में फला हुआ था। दोनों ने पंचासतापी के आसपास राज्य किया था। लेकिन इस मत व विरुद्ध आपत्तियों में भी पर्याप्त जोर है। मेहरीली स्तम्भ में चंद्र का साहित्य का विजय दक्षिण भारत में प्रभावकारा एव बंगाल पर हावी दशाया गया है। जहा तक चंद्रगुप्त प्रथम व साम्राज्य का सम्बन्ध है वह पर्याप्त साम्य में था। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि उसका पुत्र समुद्रगुप्त ने आर्यावत व नरशा का परास्त करने व लिए अभियान किया था। चंद्रगुप्त प्रथम का राज्य गंगा का घाटा तक सामंत था लेकिन 'चंद्र' न ता भारत को जातकर भारत से परे विरुद्ध में भी विजय पताका फहराई थी। इस प्रकार चंद्रगुप्त प्रथम का भी हम

लोहस्तम्भ का नायक नही मान सकते हैं। इस मत व प्रणेता का भा अपने इस मत का प्रमाणिकता में सन्देह है। उन्होंने इस मत का विकल्प भा प्रस्तुत कर दिया है।

इस विकल्प में उन्होंने महारकुल व एक छोट भाई का महरोला स्तम्भ का चन्द्र माना है। लेकिन इस मत में पक्ष में बल हूनसंग का मान्य दिया गया है। इतिहास व विद्या का लिए यह प्रमाण पर्याप्त नहीं है। अतएव इस मत का भी हम स्थाप पाते हैं।

इसा तरह एक अन्य इतिहासकार न भा पुराण में वर्णित एक नरेश का 'चन्द्र स एकात्मकता निर्धारित का है। यह नरेश दशरक्षित वंश का था। पुराण में इस नरेश का शाक्यशाक्यता का प्रमाण यह वाक्यार्थ है 'ताम्रलिप्तान समागरान'। लेकिन बल इस एक वाक्यार्थ का लक्षण एक सिद्धांत का प्रतिपादन करना कारा युक्त नहीं ताओर क्या है। क्या जिनासु विद्या का इसी वयन में मत्पुत्र ही जायेगा। कुछ इतिहासकारों ने जवरदस्ता अपना टांग घुसडन व लिए बकार के आधाररूप तप्यराहत मता का निर्धारण किया है। इतिहास में इस प्रकार का वाता का देखकर उनका बुद्धि पर तरस आता है।

डा० हानले (Hoernle) आदि का मत—डा० हानले (Dr Hoernle) को बलास चन्द्र आसा, श्री सुरेन्द्रकुमार बरा। तथा अन्य विद्वानों ने चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्यस चन्द्र को एकात्मकता स्थापित की। यही मत पर्याप्त असा संवज्ञानिक तक संगत एवं युक्तिमग्न प्रतीत होता है। विसा मत का तत्संगत मापन के लिए निम्नलिखित ६ परीक्षाएँ हैं। इन परीक्षाओं में उत्तम होना बाल नरेश की चन्द्र स एकात्मकता का तत्संगत मुद कर का जा सकता है।

(१) महरोली अभिलेख का तिथि निश्चयन ५वीं शताब्दी व लगभग किया गया है। अभिलेख की शिष्टा तिथि गुप्त काल की तिथि विशिष्टता का स युक्त है।

(२) चन्द्र अनिवाय रूप संवर्षण वधम का आराधक था क्योंकि उसने इस स्तम्भ का निर्माण अपने इष्टदेव व प्रति अपना भक्ति भाव प्रकट करने के लिए किया था।

(३) स्तम्भ का प्राप्ति का स्थान चन्द्र का सीमाओं में था।

(४) चन्द्र ने बगाल में सम्य किये थे। इसका प्रमाण इस शिलालेख से ध्वनित होता है—

मास्योद्धतमत प्रतीपमुरसा शत्रु-समेतपागता—

न्वग ध्वाहव-वनितामिलितता शब्दान कीत्तिनुजे।

(५) चन्द्र का संवत्सर्वशाली प्रभाव दक्षिण में व्याप्त था। इसका प्रमाण यह पवित्र है—

यस्याथाप्याधिवास्त्यत जलनिधिब्रह्माग्नि लक्ष्मिण

(६) चन्द्र ने मध्य एशिया में, सिन्धु के साथ मुहाना का पार कर वाह्लीका को जीता था। यह विजय निम्नलिखित पवित्र स उद्घाटित होता है।

तीर्त्वा सप्तमुत्तानि मेने समर सिन्धुजिता वाह्लीका

इस प्रकार अब हमका चन्द्रगुप्त द्वितीय का इस तराजू पर तोलना है अगर वह सरा उतरता है तो हम इस एकात्मकता का सर्वाधिक प्रबल उपकल्पना अगीकार करना चाहिए।

यह था हम सना जानते हैं कि चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासनकाल ३८०-८१ ई० स प्रारम्भ होता है और ४१२-१३ तक अनवरत रहता है। यह तिथियाँ हम लेखों एवं मुद्राओं से ज्ञात होती हैं। अतएव चन्द्र एक चन्द्रगुप्त द्वितीय का समय एक ही है।

अभिलष्य। एव मद्रास। स पता लगता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय प्रथम गुप्त सम्राट था जिसने वज्जवधम का राजधम घोषित किया था। उमन अपने अभिलेखा म अपने का परम भागवतो महाराजाधिराज श्री चन्द्रगुप्त एतान किया है। चन्द्र एव चन्द्रगुप्त द्वितीय एताना विष्णु के महान उपासक थ।

डा० मडारकर न य विचार यवत किय हैं कि विष्णुपाद पजाब म एक पत्थरी थी जहां स काश्मीर लिखाई पता था। वही स लाकर यह स्तम्भ अपन बनमान स्थान पर लगाया गया था। किन अय पुरातत्ववेत्ताआ ने इसका खडन किया है। पत्रा (Fleet) महोदय का मत है कि यह अभिलष्य अपने मूल स्थान मे ही गरा हुआ है। उही के शब्दा म—

The fact that the underground supports of the pillar include several small pieces of metal like bits of bar iron is in favour of its being now in its original position

डा० मडारकर का मत है कि यह स्तम्भ चन्द्रगुप्त द्वारा बाह्लीका पर विजय क आनंद म उत्तरपूर्वी क्षत्र म किसी स्थान पर स्थापित करवाया गया था। वास्तविकता कुछ भी रही हो एताना स्थान चाह वह स्तम्भ का प्राप्त स्थान दिल्ली हो चाह वह बकिद्रयन मूभाग द्वा चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रभुत्व म थ।

यह साधारणत माना जाता है कि बगाल गुप्त साम्राज्य का प्रारम्भ से आंतरिक भाग था। लेकिन यह सामान्य स्वीकृत मत यायचित्त नहीं है। समुद्रगुप्त के ही शासन काल मे जाकर वही बगाल के दक्षिण पश्चिमी भाग गुप्त साम्राज्य के अंतगत प्रथम बार आय थ। समुद्रगुप्त को इसके लिए पुष्करण के चन्द्रवमन का पराजित करना पडा था। बगाल का वही भाग अब भी समुद्रगुप्त के शासन के परे था। समतट डवाक एव कामरूप का साम्राज्य के अन्दर ही यह मूभाग था। समुद्रगुप्त के सिक्के मा बगाल पर उसकी विजय की गवाही देते हैं।

कुमारगुप्त प्रथम क समय से गुप्त अभिलष्य बगाल मे भी प्राप्त होने प्रारम्भ हो गए थ। यह घनदहताम्रपत्र तथा दामादरताम्रपत्र से प्रकट है। यह स्पष्ट है कि अब तक बगाल के बहुत थ भाग पर गुप्त शासन व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। यह शासन व्यवस्था वी मुचाह एव सुघटित रूप मे चल रही था। गुप्त शासन व्यवस्था की सुभत्ता से अपना काय करते के लिए कुछ थप अवश्य लगे होंगे। इससे यह अनुमान लगा सकते हैं कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने बगाल को अपनी शासन व्यवस्था क अन्तगत किया होगा। इस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय का बगाल पर भी प्रभुत्व सिद्ध ए जाता है। गुप्त सिक्के मा हमारे मत की पुष्टि करते हैं।

समुद्रगुप्त की मृत्यु के पश्चात् दक्षिण मे गुप्त प्रभुता की धाक हिल गई थी। समुद्रगुप्त ने दक्षिण की विजय यात्रा म अपना प्रभाव खूब प्रभावशाली ढग से जमा लिया था। कर्नाटक सान्देश, मद्रास के रायों का जीतकर उनका नरशा को पुन मिहामन पर बढाना उसकी कूटनीतिक प्रतिभा की सूझ थी। चन्द्रगुप्त ने भी सिहामन पर आत अपनी धाक को पुनर्जीवित करन के लिए एक बडा सुदर ढग अपनाया। उमन अपनी पुत्री प्रभावती गप्ता का विवाह पट्टवीसन के पुत्र हर्सेन द्वितीय म कर लिया। इस वैवाहिक संधि ने चन्द्रगुप्त का प्रभाव बाकाटक साम्राज्य म बढा लिया। इस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय ने दक्षिण म अपना महत्ता बनाये रखी।

यद्यपि विज्ञा अय खात से हम यह पता नहा लगता कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सिंधु का पार भी एक अभियान बन नवृत्त किया था और बकिद्रयस का जीता था। सिंधु

सभी गुप्त सम्राटों में यही इतना योग्य था जो कि इस अभियान को इतनी दूर तक ले जा सकता था। समुद्रगुप्त द्वारा दमाया में एक आक्रमण की गई आक्रामक नीति चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अनवरत रखा थी। उसने अपने साम्राज्य का सीमाओं और अधिक विस्तार की थी और विदेशों में भी उभा न भारतीय ध्वज उड़ाया था। मालवा एवं पश्चिमी छत्तवा पर उसने अपना आधिपत्य स्थापित किया था।

इस प्रकार यह एकात्मकता यद्यपि जय एकात्मकताओं की रचना में श्रेष्ठतर है। किन्तु सवा यह तात्पर्य नहीं कि यह सत्य है। अब हम इस मन के विस्तृत उठाई में जापत्तियां का भी विवेचन करेंगे जिसमें स्थिति का वास्तविकता का माथा स्वर हो जाय।

आपत्तियाँ—एक विद्यमानवालावन सहा यह बात ही जाता है कि यह एकात्मकता भी कितनी कामना दृष्टियां पर रखी हुई है। हम वही ही सुगमता में हम एकात्मकता का भी खडन कर सकते हैं।

लिपिमात्रा (Paleography) मन्त्रीकी अभिनय का कालक्रम निश्चयीकरण का केवल एकमात्र आधार है। मध्यम इसी का आधार पर 'चन्द्र' की चन्द्रगुप्त के माता एकात्मकता स्थापित की गई है। यह मरविक्ति है कि लिपि सम्बन्धी विशिष्टताएँ ५० वर्षों या इससे अधिक अवधि में बाल परिवर्तित नहीं होती। अतएव ५० या ६० वर्ष का हेरफेर हो जाना तो एक स्वाभाविक भी बात है। इस नम्य को दृष्टिगत करते हुए हम यह कमा भी निश्चिन पूर्वक नया कर सकते कि इस अभिनय की लिपि किस तरह के समय की है। इस प्रकार अधिराज रूप में इस पर आधारित यह एकात्मकता कितना पतन आधार पर खड़ी है।

अभिनयों तथा मूर्त्तियों से यह पता लगता है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सींगुप्त एवं वाडिपात्रा का शासन पर विजय प्राप्त की थी। सम्राट ने इस विजय का अत्यधिक महत्व प्रदान किया था। परन्तु यह उत्पत्तनीय विजय मन्त्रीकी स्फूर्ति सगम में न उत्पत्तनीय होने से यह पता लगता है कि 'चन्द्र' एवं चन्द्रगुप्त का पथक था।

जान एलन (John Allen) ने 'चन्द्र' की चन्द्रगुप्त के माता एकात्मकता स्थापित करने के विषय में कई तर्क एवं दलीलें उपस्थित की थीं। उन दलीलों का उत्तर आज भी कोई दान वाला नहीं है। यद्यपि अमतापनक रूप से कई दृष्टियाँ सकारा न एलन का तर्कों का खडन करने का प्रयास किया है परन्तु वे सब तर्क सत्य हैं। एलन ने लिखत हुए कहा था—

The inscription (Mehrauli Pillar) presents several remarkable features the phraseology is quite unlike that of any Gupta inscription and no genealogy is given it may be significant that *Virya* (वीर्य) and *not Vikram* (विक्रम) is used for prowess here the phrase *Par ma Bhagwat* (परम भागवत) So favoured by Chandragupta II is not used here There is no analogy for the abbreviation Chandra (चन्द्र) for Chandragupta inscriptions its occurrence in the field of cows is hardly a parallel as this is due to lack of space and never occurs in the original legend

प्रयास विन्वविद्यालय का प्राचीन इतिहास विभाग का प्रधान तथा गावधन राय शर्मा ने उपरोक्त तर्कों का तर्कपूर्ण एवं युक्त सगत उत्तर दान का प्रयास किया है। एक

पुरातत्व वक्ता का खलना से निकल हुए यह शब्द यद्युक्त विचारणीय है। अभी तक जितना खलना न एलन के तर्कों के खंडों का प्रयास किया है उनमें श्री शर्मा जी के विचार सर्वोत्कृष्टतापजनक एवं वजनदार हैं। प्राक्सर शर्मा महादय महरोनी स्तम्भ में पशावना के अभाव का कारण बताते हुए लिखते हैं कि उदयगिरिगुहा अभिलेख में भी पशावला तथा नरश का उपाधया का अभाव है। इस प्रकार महरोनी स्तम्भ अभिलेख का नई परपाटा एवं नया नरश का नहीं है बल्कि गुप्तकाल का ही कृति है और सम्भवतः चन्द्रगुप्त द्वितीय का है। प्राक्सर शर्मा के मत का खंडन करते हुए प्रयाग एवं वावयालय के एक अन्य विद्वान् लखव डॉ० आज्ञा न कहा है कि उदयगिरि अभिलेख चन्द्रगुप्त द्वितीय के प्रारम्भिक वर्षों में जीकृत किया गया था। उस समय तक नररश का उपाधया पूण रूपण निर्धारित नहीं हुआ था। दूसरी बात यह है कि उदयगिरिगुहा में भी आनन्द राजकाय नाम नहीं है। अतएव इस अभिलेख में उपाधया का होना कोई अनिवार्य बात नहीं है।

प्राक्सर शर्मा ने दूसरा दलाल का खंडन करते हुए लिखा है कि परमभागवत एवं विक्रमादित्य उपाधया चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन के अन्तिम समय में जाकर वहाँ संवत्साराण रूप से प्रचलित हुई होगी। अतएव महरोनी स्तम्भ अभिलेख में इनका होना आवश्यक नहीं है क्योंकि यह स्तम्भ सम्राट के प्रारम्भिक समय में उत्कीर्ण कराया गया था। परन्तु प्राक्सर शर्मा के इस मत को कि मेहरोनी स्तम्भ चन्द्रगुप्त के प्रारम्भिक शासनकाल का है डॉ० जोशा अस्वाकार करते हैं। उनके अनुसार यह जीमलख शासन के पूर्वर्ती समय का है। इस बात का ध्यान में रखते हुए मेहरोनी स्तम्भ अभिलेख में उपयुक्त उपाधया का आना आवश्यक सा लगता है।

आध नाम चंद्र के प्रयाग का कारण बताते हुए श्री शर्मा जी ने लिखा है कि यह छंद का आवश्यकताओं का दृष्टिगत कर ही किया गया था। परन्तु आज्ञा महोदय ने इसका उत्तर में कहा है कि क्या चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबारा के उसी पूण नाम से किंवदंती बनाने में जयाम्य के समुद्रगुप्त, कुमारगुप्त, स्वर्णगुप्त आदि नरेशों के प्रशासकों का न तो नरश का पूरा नाम लिखा है फिर चन्द्रगुप्त द्वितीय ही के विषय में ऐसा क्यों ?

इस प्रकार हमने विभिन्न खंडना एवं मड़ना का सूक्ष्म विवेचन किया है। परन्तु यह तो जाना घत तथ्य है कि एतने महादय का दर्जाने आज भी उतनी ही जोरदार एवं वजनदार है जितना कुछ दशाओं का पूर्व था। इन तर्कों का उत्तर देने के लिए अभी इतिहासकार का अधिक मनन करना पड़ेगा। इस प्रकार चन्द्रगुप्त द्वितीय से की गई स्वतंत्रता भा असफल भाषित हुई है। जब ऐसा दशा हमारे सम्मुख है तो हम क्या भारतीय नरश से चंद्र का एकात्मकता स्थापित कर सकते हैं ? निदान हमको स्वतंत्रताए स्थापित करने के स्थान पर चंद्र का ही एक पथक प्रभुत्वसम्पन्न चंद्र मानना पड़ेगा और इसका भारतीय इतिहास के पृष्ठा में स्थान देने के लिए हमें अपने इतिहास में क्रान्तिकारी परिवर्तन एवं परिवर्तन करने पड़ेगा। इन सब का कारण नहीं है। जहाँ हम डॉ० आज्ञा के शब्दों में व्यक्त करते हैं—

The approach to the Mehrauli inscription for working out its historical background through identification fails — Dr. Ojha

## कुमारगुप्त प्रथम

च गुप्त द्वितीय विजयवर्धन की मृत्यु के अनंतर उमका पुत्र कुमारगुप्त सिंहासनादिभूत हुआ। उसका तिथि के विषय में हम अपेक्षाकृत अधिक निश्चित मत दे सकते हैं। उसका सबसे प्राचीन लिखित तिथि गुप्त सन ९६ = ८१५ ई० है। उमके चाँदी के सिक्का पर उसका सबसे बाद का तिथि दी हुई है। यह तिथि गु० स० १३६ = ४५५ ई० है। इससे यह पता चलता है कि कुमारगुप्त ने सन ८१५ ई० से लेकर ४५५ ई० तक शासन किया। उमका शासनकाल काफी लम्बा था। कुमारगुप्त के जिन अधिकारों का जिक्र प्राप्त हुए हैं उतने किसी भी अन्य गुप्त सम्राट के नहीं। उसके सिक्के में बहुत बड़ी संख्या में मिले हैं। उसने कुछ नवान प्रकार का सुवर्ण मुद्राएँ चलवाई। वास्तविक प्रकार के सुवर्ण सिक्के कुमारगुप्त प्रथम ने ही चलवाये थे। इन सिक्के पर एक ओर कार्तिकेय अपने वाहन (मयूर) पर जा रूढ़ हैं और दूसरी ओर कुमार गुप्त का आकृति मार का भाजन कराते हुए खुदी है। उसके सिक्के और अमिलता का विस्तार बंगाल से लेकर सुराष्ट्र तथा इमान्य से लेकर नमदा तक है जिससे सिद्ध होता है कि उमने अपने पिता द्वारा जिनके साम्राज्य को सुरक्षित रखा और एक विशाल राज्य पर शासन किया था। मदनमाल शिलालिख में कहा गया है कि कुमारगुप्त प्रथम चारों समुद्रों की घबल सहारा से घिरा हुई पृथ्वी पर शासन करता था। अपने प्रतापी पिता की भाँति कुमारगुप्त भी महाकाव्य कालिदास के शब्दों में 'आसमुद्र-क्षिताय' था। उसने महाद्राक्षिण का उपाधि भी धारण की थी।

कुमारगुप्त प्रथम के अमिलता से उसका शासन-व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। उसके एक अमिल म उसने कुछ प्राचीन शासकों के नामों का उल्लेख किया गया है। यशोधन मुक्ति का शासन करता था या घटालकवगुप्त जो सम्भवतः सम्राट् के एक पुत्र या पौरवर्ष अवका एरण प्रदेश पर शासन करता था। एरण का प्रान्त आजकल के मध्य प्रान्त का भाग राजल था। पाण्डुवर्ष का मुक्ति उत्तरा बंगाल में था। यशुवर्ष दशपुर (मदनमाल, पश्चिमी मालवा) का शासक था।

कुमारगुप्त प्रथम के कुछ सिक्के से यह विदित होता है कि उसने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था। परन्तु उसके तरह अमिलता में से किसी एक में भी उसका द्वारा अश्वमेध यज्ञ किये जाने का उल्लेख नहीं मिलता जिसमें यह नहीं कहा जा सकता कि अपनी किस विजय के उपलक्ष्य में उसने अश्वमेध यज्ञ किया था। डा० मजूमदार का कथन है कि कुमारगुप्त के अश्वमेध यज्ञ से उसने द्वारा की गई नवान विजयों की सूचना मिलती है अथवा नहीं यह हम नहीं जानते। डा० रामशंकर त्रिपाठी का विचार है कि "यह प्रायः निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि बिना कुछ प्रदेश विजय किये यह हम साम्राज्य पर अनुष्ठान का आयोजन नहीं कर सकता था। उसके अश्वमेध यज्ञ के सुवर्ण सिक्के से ही अश्वमेध यज्ञ किये जाने का सूचना प्राप्त होता है। इन सिक्के पर एक ओर यज्ञ स्तूप से बंधा हुआ अश्व और दूसरी ओर हाथ में चक्र लिए हुए राजमाहवा का आकृति खुदी हुई है। कुछ सिक्के पर एक ओर या के नीचे अश्वमेध और दूसरी ओर अश्वमेधमहद्र अंकित है। एरण महालय का अनुमान कि अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान के उपलक्ष्य ही कुमारगुप्त ने यह उपाधि धारण की थी।

पुष्यमित्रों से युद्ध—सब तो कुमारगुप्त प्रथम का शासनकाल काफी शान्तिमय था किन्तु उसके राजत्वकाल के अन्तिम दिनों में उमके साम्राज्य की नानामण्डल पर

विपत्ति के बाद न घिर आय था। मीतरी स्तम्भ-लेख के एक श्लोक<sup>१</sup> में म विपत्ति पर प्रकाश पता है। इस श्लोक में पता चलता है कि कुमारगुप्त का वृद्धावस्था में पुष्यमित्रो ने जितनी मर्यादा शक्ति जीर सम्पत्ति वाफा बड़ गई थी (ममुत्तिरनरागान्) गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण करने जा रह्य था। यह आक्रमण रतना मयकर था कि इसके द्वारा गुप्त वंश का राज्य लक्ष्मी विपन्नित हो गई था जिनका फिर से प्रतिष्ठापित करने के लिये कुमारगुप्त प्रथम के वीर पुत्र स्वर्णगुप्त का राजमर पथी पर नट-नट हा जिताना पडा था (शितितलशयनाथ ये न नीता त्रियामा)। परन्तु कठिनाइया के बावजूद भी विजयश्री न गुप्त सम्राट का ही वरण किया।

मीतरी स्तम्भ लेख के श्लोक का कुछ दूसरा अर्थ भी रखा गया गया है। राजद्विकर ने पुष्यमित्राच के स्थान पर यध्य मित्राश्च पाठ का सुझाव प्रस्तुत किया है। इसका यह अर्थ होगा कि स्वर्णगुप्त न युद्ध में (यधि) अमित्रो (शत्रुआ) को पराजित किया था। आगे के श्लोक में लिखा है कि अपन वंश की विलुप्त लक्ष्मी का पुन प्रतिष्ठापित करके स्वर्णगुप्त न अपनी विजय का समाचार अपनी अश्रुपरिप्लवत नेत्रा वाली माता को उमा प्रकार दिया जिस प्रकार विजयी कृष्ण देवकी को मवाद देने गये थे।<sup>२</sup> इन सब वाना सयह अनमान लगाया गया है कि कुमारगुप्त का मृत्यु के अनंतर गुप्त वंश में एक गृह-युद्ध हुआ था। परन्तु दिवकर के युध्यमित्र पाठ के लिये कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं है। जतएव गृहयुद्ध की वान का माना नहीं जा सकता। डा० राय चौधरी ने गृह-युद्ध के सिद्धांत का जिसका पोषण डा आर सी मजूमदार ने किया था काफी सबूत तर्कों द्वारा खण्डन किया है।<sup>३</sup> राय चौधरी साहब का कथन है कि हनरिपुरो से तात्पर्य बाह्य शत्रुआ से है आन्तर शत्रुआ से नहीं। ये शत्रु पुष्यमित्र लाग ही थे। पुष्यमित्रा का उल्लेख अन्यत्र भी मिलता है। विष्णुपुराण के अनुसार पुष्यमित्र लोग नमदा के उत्तम के निकट मेकल प्रदेश में निवास करते थे। पत्नीट न पुष्यमित्रो का स्थान नमदा-नट के निकट वहीं पर निर्धारित किया है।

कुमारगुप्त प्रथम के कार्यों और चरित्र का मूल्यांकन—श्री आर० एन० इण्डर का कथन है कि यद्यपि कुमारगुप्त प्रथम ने प्राय अपनी तुलना देवताओं के समानाधिक से की है तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि वह न तो समद्रगुप्त की तरह बार योद्धा ही था और न स्वर्णगुप्त दिनाथ की भांति मनुष्या का एक निर्भीक नेता ही।<sup>४</sup> किन्तु सय सफलताओं के गौरव स शून्य हान पर भी कुमारगुप्त मद्ब्रादित्य में कुछ ऐसे गुण विद्यमान थे जिनके लिये उमक शासन काल का महत्व काफी अधिक है। कुमारगुप्त का सुधीकालीन शासन मुन शान्ति और समृद्धि के लिए विख्यात है। डा० मजूमदार का कथन है कि इस विख्यात के लिए कारण है कि कुमारगुप्त का दीघ शासन काल सब कुछ मित्राकर शान्तिपूण आर समद्र था और साम्राज्य न उमक पिता तथा पितामह

१ 'विचलितकुललक्ष्मीस्तम्भनायोद्यतेन क्षितितलशयनीये मेन नीता त्रियामा । समदितबलकोशान पुष्यमित्राश्च जित्वा क्षितिपचरणपीठ स्थापिता धामपा ।

२ पितरि दिवमपेते विप्लवा वगलक्ष्मी भुजबलविजितार्थ प्रतिष्ठाप्य भूय । जितमिति परितोषा भातर साश्रुनेत्रा हपरिपुरिव कृष्ण देवकीमम्यपेत । १

३ देखिए *Political History of Ancient India* 11 220-1-

४ आर० एन० इण्डर, ३ *History of the Guptas* p 101



का मय विजया के लामा का पूण रूप स उपनाम किया ।<sup>1</sup> कुमारगुप्त क तरह अमित्रेया म कवल एक ही समय कायवाहा का विवर्ण प्राप्त हाना है आर यह उसक शासन क अन्तिम त्तिनों म वा मइथा जब कि च ममा एक शांतिपूण तथा च शासन व्यवस्था का मवन करत हैं जिसका प्रमार अरव सागर म तकर बगाम का गाी तक या । कवल एक च तथा उदार शासन-व्यवस्था क अवन ह। इतन अविच त्तिना तक इतना विशाल मू भाग रक्या जा सकता था । उमक च्चवमान क अनन्तर शात्र ही हूणा आर अय शत्रुआ का जा पराभव सहन करना पडा मस यह स्पष्ट मिद हो जाता था कि इतन लम्ब शांतिपूण शासन-काल म मा मना की मय निपुणता का हान नहा हान पाया था । यह वान कुमारगुप्त क त्तिन काद कम गारव का मरी है कि इतन अविच दिना तक युद्ध म विग्न रहन पर भी उमने अपन मन्दिना का रण-कुशलता का कम नहीं हान दिया ।

If the legends on coins are any indications of history the power and glory of the Gupta empire seems to be at their height under Kumar Gupta I. We may instance the following legends (1) Vijayavar Ghanapati: the lord of the earth who has conquered the earth (2) Mahatalam Javat: who conquers the whole earth (3) Kshilipatiraj: to Vijay: Mahendra Simha divan j yat: the lord of the earth the unconquered conqueror Mahendra Simha conquers heaven (4) Sakshadiva Narsimha Simha Mahendra like another Narsimha avatar or incarnation of Vishnu is Simha Mahendra (5) Yudhi Simha Vikramah with the valour of a lion in war (6) Vyaghrabala par krama possessed of the strength & powers of the tiger (7) Gupta Kula Nomsas: the Moon in the firmament of the Gupta dynasty and (8) Gupta Kulamalachandra the Moon without spots in the Gupta dynasty

पदवत अमित्रेयिक साम्राज्य का आधार पर डा० राधाकृष्ण मुखर्जी न कुमार गुप्त प्रथम क महवि का प्रदर्शित करन का चप्पा को ह ।

कुमारगुप्त न अपन पिता का धार्मिक महिष्णुता का नाति का पूरा तरह म धारण किया । उमने अपन अमित्रेया म विभिन्न धार्मिक मन्त्रणाया का उच्य किया है । वह स्वयं कालिकय का चडा मकन था किन्तु उमने मूय बुद्ध शिव एव विष्णु आदि देवताआ की पूजा म किमी प्रकार का विघ्न नहा उत्पन्न हान लिया । इसक विपरान उमक अमिलय इम वान क अनक प्रमाण प्रस्तुत करत है कि उसने जाद तथा अन्य धर्मों के प्रति महवा उदारता का परिचय दिया । मालकुवर कदण्ण आर मन्मार अमित्रेया म क्रमश बुद्ध, शिव तथा मूय क प्रति श्रद्धा प्रकट का मर है ।

### स्कन्दगुप्त

कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के अनन्तर स्कन्दगुप्त राजसिंहासन पर बगा । जमा कि पीछ उत्तम किया गया है डा० मजूमदार का विश्वास है कि कुमारगुप्त प्रथम का मृत्यु क बाद उसक पुत्र म राजसिंहासन के त्तिन परम्पर युद्ध छिड़ गया त्तिम

स्वतन्त्र विजयी रहा। उगा अगे भाग्या को भारत मिलाता ह्यो ह्यगत क  
 तिया। परन्तु हा० मन्मथान क इग मय के निग पल प्रमाणों का अभाव है। दुग मी  
 हा स्वतन्त्र भाग्या मय अगे हाय में चाहे त्रिग मरीते के प्रथम विजे रग हो उमो  
 शासन काय क प्रारम्भिक थय तिया अगातिय रगे। हम पीछे पड चुन है कि  
 अपने पिता क समय म उग पयमिया के आक्रमण का सामना करना पग या तिमो  
 उनो विजयधी प्राप्त ह्यो थी। परन्तु अगी इग मन्मथान मन्मथ पर क अति  
 दिना तक मन्मथ न कय पाया। शीघ्र ही एक अय विजय का सामना करना पडा  
 जो पल की अग ता अतिर मयकर थी।

हणा का आक्रमण—स्वतन्त्र के समवादीत लेगा म उमो थय मन्मथ क  
 साय मघय का उन्मय मिनता है जिनम कुछ शक्यता क निग स्पष्ट वा का प्रयाग  
 विधा गया है परन्तु मघय का कर्ष विभक्त विवरण प्राप्त नही है। इना ता निचिन  
 है कि जपन शासन काय म विमी समय स्वतन्त्र को हणा के आक्रमण का सामना  
 जय्य करना प गया। उग योग वर जाति के थे और अपनी शक्ति बडा उन पर  
 व योग्य तथा एजिया को मन्मथीयो म आतक पनाया करने थ। र्मया की उमगी  
 पाँचवा मन्मथी क मय म हणा की एक शाखा ने जिसे स्वतन्त्र बना जाया है  
 जाकमम का घाटा पर अपना अधिकार जमा तिया और फारम तथा भारत क निवा  
 मिया का मयकल कर दिया। उन्मो गाघार को जीत कर वहाँ एक तग राजा को  
 सिहासन पर बडा दिया जा अन्त विम्य और वर था। गाघार के निरामिया के  
 माय हणा न ब ही निरयता का प्रवणर किया और उम पर प्रति प्रति क अत्या  
 चार विर। गाघार क पचात व भारत का सीमा म प्रविष्ट हो गय और गुप्त  
 साम्राज्य क ऊपर अपना नैन मगने नग किन्तु इम समय भारत पर एक थार मन्मथी  
 जोर मन्मथी मन्मथी शासा कय रहा था। यह वीर सेनानी स्वतन्त्र था जिसने पुष्य  
 मिना का पराजित कर जपन पराक्रम और मजदल का परिचय दिया था। उस बाह्य  
 विपत्ति म क तनिक भी नही धरनाया और उसने डककर उसका सामना किया। हणा  
 क माय स्वतन्त्र का जा मघय हणा क निचिम हा मयानक रहा होगा। परन्तु  
 मय मन्मथी कि स्वतन्त्र ने वर हणा के ऊपर विजय प्राप्त की और अपने  
 राम का एक मारा विपत्ति स रक्षा का। हणा पर विजय प्राप्त करने के उपन य मे  
 स्वतन्त्र न दवताओ के निग वलि जनघान करवाये और एक विष्णु मन्मथ का  
 निमाण भाकरवाया। गाघार क पूव म पाँचवी शताब्दी के जत तथा छठी शताब्दी  
 क प्रारम्भ तक फिर कमी घावा दोनन का उग योग मन्मथस नही कर सक।

स्वतन्त्र की शासन-जीति—यद्यपि स्वतन्त्र ने मगन मकट के समय राज  
 मन्मथन पर अधिकार स्थापित किया था और उरुपी वाफी शक्ति इस मकट के निवा  
 रण म समाप्त था। गई थी तथापि उसने शासन व्यवस्था को तनिक भी अच्येनता की  
 दृष्टि म न दखा। उमने अपन रायाराहण क तुरत वा ही प्रान्ताय लागता को  
 नियन्त्र किया। उम काय मारा उमन जपन शासन को मन्मथ करने का प्रयाग किया।  
 उमका शासन व्यवस्था उदारता और नारम्भ के सिद्धांता पर आधारित था। उमन  
 साम्राज्य क दूरस्थ प्रान्ता म भी मावजनिक हित क धार्यो पर ध्यान दिया। एमा ही  
 एक काय था मुराण म मुदशन क्षात का पुननिर्माण जिसका अध्ययन हम नय शायक  
 क जन्मगत करना चाहिए।

६ हणयस्य समागतस्य समरे होम्या धरा कम्पिता भीमावतकरस्य।

सुदर्शन झील का पुननिर्माण—इस पीछ भी सुदर्शन झील के विषय में पता चले है। इस झील का निर्माण चन्द्रगुप्त मौर्य के एक प्रान्तीय शासक पूष्यगुप्त वंश में सुराष्ट्र में गिरनार पर्वत के निकट कराया था। इस झील का निर्माण लोबहित की दक्षिण करवाया गया था। अशोक के समय में उसके प्रान्तीय शासक नृपास्य ने इस झील से नहरें निकलवाई थीं। हर्षदात्मन के विषय में पता चलता है कि अपने अमात्यो के विरोध करने पर भी उसने किस प्रकार अपने यक्षिणान गोप में झील का पुननिर्माण कराया था। हर्षदात्मन के समय में इस झील का बौध्द धर्म का जिसका उसने मरम्मत करा दी थी। स्कन्दगुप्त के शासन काल में गुप्त मन्त्र ? ६ ४५६ में पुन इसका बाध टूट गया जिससे सुराष्ट्र के राज्यों का बन्धन हानि रगा। इस समय सुराष्ट्र में पणदत्त स्कन्दगुप्त के राज प्रतिनिधि के रूप में शासन कर रहा था। पणदत्त के पुत्र चक्रपालित ने स्कन्दगुप्त की आज्ञा पाकर असीम व्यय उठाकर सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार कराया। जब झील का पुननिर्माण का कार्य सम्पन्न हुआ तब सम्पूर्ण ह्रा गया ता चक्रपालित ने चक्रमत अथवा विष्णु का एक मन्दिर बनवा दिया। असीम सं सुदर्शन झील जयवा विष्णु मन्दिर के बाईं भी चिह्न आज अवशिष्ट तथा है।

स्कन्दगुप्त का धार्मिक उदारता—अपने मुयाय्य और बढ़िमान पूर्वजा की भाँति स्कन्दगुप्त ने भी धार्मिक विषयो में दक्षिणता की उत्तरता और महिष्णता का परिचय दिया। यद्यपि वह एक धर्मनिष्ठ ब्रह्मण था तथापि उसने जन और बौद्ध धर्मों का भी समान किया। उसके नाम से विदित जाता है कि वाणव समाजाया गुप्त सम्राट् का धर्म के प्रति भाँ आस्था रखते थे। यथा राजा नरक प्रजा के अनन्तर मरणात् की धार्मिक उत्तरता का उसका प्रजाजना पर प्रभाव पना सामाजिक भी था। उसकी प्रजा का दक्षिणता भी उत्तर और महिष्ण था। बौध्द के एक नेत्र में लिखित होता है कि मन् नामक एक व्यक्ति ने जिमके हृदय में ब्राह्मणों का और परित्राज्जा के प्रति असाह्य श्रद्धा थी जन तीर्थकरा की पौव पापाण प्रतिमा का निर्माण कराया था। इसी प्रकार उत्तर पत्राख से भी इस युग की धार्मिक उत्तरता पर प्रकाश पना है। इस लक्ष से पता जाता है कि युग पर क्षत्रिया ने एक गुप्त मन्त्र का निर्माण कराया था। मन्त्र में नित्य तल्लाप जनान की व्यवस्था करने के लक्षिणता में एक ब्राह्मण ने इतना अधिक रूपमा शान कर लिया था कि उसका व्याज में भी मन्त्र का यह ध्यय पूरा होता रहा। यद्यपि इस समय बौद्ध धर्म उत्तति पर नही था तथापि स्कन्दगुप्त ने इसका उचित सम्मान की दृष्टि में देखा। स्वयं उष्णव हान दूत भी उग बौद्ध विद्वान् बभ्रुवु की सिष्यता प्रणय को थी।

स्कन्दगुप्त के कार्यों की विवेचना—गुप्त सम्राट् का भी जन्म प्राचीन भारत में मन्त्रात् सम्राट् में स्कन्दगुप्त की गणना का चना चान्ति। अपने यरराज राज में ही पुत्राभिवा का जिहाने अपनी शक्ति और सम्पत्ति काभी बड़ा भी थी उसने पराजित कर अपनी वीरता और माहत्स का परिचय दिया। इस कार्य में उसे जिन बलिनाया का नामवा करना पना होगा उनका अनुमान हम करके इस एक बात में भी कर सकते हैं कि उनका सारी सत्त्वध्वात्तन पर ही वितानी पना था। २० मजमन्त्रा भीदरी स्तम्भ उग के साध्य के आकार पर अपना मन्त्र मत लिखा है कि प्रशासिकता की वाचना एक अन्कारिता के वाचज्ज भाँ एमा प्रतीन हाता है कि पुन सुमागुप्त की मना को

‘नितितल्लायनेये येन नीता प्रियाम्ना ।’

स्वतन्त्र विजयी रहा। उसने अपने भाग्य को मांगार में लिया। परन्तु डा० मजूमदार के इस मत के लिए पूर्ण प्रमाणों की आवश्यकता शान्त-मूत्र अपने हाथ में घाते जिग तरीके में घात शान्त का व प्रारम्भिक वष पितान अशांतिमय रहे। हम अपने पिता के समय में उन पूर्णमित्रों के आक्रमण का सामना करने की विजयश्री प्राप्त हुई थी। परन्तु अपनी इस महत्त्वपूर्ण गण दिना तक मन्त्रोप न कर पाया। शीघ्र ही एक अथ विपत्ति का जो पड़ने की अपेक्षा अधिक भयकर थी।

हूणों का आक्रमण—स्वतन्त्र के समकालीन जैवों में उन साथ सघप का उल्लेख मिलता है जिनमें कुछ शत्रुओं के लिए किया गया है परन्तु सघप का कोई विस्तृत विवरण प्राप्त नहीं है। है कि अपने शान्त काल में किसी समय स्वतन्त्र को हूणों के आक्रमण करना पड़ा था। हूण लोग बबर जाति के थे और अपनी शक्ति के योरप तथा एशिया में मन्त्रोपों में आतंक फैलाया करते थे। पाँचवीं शताब्दी के मध्य में मन्त्रोप की एक शाखा ने जिन्होंने हूण आक्रमण का घाटी पर अपना अधिकार जमा लिया और फारस तथा मिया का भयङ्कर कर दिया। उन्होंने गांधार को जीत कर वहाँ ए-सिहासन पर बठा दिया जा जयन्त नित्य और बबर था। गांधार साथ हूणों ने ही नित्यता का व्यवहार किया और उन पर शक्ति चार किया। गांधार के पश्चात् वे भारत का सीमा में प्रविष्ट हो साम्राज्य के ऊपर अपने दान गाने का वित्त इस समय भारत पर जाँर माहमी घोषणा शान्त कर रहा था। यह वार सेनानी स्वतन्त्र मित्रों का पराजित कर अपने पराक्रम और मजबूत का परिचय दिया विपत्ति में व तनिक भी नहीं घबराया और उसने डटकर उसका साथ साथ स्वतन्त्र का साथ सघप हुआ वह निश्चय ही भयानक रहा मन्त्रोप सन्त्रोप कि स्वतन्त्र ने बबर मन्त्रोप के ऊपर विजय प्राप्त का एक भारी विपत्ति में रक्षा की। हूणों पर विजय प्राप्त के स्वतन्त्र ने दक्षिण और पश्चिम अन्तर्धान करवाये और ए निमाण प्राकरवाया। गांधार के पूर्व में पाँचवीं शताब्दी के अन्त में प्रारम्भ तक फिर कभी घावा बोनन का मन्त्रोप लोग दुस्साहस

स्वतन्त्र की शासन-नीति—यद्यपि स्वतन्त्र ने मन्त्रोप मित्रों पर अधिकार स्थापित किया था और उसकी काफी शक्ति मन्त्रोप में समाप्त हो गई थी तथापि उसने शान्त व्यवस्था को तर्क दृष्टि में न देखा। उसने अपने साम्राज्य के तुरन्त बाद में नियन्त्रण किया। इस कार्य द्वारा उसने अपने शान्त को मुदत में उसका शान्त व्यवस्था उदारता और शक्ति के सिद्धांतों पर साम्राज्य के दूरस्थ प्रांतों में भी शाब्दिक शक्ति के बाधों पर एक साथ था सुराष्ट्र में मुदजन चीन का पुनर्निर्माण निम्न का अन्तर्धान करना चाहिए।

कि शासन-सम्बन्धी कार्यों में वह कभी असावधानी नहीं प्रदर्शित करता था। उसका प्रान्तीय शासक के पुत्र चक्रपालित न सुदर्शन क्षील के जीर्णोद्धार में जमीन व्यय के बावजूद भी जिस तत्परता का परिचय दिया उससे स्वदगुप्त की उदार शासन-नीति पर बड़ा समुचित प्रकाश पड़ता है। उसकी सुवर्ण मुद्राय अप ताकृत यून सरया में प्राप्त हुई है और उनमें निवृष्ट धातुआ का कुछ मिलाबट भी है जिससे पता चलता है कि उसके शासन काल में देश उतना समृद्ध नहीं था जितना कि उसका पिता के समय में था। परन्तु इस आर्थिक संकट का प्रमुख कारण था व्यवस्थापन का अक्षय्य जिनका सफलतापूर्वक सामना करने के लिए राज्य का प्रभूत धन व्यय करना पड़ा होगा। इतना हील पर भी स्वदगुप्त ने लाजहित के कार्यों पर समुचित ध्यान दिया और प्रजा के कल्याणाय सुरार्थ जस सुदूरस्थ प्रांत में भी साल का मरम्मत कराई।

पणदत्त का अभिलेख, जो संस्कृत भाषा की एक ललित रचना के रूप में प्रसिद्ध है, हमारे सम्मुख एक सुन्दर तथा मधुरतम साम्राज्य का दिव्य चित्र प्रस्तुत करता है जो एक उत्तम तथा लाजप्रिय शासक के सशक्त शासन के अधीन था। गुप्त साम्राज्य का इस समय का दश बंगाल की खाड़ी में स्थित अरब सागर तक फैला हुआ था तथा गुप्त साम्राज्य के अधीन था जिसकी आन्ध्रप्रदेश का पालन उग्रम द्वारा नियमित उग्रम प्रांतीय शासक, इस विशाल प्रदेश के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक करता था। साम्राज्य की नींव इतनी सुदृढ़ थी कि के अन्तरिक घबराहट या बाह्य भी नहीं थी। साम्राज्य के भी इसका अन्तर्गत का नहीं था। लगभग एक शताब्दी तक साम्राज्य की सीमाओं का एकना शक्ति तथा स्वतंत्रता के प्रतीक रूप में मंडा गया। जिम का ११ (६६० ई०) स्वदगुप्त के शासन के अन्त में शासन का अन्त किया था उग्रम का अन्तिम अतिशक्तिशाली नहा का थी। हमारे पास यह विद्वानों का मत है कि उग्रम का अन्त साम्राज्य के ऊपर शान्ति और समृद्धि का शासन था और साम्राज्य के उत्थान का नहीं। युग अग्रतिवृत्त रूप में असामित मोतक शक्ति तथा यमक की छत्रछाया में मंडा गया था रहा। जब ४६७ ई० में स्वदगुप्त का मृत्यु हुई तो उग्रम का अन्त था कि उसके महान् पुत्रों में जिस साम्राज्य का निर्माण किया था उग्रम का अन्त था अन्त रहा था। उस साम्राज्य का सीमायें किनी प्रकार संकल्पित नहीं थी। पाया था। अतः अभिलेखिक तथा मृदा सम्बन्धी साक्ष्य न यह सिद्ध होता है कि स्वदगुप्त का साम्राज्य बहुत विशाल था जिममें मध्य उगरी मन्त (पश्चिम में काठियावाड़ से पूर्व में बंगाल तक सम्मिलित था)।

### स्वदगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य

स्वदगुप्त के अन्तिम दिन—स्वदगुप्त का शासन काल दगुप्त आक्रमण के प्रत्याक्रमण के कारण विचलित हो रहा था। हूणों ने यद्यपि गुप्त साम्राज्य में बराबरी पराजय प्राप्त की थी। परन्तु हूण इस हार से भी शांत बर्तन मान लेते थे। पुत्र पतिषा एव युराप को आतंकित करने का भी यह व्यवहार जानि मानने को भी पूजाया पण्डित करना चाहती थी। परन्तु गुप्त साम्राज्य ने इस जाति का अभिवादा का मूर्त रूप प्राप्त होने से राक दिया था। अन्ती तक विद्वानों की यह धारणा थी कि स्वदगुप्त

गप्त १ एक बार मार गया था पर कुछ समय के लिए भारत की ओर अपना हाथ नहीं बढ़ाया था। परन्तु अंत में कुछ माघिया ने इस राज्य को तबाह करने के लिए आक्रमण किया। इन आक्रमणों ने स्वर्गगत की शक्ति को कमजोर किया था। अपने शासन की माध्यावस्था में वह न केवल अपने राज्य का रक्षा करना न कर सका। इन आक्रमणों के कारण उस अंत में अन्धकार में पराजय पाया। डॉ० स्मिथ ने अपने मत के समर्थन में लिखा है—

*He was unable to continue the success of his resistance which he had offered in the earlier days of his rule and was forced at last to succumb to the repeated attacks of the foreigners.*

डॉ० पार० डा० बनेजी ने बताया है कि सम्राट स्वर्गगत हूना से लड़ते हुए ही मारा गया था। इसलिए उसका नाम—

*The subsequent history of the reign of Skandagupta is not known to us but the Huna invasions continued and most probably Skandagupta lost his life in trying to stem the mighty flood of the third invasion — Dr R D Panerj*

इन कल्पनाओं का आधार डॉ० वी० पी० मिहल ने प्रस्तुत किया है। उन्होंने कहा है कि उपमुक्त पुर मते के पीछे क्वेत मन्नाशास्त्र का ही हाथ है। स्वर्गगत के पारमिषिक काल के मरुतर सिक्के हम उसके अन्तिम शासन काल में नहीं प्राप्त करते। सिक्का का घिस जाना या कम मूल्य के सिक्कों का प्रचारित करना यह प्रकट करता है कि शासन जन्तुम दिना में कठोर समय से गुजर रहा था। सिक्का की विशेषता के आधार पर उपकल्पना का निर्माण प्रस्तुत करा। कल्पना के सागर में डबकी लगाता पता है। बहुत कम ही गोतावार का समय की तरह में माला प्राप्त है। डॉ० स्मिथ एवं डॉ० बनेजी आदि विद्वानों का यह कहना कि हूण आक्रमणों के कारण स्वर्गगत का कुछ भाग विदेशी प्रभुत्व में आ गया था पूरे रूप में असिद्ध ही चुका है।

*If Chandragupta Maurya liberated the country from the yoke of the servitude of the Greeks if Chandragupta II destroyed the power of foreign S. S. Skandagupta saved the empire and the country from the occupation of the Huns.*

*A History of the Guptas B P Sinha overseer Allen*

सम्राज्य का चंद्रगुप्त मौर्य एवं चंद्रगुप्त विक्रमादित्य की पवित्र भू-जाने वाला यह मन्नाशास्त्र भारत की सुरक्षा का बड़ा कर्तव्य सिद्ध हुआ। इस संश्लेष की जनकरी में भारत पुनः स्वतंत्रता के लिए विद्वानों आक्रमण से मुक्त रहा था।

कुमारगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात् महान गुप्तवंश का पतन में विवाद उपस्थित हो जाता है। बशावतों के जमाव में हम निम्न निम्न भागों के आधार पर एक ही मतों का स्वरूप बनाने का सत्पर होता पता है। एतिहासिक तथ्यों के कारण निम्न इतिहासकारों ने निम्न निम्न मुद्दों का स्वरूप बनाया है। उनका बशावतियों परस्पर विचार है। दूसरे महत्त्व में अपना पुस्तक *A History of the Guptas* में नरना का प्रथम निम्न प्रकार से रखा है—

- |                            |                         |
|----------------------------|-------------------------|
| (१) कुमारगुप्त प्रथम       | (७) तयागतगुप्त          |
| (२) स्कन्दगुप्त            | (८) बालादित्य नानुगुप्त |
| (३) पुष्यगुप्त             | (९) वज्र                |
| (४) नरसिंह गुप्त बालादित्य | (१०) विष्णुगुप्त        |
| (५) कुमारगुप्त द्वितीय     | (११) वन्धगुप्त          |
| (६) वट्ट गुप्त             | (१२) द्वान्शादित्य      |

पण्डु डा० बी० पी० सिन्हा (B P Sinha) ने आधुनिक अन्वेषणों एवं प्रसंगगत व आचार पर परवर्तीमहान गुप्तों की विभिन्न सूची तयार की है। इनके अनुसार क्रम इस प्रकार था—

- (१) कुमारगुप्त प्रथम
- (२) पुष्यगुप्त
- (३) स्कन्दगुप्त
- (४) कुमारगुप्त तृतीय
- (५) वट्टगुप्त
- (६) नरसिंहगुप्त बालादित्य
- (७) वज्रगुप्त
- (८) कुमारगुप्त तृतीय
- (९) विष्णुगुप्त

डा० वा० पी० सिन्हा का ब्रह्मावली मठ के समीप अधिक प्रतीत होती है अतएव हम उन्हें व क्रम द्वारा महान गुप्त नरेशों का वर्णन करेंगे।

मुद्राशास्त्र का अध्ययन से हम कुमारगुप्त का नाम की दो प्रकार की मुद्राओं का पता चलता है। इन मुद्राओं का अध्ययन से यह भी पता चलता है कि इन नरेशों ने निम्न समयों में राज्य किया था क्योंकि सिक्कों की शृङ्खला में अत्यधिक मूल्य अन्तर प्रतीत होता है। प्रथम वर्ग की मुद्रायें ७९ प्रतिशत की मात्रा में स्वर्ण गणती हैं जब कि दूसरे वर्ग की मुद्रायें केवल ५४% स्वर्ण या बनी हुई हैं। इन शानों की गणना का आधार ब्रिटिश संग्रहालय का प्रयोगशास्त्र है। दूसरे वर्ग का मुद्राएँ एक विभिन्न अन्तर का अपन म सम्झाए हुए हैं। ऊर्ध्व भाग (obverse) में नरेश का नाम मंगा या ज अंकित है। जब कि प्रथम वर्ग की मुद्राओं में ऐसा नाम अंतर नहीं उल्लेख है। इस विशिष्टता से भी यह पता चलता है कि विभिन्न नरेशों का अंतर निश्चय है। अन्तर का कारण यही तब ही सम्मित नहीं है जबकि शानों मुद्राओं का स्वर्ण का निम्न भाग निम्न कालों का प्रतीत होता है। एलेन (Allen) महादय ने इन लिपियों का मूल में विवेचन करने का पदचान यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रथम वर्ग की मुद्राएँ दूसरे वर्ग की तुलना में प्रारम्भिक काल की हैं। डा० बा० पी० सिन्हा ने भी इन दो वर्गों की मुद्राओं का वर्णन का अंतर स्पष्ट करत हुए लिखा है—

The two types of coins are so different in finish, style, purity of metal, legend on the inscription and paleography by that except for the common reverse title *Krameditya* and *Ku* in the obverse is nothing to take them as issued by one and the same king

इस प्रकार डा० बी० पी० सिन्हा का अनुसार एक कुमारगुप्त तनाय या महान गुप्तवंश की शाखा का सदस्य था। इस कुमारगुप्त तनाय का विषय में यथास्थान वर्णन किया जायगा। कुमारगुप्त द्वितीय का शासन सम्भवतः ४७५ ई. में समाप्त हुआ था।

### बुद्ध गुप्त

— — —

शा। बुद्ध विमाना  
उत्तम शक्रादित्य  
या इस प्रश्न पर

एक सम्मति का अभाव में हम कुछ नहीं कह सकते कि कुमारगुप्त का बुद्धगुप्त से किस प्रकार का सम्बन्ध था। इस पर भी तथ्या का अभाव है। अल्टकर महोदय ने उसे कुमारगुप्त प्रथम का पुत्र माना है। अल्टकर महोदय की सम्मति का आधार मुवान च्वांग का बतन है जिसके अनुसार बुद्धगुप्त शक्रादित्य का वंशज था। शक्रादित्य को अल्टकर ने कुमारगुप्त प्रथम माना है और इसी एकात्मकता के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है। डा० बा० पी० सिन्हा एवं अन्य विद्वानों ने कुमारगुप्त द्वितीय की शक्रादित्य में एकात्मकता स्थापित की है। इसी एकात्मकता के आधार पर उन्होंने बुद्धगुप्त का कुमारगुप्त तनाय का पुत्र माना है। नागदा मीन की प्राप्ति से हमारा अब तक का अनुमान व्यर्थ सिद्ध हो गई है। इसका अनुसार बुद्धगुप्त ही बुद्धगुप्त का पिता था। तानाथ जिनसे म बुद्धगुप्त की सबसे प्राचीन तिथि ४७६ ई. दी हुई है। इसमें यथा अनुमान निकाला जा सकता है कि बुद्धगुप्त का शासन का प्रारम्भ ४७५ ई. में ही सही माना जायगा। ४९५ ई. में आमपास तक उसका शासन भारत का एक विस्तृत प्रान्त पर स्थापित रहा था।

अधिकतर इतिहासकारों की यह धारणा है कि बुद्धगुप्त के पञ्चान् महान गुप्त राजवंश का गौरव नष्ट हो गया था। बुद्धगुप्त ही महान गुप्त राजवंश का अन्तिम



रिखे था। उन्हीं के समय तक गुप्त साम्राज्य सुरक्षित रहा था। उनके बाद स गुप्त साम्राज्य का पतन होना प्रारम्भ हो गया था। एक विद्वान के विचार देविए—

When Skandagupta passed away in 467 A D the empire perished

इस तरह एक अर्थ महादय के विचार देविए—

'The rapid decline of Gupta sovereignty after Skandagupta's death'

परन्तु विद्वानों के यह कथन हमस्वीकार्य नहीं है क्योंकि गुप्त साम्राज्य को पूर्णतया सुरक्षित अवस्था में बुद्धगुप्त ने रखा था। डा० बी० पी० मिहा के मतानुसार— बुद्धगुप्त के सामन्ता के अभिनवता के आचार पर डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने भी बुद्धगुप्त के युग में गुप्त-साम्राज्य का सुदृढ़ अवस्था का संकेत किया है—

The theory of the break up of the Gupta empire in the latter years of Skandagupta due to repeated and successive invasions of Hunas must be given up

बुद्धगुप्त के सामन्ता के अभिनवता के आचार पर डा० राधाकुमुद मुखर्जी ने भी बुद्धगुप्त के युग में गुप्त-साम्राज्य की सुदृढ़ अवस्था का संकेत किया है—

It will thus appear that the empire under Buddha Gupta recovered its position & prestige after the dark days following the death of Skanda Gupta

अब हम बुद्धगुप्त के साम्राज्य विस्तार से अपने उपरोक्त कथन का सत्यता को उद्घटित करेंगे। ४८२-४८३ ई० के १० ताम्रपत्र अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इन्हें दामोदरस्यान पर प्राप्त किया गया है। इन दामोदरताम्रपत्रों पर परमादित्य परममहाराज महाराजाधिराज श्री बुद्धगुप्त पृथ्वीपति उक्तीण है। कुमारसप्त प्रथम के अभिलेख में भी नरेश के नाम के आगे ऐसी ही साम्राज्यवादी उपाधि जाी गई है। यह उपाधि अनिवाच्य रूप से इस तथ्य का बोध कराती है कि गुप्ता का प्राधिकार अविश्रुत रूप में कुमार गुप्त प्रथम के शासन काल में बुद्धगुप्त के समय तक स्थापित रहा था।

इसी प्रकार अनुभव दामोदर प्लेट से हम काकामुख स्वामी के एक मन्दिर की ओर संकेत प्राप्त होता है। इस काकामुख स्वामी के स्थिति निश्चयन के विषय में विभिन्न मत हैं। त्रिनाथचन्द्र मरकार ने इस मन्दिर को शिव के एक रूप का आराधना केन्द्र माना है। वसाक ने भी इस तुम्हा देवी का उपासना स्थान स्थापित किया है। दोनों इतिहासकारों का सम्मति में यह मन्दिर हिमालय क्षेत्र में स्थित था और इस प्रकार बुद्धगुप्त के काल में पुण्ड्रवर्धन का विस्तार उत्तर में हिमालय के भूभाग तक था और गङ्गा नदी नैपाल भी उसके सामने में स्थित था। इसी नैपाल में बराह क्षेत्र की स्थिति निर्दिष्ट की गई है।

४८४ में बुद्धगुप्त ने अपनी राजसत्ता मध्य प्रान्त तथा मानवा के कुछ भाग पर स्थापित कर ली थी। उसके एक अभिनवता में हम पाते हैं कि उसके एक सामन्त उस समय घमना एक नगरी के मध्यवर्ती प्रदेश पर शासन कर रहा था। सामन्ताय अभिनवता एरण अभिनवता तथा दामोदरपुर ताम्रपत्र यह स्पष्टतया सूचित करते हैं कि बुद्धगुप्त के साम्राज्य में काशी का प्रदेश मध्य भारत तथा बंगाल सम्मिलित थे। एसन (Allen) एक स्थान (Panth) महानुभावों की यह धारणा कि बुद्धगुप्त मानवा

का प्राचीन शासन का निमूल सिद्ध हो गई है। इस सम्राट न चौथी क मिला चनाए थ और यह सिक्के वस्तुतः उसका महानता एव गौरव क प्रतिनिधि है।

छठी शताब्दी क प्रारम्भ म या पाँचवी क अन्त म हूणा ने पुन भारतीय पर आतक एव रक्त का द्रवण करना प्रारम्भ कर दिया था। तारमाण का एरण अभिलख जाक उसक शासन काल के प्रथम वष म प्रचारित किया गया था निरवय रूप स बुद्धगुप्त क एरण अभिलख क बाद हा जिस उत्तर ४८४-८५ ई० म प्रचारित किया था हूणा का गुप्त साम्राज्य क एक भाग पर प्रभुत्व का सूचक है। यह विजय बुद्धगुप्त की मत्तु क पचात् हूणा का प्राप्त हुई होगी या सम्भवत बुद्धगुप्त के अन्तिम म्ना म वह वस्तुतः अपन जीवन भर अपन साम्राज्य की सुरक्षा क लिए जागरूक रहा हागा। लाकिन बुद्धगुप्त के पदचात महान गुप्त वंश वस्तुतः महान नहीं रह गया। उसका राज्य एक छाटा-सा सीमा म परिमित हो गया था। डा० वा० पी० सिंहा ने लिखा है—

The death of Budhagupta constitutes turning point in the history of empire and India

### बुद्धगुप्त के उत्तराधिकारी

बुद्धगुप्त क पदचात् गुप्तवंश का पतन बड़ा द्रुतगति स होना प्रारम्भ होता है। समुद्रगुप्त एव चन्द्रगुप्त द्वितीय क वंशजा की एसा परिस्थिति देखकर कही निराशा का प्राप्ति हाती है। स्वयं डा० बी० पा० सिंहा न भी कहा है—

Now the later history of Magadha read in contrast to Mauryan greatness and Gupta splendour reads like a parody of its own past  
B P Sinha

### नरसिंह गुप्त बालादित्य

दण्डकर महादय न ह्येनसाग के चरित के आधार पर बुद्धगुप्त का उत्तराधिकारी तथागत गुप्त का माना है। उन्होंने नरसिंहगुप्त बालादित्य को पुरुगुप्त का उत्तराधिकारी माना था। परन्तु डा० सिंहा ने नूतन खोज के आधार पर यह सिद्ध कर दिया है कि बुद्धगुप्त के उपरान्त ही नरसिंह गुप्त बालादित्य सिंहासनारूढ़ हुआ था। यह दोनों परस्पर औरस भाता थ। नरसिंह गुप्त के सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। इन सिक्के क उवभाग म नर नामक श उल्लेख है और अधोभाग मे श्री बालादित्य उल्लिखित है। यह स्वयं मुद्राए इसी सम्राट द्वारा प्रचारित की गईं था एसी पूर्ण सम्भावना है।

नरसिंह गुप्त के ही दरबार म वसुवधु नामक दाशनिक बतमान था अतएव परमाय ने बालादित्य का एकात्मकता नरसिंह गुप्त बालादित्य से ही स्थापित की है। इसी प्रकार आय मज्झा मूलवत्प म अकित बाल की एकात्मकता मा इसा नरेश से कर सकत ह।

जा विद्वान नरसिंहगुप्त को पुरुगुप्त का उत्तराधिकारी सिद्ध करते हैं वे उपयुक्त एकात्मकताओं की नहीं मानत हैं। ह्येनसाग क बानागुप्त के साथ वह नरसिंहगुप्त बालादित्य का समीकरण नहा स्वीकार करत हैं। वसुवधु के काल निश्चयन के विषय म विज्ञाना म मतभेद है। इन विपक्षिया ने वसुवधु का स्वगुप्त क दरबार का दाशनिक माना है अतएव परमाय द्वारा स्थापित एकात्मकता भी उन्हें अस्वीकार है।

परन्तु इन इतिहासकारों के तर्कों में कां विन्द जायत नया प्रकाश होता है। अतएव हम डा० वा० पी० सिन्हा के ही मत का मानते हुए आगे बढ़ना चाहिए। नरसिंहगुप्त बालादित्य का साम्राज्य बंगाल से उत्तर तक फैला था। उदा. या साम्राज्य का मुख्य नगरा थी। अवध में उसका मुद्रा प्रसारित मात्रा न जानकर ही वाजसिंहगुप्त सचयन में इनका महत्त्वा पयाप्त था। नरसिंहगुप्त ने उत्तराखण्ड में एक मुद्रा प्राप्त हुई है। इसी नरसिंह के कद सिक्के नाहर मण्डल में प्राप्त हैं। वजसिंह का बंगाल साहित्य परिषद् के सचयन में भी इस मुद्रा का कुछ मुद्रा है। बंगाल से वजसिंह जिले में एक नए मुद्रा प्राप्त हुई है।

इस प्रकार इस नरसिंह का साम्राज्य पयाप्त विस्तृत था और इसमें गुप्त साम्राज्य के सफल गौरव का पुनस्थापित करने के लिए पुन प्रयास किया था। इसका अपन प्रयत्न में पयाप्त सफलता भी हस्तगत हुई थी। डा० दण्डकार ने कहा है—

नरसिंह गुप्त ने वाषा अशा में गुप्त साम्राज्य के नाम्य का गीटाया। मात्रा मूलवत्प में बढ़ा गया है कि वाजसिंह का शासन का उत्तराखण्ड और कच्छका संरक्षित नि सफल अक्षय्यम् था। यह स्वाभाविक है कि इस वजन का हम वाव्यात्मक बलिषयानित समझे और ऐतिहासिक दृष्टिवाण में हम इस पूणतया स्वीकार नहीं कर सकते। परन्तु उसके सिद्धों की अधिक महत्त्वा और उनका भारा वजन अवश्य इस धारणा का समर्थन करते हैं कि नरसिंह गुप्त ने अपन वश के विलुप्त गौरव का पुन अर्पित करने का प्रयत्न किया और अपन इस प्रयत्न में उस कुछ अंश तक सफलता भी प्राप्त हुई। य सिक्के बंगाल में बिहार या उत्तर प्रदेश की अपभा अधिक सख्या में पाये गये हैं। *A History of the Guptas*

मजुधा मूलवत्प ने इस सम्राट का चक्रवर्तिन की सना नी है। इसमें यह स्पष्ट है कि अशा गुप्त साम्राज्य एकदम पतना मुक्त नहीं हो गया था बल्कि जिन भूभागों का शत्रुता ने विजित भी कर लिया था उस उस सम्राट ने वापस लेकर वश का पुन मया का फिर से स्थापित करने का प्रयास किया।

द्रोणासिंह की समस्या—एक अभिलेख में यह उल्लिखित है कि सम्राट ने द्राणसिंह का महाराज का उपाधि से विभूषित किया था। इस वाय के लिए स्वयं सम्राट ने पत्न्या का यात्रा की था। इस सम्राट के नाम का उल्लेख हम नहीं प्राप्त होता अतएव इसका अभाव में इतिहासकारों ने अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का कमाल दिखाया है। जकसन (Jackson) Cambridge History of India में लिखा है कि यह सम्राट यशाधमन का एक पुत्र ही रहा होगा। यशाधमन मानवा के एक नए उपाधि हात हुए राज्य का स्वामी था। फ्लीट (Fleet) ने यशाधमन का ही द्राणसिंह का स्वामी माना है। हानसा (Hoernle) ने लिखा है कि उस समय यशाधमन का मालवा में शासन ही नहीं था। अतएव वह किस द्राणसिंह का स्वामी हो सकता है? कनिंघम (Cunningham) की सम्मति में बुद्धगुप्त द्राणसिंह का स्वामी था। डा० वा० पी० सिन्हा ने नरसिंह गुप्त बालादित्य का ही यह सम्राट माना है। सम्राट ने उस समय जब कि द्राणसिंह ने हूणा के विरुद्ध सफलतापूर्वक अभियान किया था वजसिंह के भद्रक वश के महत्त्वायक का प्रसन्न करने के लिए यह पुरस्कार प्रदान किया था। इस व्यक्तिगत मात्रा के पीछे एक कृतीति का भाव का भी देखा जा सकता है। इसी दृष्टि से वा सपत्तात हुए डा० जी० पी० सिन्हा ने लिखा है—

The event may be interpreted as a diplomatic move of Narasimhupta to rally round him the rising and erstwhile independent dynasty of Mastrakas of Valabhi.

यह सब जानने से कि मगध महान गुप्त वंशाय सम्राट् के सामने थे। अतएव जिस स्वामी ने अपन नामन्त पर महाराज का मङ्गल रखा था वह स्वामी गुप्त सम्राट् नरसिंह गुप्त वाताण्डिय ही सम्भवत था।

प्रकटादित्य की समस्या—तोरमाण न हर्षों की विधान मना लेकर गुप्त साम्राज्य का पददलित करना प्रारम्भ कर लिया था। ठूणा का जहाँ गुप्त साम्राज्य की पतना मुख अवस्था से अपना भीमाए विस्तृत करने का अवसर प्राप्त हुआ था वहाँ देश की आन्तरिक विघटनकारा प्रवृत्तियाँ न भी उन्हें इस काय के लिए आमन्त्रित किया। प्रकारारण्य नाम का नरसिंह गुप्त का एक प्रतिद्वन्दी कारागार के सींगला में बन्धा था। अतएव तोरमाण न जब ५०२ ई० के लगभग नरसिंह गुप्त वाताण्डिय को पराजित किया तो उसने इस प्रतिद्वन्दी का कारागार में मकल किया और उस का नाम मित्र सनाहट किया।

प्रकटादित्य का एकारमकता के विषय में डा० बी० पी० सिन्हा का कहना है कि यह नरसिंह गुप्त का पुत्र था। इसकी माता का नाम महारानी घवला त्रेवी था। कुमारगुप्त तृतीय भा इसी नरेश का पुत्र था परन्तु यह महारानी श्री मित्रदेवी की मम से उत्पन्न हुआ था। किसी कारणवश सम्राट् ने प्रकटादित्य को कारागार में डाल दिया था। तोरमाण न परिवार को फूट का पूरा लाभ उठाना चाहा क्योंकि घर का नाम ही नका डाल सकता है।

## वैन्य गुप्त

दण्डकर ने यह माना है कि बुद्धगुप्त के पश्चात् वयगुप्त नामक नरेश सिंहासनारूढ़ हुआ। उसके कानकमानुसार यह ५०६-०७ ई० तक सिंहासन पर रहा। परन्तु डा० वा पी० सिन्हा न एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जा सिद्धांत डा० सांख का कल्पना की उगल है प्रतीत होती है। उनके अनुसार नरसिंह गुप्त की पराजय

वयगुप्त नामक नरेश सिंहासना  
रूढ़ हुआ। उसके कानकमानुसार यह ५०६-०७ ई० तक सिंहासन पर रहा। परन्तु डा० वा पी० सिन्हा न एक सिद्धांत का प्रतिपादन किया है जा सिद्धांत डा० सांख का कल्पना की उगल है प्रतीत होती है। उनके अनुसार नरसिंह गुप्त की पराजय

जाव। जब नरसिंह गुप्त परास्त हो गया और वह बिन्ही जगदी में जाकर छिप गया तब वयगुप्त ने मगध का शासन संभाला। तोरमाण के पति कृतनता का प्रदशन तो उसने पग पग पर उमर जादश मानकर किया। एक विदेशी आक्रामक की इससे बड़कर श्रेष्ठ परिस्थिति और क्या हो सकती है। वयगुप्त का शासनकाल ५०४ से ५१४ ई० के लगभग रहा गया एमी डा० सिन्हा की राय है।

डा० सिन्हा ने इस जरीबागरीव थियोरी (Theory) के लिए मुद्राशास्त्र का आधार दिया है। एमी मुद्राशास्त्र के साक्ष्य के विवेचन के आधार पर नरसिंह गुप्त नरेश वा राय किया था का नाम जाता है। नरसिंहगुप्त के सिक्के दो प्रकार के पाए गए हैं। ब्रिटिश म्युजम ने प्रयागशासन ने प्रथम वग के नरसिंह गुप्त के सिक्के म (५६०-B M C) ७१° मुद्रण की मात्रा देपी है। नरसिंह गुप्त के दूसरे वग

नरसिंह (१६५-B V C) केवल ४४० मन्त्रों से युक्त है। बन्धुगुप्त द्वारा लिखे गये नरसिंह (५८९) ८०० मन्त्रों से युक्त है। हमने डा० मित्रा ने नरसिंह निकाला है कि इन दोनों के निकट के बीच में बन्धुगुप्त के लिखे गये हैं। अतएव बन्धुगुप्त का राजनरसिंह के राजकाल के मध्य महा स्थापित हुआ।

कुछ विद्वानों ने बन्धुगुप्त के आगे हुए चीनी यात्री या दण्डित तथागत के की एकात्मकता इसी बन्धुगुप्त में की है। यह एकात्मकता मानने में हम को मनाव है।

## नरसिंह गुप्त का पुनरासीन होना

बन्धुगुप्त का सिंहासन काफ़ी चत्वार्यो रहा। इसी प्रष्टि हमें इस गेग क मितकों में होता है। केवल तीन ही मन्त्रों अब तक इस नरेश द्वारा प्रसारित हमें प्राप्त हुई हैं। हमें मन्त्रों एवं अमिलेखा से यह पता चलता है कि बन्धुगुप्त ने बन्धुगुप्त एवं गोपपद दोनों का सामन्त था। गुणगड साम्प्र पत्र में बन्धुगुप्त ने अपनी राजसी बन्धुगुप्त का सामन्त प्रयुक्त की थी जब कि मल्लसाम्प्रहृत साम्प्र पत्र बन्धुगुप्त की ही सीमा गारा जकिन है। इन साला से तो यहाँ निष्कप निकाला जा सकता है कि गोपपद के समय में बन्धुगुप्त की स्थिति बन्धुगुप्त के समय की स्थिति से उची थी। गोपपद के समय में बन्धुगुप्त एवं पूर्वी बगाल का शासक था क्योंकि मल्लसाम्प्रहृत प्लेट तथा परी-पर प्लेट उमका इस स्थिति में हम अवगत कराते हैं। धर्मोदित्य की साम्प्र प्लेट भी हमें इसी स्थान से प्राप्त हुई हैं। पाजिटर (Parziter) ने कहा है कि गोपपद के पूर्व धर्मोदित्य सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था। लेकिन रमशचन्द्र मजूमदार की धारणा है और जो धारणा बलवती है कि धर्मोदित्य के पूर्व ही गोपपद सिंहासन आरूढ़ हुआ था। इन तथ्या से तो हमें यहाँ निष्कप निकालना पड़ता है कि गोपपद के या तो बन्धुगुप्त के नाम का बगाल से उखाड़ फेंका या या उससे उत्तराधिकाररूप में शासन प्राप्त किया था। हमने यह पहले से ही माना है और यही डा० बी० पी० मित्रा का भी कहना है कि गोपपद एवं गोपपद एक ही व्यक्ति के नाम हैं। गोप ने आरमज्जु की मूलकल्प के अनुसार नरसिंहगुप्त की सहायता की थी प्रकटादित्य को बाराणसी में हालते के लिए। अतः म बन्धुगुप्त का पन्थ्यन करने के लिए नरसिंहगुप्त ने उससे विरुद्ध विराय का संगठन करना प्रारम्भ किया। गोपराज ने अभिषेक से भी यह पता चलता है कि बन्धुगुप्त तथा गोपराज ने मिलकर मासवा भक्षण के आधिपत्य के विरोध में भाषण मन्त्राण किया था। यह सन्ध्याम हथो के भारत में बड़े हुए प्रभाष को अवरुद्ध करने के लिए किया गया था। सन्ध्याम के परिणाम के विषय में हम कुछ भी नहीं कह सकते परन्तु इतना तो निश्चय है कि इसने मिहिरगुप्त को पर्याप्त परेशानि में डाल दिया था। अतः म बगाल में बन्धुगुप्त का अधिकार उगा फेंका गया और मगध पर मा अय भारतीय नरेशा ने प्रभुत्व जमा लिया और बन्धुगुप्त का प्रभुत्व गारा गया। बन्धुगुप्त के शासन का समाप्ति पर पूरा एक एकी परिस्थिति उत्पन्न हो गई जिसमें नरसिंहगुप्त अपने अधिकार का सम्हालित कर सकता था और अपनी प्रभुता मगध पर स्थापित कर सकता था। लगभग १० वर्षों के समय तक वह निष्कप सिंहासना रहा था और अतः म ५१५ ई० में उसका भाग्य पुनः उचित हुआ। यिना बिगी मंड के नरसिंहगुप्त को मगध का शासन प्राप्त हुआ गया एवं एण नरेश मिहिरगुप्त ने एमी अवस्था का देखकर गुप्त साम्राज्य से समझौता कर लिया। जिससे दोन नरेशा न एक दूसरे की प्रभुता का सम्मान करना आवश्यक अंग मान लिया। युनाय्त्वाण

न तो कहा है कि नरसिंह गुप्त ने हूण नरेश का प्रभुता स्वीकार कर ली थी और उस वायिक कर वान दना अंगीकार कर लिया था।

नरसिंहगुप्त बुद्धधर्म का उपासक था। जब तारमान की मृत्यु के पश्चात् मिहिर कुल ने हूण का नरत्व समाप्त किया तो बुद्ध के बादल फिर से घिरने लगे। मिहिरकुल बुद्धधर्म के विरुद्ध अत्याय का नाति का अनुगमन कर रहा था। उसी धर्म प्रताप का नाति से जनता एवं नरेश परेशान हो चुके थे। अतएव बालादित्य ने अपने ऊपर स हूणा का प्रभुता ग्रहण करने के लिए इस बहाने का प्रयोग किया। नरसिंह गुप्त के विद्रोह का ग व पाकर ही इस हूण नरेश ने मगध का दिशा में अपने सप्रबन्धन भजन आरम्भ कर दिए। मिहिरकुल का महता सैनिक शक्ति के विरोध में नरसिंहगुप्त की छाया-सा सना ठहर न पाई। नरसिंहगुप्त का बरारी पराजय का सामना करना पड़ा। अतः म लाता का सख्या में अपनी प्रजा के साथ उसने राजधानी तजकर बगाल की खाड़ी में शरण ग्रहण का। मिहिरकुल ने बालादित्य को सम्वत् ५१९-२० ई० के आसपास ही हराया था। उपरोक्त लिखित विवरण हमें युवानश्वरा तथा कन्हण की राजतरिगणों से प्राप्त हुआ है। यशावमन ने अतः मिहिरकुल को पराजित कर दिया था।

स्मिथ (Smith) ने युवानश्वरा द्वारा दिए गए विवरण की प्रामाणिकता में सन्देह प्रकट किया है। उनके अनुसार —

The weight of evidence is now decidedly in favour of the rejection of Yashodharman's story

कुछ विद्वानों की धारणा है कि नरसिंह गुप्त एवं यशावमन ने एक सम्मिलित प्रयास से हूणा का टरकाया था। स्मिथ के यही विचार हैं—

Yashodharman and Narsimhagupta formed an alliance against the Huns

परन्तु एतन् न इस मत का नहीं माना है क्योंकि एतिहासिक तथ्यास यह मेल नहीं खाता—

As contrary to the evidence of both our authorities Yashodharman and the inscription —

फ्लीट (Fleet) ने कहा है कि पश्चिम में मिहिरकुल को यशावमन ने हराया था और मगध की दिशा में बालादित्य ने। इस प्रकार दो विभिन्न कालों में दो विभिन्न हारें हुई थीं।

Mihirkula was overthrown by Yashodharman in the west and by Baladitya in the direction of Magadha

हानला (Hearn) ने कहा है कि नरसिंहगुप्त के सामन्त के रूप में ही यशावमन विष्णुवर्धन ने मिहिरकुल का पराजित किया था।

हरास (Heras) के अनुसार मिहिरकुल का पहिले तो यशावमन ने हराया था और बाद में नरसिंहगुप्त बालादित्य ने।

कुछ विद्वानों ने यशावमन का मिहिरकुल पर विजय का समय ५३३ ई० निश्चित किया है।

Questions

Allahabad University

1. Narrate briefly the Lachan campaign of Samudragupta (1947)
2. Narrate briefly the important events of the reign of Samudragupta (1949)
3. समुद्रगुप्त की दक्षिणार्ध की विजय का विस्तृत विवरण लिखिए। (१९५०)
4. समुद्रगुप्त की द्वितीय विक्रमादित्य भारतीय इतिहास से क्यों प्रसिद्ध है? (१९५१)
5. समुद्रगुप्त के शासनकाल की ऐतिहासिक घटनाओं का विस्तृत विवरण लिखिए। (१९५३)
6. इलाहाबाद स्तम्भ लेख के आधार पर समुद्रगुप्त की विजया का उल्लेख कीजिए। (१९५५)
7. Give full account of the conquests and character of Samudragupta (1956)
8. State briefly the facts you know of the founder of Gupta dynasty Samudragupta and of the extent of his empire. What was the chief reason of the same under his successors? (1958)
9. "गुप्ता के उदय का मुख्य कारण उनका लिच्छवियों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करना था।" गुप्त साम्राज्य के सम्पादन का सफल करते हुए इसकी विवेचना कीजिए। (१९५७)
10. "समुद्रगुप्त का राज्यकाल उसकी भारतवर्ष के भिन्न भागों से द्विविजय का प्रतिवाद है।" विवेचना कीजिए। (१९५७)
11. दिल्लीचंद्रगुप्त नाटक की क्या कोई ऐतिहासिक घटना पर आधारित नहीं है मूलभूतों के आधार पर अपने विचार विस्तारपूर्वक लिखिए। (१९५७)
12. "मेहरोली के लेख की समस्या जटिल है।" इसमें उल्लिखित चंद्र की समानता किस सम्राट के साथ की जा सकती है? विस्तारपूर्वक अपने विचार लिखिए। (१९५७)
13. Discuss the career and achievements of Skandragupta (1958)
14. Account for the downfall of the Guptas (1958)
15. Sketch the career of Chandragupta II Vikramaditya under (a) conquests (b) administration and (c) diplomacy (1959)
16. Describe the career and conquest of Samudragupta (1956)
17. Describe the personality and achievements of Samudragupta as gleaned from the Allahabad Pillar Inscription (1959)

18 Discuss the significance of the rise of the Guptas in ancient Indian history (1958)

19 Form an estimate of Chandragupta as a ruler and conqueror (1959)

20 Write notes on any two of the following —

(a) Historicity of Ramagupta

(b) Identification of Kache

(c) Literary achievements of Gupta period (1959)

21 What were the conditions of religion literature and art in the Gupta period ? (1946)

(1950)

२२ गुप्तकाल को प्राचीन भारत का स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है ? (१९५०)

२३ 'गुप्तकाल प्राचीन भारत का स्वर्णयुग है।' इस कथन की विवेचना कीजिए।

(१९५२)

२४ गुप्तकाल को भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास का स्वर्णयुग क्यों कहा जाता है ? (१९५४)

25 Give a short account of the social and religious conditions of India as described by Fahien (1956)

२६ "गुप्तकाल बहुत दृष्टिकोण, सहनशीलता तथा मित्रभाव का युग था।" इस पर विचार प्रकट कीजिए। (१९५७)

२७ 'लेखों से गुप्त सम्राट की शासन व्यवस्था का पूणतया पता चलता है।' विवेचना कीजिए।

२८ 'लेखों से गुप्त सम्राटों की शासन व्यवस्था का पूणतया पता चलता है।' विवेचना कीजिए।

२९ भारतीय कला में गुप्तकाल का क्या स्थान है। विस्तारपूर्वक लिखिए। (१९५७)

### Agra University

1 Describe briefly the campaign of Samudragupta and identify the territories conquered by him in that connexion (1942)

2 Sketch the history of the reign of Chandragupta II Who was Fahien ? (1943)

3 Describe the various stages of the growth of the Gupta empire (1944)

4 Write a note upon the personality of Samudragupta and discuss his conquest in northern and southern India Who was his successor ? (1945)



- 5 Describe the achievements of Chandragupta II Vikramaditya (1947)
- 6 What are the principal sources of Samudragupta's history? Describe his achievements - (1948)
- 7 What light does the Allahabad Pill inscription of Samudragupta throw on his (a) personal qualities and (b) political career? (1951)
- 8 Summarize the evidence bearing the conquest of western India by Chandragupta II (1952)
- 9 With what justification can the age of the Guptas be regarded as the golden age of ancient Indian history (1956)

### Lucknow University

1 Describe briefly the reign of Skandagupta with special reference to the Huna invasion in the western provinces of Gupta empire

२ "स्कन्दगुप्त का स्वान गुप्तवर्ग के सम्राट् म सर्वोच्च है।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं। कारण सहित लिखिए। (१९५४)

3 Discuss the history of the reign of Skandagupta and discuss the extent of his empire in the western part of India (1956)

४ "स्कन्दगुप्त की मरु के पश्चात् अराजकता तथा कुशासन का पदावण होता है।" प्रधान गुप्तवर्ग के आत्म सम्राट् का इतिहास लिखिए। (१९५७)

### I A S Questions

- 1 Examine the causes of the fall of the Gupta Empire (1947)
- 2 Describe briefly the salient features of the Gupta age (1956)
- 3 Describe the literary and artistic achievements of the Gupta period (1957)

## २२ | गुप्तकालीन सभ्यता और सस्कृति

भारतीय इतिहास में गुप्त-युग का विशय महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। पिछले युग की अंधता और अनक्य व स्थान पर हम गुप्त युग के एक्य और प्रकाश का अंगते है। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद देश में विघटन की जा प्रक्रिया प्रारम्भ हुई वह गुप्त युग के उदय के पूर्व तक जारी रही और यद्यपि सस्कृति का नद अविच्छिन्न तथा अबाध गति से बहता रहा तथापि उसमें उतना वेग एवं प्रवाह नहीं था जितना कि हम गुप्त युग में देखते हैं। अपना महान उपाधि और सफलताओं के कारण गुप्त युग भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग कर्ता है। जाग हम गुप्त-युग के सास्कृतिक जीवन का विशय विस्तार के साथ अध्ययन करेंगे तो सुस्पष्ट सिद्ध हो जायगा कि इस युग के लिए स्वर्णयुग का प्रयोग सबसे समीचीन और सायक है किन्तु हम पहले इस युग का सस्कृति का प्रमुख विषयताओं पर विचार कर लेना चाहते हैं।

मौर्य-युग का सास्कृतिक अवस्था का विवेचन करने समय हमने देखा था कि एक सु-व्यवस्थित शासन व्यवस्था तथा विशाल साम्राज्य की पृष्ठभूमि में सास्कृति विकास का कितना महत्वपूर्ण प्रासाहन प्राप्त हुआ था। गुप्त-युग में आकर यह प्रोत्साहन न केवल स्वतः उत्पन्न हुआ या बरन् यह विशुद्ध मनिय भी था। विदेशी राज्यों का विध्वंस ही जान पर देश में गुप्ता के अधीन एक विशाल साम्राज्य की स्थापना हुई जिसने दशवासिया के जीवन में एक नई चेतना तथा अभिनव स्फूर्ति का संचार किया। गुप्त साम्राज्य का स्थापना न दश में पुन शक्ति समद्धि तथा सुख के युग का मूलपात किया। एक सुन्दर किन्तु उत्तर शासन के अधीन देशवासियों का क्रियात्मक और सजातमक प्रतिभा जागरूक हो उठी। गुप्तकाल में देश की राष्ट्रीय सस्कृति अपनी पूर्णता की पराकाष्ठा पर पहुँच गई। बन्ना ग हागा कि इस पराकाष्ठा के लिए गुप्त नरशा का योगदान तथा उनका द्वारा स्थापित मुशासन जसमें महत्वपूर्ण प्रमाणित हुआ। समुद्र गुप्त ने अपने बाहुबल से जिस साम्राज्य का विस्तार किया और चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने जिसका मरक्षण तथा मवद्धन किया वह समस्त लेकर समुद्र तक (जसिष्णु सिन्धुपुत्र) विस्तृत था। यदि उसका एक सीमा बगान की छाती थी तो दूसरा छोर अरब सागर तक था। यह तथ्य है कि सीमा में गुप्ता का साम्राज्य मौर्य साम्राज्य के अपराध कम विस्तृत था किन्तु यह अधिक स्थायी था। गुप्त साम्राज्य के अधीन कम से कम सम्पूर्ण उत्तरा भारत तो अन्वय था। चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रम ने एक आरवगान तथा दूसरा ज्ञान वाहनक मगणों की विजयध्वजा फहराई। कुमार गुप्त प्रथम ने इस साम्राज्य का मोमा का तनिक भा मकीण या सकुचित नष्ट होने दिया। स्वच्छन्द न बकर हुआ था बकर देशवासियों की कृतपता अजित की और अपने पितामह तथा प्रपितामह द्वारा स्थापित साम्राज्य का उमा रूप में छा। इस प्रकार उगमग एक सा पचास वर्षों तक चार गुप्त सम्राटा न समस्त उत्तरी भारत को एक साम्राज्य शासन प्रणाली के अधीन रखता। इसी तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराने हुए डा राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है—

Much of the material & moral progress of the country was ultimately the out come of its stabilized political conditions. The Gupta Empire was a well organized state which achieved the political unification of a large part of India under the umbrella of its paramount sovereignty establishing a sphere of influence which was much wider than that of direct dominion & administration.

दक्षिण भारत की राज शक्ति, यो के साथ इन गुप्त सम्राटों का मंत्री सम्बन्ध था। यद्यपि दक्षिण के वाकाटक और पल्लव राजवंश गुप्तों के अधीन न थे तथापि उनका श्रेष्ठता को ब स्वीकार करते थे। इस प्रकार गुप्त-युग के विशाल साम्राज्य तथा सम्पूर्ण दशम प्रचलित ताम्रम एवम्भी शासन-पद्धति संस्कृति तथा सभ्यता की उत्पत्ति का उपयुक्त वातावरण प्रदान किया।

गुप्त सम्राटों की कला तथा साहित्यानुगमिता एव उनकी गणशासिता सभ्यता सांस्कृतिक उत्पत्ति को प्रभूत प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। समुद्रगुप्त के यत्नित्व की दिव्यवता करने हुए हम उसकी सर्वोत्तम प्रतिभा से परिचय प्राप्त कर चुके हैं। वह न केवल सुसंस्कृत अभिरुचि का सुयोग्य सम्राट था अपितु विद्वानों और गुणियों का आश्रयदाता भी था। इस योग्य पिता के योग्य पुत्र सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राजसभा कविता और विद्वानों की उपस्थिति में सर्वत्र गौरवान्वित तथा समन्यून रहा करती थी। उसका पुत्र कुमारगुप्त का शासन काल किसी राजनीतिक मफलता के लिए विख्यात नहीं है परन्तु जसा कि हम पीछे देखेंगे यह शासन नया समृद्धि का युग था। कुमारगुप्त को इस काल का गौरव प्राप्त है कि उसी के समय में भारत की सर्वोत्तम न्यायप्रिय-कला का विकास हुआ। स्वर्णगुप्त को यद्यपि हूणों के आक्रमण का मफलता पूर्वक सामना करने के लिए अपने समय और राजकाय का पर्याप्त अण धन्य कर देना पड़ा था तथापि सांस्कृतिक कार्यों के प्रति वह तनिक भी उदासीन नहीं था। विद्वानों का विचार है कि उसी की राजसभा को बसवर्ष नाशक विद्वान सुशाशित करता था। स्वर्णगुप्त के बाद यद्यपि गुप्त-युग की राजलक्ष्मी हनप्रस होने लगी तथापि सांस्कृतिक विकास का क्रम अवरुद्ध नहीं होना पाया। इस प्रकार गुप्तों के विशाल साम्राज्य उनकी मुदुर किन्तु उत्तर शासन-नीति तथा उनकी गणशासिता और विद्वानों एवं कवियों का राजाश्रय प्रदान करने की प्रवृत्ति में देश में कला साहित्य और संस्कृति की अमूर्त पूर्व नमप्रति हुई।

गुप्त युग में सम्पूर्ण भारतवर्ष में एक मुदुर सांस्कृतिक एकरता विद्यमान थी। यद्यपि इस एकरता का प्रतिनिधि बहुत पहने हो चुका था तथापि गुप्त-युग में इसका मुदुर अधिष्ठ पावश हुआ। इस एकरता का आधन थी श्रेष्ठता संस्कृत जिसका इस समय दशक एव छोर से लेकर दूसरे छोर तक समान होना था। संस्कृत में जिनमें उच्चकोटि का मूलनाशक युग था और जिसमें आचार्यजोष कातिलय तथा परिकारण का सम्पूर्ण ज्ञान के निवाहिया का एक सामान्य योद्धिर तथा आध्यात्मिक चेतना में अनुप्राणित कर दिया। गुप्त युग के पूर दशक विभिन्न भाषा में भिन्न भिन्न प्राणियों का प्रयाग किया जाता था जिनमें एक स्थान की विचारवाग्य दूसरे स्थान पर मरुतनापूरक नदी पृथक पाती थी। परन्तु संस्कृत भाषा का प्रयाग न था स्थिति वरुण थी। इस समय एक वपुरधु का मित मरु आचमक हा गया कि वे पतावर न चकर प्रयाग में अपने यहायत शानत का प्रचार करें काची का धमपान का लिए यह मरुव भी मरु

विषयों का ज्ञान और वही का समाश्रित समाजात पर्युत्सुगामित करें और वही का शक्ति क्रियाओं का संचालन करें। यह देश में महान का समान रूप से प्रचार न होना ता साहित्य एका का नावना बना हुआ न हो पाया। गुप्त युग में महान का प्रयाग न केवल शासन सम्प्रदायों में ही होना था और साहित्य दशन और विज्ञान का एक सामान्य माध्यम होना का गौरव भी इस प्राप्ति था। इस युग का बौद्ध और जैन विज्ञान में प्राकृत तथा पाली का प्रति अपना माहत्वाय कर महान का आनाया। महान का प्रयाग न ही भारत और दक्षिणी पूर्वी एशिया का सम्बन्ध का दस्तक दिया।

अभि व्यक्त का एक सामान्य साधन हो जाने से युग में एक वैयक्तिक तथा सत्रया मुखा बौद्धक उन्नति का युग प्रारम्भ हुआ। महान साहित्य का जिनका अभि व्यक्त विज्ञान-गुप्ता का शासन काल में हुआ उतना सम्भवतः किमो मो युग में नहीं हो सका। साहित्यिक प्रगतियों में एकाग्रियों न होकर बहुमुखा थी। यदि महाकवि कालिदास का हम इस युग का मानता उनका द्वारा हम गुप्त युग की साहित्यिक क्रियाशीलता की समृद्धि बहुमुखता तथा उत्कृष्टता का सहज ही अनुमान कर सकते हैं। यदि महाकवि ने रेवुवशम् और कुमारमन्ववम् नामक महानायकों से महान काय क कठवर का समनहन कायाता उन्नत जगत् प्रसिद्ध अभिज्ञानशाकुन्तलम् की भी रचना की जिसका योग स्नह से शकुन्तला ही अविचर कहते हैं। मधुसूतम जस अमर गुण काय द्वारा महाकवि इस पाथिक जगत् में अपना वह यश शरीर छोड़ गये हैं जिसका लिए किसी प्रकार का जराभरणज भय नहीं। सुवयु न वासवदत्ता नामक गुण काय तथा अमरासह न विरयात शत्रुकाय अमरकोप लिखकर युग का साहित्यिक क्रियाशीलता का सवतामुखा होना का आर पुष्ट प्रमाण दे दिया। इस प्रकार महाकाय खण्ड काय नाटक गद्य तथा काय इत्यादि साहित्य के विभिन्न अंग पर रचनायें हुई। पुराणा और रामायण तथा महाभारत का अंतिम प्रणयन और संचालन गुप्त-युग तक सम्पन्न किया जा चुका था। विगुद्ध साहित्य के क्षेत्र में जो सवतामुखा उन्नति हुई उमका दशन हम कलाओं में भी होता है। न केवल वास्तु तथा स्थापत्य कलाओं का ही वरन् चित्रकला सगत तक्षण कला और मुद्रा निर्माण की कला का भी अमृतपूर्व विकास हुआ। अत्रिकाश कला समालाचक मुक्त कण्ठ सम्बोकार करते हैं कि गुप्त-युग में भारत का तक्षण तथा चित्रकलाय अपना उन्नति की पूण परीक्षा पर पहुच चुकी था। दार्शनिक साहित्य का मजन का दृष्टि से भी गुप्त युग का विशेष महत्त्व है यद्यपि इस समय का दार्शनिक साहित्य प्रमुख रूप से आलाचनात्मक ही था तथापि समृद्धि का दृष्टि से यह विशेष महत्त्वपूर्ण है। महायान दशन के सिद्धान्तों पर जितना मुझम और वास्तुत विवचन गुप्त-युग में हुआ उतना जय कला भी युग में नहीं। नागार्जुन का छा कर इस दशन का सव विरयात आचाप इसी युग में हुए जिन्होंने अपने-अपने यथा में भारत का दार्शनिक वाङ्मय को सम्पन्न और समृद्ध किया। यह सचमुच एक प्रघसनाय बात है कि गुप्त काल की बौद्धिक एक मानसिकक्रियाशीलता केवल साहित्य दशन और कलाओं तक ही सामित न रहा वरन् इसका प्रस्फुटन विज्ञान के क्षेत्र में भी हुआ। ब्रह्मगुप्त आयमट्ट और वराहमिहिर इस काल के प्रसिद्ध बज्ञानिक और गणितज्ञ थे जो आज भी श्रद्धा और विदमय का साथ याद किये जाते हैं। गुप्त काल का सवतामुखा बौद्धिक जीवन का विषय में जिसका कुछ विद्वान् बौद्धिक पुनर्जागरण भी कहते हैं एक प्रसिद्ध अग्रज विद्वान् का यह कथन बड़ा महत्त्वपूर्ण है, 'सारनाथ की

बौद्ध प्रतिमार्ण्ड इस जागरण का उत्तना ही प्रतिनिधित्व करती है जितना कि कालिदास का कवितायें। उनके वानावरण में एक नवीन बौद्धिकता व्याप्त थी जिसकी प्रतिच्छा वास्तु और स्थापत्य कलाओं पर उन्नी प्रकार की जिस प्रकार साहित्य और विद्या पर एक प्रकार का तात्त्विक सौंदर्य जा अनक रूपों में हम अपनी पूर्ण पराकाष्ठा पर पड़े हुए यूनान की याद दिनाता है और जीवन का प्रति जपन उदासाह नया साहसिकता की भावना में यह हमें एतिजावध कान के इगनण्ड की स्मृति कराता है। ऐस समय का प्रतिनिधित्व कालिदास यूरपिणीज और शेक्सपीयर जस कवि उन्नी प्रकार करत है जिस प्रकार प्राक्क्रोत्रिवाज तथा सारनाथ का जनाम सक्षक अथवा नय विज्ञान का जन्मदाता जैसे फ्रांसिस बकन तथा आयमट्ट और आकमिणीज करते हैं।<sup>१</sup>

इस चतुर्दिक बौद्धिक नव जागरण को सम्भव बनाने के लिए गुप्तकालीन भारत में एक दशम्य बौद्धिक चिन्तन विद्यमान था। इस युग में पण्डित आत्मारामाचार्य और दृष्टिकान की सकाणता से रहित थे। विज्ञान का ससार को सबसे प्रसिद्ध वस्तु मानते हुए इसको किसी भाँसे से ग्रहण करने के लिए तयार थे। यद्यपि वे यूनानियों का श्लेच्छ मानते थे तथापि उनका वैश्वपिबत पूजन के लिए मन्त्र प्रस्तुत रहते थे क्योंकि उनसे वैश्वानिप का ज्ञान प्राप्त करते थे। ज्ञान के क्षेत्र में अथ जातियों के योगदान का ग्रहण करने में गुप्त भारत के पण्डितों का बाई आपत्ति नहीं थी और वे ज्ञान का प्रसार के लिए उनका प्रयाग करने का सचदा तत्पर रहते थे। इस बौद्धिक भावना ने स्वाभाविक रूप में समाज में तत्कालीनता के वातावरण को प्रतभाहित किया। धार्मिक विचारों को अभिव्यक्त करनेवाले पण्डित तथा विचारक अपने विचारों का पुष्टि के लिए बबल प्राचान ग्रन्थों का प्रमाण प्रस्तुत करके ही मनुष्य नदी हो जाना था, बल्कि मनुष्य का विचार शक्ति पर आधारित तात्त्विक प्रणालियों का विकास करने के लिए प्रयत्नशील रहते थे।<sup>२</sup> इस युग का दार्शनिक चिन्तायें अधिकांशतया आलाचारात्मक हैं किन्तु उनका द्वारा उनके प्रणताओं को मौलिक चिन्तना तथा अन्तर्गत तत्कालीनता के दर्शन होते हैं। हिन्दू धर्म का पद सम्प्रदायों का विकास इस युग में

<sup>१</sup> The Buddhist images of Sarnath are as typical of the awakening as the poems of Kalidasa. A new intellectualism was in the air reflected in architecture and sculpture as much in literature and science—a logical beauty which reminds us in many ways of Greece at its zenith as in its spirit of adventure and of the zest of life it reminds us of Elizabethan England. Of such times poets like Shakespeare and Euripides and Kalidasa are typical as sculptors like Praxiteles or the unnamed masters of Sarnath or the pioneers of a new science like Francis Bacon and Arya Bhatta and Archimedes.—Kenneth Saunders *A Pageant of India* p. 18

<sup>२</sup> इस प्रवृत्ति को अन्तर महाकवि कालिदास ने भी अभिव्यक्ति प्रदान की है। उन्होंने अपने मालविकाग्निमित्रम् नाटक में लिखा है कि जो कुछ पुराना है वही श्रेष्ठ है उसी बात नहीं और न नवीन इतिया ही वाक्य है, यही कहना चाहिए। सत्त लोग परीक्षा करके निष्पत्ति देते हैं। मूल दूतरों के विश्वासों द्वारा परिष्कारित होता है।

पुराणमित्यथ न साम्पु सवम न चापि वाक्य नवमित्यवद्यथा  
सन्त परीक्षया यतरामजतं भूय परप्रत्ययनवद्वि ।'

हूँ आ। इस समय की बौद्धिकता इतनी क्रियमाण थी कि एक विचार को दूसरे म्याना पर पहुँचने में विषय विलम्ब नहीं लगता था। विभिन्न दशन सम्प्रदायों के आचार्य नवीन विचारों का स्वागत करने को मजबूत प्रस्तुत रहते थे। ये परस्पर विचार विमर्श तथा तक वितर्क करके या तो नये विचारों को स्वीकार करते थे अथवा उनका मन्त्र करने का प्रयत्न करते थे। किन्तु इस प्रकार की बौद्धिक सक्रियता इस युग में व्यक्तित्वगत या धार्मिक सकीर्णता की भावना से दूषित नहीं थी। धार्मिक उदारता और सहिष्णुता का वातावरण चारा और विद्यमान रूढ़ता या और विचारों की जिस स्वतंत्रता का उल्लेख हमने मौर्ययुगान्त सस्कृति के सम्बन्ध में किया है उससे अत्यन्त द्विय स्वरूप के दशन हम इस युग में हाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि ज्ञान के प्रति उत्साह की भावना तन्शीलता और अथ स्रोतों से भी ज्ञान विज्ञान के तन् ग्रहण करने की प्रवृत्ति तथा विचार स्वतन्त्रता का वातावरण ये गुणकारीन बौद्धिक जीवन की अपनी निजी विशयतायें हैं जिनका उद्भव तो पूर्ववर्ती युगों में हो चुका था परन्तु जिसका पूण प्रस्फुटन गुप्त काल में हुआ। वास्तव में भारतीय सस्कृति का यह स्वर्ण युग था। इस समय दशन की सस्कृति अपन विकास के जीवन पर था इन्हीं में प्रवृत्तियाँ विद्यमान थी अथवा था कहना चाहिए कि इनकी विद्यमानता के ही कारण भारत के इस अमूल्य बौद्धिक जागरण का उन्मय सम्भव हो सका। अथ विन्वास पुराणामिता पुराणमयी पन तथा अन्तिम सन्नापकी प्रवृत्तियाँ जो कालांतर में भारतीय विचारकों और पण्डितों में आ गई थी और जिनका उत्कर्ष जलबस्ती नामक सुप्रसिद्ध सूक्तिम विज्ञान ने अपने ग्रन्थ में किया है उपयुक्त प्रवृत्तियों की परिधि यती है। यहाँ कारण है कि भारत का मध्य युग के विचारकों में विचार स्वतन्त्रता के म्यान पर पुराणामिता थी और तक के निम्न स्रोत के मत रूढियों के मरप्रदेश में शक हो जाने के कारण उनकी मौलिकता तथा स्वतन्त्र चिन्तन की प्रवृत्ति कुण्ठित हो गई थी।

गुप्त युग के सांस्कृतिक जीवन की यह विशयता है कि जिस सक्रियता और सशक्तता के दशन हमें भाव विचार और बद्धि जगत में हात हैं उसी संप्राणना और स्फूर्ति का संचार हम वम जगत में भी देखते हैं। जिस प्रकार गुप्त युग के कवि की प्रतिभा सजासजा कर उभरती थी उसी प्रकार गुप्त युग के अर्थशास्त्रियों की प्रतिभा पापा

था जिस प्रकार युग के दार्शनिक की मननशीलता प्राचीन ज्ञान के असह्य भार से विभक्त थी और जिस प्रकार युग के वैज्ञानिकों का दृष्टि मत्यावपण के लिए अनाविल तथा मुक्षम था उन्मा प्रकार गुप्त काल के व्यापारियों में भी सांस्कृतिकता तथा सचेष्टता की भावनायें विद्यमान थी और धर्म प्रचारकों के हृदयों में मुद्गर शशा में अपने धर्म का प्रचार करने का उत्साह था। गुप्त-युग के व्यापारियों और धर्म प्रचारकों के हृदयों में जो वारस्य मनम्बित स्वधिषय को सा बिदेशस्तथा की भावना काम कर रही थी और सागर की उत्तान तरणों अथवा विमगिरि की उत्तम चाटियाँ उननी सांस्कृतिकता का दया नहीं सकता था। फलस्वरूप वे जन्मानों में बठकर या ऊटी पर, बठकर विन्शा की यात्रा करने में और वहाँ पर अपने धर्मका प्रचार करते थे अथवा यापार द्वारा वर्ण के धर्म से स्वतन्त्रता को सम्पन्न बनाने की चट्टा करते थे। याज्ञिक और मन्त्रिक के हृदय में भी उत्साहपूर्वक थे और, उन्होंने स्वगुणवत्त द्वारा बिना किसी प्रकार की राजकीय सन्मता के ही, दक्षिणा पूर्वी एशिया तथा म अपने राजनीतिक तथा सांस्कृतिक उपनिवेशों की स्थापना की। अर्जुन के भारतवासियों को इस बात के

लिए कृतन तथा गौरवाचित होना चाहिए कि उनक गुप्त कालीन पूर्वजो ने दक्षिणी पूर्वी एशिया के देशो मे अपना संस्कृति का प्रचार किया और उनके साथ भारत का सुदृढ़ साम्प्रतिक सम्बन्ध स्थापित किया। यह सत्य है कि भारत का विदेशो के साथ अति प्राचीन काल से ही सम्बन्ध रहा है और इस सम्बन्ध की परम्परा उतनी ही प्राचीन है जितनी कि भारतीय संस्कृति तथापि इस बात मे कोई संशय नहीं कि विना मे भारत ने सांस्कृतिक उपनिवेश की स्थापना के विवरण हमें ऐसा की तत्ताय प्रतापी के द्वारा मनी मिलन शुरू होते हैं। जावा सुमात्रा कम्बोडिया कोचीन चान जनाम और बानिया इत्यादि स्थानो मे व्यापारियो घम प्रचारका और सनातियो मे स्वदेश से विना किसी प्रकार का महायता प्राप्त किये हुए ही हिन्दू घम संस्कृति तथा सामाजिक विचारा का फलाया। यदि एक ओर भारत तथा दूसरी ओर चीन के बीच कोई सांस्कृतिक एकता विद्यमान है यदि वल्य म्मारक जो भारतीय संस्कृति के गौरव के एक साध्य हैं समस्त इण्डो चान जावा सुमात्रा तथा कोनिसा मे प्रिये हुए किसी पद्धत हैं तो इसका घम गुप्त युग को है जिम्मे भारतीय संस्कृति को बाहर फलाने की रावना प्रदान की। यहाँ यह बत देना चाहिए कि इन विषय मे दक्षिणा भारत का योगदान उतना ही महान था जितना कि उत्तरी भारत का। यह एक मनोरञ्जक बात है कि इस युग के ब्राह्मण समुदायो मे किसी प्रकार की आपत्ति का अन्भव नहीं करत था हम उन्हें जावा सुमात्रा और बानियो मे जाकर बसत हुए तथा वहाँ का स्थिया के साथ विवाह करत हुए पात हैं। उनमे से कुछ बानियो मे वलिक घना का अनुष्ठान करत हुए दृग्गित हान हैं और अथ (लाग) पश्चिमी एशिया मे ईसा की अनुय प्रतापी तक हिन्दू मंत्रो का पापण करत हुए लिखतापी पत हैं।<sup>१</sup> वास्तव मे गुप्त युग की सजावनी शक्ति इतनी अति थी कि यह दश की साम्राज्य के मानर तक अवच्छेद नहीं की जा सकती था। महा कारण है कि हम भारतीय संस्कृति का जावन घारा को की उपकण्ठ भूमियो मे निवलकर मद्रूरपूर्व और दक्षिणपूर्व एशिया मे फलत हुए पात है। प्राफसर जानल् कुमार स्वामा का मह कथन जितना महत्त्वपूर्ण है तगमगधह सम्पूर्ण जिम्मेका सम्बन्ध एशिया की एकसामाय आध्यात्मिक चेतना से है जिसके द्वारा उभरी विभिन्नताओ को फिर से मिलाया जा सकता है वह गुप्त-युग की शान्ताय उत्पत्ति की ही वस्तु है। Almost all that belongs

<sup>१</sup> If there exists an appreciable cultural unity today between India on the one side and China on the other if valuable monuments which are silent witnesses to the glory of Indian culture are seen scattered all over Indo China Java Sumatra and Borneo the credit must be given to the impulse given by the Gupta age to the spread of Indian Culture outside India. It must be added here that the contribution of South India in this respect was as great as that of northern India. It is interesting to note that the Brahmans of the age had no objection to the sea voyage we find them going to and settling in distant islands like Java Sumatra and Borneo and also marrying local women. Some of them are seen performing Vedic sacrifices in Borneo and others maintaining Hindu Temples in West Malaya as down to the beginning of 4th Century A.D. — Altkar Introduction Sakatka Gupta Age pp 67

## गुप्ता की शासन व्यवस्था

गुप्ता का शासन प्रणाली राजन-रात्मक था। शासन का प्रधान राजा था और उसका शक्ति असीमित था। गुप्त नरेश महाराजाधिराज 'सम्राट परमदत्त' परमदत्त, चक्रवर्ति आदि विरुद्ध धारण करते थे। राजा का तो केवल य मानने का धारणा इस काल में काफी लोकप्रिय हो गई थी। प्रयाग प्रशास्त्रि में सम्राज्य के लिए कहा गया है कि वह एक देवता था जो इस पृथ्वी पर निवास करने के लिए आया था। परन्तु राजा के देवता होने की इस भावना से यह अभिप्राय नहीं था कि वह स्वच्छाचाराचार निरनुशङ्क सत्ता था। यद्यपि उसका शक्ति मिट्टा में अनियमित था तथापि उस अनन्त नैतिक बंधनों का मानना पड़ता था। वह अपने अमात्या की सहायता से शासन-काय करता था जिनके परामर्शों को मानने के लिए बाध्य नहीं होने पर भी वह उनका सुनता अवश्य था। आयावर्त के परम्परागत नियमों का मानना एक मनु राजा के लिए आवश्यक समझा जाता था। यद्यपि आधुनिक प्रजातन्त्रवादी दलों का भाव है गुप्त शासन प्रणाली में कोई लोकतन्त्र नहीं होती थी तथापि जनता का सम्राट का निरनुशङ्कता के दुष्परिणाम नहीं सहने पड़ते थे। ग्राम-पंचायतों और नगर-सभाओं तथा व्यापारिक श्रेणियों को शासन सम्बन्धी कार्यों से सम्बन्धित काफी अधिकार प्राप्त थे जिससे सम्पूर्ण शक्ति केन्द्रीय सरकार अथवा राजा में केन्द्रित नहीं होने पाता था। गुप्त युग के स्मृति ग्रन्थों और अभिलेखों में इस बात पर स्पष्ट जोर दिया गया है कि एक श्रेष्ठ राजा को लोक-कल्याण के कार्यों द्वारा जनता को सुख-कामनाय आर्जित करना चाहिए। इस बात के प्रमाणों का अभाव नहीं है कि गुप्त नरेश स्मृति के आदेशों का समुचित रूप में परिपालन करते थे और जनता की सुख-सुविधाओं पर पर्याप्त ध्यान देते थे। फाह्यान नामक चाना यात्री ने गुप्ता को उदार शासन प्रणाली का जिन शब्दों में वर्णन किया है उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि राजतन्त्रात्मक शासन-व्यवस्था में भी साधारण जनता की व्यक्तिगत अधिकारों का काफी सन्ध्या में प्राप्त थे। चाना यात्री लिखता है 'प्रजा प्रभूत तथा सुखी है। सागरों को अपने घरे की छोटी-मानी बातों का नतीजा ब्यारा देना पड़ता है और न किन्हीं यायाविकारियों या शासकों के यहाँ होकर। जनता के कार्यों में राजा हस्तक्षेप नहीं करते थे। सागरों को गन्धमरुत में जानाने का पूरा अधिकार था और इसके लिए उन्हें विशेष अनुमति पत्र नहीं प्राप्त करना पड़ता था। दण्ड आधुनिक युग का अर्थ भी मनु है। राजा न तो प्रायः दण्ड देता था और न धीरे धीरे शासक बतलता ही। बहुत से अपराधों के लिए केवल दण्ड देना ही व्यवस्था होता था जो अपराध की लक्ष्यता के अनुसार कम ज्यादा हो सकता था। बार-बार दस्युता करने पर दक्षिण करच्छेद कर दिया जाता था। राजकर्मचारियों का नियमानुसार वेतन दिया जाता था जिसमें वे जनता का शापण नहीं करते थे। यद्यपि राजनियम सरल और दण्ड मृदुल थे तथापि अपराधों का सन्ध्या में न होनी थी। फाह्यान के यात्रा विवरण से गुप्ता की शासन प्रणाली पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है और उसके विवरण के आधार पर यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि गुप्ता का शासन प्रणाली उदार और लोकानुरञ्जक होने के कारण स्वयं प्रशसनाय थी तथा राजा का शक्ति अपरिमित होने पर भी वे अनियन्त्रित अथवा निरनुशङ्कता सत्ता थे।

मन्त्रिमण्डल—कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में यह स्पष्ट लिख दिया है कि राजसत्ता का अस्तित्व केवल सहायता द्वारा ही सम्भव है। एक अकेला पहिया चला नहीं



चन सभ्यता अतएव राजा का चाहिए कि वह मंत्रिया का नियन्त्रिण कर आर उसक सत्वरामशौ पर ध्यान द। इन कथन क अनुमार मौर्य शासन प्रणाली म अमात्या का व्यवस्था का गई थी और गुप्त। न इस व्यवस्था का स्वाकार किया था। जसा कि पीछ कहा जा चुका है गुप्त नरश अपने शासन-सम्बन्धी कतव्या का सचानन मंत्रिया क। महायता साकया करत थ। मंत्रिया क लिए सचिव या मंत्रिन् श का प्रयाग प्राय किया गया है। अमात्या तथा मंत्रिया का पद पितृप्रमाणगत होता था (अवय-प्राप्तसाचिव्य)। राजा तथा मंत्रिगण का सम्मिलित रूप स एक सभा होता था जिसका प्रधान राजा होता था यह अनुमान करना सम्भवत त्रुटिपूर्ण न होगा कि सय ममि-कर ध्यापार उद्योग तथा इमा प्रकार क अय विभाग मंत्रिमण्डल क किमा सत्स्य क अधीन कर दिय जात थ और उसका उत्तरदायित्व उस सत्स्य पर छा दिया जाता था। समयानुसार एक हा पदाधिकारी एक स अयिक विभाग का काय सञ्चालन करता था। प्रयाग का प्रशासिकार हरिषेण ममुगुप्त क शासन-काल म तीन पदा-अतर्राष्ट्रीय मत्री कुमाराभात्य तथा यायकत्ता—का मुशानित करता था। स्मृति प्रथा म इस बात का विवचन किया गया है कि सचिवा म किन किन गुणा और याय ताजा का होना आवश्यक है आर अमिल्ला स यह प्रमाण मिनता है कि मंत्रिगण बडे योग्य, शासन-कुशल तथा विद्वान् होते थ।

केन्द्रीय शासन प्रणाली का का-विस्तृत उल्लेख तत्कालीन अमिल्लो म नह किया गया है, किन्तु कुछ प्रधान कर्मचारिया का जिक्र अवश्य किया गया है। य कर्म चारी पूववर्ती युगा की शासन प्रणालिया म अ और इनक नाम भी बस हा या कुछ परिवर्तन के साथ गुप्तकालीन शासन व्यवस्था म ग्रहण कर लिय गये थ। सम्राट क बाद सबसे ऊंचा स्थान पुषराज का होता था। गुप्त कालीन शासन प्रणाली म शासनाधिकार का नियम उत्तराधिकार क ऋपर आधारित होता था किन्तु बहुधा सम्राट अपन उत्तरा िधिकारी का अपन ही जीवन-काल म निर्वाचन कर लता था। मन्त्रा मिविल शासन का अध्यक्ष होता था। महावलाधिकृत (सत्रापति), महादण्डनायक और महाप्रतिहार ये उच्च पदाधिकारिया म प्रमुख स्थान रखत थे। महावलाधिकृत का पद सम्मन्वन सातवाहन राजाजा के कर्मचारी मशासनापति सम्मिलता-जुलना था उसक अधीन महा दवपति (अन्वाराहा सना का निरासक) मटावपति (अन्वाराहा सना का निरासक) अधिकाारी होत थ। महादण्डनायक का पद मूलत कुपाण सम्राज तथा तेलगु देश क इक्ष्वाकु नरशो की शासन-व्यवस्था स ग्रहण किया गया था। इमक अधीन अनेक दण्ड नायक होत थे जिनके ऋपर वह अपना नियन्त्रण स्थापित रखता था। इसी प्रकार महा-प्रतिहार भी कई प्रतिहारा का निरासक होता था। सचिब विग्रहिक एक ऐसा उच्च पदाधिकारी था जिसका नाम सबसे पहले हम गुप्त नेत्रों द्वारा हा मुनत है। यह युद्ध और सचिब का मन्त्रा था या या कहुना चाहिए कि यह परराष्ट्र मत्री था। सचिब-विग्रहिक जिसक लिए महासचिबविग्रहिक' शब्द का प्रयाग किया गया है राजा और सचिब के पूरा सहयोग द्वारा हा अपन कतव्या का सचानन करता था। गुप्त युग क प्रारम्भ में महा-सचिबविग्रहिक का पद बडा व्यम्न और उत्तरदायित्वपूर्ण रहा होगा जिन समय समुग्गुप्त अपनी उत्तर और दक्षिण विजया का योजना बना रहा था। किन रायों का सम्राज्य म मिला सना चाहिए और किनको कर राया क रूप म रहन देना चाहिए आदि वाता का निणय इस उच पदाधिकारी और उसक विभाग क द्वारा ही किया जाता था।

प्रांतीय शासन—शासन की सुविधा के लिये प्रांतों में गणतन्त्र-प्रणाली का विभिन्न-प्रकार का प्रयोग किया गया है। प्रांतीय शासन का नियुक्ति मंत्रालय बनाना था। यह अपने भक्ति का वास्तु आश्रमण तथा जातिगत विपन्नता में रक्षा करने के लिए उत्तरदायी होता था। अपना राज्य सीमा में शांति स्थापना करके मात्राजनित हितों के कार्य करना प्रांतीय शासन का कर्तव्य समझा जाता था। उसे इस बात का अधिकार प्राप्त होता था कि अपने अधीनस्थ कर्मचारियों की वह नियुक्ति करे। गुप्त-काल में प्रांतीय शासन के लिए अधिकतर उपरिकर महाराज पत्तना का प्रयोग किया गया है। गुप्त-शासन का प्रयोग भी मिलता है। प्रांतीय शासन अधिकशासनवादी राजकुल से सम्बन्धित होता था। जितने भी शासन विभाग साम्राज्य का राजधानी में होते थे सम्भवतः वे सभी भक्ति या देश की राजधानी में माने जाते थे। प्रांतीय शासन की रचना सम्भवतः कर्नाट शासन के नमून के आधार पर की गई थी। आधुनिक काल की भांति गुप्त-काल में भी गवर्नरों के शासन काल की अवधि निश्चित नहीं जाना जाता था। प्रांतीय शासन के कार्य-काल की अवधि कम से कम पाँच वर्ष अवश्य होती थी। गुप्त-काल में जिनके द्वारा हम साम्राज्य के समस्त प्रांतों का नाम तो प्राप्त नहीं है किन्तु इन भक्तियों के नामों का उल्लेख काफी मिलता है। पुण्ड्रवर्द्धन भक्ति तारभुक्ति नगरभुक्ति रावन्नीभुक्ति तथा अहिच्छत्रभुक्ति मुकुलेश और सोराष्ट्र आदि।

जिले का शासन—प्रांत जितने भी विभाजित किये जाते थे। जिला के लिए विषय शब्द का प्रयोग किया गया है। एक भुक्ति के अन्तर्गत कई विषय होते थे। पुण्ड्रवर्द्धन भुक्ति में खाडायर पञ्चनगर तथा कोटिवर नामक विषयों के उल्लेख प्राप्त होते हैं। विषय के मध्य प्रधान अधिकारी को विषयपति कहा जाता था। इसकी नियुक्ति बहुधा गुप्त उपरिकर महाराज अर्थात् प्रांतपति ही करता था किन्तु कभी कभी मन्त्रालय भी इसका नियुक्त करता था। विषयपति के लिए रेखा में कुमारामात्य की पदवी प्रयुक्त की गई है। विषयपति के प्रधान कार्यालय का स्थान जहाँ उसका अधिकारण होता था अस्पृश्य कहलाता था। दामोदरपुर के ताम्रपत्र विषय शासन के सम्बन्ध में हम कुछ महत्वपूर्ण सूचना प्रदान करते हैं। इनके द्वारा पता लगता है कि विषयपति का शासन सम्बन्धी कार्यों में सहायता देने के लिए अनेक कर्मचारी थे जिनके नाम इस प्रकार हैं—

नगरश्रेष्ठ—नगर का प्रधान सचिव अथवा ज्योति प्रमुख।

नाथवाह—नगर का प्रमुख व्यवसायी अथवा व्यापारियों के सचिव का प्रधान।

प्रथमकुलिक—प्रधान शिल्पी अथवा शिल्प सचिव का प्रमुख।

प्रथम कायस्थ—प्रधान लेखक।

पुनःपाल—संग्रहाधिकारी।

विषय के इन शासनाधिकारियों के कार्यकाल की अवधि भी कम से कम पाँच वर्ष अवश्य होती थी। पुस्तकान का जोवर अथवा चार अधिकारियों के द्वारा एक मन्त्रिमण्डल का निर्माण होता था जिसका अध्यक्ष विषयपति होता था। शासन के कार्यों में विषयपति अपने मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से परामर्श लिया करता था। इस मन्त्रिमण्डल के अस्तित्व से यह सिद्ध हो जाता है कि नगर शासन में लोकमत का भी कुछ हाथ रहता था। मन्त्रिमण्डल के सदस्य नगर की जनता के विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते थे।

नगर-शासन—इस बात का अनुमान करना सम्भवतः त्रुटिपूर्ण नहीं कि गुप्त काल में नगरों में म्यूनिसिपल शासन का व्यवस्था थी, यद्यपि इस समय के म्यूनिसिपल शासन का विस्तृत विवरण हमें मिला जाता है। मगरास्थनीज हमारी महत्त्वता नहीं करता। स्वास्थ्य और स्वच्छता आदि विषयों का समुचित शासन के लिए प्रत्येक मुख्य नगर में एक समान होता था। इस समाज के अध्यक्ष नगरपति कहलाता था जिसके लिए 'डागिक' शब्द का प्रयोग किया गया है। नगर निवासियों और यात्रियों का नगर बसुल कर 'डागिक' उनका हित के कामों पर व्यय करता था। स्वास्थ्य पर समुचित ध्यान दिया जाता था। यदि कोई मनुष्य मुख्य भाग रानागागर में दरतया भवन के निबट गदगी फलात हुए पकड़ा जाता था तो वह दण्डमाग होता था और उस एक पण दण्ड कर के रूप में देना पड़ता था।

ग्राम शासन—ग्राम उस समय के शासन प्रबंध की सबसे छोटा इकाई था। गाँव का मुखिया जिस ग्रामसभ के तया ग्रामाध्यक्ष कहा जाता था, ग्राम शासन का अध्यक्ष होता था। मुखिया का शासन सर्वोच्चियों में सहायता देने के लिए स्थानीय लोगों की एक सभा हुआ करती थी जिसमें राज केमचारी नहीं होता थे। ग्राम-सभा सरकार के लगभग समस्त बातें या का निबहन करती थी। यह ग्राम की सुरक्षा का ध्यान रखती थी गाँववासियों का भवदमा का नियम करती थी नूमि कर एकत्र कर राजकोष में जमा करती, धर्म और ग्रामवासियों के सावधानी के हित के कार्य करती थी। ग्राम सभा के सदस्यों का निर्वाचन किस प्रकार किया जाता था इसका विवरण हमें प्राप्त नहीं। सदस्यों के लिए 'गला में महुत्तर' शब्द प्रयुक्त है यह अनुमान होता है कि विभिन्न दलों के अगुयों के जो अपने अपने अनुभव और क्षमता के कारण अलग-अलग प्रतिष्ठित एक विस्तृत होत थे सोचमते द्वारा ग्राम सभा का संघन मनातीत कर लिया जाता था। दोमोदरपुर के शास्त्रज्ञों द्वारा ग्राम शासन पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। इन्होंने द्वारा ग्राम सभा के सदस्यों के निम्न प्रकारों का उल्लेख प्राप्त होता है—(१) महुत्तर (२) अष्टकुसाधिकारी—आठ कुसा के मुखिया (३) ग्रामिक—ग्राम के प्रधान व्यक्ति और (४) कुटुम्बिक—परिवार के मुख्य व्यक्ति। ग्राम शासन की सुविधा के दृष्टिकोण से ग्राम सभा उपसमितियों का भी निर्माण करती थी। वृषि, उद्यान सिंचाई, मंदिर आदि के प्रबंध के लिए विभिन्न समितियाँ होती थी। ग्राम शासन के लिए धन की आवश्यकता पड़ती थी जो प्रायः कर द्वारा ग्राम सभाओं को प्राप्त होता था। यद्यपि ग्रामवासियों का मुख्य उद्योग वृषि काय था तथापि लगभग प्रत्येक ग्राम में जुलाहे कुम्हार, बढ़ई, तेल बनाने वाले तथा मुनार इत्यादि भी होते थे जिनके द्वारा ग्राम सभाओं को काफी आय होती थी। ग्रामों की सीमाओं का निर्माण बहुधा दीवानों और नायबों द्वारा किया जाता था। गणतन्त्रवादी म सीमा निर्धारण के लिए नार्मीक प्रयोग के उदाहरण प्रचुरता से प्राप्त होते हैं।

राज्य की आय के साधन—राज्य की आय के साधन प्रचुर और विभिन्न थे। गुप्त काल में पता चलता है कि करों की संख्या गुप्त काल में अठारहवीं शताब्दी तक के नाम हमें ज्ञात नहीं। इसमें कोई संदेह नहीं कि करों में सबसे प्रमुख भूमि कर होता था। वृद्ध स्थानों में नूमि-कर के लिए 'भाणकर' और कुछ स्थानों में 'दण्ड' शब्द का प्रयोग किया गया है। नूमि-कर अथवा कर अनसार कर सातह प्रतिशत की दर पर पशुओं के प्रतिशत एक सगामा जाता था। 'भाणकर' शब्द से यह स्पष्ट है कि कर उपज के अन्त द्वारा वसूल किया जाता था अथवा मूद्राओं के रूप में उपलब्ध होता था। इस प्रकार

अनावृष्टि अथवा अतिवृष्टि के कारण उपज कम होने पर कृषक व ऊर कर भार स्वभाविकरूप से प्रयत्न करके वर्षों की तुलना में हलका पड़ता था।

चुगी करों का उल्लेख गुप्त कालीन अभिलेखों और स्मृतियों में काफी प्रचुरता से किया गया है जिन्हें यह पता चलता है कि चुगी द्वारा भागावतों का पशुधन आया होता था। रीयम जिन वस्तुओं का निर्माण किया जाता था उन पर चुगी लगाई जाती थी। वनों पर गिराई के कारण भूमि तथा खानों पर राज्य का स्वामित्व होना था और उनको राजकोष के अथवा उद्योगों पर उठाकर राज्य का काया प्राप्त करता था। जंगल राजकोष का एक प्रमुख स्रोत समझा जाता था जिनका प्रचुर गौलमिक नाम कर्मचारी कर्मचारी होता था। गुप्तों के समकालीन वाक्यांश नरेण के लेख में पता चलता है कि गृहपशुओं तथा गो वन इत्यादि और दूध घी शहू आदि वस्तुओं पर भी कर लगाया जाता था परंतु हम इस बात का स्पष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं कर सकते हैं। तब मास कर लाया अथवा नहीं। यह अमंभव नहीं कि गुप्तों का शासन प्रजापति के नियमों के अनुसार चलाया गया। गुप्तों का नाम दिया गया है। गुप्तों के शासन-काल में भारत, कर्णाट, उ्तरिक और बाह्य व्यापार काफी उत्थति पर था और दोनों प्रकार के व्यापारियों द्वारा राज्य का काफी आमदनी होता था। देश में बाह्य व्यापारियों को वस्तुओं का निर्यात करने का अधिकार था जो उन्हीं पर राज्य कर लगाया जाता था। व्यापारी यदि राज्य के नियमों के अनुसार व्यवहार करते हुए एकत्रित लाभ प्राप्त करने में सक्षम होते

समय में इस काल में स्मृतियों के आदेशों का स्वीकार किया होता था कि उनके द्वारा आदेशों का अंग्रेजों से स्वीकार होता है कि उन्होंने स्मृति प्रथा के आदेशों का परिपालन किया था। स्मृतियों के अंग्रेजों के ऊर कर प्रभूत माना गया नहीं लगाये जाते थे।

अपराधियों को अतिवृष्टि की दृष्टि से भागी बनना पड़ता था परंतु जैसा कि मेगस्थनीज के विवरण द्वारा हम जान सकते हैं वैसे कठोर दण्ड नहीं दिये जाते थे। अप

१५५ पृ

17-18-19 We possess fairly detailed information about the Gupta Government and its achievements and can well conclude that it was very well organised both at the centre and in provinces

Yakshi Gupta Age p. 292

राज्य की सख्या बहुत ही कम होन से यह बात स्पष्ट है कि दण्ड-शास्त्र का विभाग कुशल और सजग था।

दण्ड को समृद्धिशाखा बनाने के लिए गुप्त सम्राट काफी मचेष्ट रहते थे। राज-मार्गों के निर्माण और उसकी मरम्मत कराने का वे सर्व-ध्यान रखते थे। कृषि की उत्पत्ति के लिए बाँधा शीला और तालावा का निर्माण किया जाता था। तानों और वन प्रदेशों से जनता के लाभार्थ सामग्रियाँ प्राप्त करन का पूरा प्रयत्न किया जाता था। कृषि और व्यापार का राज्य की ओर से काफी प्रोत्साहन प्राप्त था।

इस बात का हम पिछले पृष्ठा में मला मीति यह चुन हैं कि गुप्तसम्राट निरंकुश नहीं हाते थे। साकानुराज्य उनका प्रधान कर्तव्य समझा जाता था। शासन की सम्पूर्ण शक्ति किता एक व्यक्ति या सरकार में कन्द्रित नहा था। डा० अल्तेकर का कथन है कि गुप्त कालान शासन प्रणाली विदेशिया (सक कुपाण पद्धत) की शासन व्यवस्था से कुछ परिवर्तित रूप में था। इस काल का एक उल्लेख्य परिवर्तन ग्राम और नगर सभाओं के कार्यों और अधिकारिता में अनूतपूर्व वृद्धि है। ये सम्प्रदाय पहले भी सर्वमान्य या पर-उपलब्ध प्रमाणों में यह नहा सिद्ध हाता कि इनका रूप वसा ही गर सरकारी और इनका कार्य क्षेत्र उतना ही विस्तृत था जसा कि चौथी शताब्दी से उत्तर और पश्चिम भारत देशों में पाया जाता है। सधि विग्रह का छोड़कर सरकार या राज्य के राजा के काम में करता थी। ये स्थानीय शासन-सम्प्रदाय जनता के दुःख दुःख के समान थी और इनका कार्यक्षमता के कारण समिति के अभाव का दुष्परिणाम निम्न रूप से प्रतीत न हात पाया। जनता के अधिकारों और स्वतंत्रता का संतुलनपूर्वक रक्षा द्वारा ये ग्राम-सम्प्रदाय राजा की अधिकाधिक हस्तगत करन की प्रवृत्ति की बाधों को रोक-थाम करती थी। जनता से कर वसूल करन का कार्य अधिकतर ग्राम पंचायत ही करती थी। यदि राज्य द्वारा नये और अधिक-वृद्ध कर लगाय जाते थे तो ये उन्हें वसूल करन से हा इन्कार कर सकता थी। गुम्हार अपराधों को छोड़कर बाकी सब श्रेणियों का नियंत्रण ग्राम पंचायतों हा किया करता थी।<sup>१</sup>

शिक्षा-व्यवस्था के कार्य करन और विद्या कला तथा सम्मति का राष्ट्रीय प्रोत्साहन प्रदान करन गुप्त कालान शासन पद्धति की एक प्रसंगीय विशेषता थी। गुप्त सम्राटों की कलानुरागिता और साहित्य-मवर्द्धन की मनोवृत्ति पर हम पहले ही प्रकाश डाल चुके हैं। शिक्षा और ज्ञान के प्रसार का भा गुप्त सम्राट काफी ध्यान रखते थे। डा० अल्तेकर के ही शब्दों में आज-युग का अवस्था इस काल के बहुत अधिक शिक्षा-लय और साधन-साधिका उपलब्ध हैं जिससे पता चलता है कि शिक्षा के प्रसार और ज्ञान की वृद्धि की प्रसंगीय आवश्यकता से प्रेरित हाकर सरकार शिक्षा-सम्प्रदाय और विद्वानों को मुक्त-दान और सहायता देती थी। राज्य द्वारा मन्दिर-निर्माण की प्रवृत्ति भी तथा, स्थापत्य-विशेष और नृत्य आदि कला-शास्त्रों की उत्पत्ति में बहुत सहायक सिद्ध हुई।<sup>२</sup>

उपरोक्त सम्पूर्ण विवेचन के आधार पर हम सुप्रसिद्ध विद्वान् डा० अल्तेकर के शब्दों में कह सकते हैं<sup>३</sup> We may therefore be well proud of the

<sup>१</sup> प्राचीन भारतीय शासन-वृद्धि, पृष्ठ २३७।

<sup>२</sup> वही पृष्ठ २३७।

<sup>३</sup> *Indian Gupta Age* P 204

Gupta administrative system which served as the ideal for contemporary and later states

### सामाजिक जीवन।

गुप्त युग के सामाजिक जीवन में हम कुछ विशेषताएँ दिखलाई पाती हैं परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि इन विशेषताओं का उद्भव पहले हो चुका था, इस समय वे और अधिक दृढ़ीभूत हो गईं। हमने मौर्य-युगीन सामाजिक अवस्था का अतन्त जिन विशिष्ट तत्त्वों का अध्ययन किया था उनमें से कई का प्रचलन इस काल में था और पहले की अपेक्षा अधिक प्रबलतर रूप में था। गुप्त सम्राटों के सुधीयकारी शासन ने उत्तरी भारत में और उनके समकालीन नरेशों ने दक्षिणी भारत में शान्ति तथा सुखवस्था की स्थापना करके पिछले युग के सामाजिक जीवन की विशेषताओं को देश की भूमि पर अच्छी तरह से जमाने का अवसर प्रदान किया। मौर्य काल में भारतवासियों के जिस समृद्ध भौतिक जीवन का उल्लेख हमने किया है उसका इस युग की शान्ति ने और अधिक पनपने की सुविधा दी। गुप्त काल के साहित्य-ग्रन्थों से सीमाव्यवस्था जिनकी संख्या काफी अधिक है हम इस काल के लाला के इहनाक परक जीवन का पर्याप्त विशद विवरण प्राप्त होता है। इसी प्रकार विदेश-यात्रा के सम्बन्ध में जिस निस्संकोचपूर्ण मनोवृत्ति का अध्ययन हमने मौर्य काल की सम्प्रदाय के सम्बन्ध में किया है उसका और अधिक सबल प्रसार गुप्त काल में था। भारतवासियों के श्रेष्ठ नैतिक चरित्र का प्रशंसा यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने की थी गुप्त काल में चीनी यात्री फाह्यान ने भी प्रशंसापूर्ण शब्दों में ही लोगों के चरित्र का उल्लेख किया है और यह सचमुच मनोरञ्जक है कि ह्य काल के भारतीयों की चारित्रिक श्रेष्ठता का वर्णन ह्येनसांग ने भी किया है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि कुछ विषयों में सामाजिक जीवन का प्रवाह अविच्छिन्न रहता है जब तक कि कोई प्रबल अवरोधक शक्ति बीच में न आ पड़े समाज का जीवन चलता ही रहता है। अतएव हमें यह जानकर आश्चर्य न करना चाहिए कि बहुत सी बातों में गुप्त काल का सामाजिक जीवन मौर्यकाल के और कुछ बातों में अपने परवर्ती काल के सामाजिक जीवन से काफी समानता रखता है। यह एक महत्त्वपूर्ण तथ्य है कि भारतीय समाज का मूल ढाँचा आज भी बहुत कुछ बातों में वैदिक कालीन सामाजिक रचना से मिलता जुलता है।

परन्तु जहाँ हम एक ओर समाज के सगठन में कोई भौतिक अन्तर नहीं दिखाई पड़ता वहीं दूसरी ओर कुछ बातों में सदैव प खतन होता चला गया है। भारत के सामाजिक सगठन की यह विशेषता रही है कि अपनी जीवन रक्षा के हेतु इसने सदैव अपने को युग की परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तित करने का प्रयास किया है और इस परिवर्तन के लिए कभी किसी महान् सामाजिक क्रान्ति को आवश्यक नहीं समझा गया। इस कारणवश हम गुप्त काल के सामाजिक जीवन में अवश्य ही कुछ नवीनताएँ दिखासकें पंगी। गुप्त-काल के पूर्व के इतिहास को पढ़ने से हमें यह तो विदित हो ही चुका है कि भारत में विदेशी जातियों के आक्रमण हुए और उन्होंने अपने राज्यों की स्थापना कर ली। ये विदेशी जातियाँ भारतीय समाज में प्रवेश करने लगीं, अतएव स्मृतिकारों ने इस विषय में अपना एक विशिष्ट दृष्टिकोण रखा। वे इन जातियों का समाज से बहिष्कृत तो कर नहीं सकते थे क्योंकि ऐसा करना न तो हितकर था न ही न्यायपूर्ण ही। अतएव ब्राह्मण स्मृतिकारों ने उनको समाज में ही मिला



एक मनोरञ्जक घात है कि इस युग के स्मृतिकार अनुलोम विवाह द्वारा परिणीता पत्नी को घामिक यज्ञों के अनुष्ठान का उग्र पति के साथ अधिकार दत्त है, यदि उग्र पति के कोई सवण पत्नी न हो।

प्रतिलोम विवाहों को जिनमें पत्नी उच्च वर्ण की हानी थी और पति उससे निम्नतर वर्ण का, याज्ञवल्क्य ने माननीय माना है। समाज में इस प्रकार के विवाहों का प्रचलन था। बाल्मिकी ने अपनी पुत्रियों का विवाह बंय गुणा के साथ किया था यद्यपि बादम्ब नरेई ब्राह्मण थे। इस प्रकार गुप्त-युग में अनुलोम और प्रतिलोम दोनों प्रकार के विवाह प्रचलित थे। ऐसा उल्लेख मिलता है कि सोवनाय नामक व्यक्ति की माता का पूज्य ब्राह्मण था परन्तु उमन मूला स्त्री का अपनी पत्नी बनाया था। संस्कृत नाटकों के अध्ययन से विदित होता है कि उच्च वर्ण के ब्राह्मण बंयाओं और उनकी दासियों की पुत्रियों के साथ भी विवाह कर लेते थे। 'कुलशासनान् ब्राह्मण चारुदत्त न जो मच्छकटिक' नाटक का नायक है वसतसना नाम की सुविद्यात गणिका से विवाह कर लिया था। इसी नाटक में सरलिक नामक ब्राह्मण भी वसतसना की दामी मदनिका से विवाह करता है। हमने आगे के इतिहास में ब्राह्मण वर्ण के एक सातवाहन नरेश को रत्नदामन एक महाक्षत्रप का बंया के साथ विवाह करत हुए पाया है। गुप्त काल में भी विदेशियों का बंयाओं का पत्नी रूप में स्वीकार कर लेने का घटनाओं के उल्लेख मिलते हैं। ऐसा शायद इसलिए सम्भव हो सका कि विदेशी लोग हिन्दू समाज में मिलायें जा चुके थे और उनका सामाजिक संगठन में स्थान भी मिल चुका था यद्यपि जब भी प्रार्थ्य ही सम्भवे जाते थे। इक्ष्वाकु राजाओं ने कट्टर ब्राह्मण होते हुए भी उज्जयिनी के शक राजकुल की बंया से पाणिग्रहण किया था। मनुस्मृति में एक स्थान पर कहा गया है कि स्त्रारत्न और शिल्पविद्या कहीं से भी ग्रहण कर लनी चाहिए। सम्भवतः इस भावना ने विवाह के सम्बन्ध में वर्ण भेद का कुछ शिथिल कर दिया हो। लेकिन ज्या ज्या समय यथातः होता गया जाति भेद का विचार बढ़ता गया फिर भी जाति के बंधन अधिक कटार होने में कई ईताद्वियों का समय लगा होगा। होनासाग न ह्यकालीन सामाजिक व्यवस्था के विषय में लिखा है कि प्रायः अपने ही वर्ण के जेदर विवाह सम्बन्ध करना उचित समझा जाता है परन्तु वर्ण के ह्यक्षरित से पता चलता है कि स्वयं वर्ण के ब्राह्मण पितों ने एक शूद्र नारी का अपनी पत्नी बनाया था और उमस दा पुत्र भी उत्पन्न हुए थे।

विभिन्न वर्णों के बीच भोजन पान का सम्बन्ध गुप्त काल में निषिद्ध नहीं समझा जाता था। यह स्वामाधिक ही था कि जब अतर्जनीय विवाहों का समाज में प्रचलन था तो भोजन-पान के विषय में प्रतिबंध अधिक कठोर नहीं हो सकता था। शूद्रों को श्राद्ध कर प्रायः अन्य वर्णों के लोग परस्पर एक दूसरे के साथ पान पान का सम्बन्ध करते थे। परन्तु याज्ञवल्क्य ने शूद्रक नारी और अनौर के साथ भोजन करने की आज्ञा दे दी है यद्यपि समाज में ये लोग शूद्र समझे जाते थे।

अपने वर्ण के ही अनुसार व्यवसाय ग्रहण करना, गुप्त काल में एक नियम के रूप में नहीं था। वस्तुतः ऋग्वेदिक काल से लेकर आज तक कभी भी यह बात पूर्ण रूप से ही पाई नहीं गई। लोग अपनी अपनी सुविधाओं के अनुसार अपने वर्णों के प्रति कुछ भी परवसाय चुनते रहे हैं और आज भी ब्राह्मण यादवाओं, ब्राह्मण व्यापारियों तथा बंय व्यापकों का अभाव नहीं है। गुप्त युग में भी अनैक प्रमाण मिलते हैं



जिनस यह सिद्ध होता है कि साग अपन वष के अनुकूल व्यवसाय अपनाये के नियम का पतन नहा करत थ। स्मृतियाँ ही इस बात का प्रचुर प्रमाण प्रस्तुत करती हैं, कि ब्राह्मण न ही अत्राह्मण व्यवसाय का ग्रहण किया था और स्मृतियों के प्रमाण की पुष्टि अय साता द्वारा माहा जाती है। ऐतिहासिक द्यवितया के ऐस अनेक उदाहरण मिलत हैं जिहाने अपन वर्णानुकूल व्यवसाय को बदल कर अपन से निम्नतर वर्णों के व्यवसाय को ग्रहण किया था। मयूरशमन ब्राह्मण था किंतु उसने स्वेच्छापूर्वक छात्र वृत्ति का अपना लिया और बादम्ब वंश की नीव डाली। महाराज मातृविष्णु एक ब्राह्मण सत अत्रविष्णु क वंशज थ। विध्यशक्ति भी ब्राह्मण थे किंतु मादा का वैश्य की निम्नतर वर्ण के व्यवसाय ग्रहण करने के उदाहरण मिलते हैं। पांचवीं शताब्दी क एक लख स विदित होता है कि एक तलिक-श्रणी के प्रमुख अधिकारी क्षत्रिय थ। यह सा सम्भव हा सकता है कि क्षत्रिया न ब्राह्मण क अध्यापन इत्यादि व्यवसाय को भी ग्रहण किया रहा हा।

व या का कोई सुनिश्चित व्यवसाय इस समय नहा था। अधिकार क व्यवसाय उद्योग य या तथा यापार म लग हुए थ। वृषक व्यापारी पण पालक सुनार वक्त्र जुसाहे, मालाकार इत्यादि जातिया काफी विकास का प्राप्त कर चुकी थी। न्य जातिया अपनी अपनी जातिया का अधिक ध्यान रगती थी। यह सम्भव है कि आज की मति अनक वृषका सुनारा या जसाहा क। अपन व य हन का काइ ध्यातः हा न रहा रहा हो आर व अपना जाति का ही अपना मूल जाति समझते रह हा। व य वर्ण के द्वारा क्षत्रिया का व्यवसाय ग्रहण कर उन क दृष्टाता क भी अभाव नही है। सह सम्भव नहा कि गुप्ता का सना म व य सनिक रहे हा।

एसा प्रसात होता है कि गुप्त-यग म शत्रा की अवरणों महिन की अपेक्षा कुछ सतापजनक थी। शूद्रा क विषय म इस काल के स्मृतिकारों का दृष्टिकोण काफी उदार प्रत तहाता है। यान्त्रिक न शूद्रो को पैपारी वृषक और कारीगर होने की अनमति दा है और इसम काई स दह नही कि शूद्रा ने इस सुखधर्म से अक्षेय लाभ उठाया। कुछ जगों ने सय वृत्ति क भी अपनाया था और कुछ ता सना क पदाधि कारी भी हा गय थ। शूद्रा के राजाह न के प्रमाण भी मिलते हैं। ह नसांथ न लिखा है कि मतिपुर का राजा शूद्र जाति का था।

अत्यन्त की गल्पकानान सिद्ध समाज में बड़ा शोचनाय अवस्था था। सना म उकी उपस्थिति इस बात का मिद कती है कि अत्यन्त समाज में अथ व विद्यमान था। यहाँ एक बात ध्यान में रखना चाहिये कि शूद्र और अत्यन्त एक ही जाति क नही थ वरन् निम्न निम्न होते थे। शूद्रा की स्थिति के विषय में हमन उपर पढ़ा है जिससे स्पष्ट है कि उनकी अवस्था बरी न थी किंतु अत्यन्त का लोग छना तक अपराध समझत थ। पाहियान ने अत्यन्त अधमा चाण्डालों क लिए लिखा है कि व नगर क बाहर रहते हैं। जब के नगर में प्रवेश करते हैं ता सूचना देने के लिए लकड़ी स डोन बजात घसते हैं जिसस लोग उनके माग म हट जायेंगे या उन्नत रूपम बचाकर चलें। केवल चाण्डाल ही मछली मारत मृगया कृतज्ञ और मासु खेचते थ। स्मृतियों म कहा गया है कि चाण्डालो का अत्यन्त तुच्छताय किर्मा चाण्डालो क इशम बचाना और अपराधियों को प्राणदण्ड दन का काय कही का सोपा न जाता था। इस बात की स्मृतिया म इस बात के लिए भी बढाट निम्मा ज्ञा विधान किया गया है जिनक पासन स साग अत्यन्त के सम्पुन स दूषित हान से रक्षा करे ता गुप्त-काल

के साहित्य से भा फाहियान क कथन और स्मृतियाँ व विधान का दृष्टि हार्ता है। मूच्छकटिक म दो चाणाला का आदेश दिया जाता है कि व अपराधियों का प्रायश्चित्त देने का स्थान मने जाय। एकाग्र साहित्य-ग्रन्थ म इस बात का उल्लेख प्राप्त होता है कि जा व्यक्ति चाणाला के स्पर्श से दूषित हो जाता था व अथ व्यक्ति का स्पर्श नही कर सकता था। गुप्त कालत समाज म मिश्रित या मकर जातियाँ का भा उल्लेख प्राप्त होता है। स्मृतिग्रन्थ म लिखा है कि अन्नग्रण विवाहा क द्वारा मकर जातियाँ उत्पन्न होनी हैं। किन्तु यो दृष्टिकोण जनता म वास्तविक नहीं हो पाया था। जमा कि हमने पीछे देखा है समाज के उच्चवर्ण क ला भा अन्वर्ण विवाह करने क और उनका सन्तान का जाति का निर्धारण उनक पिताजा का जाति म होता था। हाँ जब समाज म अन्वर्ण विवाहा का प्रचलन बहुत कम हो गया तब स्मृतिग्रन्थ का दृष्टिकोण मकर जातियाँ क सम्बन्ध म कुछ भा य समझा जान लगा। मूर्खावसिक्त अम्बष्ठ पारश्व, उग्र करण आदि मकर जातियाँ के नाम समन्वयान स्मृतिग्रन्थो म मिलते हैं।

समाज मे विभिन्न जातियाँ के पारस्परिक सम्बन्ध प्रायः मयूर और सौहात्रपूण थ। चाणाला और शूद्रो को छो कर अथ जातियाँ म परस्पर खान पान का व्यवहार होता था। परन्तु जसा हम देख चुके हैं यद्यपि शूद्रो का स्वर्ण लागा क साथ भाजन पान का अधिकार न प्राप्त था तथापि उनकी स्थिति अथ युगा की अपथा जविक उत्तम थी। अन्वर्ण विवाहा के प्रचलन से यह सिद्ध होता है कि अमा समाज म जातियाँ के सामाजिक महत्त्व पर कोई कठोर प्रतिबन्ध नहीं लगन पाया था। समाज म ब्राह्मणो का सर्वम अधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। उनका कुछ सुविधाएँ प्राप्त था जो अथ जातियाँ क लिए नहीं थी। मूच्छकटिक नाटक स पता चलता है कि याया नय म यद्यपि चाणाला को हत्यारा सिद्ध कर दिया जाता है तथापि उस उसका ब्राह्मण ज म क कारण मृत्यु दण्ड म मुक्त कर दिया जाता है। अपन चरित्र का उत्कृष्टता और पाणित्र के कारण ब्राह्मण सब जातियाँ क द्वारा सम्मानित क्रिय जाते थ। समाज म क्षत्रियो का भी काफी अधिक सम्मान होता था। ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों जातियाँ सम्पूर्ण समाज का श्रेष्ठ और सम्मान का अतिकारिणा समझा जाता थी। वश्य लोग अपना दानदान के लिए विव्रान थे। फाहियान न गुप्त काल क वषया क विषय म लिखा है जनपद क वषया के मुखिया लभा न नगर म सभावन और औपचारिक स्थापित कर रखते है। देश के नियम अथ अनाथ विधवा निमतान लून लम्ने और रागा योग इन स्थान पर जाते हैं और सब प्रकार की सुविधा तथा सहायता प्राप्त करने है। गुप्त काल क वषया की उत्थरता और दानशीलता आज के व्यापारी युग के लिए आदर्श प्रस्तुत करती है।

गुप्तकालत समाज म दास प्रथा विद्यमान थी और इस सम्बन्ध म इस काल के स्मृतिग्रन्थो मे जो नियम दिये हैं वे इस प्रथा का कुछ विकसित रूप म प्रदर्शित करते हैं। नारद स्मृति में दास प्रथा के सम्बन्ध मे काफी सूक्ष्म विवेचन मिलता है। युद्ध बंदिया को दास बनाने की प्रथा काफी प्राचीन मानूम पती है और गुप्त काल मे भा इसका प्रचलन था। जा ऋणकर्ता अपना ऋण अथान कर पात से उनको भी अपन ऋणदाता की दासता स्वीकार करनी पता थी। नारद न इस प्रकार के दासा का उल्लेख किया है। हारे जुआरी को भी दास बन जान पता था। इस प्रकार के एक दास का उल्लेख हम 'मूच्छकटिक' नाटक में पाते है। नारदशर में दासता सम्भवतः कभी भा आजावन नहीं होती थी। ऋणतर्जिआ जुआरियो और युद्ध-बन्धियो को

अपनी दासता से मुक्त होने का अधिकार प्राप्त था। यद्यपि दासता के साथ व्यवहार उनके स्वामिना के स्वामता पर निर्भर करता था तथापि इस बात में कोई संदेह नहीं कि भारत में मूनाल और राम का मति दासता के प्रति कठोर व्यवहार नहीं किया जाता था। इस सम्बन्ध में हम मौर्य-कालीन सम्मता के अन्वय में कुछ विचार कर चुके हैं।

पारिवारिक जीवन—सम्मिलित कुटुम्ब के ऊपर गुप्त काल का हिन्दू समाज आधारित था। इस काल के स्मृतिग्रन्थों में सम्मिलित कुटुम्ब का प्रयास प्रशसनीय बताया गया है और पिता के जीवन काल में परिवार के विभाजन की निन्दा का यह है। गुप्तकालीन जनिकता से माँ सम्मिलित कुटुम्ब के अस्तित्व का पश्चिम प्राप्त होता है। एक लेख से हम पता चलता है कि एक पत्नी अपनी अपनी माँ पत्नी एक पुत्र, एक पुत्र दो भतीजा और दो भतीजिया के आध्यात्मिक कल्याण के लिए काम करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि पिता का मृत्यु के बाद माई पूरे परिवार के साथ ही रहा करते थे।

नारियों की स्थिति—गुप्तकालीन समाज में नारियाँ की स्थिति पिछले युग का आधा कुछ गिरा हुई प्रतीत होती है। विवाह, विवाह की अवस्था में जाने में उनके लिए सामान्यतया उच्च शिक्षा का द्वार अखुल हुआ गया था और विवाह के सम्बन्ध में माँ उनका जिम्मा प्रकार परिवरण की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं थी। कुछ स्मृतिग्रन्थों में पिताश्रावण के लिए यह अनिवार्य ठहराया गया है कि वे अपना कल्याण का विवाह उनके माँ के पूर्व ही करें। नारद और याज्ञवल्क्य ने तो मन्त्री तन्त्र लिख दिया कि पिता जरी के कल्याण का विवाह उनके रजस्वला होने के पूर्व करना चाहता है उस तरह जाना पता। गुप्तकालीन स्मृतिग्रन्थों में पश्चिम शिक्षा देना का अनुमति नहीं। प्रमाण करते हैं कि मीमांसा प्रतीत होता है कि उच्च कुल में नारियाँ का शिक्षा दी जाता था। पश्चिम शिक्षा मूल ही उनकी प्राप्त न होना रहा है किन्तु वे निम्न अवस्था में नहीं रहती थी। आश्रमवासिनी कथाएँ इतिहास और पुराण का अध्ययन करना था न कि कथाका समझ ही मन्त्री माँ अपितु स्वयं माँ के पद्य रचना करना था। अभिज्ञानशास्त्रान्तर्गत में अनमूया शकुन्तला के छन्दो प्रणय मन्त्र को समझ लेना है। जीवन कलाओं में शिक्षा का नियुक्ता के उन्नेय गुप्तकालीन साहित्य-ग्रन्थों में प्रचुरता से प्राप्त होते हैं। महाकवि कालिदास ने आदेश पत्नी के अर्थ युवा के साथ उनकी सलिल कला नियुक्ता का माँ उल्लेख किया है। शकुन्तला की मन्त्री अनमूया चित्रकला में और मन्त्री माँ पत्नी वागा-वादन में कुशल था। अमर काय में जो गुप्तकाल का रचना है नारी शिक्षाशास्त्र (उपाध्याया और उपाध्यायी) तथा पश्चिम मन्त्री माँ शिक्षा के उन्नेय नारियाँ का उल्लेख किया गया है। परन्तु यह सम्भव है कि अमरकाय का यह उल्लेख केवल कात्यायन तथा अन्य पूर्व कथाकारों का अनुकरण मात्र हो।

गुप्तकालीन समाज में विधवा विवाह का प्रचलन किस मीमांसा तक था, यह कहना कुछ कठिन अर्थ है। अमरकोश से पता चलता है कि एक शिक्षिता पुरुष पुत्र (विवाहिता विधवा) को अपनी प्रमुख पत्नी भी बना सकता था। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने अपने अर्थ की विधवा पत्नी से विवाह किया था। नारद और पराशर ने विधवाओं के पुनर्विवाह का नियमानुबन्ध बतलाया है किन्तु अन्य स्मृतिकारों ने विधवाओं के लिए ब्रह्मचर्य और आत्म संयम के जीवन को आवश्यक कहा है। बृहस्पति

न ता यहाँ तक कहा है कि विद्यवा स्त्री का अपन पति का साथ उमकी चिता पर जल जाना चाहिए। स्त्री प्रथा का प्रचलन सम्भवतः समाज में था। कानिदास का नाटकी और मच्छकटिक में स्त्री प्रथा का उत्सव मिलता है। इस सम्बन्ध में एक एतिहासिक घटना का भी जिक्र मिलता है। जब दूपा का आश्रमण का सामना करते हुए सन ७१० ई० का नगमगयापराज न रणभूमि में वारगति पाता तो उमकी पत्नी उसको चिता पर जनकर मर गई। अरु व मुग्ध म बाण न भी हृष की माता का उसका पिता का मृत्यु शय्या पर पड़ रहने का कारण सती हान का लिय उद्यत बतलाया है परन्तु सह स्मरण रखना चाहिए कि गुप्त और हर्षकालीन भारत मस्ता प्रथा का पर्याप्त प्रचार नहीं हान पाया था। बहुरूपति का छा कर अम किमा भा समकालीन स्मृतिकार न सती प्रथा का उल्लेख नहीं किया है। जो विद्यवायें पुनर्विवाह नही करती या व अत्यंत सादा और मयमपूण जीवन श्यतात करता था। व आनुषण आर अय विलास साम प्रिया के प्रयाग का अपन लिए वजनीय समझना था।

एसा प्रतात होता है कि पत्नी का प्रथा ग-का न न समाज में कुछ म भा तक जाय विद्यमान था। यद्यपि त त काल की कनकृतिया म नर प्रतिमात्रा के उपर किमा प्रकार का बाध न था है तथापि अभिजात कुन का मित्रया घरा म निकलन पर प्रथत अदवा पत्नी का य ग करता था। पर तु इस यग म पत्नी का प्रथा विनाश कठार नहा था।

वस्त्राभूषण—गुप्त काल का माहिरियक प्र था और कलाकृतिया स एम समय का वस्त्राभूषण पर प्रचुर प्रकाश पा ता है। पुरपा का वस्त्र साधारणतया एक अधवस्त्र (घाता) तथा उत्तरीय जाता था। विना सिल हूये वस्त्र पिन न का रिदाज ही अधिक था। यद्यपि विद्या सादियना न कुछ मित्र हूए कपणो जस कट तथा पायजामा का प्रचलन द म किया तथापि गुप्त सम्राज न अधिकतर घाती आर उत्तराय का ही अपनाया। घाता और उत्तरीय की सम्भवत दश का राष्ट्रीय शमपा थी। पुरुषा का द्वारा सिर पर उण्याय (पगडा) पहन जान की सूचना भा मिलता है।

स्त्रिया का पाशाक गुप्त काल में भी बहुत कुछ आज जनी था। ही आजकल की फशनबिन मन्त्रिणा का युरापियन इस उम समय जाता था। साी तथा पटाकोट हा म का न का नािया के समाय वस्त्र थ। कहां कहां एक लम्बा साी स हा दाना वस्त्रा का काम चन जाता है। जकट लाउज और फका का प्रयाग विदशी माहियन नािया करता थी परन्तु माग्ताय नारिया म इन्का प्रयग लावप्रिय नहा हा सका। नाचनेवाला भारतीय ल-कियो भा सीदियन नारिया का पाशाक पत्न लती था। बाप की गफाभा म अनक स्त्रिया के चित्र बन हूए है। जिनम स्त्रिया का साी और चाना पहन हूए दिखाया गया है। अजता का चित्र म एक स्त्रा छाट की अगिया पहन हूए चित्रित की गए है। स्त्रिया का साी यो वस्त्रा रगीन हुआ करती था।

सूना कपण का प्रचलन अधिक था कि तु श्रुतु का अनसार उना और रश्मी कपणे पहनना भा गुप्त काल का माहिरवामा जानत थ। एहाहियन का विवरण स ता एसा मानम पा ता है कि भारतवासि उना और रश्मी कपणे का प्रयग बहुतायत स किया करते थ। रश्मी कपडा सम्भवत एस समय मा चीन स जाता था जिसका उल्लेख महाकवि कालिदास ने चीनाशक शब्द का द्वारा किया है। रश्मी वस्त्र का स्त्रिया म सोक प्रियता का उल्लेख कुमारगुप्त प्रदम्क मग्दसार-अभिलषाम भा किया गया है।

अमिलेस में एक स्थान पर उपमा के रूप में कहा गया है कि जैसे एक युवती स्त्री सुवर्ण हार धारण किये हुए पान और पुण्या से युक्त भी अपने प्रेमी से एकांत में मिलन नहीं जाती जब तक कि वह रेशमी वस्त्र न पहन ले उसी प्रकार पथ्या का वह भाग (नगर) उन लोगों से विभूषित था माना व रेशमी वस्त्र धारण किये है जो स्थान में तथा विभिन्न रंग के कारण आँसू को आनन्ददायक हैं।<sup>१</sup>

गुप्तकालीन साहित्य ग्रन्थों और कलाकृतियों द्वारा इस काल के स्त्री पुरुषों की अलंकारप्रियता तथा विभिन्न प्रकार के आमपणा का परिचय प्राप्त होता है। स्त्रियों के आमूषण विविध प्रकार के तथा नग्नता का मन रगनवाल हात था। मान तथा मातिया के हारों का सौंदर्य अद्भुत होता था। मच्छकटिक में चारदत्त का स्त्रियां वसंतमना के लिए मोतिया के जाल हार भजती है उनका वर्णन में पता चलता है कि इस समय के सुवर्णकार निपुण और कलात्मक अभिरुचि-सम्पन्न हात थे। कम से कम छ प्रकार की कर्षणियां (मैखला) का उत्कलन मित्रता =। के 'अगूठिया और क्यूरा (बाज बदा) का प्रयोग बहुलता से किया जाता था। परा में कफा अधिक मस्या में क पहन जाते थे। घघरूवाले आमूषण का नाम स्त्रियों परा में पहनता था। कानिदाम ने सुन्दरियों के आशिञ्जितनूपुर' चरणा का उत्कलन किया है। पुण्या का नाम गहन पहनने का बड़ा शौक था। राजकुल के पुरुष विभिन्न प्रकार के आमूषण धारण करते थे। महाकवि कालिदास के रघुवंश से विदित होता है कि दुर्मता के स्वयंवर में जा रहे थे और क्यूरा (विजायठ) अगुलीयक (अगूठा) और हार पहन हुए थे। मधुदूत का यज्ञ अपने हाथ में कनकवलय पहने था जो उसका विरह वृशता के कारण लीला पड़ गया था। साहित्य ग्रन्थों से स्पष्ट पता चलता है कि कवल राजा तथा उनके सामंत आदि ही नहीं बरन उनके अनुचर तथा सबके नाम आमूषण पहना करते थे। 'वहल्यहिता' में कहा गया है कि कवल राजा रानिया तथा राजसभा के परिचारक परिचारिकाओं का ही नहीं बरन घामिक अनुष्ठान में मलग्न पुण्या का नाम गहन पहनने चाहिए। पहाणपुर (राजशाहा बगाल) में पुण्या की कुछ मूर्तियां मिली हैं जिनके बक्ष स्थल पर यज्ञोपवीत के साथ कटि पर कटिवध तथा उदर में उदरवध जालि गहन दिखलाइ पन्त हैं। जमरकाश में एक अनक शाल की एक लम्बी मूर्ती मिलती है जिनके विभिन्न प्रकार के आमपणा का पता चलता है। गिर लला काना नाक बनाया हुआ अंगुलियां कमर तथा परा के गहना का इस समय काफ़ी प्रचार था। नाक की नथनिया का प्रचलन इस समय सम्भवतः ज्ञात था। चन्द्रगुप्त प्रथम तथा कुमाण्डवी बाल सुवर्ण सिक्के पर विवाह के उपलक्ष्य में राजा कुमारदेवी का अंगूठा देते हुए अंकित किया गया है।

स्त्रियों के बग मयारन को भी प्रचुर प्रमाण प्राप्त होता है जिससे सिद्ध होता है कि नागियों या अपन कर्म अनुष्ठित करने का बहुत अधिक शौक होता था। स्त्रियों पुण्या में अपने बालों को विविध प्रकार से मज्जाया करते थे। महाकवि कालिदास के मधुदूत में क्विन्ति होता है कि बगाम में मन्दार के फूल लगाकर स्त्रियां उनका मूक

<sup>१</sup> 'तादृश्यकात्पुषितोपि सुवर्णहारताम्बूलपुष्पविधिना समल्लङ्घितोपि।  
-मारीजन-प्रियमपति न तावदस्यां यावत् पट्टमण्डलपुष्पानि धत्ते।  
स्थाता वर्णांतरविभागाच्चित्रणं नम्रमुभयन  
यत्सकलमिदं सिद्धितत्समल्लङ्घितपट्टकस्त्रण।'



है कि बौद्ध धर्म सुरा सेवन या आभियाहार का निषेध नहीं करता। किंतु हम यह न भूलना चाहिए कि गुप्त काल के काफी पहिले ही दशम महायान तथा मागधत धर्म

कम्पा तथा अहिंसा  
रा और मासादि का  
हना अधिक उचित  
थे और कुछ लोग  
वदे नहीं कि बौद्ध

धर्म के अनुयायी ब्राह्मणों और क्षत्रियों ने भी भक्तिवादी आन्दोलन में प्रभावित होकर मासाहार त्याग दिया होगा। ब्राह्मणों का निश्चय ही काफी सीमा तक शाकाहार का गम्य धर्म और मन्त्रिपान का उद्धान त्याग दिया था। क्षत्रियों में फिर भी सुरा-सेवन का प्रचार बना रहा।

**आमोद प्रभोद और उत्सव**—भारतवासियों का जीवन बना आमोद प्रमादमय था। उनका पास श्रुतबुद्धिक काल के प्रारम्भ होनेवाली मनोरञ्जन और आमोद प्रमाद उत्सवों की एक सजाव तथा समृद्ध परम्परा थी। मौर्य काल में भारतीयों का जीवन का हमन जा अध्ययन किया है उससे यह सिद्ध हो जाता है कि वे ही आनदी और सुखानुरागी थे। गुप्तकालीन भारतीयों का जीवन भी आमोद प्रभोद के विभिन्न साधनों से परिपूर्ण था। इस काल के साहित्य और कला से भारतीयों के जीवन के इस पक्ष पर काफी प्रकाश पता है। महाकवि कालिदास के ग्रंथों से विदित होता है कि राजाओं के लिए मगधा मनोरञ्जन का प्रमुख साधन था। शत्रु लक्ष्य में दुष्यंत आसट करने जाता है और कवि ने मगधा के सामों का वडा ही सरस वणन किया है। 'रघु' दशम में दशरथ के आसट का वणन किया गया है। गुप्त सम्राटों के सिक्के उनको मृगयानुरागिता को स्पष्ट करते हैं। समुद्रगुप्त अपनी कुछ मुद्राओं पर बाघ का शिकार करता हुआ दिखलाया गया है। चन्द्रगुप्त विन्ध्याशक्ति और कुमारगुप्त प्रथम भी सिंह का आसट करते हुए दिखाये गये हैं। परन्तु यह कर्मादिगम्य है कि मृगया केवल राजाओं के लिए ही मनोरञ्जन का साधन थी। बहुत हुआ तो उनके सामंत और सेनाधिकारियों को भी शिकार की रुचि हो जाती होगी किन्तु सामान्यजनता की आसट में अभिरुचि नहीं हो सकती थी। बाद के गुप्त सम्राटों की मुद्राओं पर उनकी मृगया प्रियता का कोई उदाहरण नहीं प्राप्त होता। यह सम्भव है कि बौद्ध धर्म के प्रभाव से शिकार में उनकी कोई रुचि नहीं रह गई थी।

साधारण जनता के लिए मनोरञ्जन की पयोपत व्यवस्था थी। 'मृच्छकटिक' से पता चलता है कि नगरीयों तथा हाथियों की परस्पर सगाई का उस समय काफी प्रचार था और इन सटाइयों का देखने से लोग का मनोविनोद होता था। यद्यपि बौद्ध धर्म के सिद्धांत इस प्रकार के मनोविनोद के विरुद्ध थे और सम्राट असाक ने इसको रोकने का प्रयास भी किया था तथापि इसका प्रचार कम नहीं हुआ। हाँ, यह क्षण्य उल्लेखनीय बात है कि भारत में उस काल और निदम कार्य का मनोरञ्जन की दृष्टि से बन्ना नहीं रहा गया जिसका प्रचार रोम में था। वहाँ एक नदपर पशु का मृत्यु कर लक्ष्मणों में छात्र दिया जाता था और उससे युद्ध करने के लिए उसी लक्ष्मणों में किसी निहत्थे पुरुष को छोला जाता था। जब पशु मृत्यु पर आघात करके उसका अंगभंग करता था उसे लक्ष्मणदान कर देता था दशक ह्यनिश्चय करके तासियाँ बजात। भारतवर्ष में पशु आसुरी मनोरञ्जन की कमी इतनी नहीं की गई।

मण्डकिक से दूतकाश का ना परिचय मिलता है। स्पृशक एक नौक से दूतका (दुराशर) के प्रचलित हान का प्रमाण मिलता है। भारतीय इतिहास के पाठका का मान्यता है कि श्रावण के समय में माजुय का मनारञ्जन के एक महत्वपूर्ण साधन के रूप में काका प्रचार था। गुप्त काल में नौ जुय का प्रचलन था और कुछ तादृशक द्वारा निर्देश ही मनारञ्जन करते थे।

जिन उद्योग मनारञ्जन के साधन में मानाये जाते हैं वही उनके नाम लता या यह निरचयपूर्वक कहा नहीं जा सकता। यह काका मान्य है कि नौका का लताई तथा दूत का नाव अवलम्बन नगर के सम्पन्न और एक विभाग के साथ ही करते रहे हैं और समाज के गिण्ट तथा विवकमम्पन्न जन इनमें दूर रहते रहे हैं। नगर में अनेक नायक-गह और ग्राम भवन हान में जहाँ लता का मनारञ्जन होता था। गुप्तकाल में इतने अधिक नायक का प्रचलन हुआ कि आज भी लता मत्स्या किना भ्रायुग के साहित्यिक विभाग में लता और लता प्रचलन का कारण समझा जा सकती है। यह मानना अब बन गया है कि समाज के निर्माणित और गिण्ट जना के मनोरंजन नगर साधन वादन तथा नायक द्वारा जाता था। लता के समा नाटक अनिर्णय है जिससे मालूम पता है कि ये अवश्य अनिर्णय विषय जाते थे। वास्तव में नाटका का जन्म जाना प्राचीन भारत का सबसे उत्कृष्ट और शानदार मनारञ्जन का साधन था। आजकल के सिनेमा चित्रा के समान मनारञ्जन का सत्कृत नायका में एकांत अभाव था। इसके स्थान पर सत्कृत के नायक दाना का मानव-जीवन के अनिर्णय विषय पत्र का अन्वयि कराने थे। नायक नाटकों का परम्परा मूलना या एलिजाबेथ नाटका का परम्पराशासक अत्रिज जावन्त सिद्ध हुई और आज भी यह परम्परा बना हुई है यद्यपि यह गारवमया स्थिति में नहीं है।

सांसायिक उत्सव इस काल में अनाम प्रमोद के सबसे महत्वपूर्ण साधन थे। इसका उद्देश्य फाहियान के यात्रा विवरण में किया गया है। चीना यात्री ने लिखा है प्रति वर्ष रथयात्रा का आयोजन किया जाता है। दूतर मास का आठवाँ तिथि का यात्रा निश्चयनी है। चार पहियों के रथ बनते हैं। यह घूम पर ठाड़ी जाती है जिसमें धरी तथा हर्ष-सय रहते हैं। रथ बीस हाथ ऊँचा और सूप के आकार का बनता है। ऊपर में सफ़ेद चमकाला ऊना बनाया जाता है। विविध प्रकार की रगाई की जाती है। सुवा रजत और स्फटिक का नायक प्रतिमायें निर्मित का जाती हैं। रोम का पत्ता कायों और चाँदी लगाया जाता है। चारा चीना में बनियाँ लगी रहती हैं। रथों की संख्या बास होता है। रथ एक से एक सुन्दर, आकर्षक और नवीने होते हैं। निश्चित समय पर निकट के समा गृहस्थ और सन्नासी आकर एकत्र हो जाते हैं। गाने बजानेवाले भी सम्मिलित होते हैं। पारी पारा से लोग नगर में प्रवेश करते हैं। इस काय में दो रातें व्यतीत हो जाती हैं। सारा रात दापक जला करता है। गाना बजाना और पूजन होता है। प्रत्येक जनपद में ऐसा ही किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि अब पर्वों पर ना इस प्रकार के उत्सव का आयोजन किया जाता रहा होगा। यह उत्सव मनोरञ्जन और आमो-प्रमो का ऐसा साधन था जिसमें समाज के समाज के लोग सामूहिक रूप से सम्मिलित होते थे। फाहियान के कथन से ही यह स्पष्ट विदित होता है कि गृहस्थ और सन्नासी दोनों ही इस उत्सव में भाग लेते थे। इसी प्रकार विद्वाना और मूर्खों धनी तथा निर्धनों की समान उपस्थिति से इस प्रकार के उत्सव-आयोजन संकलन हुआ करते थे।



रहन सहन का उच्च स्तर—अमा तब हमन गुप्तकालीन भारतीयों का जीवन का जा विवचन किया है उसमें यह स्पष्ट है कि उनका भौतिक जीवन का स्तर काफी ऊंचा था। इस काल के साहित्य में या मईस समय के नगरों के वस्तुवस्तु जीवन का संविचार वगैरह किया गया है जिससे उस काल का भौतिक समृद्धि का चित्र जीवा के सामने बिब जाता है। यद्यपि इन वगैरह में कवि-क पना का मनावना है तथापि यह नही कहना है कि पवित्र कुल निरावार है। एक समृद्ध और गवयम नमज का वृष्टममि उरस्थित पर हा उस प्रकार के वगैरह सम्भव है। मयदून के उत्तर में मका निगस नयना का नगरा के वमव और उरसमय वातवगैरह का जा वगैरह किया है उसमें नरकान उरप्रिना का वमव ध्वनिन हाता है। कुम रगुण के मन्नाम अभिनव म गुरुर नार के वमव का वगैरह मरम और कवित्वरु वगैरह मिलना है। मच्छकटिक द्वारा मा गणकालीन नार जावन का विलानमय पत्र मुखर हा उगा है। समाज के उच्च और मम्यत लाना का जीवन मुक्त तथा विनम के समस्त सायना म गरिगुण का और जमा वि मच्छकटिक से पत्र चलता है यद्यपि र्शिता अनाउ न्ना या तथा वे अहिरान के यात्रा विवरण मन्नाम का भौतिक समृद्धि का परिचय प्राप्त हाता है। नावाग्य लाना का जावन मा मुखपूण था। उसमें यत्रपात्रा का अरिक् ममावसा नग था। समाज में पर्योत दानशानता तथा उरगता विमलान या जिससे सम्भवत घन के असमान वितरण का कर्ता का अनुभव लाना का नही हाता था। इस विषय में गुप्तकाल का भारत हितनिम्निक युग और रामन गगतत्र स काका वडा-वडा और थप था। हितनिम्निक युग में और रामन गगतत्र के अन्तिम शिवा म ममाज म चारा आर काका भौतिक समृद्धि विवनाई प ता था। विन्ना म प्रमूठ घन आकर रोम में जमा हा गया परन्तु यह घन अभिजात जग के लाना म केन्द्रित हो गया था जोर माधारण जनता निरक्ष और विवैर थी। जिन लाना के हाथ में घन आया वे अना मानमिक सतुवन खो बडे और धार विनामिता का, जिनमें पागविक मतोवनि और इद्रिपत्रय आवस्पकतात्र के मन्नु करन का प्रवृत्ति प्रधान तथा लन्डिउवनाजा का उरामना वगैरहाउत योग थी जावन व्यरगत करने लगे। विमरान न दिना है कि इस समय के समस्त व्यक्ति इयालिये गाउ थे कि कै कर दें और इतौ विवे के करत थ कि किर ता मकें। रोमन गगतत्र में कामुकता और काम परना का विवोर साम्राज्य था। किन्तु भारत में एमा धार विवमतापूण स्थिति कमा न्ही आने पाइ और न अभिजात लाना का इतना नैतिक पत्रन ही हाते पाया कि वे सब कुठ नूनकर ई इगोसता म सलग्न हो जावें। हां यह सो नही कहा जा सकता कि भारत में भी अभिजात का जावन आला तथा प्रगसनाय था किन्तु इतना कहने में कोई हिक्क नही कि अन्त्यामवाता भारत में कम से कम गुप्तकालीन भारत में अय और काम से सम्बन्ध रखनेवाक क्रियाकलाप लाना के वमरालत में बाधक नही हुए और उनर द्वारा उनकी मूमुना हउ नही होने पाई। हम आा भारतीयों के आला नैतिक चरित्र के विषय में फाहियान का विवरण पडैग जिससे यह निद्व हो जायगा कि इस काल में भारतीयों का राष्ट्रीय चरित्र हेतुनिस्ठिक युग के मुनानियों तथा रोमन साम्राज्य के नागरिका के राष्ट्रीय चरित्र की अना अधिक उरग था।

गुप्तकाल के भारतीयों को जीवन का अनेक सुविधायें प्राप्त थीं, प्रसिद्ध इतिहासकार मिस्टर ई० बी० हेबेल ने लिखा था कि भारत में विविध सत्ता के लिए सबके और सब की बात यह होगी कि वे समस्त सुविधायें प्रदान करे बिना उन्मोष भारतीय जनता थी थी और पाँवरी शताब्दी में करती थी। गुप्तकाल

के प्रथा से ऐसी अनेक वस्तुओं का पता चलता है जिनका प्रयोग करना साग न केवल जानते ही थे वरन् अपना दैनिक जीवन में उन्हें इतना मालम सात भी था। यद्यत्सना के महल के यणन से यह स्पष्ट पता चलता है कि गणितीय इग समय विविध प्रकार की विलास सामग्रियों का प्रयोग करती थी। राजाओं और सामंतों का जीवन अति उत्तम ग विलास का ही जीवन था। शिक्षा समुच्चय नामक महायान बौद्ध ग्रंथ में समकालीन समाज के विलासमय जीवन का यणन किया गया है। यह एक विस्मय की बात है कि इस बात में जल द्वारा चलनवाली घड़ा का साग प्रयोग करना जानते थे। सरकारी विभागों तथा सम्पन्न परिवारों में घड़ियाँ (नाटिकायें) हतीं या जिनसे दिन में समय जाना जा सकता था। गुप्तकाल की नगर सभ्यता में विविध प्रकार के उपना तथा अग्राणा का प्रयोग प्रचलित था। इस काल के दा प्रथा शृंगारशतक तथा ऋतु शृंगार द्वारा गुप्तकाल के विलासमय जोदन का विवरण प्राप्त होता है। इन ग्रंथों से पता चलता है कि सम्पन्न लोग भिन्न भिन्न ऋतुओं में विविध प्रकार के रुखपत्र ग करत थे और ग्रीष्म ऋतु में अति समृद्धित से दन कालपन करते थे। रिश्या करणा में अग्राणा तथा जोठों में अनावतक का प्रयोग करती थी। गुप्तकालीन सभ्यता का विवचन करने पर यह सिद्ध हो जाता है कि यह प्रमुखतया एक सामंतवादिनी सभ्यता थी और साग विलासमय पक्ष का इसमें काफी मात्रा में समावेश था। प्राक्सर आनन्द कुमार स्वामी ने गुप्तकालीन सरकृति का विलासमयी आनिजादय सरकृति 'luxurious aristocratic culture' कहकर अभिहित किया है।

सुगों का उच्च नतिक स्तर—गुप्तकाल के भारतवासियों का जीवन सुख्य और समृद्धिशीली तो था ही उनका चरित्र सबया प्रशसनीय था। फाहियान ने उनका चरित्र के उच्च नतिक स्तर की मूरि मूरि प्रशसा की है। अरक्षित अवस्था में दश के एक विशाल भाग को मात्रा करने पर भी चीनी यात्री कभी लूटा लसाटा नहीं गया। इस घटना से एक ओर शासन प्रबन्ध की निपुणता का परिचय प्राप्त होता है तो दूसरी ओर देश के निवासियों की चारित्रिक दृष्टता पर भी प्रकाश पड़ता है। वदया की दान शीलता के विषय में उसके कथन का पीछे उल्लेख किया गया है। यह सचमुच एक विस्मय की बात है कि फाहियान के कथनानुसार समाज के घनाडय लोग लोक कल्याण के कार्यों में एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा रराते थे। इस बात के भारतीयों में अतिथि सत्कार का एक विशिष्ट चारित्रिक गुण विद्यमान था। ररिक्न (अंग्रेजी भाषा के सुप्र सिद्ध लेखक) ने लिखा था कि किसी सभ्यता की श्रेष्ठता का निगम उन मनुष्यों के द्वारा करना चाहिए जिनको कि वह सभ्यता जन्म देती है *A civilization is to be judged by the type of person that it produces* इस दृष्टि से गुप्तकालीन भारतीय सभ्यता की विवेचना करते हैं तो हम यह कहना पड़ता है कि हम जब यह एक सव्येष्ठ और गौरवमयी सभ्यता थी

## आर्थिक जीवन

पिछले पृष्ठा में हमने गन्तव्य के ऐतिहासिक विषयों का विवरण दिया है वह सभी सम्मथ हो सकता था जब कि देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ रही हो। इस काल में निरसादह जितने प्रगति सभ्यता और ज्ञान विज्ञान का क्षेत्र में की गई थी उतनी ही आर्थिक क्षेत्र में भी। हमने मौर्यकालीन सरकृति में लिखा है कि दश की साम्राज्य सीमा का विस्तार हो जाने से और एक सुसंगठित शासन-व्यवस्था द्वारा रथापित शांति मयता से देश की आर्थिक उत्पत्ति के क्षेत्रों में आर्थिक जनक अभिवृद्धि हुई। महा रिधि

गुप्तकाल के विषय में भाषणा जा सकती है। गुप्ता का साम्राज्य तो काफी विस्तृत था ही उनका मुद्रा और उत्तरा शासन-व्यवस्था ने ही म शांति-स्थापना करके सभी प्रकार की आर्थिक उन्नति का प्रबल प्रोत्साहन प्रदान किया। उत्तरा और शिला नारत में समान रूप से समृद्धि छाई हुई थी और यदि क्या जाय कि हम समृद्धि में उम काल का प्रदर्शित शासन-व्यवस्था का मन्त्रवपुष यागदान या तो का ही अत्यन्त न होगी। कृषि उद्योग धर्म और व्यापार का बहुत अधिक उन्नति हुई और ही मानमानत हा गया।

कृषि—गुप्तकालान्त भारत का आर्थिक चक्रण कृषि पर अवलम्बित था। ही म इस समय जमादारा प्रदा नया था जा कि कुछ शिला पूर्व आधुनिक उत्तर प्रदेश म था और श्रावकान भा वगण म है। परन्तु प्रमाणा म यह बात जाना कि कृषि योग्य भूमि पर राज्य का भा अधिकार नये था वरन् वह शक्तिशाली या परिवारा क स्वामित्व म होता था। हम जान का कृषि का उन्नति पर अनवरत प्रभाव पटना स्वाभाविक था और हम जान क प्रमाण मिलत है कि दश म म समय विविध प्रकार का फसला का उपज जाना था तथा कृषका का अवस्था ही हा मन्तापजनक था। गिरनार पत्तन के निरुद्ध की सुन्दरत खात क स्वतन्त्रता क शासनकाल म पुनर्निर्माण का घटना म सिद्ध करता है कि राज्य का आज म कृषि का उन्नति पर समर्पित ध्यान लिया जाता था। गुप्तकाल क पूर्व ही नगान कृषि का वनानिक पद्धति मानव ती थी। और इस पद्धति क द्वारा के विभिन्न प्रकार की फसल पर्याप्त परिमाण म उत्पन्न करत थे। गुप्तकाल क कृषका म भा हम वनानिक पद्धति का अपनाया था जिस म समय भा कृषि का स्थिति अत्यन्त समप्रत णव सुविकसित था। अमरनाथ म एक पूरा अध्याय बना उद्योग तथा विभिन्न प्रकार क वन-पालपा का उन्नत करता है। भूमि या तो स्वाभाविक रूप से प्राय उपजाऊ था पर कृषि का मुद्रा विधि म उपज की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गई। अन्न की विविध फसला क अनिश्चित ही म शक्ति शक्ति क फला तथा शाका का भा उपज होती था। कुछ म्यान विशेष रूप म फला का उपज क लिए हा विन्यास थे। कई तरह क निरुद्ध का भा पदावार जाना था। पाहियान के यात्रा विवरण से दश का जनता की सामान्य समृद्धि का परिचय प्राप्त होता है परन्तु कृषि का अवस्था पर कोई विशेष प्रकाश नहा पड़ता। ह्वनमाग न अपन समय म विभिन्न फसला का मविन्तार उत्पन्न किया है जिसका उत्पन्न आज यथास्थान किया जायगा।

उद्योग धर्म—गुप्तकाल में भारतीय उद्योग धर्म की स्थिति की ही समृद्धिपूर्ण और मन्तापजनक था। मीय-काल म विभिन्न उद्योग धर्म का जिस-समृद्ध परम्परा का उत्पन्न हमन मीयकालीन मध्यमता और मस्वृति नामक अध्याय म किया है व गुप्तकाल म न कवन आविष्कार हा रना बकि इस समय पहन की अवस्था अधिक उत्तम स्थिति म थी। कुछ उद्योग धर्मों म गुप्तकालान्त भारत क कारागारा न जा निपुणता प्राप्त का वह आज क यांत्रिक युग क कारागारा क लिए सीखा और स्पृष्ट का मन्त्र है। माट का वस्तुओं क निर्माण का उद्योग ही प्रकार का एक धर्म है। हमन पाछ प्रागपर कुभारस्वामा का मन्त्र उद्धृत किया है कि पात निर्माण-कला म गुप्तकालीन कारागार कान। कुशल थ और क पत्थर का मन्त्रा का युगमोप जनमाना का अपना य। और मजदूर जनमान बनाउ थ। शिला क निरुद्ध का तीह स्वयं आज भा अपना उद्योग कारागारा द्वारा ताओं का आ-चर्चा-कृत कर देता है। लौह उद्योग और पात

निर्माण के अतिरिक्त जय उद्योग धंधा में भी गुप्त-युग के भारतीय कारीगर काफी निपुण थे ।

साहित्यिक और पुरातात्विक स्त्रोतों से पता चलता है कि गुप्तकाल में वस्त्र-व्यवसाय काफी विकसित दशा में था । कुछ शिल्पियों से वस्त्र तैयार करने का कार्य देश का सबसे प्रमुख उद्योग बन गया था । देश के प्राचीन पुरुषों का जीविका इसी के द्वारा चलता था । यद्यपि सम्पूर्ण देश में कपड़े तैयार किया जाता था तथापि कुछ स्थान वस्त्र-व्यवसाय के लिए विशेष रूप से विख्यात थे । इससे प्रमुख रूप से गुजरात बंगाल दक्षिण और तामिल देश में अवस्थित थे । हम पाछे विचार कर चुके हैं कि देश में विभिन्न ऋतुओं में अनुकूल वस्त्र पहना जाता था जिससे वस्त्र-व्यवसाय को बहुत अधिक प्रोत्साहन प्राप्त हुआ । अमरकाव्य से पता चलता है कि न केवल सामान्य वस्त्र के विभिन्न प्रकारों के लिए ही विशिष्ट नामों का प्रचलन था अपितु बर्तिया और मामूली कपड़े के लिए विभिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता था । चार प्रकार के वस्त्रों का उल्लेख अमरकाव्य में किया गया है (१) ढाँटी जिसका समीकरण डुकूल के साथ किया गया है और (२) रेशा में बने हुए वस्त्र (३) रुई के वस्त्र जो फला के रंग से बनाये जाते थे (४) रेशमा वस्त्र जिसका निर्माण रेशमा कपड़े द्वारा किया जाता था और (५) ऊना कपड़े जो पशुओं के बालों से तैयार किये जाते थे । इसी प्रकार वे भी उन विभिन्न शब्दों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनका प्रयोग वस्त्र तैयार करने की प्रक्रिया के विभिन्न अवस्थाओं के लिए किया जाता था । बने हुए वस्त्रों के लिए विशिष्ट शब्दों का इसी प्रकार उल्लेख किया हुआ है कपड़े के लिए भी अलग शब्द थे । वस्त्र-निर्माण के साथ वस्त्र-रंगण का व्यवसाय भी काफी उन्नति पर था । गुप्तकालीन स्त्रोतों पुरुषों का रंगण कपड़े पहिनने का अधिक शौक था जिससे इस उद्योग धंधे की उन्नति होना स्वाभाविक ही थी । बरहमिहिर ने 'वज्रलप' का उल्लेख किया है जिसमें पता चलता है कि गुप्तकाल में वस्त्रों का रंगण का रासायनिक क्रिया से भी लोग परिचित थे । वनस्पतियों द्वारा इस समय के कारीगर विभिन्न प्रकार के रंग प्राप्त करते थे जिनका प्रयोग वे वस्त्र-रंगण के कार्य में करते थे ।

इस बात के प्रचुर प्रमाण उपलब्ध हैं कि देश में वस्त्र-सिलन का व्यवसाय भी बनमान था । यद्यपि अब भी देश में अधिकतर बिना सिले हुए कपड़े का प्रयोग किया जाता था तथापि गुप्त सम्राटों के कुछ सिक्कों तथा बाघ और अजन्ता के चित्रों से पता चलता है कि सिले हुए परिवान भी इस काल में धारण किये जाते थे । लेकिन इस समय देश में सिले हुए वस्त्रों का प्रयोग व्यापक रूप से नहीं होने के कारण वस्त्र-सिलन का व्यवसाय अधिक उन्नति पर नहीं रहा होगा ।

गुप्तकाल में विभिन्न प्रकार के आभूषणों का प्रयोग किया जाता था जिससे यह पता चलता है कि सुवर्णकार का व्यवसाय समृद्ध अवस्था में था । वास्तव में सुवर्णकारों की कला इतना विकसित थी कि इसके द्वारा विज्ञान का एक नयी शाखा का जन्म हुआ जिसका नाम रत्नपरीक्षा था । यह विज्ञान काफी प्राचीन मालूम पड़ता है क्योंकि वात्स्यायन ने अपने कामसूत्र में इसके उल्लेख किया है । दियावदान में भी यह उल्लेख मिलता है कि व्यापारियों के पुत्रों का इस विज्ञान की शिक्षा दी जाती थी । बर्हमिहिर ने चौबिस प्रकार के आभूषणों की सूची है जिनका प्रयोग उस समय किये जाता था । विशेष रूप से हीरो मोंतिया तथा लाला के उल्लेख उनके उत्पत्ति-स्थान रंग तथा गुण के आधार पर किया गया है । विभिन्न रत्नों की विशिष्टताओं से लोग इस समय अच्छी तरह से परिचित थे और कवियों ने अपनी रचनाओं में उनका प्रयोग

सुन्दर उपमाएँ दत्त क लिए किया है।<sup>१</sup> काहियान क यात्रा विवरण म पता चलता है कि इस काल म सात चाँदी और मणि की मूर्तियाँ ना बनाई जाता था। ताँब के बढ़िया बतन तैयार करन का उद्योग भा प्रचलित था। भगवान् बुद्ध की कुछ ऐसी भा मूर्तियाँ मिला है जे पातल और काँस की बनी हुई हैं जिनस पता चलता है कि इन धातुओं का भा लाग प्रयोग करत रह हाण। मानी क आसूषण बनान क व्यवसाय की गुप्तकाल म बहुत अधिक उन्नति हुई थी।

साहित्यिक और पुरातात्विक दाना साना स पता चलता है कि गुप्तयुग क भाग ताय उद्योग घघा म गज दन्त शिल्प की बग महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इस काल क गजदन्त शिल्पिया की निपुणता प्रशंसनीय थी। क विविध प्रकार की वस्तुएँ हाथी दाँत स तयार करत थ जिनका प्रयोग घना मनी लाग अपन घरों की शोभा बढान म करत थ।

१/ श्रणियाँ—प्राचीन भारत क आर्थिक जीवन म व्यापारियाँ और व्यवसायियाँ की श्रणियाँ का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। हम दख चुक है कि बुद्ध कालीन भारत म ये श्रणियाँ विद्यमान था और मौर्यकालीन भारत म इनका क्या अवस्था था इस पर भी विचार कर चुक है। दक्षिण म सातवाहटो क शासन-काल म भा व्यापारिक और औद्योगिक श्रणियाँ काफी अधिक सरया म थी। इनक विषय म भी हम पाछ पठ चुक है। गुप्तकालीन काल म श्रणियाँ का उल्लेख प्रचुरता स किया गया है। श्री ढण्डकरजा का कथन है कि एक अमिलख म श्रणि प्रमुखा व्यापारियाँ और शारागरा क समूहा तथा इसी प्रकार का अन्य समस्याओं क उल्लेख द्वारा गुप्त युग क आर्थिक संगठन का मनो रञ्जक सीका मिलती है। सामूहिक क्रियाशीलता राष्ट्रीय जीवन क ताना स्या— सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक—का प्रमुख विशेषता प्रतात हाती है। The mention in an inscription of the corporation of guild pre idents traders and chiefs of groups of artisans and of kindred bodies etc अष्टिसायवाहकुलिकनिगम् provides interest in glimpses in the economic organisation of the Gupta period Corporate activity seems to have been the outstanding feature of all the three aspects of national life social, political and economic ३

गुप्तकाल तथा मुहुरो म कई स्थान पर व्यावसायिक श्रणियाँ क अस्तित्व का पता चलता है। मन्दसौर क काल म जो कुमार गुप्त प्रथम क शासन-काल म सम्बन्धित है एक पट्टकार खेती का उल्लेख किया गया है जे लाट (दक्षिण गुजरात) म आकर दशपुर, (मालवा) म निवास करन लगी थी। स्वयं गुप्त काल म इन्द्र पुरनिवासियाँ तलिक-रण्या का उल्लेख मिलता है। तलिका का इस जेगा क पास एक ब्राह्मण ने अणय नीवी जमा कर दी थी जिसक द्वारा होनवान व्याज म श्रणा की आर म मूय मन्दिर म लिय रात्रि म दीपक जलान का व्यवस्था की गई था। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तयुग म पट्टकार, तलिक मूर्तिकार, शिल्पकार, कृषिक आदि व्यवसायियों की श्रणियाँ बनमान थी।

गुप्तकाल की शान्तिमयता और समृद्धि न अन्तःप्रान्तीय और अन्तर्राष्ट्रीय क व्यापार का बधा प्रबल प्रत्याह्वन प्रदान किया और इसका श्रणियाँ क विकास पर भा प्रभाव

<sup>१</sup> Classical Age p 666

<sup>२</sup> A History of the Guptas p 10.

पडा। वसाह म जो कि प्राचीन वशाती क निक्क वसा था और जहाँ गुप्ता का एक प्रांतीय सरकार का केन्द्र था अनन मुहुरें प्राप्त हुए हैं जिनके द्वारा श्रेणी व्यवस्था पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पता है। इस विषय म डा० यू० एन० घाषान का कथन है—

From Bharh on the site of ancient Vaisali have been recovered seal and sealings belonging to guilds of bankers, traders and artizans. In many specimens the sealings of the guilds have been combined with those of private individuals who were evidently its members. This suggests as Block pointed out long ago something like a modern chamber of commerce established at the provincial headquarters from which members sent out instructions to their local agents. प्राचीन वशाती क निक्क वसाह म मुहुरें और sealings प्राप्त हुई है जो बकरा घाषानिया जीर वाराणसी की श्रेणिया स सम्बन्धित हैं। बहुत स नमूना म श्रेणिया का मुहरा क साथ व्यक्तिया की मुहुरें मिता ली गई हैं जा स्पष्टतया इमन सम्बन्ध थ। इमम यह ध्वनित हाता है जसा कि नाँक नवहूत पहल निर्देश किया था कि यन् जाधनिक वाणिज्य समिति (Chamber of Commerce) की तरह का एक सम्घा था जा प्रांतीय सरकारा क केंद्रा म स्थापित की गई थी जीर जहाँ स सम्बन्धगण अपन स्थानीय एजेंटो को जादेश मजत थ।

य श्रेणियाँ समाज म बड़े जादर और सम्मान की अधिकारिणी समया जाना थी। य स्वतंत्र सस्थाएँ होता थी और अपने ही नियमा तथा उपनियमा द्वारा संचालित हाती था। इनके नियमा और परम्पराओं का सम्मान राय द्वारा किय जान का उल्लेख याज्ञवल्क्य स्मृति म मिलता है। श्रेणिया के सदस्या म आपस म जो मुकाम हुआ करते थ उनका फसला श्रेणी की व्यवस्थापिका करती थी राय क 'यायानय न'। श्रेणियो के पास अपनी सम्पत्ति तथा अपना वाप हाता था। कई कर्म श्रेणिया क पास ता इतना अधिक धन हाता था कि वे दरीगृह दान कर सकती अथवा मंदिर का निर्माण करा सकती थी। श्रेणिया क कतिपय सदस्य मुनिशिक्षित तथा सुसंस्कृत अभिरचि क होने थ। मदनार अभिनव म पत्कार श्रेणी के बहुत से सदस्या का उल्लेख मिलता है जो भिन्न भिन्न विद्याओं म निपुण थ। कुछ गान कया घम प्रसंग बन्ध बुनने प्योनिप ममर घम शीत आदि विषया म दक्ष थ। डा० अनन्त सदाशिव अल्लेकर का विश्वास है कि आपत्तिकारण समुपस्थित होने पर श्रेणियाँ अपने ही सदस्या और कर्मचारियों की एक छाया माग सना तयार करती था जीर इस सना क द्वारा अपन सन्ध्या क शरीर सम्पत्ति तथा माला का रक्षा कर सकती थी।

गुप्तकालान स्मृति-ग्रन्था द्वारा भा श्रेणि व्यवस्था क ऊपर काफी प्रकाश पता है। स्मृतिया म पना चरना है कि श्रेणियाँ बानका और युवका का 'दावसायिक' या व्यापारिक शिक्षा प्रदान करती थी। अपन वाचको को जाना प्राप्त करके बानक या युवक बिना श्रणा म प्रवेश करता था जीर एक निश्चित काल तक अपन शिक्षक क उपान रत्कर शिक्षा प्राप्त करता था। शिक्षक अपने शिष्य के साथ पुत्रवत व्यवहार करता था जीर शिष्य मा उनका आन्तर सम्मान करता था। शिक्षक का यह पुण्य कृत्य

Classical Age p 193 इस श्रेणी क विभिन्न विवरण के लिए देखें ।

समया जाता था कि वह अपन शिष्य का शिल्प विगप म निपुण बनान का प्रयास कर। यदि वह उस जय काय म नियाजित करता ता दण्ड का भागा हाता था। निश्चित बान म विद्यार्थी शिल्प कला म निपुणता प्राप्त करव अपन गह लोत आता था। इस बान की स्मृतियाँ श्रणिया का काय प्रणाली का भा कापा उत्तम करती है। स्मृति प्रया स इस बात का प्रमाण मिलता है कि श्रणिया का उगठन कापा मुत्क हाता था जोर इसका विपणित करन का प्रयास करनेवाता मन्म्य कठार दण्ड का भागा हाता था। मनु तथा अय स्मृतिया म श्रणिया का गण या समह का अविच्छिन्न अग बताया गया है। गण अपना काय मवानन परम्परागन नियम। (धम) क आधार पर करता था। वहस्पति न कहा है कि न नियमा का विपिद्ध कर न्ना चाहिय। गण का काय-संचालन सन्ध्या द्वारा चुन हुए पगमशातना करन थ। वहस्पति न इनकी सन्ध्या दा तीन या पाँच बनाइ है। गणा का शासन मन्ववा कतया क माय माय पाय-मन्ववा कतव्यो का भी पानन करना प ता था। स्मृतियाँ इस बान की व्याज दर का भी उल्लख करती हैं।

श्रणिया क ऊपर हमन जा विचार किया है उमस यह स्पष्ट न जाता है कि इनका उपायता कितना अधिक था। इनक द्वारा व्यापार और शिल्प क प्रतसाहन ता प्राप्त हाता हा था नागा म सहयोगपूण कायशानता का भावना का भा मचार हाता था। श्रणि-सन्ध्यायें दश म सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति का माग प्रशस्त करती थी। प्राफमर आ० सा० मजूमदार न ठीक कहा है कि श्र क बानुन इ हें स्वशासन और स्वतंत्रता का जा सुविधायें प्रदान करत थ उनक द्वारा व शानन क कद्र तथा उत्तर सस्कृति क आस्प का गय थ यार इस प्रकार समाज का शक्ति तथा जासुपण क रूप म बना दिय गय थ। Through the autonomy and fluctuation of ideas within the bosoms of the land they became a centre of strength and an embodiment of liberal culture and progress which made them a power and ornament of the society 1

व्यापार—शृपि और उद्योग पचा का मनुद्धि ने व्यापार का उन्नति का अनिवाय कर दिया। आन्तरिक व्यापार का अवस्था कापा मन्वाजनक या और श्र क एक भाग स दूसर भाग तक व्यापारी अपना विक्रय नामप्रिया क माय बिना कितो राव-राव क आया जाया करत थ। विश्वा व्यापार मा मनुप्रत दगा मथा। आन्तरिक व्यापार क उन्नति स नगरा क बमय जोर पन्वय म अभिवाड हुई। मन्मवन नर नगरा का स्थापना मा हुई हागी। गुल् यग क लवा न इस समय क आन्तरिक और विश्वा व्यापार की स्थिति पर कुछ प्रकाश प ता है। न क नातर व्यापार ना सुविधा क लिए राजमार्गी आञ्जल मार्गी का समुचित व्यवस्थाथा जरतना हा मार्गी म व्यापारा अपन समान पटुक्वात तथा यात्रा करत थ। इस समय मास उजयिना पधन विश्वा प्रयाग बनारस गया पाण्डिपुत्र वजाना ताध्वत्रिणि कौशाभ्या मयुग अहिच्छत्र तथा पनावर व्यापार क प्रमुख क थ। य राजरया शारा एक दूमरे म ज। हुए थ। गुल्वा क मुत्क शासन व्यवस्था क कारण राजमाग गवथा मुरगिन थ। विक्रय नामप्रिया का गमनागमन गाशिया तथा पतुत्राडाग हाता था। कहां कहा पर इस काय क लिए व्यापारा हाधिया का प्रयाग मा करत थ। परन्तु इस समय जलमाग व्यापार का दृष्टि म अधिक सुविधाजनक तथा कम व्ययमाध्य था। गगा बहापुत्र नमग

गोदावरी कृष्णा और कावेरी नदियां द्वारा व्यापार किया जाता था। उनी उरी नौकाये बनाईं जाना था जिनके द्वारा व्यापार काफी सुविधापूर्ण हो गया था। व्यापारियों और श्रमिकों द्वारा दिन दिन वस्तुओं का श्रय विक्रय होता था। इस विषय में हमें गतिमान सूचना उपलब्ध नहीं है। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न प्रकार के उत्पन्न अन्न मसाले नमक और बहुमूल्य पत्थर आदि वस्तुओं आन्तरिक व्यापार की प्रथम सामग्रियाँ थीं।

भारत का विदेशी व्यापार काफी विकसित अवस्था में था और देश की आर्थिक समृद्धि का महत्वपूर्ण कारण था। विदेशी व्यापार भी जन और मूल्य दोनों मागों द्वारा किया जाता था। स्थल मार्ग द्वारा भारत पूर्व में तिब्बत तथा चीन और पश्चिम में ईरान और अरब में व्यापार करता था। महान् गारियों के कारवान भारत से विश्वा का जाते थे और यन्त्र की बनी हुई वस्तुओं विदेशी बाजारों में विक्रयी थीं। जनमागों द्वारा विदेशी व्यापार अधिक परिमाण में किया जाता था। पूर्व में साम्राज्य के उत्तरांग प्रान्त का एक प्रमुख नगर था। भारत के पूर्वीय व्यापार का यह सबसे प्रधान केंद्र था। चान लका जावा और सुमात्रा आदि देशों का भारतीय व्यापारी इसी बंदरगाह द्वारा जाते थे। आसन्न देश में गोदावरी तथा कृष्णा नदियाँ के मैदानों पर अनेक बंदरगाहें थीं जिनमें बंदर और घण्टशाह अधिक प्रसिद्ध थे। इनका उल्लेख टोनमी में भी किया है। कावेरीपट्टनम और तोदर चोल देश के प्रमुख बंदरगाहें थे पाण्ड्य देश के प्रमुख बंदरगाह कोरकई तथा मलिपुर ये और इसी प्रकार मलाबार के समुद्री तट पर कोट्टयम और मूजिरिस प्रमुख बंदरगाहें थे। चीन और अन्य पूर्वीय देशों के साथ इन बंदरगाहों के माग में भारत ने व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित कर रखे थे। व्यापार के साथ साथ इन स्थानों में भारतीय संस्कृति का भी प्रचार जाता था। चानी यात्री फाहियान के विवरण में इस चान का मास्य मिलता है कि चौथी शताब्दी में साम्राज्य और लका में नियमित रूप में व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था और इण्डोचीन तथा इण्डोनेशिया भी इनके द्वारा व्यापारिक दृष्टि में जड़े गए थे। बंदरगाहों के रूप में लका की स्थिति उत्तम महत्वपूर्ण थी। भारत के पूर्वीय और पश्चिमी बंदरगाहों का यह एक दूसरे में जोड़ता था और अपनी क्षेत्रीय स्थिति के कारण हिन्द महासागर के व्यापार के एक बन्दरगाह बाजार के रूप में था।

गुप्तकाल में पश्चिमी देशों के साथ भारत का व्यापारिक सम्बन्ध काफी प्रगत हुआ था। कुषाण-समृद्धि का अध्ययन करते हुए हमने देखा है कि कुषाणकाल में भारत का पश्चिमी देशों के साथ व्यापार करने में कितना अधिक लाभ होता था। गुप्तकाल में यह व्यापार और अधिक समृद्ध तथा वृद्धिमान हुआ। जिस समय में चान गुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने काठियावाड़ के बंदरगाहों पर अपना अधिकार कर लिया भारत के पश्चिमी व्यापार की प्रबल प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। प्राचीन साम्राज्य में यवनो का उत्थान किया गया है और इस साम्राज्य के अध्ययन द्वारा रोम और अन्य यवन देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध पर काफी महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। कोस्मस (Cosmas) नामक यवन ने भी भारत और पश्चिमी देशों के व्यापार का उल्लेख किया है। उस उल्लेख में लिखा है कि भारत की कृषि साम्राज्यीय उपजों में धान और लौह और चन्दन को तक ही भारत के पूर्वीय सम्बन्ध से उका पहुँचायी जाती थी। और वहाँ से उनका निर्यात पाश्चात्य बंदरगाहों को किया जाता था। फारस तथा इथियोपिया समुदाय तक यह वस्तु पहुँचती थी। गोलमिर्च का निर्यात विशेष रूप से किया जाता था। यह वस्तु मलाबार के पश्चिमी बंदरगाहों में विदेशों को भेजी जाती थी।



मानी बहुमूल्य पत्थर मुगधित पत्थर कपड़े मन्थनीय औषधियाँ नारियल और घृणादि निर्यात की प्रमुख सामग्रियाँ थीं। इन वस्तुओं का वस्तुतः म विदेशों में माना तथा मोने का सिक्को का आयात होता था। भारतवर्षी लज्जर घोड़े टान कपुर तथा मगों विदेशों में मंगाते थे। चीन का रेशमी वस्त्र भी देश में काफी लोकप्रिय थे। 'अमर काप में बनाया (अरब) पारसिक (फारस) कास्त्राज और बाह्यिक का अर्वा का उल्लेख किया गया है। गुप्तयुग में था। आ आयात उत्तरी पश्चिमी साम्राज्य तथा अरब फारस और अफगानिस्तान में किया जाता था। कास्त्राज स्पष्टतया कस्त्रा है कि फारस में बनाए गए थे तथा पट्टायाय जाते थे। जमरनाथ में पता चलता है कि तावा म्लच्छ में बनाए गए थे तथा पट्टायाय जाते थे। कास्त्राज न त्रिवा है कि कस्याण म्भ म तांवा पदा किया जाता था परन्तु एमा प्रतीत जाता है कि यत् तांवा विदेशों में आता था। यह एक उल्लेख्य बात है कि इस समय कस्याण पश्चिमी भारत का एक वस्तु बना बाजार था। पश्चिमी देशों में भारत का जा व्यापारिक सम्बन्ध या उमम भारतवासियों का अधिक लाभ था। गुप्त सम्राटों ने विनापक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य तथा कुमारगुप्त ने मनी की जा कलापूर्ण मुद्राएँ बनाई उमक निगम अर्थ अधिकतर मोना विदेशों से ही प्राप्त होता था।

**धार्मिक अवस्था**

गुप्तकाल में भारत का धार्मिक विकास का लिए भी विख्यात था। या तो भारत सत्त्व में ही धर्मपरायण देश रहा है और धार्मिक सन्धिना भी म्भ है। यहाँ का निवा सिया का शिल्पकाम का विपत्ता रहा है तथापि गुप्त युग का इन बातों का लिए विशेष महत्त्व है। गुप्त सम्राटों का धार्मिक उत्थारता वस्तुतः प्रथमनाय था। प्राप्तिर तथा नुमुत् मुक्तियों का यह कथन बिल्कुल ठीक है कि गुप्त सम्राटों ने आप धर्म का प्रत्येक शाखा का एक धर्म वर्णक धर्म शासन में बौद्ध धर्म और जनधर्म का अपना साम्राज्य सीमा में फलन फलन का अवसर प्रदान किया। धार्मिक सन्धिना का भावना कथन ब्राह्मण धर्म की निर्दिष्ट गायत्री तथा शिव वर्णक या शासन धर्मों में ही विद्यमान न था वरन् जन और बौद्ध सुधारवादी धार्मिक आन्दोलनों में भी इसका प्रसार था।

आज का प्रचलित हिन्दू धर्म का स्वरूप का निर्माण गुप्त युग में ही हुआ। बौद्ध  
वनाओं का पूजा के स्थान पर विष्णु और शिव का उपासना का प्रचार समाज में  
बढ़ा। मौर्य काल की धार्मिक व्यवस्था का मन्थन में समान भागवत धर्म के स्थान  
और विष्णु-पूजा का प्रचार का कारण अध्ययन किया है। समाजकारण धर्म का सन्धि  
विवेचना में म्भ वहाँ कर चुके हैं। गुप्त युग के धार्मिक जीवन का यह एक प्रमुख  
विपत्ता है कि इस समय धर्म की जनता परम्परा का जितना अभिवृत्ति शिव  
आर वर्णक तथा मन्थान सम्राटों के द्वारा म्भ या वग प्रयत्न प्राप्त प्राप्त  
हुआ। बौद्ध पुराणों का रचना की गई जिनमें शिव और वर्णक धर्मों का मन्थन उठ  
लाया गया और कथाओं का माध्यम में जनता का मन धर्मों के मिदालों में अवगत  
करान का प्रयत्न किया गया। ब्राह्मण धर्म का म्भ म्भ था जिसे म्भ आने हिन्दू धर्म  
काल है गुप्त काल में बौद्धिक स्वरूप प्राप्त हुआ। म्भ म्भ में बौद्ध धर्म का म्भ  
तथा प्रयासों में नया किया गया था वरन् या काला चाण्डि नि उत्तिक धर्म का म्भ  
नी इसमें विद्यमान थे किन्तु तात्कालिक आकृष्ट करने का लिए म्भमें नवान तथा  
का समावेश किया गया था। मनि-पूजा का प्रचलन गुप्त-युग के पूर्व या प्राग्भन था  
चुका था किन्तु इस युग में हम इसका व्यापक प्रचार स्थान है। विष्णु धर्मोत्तर में

मूर्ति-पूजा सम्बन्धिनी धारणा की याह्या भी की गई जोर पण्डितों का भी उमके महत्व से परिचित कराने का प्रयास किया गया। इस प्रकार गुप्त युग के हिन्दू धर्म में प्राचीन और नवान तत्वों का समन्वय था ऊँचा तथा नीची जाध्यात्मिक जोर धार्मिक विचार धाराओं का सामञ्जस्य था और समाज में जो नवान तत्व प्रविष्ट हो गये थे उनको भी इस धर्म में समुचित स्थान दिया गया था।<sup>१</sup> हम गुप्तयुग का धार्मिक जवस्था का अध्ययन सुबबों का दृष्टि से कई शायकों के जलगत करेंगे।

वदिक धर्म—यद्यपि गुप्त युग में लोक दृष्टि के अधिक निकटवाल वण्णव और शव धर्मा का प्रचार आधक था और बाढ़ तथा जन धर्म में अधिक ह्यासा मुवा स्थिति में नहीं थे तथापि वदिक धर्म समाज में एक सबन शक्ति के रूप में था। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य, कुमारगुप्त प्रथम और स्कन्दगुप्त वण्णव धर्मा नुमाया थे किंतु उन्होंने वदिक धर्म का सक्रय पापण किया। मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद वदिक प्रतिभया के सबस प्रथम दशन हम पुष्यमित्र शुग के काल में हात हैं जिस समय न केवल अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया गया बरन मनुस्मृति में स्पष्ट शब्दों में वदिक धर्म का उच्छता का प्रतिपादन किया गया। जमिनि के मामामा सूत्रों का रचना भा वदिक धर्म का समवर्न आर पापण करने के लिए हा का गई था। महा भारत में भी जो प्राग्गत स्थान जो गया उनमें वदिक यज्ञों के अनुष्ठान की काफा माहमा गाई गई। इन सबका प्रभाव वदिक धर्म का उन्नति का दृष्टि में वाछनीय पडा और लोक दृष्टि में इसका सम्मान बढ गया।

यहा तक कि दक्षिण देश में भी वदिक यज्ञों से लागा का परिवय हो गया जोर तामिल साहित्य में यज्ञ का यूप एक सामान्य चर्चा का विषय बन गया था। ईसा की पांचवी शताब्दी तक वदिक धर्म समाज में काफा लाकप्रिय था। बाद में भी साधारण जनता का श्रद्धा इस धर्म के प्रात बना रहा। गुप्त युग में जिस हिन्दू धर्म का विकास हुआ वह समन्वयवा था कयाव न के कि हम पहल कह चुके हैं इसमें भावतवाणी शव और वण्णव सम्प्रदायों के तत्व वदिक यज्ञ यागादि के साथ मिश्र हुए थे। इसलिए दश में सामान्य जनता के बीच भावतवाणी सम्प्रदायों का अधिक प्रचार हो जान पर भी वदिक धर्म का सम्मान हाता रहा। समाज के विवेका जोर सुशिक्षित जना की दृष्टि में वदिक यज्ञ और सस्कारों का काफा महत्व था। हम गुप्त-युग के इहलाकपरक साहित्य द्वारा इस काल के समन्वय प्रवाण हिन्दू धर्म का परिवय प्राप्त होता है। महा कवि कालिदास निस्सन्दह शव थे किंतु उन्होंने रघुवश में वदिक सस्कारों जोर यज्ञों का सच्ची सहानुमूर्ति के साथ वर्णन किया है। एक उपमा में उन्होंने वदों के प्रति आस्था प्रकट की है जब वे कहते हैं कि किस प्रकार स्मृतियों वदों का अनुसरण करता है उसी प्रकार मुनद कामरनु के पीछे-माछ चली।<sup>२</sup>

<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में डा० आर० सी० मजमदार का यह कथन बडा महत्वपूर्ण है  
Hinduism has already grown into that mosaic of various patterns combining the religious and spiritual ideas both old and new high and low losing nothing and eternally adding more and more from new elements introduced into society *Classical Age* p 367

<sup>२</sup> तस्या सूर्यासपवित्रपांसुमपासुलानां धृति कौतुकीया ।  
माय मनुष्यश्वर धर्मपत्नीव्रतारवाय स्मृतिरिव वगच्छत ॥

गुप्त युग के लखों से इस बात का सूचना काफी मितता है कि उन्होंने ब्राह्मणों का प्रचुर दाक्षिण्य देा। यह एक उल्लेख्य तथ्य है कि ब्राह्मणों का मन नना वत्तिक या ब्राह्मण धर्म का एक प्रमुख तत्व है। आर हण्डकर महात्म्य का विचार है कि इस अन्वाहृत नहा वि या जा मकता कि राजाशय ब्राह्मणों का एक अतिकार था। उताहण के लिए पांच दामापरपुर पत्र आर चार फरादपुर पत्र या ना ब्राह्मणों या कतिपय हिन्दू देवताओं के लिए दान में भूमि के लिये जान का उल्लेख करते हैं। Other donations of a religious character which clearly indicate the Hindu bias of the period are those for the performance of five great rites for the erection of a यूप after the completion of the गुहरीक sacrifice and for the establishment of मन for Brahmans and other communities'

अमिलसा और मुद्राका द्वारा उत्तरा और दक्षिणा नागन के नृपतिया द्वारा बर्दिक यन विरिष्टतया अवमय यन किये जान के उल्लेख प्रचुरतया प्राप्त हान है। गणना के अलावा दूसरे Damodarपुर के सम्बन्ध में हण्डकर कहते हैं 'The first and the second Damodarपुर copperplates are distinctly Brahmanical in nature since they clearly refer to अग्निहोम and महात्म्य। These references to several types of Vedic sacrifices big and small definitely go to point out how this prominent feature of the Brahmanical religion had considerably developed under the Guptas न केवल समुद्रगुप्त तथा प्रवरसेन प्रथम जस प्रतापा सम्राटों ने भी अवमय यन का अनुष्ठान किया था। अपितु इक्ष्वाकु वंश के शान्तमूल नामके एक छाप में राजा ने मा जन्मन किया था। कुछ सामन्तों ने मा अवमय यन करके अपनी इच्छा पूरा की। डा० जल्लेकर महात्म्य का कथन है कि उपर्युक्त सामन्तों ने यथा पता चिन्ता है कि इन्द्र धर्म का पुनरुत्थान हो जान के बाद तामरा और चाया जिनका मन्त्रा मन्त्रा का जितना अधिक साक्षरियता था उतनी ही बर्मा नदी थी। प्रवरसेन प्रथम नामके प्रतापो बाकाटक सम्राट ने न केवल अवमय हो करके आप्तायम उपर्युक्त नामके बहूपतिसत्त्व और वाजपय यना का अनुष्ठान किया। पत्नवा ने ना अनेक वत्तिक यन किये थे। पल्लवा और इक्ष्वाकुओं ने अग्निहोम वाजपय और अवमय यन किये थे। साधारण तामा के हृद्यों में पञ्च महात्म्य के प्रति काफी श्रद्धा थी और बर्दिक धर्म के प्रति आदर का भाव था।

बल्लव धर्म—बर्दिक धर्म का प्रभाव साधारण जनता पर बहुत गम्भीर नथा प सका। इस सम्भव नहा था क्योंकि यना का अनुष्ठान सम्पन्न तामा के तामा द्वा सम्भव था सामान्य जन ध्ययनाध्य यना का नही करा मकत था। इसमें अनिश्चित मकित प्रधान स्नानधर्म का अतिरिक्त बहूना हुई साक्षरियता के कारण वत्तिक यना का प्रचार उतना अधिक नहा गह सभा जसा कि कुछ ही वर्षों पूर्व था। पाँचवा जनात्त म हम् निश्चय हो वत्तिक यना का दामापर पात है। अनेक महात्म्य इस सम्भव यना का अनुष्ठान किया था समुद्रगुप्त और कुमारगुप्त केवल एक ही यन में अनुष्ठान ही गय। इसका दूसरी तामरी और चौथी जनात्तिया में पापाणयूप जो उनके अनुष्ठान की स्मृति दिलाते थे बाका प्रवर्तित थे लकिन बाद में उनका नाश होना

लगता है। भीटा नासदा और वशाली से जो मूर्हें प्राप्त हुई हैं उन पर शय चक्र त्रिगुल और नन्दी के चिह्न काफी अधिक संख्या में मिलते हैं—अग्नि देवी या यूप के दशन यदुत ही कम हाते हैं। शिव और विष्णु जम पौराणिक देवाधा ने सामान्य जनता के हृदय को अधिक देवताओं का अपेक्षा अधिक प्रभावित किया।<sup>1</sup>

इस बात का हमने पहले ही उल्लेख किया है कि गुप्त नरेश वष्णव धर्म के अनुयायी थे। उनके समकालीन अथ राजाओं के भी वष्णव होने का प्रमाण मिलता है चन्द्रगुप्त द्वितीय कुमारगुप्त प्रथम और स्वर्णगुप्त के सिक्कों पर उनको परम भगवत कहा गया है जिससे यह पता चलता है कि वे भगवान् वाग्देव के महान भक्त थे। उनका व्यक्तिगत और सरकारी लेखा में गरुड एवं नन्दी के चिह्न भी यह सूचित करते हैं कि वे वष्णव धर्म के उत्तम अनुयायी थे। चन्द्रगुप्त त्रिभय का मित्रोली नौह स्तम्भ विष्णुवज्र कहा गया है। उदयगिरि गुहा का एक अभिलेख विष्णु और दम नुजा चण्डी के चित्रों के ऊपर एक दीवाल में उत्कीर्ण है। श्री डण्णकर के शिलालेख में

The most popular sect of the Hindu religion patronized in the Gupta period seems to have been Vaishnavism. A large number of Gupta inscriptions are distinctly representative of Vaishnav tendencies. चक्रपालित ने सुदशन झील पर जो बाँध बनवाया था उसकी स्मृति में उनमें चक्रमत के जो विष्णु के ही एक रूप थे एक मन्दिर का निर्माण कराया था। गुप्त राजाओं के सामन्तों की वष्णव धर्म के प्रति आस्था का भी प्रमाण मिलता है। विष्णु के ही एक रूप भगवान् जनादन की स्मृति में एक ध्वजस्तम्भ मातविष्णु और ध्यानविष्णु द्वारा बनवाया जान का उल्लेख बुधगुप्त के एरण अभिलेख में मिलता है। इस अभिलेख में मानविष्णु को जो बुधगुप्त का सामन्त था भगवान् विष्णु का एक महान भक्त कहा गया है। विष्णु के अवतारों की जन्मे वाराहावतार की स्तुति बिल्कुल पौराणिक ढंग से की गई है।

उपरोक्त प्रमाणों के द्वारा यह प्रमाणित होता है कि गुप्त युग में वष्णव धर्म काफी लोकप्रिय होता जा रहा था। दक्षिण भारत में इसके प्रचार का थय आन्ध्र प्रदेश के जिन जिन ताम्र पत्रों में सरस और भावपूर्ण पद्यों की रचना करके लोगों का ध्यान वष्णव मत की ओर आकृष्ट किया। इनके पत्र इतने सरस हैं कि साधारण जन भी उन्हें समझ सकते हैं। उत्तर भारत में वष्णव मत के प्रचार का कारण पुराणों का प्रणयन था जिनमें स्थान स्थान पर विष्णु की महिमा गाई गई है। यहाँ एक बात अवश्य ही स्मरण रखना चाहिए कि पुराणकारों ने हिन्दू धर्म की लोकप्रिय बनाने में उत्तमतराका का अपनाया जिनका महायान बौद्ध के माननेवालों ने ग्रहण किया था परन्तु कानन नर में ब्राह्मण नाम के मत में अपने प्रतिस्पर्धी धर्म प्रचारकों से बहुत आगे बढ़ गया। पुराणों में विष्णु के विभिन्न अवतारों का कल्पना का गई और उनको मानवीय आचरण में युक्त तथापि सशक्तमान् और भक्तवत्सल प्रदर्शित करके पुराणकारों ने जनता के बीच वष्णव धर्म फैलाने में काफी अधिक सफलता प्राप्त की।

गुप्त युग में भगवान् विष्णु के अनेक अवतारों की कल्पना की गई जिनमें वाराह वृष्ण वामन मत्स्य कूर्म और राम के अवतार प्रमुख थे। इनमें समस्त अवतारों में वाराह और वृष्ण के अवतार सबसे अधिक लोकप्रिय थे। ताम्र पत्र साहित्य के अध्ययन

मे पता चलता है कि दक्षिण में भी कृष्ण की लोकप्रियता सब अवतारों ने अग्रिम थी। पाण्डवा की राजधानी का नाम 'मथुरा' पटना जो कि मथुरा का ही एक अन्य नाम जान पड़ता है यह सिद्ध करता कि यह नगर भागवत धर्म की शक्ति का एक प्रबल कन्द्र था गया था मथुरा और इसके निकटवर्ती प्रदेशों में ही आनवारों का उत्पन्न भाव हुआ जिसने मक्ति और कृष्ण पूजा के सम्बन्ध में तामिस भाषा में पद लिखे। शिलपट्टिकारम् नामक तामिस ग्रन्थ में दक्षिण में कृष्ण मन्दिर और कृष्ण पूजा का उल्लेख मिलता है। अलवारा न कृष्ण और गोपिकाओं के मधुर सम्बन्ध पर गानों की रचना का और राम वामन नारायण और कृष्ण के अवतारों की स्तुति में पद्य लिखे। भागवत पुराण मूठीक ही निम्न है कि कतियग म जिम समय वासुदेव नारायण क उपासक म्मन् ही पर मिलत ये, इवि म्म म उनवी काफी अधिक मन्थ्या थी।

डा० अल्वर का कथन है कि यद्यपि महाकवि कालिदास ने राम की विष्णु का अवतार माना है तथापि यह प्रतीत होता है कि गुप्त युग में मूठी जनता तक राम पूजा का प्रचलन नहीं हुआ था। किन्तु डा० दिनेशचन्द्र सरकार ने लिखा है कि The usual belief that the worship of Dasarathi Rama was not popular in the Gupta Age seem to be wrong कालिदास न स्वयंश में राम का विष्णु का अवतार स्वीकार किया है 'मिघन्त' म भी स्वयंपितृस्वस्तिम मेघनाथुं कम्बर रामावतार क प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है। वगन्मिन्त्रि ने इन्द्राष्ट नरेश मगवान् राम की पूजा का उल्लेख करत हुए यह उताया है कि राम की मूर्तियाँ बनान म किन निषेधा का ध्यान रखना चाहिय। मन्तवार न्म पर एक कर्ण नरेश राम का परम भक्त था। मागर जिन् के तरण नामक स्थान मे मगवान् वाराण की वाराण् रूप में एक प्रतिमा पाई गई है जिस पर एक शिखारेव उत्कीर्ण है। शिखारण्य का प्रारम्भ वाराण की स्तुति से होता है जिसमें यह श्लोक पना चरता है कि वाराण की पूजा काफी प्रचलित थी। दक्षिण भारत म भी वाराण अवतार का लोकप्रियता का प्रमाण मिलता है। छठी जनता की एक लेख नगरे नामक स्थान म प्राप्त हुआ है जिसमें लिखित जाना है कि कम्ब लोग वाराण के भक्त थे। चानक्य और उनके मानन भी वाराणवतार के उपासक थे।

गुप्तकालीन अभिनया म विष्णु और उनके अवतारों म सम्प्रचित पौराणिक कथाओं का कर्त्तव्य स्थान पर उन्नत किया गया है। इनमें से एक अत्यन्त प्रचलित कथा का जार कवन मकत किया जा सकता है। भारतीय स्तम्भनय म 'हनुमत्प्रतिष्ठा कृष्णा स्वकामन्वपत' म कृष्ण क जावन की घटना का उल्लेख प्राप्त होता है। शब धर्म—गुप्तकाल म शब धर्म का ना काफी प्रचार था। यद्यपि गुप्त म्म्यार स्वय परम भागवत' थ तथापि उन्ने निव-युजा के प्रचलन म कौर्त्त बाधा उन्मियत नहीं था। उनक मन्त्रा मना नायक औ उन्क पलाधिकारी शब थ। कम्बगज निनाय विवमन्त्रिय क मन्त्रा वारमन न स्वयमिन्त्रि पर शिव पूजा क निमित्त एक मन्त्रि का निर्माण कराया था। बुभुक्षुगुप्तप्रथम क समय में धरुवर्मा नामक एक शायण क मन्त्रा नितय म स्वामि मन्त्रन क मन्त्रि म जत न्म का वणत मिलता है। शब जीर पुष्पायेण जाना हा तव थ यद्यपि थ वृष्ठाव कर्मनुयाया गुप्ता क मानन म उन्नत पना पिकारा थ। यन् गज पन्व और गज नरेश अगिरामनया वष्ठाव ये ना मान्त्रिय शकालक नन मन्त्रक कम्ब और परित्राजक कम्ब क नरेश शिव धर्म को मानत थ। गुप्त युग का तथापि कता में शिव की मूर्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। एसा प्रतीत होता है कि हम समय एकमुग या चतुमुग शिव का पूजा का ही प्रचलन था कबकि

यहाँ ननियाँ अथिक् सन्ध्या म प्राप्त हुई ह। नाग र राय म स्थित मुमरा तथा गौह स्थाना म एकमुस शिवालय की सु र प्रतिमायें प्राप्त हुई है। अजमर क मग्रहालय म शिव की मूर्तियाँ काफी इमका निर्माण पृथ्वापण प्राप्त हुए हैं।

अन या अपन पूवजा क नाम का स्मृति का चिरस्थायी रखन क निरु विनी शिव मंदिर का निर्माण कराना गुप्त यग का एक सामान्यतया प्रचलित प्रथा थी। पृथ्वी पण और विष्णु वमन न जो गुप्ता तथा पल्लवा क सनाधिकारा य अपन नामा की स्मृति बनाय रखने क निरु मांदरा की स्थापना कराया था। पजाव म भी यह प्रथा प्रचलित था। चंद्रगुप्त जा बि जान पुर का एक छाटा सा नर्पात था का पत्ना ख्वरा न अपन पति की स्मृति म एक मंदिर बनवाया। मिहिर लक्ष्मा न काँग म जिल म मिहिर वर का एक मंदिर निर्मित कराया। हमार युग म शिवका पूजा उनक विभिन्न रूप म का जाती है। उनकी मानवाय आकृतिकी परवर्ती कुवाणसग्गाटा का मन्ना पर देखा जा सकता है। उनका प्राचीनतम निग रूप काफी पुराना है।<sup>१</sup>

जय देवताआ की पूजा—गुप्त यग म विष्णु और शिव क साथ साथ अय देव ताआ का भा पूजा का जाती था। ब्रह्मा विष्णु तथा महेश देवताआ का त्रिमूर्ति म विष्णु आर महेश (शिव) की पूजा क विषय म हम प चूक है। ब्रह्मा क विषय म भा हम जान रना चाहिए। पीराणिक धम का विकास होन पर कई बदिन देवताआ का स्थान गीण हो गया और नय देवताआ का प्रतिष्ठा ब गढ़। जिन देवताआ को जगण स्थान मिला उनम स ब्रह्मा भा थ। त्रिमूर्ति म उनका स्थान अब भा प्राप्त था किन्तु उनका स्थान शिव और विष्णु क समक्ष न रह गया। फिर भा ब्रह्मा क उपासन नमाज भविद्यमान थ। पद्यपुराण म ब्रह्मा का महत्व पुन प्रतिष्ठापित करन का प्रयास किया गया है। विष्णु धर्मोत्तर और बहतसहिता म ब्रह्मा का मूर्ति बनान का नियम दिया आ ह जिसस यह सिद्ध होता है कि ब्रह्मा की पूजा समाज म प्रचलित था। सिंध स कर बगान तक इस देवता की प्रतिमायें मिली हैं जिनके द्वारा इसा तथ्य का पुष्टि हाती है। यह प्रतीत हाता है कि त्रिमूर्ति म गीण स्थान प्राप्त हा जान पर ब्रह्मा का पूजा समाप्त नही हुई। विष्णु और शिव के मंदिरा म उन्हें स्थान प्राप्त हाता था। पुष्कर और प्रयाग जस पवित्र तीयस्थाना का ब्रह्मा क महत्व क साथ स्पुन कर लिया गया।

शशपुर (मालवा) म पटकारा की श्रणी द्वारा एक जाण मूय मंदिर का पुननिर्माण कराया गया आर एन नया मंदिर भा बनवाया गया। खालियर म भा मूय भगवान का एक मंदिर था। स्वगुप्त क इ और बाल ताग्रपत्र म भगवान मूय का स्तुति की गई है।

इस ताम्रपत्र में यह सूचित होता है कि श्री क्षत्रिया न जल्लरवद म एक मूय मन्त्र का निर्माण कराया था और इस मन्त्र में नित्य दाप जनान का व्यवस्था एक ग्राहण क द्वारा का ग था। वधनवण्ड क जायमक नामक स्थान में श्री गणतंत्रान्त मूय मन्त्र का उ तव मित है। इन मन्त्रों क अनिर्विकल मूय का प्रतिमायें भा मित है। नमग में एक अत्यन्त मुत्त मूय प्रतिमा प्राप्त हु है। जजभर मयहाय म कमन में प्राप्त एक मूय प्रतिमा मुर्ती त्त है जिममें मूय क मान अत्रा क चित्र वन दए है। वगान में ना मूय स्वता का अनक मतिरों मित है। तथा क आरण पर य क्ता जा सकता है कि राग निवारण क लिए मूय का आवाहन किया जाता था। बशाला तथा भाग में कुछ एमी मुद्रायें भा मित है जिनक ऊपरा भाग में अग्निवृण्ड का चित्र मित है और नीच क भाग में 'सगवता' अ स्थित्य' लिखा है।

गुप्तकाल में शक्ति (त्वा) का पूजा का ना प्रचलन था। स्थानानाव क का ग्ति शक्ति पूजा या शाक्त धर्म क उभ्रव पर विचार न्था किया जा सकता परन्तु एक आनु स्थान में स्थानी चाहिए कि कालांतर में शक्ति और शिव पूजा का एक दूम् क माय समन्वय त्ना प्रारम्भ हा गया। शिव और शक्ति का पूजा उनम् कर्णामय और नयकर दोना प्रकार क रूपों म का जाता था। सम्भवत इस तरह न दाना मता का ग्ति दूमरे क निकट जान में मन्त्रपूण महायना प्रदान की। दरी क विभिन्न रूपा में उमा गौरा पावती मवाना अन्नपूर्णा त्रिता इत्यादि कर्णामान रूप थ और कामुण्डा त्नी कालगात्र कात्यायिना और सरवी क रूप मयकर थ। दवा क मना त्नी का प्रतिमायें भारत क विभिन्न भागा में पाई गई है। वगान या पूर्वो भारत शाक्त सम्प्रदाय का प्रधान क्त्र था। य स्वभाविक ही है कि देवी क विभिन्न स्वरूपा की मतिरों पूर्वो भारत अथवा वगान में प्राप्त हुइ है। शक्ति-पूजा क माय एक विन्तु और विगात पौराणिक कथा माहित्य समुक्त कर लिया गया।

शिव पूजा क माय गणेश और कानिकय की पूजा का भी प्रचार था। गणेश और कानिकय शिव तथा शक्ति (पावता) क पुत्र थ। कानिकय का स्वामा महामन भा कहा जाता था। गणेश का पूजा का ना प्रचार था और कालांतर में गणेश क उपासका का एक सम्प्रदाय बन गया। महाशुभ्र में गणेश की कर् प्रतिमायें पापाण तथा धानुत्रा का बनी हुई मित है। गणेश के ही नाकप्रिय स्वता थ। उनका समस्त विपत्तिया का नाशक तथा मफता तयक समझा जाता था अतएव कवन ग्राहण धर्म क विभिन्न सम्प्रदाय ही उन्हें अद्या का शक्ति स न्ता दमत थ अपितु बौद्ध और जन जन नास्तिक मता क अनुयायी ना उनका पूजा करने लग। यह एक उल्लस्य बात है कि गणेश का मूर्ति का प्रचार मुद्गरपूर्व नीर इण्डोनेशिया में बौद्ध न हा किया था।

गुप्तकाल में मूर्तियों का महत्व—पुव गण युग तक हम स्वताओं की मूर्तियों ता प्राप्त होता है परन्तु मूर्तियों का काइ उल्लस्य नहा प्राप्त हुता। यदि यह क्ता जान कि मन्त्रों का निर्माण गणतंत्रान्त में ही प्रारम्भ हुआ तो सम्भवत इस कथन में का शक्ति न्ता। मूर्तियों में पूजा करने एक सामान्य धार्मिक नियम हा गया। हमन दना है कि मन्त्रों का निर्माण एक पवित्र रूप समता जाता था और शिव विन्तु तथा मूय क मन्त्र वनधाय जान थ। धीरे धीरे मन्त्र हिंदू धर्म और सस्कृति क क्ता बन गय। उनक निर्माण और जनकरणा क कार्यों नेपाक भवन निर्माता और चित्रकार का प्रासाहन प्रदान किया। समूहिक पूजा में उनका मवा क लिए याचका और नउका भी आवायकता हु और माधवराज में उनक पढाला में साकाल्ता क कार्य न पीरा

गिकी आर दाशानकी का तथा का अवसर प्रदान किया।<sup>१</sup> इस तरह यह स्पष्ट है कि मा दरा का महत्व बवल धार्मिक दृष्टि से नहीं था सामाजिक जीवन का अभिन्न हिस्सा तथा संस्कृत संरक्षण आर सम्पादन का। क कापी म मा उनका महत्वपूर्ण योगदान था। यह एक प्रसन्नता का वातावरण है कि तत्कालीन मा दरा क द्वारा दया दान और लोक कल्याण का कार्य भी किया जात था। मा दरा क अधिकांशतः उनका आय का कुछ अंश भिक्षुओं का भोजन वितरण करने में व्यय करता था। बिस्सह (उत्तर प्रदेश) के काशी नगरी मंदिर और मध्यभारत के मानसपुर मण्डलपुरा के मंदिर में यह व्यवस्था विद्यमान थी। अन्त में ही मा दरा म लावण्यदाता का वाइ प्रबंध नडा किया गया था।

**कातपय प्रचलित धार्मिक विश्वास—**गुप्त युग में जनता में कतिपय धार्मिक विश्वास भी प्रचलित थे। आजकल का तरह उस समय में बहुत से लोग यह विश्वास करते थे कि प्रयाग में मृत्यु होनी पर पुण्य का प्राप्त होती है। असाध्य रोगों से पीड़ित लोगों को स्वच्छापूर्वक गंगा के संगम पर मरने के लिए चल आता था। दक्षिण के भी अनेक नरेश प्रयाग के तट पर जाते थे और दान दक्षिणा द्वारा अपनी ताययात्रा की स्मृति का चित्र स्थापना बनाने का प्रयत्न करते थे। ब्राह्मणों में बहिविष संस्कारों के पालन का प्रवृत्ति विद्यमान थी। वे प्राणायाम, सूक्ष्मपस्थान तथा गायत्री पूजा आदि कृत्या समूह से सम्बन्धित करत थे। देवपूजा तथा पितृपूजा का भी प्रचलन था। सोलह संस्कारों पंच महायज्ञों आर ऋद्ध इत्यादि का द्विज लोग आदर का दृष्टि से देखते थे। व्रत उपवास आदि धार्मिक कृत्यों का प्रचलन सम्भवतः गुप्त युग से ही प्रारम्भ हुआ। इस युग के पुराणों में इनके विषयों पालन के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। ग्रहण और संक्रांतियों का आदर अवसरों पर नगरी स्नान तथा दान से पुण्य होता है, यह धारणा इस समय काफी प्रचलित थी।

**हिन्दू धर्म का विदेश में प्रचार—**इस बात का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं कि गुप्त युग का संस्कृत संभव पर आधारित थी और इस समय जिस हिन्दू धर्म का विकास हुआ वह संभवतः वही था। यद्यपि इस धर्म में लोक-जीवन से सम्बन्धित अनेक तत्व विद्यमान थे तथापि इसमें पर्याप्त सचरणशालता थी। हम यह देख चुके हैं कि पूर्ववर्ती युगों में हिन्दू धर्म का किस प्रकार विदेशों में ग्रहण कर लिया था। गुप्त-युग में भारतीय संस्कृति का विदेश में प्रचार होने पर हिन्दू धर्म भी वहाँ फल गया। जावा, सुमात्रा और बर्मा तथा हिन्दू देवी देवताओं की पूजा का काफी प्रचार था और हिन्दू धर्म का धार्मिक विचारधाराओं को वहाँ के निवासियों में ग्रहण किया। चौथी शताब्दी तक मलायालम और सीरिया में हिन्दू मंदिरों का अस्तित्व बना रहा। यह सम्भव है कि हिन्दू धर्म ने इसी धर्म पर कुछ प्रभाव डाला था।

**बौद्ध धर्म—**गुप्त युग का बौद्ध धर्म अपने अधिकांश रूप में महायान था। इसके उद्भव और विकास के विषय में हम पाछ पढ़ चुके हैं। परन्तु हम यह नहीं समझना चाहते कि महायान बौद्ध धर्म की प्रधानता ने हीनयान का विलुप्त होना ज़रूरी मुक्त कर दिया। यद्यपि लाकृष्णिक के अधिक निकट हीन धर्म कारण महायान धर्म अधिक लोकप्रिय हो गया था तथापि गुप्तकाल में हीनयान का काफी फल फूल रहा था। परन्तु समाप्ति रूप में विवचन करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय लाकृष्णिक प्रधान स्मार्त धर्मों का जितना अधिक प्रचार था उतना बौद्ध और जैन धर्मों का नहीं।



गुप्तकाल में हीनयान और महायान दोनों संप्रदाय फल फूल रह गये। हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या इस समय भी बहुत कम नहीं थी। हीनयान मत के कुछ उपसंप्रदायों विशेषकर सर्वास्तवाद का प्रचार उस समय भी काफी विस्तृत स्तर के ऊपर था। सर्वास्तवादियों का जिह्वे वाद में वभाषिक कहा जान लगा पूर उत्तरी भारत में उत्तरी पश्चिमी सीमाप्रांत का भीतर फारस मध्य एशिया चीन और सुमात्रा जावा और बालोचान में फैल चुका था। स्वविरवादी उपसंप्रदाय वाल उज्जयिनी, बलमा काका और लका स्याम तथा बर्मा में काफी अधिक संख्या में थे। लका पहले की भांति इस समय भी हीनयान बौद्ध धर्म का प्रमुख गढ़ था। यहां पर बौद्ध धर्म-ग्रन्थों की टीकाओं का प्रणयन प्रारम्भ हुआ। पहले तो टीकाओं के प्रणयन के लिए सिंहाला भाषा का प्रयोग किया गया परंतु बाद में पाली भाषा का इस कार्य के लिए प्रयोग किया जान लगा। हमारा युग निस्संदेह लका के पाली साहित्य के इतिहास में गौरवशाला युग का निर्माण करता है। नीपवस जोर महावस जिनका रचना ३५० सन् ईस्वा और ४७५ सन् ईस्वी में की गई थी लका और भारत के प्राचीन इतिहास के पुनर्निर्माण के लिए बड़े महत्वपूर्ण हैं। इस युग के धार्मिक और दार्शनिक साहित्य का बिना किसी सक्क के समृद्ध कहा जा सकता है। बृद्धघोष गुप्त युग का प्रसिद्ध बौद्ध लेखक था। इसने कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रणयन किया। लका के बौद्ध प्रचारक भारत में जाकर अपने गुरु (बुद्धजी) की शिक्षाओं का प्रचार करते थे। इसी की तीसरी शताब्दी में आंध्र तामिलनाडु कर्नाटक काकड और बंगाल में लका के बौद्ध भिक्षुओं का काफी सम्मान किया जाता था। लका के बौद्ध धर्म प्रचारक चान तक गये और वहां पर उन्होंने अनेक हीनयान ग्रन्थों का चीनी भाषा में अनुवाद किया। धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों का सुविधा के लिए बुद्ध गया में लका के राजा मधवमन ने एक विश्रामगृह का निर्माण कराया था।

फाहियान पाँचवा शताब्दी में भारत में आया था और उसने देश में बौद्ध धर्म की अवस्था के विषय में लिखा है। उसका विवरण यद्यपि अधिक विस्तार के साथ नहीं दिया हुआ है तथापि उसका अध्ययन द्वारा हम काफी सीमा तक यह पता लग जाता है कि देश में बौद्ध धर्म की अवस्था कमी थी। उसने अपनी यात्रा मध्य एशिया के देशों से प्रारम्भ की थी जहाँ पर उसने बौद्ध धर्म की फलते फूलते हुए पाया। भाग में उसने मथुरा में अनेक बौद्ध भिक्षुओं और बौद्ध संघों की देखा और अधिकांश स्थानों में उसने ऐसा प्रतीत हुआ कि नृपतिगण अधिकतर इस धर्म के प्रति सौहार्द का दृष्टिकोण रखते थे और भिक्षुओं का उचित सम्मान करते थे। कुछ राजाओं ने संघों को भूमि दान में दे रखी थी जिससे विहारों का धर्म अच्छी तरह से चल सक। उसने बौद्ध भिक्षुओं की इस बात के लिए भी प्रशंसा की है कि वे अनुशासन सम्बन्धी नियमों का सुविचारपूर्वक पालन करते थे और इस बात से भी उस बड़ा हृष तथा विस्मय हुआ कि बौद्ध धर्म के उपासक (गृहस्थ) अनुयायियों के हृत्पथ में भिक्षुओं के प्रति काफ़ी श्रद्धा थी और वे प्रभूत दान-दानिणा द्वारा अपनी श्रद्धा का परिचय देते थे। उसने यह भी देखा कि गृहस्थ लोग चतुर्थ तथा स्तूपा का निर्माण करते थे। फाहियान के विवरण में यह आभास मिलता है कि पाँचवा शताब्दी में भी उत्तरी भारत में इतिहास मत का धार्मिक प्रचार था और महायान धर्म बल इधर-उधर बढ़ता जा रहा था। बबन गया और कापिलवस्तु में उसने विहारों की शान्ति और उज्ज्वला देखा पाया।

यद्यपि भोगालिक दृष्टि से हीनयान और महायान मतों के बीच भिन्न भिन्न स्थानों में पृथक् पृथक् देना देना के समी संप्रदाय एक दूसरे से पृथक् नहीं रहते थे। हीन-

यान और महायान मतों के अन्यायियों में काफी मतभेद था। के कारण पश्चिम की कुछ भावनाओं में ही रहा था। परन्तु उनमें अतिरिक्त यमनस्य नहीं था कि उन्हें अलग अलग रहने का विषय विवश होना पड़े। बौद्धों में विचारों में विविधता के कारण मूल भाग साथ साथ रहने थे। नागार्जुन विप्रमर्शिता और पाटलिपुत्र के शिष्या वेत्ता में महायान और हानयान मतों का मानने वाले मिल जुलकर रहने थे। फाहियान ने हीनयान और महायान दोनों प्रकार के बौद्ध भिक्षुओं का उद्भव किया है। उनमें नागार्जुन दरद उद्धान गांधार वसू के प्रोजे और कौशाब्दी में हीनयान मत का प्रचार दिया। जसा कि हम ऊपर कह चुके हैं भारत के उत्तर पश्चिमी साम्राज्य तथा काश्मीर आदि स्थानों में सर्वोन्निवाद्या प्रचलित हुए थे। काश्मीर का हीनयान बौद्ध धर्म का विकास की दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण है। काश्मीर में सर्वास्तिवाद्या का प्राचल्य होने का कारण बौद्ध धर्म के मस्त्रत ग्रन्थों का प्रणयन अधिकतर यही था। काश्मीर के सर्वास्तिवाद्या का प्रचार के कारण उत्तरी पश्चिमी साम्राज्य में हानयान मत का प्रचलन बना रहा। अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग में वसुदेव सर्वास्तिवाद्या मत का सबसे महान और पण्डित प्रतिपादक था। उसका सुप्रख्यात ग्रन्थ अग्निधर्मकाण्ड है जिसे बौद्धिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ में बौद्ध धर्म का मूल सिद्धांत का यारपा करने सुन्दर तरीके से को गई है कि बौद्धधर्म के समा सम्प्रदाय इस प्रामाणिक मानते हैं। *अफ्फानिस्तान में ४८ (५७०) मयरा और पाटलिपुत्र में फाहियान ने हानयान और महायान के अनुयायियों को साथ रहते हुए देखा।* योतान के विषय में उसने लिखा है कि सभी भिक्षु महायान मत के थे।

हमने पिछले पन्ना में यह बताया है कि हीनयान बौद्ध मत का कारण जनता की आत्मिक विपासा का परितप्त करने में समय न होने के कारण कुछ दिनों बाद जामा मुख हो गया। पाँचवाँ शताब्दी के बाद से निश्चय ही हीनयान मत का प्रचार घटने लगा। महायान मत को जहाँ ही विज्ञान विचारका और दाशनिका का प्रबल और सक्रिय समय प्राप्त हुआ इसका प्रचार तीव्रतर गति में देश में होने लगा और इसने कहा कहा पर हीनयान को उखाड़ा आरम्भ किया। नागार्जुन वसुदेव आयदेव दिग्नाग और असग आदि दाशनिकों ने महायान मत को सुशिक्षित जनों के लिए भी प्रबल बनाने का प्रयत्न किया। यह पहले ही कहा जा चुका है कि महायान मत के दाशनिक साहित्य के जन में रचनाकारों ने मौलिक चिन्तन का परिचय दिया।

गप्त युग में महायान मत के अतगत कई दाशनिक विचारधाराओं का प्रादुर्भाव हुआ और कतिपय नवीन दाशनिक सम्प्रदाय भी बने। माध्यमिक और योगाचार दर्शन सम्प्रदाय काफी महत्वपूर्ण थे। नागार्जुन के शिष्य आयदेव ने चतुश्चक्र नामक ग्रन्थ लिखकर माध्यमिक सम्प्रदाय को एक महत्वपूर्ण भेद प्रदान की। गुप्त युग निम्न महत्वा योगाचारदर्शन का स्वणयग है। असग नामक प्रसिद्ध विद्वान ने महायान सम्प्रदाय यागाचारभूमिशास्त्र और महायानसूत्रातकार नामक ग्रन्थों की रचना की। महायान दाशनिकों ने हिन्दू दाशनिका के विचारों का खण्डन करने का प्रयास किया।

माधारणतया विद्वानों का विश्वास है कि गुप्त काल में बौद्धधर्म निश्चय ही क्षीण हो गया था और इसका प्राचीन सजीवता नष्ट हो चुकी थी। किन्तु डॉक्टर ने इस सम्बन्ध में लिखा है, *The general view that Buddhism was on the decline in the Gupta period owing to the revival of Hin*

duism under the Guptas is not supported by the above survey of its philosophical activity. Nor is it confirmed by the artistic evidence'. अल्लेवर मन्दिर न देश के विभिन्न स्थानों का अलग अलग लकर यह नियाया है कि यहाँ पर बौद्धधर्म काफी समृद्ध अवस्था में था। वास्तव, म अल्लेवर क तक काफी मग्न हैं और इस प्रारणा की पुष्टि करते हैं कि सम्पूर्णतया विचार वर्ग पर यह नहीं बना जा सकता कि गुप्त काल में बौद्ध धर्म की सजीवता नष्ट हो चला थी। बल्कि वहाँ पर साधारण जनता में बौद्ध मत का सक्रिय सहयोग प्रदान करता था। वास्तव में गुप्तों के उत्तर भाषन के अधीन जनता का धार्मिक दृष्टिकोण इतना महिष्णु था कि लाग एक धर्म के अनुयायी होने पर भी दूसरे धर्म को जादर की दृष्टि से देखते थे। देश में भगवान् बद्ध की प्रतिमायें इतना अधिक संख्या में पाइ गई हैं कि उनका द्वारा यह सुस्पष्ट हो जाता है कि बौद्ध धर्म का प्रचार जब मा काफी था। जब बौद्ध विहारों में परिचार और अनाचार के दाप प्रविष्ट हो गए तो जनता की धर्मोद्देश्य निश्चय और धर्म के प्रति न रहे गए। सम्भवत बौद्ध धर्म के भारत में प्रवृत्त जान का यह सबसे प्रधान कारण था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म गुप्त-युग में इस रूप में उठा और इस कारण यह इस समय फल फूल रहा था।

जनपद—जनपद के इतिहास का दृष्टि में गुप्त युग का काफी महत्व है। इस समय जन मन के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण घटनायें घटित हुईं। बलभद्र का प्रतिद्वन्द्वी जनपदीय गुप्त काल में हुआ था। इस समय में बलभद्र मध्यप्रदेश के समस्त मिद्वाला का राज्य निर्या गया। इसका कारण जन विद्वानों ने अपने धर्मप्रथा पर टिकाऊ का एक भाष्य का रचनायें कीं। महावाङ्मय दिनानयन के महत्वपूर्ण जनप्रथा पर नियन्त्रित (टीकायें) लिखीं। जनियान नामक मरुत का अर्थ निया। धर्मप्रथा तथा सिद्ध दिवाकर नाम के दो विद्वानों ने भी कई धार्मिक प्रथा का प्रणयन किया।

तामरा मतापी के जन तक जन धर्म भागवतव्य में अच्छी तरह में जम गया। मग्न में चलकर स्थिति पूर्व में बनिग तक मयुग और मानवा तक पश्चिम में और पश्चिम में तामित नाह तक जन धर्म फल गया। परन्तु इस समय जन धर्म का केन्द्र उत्तरी भारत में जन धर्म को वापस लाया गया प्रचार में प्रवृत्त हुआ। प्रवृत्तों ने मग्न पापण किया अतएव वर्गों इसका प्रधान कल्प बन गया। पश्चिम में जन धर्म का वापस नहीं किया है जिसमें यह प्रभाव होता है कि जन धर्म उक्त समय में समस्त अवस्था में नष्ट था। फिर ना व्यापागिया और मध्यवर्ग के लोग म इस धर्म का पराजित प्रचार था। गुप्त युग द्वारा इस धर्म के प्रवृत्त जन का पता चलता है। मयगमने लग में (गु० म० ११ ई० सन ४२२) एक जन म्ना हरिश्चामिना द्वारा जन मूर्ति के स्तन का वर्णन है। जयगिरि के युग में मा जा कुमार गुप्त प्रथम के समय में उत्तरीय वर्गों का युग था (६६ ई० म०) मपता चलता है कि जनपद नामक एक धर्मिन् पात्रनाथ की मूर्ति स्थापित की। स्वयंभूत के समय में पाम में जनतायकरा का पंच मूर्ति का निर्माण वर्गों का युग में जनता है कि म्ना का निर्माण कि गुप्त ताम्राय में जन धर्म का प्रचार था और मयुग जयगिरि

तथा अजिमे जादि मुद्ररवर्ती प्रान्ता क योग दग घम का माना ये । इन तथा से इन बात का भा सकत मिलता है कि जैन धम पुव की अपक्षा पचिम म अशिक नोनप्रिय था । मयुरा और बलमी वेताम्बर जन धम के प्रबन कद्र था । उत्तरा बगान म गुण्ड ववन दिगम्बर जन मन का कद्र था । दक्षिण नारत म कर्नाटक और मगूर म दिगम्बर जन मन क गद्र थे । कदम्ब जोर गग राजा जान इमे राजात्रय प्रगान किया था । हम एस जनक तल प्राप्त हुए हैं जिनम यह विन्निहोता है कम्पर गरेशा न जन सापुत्रा का प्रबुर दान दिया था और अनक जन मन्त्रा का निर्माण कराया था । कम्पर राजाआ क लख यह सूचित करत हैं कि उनन उगार राजाश्रय के अमीन जन धम काफा उन्नति की जयस्था म था और जनक उच्च पदाधिकारिया तथा सम्पन्न भूमिपति इस धम क निडावान् अनुयाया थे । किन्तु बाद म जन धम को शक धम ने रूप म एक प्रबन प्रतिद्व द्वी मिल गया जिमस दक्षिण म भा जन धम का प्रचार बहुत कम हो गया । किन्तु यह बिल्कुल नष्ट नही हा सका और आज भा तामिन दश गुजरात तथा मालवा म अनियो की काफी सस्था है ।

### गुप्त युग में साहित्य एवं विज्ञान की उन्नति

गुप्त काल सस्कृत साहित्य क इतिहास म अत्यन्त महत्व का युग था । इस काल म सस्कृत भाषा और साहित्य का जो उन्नति हुई उसके लिय यह निस्सकाच कहा जा सकता है कि वह न मूना न भविष्यति थी । परन्तु एक बात ध्यान मारवना चाहिए । गुप्त-युग का जन्मतुल्य साहित्यिक क्रियाशालता और सस्कृत वाङ्मय के इस समय दयाप्यमान रचना स भरे जान क काय का देखकर हम यह न साचना चाहिए कि सस्कृत साहित्य का इस काल म पुनज म हुआ था । वास्तव म सस्कृत म सृजन का स्रोत कभी नितात रूपेण शु क नहा हाने पाया और न सस्कृत साहित्यकारों की क्रियाशीलता हा कभी हत होन पाई । सुविख्यात विद्वान मकसमूलर न अपना यह मत प्रतिपादित किया था कि विदेशिया क आक्रमण क फलस्वरूप सस्कृत का साहित्य सुपुप्त हो गया था । गुप्त-युग म सदियो की प्रगाढ़ निद्रा क बाद यह एकाएक जागरूक हो उठा । परन्तु मकम मूलर का यह कथन ऐतिहासिक प्रमाणा द्वारा पुष्ट नही होता । विदेशियो क आक्रमण से भारतीय सस्कृति के ऊपर क्या प्रभाव पडा यह हम पीछे देख चुके है । आक्रमणकारी अपना राज्य स्थापित करने म तो सफल हो गय किन्तु देश की जावत सास्कृतिक शक्ति के सम्मुख उन्होंने अपन घुटने टेक दिये । अत म विदेशी जातिया हिन्दू सामाजिक संगठन म मिला ती गई और हिन्दू सस्कृति क रग म रग गई ।

पाणिनी का अष्टाध्यायी पर महानाट्य का रचना उसी काल म हुई जिसको मकसमूलर म्ोदय सस्कृत वागमय का सुपुप्ति का न बताते हैं । विदेशी कुपाणा के युग मे सस्कृत साहित्य म काफी सजन काय किया गया । हम दख चुक है कि बुद्ध चरित नामक महाकाय सीद्धनन्द नामक सुचरित काय सारिपुत्रप्रकरण नामक नाटक का रचना महाकवि अश्वघोष ने विदेशी शासक बनिष्क क राज्य काल म की था । नागाजन न अपन प्रसिद्ध दार्शनिक ग्रंथा का प्रणयन सम्भवत इस समय किया था । चरक संहिता का रचना काल यही था । इन सब के अतिरिक्त यह सचमुच विस्मय का बात है कि रद्रदामन नामक शक क्षत्रप की जूनागढ़वाली प्रशस्ति इहनाक परक सस्कृत मद्य का सबप्रथम उदाहरण प्रस्तुत करता है । इसका बीजपूण गद्यशली वास्तव म उत्कृष्ट शली का एक सुन्दर नमूना है । अतएव उपयक्त प्रमाणा को ध्यान

म रचत हूँ हम भक्तसमूहक नाहव क इस मत का अस्वीकार कर सवत हूँ कि गुप्त काल म सस्कृत साहित्य का पुनर्जीवन हुआ था।

गुप्त युग की साहित्यिक समृद्धि का तुलना एथ म क इतिहासक परीक्षणायन युग और जगजी साहित्य क इतिहास क एनाजावीदन युग स का जाती है। वास्तव म यह तुलना नितान्त समीचीन जान पती है। परावनाज क यग और एलिजावथक शासन काल की तरह गुप्त-युग मा विभुद साहित्य क क्षेत्र म मौलिक मजन का काल था। चाना इतिहास क स्वणयुग तग काल का भाति गुप्त युग म कविता का विकास अपना परावाष्ठा पर पहुच गया। छ इतिहासकार। न गुप्तकाल की साहित्यिक समृद्धि का ध्यान म रचत हुए इसका तुलना लटिन साहित्य क आगस्टन-यग स की है। परन्तु यह ध्यान रचना चाहिए कि आगस्टन-काल का साहित्य उतना मौनिक नहीं है जितना कि गुप्त युग का अतएव इस तुलना का हम मवया निर्णय नहा मान सकत। किन्तु अग्रजा साहित्य क एलीजावागन काल तथा यूनाना साहित्य क पेरीक्लीयन एज क माय गुप्त काल की तुलना ठाक है।

गुप्त काल की साहित्यिक और आध्यात्मिक उन्नति का विवरण हम न कवन म समय क साहित्य द्वारा हा जान सवत है अपितु इस समय क अभिलेख और सिक्का भी उस उन्नति का प्रबन प्रमाण प्रस्तुत करत है। गुप्त-अभिलेख म सस्कृत काय क किस उदृष्ट रूप का दशन हाता है उसस यह स्पष्ट हा जाता है कि इसकी पर म्परा काफी प्राचीन था। विभिन्न छलाक प्रयोग भाषा क प्रवाह एव शलाक सगति तथा नावा की उच्चता आदि का दष्टि म गुप्त-युग क अभिलेख सस्कृत काव्य क इतिहास म अपना गौरवपूर्ण स्थान रचत है। गुप्तयुग का काव्यात्मक स्फुटि न मुद्राशा पर मा अपना प्रभाव छोडा और सम्राटा न अपन सिक्का पर छलाकद भाषा म लिन शाना प्रारम्भ किया राजाविराज पृथिवामयजित्य दिव जयति अपनिवायवाय । प्रयाग प्रशस्ति के रचयिता हरिष्यण गद्य और पद्य शैली हाव । मुगमता स लिख मतत थे। समुद्रगुप्त क अपन द्वारा युवराज निर्वाचन का घटना का वणन हरिष्यण न जिन शलाक म किया है उनस यह स्पष्ट सूचित हाता है कि क छान् माट कवि नहा थ। इसी प्रकार मन्सोर प्रशस्ति का रचयिता वरममट्टि मा महान् कवि था। उसकी वणन शरी वस्तुत काव्योचित और कायमया है। शली जनकाग्मयी हान पर मा आडम्बर स दूर है। चद्रगुप्त क मिहोरी स्तम्भ लेख का भाषा आजमयी और सप्राण है। यद्यपि इसका रचयिता का नाम ज्ञात नहा तथापि उसका तान नाक ही यह प्रमाणित करन क लिए पर्याप्त है कि वह साधारण कवि नथी था। तीर्त्वा सप्त मुगानियन समरे मिवाजिता वाह्लिका स उगता प्रवाहमयी काव्य शला का अनुमान लगाया जा सकता है। स्वन्गुप्त क मीतरा-स्तम्भलेख का रचयिता प्रशस्ति नितान्त समय एव उणात भावना स अनुप्राणित हुआ जान पती है। श्री सम्राट क समय का जूनागड़ शिलालेख मा गच्छ कविता का उत्तम उदाहरण है। इसका विषय म इण्ड-स्तुटमपुरनित्रकान्तशालमपोतरानकृत point unmistakably to the acqu- sistance of the author with Sahityasastra as well as to his knowledge of traditional literary alankars The use of com- pounds in ornamental epithets appears to have been much in favour A distinct departure is thus made from the epic

style The descriptions though not of a very high order still display considerable merit as for instance the vivid picture of the devastation caused by the flooding of the dam of Sudars nal एतन्नात् एतन्नात् नदी किं गुप्तवालीन अमितया म परवर्ती ससृष्ट काय शवा ५ गीज निश्चिमान निश्चिमान पत्न है।

विशाल साहित्य—गुप्तकाल में विशुद्ध नाट्य जयान् महाकाव्य स्वकाय नाटक आन्यायिनायें आदि का अत्यन्त उन्नति हुई गुप्तकालीन साहित्यिक मन्त्रियका म कवि-कुलगा कानिदास का नाम अग्रगण्य है। यह एक कर्माय का विषय है कि इस महाकवि का जन्म काल हमें पता नहीं। इनके जीवन काल के विषय में विद्वानों में इतना मतभेद है कि निश्चित रूप में कुछ कहना कठिन है। परन्तु हमें बात के लिए प्रबल प्रमाण है कि महाकवि कानिदास गुप्त काल की ही विभूति थे। उनका प्रथम नाम जिस सुशान्तिमयता समृद्धि और समृद्ध का वर्णन है वह गुप्त-युग में ही सम्भव हो सकता है। महाकवि कानिदास केवल मसृष्ट काव्याकार के सबसे श्रेष्ठ माने जाते हैं। विश्व के सर्वोत्कृष्ट कविता की पवित्र में उनका स्थान अत्यन्त गौरवपूर्ण है। जिस विषय पर महाकवि की कविता चली है उसमें कानिदास दूसरा उनका समता नहीं कर सकता। उनका कल्पना का ऊर्ध्व शक्ति का मधुर मंगल भावा की कवि-शृणुण अभियन्तना मापा का प्रसादगण तथा उपमाओं की चित्रमयता एवं सागरागतता जति महाकवि के काव्य के विशिष्ट गण है। कानिदास का कविता अपनी धन्यात्मकता के लिए विख्यात है। वे उपयुक्त शब्द चयन ललित पदावली मनोरम उपमाओं एवं सुन्दर कल्पनाओं द्वारा पाठक के हृदय में रस का उदक कराकर उसे उस चरम जानने की अनुभूति कराते हैं जिसके लिए हमारे प्रथम ब्रह्मानन्दस्योत्तर शब्द का प्रयोग किया गया है। कानिदास की कविता के गण का अति सन्निध्य वर्णन भी इस पुस्तक के माहित क्षेत्र में सम्भव नहीं। उनका आरंभ चार शब्दों द्वारा विहग दृष्टिपति कर उन मान सही हमें सन्तुष्ट होना पता है। एक वाक्य में हम यह कह सकते हैं कि महाकवि कानिदास हमें भारतीय काव्य अन्तर्गत गौरव और गव के कारण हैं। उनके प्रथम नाम सत्र शब्दों का प्रथम है यह कहना सरल नहीं। यह कहना तो दूर रहा हमें बताना उनका एक कृति मधुरा के विषय में भी निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि उत्तर मधुरा शब्द है या पूर्व मधुरा। वास्तव में कानिदास के प्रथम का जय यन करने समय हृदय इतना जान शक्तिशाली का जनमधुर करता है कि समालोचना कुछ क्षणों के लिए मकरा जाता है। कुमार सम्भवम् और रघुवशम् महाकवि के दो महाकाव्य हैं। मधुरतम और कृतुमहार उनका दो लण्डकाव्य हैं। विक्रम भावशायम् मानविनामिनिम्नम् और अभिमानशाकुन्तलम् उनका तीन नाटक हैं। इनमें अनिश्चित जय कहें शक्य है कि कानिदास द्वारा बताई जाता है परन्तु इस बात में सन्देह है कि उक्त जय प्रथा का प्रथम किया।

शत्रुगुप्त-युग के उत्तर मातृत्वशर ५। इनका सुविख्यात नाटक मन्त्रियकम् सन्तुष्ट साहित्य का एक अनाथा और ऐसा अज्ञेय नाटक है जो समाज के यथायथा दानिव जीवन के चित्रण में गण्य है। इसकी नायिका पाञ्चिपुत्र की प्रसिद्धि उनका समस्तमना है। पाञ्चिपुत्र नाम काव्य चारदत्त से प्रेम करती है। इस नाटक में नाट्य काल की व्यापक मन्त्रियकम् परिचय इस बात से मिलता है कि उमन समाज के विषय में जाति-भेद का भी अपने नाटक का पात्र बनाया है जो सहानुभूति का एक नमो चाण्डिक विपत्तियों का उद्धारन किया है। मृच्छकटिक का हास्य

सम्मान मस्कृत नाटका व हास्य का सर्वोत्तम रूप प्रशिक्षित करना =। मुन्दाक्षम' का प्रणता विशाखदत्त भा गुप्तकाल म हा हुआ थ। इम नाटक म चाणक्य का चम्पू था हा प्रनामगारी है। यह भा मस्कृत व नाटका म जपन ढग का अनूठा नामक है। विशाखदत्त न त्रैचाचन्द्रगुप्तम नाटक का भा प्रणयन किया था किन्तु जपन मूलरूप म यह मस्कृत नाटक उपलब्ध नहा है। मुबन्तु रन ना व प्रसिद्ध गद्य लयक थ जिनका वामवदत्ता' न वाण व शता म कथिया व गव का चुर कर दिया। लम्ब ममामा और अनेक विगपणा म युक्त शता म भा मु' न न अनेक स्थला पर जाज भर दिया है। उनका गद्यशरी को वाण ने जपनाकर वाफा विरसिन किया। किराता जुनायम् क रचयिता भारवि का समय कुछ विज्ञान छोटी शतायी का अत वतलात है। नट्टि का कान भा सम्मवन था है। इारा महाकाव्य रावणवन एक विचित्र काय है जिमक प्रत्येक लोक व द्वारा मस्कृत जाकरण व विना न विसा नियम का विनयन किया गया है और साथ ही साथ राम व जावन का घटनाआ का वणन ना किया गया है। कुछ विज्ञाना का विचार है कि भन हरि भा इमा समय हुए थे। उनक तीन प्रय नीतिशानक' मृगारशतक' और वरायशतक' अपना दृष्टि म अनुन नीय एव काफी महत्त्वपूर्ण हैं। कल्हण की राजतरंगिणी' म मन नष्ठ नामक कवि का उत्कल किया गया है। ये ४३० मन ईसवी व लगभग हुए थ और न हीने ह्यप्राव नामक महाकाव्य की रचना की थी। किन्तु दुर्भाग्यवश यह महाकाय जमा तक प्राप्त नहा हो सपा है। इन प्रया व अतिरिक्त गुप्त-युग म ही सम्मन्न गमायण ज्ञान महानारत' व अन्तिम मस्करण तयार किय गय।

मस्कृत व प्रसिद्ध प्रय पञ्चतत्र का रचना भा गुप्त काल म हुई। भारत की विन सभ्यता की प्रमुख रना म स विद्वान पञ्चतत्र का भा एक मानत हैं। इम पुस्तक म कथाआ व माध्यम द्वारा नैतिक शिक्षा के सासांरिक जीवन व अनभव प्रदान करन का सफ्त प्रयाम किया गया है। गमारका लगभग प्रत्येक सभ्य भाषा म पञ्च तत्र का अनुवाद किया गया है।

धार्मिक साहित्य—गुप्त युग की साहित्यिक क्रियाशानता धार्मिक साहित्य व सृजन एव सबद्धन म भा दिगदर्श पडी। धार्मिक साहित्य म सबसे अधिक महत्व व पुराण हैं। पुराणा की रचना का काय गुप्त-युग व वाफा पहिल जमा का प्रथम गताया व ३३ सो वर्यो पूव प्रारम्भ हा चुपा था किन्तु आज व जिम रूप म प्राप्त ह उनका वहरूप अधिकतर गुप्तकाल म ही दिया गया। यन्नि सस्कारा एव भक्तिवादा धार्मिक आानन व समवय का गव प्रथम प्रयाम पुराणा म हा किया गया है और इन बात क लिए प्रमाण है कि य प्रयाम गुप्तकाल म हा किया गया। पुराणा न हा हिन्दू धम का वतमान स्वरूप बनाया है। यह सम्मन है कि पुराणा व कुछ अध्याय का रचना बाद म की गई हा। परन्तु जसा कि जनरल्नी ने कहा है अग्राहा पुराण १००० सन् ईसवी व पूव अवकाय ही लिय जा चुक थ।

मनुस्मृति' व आधार पर गुप्त-युग म स्मृतियां भी लिखा गइ। याजवल्क्य, नाग्य कात्यायन और बृहस्पति न अपने स्मृति-ग्रथा का प्रणयन गुप्त काल म किया। कात्यायन का स्मृतिग्रय अपने मूल रूप म उपलब्ध नहीं है किन्तु इसक उद्धरण अय प्र था म मिलत है। याज्ञवल्क्य की स्मृति म आचार (रातिग्विवात्र आर सस्कार) व्यवहार (तिविन कानून) और प्रायश्चित इन तीनों पर ममुचित ध्यान दिया गया है। स्मृति ग्रया के अध्यायन छ पठा बनता है कि गुप्तकाल में गिबिन कानून और याय सम्बधी नियमों का काफी अधिक विकास हा रहा था।

अथशास्त्र के आधार पर गुप्त युग में केवल कामन्दकीय नीति सार' की ही रचना की गई नीतिसार' के रचयिता कामन्दक ने कौटिल्य के सिद्धान्तों और शिशाया का ही अपने ग्रंथ का आधार बनाया है। अनुकृतिप्रधान होने के कारण इस ग्रंथ में राज्य की विभिन्न समस्याओं पर स्वतंत्र और मौलिक रूप से विचार नहीं किया गया है। राजनीतिक विचार चिन्तन के क्षेत्र में ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य महाभारत के शांतिपर्व और मनस्मति के उपरान्त भारतवासी विचारकों का मौलिक चिन्तन की शक्ति भी थप गई। कामन्दकीय नीतिसार का महत्व इस बात में है कि अथग्रंथ में लिये गए विषय का प्रतिपादन इस ग्रंथ में अधिक सुगम रीति से किया गया है।

दाशनिक साहित्य—गुप्त युग में एक प्रचुर दाशनिक साहित्य का मा सृजन हुआ। हिन्दू और बौद्ध और जनिया सभी धर्मों में अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने के लिए अनेक ग्रंथों का रचना की। सारय दर्शन पर सबसे पहले टीका लिखने वाले ईश्वरकृष्ण थे जिन्होंने साम्यकारिकों नामक ग्रंथ लिखा। कुछ विद्वानों ने ईश्वरकृष्ण का समीकरण विध्यवास से किया परन्तु दूसरे विद्वान इस समाकरण का नया स्वीकार करते और ईश्वरकृष्ण तथा विध्यवास को दो विभिन्न व्यक्ति मानते हैं। ईश्वरकृष्ण का साख्यकारिका पर गौतमाद ने एक भाष्य लिखा।

जमिनि के मीमांसा सूत्रों का रचना गुप्तकाल में पूर्व ही चली थी किन्तु उन पर प्रामाणिक टीका सावर भाष्य का प्रणयन ईसा की चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में हुआ। जप्ताध्यायी के ऊपर पतञ्जलि के महाभाष्य का और अन्त वेदान्त के ऊपर शंकर के भाष्य का जो महत्वपूर्ण स्थान है वही स्थान जमिनि के मीमांसा सूत्रों पर सार भाष्य को प्राप्त है। वेदान्त दर्शन का इस काल में कितना विकास हुआ यह सुनिश्चित रूप से पता लगाना दुष्कर है क्योंकि इस दर्शन पर जो ग्रंथ इस समय लिखे गये वे आज उपलब्ध नहीं हैं। इस बात का प्रमाण है कि बौद्धधर्म के नये सम्प्रदायों और वेदान्तियों में परस्पर वाद विवाद चोरा में चल रहे थे। ब्रह्म सूत्र में वाद में जो विभाग जोड़े गए वे बवल माध्यमिक तथा योगाचार सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का ही खण्डन करने के लिए।

याय दर्शन पर भी गुप्त-युग में ग्रंथों का प्रणयन किया गया। गुप्त काल के पूर्व ही यायसूत्र लिखे जा चुके थे। यायसूत्रों पर वात्स्यायन ने एक टीका लिखा। उन्होंने नागाजन के विचारों का खण्डन किया है परन्तु आगे चलकर ऋिगनाग ने इनके मतों का खण्डन किया। उद्योतनर नामक विद्वान् ने सातवीं शताब्दी में वात्स्यायन के मतों की पुष्टि करने हुए ऋिगनाग के विचारों को काटा है। पदायधमसग्रह का प्रणयन करके प्रशस्तपाद ने वनारण के बौद्धिक दर्शन को बहुत आगे बढ़ाया। प्रशस्तपाद का ग्रंथ एक टीका मात्र नहीं है बल्कि इसी विषय प्रतिपादन की शली इतना सुन्दर है कि मौलिक ग्रंथ की उपाधेयता का यह निश्चय ही बना देता है। चन्द्र नामक विद्वान् ने दशपन्थशास्त्र लिखा जिसका अब चीनी संस्करण भी प्राप्त है।

बौद्ध और जन धर्मों में भी प्रचुर दाशनिक साहित्य का सृजन हुआ। गुप्त युग में बौद्ध धर्म की दो प्रमुख शाखाओं की दोनों उपशाखायें ही गई थीं। हीनयान की दो शाखायें थी—(१) थेरेवाद (स्थविरवाद) और वभाषिक (सर्वास्तिवाद)। महायान सम्प्रदाय भी उसी उपशाखाओं में विभक्त था—(१) माध्यमिक तथा (२) योगाचार। जसग योगाचार सम्प्रदाय में सबसे प्रधान आचार्य थे। इसके द्वारा प्रणीत ग्रंथ ये हैं—(१) महायान सम्प्रतिषद् (२) प्रकरण जायवाचा (३) महायानाभि



धर्मसमीक्षाशास्त्र' (४) 'वज्र छेदिका टीका (५) योगाचार मूढशास्त्र । महायान मन्त्ररिग्रह' नामक ग्रंथ का जापान में अब भी बड़ा समादर किया जाता है। वसुवधु भी प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य और वे वाक्यप्रथम थे। वसुवधु ने हीनयान और महायान दोनों पर गन्ध लिखे। अभिषेककोश' इनकी सबसे प्रसिद्ध कृति है जिसका प्रणयन उन्होंने यमायि सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का विवेचन करने के लिये किया था। बौद्ध कला निक साहित्य में आचार्य दिगन्ता की रचनाओं का बहुत अधिक महत्त्व है। प्रमाण समुच्चय इनका सबसे विख्यात ग्रंथ है। 'याय प्रवेश' इनका दूसरा महत्वपूर्ण ग्रंथ है। धर्मपाल नामक काञ्चीनिवासि ज्ञानि ने यागाचार सम्प्रदाय का विकास करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान किया। धर्मपाल नागपुर महाविहार के कुम्भपति पञ्चनियन्त्रण किये गये थे। बद्धघोष का बौद्ध दार्शनिकता में बड़ा गौरवपूर्ण स्थान है। इन्होंने अनेक ग्रंथों की रचना की। विशद्विभाग नामक ग्रंथ में शास्त्र समाधि और प्रज्ञा का रूप पर बद्धघोष ने बड़ा विचार विवेचन किया है। समतपासादिका नामक ग्रन्थ 'विनयविपण' के समस्त ग्रंथों का टीका है। इस ग्रंथ में तत्कालीन भौतिकी और ऐतिहासिक तथ्यों का भी पता चलता है। सुमन्तविजयानिना बद्धघोष का एक सुविख्यात रचना है जिसमें दार्शनिकता का व्याख्या करने का प्रयास किया गया है। कतिपय सिद्धान्तों ने इस ग्रंथ में बौद्ध धर्म का उन्मूलन का ऐतिहासिक तथ्य स्पष्ट किया है।

गुप्त-युग की इस बात का गौरव प्राप्त है कि इसी युग में जन-ग्रंथों का लिखित ब्रह्म किया गया और जन-दर्शन का महत्वपूर्ण ग्रंथों का प्रणयन या संपन्नता में ही हुआ। आचार्य मित्रसत गुप्त काल के प्रसिद्ध जन-आचार्य थे। इन्होंने ज्ञानाग का भाँति योग दर्शन पर ग्रन्थ लिखे। 'यायावतार' जन-न्याय का सबसे प्रामाणिक और प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। उन्होंने तत्त्वानुमात्रिणा तत्त्वार्थ टीका नामक मौलिक ग्रंथ की रचना भी की। सिद्धमन्त्र दिवाकर कवि भी थे। इनके रचित भक्ति और श्रद्धा के भावों में आज प्राण है।

एक साहित्यिक ग्रंथ—गुप्त-युग में प्रसिद्ध कापकार 'अमरसिंह' एक ज्ञानि जन प्रसिद्ध ग्रंथ अमरकोश का प्रणयन किया। यह मस्कृत का सबसे प्रसिद्ध काव्य है। चाण्ड नामक का-मौरनितामी बौद्ध विद्वान ने एक व्याकरण-ग्रंथ लिखा जिसमें व्याकरण का ऐसा पद्धति का विकास किया गया था जो प्रायः तत्काल में मुक्त था। चाण्ड का व्याकरण का-मौर निरुक्त न्याय और देवता में बड़ा प्रसिद्ध तथ्य प्राप्त प्रिय था। मौरि न्याय नामक प्रसिद्ध टीकाकार ने मयदूत का अपनी टीका में चाण्ड द्वारा चलाई गई व्याकरण पद्धति का उल्लेख किया है। अथर्वशास्त्र ग्रंथों का रचना भी गुप्त युग में ही परन्तु इनमें से अधिकांश टीकाएँ थीं। कहा जाता है कि जन-परि न-मन्त्रजित के महाभाष्य पर अपना टीका लिखा परन्तु यह टीका उक्त ग्रन्थ का कुछ हिस्सा है। जित-बौद्ध ने काशिका पर अपना 'याग नामक टीका लिखा। माप न-अपने प्रसिद्ध मन्त्राध्यक्ष शिशुपालकव्य में 'याम' का उल्लेख किया है।

साहित्य साहित्य—गुप्त काल का सामान्य साहित्य प्रमाणहीन था। मस्कृत में 'यायावतार' ग्रंथ की रचना या का गल्प तथापि अधिकांश ग्रंथ सामान्य ही हैं। सामान्य आ-रचना में सामान्य साहित्य का विकास में प्रारम्भ याग किया गया प्रकाश-तरापी और शी-रवा-परिचय का भक्ति-आ-रचना में शैली का प्राचल्य भाषाशास्त्र का साहित्य संवर्धन का प्रणयन और रचित प्रणयन का था। पर-रचना और बौद्ध धर्मों में सामान्य साहित्य का विकास पर-अपने महत्वपूर्ण प्रभाव होने पर-रचना का-रचना में प्रथम

आर बलाव घनों के प्रभाव भा अधिक पडा। जनिवा का तामिल माग्नि के प्रचार  
 न कुछ अधिक वाग्वान था और उन्हे व्याकरण तथा नीतिशास्त्र का एत्कितामरक  
 विषय पर भा प्रथम लिख किन्तु गुप्त-युग और इसका बाद के काला में हिन्दूधर्म के  
 न नस्त्रिवाता सम्प्रदाय। न हा तामिल साहित्य का प्रतिविधि का प्रभावित किया।

शिव नाथनमारा और बलाव आनवारा न तामिल भाषा में नस्त्रि विषयक सरन  
 पना का रचना का। य माय-माय नस्त्रि य और अपन उपास्य देवा के प्रति उन्हे  
 नस्त्रि का तरा में गाते गाय व हा पना के रूप में हा ग्य। नथनमारा और जान  
 वारा के पना में यह भाव प्रबुद्धता में व्यक्त किया गया है कि नव-किन्नान आ  
 नस्त्रि-वस्तन प्रभु उक्तमदा बुद्धि द्वारा नहा अपिनु नस्त्रिउत्पन्न मन तथा उत्पन्न हुए हृदय  
 द्वारा हा प्राप्त किया जा सकता है। इसमें काइ नहा नहीं कि नाथनमारा जोर जोर  
 वारा का उत्कृष्ट नस्त्रि भावना न उत्कृष्ट कवित्व का जन्म दिया। नथनमारा विन  
 पना का नरसुता तथा मासिकता वस्तुतः आधनाय है। उन्हे जिन नस्त्रि-वाच्य  
 का मजन किया वह आज भा अनुपमय है कारण कि यह काल नभूत हृदयों के  
 अन्तरगत प्रथा से विना प्रयत्न हा निकला है।

विज्ञान—गुप्त-काल में विज्ञान का भा अधिक उत्थिति हुआ। इस काल में  
 Kenneth Saundere का कथन है, Dunne the Gupta Era Indian science  
 al o made great advance We know that Indian astronomy wa  
 already far advanced when the Greek arrived and that Indian  
 learned from the invader a new system But it wa Indian a  
 tronomy which pa ed into Europe in Arab translation in the Middle  
 Age वातिप जोर गणित के क्षेत्र में पुस्तकाला विज्ञान को नहा नों है।  
 दानपुत्र पद्धति का जो विद्वानभ्यन्ता का भारत के अनेक उद्धारों में एक प्रमुख  
 उद्धार है विक्रान्त गुप्त-युग मही हुआ। भारत में चिकित्सा-पद्धति का पुस्तकाल के  
 पूर्व हा काफ़ी विकास हा चुका था गुप्त-युग में विकसित चिकित्सा विज्ञान का  
 मरम्भ और मद्दत किया गया परन्तु दुर्भाग्यवश इस समय के चिकित्सा विज्ञान  
 नन्वना ग्रन्थ हमें आज ज्ञात नहीं है।

ज्यातिष—जानमदृ गुप्त काल के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। अपनमदृ न पश्चात् का परिधि  
 का अनुमानतः जो मान का था आज तक प्राप्त नहीं माना जाता है। पश्चात् मान ह  
 तथा अपना घुरा पर चलता है जाति घात्रा का प्रतिपादन करने का न अपनमदृ  
 का हा प्राप्त है। नथन और गणित विद्या का साक्ष्य में इनका भावतः के का  
 नामा तक निर्णय माना जाता है। इन्हे मूल और चन्द्र-ग्रहा के विषय में पौराणिक  
 धारणा का ब साहम के साथ सम्बन्ध करत हुए प्रतिपादित किया कि ग्रह न रा  
 का काद स्थान नहा है यह चरमा तथा पश्चात् का छाया का फल है।

बराहमिहिर गुप्त काल के सवर्ष प्रसिद्ध वातिपन था। उन्हे पाँच पुस्तकें  
 विद्या—(१) लघु जात्रक (२) घट्यजात्रक (३) विगह फल (४) वा  
 नना (५) बट्यहिता और (६) पञ्चसिद्धांतिका। अल्पिन ग्रन्थ में इन्हे  
 रामक बलिष्ठा जाति सिद्धांतों का विवचना का है। यह सबसूत्र एक आशय का  
 विषय है कि बराहमिहिर जस किपुण वातिपन न भा ग्रह के विषय में जानमदृ  
 का भावतः का सम्बन्ध किया और इस सम्बन्ध में पौराणिक धारणा का सत्य स्वरूप  
 किया। परन्तु जस वाता में बराहमिहिर के धान का प्रथम करता जनिवाय हा जाता

है। उनका बहुत्महिता नामक ग्रन्थ पान विद्या का एक सुविशाल काव्य है जिसमें खमण्डलक नभत्रा का गति तथा मनुष्या पर उसके प्रभाव नृगान वास्तु कला मूनि-निर्माण तातावों का खदेवान तथा उद्यान निर्माण करान की गीतिया विभिन्न प्रकार का त्रिया तथा पशुआ का विपनाया और विविध प्रकार क रत्ना आदि विषया का पान प्राप्त होता है। बहुद्विवाहपत्न तथा स्वल्पविवाहपत्न नामक ग्रन्था म वराह मित्रि न विवाह क शुभ नाना पर विचार किया है। वराहमिहिर न ज्यातिपविद्या म यनानिया क ऋण का स्वाकार किया है।

ब्रह्मगण्य भा गुप्तकाल क एक प्रसिद्ध ज्यातिपन थ। इहाने अपन ग्र य ब्रह्म-मिदान का रचना शक मवन ५७० अर्थात् सन ६२८ ८० म का।

सगीत—गुप्तकाल न भा म गणित का भा उत्तमि दुः। एम समय ज्यातिप आर गणित एक दूसर क भाय वाफा घनिष्ठ रूप म मि हूट थ। इस काल क ज्या-निपन हा इस समय क प्रमुख गणितन थ। आयमट्ट एम प्रथम विद्वान थ जिहाने गणित को एक पथक विज्ञान माना। उनका सबसे प्रवान दन है उनका ज्योताय सत्या पद्धति। ससार क किना भा प्राचान ण का दशमन्त्र पद्धति का पान नया था किन्तु आज सारससार म यह प्रचलित है। यह निश्चयपूर्वक नती कहा जा सक्ता कि आयमट्ट न किना प्रचलित गणना या सत्या पद्धति क नारा सनी विनाता और पद्धति का स्वय आविष्कार किया। भारतीय सत्या पद्धति क नारा सनी विनाता और विाप रूप स गणित का किना उत्तमि हुई और इसक अभाव म नना किना हा नि होनी यह कह सकना सरन नही है। आयमट्ट न विलुन टाव-ठाक मन्थ ३१६ का मा वाज का। ब्रह्मगुण्य भा एक महान् गणितन थ। एन लक्षक क  
 arithmetical operations square and cube roots rule of three interest progres ion geometry including treatment of the rational right angled triangle and the elements of the circle elementary mensuration of solids simple algebraic identities and positive quantities cipher surds simple problems negative and determinate equations of the first and second degrees in consider able detail and simple equations of the first and second degrees which are briefly treated Special attention is evic quadrilaterals २१

आयुर्वेद तथा रसायन शास्त्र (Medicine and Chemistry) क क्षेत्र म ना गुण्य मगीन भारत न मन्वयण प्रगति की। नागार्जुन नामक प्रसिद्ध विद्वान् न रम चिकित्सा नामक नवान चिकित्सा-पद्धति का आविष्कार किया जिान चिकित्सा विज्ञान क क्षेत्र म महत्वपूर्ण क्रान्ति ममुपस्थित कर दा। नागार्जुन न य सिद्ध किया कि माना चीन साहा तांग आदि तन्त्रि पातुआ म या रोग निवारण का शक्ति विद्यमान है। पाण्य का ना आविष्कार नागार्जन न किया। निपशास्त्र क भा अनक य या का प्रणयन गुप्तकाल म किया गया।

१ Classical Age, p 323

२ यह नागार्जन बौद्ध वाणिज्य नागार्जुन से निम्न है।

## कलाओं की उत्पत्ति

गुप्त काल की सवनामूगी मास्कृतिक उत्पत्ति में विभिन्न कलाओं का विकास का महत्वपूर्ण स्थान है। गुप्त-युगीन कला का महत्त्व दो दृष्टियों से है। स्थापत्य चित्र और मूर्ति निर्माण कलाओं में यह निपुणता तथा कुशलता की पराकाष्ठा का प्रतिनिधित्व करती है। वास्तुकला का क्षेत्र मयदपि गुप्त युग का गौरव का अधिक है तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि इस कला का यह उत्कृष्टतम रूप प्रस्तुत करता है। गुप्त काल में मन्दिर निर्माण कला का सम्भवतः जन्म हुआ और जन्म पर्याप्त विकास भी हुआ किन्तु जागू काल में इस कला का और अधिक प्रसार हुआ। इस प्रकार गुप्त-युग का इस कला का गौरव प्राप्त है कि इसमें एक और जहाँ स्थापत्य कला और चित्रकला का विकास का चरम सामान्य पर पचासा बहूत ही और मन्दिर निर्माण कला का चरम में इसमें विकास की महत्ता सम्भावनाओं का भी जन्म मिला। गुप्त काल की कलात्मक प्रगति का अध्ययन हमें इन भाषकों का अन्तगत करेंगे (१) वास्तुकला (२) स्थापत्य कला जयवा नगण कला ( ) चित्रकला और (४) मंगल कला।

वास्तुकला—गुप्तकाल में पूर्ववर्ती युगों में स्तूप चण्ड्रीगृह और विहार इनका विकास हुआ था। गुप्त काल में न केवल इनका निर्माण कार्य जारी ही रहा बल्कि इनका चरम विकास भी हुआ। बौद्ध और जैनियों की मूर्तिब्राह्मणों में भी पत्रता में गफाओं का उदवाया और उनमें साधुओं के निवास की व्यवस्था का। मगध में गुप्त द्वितीय के शासन काल में गवानियर राज्य में भिनसा का निकट उदयगिरि में गफा खुदवाई गई थी। गुफाओं में सुन्दर चित्र कर्मों का बना दिया जाते थे। बाघ और जजती का जगद्विर्यात चित्रकारी गफाओं में ही खोजा गई है।

मानवीय वास्तुकला के इतिहास में गुप्तों के शासन ने एक नये युग का आविर्भाव किया। गुप्त युग के पूर्व के भवन अधिकांशतया बाँस और काष्ठ जमा शास्त्र नष्ट हो जानेवाली वस्तुओं से बनाये जाते थे जिससे वास्तुकला का एक कला का रूप नहीं प्राप्त हो सका। परन्तु गुप्तकालीन निर्माताओं ने एक नये दृष्टिकोण से प्रतिष्ठित हाकर मूर्त वस्तुओं पर और इन्होंने सभने तथा मन्दिरों का निर्माण करवाया। वास्तु का क्षेत्र में गुप्त-युग की उपलब्धियाँ निम्नलिखित हैं जन्म और प्रशमनीय हैं। इस काल में न केवल विज्ञान और मय मन्दिर ही बनवाये गये बल्कि मन्दिरों का भी विकास मय मय चरम है कि इस काल में जयप्रन गगचम्वा जट्टानिवाओं मयकन कर्म वमन्शाना नगर भा विद्यमान थे। गुप्त काल में साहित्य में भी प्रभाव उत्पन्न करने का उच्च और ज्ञानदार महत्ता का उत्तरा किया गया है। परन्तु काल के प्रवाह में दुर्भाग्यवश आज उनका अवशेष भी नहीं प्राप्त होते। पर प्रकृति का विध्वसात्मक तत्वा और वरर जात्रमणकारिया का विनाशक हमला से गुप्तकालीन वास्तुकला के जानमन जात्र भा वरर हैं उनमें हा इस काल का तन्मय कला प्रगति का अनुमान लगाया जा सकता है।

गुप्त काल में जनक मन्दिरों का निर्माण कराया गया। इस समय के बचे हुए प्रमुख मन्दिरों में निम्नलिखित प्रसिद्ध हैं —

- (१) जवतपुर जित्तु का विगवा नामक स्थान में विष्णु मन्दिर
- (२) नागौर राज्य में भमरा का शिव मन्दिर

(३) बोधगया व बौद्ध मन्दिर

(४) दशगढ़ का दशावतार मन्दिर

(५) आसाम के दरंग जिले में ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर दश परवतिया नामक स्थान में एक मन्दिर मिला है जो काफी जीण तथा में है परन्तु बना की दिशि स यह मन्दिर काफी उत्कृष्ट है तथा—

(६) नागोद राज्य के दाण नामक स्थान में एक शिव मन्दिर भी मिला है।

इन उपरोक्त मन्दिरों के अतिरिक्त कब्रों द्वारा निर्मित मन्दिर भी हैं। मिठार गाँव का मन्दिर और पट्टा पुर तथा मयप्रान्त के मङ्गपूर व मन्दिर इटा हाग भी बनाये गये हैं। इन ममम्य मन्दिरों में दशगढ़ तथा मिठारगाँव के मन्दिर सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। यामा जिले में पत्थर का बना हुआ दशगढ़ का मन्दिर तथा बान पुर के निकट चने का बना हुआ मिठारगाँव का मन्दिर अपनी दीवारों पर उत्खाने के द्वारा विद्या सहित गुप्त म्थास्य और शिल्प के अच्छे नमूने प्रस्तुत कर रहे हैं। बाय गया का महाबोधि मन्दिर भी इसी युग का मन्दिर निमाग बना का एक अनुपम नमूना है। मिठारगाँव के मन्दिर का समे की विशेषता इस बात में है कि इसमें एक अच्छे ढंग का मङ्गल है जाकि भारत में सबसे निर्माग बना में प्रयुक्त मङ्गल का प्राचीनतम माना गया है। गुप्तकाल का सबसे निर्माग बना में मुन्दर राजावटा से अलकृत स्तम्भों का एक विशद स्थान है।

मिनि कला—ज्या कि हम पाठ कर जाय है गुप्तकालीन मति बना परगावटा पर परचा यह बना है। उस कलि में गुप्त युग बना के पुनर्जीवन का नया दिक् चरमात्रय तथा प्रकृतन का बान था। इस सम्बन्ध में डा० आर० मी० मङ्गलकर का कथन है—

“With the Gupta period we enter upon the classical phase of Indian sculpture. By the efforts of centuries of technique of art were perfected definite types were evolved and ideals of beauty were formulated with precision. There was no more groping in the dark and no more experiments. A thorough intelligent grasp of the true aims and essential principles of art, a highly developed aesthetic sense and a masterly execution with steady hands produced the remarkable images which were to be the ideal and despair of succeeding ages. The Gupta sculptures not only remind models of Indian art in all times to come but they served as such in the Indian colonies in the Far East. The sculptures of the Malay Peninsula, Sumatra, Java, Annam, Cambodia, and elsewhere are all the work of Gupta art. डा० कुमारस्वामी का कथन है कि “गुप्तकालीन कला का प्रथम गुणक सामाजिक विकास का चरमात्रय का प्रकृतन का बान है—जासिम नगर उद्भूत मति के विरुद्ध अन्तर्गत दृष्टि तथा श्रुतिम नन।

१ In Advanced History of India (Part I) p. 20

२ इयम Indian Sculpture and Painting p. 100

गुप्त युगान् मूर्तिकला का सबसे प्रधान विशय था यह है कि इसमें शारारिक अभि व्यक्तिको प्रधानता न देकर आध्यात्मिक भावा का अभिव्यक्ति का प्रधानता दी गयी है। इस बात में गुप्त कला गायार की मूर्तिकला के नितकत विपरत है। गुप्त युग में मूर्ति निर्माण की जिस बौद्ध कला का विकास हुआ यह नितान्तरूपण भारतीय है। हैबेल महान् यत्न किया है कि उस समय भारत पराधानता का स्थिति मन्ही था वरन् समस्त एशिया का गुहया और उसमें पा चाल्य भावा का उधार लिया, बवल अन्ना विचार प्रणाली के अनुकूल उनका बदल लाने के लिए। *India was not then in a state of pupillage but the teacher of all Asia and she borrowed western suggestions to mould them to her own way of thinking* मयुरा के संग्रहालय में सुरक्षित एक सजीवावृत्ति बुद्ध प्रतिमा १५५ बान के आध्यात्मिक-कान्तमयी मूर्तिकला का एक म य नमूना प्रस्तुत करती है। इस मूर्ति में जिन मानसिक सन्तुलन और आध्यात्मिक सन्तुष्टि का अभिव्यक्ति दिखलाते पडता है वह यह सिद्ध करता है कि इसका निर्माता का दृष्टिकोण आध्यात्मिक था और वह शरीर पर आत्मा का विजय प्रशिक्षित करना चाहता था। मयुरा की मूर्ति से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त युग का मूर्तिकला विन्शा प्रमावा से सबथा मुक्त हो चुका था। सारनाथ का बुद्ध प्रतिमा जिसमें भगवान् तयागत बठ हुए उपदेश देने की मुद्रा में प्रशिक्षित क्रिय गये है भारत का मूर्तिकला के प्रथम नमूना म स ग्य है। सारनाथ के प्रतिमा का आध्यात्मिक अभिव्यक्ति प्रशान्त मुस्कराहट तथा आन्तरिक विचारपूर्ण म भावनाय का उच्चतम सफलता का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। अनुत्तर ज्ञान से मयुरा और निर्दिष्ट भाव में बठ हुए भगवान् बुद्ध एक दबी आभा विकाण कर रहे हैं। बुद्ध के मन्त्रमन्त्र पर बठार अनुशासन के साथ म्नेह से तुलन कर्णा आत्म विवाम तथा निस्साम आध्यात्मिक जानद के भाव विद्यमान है। इन दो उदाहरणों से भारतीय कला का विशयता का वाव होता है। पश्चात्य कला में शारारिक अवयव का मास जता और पुष्टता का प्रकट करन पर अधिक ध्यान दिया जाता था मुन्त्रमन्त्र पर मनागत भावा की अभिव्यक्ति का इसमें एकान्त अभाव था। इस विषय में स्वर्गीय था गौराक्षकर चटर्जी का कथन है वास्तव में भारतीय कला तथा पश्चात्य कला के वाव मह्य मद यह है कि भारतीय कला सो दय के नियमों की मर्यादा का रक्षा करती है किसी पदाय के आन्तरिक भाव का अभिव्यक्त करने की चेष्टा करता है। भारत का स्वभाव का यथातथ्य अनुकरण मात्र नहीं करता थी और न वह प्रकाश अधरा छाया का के तन्त्रपूर्ण प्रदर्शन मात्र करके सन्तुष्ट रहती थी। भारतीय कला का उच्चतम भारतीय संहित का प्रति पात्र के हृदय में विभिन्न प्रकार के भावा का उ के कर विभिन्न रसासचित्त का भरना था। उमका उद्देश्य बवल मनोरञ्जन करना न, बल्कि भावावश उत्पन्न करना था जिसमें कोई यत्न अपन का बुद्ध समय के लिए अद्वैतता रक्षा में लय कर लेता था। उस हम रसानुभूति कह सकते हैं। उत्तम कला का समाप्ता का पराधा इसी बात से होती है कि उसमें रसानुभूति को बढ़ाने का किन्ता शक्ति है। ९

स्वर्गीय चटर्जी महादय ने कुमार स्वामी के कथन का उद्धृत किया है गुप्त-काल का शिल्प कला और चित्रण कला निस्सन्देह प्रगाढ़ आध्यात्मिकता से युक्त है।

किन्तु यह आध्यात्मिकता समाज के विरुद्ध नहीं है। इस आध्यात्मिकता का जावन के साथ सामाजिक व्यवस्थापित है। इस कला का जनरल मूल विषय निस्सन्देह मया धार्मिक है कि तु इस विषय के प्रतिपालन में आध्यात्मिक भावना और जीवन के अन्तर्गत तथा तथ्यपूर्ण बातें मया एक सुमंगल समष्टि के जन्मान्त है।

हमने कुमारस्वामी के इस रचन के कृपाण कानीन मस्कृति के अध्याय में यह नक्षत्रिया है कि गुप्तकालीन मूर्ति कला का उत्तम मयग का तक्षण कला में आ और गुप्त कला मयुरा का कला शली का एक निदान्त विवेचन का प्रदर्शित करती है। गुप्त कला में मूर्तिय मानितता और आध्यात्मिक भावा का मूलर समवय है। मयुरा कला का इतिहास परकला के स्थान पर गुप्त कला में आध्यात्मिक भावा का अन्वय अभिव्यक्तता है। मयुरा कला में हत्य पर स्याया प्रभाव डालन का मूर्तिय का अभाव है जो गुप्त कला का स्थापत्य कला इस प्रकार के कलागत मूर्तिय में परि प्त है।

गुप्त कला में बौद्ध कलाकारों ने नयागत का प्रतिमायें बनाई तथा हिन्दू कलाकारों ने अपने इष्टदेवों की मूर्तियाँ के निर्माण में उनका पाठ नहीं लिया। बौद्ध और जैन धर्मों के प्रचार से शिव तथा विष्णु का जाव मूर्तियाँ का निर्माण हुआ। बौद्ध का शिवांग प्रतिमा ने इस कला का हिन्दू कलाकारों का एक मुक्त नमूना प्रस्तुत करती है। इस यग के हिन्दू कलाकारों ने शिव के अधनागीवर रूप का प्रतिमा का निर्माण के ही कौशल से किया। मयग में प्राप्त विष्णु का प्रतिमा में मा मारनाय का बुद्ध प्रतिमा की मूर्ति एक स्वर्गीय मनुष्य तथा गम्भार आध्यात्मिक ध्यान मुद्रा के दर्शन में है। उत्पत्तिरिधी विद्या वराह मूर्ति गुप्त-कालीन कलाकारों की प्रतिमा का एक गुणवत्तम नमूना प्रस्तुत करता है। मयुरा युगी स्वामि-शक्ति के आदि त्वा-वता का मूर्तियाँ भी इस काल में बनाई गई थी। गुप्त काल का मूर्ति कला मजावता आध्यात्मिकता सुषुप्ता सोप्यपूर्णता और मूर्तिमत्पत्ता में अपना साना नया रखता है।

**चित्र कला**—भारत के नाट्य में चित्रकला के उत्तम प्रवर्तन में प्राप्त बात है। मस्कृति के वाक्या और नाटका में शायद कुछ ही एक हाग जिनमें चित्रकला का चित्रा का जिक्र न किया गया हो। परन्तु गुप्त काल में ही हम चित्रकला के नमन मिलन लगते हैं। यह एक विमय का बात है कि परवर्ती युगा के चित्रकला के नमन भी इस नया प्राप्त होत। गुप्त-काल का चित्रकारी का मूल हम अजन्ता और शय की कलाशा के मिति किया शय प्राप्त बात है।

स दगन तथा उनका जीवन का समन्तन का प्रयास किया। प्रकृति का साथ साथ उस समय का जीवन भी अजता का चित्रा में मुगल रहा उठा है। अजता का चट्टान निमित्त मन्त्रियों की सहस्रा दावाना और उनका मन्त्रा स्तम्भा पर हमारा नन्ना का सम्मुख एक विशाल नाटक हाता हुआ गिगाइ पडता है। यह नाटक एक आदरपयजनक रूप से विभिन्नतापूर्ण दृश्य का पुष्पभूमि में बना व उद्याना का वाच, राजसाम्राज्य और नगरा चौड मदाना तथा गहन कागारा में हाता है जब कि स्वयं का दूत आकाश में सबका घूमता है। इस नाटक का राजकुमार तथा साधुगण आर यादों तथा प्रत्येक स्थिति का स्था पुष्प अभिनात करत है। इन समस्त (चित्रा) से समार का रूप की चमक का प्रति, स्त्रा पुरुषा का शारारिक उत्कृष्टता का प्रति पात्रा का शक्ति तथा कामलता का प्रति औरपी तथातयापूनाका तादृश्यता एक विशदता का प्रति एक महान जानद विस्मृत हाता है जार इस भौतिक सौंदर्य का तान बान में हम सप्टि का आध्यात्मिक मूर्त्या का यवस्थित रूप का बुना हुआ दग्गत है।<sup>१</sup> एक अर्थ लयका न मा लिखा है कि अजता का दरवाजा का दावाना तथा स्तम्भा द्वारा एक महानाटक का पल्लव्यव निका का निर्माण हाता है। अभिनता गण हैं राजकुमार वीरपुरुष साम्राज्य नरनारा जा सभा जावन का आनन्द से परिपूरित है।<sup>२</sup>

अजता का कतिपय चित्रा का प्रभावात्पादकता आर अभिव्यक्ति सबका प्रशंसनाय है। मरणासन्न राजकुमार का चित्र की भावामिष्पक्ति इतनी गम्भार है कि इस दृक्कर चित्त प्रभावित हुए बिना नला रह सकता। अनक कलचेविदा न इस चित्र की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा का है। एक कलाविद का कथन है For pathos and sentiment and the unmistakable way of telling its story this picture I consider cannot be surpassed in the history of art. The Florentine could have put better drawing and the Venetian better colour but neither could have thrown greater expression on it। माताशपुत्र नामक चित्र भी अजता का चित्रकारा का अदभुत नमूना है। अजता का चित्रकारा में जुनमा का दृश्य मा वः हा रमणीय तथा चित्ताकषक

<sup>१</sup> On the hundred walls and pillars of these rock caved temples a vast drama moves before our eyes a drama played by princes and sages and heroes by men and women of every condition against a marvellously varied scene among forests and gardens in courts and cities on wide plains and in deep jungles while above the messengers from heaven move swiftly in the sky. From all these emanates a great joy in the surpassing radiance of the face of the world in the physical nobility of men women in the strength and grace of animals and the loveliness and purity of birds and flowers and woven into this fabric of material beauty we see the ordered pattern of spiritual values of universe —Rothenstein

<sup>२</sup> The walls and pillars of the Ajanta Caves constitute the back screen of a vast drama. The dramatic personal are heroes princes ordinary men and women all of whom are imbued with the joy of creation



है। बौद्ध के जीवन से सम्बन्धित चित्रों में महामिनिष्कमण का चित्र बड़ा स्वामाविक और प्रभावशाली है। इस चित्र के विषय में भगिनी निबन्धिता कहती है यह चित्र सम्भवतः भगवान् बौद्ध का मृत्यु महान् कल्पनात्मक चित्रण है जिसे सत्सारा ने आज तक उत्पन्न किया है। ऐसी अद्वितीय कल्पना पुनः उत्पन्न नहीं की जा सकती।

अजन्ता के चित्रों का जितना अधिक प्रशंसा की जाय सीधी है। श्रीमती हरिधरम का कथन है कि अजन्ता के चित्रों के कारण भारत मानवता का श्रद्धा का अधिकारी है। एक अन्य महिला कला विशारद का कथन है, कि अजन्ता की कला भारत की सर्वोत्कृष्ट कला है। चित्रों का सुन्दरता अद्वितीय है और वे भारतीय चित्र कला के चरम उत्कर्ष हैं। अजन्ता के चित्रकारी का कला निपुणता बड़ा आश्चर्यजनक है। एक विद्वान् के शब्दों में, विभिन्न भावों का बिना किसी अधिक परिश्रम के मनाहर रूप में अभिव्यक्त करने में चित्रकार बड़े पारंगत थे। स्वामाविकता साहित्य तथा चेतना का अभिव्यक्ति इस कला का अपना विशेषता है। अजन्ता के चित्रकार बड़े प्रतिभाशाली थे उनका चित्रकार इतने उत्कृष्ट दर्जे की थी कि वास्तव में उसकी वाद अनुकरण नहीं कर सकता। रूप मद तथा हाव भाव सम्बन्धी उनका ज्ञान तथा भावना पर उनका अधिकार वस्तुतः आश्चर्यजनक है। हाथों की सुन्दरता तथा मानव शरीर के रूप सम्बन्धी सूक्ष्मातिशुभ्र बानों का चित्रण इतना कुशलता के साथ किया गया है कि आधुनिक चित्रकार उसका सामने अपना अभिनता पर निराशा प्रकट करते हैं। इन चित्रकारों में केवल दूरी प्रेरणा ही नहीं थी प्रत्युत वे बड़े विद्वान् भी थे। उद्दान शरीर-रत्न (अभ्यन्त-मस्थान) तथा मुग्धा का प्रगाढ़ अध्ययन कर उत्तम पूजा कुशलता प्राप्त कर ले था।

संगीत—चित्रकारी का भीति संगीत का भी भारतीय साहित्य में प्रचुरता से उत्कर्ष मिलता है। गुप्तकाल के साहित्य ग्रन्थों से पता चलता है कि इस समय गायन, वादन तथा नर्तन तीनों संगीत के विभिन्न रूप थे और तीनों ही का समाज में प्रचलन था। समुद्रगुप्त के कुछ सिक्कों से पता चलता है कि उसकी वाणा वादन में बहुत अधिक अधिकारी थी और प्रयाग प्रशस्ति में ताम्र अपन वाणा-वादन से नारण एक तुम्बक का सज्जित करनेवाला बतलाया गया है। गुप्तकाल के कतिपय साहित्य ग्रन्थों से एसा सबन मिलता है कि संगीत की शिक्षा दान के लिए शिक्षक नियुक्त किए जाते थे। समाज में नृत्य का भी काफी प्रचार था। अभिजात कुलों की नारियों संगीत की शिक्षा प्राप्त करती थीं। इस काल के गणिकायें संगीतज्ञ नर्तन-कलाओं में बड़ी निपुण होती थीं।

मूर्धा निर्माण कला—यूनानियों से मूर्धा निर्माण-कला सीखकर गुप्ता के शासन काल में भारतवासियों ने इसका एक राष्ट्रीय कला का रूप प्रदान किया और उसे उत्कर्ष के चरम सीमा पर पहुँचा दिया। गुप्त साम्राज्य ने कलापूर्ण मुग्धा मूर्धों बनाई। उनका मुग्धा की आकार प्रकार की विभिन्नता इस कला की समृद्ध अवस्था का सबूत करता है। गुप्त सम्राटों के विभिन्न निर्माण-मुग्धा तथा शिव की कलात्मकता के लिए प्रसिद्ध हैं। उन पर स्पष्ट अंगरा में से उत्पन्न हैं। अप्रतिरथा विजित्य शक्ति मुग्धा के दिव्य जयति आदि शब्दों के लक्ष्यों की सिक्कों पर उत्पन्न कराना गुप्त साम्राज्यों की भीतिव मूस था।



नरेश ने स्वयं स्वयं एव स्वमाया का भावना का प्रतीकित किया था। भारतीय भूमि से विदेशी जातियाँ जस शर्कों एवं हूणों को मार मगलया। नरेश म पूरातया भारतीयता का प्रतिष्ठापन कर इस नरेश न 'शक्ति' की उपाधि धारण की। विजय-दत्त की उपाधि भी उसके वास्तविक शौर्य एवं पराक्रम का प्रतिबिम्ब ही करता है। सिंधु नदी के मात महाना को पार कर मध्य एशिया में मा इस सम्राट का विजय-सुन्दरी वज रहा थी। देखिए मेहरोली के स्तम्भ अभिलेख में इस घटना का अक्षर— तात्वाँ सप्तमुखानि येन समर सिधोजित्वा वाहिहका दक्षिण भारत में मा इस सम्राट का प्रभाव अनिर्विकल्प में स्थापित था। दक्षिण भारत के नरेश सम्राट का महत्ता एवं सब प्रभुता सम्पन्नता का स्वरूप बरत थे। देखिए प्रशस्तिकार के मध्य भाग में—

यस्याद्यानधिवास्वने जलनिधिर्वीर्यानि न दक्षिण ।

सम्राट चन्द्रगुप्त न भारतीय भूमि पर अपनी सावभौमिक शक्ति का विविध रूपों में परिचय दिया है। ब्राह्मण धर्म का राष्ट्रीय धर्म का रूप देने वाला महा परम भागवत था। संस्कृत को राष्ट्रभाषा के रूप पर आमीन करानेवाला यथा कवियों का संरक्षक था। इस सम्राट के परचात् सम्राट चन्द्रगुप्त ने सिंहासन की परम्परा का निमाया। उनमें उन हूणों का भीषण संग्राम में मार गिराया जिनका पदचप म पृथ्वी कापी थी जिन्होंने मध्य एशिया तथा यूरॉप के अन्त में विनाश का ताण्डव नृत्य किया था, जिनकी बबरता क्रूरता एवं अत्याचार की कृतियों ने लोक शापाओं का रूप लिया है। एमी ही आनताया जाति की भी हिम्मत पस्त करने वाला, उनका क्रूरता की अवरोधित करनेवाला और यहाँ तक कि भारतीय भूमि में उन्हें बाहर धकेलने वाला भारत माँ का सान स्वर्णगुप्त ही था। उसका इस अप्रतिम पराक्रम का उल्लेख भारतीय के शिलालेख में प्राप्त होता है—

×

×

×

‘सिंहित्तत्रशयनीय येन नीता त्रियामा ।

युद्ध की विभीषणता का आनाम तो उस समय हम होता है जब हम यह जान होता है कि इस महान् सम्राट ने भारतीय समुद्रों की सुरक्षित रखने के लिए नगी परती पर ही गार अथन नती की प्याम मिगई। विजय साहस विजय त्याग विजय रणवीर्य एवं विजय देश प्रेम—यह सब स्वर्णगुप्त के चरित्र में परिलक्षित होते हैं।

यह इन सम्राटों की ही शौर्यता थी कि किसी विदेशी न भारत का भूमि पर टिकी दृष्टि करने का साहस नही किया। भारत की जनता न स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता

के वातावरण में पनप कर अपनी अतीव शक्ति एवं प्रतिभा का जो चमत्कार दिखाया है वह क्या मुलायम जान पाय है। गुप्त सम्राट् भारताय राजनीति आकाश का व नक्षत्र है जिसका प्रकाश अभी भी शिशुमत्ता नहीं गराता। इन नक्षत्रों की प्रदाप्ति व सम्भूत अथ तारागण जन्मों में जान पड़ते हैं।

राजनतिक एकरूपता का युग—भारत का प्राकृतिक एक भौगोलिक व्यवस्था कुछ ऐसा है कि देश में एक शासन व्यवस्था एक प्रभुत्व की स्थापना करना कुछ कठिन सा प्रतीत होता है। प्रागतिहासिक युग से बासवा शताब्दी तक महा प्रयास हात आय है कि भारत को कस एवं इनाद में गिराया जाये ? कस भारतीय राष्ट्र में एक राष्ट्रियता का सदेश फूला पाय ? कस देश का विघटनकारी प्रवृत्तियाँ का कुचला जाय ? इन सब का कारण यह है कि भारत व विस्तृत भूभाग में विभिन्न सामाजिक व्यवस्थाएँ हैं, विभिन्न भाषाएँ हैं, विभिन्न धार्मिक प्रथाएँ हैं—विभिन्नताओं का काई कमा नहीं है। गुप्तवात व सम्राट् अपने देश का इस विचित्र परिस्थिति में जवगत थे। जतएव उहान देश में राष्ट्रियता का भावना को बन देन का अथक प्रयास किया और महत्वपूर्ण एकरूपता स्थापित करन का निशा में अपना पन बनाया। देश में से विदेशियों का निवान कर स्वयं का भावना से उहान भारतीयता व मंत्र का पुष्पित पल्लवित किया। भारत भारताय का है इससे राष्ट्रिय एकता की भावना का काका बन मिला। देश में एक धर्म का प्रचार कर ब्राह्मण धर्म को राष्ट्रिय धर्म बना तथा धार्मिक एकता का स्थापना में उहान महत्वपूर्ण योगदान किया। धार्मिक एकता का राष्ट्रिय जीवन में व । हा उत्कट स्थान हाता है—इससे गुप्त सम्राट् भला भाति परिचित थे। देश में विभिन्न भाषाओं व हाने से देश के लोगों में परस्पर जादान प्रदान करन में एक दूसरे का समझन में व । कठिनाई होनी है अतएव सख्खित का राष्ट्र भाषा बना गुप्त सम्राट् न भाषा का एकता का स्थापना में बहुमूल्य सहयोग दिया।

लकिन सबसे महत्वपूर्ण देश का एकता तो राजनतिक एकता होनी है। समुद्रगुप्त ने इसा जाशय को दृष्टिगत कर विभिन्न अभियान किये थे। उसने अपने अभियानों से अत में पूर्ण भारत में अपनी भावनात्मिक प्रभुता की स्थापना कर दी और भारत व प्रत्येक छोट छोट नरेश अथ सम्राट् का सहानुभूति की अपेक्षा करन लग गए। देश का एक राजनतिक इकाई में पिरो कर इस सम्राट् ने भारत का अपूर्व कल्याण किया। चंद्रगुप्त द्वितीय ने अपने पिता द्वारा प्राप्त साम्राज्य को सुगठित हा किया। उसने सब अर्थों में भारतीय एकाकरण को मूल रूप प्रदान किया था। उसका साम्राज्य हिमालय पर्वत से लेकर कन्याकुमारी तक एव अरब सागर से बंगाल की खाड़ी तक माना जाता था यदि हम उसे भारतीयता का जन्मदूत कहें तो उचित ही होगा। स्वर्दगुप्त एव कुमार गुप्त ने अपने पूज्य से प्राप्त साम्राज्य को सुरक्षित रखा। अकिन मह राजनतिक एकता अधिक समय तक टिक न सका। गुप्त सम्राट् का प्रभावकारी हाथ जैसे ही उठा विघटनकारी शक्तिभा में अपने सर उठान प्रारम्भ कर दिए। विदेशी आक्रमणकारियों का सीमातिक्रमण पुन प्रारम्भ हुए। देश व विभिन्न भागों में विभिन्न राजवशा की प्रतिष्ठापना हा गई। कन्नौज में मौखरिवश ने शासन सूत्र सम्भाला थानेश्वर में बघनवश शक्तिशाली हो गया। बल्लभी ने अपना स्वयंभवा घोषित कर दी। मालवा में अपनी सामित सामर्थ्य लिए उठ पा रहा। इस प्रकार देश में राजनतिक एकता का सूत्र शिथिल पड़ गया और भारतमाता की आत्मा फिर से गुप्तवाता जैसे वीरों का आश्रय में खो गई।

**आधिक समृद्धि का युग**—गुप्तकाल जनता की आधिक समाधि का युग भी था। गुप्ता न जनता का पुत्रवत् समय कर उनका दुखदण्ड का दूर करने का भरसक प्रयास किया था। अपराधा की सख्या पर्याप्त कम हो गई थी। फाहियाज न दश व घन प्रायः स परिपूर्ण होने का उल्लसत किया है। जन-जावन व उच्च नतिव गुप्ता को दसकर वह महिन मा हा गया था। उसन दश व विनिन भागा, म यात्राएँ का थी एनिन बहा ना किसी डाव या चार के दशन उसने नहा निये। इम प्रकार इम यात्री व वणन न तत्कालीन सुख समृद्धि का पर्याप्त प्रतिबिम्बित किया है। कानिगम न इन्हा शासका की सुख शान्ति एव श्रेष्ठ व्ययस्या का दगित कर लिया था—

यस्मिन् महा शासित वणिनाना निन्ना विहारानपथ गतानाम् ।  
वाताऽपि नास सयन्शुर्वानि कालम्बयदाहरणाय हस्तम् ॥

इस प्रकार विभिन्न प्रयवारा व विवरणा—रपुवश—स हम तत्कालीन नीतिक जावन का समृद्धि का आभास होता है।

**धार्मिक सहिष्णुता**—विभिन्न धार्मिक सम्प्रदाया म परस्पर मत एव एकना रहना राज्य का शांति व लिए अनिवाय उत्त्व होता है। धार्मिक विद्वेष का उपस्थिति स राज्य या राष्ट्र का सर्वाङ्गण उन्नति हाना कठिन बात होता है। सुचारु शासन मुख्य कार्य होता है—विविध धर्मों का उपासक। म परस्पर घात भाव का सचार करना। उनम एक दूसर का समझन को एक दूसर व प्रति सहिष्णु दृष्टिकाण अपनायन को प्रवर्ति उत्पन्न करना। शासक का भा अपने आदेश सयह तथ्य जनता व सम्मुख प्रस्तुत करना चाहिए। प्राचीन भारत का इम बात पर ग्व है कि उक्त समय व शासका न वमा म धम प्रताडन का धार्मिक वद्वस्ता का नीति का अवगम्बन नहा किया। धम का सव व्यक्तिगत हित की बात माना गया है। गुप्त नरणा न इमी प्राचीन भारताय परम्परा का श्रुतला म एक बडा और जोडी थी। धम व नाम पर अत्याचार एव अनाचार करना उनका छू तक नहा गया था। यद्यपि स्वय व ब्राह्मण धम व अनुयायी थे। अपन का परम भागवत सिखने म अपना गौरव ममझत थे। साथ हा साथ उहने इस धम व विभिन्न धार्मिक अनुष्ठाना का भी वगे उत्साह स मम्पन्न करवाया था। उन्होंने अनेक श्रव एव बण्युव मोदरा का भी निमाण करवा कर इस धम व प्रति अपना सहज मुकान प्रकट की था। ब्राह्मण धम व प्रति इतनी आया हान पर भी उान वना ना स्वप्न में यह न साचा था कि अय धमनुयायिया को बसात ब्राह्मण धम म प्रबिष्ट करवाया जाय। जहाँ हम एक आर इस प्रकार की धार्मिक उदारता व दुष्टात पात है वही दूसरी आर हमारा सम्मुख ऐम मा उगाहरण है जहाँ विपमिया का हत्या करना परनाक प्राप्ति व लिए आवश्यक अग माना गया था। औरगजब का अपनी हिंदू प्रजा व प्रति जिस प्रकार का शूर दृष्टिकाण था उससे विव नतीमाति परिचित है। ववान मरा का प्राप्स्टा व प्रति नुशसता क्या काद मुला सवता है। परंतु गुप्तवश क सम्राटा नती अत्याचार करन की बात तो दूर रही—अपनी बौद्ध एव अन प्रजा क साथ पक्षपात तन का व्यवहार नहीं किया। धर्मगुप्त विद्मदित्य का एक सनापति बौद्ध था। साचा शिलाालय म बौद्धअग्रवादक द्वारा एक गाँव तथा २५ दानार मेट म दिए जान का उल्लस है। कुमारगुप्त व शासना-न्वयत बुद्धमित्र नामक एक बौद्ध न महारामा बुद्ध का प्रतिमा प्रतिष्ठापित की थी। एकदगुप्त व शासनकाल म जैन धर्म व एक अनुयायी न आदित्त न की मूर्ति की स्थापना की थी। इन सब उदाहरणा स यह स्पष्ट परिलगित होता है, कि गुप्तकाल

धार्मिक सहिष्णुता का युग था। प्रत्येक घमानुयायी को अपनी इच्छानुसार अपनी धार्मिक क्रियाएँ करने का स्वतन्त्रता थी। गुप्तकाल ने धार्मिक सहिष्णुता के क्षेत्र में भी स्वर्ण की भाँति अपूर्व आभा प्रदर्शित की थी और इस प्रकार स्वर्णयुग की गायकता में कोई कसर न छाई।

अष्ट शासन व्यवस्था का युग—गुप्त सम्राटों के अभिप्राय द्वारा एक चीनी यात्री फाहियान के यात्रा विवरण द्वारा हम गुप्तकालीन शासन पद्धति का बहुत कुछ पता लगता है। फाहियान ने गुप्त सम्राटों के शासन प्रबन्ध का जितना आकर्षक चित्र खींचा है उससे तत्कालीन श्रेष्ठ शासन-व्यवस्था का हम बोध होता है। फाहियान ने लिखा है—

प्रजा प्रभूत तथा सुखी है। व्यवहार का लिये पट्टी और पच पचास तक कुछ भी नहीं है। लोग राजा का भूमि जानते हैं और उपज का अंश देते हैं। जहाँ चाह जायें / चाह जहाँ रहें। राजा न ही प्राणदण्ड देता है और न शारीरिक दण्ड देता है। अपराधी को अवस्थानुसार उत्तम माहस वा मध्यम साहस का अंश दण्ड दिया जाता है। बार बार दस्युता करने पर दक्षिण करच्छेद किया जाता है। राजा के प्रतिशर के सहचर वेतनभागी हैं। सारे देश में न कोई अधिवासी जावहिसा करता है न मद्य पीता है और न नहसुन प्याज खाता है। केवल चाण्डाल मछली मारने मगया करते तथा मास बेचते हैं।

इन विवरणों से यह निष्कर्ष निकलता है कि गुप्ता की छत्र छाया में सम्पूर्ण भारत में 'राम-राज्य' का ही सुख शांति एवं समृद्धि विराजमान था। राजा स्वप्रिय था। प्रजा पर कोई कठोर अक्रुश नहीं रखा जाता था और वह शान्ति साधना में अपना काम लता था। समस्त जनता को अपनी स्वतन्त्रता पालन का पूरा अवसर दिया गया था। प्रजा नागरिकों के कर्तव्यों से पूणतया परिचित था। सद-व्यवहार की भावना से परस्पर सम्बन्ध स्थापित करना वह अपना कर्तव्य समझता था। अपराधी की सख्या काफ़ी कम थी। इस कारण से राजनियमों में भी सरलता थी। देश में सम्पत्ति का अपार भंडार भरा पड़ा हुआ था। राजा प्रजा की सुख सुविधा को अपना प्रथम कर्तव्य समझता था। सामाजिक कामों के लिए वह दिन प्रतिदिन व्यस्त रहता था। निधन-यकिन्या को अन्न प्रदान करना एवं वस्त्रों से परिपूर्ण करना राज्य का कर्तव्य माना जाता था। आजकल का भाँति ही उस समय औपचारिकता में चिकित्सा निःशुल्क का जाता था। दमोदर ताम्रपत्र में हम गुप्ता का शासन-व्यवस्था को बड़ा मध्य रूप दर्शन का प्राप्त होता है। इस प्रकार उच्चकाटि के शासन विधान में गुप्त कालीन जनता सुख शांति से जीवन यापन कर रही थी।

आय संहति के पुनर्बुद्धार का युग—गुप्त नरेश आय संहति के महान पोषक एवं अनुयायी थे। आयें जाति की श्रेष्ठता का उन्हें अभिमान था। उनकी रणा में आय सम्यता का रक्त-द्रुतगति से प्रवाहित हो रहा था। इष्वन्तो विश्वमाम् मूनमत्र के अनुष्ठाता गुप्त सम्राट ही थे। उन्होंने आय संहति के तीन मूल तत्वों के द्वारा आय संहति की स्थापना करने का निश्चय किया था। यह तीन तत्व थे देश भाषा एवं धर्म। इन तीनों तत्वों में आयत्व का रंग था उन्होंने भारत को आय बनाने की दिशा में महान प्रयत्न किया था। उन्होंने स्वदेश-स्वभाषा-एवं स्वधर्म के नारे लगाए थे। स्वदेश से उनका तात्पर्य था भारतवर्ष से। भारत की पूणतया विदेशी जातियों से विभक्त कर पूरे देश में भारतीय शासन व्यवस्था के अनुसार शासन करना उनके

पहले नारे का भाव था। समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भारत में स्थित विदेशी राज्या को नस्तनाबूद कर दिया था। दशकों पूरे रूप से विशुद्ध भारतीय ध्वजा के अन्तर्गत यह इन्होंने 'स्वदेश की अपनी कल्पना का मूल रूप प्रदान किया। स्वभाषा के नार द्वारा वह पुन सस्कृत की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना चाहते थे। बुद्ध एवं महाकाव्या का भाषा का पुनर्स्थापित कर वह आम सस्कृत के इस महत्वपूर्ण तत्व का अपन प्राचीन स्थान पर आर्गोपित करने के इच्छुक थे। अर्थात् के पूर्व महात्मा बुद्ध ने ही सस्कृत की श्रेष्ठता का स्वीकार न कर पाया एवं प्राकृत भाषा के प्रयोग को प्रास्ताविक दिया था। महात्मा बुद्ध के इस पग न दश में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला सगा किया। गुप्त सम्राटों के पहिले तब के सभी नरेशा न पाली एवं प्राकृत में ही अपन अभिलेख लिखवाने प्रारम्भ कर लिए थे। इस प्रकार सस्कृत का परमठिता को यह बड़ा भारी आघात था। गुप्त सम्राटों ने अपनी सस्कृत के इस अनिवाय अग को अवहेलना समझ कर सस्कृत भाषा का राष्ट्र भाषा का स्थान प्रदान किया। उन्होंने सस्कृत के प्रास्ताविक के लिए विविध काय किए। अपनी प्रशस्तियों सस्कृत भाषा में उत्कीर्ण करवाई। मुद्राओं पर भी सस्कृत में छदबद्ध लेख लिखवाए। अपन सरक्षण में सस्कृत भाषा के महान विषया को शरण दा। कानिदास भवमूर्ति आदि इसी युग की उपज है। क्या उपनिषदा महाकाव्या एवं ब्राह्मण ग्रंथों के प्रति सम्मान प्रकट करने वान गुप्त सम्राटों ने इन ग्रन्थों द्वारा प्रतिपादित विचारों को भी मूल रूप में प्रकट करने के लिए अपने अधिकार का उपयोग किया। ब्राह्मण धर्म का ज्ञान महात्मा बुद्ध के उत्थान के पश्चात् स हाना प्रारम्भ हो गया था। वनों के इस धर्म का बाद वान नरेशा न प्रथम भा नही दिया। मनुवाक्या में वर्णित इस धर्म का इस प्रकार राजाधर्म के अभाव में अपन पतन के दिन खतम प गए। ब्राह्मण धर्म के विभिन्न शाखा का प्रतिष्ठापित करने वान गुप्त सम्राटों ने हिन्दू धर्म का भी अपन प्राचीन मन्व्य आचार में उपस्थित करने का निश्चय किया। चन्द्रगुप्तमौर्य अशोक एवं अश्व परवर्ती नरेशों ने हिन्दू धर्म के माय तत्व अवधारण धर्म द्वारा अपना माव भीमिवता प्रकट नही का था। उन्होंने इस प्रकार के अनुष्ठानों का उपयोग की था। बगामधर्म धर्म की व्यवस्था का मा फिर से मजबूत बनाने के लिए उन्होंने ब्राह्मणों का भूयसा दान किया। मचना तथा भूमरा में कद शक एवं वर्णव मंडल का स्थापना कर इन नरेशा ने परम भागवत की अपना उपाधि का सायनता उद्घाटित का। अश्वमध धर्म के अनुसार अपनी सावभौमिकता का प्रकट किया। दिग्विजय का आयोजन किया अथवा प्राचीन ब्राह्मण धर्म के मुख्य तत्वों को पुन स्थापित कर देना म आय सम्पत्ता एवं आय सम्पत्ति का जावस्थानों के पत्र प्रकटनित किया। इस रूप का प्रकाश इतना अधिक प्रसुद्धित हुआ कि आज भी भारत उसी का ववाजीव में चर्चित है।

**साहित्य के धारम विकास का युग**—भारतीय साहित्य को वर्तमान रूप गुप्तकाल में ही प्राप्त हुआ था। वस्तुतः पूर्णतया भारतीय साहित्य गुप्तकाल की दत्त के ही ता अतिप्रोन्नत न होगी। जिन ग्रंथों का मुद्रणान में पूर्व निमाण हुआ था उन्हें इस काल में ही अपना आयत्तिक रूप प्राप्त हुआ था। साहित्य के विभिन्न अंगों में इतनी उत्तमता से और इतनी अप्रत्याशित उत्पत्ति वास्तव में एवं समकाल ही प्रतीत होती है। सस्कृत भाषा न इतनी शाश्वत न क्यों उत्पत्ति का? इसका मा कारण है। साहित्य का विकास तेना संभव हाता है जब दश पूर्णतया विदेशी आक्रमणों में स्थित हो—जो म अधिक समयसा नहीं अति मुसल चर्चा हा। नरेश का साहित्य के प्रति रुचि हा। जहाँ तब प्रथम काल का प्रश्न उठता है वहाँ गुप्तकाल के लिए

यह कथन बग ही उपयुक्त उगता है— शस्त्रेण रगिते राष्ट्रे शास्त्रचिन्ता प्रवृत्तये । समुद्रगुप्त एव चन्द्रगुप्त विजयमदित्य जैसे यौर गम्याते को वा कौन श्रेण गय न कर उडगा। किम जात्रामा की वृद्धि उग पर पर गतनी है। गुप्त गम्याते ने घनवाय मे राष्ट्र को परिपूरित घना किया था। स्वयं मुद्रगुप्त कविता वा गम्याते कहा जाता था। चन्द्रगुप्त के दरवार के नवरत्न तो वात्सुग्यायात्रा त्त में प्रगित हैं। इस प्रकार के अन्तर्गत वात्सविरण को वा किम कवि की कवितागामिनी अपना मोनत शृंगार नग करेगी। ससृत्त के महान्तुम कवि एव भारतीय श्रेणगीयर को भा इमी वात म उत्पन्न होने वा अवसर प्राप्त हुआ था। कविर्तन ग् वात्सवास की कौकित कठी नोमन पत्नवता वा प्रस्फुन्न गुप्त नरेणा की ही छत्र छाया में हुआ था। एक समीक्षक न कालिदास की प्रशसा म कहा है—

Kalidasa is a name which is the magic wand of India in the history of world's poetic literature

कालिदास को कृत्रियां विन्व साहित्य की अमर धरोर हैं। उनके सडकाव्या एवं नाटका वा तुलना म सम्भवत ही कौई अय रचना ठहर पाए। कुमार संभव मेघदूत विक्रमावशा अभिमान शाकुन्तलम् रघुवंश मालविकाग्निमित्र विरवमाहित्य क प्राण हैं। विन्व का समी सम्य भाषाया म इनका अनवा हो चुका है।

हरिषण ने समुद्रगुप्त की कमनीय कौनि क वणन म अपना काव्यकला वा चम त्कार प्रस्तुत किया है। प्रयाग की प्रशस्ति गय पद्यात्मक होने के कारण चम्पूकाव्य का एक मव्य एव प्राचीन आदर्श है। अनकारा की बनकार प्रत्येक रमित्त वा मन माह लती है। प्रशस्तिकार को शली म कालिदास से पर्याप्त समानता दृष्टिगत होती है। वत्समद्रि नामक एक अय प्रशस्तिकार ने मन्सोर अभिलेख द्वारा अपने को अमर बना दिया है। कुमारगुप्त के शासनकाल का कौनि का अभण्य बनाने रवने म इस प्रशस्ति वा अमूल्य स्थान है। इस काय की भाषा बने मंत्री बने ललित है। भाषा सौष्ठव एव अय गौरव वा प्राच्य है।

शूद्रक इस काल क प्रमान नाटककार माने जाते हैं। शूद्रक केवल कवि ही नहीं था बल्कि स्वयं एक नरेण था। इसने मुद्रकटिक की रचना की थी। इस नाटक की कविता बडी ही सुन्दर एव रसपूर्ण है। विशाखत्त भी गुप्तकाल का एक ऐति हासिक नाटककार था। मुराराक्षस को तो कुछ लोग राजनतिक नाटक की मना देत हैं। देवीचन्द्रगुप्तम् इमी नाटककारकी एक अय कृति है। इस नाटक ने प्राचीन भारतीय इतिहास म एक नया पच्छ जोग है।

सुवधु ने ससृत्त म कया साहित्य वा श्रीगणश किया था। वाण ने इमी नेलक सं प्ररणा ग्रहण की थी। वासवत्ता इस महान लेखक की रचना थी। शय एव दृश्य कः य वा वगन करने से हम य प्रनीन होता है कि गुप्तकाल सुवण काल होने क साथ ही साथ सरम युग भी था। सचमुच ही गुप्तकालीन साहित्यिक वातावरण इन कविगुबी की सरस मूत्रिया से रममय तथा स्निग्ध ने गया था। समस्त वायु मडल काश्रमय हो गया था। इन कवि कौकितो की मुम्पुर वाकनी ने तत्कालीन भारतीय काव्यादान म अकाल में नी वमत का प्रादुर्भाव कर लिया था तथा अपनी रसमया कूक सं मत्र को आनन्द प्वालित कर दिया था। अय छोटे छोटे कवियो में चारमेन वागुन रविशान्ति गानगुप्ताचार्य एव मन मेण मामह अमरसिंह आदि थे।



दशम शास्त्र के क्षेत्र में भी गण्यमान विद्वानियों ने गुप्तकाल को सुशोभित किया था। वात्स्यायन ने 'यायभाष्य' की रचना की थी एक उद्योतकर ने 'यायवातिक' को अपनी लेखनीय प्रस्तुति किया था। इन ग्रन्थों में बौद्धों को श्रवणवाद इत्यादि मिथ्याता का बड़ी बृद्धिमत्ता से खंडन किया है। ब्राह्मण-न्याय को प्रतिष्ठा प्रदान करने वाला यहाँ सबसे पहला ग्रन्थ है। मामासा दशम के विषय पर भी गुप्तकाल के समाप्त भाष्य का रचना की गई थी। इस मीमांसा भाष्य के रचयिता शबरस्वामी हैं। यह दाशमिक इस दशम के प्रामाणिक व्याख्याता माने जाते हैं। गुप्तकाल भारतीय दशम के इतिहास में भाष्यकारों का काल है। साह्य दशम में मान्यकारिका तथा भाठरवलि 'यायम वात्स्यायन का 'याय भाष्य और उद्योतकर का वातिक' वैशेषिक दशम में प्रशस्त पाद का भाष्य एवं मीमांसा दशम पर शबर भाष्य भारतीय दशम साहित्य के ऐसे अमूल्य रत्न हैं जिनकी रचना के कारण गुप्ता का यह काल भारतीय दशम साहित्य के इतिहास में अमर रहेगा।

विज्ञान के क्षेत्र में भी गुप्तकाल ने सर्वांगीण उन्नति का। गिल्पशास्त्र ज्योतिष शास्त्र वैद्यक आदि विषयों में युगान्तकारी आविष्कार हुए। मानसार्थ गिल्पशास्त्र का अनाथ लाभदायक ग्रन्थ है। तथापि एक वास्तुकला के विषयों का वषण जितना इसमें उपलब्ध है उतना अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। ज्योतिष के क्षेत्र में आयु मृत् का नाम लोक प्रसिद्ध है। इसमें 'आयुग्रहण' नामक पुस्तक की रचना का था। इस पुस्तक में गणित, कालक्रिया तथा भूगोल का विवरण प्राप्त होता है। पञ्चांग गोल है एक अपनी धुरी पर घलती है इस अनुसंधान का पूण श्रेय इसी विद्वान का है। तल्ल ने इस विद्वान की पुस्तक पर टीका लिखी। बृहस्पतिह्य गुप्त काल का भव प्रमुख ज्योतिषी था। इस विद्वान ने तीन शास्त्रों तन्त्र (गणित) जानक एवं महिषा पर ग्रन्थ रचना का है। इसकी कुछ पुस्तकें इस प्रकार हैं—'तन्त्रजातक' चतुर्जातक विवाह परल यागमाया बह्मसंहिता एक पञ्चसिद्धान्तिका।

गुप्त काल में अथ विज्ञान की भाँति आयुर्वेद शास्त्र ने भी विशेष उन्नति की। नागार्जुन इस युग के महान् अनुसंधान विगणक थे। इन्होंने रस चिकित्सा का आविष्कार किया। सना रजत ताम्र आदि खनिज पदार्थों में भी मनुष्यों के रोगों का निवारण करने का शक्ति विद्यमान है इस आविष्कार मिथ्याता का पता लगा कर आधाप नागार्जुन ने इस शास्त्र में क्रान्ति मी उत्पन्न कर दा। खनिज मद्यप्रमुख पारल का आविष्कार है। इस प्रकार गुप्तकाल में हम विभिन्न अन्वेषण का ज्ञान हाता है।

प्रामाणिक न वाणज्य की परम्परा का फलन करते हुए राजनीतिशास्त्र पर एक अनुपम ग्रन्थ की रचना इस युग में का। यह ग्रन्थ कामन्दक्याय नीतिशास्त्र के नाम से विख्यात है। इस ग्रन्थ का प्रसिद्धि माग्य त्व हा सोमित तन्त्र तन्त्र का चरित्र सुदूरवर्ती बाता दाप में भी उपनिवेश स्थापना वाले भारतीयों ने इस अपना एक प्रघात राजनीति ग्रन्थ माना एवं इस दाप की भासन व्यवस्था के लिए समा में प्ररणा ग्रहण का। इस पुस्तक का अनुवाक 'कवि' मारा में भी चर लिया गया।

कामशास्त्र की प्रसिद्ध पुस्तक 'सायनीयकामशास्त्र' का रचना गुप्त काल ही हुई था। माग्यमा ने जहाँ तक, बर अथ एक घम विज्ञान का बड़े मनासाग में अनुशासन किया था वहाँ मनुष्यों के कल्याण के लिए कामशास्त्र की भा मूम विव धना प्रस्तुत का।

यद्यपि पुराणों का निर्माण काफी पहले हुआ था परन्तु उनका जन्तिम संस्करण

रण गुप्तकाल में ही हुआ। इस प्रकार गुप्त काल में ध्वजायुग की उत्पत्ति का माप धार्मिक साहित्य का भी उत्पाद प्राप्त होता है। गुप्तकाल में कई महत्त्वपूर्ण स्मृतियों की भी रचना की गई थी। याज्ञवल्क्य स्मृति पराशर स्मृति शारंग स्मृति बृहस्पति स्मृति कात्यायन स्मृति इगी वाल का कृतिमां है। जहाँ ब्राह्मण धर्म का विकास इतने गति से हो रहा था वहाँ बौद्ध धर्म का भी तीव्रप्रियता में का विघ्न उत्पन्न हुआ नहीं रहा था। आश्राय मन्वय १ यागाचार सम्प्रदाय की सम्पत्तियों की भी और उहाँने मूत्राचकार मध्यात्त विभग धमधमता विभग महायाग उत्तर-त-य एव अमि समयालकारकारिका नामा प्रया का रचना की। आषाय अगग यागाचार सम्प्रदाय का मान जान शिष्य थे। महायाग सम्परिषद् प्रकरणआर्यायाचा यागाचार भूमि शास्त्र आदि ग्रंथ इसा विद्वान् का रचनी न प्रमू हैं। आश्राय यमुवधु हीनयान एव महायाग दोनो सम्प्रदाया का अनुभवो गुरु थ। दोनो सम्प्रदाया पर कई ग्रंथो का रचना इन्होंने का है। परमाथ सप्तति त्रकशास्त्र अभिधनकाप महापरिनिर्वाण सूत्र टोका विशतिका इमा विद्वान की दन है। शिगनाग का प्रमाण समुच्चय मा एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। आचाय बुद्धघाए न विदुद्ध भाग का रचना थी। इनका अतिरिक्त दजना अय दाणनिका ने इस काल में जपनी प्रतिमा का चमत्कार प्रदर्शित किया था। अतएव साहित्य का प्रत्येक अंग में एक अनुपमता एक अपूर्वता एव पराकाष्ठा का हम दर्शन प्राप्त होते है। वस्तुतः गुप्तकाल न साहित्य काश में एक अलौकिक प्रकाशवान नक्षत्र का उपस्थित किया है जिसका जामा कभी भी मन्द नहीं पड़ सकता।

कला की चरमोन्नति का युग—भारतीय ललित कला के क्षेत्र में गुप्त युग की अद्वितीय देन रही है। गुप्त कलाकारों ने अपनी अनमोल प्रतिभा एवं अनुपम कौशल से एक अभिनव युग का मूत्रपात किया है। भारतीय कला क्षेत्र में एक क्रांति सी उत्पन्न कर दा है। गुप्त कालान भारतीय कला में एक विशिष्टता है एक अपनापन है। सर जान मार्शल (Sir John Marshal) ने भारतीय कला के महत्त्वपूर्ण तत्वों का उन्घोहित करते हुए लिखा है कि इस कला में प्राकृतिक चित्रण सादगी एवं धाराप्रवाह मुख्य रूप से प्राप्त होता है। परंतु गुप्तकालान कला अधिक सुंदर एवं अतिगन्धै कला के निम्न ६ प्रकार होते है—(१) वास्तुकला (२) नक्षत्रकला (३) मण्डपा मूर्तिया (४) चित्रकला (५) संगीत (६) अभिनय।

वास्तुकला के क्षेत्र में गुप्तयुग न पर्याप्त उत्पत्ति की थी। अब भी दजना मंदिरों के उदाहरण उस युग की भव्यता की गवाही दे रहे है। मूमरा का शिवमंदिर नागौर राज्य में जयलपुर इटारमी लाइन पर स्थित है। शय मंदिरों का नाम इस प्रकार है—

नचना नथर का पावती मंदिर—अजयगढ़ राज्य में स्थित है।

लडखान मंदिर—बम्बई प्रांत के बीजापुर जिल में अयहोल स्थान पर स्थित है।

दवग का दशावतार मंदिर—बुंदेलखण्ड का झांसी जिल में स्थित है।

मिटरगाँव मंदिर—बानपुर का समापडटा से निर्मित यह एक विशाल मंदिर है।

तिगवाँ मंदिर—मध्य प्रदेश के तिगवाँ स्थान पर यह मंदिर स्थित है।

तक्षणकला के क्षेत्र में भी गुप्तकाल न परमोन्नति की थी। हिंदू एवं बौद्ध प्रतिमाएँ अपने मुख्य रूप में हमें विभिन्न स्थानों पर दृष्टिगत होती है। कलाकारों ने अपनी निर्भीक छत्री से पाषाण को बाटकर सजीव मूर्ति उत्पन्न कर दी है। नचन एवं मूमरा

म लक्षणकला के सुन्दर आदर्श प्राप्त होते हैं। सारनाथ के सप्रहालय म गुप्तयुगीन एक बुद्ध प्रतिमा है। ऐसा प्रतीत होता है कि स्मित हास करत हुए भगवान बुद्ध कुछ कहने को उत्सुक हैं। कलाविदा न पापाण पर पालिश करन की विचित्र योग्यता प्राप्त की थी। कई प्रतिमाओं पर विशेष रूप से अलंकरण का बाहुल्य प्रकट होता है।

परन्तु गुप्तकाल का स्वर्णयुग क रूप म प्रस्तुत करन वाली ललितकला है चित्र कला। आज भी अजन्ता एक बाघ की चित्रकारी दल कर दशक का चित्त आश्चर्य के मागर म दुबका लगान लगता है। इन समर्पण एव भावव्यञ्जक चित्रा को देखकर गुप्तकालीन चित्रकारों की हस्तकुशलता एव निपुणता प्रकट होती है। श्रामती ग्रेबास्का (Grabowska) न अजन्ता की चित्रकारी क विषय म लिखा है—

'The art of Ajanta is the classical art of India the beauty of the paintings is marvellous and they are the high watermark of Indian painting  
—Ancient India and Civilization

सार्सेस बिनयान (Binyan) ने मा अजन्ता की प्रशंसा म कहा है—

The frescoes of Ajanta have Asia and the history of Asian art the same outstanding significance that the frescoes of Assisi Siena and Florence have for Europe and history of European art Ajanta is the one great surviving monument of the painting created by Buddhist faith and fervour —Ancient Frescoes

एक अग्र विद्वान् के कथन पर भी दृष्टिपात काजिए—

Ajanta is to India what Siena is to Italy for the treasures of the cave galleries might be likened to the mediaeval masterpieces preserved in the Tuscan city. Gabriel fame referred to the science paintings with their golden backgrounds as one long poem of love and the same description applies to the Ajanta frescoes. Indian and Italian artists were content to work disinterestedly. They gave of their best in the cause of the religion free from ulterior motive of self glorification. The frescoes of both Ajanta and Siena teach the virtue of work accomplished in humility unsmirched by strivings after tempestuous novelty.

अजन्ता के चित्रा क विषय विविध हैं। परन्तु भगवान बुद्ध क जीवन म सम्व चित्त चित्रा का प्राचुर्य है। अजन्ता के चित्रा की सुन्दरता ता ममी को पाल है परन्तु १७वीं शता म जा चित्र अंकित है वह चित्रकला की पराजिता का उद्घाटन करता है। कहना एव सहानुभूति का सम्मिश्रण इस चित्र की मुख्य विशेषता है। माता एव पुत्र भगवान बुद्ध की मित्रा प्रदान कर रह हैं। ईयनात् प्रत्येक क अग्र अग्र म टपक सा रहा है। कलाकार की कृतिता न जिस सरलता दीनता एव निर्वेदता का प्रदर्शन किया है वह अनुपम है। ईवल (H vell) न लिखा है—

In its exquisite sentiment comparable with the wonderful madonnas of Giovanni Bellini

एक अथ विद्वान् व शब्द—

The painting suggests the purity of a mediaeval Italian madonna with her bambino ।

एक अथ सुन्दर चित्र राजकीय जुगुग का है। तीमरा चित्र हाथिया वाने जनुम का है।

ग्यालियर राज्य मे वाघ की चित्रकारी भी कम महत्वपूग नहीं है यद्यपि अजन्ता की तुलना म इनका महत्व नगण्य है। इस प्रकार चित्रकला म भारत ने अग्नीय प्रगति की थी। सगान एव अभिनय के क्षेत्र म भी भारत न कम प्रगति नहीं की था। विभिन्न प्रकार का नट्य कलाओ का विकास हो रहा था। नाट्य को अभिनय द्वारा रगमच पर प्रस्तुत किया जाता था। इस प्रकार कला के विभिन्न अंग म गण्टकाल ने महती उन्नति की थी। स्वणयुग की सार्थकता शतप्रतिशत इस पक्ष द्वारा पृष्टि को प्राप्त होनी है।

भारतीय सस्कृति के प्रसार का युग—प्राचीन भारतवासी अपनी सस्कृति एव सम्पत्ता क प्रति जग्म्य उत्साह एव जोश की भावना से परिपूण थ। वे देश देशान्तरा म सस्कृति की विजया को प्राप्त करने के लिए गए थे। उनके उत्कट साहस एव अनवरत परिश्रम का ही यह परिणाम है कि आज भी हमारी सस्कृति की पताका एशिया के बहुत ब मूखड पर लहरा रही है। आज भी यह देश अपने आध्यात्मिक गुरु की ओर निर्देश एव सकेत के लिए निहारा करते हैं। नका इण्डोनेशिया कम्बो डिया चीन कोरिया एव जापान देशा म आज भी हमारी सम्पत्ता के प्रति आदर एव सम्मान का भावना पाई जाती है।

भारत का इन देशो से आदान प्रदान काफी पहिल से ही चल आ रहा था। ईसा पूव की शताग्णियो म ही भारतवासी अपनी अपूव विजयो को इन देशा की जनता के हृदया पर प्राप्त करने क लिए उमूख हुए थ। इसका उल्लख रामायण तथा पुराणो म प्राप्त होता है। भारतीय सस्कृति के प्रसार के पूव इन देशा का सीमा यापार हाता था। धीरे धीरे इन यापारियो ने अपने निवास स्थान इन विदेशीय क्षेत्रो पर बनाए और इस प्रकार भारतीय सस्कृति के सम्पक मे यहाँ के मूल निवासी जाण जीर उहोने इस सस्कृति की श्रष्ठता को स्वीकार कर उसका आनिगन किया।

गुप्तकाल मे विशेष रूप स इन विदेशा से अधिक सम्बन्ध बडा। इसका कारण स्पष्ट है। भारतवासियो ने इन दूरस्थ देशो के निवासियो को अपनी सस्कृति के रग के पूणतया सराबोर कर दिया। कबिवर कानिदास को भी इन द्वीप समूहो का ज्ञान था। प्रयाग प्रशस्ति में गुप्त सम्राट समुग्ुप्त को सावभौमिकता के विस्तार का उल्लेख इन द्वीपो पर भी किया गया है। इसम यह स्पष्ट ध्वनिन होता है कि बहतर की कल्पना गुप्तकाल म ही मूत हुई थी। इस प्रकार समस्त प्रमाणो के आधार पर यह सिद्धात स्थिर करना उचिन है कि बहतर भारत म भारतीय सस्कृति का विस्तार अधिकतर गुप्तकाल म ही हुआ था। इस प्रकार गुप्तकाल सस्कृति के प्रसार क लिए भा भारत का स्वण युग कहा जायगा।

निष्पत्त—हमने देखा कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गुप्तकाल ने अभूतपूर्व प्रगति की थी। इसी स्रवतोमूली एव सर्वाङ्गीण उन्नति के कारण ही गण्टकाल स्वणयुग के

सम से पुकारा जाता है। विद्वत् में अब भी कुछ उगाहरण हैं जब कि किसी दश ने श्रेणीय उन्नति की दिशा में पग बढ़ाए थे; दो युगा से गुप्तकाल की कमी-बना तुलना की जाती है। यह दो युग हैं—'पेरिक्लीयन युग' (Periclean Age) तथा 'एण्टोनाइस युग' (Age of the Antonines)। अब हम विस्तार से इन दो युगों के विषय में कुछ बताने का प्रयास करेंगे जिससे हमारी समीक्षा समीचीन हो जाए।

यूनान में पंचम शताब्दी ईसा पूर्व पेरिक्लीज (Pericles) नाम का एक राज नीतिज्ञ हुआ है। उसकी सुयोग्य मुशासन नीति का ही परिणाम था कि यूनान उस में साहित्य एवं कला के क्षेत्र में अग्रिम प्रगति हुई। 'युगांतकारी मानविकारों' मनी दिया, दार्शनिक एवं कलाकारों में परिपूर्ण एथेन्स (Athens) नगर यूरोप का प्रेरणा बिंदु बन गया। साहित्य प्रेमिया का ऐसा उत्पन्न इस काम की देवने की मितता है। इसी एक पक्ष का लेकर ही पेरिक्लीयन युग यूनानी सभ्यता का स्वर्णयुग स्थापित किया जाता है। इसी स्वर्णयुग से इतिहासकार गुप्तकाल की तुलना करते हैं। बार्नेट (Barnett) ने तभी से कहा है—

Gupta period is in the annals of classical India almost what Periclean age is in the History of Greece

परन्तु बार्नेट तथा अन्य लोगों का यह तुलना युक्तिमयत नही प्रतीत होती। मकम प्रथम बात यह है कि गुप्तकाल ने प्रत्येक क्षेत्र में जोड़े वह काम का ही साहित्य का ही शासन व्यवस्था का ही राजनैतिक एकात्मता का ही प्रतापी नरेशों का ही धार्मिक सहायता का ही जनता की सुख समृद्धि का ही सभ्यता के पुनरुद्धार एवं प्रसार का ही—अमूल्य प्रगति की थी। परन्तु पेरिक्लीयन युग की उन्नति एकांगी थी। हमन केवल साहित्य एवं कला के क्षेत्र में ही चरमोत्कर्ष विकास-प्रकट किया था। दूसरी बात यह है कि यूनानी राज्य मित्ति 'सिटी स्टेट्स' (City states) थे। प्रत्येक नगर अपने में ही पूरा सबप्रभुत्व सम्पन्न राज्य थे। अतएव इन छोटे-छोटे नगरों में मुशासन की व्यवस्था करना कोई कठिन कार्य न था। इन राज्यों की सर्वांगीण उन्नति की दिशा में छोटे से ही उत्थम से जनोपजनक निर्णय प्राप्त किया जा सकता था। परन्तु गुप्त साम्राज्य एक विमान साम्राज्य था जिसे एकता की टारी में बंधना भी एक अद्वितीय योग्यता का कार्य था। गुप्त सम्राटों ने अपनी इसी प्रतिभा के वन-भूते पर पूरे भारत को एकछत्र के अधीन रखा था। पेरिक्लीयन युग में शासक का यह गुण हम दुर्लभ गौरव न था होता। यूनानियों में एक व्यक्तियों की मर्यादा भी पयान थी जिन्हें नाम माना जाता था। इन दारों का नागरिकों के अधिकारों से गुण बंधित रखा गया था। यूनान जम उच्च सभ्यता सम्पन्न देश में ऐसी असम्भव व्यवस्था का रचना स्वर्णयुग की उपरल्पना की निरवयवता का ही साक्ष्य बनता है। भारतवर्ष में श्री गुप्त काल में ठीक प्रथा का नामोनिपात भी नहीं था। मानवजाति में इस प्रकार विभेद की दोषांत गदा करवाई राष्ट्र संभल न था कहा जा सकता। पेरिक्लीज ने जिन नगर शासन-व्यवस्था का सुव्यवस्था किया था वह बस उन्नी के जीवन पान तथा ही स्थायी रहा और इस महान सभ्यताओं की मृत्यु के अनन्तर में व्यवस्था भी विध्वंसित हो गई। गुप्तकाल में समुदाय तथा सत्सत्त्व द्वितीय ने जिन भवन की आधार शिना रखा थी वह नवन शताब्दियों तक प्रकृति की चरता का बिरहीत भा स्थायी रूप में स्थिर रहा। अतः गुप्तयुग में साहित्य एवं कला के क्षेत्र में भी जितना उन्नति की थी उतनी उन्नति पेरिक्लीयन युग में नहीं कर सका था। इस प्रकार प्रत्येक दुर्लभ

से विवक्षित करने पर हम इस निष्पत्ति को पटवते हैं कि गुप्तकाल पेरिक्लीयन युग से प्रत्येक पक्ष में बढ़चढ़ कर था। अतएव यह तुलना तर्कसंगत नहीं प्रतीत होती है।

कुछ इतिहासकारों ने गुप्तयुग की समता एण्टोनाइस युग (Age of the Antonines) से की है। इस समता का मुख्य तर्क यही है कि रोम के इतिहास में एण्टोनाइस नरेशों का युग सुवर्णयुग माना जाता है। अतएव (सुवर्णयुग) की समता सुवर्णयुग से उचित ही प्रतीत होती है। परन्तु इतिहास के पट्टे उन्नत कर ही हम यथाय स्थिति से अवगत हो सकते हैं। ईसा की प्रथम एवं तृतीय शताब्दी में लगभग ५ नरेशों ने अपनी प्रजासत्तिकाएँ एवं कुशासन नैतृत्व से रोम के इतिहास में अपना अपूर्व स्थान बना लिया था। प्रजा का सत्तान्वित समर्थन एवं शासन सुधार का परम्परा स्थापित रखना इनका मुख्य बलव्य था। मात्र स और लियस इस पक्ष में सर्वप्रसिद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ सम्राट् थे। इसकी दार्शनिकता इतिहास प्रसिद्ध है। शासन की मुख्य बलव्यता के क्षेत्र में भी इसका पर्याप्त योगदान है। परन्तु यह तथ्यावयवित राम इतिहास का सुवर्णयुग वास्तव में सुवर्णयुग का मना से सुशासित होने योग्य नहीं है। प्रजा का सुख समृद्धि ही सुवर्णयुग का सबसे बड़ा मापदण्ड होता है। जिस युग में प्रजा सुख एवं शान्ति से अपना जीवन निवाह नही कर सकती वह युग सर्वाङ्गीण विकास का युग कस कहा जा सकता है। इन एण्टोनाइस नरेशों के अधीन प्लावियन लोगों के साथ दासता जसा व्यवहार किया जाता था। उन्हें किसी प्रकार के नागरिक एवं राजनतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। फलतः यही ही नहीं बल्कि इस युग में धार्मिक सहिष्णुता का भी अभाव था। ईसाइया के ऊपर नाना अत्याचार के उदाहरण हम परिशिष्टों में पाते हैं। जिस युग में धर्म का व्यक्तिगत बात न मान कर राज्य की बात माना जायगा वहा धर्मों में परस्पर द्वेष की भावना का होना स्वाभाविक ही है। गुप्तकाल की धार्मिक सहिष्णुता तो अनुकरणीय एवं उदात्तरण की बात है। अतः इन अभावों से युक्त एण्टोनाइस युग की तुलना गुप्तयुग में किसी भी रूप में नहीं की जा सकती।

इस प्रकार गुप्तकाल विश्व के इतिहास में अनपम एवं अद्वितीय है। इस चरमोत्थप पराकाष्ठा का सानो विश्व का कोई अन्य काल नहीं हो सकता। श्री अरविन्द ने Vision of India में उचित ही लिखा है—

Never in her history has India seen such a many sided blossoming of her force of life

अतः मन्विराज धार्या के शब्दों का परिवर्तित कर ईश्वर से यह विनम्र निवेदन करत है—

यावच्छम्भुवर्हति गिरिजासविभक्त शरीर  
यावज्जत्र बलमति धनु कौसुम पुष्पवेतु  
यावत् राधारमण तरुणाकलिसाक्षा कम्ब—  
स्तावज्जायात जगतिविमला गुप्तवशस्य कीर्ति ।

यदि गुप्त नरेशों का उत्तर भारत में गौरवपूर्ण एवं आदरणीय स्थान था तो सम्पूर्ण मध्य प्रदेश बरार एवं अधिकांश भारत में वाकाटकों का महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। प्रो० डबल के शब्दों में दक्षिण के उन समस्त राजवंशों में जिन्होंने तीसरी शताब्दी ई० से छठी शताब्दी ई० तक राज्य किया सबसे अधिक गौरवपूर्ण एवं आदरणीय स्थान का पात्र तथा सब में अद्वितीय तथा सम्पूर्ण दक्षिण के राज्यों में श्रेष्ठतम सम्प्रदायवाला निश्चय ही वाकाटकों का यशस्वी राजवंश था।<sup>१</sup>

**कुल—**वाकाटकों का कुल के सम्बन्ध में विचार कर रना आवश्यक है। वाकाटकों का राजवंश के संस्थापक विष्णुशक्ति का कानिक्विन नामक एक जाति का शासन माना गया है।<sup>२</sup> विष्णु पुराण में कानिक्विन नरेशों की गणना वना में की है।<sup>३</sup> किन्तु श्रेष्ठ पाठ एवं अगुद विष्णुशक्ति का कारण ही मूल में विष्णुशक्ति का यवन तथा यूनानी जाति का माना गया था। वास्तव में वाकाटकों का हाथ जाति के थे। अजिता (पांडवों का भाई) के लक्ष का सम्पादन करत हुए श्रीरामों महोदय ने यह बताया है कि विष्णुशक्ति एक 'दिन' में और वे विष्णु मद्र मात्र के थे।

**मूल स्थान—**वाकाटकों के मूल स्थान के सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों का मत है कि चालुक्य म विजयनगर बगाट ग्राम में इनका मूल निवास-स्थान था।<sup>४</sup> यह बहुत सम्भव है कि बगाट अथवा बकाट ग्राम के निवासियों ने वाकाटकों का धारण कर लिया हो किन्तु विजयनगर-बगाट क्षेत्र के वाकाटकों से इन दक्षिण के वाकाटकों का क्या सम्बन्ध था यह अभी तक पता नहीं है। अथवा वर्तों (आंध्र देश) के तीसरी शती के एक अभिलेख में एक वाकाटकों यात्री के स्थानीय स्वरूप के दर्शनाय आने का उल्लेख किया गया है जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि जिस ग्राम से वह यात्री आया होगा वह विष्णु परत के उत्तर की अपना दक्षिण में स्थित रहा होगा। प्रो० मीरिंग भी वाकाटकों की दक्षिणालय उत्पत्ति का समर्थन करत हैं जब तक कि कोई विश्वमनाय प्रमाण नहीं प्राप्त हो जाता इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयपूर्वक कहना कठिन है।

**विष्णुशक्ति—**समा कि पहले ही बताया जा चुका है वाकाटकों वंश का प्रथम शासक विष्णुशक्ति था। वाकाटकों का मूल निवास-स्थान था जहाँ भी रहा हो पर इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि प्रारम्भ में उनका अस्तित्व वर्तों

<sup>१</sup> प्रो० डबल, *Ancient History of the Deccan* p. 71

<sup>२</sup> "तत कानिक्विन्स्यद्रव विष्णुशक्तिमविष्णुति। समा धराणवति शासक चम्बो तु समेष्पिते।"—वायु तथा ब्रह्माण्ड पुराण।

<sup>३</sup> विष्णुशक्तिप्रवृत्तिलिखिता यवना भूपतयो भविष्णुति।—*Dynasties of the Kols Age* p. 49

<sup>४</sup> *H I J* pp. 66-68

खण्ड या आन्ध्र में न रह कर पश्चिमी मध्य प्रदेश में स्थापित था।<sup>१</sup> पुराणों में विन्ध्यशक्ति का उक्त वंश का संस्थापक तथा विदिशा (आधुनिक मिसौर) और पुरिक (विदम्ब या आधुनिक बरार से सम्बद्ध) का शासक बताया है।<sup>२</sup> विन्ध्य का वास्तु सीमा पर अपनी शक्ति प्रतिष्ठापित करने का कारण ही सम्भवतः उक्त विन्ध्यशक्ति का उपाधि प्राप्त हुई और यह उसका यास्तविक नाम था। इस विशेषतः न किंस प्रकार अपनी सत्ता स्थापित का इसकी सूचना अभी अधिकार में है। सम्भवतः उसका पूर्वज सातवाहन वंश का अधान बरार का सायाधिकारी था और सातवाहनों के पतन के पश्चात् विन्ध्य का उस पार तक अपनी सत्ता स्थापित करने में सर्वप्रथम विन्ध्यशक्ति का सफल हो सका।

जजन्ता अभिलेख में इसका पर्याप्त प्रमाण ही गई है। उसकी मुद्रा इन्द्र तथा विष्णु से भी गई है (पुरंदरापदसमप्रमाण)। यह भी कहा जाता है कि उसके पास अश्वाराहिया की एक विशाल सेना थी जिससे उसने शत्रुओं को पराजित किया था।<sup>३</sup> किंतु अल्लकर महादय इस पक्ष में नहीं है कि युद्ध द्वारा उसने अपना सत्ता स्थापित की थी।<sup>४</sup> इसका राज्य काल २५५ से २७५ ई० तक रहा।

प्रवरसेन प्रथम—विन्ध्यशक्ति के पश्चात् उसका पुत्र प्रवरसेन प्रथम जिस सम्राट् का उपाधि प्रदान की गई है, २७५ ई० में सिंहासनाारुह हुआ। इसका प्रवृत्त शक्ति का परिचय पुराण दत्त हैं और उनसे यह ज्ञात होता है कि इसने साम्राज्य का विस्तार करने के चार अभियान किये। किंतु इसकी रण यात्रा का विवरण अप्राप्य है। उसका प्रपात्र रद्रसेन प्रथम (जो उसका उत्तराधिकारी हुआ) मध्यप्रदेश का एक बड़ा भाग पर राज्य करता था। उसका एक पुत्र सबसेन दक्षिण बरार तथा निजाम राज्य के उत्तर पश्चिम भाग का अधिकारी था। पुराणों के अनुसार उसका दाय्य पुत्र मांय जो उपराज्य स्थापना के इतर कहीं शासन करता था। इन सार आशय से यह ज्ञान हाता है कि प्रवरसेन ने एक विस्तृत साम्राज्य का निर्माण कर लिया था। चार अश्वमेध यज्ञों के सम्पादन से यह ध्वनित होता है उसने चार सफल रण अभियान किये थे जिनके फलस्वरूप उसने विशाल साम्राज्य का निर्माण किया।

साम्राज्य निर्माण के साथ ही उसने दूसरा महत्वपूर्ण कार्य यह किया कि अपने पुत्र गौतमीपुत्र का यह उसने शक्तिशाली भार्याश्व-नरेण भवनाग की पुत्री से कर दिया जिससे उसका स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई। प्रवरसेन प्रथम के चार पुत्रों उत्तल पुराणों में किया गया है। ज्येष्ठ गौतमी पुत्र तथा दूसरा सबसेन था जिसने

<sup>१</sup> देखिये *Yakataka Gupta Age* p 96

<sup>२</sup> विन्ध्यशक्तिसुतश्चापि प्रवीरो नाम वीरवान् । भोक्षन्ती च समापट्टि पुरीकर्क चणकाद्रुच य ॥

<sup>३</sup> से० इ०, पृष्ठ ४२६-२७ ।

<sup>४</sup> The districts annexed by Vindhyasakti were mostly a kind of no man's land at that time and the exhaustion of the patrimony was probably achieved more by diplomacy than by force *Yakataka Gupta Age* p 97



वाकाटका की दूसरी शाखा का निर्माण बसाम (दक्षिण वरार) म किया जो मूल शाखा के साथ माय ५२५ इ० तक चलता रहा।

**रद्रसन प्रथम**—प्रवरसन प्रथम के ज्येष्ठ पुत्र गौतमीपुत्र का मत्यु पिता के सम्मुख हा हा चुका था। अतः प्रवरसन प्रथम के पश्चात् उसका पीन रद्रसन प्रथम शासक हुआ। कृत्वि वह भारशिव-नरेश भवनाग का दाहित्र था अतः उस अपनी स्थिति धुंरु करन म भारशिवो स पयाप्त सहायता प्राप्त हुई। कुछ विद्वान प्रयाग प्रशान्ति के रद्रव का समता इस रद्रसन स करत हैं कि तु, जसा कि पिठन पठा म यया स्थान बताया गया है, इन दाना म काइ समता नहीं है। अतः काशाश्री के युद्ध म समुद्रगुप्त द्वारा रद्रसन के भार जान का मा स्वाकार नहीं किया जा सकता है।<sup>१</sup>

रद्रसन के तान चाचा प जसा कि बताया जा चुका है। इन्होंने अपना-अपना पुषक राय स्थापित कर लिया था। य अपथाहत अधिक अनुमवी थे अतः इन्होंने सम्भवत रद्रसन का पदच्युत करन का प्रयास किया हुआ जिनका सामना उसन भव नाग का सहायता स किया और एसा अनुमान किया जाता है कि रद्रसेन से पराजित हान के कारण हा दा चाचाया का राज्य समाप्त हो गया केवन एक का बसाम शाखा का राजकुल सबसन के अघान चलता रहा। किन्तु इस पारस्परिक संधय से वाका टका का प्रधान शाखा का मा स्थिति दुबलहा गई जिससे सीमावर्ती भागा के अघानस्थ शासका का स्वतंत्र हान का अवसर प्राप्त हुआ गया। किन्तु रद्रसन ने स्थिति पर पुन वावू पा लिया और उसन वाकाटक सक्ति का पुनर्जीवन प्रदान किया। वह ५६० ई० तक राय करता रहा और अपन पितामह का चार भागा म राय विभाजन का मूला के पत्रस्वरूप उत्तर आपत्तिया का सामना करके पूर्वप्रतिष्ठा को बनाय रखन म सन्न हुआ।

**पृथ्वीपण प्रथम**—रद्रसन प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र पद्मारेण ३६० इ० म सिंहासन पर बैठा। बसाम शाखा म उसका समकालीन भवमन का पुत्र विष्णुमन था। इन दाना शाखा (प्रधान शाखा तथा बर्मा शाखा) म इस समय सुत्तर पारस्परिक सम्बन्ध था। बसाम शाखा का कुछ प्रधानता प्रधान शाखा पर आनामिन हाता है। कुछ विद्वानाने पृथ्वापण द्वारा कुत्तल का दक्षिणा महाराष्ट्र को विजित करके उस वाकाटक साम्राज्य म सम्मिलित कर लन का अनुमान लगाया है किन्तु जजना (पादग गृहा) लख के परिवर्तित पाठ के आधार पर अब यह निष्कर्ष निराता गया है कि पृथ्वापण ने नहा प्रत्युत बसाम शाखा के विष्णुमन ने यह विजय की था हा यह सम्भव है कि पृथ्वापण ने इस युद्ध म पराजित सहयोग लिया हो और तभी हरिषेण प्रशान्ति म उस कुत्तरन का उपाधि दा गई है। कुत्तल नरेग सम्भवत कदम्ब शासन के गवमन था यह मा सम्भव है कि वह छा घनी म राष्ट्रकूट राजा अनिर्य का पूजन था जा घातापुर जिले का राय करता था। नपत्र-भण्ड के दा अनिर्य यह गात्र हाता है कि ब्याघ्रराज नामक किमी स्थानाय राजा न पृथ्वापण का स्वा य यह गात्र हाता है कि ब्याघ्रराज नामक किमी स्थानाय राजा न पृथ्वापण का स्वा मित्व स्वीकार किया था। यदि हम अमिलता के ब्याघ्रराजा को उच्चकन्य नामक ब्याघ्रराजा मानें जैसा कि मुक्तिवन्दन नहा है, ता पृथ्वापण म अनिराय पृथ्वीपण

<sup>१</sup> Gupta Falatala Age pp 103 104  
<sup>२</sup> Gany inscription CH III No 54 Vachne & Talas inscrip-  
tion F I LVII Quoted by Dr A S Altekar

द्वितीय स होगा किन्तु ऐसा स्वीकार करने में कुछ बाधाएँ हैं अतः यहाँ पृथ्वीपण का जन्मप्रायः पृथ्वीपण प्रथम स ही है।

इन प्रमाणा से यह परिनिहित होता है कि पृथ्वीपण प्रथम से बहुत ही मन्त्रपूर्ण स्थान बना लिया था और तभी गुप्त सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय ने उसके पुत्र समन (द्वितीय) से अपनी पुत्री प्रभावती गुप्ता का ब्याह करने का निश्चय किया जो सम्भवतः ३८० ई० में पाटलिपुत्र में सम्पन्न हुआ। २५ वर्षों तक राज्य करने के पश्चात् ३८५ ई० में पृथ्वीपण प्रथम का देहावसान हुआ।

उद्भसन द्वितीय—पृथ्वीपण प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र समन द्वितीय मिहानगा हुआ। इस पर इसके स्वगुरु चन्द्रगुप्त द्वितीय का बहुत प्रभाव था जिसका प्रमाण यह है कि इसने अपने पूर्वजा के शव धर्म का त्याग करके चन्द्रगुप्त द्वितीय के दृष्टव्य धर्म का स्वीकार कर लिया। इसके राज्य काल में राज्य समृद्धिसम्पन्न था। चन्द्रगुप्त द्वितीय की जसा कि हम पता चूक हैं पूर्वी क्षत्रपों का पराजित करने का याजना थी और इसीलिए उसने उद्भसन द्वितीय को अपनी पुत्री प्रभावती मंगायी। उद्भसन साहसा और वार पुरुष था और यह बहुत कुछ सम्भव था कि वह अपने स्वगुरु के इस अनियोग में याग देता पर दुर्भाग्यवश ३९० ई० में उसकी अप्रत्याशित अकाल मृत्यु (३० वर्ष की अवस्था में) हो गई।

प्रभावती गुप्ता—सरक्षिका—पति की अकाल मृत्यु के समय प्रभावती गुप्ता के दो बालक दिवाकरसेन तथा दामास्तरसेन थे जिनकी आयु क्रमशः पाँच और दो वर्ष थी। अतः अपने पिता चन्द्रगुप्त द्वितीय का पूरा सक्रिय सहयोग प्राप्त कर प्रभावती गुप्ता दिवाकरसेन की सरक्षिका के रूप में राज्य करने लगी। इतने महान सम्राट् का माग प्राप्त करने से प्रभावती गुप्ता की किसी प्रकार का सशय न रह गया। यहाँ तक कि बेसीम शाखा का समसामयिक शासक विध्यशक्ति द्वितीय जिसके हत्यारण में एकमात्र वाकाटक पुरुष नरेश होने के कारण दिवाकरसेन का सरदाक बनने का इच्छा ही उठा होगी प्रभावती गुप्ता से किसी प्रकार का मनोमालिन्य न प्रकट कर सका और वह उसका शुभचिन्तक ही बना रहा। इसके शासनकाल में ही चन्द्रगुप्त द्वितीय ने गुजरात तथा काठियावाड़ को विजित किया जिससे प्रभावती गुप्ता का सक्रिय महयोग रहा होगा। कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त ने प्रभावती गुप्ता को केवल शासन सम्बन्धी सहयोग ही नहीं दिया परन्तु उसने राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा की

नामक नई राजधानी की स्थापना का जो सम्भवतः वर्षा जिले में पवनार था। प्रवर सेन के लगभग एक दर्जन नामधर प्राप्त होते हैं जिनमें किसी प्रकार के रण-अभियान का उल्लेख नहीं किया गया है। ऐसे माध्या के आधार पर यह अनुमान किया जाता है कि अमरावती, वधा, बटुला छिदवाडा नागपुर, मण्डारा तथा बोलाघाट और मध्य प्रदेश का अधिकांश प्रक्रमेण द्वितीय के शासनाधीन था। उर्वर बेमाम शाखा के अधीन दक्षिणी बराह उत्तर पश्चिमी हैदराबाद तथा दक्षिणी महाराष्ट्र थे। प्रधान शाखा में प्रक्रमेण द्वितीय था तो बेमीम शाखा में भी इसी नाम का इमका समसामयिक प्रवरसेन द्वितीय राज्य करता था।

६३० ई० में प्रवरसेन अपने पुत्र नरद्रसेन का ब्याह कुन्तल-नरेश का पुत्रा अजित भट्टारिका से कर दिया। इस राजकुमारा के कुल का पूर्ववाप न हान के कारण इतिहासकारों ने ऐसा अनुमान लगाया है कि यह सम्भवतः बद्रम्ब शासक बाकुण्ठवर्धन की पुत्री थी। लगभग ३० वर्षों तक राज्य करने के पश्चात् ४४० ई० में प्रवरसेन की मृत्यु हो गई।

नरद्रसेन—कुछ विद्वानों का ऐसा अनुमान है कि प्रवरसेन द्वितीय के पश्चात् उत्तराधिकार का युद्ध हुआ जिसमें नरद्रसेन को सफलता प्राप्त हुई किन्तु यह तब मगत नहीं है क्योंकि अजना (पाठश गुफा) लेख का पूर्व पाठ, जिनके आधार पर उक्त अनुमान लगाया गया था, अब परिवर्तित रूप में पढ़ा गया है और इसमें यह ज्ञान होता है कि यह उपल-मुयल बेमीम शाखा में हुई होगी।

बन्तर के शासक नल-नरेश मवदत्त वर्धन ने नरद्रसेन पर आक्रमण किया और उसने उसका राज्य में प्रवेश करके कुछ जिले छीन लिये। सम्भवतः ४४५ ई० में उसने यह विजय प्राप्त हुई थी। किन्तु शीघ्र ही मवदत्तवर्धन की मृत्यु के पश्चात् नरद्रसेन ने उसका उत्तराधिकारी अधिपति का युद्ध में पराजित कर लिया और इस प्रकार वाकाटक राज्य का नवीन तारा अधिवृत्त भाग पुनः द्रसेन के हाथ में आ गया। सम्भवतः नवीन के राज्य के कुछ भाग पर भी इमका अधिकांश हो गया होगा। इन मघयों में इस बद्रम्ब-नरेश का भाग अवश्य प्राप्त हुआ होगा। नरद्रसेन के पुत्र के अभिलेख में उस मानवा का स्थायी बनाया गया है किन्तु यह मरत नहीं है। सम्भव है राजनीति की धारा के अनुसार मानवा ने कुछ बातें के लिये यह स्थावर कर लिया हो पर शीघ्र ही वे स्वल्प के हाथ में आ जाते हैं। इसी प्रकार मकन तथा काणन पर भी नरद्रसेन के स्वामित्व का उल्लेख उक्त पुत्र के अभिलेख में किया गया है। यदि द्रसेन द्वारा नला की पराजय मघ है तो उपराज्य लग की सूचना भी मगत है।

बेमीम भागा के गुप्तर सम्बन्ध बनाये हुए तथा राज्य-नामा में अभिवृद्धि करके द्रसेन ने कुन में अच्छी स्थिति प्राप्त कर ली। ६०० ई० में उक्त भागागत समाप्त हो गया और उक्त पुत्र पुश्चापण द्वितीय गद्दी पर बना।

१। B O B I I "III H I J pp 100 ff

२ दक्षिण । *India Carya* p. 116 ff

३ नला की पराजित करके निष्पत्ति ही वाकाटका में अपना स्थान महारथपुत्र बना लिया था और एही महारथपुत्र में माल्या का उक्त भागा स्थायी स्थावर कर तथा शासक का भात नहीं।

पध्यापण त्तीय—पृथ्वीपण का समकालीन बर्तमान शाखा म किलासप्रिय दवसन था। इन दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध अज्ञेय था। पृथ्वीपण का वातावरण अतः स यह माना जाता है कि उस अपने कुल का भविष्य का दा वार रखा करनी पड़ा था गम्भिर प्रथम बार अपने पिता का साथ नया का निष्क्रमण का समय तथा त्तीय बार दीर्घी गुजरात का श्रेष्ठक शासक धारसन का आक्रमण से राज्य का रखा करण।

इसका शासन काल सम्भवतः ४८० ई० तक रहा और अंत में राज्यसत्ता समक किये पुत्र का हाथ में न जाकर बर्सीम शाखा का महिषेण का हाथ में गए जिस अजन्त-रत्न म कुतन अवति नाट बोशन कलिय तथा आंध्र देश का विजता कहा गया है।

### वेसीम शाखा का संक्षिप्त परिचय

इस शाखा का निमाण जसा कि प्रारम्भ म कहा गया है ३३० ई० म प्रवरसन प्रथम का पुत्र सवसन न किया था। ५० ई० म इसका शासन-काल समाप्त हो गया। तत्पश्चात् उसका पुत्र विजयशक्ति द्वितीय सिंहासनारूढ हुआ। उसने ५० वर्षों तक राज्य किया। इसने कुतल विजय का। उसके बाद ४० ई० म उसका पुत्र प्रवरसन द्वितीय सिंहासनारूढ हुआ जिसने १५ वर्षों तक राज्य किया। तत्पश्चात् प्रवरसन द्वितीय का ८ वर्षों पुत्र उत्तराधिकारी हुआ जिसका नाम अजन्ता लक्ष म नहा दिया गया है। सम्भवतः प्रधान शाखा का प्रवरसन द्वितीय इसके संरक्षक का रूप म वसाम शाखा पर भा राज्य करता रहा होगा। प्री होने का पश्चात् प्रवरसन द्वितीय न उस उसका राज्य न दिया और उसने ४५५ ई० तक राज्य किया। इस अजातनामा शासक का पुत्र सवसन ४५५ ई० म हा गद्दी पर बठा जिसने ४७५ ई० तक शान्ति पूर्वक राज्य किया। देवसन के पश्चात् उसका पुत्र हरिषेण सिंहासनारूढ हुआ जिसने ५१ ई० तक राज्य किया। वसाम शाखा का यह सर्वशक्तिमान शासक था। प्रधान शाखा का अन्तिम शासक पध्यापण द्वितीय की मृत्यु का पश्चात् (सम्भवतः पुत्र का अभाव म (या यदि कोई रहा मा हो तो उस गद्दी से उतारकर) हरिषेण न प्रधान शाखा का भी अपने राज्य म सम्मिलित कर लिया। उसने अपने राज्य का और भी विस्तार दिया जसा कि ऊपर निया जा चुका है।

हरिषेण का अन्तिम शासन काल तक वाकाटक शक्ति काफी प्रबल ही चुका था और यह चरमोन्नत अवस्था पर था। सम्पूर्ण हैदराबाद राज्य मन्वद, महाराष्ट्र वरार तथा मध्य प्रदेश का अधिकांश भाग इसके अन्तर्गत था और उत्तरा काञ्च गुजरात मानवा छत्तासा तथा आंध्र प्रदेश इसकी सत्ता का प्रभाव म था।

हरिषेण का पश्चात् वाकाटक राज्य इतिहास का रगमच से लुप्त हो जाता है। निश्चित कारणों का वाइ नान प्राप्त नहा है। सम्भवतः उत्तराधिकारियों का अभाव अथवा दुबल उत्तराधिकारियों का हाना हा इसका प्रमुख कारण रहा होगा। मालवा तथा मध्य प्रांत म इसा समय कुछ कान का लिय यशाधमन का शक्ति बढ गई थी और बहुत सम्भावना है कि उसने वाकाटकों का उत्तरा जिला पर अधिकार स्थापित कर लिया होगा। सम्भवतः कनाटक का कदम्ब उत्तरा महाराष्ट्र का कल्चुरि तथा बस्तर का नया न मा सांग्याय को दुबल पाकर अपनी स्वतंत्रता धापित कर दी थी। अन्त म कनाटक का नये राजवंश चालुक्या न इन छोटे छोटे राज्यों का अंत करके इनके राज्य का अपहरण कर लिया।

# १५ | गुप्त साम्राज्य के पश्चात् से लेकर हर्ष के उत्थान के पूर्व का भारत

गुप्ता के साम्राज्य के घराशाही हो जाने पर उत्तरी भारत में पुनः एक बार राजनीतिक विखंडाकरण की प्रवृत्ति प्रधान हो गई। हम यह कह चुके हैं कि स्कंद-गुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य का शक्ति और प्रविष्टा कम होने लगी और प्रान्तीय राज्य अपना स्वतंत्रता की उदघोषणा करने की प्रतीक्षा में बैठे थे। स्कंदगुप्त के मरने ही साम्राज्य के एक प्रान्त सुराष्ट्र में मगधकान्त प्राम गुप्ता के विरुद्ध विद्रोह करने अपनी स्वायत्तता घोषित करे। यद्यपि जैसा कि हम पाछ कह चुके हैं स्कंदगुप्त के बाद के गुप्त सम्राटों ने अपने बंधु की गरिमा का लौटाने का प्रयत्न किया तथापि विघटनारम्भ प्रवृत्ति का दबाया नहीं जा सका और देश में विभिन्न राजवंशों का स्थापना हो गई। इन राजवंशों में जिन राज्यों पर अपना आधिपत्य स्थापित किया उनमें से अधिकांश गुप्त साम्राज्य के ही भाग थे। गुप्त साम्राज्य के ध्वंसावशेष पर जिन राज्यों और राजवंशों का स्थापना हुई उनमें से उल्लेखनीय हैं—(१) वज्जी के मौरवों का राज्य (२) माघ के उत्तरवालीन गुप्त और (३) कन्नौज का मौरवों का राज्य। ये राज्य एक दूसरे पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न करते थे और इतना ही नहीं कुछ महत्वाकांक्षी नरेश अपनी राजनीतिक प्रभुता अपने अन्य समकालीन नरेशों पर जमाने का स्वप्न देखते थे। इसके लिए वे प्रयत्नशील भी थे। गुप्त साम्राज्य के पतन के बाद उत्तर भारत का इतिहास विघटन और छोटे छोटे राज्यों के पारस्परिक संघर्ष का इतिहास है। हम इस काल के विभिन्न राज्यों का अध्ययन करने के पूर्व उस विपत्ति के विषय में जान लेना चाहते हैं जो हूण-आक्रमण के नाम से जाना जाता है।

## प्रकरण १ हूणों का उत्थान एवं पतन

हूण एशिया के रहने वाले थे जिन्होंने चौथी एवं पाँचवीं शताब्दियों में सम्पूर्ण विश्व पर साम्राज्य स्थापित किया था। पूरे विश्व का अपना भूराज्य नियंत्रित रखने-पान एवं भारवाट से इन्होंने आतंकित कर रखा था। हूणों का मूलनिवास स्थान कहाँ था? इसके बारे में अधिकांश विद्वानों की यह राय है कि वे चान के समान रहते थे। यह नाम जंगली बजार थे। पश्चिम की ओर जब इनका आक्रमण प्रारम्भ हुआ तो वे तारा चकर दो घातकों में विभाजित हो गए। एक घात तो बाल्या (Yokla) का आर उमुस हुई और दूसरी आक्सस (Oxu) का आर। आक्सस की ओर बढ़ने वाला दल मूलतः जॉन-जॉन (Joan Jean) कबीले के अधीन था और शायद ही यह आक्सस घाटा में शक्तिमाना हो गया। यह घटना ५वाँ ई० शताब्दी के मध्य का है। अपने साम्राज्य परिवार के नाम से इन लोगों को योथ्या (Yetha), एथ्याथैलिस (Hethth lites) या इथ्याथैलिस (Ethalites) पुकारा जाने लगा। मूलतः विवरण इन लोगों का स्वतंत्र हूण का समूह दल है।

हून-यू (Hun Yu) या हियून-यू (Hicun Yu) हूणों के स्वजातीय नाम कहें जाते हैं। हून-यू एम० मकावेन (W. M. Mc Govern) के अनुसार—

It is now universally accepted that the Hiung nu were in part atleast the ancestors of the people known to the westerners under the name of Huns

इन हियुन-यू (Hiun yu) को जाति म एव भाषा में तुरानियन (Turanian) कहा जाता है। यह लग चाना या परवर्ती मंगोल नहीं थे। मेकावन का विचार है कि यद्यपि इफ्यालाइटस (Ephalites) यूरोप के हूणों से मूल में पर्याप्त मिश्रित हैं लेकिन वस्तुतः भारत एव ईरान म प्रवेश करने वाले हूण यूरोपीय हूणों से पृथक हैं। कुछ इतिहास के वस्तुतः के अनुसार इफ्यालाइटस तथा यूची (yu h chu) वस्तुतः एक ही मूल के हैं।

आर० घिसमन (R Ghirshman) ने अपने निगमन द्वारा महोत्सिद्ध कर दिया है कि ५वीं शती इ० के मध्य में हिन्दुकुश क्षेत्र में कुछ हूण जाति के लोगों ने आधिपत्य जमाया था।

भारतीय स्त्रियों द्वारा इनका निर्देश—इन हूणों के मूल निवास स्थान के विषय म भारतीय ग्रन्थों से भी कुछ प्रकाश पड़ता है। महाभारत महाकाव्य में विदेशी कबीलों की एक सूची दी गई है। इनम चीना (China) ने प्रथम स्थान ग्रहण किया हुआ है।

नीलमपवन के एक पद्य म यह दर्शाया गया है कि हूण ईरानिया कर्तुसाय सम्बन्धित थे।

कालिदास ने अपने रघुवश' मे यह बताया प्रतीत होता है कि आक्सस मरित्त पर एक हूण वस्ती थी।

वाणभट्ट ने भी उत्तरापथ क एक हूण राज्य का उल्लेख किया है।

पुराण बृहत्संहिता ब्राह्मणव्य आयशास्त्र एव सोमवेद की नीतिवाक्यामून ने भी हूणों को किसी उत्तरी क्रीष्ण या देश से सम्बन्धित किया है।

भारत पर इनका आक्रमण—आक्सस घाटी स हूण ईरान तथा भारत की ओर उन्मुख हुए। स्वतन्त्रता म ४५५ और ४६७ इ० के मध्य हूणों को वस्तु बुरी तरह से हराया और अपन साम्राज्य को उनके ध्वंसकारी हाथों से बचाया। ईरान पश्चिम तथा हूणों का द्रुतगामा प्रसार नीति के नीचे लुप्त गया अन्त म उसने हूणों की पीड़ा को परास्त कर लिया जब भारत म वे स्कन्दगुप्त द्वारा परास्त कर दिए गए। भारत क साथ उनका क्या और कसा सम्बन्ध था। उसके विषय म एक राजदूत सम-यून (Sun yun) हम सूचना देता है। यह राजदूत चीन की उत्तरी की राज वश (Northern weidyn ty) की महारानी क द्वारा भेजा गया था। ५१८ इ० म इस राजदूत बनाय जान का धोपणा की गई था। उद्योग के बीच से गुजरात हुआ मगधन (Sun yun) ५२० इ० म गगार पन्था। इस राजदूत ने इस प्रकार दंग का अर्थ बताया वगन किया है।

This is the country which the ve thas (Hun destroyed and afterwards set up a te m to be king over the country since which events two generation have pas ed The disposition of the king (Sun y) was cruel and vindictive and he pract ed the most

Larlarcus aticities He did not believe the law of God Eudha but loved to worship demons Entirely self reliant on his own strength he had entered on a war with the country of Kipin (Kashmir) disputing the boundaries of their kingdom and his troops had been already engaged in it for three years The king has 700 war elephants The king continually abode with his troops on the frontier and never returned to his kingdom

इस राजदूत के वक्तात् के पश्चात् हूणा के इतिहास पर प्रकाश डालने वाला एक अर्थ इतिहासकार कास्मास (Cosmas) है। इस इण्डिको प्ल्यूस्टस (भारताय नवी गेटर) कहा जाता था। यह अल्पजण्डिया का यूनानी था। इसने अपना त्रिदिचयन टापत्र ( Christian Lectionary ) में जिस कि ५२५ ई० में लिखना प्रारम्भ किया गया था और जो ५४७ ई० में अपने अंतिम रूप में तयार हुई थी। एक स्थान पर कास्मास ने लिखा है—

Higher up in India that is farther to the north are the white Huns The one called Gollas when going to war take with him It is said no fewer than 2000 elephants and a great force of cavalry He is the lord of India and oppressing the people forces them to pay tribute

इसके पदचात् कास्मास ने एक अर्थ स्थान पर लिखा है—

The river Fhuen separates all the countries of India from the Country of the Huns

यह ती दा विदेशा विवरण हुए जिसमें हूणा के वायव्य दिशा का हम जान हाता है। इस विवरणों का सूक्ष्म विवेचन कर हम प्राचीन भारतीय इतिहास पर एक नूतन प्रकाश डालने का प्रयास करेंगे। लेकिन इससे पूर्व कि हम एक मुदितसगत एवं नमबद्ध हूणा के इतिहास का निर्माण करें, हम भारताय सारतों द्वारा भी हूणा के विषय में जानने का प्रयास करना चाहिए।

भारतीय विवरण—हम भारतीय सारतों से दा नरशा मिहिरकुन एवं तारमाण के विषय में कुछ पता चलता है। इन दा नरशा को हूणा का सना दी जाती है। अब हम निम्नलिखित विवरण से भारतीय पक्ष का भी पता चल जायगा।

- (i) पञ्जाब में नमक का पहला या म कुर नामक स्थान पर एक अमिलस प्राप्त हुआ है। इसमें यह वाक्य उल्लिखित है— राजाधिराज महाराज तारमाण शाही जारन यह अमिलस तारमाण महाराज का है।
- (ii) तारमाण नरेश ही का एक साल कौशांबा में धर्मिताराम मठ के समाप ही प्राप्त हुई है।
- (iii) पूर्वी भारतवा में एरण नामक स्थान पर एक अमिलस प्राप्त हुआ है। यह अमिलस 'महाराजाधिराज तारमाण' के प्रथम वर्ष में समस्त धन्यविष्णु द्वारा उल्लिखित किया गया था।
- (iv) स्वातिपर में एक अमिलस मिलता है। यह मिहिरकुन के १५वें शासन

वर्ष का है। इस अभिलेख में मिहिरकुल के मिहिर का नाम भी उल्लिखित है लेकिन केवल प्रारम्भिक शो अक्षर ही पठनीय हैं। यह अक्षर तोर है। कुछ लोग ने तोर को तोरमाण माना है।

परन्तु इन चारों अभिलेखों में कहाँ भी इन दोनों नरेशों को प्रत्यक्षत या अप्रत्यक्षत नाम नहीं दिया गया है।

(v) कुवलयमाता (७७८ ई०) नामक एक जन पुस्तक में हम तोरमाण के विषय में वीदिलचस्प बाल का पता चलता है। इस पुस्तक में लिखा है कि तोरमाण विश्व का या उत्तरापथ का प्रमुख सम्पन्न सम्राट था। वह चन्द्रमागा (बिनाब नगा) नदी के किनारे पर एवया नामक स्थान पर रहता था। हरिगुप्त उसका गुरु था। हरिगुप्त गण परिवार का वंशज था।

(i) राजतरणिगा नाम तोरमाण के विषय में लिखा गया है। इसके अनुसार तोरमाण मिहिरकुल का वंशज था। इस ग्रन्थ में यह भी लिखा है कि मिहिरकुल ने उस वाराणसी में बस कर दिया था क्योंकि वह सिंहासन छीनने का पदग्रहण कर रहा था। लेकिन राजतरणिगी का यह तथ्य अत्यन्त ही अशुभ है अतएव इतिहास के विद्यार्थियों को राजतरणिगा का यह पठना नहीं माननी चाहिए।

(vii) ह्यनसाग भी मिहिरकुल का एक सम्बन्धितात हम प्रस्तुत करता है। यह वृत्तान्त साकल नगर के वणन के दौरान में किया गया था। साकल नगर मिहिरकुल का राजधानी थी। श्रेष्ठ उसका वणन—

Some centuries ago Mihirkula established his authority this town and ruled over India. He subdued all the neighbouring provinces without exception. He issued an edict to destroy all the priests through the five Indies to overthrow the law of Budha and leave nothing remaining.

ह्यनसाग ने पराजय कई शताब्दियों पूर्व अर्थात् ६३३ ई० के कई सौ वर्ष पूर्व जय कि उसने साकल की यात्रा की थी। वाट्स (Watters) ने अपने वृत्तान्त में लिखा है कि अत्यन्त ही विद्वान् मिहिरकुल को ५३० ई० के काफी पहिले निर्धारित करते हैं। इससे मिहिरकुल के विषय में ह्यनसाग की कहानी की सत्यता पर काफी गम्भीर संदेह उत्पन्न होते हैं।

(viii) जन सख्त सोमदेव ने एक परम्परा का उल्लेख किया है जिसके अनुसार एक हूण नरेश ने चित्रकूट जीता था। एरण तथा कौशाम्बी अखिलकों का दण्डित करत हुए हम यह कह सकते हैं कि यह निश्चय तोरमाण की ओर है।

(ix) कुछ विद्वानों में आप मजुनी मनकल्प में भी तोरमाण का निश्चय पाया है।

(x) यशोधर्मन के मन्मोर अभिलेख में हूणों एवं मिहिरकुल दोनों का उल्लेख किया गया है। परन्तु यह उल्लेख इस प्रकार का है जिससे दोनों में किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि हूण एवं मिहिरकुल पृथक् पृथक् आक्रमणकारियों का निश्चय करते हैं।

(xi) इस प्रकार तोरमाण तथा मिहिरकुल के सिक्के हैं। कुछ सिक्कों में बवल 'दार' शब्द ही उल्लेख है। यह सिक्के शशानिड (Shasanaid) नरेशों के सिक्कों



की असम्भ्य अनुकृतियाँ हैं। इन सिक्का में ऐसी कोई चीज नहीं जिससे पता चले कि यह हूणा व सिक्का हैं।

**निष्कर्ष**—एसी परिस्थितियाँ म जब कि किसी भी विवरण में हमारी हूणा एव तोरमाण तथा मिहिरकुल में एकात्मकता नहीं स्थापित हाता इन दो नरेशों का हूण मानना बिल्कुल जपरस्ती है। यह एकात्मकता एकदम बात की भीत के साथ है जिसका पहला जनिवाप होना है। और तो और लगभग सभी इतिहासकारों ने बड़ी निश्चितता से यह प्रकाशित किया है कि हूणों ने गुप्त साम्राज्य के पतन में पर्याप्त हाथ बनाया था। यह कारण इतना अधिक प्रचलित है कि हम इसकी सत्यता में कोई भी संदेह नहीं करते हैं कि जब हमने यह अध्ययन किया कि इस बयान का कोई आधार है नही तो इतिहासकारों का इस बलात् तथ्य स्थापित करने की प्रवृत्ति पर हमें साँझा आती है। तोरमाण एव मिहिरकुल का कुछ विद्वानों ने प्रमाणों माँखों का सना दी है। इन विद्वानों का कहना है कि यह दोनों नरेश हूणा में सम्मिलित थे अतएव गलती से भारतीय इतिहासकारों ने उन्हें हूण द्वारा का नया मान लिया। सर ए० स्टोन (Sir A. Stein) तथा जायसवाल (Jayaswal) ने कहा है कि तोरमाण एक कुषाण था। एस० कोनो (Konow) ने कहा है कि तोरमाण सभी सम्भावनाओं में हूण था।

बास्मस ने अपने विवरण में गोलाम् (Gollis) नरेश का मिहिरकुल कहा है। इस गोलाम् को विद्वानों ने मिहिरकुल या मिहिरगुल माना है। इसलिए निश्चित की गई है कि गोलाम् (Gollis) शब्द का समरूपता मिहिरकुल या मिहिरगुल के अन्तिम दो अक्षरों गुल या कुल से ध्वनिचर हाता है। शब्दों के इस तनिक समरूप उच्चारण पर मिहिरकुल को हूण नया मानना इतिहासकारों का इतिहास की घटना से वस्तुतः अजायब करना है। एक अन्य बात की भी हमें मनी मनी परचना चाहिए। यह बात है कि हूण शक्ति का मुख्य केंद्रावस्थान सिंधु के पश्चिम में स्थित था। मुंगयुन (Mung Yun) तथा कोस्मोस (Cosmos) ने अपने बक्तानों में उपयुक्त बयान का प्रमाण का है। ह्वेनसांग (Hwen Tsang) ने मिहिरकुल की राजधानी सावत (आधुनिक सियालकोट) स्वीकार की है। एक जन ग्रन्थ में तोरमाण की राजनगर का चनाव नहीं व तट पर निर्वाचित किया है।

**हूणा के इतिहास की रूपरेखा**—हम उपयुक्त तथ्यों का अवनाकन करने से यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि इस विशाल आक्रमण की तीसरी पंचम घाटाएँ भारत पर अप्रसर हुई थी। प्रथम घाटा न तब मात्र ही प्रवेश किया था जब कि स्वभाषी भारत की राजनतिक रणमंच पर महान गुप्तों का अनवरत परधरा का निमा रहा था। इस महान गुप्त साम्राज्य ने स्वदेश रक्षा के निमित्त ४६० ई० में आसफाम न हूणों की बड़ी तरह से परास्त किया। किन्तु इन विद्वानों की पूर्णतया भारतीय भूमि से भगाया नहीं जा सका। मुंगयुन के अनुसार वलाग नगर पर अपने एक नए नरेश के नेतृत्व में राज्य कर रहे थे। मंच पूव कि व भारत का अंतर की ओर पुन अप्रसर हाँ उन्हीं एक या दो पीढ़ियों के अन्त में जनान की होंगा।

दूसरे आक्रमण इन का नया तोरमाण था। गदर या पंचम जा कि हूणा का अपना अट्टा था स वदन हूण इस हूण नरेश ने मानवा रूप प्रिय पर विजय की।

बी० गी० सिन्हा (B. I. Sinha) के अनुसार तोरमाण ने ५०२-४६० में नरसिंहगुप्त का पराजित किया।

मजुश्री मूलकल्प के अनुसार तोरमाण ने प्रधाराख्य को वाराणार से मुक्त करवा दिया और उसे पाटलिपुत्र भेज दिया तथा बासी में उसे मगध के नरेश के सिंहासन पर बठाया। उसकी सफलता सक्षिप्त थी—वयगुप्त जो कि तारमाण की बठपुतली था नरसिंहगुप्त द्वारा सिंहासन पर बठाया गया। इसी समय भानुगुप्त गुप्त परिवार के एक वंशज ने विदेशी आधिपत्य के विरुद्ध अपना अभियान प्रारम्भ किया। इसने एरण तक सफलता पर सफलता प्राप्त की। विदेशी आक्रमणकारी को आगे बढ़ने से रोक दिया (५१० ई०)। तभी से तोरमाण की द्रुतगामा फौजा की गति अवहृद्ध हुई थी।

मजुश्री मूलकल्प के अनुसार इसने भारत को गौड तक विजित किया था और बनारस में इसका मृत्यु हुई थी। गौड को उड़ीसा में निश्चित किया गया है। मजुश्री मूलकल्प के इस निरुक्ति के विषय में जीर अधिक कहने के लिए हमारे पास प्रमाण नहीं है।

कुछ समय के लिए ता हूण प्रसार अवहृद्ध हो गया लेकिन मिहिरकुल ने अपने पिता की महत्व काशी योजना का पुनर्जीवित किया। इस भी प्रारम्भ में कुछ सफलता हस्तगत हुई। क्योंकि उसकी प्रभुता उसके शासन के १५वें वर्ष (५३० ई०) ग्वालियर में भी जगाकार का जाती थी।

ह्वनसाग ने ता यहाँ तक लिखा है कि मिहिरकुल ने पूरा भारत को अपना आधिपत्य में किया था। वास्मास (Cosmos) ने भी उसे इस समय तक भारत का सम्राट घोषित किया है। उसकी रजतमुद्राएँ शशनिचक्र ढग की हैं और सिन्धु बेसिन पर उसका प्रभुत्व बताती हैं। मिहिरकुल की ताम्र मुद्राएँ पूर्वी पंजाब राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में भी पाई गई हैं। यह मुद्राएँ मिहिरकुल के सर्वाङ्गीण प्रभाव का प्रकट करती हैं।

राजतरंगिणी के अनुसार—

Mihirkula a man of violent acts and resemble काल ruled in the land which was overrun by the hordes of Mlechha

महा नहा मिहिरकुल का आधिपत्य उत्तर में हिमालयों में सप्तदश पर तथा दक्षिण में सिन्धु तट बनाएँ एव चोल पर भी अंगीकार किया जाता है। लेकिन हूणा का साम्राज्य काफ़ी समय तक स्थापित नहीं रहा। मिहिरकुल को अपना अंत शीघ्र ही दो भारतीय शासकों यशोधरन नरसिंहगुप्त के हाथों में देखना पड़ा।

मिहिरकुल अपनी राजनगरी साकल से भारतीय प्रदेशों पर क्रमबद्ध रूप से बौद्ध धर्म के विरुद्ध अपना घातक नीति को त्रियावित कर रहा था। मगध के स्वामिनी एव विजयी लग हूण सवप्रभुता को स्वीकार कर बड़े ही व्यग्र हो रहे थे। उहो! शांति का नाम उठाते हुए हूणा की पराधीनता से मुक्त होने के लिए अनवरत प्रयास जारी रखे। उहो! अपने विद्रोह के लिए कारण भी काफी प्रभावशाली प्राप्त हो गया। नरसिंहगुप्त बालादित्य ने बौद्धधर्म के विरुद्ध मिहिरकुल की घातक नीति का हूण सम्राट के विरुद्ध विप्लव करण का बड़ा ही उत्तम कारण पाया। बालादित्य का समर्थन मगध की लाखों जनता कर रहा थी।

जब बालादित्य ने विद्रोह के सट गाड़े तो मिहिरकुल ने एक बड़ी सना के साथ मगध के नरेश के विरुद्ध अभियान जारी किया। बालादित्य मिहिरकुल की महती

सना क विरुद्ध न ठहर सका। उसने राजधानी छाड़ दी और सम्भवत बगाल की छाडी क कुछ द्वीपों में जाकर शरण ली। अन्त में मिहिरकुल पाटलिपुत्र प्रवेश करने का सफल हो गया और उन्होंने इस ऐतिहासिक स्थल को विध्वंस कर दिया।

ह्वनसाग क अनुसार मिहिरकुल को सम्भवत ५१९-२० ई० में बालासित्य ने परास्त किया था। तत्पश्चात् मिहिरकुल ने कश्मीर में जाकर शरण प्राप्त की। उसने कश्मीर के नरस का हत्या कर दी और स्वयं को सिंहासन पर ला बठाया। उसने तब गंधार क नरस की हत्या का परन्तु स्वयं भी एक ही वय में परलाक सिंघार गया।

मान्यता मिलेलेत में यथाधमन यह दावा करता है कि 'उसके चरणा में प्रसिद्ध नरस मिहिरकुल का अपना सम्मान प्रदान करते थे ?'

मिहिरकुल यद्यपि परास्त कर लिया गया था लेकिन उसका राज्य नष्ट नहीं किया गया था। यथाधमन क पतन क पदचात् वह पुन सिंहासनारूढ़ हुआ।

लेकिन ह्वनसाग क विवरण न सामान्य स्वाकृत मत में सदैव उत्पन्न कर दिया है। तभी से यह इतिहासकारों न ह्वनसाग क विवरण का प्रामाणिकता का तिरस्कार कर दिया है। स्मिथ (Smith) क अनुसार—

The weight of evidence is now decidedly in favour of the rejection of Yuan chwang's story

उपयुक्त दा पराजय में परस्पर मत बढात क लिए विभिन्न इतिहासकारों न विभिन्न सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है। एक पराजय ही बालासित्य क हाथों मिहिरकुल का सहना पडी था और दूसरा यथाधमन क।

स्मिथ तथा अन्य विद्वानों न यह मत प्रचारित किया है कि नरसमहमुक्त तथा यथाधमन न परस्पर एक साथ का या जिससे हुआ का भारत से खदेड़ा जा सक। ह्वनसाग तथा यथाधमन द्वारा निरूपित सन्नत अस्तुत दा नहीं बल्कि एक है।

फनीट (Elett) न दावा विवरणों का प्राधिकारिता स्वाकार की है और कहा कि मिहिरकुल का पूर्व में नरसमह मुक्त न तथा पश्चिम में यथाधमन न परास्त किया था। एलेन (Allen) तथा मुर्कजी (Mookerji) न इस मत का स्वाकार किया है। मिहिरकुल का अन्तिम भारत पराजय मालवा में ही प्राप्त हुई था।

एलेन क अनुसार—

It is hardly possible that Yashodharman and Narsinhgupta on separate occasions each routed took Mihirkula prisoner and released him This is the tone of Narsinhgupta but it is not so clear as far as Yashodharman is concerned

एच० हेरस (H. Heras) न यह अंगीकार किया है कि अन्तिम निषयात्मक युद्ध यथाधमन न मिहिरकुल पर पाया था उचित नहीं है। उनमें कुछ क्षणों इसके अनुमान में दा है—

(1) मध्य की पराजय के बाद मिहिरकुल अपने पुराने राज्य में न जा सका, अतएव वह यथाधमन द्वारा परास्त नहीं किया जा सकता था। इसलिए यथाधमन द्वारा वह पश्चिम ही परास्त हो चुका था।

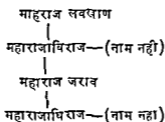
(11) मिहिरकुल कुछ समय तक मगध बदल कर जगना म तथा निबन्ता की स्थिति में घूमता रहा था। यह भी उसकी अन्तिम पराजय की ओर इंगित करता है।

(12) मिहिरकुल ने अन्तिम रूप से कश्मीर में शरण ग्रहण की थी। निम्नपत्र जब वह कश्मीर की आर लौट रहा था तो उसने भारत में सभी प्राणियों को दी थी। तभी से कश्मीर का प्रदेश उसकी दयनीय स्थिति से विचलित हो गया था।

इस प्रकार बालादित्य ने अन्तिम रूप से उसे पराजित किया था।

हानले (Hornley) ने कहा है कि यशोधरम विष्णु घमन नरसिंहगुप्त का एक सामंत था और नरसिंह गुप्त के समय में ही उसने मिहिरकुल का परास्त किया था। परन्तु इस मत में समयन में कोई भी तर्क नहीं किया जा सकता। यशोधरम की मिहिरकुल पर जान ५३३ ई में निश्चित की जाती है। इसके बाद ही बालादित्य ने भारत में हूण शक्ति का जन्म खोलनी की। इसके बाद हूण अब भारत में एक आतंतायी एवं महान शक्ति के रूप में नहीं रह गए वे भारतीय इतिहास में एक उत्सीक सत्व भी नहीं रहे।

दाखदित्य सीलें नालदा में प्राप्त हुई हैं। इन सीलामें एक शासक की वशावली दी गई है। शासक का नाम अस्पष्ट है। श्री अमलानंद घोष (A Chosh) ने एक अर्थ जाघार पर निम्नलिखित हूण नरेशों की सूची तयार की है। इन नरेशों में मिहिरकुल के पश्चात् भारत के एक सीमित भाग पर अपने जीवन के उत्तर चंगव देवे व।



जहाँ तक पहिले नरेश का प्रश्न आता है इसकी एकात्मकता राजा लवरवाण उद्यादित्य से स्थापित की जा सकती है। यह नरेश हूणों की मुग्धाओं से जाना जाता है। राजतरंगिणी ने भी लवरवाण नरेशादित्य नामक शासक को उल्लिखित किया है। यह तो राजवंश का था। स्टीन (Stein) ने इसका धारण किया है—

It appears very probable that by Lakkhana Narendraditya of the Rajatarangini is meant the same king who calls himself Lakkhana Udvaditya in the coins

जरीव की एकात्मकता हूण मुग्धा पर उत्कीर्ण शाही कुजर व जराव की जाना है।

जिन दो नरेशों का नाम सील में नहीं है उनमें एक का नाम हूण मुग्धा के आधार पर निश्चित किया गया है। यह है देव शाह विगिता। राजतरंगिणी ने भी नालदीप नरेशादित्य नामक नरेश उल्लिखित किया है। इन दोनों नरेशों की एकात्मकता स्थापित की गई है।

हूण-आक्रमण का प्रभाव—हूण एक बड़ा जाति, वे जिनका व्यवसाय इधर उधर पधरते रहना और लूट-पाट करना था। सम्पत्ता और सभ्यता के तत्त्वों से उनका कोई रिश्ता पश्चिम नहीं था। किन्तु उन्होंने भारत पर जो आक्रमण किया उसका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। म्लिय महोत्थ ने इस बात का विश्लेषण किया है कि उत्तरा भारत का सामाजिक और राजनीतिक इतिहास में हूण-आक्रमणों का काफी महत्व था। गुप्त साम्राज्य को हूण आक्रमणों से बचा प्रयत्न करना पड़ा। यद्यपि जायसवाल महोत्थ के अनुसार जिनका कथन मञ्जुश्रीमूलकाल पर अवलम्बित है हूणों का आक्रमण गुप्त साम्राज्य के पतन का परिणाम था, न कि उसका कारण तथापि यह स्वीकार करना हमें हमें कोई आपत्ति नहीं प्रतीत होता कि हूणों ने गुप्त साम्राज्य का काफी क्षति पहुँचाई। उत्तर भारत में बौद्ध धर्म को काफी हानि पहुँचा। हूण-साँप का कथनानुसार हूणों ने बौद्ध, विहारों को बुरी तरह नष्ट कर दिया। बौद्ध धर्म के प्रचार और शक्ति पर हूणों का इस आक्रमण का बड़ा हानिकारक प्रभाव पड़ा। दखन हूणों ने अनेक प्राचीन राजदराओं का नाश कर दिया।

हूणों का आक्रमण ने भारत का राजनीतिक एकात्मता को प्रबल आपात पहुँचाया। देश में भ्रष्ट मही अनेक छोट-छोटे राज्य थे, हूणों का आक्रमण का फलस्वरूप वे राज्य भी मिश्र मिश्र हो गये। हूणों का दारा राजवशा का लक्ष्य नष्ट कर दिया जाना अनेक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्रियों का विनाश हो गया जिनके अभाव में भारतीय इतिहास की कुछ समस्याएँ अभी भी जल्द बतानी हैं। राज्या का संगठन एक नये स्तर में हुआ। देश का राजतंत्रात्मक भावनाओं का हूण-आक्रमण द्वारा बड़ा आपात पड़ा। उनके दुराचार ने देश का राजशाही का सम्मुख निम्नगता तथा नृगमना का उदात्त रखा। यद्यपि हम यह नहीं कह सकते कि उन राजशाही ने उन उदात्तकरण का अनुकरण ही किया, तथापि हमें समझना चाहिए कि मिहिरकुल का क्रूरता और नृगमना नाकरञ्जन को प्रधान बताने का भारतीय राजतंत्र के सिद्धांत के विपरीत थी।

कालान्तर में हूण लोग हिन्दू समाज में मित्रा लिये गये। उनके विद्वानों का विचार है कि इन्हीं हूणों से अनेक राजपूत वंश का उद्भव हुआ जिन्होंने भारतीय इतिहास की घटनाओं का काफी महत्त्वपूर्ण रूप में प्रभावित किया। परन्तु जमा कि हमें अभी चिन्तित करने राजपूतों की विद्वानों उत्पत्ति का स्पष्टन अथवा विद्वानों न किया है। पर इस बात में सन्देह नहीं कि हूणों के तत्कालीन हिन्दू समाज में मिल जाना कुछ सामाजिक समस्याएँ उत्पन्न हुईं जिनसे आजकल यह निश्चयपूर्वक कहा जा रहा है कि आधुनिक हिन्दू समाज में कौन सा वंश हूणों की सन्तान है। अथवा किसी आक्रमणकारियों का तत्काल हूणों का भारतीय-करण सफलता पूर्वक सम्पन्न हो गया।

## प्रकरण २ बलभी का राजवंश (५०६-७७५)

हमने इस अध्याय का प्रारम्भ नहीं है यह बतलाया है कि मगध-गुप्त की मृत्यु का बाद गुप्त साम्राज्य का एक मुहूर्तवर्षी प्रायः मगध में पड़ गया और वहाँ पर एक स्वतंत्र राजवंश का उदय प्रकटित हुआ। मगध के राजापति मगध के बलभी (भावनगर का मगध) पंचवीं शताब्दी का अन्तिम वर्ष में नया राज कुल स्थापित किया।

## वलमी के राजवंश का मूल

वलमी व जिस राजवंश की स्थापना पाँचवाँ शताब्दी व अंतिम चरण में हुई उसका विवरण हम किसी प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता। इस मंत्रक का नाम भी दिया गया है। स्मिथ साहब ने अपना यह मत प्रकट किया था कि वलमी का राजकुल ईरानी था। बदायित्त मंत्रक नाम से उन्हें यह धर्म उत्पन्न हो गया हो। उनका इस मत की पुष्टि का कोई प्रमाण नहीं मिलता। कुछ विद्वानों ने यह धारणा प्रकट की है कि 'ब्रू' मंत्रक हूणा व साथ ही विख्यात हो उठत है इसलिए इन दोनों का परस्पर कोई जातीय सम्बन्ध रहा होगा। परन्तु यह सम्भावना भी अथवती नहीं प्रतीत होता। वास्तव में मट्टारक ने जिस राजवंश का स्थापना की वह एक भारतीय राजकुल प्रताप हाता है। काफी प्राचीन समय से इस वंश के लोग सुराष्ट्र में निवास करते थे।

वलमी के राजकुल का इतिहास—मट्टारक व राजवंश व अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिसे पर गुप्त वलमी सन्तु में विधिया का उल्लेख किया गया है। परन्तु इन अभिलेखों में वलमी राजाओं का नाम ही दिया गया है। उनका विषय में कोई विस्तृत और विवशनाय विवरण नहीं मिलता। किन्तु इधर-उधर बिखरे हुए विवरणों से इस राजवंश व इतिहास की एक रूपरेखा तयार की जा सकता है। लेकिन यह भी स्मरण रखना चाहिए कि पुष्ट प्रमाणा का अनुपस्थिति में वलमी राजवंश व इतिहास व सम्बन्ध में जो भी मत प्रकट किए जा सकते हैं उनकी प्रामाणिकता और सत्यता असाध्य नहीं माना जा सकता।

मट्टारक ने सुराष्ट्र में एक नये राजकुल का स्थापना अवश्य का। परन्तु सम्भवतः वह पृणरूपण स्वामी नहीं था। मट्टारक स्वयं अपने का सनापति' ब्रह्मा रहा और उसके उत्तराधिकारियों ने भी सनापति' कहलाना जारी रखा। परन्तु बाद में नरेशों ने महाराज का विरुद्ध धारण किया। द्रार्णसह ध्रुवसन प्रथम धरपट्टे गुरुसन तथा धरसन द्वितीय ने महाराज का पदवा धारण की थी। इससे कुछ विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि वलमी व मन्त्र नरेश या तो गुप्ता का आदर करके व लिए नाम मात्र का उनका अधानता स्वीकार करते थे अथवा व किसी अन्य शक्ति व सम्भवतः हूणा व आधिपत्य में स्थाया रूप से रहे। इस सम्बन्ध में डा निपाठा का कथन है परन्तु यह स्पष्ट नहीं कि उन्होंने किसका आधिपत्य अंगीकार किया था। क्या उन्होंने कुछ वाने तक गुप्त-परम्परा ही जीवित रखता? अथवा व उन हूणा के अधान में जा धार धार पाश्चिमा और मध्य एशिया व स्वामी बन गये व। ऐसा प्रतीत होता है कि मन्त्र सनापति नरेशों ने गुप्ता का अधानता का स्वीकार किया था और हूणा का शक्ति बढने पर उनका आधिपत्य भी उन्हें स्वीकार करना पडा।

परन्तु मन्त्रक राजाओं ने अपनी शक्ति बेगन का प्रयत्न किया जिसमें उन्हें सफलता भी प्राप्त हुई। मन्त्रक राजकुल का शक्ति धारे धार बढने लगी और ज्याही हूणा का शक्ति का हास हुआ इस राजवंश व राजाओं ने अपने का उनकी अधीनता से मुक्त कर लिया। छठी तथा सातवाँ शताब्दियों में पहुँच कर मन्त्रक नरेशों पर चमा भारत में सर्वशक्तिमान हो गये। वलमी का एक प्रतापी राजा शालादित्त था। इसने अपने राज्य का साम्राज्य का विस्तार किया जिसका प्रमाण हमें चीनी यात्री ह्वेनसांग व डाच प्राप्त होता है। मा ला-पा का वणन करते हुए उसने इसका राजा

मोलादित्य का उल्लेख किया है जो चीनी यात्री के समय से आठ वर्षों पूर्व इस देश (मो-ला-यो) पर राज्य कर रहा था। इस प्रकार शीलादित्य का शासन-काल ५८० ई० के लगभग ठहरता है। यद्यपि तिथियों के सम्बन्ध में कुछ गड़बड़ी उत्पन्न होती है तथापि ह्वनसांग द्वारा उल्लिखित मो ला-यो के शालादित्य का बलमी के शीला दित्य प्रथम धर्मादित्य के साथ समीकरण किया जा सकता है। यदि हम इस समीकरण पर शासन किया। मो-ला-यो की नौगोलिक स्थिति के विषय में मतभेद होने के बावजूद भी हम बात में कोई मन्देह नहीं रहता कि इस नाम से मालवा की अति व्यक्त होती है और इसमें पहिली मालवा का काफी भाग सम्मिलित था। इसीलिए हम यह विचार कर सकते हैं कि छठी शती के अन्त में बलमी का राज्य पश्चिम भारत में सबसे अधिक शक्तिशाली था।<sup>१</sup>

ह्वनसांग न राजा शीलादित्य की बहुत अधिक प्रशंसा की है। उसने उन 'शासन सम्बन्धी एक महती योग्यता तथा दुर्लभ दयालुता और कृष्णा स सम्पन्न शासक' कहा है। शीलादित्य न एक बौद्ध मन्दिर का निर्माण कराया जा आकार तथा अलकरण में अत्यन्त कलात्मक था। वह प्रति वर्ष एक धार्मिक सम्मेलन का आयोजन भी किया करता था जिसमें देश भर के बौद्ध भिक्षु सम्मिलित हुआ करते थे। अभिलक्षा के साध्य स पता चलता है कि राजा शालादित्य ने धर्मादित्य की पदवी धारण की थी जो ह्वनसांग क द्वारा उसके चरित्र सम्बन्धी स्थि हूए वणन स अच्छी तरह मल सा जाती है।]

राजा शीलादित्य के बाद उनका भतीजा ध्रुवसेन द्वितीय बलमी का दूसरा प्रतापी राजा हुआ। शीलादित्य की मृत्यु सम्भवत ६१२ सन् ईसवी में हुई जिसके बाद उसका अनुज सरग्रह बलमी के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। सरग्रह के बाद उसका पुत्र धरसन तृतीय राजा हुआ। इन दोनों राजाओं के विषय में हमें विशेष रूप स कुछ पता नहीं केवल इतना मालम है कि वे क्रमश ६१६ सन् ईसवी और ६२३ ई० में राज्य कर रहे थे। धरसन तृतीय के शासन काल में बलमी के राज्य में उत्तरी गुजरात सम्मिलित था।

**ध्रुवसेन द्वितीय**—धरसन तृतीय का उत्तराधिकारी ध्रुवसेन द्वितीय था। ध्रुवसेन द्वितीय धरसन का छोटा भाई था। ध्रुवसेन द्वितीय के विषय में ह्वनसांग न लिखा है— राजा जम स क्षत्रिय था और मो ला-यो के पूर्ववर्ती राजा शीलादित्य का भतीजा तथा वायव्युज के शीलान्त्य का नामाद था उसका नाम था तु-लो-या-या-ता (ध्रुवसेन), उमक विचारा म न गहराई था और न दूरदक्षिणा परन्तु बौद्धधर्म में उसने आस्था गहरी थी। ह्वनसांग के इस कथन स यह ध्वनि होता है कि शीला दित्य के समय में राज्य तो भाग में विभक्त हो गया था—(१) मालवा का पश्चिम भाग (मो ला-यो) जो शीलान्त्य के अधीन था और (२) बलमी का उत्तर भाग के अधीन था। एसा प्रतीत होता है कि अपने रण-अभियान के सम्बन्ध में ध्रुवसेन ह्यु न बलमी पर ना आक्रमण किया होगा "जय कि वहाँ का राजा ध्रुवसेन (ध्रुवसेन) मंडीच कर्तु का आश्रय प्राप्त करन के लिए दा छात्रक भाग गया और उसारी सहायता स ही अंत में अपन राज्य पर पुन अधिधार कर सका। निश्चय

ही उसका और हृषिकेश के बीच संधि हुई जिसने अपने इस राजनीतिक सम्बन्ध को बलभी नरेश को अपना जामाता बनाकर जलजल बन कर लिया। यात्री सूचित करता है कि हृषिकेश के प्रयाग सम्मेलन में उपस्थित हानियाल नरेशों में ध्रुवमदृ भी था जो वहाँ सम्राट् के अनेक मित्र-नरेशों में एक मित्र नरेश के रूप में उपस्थित हुआ था। (एन० एन० घोष) घोष महाराज ने ध्रुवसेन के राज्य छोड़कर भाग जाने की घटना को भी बलभी के गुजर अभिलेखा में उल्लिखित घटना के ऊपर आधारित मान लिया है। उन्होंने गुजर अभिलेखा की सत्यता में तर्क भी सदेह नहीं किया है। वह द्वितीय के लिए एक गुजर अभिलेखा में स्रोत्साह कहा गया है कि उसने हृषिकेश द्वारा भयानक बलभी नरेश को रक्षा करके (अथवा उस अपने राज्य में शरण देकर) एक महान गौरवपूर्ण वाप किया। अभिलेखा का यह कथन सत्य के निकट प्रतीत होता है क्योंकि इसमें प्रयुक्त भाषा अतिशयोक्तिपूर्ण है। इससे केवल यही सिद्ध होता है कि हृषिकेश और बलभी नरेशों में एक संधि हुआ था। परन्तु इस संधि के परिणामों के विषय में हम कोई सूचना नहीं मिलती। गुजर अभिलेखा के साथ ही ऊपर घोष महोदय ने जो निष्कर्ष निकाला है वही हमें सत्य मानना पड़ता है। हम यह नहीं कह सकते कि हृषिकेश ने बलभी पर पूर्णरूपेण विजय प्राप्त कर ली थी और बलभी का शासन हृषिकेश का सामन्त हो गया था। डा० दिनेशचन्द्र सरकार का यह कथन ठीक नहीं जान पड़ता कि बलभी का राजा हृषिकेश का एक सामन्त मित्र था। यह अनुमान करना वांछनीय प्रतीत होता है कि सम्राट् हृषिकेश और ध्रुवसेन का परस्पर मंत्री सम्बन्ध था।

**धरसेन चतुर्थ**—ध्रुवसेन द्वितीय का पुत्र एवं उत्तराधिकारी धरसेन चतुर्थ था। यह एक समय आर्य शक्तिमान नरेश था। उसने एक चक्रवर्ती नरेश की ममस्त उपाधियाँ परममहाराज महाराजाधिराज परमेश्वर तथा चक्रवर्तिन धारण कर रखी थी। कुछ विद्वानों की धारणा है कि महद्विकाव्य का रचयिता महद्वि इमी धरसेन का राजसभा का सुशामित करता था। धरसेन एक वीर विजिता भी था। उसने गुजरात के ऊपर अपना आधिपत्य स्थापित किया। उसने भी बलभी के विजयस्कंधाधार से एक दान दिया था जिससे यह प्रतीत होता है कि इस समय भी उसने अधिकार में आ गया था।

**धरसेन चतुर्थ के पश्चात् बलभी का राज्य**—धरसेन चतुर्थ के एक शती बाद तक मगध कुल का राज्य बलभी पर बना रहा। इस वंश के अन्तिम नरेश शीनादित्य सप्तम की अन्तिम ज्ञात तिथि गुप्त सन ४७७-७६६ है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस समय तक मगध वंश का अस्तित्व कायम रहा। परन्तु धरसेन चतुर्थ के पश्चात् से लेकर इस समय तक के बलभी राज्य का इतिहास तिमिराच्छादित है। इस राज्य का राजनीतिक गौरव मगध ही कम हो गया था परन्तु इसका सांस्कृतिक महत्त्व और अधिक समय तक रहा। अरब आक्रमणकारियों ने सन ७७ ई के लगभग बलभी के राज्य का अंत कर दिया।

**बलभी का आर्थिक और सांस्कृतिक महत्त्व**—यद्यपि बलभी की राजनीतिक शक्ति बहुत अधिक नहीं थी और समकालीन राजनीतिक शक्तियों में इसका स्थान बहुत अधिक गौरवपूर्ण नहीं था तथापि इसका आर्थिक समृद्धि और सांस्कृतिक महत्त्व को भूनाया नहीं जा सकता। बलभी राज्य की आर्थिक और सामरिक स्थिति की महत्त्वपूर्ण था। हमें गुप्त युग की आर्थिक अवस्था पर विचार करते हुए यह देता है कि मगध एक प्रसिद्ध बंदरगाह था। कुछ बातें जब यह बलभी के राज्य में सम्मि-



लित हो गया तो इसका आर्थिक समृद्धि क स्नात काफी बढ गय। स्वय बलमी की स्थिति बढी हिनकर और आर्थिक त्रियाकलापा क अनुकूल थी जिसस प्रोफेसर अल्ते-  
कर क शब्दो म बलमी, काठियावाड म आधुनिक बल क निकट अवस्थित अन्तरा-  
ष्ट्रीय वाणिज्य का एक बन्दरगाह बन गई थी जहा पर जनक 'यापार्गिक मण्डियाँ  
प्रतिक्षण दुलमे व्यापार-सामग्रिया स पटा रहती था। 'Valabhi situated  
near modern Wala in Kathiawar was the capital of an  
important kingdom and a part of international trade with  
numerous warehouses full of rarest merchandise''

बलमी की इस आर्थिक समृद्धि न वहा पर सस्त्रुति जीर सम्पत्ता के विकास को  
सुगम बना दिया। बलमी म शिक्षा का एक प्रमुख केंद्र था और यह नगरी अपन  
विद्यालय के कारण विख्यात था। प्रोफेसर अल्तेकर ने अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारत  
म शिक्षा म बलमी क विश्वविद्यालय का वर्णन किया है। उसा के आधार पर हम  
भा उसका उल्लेख करते है। सातवा शताब्दी म विद्या का केंद्र हान के कारण बलमी  
का नगरी अधिक प्रसिद्ध था। चाना याथा इत्सिंग स हम सूचना मिलती है कि इसका  
यश पूर्वी भारत का नालन्दा नगरी के यश को प्रतिस्पर्धा करता था। यह सचमुच  
एक दुल का बात है कि इत्सिंग न इसकी साहित्यिक आर शिक्षा सम्बन्धी क्रियाशीलता  
का सविस्तार वर्णन नहा किया ह। ६४० ई० म बलमी म लगभग एक सौ बौद्ध  
विहार थ और उनम छ हजार भिक्षु विद्यार्थी रहन थ। सातवा शताब्दी क मध्य  
म श्वरमति आर गुणमति नामक सुविख्यात बौद्ध विद्वान् इस नगरा क रयातनामा  
आचाप थे। नालन्दा की भांति बलमी म सकीण धार्मिक शिक्षा नही दी जाता था।  
बवल बौद्ध धम आर तत्सम्बन्धी विषय हा यहाँ क पाठ्यक्रम म सम्मिलित नही थे  
बल्कि अय विषया का भा यहाँ शिक्षा दी जाती थी। केवल बौद्ध भिक्षु ही यहाँ  
शिक्षा नहा प्राप्त करते थे अपितु ब्राह्मण विद्यार्थी भी यहाँ विद्या प्राप्त करने के लिए  
आत थ। अल्तेकर महाद्वय न कचामरित्मागरेस निम्नलिखित अंश समुद्धत किया  
है जिसस विदित होता है कि अतर्वेग तव स ब्राह्मण-कुमार उच्च शिक्षा प्राप्त करने  
के लिए वरमा पहुँचा करते थे—

अनर्वेधामभूत्सूव वसुत्त इति द्विज ।

विष्णुदत्तमिधानच पुत्रमस्योपपद्यत ॥

स विष्णुदत्ता वयमा पूषयाद्वशवत्सर ।

गन्तु प्रववत विद्याप्राप्तय वरमापुरम् ॥

इत्सिंग के कथनानुसार बलमी क स्नातना का उच्च राजनीय पना पर नियुक्त  
किया जाता था। यदि इत्सिंग का यह कथन सत्य है जसा कि प्रतीत होता है ता  
हमारा यह अनुमान प्रबल हा जाता है कि नालन्दा का भांति वरमा क विद्यालय म  
भा लौकिक आर धार्मिक दाना प्रकार क विषय पनाये जात थ। याय अयसास्व  
साहित्य आदि विषया की शिक्षा यहाँ अवश्य ही दी जाना रहा हागा। वरमा का  
विश्वविद्यालय अपना साहित्यिक और बौद्धिक स्वतंत्रता के लिए विख्यात था। हम  
यह सूचना मिलता है कि भारत क समस्त नागा स विद्वान् वरमा म एकत्र हुआ  
करते थे और कर्म-कर्म का ज्ञान यहाँ तव ठहरकर सम्भव तथा असम्भव सिद्धान्त  
पर खचा करते थ। जब उनका बलमी क प्रतिष्ठ आचाप यह विदवात दिला दत  
थ कि उनकी धारणाये ठीक है ता क अपन ज्ञान क लिए दग भर म विख्यात हो

जाया करते थे। नालंदा की भाँति यहाँ भी विश्वविद्यालय के प्रसिद्ध विद्वानों के नाम इसके उन्नत द्वारा पर श्वेत रंग से लिख दिये जाते थे।

वलमी के विश्वविद्यालय का व्यय वहाँ के समृद्ध व्यापारियों और शासकों द्वारा वहन किया जाता था। हम यह पहले ही देख चुके हैं कि वलमी एक प्रमुख व्यापारिक केंद्र था जहाँ पर निश्चय ही अनेक धनवान् व्यापारी रहते थे। अलीवर क शब्दा में The University used to receive considerable support from these merchant princes The Mastraka kings who were ruling there during 480 to 775 A D were also great patrons of learning they used to give direct grants for meeting the general expenses of the University as also for strengthening its library

विश्वविद्यालय इन व्यापारी राजकुमारों से पर्याप्त पोषण प्राप्त करता था। मन्त्रक नरेश भी जो ४८० से लेकर ७७५ सन ईसवी तक वहाँ पर शासन करते थे विद्या का महान् संरक्षक थे। वे विश्वविद्यालय का सामान्य खर्चों का पूति के लिए और विश्वविद्यालय को सुदृढ़ करने के लिए भी प्रत्यक्ष अनुदान दिया करते थे। सन ७७५ ई० तक यही व्यवस्था बनी रही। इसके बाद जब अरबों का मग का फतस्वरूप मन्त्रक बंश का नाश हुआ गया तो विश्वविद्यालय का प्राचीन गौरव कुछ समया के लिए लप्त हो गया। परन्तु मन्त्रकों के उत्तराधिकारियों ने भी यद्यपि इतिहास इनके विषय में हम अधिक नहीं बताता विश्वविद्यालय को राज्य-संरक्षण देना जारी रखा और वनमी की नगरी विद्या केंद्र के रूप में अपनी ख्याति बारम्बरी शताब्दी तक अक्षुण्ण रूप में समय ही मकी। सुदूरवर्ती भागा जैसे बंगाल तक से यहाँ का विश्वविद्यालय विद्यार्थियों को आकृष्ट करता रहा।

वलमी का विश्वविद्यालय मन्त्रक राजाओं के लिए गव का कारण है। यद्यपि अधिकांश मन्त्रक नरेश शक थे तथापि उन्होंने बौद्ध विश्वविद्यालयों को अपना राज्य संरक्षण प्रदान किया। अस यह स्पष्ट हो जाता है कि वे कितने उदार धार्मिक दृष्टि वाले थे। इसका अनिश्चित उनके द्वारा विश्वविद्यालय के व्यय के लिए अनुदान दिया जाना यह सिद्ध करना है कि वे विद्या के महत्त्व को मली भाँति समझते थे। स्नानक का वे राजकीय पदा पर नियुक्त करते थे जिससे उनकी विद्यानुरागिता का परिचय मिलता है। विद्या-संरक्षण के कारण वनमी के मन्त्रक राजाओं को भारतीय शिक्षा के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

### प्रकरण ३ मौरियों का राज्य

इस समय उत्तर भारत में मौरियों का राज्य एक प्रबल राजनीतिक शक्ति के रूप में विद्यमान था। (मौरियों की प्राचीनता का प्रमाण पाणिनी पतञ्जलि और मौरकान्त ब्राह्मी अक्षरा में अक्षर एक मिट्टी की मूर्त द्वारा प्राप्त होता है) उनका साम साम जा बर्वाहिक सम्बन्ध स्थापित किया गया था उनका अभिलेखा में भी गव का साथ उल्लेख किया गया है जिससे मौरियों का युग की प्राचीनता सिद्ध होती

१ हम वलमी विश्वविद्यालय के इस सम्पूर्ण विवरण के लिए प्रोफेसर अलेक्जर के कृतज्ञ हैं। विषय विवरण के लिए देखिए—*Education in Ancient India* (J. M. H. J. 1901) 11, 1-3, 1-7

है। (बाण ने भी उनके कुल की प्राचीनता का उल्लेख किया है। व सम्भवत एक गणतन्त्रात्मक समुदाय के थे) अमिन्दरा द्वारा भी उनकी प्राचीनता का प्रमाण प्राप्त होता है। उन अमिन्दरों में जो इमा की नीमरी शताब्दी में उत्कीर्ण कराये गये थे मौखरी सरदारों का उल्लेख किया गया है। उनकी शक्ति के बढ गता की उपरली धागा म थे (बलमन उत्तर प्रदेश और बिहार क भागा म)। उनका राजधानी गया म थी। सम्भवत गुप्ता द्वारा वे पराजित कर दिये गये। जतएव गुप्त सामन्ता के रूप म उन्होंने गुप्त मन्त अपना लिया। छठा शताब्दी म व स्वतन्त्र हो गये। इस शताब्दी के प्रारम्भ तक मौखरी राजाओं ने सामन्ताचित विरुद्ध धारण किये। ईशानवमन जा म्बय एक गुप्त राजकुमारी का पुत्र था म्बप्रथम मौखरी नरेश था जिसने मग्नाटा की पदवी धारण की। मौखरिया का एक प्रभावशाली राजवंश के रूप म अन्य गुप्त साम्राज्य का शक्ति क्षीण हो जान पर कर्त्रीज म हुआ था।

प्रारम्भिक मौखरिनरेश जमा कि ऊपर कहा जा चुका है सामन्ताचित विरुद्ध धारण करते थे। उनका सामन्त चूनामणि तथा सामन्त हा कहा गया है। सम्भवत व गुप्त नरेशों के अनुवर्ती सामन्त थे। ईशानवमन न अपन कुल की स्वतन्त्र राज मत्ता का विकास करके अपन की गौरवान्वित किया और साथ ही माय अपन वंश की मर्षांदा भी बढाई। जसा पहल कहा जा चुका है वह सबप्रथम मौखरि नरेश था जिसने मग्नाटा का विरुद्ध धारण किया परन्तु विरुद्ध मात्र न था। (ईशान वमन एक यादवा और बौर विजता था। उसका हराहा अमिल्य म उसकी मय-मफ्तताया का उल्लेख किया गया है जिसम विनित हाता है कि उमन आध्रा का जीता तुलिया का परास्त किया और गौडा का उनकी मीमा के भीतर धर रक्वा। इस प्रकार उसका शक्ति बढन पर उसका समकालीन गुप्तनरेशों का चिन्ता हुई। ईशानवमन न अपन का गुप्ता का एक प्रबल प्रतिद्वन्दी प्रमाणित किया। सम्भवत उसका हणा स भी युद्ध किया। कदाचित वह सन् ५५४ ई० म शासन कर रहा था) उमन मगध क गुप्त नरेश स मा लाहा लिया। इस समय से मौखरिया और परवर्ती गुप्त शासन का पारस्परिक सघष प्रारम्भ हा गया। गगा की उपरना घाटी म मौखरी राजवंश सरस अधिक शक्तिशाली राजनैतिक शक्ति के रूप म प्रतिष्ठित हा गया। सबवमन् ईशान वमन का पुत्र और उत्तराधिकारी था। उमन अपन समकालीन मगध नरेश का जा गुप्त वंश का था और जिसका नाम दामादरगुप्त था युद्ध म पराजित कर लिया और उमकी हत्या मा कर टाती। सबवमन का राज सम्भवत बगाव म एक मन्तज जोर विध्य तक पना था। उसकी राजधानी कायदुब्ज (कर्त्रीज) थी जा एक प्राचीन नगरी (कर्त्रीचित इमा पूर्व दूसरी शताब्दी म मा पहल) थी। इमका उल्लेख पतञ्जलि न मा किया है और पाण्डित्य न इमका चर्चा किया था परन्तु इम नगर का मन्दर गुप्ता क पतनपरान्त ही बड़ा। सबवमन् क पदचोत अवलोकन म्ब उमका उत्तराधिकारी हुआ। अवन्तिवमन मा एक शक्तिशाली नरेश था। गुप्तमन् नामक एक मौखरिनरेश (मानवा शताब्दी का प्रारम्भ) न ह्यगुप्त का मणिना म पाण्डित्य किया था। मन्मन् क गुप्त नरेश द्यगुप्त न गुप्तवमन् का वध कर लिया। ह्य न द्यगुप्त का पराजित करके अपनी मणिना क मन्मन् रूप म मौखरी राज्य का भार अपन ऊपर बहन कर लिया। इस प्रकार बढता न मौखरिया का मग्नाटाचित म्बिति का प्राप्त कर लिया। इमका पश्चात् मौखरिया का मय भागा का अन्त हा गया। मौखरिया का अन्त शागायें था किन्तु उत्तम राजकुमार और बूँट निता तक सामन्त करी रह पन्तु मून मौखरी कुल की राजमत्ता पनाप्त हा गई।

डा० त्रिपाठी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कन्नोज का इतिहास' में बताया है कि विन्ध्य से लकर अवध तक और पूर्व में पूर्वोप बंगाल तक मोक्षरिया का राज्य फैला हुआ था। मोक्षरिनरेश अमात्या की एक सभा का सहायता से राज्य पर शासन करने था। राजवंश के कुमार विभिन्न प्रान्तीय शासकों के रूप में प्रान्ता पर शासन करते थे किन्तु सामन्त गण में विद्यमान थे। राज्य की एक सुसंगठित व्यवस्था थी और राजा तक जमीन की जा सकता था। विविध प्रकार के राज्य पदाधिकारियों का उल्लेख भी प्राप्त होता है। कायचक्रवर्ति के मोक्षरा राजा ब्राह्मण घन के कट्टर अनुयायी थे। उनके शासन काल में संस्कृत और सभ्यता का प्रचार था। पिरेज नामक विद्वान् की धारणा है कि कोमुनी महात्सव नामक नाटक का रचना मोक्षरिया के राजत्व काल में की गई थी। परन्तु इस विचार का पुष्टि के लिए समुचित प्रमाण नहीं है। किन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि मोक्षरा नरेशों ने विद्या के पोषण और प्रचार का प्रयत्न किया। मोक्षरिया का शासन काल ५५४ ई० से ६०६ ई० तक है।

### प्रकरण ४ परवर्ती गुप्त वंश एवं उनका मूल निवास-स्थान

कुछ वर्ष पूर्व भारतीय इतिहासकारों के लिए परवर्ती गुप्त वंश की जटिल पृष्ठा का रूप धारण किए हुए था। इन नरेशों की एकात्मकता महान् गुप्त वंश के नरेशों से किए जाने का प्रयास किया जाता था। परन्तु समस्या को सरल रूप प्राप्त होने के स्थान पर विषय रूप ही प्राप्त होता चला जा रहा था। अपसन्त जमिन्दारों के कृष्णगुप्त की एकात्मकता गोबिन्द गुप्त से स्थापित की गई थी। परन्तु इस एकात्मकता के समय में विद्वानों का कोई तर्कसंगत आधार ही नहीं प्राप्त हो रहा था क्योंकि यह परवर्ती गुप्त नरेशों अपने का महान् गुप्त सम्राटों की पक्ति में नहीं रखते थे। यदि महान् सम्राटों की वंशावली के वंश नाग सप्तस्य होते तो निश्चय रूपेण वे अपने का उनके वंशज घोषित करते। वान नरेश सयागवश स्वयंयुग के विधाताओं का पक्ति में जाना स्वाकार नहीं करेगा। इस एकात्मकता का मुख्य तर्क यही हो सकता है कि 'गुप्त' नाम दोनों वंशों के नरेशों के अंत में जुड़ा हुआ प्राप्त होता है। जब इतिहासकारों ने यह मानना स्वाकार कर लिया है कि दो विभिन्न गुप्तों ने भारत में भिन्न भिन्न समयों पर राज्य किया था। इन दोनों का परस्पर कोई रक्त का नाता नहीं था। यह नामों की समरूपता भवले सयागवश ही है। परवर्ती गुप्त नरेशों के विषय में यह धारणा काफी तर्कसंगत प्रतीत होती है कि यह परिवर्तन गुप्त साम्राज्य का सामन्त परिवार था। इन सामन्तों ने अपने का महान् गुप्त सम्राटों का वैधानिक उत्तराधिकारी घोषित करने के लिए ही यह गुप्त नाम अपने नाम के बाद में जाना प्रारम्भ किया था। देश का जनता गुप्तज्ञान का महान् धनधायता एवं समर्थि की कर्त्तव्य मूल नहीं सञ्चनी थी। उनके लिए गुप्त नाम का जादू बहुत अय रकता था। परवर्ती गुप्तों ने इस स्थिति का दृष्टिगत कर पूरा नाम उठाने का प्रयास किया। अन्त में इस विषय पर कोई निश्चय सिद्धान्त का निर्धारण नहीं किया जा सकता। अतएव हम अध्याय के अन्त में विवरण का पूरा स्थापित तथ्य नहीं स्वाकार करना चाहिए। नए-नए अनुसंधानों एवं अन्वेषणों के पदचाल ही हम एक स्थिर मत पर आरुढ़ होंगे। अब हम सबसे पूर्व परवर्ती गुप्त नरेशों के मूल निवास स्थान के विषय में चर्चा प्रारम्भ करेंगे।

इस विषय में तो उतना विचार नहीं है कि आदित्यसेन के पदचाल से जीवित गुप्त द्वितीय तक के नरेशों ने मगध पर शासन किया था। विवाद के

सन क पूवजा का ही निर्धारण किया जाता है। आदित्यसेन का एक अभिलेख मगध म प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख म आदित्यसेन क पूवजा की वशावला का निर्देश भी किया गया है। इमा साध्य क आधार पर विद्वान न मगध का हा परवर्ती गुप्त नरेशा का शीघ्रात्पल स्वीकार किया है।

सबस पूव डा० फनीट (Fleet) न इन नरेशा का मगध क महान् गुप्त सम्राटा स पूवकत्व प्रदान करन क लिए हा परवर्ती गुप्त नरेशा का सना प्रमाण की था। परन्तु हानली (Hornl.) न इस मन का प्रचार किया है कि परवर्ती गुप्त नरेश महान् गुप्त सम्राटा की एक शाखा थ और पूर्वी मानवा म शासन कर रहें थे। वद्य (Vaidya) न लिखा है—

The family mentioned in the Apsbad inscription ruled Malwa at Ujjain until Devagupta  
डा० रायाकुमुद मुवर्जी क मा विचार यही हैं। उहान अपना तव इम प्रकार उपस्थित किया है—

The fortunes of Malwa and the family had a final set back in the defeat of Devagupta by Rajya Dr R K Mookerji  
डा० हमचंद्र राय चौधरा न यह तव प्रस्तुत किया है कि मालवा का शासन गुप्तवंश क हाया था परन्तु आदित्यसेन क समय मगध का यह थय प्राप्त ही जात है—

In the time of Adityasena Magadha now replaces Eastern Malwa as the chief centre of Gupta power

मानवा क गुप्त नरेशा का अस्तित्व बाण ने अपन ह्यचरित म प्रकट किया है। कुमारगुप्त एव माधवगुप्त राजकुमारा का उल्लेख हय एव राज्य क महयागिया के रूप म किया गया है। यह मालव नरेश क पुत्र प्रभाकर क दम्बार म वधन वश क युवराजा क सहपाठी थे। श्री राखालदास बनर्जी न Journal of Bihar I research society म इस तथ्य की सत्यता म किसी भी प्रकार का सन्देह नहीं प्रकट किया है। इसी प्रकार मधुवन अभिलेख म हय क एक प्रतिद्वन्दा नरेश दवगुप्त का निर्देश हुआ है। अफगढ़ आमलेख म माधवगुप्त नाम क एक नरेश का उल्लेख जा कि श्री हयक की सगति क लिए इच्छुक है। डा० मुवर्जी न अफगढ़ अभिलेख क माधवगुप्त की बाण क माधवगुप्त स एकारत्मकता स्थापित का है। इन प्रकार मालवा को परवर्तीगुप्ता का मूलस्थान प्रतिपादित किया है। इनक साथ हा माय यह भी बताया गया है कि मगध म उस समय परवर्ती गुप्तवंश का शासन मा नहा हा मक्ता था क्यकि मगध पर अय वश का आधिपत्य था। उस समय मगध मीगारिया क अन्तर्गत शासित हा रहा था। ह्वनगांग न मा मगध पर गुप्त नरेशा क आधिपत्य क विषय म कुछ भी नहा कहा है। इसन माधवगुप्त मगध का शासन नहा रहा था। था पियस (E. A. Piers) न मीगारिया का आधिपत्य प्राग्मन म ही मगध पर माना है। इस विज्ञान् ने मीगारिया को शताब्दिया पूव स मगध का निवासा थापित किया है। परवर्ती गुप्ता को मालवा का मूल निवासी बतात हुए इसन एी तर्कों को हमारे सम्मूह उपस्थित किया है। (१) इस तर्क के अनुसार अफगढ़ अभिलेख का माधवगुप्त तथा हयचरित का माधवगुप्त एक ही नरेश की आर इगित करता है। अणएक इस नरेश क पिता तथा अय पूवज मालवा क हा शासन थ। (२) अभिलेखा के

यह साक्ष्य उपस्थित किया है कि मगध पर मौखरिया का शासन था अतएव परवर्ती गुप्तों का उस स्थान पर शासन सम्भव नहीं। एक ही क्षेत्र पर दो राजवंशों का अस्तित्व साथ ही साथ असम्भव होता है। अतएव परवर्ती गुप्तों का क्षत्र मालवा ही था। इस प्रकार इन दो तर्कों से पियस महोदय ने अपने मत की पुष्टि की है। परंतु अन्य विद्वानों ने इन तर्कों की उभयसंगत नहीं स्वीकार किया है। विशय रूप से दूसरे तक की आलोचना करते हुए डा० रामश चंद्र मजूमदार ने कहा है—

Deo Bannika inscription does not prove the possession of Magadha or any part by the Maukharis kings Sarvavarman and Avantivarman the village granted might not be Varnnika (Deo Barnark) but Kishorevatika which might have been the Uttar Pradesh outside Magadha

पियस महोदय ने अभिलखा को मौखरी नरेशों के अस्तित्व का जो उल्लेख किया है वह ठीक नहीं है। देव बनाकर अभिलख हा म मौखरिया का निर्देश आया है। इसमें मौखरिया द्वारा अनुदान में लिए हुए एक ग्राम का वर्णन है। यह वर्णन विशार वाटिका का है। वार्षिक गाव को जनदान में नहीं दिया गया था बल्कि विशार वाटिका का। हय गाव उत्तर प्रदेश में स्थित है। अतएव मौखरी नरेशों से अवध में एव अवधित्वमनन मगध या उसके किसी भाग पर कोई आधिपत्य नहीं किया हुआ था।

इस प्रकार पियस एव अन्य विद्वानों का सिद्धांत दम तोड़ता चल रहा है क्योंकि नूतन अवधियों एव जनमधान ने हमारे सम्मुख नया ऐतिहासिक तथ्य प्रस्तुत किया है। इस प्रकार मालवा का हम अब परवर्ती गुप्त नरेशों का मूल स्थान नहीं कह सकते। आदित्यसैन के जफस में अभिलख में यह अंकित है कि महामेनगुप्त ने मुम्बित्वमन पर विजय प्राप्त की थी—

This mighty fame marked with the honour of victory in war over Sri Sushirvarman is still sung on the banks of the river Lauhitya

जब पूणतया यह स्पष्ट हो गया है कि मुम्बित्वमन कामरूप का नरेश था। यद्यपि इसके पूर्व ऐतिहासिक तथ्यों के अभाव में विद्वान इससे मौखरी वंश का मानते थे। डा० रामश चंद्र मजूमदार तथा डा० राय चौधरी ने लिखा है कि महासमगुप्त का कामरूप के मुम्बित्वमन पर विजय यह नहीं सिद्ध करती है कि महासमगुप्त मालवा का शासक नहीं हो सकता। मालवा का शासक होकर भी महासमगुप्त की आसाम के शासक पर विजय सम्भव है। तभी से राय चौधरी ने लिखा है —

Kumargupta had marched to Prayaga and Damodargupta had broken up the proudly stepping sarraiv of mighty elephants belonging to the Maukharis what was there to prevent the son of Damodargupta from marching on to Lauhitya

जब मालवा नरेश कुमार्गुप्त प्रयाग तक विजय प्राप्त करते में सम्भव था और जब दामोदर गुप्त मगध के मौखरिया का भी मतभस्त्व कर सकता था। तब महासमगुप्त क्या नहीं चाहित्य करता तब विजय प्राप्त करने में समर्थ था। महासमगुप्त पूणतया आसाम के शासक का परास्त करने में सामर्थ्यवान था। डा० राय चौधरी तथा डा० त्रिपाठी के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि कुमार्गुप्त एव महासम

गुप्त के पिता दामादरगुप्त का मगधपर भी नियंत्रण था क्योंकि प्रयाग तक अपना-साम्राज्य विस्तार करना एक मौखरिया को विजित करना मगध को अपन नियंत्रण में रखने का सुलभ है।

परन्तु हमारे उपयुक्त मंत्र के माग में सबसे बड़ी बाधा है स्व-वनाक के अभिलष का यह विवरण कि मौखरिया का प्रभुत्व मगध में स्थित था। इन मौखरिया में सुरजन दा नरशा के समय में सर्ववमन तथा अवतिवमन व—यह प्रभुत्व अधिक स्पष्ट था। महासन्गुप्त तथा सर्ववमन लगभग समकालीन नरेश थे। इससे हम यहाँ निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि दोनों नरशा ने मगध का भिन्न भिन्न समयों में शासन किया था। परवर्ती नरशा ने मा तो मौखरी शासन किया था। क्वल यह दा ही विवरण सिद्धा प्रवक्त है परवर्ती गुप्ती ने अप-कम से कम दो नरशा ने तो मगध के कु-सम्भवत उनका वंशजा ने इस प्रदर्श पर अपना शासन अनवरत रखा था। मौखरी नरेश ईशानवमन के साम्राज्यात्गत प्रयाग तक का भूभाग भी सम्मिलित था। महा-सन्गुप्त का कामरूप विजय से हम यह निगमन कर सकते हैं कि उसका प्रभुत्व असम-य में मगध एक बंगाल पर स्थित रहा होगा क्योंकि इतने प्रतापी नरेश के लिए यह दो प्रवेश मायनतिक दक्षिण महत्त्वपूर्ण थे। जब महामन गुप्त का पतन प्रारम्भ हुआ तबना मगध पर मौखरिया का आधिपत्य पुन स्थापित होना प्रारम्भ हुआ था।

इस प्रकार विषयों आदि महादमा का यह कहना कि मगध पर मौखरिया का हा आधिपत्य था अनुचित एक माय अनगत है। एक व्यवहारिक मंत्र के प्रतिपादन के लिए उपयुक्त निष्कर्ष हा अत्यधिक त्वसगत प्रतीत होता है। डा० राम चौधरी ने अपन का एक विषय पारस्थिति में डाल दिया है क्योंकि वह एक व्यवहारिक मंत्र का पिष्टपयण करते हैं। इस विद्वान ने महासन्गुप्त का ही पुन मगध में कामरूप तक परवर्ती गुप्त साम्राज्य स्थापित करने वाला बताया है। इस नरेश के पूर्व मगध मौखरिया के शासनान्तगत था। डा० चौधरी ने लिखा है—

All the Kings of Magadha the later Guptas were apparently confined to Malwa till Mahanagupta once more pushed his conquests so far as the Lauhtya

परन्तु डा० माह्व के इस मंत्र के मानने में तो यहाँ तात्पर्य होगा कि स्ववमन एक अवतिवमन का मगध पर प्रभुत्व न हुआ। परन्तु सर्ववमन एक अवन्विमन का मगध पर प्रभुत्व एक प्रकार से पूर्णतया सिद्ध हो चुका है। इस प्रकार दा नरशा का मगध में साथ-साथ राज्य करना असम्भव है। अतएव डा० राम चौधरी के मंत्र को हम मानने में असमर्थ हैं।

विषय में एक बड़ी ही निष्फण कल्पना का उदाहरण है यह बता कर कि महा-सन्गुप्त एक मगध के मौखरी नरेश ने मिलकर कामरूप के नरेश के विरुद्ध अभियान किया था। दक्षिण—

Maukhari King must have been glad that Mahasagnagupta had taken upon himself the dangerous task of sulduing the imperia

ambitions of the far eastern potentale Magadha emperor might have but some assistance and encouragement to Mahasena Gupta'

सातवीं शताब्दी ईसवी की सबसे महत्वपूर्ण बात है मौरियों एवं परवर्ती गुप्ता में प्रभुत्व के लिए प्रतिस्पर्धा। इन दो राजवंशों ने वचना के पतन के पश्चात् अपनी साम्राज्यिकता स्थापित करने की जो तीव्र कोशिश की थी। परन्तु यह दोनों राजवंश अपने प्रथम में असफल रहे थे। क्या यह भीषण शत्रु एक दूसरे से परस्पर स्तंहा लिंगन कर सकते थे? क्या एक साम्राज्य शत्रु के विरोध में यह दोनों विपत्ता एक हो सकते हैं? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक है। कामरूप पर विजय प्राप्त करने के लिए यह उचित ही है कि विजयी का शासन मगध पर भी हो। इतना दूर तक अपना अभियान ले जाने वाले नरेश के लिए अनिवाय सा है कि वह भारत के हृदय को भी जीते और विजय कर उस समय जबकि उस पर घातक शत्रुओं का आधिपत्य था। इस प्रकार मानवा के नरेश महासेनगुप्त का मगध तक शासन विस्तार था यह उचित ही है।

डा० बी० पी० सिन्हा ने अपने मत को जोर भा पुष्ट करने के लिए कुछ अर्थ ऐतिहासिक घटनाओं का आश्रय लिया है। इन घटनाओं में सबसे प्रमुख है जीवितगुप्त का समद्र के किनारे पर आक्रमण एवं हिमालय क्षत्र को विजित करना। अफसस अभिलेख में जीवितगुप्त के इस विषय अभियान का उल्लेख है। इस विजय से हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि जीवितगुप्त का साम्राज्य मुख्यतः इन्हीं क्षत्रों के समीप ही स्थित था। हिमालय के भाग एवं समुद्रीय तट तो केवल बंगाल प्रदेश के समीप ही स्थित थे। अतएव मगध ही जीवितगुप्त की क्रियाओं का केंद्र था इसमें कोई संशय नहीं। परवर्तीगुप्त नरेशों का मगध पर आधिपत्य होना इससे अधिक सिद्ध होता है।

कुछ विद्वानों ने पुनः अभिलेखों के विवरणों से हमारे प्रतिपादित मत को खण्डित करने का प्रयास किया है। वस्तुतः यह अभिलेख बड़े ही अस्पष्ट रूप से किसी सूचना को प्रकट करते हैं। रहा अभिलेख एवं देववर्मा अभिलेख से यही निष्कर्ष निकलता है कि उत्तर प्रदेश एवं बंगाल के राजसौही क्षत्र पर मौरियों का आधिपत्य था। इन दो प्रदेशों पर आधिपत्य होने से मगध पर आधिपत्य होना तो अनिवाय सा ही जाता है। अतएव मगध मौरियों के ही कार्यकर्ताओं का केंद्र था परवर्तीगुप्तों का नहीं।

हरहा अभिलेख में हम ईशानवर्मान के अभियान का निर्देश प्राप्त होता है। इस अभिलेख के अनुसार ईशानवर्मान ने भिन्न भिन्न प्रदेशों पर आक्रमण किए थे। ईशानवर्मान के यह आक्रमण केवल आक्रमण के लिए ही थे साम्राज्य विस्तार के लिए नहीं। अतएव गौरी आदि स्थानों पर उसके आक्रमण से हम मगध को उसके क्षेत्रांतगत नहीं मान सकते हैं क्योंकि यह तो तूफान की भाँति अस्थायी रूप से एक क्षत्र को पददलित कर देता था और तूफान के बाद पुनः धार्मिक का साम्राज्य छा जाता था। ईशानवर्मान के आक्रमणों से हम किसी भी प्रकार का कोई निष्कर्ष नहीं निकाल सकते अतएव हरहा अभिलेख में यह प्रतिष्पन्नित होना कि बंगाल का राजसौही क्षेत्र मौरियों के अंतगत था या अंतगत है।

अब केवल देववर्मा अभिलेख का साम्य ही हमारे सम्मुख रह जाता है। इस अभिलेख के विवरण से हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सबवर्मान के शासन अंतगत मगध पर मौरियों का प्रभुत्व स्थापित हुआ था। इस निष्कर्ष से हमारा यह



मत् प्रतिपादित करना कि परवर्ती गुप्त नरशा का मगध पर सबवमन से पूर्व राज्य था कोई तक असंगत निगमन नहीं होगा। हम कृष्णगुप्त के वंशजा को मगध के शासक के रूप में स्वीकार कर सकते हैं और यह शासन अनवरत रूप से महासमगुप्त के अन्तिम दिना तक स्थापित रहा था।

इसी स्थल पर हमारे पहुँच जाने के पूर्व भी हमारा अभी विपक्षिया का कई तर्कों का समुचित उत्तर देना अनिवार्य सा प्रतीत होता है। पायस एवं उनके अनुयायियों ने यह मत प्रस्तावित किया है कि मौखरिया का तो मगध पर शासन महान गुप्त सम्राटों के पूर्व ही स्थापित था। परवर्ती गुप्त नरशा की वीन वह बलिष्ठ महान गुप्त सम्राटों के उत्थान के पूर्व मगध क्षेत्र पर मौखरिया का अधिकार था। इन विद्वानों ने अपने इस मत के समर्थन में कौमुदी महात्सव का निवेश किया है। प्रयाग प्रशस्ति के बाट परिवार की एकात्मकता कौमुदी महात्सव के मगधकुल से ना गड़ है और इसी एकात्मकता का स्थापन कर मौखरिया का मगध का शासक घोषित किया गया है। परन्तु डॉ० बी०पी० सिन्हा आदि अन्य विद्वानों का कथना है कि कौमुदी मन्त्रोपदेश का एतिहासिकता का हम कदापि स्वीकार नहीं कर सकते। इस नाटक में हम कहा भी क्यों या मौखरी शासन प्राप्त हुए हैं तो हम कम एकात्मकता स्थापित करने में तत्पर हो सकते हैं। बिना बिना बात के अपने मत की पुष्टि में कल्पनाओं का उद्योग करने से इतिहास का निर्माण नहीं हो जाता। इतिहास तो बड़े सत्य एवं तथ्या का ही प्रमवद्ध विवरण है विद्वानों की कल्पनिक उपकल्पनाओं का नहीं।

पायस महोदय ने अपनी बहम का यही तक ही सीमित नहीं किया है। उन्होंने मयूरशमन के चन्द्रवली अभिलेख में मौखरिया का प्रारम्भिक कम्बु का ममकालीन बताया है और वे मगध पर शासन कर रहे थे। पायस महोदय की अपनी भाषा में—

The Chandevally inscription of Mayursarman has revealed the fact that the Maukharis ruled in Magadha in the time of early Kadamba.

परन्तु विद्वानों ने इस अभिलेख का प्रामाणिकता में ना सन्देह प्रकट किया है और इस प्रकार अप्रामाणिक या विवादास्पद प्रमाण का प्रस्तुत करना कमजोर आधार शिवा के ऊपर मबन खड़ा करना होता है और जिसका मान होना अनिवार्य ना है। ई० ए० शास्त्री ने अभिलेख की मत्थना में सन्देह करत हुए लिखा है—

This impossible record has all the appearance of a modern fake and its evidence should await confirmation before accepted as history.

आधुनिक जानमाजी के द्वारा ही यह अभिलेख प्रकाश में आया है क्याकि इस स्तंभ की भाषा एवं विवरण एतिहासिक तथ्या के पूर्व विपरीत प्रतीत होती है। हम इस प्रकार इस अभिलेख के आधार पर स्थित तर का कदापि स्थापन नहीं कर सकते। अभी प्रकार विद्वानों का यह कहना कि मौखरी साम्राज्य जिसका कि अखिरकाल प्रकट था न यशवमन के द्वारा स्थापित शासन के पञ्चान ही अपना महान मौखरी राजवंश प्रारम्भ किया था ना यशवमन नही प्रतीत होता। यशवमन एवं उसके वंशजा ने मगध में शासन किया था। पार्श्वतपुत्र पुर वंश पर मौखरियों की राजधानी थी—यह भी तथ्यगत नहीं है। यशवमन तो कोई स्थान परम्परा को स्थापित करने वाला नहीं था। बलिष्ठ महान गुप्त सम्राटों के सामने के रूप में यशवमन एवं उसके

परिवार के लोग ने शासन किया था। श्री एन० जी० मजूमदार ने लिपि विद्या (Ileography) के नियमों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि किसी भी यज्ञधर्मन के वंशज न सम्राट की उपाधि धारण नहीं की थी। अतएव इनके उत्तराधिकारी के रूप में हरिवर्धन एव उसके वंशजों ने किस प्रकार राज्य प्राप्त किया था? कहीं सामंत स्वतंत्र राज्य को उत्तराधिकार रूप में थोड़े ही प्रदान कर सकता है। पाटलिपुत्र मौखरी राजवंश के पूरे समय भर राजनगरी थी—यह कथन भी स्वीकार्य नहीं है। सक्ता क्या कि मगध को महासेन ने मौखरिया से विजित कर लिया था। अतएव पाटलिपुत्र मौखरिया की पूरी अवधि पर्यंत उनकी राजधानी नहीं रहा थी।

अतएव डा० वी० पी० सिंहा ने लिखा है—

There is nothing known so far which cannot be more reasonably explained and reconciled by holding that Magadha was the original seat of the power of later Guptas from the time of Kishkigupta to the Gupta's early days.

इस विद्वान् प्रतिपादितकार का उपयुक्त कथन पर्याप्त अवधि एव अनुसंधानों का ही स्वाभाविक परिणाम है। हम भी इसी मत को सिद्धांत रूप में स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं करना चाहिये।

गया के निकट अफस-अमिल्लेख में इस वंश के प्रारम्भिक नरेशों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं—

- |              |                             |
|--------------|-----------------------------|
| १ कृष्णगुप्त | ५ दामोदरगुप्त               |
| २ हृष्यगुप्त | ६ महासेनगुप्त               |
| ३ जीवितगुप्त | ७ माधवगुप्त                 |
| ४ कुमारगुप्त | ८ आदित्य सेन । <sup>१</sup> |

यह उपयुक्त सूची आदित्यसेन के अफस अमिल्लेख में दी गई है। जीवितगुप्त द्वितीय का देव-वरणान (शाहाबाद जिला) अमिल्लेख भी तीन अनुवर्ती गुप्त नरेशों के नाम प्रस्तुत करता है। देवगुप्त नामक एक गुप्त नरेश का उल्लेख हृष्य के बसखडा जीर मद्युवन अमिल्लेख में किया गया है। म्यारह अनुवर्ती गुप्त नरेशों ने कुश मिलाकर दो सौ वर्षों तक राज्य किया।

### कृष्णगुप्त

अनुवर्ती गुप्तों के राजकुल का स्थापना कृष्णगुप्त ने सबसे प्रथम मगध में की थी। अफस-अमिल्लेख ने कृष्णगुप्त के विषय में लिखा है—

Krishnigupta was a king of good descent whose arm played the part of a lion in bruising the foreheads of the array of the rutting elephants of his haughty enemies and in being victorious by its power over countless foes.

अफस-अमिल्लेख में कृष्णगुप्त के विषय में इतना ही विवरण है। यह नरेश स्वतंत्र था या किसी सम्राट का सामंत इसमें विवादास्पद है परंतु सामंत नरेश होने की अधिक आशाएँ हैं। उपयुक्त विवरण में हम कृष्णगुप्त को एक भोषण शत्रु से मुठभड़

का निर्देश प्राप्त होता है। यह शत्रु कौन हो सकता है इसकी एकात्मकता अभी तक स्थापित नहीं की जा सकी है। परन्तु तत्कालीन घटनाओं व समीक्षात्मक अध्ययन से हम यह निगमन कर सकते हैं कि हूणा न भारत के कई भागों में आते-मचाने लगे थे। मगध एवं वंगान पर भी उनके आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। कृष्णगुप्त ने इन्हीं आक्रमणों का जख्म भर जयपत्र प्राप्त किए थे। 'Haughty enemies' से तात्पर्य हूणा से ही हो सकता है। ४७० वीं पी० मि० में कृष्णगुप्त का मगध ४९० से ५०५ ई० तक का माना है। कृष्णगुप्त हरिवर्धन का समकालीन नरेश था। नरेश या नप उपाधि से हम विभी का सर्वप्रभुत्व सम्पन्न राज्य का सञ्चालक नहीं कह सकते हैं। हरिवर्धन कन्नौज के मोखरी वंश का प्रवर्तक था।

## श्री हपगुप्त

कृष्णगुप्त के उपरांत परवर्ती गुप्त राजवंश का दूसरा उत्तराधिकारी श्री हपगुप्त था। इस नृप की शासनावधि ५०५ ई० के मध्य निश्चित की गई है। इस नृप के विषय में अफसस अभिलेख में निम्नलिखित विवरण है—

*He was always displaying a glorious triumph the written record as it were of terrible contests*

श्री हपगुप्त भी महानगुप्त सम्राट का मामत था। नरसिंहगुप्त ने इसी समय मिहिरकुत के विरुद्ध विप्लव किया था। इस सामंत ने हूणा के विरुद्ध युद्ध में अवश्य ही अपने स्वामी का सहाय्य सहयोग प्रदान किया होगा। इस नृप के विषय में हम जोर कुछ भी नहीं पाते हैं।

## जीवितगुप्त प्रथम

श्री हपगुप्त के पश्चात् जीवितगुप्त प्रथम सिंहासनाहूट हुआ। ४७० मि० के अनुमान ५२५ से ५४५ ई० तक इस नृप ने शासन किया था। यह नृप कृष्णगुप्त का सामंत था। इसने अपने का क्षितीश क्षणामणि की सेवा प्रदान की थी। परन्तु इस उपाधि से उसका स्थिति के विषय में हम कुछ अर्थ न साधना चाहिए। इस नृप ने प्रथम बार कई अभियानों एवं आक्रमणों से अनुवर्ती गुप्तों की महत्वाकांक्षा को प्रस्तुत किया था। आदिपत्तन ने अपने अभिलेख में जीवितगुप्त प्रथम की महत्ता के विषय में लिखा है—

*As superman deeds are regarded with astonishment by all mankind like the leap of (the monkey of Hamumat) 'scen of wind from the side of (the mountain) ko havardhana*

हिमालय क्षेत्रों में तथा दक्षिण पश्चिम बंगाल में इस नरेश ने कई बार आक्रमण किए थे। परन्तु यह आक्रमण आक्रमण के लिए ही थे। इन आक्रमणों का विष्णुगुप्त के नाम से सञ्चालित किया गया था परन्तु अतः इसमें शक्ति की जीवितगुप्त की बढ़ी। मञ्जुश्री मूलवल्ग ने श्री अनुवर्ती गुप्तों की शक्ति का शासन घोषित किया है। निश्चित इस आक्रमण से अनुवर्ती गुप्तों का प्रतिष्ठा मजबूत हुई थी। जीवितगुप्त का ही महाराज श्रेय प्राप्त होना चाहिए।

## कुमारगुप्त

इस नरेश का शासन काल ५४० स ५६० के बीच निश्चित किया गया है। पर वही गुप्त नरेश। म यह प्रथम मवप्रभुत्वं सम्पन्न नरेश था और किसी भी सम्राट का सामत नहीं था। महान गुप्तों की पतनीमृत अवस्था स जवगत हा विभिन्न सामत नरेशा न अपन स्वतंत्र राज्य स्थापित करने की आकाशा म विचार करने प्रारम्भ कर लिए थ। गौतम नरेश स्थिति से सवप्रथम लाम उठाने का निश्चय किया क्योंकि उनका राज्य का दूरी की वजह स राजधानी से गीघ्न सप्रवहन ( Reinforcements ) नहा मज जा सकते थ। उन्हाने यहाँ तक कि गुप्त साम्राज्य पर भी आक्रमण कर दिया। कुमारगुप्त ने जो कि तत्कालीन गुप्त सम्राट का सामत था महान गुप्त साम्राज्य की सुरक्षा एवं एकता बनाए रखने के लिए पग उठाने प्रारम्भ कर लिए। अपन पग का साधकता के लिए किसा अय की सहायता अनिवार्य था। जतएव डा० बी० पी० सिंहा न लिखा है कि मोक्षरिया की सहायता के लिए अनुवर्ती गुप्तान आस तगई।

वमन का पिता था। मोक्षरिया एवं परवर्ती गुप्तों म प्रारम्भ म वी मेसजोल था। उनम परस्पर रक्त का स्नेहित सम्बन्ध था। ईशानवमन के पितामह आदित्यवमन ने श्रीहृपगुप्त की भगिनी हृपगुप्ता से विवाह किया था। हृपगुप्त कुमारगुप्त का पिता मह था। इन्ही कारण स ईशानवमन ने कुमारगुप्त की सम्यता की प्रायना स्वीकार का होगी या अपने स्वामी विष्णुगुप्त के आदेश के कारण स उस कुमारगुप्त का मह याग करना पडाहोगा। कारण जो भी रहा हो इतना तो इस सम्मिलित प्रयास का परिणाम निकला कि गौतम की पुरी तरह पराजय हुई और गुप्त साम्राज्य को मग करने का यह प्रयास असफल रहा। परन्तु महान गुप्त वश व न्ति अब वस्तुत इन दिने ही रण गए थ। अन्तिम गुप्त सम्राट विष्णुगुप्त की मृत्यु लगभग ५५१-५२ इ० म हा गई थी। इस मृत्यु क पश्चात महान गुप्त सम्राट विघटनकारी प्रवृत्तिया का गुप्त बन गया। मौखरी राजवंश एवं अनुवर्ती गुप्तवंश ने उत्तराधिकार के लिए विभीषण प्रतिन्दिता प्रारम्भ की। दाना राजवंश अपने को महान गुप्तों का वास्तविक एवं वयानिक उत्तराधिकारी बतात थ। इन्ही वयानिकता की नडाई ही म सम्भवत परवर्ती गुप्तान अपन नाम के आग 'गुप्त' विष्णुगुप्त जोन्ता प्रारम्भ किया था जिससे व महान गुप्तों का वयानिक उत्तराधिकारी अगीकार किए जायें। डा० बी० पी० सिंहा न लिखा है—

Their rivalry constitutes the main thread of the history of Northern India in the later half of the 6th C A D

सवप्रथम विजय था कुमारगुप्त को प्राप्त हुई। परन्तु इस विजय की प्राप्तिगता म भी स्पष्टता नहा है। अमिल्ल म आए इमा कयन स हम उपयुक्त मत की स्थापना करत हैं—

Like Mandar churned that formidable milk cream the cause of the attainment of the fortune which was the army of the glorious Isarvarman a very moon among Kings

इस विवरण से विभिन्न इतिहासकारों ने विभिन्न व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं। डा० रामाकुमुद मुक्जी एच श्री एन० क० ने तो कुमारगुप्त को पराजय का पात्र बताया है। उनके अनुसार मौवरिषा का ही सब से पूर्व विजय का मेहरा बोधा गया था।

कुमारगुप्त के उपरान्त दामोदरगुप्त भी एक प्रतापी नरेश था। अफम<sup>१</sup> अभिलेख से सिद्ध होता है कि दामोदरगुप्त ने भी मौवरिषा का पराजित किया परन्तु बाद में युद्धभूमि में उसका मृत्यु हुई<sup>२</sup>। डा० मजूमदार का विचार है कि अभिलेख के विवरण का सदिग्ध दृष्टि से दगन का कोई कारण नहीं है क्योंकि मौवरिषियों के पास इस बात का कोई उल्लेख नहीं प्राप्त होता कि उन्होंने अपने प्रतिद्विन्द्वियों पर विजय प्राप्त की थी। परन्तु इसमें विषय में डा० रामाकर त्रिपाठी का मत विन्तुन विपगत है। आप निश्चित हैं अफम<sup>३</sup> तब से विन्तित होता है कि दामोदरगुप्त मौगरा को बढ़ती हुई शक्तिमान राजा की रूप में पकित का तात्पर स्वयं सनाहान हा गया (जोर युद्धभूमि में ही मृत्यु का प्राप्त हुआ।) इसमें सन्देह नहीं कि दामोदरगुप्त का विजय का यह उल्लेख बचन पारस्परिक प्रशस्तिवाचक है। वास्तव में इस युद्ध का परिणाम उसके विरुद्ध था और वह स्वयं उस युद्ध में मृत्यु का प्राप्त हुआ था। (प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ २१६ पाठ लिप्पी ५)

चाहें दामोदरगुप्त की मृत्यु में पराजय हुई हो या नहीं इसमें कोई सन्देह नहीं कि इसमें उपरान्त अनुवर्तित गुप्त शासकों का शक्ति का बृद्ध मानवा में हा गया। दामोदरगुप्त का उत्तराधिकारी महामेनगुप्त था। ह्यचरित से ज्ञात होता है कि महामेन गुप्त पूर्वी मानवा चला गया और वहाँ पर अपने राजकुल की प्रतिष्ठापना की। मानवा अर्थात् सम्भवतः गुप्ता के ही अधिकार में था। परित्राजक महाराजाओं के अभिलेख यह सूचित करते हैं कि वे इस समय तक गुप्तराजाओं को ही अपना अधिराष्ट्र स्वीकार करते थे। मगसन गुप्त एक वीर और प्रतापी नरेश था। वह अपना विजय वाहिनी का आश्रय ले गया और सना के अन्वा का ब्रह्मपुत्र के जन का पान कराया। उसने वीररूप अपना आश्रय के राजा मुशितवमन के युद्ध में पराजित किया और अफसड-अभिलेख के प्रशस्ति वचना के अनुसार उसका प्रशसा के गान आज भी लोहित्य (ब्रह्मपुत्र) के किनारे गये जाते हैं। मगसनगुप्त के राज्य की सीमाओं के विषय में हम अपभ्रंशित कुछ निश्चित आधार मिल जाते हैं। 'ह्यचरित' में महामेनगुप्त का मालव नरेश कहा गया है। उसने ब्रह्मपुत्र के तट तक अपना विजय यात्रा की इसका उल्लेख हम अफसड-अभिलेख द्वारा प्राप्त होता है।

महामेनगुप्त के साथ पुष्यभूति वंश के नरेश आदित्यवर्द्धन का क्याचिन मन्त्रा सम्बन्ध था। प्रभाकरवर्द्धन की माता का नाम महामेनगुप्ता मिलता है जो सम्भवतः महामेनगुप्त की मंगिता थी। इस वैवाहिक सम्बन्ध के फलस्वरूप दाना राजकुल में मिश्रता स्थापित हो जाना अस्वाभाविक नहीं है। महामेनगुप्त ने अपने दो छोटे कुमारों

<sup>१</sup> दामोदरगुप्त की मृत्यु हो जाने का अनुमान प्लेटो के अनुवाद के आधार पर लगाया जाता है। परन्तु सप्रमाण चट्टोपाध्याय (D. B. Dhandarier *Commentation Volume p 161*) इस मत से सहमत नहीं है। उनका कहना है कि उभयतः दामोदरगुप्त की मृत्यु का बोध नहीं होता, बल्कि उसके बेटे की मृत्यु होने का मान होता है। प० चट्टोपाध्याय ने यह भी बताया है कि अभिलेख में दामोदरगुप्त की विजय का उल्लेख किया गया है, पराजय का नहीं जाता कि बतावे ने (*History of Northern India, p 123*) अनुमान किया है।

के मातृवा गुजरात के शेरका और तुकों को कई बार पराजित किया। उमक राज्य की पूर्वी सीमायें गया तक फैली हुई थी। पूव में उमका राज्य यगान व मना व राज्य का सीमा को स्पष्ट करता था अतएव इन दोनों राज्यों में परस्पर मधप हो जाना स्वाभाविक था। बगान व सनगजाया व माय गन्धर्व नरेश जयचन्द्र को चिरवा लीन लाना छिन्न गइ। पाला व पनन व उपरान्त उमन गया जिन पर अधिकार कर दिया किन्तु नरेशमण सननन कवन गया का पुत्र बग राज्य में मिताया अपितु इलाहा बाद जार बनारस तक अपना विजय पाहिला गया। भारत के लिए यह एक दुर्भाग्य की बात थी कि जिस समय उमका मामा का पार कर्क तुम प्रवेश कर रहा था उस समय उमक दा शक्तिशाली नरेश बगान व राजा नरेशमण मन आर कन्नौज नरेश जयचन्द्र आपस में ही लड़ते रहे गए और जयचन्द्र विजया आक्रमणकारियों का सामना न कर सका। पथ्वाराजगमा व अध्वयन में पता चलता है कि सामर व चौहान नपति व शराज वनीय उसका पुत्रो मरा गिता का स्वयंवर स्थल में भगा गया था और बाद में उमक माय विवाह कर दिया। जयचन्द्र और पथ्वाराज चौहान का पारस्परिक सम्बन्ध निस्सन्देह कर्नापुण था किन्तु इस बात का कोई विवमनीय प्रमाण नहीं है कि राजा जयचन्द्र न पथ्वाराज व विरुद्ध शहाजान मारा का महा यता की थी। इस विषय में पथ्वाराजगमा का माय तनिक भी विवमनीय जान नया पता जार जयचन्द्र पर शहाजान का आगमन यगाना उचित तथा तक सम्मत नगी प्रान्त जाता। दश पर विजया आक्रमण के रूप में आनवला भयकर आपत्ति का सामना करत के लिए एक सामा य मून में ब्रायन न हाने का दाय उस समय के समा हीन नरेशा के विरुद्ध उगाया जा सकता है कवन जयचन्द्र के ही विरुद्ध नया। परन्तु अपना राजनानिव मधता आर शशप्रमशू यता का दण्ड उने भारतीय राजाभा का मिल गया। जयचन्द्र भा म दण्ड स मुक्त नया रह सका। उमन माचा था कि शहा बुजान मारा प शराज चौहान का पराजित करके वापस लाने जायगा किन्तु गारा न ११० ई में पथ्वाराज का शराज कन्नौज व राज्य पर आक्रमण कर लिया। इस समय जयचन्द्र काफी बड़ हो गया था फिर भी अपना सना उकर उमने गारा व आक्रमण का सामना करत के लिए रणममि का जार प्रस्थान किया जार चत्वार शरा शहा व मदान में उमन जाकर मठमड का। वारतापूर्वक लड़ते हुये जयचन्द्र युद्ध ममि में मार गया। किन्तु उमक राज्य पर गारा ने अपना अधिकार नहीं जमाया और उमक पुन शरिचन्द्र का कन्नौज व राजनिष्ठापन पर बठा दिया।

गह्ववाला की अन्त--जयचन्द्र का राजसभा में सम्मेलन के प्रसिद्ध मन्त्राविश्रीहृप रत्न व जि गान नपवचरित नामक मन्त्राचार्य जार गणपन-वण्डवाद्य नामक तर्क प्र न का प्रणयन किया। जयचन्द्र के पश्चात् शरिचन्द्र ने भी कुछ समय तक अवश्य कन्नौज पर राज्य किया। गह्ववाला का शासन कन्नौज राज्य के कवन पूर्वी भाग पर कु म्निना तक और जारा रहा परन्तु सन १०२६ ई तक वह भी मुसलमानों के शय में चला गया। कन्नौज पर अभा तक एक सामंत का शासन था परन्तु सन १०६० में मस्तिन शाहक इरनुतमिषन ने इस पर अधिकार जमा लिया। इसका बाद भारतय शनिहाम में कन्नौज का का विजय राजनानिक मन्त्र नहा रह गया। परन्तु ने मका लण कर दिया और आज प्राचीन कन्नौज मन्त्र स्थिति में है। आर० डा वनर्जी का विवादा है कि मुहम्मद गारी ने कन्नौज पर कन्ना भी अपना अधिकार नया रक्वा था। परन्तु यह विवादा किया जाता था कि अपना पराजय के बाद गह्ववाला ने अरावला पवत का शरण ली और जावपुर पर शासन करनेवाले राठीर उी

का सन्तान थे। कम्बोज इंडियन हिस्ट्री में इस मत का खंडन किया गया और निम्ना है कि इल्लुतमिशा से पराजित हुआ जान के बाद गहड़वाल कुल का उदमलन हो गया। गहड़वाल-नरेश द्वादिगण धर्म के लगभग समस्त रूपों के प्रति मकिन आर आम्ब्या रणत थे। गाविचन्द्र और उसका रानी कुमान्दवी न वादधम के प्रति भी अपनी आम्ब्या दिग्गद।

### शाकम्भरी और अजमेर के चौहान

चाहमान वंश के अनेक राजपूत सरदारों ने आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अजमेर के उत्तर में सीमर यात्र के निकट सीमर (शाकम्भरी) नामक स्थान पर राज करने लगे थे। इस वंश का अग्र शाखाओं का राज्य जागरी आर खानपुर के मध्य मघीनपुर नामक स्थान में रणधम्मोर में और आवू पवन के उत्तर में नन्दल (नाल) में था या परन्तु ये वंश शाकम्भरी के चौहानों का तरुण विष्णु और महत्वपूर्ण नाल थे। इसी वंश के कुछ सरदार गुजर मन्त्रपाल द्वितीय के समय में उज्जैन के शासक के सामन्त थे। महाक चाहमान सरदार का नाम मद्रु प्रथम के सामन्त थे सीमर के चौहानों का ही तरह प्राचीन थे।

विषहाराज द्वितीय के वंश का प्रथम उल्लेखनाय नरेश था। उसने मन् ० ७३ के लगभग शासन करना प्रारम्भ किया और अपने राजवंश का स्वतंत्र स्थापित का। कहा जाता है कि उसने जित्तिवाड के मूलराज प्रथम का पराजित किया। पृथ्वीराज प्रथम ने मन् ११०५ ई० के लगभग राज्य किया। उसका पुत्र अजमेराज ने अजमेर में अथवा अजमेर न पर्व नगर का स्थापना की। उसने बारहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शासन करना शुरू किया। वह अपने कुल का प्रथम शासक था जिनमें एक जातिभण्डारिक साम्राज्यवादिना नाति का अवलम्बन किया। उसने उज्जैन पर आक्रमण किया और परमार मन्तानायक का बन्धु बना लिया। उसका निष्पत्ति अहं जाना है कि उसने युद्ध में तीन राजाओं का तनवार के घात उतार दिया। परन्तु हम इन घातों का विवरण प्राप्त नहीं है कि इन युद्धों के फलस्वरूप उसने राज्य की सीमा में कोई विस्तार हुआ था नहीं। अजमेराज के विषय में एक विचित्र बात यह है कि उसका कुछ भण्डार पर उसका राना सामन्तों का तम उदरण मिलता है। यह बात भारतीय इतिहास में उल्लेख ही कम मिलती है। अजमेराज के उपरांत अर्णोराज हुआ जिसका अमिता पर मन् ११२९ की तिथि भी हुई है। उसका जयसिंह मिहाराज और अहिन्वाड के कुमारपान से मध्य हुआ। अर्णोराज ने कुछ तुर्कों (अर्थात् पजाब के मुसलमानों) का जित्ति उमक राज्य पर आक्रमण किया था युद्ध में पराजित कर दिया और मार डाला।

विषहाराज चतुर्थ — विषहाराज चतुर्थ अथवा वासलव चाहमान वंश का एक अति प्रतापी और विष्णु नरेश था जिनमें चाहमानों की शक्ति का काफी बढ़ा दिया और एक साम्राज्य मत्ता के रूप में परिणत करने का प्रयत्न किया। मन् ११५३ ई० में विषहाराज चतुर्थ वासलद्व शाकम्भरी राजमिहामन पर बढ़ा। मन् ११५३ ई० में विजाला नामक स्थान से लगे लगे प्राप्त हुआ है जिनमें यह सूचित होता है कि उसने गहड़वाल से दिल्ली छोड़कर अपने राज्य में मिला ला। परन्तु कुछ विद्वानों का कथन है कि यद्यपि विषहाराज चतुर्थ एक बाल विजिता था और अपनी विजयों द्वारा उसने अपने राज्य की सीमा का पर्याप्त विस्तार भी किया तथापि उसका द्वारा दिल्ली विजय का बात प्रासंगिक नहीं मानी जा सकती। उसने जाबालपुर, नदहल और राज-

पताना के अन्ध छात्र छोट भू भागा पर अपना अधिकार कर लिया। ये राज्य कुमारपाल के अधीनस्थ थे अतएव उनका विजित कर विप्रहराज चतुय ने उग पराजय का वन्दना किया जो उसने पिता को चतुयका शत्रु मान लिया था। डा० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है कि अपनी उत्तरी विजया शत्रु विप्रहराज ने अमरकंटक का उपनिर्जन किया। उसने विन्दिता (विन्दी) का जीत लिया। इस काय के लिए उसने तामरा का पराजित किया। जिससे विजित करने के बाद वह पूर्वी पंजाब की ओर बढ़ा। उसने शिमार जिन्हे या पञ्चन शत्रु और पंजाब के गजनी तासरा की मैनाओ के ऊपर अनेक विजय प्राप्त की। विप्रहराज ने जापान में मन्त्रालय का विकास करने की जा गवोकिन का है उसने कुछ आविरेक जयय है यद्यपि प्रमाण्य स ह्यम रूप वाद का विशेष विवरण नहीं प्राप्त है कि उमने वहाँ ओर शिम पराज ममन माना को पराजित किया। विप्रहराज चतुय के लिए यह भी कहा गया है कि उमने हिमालय और विन्दिता के सर प्रस्थान जान। परन्तु हम एक बात अवश्य स्मरण रखनी चाहिए कि इस युग के जमिन्ना म जिन शत्रु का प्रयाग किया गया है उसमें अतिशयावित का पर्याप्त माया म समावेश है अतएव इन जमिन्ना म वणित या उल्लिखित प्रत्येक बात का हम गतिनामिक रूप नहीं स्वाधार कर सकते। परन्तु ऐसा प्रतान हाता है कि विप्रहराज शिवानिक की पहाडिया तक पहुंच गया था और उसने अनाक के एक स्तम्भ पर जपन रूप उत्कीर्ण कराया। उसने गजरात तक अपने राज्य की सीमा को बढ़ाया और जयसिन् मिद्वराज का पराजित किया। विप्रहराज चतुय के उखा स पता चलता है कि उसका राज्य उत्तर में शिवानिक की पहाडिया तक फैला हुआ था और दक्षिण में कन्न म कन्न उदयपुर और जयपुर जिन्हे को उमके राज्य की सामा स्पश करता था।

विप्रहराज चतुय प्राचीन भारत के राजपूत राजाशा का पक्षि म एक गौरवशाली स्थान का अधिकारी है। उसके कार्यों पर हमने ऊपर जो विचार किया है उससे इस बात में कोई संदेह नहीं रह जाता कि वह एक महान और उन्मत्त विजिता तथा अपने समय का प्रभावशाली नरेश था। परन्तु वह केवल विजेता ही न था उसने सुमश उससे एक ग्रन्थ हरिकेलि नाटक पर भी अवलम्बित है। वह स्वयं एक नाटककार था तथा विद्वान और कविया का अध्यात्मता भा था। उसके दरबार में सोमदेव रहता था जिसने अपने सरसक के सम्मान में ललितविप्रहराज नाटक का प्रणयन किया। विप्रहराज का विद्यानुरागिता भा विद्यात थी। उमने मानवा के भोज प्रथम का भाति आभेर म एक मस्कृत विद्यालय की स्थापना कराई थी। इस मस्कृत विद्यालय के स्थान पर आज एक मस्जिद खड़ी है जो विद्यालय का एक भाग शीवान तुम्बा के बनवाई गई थी। अजमेर का इन मस्जिद का नाम अगई दिन का शीपडा है। इसमें जड कुछ पापाण वष । पर हरिकेलि नाटक के कुछ अंश खुदे हुए दिवाराई पढते हैं। ललितविप्रहराज नाटक भा मस्कृत विद्यालय के मग्नाविनया पर उल्लेख मिलता है। विप्रहराज चतुय का श्रावण ११६४ ई म हुआ।

पथ्वीराज तततीय—बाहमान वंश का सबसे प्रतापा राजा पथ्वीराज तततीय था। डा० त्रिपाठी के शब्दों में इस राजा के चरित्र पर एक अद्भुत प्रमाण्य है जिसमें रोमांचक जनश्रुतिया और गाना का उस नायक का लिया है। डा० मजूमदार ने भी लिखा है कि भारतीय इतिहास में पथ्वीराज का नाम एक अन्ततीय स्वान को अतिवृत्त करता है। उत्तरा भारत के अन्तिम हिन्दू सम्राट के रूप में उसकी स्मृति ताकगाथाया म मन्नाहृत की गई है और उमने लोकायता को विपर प्रद न किया



है। चण्डिका नामक रघुवंशीय कवि ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य पद्मराज रामो में उस अमर बना दिया है। परन्तु जित रूप से यह पुष्पक उगल है उस रूप में इस उमर का जीवन का समकालीन और प्रामाणिक विवरण-ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। उसका जीवनचरित्र से सम्बन्धित एक अन्य ग्रन्थ है जिसका नाम पद्मराजविजय है। यह प्राचीनतर और अधिक विश्वसनीय ग्रन्थ है। परन्तु इसका कुछ ही अंश अभी तक प्रकाश में आया है।<sup>१</sup> मुस्लिम इतिहासकारों ने भी पद्मराज तथापि क विषय में अपने विवरण दिये हैं। समासाध्या का मित्राक्षर जिनमें अमित्रला का साध्य भी सम्मिलित है पद्मराज तृतीय का जीवन का मूल घटनाओं का प्रामाणिक और रामा चक्र-घटनाओं से रहित विवरण दिया जा सकता है।

पद्मराज तथापि एक महान विजय और रणवाहुरा सनानायक था। उमने परमान नामक चण्डिका राजा का पराजित किया और उमने ११८० ई० में उमका राजधानी में आश्रय लिया। चण्डिका नरेश के ऊपर पद्मराज चौहान की विजय का एक आभिव्यक्ति प्रमाण प्राप्त होता है। परन्तु उमका प्रयास होता है कि वह मद्रास पर अग्रिम समय तक अधिकार न रख सके। सन ११८३ ई० में उसने गुजरात पर आक्रमण किया परन्तु वहाँ उस विजय सफलता नहीं प्राप्त हो सकी और चानुसम नाम द्वितीय के साथ उमने संधि स्थापित कर लिया। पद्मराज तृतीय का महद्व काल नरेश जयचक्र के साथ शत्रुता थी यह हम पाठ कह सकते हैं। परन्तु इस शत्रुता की और इसमें सम्मिलित पद्मराज तृतीय की औपमयी प्रणय कथा का सत्यता की विषयी प्रामाणिक स्रोत द्वारा पुष्टि नहीं होता। कबल पद्मराजराजा में ही उसके सवागिता के साथ प्रेम और जयचक्र के साथ उमका शत्रुता का उल्लेख किया गया है कि तु हम स्मरण रखना चाहिए कि पद्मराजगमा के अधिकतर भाग की रचना सोलहवाँ और सत्रहवाँ शताब्दियों में का गई थी अतएव हम उम पर विश्वास नहीं कर सकते। पद्मराजविजय नामक संस्कृत ग्रन्थ में पद्मराज तृतीय के सम्बन्ध में जो विवरण दिये गये हैं वे पद्मराजराजा में उल्लिखित घटनाओं से बहुत कम मिलते मिलते हैं। पद्मराज रामो से हम कबल यहाँ एतिहासिक तथ्य प्राप्त कर सकते हैं कि पद्मराज और जयचक्र में पारस्परिक सद्भावना और सौहार्द का अभाव था।

पद्मराज का यह मुख्यतः इस बात पर अवलम्बित है कि उमने मुस्लिम आक्रमण का सफलतापूर्वक सामना किया यद्यपि देश में गण्टीयता की भावना के अभाव और अपनी ही राजनीतिक अदूरदर्शिता के कारण वह दुर्भाग्यमय आक्रमण के सामने ठहरना पड़ा। मुस्लिम गोरों ने पद्मराज का विजित कर देने के उपरांत पद्मराज चौहान के पास यह संदेश भिजवाया कि वह चौहान राजा के साथ मित्रता स्थापित करे। परन्तु पद्मराज ने जो इस समय घोषणा की

...ने क  
गोरी के  
... १५। मानकर वह चुपचाप  
... १५२५ लगा। जब मालवा गरी, पद्मराज के साथ की  
... सीमा में प्रविष्ट हुए और उमकी सजा का मन्त्र और उत्पीड़ित करने लगा ता चाहमान  
... राजा एक विवाह सन्ध कर उमका सामना करने के लिए आगे बढ़ा। तराइन के मैदान  
... में दोनों सनाओं की युद्ध हुई और एक मरकर युद्ध हुआ। युद्ध में मुगलमानों के  
... छात्र हुए गये और वे भाग खड़े हुए। गरी बड़ा कठिनार्थ से अपने कुछ विवाहसंध

१ डा० भार० सी० मजूमदार Ancient India (10 2) p. 61

सरदारों के साथ प्राण लेकर रणक्षेत्र से भाग निकला। वसन्त हुए प्रथीप की अंतिम प्रभापूर्ण शिवा की मूर्ति हिन्दुओं की यह अंतिम महान मूर्ति मफूतता थी।<sup>1</sup>

परन्तु इस गहरी पराजय सगरी तनिक भी हतात्मा नही हुआ वरन् अपनी इस अवमानजनक पराजय का बदला न के लिए बल्कि शतवचन रहने लगा। मध्य एशिया के पहाड़ी राजाओं की एक विधान मना एकत्र कर गरी न पुन अगली वष पथ्वीराज पर आक्रमण कर दिया। पथ्वीराज ने इस आक्रमण की क पना तक न की थी। इस आक्रमण और अपत्याशित विपत्ति से वह घबरा मा गया किन्तु माहम बटारकर उमन पडास के राजाओं का संगमता के लिए आमन्त्रित किया। फिरिस्ता नामक मस्लिम इतिहासकार का कथन है कि पना राजाओं ने उमरा संगमता की भी। किन्तु तब मा आक्रमण विपत्ति के सामने पथ्वीराज और उमक माया अधिक समय तक टिक नही सक। राजपूत मन्त्रि न कीर्तापूवक यद्ध किया परन्तु अंतमें उनका पराजय हा सहन करनी पडा। इस यद्ध में अनेक बार राजपूत सरदार खत रण। स्वयं पथ्वीराज मा बला बना डलया गया और उम तन्वार के घाट उतार दिया गया। शाकम्भरी और अजमेर के राज्य पर गारा न अपना अधिकार जमा लिया।

पथ्वीराज तताय के कार्यो और यकित्तव का मक्षिप्त विवचन कर लना आवश्यक प्रतीत होता है कयाकि लाकववाभा का आगार बनाकर कतिपय रणका न उसक यकित्तव का अतिरजनपूण वणन किया है। इसम म दह नही कि पथ्वीराज एक कीर विजता और साहसी सनातायक था किन्तु उसक समय में ही उत्तर भारतम उसक समान जय विजता और रणशर सनापति थ जिनक विषय में इतिहास विषय बातें नही जानना। पथ्वीराज के नामको लाकहृदय में जामिन करन का श्रम चदवरदाई को है जिसन उसकी वारता और प्रणय कयाभा का सम्मिधण करके उनका इतना अतिरजनपूण वणन किया कि साधारण जनता का पथ्वीराज का चरित्र बडा मनमोहक जान पडा। किन्तु जसा कि पहल कहा जा चका है चदवरदाई के वणना में एतिहीमिक सत्यता का परिमाण अत्यन्त स्वल्प है। डा० मजूमदार न लिखा है कि यह नही प्रतीत हाता कि पथ्वीराज न अपना राम सीमाभा का विस्तार किया अथवा महत्त्वपूण सैनिक विजयें प्राप्त का जसा कि विगत दा शताब्दिया में अनेक भारतीय नरशा ने किया मा। इस बात का मानन के लिए काई आधार नही है कि यह अपने समय के भारतीय नरशा में सबसे अधिक शक्तिशाली या सबसे महान सना नायक था।<sup>2</sup> स्वयं उसके ही वंश के शासक विपहराजचतुथ का यकित्तव

<sup>1</sup> It was the last great military achievement of the Hindus like the last glimmer of the lamp before it is finally extinguished

R. C. Majumdar Ancient India (1922) p. 369

<sup>2</sup> It Does not appear that Prithviraja enlarged the boundary of his kingdom or achieved conspicuous military victories such as distinguished many Indian kings during the preceding two centuries. There is no ground to suppose that he was either the most powerful of Indian kings or the greatest general of his age. The almost contemporary Muslim historians also do not convey any such impression.

R. C. Majumdar Ancient India (1952) p. 360

उसका अपना अधिक गौरवपूर्ण जान पड़ता है। विष्णु राज ने अपने राज्य की सीमा को बढ़ाया था। पर विजय प्राप्त की मुसलमानों का हराया हरिकलिनाटक दिवा कविया की मरहम प्रदान किया और विद्या का उन्नति करिण अजमेर में एक सम्भूत विद्यालय की स्थापना कराई। पृथ्वाराज के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व में विभिन्न और विद्या गुणा का समन्वय नहीं था जैसा कि हम विष्णु राज चतुर्थ और मानवा के माराज प्रथम में पाते हैं। यदि रामा के माध्य का ही मानें तो, कर्णापडगा कि पृथ्वाराज ने उनका पद कवन अपने अंतःपुर का मुन्त्रिया समान कर लिया था किंथा। परन्तु उस्ता कि ऊपर बता जा चका है कि पृथ्वाराज चौगन का यश हम एनिष्ठात्मिक धटना पर श्व लम्बित है कि उमन इहम्मद गारी के प्रथम आक्रमण का अपने वातुनव म विफल कर लिया।

पृथ्वाराज का मत्व के मातृ महम्मद गारा ने उनका पुत्र के अजमेर के मिहामन पर बना लिया और उस वापिक कर मजन के लिए विवश किया। परन्तु कुछ ही समय के बाद अपने चाचा के कारण उस अजमेर छाटकर रणधम्मौर चला जाता पठा। पृथ्वाराज के पुत्र ने रणधम्मौर में अपने एक नये राजपुत्र का स्थापना का जिनका अंत अनाउद्दीन विलजी ने मन १०११ में किया। प्थर कृतवदान ने हरिराज का पराजित कर चौहान वश का अंत कर लिया।

### बुन्दलखण्ड के चन्देल

प्रताहार साम्राज्य के ध्वमावगम पर जो राज्य उठ खड़े हुए उनमें जजाकभूवित (बुन्देलखण्ड) के चण्डला का राज्य सबसे अधिक गवितमाना था। विष्णुट स्मिथ नाह्व का मत है कि चण्डला का उन्मव गाठ और मरा के कवाला से हुआ था जोर उनका मून छतरपुर राज्य में वन ली के तट पर मन्दिगाठ था। परन्तु चण्डल लोग अपने ऋषि चन्द्राप्रथ का सत्तान मानते हैं। उनका कथन है कि ऋषि चन्द्राप्रथ का जन्म चन्द्रमा द्वारा हुआ था। अपने अन्तिमया में चण्डल राजाशा ने चन्द्राप्रथ का अपना वादि पुरुष माना है। सम्भवत इमी नाम के अवार पर उनका नाम चन्दल पडा। अन्तिम रस) में चण्डल राज जजाकभूवित के चन्दल कह गये हैं। जजाकभूवित का प्रदेश आयुनिक के उत्तरपुर्ण में था। अलवरुना ने इस जजाकभूवित कहा है। जजाकभूवित के प्रमुख नगर थे—छतरपुर महावा (महासव-नगर आयुनिक इमारपुर) कालिंजर और मज्जुराही। मज्जुरवाह्व या राजगण चण्डलराज्य की राजधानी थी।

नवा मताऽऽ के प्रारम्भ में मज्जुरा न छतरपुर के चण्डल अपना एक राज्य स्थापित कर लिया। मज्जुरा के पीछे जयगवित (जजा या जजाक) और दिजदगवित (दिजा या मिजग) थे। जयगवित के ही नाम के आधार पर चण्डलराज्य का नाम जजाकभूवित पडा। इस वश का प्रथम राजकुमार जिसने वाग्दिक स्वतन्त्रता प्राप्त का ह्य था। इहान महापात्र का १६ के राज्यकट आक्रमण के उपरांत कर्णापडगा पर विरम अधिकार करने में सफलता प्राप्त की। उमन महीपात्र प्रथम या क्षितिपल का उन्मव गण बसह म मा साय दिवा और उन्मव साट मारी म चण्डल विनाय के दिहसनयत कर दिया। ह्य के समय म चण्डला की इति ममुना तव पल गर्ज जा उनके आर कर्णापडगा के बीच की सीमा बन गई। ह्य ने साहमानदश का एक के या के साय विवाह किया था। उमही के दला की शक्ति और महानता का वास्तविक सरपदक बढ़ा जा सकता है।

मशीधमन—ह्य का पुत्र दर्शधमन या जिसने अपने का पूरा स्वतन्त्र थापित कर दिया। उमन गुजर के बापा क्षिति पहुँचाई। वह एक महत्वाकांक्षा नरेण था। प्रती

हार साम्राज्य की गिरती हुई अवस्था ने उसकी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए क्षेत्र प्रस्तुत किया। चल्या के विह्वल आक्रमण करने में वह बड़ा भाग्यवान प्रमाणित हुआ क्योंकि इसी आक्रमण के फलस्वरूप उस कालिङ्ग के प्रसिद्ध गड प्राप्त हुआ। यशोधरमन न उत्तर में यमन। तब अपने राज्य का विस्तार किया। तब उपरान्त उमन अपना विजय अभियान आरम्भ किया जोर अमिलवा के अनुभार उमने गोला रागना के भी रिया मयिना मालवा चल्या और गजराको परास्त किया। यह निश्चय है कि जमि नना के तब चक्रि अति चक्राण के तब चक्रि अति चक्राण नही कि यशोधरमन की शक्तिशाली बना यद्यपि चन्द्रेल तथा में अब मा प्रतीहार राजा को सम्राट् स्वीकार किया जाता था तथापि यशोधरमन याव हारिक हन में शासन के विषय में पूरा स्वतन्त्र था। यशोधरमन नगजुराहा के एक प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माता कराया और इसमें विष्णु भगवान की उम प्रतिमा की प्रतिष्ठित कराया जा उसमें देवपाल से प्राप्त की थी। यशोधरमन का मृत्यु के उपरान्त घग राजा हुआ।

घा—शत्रुघ्न शत। ी क अ न में गग उत्तर भारत के मदन नारी और शक्ति शान्ती नरेश के राजा। हमने शीघ्र चन्द्रेवा था कि यशोधरमन के ममन के तब प्रतीहार शक्ति का अशोक स्मारक को जती थी। घग न अराजक के २ न छयवेग को भी उदार केंद्र और अतीव पूरा स्वतन्त्रता कायित करती। उमक शासनकाल में चन्द्रेवा की शक्ति का बड़ा तजी स विकसित हुआ। ९५४ सन ई० तक उमका राज्य उत्तर में यमुना तक उत्तर पश्चिम में खालिङ्गर तक और दक्षिण पश्चिम में मितना तक फैल गया। खालिङ्गर और कालिङ्गर उनके हाथ में आ जाने से मध्य भारत में उमकी शक्ति का की सुदृढ़ हो गई। उसने सम्भवत इन्द्राहावा पर भी अपना अधिकार जमाया। अपने पचास वर्ष के सुगौणकालीन शासन में घग न प्रतीहार साम्राज्य के भूभाग को विजित करना आरम्भ किया और यमुना के उत्तर में दूर तक और पूव में बनारस तक अपने राज्य का विस्तार अमितावा में उमही अथ विजरा के भी उत्प्रेव किया गया है परन्तु उन विजरा का वगत से के ऊपर समाधारित न हाकर प्रशस्ति मात्र जान पड़ता है। सुकतगौत के विह्वल प्रभाव के गौरी नरेश जयपाल के पक्ष में हिन्दू राजाओं का नाम न निमित्त किया गया था उसमें चन्द्रेव राज घग मा सम्मिलित हुआ था। खजुराहो में उमने शिव मन्दिरों का निर्माण कराया जिनका नाम माकेश्वर और प्रमथनाथ पण। एक विद्वान् के कथन है कि खजुराहो के कुछ सुन्दरतम मन्दिरों का निर्माता घग ही था। सी वर की लम्बी आयु में गग के देवकमान प्रयोग में हुआ।

विद्याधर—घग के उपरांत उसका पुत्र गण्ड कर्ण राज्य का स्वामी हुआ। उसने भी अपने पिता का भाति महमूद गजनवी के विह्वल सगतिन किया गया हिन्दू राजाओं के सघ में भाग लिया था। जान दपाल (जयपाल के पुत्र) के अनुरोध पर महमूद के आग्रह भाग का सामना करने के लिए हिन्दू राजाओं ने अपना एक सघ बनाया था परन्तु यह सघ भी महमूद के प्रसार का रोकने में सफल न हो सका। गण्ड के विषय में अधिक ज्ञान की आवश्यकता नहीं। उमके बाद विद्याधर जजाकभक्ति राज्य का अधिकारी हुआ। विद्याधर ने महमूद के प्रति आत्मसमर्पण करने के कारण राज्यपाल प्रतीहार को घोर दण्ड दिया और कर्तोव्य के साम्राज्य को नष्ट करने का प्रयत्न किया। परमार नरेश मोर प्रथम और कलचुरि राजा कोरव न द्वितीय के साथ विद्याधर की शत्रुता थी परन्तु

उमक मामन इन राजाओं का शक्ति नुबूत थी। उमक प्रभाव चम्बल से लेकर नमदा तक फैला हुआ था।

राजकुमार कहा है और विद्यावर क मार गया हुआ। परन्तु विद्यावर ने काले

लई ही रणभूमि में भाग लिया था। अरिचक्राचार्य लखना के विवरण का अपन विवरण के अनुसार बनावतुएर मन्त्रालय लिखा है कि एक समय किन्तु अनिच्छया उमक मारा हुआ और चम्बल नगरी रात्रि क अवसर में रात्रि के दुष्टिकाग से पाठ हट गया। जगत्पति उन राजा से पुन सवय हुआ किन्तु मन्त्रालय को ग्वालियर तथा कलिङ्जर के विरुद्ध सफलता प्राप्त न हो सका। इनमें काई साहू ने कहा कि महमूद का इस बात का अनुभव हुआ गया कि विद्यावर के अगले चम्बल राज्य राज्य पाल के अगले प्रतीहार राज्य में बाका मिश्र और के अधिक शक्तिशाली था। मन्त्रालय ने बार चम्बल पर आक्रमण किया परन्तु लम्बे घेरे के बाद भी उनका दुर्ग पर अधिकार न कर सकने के कारण उस वापस हो जाना पड़ा। उसने विद्यावर के साथ मन्त्रालय स्थापित कर लिया। डा० मजूमदार ने लिखा है कि विद्यावर द्वारा जयपुर राज्य का विजय या जिन इन बात का गारव प्राप्त है कि उसने मुल्तान महमूद का विजयिण्यु प्रति का दूततापूर्वक राजा और उस सन्तुमूनिगुप विजयता के द्वारा विवरण के अन्त में अपन राज्य का बचा लिया। The Sultan afraid of penetra into the interior and each time to retreat without much gain and ultimately established a friendly relation with Vidvader who had thus the unique distinction of being the only Indian ruler who effectively checked the triumphal career of Sultan Mahmud and saved his kingdom from wanton destruction by that ruthless conqueror<sup>1</sup>

चरि नरेण गायक के उत्थानों चम्बल की शक्ति के विनास में बाधा पहुँचाई। उमक पुत्र उमकवर्ग के उमक के शक्ति न मा चम्बल का शक्ति का पयाग क्षति पहुँचा। मन्त्रालय की विजयता को विवरण होकर बुन्देलखण्ड का पहाडिया में शरण लेना पड़ा और उमकपुत्र देववर्ग को गायक के पुत्र के न मित्रमनच्युत कर दिया। के न मा की विवरण का अपना मन्त्रालय न करनी करने के विवे बाध्य किया। परन्तु ग्वालियर शक्ति के उत्तराद्ध में कानिबमन ने बाह्य माझा गाराल या महायवता में जने के की चम्बल के शक्ति और मन्त्रालय का पुन प्रतिष्ठापित किया।

की विवरण, मन्त्रालय और परमादि—कानिबमन का शक्ति के उत्थान का विवरण हम मन्त्रालय के प्रकाशक 'अर्थ' नामक से मिलता है। यह नाटक कृष्ण मिथ न लिखा था और कानिबमन का विवरण के उत्थान के यह सन्तुमपत्त अमिनीति किया गया था। की विवरण न कृष्णमिथ का अपना राजाथय प्रदान करने के अनिच्छित और भी साहित्यिक रूप में है। उमक मन्त्रालय में शिवमन्त्रालय और कानिबमन तथा अजयगढ़ में भी भवन बनवाये। की विवरण न महाबा और चम्बल के मन्त्रालय की सन्तु

<sup>1</sup> D. Naik History of Northern India (1906) Part II p. 601

वाइ। उत्तरी घात तीर्थ वचन एक ही (१००/ ) है। उमक वाच चत्न वश म मन्त्रवमन नामक उत्तरीय नरेश हुआ। मदनवमन न ११०० त ११६ तक शासन किया। उमक जमिनवा म पना चनता है कि गजरागे वादिज्जर मयावा और जियगड पर उसका अधिकार था। उसन मानवा गुजगत जीर वदि रयाति राया स सघप किया परतु गहवालो क माय उमका मभीपुण मन्त्र था। उमक राय की मोमार्थ वेतवा और वमना मिया राग निमित्त मती था। मानग मम्पुण वदेनवण्ड वन्त्राण्ड का उत्तरा माग जीर दक्षिण म जन्तपुर क पनाम का प्रेश उमके राय म सम्मिलित थ।

मन्त्रवमन के दाद उमका पीय परमातिव चत्न राय का जन्मपति बना। उसका प्रारम्भिक माय जीवन वना मन्त्र रया जीर मन चानकना म निरमा प्रदश छीन गया। परन्तु उम चानमान नरेश पध्वाजा ननाय के द्वारा ता पाजय महन करनी पडा उसन उमका शक्ति विकृत नूट ग। परमाति का मन्त्रवाता म कुछ सहायता प्राप्त म्त्र जिदक वन पर वद अपन राय का भगन शक्ति का पुन ठाव करना चाहता था परतु वृत्तनदीन एवक न १ २ म वादिज्जर पर घरा टानकर म्त्र अपन अधिकार म कर गया और टमर दप मन्त्रावा पर मा उमका अधिकार म गया। किन्तु धनोव्यवमन (१२०२-१४१) न १२०५ म वादिज्जर पर फि स अपना अधिकार जमा लिसा और पुन अपन वश का म्यापित किया। अनादान म्त्रिजी न १ ०९ ई० म चत्न वश की गन्मता का मन्त्रन किया परन्तु वादिज्जर पर चदेना का अधिकार बना रहा। रानी दुगावती जिमन अवन्त्र म युद्ध किया था एक चदन राजकुमारी ही था। वादिज्जर क द्य पर मरुतमाना का अधिकार १५६९ म जाकर म्त्रो पाया।

## मालवा के परमार

परमार वश की उत्पत्ति भी गजर प्रतीहारा का माति अग्निवृष्ण स वना जाती है। किन्तु अय अधिक प्राचीन लया स सिद्ध हुता है कि परमार शासक का उन्मव राष्ट्रकूटा क वृत्त म हुआ था। परमार वश की म्यापना उपद्र अथवा कृष्णराज ने दसवीं शताब्दी क प्रारम्भ म की था। पहल परमार लोग दक्कन क राष्ट्रकूटा के सामन्त थ। अनू पवत क निकट उपद्र रहता था। उस राष्ट्रकूट सम्राट गाविद ततीय ने मानवा का शासक नियक्त कर दिया। उपद्र के बाद उसके दो वशजा ने राष्ट्रकूटों के माणविक नपतिया क रूप में मालवा पर शासन किया और वे अपने स्वामी (राष्ट्रकूट सम्राट) के प्रति वफादार बने रहे। चौथे परमार सामन्त वाकपति राज प्रथम ने अपन वश का स्थिति का उप्रदन किया। बीरसिंह म्त्रिाय न घारा नगरी पर अधिकार किया और प्रतीहारा क साथ उसका सघप हुआ किन्तु उन्हाने उसको मालवा से निकाल बाहर कर दिया। उसके उत्तराधिकारि हथ सायक द्वितीय ने गजर प्रतीहारा की ज्ञासो-मुष्ठी राजमत्ता स पूरा-पूरा नाम उठाया और मालवा म फिर स अपन वश का सत्ता स्थापित का। उसन सम्भवत हूणा न मा युद्ध किया। ह्यसीयक द्वितीय न राष्ट्रकूटा का शक्तिवा गिरत हुए धक्कर उनस मा नाहा लिया। उदयपुर क एक अभिलख स पता चलता है कि माणविक क राष्ट्रकूटा क साथ उसका सघप हुआ और संहिग नामक राष्ट्रकूट-नरेश का पराजित कर उनन उसको विपुल सम्पत्ति का अपहरण कर लिया। साय लछा नामक प्राकृत शब्दप का प्रणता

घनराज हयमासक द्वितीय की राजममा में रहता था। सायक द्वितीय ने मालवा के स्वतंत्र राज्य का स्थापना का जो दक्षिण में ताप्ता नदी उत्तर में मालवर, पूर्व में मिनवा और पश्चिम में मावरमता से घिरा हुआ था। उसने सम्राटोचित विद्वान् भी धारण किए। उनका पुत्र वाकपति मुञ्ज अपन पुत्र का एक प्रतापी सम्राट था।

**वाकरति मुञ्ज**—वाकरति मुञ्ज ने मालवा के परमारा का शक्ति का वास्तविक रूप में विकास किया। अपने समय में वह एक मगध यादवा और अपन कुल का सबसे शक्तिशाली नरेश था। उसका सम्पूर्ण जीवन युद्ध और विजया में व्यतीत हुआ। उत्तरराज जमोदवदर श्रीवात्मम पद्मावतम आदि विद्वान् उनसे धारण किये। उदयपुर के अमिन्धम वाकपतिमुञ्ज का विजया का एक पूरा सूची दी गई है। सबसे पहले उसने विपुरा के राजा युवराज द्वितीय का पराजित किया। इसके बाद साट (पुजराट) कर्णिक चाल और करल के राजाओं को मुट्ट में परास्त किया। उसने उन हूणा पर जो मालवा के उत्तर पश्चिम में हूणमण्डन नामक एक छात्र प्रवेश पर शासन कर रहा था भी विजय प्राप्त की। हूणमण्डन नामक यह नव प्रदेस तारु-माण और मिन्धुल म विमान साम्राज्य का अंतिम अवशेष था। मुञ्ज ने नन्दुल के चाहमाना पर आक्रमण किया और उनसे आबू पर्वत और आधुनिक जयपुर राज्य के दक्षिण में उनके राज्य का छान लिया। उसने अन्हिलवादन में चालुक्य वंश के सत्यापक मूवराज का ना हराया।

अन पठान के राज्या का जीतने के उपरान्त मुञ्ज ने चालुक्य नरेश तल द्वितीय पर आक्रमण करने का विचार किया। इस समय तल द्वितीय की शक्ति काफी अशक्त हो गई थी। उसने राष्ट्रकूट सत्तकन के प्रभु जाल निमि था और मालवा पर अपना शक्ति का मिनक, जमाना चाहा। मुञ्ज ने तल द्वितीय का बहनी हृद् शक्ति की रक्षक के लिए उस पर छ बार आक्रमण किए परन्तु जब उसने सातवीं बार अपने जदुमता मनी के चतवना का उपाय का शक्ति से दबत हुए गाणवरी पार की ता वह बर्बाद बना लिया गया। उस कारणात्त में डार लिया गया। मुञ्ज ने बाहुर आन का योजनायें बना रखी थी किन्तु उसका योजनाया का मूचना उनका शन का निन गदजिनन उसका वर कर लिया गया। इस प्रकार राज्याराज्य के बीस वर्ष पश्चात्त ९०५ ई० में मुञ्ज का अपना दुर्ग अंत होना पडा।

राजपूत युग के हिन्दू नामक म मुञ्ज अपना एक विशिष्ट स्थान करता है यद्यपि उसका मर अत्यन्त दुर्ग परिस्थिति में हुई। वह एक मगध विजता था, यह हम ऊपर देग चुक है। साहित्य में मुञ्ज का उत्तम प्रवृत्ता में प्राप्त होता है। महर्षि के प्रबोधचिन्तानि नामक ग्रन्थ का अन्त कथाया का वह चरितनायक है। मुञ्ज स्वयं कवि था और उनके द्वारा रचित पद्य का मकलन काव्य-मयूहा में मिनता है। कलाशास्त्र साहित्य के बहु महान मगधक और पश्यक था। मन्त्रय ह्यायुष पनिक और पद्यपुत्र नामक कवि उसका राजममा का मुद्रांनित करत थे। पद्यपुत्र ने 'नव माहर्षि चरित और घनञ्जय न दारुपक नामक ग्रन्था का प्रपदन किया। पनिक 'दाहर्षावतार' और ह्यायुष 'अनिमानरत्नमाना' तथा 'मनवीवर्ती' के रचयिता थे। मुञ्ज के लिए यह भी कहा जाता है कि वह एक उपाय नामक था। उसने अन्त बड-बड जनन मद्यक और कई मन्त्रि का निर्दान किया।

मुञ्ज के पश्चात् उसका भाइ मि दुराज मन्वका के मन्त्रिमहासुन पर बडा। उसने चातुस्य राज का परास्त कर अपने भाइ हुए राज्य का छिद्र से अधिकार में

कर लिया। कहत हैं कि उसने दूषा और लाटा क विरुद्ध यद्ध किया। सिंधन अथवा सिंधु राज का शासन अत्यन्त स्वल्प काल तक ही रहा।

**भोज**—भोज का नाम मनुवृत्त साहित्य म अमर है। भारत क सबसे विख्यात और लोक प्रिय शासन म भोज की गणना वा जाता है। उसका शासन काल अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक समय तक रहा। भोज अपन समय का एक पराक्रमी यादवी था किन्तु अपनी मजिब मरुतता का डराव व अपन राज्य का सीमा का विस्तार अधिक न कर सका। हाँ यह अवश्य है कि भोज क मर्ति क कर्मों न ममकानान नरशा के प्रीच उमकी स्याति जमाती। भोज ने कल्याणा क चालुक्य नरेश ज्यमिन् द्वितीय को परास्त करके मञ्ज का हार का बदला लिया। भोज ने कालिंग क गणना क एक सामन्त इन्द्रिय और उत्तरी काकण क ममरा का हराया। मागध और गजद्र कोल स उसन मित्रता स्थापित की जिसम व अपन विरुद्ध दक्कन क चालुक्या स सहाय न सक। प्रारम्भ म तो भोज का अवश्य मरुतता प्राण्य हुई किन्तु बाद म अपन मित्र राजाओं क साथ पाछ नौटन क लिय उस दिक्कत हाना पडा। चालुक्य राजा सीमवदर न भोज क राज्य पर आक्रमण करके उसम बदला लिया। माण्ड का सुभद्र दुम उज्जैन का प्रसिद्ध नगर और परमार राज्य की राजधानी धारा नगर इन सब पर साम वर का अधिकार नो गया और उसन इनका सब नटा गमाटा। चण्डेला म्वालपर क कच्छपपाटी और कन्नौज क गण्डकटा क विरुद्ध यद्ध म उस विफलता ही प्राप्त ह। शाकम्भरी क चालुक्य नरेशा क विरुद्ध यद्ध म उस कुछ सफलता प्राप्त हुई। नदुल क चालिमाना द्वारा उस गण्य पराजय सन वरना पना। भोज न गजरात क भीम प्रथम तथा नाट क कानिराज को परास्त किया। कहत हैं कि उसन एक बार मन्दिम सेना क विरुद्ध भी यद्ध किया और दूषा क ऊपर उसका द्वारा आक्रमण किय जान का उत्तम मित्रता है। जयपुर की प्रशस्ति म भोज का विजयो का अनिरुद्धनपूण वणन है और उस का नाम तथा मय का मर्म का विजता कहा गया है। निम्न दह यह प्रशस्ति ऐतिहासिक तथ्य स दूर है। वास्तव म भोज का युद्धा म कितनी विजयें प्राप्त हुई लगभग त्तरी ही पराजयो का भा उसन महन किया। हाँ यह अवश्य है कि एक सच्च और का मीति भोज न जय पराजय का विषय महत्व नथी लिया। अपनी विजया द्वारा उसन अपन समय क राजाओं का आनक्ति किमा और साथ ही साथ उमकी पराजयो ने उसका मय जीवन पर अपयश भा लगाया। उसके सनानायक कुचन्द्र मीद आर मुरादित्य न उसके राज्य प्रसार म अपना महत्वपूर्ण योग दिया। भोज का राज्य उसका म नवर नातिक तक और क रा से लकर मिलसा तक फटा हुआ था। अपन सय जीवन म भोज का एक दुख अत देपना पडा।

अपने पश्चिम क परासा राज्य चालुक्य क विरोध म भोज का प्रारम्भ म कुछ सफलता प्राप्त हुई, परन्तु चालुक्य नरेश भीम न भोज का सामना करन म चतुर कूटनीति का अवलम्बन किया। उसन भोज क पूर्वोप पडना राज्य कन्दुकि स मित्रता स्थापित कर ना। कलचुरि नरेश कण का नाम लकर भीम न पूव और पश्चिम दोनों दिशाओं स भोज क राज्य पर घावा बान दिया। इस आक्रमण का साधना करन की भोज न तमारा का परन्तु वह काफी बद्ध ही बना था और आजीवन युद्ध करते रहन स उसका शरीर भी क्षिप्त हा गया था। अतएव उस राग ने घर दबाया और कट कसार से चम बसा।



भाज की रचनाित उसके युद्धों के कारण नहीं बरन् उसकी विद्यानुराग, उसके प्रकाण्ड पाण्डित्य विद्या और साहित्य के सबद्धन में उसके योगदान एक लाख कल्याण के लिए धिय गम कायों से है जो आज भी उसकी कीर्तिलता का भूषण नहीं दे रहे हैं। भाज का इतन अधिक और विभिन्न विषयों के ग्रंथों का रचयिता बनाया गया है कि उनका भाज द्वारा प्रणीत मानने में सादर उत्पन्न हान लगता है। चिकित्सा गणित ज्यामिति काय वास्तु अलंकार आदि विषयों पर उसके ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। कुछ ग्रंथों के जो भाजरचित मानाय गये हैं नाम इस प्रकार हैं, आयुर्वेद सचरथ राजमहाक 'यवहार समुच्चय शदानुशासन 'ममरागण सूत्रधार' सर स्वती कण्ठाभरण नामक लिखा युक्ति कल्पतरु इत्यादि। सम्भव है कि इन समस्त ग्रंथों की रचना भाज ने ही की है परन्तु इस बात में सन्देह नहीं किया जा सकता कि वह एक महान् और विख्यात लेखक था। कौय महादय ने लिखा है कि इस बात के लिए हमारे पास वास्तविक सूचना का अभाव है जिसके आधार पर हम उस विभिन्न विषयों की पुस्तकों का रचयिता मानने में अस्वीकृति प्रकट करें।<sup>1</sup> भाज ने रामायण चम्पू नामक ग्रंथ लिखा जिसमें गद्य और पद्य शैली का मिली विद्यमान है। सर स्वती कण्ठाभरण और शृंगार प्रकाश नामक ग्रंथों का रचयिता भी है। विद्याना के बावजूद इन ग्रंथों का अधिक सम्बन्ध नहीं है। युक्ति कल्पतरु में नीति या राजनीति के विषय का सम्बन्धन की चेष्टा की गई है। कहा जाता है कि राजा भाज ने अथ और उनके राजा के सम्बन्ध में भाषण प्रस्तुत किया था। राजमातण्ड नामक पुस्तक में उसने यत्नपूर्वक पर टीका लिखी और चित्त बलिगिराय पर अथ के दृष्टियों में विचार किया। तत्त्वप्रकाश में भाज ने गद्य पद्य के सिद्धांत का विवरण किया। 'समरागणसूत्रधार' नामक प्रसिद्ध पुस्तक में उसने वास्तुतया नगरों के दमन इत्यादि में सम्बन्धित विषयों का विवरण किया। भाज विद्या का महान् प्रामाणिक और मर्यादक था। उसने पारसिक कलाओं का एक महादिव्य दय बनवाया जहाँ दूर दूर के विद्यार्थी अपनी वास्तविक विषयों का ज्ञान करते थे। इसका दावान्त से बहुमूल्य रचनाओं में अभिव्यक्ति अथ प्रसिद्धि एवं उपलब्धि है। इस विद्यालय की इमारत का अब भी मजबूत स्वरूप है। मालवा के नवगोत्र ने इसके स्थान पर मस्जिद बनवा दी। भाज का राजसमा में अथ विद्यान रक्षा के तीर्थ। उसकी राजसमा के विद्याना में घनपाठ और उसके मार्ग शासन का नाम अधिक प्रचलित है। सम्भवतः सातवां नाम के विविधों का भी राजा भाज का संरक्षण प्राप्त था। यह सम्भव है कि अथ के विद्यान् भी भाज के राज दरबार का सुशोभित करत रहे हों। परन्तु दुर्भाग्यवश हम उनका नाम तथा परिचय जान नहीं। विद्याना के प्रति भाज की उत्तमता और दायित्वता के सम्बन्ध में संशुद्धि में अथ कि दृष्टियों तथा तथे के कारणों दिखते हैं जो महान् सिद्ध करती हैं कि इस राजा ने तत्काल के ज्ञान का ज्ञान लिया था। जो भाज एक सामान्य शासक और विद्वान नहीं था। उसने भूमिगत का ज्ञान के साथ साथ साक्षात् कृत्यों की मार्ग ज्ञान का प्रयोग किया था और उस अर्थ में पहल प्रयत्न में तत्कालिक सफलता प्राप्त हुई किन्तु अर्थ में दूर और अधिक गौरवपूर्ण प्रयत्न में उस पुरी सफलता मिली। आज उसका स्मरण यहाँ रहा कि तत्कालिक साहित्य के इतिहास में उसका नाम

1 We have no real knowledge to dispute his claim to poly-  
matically established in a large variety of works. *A History of Sanskrit  
Literature* (II, 5) p. 53

कर लिया। कहते हैं कि उसने हूणा और नाटा क विन्द युद्ध किया। सिन्धु न अथवा सिन्धुराज का शासन अत्यन्त स्वल्प काल तक ही रहा।

**भोज**—भोज का नाम संस्कृत साहित्य में अमर है। भारत में सबसे विख्यात और लोकप्रिय शासक में भोज की गणना का जाता है। उसका शासन काल अठ्ठा शताब्दी से भी अधिक समय तक रहा। भोज अपने समय का एक पराक्रमी यादवी था किन्तु अपनी सैनिक सफलताओं के द्वारा वह अपने राज्य का सीमा का विस्तार अधिक न कर सका। हाँ यह अवश्य है कि भोज के सैनिक कार्यों में समकालीन नरेशों के बीच उसकी ख्याति जमा दी। भोज ने कह्याना के चालुक्य नरेश जयसिंह द्वितीय को परास्त करके मज्ज का द्वार का बदला लिया। भोज ने कनिष्क के गडडा के एक सामन्त इन्द्राय और उत्तरी काकण के शासकों का हराया। गणपदक और राजद्रोह से उसने मित्रता स्थापित की जिससे वह अपने चिरशत्रु दक्षिण के चालुक्यों से मुलाहा ले सका। प्रारम्भ में भोज की अवय सफलता प्राप्त हुई किन्तु बाद में अपने मित्र राजाओं के साथ पीछे लौटने के लिये उस निर्विशेष होना पड़ा। भोज ने चालुक्य राजा सोमेश्वर ने भोज के राज्य पर आक्रमण करके उसने बदला लिया। माण्ड का सुभद्र दुर्ग उज्जैन का प्रसिद्ध नगर और परमार राज्य का राजधानी धारा नगरी इन सब पर सामेश्वर का अधिकार हो गया और उसने इनका खूब भूटा पसन्ना। चन्देना ग्वालियर के कच्छपघाटी और कन्नौज के गणकूटा के विरुद्ध युद्ध में उसकी सफलता ही प्राप्त हुई। शाकभूमरी के चाहमान नरेशों के विरुद्ध युद्ध में उसकी सफलता प्राप्त हुई। नदुन के चाहमानों द्वारा उस गहरी पराजय सहन करना पड़ी। भोज ने गुजरात के भीम प्रथम तथा नाट के कीर्तिगज को परास्त किया। कहते हैं कि उसने एक बार मन्दिम सेना के विरुद्ध भी युद्ध किया और हूणा के ऊपर उसके द्वारा आक्रमण किये जाने का उत्तलख मित्रता है। उदयपुर की प्रशस्ति में भोज की विजयों का अतिरजतपूर्ण वर्णन है और उस कलाम तथा मलय की भूमि का विजयता कहा गया है। निस्सन्देह यह प्रशस्ति ऐतिहासिक तथ्य से दूर है। वास्तव में भोज का युद्ध भक्तिना विजयें प्राप्त हुई लगभग उत्तरी ही पराजयों को भी उसने सहन किया। हाँ यह अवश्य है कि एक सच्चे वीर का भाँति भोज ने जय पराजय का विशेष महत्त्व नहीं दिया। अपनी विजयों द्वारा उसने अपने समय के राजाओं का जातकित किया और साथ ही साथ उसकी पराजयों ने उसके सय जीवन पर अपयश भी लगाया। उसके सेनानायक कुन्धद्र साद और मुरादित्य ने उसके राज्य प्रसार में अपना महत्त्वपूर्ण योग दिया। भोज का राज्य बसवाणा में लेकर नामिक तक और करा से लेकर मिलसा तक फैला हुआ था। अपने मय जीवन में भोज का एक दुखद अन्त देखना पड़ा।

अपने पश्चिम में पड़ोसी राज्य चालुक्य के विराट में भोज को प्रारम्भ में कुछ सफलता प्राप्त हुई परन्तु चालुक्य नरेश भीम ने भोज का सामना करने में चतुर कूटनीति का अवलम्बन किया। उसने भोज के पूर्वोपपन्न राज्य कलचुरि से मित्रता स्थापित कर ली। कलचुरि नरेश कण का साथ लेकर भीम ने पूव और पश्चिम दोनों दिशाओं में भोज के राज्य पर धावा बान दिया। इस आक्रमण का सामना करने की भोज ने तयारी का परन्तु वह काफी बद्ध हो चला था और, आजीवन युद्ध करते रहने से उसका शरीर भी शिथिल हो गया था। अतएव उस रात ने घर देखा और वह ससार से चल बना।

भोज की ख्याति उसका युद्धों के कारण नहीं बरन उसका विद्यानुराग उसके प्रकाण्ड पाण्डित्य विद्या और साहित्य के संबद्धन में उसका योगदान एक लाख कल्याण के लिए किये गये कार्यों से है जो आज भी उसकी कीर्तिलता का सुरक्षान नहीं दे रहे हैं। भोज का इतना अधिक और विभिन्न विषयों के प्रयाग रचयिता बताया गया है कि उनका भोज द्वारा प्रणीत मानन में सदेह उत्पन्न होने लगता है। निकरिता गणित ज्यामिति काय वास्तु अलकार आदि विषयों पर उसका प्रयाग जल्लेख किया गया है। कुछ प्रयाग के जो भाजकरचित कृत्य गये हैं नाम इस प्रकार हैं आमुर्वेद संवत्स राजसभा के 'यवहार समुच्चय' शादानुशासन 'समरागण सूत्रधार' सर स्वती कण्ठाभरण नामक लिका युक्त कल्पतरु इत्यादि। सम्भव है कि इन समस्त प्रयाग की रचना भोज न न की हो परंतु इस बात में सदेह नहीं किया जा सकता कि वह एक महान् और विख्यात लख था। काय महोदय ने लिखा है कि डम दान को लिए हमारे पास वास्तविक सूचना का अभाव है जिसके आधार पर हम उन विभिन्न विषयों की पुस्तकों का रचयिता मानन में अस्वीकृति प्रकट करें। भोज ने रामायण चम्पू नामक ग्रंथ लिखा जिसमें गद्य और पद्य शतों का शालिया विद्यमान है। सर स्वती कण्ठाभरण और शृंगार प्रकाश नामक ग्रंथों का यशस्व क है। विद्वानों का वाच इन ग्रन्थों का अधिक समादर होता है। श्री कल्पतरु में नाति या राजनाति के विषय का समझान की चरटा का गई है। कहा जाता है कि राजा भोज ने जवा और उनका रागों के सम्बन्ध में भी एक पुस्तक लिखा थी। राजमानण्ड नामक पुस्तक में उसने यामयुग पर टीका लिखी और चित्त वल्लिनिराज पर एक कृष्टिया से विचार किया। तरुप्रकाश में भोज ने शकधर्म के सिद्धांत का विस्तारण किया। समरागणसूत्रधार नामक प्रसिद्ध पुस्तक में उसने वास्तु तथा नगरों के रसन इत्यादि से सम्बन्धित विषयों का विस्तारण किया। भोज विद्या का महान् प्रासाहक और सरक्षक था। उसने धारा में सरकृत का एक महा विद्यालय बनवाया जहाँ दूर दूर के विद्यार्थी अपनी वादिक पिपासा शांत करन थे। उसकी दीवाला से बहुमूल्य रचनाओं से अभिर्निमित्त अनेक प्रतिर खण्ड उपलब्ध हुए हैं। इस विद्यालय की इमारत के अगल में एक शाला कृत है। मालवा के नवाबाने इसका स्थान पर मस्जिद बनवा दी। भोज का राजसमा में अनेक विद्वान रहे क तथ। उसकी राजसमा के विद्वानों में धनपाल जयसंघ भाई शामन का नाम अधिक से उल्लेख है। सम्भवत साता नाम का बविदिधी का भी राजा भोज का सरक्षण प्राप्त था। यह सम्भव है कि अथ अनेक विद्वान भी भोज के राज दरवार का सुशामित करत रहे हों परंतु दुर्भाग्यवश हम उनका नाम तथा परिचय ज्ञात नहीं। विद्वानों के प्रति भोज की उदारता और दानशालता के सम्बन्ध में सरकृत में अनेक बिवदलियाँ तथा लक बंधार्यो दिद्यमान ह जिनमें मिद करती है कि इस राजा ने न बहुदय का जीत लिया था। राजा भोज एक साधारण शासक और विजिता नहीं था। उसने भूमिगत का जितन के साथ साथ लता के हृदय की भाजातने का प्रयाग किया था और उस अपन पहल प्रयत्न में तो यकिचित्त सफलता प्राप्त हुई किंतु अपन दूर और अधिक गरदपृथ प्रयत्न में उस पूरी सफलता मिली। आज रफका साधना य नहीं रहा कि तु सरकृत साहित्य के इतिहास में उसका नाम

1 We have no real knowledge to improve his claim to polygraphy exhibited in a large variety of works. *A History of Sanskrit Literature* (1928) p. 83

ध्वज अमर है। विना और कविता के आश्रयगत, कला मत्तम उनमें भी अधिक परिमाण में एक सजनगील साहित्यकार के रूप में मात्र का मन्वृत साहित्य का विद्यार्थी बड़ा और आदर के साथ स्मरण करता है। यह मचनुव विष्णय को वात है कि भोजकानाम रसूत के अरर म क वरा क लि म नश भवनूत क म व समुक्त विशागया है। स्पष्ट है कि उत्तरक सत्र में जा लाक ० मारे प्रचिना है उनम एतिहासिक तथ्य वुन ो पून पारनाग म विद्यन न है कि तु उनसे मात्र का लोक प्रियता क परिचय प्राप्त हात है।

भोज के लोक क याग स बंधो काय—राज्य मात्र आज्ञावन यद्वाणि कयो म अस्त या तरावि उपो अने सु मर लात शासत का वि हुन पर न जन गिया। उसने उन क रों को कल को आर ध्यान गिया जितने राज क व याग हात है और शासक क यश म अभिवद्धि ता है। अने राज्य भर म मन्दि क निमा करा क उसन अनी वमा रागा राज का प्रगत जिन को ओर राज्य को सज या। उसन भोजपुर नामक नार बस य ओर इसके निक एक व उ वरा यो न खगइ। यन्तीत २१० वा मीन क क्षत्र म वरी था। इसर निमा जिन सु र तराके स विशा गरा या उसन उन समय क इन्जो निरा को कायनिगुन का परिचय मिला है। मलय क मुनान हगा श न व र्वा श न म न ज्ञान का सुववाकर इस कृपि य प्र भामे म परिवारेन क दिया। मानूम पडन है मात्र न इस मीन का एक विगत उद्देश्य स प्ररित होकर खुदवाया था। यन् विशाल जनशय न केवल उन समय के लाा के नश का सुव प्र नि कले या अपनु इसन मालवा की उष्ण जनशय क नन बन दिया हात। इस ज्ञान स दुमिना क सामना कले म वरा सजापता मिली री हात। मात्र क नाम क एक शिवमन्दि आज भी उस स्थान म विद्यमान है। यन् अन्वयार्क नाव न् है कि उर व लो म्त म जो ४३ का ४ इव है उनव शसक ल म बनन य गन था जसव अनुनवनन के समय म (तर वी शन मी म) भोज न ससूत विद्यालय सरस्वती म् र के निक बनवाया था। इस मन्दि क लिए सरस्वती का जो मूनि बनवाई गई थी वह आज भा देखा जा सकी है। यन् मूनि ब्रिटिश म्जियन म रक्वा हुई है। इसकी सुन्दरता और कतत्मकता की मूरि मूरि प्रशमा की गई है।

भोज का धार्मिक दृष्टिकोण—भोज स्वय शव उन क क्तर अनवायी था। उसने भोज धम क सिद्धा ता पर उत्तर प्रक ग नामक ध य लिना और राज्य भर म विशाल शिवमन्दि का निमा करावाया। परन्तु उन क विद्यन म मात्र क शक्तिगो दाश निवना प्रवान था जितम सकीगत और असम्पिता के निर कोई स्थान नही था। उसर राज्य म जिनरा की सख्या क का यी जिनक प्रति उसर उवगार सया प्रशम नोय था। धन के सम्व य म मात्र क हय म स वा जिताम थी और उसके वास्त विक स्वरूप क न सात्कर क न का वह व्यय रण करता था। उनने अने राज्य म धार्मिक सम्मता का आयोजन किया जिनम विभिन्न मता और सम्प्रदाया के प्रति नियोग मनशस्यन य। मोन क प्रश्न पर उन सवा म परम्पर विचार विमय हुआ और व इस नकड पर प व कि मनन चित्त क ताश व्यक्ति मोन प्राप्त करता । चाह वह पूजोगमना की किनी पद्धति का अवलम्बन करे।

भोज क उत्तराधिकारी—भोज का उत्तराधिकारी जसिम एक एत समय म उगपवा क परमार राजसिंहासन पर आरूढ़ हुआ जिन समय राज्य को चानुन और

कनकपुरि घर १२५५ ई. में बंठेन परिवारके म जर्जसिंह ने अपने दक्षिणी पड़ोसियों दक्कन के चालुक्यों से सहायता की याचना की। दक्कन के चालुक्यों ने अपना पुराना बर मूलकार सिद्धराज की प्रायतना का स्वाकार कर लिया और राजकुमार विक्रमादित्य ने मालवा का उसका शत्रुता से मुक्त कर दिया। उद्यानित्य ने, जो सम्भवतः मोज का भाइ था सिंहासन पर जन्तुनित तरीकों से अपना अधिकार जमा लिया। उसने मालवा का गिरती शक्ति का समालने का प्रयत्न किया। उसने उदयपुर में नीलकण्ठेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया जो अब भी अच्छी स्थिति में विद्यमान है और उस युग के उत्तर भारत की वास्तुकला का सुन्दर नमूना प्रस्तुत करता है। इन्दौर के एक गाँव उन महान सज्जन और हिंदू मन्दिर है जिनमें से अधिकांश का निर्माण सम्भवतः उदयादित्य ने कराया था।

उदयादित्य के उपरांत लगभग उदय मालवा राज्य का स्वामी हुआ। उसने यशकण कनकपुरि और कान्छिया चोना तथा गजनी के महानूत कवशजा पर विजय प्राप्त की। नरवमन और यशोवर्मन लक्ष्मणदेव के बाद मालवा के उत्तराधिकारी हुए जिनकी शासन काल १०९७-११११ और ११२४-११४२ है। इस काल में मालवा के ऊपर सोनकिया ने अपना अधिकार जमा लिया और ११३७ से ११७३ तक उस पर उनका अधिकार स्पष्ट है। यशोवर्मन की मृत्यु के बाद परमारों का राज्य उसका उत्तराधिकारियों के बीच विभाजित कर दिया गया। कुमारपाल के पश्चात् सोनकिया ने शत्रुता में पड़ गया जिससे मालवा के परमारों को अपनी शक्ति से मालवा को जीतने का अवसर प्राप्त हो गया। विजयवर्मन ने ११९२ में धर को अपने अधिकार में कर लिया और उसका उत्तराधिकारी मुसतवर्मन ने अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया।

अजुनवर्मन के समय में मालवा का प्राचीन ब्रह्मण कुछ जगह में लौट आया। अजुनवर्मन ने स्वयं अमरकान्तक पर एक टीका लिखा और उसके शासन काल में पारिजातमञ्जरी नामक नाटक लिखा गया जो अपने पूर्ण रूप में आज उपलब्ध नहीं है परन्तु यह पापागस्तम्भा पर उत्काश कराया गया था अतएव इसके कुछ अंश अब भी मिलते हैं। अजुनवर्मन का मृत्यु के पश्चात् परमारों की शक्ति धीरे धीरे गिरने लगी। सन १२३४ में इल्तुतमिश ने और १२९२ ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा का गूँव लूटा। इसका बाद मालवा का हिंदू मता का नाश हो गया।

### अन्हिलवाड के सोलकी

गजराज में अन्हिलवाड (पाटन) नामक स्थान पर पहले प्रतीहार साम्राज्य का अधिकार था परन्तु राजनतिक प्रभुता के लिए राष्ट्रकूट और प्रतीहारा में जो पारस्परिक संघर्ष हुआ उससे लाभ उठाकर मूलराज प्रथम ने दसवाँ शताब्दी के उत्तरार्ध में अपना एक स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया और अन्हिलवाड का अपने राज्य की राजधानी बनाया।

मूलराज सोलकी—मूलराज मालवा में अपने एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना करने के बाद इमली सीमाओं के विस्तार के भा प्रयत्न किया। उसने शीघ्र ही बच्छ देश और मुराट्ट के पूर्वीय भाग पर अपना अधिकार जमा लिया। परन्तु उस अपने प्रयत्न पडामिना की शक्ति के भी सामना करना पड़ा। उसने कई आक्रमणों का सामना किया और अन्ततः उस पराजय ही प्राप्त हुई किन्तु भी अपने राजकुल का, जिसका कि वह स्वयं प्रतिठारक था उसने नाश नहीं होने दिया। उसकी मृत्यु के समय

सोलहविया का राय पूव और दक्षिण में सावरमता राय तक फैला हुआ था। उत्तर में जोधपुर राय का संचार भी इसमें सम्मिलित था। मूलराज की मृत्यु रणस्थल में विप्रहराज तृतीय के हाथों से हुई। मूलराज का पुत्र चामुण्डराज ने धारा नगर का परमार नरेश सिंधुराज को पराजित किया। चामुण्डराज का पौत्र भामदेव प्रथम (१०२२) सातवीं राजकुल का एक विख्यात नरेश था।

**भीमदेव प्रथम**—भीमदेव प्रथम का शासन कान्त का प्रारम्भिक वर्षों में महमद ने उसका राय पर आक्रमण किया था। भीम ने उसका आक्रमण का मुकाबिला करके का निश्चय किया परन्तु एक एक उत्तक ऊपर महिम आक्रमणकारी का जातक छा गया और वह रणभूमि छोड़कर भाग गया। महमद ने मामनाथ के मंदिर को खूब नष्टा खसाटा और वह तुल्य सम्पत्ति नष्ट कर जड़न वश गया। किन्तु एक जदमत बात यह है कि तत्कालीन गजरात में महमद का आक्रमण का उत्तक नष्ट किया गया है। उस काल का गजरात का इतिहास जानने का कई यथार्थ जोसम्प्रदित उमा समय या उससे कुछ बाद लिख गये थे परन्तु उनमें उस दिन शबारा आक्रमण का कही भी जिक्र नहीं मिलता। पाठकों का स्मरण होगा कि यमना विजिता दिवस के आक्रमण का उत्तक भाग्य का किनी सम्भावना प्रथम में ही किया गया है। इससे स्पष्ट सिद्ध है। जाता है कि मंदिर का आक्रमण की मति महमद रजनवा के आक्रमण का भाग पर का प्रथम नहीं पडा। महमद द्वारा भग्दान में मनाथ का मंदिर का तुडवा दिया जान पर भीमदेव ने उसका पुननिर्माण कराया। महमद का नोट जान पर भामदेव ने फिर से अपनी शक्ति का मण्डन किया। पतेन उसने जाबू के परमार राजा का हराया। भीम ने परमार नरेश का पतन में अपना योग्य न किया। इस कार्य में भीम ने नरेश कण बलचरी से मनाथ प्राप्त का था परन्तु उन पाना की मनाथ जिविक समय तक टिक न सका। दाना में परमार नडाए छिड गए जिसमें लक्ष्मीन का हारहू रई। भामदेव का उपरांत कणदेव जहितवाड का राजसिंहासन पर समाप्त हुआ। कण ने १६४ से १०६ तक शासन किया। कण का शासन तीन शांतिपूर्ण वर्षों के लिए विस्तृत है। उनमें अनेक मंदिरों का निर्माण कराया उसके समय में उसके हाथ नाम से एक नगर का स्थापना की गई। उसने कवि विष्णु का राजाश्रय प्रदान किया। कण का परमार राजा त्र्यापत्य ने यद्ध में पराजित किया।

**जयसिंह सिद्धराज**—कण का पुत्र जयसिंह सिद्धराज जदम वश का प्रतपा और दिख्यत राजा था। उसने अपना रणवाहिनिका चारा विशाखा में घमाया और लगभग सबत्र विजय पाया। अपना विजया से उसने अपने पुंडलिया का आतंकित कर दिया। उसने सुराष्ट्र के आमार सत्कार का यद्ध में पराजित का के उस राय को अपने साम्राज्य में मिला लिया। जयसिंह ने बारह वर्षों तक मानवा से यद्ध किया और नरवमन तथा दशवमन पाना का सिंहासन पर का के राय पर अधिकार कर लिया। नन्दुन और शाकम्भरी दाना स्थाना का चाहमान नरेशाने उसके आग आत्मसमन का कर दिया और उसके सामंत का रूप में अपने राय का शासन करत रहे। जयसिंह ने यश कण बलचुरि और मदि दचन गहव ने सभना सम्बन्ध स्थापित किया। उसने चतुरा य पर भी आक्रमण किया और का त्रिजूर न्या महावा तक आग बढ़ गया। चतुरा नरेश मदनवमन का विवश हाकर जयसिंह का राय सधि करनी पडी और इस सधि का पत्रवरूप उसने मलकी राय का निरसा का प्रश

दिया। जयसिंह ने चालुक्य नरपति विक्रमादित्य पट्ट पर भी विजय प्राप्त की। कहा जाता है कि सिंधु के अथवा के विरुद्ध युद्ध में भी जयसिंह का सफलता प्राप्त हुई था। उसका अभिलेखा के प्राप्ति-स्थानों से विदित जाता है कि गुजरात काठियावाड़ कच्छ मालवा और मणिषा राजपूताना उसके राज्य में सम्मिलित थे। जयसिंह ने १११२-१४ ई० का एक नया सम्बन्ध चलाया।

यद्यपि मानकी नरम जयसिंह का ना समय राजा भाज की मति अधिकतर युद्ध में व्यतीत हुआ तथापि भाज का ना तत्काल उमन में विद्या का प्रथम प्रदान किया। ज्यातिव साय और पुराण के अध्ययन के लिए जयसिंह ने शिक्षण संस्थाएँ खूलवाई। उमन राजसमा में प्रसिद्ध जन लख महापण्डित हमचन्द्र रहते थे जिनके अनेक ग्रन्थ ८ के भक्तिपरक और विचारार्थिता का उचरता का छातन करते हैं। जयसिंह स्वयं कट्टर धर्मवादी तथा उमका धार्मिक प्रतिपादन राजा भाज का मति जिनासा प्रदान था। जयसिंह विभिन्न धर्मों के अचार्यों के बीच धार्मिक विषयों पर विचार विमर्श के लिए सम्मेलनों का आयोजन करना था। अवध का धार्मिक विचारधारा का यह प्रभाव था। जयसिंह ने अपने राज्य में अनेक मठों का निर्माण कराया। स्वयं मठ ही उमन में पण्डित हमचन्द्र का अपना राजसमा में स्थान दिया। जयसिंह ने अवधनाथ और सिद्धराज विष्णु धारण किए।

**कुमारपाल**—जयसिंह के उत्तराधिकारी एक दूर के एक सम्बन्ध कुमारपाल ने उसका राज्य पर अधिकार कर लिया क्योंकि जयसिंह के कच्छ युद्ध में मारा गया। कुमारपाल ने शाकम्भरा के चाहमाना का पराजित किया और जाव के परमारा का ठकाया। काकण के राजा मल्लिकार्जुन का भी उसने हराया था। कुमारपाल का नाम जन धर्म के इतिहास में काफी प्रसिद्ध है। जन ग्रंथों में लिखा है कि आचार्य हमचन्द्र के सत्पुत्र धर्मनिरूपण से प्रभावित होकर कुमारपाल ने उन मठ ग्रहण कर लिये। उमन अपने राज्य भर में अहिंसा के सिद्धांतों के परिपालन के लिए बेटों को आचार्य निकालवा था। उसने ब्राह्मणों का इस बात के लिए विवश किया कि वे पशु-वैदिक प्रथाओं का त्याग दें। राज्य भर में कुमारपाल ने कसालों का इकाना पर नाला लगवा दिया। सयामिया का मूगचम मिलना बन्द हो गया क्योंकि पशुओं का आश्रय करना राजकीय कानून का प्रतिफल अवध ठहरा दिया गया था। गिरनार पर्वत के निकट शिवारिया के समकालीन मरुत लग। राज्य भर में मन्मथजन के लिए पशुओं की लहान-इसों का निषिद्ध ठहरा दिया गया। जजा और मुग सवन पर बठार प्रतिबन्ध लगा दिया गया। जन ग्रंथों में कुमारपाल के अहिंसापान सम्बन्धी आश्रमों के विषय में बड़ी विविध बयानों का दृष्ट है। फिर भी उसका जन महानुयायी होने में सन्देह का कोई कारण नहीं दिखलाई पड़ता। जन धर्म का अनुयायी होने पर भी कुमारपाल ने अपने पूजकों का शिवापासना सम्बन्धित भनावति का त्याग नहीं किया। उसने सामन्तों के प्रसिद्ध मठों का आर्णोद्धार कराया। उत्कीर्ण लला में कुमारपाल का नाम बहा गया है।

**भीमदेव तृतीय**—कुमारपाल के बाद गुजरात का शासक अत्रयपाल हुआ जिसने अपने राज्य में जन मठ के विरुद्ध एक प्रतिश्रियात्मक नीति का प्रचार किया। उसने जन मठों के विध्वंस कराना शुरू किया। कहा जाता है कि उसने महापण्डित हमचन्द्र के प्रिय शिष्य और प्रसिद्ध जन लख रामचन्द्र का वध करा दिया था। किन्तु उसकी इस धार्मिक असाहिष्णुता और सवीपता का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ा। उसका

राज्य के एक अजमेर न उभवा हत्या कर दा। अजयपाल क पञ्चान मलराज द्वितीय ने कुछ समय तक शासन किया। उसका बान् भीमदेव द्वितीय राजा हुआ जिसने राणा रोहण क वध ही गोर क मुहम्मद को युद्ध म हराया। मन् ११९५ म भीमदेव द्वितीय न कुतुबुद्दाल स युद्ध किया और उस इतनी गहरा पराजय दी कि मुस्लिम सनातन्यक का अजमेर तक पाठ डकन दिया। परन्तु दूसरे वष (११९७) म अहिलवाड पर मुसलमाना का अधिकार हा गया। कि तु कुतुबुद्दीन क गुजरात पर स्थायी रूप स अधिकार नहा स्थापित हा सका।

भीमदेव द्वितीय न एक तन्त्र समय जगमग साठ वषों तक शासन किया। उसका समय म ममनमाना का जा आक्रमण हुए उसस उसका राज्य का स्थिति क फी टार्वानेन हा गइ आर प्रान्ताय शासका न अपना स्वतंत्रता धापित करन का अवसर ताकना आरम्भ किया। अहिलवाड क राज्य का स्थिति इस समय इनना गिरा हुई था कि इनका शाघ्न विनष्ट हा जाना जव यम्भावा प्रानत हा रना था। राज्य क बन्धन अफगरा आर कुतुबुद्दीन की नायत भी दूषित हा गइ। परन्तु अगोंगज नामक एक वाघन न राज्य का पूरा विनाश म वचा लिया। उसके मुगलय पुत्र लखन प्रमाने न अपन पिता क काम का आरा रखला आर शासन-मन्त्रालय का माग काय करने ही क रा पर बन्धन किया। उसन आन्तरिक विनाश म राज्य का रना का और बाहरी जाक्रमणा का सफलतापूर्वक सामना किया। इस प्रकार अहिलवाड क राज्य जनना स्वतंत्रता का रना करला हुआ अनाउद्दाल विजया क पूर्व तक बना रना। तरहवा जना का जन्म म इन महत्वाकांक्षा मुस्लिम शासक न अपन दा मना-त्रिया अनुक रना आर नसरत खा का अधःपतन म एक विनाश मना भजा दिन दखकर वष जा इस समय गुजरात क शासक था भाग गया। गुजरात क राज्य पर ममनमाना का अधिकार रना गया। जन जाचाय महलगा क ग्रन्थ प्रकाशचितामणि म गुजरात के प्राचीन इतिहास क विषय म काफी महत्वपूर्ण सूचाय प्राप्त हाता है।

### त्रिपुरा के कलचुरि

अजयमुषित क चन्ला क राज्य क दक्षिण म आधुनिक जयलपुर क निकट कलचुरि राजतुता का रा य था। कलचुरि ना अपन का हैहय वश का क्षत्रिय बतलाते है। गुजर प्रजाहारा आर वगमा क चानुक्या क उत्थान क पूर्व बन्धुलखण्ड स लकर गुजरात आर नासिक तक विशेषकर नमदा का उपरली घाटा म कलचुरि ना सबसे अधिक शक्तिशाला थ परन्तु गुजर प्रजाहारा आर चानुक्या का शक्ति क उत्थय म कलचुरिया क प्रभाव दहन (वर्तमान जयलपुर क निकट) तक भीमित रह गया। अब कलचुरि राज्य का राजधानी त्रिपुरा हा गइ। इसलि उनका चरि दहन अवधा त्रिपुरा क कलचुरि कना जान रगा।

कलचुरि वश का मस्थापक तथा प्रथम ऐतिहासिक शासक काकल प्रथम (८७५-९२५) था जिनन राष्ट्रकूट आर चन्ना क माय विवाह सम्बन्ध स्थापित किए। प्रतीहारा क माय काकल प्रथम का भ्राता सम्बन्ध था। इस प्रकार उसन अपन समय क शक्तिशाला राणा क माय मित्रता आर विवाह द्वारा अपना शक्ति भी सुदृढ़ का। काकल प्रथम अपन समय क प्रसिद्ध याज्ञाज आर विजयाज म स था। कलचुरि आमनथा म काकल का अनक विजया का गौरव प्रदान किया गया है परन्तु जसा कि पाठ कहा जा चका है हम इस युग क अभिलखा म उल्लिखित सभी बातों का ऐतिहासिक मत्य क रूप म स्वीकार नहा कर सकत अतएव कलचुरि अभिलखा क आधार



परन्ती कौलकन को अपने समय का सबसे महान विजेता नहा कहा जा सकता। फिर भी इस बात में सन्देह नहीं कि कालकल पराक्रमी एक साहसी विजेता था और उसने अपनी विजया द्वारा एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की।

एक अभिलेख से पता चलता है कि कालकन प्रथम न उनसे राष्ट्रकूट जातिवादी को बेंगी के विनयाप्तिय तृतीय (पूर्व चालुक्यराज) के विरुद्ध आश्रय तथा सहायता प्रदान की। एक अन्य अभिलेख में यह ध्वनि है कि कालकल ने भाज प्रथम को सुरक्षा प्रदान कर प्रताहार नरेश महापात्र से शत्रुता करना परन्तु भाज प्रथम उसका मित्र हो गया। अभिलेखों में कालकन का भाग पृथ्वी का विजेता तथा अपने समकालीन नरेशों का कायस्थ बताया गया है जो स्पष्टतया प्रशस्तिमान है। अपने शासनकाल के अन्तिम समय में कालकन ने उत्तरा कालकण पर आक्रमण किया और पूर्वी चालुक्या तथा प्रताहारा के विरुद्ध राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण शिवाय का सहायता प्रदान की। कालकन ने अपने विजया के द्वारा जिस राज्य का स्थापना का उद्देश्य उसकी मृत्यु के मात्र बाद ही विघटन के तत्काल उत्पन्न हो गए जिसमें कालकण की शक्ति क्षान्ति लगी। परन्तु ग्यारहवा शताब्दी में गांगयदेव की अराजकता से कालकण को भारत की सबसे महान् राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो गई।

**गांगेयदेव**—उत्पन्न १०१९ ई० में गांगयदेव त्रिपुरा के राजमहासैन पर बैठा। गांगेयदेव का अपने समय प्रयत्नों में विफलता का प्राप्त हो किन्तु उसने वह विजयों की और अपने राज्य का विस्तार करने में काफी जगतक सफलता प्राप्त की। उनके अभिलेखों के अनिरजनपूर्ण विवरणों का न स्वाकार करने पर भी यह माना गया है कि गांगेयदेव ने कौर देश अथवा कौण्डा घाटी तक उत्तर भारत में आक्रमण किया और पूर्व में बनारस तथा प्रयाग तक अपने राज्य की सीमा का बढ़ाया। प्रयाग और वाराणसी में लोह आग वह पूर्व में बढ़ा। अपनी मना कर वह सफलतापूर्वक पूर्वी नर्मदा तक तक पहुँच गया और उडामा को विजित किया। अपना इन विजया के कारण उसने विजया दिय का विरुद्ध घाटण किया। उसने पाला के बल की अवहलना करने हुए अग पर आक्रमण किया। इस आक्रमण में उस सफलता प्राप्त हुई। यह सम्भव है कि गांगेयदेव ने कुछ समय तक मिथिला या उत्तराखिहार पर भी अपना अधिकार जमाय रखा था।

डा० मुजुमदार का धारणा है कि गांगेयदेव ने मुसलमानों का शक्ति में लाहा लिया। उसकी यह गर्वोक्ति कि उसने कौर प्रदेश तक घावा वाला था यह ध्वनि करता है कि उसने मुसलमानों का शक्ति का चुनौती दी था क्योंकि कौर प्रदेश मुसलमानों के अर्ध नस्थ पजाब का एक भाग था। गांगेयदेव का मृत्यु प्रयाग में हुआ था। उसकी मृत्यु के बाद उसका पत्नियों उसका साथ चिता में जल कर भस्म हो गई। गांगेयदेव का शासन का न किन्तु लडाकू तारपर निश्चित नहीं किया जा सकता। परन्तु यह अनुमान किया जाता है कि १०१९ ई० में वह सिन्धुतार पर बैठा और १०४० ई० में उसका मृत्यु हुई।

अपने वंश में गांगेयदेव ही एसा मन्त्रालय जिसे अपने नाम में मित्रक चलाया। उसका सिक्का पर उसका नाम के साथ-साथ सही की आकृति ना मुद्रा हुआ है। गांगेयदेव के सिक्के सान, चाण और ताक ताना प्रकार के थे। वह शिवपामक था और उसने शिव जी का एक मन्दिर बनवाया।

**साम्राज्य**—गांगेयदेव के उपरांत उसका प्रतापी पुत्र सहायक अथवा कणराज सिन्हासन पर बैठा। वह अपने पिता की भाँति एक बारसन्धिक और महामा युद्धों का

विजयता' था। उसने काकी विष्णु और मइस्वरगुण विजया द्वारा कन्नूरि शक्ति का विकास किया। कपाणा और अहिलवाड के शासकों से सहायता प्राप्त कर कण ने परमार राजा भाज का परास्त कर दिया। उसने चन्नेला और पात्री पर विजय प्राप्त की। उसके अग्निनेत्र बगाल और उत्तर प्रदेश में पाप गर्ते हैं जिनमें यह सिद्ध होता है कि इन भागों पर उमरु, अविचार था। कण क, राज्य गुजरात से लेकर बगाल आर गया से महानगर तक फैला हुआ था।

कण अपनी विजय वाहिनी का पूर्वी सन्तु उर का सर करत हुए काकी तक पहुँच गया जित पर उस समय चाना क राज्य था। कहा जान है कि कण नरनिग म पल्लवा शशा मुरला और सुद्धर दक्षिण के पाण्ड्या का पराजित किया। यह सम्भव है कि दक्षिण का इन जातिमान चोला की सहायता की हा जीर उमने इन सबको सामूहिक शक्ति का मान दिया था। कण की इन विजया क कारण उन भारतीय नरनिगस के सबसे महान् विजेताओं में से एक धरु गया है। उमकी तुलना प्रसिद्ध विजया नरनिगयन के साथ की गई है परतु यह न भूलना चाहिये कि अपने जीवन क अन्तिम दिनांक का जो कई पराजय से तो पडा यो। पाना चन्नेला परमारा जीर सानायया समी ने उसको हराया। अनएक का का प्रारम्भिक विजया का कई स्थाया प्रभाव नही पड सका। उसकी विजया न उसके गौरव को तो बनाया किन्तु उमकी राज्य सामांम कई विस्तार नही किया। १०७२ ई० में कण ने अपने पुत्र के लिए मिहासन त्याग दिया।

यश कण—सन् १ ७३ क लगभग यश कण त्रिपुरी के सिंहासन पर बसा। उसने चेंगी राज्य जीर उत्तरी बिहार तक घाबे कोर। उसके पिता के अन्तिम दिना में उसके राज्य की स्थिति काफी डारवां गोल हो गई था और इया डारवाडोन स्थिति में उसने राजसिंसन पर पर घरा था। परतु अगन राज्य की इस गडबड स्थिति क, विचार न करते हुए यश कण न अपने पिता जीर पितामह का भांति म य विजय का क्रम जारी रवला। पहल ता उस कुछ सफलता मिची ऐकिन शीघ्र ही उसका राज्य स्वयं जनक आक्रमण का क द्रविडु बन गया। उसका पिता और पितामह की आक्रमणालमक साम्राज्यवादिना नांति से जिन राज्या को क्षति पहुँची थी व सब प्रतीकार लेने का विचार क ले लग। दक्कन क चानुक्या न उसका राज्य पर हमला बांन लिया जीर अपने हमल म क सकन भी रहे। गहडवाला के उदय न गया के मगन म उसकी स्थिति पर अहितकर प्रभाव डाना। च देला न भी उसकी शक्ति को सकनतापूर्वक खुली चुनौती दी। परमारा न यश कण की राजधाना का खब लूग चयोग। इन सब पराजया न उमकी शक्ति को क्षयकार दिया। उसके हाया से प्रयाग और वाराणसा क नगर निकल गय जीर उसका यश का गौरव धारत हा गया।

यश कण क उत्तराधिकारी और कलचरि यश का पतन—यश कण के उतरान्त उसका पुत्र गयाकण सिंहासनारूढ़ हुआ। कि तु अगन पिता क शासन काल में प्रारम्भ होनेवाला अपने यश की राजनिगि अन्तर्गत को बहु रोक न सका। उसके शासन काल में रत्नपुरा की कन्नुरी शाखा दक्षिण कोगन में स्वतन्त्र हो गई। गयाकण ने मानसालरेश उन्त्यादि यकी शीशा से विराह किया था। इसका नाम अ हुनादेवी था। गयाकण का मृत्यु क बाद अ टन नवा न मरवा म कनयाय क मरि और मड का पुनर्निर्माण कराया। गसरग क अन्तिम पुत्र जरासिंह कुछ प्रतापी था। उसने कुछ अश तक अपने यश के गौरव का पुन प्रतिष्ठापन करने में सकनता प्राप्त की। उसने

मानकी नरेश कुमारपाल का पराजित किया। जयसिंह की मृत्यु ११७५ और ११८० के मध्य किये गये थे। उनका पुत्र विजयसिंह काकेश प्रथम के वंश का अन्तिम नरेश था जिसने त्रिपुरा पर राज्य किया। विजयसिंह का ११९६ और १२०० के बीच मजुलि प्रथम ने आदकगिरे के पालकवश के नरेश था मान्डान और त्रिपुरा के कलचुरि वंश के समूहन कर लिया।

### बंगाल के पाल

बंगाल के प्रान्त मगध राज्य में सम्मिलित था। नन्दा के समय में भा बंगाल मगध साम्राज्य के अन्तर्गत था। मगध के राजसिंहसमय पर बडनवान, मगध बंगाल के भा स्वामि होना था। छ। शत के उत्तरार्ध में गौड़ अथवा बंगाल स्वतंत्र हुआ और गण्ड साम्राज्य में पक्ष हो गया। मगध के समय में जो गौड़ का मगध के पाल था, बंगाल का शक्ति काफ़ी बढ़ गया। यद्यपि मगध पर गौड़ आसाम के मालिकवशमन गाडागिरि का शक्ति का रोक के बंध प्रथम किया और उसकी युद्ध में पराजित करने का मा चला की तथापि उसके जानत काल में न ना व उसकी शक्ति ही कम कर रख और न उसका कुछ क्षति ही पहुंचा सके। परन्तु गौड़ की मृत्यु के बाद बंगाल की राजसामिक एका और साधुमीमिका विना ही गई। अब मगध पर बडन वार के मालागिरिगत मालावनेन गौड़ का अवसर प्रान्त ही गया और उन दिन बंगाल पर अक्रमण करत इफला सम्भवतः गौड़ म विभक्त कर लिया जिसका उद्देश्य आपस में बंध लिया। आठवा शताब्दी के प्रारम्भ में शशवश के एक राजा ने गौड़ या उत्तर बंगाल पर अधिकार कर लिया। काश्मीर नरेश ललितादित्य मुकुतराज और ब्राह्मणनरेश योगवनेन ने भा बंगाल पर आक्रमण किया था। मगध के जयसिंहों गुप्त नरेश का बाल पर अधिकार था कि तु य पर अधिकार नाममात्र की था। किन्तु इस नरेश के हठ जान पर य पर नाममात्र के अधिकार माने रह गया। के मगधनरेश हठव ने अवसर पाकर बंगाल की विजित कर लिया। एक उपासन शक्ति के अभाव में बंगाल अ नरेशों और अराजकता के अन्तर्गत गया। अकेलगा के इस दिने न बंगाल में बारा और अशांति एक गडबगड पद था जिसके अन्तर्गत मार मगधरा और जेतु न मितार गाराव नामक शक्ति का अन्तः राजा पुन दिया। गाराव का मधुग बंगाल के शासन स्थापित कर दिया गया।

गोपाल—आठवा शताब्दी के प्रथमाद्ध में गोपाल ने बंगाल का शासन संभाला। गोपाल ने बंगाल में हिमालय से आकर मधुग तक मधुग राज्य का मुनपठित किया जो गौड़ विगत देह शताब्दी का अगजकता और अवस्था के अन्त करके समस्त बंगाल में गान्धि स्थापित था। उनमें नालन्दा के विगत बालापुरी नामक स्थान पर एक विविधशासन की स्थापना करा। गाराव ने अपना मृत्यु के समय अपना उत्तराधिकारी के लिए एक समझ और सुशांति राज्य छोड़ा। उनमें उत्तराधिकारिया न बंगाल का राजसामिक उत्तर और मगधविग गौरव की उभ पराकष्य पर पहुंचाया जिसका उसने पहल के मा स्वल्प में भी के पना न की होती। गाराव के बाल समस्त बंगाल का राजा हुआ।

धर्मपाल—धर्मपाल पाल वंश के वास्तविक सृष्टी का स्थापन था। धर्मपाल एक मुधाध्य और धर्मनिष्ठ शासक था जिसने अपने राज्य की सामासामन्तो के परिचय

तक बनायी। धर्मपाल धर्मिक भाषा में या और अपने शक्ति का नाति बौद्ध या फिर भी राजनीतिक दृष्टि में भाषा में महत्त्वाकांक्षा था। शक्ति ब्रह्मचर्य तारा-नाथ ने लिया है कि धर्मपाल का राज्य का विस्तार पूरा में बंगाल का गाँडा में पश्चिम में जनघर और उत्तर में हिमाचल में उबर शीतल में विस्तार परत तक था। सम्भव है कि तारानाथ का यह कथन अत्यधिकपूर्ण है परन्तु इन्होंने यह कहा है कि समस्त उत्तरी भारत में धर्मपाल का शक्ति का प्रभाव उभा हुआ था। उन कन्नौज के राजा इन्द्रायध या इन्द्रायध का मित्रागन्धर्व बरक में स्थान पर चला यध का विटाया। यदि हमारी शक्ति हमें ज्ञान में वह कन्नौज पर आक्रमण करने का सामर्थ्य नहीं करता परन्तु इन्द्रायध का मित्रागन्धर्व करने के एक वाय का अनुमान उत्तर भारत का सागे सम्मामन्त्रिण राजशक्ति (मित्रागन्धर्व का यह यवन अवधि गया तथा कारण) ने किया किमिन्धु मूर्ति बना है कि य शक्ति धर्मपाल का राजनीतिक प्रभाव का स्वाकार करता था। परन्तु धर्मपाल का समकालीन शक्तिशाली नरभा ने उनका एक वाय का मन्त्र का किया और उनके साथ उनका श्रुता मानना पड़ी। इन्द्रायध ने किमिन्धु धर्मपाल ने कन्नौज के राज मिहोसन से च्यत कर दिया था गज्जरप्रतापारनरजनागन्धर्व मित्राय मन्त्रपत्रा मीणा। नागमठ ने इन्द्रायध का महापिता प्रदान का मित्रागन्धर्व बना म एक भाषण युद्ध छिड गया। इस युद्ध में इन्द्रायध और धर्मपाल का शक्ति का वाफा प्रकट जापान गया। राष्ट्रकूट नरेश गाविन्द तनाय के द्वारा भाषण धर्मपाल के पराजय मन्ना पडा। इस प्रकार जपन समय का दा महत्त्वपूर्ण राजनीतिक शक्ति का मान मान पर उत्तरा भारत में धर्मपाल का राजनीतिक शक्ति का प्रभाव का भाषण। कन्नौज पर गुज्जर प्रहारा का अनिकार हुआ। इन पराजय के वाज्ज ना धर्मपाल का एक शक्तिशाली राजा कहा जा सकता है। सम्पूर्ण बंगाल मध्य और उत्तरी बिहार पर उनका अधिकार बनाय रक्ता। उनका पालिपुत्र न एक राजा का निकलवाइ थी। ह्वेनसांग के समय में पालिपुत्र का शक्ति का भाषण था। मौर्यों और गुप्ता का राजधानी का प्राचीन वनव नुप्त हुआ था। धर्मपाल ने अपने समय में इस वनव का एक बार फिर से तौटान का प्रदान किया।

धर्मपाल ने लगभग ४ वर्षों तक राज्य किया। उसने विक्रमशिला और सामपुर में बौद्ध विहारों का निर्माण कराया। विक्रमशिला में एक विश्वविद्यालय का स्थापना भी उसने कराई था। विक्रमशिला में ना नाला की नाति विद्या का एक बहुत बड़ा केन्द्र स्थापित हुआ गया था। धर्मपाल ने अपने राज्य में अन्य कई मन्त्रियों और बौद्ध विहारों का निर्माण भी कराया था।

देवपाल—देवपाल पाल वंश का तृतीय राजा था। अपने वंश का यह एक शक्तिशाली राजा था। उसने अठतालीस वर्षों तक राज्य किया और कदाचित् मुद्गगिरि (भुमर) को अपना राजधानी बनाया। उसके सनापति लवहन ने आसाम और उड़ीसा पर विजय प्राप्त की। देवपाल ने अपने पिता का प्रसार-नीति का जारी रक्ता। अपने अमिलक्षा में वह एक साधारण-दवाया के रूप में प्रकट हुआ है। यह सम्भव है कि देवपाल ने राष्ट्रकूट नरेश गाविन्द तनाय का मन्त्र स नाम उठाया। गाविन्द तृतीय के दहावसान से राष्ट्रकूट राज्य में गठबहा फल गई जिससे देवपाल का अपनी शक्ति बल का अवसर मिल गया। उसके अमिलक्षा में उसके मुद्गरव्यापिनी विजया का उत्तम किया गया है। एक अमिलक्षा में कहा गया है कि वह हिमालय और विद्या चत के सम्भवती सम्पूर्ण प्रदेश का स्वामी था और दक्षिण में उसने हेंतुवध रामेवरम्

तक विजय प्राप्त की। परन्तु स्पष्ट है कि अभिलष्य व यह कथन केवल प्रशस्तिवादन है और ऐतिहासिक तथ्य से नितान्त दूर है। परन्तु एक अन्य स्तम्भ लरा म यह उत्सख मिलता है कि अपन मन्त्रिया दमपाणि तथा कर्णर मिथ्य की नातियक्त मन्त्रणा से प्रेरित हाकर देवपाल न उत्सख जाति का मिटा दिमा हूण व दप खव कर दिया और द्रविड तथा गुज्जर व राजाभा का गव चूण कर दिया। डा० रमानकर त्रिपाठी का मत है कि बादल स्तम्भ लख का यह कथन सम्भवत सही है। देवपाल क पिता घमपाल न कवल थाड ही दिना तक सम्राट क रूप म शासन किया कि तु देवपाल न कुछ अधिक काल तक अपना सम्राटाचित सत्ता प्रमाणित की। उडीसा और आसाम पर उसका अधिकार हो जान स उसका राय का का विस्तृत हा गया। समकालीन नरशा क बीच देवपाल की प्रतिष्ठा क फा जम गई कि तु प्रताहार नरेश मिहिरभोज क राज्यारोहण स गुजरो की साम्राज्यवादिता का उदय हुआ जा महेंद्र पाल का मृत्यु तक बना रहा। इस प्रबल साम्राज्यवादिता क सामन बगाल क पाला की कुछ न चल सकी और उनको अपनी राजनातिक महत्वाकांक्षाय त्यागनी पडी। कुछ विद्वाना का मत है कि बादल स्तम्भ लख म गुज्जर क राजा का गव चूण करने का जो उत्सख प्राप्त है वह सम्भवत गुज्जर नरश मिहिरभोज क लिए है। यदि यह मत ठीक हो ता यह मानना पडगा कि देवपाल के समय म पालाका शक्ति का ह्रास नहीं हुआ था कि तु उसका उत्तराधिकारिया क शासन काल में उसका वश की राजनातिक शक्ति निरसदृष्ट घटन लगी थी। देवपाल का सुभात्रा और जावा के नरश क साथ दाय सम्बन्ध (Diplomatic Relation) था। देवताल क समय मे बगाल निश्चय ही एक शक्तिशाली राय था।

अपन पिता की भांति देवपाल भी एक उत्साहा बौद्ध था। नालन्दा ताम्रपत्रा स विदित होता है कि देवपाल न राजगह विषय म चार और गया विषय म एक गाव घर्माव दान किये थे। उसन सुभात्रा क नरश बलपुत्रदेव को नालन्दा के समीप एक बौद्ध विहार बनवान का अनुमति प्रदान कर दा था और स्वय भी इस काय क लिए प्रचुर धन दान किया था। देवपाल का लम्बा शासन काल बगाल म एक विशिष्ट सस्कृति क प्रचार म यय हुआ। देवपाल न मगध का बौद्ध प्रतिमाथा का पुननिर्माण कराया और उसका रायस्थय न वास्तु तथा श्रय कलाओं को पनपन का अवसर प्रदान किया। बोधिगया अथवा महाबोधि क मन्दिर क निर्माण म भी देवपाल का याण था। वह विद्या का उद्धार सरसक था और उसका राजसभा बौद्ध विद्वाना क लिए एक आश्रयस्थान क रूप म हा गई। बौद्ध कवि कण्ठदत्त उसकी राजसभा म रहता था और उसन लोकन्वर शतक नामक सुप्रसिद्ध काव्य की रचना की थी जिसमें लोकन्वर का विस्तारपूर्वक वर्णन हुआ है और लोकन्वर अथवा अवराविकावन्वर के प्रम और क्षमा कादि गुणा का स्तुति है। देवपाल का शासन काल ८१५ और ८५५ क बीच रखा जा सकता है।

नारायण पाण्डव--देवपाल के बाद बगाल क राय पर कई छट छट राजाभा न राय किया परन्तु उनका शासन की अवधि बहुत लल्प थी। उहान बहुत थोडे समय तक ही राय किया। नारायण पाल अपने वश का एक शक्तिशाली नरेश था जिसन कम स कम ५४ दप राय किया। अपन पूर्वजा क विपरीत नारायण पाल शय धम का अनुयायी था और उसन बाहर स शक सयात्तिका को अपन राज्य मे आर्षन्वित किया था। अपन शासन काल क प्रारम्भिक वर्षों म नारायण पाल ने

शिव के एक हजार मंदिरों का निर्माण करवाया और उनका प्रबन्ध उसने इन पागुपन आचार्यों के सुपुत्र कर दिया। इन आचार्यों को उमने दान में गाँव भी दिए। पहले कुछ दिना तक नागपण पाल का मगध पर अधिकार बना रहा कि तु ऐसा प्रतीत होता है कि वास्तव में मगध प्रतीहारों के राज्य में बना गया।

**महीपाल प्रथम**—नारायण पाल के बाद उमरा। पुत्र रावराज शासनारिभारी हुआ कि तु उमके समय में गजरा पातमपय में पाता का म्यनि में कोई रिशय सुवार नहा हुआ। गापान रितीय और विग्रहपाल रिनाय (९३५-९९२) के समय में पालों की शक्ति कुछ जशा में बड गई। रावपाल के समय में काम्बोज नामक पव तीय लागा न बगाल के कुछ भाग पर अपना अधिकपत्य स्थापित कर लिया था कि तु महीपाल (९७८-१०३०) में काम्बाजा का निकाल बाहर किया। महीपाल प्रथम ने पर्याप्त अशा तक अपनी विघ्निकुलरामो का स्तम्भन किया। जने राज्या रोहण के ही वष उसने सम्पूर्ण मगध नीरमुक्ति और पूर्वीय बगाल को विजित किया। महीपाल प्रथम के राज्य काल की सबसे महत्वपूर्ण घटना थी चाना का आक्रमण। राजेन्द्र चाल के एक सनानायक ने उडीमा के भाग में होकर बगाल पर आक्रमण कर दिया। आक्रमण का महीपाल प्रथम ने सामना किया परंतु चोल सेना ने उसे पराजित कर दिया। फिर भा पाल नरेण ने उम गगापार न बनने दिया। इम पराजय के द्वारा पात साम्राज्य को क्षति अवश्य ही पहुंची होगी। इस बात के प्रमाण उपलब्ध है कि महीपाल प्रथम के शासन काल के उत्तरार्ध में उमके राज्य की सीमायें संकुचित हो गई थी।

महीपाल उगाल के शासका में काफी प्रसिद्ध है। आज भी उसकी प्रशंसा में गीत गाये जाते हैं और उल्लखनीय बात ता यह है कि ये गीत लोकप्रिय भी हैं। उमके राजत्वकाल में बगाल का राज्य समृद्ध था। कला की उन्नति हुई तथा इसका रूप सुवर गया। मति कला को एक अभिनव भंगिमा तथा मद्रा प्राप्त हो गई। नालंदा के विशाल बड्ड मन्दिर का पुननिर्माण महीपाल प्रथम के शासन के म्यारहवें वष में कराया गया था। बनारस के बौद्ध मंदिरों की उसक सम्बन्धियों स्थिरपाल और वसन्तपाल ने मरम्भन कराई थी। महीपाल प्रथम के ही समय में मगध में घम पाल तथा अय घमिंधायों ने आमन्त्रण मिलने पर तिबत की यात्रा की थी और वहा पर उमने बौद्ध धर्म को सम्मानपूर्ण स्थान दिलाने का प्रयत्न किया। महापाल के सुनीधकालीन शासन के उपरांत नयपाल पाल वष के राज्य का स्वामी हुआ।

**नयपाल**—नयपाल को बहुत थोड़े ही समय तक राज्य करने का अवसर मिला। उसके शासन काल में हिन्दुओं का तीर्थस्थान गया एक मय और शान्तर नगर के रूप में हो गया। गया जिले के शासक विन्वहण ने नयपाल के शासन के पन्हर्वे वष में विष्णु के पञ्चिह्ला के निकट कई मंदिर बनवाये। नयपाल के शासन काल के अन्तिम दिना में मगध पर विहयात चेदि नरश कण ने आक्रमण कर दिया। अतीश अथवा नीपकर श्रीनान नामक दार्शनिक भिक्षु की एक तिबती जीवनी में कण के आक्रमण और इस आक्रमण के प्रतिरोध का कुछ वणन मिलता है। जब कण ने मगध पर आक्रमण किया उस समय अतीश महाबाधि अथवा बाव गया में निवास कर रहे थे। वे शीघ्र ही तिबत के लिए विदा लनवाये थे। चेदि सेनाओं ने पहले तो पाल राज्य को क्षति पहुंचायी परन्तु बाद में पाल सेना ने चेदिया को परास्त कर दिया। जब कण की सेना के सैनिकों का बदन किया जा रहा था अतीश ने स्वयं

हस्तान्त किया और नौना राजाओं नयपाल तथा लक्ष्मीका के बीच संधि की शर्तें निर्दिष्ट करेगा। कुछ विद्वानों ने अनुमान किया है कि इस संधि के फलस्वरूप नयपाल ने अपने पुत्र विग्रहपाल के लिए लक्ष्मीका का कन्या मांगा। अतएव विग्रहपाल और लक्ष्मीका का कन्या यावनथा का विवाह हो गया।

नयपाल के बाद उसका पुत्र विग्रहपाल तृतीय राजा हुआ। विग्रहपाल तृतीय यद्यपि एक उदार वादक था तथापि उसने सूयग्रहण अथवा चंद्रग्रहण के अवसर पर एक बार गंगा में स्नान किया और मामक के पण्डित एक ब्राह्मण का एक ग्राम दान में दिया। इसी वर्य के समय में चानुक्य राजा विक्रमादित्य ने बंगाल और आसाम पर चढ़ाई की। विग्रहपाल तृतीय के समय में पाल साम्राज्य ह्यमांमुख हो चला था। उनका मृत्यु ने उनके राज्य की स्थिति को और अधिक जटिल कर दिया।

विग्रहपाल तृतीय के उत्तराधिकारी—विग्रहपाल तृतीय का मृत्यु के बाद बंगाल में गण युद्ध छिड़ गया। उनके तीन पुत्र थे महापाल द्वितीय, सूरपाल और रामपाल। महापाल द्वितीय निहामनाह हुआ और उसने अपने भाईया सूरपाल तथा रामपाल को बन्दी बना लिया। कवन नामक एक कबान ने महापाल के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा लगा कर दिया और उसे निकाल बाहर कर दिया। महापाल विद्रोहियों के साथ लड़ने में असमर्थ मारा गया। अब सूरपाल निहामनाह का अधिवारी हुआ कि तु उनके समय में भी उनके सामन्तों ने विद्रोह कर दिया। अपने भाईया में रामपाल सबसे अधिक पलायनी और योग्य निकला। इसमें कोई संदेह नहीं कि निहामनाह के लिए गह्वरुद्ध के कारण पाल राज्य का पाल गहरा कमजोर पड़ गया। तीनों के परस्पर युद्ध करते हुए देखकर पूर्व बंगाल में बमन नामक उठ खड़ा हुआ। इस समय वह पाल साम्राज्य का सामर्थ्य या हा काफ़ी सङ्कुचित हो गई था, बमन के उत्थान से वे सामर्थ्य और अधिक सिद्ध हुए। इस स्थिति में रामपाल ने बड़े धर्म का काम लिया।

रामपाल—रामपाल ने अपने वंश के समस्तका का सहायता से निहामनाह पर अधिकार कर लिया और कवन नामक विद्रोही कबाल को पराजित किया। अपना विजय स्मृति का स्थापना प्रमाण के लिए रामपाल ने रामवती नामक नगरी का स्थापना की। रामपाल का इस बात का श्रेय प्राप्त किया गया है कि उसने आसाम तथा अन्य राज्यों पर भी विजय प्राप्त की। सामन्तों ने रामपालवर्ति नामक ग्रन्थ में रामपाल के जीवन चरित का बयान किया है। रामपाल ने उत्तर बंगाल पर भी विजय प्राप्त की और कलिंग पर आक्रमण किया। इन विजयों में पाल साम्राज्य की स्थिति कुछ सुधरे गए परंतु गंभीरता के लिए साम्राज्य के पतन का प्रतिपादक बगवती हो गयी। अपने मामा का मृत्यु हुआ जान में रामपाल के चित्त को इतना प्रबल आपात पहुँचा कि गंगा में डूबकर उसने अपने प्राण त्याग लिए।

पाल साम्राज्य का पतन—रामपाल के बाद पाल साम्राज्य की स्थिति और अधिक दयनीय हो गई। उनके पुत्र कुमारपाल के समय में आसाम स्वतंत्र हो गया। उसका पुत्र रामपाल तृतीय मन्नाल कद्वारा मार डाला गया। मन्नाल का अधिकार दक्षिणी बिहार-पटना और मुंगेर तक विस्तृत था। उसके पदचान् गोविन्दपाल शासन हुआ जिसका अधिकार बल गया एक सामन्त रह गया। गोविन्दपाल गहड़वाला और सना के बीच घिर गया। नौना और से घिर जाने पर पाल साम्राज्य की स्थिति बड़ी

हो शोचनीय हो गई। पाण्डु नरेश नाममात्र का ही राजा रह गया। मन वश धर्म उल्लंघन सामन्तों के विद्रोह और परवर्ती पाण्डु नरेशों की अयोग्यता के कारण पाण्डु धर्म साम्राज्य का पतन हो गया।

पाल शासन का महत्त्व—पाण्डु वंश का शासन का न भारत के न राजतन्त्र का इतिहास में काफी महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने सबसे अधिक शक्ति प्राप्त की। पाण्डु नरेशों ने चार शताब्दियों तक बंगाल का राज्य पर शासन किया। धर्मपाल और देवपाल के शासन का न समय एक शताब्दी में अधिक था। इनके न मृगशीर्ष कालीन शासन में बंगाल का उत्तर भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली राज्य में एक बना दिया। साम्राज्य सत्ता के लिए उत्तर भारत में जिन तीन राजतन्त्र शक्तियों के बीच सघर्ष हुआ उसमें न एक शक्ति पाण्डु का भाग था। धर्मपाल ने एक बार श्रीमण्डल (कन्नौज) की राजतन्त्र का स्वायत्त कर दिया था। धर्मपाल और देवपाल के उत्तराधिकारियों के समय में यद्यपि पाण्डु का शक्ति घटा नहीं रही तथापि उनका राज्य इस समय भी उपरिष्ठ नहीं था। जिस समय पाण्डु साम्राज्य अपने उत्कर्ष का स्थिति में न था उस समय में हमका प्रभाव दूर दूर तक के प्रान्तों तक था। बिहार और उडुप्पा का पश्चिम भाग अन्तिम समय तक पाण्डु साम्राज्य के अधीन रहा।

परन्तु पाला का शासन राजनीतिक दृष्टिकोण की अपर्याप्त सामूहिक शक्ति का सं अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राक्सर एन एन घोष के शताब्दी में पाण्डु शासन के अन्त गत न केवल बंगाल का गणना सबसे बड़ा शक्तिशाली शक्तियों में का जान गया अपितु यह बौद्धिक और कला सम्बन्धी क्षमता में उत्कृष्ट हा गया। प्रसिद्ध चित्रार शिल्पी एवं वास्तुशास्त्र की प्रतिभा गणना में घामान और वित्पाण्डु पाल साम्राज्य में ही नयाथय पाकर अपनी कला के निमाण में मगन रहे। कला के क्षेत्र में पाल नरेशों का बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान था। उनका शासन का न में विशिष्ट हानवाला कला परम्परा की जीवनी शक्ति का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि इसका प्रभाव भारत के बाहर दक्षिण पूर्वी देशों में भी पहुंचा। नवी शताब्दी में घामान और उसका पुत्र वित्पाल न चित्र कला की जिस परम्परा का जन्म दिया वह ग्यारहवां शताब्दी में भी जारी रही। यद्यपि पाल वंश की बौद्ध कला में ह्रास के कुछ लक्षण अवश्य विद्यमान हैं तथापि यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय बौद्ध धर्म की अन्तिम छ शताब्दियों के कलात्मक विकासन का युग प्रस्तुत करती हैं। सारे बंगाल और बिहार में पाल नरेशों ने चत्वारों बिहारों मदिना और मूर्तिया का निर्माण कराया। अयोग्यवश उन का न की इमारतें काई बची न रहे परन्तु सरा और नहरा की एक बहू नर्या आज भी सुरक्षित है जिससे पाल राजाओं की निर्माण सत्रियता का पता चलता है।

शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में भी पाला की न महत्त्वपूर्ण थी। हम देख चुके हैं कि आदन्तपुरी और विश्वमिशला के विश्वविद्यालयों की स्थापना पाल-नरेशों ने ही की थी। नानदा की मूर्ति इन विश्वविद्यालयों का यश का दश के दूरवर्ती भागों तक फैला हुआ था और दूर दूर के विद्यार्थी नानाजन के लिए यहाँ आया करते थे। शिक्षा के संरक्षण और प्रसार में न बौद्ध विश्वविद्यालयों का काफी महत्त्वपूर्ण योगदान था। दो एक नरेशों का छात्रकाल का सभी पाल नृपति बौद्ध धर्म के अनुयायी थे। उन्होंने बौद्ध धर्म का उस समय का नयाथय प्रदान किया जिस समय देश के अन्य भागों में यह पतन-मग्न था। पाण्डु नरेशों ने अपने राज्य में बौद्ध धर्म के प्रचार का



पूरा प्रयत्न कि सा परन्तु उनका धार्मिक दृष्टिकोण मकाण नहीं था। व ब्राह्मणों का भी दान-श्रमिणा दक्षर सम्मानित करते थे। बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ अतीश नामक प्रसिद्ध दार्शनिक मिश्र न तिब्बत की यात्रा की थी। पालों के शासन-काल में साहित्य की उत्पत्ति उतना अधिक तीव्र नहीं हुई जितना की कला की किन्तु सा-व्यक्तान्त नन्दी का रामपालचरित नामक श्लेषात्मक महाकाव्य इसी समय लिखा गया। 'लोकेश्वर' शतक नामक काव्य का रचना बौद्ध कवि बाल्मीकि के समय में की थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मङ्कट के मरक्षण और विकास की दृष्टि से पालों का शासन-काल काफी महत्त्वपूर्ण था। परन्तु यह नहीं मूलना चाहिए कि पालों के ही शासन-काल में बौद्ध धर्म का उम विकृत रूप का विकास हुआ जिससे भारतवर्ष में बौद्ध धर्म के लोग को अवश्यम्भावी बना दिया। बौद्ध विहारों में व जयान और तान्त्रिक अभिचारान्ति के रूप में अभिचार विलासिता तथा सुरा-मदन आदि दुष्गुण प्रविष्ट हो गये।

### वगाल का सेन वंश

**सेन वंश का मूल**—मामतमन को जिम्मे वगाल के सेन वंश की नाव डानी था कर्नाटक क्षत्रिय कहा गया है। इसमें सन्देह की गुजाइश कम है कि सेना का उद्भव दक्षिण में ही हुआ था और अवमर पाकर वे उत्तर भारत में चले गये तथा वगाल में अपना राज्य स्थापित कर लिया। सेन वंश के लोग सम्भवतः ब्राह्मण थे किन्तु अपने मन्त्रि-वर्ग के कारण वे बाद में क्षत्रिय कहे जाने लगे। डा० राय महोदय ने लिखा है कि यह अशुभ नहीं है कि मामन्तमन भयूरशमन की मूर्ति ब्राह्मणों का और उमकी मूर्ति राजकाय नीकरों में प्रविष्ट हुआ और क्षत्रिय का जावन अपनाकर उमने शोभन ही स्थापति प्राप्त कर ली। पाल साम्राज्य के काल में मन्ताव-शेष पर ही सेना के राज्य की मूर्ति खड़ी हुई।

**विजयसेन**—सेन वंश के मन्तावक सामतमन के पौत्र विजयसेन ने अपने वंश के गौरव का बड़ा धर्म। उसने ६२ वर्षों तक राज्य किया। विजयसेन ने वगाल में वमना का निर्माण बाहर किया। उत्तरा वगाल से मदनपाल का निर्माण करनेवाला भी विजयसेन ही था। कहा जाता है कि उमने नपाव आमाम और क्षत्रिय पर विजय प्राप्त की। रामपाल का मृत्यु के बाद पाल साम्राज्य के ध्वसावस्था पर विजयसेन ने जिम नाम की स्थापना का उमने पूर्वी, पश्चिमी और उत्तरा वगाल के प्राग सम्मिलित थे। उमने परम साहसिक का उपाधि ग्रहण का जिम्मे स्पष्ट सिद्ध हुआ है कि विजयसेन ने था। मन्ता विजय के माय माय उमने साम्प्रतिक और धार्मिक काम मा किया। उमने शिवमन्त्रि का निर्माण कराया एक हीन सुन्वाई विजयपुर नामक नगर बनाया और उमापति का राज्याध्यय प्रधान किया।

**बल्लाल सेन**—बल्लाल सेन एक विचित्र शासक था। बंगाल के ब्राह्मणों और अन्य जातियों की जाति में उमने इस बात का धर्म किया गया है कि आधुनिक विमाज न उमी न कराया था। वग धर्म का रखा के लिए बल्लाल सेन ने उमने बर्वाहिक प्रथा का प्रचार किया जिसे कुलान प्रथा कहा जाता है। प्रत्येक जाति में उमने विमाजन उत्पत्ति की विमदता और जान पर निमर करता था। आगे चलकर यह उपा विमाजन बड़ा का १२ जोग जाति हो गया। बल्लाल सेन ने अपने पिता के राजतन काल में शासन काय का मन्तव्य किया था। वग कमानुगत द्वारा उसका राज्य मिला उसकी उसने

पूण रूप से रक्षा का। उसका राज्य पाँच प्रांता में विभक्त था। उगरी तीनों राजधानियाँ थी—गोडपुर, विजयपुर और मुवणग्राम। कहा जाता है कि बरसात में न अपने गुरु की महायज्ञ से दानगागर और अद्भुतसागर नामक ग्रन्थों का प्रणयन किया। दूसरा ग्रन्थ वह अपूर्ण ही छोड़कर मर गया। परम माहर्षि और विद्वान् शकरी आदि विद्वानों ने बनाए गए मन के शय ज्ञान का प्रमाण मिलना है।

लक्ष्मण सन—लक्ष्मण सन अपने ब्रह्म का एक प्रसिद्ध शासन का राज्य हा साथ भारत के सबसे कायर नरगा में भी उसका गणना की जाना चाहिए। जर्मिया में उसके लिए कहा गया है कि उसने कानिग जासाम बनारस और इलाहाबाद पर विजय प्राप्त की और इन स्थानों पर उसने अपने विजय-स्तम्भ गाड़ दिये। परन्तु अभिलेखा के इस कथन पर पूरी तरह से विश्वास नहीं किया जा सकता। हम यह नहीं मानना चाहिए कि लक्ष्मण सन प्रसिद्ध घट्टवार नरगा जयचक्र का मन्मामदिक था जिसके अधिकार में बनारस और इलाहाबाद थे। अतएव इन स्थानों पर लक्ष्मण सन के द्वारा विजय-स्तम्भ गाड़ जाने का कल्पना विद्युत् निराधार जान पड़ता है। सम्भव है कि उसने जासाम और कानिग पर विजय प्राप्त की हो। किन्तु यदि मुस्लिम इतिहासकारों के कथन पर विश्वास किया जाय तो कहना पड़ेगा कि लक्ष्मण सन नितान्त कायर था। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार जब महम्मद त्रिभुवन विस्तार विज्या विचार का रौदता हुआ अपना छोटा सी सना चक्र उसका राजधानी पहुँचा तो लक्ष्मण सन चुपचाप अपने महान् विद्वान् दण्डाज से निवृत्त भागा। हाँ सकता है कि मुस्लिम इतिहासकारों ने लक्ष्मण सन घुड़सवारों की मर्यादा नियम में मृत्यु का उपमा की है क्योंकि कबल जटारह जवारानिया के द्वारा कितना राज्य पर विजय प्राप्त करने की कल्पना उपहासास्पद जान पड़ता है। तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि मुसलमानों की सना अत्यन्त थी। इस अत्यन्त सना का विना सामना किये राजमहान से निवृत्त भागना निस्सन्देह लक्ष्मण सन की कायरता का परिचायक है।

लक्ष्मण सन का शासन संस्कृत साहित्य के विकास का दृष्टि में महत्त्वपूर्ण है। उसकी राजमामा में पाँच रत्न रहते थे जिनके नाम थे—जयदेव (गातगावित्र के रचयिता) उमापति घोषा (पवनदूत के रचयिता) हनयुष और श्रीधरनाथ। लक्ष्मण सन ने स्वयं अपने पिता के अपूर्ण ग्रन्थ अद्भुतसागर का पूरा किया।

लक्ष्मण सन के राज्य पर मुसलमानों का आक्रमण ११०९ ई० में हुआ था। इससे बाद सन राजवंश के अन्त हो गया यद्यपि पूर्वी बंगाल पर और बाद तक इस वंश के राजा राज्य करते रहे।

## दक्षिणापथ के राजकुल | २८

दक्षिणापथ का अग्निप्राय—सम्वृत शास्त्र दक्षिणापथ का अग्निप्राय नमदा नन्दा का दक्षिण धर्म है। इस प्रदेश का वर्तमान नाम देवकी है। जिस प्रकार विष्णु और हिमालय के बीच का सारो भूमि का 'उत्तरापथ' का मना दी गई थी उसी प्रकार नमदा नन्दा का दक्षिणवर्ती भूभाग का दक्षिणापथ कहा जाता था। वनसाम्राज्य अथवा दक्षिणापथ शास्त्र का प्रयोग अग्नि भारत का सम्पूर्ण प्रायद्वीप का वायु करान का नियम किया जाता था परन्तु विशिष्ट रूप में इस शास्त्र में इस भूभाग का वायु होता है जिसमें बम्बई का वायु और बम्बई प्रदेश निजाम का वायु तथा आंध्र प्रदेश सम्मिलित है। समुद्र वायु का बन्धन देवकी का वायु अलगत समना जाता था सुदूर दक्षिण का वायु मन्दा।

दक्षिणापथ का पूर्व इतिहास—यद्यपि राजात्तिक अग्नि म दक्षिणापथ जयका देवकी का प्रथम बहन का प्राचान है तथापि इसका प्राचान इतिहास तमसावत है। मानास अर्थों का तानाबुझ उत्तरापथ कहा था अतएव उनका साहित्य (बद उप नियम ग्रहण आरम्भक मूल अग्नि) द्वारा हम उत्तरापथ का इतिहास का कुछ ज्ञान अर्जित है, जहाँ परन्तु दक्षिणापथ का निवासिया का प्राचान सम्वृति का मने ही कुछ ज्ञान प्राप्त है, जहाँ उनका इतिहास का विषय म हमारा ज्ञान शून्य का बराबर है। अर्थों का दक्षिणापथ म प्रथम आर प्रसार म उत्तरापथ का निवासिया का साथ देवकी का वायु का सम्पर्क आ जाँर यह सम्पर्क सम्बन्ध का रूप म परिणत हा गया परन्तु हम स्पष्ट रूप म उन स्थितियों का, जो सम्पर्क ज्ञान नहा है जिनका द्वारा आयु का दक्षिणापथ म प्रविष्ट है। हमका काट साह नहा कि दक्षिणापथ आर विष्णु शास्त्राज्ञा जमा अथवा साम्राज्य का कारण पवाञ्च का त तब उत्तरापथ का आयु दक्षिण म प्रवेश नवा सवा। देवकी का बहन भाग आ अर्थों का मवम पञ्च मानुस आ विष्णु अथवा बराबर था। ऐतरेय ग्रहण जिमना रचना ईसा का पूर्ववा शताब्दी अथवा इसम पूर्व ही चूना था दक्षिणापथ का आग्ना पाण्डु शवरा तथा पुत्रिया का उत्पन्न करता है आ यह सचमुच एक विस्मय का बात है कि इन अग्नि का दिव्याग्नि का पुत्रा का वंशज बतया गया है। रामायण म अर्थों का दक्षिणापथ म जान और रहन तथा देवी का राजनीतिक विम्वय का साथ अग्नि अथवा विष्णु का सम्बन्ध स्थापित करने का स्पष्ट सूचना मिलता है। रामायण म राम का क्या अग्नि म अर्थों का प्रसार आर उनका राजनीतिक विजय का काव्यात्मक वर्णन करता है, परन्तु एक अन्य प्राचानतर काव्यानुवत्त म ज्ञान जाना है कि अगस्त्य मनि न पञ्चमहत्त विष्णु पवत का अग्नि इस प्रदेश म आयु ज्ञाना, धूम आर मन्दा आर प्रचाय आचार बनाया। रामायण और अगस्त्य मनि स सम्बन्धित उन अनुश्रुतियों के सम्बन्ध म जिनका विषय दक्षिण म अर्थों तथा उनका सम्वृति का प्रसार है प्रसेसर एत एत घाय का बचन है रामायण म वर्णित दक्षिणापथ म राम का बचानका सम्भवत एक ऐतिहासिक पष्ठभूमि मिय हुए है जो उस प्रदेश म अर्थों का राजनीतिक विस्तार का सूचक है।

महाशिव को एक ओर पुरानी परम्परा में अनुभार महाशिवगन्धर्व ने करि थे जिन्होंने विद्यगिरि के पारवती प्रवेश में आय धर्म और गन्धर्व का प्रकाश फनाया और एक उपनिवेश बसाया। यदि इन परम्परा में कोई एतिगमिन् तथ्य है ना यह पास्कृति प्रदेश निश्चय राजनीतिक प्रभुता के स्थापित होने में पहल हुआ था और उसका काल लगभग आठवीं शताब्दी का अन्त अथवा सातवीं शताब्दी ई० पू० का प्रारम्भ माना जा सकता है।

एसा प्रायः माना है कि समय के साथ साथ उत्तर और दक्षिण में निवासियों का सांस्कृतिक सम्बन्ध दृढ़तर होता गया और उत्तराखण्ड में नाग निवासियों का अधिकाधिक परिचय प्राप्त करने ला। साहित्यिक साक्ष्य से इन बातों का प्रमाण मिलता है कि उसी समय ब्रौतता गया दक्षिण के मूलाग प्रकाश में जान ला। पाणिनी का जिस दक्षिणायन का ज्ञान था उसकी भौगोलिक सीमा का ज्ञान आगे नष्ट जाती। परन्तु पाणिनी के अष्टाध्यायी पर भाष्य मिलनेकेबाल कात्यायन का दक्षिण में चलो और पाण्ड्या का भी ज्ञान था। अथशास्त्र की रचना काल कात्यायन के कुछ बाद रखा जाता है अतएव इसमें हमें दक्षिणायन का और अधिक उल्लेख मिलता है। अथशास्त्र के प्रणयता ने सुदूर दक्षिण से प्राप्त होनेवाला नीतिशा का उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट होता है कि दक्षिण के विषय में उत्तरायन के निवासियों का ज्ञान बढ़ता जा रहा था।

मौर्य साम्राज्य का सामर्थ्य नष्ट होने के बाद में अवश्य ही फलो थी यद्यपि सुदूर दक्षिण के भाग उसमें सम्मिलित नहो थे। कुछ तामिल कवियों ने एक विजयता का उल्लेख किया है जिसने दक्षिण के प्रदेशों पर विजय प्राप्त की थी। इस विजयता का समीकरण विजयाने चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ किया है। चन्द्रगुप्त के पहले नन्द वंश के किना सम्राट ने भी दक्षिण विजय की हागी बरानि ना का साम्राज्य दक्षिण में काफी दूर तक था। सम्भवतः ममूर तक नन्द ने विजय प्राप्त कर ली थी। प्राचीन तामिल साहित्य में नन्दा के वंश और उनका प्रसिद्धि का वर्णन मिलता है। अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नन्दों के समय से उत्तर और दक्षिण भारत के बीच राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित होने प्रारम्भ हो गया था। अगक के अभिलेखा से सिद्ध होता है कि उसका साम्राज्य दक्षिण में ममूर तक फैला था। उसका एक अभिलेख में चाला और पाण्ड्या के राज्य को स्वतंत्र स्वाकार किया गया है। मौर्यों का साम्राज्य सुदूर दक्षिण तक मझे हा न विना था परन्तु इसमें सन्देह नहो कि उन्होंने भारत में जिस राजनीतिक एकता की स्थापना की उसका प्रभाव दक्षिण के काफी मूलाग पर था। किन्तु मौर्य साम्राज्य के विनष्ट हो जाने पर जिस प्रकार उत्तरायन की राजनीतिक एकता टूट गिरी गई उसी प्रकार दक्षिणी भारत में भी राजनीतिक एकता का अभाव उत्पन्न हो गया। इस समय दक्षिणायन की राजनीतिक स्थिति क्या थी इसका विवरण उपलब्ध नहो। परन्तु यह निष्कर्ष निकालना सम्भवतः अनुचित नहो कि एक मात्र मौर्य राजनीतिक सत्ता वहाँ पर विद्यमान नहो थी।

आधुनिक सातवाहन राज्य की स्थापना के कुछ समय के लिए दक्षिण में काफी दूर तक राजनीतिक एकता स्थापित हो गई। परन्तु इसका फलसाहसरी शती में जैसे ही यह साम्राज्य नष्ट हुआ यह राजनीतिक एकता भी टूट गिरी गई। दक्षिण के विभिन्न भागों में कई राज्य उठने लगे। तृतीय शती ईसा के मध्य ईश्वर सेन

नामक आमीर मग़ार न उत्तर महाराष्ट्र सातवाहना से छीन लिया। नागा क अधिकार म भा कुठ प्रश्न आ गय। इसा का तीमरो शताब्दी से लकर वाकटक वंश के नरेशो ने मध्य भारत और दक्कन क कुछ भागा पर राज्य करना आरम्भ किया। गुप्तयुग म जिस अभिनव राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना का प्रादुर्भाव हुआ था उसका प्रसार दक्कन और सुदूर दक्षिण तक था। परन्तु वाकटक और गुप्त राज्या के पतन स दक्षिणापथ मे विखंडीकरण की प्रवृत्ति फिर एक बार सशक्त हो गई और अनेक राजवशा की स्थापना हो गई। इन राजवशो म वातापी (वादासा) का चालुक्य वंश काफी विख्यात और शक्तिशाली था, अतएव हम पहल इसा वंश के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

**चालुक्यों का मूल**—चालुक्या क मूल के सम्बन्ध म अनेक अनुश्रुतिया प्रचलित हैं। परवर्ती चालुक्य अभिलेखा जीर विक्रमाकबरितचर्मा म अथाध्या को चालुक्या का मूल निवामस्थान माना गया है। किन्तु कतिपय पारश्चात्य विद्वान् चालुक्या को विन्देशी मूल का मानते हैं। डा० राइस क विचार म चालुक्य शब्द सल्यूकिया (Seleukia) स मिलता-जुलता है और पल्लवा तथा चालुक्या म जा पारम्परिक युद्ध हुआ करते थ, उनका सम्बन्ध दजला और फरात क तटी पर सेल्यूसिड और एरसान (Scythians and Arsacidae) के बीच हानवाले युद्धा स था। परन्तु डा० राइस की इस विचित्र धारणा क लिए पुष्ट प्रमाण का अभाव है। इसी प्रकार स्मिथ साहब का यह मत भा प्रमाण द्वारा अनुमोदित नही कि चालुक्या अथवा सानकिया का सम्बन्ध चारा स था अतएव के विन्देशी गुजर जाति के थे (चाप लाग गुजर जाति की एक शाखा थ) जो सम्भवत वे राजपूताना स दक्कन गये थे। भारतीय अनुश्रुति म चालुक्या की उत्पत्ति के विषय म जा कथायें नही हुई हैं उनमे कल्पना का जोरक समावेश है। यद्यपि हम उनम स कल्पनात्मक अंश को निकाल दें ता यह सिद्ध होना है कि चालुक्य उत्तर के क्षत्रिय थ जोर उनकी उत्पत्ति हारैति से हुई थी। व लाग मान थ मान क रे। हनुसांग नामक चाची यात्री न भी पुल केशिन द्वितीय की क्षत्रिय कुलाह्वय बनाया है।

**वादासा के प्रारम्भिक चालुक्य नरेश**—चालुक्य वंश का प्रथम नरेश जयसिंह था जिसने राष्ट्रकूट और कम्बुजा म लकर अपने एक स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की। जयसिंह का पुत्र जोर उत्तराधिकार रणराग था जिसके समय म चालुक्या की शक्ति का विपरीत विकास न हो सका। परन्तु उसके प्रिय पुत्र पुनकेशिन प्रथम को चालुक्य वंश का वास्तविक संस्थापक कन जाता है। यह अपन वंश का सबसे पहला स्वतन्त्र शासक (महाराज) था। पुनकेशिन प्रथम न सत्प्राथय और रणविक्रम की उपाधिया धारण की थ और उस श्रायस्वीवलम नामक विद्वान् म भा अनुराग था। चालुक्य चलनस्वर के वाग्मा अमिठव म पठा चलता है कि पुनकेशिन प्रथम ने अरवमय तथा अन्ध श्रौत यथा का अनुष्ठान किया था। उनक पुत्र मंगलश क समय के लेव उस कवल हिरण्यगम और जन्मय यथा का अनुष्ठान नहीं ही नही बतलाते अपितु उस अग्निधाम, अग्निचयन वाजपेय बहुमुखी जोर पीण्डरिक् यनों के अनुष्ठान का भा त्रेय प्रदान किया गया है। यही-ही पर उसकी तुलना पौराणिक नरेशा यथात्रि और त्रिलोच स की गई है और उनक लिए यह भी कहा गया है कि उसने मानव घमशास्त्र पुराणा रामायण महामारत तथा अन्य इतिहासा का अध्ययन किया था। पुनकेशिन न जन्ममेय यन अवश्य किया था परन्तु उपरने किसी विशिष्ट विजय द्वारा इस अनुष्ठान की चरितावता नही प्रमाणित की। उसका राज्य

सम्मिलन आनुविध वीणापुर जिले तक मामिल था और बादामा द्वारा राजधानी थी।

**कौतिल्यमन—**पुलकशिन प्रथम ने अपने पत्नीसिपा के ऊपर जो सफलता प्राप्त की थी उसमें उसे अपने पुत्र कौतिल्यमन से महत्वपूर्ण सहायता मिला था। कौतिल्यमन के समय में वातापी के चानुक्या का शक्ति का पयाप्त विनाश हुआ। मगध के महाकुट रत्नम अभिनय के अनुगार कौतिल्यमन ने दश अंग बलिग यत्न मगध मन्त्र धरता मग भूषक पाण्ड्य द्रमिन् चानिय आनुक आर वन्द्यन्ता के रागआ का पराजित किया। परन्तु यह निश्चित है कि इस अभिनय का शत्रु नितात अति ण्यावितपूर्ण है अतएव इस पर कि काम न किया जा सकता। कौतिल्यमन के पुत्र के एतात अभिनय में उस (कौतिल्यमन के) नाना मायों आर वन्द्या के लिए विनाश की निशा बतल गया है जोर दान भा वणित है कि उसमें वदम्य नग्या ने एक सघ का विध्वस्त किया था। एहान अभिनय के विवरण दिवमनाय प्रस्तुत है। कौतिल्यमन ने काया के मायों ने र दनयासा के वन्द्या कापरान्त के के अपना शक्ति का विक्रय किया था। नाना वदम्या जोर मायों के ऊपर उसने, विजय का चर्चा परन्ती चानुक्या के अभिनय में मामिलनी के। कौतिल्यमन का सफलता के फलस्वरूप नि मनकुछ उसक पित के शासन के में प्राप्त कागदया चानुक्या के रत्नानि प्रभाव वदम्य राज्य तथा मसूर और मगध मगध हूर के फा विस्तार भागा पर फल गया। एसा पनात होता है कि कौतिल्यमन ने काया के न भागा का मा अपने राज्य में मिला लिया था जो मायों के अधानस्य थे। मगध के कौतिल्यमन के शासन का ५६६-६७ में ५९८-९८ तक निश्चित किया गया है।

**मगलन—**कौतिल्यमन का मय के सम्य उसने पुत्र नावगिण के अतएव राजसिंहासन पर उसने साते में भागे न अपना अधिकार जमा लिया। रवता द्वीप और बलुचरिया के ऊपर विजय प्राप्त कर नाना मगध का सबसे बड़ा सफलताये था। मगध का भागवत धर्म के जनय या आर विष्णु के जनय भवत था। इसा के शासन के त में वादमी में दिष्ण के मगध ग्या मन्दिर निमित्त किया गया था जो कता के एक उत्कृष्ट नमना मन जाता है। मगध के शासन के अंत में उसके मतात पुत्रकशिन त्रिनाय जोर स्वयं उचक बाच गह-युद्ध छिड़ गया। पुत्रकशिन त्रिनाय के एतात अभिनय में इस सघप का यह कारण दिया गया है कि मगध अपने ही पुत्र का अपन। उत्तराधिकार दा नाना चाहता था जिससे पुत्रकशिन त्रिनाय का अत्यंत राय जना और उत्तान अपन चाच के विरुद्ध युद्ध छिड़ दिया। इस युद्ध में मगध का अपन प्राणा से हाथ धन पड़ कर बादामा का सिंहासन पुलकशिन द्वितीय के अधिकार में चला गया।

**पुलकेशिन द्वितीय—**पुत्रकशिन त्रिनाय (६१०-११ संस्कार ६४२ तक) अपने वश का सबसे प्रतापी नरेश था ही अपने समय में न सभी राज आ में उसने स्थान गौरवपूर्ण था। उसके सिंहासन राहण के समय में उसके राज्य का स्थिति बड़ी दयनीय हो गई थी। मगध आर पुत्रकशिन त्रितीय के गह-युद्ध से नाम उठाकर अधीनस्थ राज्या न स्वतंत्र होने की सक्ती। पुत्रकशिन द्वितीय का चारा जोर शन हा शत्रु सैन्य पड़ने लग। चानुक्य राय के बाजपुर क्षेत्र के निवन्तवर्ती प्राप्त को अपना यिक और गवित नामक दो राज आ के आक्रमण की आशका थी क्योंकि वे भ्रमरधी (भीम) के उत्तरी तट तक बढ़ आय थे। इस प्रकार पुलकेशिन द्वितीय एक सक्

मया स्थिति म पठ गया और उसके सामन अपन राज्य का बाह्य आक्रमण स रक्षा करन और विद्रोही प्राप्ता का दमन करन का दा विकट समययो उत्पन्न हा। गइ। परंतु यवा पुलकशिन न अपन को स्थिति का मामना करन की शक्ति स सम्पन्न प्रमाणित किया। भद्र नाति क। अवलम्बन करक उसन गाविण का अर्पणियन की आर स विमुख करके अपना मित्र बना लिया। इस प्रकार स अपन ऊपर पडन वाला एक विपत्ति पर पुलकशिन त्ताय न विजय पाई।

पुलकेशिन द्वितीय को स य सफलतायें और विजयें—अपन राज्य की स्थिति सुदृढ़ करेन क उपरांत पुलकशिन द्वितीयन अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया। एहीन अभियान क प्रशस्तिकार रविकीति न उमनी विजया का बणन बटा काव्यात्मक भाषा म किया है। पुत्रकशिन द्वितीय न नव मिया का पराजित करक उनकी राजधानी पर अपना अधिकार जमा दिया। मसूर व गंगा म ल व र क अन्वेषा आर उत्तर क कावण क मार्यों का मा उसक अग आत्मममपण कर दना पना क्याकि क सम्भवत बद्धवा क मित्र थ जा र बद्धवा का पराजय क बद्ध उहान अपना मिर उठान उचित तथा शक्य न समया। मौर्यों का राजवाना पुग पर पुत्रकशिन त्तीय का अधिकार रहा गया। दक्षिण गजर त र्क ल ट। म त्वा आर गजरा का मा उमन दमन किया। दक्षिण म पुत्रकशिन द्वितीय का सफलता व प्रमण जय क्षाता म मा मित्र ज त है।

पुलकशिन त्तीय का सबसे महत्वपूर्ण सफलता था उनक द्वारा उत्तरापथ क सम्राट ह्य की पराजय। न्य न पुत्रकशिन पर आक्रमण किया परंतु विफल प्रयत्न ही रहा। पुलकशिन क सामन ह्य का एक न चत सवा बी व पस हाव उ स गान्ना पडा। पुलकशिन का स विजय का उल्लेख एहीन अभिलेख म इन शब्द म किया गया है 'उसने ह्य का जिसक चरण कमन जनक समझ जा र अनंत बन्धव सम्पन्न सामन्तो के मकुटा क मणिमयूख म मासमान रत्न थ परंतु जा यद्ध म गिरता हूँ गज पवित्रया क। दम्बक शीघ्रत हा उठा था मय म विगणित आर न्य रहित कर दिया।' इस विजय न पुत्रकशिन का प्रतिष्ठा का बहत अत्रिब बटा दिया। अपन अन्य समवालीन राज्या पर उमका आतक नम गया। मन्काशान और कनिग क नपति उसस मयमान और आनन्वित हा गय। उनन शास्त्र हा उसक सम्मन्व आत्मममपण कर लिया। इसक बाद समुद्रतटाय पथ का चालुक्य सना दक्षिण दिशा का आर मडा। पिष्टपुर आर एक जय दुग पर पुत्रकशिन त्तीय क, अधिकार हा गया। पिष्टपुर क राजवश का विनाश कर लिया गया जा र उम पर शासन करन क लिए पुलकशिन द्वितीय का युवराज नियुक्त किया गया। युवराज कुञ्ज विष्णुवधन न पूर्वी चालुक्या क नये राजकुत्र का नाय डारा जिमका अन्तिक १०७० ई० तक बना रहा। अधिक दक्षिण मे पुत्रकशिन त्तीय क न पराजय नरश महेंद्रवमन का युद्ध म पराजित किया आर उस अपन दुग म शरण रान क लिय बाध्य किया। पल्लव स्या स मिद्ध हाता है कि चालुक्य नरश पुत्रकशिन त्तीय पल्लव राज्य के भीतर तक घूम गया था। पुलकेशिन त्तीय क आक्रमण न पल्लवा की राजधानी क उच्चा (आपनिक बजीवरम्) को कठोर म डाल दिया। इसक बाद

१ 'अपरिमितविभूतिस्सोत्तसामत्तसेना-मकुटमणिमयूखाश्रा-तपात्परिदि' ।  
 युधि पतितगजं प्रानाशका-नत्तभूतो भयविगलितहर्षो यन चाक्षरि ह्य "

उमने कबरा का पार करके चाना धेरना जान पाण्डरा का अना नित्र बनाया। अपन शक्तिशाली पडामी पल्लवा के विरुद्ध पुनक शन का यण एक सगमन था। पल्लवा का शक्ति निस्सालेह विनष्ट हो गई परन्तु चानुक्य साग अपनी विजय पर अधिक समय क निर्णय न कर सके और शाघ्र ही पल्लवा का शक्ति का अम्पुदान हुआ। पुनकेशिन त्रिनाथ का अन्त मुसल न्ना हुआ। उमर जीवन क अन्तिम दिना म चालुक्य शक्ति का ह्रास होने लगा। पल्लव नरेश नरसिंहवर्मन ए ६४२ ई० म वातापी पर अक्रमण किया और पुलकेशिन द्वितीय का मुद्ध म मार डाला। वातापी पर पल्लवा का अधिकार हो गया किन्तु यह अधिकार भा स्थायी न हो सका। कुछ ही दिना बाद चानुक्य न पुन अपना शक्ति सगठित कर ली।

पुनकेशिन त्रिनाथ वात्मी क चानुक्य कुन का निश्चय हा भवम मगान् राजा था और प्राचीन भारत क भवमहान शासना म मा उमका स्थान है। उमका प्रभाव और यश भारताय सामा का अतिक्रमण कर विन्ना का पहुच गया और मुस्तिम इतिहासकार तवारी क अनुमार फाल क राजा गुशम त्रिनाथ और चालुक्य नरेश क वाचटोत्य सम्बन्ध था। पुनकेशिन न पहल कुछ उपहारा क साथ अपना एक राज दून चानुक्य राजसमा म भजा। कुछ विन्ना का मत है कि अजन्ता का एक चित्र इन दोत्य सम्बन्ध का सूचना त्ता है।

पुलकेशिन । नौय का साम्राज्य—पुनकेशिन द्वितीय क मुद्रिशत साम्राज्य की सामर्थ्य उत्तर म विध्य पर्वत श्रेणी और महानगी तक शक्ति म मसूर क पार तक और आग्नि त्रि सु पर्वत तक था। इस साम्राज्य क क शीय भाग पर पुनकेशिन द्वितीय स्वय शासन करता था और उत्तराश्रिणी सीमावर्ती प्रदेश का शासन सामन्ता के सिपु था। मन्च मालवा गग कम्ब पूर्वोय गग और वन इत्यादि प्रान्ता के शासक चानुक्य सम्राट क अनीतस्य सामन्त थ। उहूँ अपने अपन प्रशा के अन्त रिक् शासन म कफा स्वतन्त्रता प्राप्त था किन्तु व पुलकेशिन त्रिनाथ का सवा मे वायिक कर मेजा करते थ। जिस भाग पर सम्राट का प्रत्यक्ष शासन था वहा भी पुनकेशिन सामन्त के जिहाने उमकी (पुनकेशिन द्वितीय) अधानता स्वाकार कर ली था। उन सामन्ता का कुछ प्रशा का शासक बना लिया गया था। वे सम्राट की जाना स शासन करत थ। यह म वे उमका सहायता करते थ। सम्पूर्ण साम्राज्य पाँच प्रान्तो म विभक्त था और प्रत्येक प्रान्त का शासन करन क निय एक राजप्रतिनिधि (वाइस रॉय) नियुक्त किया जाता था। पूर्वोय समुन्तगय प्रान्त जिसम वनमान तलु प्रदेश सम्मिलित था वेंगा कहनाता था। वेंगी क प्रान्ताय शमक विष्णुवद्धन था जिसने वहाँ पर एक स्वतन्त्र राजवश का स्थापना का थी। यह राजवश ग्यारहवा शताब्दी (१०७०) तक बना रहा। कन्नड प्रदेश क शक्तिशाली प्रान्त पर जिसम प्राचीन कम्ब वश का राज्य (वनवामा) तथा गग वश का राज्य सम्मिलित था अश्विभवमन शासन करता था। तीमरा प्रान्त पश्चिमी समुन्त क निकट था जिसम काकग का प्राचीन राज्य सम्मिलित था। इस प्रांत का शासक पुनकेशिन त्रिनाथ का उग्रष्ठ पुत्र बन गित्य था। मजरत तथा उत्तरा भागा का मिन कर एक प्रान्त निमित्त किया गया था जिसका राजवाना नासि म था। इस प्रांत का शासन पुनकेशिन द्वितीय का दूसरा पुत्र जयसिंह करता था। महाराष्ट्र वरर हैराय तथा बम्बई क कुछ भागो का मिनकर एक प्रान्त बनाया गया था। यह साम्राज्य का पाँचवाँ प्रांत था। इस प्रांत पर सम्राट का प्रत्यक्ष शासन था। कन्नाडर म अन्य चार प्रान्त स्वतन्त्र रायो



म परिवर्तित हो गये। उत्तर भारत का गुजर प्रतिहार वंश का भाँति दक्कन में चालुक्यों का वंश अत्यन्त प्रभुत्व था और यह कई शाखाओं में विभक्त था। एक विद्वान की धारणा है कि तल्लिगाना कर्णाटक का कण महाराष्ट्र और गुजरात प्रांत वास्तव में विभिन्न भाषा भाषी प्रान्त थे और इस आधार पर पुलकेशिन द्वितीय ने अपने साम्राज्य का विभाजन करके वर्तमान युग का भाषावार प्रांत रचना का नीति का पूर्व रूप प्रस्तुत किया।

**ह्वेनसांग का विवरण**— ह्वेनसांग ने ६४१-४२ ई० में पुलकेशिन से नासिक में भेंट की थी और उसके राज्य का भ्रमण भी किया था। चीनी यात्री ने पुलकेशिन द्वितीय का यशस्वत्व तथा उसके राज्य और उसके प्रजाजनों का सम्बन्ध में अपने वर्तमान लिखे हैं। पुलकेशिन का विषय में ह्वेनसांग लिखता है— वह क्षत्रिय जाति का है उसका विचार विशाल और गंभीर है और अपनी सहानुभूति तथा दान क्रियाओं का उसने काफी विस्तार कर रखा है। उसके प्रजाजन पूर्ण भक्ति का साथ उसकी सेवा करते हैं। पुलकेशिन द्वितीय और ह्यु के युद्ध के विषय में भी चीनी यात्री ने लिखा है— इस समय मत्स्य नपति शीतान्तिय पूर्व से लेकर पश्चिम तक अपनी विजयवाहिनी ले जा रहा है वह सुदूरवर्ती जनों का दबाव है और पड़ाने का राज्या को उसने भयप्रस्त कर दिया है परन्तु केवल इस राज्य के ही लागा ने उसके सम्मुख आत्मसमर्पण नहीं किया है। यद्यपि पाँच द्वापों के साथ समूहों में उसने शीघ्र स्थान का अधिवृत्त कर रखा है यद्यपि उसने समस्त राज्या का सबसे पराक्रमी यादवाओं को बुला रखा है अगर यद्यपि उनका दण्डित करने के लिए उसने प्रयाण भी किया है तथापि उनके विराट् को दबाव में वह असमर्थ रहा है। इस बात से हम उनकी यद्धप्रिय आदत और आचारा का अनुमान कर सकते हैं। इसका बाद ह्वेनसांग ने पुलकेशिन के राज्य और उसके निवासियों के विषय में लिखा है, मा-हो ला चो (महाराष्ट्र) लगभग ५००० लि (लगभग १७०० मान) घरे में है। राजधानी के पश्चिम में एक विशाल नदी है। यह लगभग ३० लि गीन है। मिट्टा अच्छी और उपजाऊ है यह नियमित रूप से जाती जाती है और इससे उपज भी बहुत अधिक होता है। जलवायु उष्ण है सागा का स्वभाव सादा और इमानदार है वे बंद में लम्ब और चरित्र में प्रतिशाघपूर्ण मनावृत्ति का हैं। अपने प्रति उपकार करनेवालों के प्रति वे दृढ रहते हैं अपने शत्रुओं के प्रति दयाशून्य हैं। यदि उनका अपमान किया जाता है वे अपने प्राणों का खतरे में डालकर उनका बदला चुकाते हैं। यदि उनसे किसी विपत्तिप्रस्त यकित की सहायता के लिए कहा जाता है तो वे सहायता प्रदान करने की त्वरा में आत्मविस्मृत हो जाते हैं। यदि वे बदला देनेवाले होते हैं तो पहले वे अपने शत्रु का मावधान कर देते हैं तब प्रत्येक शस्त्रयुक्त होकर एक दूसरे का ऊपर माला से आक्रमण करते हैं। जब एक नाग निकलता है तो दूसरा उसका पीछा करता है परन्तु वे उस यकित को जान मन्ही मारते जो आत्मसमर्पण कर देता है। यदि कोई योद्धा युद्ध में पराजित हो जाता है तो वे उस दण्डित नहीं करते बल्कि उस स्त्री-वधमूपा दे देते हैं इस प्रकार वह स्वयं मृत्यु का तलाश करता है। ऐसा मैं कई सक्का की सत्यातक यादवाओं के समूह हैं। प्रत्येक बार जब वे सघष करने के लिए उद्यत होते हैं वे सुरा द्वारा अपने की मदमत कर लेते हैं। और तब अथवा एक ध्यकित हाथ में माला लेकर दस हजार मनुष्यों का समाना कर सकता है और उन्हें युद्ध के लिए सतवार सकता है। यदि इन योद्धाओं में से कोई किसी मनुष्य से मित्र पर उस मार डालता है तो देश का कानून उसे

दण्डित नृपों वरत। जब कभी व प्रयाण करने लगत है हर बार वे जाने माने नगाड पाने हैं। इसमें जलावा वे सहसा हाथिया का मन्मत्त कर देते हैं और उनको युद्ध के लिए बाहर निकाल कर स्वयं वे पट्टे भुरापन करते हैं और तब डेर के डेर जाग दोस्त-दोस्त वे प्रत्यक्ष वस्तु का कुचन डालने हैं जिममें कारी भी शत्रु उनके आग ठहर नी सकता। इन मनुष्यों और हाथियों के कारण राजा अपन पडागियों का घणा की नष्टि स दखता है। वह क्षत्रिय जाति का है जोर उमका नाम पुत्रो विंश (पुत्रशिन) है। उमकी याजनापे जोर वाय मुद्ग विस्तन है और उमके दयापूण कियों का अनुभव नी की दूरवनी भागा तक किया जाता है। उमके प्रज जन पूण भक्ति के साथ उसकी आना का पालन करते हैं।

चातक्य सत्ता का अस्थायी पतन—जसा कि ऊपर कहा जा चुका है पुत्रशिन सत्ता का अन्तिम दिना म चातक्या की शक्ति गिरने लगा जोर पल्लव नरेश नर सिहवमन न पुत्रशिन का युद्ध म मार डाला। चातुक्या और पल्लवों के इस युद्ध में नरसिंहवमन ने अपनी दखरता का परिचय दिया। स मायतया युद्ध म ब्राह्मणों और जयन्तिकों का काइ हानि नहा पहुचाई जाती थी जोर मंदिरा का मा क्षति नी पचता थी परंतु इस युद्ध म नरसिंहवमन न एक बबर को भाति बबहार किया। उमने बात पा का मूब नटा-नसाला मंदिरा का ध्वस्त किया और बिना निग वय का विचार किये हुए उसा सत्ता मानवप्राणियों का वध किया।

चालुक्यों की शक्ति का पुनरुत्थान—तेरह वषों तक चालुक्या की शक्ति को पल्लवों ने प्रसिद्ध कर रखा था। चालुक्या का राज्य विभिन्न भागों म वन गया था परंतु विक्रमादित्य प्रथम (६५५-८) ने जो पुलकशिन द्वितीय का सुयोग्य और वीर पुत्र था अपने वश क गौरव का फिर स उत्थित किया। उसने अपने पतक राज्य का पल्लवों से छीन लिया। उसके शासन क न म बीसवें वर के गडवान पत्रों से पता चलता है कि ६७४ ई० के आसपास चातक्य सेना क विरो के दक्षिणी तट पर उरगपुर म (उरगन निचनापल्ली) डरा डार पडी हुई थी। अपने पिता की भाति विक्रमादित्य प्रथम ने कई विरुध धारण किए थे परंतु महमल्ल वश (नरसिंहवमन प्रथम) का विनाश करने के कारण उमने राजमल्ल की उपाधि धारण का री। उस रणभूमि का जता था। वह काज्या का विजता भी कहा जाता था। किंतु पतनव अमित्वा म निवा है कि पेहवन्तलन (निचनापल्ली) के निकट म चातुक्या की पराजय हुई थी जिससे पता चलता है कि विक्रमादित्य प्रथम जयन्तिकों नही था। किंतु निचनापल्ली तक उसका पहुंच जाना इस बात को सिद्ध करता है कि उमने कान्ची पर अधिकार कर लिया था और अपने पिता की पल्लवों द्वारा पराजय की कुदशकान्तिमा का घो डारा। चातुक्य सेना म विक्रमादित्य प्रथम की अय मत्त्वपूण विजयों का थय भी दिया गया है। अपने पहने सामरिक प्रयत्न में ही उसने पल्लव राजधाना का नूटने के बाद सुदूर दक्षिण तक धावे किये जोर चातक्य और केरल राज्या की शक्तियों को परास्त किया। इन युद्धों में विक्रमादित्य प्रथम का अपने पुत्र विनयादित्य और पौत्र विजयादित्य से बडा सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ। विनयादित्य ने ६८० स ७०२ तक और विजयादित्य न लगभग ६९६ से ७३३ तक शासन किया। एक अमिलल म वर्णित है कि विनयादित्य ने सक्तीतरापयनाम को पराजित कर सावनीम पद प्राप्त किया। परंतु यह वर्णन निस्संदेह अतिरञ्जनपूण है क्योंकि इस समय उत्तर

भारत में कई साम्राज्य नए हो रहे थे। जिस परामर्श के वह 'सर्वभूमि पर' प्राप्त करना। विद्वानों का मत है कि इस अवधि में मकसूरियापनाय का मंत्री के रूप में उत्तरदायित्व प्राप्त करने के लिए उन अधिकारों में प्रस्ताव आया। अन्तिम में नए मन्त्रालय मन्त्रालय-विभाग का उपाय धारण की थी और उमर राजा ने भी इस उपाय का धारण करना जारी रखा। परन्तु उसका मकसूरियापनाय के अन्तर्गत है। आन्तर्गत में कि भी उत्तरदायित्व की विनया त्विद्वारा पत्राचार का एक निश्चित पाठ्यक्रम तब्य समयता उचित जान पड़ता है।

(२) विक्रमादित्य तिस्रो—विक्रमादित्य द्वितीय चालुक्य वंश का प्रतापी नरेश था। उमर उत्तरदायित्व का कीर्तिवर्मन द्वितीय के तन्त्रालय में विक्रमादित्य द्वितीय की मन्त्रिक मकसूरिया के बगल में रखा गया है। इस मन्त्रिक के अनुसार उमर अपने प्रद्युम्निका के पत्राचार और पत्राचार का राजधानी का। म प्रविष्टि हा गया किन्तु उमर नए नए किया। उमर के राज्यान्तर्गत और अन्तर्गत का उन सुवर्ण द्वारा मन्त्रालयिक मन्त्रालयिक हैं कुठ त्विद्वारा पूरा पत्राचार ने ही नया था। विक्रमादित्य द्वितीय के कर्त्तव्य अन्तर्गत से कानवर्मन के तन्त्रालय के लय की पुष्टि हा जाता है। उमर का पत्राचार और करण शक्ति का भी आतंकिता तथा मन्त्रालय पर दिया। उमर के राज्य के मन्त्रालय जिन्होंने मन्त्र ७१० ई० में मन्त्र पर अधिकार कर दिया था तबिण पर मन्त्र आक्रमण किया। विक्रमादित्य ने उमर का सामना किया और उमर पराजित किया। उमर का यह कार्य जयन्त महत्त्वपूर्ण है और इसका कारण तबिण अन्तर्गत के राज्य मन्त्रालय में रखा गया। परन्तु वह पत्राचार का शक्ति पूर्ण रूप में नए न कर सका। पत्राचार मन्त्रालय पत्राचार पराजित होने पर भी अपना राजधानी के त्विद्वारा पर कि मन्त्रालय अधिकार जमा दिया। चालुक्य-विजय का पत्राचार मन्त्रालय के अन्तर्गत का प्रारम्भ मानना तन्त्रालय नही है।

चालुक्य मन्त्रालय का अन्त—विक्रमादित्य द्वितीय का पुत्र कीर्तिवर्मन द्वितीय अपने पिता के मन्त्रालय के वंश शासन रखा। कीर्तिवर्मन द्वितीय वातापी के चालुक्य कुल का अन्तिम मन्त्रालय था। ७५३ ई० में राष्ट्रकूट नृपति दन्तिदुर्ग ने उमर पराजित कर दिया। कीर्तिवर्मन द्वितीय के राज्य के अन्तर्गत भागा पर दन्तिदुर्ग का अधिकार स्थापित हो गया। एक अन्तिम मन्त्रालय चलता है कि कर्नाटक मन्त्रालय विक्रमादित्य द्वितीय के मन्त्रालय के अन्तर्गत है। कूट नृपति दृष्टि प्रथम ने वातापी के मन्त्रालय पर दिया। परन्तु अन्तर्गत उमर की मन्त्रालय था।

### चालुक्य के समय में धर्म और कला की अवस्था

चालुक्य वंश के शासन का शारंगिक मन्त्रालय में ब्राह्मण धर्म की प्रथा नए प्राप्त थी। राजाओं और प्रजाजनों ने वैदिक धर्म का ग्रहण किया। इस धर्म के विचारों ने धर्म की अन्तिम मन्त्रालय और वैदिक धर्म की पालनीयता का समय नया किया। पौर्णिक दत्तार्थ का मन्त्रालय मन्त्रालय था। वातापी तथा पत्राचार मन्त्रालय विष्णु और महेश के विष्णु मन्त्रालय में थे। वैदिक क्रियाओं और अनुष्ठानों पर चालुक्य-युग में अन्तर्गत मन्त्रालय का प्रायण किया गया। पुनर्वापन द्वितीय ने अन्तर्गत तथा वातापी आदि मन्त्रालयों का अनुष्ठान किया था। परन्तु चालुक्य राजाओं की धार्मिक महत्त्वपूर्णता के कारण तबिण में जन धर्म का फलन-फूलने का अवसर प्राप्त हुआ। एतत् अन्तिम का रचयिता रचयिता जन धर्माचार्यों

था और उसमें जिनके नाम हैं एक मन्दिर थाक्या फिर भी यह शासन समीपवर्ती पुनर्जाता द्वितीय था, सबमाय कृपाभाजन था। विजयान्तिक नगर में मन्दिर के निर्वाह के लिए पण्डित उपाधेय का एक ग्राम मान लिया था। त्रिमालिक द्वितीय ने भी अनेक जन पण्डितों का प्रभूत मान लिया था। उमा जैन धर्म को राजाध्यय प्रदान किया। बौद्ध धर्म के प्रति चालुक्य नरमता का कया स्त्रियाण या यह ठीक ठीक न। कहा जा सकता कि तु उनका गत्या म इम धर्म का कया अवस्था थी इस पर हूनसांग के समय से प्रकाश पड़ता है। चानी यात्रा निरुता है बौद्ध विहारों की संख्या १०० से ऊपर था आर ५००० से अधिक का संख्या में हीनुयान और म्हायान सम्प्रदाया के मितु कर्त्त विद्यमान थे। राजधानी के भावर आर बाहर ५ अशोक स्तूप थे जहाँ पिछले चार बूद्ध कला यठ ध और उन्नत कथगवन किया था। वहाँ पर पत्थर और इटा के अय स्तूप ना थे। परन्तु जन और बौद्ध धर्मों की अत्यधिक उन्नति के कारण बौद्ध धर्म का विकास रुक गया। पौराणिक हिन्दू धर्म जिसके रूप के विवचन गुण्यक वान सम्भृति के अध्याय में किया जा चक है चालुक्या के समय में कक्षा जाकरिय था।

(७) काल—चालुक्या के शासन के उदय का मा पर्याप्त उन्नति है। जना और बौद्धा के अनुकरण में हिन्दू देवताओं के लिए भी गुप्त मन्दिरों का निर्माण चालुक्य कला की एक सफलता है। अजन्ता की बौद्ध गुहाय अपन स्थापत्य आर मिति चित्रा विशयत बूद्ध भगवान के माह और पारमा राजदूत के लिए प्ररुय न है। अजन्ता आर एलारा दाना ही चालुक्य राज्य में अवस्थित थे। इनके कुछ चित्र चालुक्या के समय में बनवाये गये थे। ओरगावाड और नासिक में अनेक बौद्ध गुहा स्थापत्य अय मा विद्यमान हैं। गुहा-स्थापत्य का दृष्टि से उन चित्रा के महत्त्व विशय अधिक है जा ब्राह्मण धर्म से सम्बन्धित हैं। आरगावाड के निकट एलोरा में कुछ विरुपात स्थापत्य चित्र है कलाश पवत के नीचे खण नृत्य करने हुए भगवान् शिव और हिरण्यकशिपु का वष करते हुए नृसिंह भगवान्। बादामी में भगवान् विष्णु के नृसिंह और बाराह अवतारों की मूर्तियाँ कला की दृष्टि से बड़ी प्रशसनीय हैं। एहोल घादामी और पत्रकदल में इस कला के बने हुए मन्दिर हैं। विरुपाक्ष मन्दिर सबसे प्रसिद्ध है जिसमें मिति चित्रा द्वारा रामायण की कथाओं का दिग्दर्शन किया गया है। इस मन्दिर पर पत्थर कला की स्पष्ट छाप है। इसका निर्माण काञ्ची के कलाशनाय मन्दिर के अनुकृति के आधार पर कराया गया था। दक्षिण में बौद्ध धर्म के हासोपरात दक्कन का चालुक्य साम्राज्य पहला महान् हिन्दू साम्राज्य था। चालुक्य शासकों के शासन का दक्षिणापय के इतिहास में विशय महत्त्व है। उनके समय में दक्षिणापय में हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान का अनुभव किया। चालुक्य राजाओं ने हिन्दू देवी-देवताओं के मन्दिर बनवाये आर मन्दिरों को प्रचर दान दिया। इसका उल्लेख किया जा चुका है। उनकी धार्मिक सहिष्णुता की नीति ने जन धर्म को दक्षिणापय में पनपने का अवसर प्रदान किया। आगे चलकर अहिलवाड के जैन आचार्यों ने दक्कन में अपने मत का प्रचार किया। समाज में इन आचार्यों को आदर पूण स्थान प्राप्त था और उन्होंने दक्षिणापय में मराठा कनड तथा तेलगू नामके प्रान्तीय भाषाओं के साहित्यसृजन की नाय डाली। उन्होंने इन प्रांतीय भाषाओं में धार्मिक विषय पर अनेक ग्रन्थ लिखे। कालांतर में भक्ति सम्प्रदाया के अनुयायियों ने भी जन-आचार्यों के अनुसरण करते हुए अपने मत का प्रचार करने के लिए प्रांतीय भाषाओं को ही अपनाया।

चानुवया क समय स द्विपापय म उत्तर म अनक क्षत्रिय परिवार गय जोर वहाँ पर उपाय शक्ति तथा प्रभुता प्राप्त कर ला। चानुवय ला छतास राजता म एक थ। पारसिया न मुसलमाना क धार्मिक अत्याचारा स बचन क लिए ७ ५ १० म धाना जिल म शरण ला। चानुवय वश क स्थानाय भरदार न पारसिया का आदर सत्कार तथा चांगत किया आन अपन राय — अपना उपनिबन्ध म्यापित करन का आना द दा। इम काय क लिए उस सरदार न एक आना विधिपु निवाता जिसम पारसिया क प्रति इम प्रकार शुभ कामना प्रकट का ग है— ए पारसिया इन्वर तुम्हें सताने सफलता और विजय प्रदान कर। अमर और पवित्र अंग तुम्हें मतत विजय दता रह। तुम पापा स भूक्त र्ना। तुम सत्ता पवित्र रहा। तुम्हारे लिए भगवानि मानण्ड सत्त्व क लिए मंगलकारा बन रहें। तुम्हारी कामनाये पूरा हा। मरे दश म तुम जा ना नू नाग चाहा ल मकत हा। तुम्हारा प्रतिष्ठा निरन्तर वद्धि गत होना रह। ए पारसिया यदि का म दुःखजन तुम्हें हानि पचायगा ता म उसका ध्वस कर दगा। तुम्हारा भाग्य लक्ष्मा प्रशस्त और स्थायिना हा। इस विधिपु पत्र क बाद पारसा लागा न अपना एक अलग अस्ती स्थापित कर ना और व पारस स व्यापार करन शक। यह महान् आदेश पत्र एक औसतन हिन्दु-नरेश क वशत आदेशवाद और सावमोम सहिष्णुता का निदान करता है। इम प्रकार की उदारतापुण आपायें इमा बाल क निकट तथा बाद म दक्षिण क अय नरेशा द्वारा भी पिकानी गई था। हम आग दखेंग कि दक्कन क गटकू राजाका न अरबा क साथ ऐसा ही उदारता का परिचय पिया।

### मान्यखेट (मालखेट) के राष्ट्रकूट

आठवीं शताब्दी क छठ दशा म दक्षिण म राजनातिक प्रभुता चानुवया क हाथा स निकलकर राष्ट्रकूटा क हाथ म चला गद। राष्ट्रकूटा न अपन साम्राज्य का बहुत अधिक विस्तार किया आर आग चलकर राजनातिक प्रभुता क लिए जिन तीन शक्तिमाममधय छिडा उनम स एक शक्ति मान्यखेट क राष्ट्रकूट-कुल का था।

राष्ट्रकूटों का मूल—राष्ट्रकूटा का मूल-उत्पत्ति तथा उसक मूल निवास-स्थान क विषय म विज्ञाना म मतभेद है। कुछ विद्वाना का मत है कि दक्षिण क राष्ट्रकूट कुल का उद्भव राजस्थान क राठौरा स हुआ था परंतु इस मत म सत्यता तनिक भी नहा है क्योंकि दक्षिण क राष्ट्रकूटा क प्राञ्चान्तर अस्तित्व का प्रमाण मिन्दता है। राष्ट्रकूटा का उलगू उत्पत्ति का ना बताया जाता है। इस मत का आधार यह है कि रठिड शत्र राष्ट्र का अपग म है और राष्ट्रकूट लाग रठिडया की सतान हैं। परंतु यह मत भी निराधार है। इम बात की सम्भावना ना कि राष्ट्रकूट स रठिड शत्र का उत्पत्ति हुई है। इमक अभाव रठिडया का एक राज नातिक शक्ति क रूप म उभय पदहवा आर मानहवा शक्तिपिया म हुआ था। एक विवसनीय धारणा यह जान पठवा है कि राष्ट्रकूटा का उद्भव राष्ट्रका स हुआ था। राष्ट्रका का उत्पन्न अशाक क अमिलय म किया गया है। ये सारा सम्भवत कपाटक प्रदेश क रहनवाला थ। राष्ट्रकूटा का भाषा कन्नड था और उपाय सरदा का नहा अपितु कन्नड का राजाभय प्रदान किया। राष्ट्रकूटा का मूल स्थान सट्टनूर (साटर निजाम रिवास्त क बादर जिल का एक स्थान) था। सट्टनूर प्रदेश बादर जिल क कन्नड भाषा भाषी प्रदेश का व्यवत करता है

राष्ट्रकूटों का उत्थय—दन्तिदुग के अर्धेन राष्ट्रकूटों की शक्ति का उत्थान हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि दन्तिदुग एक चानुक्य राजकुमारी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था जो किसी राष्ट्रकूट सरदार के साथ ब्याही गई थी। सम्भवतः उसने उत्तर और दक्षिण के प्रदेशों का छात्रर सम्पूर्ण चानुक्य राज्य पर अधिकार जमा लिया। दन्तिदुग (७४५-७५६) ने ही राष्ट्रकूटों के विशाल राज्य की नाव डाली। उसने भडाव के गुजरा और गुजरात के चानुक्यों को परास्त किया। इस कार्य में उसे नन्दिवमन पल्लवमल से बहुत अधिक सहायता प्राप्त हुई जिसके साथ उसने सचि-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। दन्तिदुग ने ७५३ में चानुक्य राजकुमार कीर्तिवमन द्वितीय को युद्ध में पराजित कर महाराष्ट्र का उत्तरी भाग अपने राज्य में मिला लिया। काची कागल बलिग मालवा सार (दक्षिण गुजरात) और श्री घल (कन्नूल जिले) के राजाओं को उसने परास्त किया था। दन्तिदुग बड़ा शक्तिशाली और विवेकी पुरुष था। अपने शत्रुओं की कमजोरी को वह समझता था और अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह युद्ध और कूटनीति में से किसी का भी अवलम्बन ग्रहण कर सकता था। धार्मिक प्रतिभा से वह बड़ा राजा था और राजा का हारा के अवसर पर तीर्थों में विजुन दान दिया करता था। दन्तिदुग की मृत्यु तीस वर्ष की यानी अवस्था में हो गई।

दन्तिदुग के कई पुत्र थे अतएव उसके राज्य का कृष्ण प्रथम अधिकारी हुआ। कृष्ण प्रथम दन्तिदुग के पिता का भाई था। कृष्ण प्रथम ने चालुक्य राजशक्ति के विनाश-कार्य को पूरा किया और काकग को विजित करने के बाद वहाँ उसने शिलाहारों को अपने अर्धेनस्य एक सामन्तवादी शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। उसने ७६८ ई० में श्रीपुर को सग्राम में परास्त किया और उसको भी अपना सामन्त बनाया। कृष्ण प्रथम ने अपने पुत्र गोविन्द द्वितीय को एक सेना के साथ बेंगी राज्य के विरुद्ध भेजा। राष्ट्रकूटों की शक्ति का विनाकुछ विरोध किये ही बेंगी ने उनके आगे आत्मसमर्पण कर दिया। उसने जो राज्य उत्तराधिकार में प्राप्त किया था उसका उसने नगमग तिगुना विस्तार किया। दक्षिण में उसने अपने वंश की प्रभुता स्थापित की और अपने उत्तराधिकारियों के लिए उसने विन्ध्यपार देशों की साथ-सफलताओं के लिए मार्ग प्रशस्त किया। कृष्ण का राजत्व-काल एनोरा के कनाश मन्दिर के निर्माण के लिए प्रसिद्ध है।

गोविन्द द्वितीय—कृष्ण प्रथम के उपरान्त गोविन्द द्वितीय राष्ट्रकूट राज्य का अधिकारी हुआ। जब वह अपने पिता के शासन-काल में युवराज था तभी उसने बेंगी के विष्णुवधन चतुर्थ को पराजित किया था। गोविन्द द्वितीय ने पारिजात को भी युद्ध में हराया। परन्तु राज्य का अधिकारी होने के उपरान्त वह व्यभिचार और भाग विलास में लिप्त हो गया। परिणाम यह हुआ कि राज्य का लगभग सारा उत्तराधिकार उसका अनुज ध्रुव वंश करने लगा और प्रथमन के वशीभूत होकर उसने राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न किया। ७७९ में अवसर प्राप्त होने पर ध्रुव ने अपने भाई के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और गद्दा पर अधिकार कर लिया।

ध्रुव—ध्रुव धारावप राष्ट्रकूट-कुल का एक महान विजता था। उसने ७८० से लेकर ७९४ तक राज्य किया। ध्रुव ने गुजरात शिवमार द्वितीय को पराजित करके उसका राज्य पर अधिकार जमा लिया और उस पर शासन करने के लिए अपना एक यादसराय नियुक्त किया। वह पल्लव-नरेश दन्तिवमन के विरुद्ध काची तक अपनी एक वाणिनी ले गया। दन्तिवमन को राष्ट्रकूट राजा के सम्मुख आत्म समर्पण कर

देना पड़ा। ध्रुव ने उत्तर भारत की राजनीतिक गतिविधियों में हस्तक्षेप किया, जिसके सम्बन्ध में उसने बत्सराज गुज्जर को हराया। यद्यपि बत्सराज गुज्जर की पराजय से राष्ट्रकूट की सीमा में कोई विस्तार नहीं हुआ फिर भी इसके कारण

अपनी इन विजयों के द्वारा उत्तर में ध्रुव राष्ट्रकूट का अधिकारन जमा पाया तथापि उसने आक्रमणवादी साम्राज्यवाद की नीति का अवलम्बन ग्रहण किया। उन्नी के समय से राष्ट्रकूट, पान्डी और प्रताहारा के बीच में गंगा और यमुना की घाटियाँ में राजनीतिक प्रभुत्व जमाने के लिए पारस्परिक मन्त्र ठिडक गया। डा० अल्टेकर ने ध्रुव धारावन के रण अभियानों का ध्यान में रखते हुए लिखा है— वह सुयोग्य तम, राष्ट्रकूट नरेशों में एक था। अपने तेरह वय के सशक्त शासनकाल में उसने न केवल दक्षिण में राष्ट्रकूट प्रभुता की पुनर्स्थापना का जिसे उसके पूर्वविकारी के अतिरिक्त दोगले शासन ने गहरी क्षति पहुँचाया थी, बल्कि उसने राष्ट्रकूटों को एक अखिल भारतीय शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया। उत्तरी भारत के भागों का आधा द्वारा अपने साम्राज्य में मिलाये जाने के बाद पहली बार सम्भवतः नौ शताब्दियों के उपरान्त, दक्षिणापय की एक सेना ने विध्यपवन श्रेणियाँ का अति क्रमण करके मध्य प्रदेश के उत्तर प्रदेश में प्रवेश किया और उत्तर में साम्राज्यवादी सत्ता को प्राप्त करने के उत्सुक दो प्रतिस्पर्धियों में प्रत्येक को पराजित किया। (राष्ट्रकूट राज ऐण्ड द्दर टाइम्स पृष्ठ ५९)। डा० अल्टेकर यह स्वीकार करते हैं कि ध्रुव द्वारा राज्यापहरण का काम उसके नतिक चरित्र को कुछ ठन लेता है परन्तु विद्वान् लेखकों ने आपे लिखा है कि कृष्ण द्वितीय वस्तुतः एक दुर्बल और विलासी नरेश था, अतएव ध्रुव ने जा काय किया उसका एक पर्याप्त राजनीतिक औचित्य है। डा० अल्टेकर द्वारा उद्धृत, दौलताबाद के पत्र में यह लिखा है कि कृष्ण द्वितीय के अनुरूप ध्रुव ने राष्ट्रकूटों का राजतन्त्रों को विचलित होने देकर उसको रखा करने के लिए राज्य ग्रहण किया अपने अविनाश लक्ष्य के लिए नहीं। 'राज्य वमार गुहमकिनवतोऽयमस्यम। मा भूत् किलावयपरिच्युत्तिस्र सध्म्या।

गोविन्द तृतीय—ध्रुव ने अपने शासनकाल के अन्तिम दिनों में अपने तृतीय पुत्र गोविन्द को युवराज नियुक्त किया और कुछ दिनों बाद उसका परम स्वर्ग राज्य रचा दिया। गोविन्द नरेश का अपने पिता द्वारा निर्वाचित किया जाना यह सिद्ध करता है कि वह धर्म और पराक्रमी था। वस्तुतः गोविन्द तृतीय ने अपने

गणायमुनयामध्ये रातो गोडस्य नम्यत

सङ्गोतीलायिदानि श्वेत छत्राणि योहरत् ॥

अमोघवय प्रथम के सज्जन पत्र-लेख के इस श्लोक की परिपुष्ट कर सुवर्णवय के सूरत पत्र-लेख के अतिथय श्लोकों द्वारा होती है। श्लोक से यह स्पष्ट ध्यानित होता है कि ध्रुव ने "अपने साम्राज्य लाह छत्रों में गंगा और यमुना की आकृतियाँ भी जोड़ लीं।"

यो गणायमुने तरगमुभगे गृहण परेय समम् ।

साक्षाच्छिन्नभिनेनचोत्तमपद तत्प्राप्तवानी चरम् ॥

कायो द्वारा अपन का एक बार विजता प्रमाणित किया। यद्यपि ध्रुव उम अपना उत्तराधिकारी निर्वाचन करवा करवा गया था तथापि गाविन्द गुप्त का उत्तराधिकार का उसका दाम्भिक न विराज किया। उसने दाम्भिक राजाओं का एक गण बनाया और इस सभ का नन्व स्मय उसा न ग्रहण किया। इस गण म गम्भीर शिवमार द्वितीय भा सम्मिलित था जिगवा गाविन्द तताय न कागधाम म मरा कर दिया था। गाविन्द अपन विरुद्ध वारह राजाओं का सम्मिलित शक्ति स गतिव भा नयभात न हुआ अपितु उसने धय और साहस क साथ अफ ह। उगवा सामना करन का निचय किया। उसने इस सभ पर विजय प्राप्त की और विरुद्ध का दमन करन म यह पूण रूप स सफ न रण किन्तु विरुद्धिया क साथ उसने उगवा का व्यवहार किया। स्तम्भ का उसने गगवाहि का वात्सल्य नियत किया। किन्तु शिवमार का श्रुत पता स सशक्ति हाकर गाविन्द न उसका पुन बन्धुगृह म डान किया। इन्द्र का जिसने गाविन्द ततीय के प्रति अपनी स्वामिभक्ति प्रदर्शित का था उसने लाट प्रदेश का शासक मन नीत किया। इस प्रकार आन्तरिक उपद्रवा स छत्रकारा प्राप्त करन क उपरात गाविन्द अपना रणवाहिना उत्तर भारत म गया और मालवा नरेश गुजर नागमट्ट द्वितीय और उसका सहयोगी चन्द्रगुप्त का पराजित किया। कुछ दिना एक मालवा नाट प्रदेश क शासक क अधान रहा। अधिक उत्तर म पहुच कर गोविन्द तताय ने कप्रोजाधिपति चक्रायुध का अपन आग आत्मसमर्पण करन के लिए विवश किया और इस प्रकार चक्रायुध क सरक्षक धमपाल का भा अवहलना की।<sup>१</sup> स्पष्ट है कि तीन शक्तियों के बीच प्रभुता के इस सभय म गाविन्द ततीय न राष्ट्रकूटा का सबसे अधिक शक्तिशाला प्रमाणित किया। गाविन्द न ८०३ क लगभग पल्लव राज्य पर आक्रमण करक दलितवमन को हराया था। उत्तर क रण अभियान स लौट आने के बाद पल्लवा के साथ उसने पुन अपना युद्ध जारी कर दिया। दक्षिण का राजशक्तिया क विरुद्ध मद्ध म गाविन्द ततीय का स्तनी अधिक सफलता प्राप्त हुई कि उसकी चाली पाण्डया गगवाही और करन का सम्मिलित शक्ति के ऊपर विजय का यश लवा तक पहुच गया और लवाधिपति न उसकी सेवा म अपनी एक मूर्ति भेज कर अपनी अधीनता प्रकट की।<sup>२</sup> दक्षिण म अपने विद्रोहियों की शक्ति का कुचलने के बाद गाविन्द ने अपना जीवन राज्य क आन्तरिक शासन को सुव्यवस्थित करने म व्यतीत किया।

गोविन्दततीय के कार्य का मर्यादन—राष्ट्रकूट राजकुल उस दात क रिण मान्य के प्राचीन इतिहास म विख्यात है कि इसके राजाओं न अपन वश की प्रतिष्ठा स्थापित करन और उसके राजनीतिक गौरव का बढ़ान का याग्यतापूण प्रयास किया। इस राजकुल म कई सुयोग्य शासक और महान विजता हुए थे जिन्होंने अपन कार्यो द्वारा वारतविक रूप म अपन वश का गौरव बढ़ाया। राष्ट्रकूटी क इस विशिष्ट कुल म गाविन्द ततीय एक विशिष्ट और उल्लखनाय शासक था। अपनी कुशल राजनातिशला और प्रचण्ड रणशक्ति क द्वारा उसने सम्पूर्ण भारत—

<sup>१</sup> सजन पत्र लेखों से विदित होता है कि कायपुत्र के चक्रायुध अर म ड म धमपाल दोनों ने उसके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया।

स्वयमवोपनती च दक्ष्य महतरती धमचक्रायुधो ।'

<sup>२</sup> "ललात बिल तत्प्रभुप्रतिवृता काञ्चीमपेती रर कीतिरत्तमभिभा सिदात् क यनह सरथ पिता ।



उत्तरापथ और दक्षिणापथ के शासकों में अपना आतंक और प्रभाव जमाया। डॉ० अल्नेकर का विश्वास है कि उसकी विजयवाहिनी के प्रमाण के अतिगत हिमालय तक लकर कुमारी जतरीय तक का सम्पूर्ण प्रदेश आ गया था। उससे मयमोन हाकर लका के राजा ने भी उसके प्रति आत्म समर्पण कर दिया। उसने अपने वंश का सुवर्ण और गौरव उस सीमा तक पहुंचा दिया जहां तक उसका न कोई पूर्ववर्ती और न पर्वर्ती शासक पहुंचा सका था। अपने राज्य का आंतरिक शक्ति का सुन्दर करने में उसने सामन्तों के साथ समझौते की नीति का अचरन्वन्त किया। इन्द्र के साथ सद् व्यवहार करके उसने अपनी कूटनीति और अतन्त मन्त्रों का परिचय दिया। गाविन्द तृतीय के राजकवि का कहना है कि उसके जन्म के बाद राष्ट्रकूट लोग उसी प्रकार अजेय हो गये जिसे प्रकार धार्मुण्य के जन्म के बाद यादव हो गये। उसके अभिलक्ष्य यह सूचित करते हैं कि विजय शृङ्खला में लकर उसका राज्य तुमन्ना तक फैला था। पट्टप्रदेश में जसा कि हम गीठे देख चुके हैं, उसका अनुज इन्द्र उसके राजप्रतिनिधि के रूप में शासन करता था। गोविन्द एक विजय ही नहीं बनने एक सकल शासन भी था। उसने शासन व्यवस्था का दंड और सुव्यवस्थित बनाया। उसकी सकलता का कारण यह था कि उसके अन्दर वीरता, राजनीतिगता और सगुण शक्ति के गुणा का सम्बन्ध था। उसके मन्त्रों के बड़ीदा लक्ष में उसकी तुलना पाय स की गई है। इसी शासक के भीसारी लेख में यह बतलाया गया है कि गोविन्द तृतीय रणभूमि में अपने शत्रुओं से तनिक भी न डरते हुए सुरत कूट पडता था। उत्तर और दक्षिण में उसका सकल रण अभियान उसकी अपूर्व वीरता और सगुण शक्ति का निदर्शन करता है। अपने शासनकाल के प्रारम्भ में उसने स्वयम्भू के ऊपर जिस प्रकार विजय प्राप्त की और उसके साथ जो व्यवहार किया उससे उसकी चतुर राजनीतिगता का परिचय प्राप्त होता है। उसके समस्त गुणों का ध्यान में रखने पर इस बात में कोई संदेह नहीं कि गाविन्द तृतीय अपने युग के सबसे महान शासकों में से है।

**अमोघवज्र प्रथम**—अमोघवज्र प्रथम ८१४ में राष्ट्रकूट की राजाद्वी पर बसा। राज्याभिषेक के समय उसकी अवस्था केवल पारद वय की थी। सर बार० जी० मण्णारकर का सम्मति है कि गाविन्द तृतीय के उत्तराधिकारी का नाम मन्त्र था और अमोघवज्र उसकी उत्पत्ति थी। अमोघवज्र की अभावस्था से राष्ट्रकूट कुल के विरोध किया ने लाभ उगाना, चाहा अन्तर्विरोधों में लगे जाने उसके विरुद्ध अपना मिर उठाया और परिचय गाना न करती स्वाध्यायों की घोरता करके बान वृत्ति को सिंहासन पुन कर दिया। इससे बान राज्य में अशांति और अमोघवज्र फन गई क्योंकि जसा कि डॉ० अल्नेकर ने बतलाया है कि विजय राज्याभिषेक प्राप्त करने के दिन आपस में लड़ने लगे। राष्ट्रकूट वंश के लिए इस समय एक विजय सकलति का अवसर उत्पन्न हो गया था किन्तु एक अक्षय पातालमल्ल ने ८१६ ई० से ८२१ ई० के मध्य में राष्ट्रकूट वंश का गिरती हुई शक्ति को सँभारा। अमोघवज्र को पुन मिथामन प्राप्त हो गया किन्तु इसका और अमोघवज्र को नही दिया जा सकता क्योंकि इस समय उसकी आयु बहुत तरह वय की थी।

सिंहासन प्राप्त कर लेने के बाद भी राज्य का आन्तरिक गन्वही के कारण अमोघवज्र काफी समय तक मध्य दुष्टि में निष्क्रिय रहा। ही सकता है कि अपनी अत्याय के कारण भी उसने रण-अभियान प्रारम्भ करता उचित न समझा ही। ८६० ई० के लगभग अमोघवज्र ने वीरों के विजयान्तिय तृतीय का पराजित किया।

इसके बाद उसने गुजरात शासक के राष्ट्रकूटों से मदद किया जिससे वह पराजित हुआ गया था। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि गुजरात शासक राष्ट्रकूटों से मदद के कारण अमोघवप को फिर से सिंहासन प्राप्त हुआ था कि तु वामन उरुष पारम्परिक सम्बन्ध मन्त्रीपूषण नहीं रहे गये थे। अमोघवप ने गुजरात के राष्ट्रकूटों से पुनः मन्त्री बनकर एक बुद्धिमत्तापूषण काय किया।

अमोघवप ने बंगी के विजयादित्य का पराजित करने के अतिरिक्त और कई सैनिक सफलता नहीं प्राप्त की। उसी समय में राष्ट्रकूट-नाम्न के विस्तार कम हो गया। गंगवाड़ी के शासक ने उससे विरुद्ध विद्रोह का झाडा झाडा कर दिया और अमोघवप उस विद्रोह का दमन करने में असमर्थ रहा। परन्तु वह गंगवाड़ी उसके अधिकार से निकल गया। यही हाल मालवा के प्रताप का हुआ। मालवा पर भी अमोघवप अपना अधिकार नहीं जमा सका। उत्तरी भारत के प्रताप प्रती हार नरेश मिहिर भोज ने आगे बढ़कर उत्तरदिना के चारों ओर नमदा तक के प्रदेश का रौंद डाला कि तु अमोघवप के कर्ना पर जू टक न रहेगी। जिस गाविन्द तृतीय के प्रबल प्रताप के सामने गुजरात राज नागभट्ट त्रिपाठ और गौडाधिपति घम पाल ने अपने घुटने टक दिये थे उसी के उत्तराधिकारी अमोघवप के समय में मिहिरभोज राष्ट्रकूट शक्ति का चारों ओर मार रहा था। यदि गुजरात के राष्ट्रकूट नपति ध्रुव तृतीय ने मिहिर भोज के प्रसार का रोकने में सफलता न पाई होती तो राष्ट्रकूट वंश की राजसत्ता का क्या हाल हुआ होता यह कह सकना कठिन है। अपने साठ वष के लम्बे शासन काल में अमोघवप ने कोई भी महत्त्वपूर्ण सैनिक सफलता न प्राप्त की। डा० अल्लकर ने लिखा है कि वह अपने पिता या पितामह की भांति सैन्य मन्त्रालय का नहीं था।

अमोघवप की रूचि सैनिक कर्मों की ओर नहीं थी। उसका स्वभाव शांतिप्रिय था और घम तथा सहायक प्रति उरुष हृदय में पयात अनुरग था। उसने सम्भवतः कविराजनामक नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। यह ग्रन्थ का यशास्त्र पर ब्रह्म माया में लिखा हुआ प्रथम ग्रन्थ है। अमोघवप साहित्यानुरगा और साहित्यकारों का संरक्षक था। नागधमन द्वितीय कशिराज और मद्रुवलक रानी इस बात में एक दूसरे से सहमत हैं कि अमोघवप साहित्यकारों के प्रति दक्ष उदार था। उसके सज्जन पत्रों में तो यहाँ तक कहा गया है कि सुविद्यात नरेश विजयादित्य से भी वह अधिक उदार था। घम के शासन में उसकी रूचि जनमत की ओर थी। आदि पुराण के प्रणयता विनसेन का दावा है कि वह अमोघवप का गुरु था। महावाराचार्य के कथनानुसार जाजा मत का आचार्य तथा गणितसारसंग्रह नामक पुस्तक का रचयिता था अमोघवप रयाद्राद (जनमत) का माननेवाला था। यद्यपि अमोघवप जनमत के सिद्धांत से दक्ष अधिक प्रभावित था तथापि उसका अरुण अपन पूर्वजा के घम में बना रही। उसने हिन्दू धर्म का परित्याग नहीं किया था। वह महालक्ष्मी का परम भक्त था। उसके सज्जन सखों में एक स्थान पर लिखा है कि एक बार अपनी प्रजा के कष्ट निवारणाय उसने अपने दायें हाथ की उंगली काटकर महालक्ष्मी को चरणों में चढ़ा दिया था। डा० अल्लकर हमारा ध्यान इस उरुष की ओर आकषित करते हैं कि अमोघवप की प्रजावत्सलता का यह उल्लेख वारी रूपना पर आधारित नहीं है वरन् उसका दृष्टि मद्रुवलक के कर्णोत्क शदानुशासनम् ग्रन्थ द्वारा भी हा जाता है।<sup>६</sup>

अमाधवप प्रथम न अपनी राजधानी मायखेट (निजाम राज्य म बतमान, मालखेट) म बसायी थी। विद्वाना का ऐसा विश्वास है कि सुल्मान ने जिस दाघ-जीवी बल्हर ( बल्लभराज का अरबी रूपांतर) का उल्लेख किया है, वह अमोघ वप प्रथम ही था। सुल्मान नामक अरब यात्री ने लिखा है कि दाघजीवा बल्हर मसार क चार महान सम्राटो म है। उसन तान अय महान सम्राटो का इस प्रकार बताया है बगदाद का खलीफा नुस्तु तुनिया का शासक और चान का सम्राट।

प्रनातरभातिका नामक ग्रंथ मे अमोघवप के राज्य परित्याग का उल्लेख मिलता है। उसक सजन लखा द्वारा भा उसक राज्य परित्याग का पुष्टि हाता है। एसा प्रतीत होता है कि अमाधवप ने अपने युवराज कृष्ण क बंधा पर राज्यनार सौंपकर स्वय बराग्य ल लिया था।

कृष्ण द्वितीय—कृष्ण द्वितीय (८८०-९१२ २०) का अमिलवा म महान विजता कहा गया है। एक स्थान पर यह उल्लेख मिलता है कि उसका भाताआ का पालन अग बग बलिंग गग और काश्क क शासक करत थ। यह निश्चित है कि अमिलवा का यह दावा अतिरजन मात्र है। यह अवश्य है कि कृष्ण द्वितीय का अपन पडोसा रा मासदर दरसधप क तरहना पडा। दक्षिण म उसन गंगा और नीलम्बास, पूव म बेंगा क चालुक्या स और उत्तर म गुजर प्रतिहारो तथा गुजरात क राष्ट्रकूटा समुद्र किया। मिर्जमान से कृष्ण द्वितीय नजायुद्ध किया उसम यह श्रौज क इस प्रतापानरशका कुछ भा विगाहन रका। कृष्ण द्वितीय क समय म विजया दित्यततीय और भीम प्रथम न पूर्वोय चालुक्या का स्वतन्त्रता प्रतिष्ठित की। अमाधवप प्रथम न बेंगा क पूर्वोय चालुक्य राजा का पराजित क एक उस अपन अधान किया था किंतु बल्लुचुवर दानपत्र स विदित है कि चालुक्य राजा माम न कृष्णवत्तम का रुना का परजित कर लिया। एक प्रकार कृष्ण द्वितीय क शासन काल म माम प्रथम ने राष्ट्रकूटा का शक्ति का विराय बतत हुए अपन बग की स्वतंत्रता धायित का। कृष्ण द्वितीय गगबडा क राज्य का भा अपन राज्य म फिर न मिलान म अरुपत रहा। कृष्ण द्वितीय अपन पिता का नाति एक शातिप्रिय और धमातुरागी व्यक्त था। राज्य समालन म उस अपन स्वसुर त्रिपुरा क बन्धुरा वादकन प्रथम स दहत सहायता प्राप्त हु। कृष्ण ततय मा अपन पिता का तरह जन सिद्धांता स प्रभावित था। गुणमद्र नामक जनाचाय उसम गरु थ।

इन्द्र ततय—९१४ २० क लगभग कृष्ण द्वितीय का दहान हा जान पर उसका पीठ इन्द्र ततय नियवप राष्ट्रकूट राजसिंहासन पर बठा। मिहासनारुद हान पर इन्द्र ततय की आय पतास दप का था आर उसन बवल पांच वप तक शासन किया। किंतु अपन अति मक्षिप्त काल म हा इन्द्र ततय न अपन का पराक्रमी योद्धा प्रमाणित किया। उसन जिस समय सिन्दारन पर चरण रख गुजर प्रताहार साम्राज्य का आंतरिक स्थिति शाचनाय था। पारम्परिक बलहा क वारण राजवंश का प्रतिष्ठा का आधार पडुचा और सामंता का स्वामिभक्ति विनाशित हा जान स उसकी शक्ति का भा बहत ह्रास हुआ। प्रतीहार साम्राज्य का एमी स्थिति दक्ष कर इन्द्र ततय न इस पर आक्रमण करन का विचार किया। गाविंद ततीय न जिस समय प्रताहार नपति नागमद्र पर आक्रमण किया था उस एक सुख समय का

१ जित्वा सपति कृष्णवत्सभमहादण्ड सहायादिकम भीमो भूपतिरवमुषत भुवनम् ॥

मुकारिता करना पड़ा था। सिन्धु इन्द्र तृतीय के जातक का नामाकरण करने के लिए किया मध का निमाग १ किया जा गया था। अतिजगता रहा जा चुका है इस समय प्रवाहार साम्राज्य राजवंश के पारम्परिक शासक का कारण जन्म ही रहा था।

अमोघवज्र इन्द्र तृतीय के आक्रमण का कोई मधिमन्त्र विवरण हम उपलब्ध नहीं है। तन्मात्र पत्र नेत्रा स विन्तित हाता है कि पन्थ उमन उज्जयिनी पर आक्रमण किया।<sup>१</sup> इसके बाद यमुना नदी का अवरोध करते उमन कर्त्रीज जोन किया। गुजर प्रतीहार सम्राट मीरान भाग तथा हुआ और इन्द्र तृतीय के एक सनापति नरसिंह चतुर्वज्र ने उमका पीछा किया। इस प्रकार का गोरखमयी मन्त्रिक मन्त्रज्ञ गोविन्द तृतीय तथा ध्रुव घोरखर का मोन प्राप्त हो मने या। यन्त्र इन्द्र तृतीय की असामयिक मृत्यु ने दुई होरी ना सम्भव था कि राष्ट्रकूट की विजय पताका उत्तरी भारत के पश्चिम भाग पर भी फहरा गई हाती और ये भाग उनका साम्राज्य में सम्मिलित हो गये हात।

इन्द्र तृतीय की मृत्यु के बाद उमका ज्येष्ठ पुत्र अमोघवज्र तृतीय राष्ट्रकूट वंश का राजा हुआ। किन्तु जनोद्वार का शासन काल अपने प्रतनी पितृ के शासन काल की अपेक्षा कृी सीमित था और एक वर तक राज्य करने के पन्वान पन्चीस वर की अवस्था में अमोघवज्र का देहान्त ही गया। इसका बाद गोविन्द चतुर्वज्र राष्ट्रकूट सिंहासन पर बठा। सागनी पत्रकेवा मे विदित होता है कि गोविन्द चतुर्वज्र कामदेव का मन्त्रि रूपवान था। उसका अधिकार समय भाग विनास में यनीत हुआ करता था और सुन्दरी नयकिया का मन्त्र उते स बंधरे रहा करता था। वह शासन कामों से विरक्त रहा करने नगाजिमका परिणाम यह हुआ कि उसके मन्त्रिण उमका विरुद्ध हो गए और उसके सामन्त ने विद्रोह कर दिया। नैस के शासन में अपनी वृद्धि के नरिना के नयनराश से निरुद्ध हो जाने के कारण उसने सब की विम्व कर दिया।<sup>२</sup> वेंगा के चतुर्वज्र राज मोन द्वितीय के विरुद्ध यद्ध करने में उस विफलता प्राप्त हुई। गोविन्द चतुर्वज्र को पुलगिरि के अन्वितरिण तृतीय के से सामन्तों तक न बडा कष्ट दिया। यह कहा जा चुका है कि गोविन्द चतुर्वज्र की शासन विम्वलता तथा मोगनिरुद्धता से रुष्ट होकर उसके सामन्तों ने उसके विरुद्ध बुद्ध कर दिया और अमोघवज्र तृतीय यन्त्रि से इस बात का विवेचन किया कि वह राष्ट्रकूट वंश के गोरख को रत्ता करने के निर स्वयं राज्यमार ग्रहण करे।<sup>३</sup>

अमोघवज्र तृतीय ( ९३१-९३९ इ० ) धार्मिक अभिवृत्ति के अरि था। उमने अपने पुत्र कृष्ण तृतीय के सिन्धु शासन भार मौर दिया। जनन योवराज्य काल में कृष्ण तृतीय ने अपन बहनराइ पति चमी मग के राजा बुधुग द्वितीय को तलक का सिंहासन फिर से प्राप्त करने में सहायता प्रदान की। यद्यपि अमोघवज्र तृतीय

<sup>१</sup> यमाद्यद्विपद तथातविषम कालप्रियप्राणम  
तोर्गापत्तुरगणाययमुना सिन्धुप्रतिस्पधिनी ।  
याद हि महीदयारिनार निमूलमुभोलितम  
मान्नाद्यापिजने कुस्यन लभितिश्यातिपदानोयते ॥

<sup>२</sup> तोप्यगतानयनपाशनिरुद्धबद्धिसमागसगविमुक्षीकृतसवसत्त्व "

<sup>३</sup> सामन्तरप रट्टट राज्यमहिमालम्बायमभ्ययित ।

ने त्रिपुरी के कन्नचुरी कन्नूर वय द्युवराज प्रथम का ब्याप स अपना विवाह किया तथापि एसा मानूम पता है कि कन्नचुरिया और राष्ट्रकूटो न कुछ अनजन हो गद। कृष्ण ततय न कन्नचुरिया का परास्त किया और कालिजर पर अपना अधिकार जमा लिया।

कृष्ण ततीय—मन ९३९ २० व दिम्ब्वर मास म कृष्ण ततीय राष्ट्रकूट सिंहासन पर बठा। अपन पिता के समय म वह अपनी वीरता का परिचय द चुका था किन्तु अपन राज्याभिषेक क पूर्व उनन रा जनिमान प्रारम्भ र्ण किया। उसकी वीरता और शायना का सिक्का नाग क ऊरर अछा तरह जम चुका था अतएव उसन राज्यारोहण के समय विना प्रकार का उपद्रव नहीं हुआ। कृष्ण ततीय ने एक मयकर युद्ध के उपरान्त चाचा क, महारा पराजय दी। इस युद्ध म चाल युव राज राजादित्य का अपने प्राणा स हाप पोने पन्। चौथा क विषद युद्ध करन म कृष्ण ततीय का अपने बहताई दुनुग द्विनाय स पयात्त महायता प्राप्त हुई थी। अतएव राष्ट्रकूट सम्राट न वनवामा तथा अ य प्रेश मगराज को दे दिया। कृष्ण ततीय के कई अमिलव दमिणी अरकाट उत्तरा अरकाट और त्रिालुट क जिना म प्राप्त हुए हैं। इन अमिलत्वा म उस तजोर और काल्ची का विजता कहा गया है। ये आमलव यह सिद्ध करने हैं कि कृष्ण तनाय ननाडमण्णम (उत्तरी और दक्षिणी पन्नर नन्धिया क बीच का प्रेश)का अपन साम्राज्य म मिला लिया था। वंगा के सिंहासन पर कृष्ण तनाय ने अपन मनषक वाडय को प्रतिष्ठित किया। परमार वश के राजा सिद्ध ततीय को उनन पराजित किया अकिन परमारा की शक्ति क विकास का रोक्न म उस क ई म्नापी सकलता न प्राप्त हो सकी। दक्कन म कृष्ण ततीय ने अपने पीत्य स राष्ट्रकूटो का जायपत्य फिर म स्थापित किया अकिन उत्तरी भारत म उसे विजय सकनत; न प्राप्त हुई। कि मी ऐसा जान पडता है कि उसन अपने राज्याभिषेक क बाद मध्य भारत क कुछ प्रदेश जाते थे। महाबलन प्रथम और धग क अमीन चाला की शक्ति का उलय हो जान क कारण कृष्ण ततीय उत्तर भारत म अपनी विजय पताका न फहरा सक। मुद्र दक्षिण म उनन पाण्य और केरल राज्या क शासका पर विजय प्राप्त का थी। तथा क राजा न भी उसकी अमीनता स्वाकार कर ली जिनसे उसल म कृष्ण ततीय न रामस्वरम् म अपने विजयस्तम्भ स्थापित किय।

अपना आन्तरिक स्थिति क सुध करने क लिए क ग नारा ने मामना का संगठन एक जन और स्वारा तरान पर किया। सभी माम म सरागा ने उसके सम्मुख आत्म-समर्पण किया। उसन अपने कुछ अमानस्य सरागा म उनकी भूमि छान गो और उाव स्थान पर अपन मनषका का भूमि प्रदान करद उ हैं अपना सामंत बनाया। उसन दस प्रकार क नियम बनाय जिनसे उनक मामना म विघटन और अनेक्य का प्रवृत्ति उत्तम ०। कृष्ण ततीय न एक चतुर राजतानिग की भांति यह अनुभव किया कि जब तर उनक नाम का शक्ति कम न हो जायगी, राज्य का आन्तरिक स्थिति पूणरूपण निराप ० जो सुध न होने पाया। कृष्ण तनाय क य सुधार इगनम्भ क राजा तिलियम विजयत, क सुवारा म काफी समाप्ता रगत हैं। दक्षिण म उनन जित म्याता रा विजित किया वही पर उसन अपने मनषका क शासक नियुक्त करनिया और उ ० आन्तरिक शासन क मामना म काफी सुविधा मा प्रदान की। इस प्रकार शक्ति म कृष्ण ततीय न जो उनीवेश स्थापित किय उससे भी उनकी राजवाठिपता का परिचय मिलता है।

कृष्ण तृतीय राष्ट्रकूट वंश का एक याग्य शासक था। उमर किसी भी पूर्वाधिकारी ने प्रायद्वीप के भाग पर उतना सुदृढ़ अधिकार नहीं स्थापित किया था जितना कि उसने। गणदिन्द तृतीय जसा पराक्रमी विजिता भी पत्सय राजाओं के अधीनस्थ भागों पर अपना प्रयत्न शासन स्थापित नहीं कर पाया था। वेणु के सिंहासन पर गणदिन्द तृतीय अपने किसी समकक्ष या मननीय व्यक्ति का अधिकार नहीं कर सका था। इसमें सन्देह नहीं कि कृष्ण तृतीय एक याग्य शासक और सफल यादवी था। पोद्दा नामक कवि का उसने अपनी राजतन्त्रों में सम्माननीय स्थान दिया। पम्पा नामक कन्नड कवि भी उसका किसी सामन्त का रामा का गुणान्वित करता था।

राष्ट्रकूट वंश का पतन—कृष्ण तृतीय अपने वंश का अन्तिम महान शासक था। उसकी मृत्यु (९६८ ई०) के पश्चात् राष्ट्रकूटों का गौरवमय अस्त-मूस होने लगा। साहित्य का कृष्ण तृतीय का भासा और उत्तराधिकारी था इतना शक्तिहीन प्रमाणित हुआ कि उसके शासनकाल में मानवा के दरबार नरेश सायक रूप में राष्ट्रकूटों का राजधानी में दखत तक पर अपना अधिकार जमा लिया। साहित्य का मत्तोजा और उत्तराधिकारी के द्वितीय या जिसके अधिकार से ९७३ ई० में तत् द्वितीय ने राजसिंहासन छान लिया। तत् न कल्याणी के चालुक्य राज वंश का नीव डाला। इस प्रकार राष्ट्रकूटों की शक्ति का पतन हो गया।

### राष्ट्रकूटों के राज्य में धर्म, कला और साहित्य की अवस्था

राष्ट्रकूट राजाओं के समय तक दक्कन में पौराणिक हिन्दू धर्म की छी तरफ से जड़ जमा चुका था। राष्ट्रकूटों के दानपत्र शिव या विष्णु के नाम से प्रारम्भ होता है और उनका महार पर या तो विष्णु के वाहन गण्ड की अश्रुति होता है अथवा यागी मूद्रा में आसान शिव का। हम अज के हिन्दू देवास्य में शिव, विष्णु ब्रह्मा सूर्य आदि विभिन्न देवताओं का मनियार प्रतिष्ठापित करते हैं। यहाँ बात हम राष्ट्रकूट काल के दक्षिणापथ में भी पाते हैं। एक ही मन्दिर में विभिन्न देवा देवताओं की प्रतिमाएँ होती थी जिनके चरणों में भवतगण अपनी अचना समर्पित करते थे। दसवीं शताब्दी में बाजापुर जिले के सास्तागी नामक स्थान में एक देवालया था जिसमें ब्रह्मदेव शिव और विष्णु की सम्मिलित रूप से पूजा का जाता था। करगद्री में इसी प्रकार का दूसरा मन्दिर था जिसमें शंकर विष्णु और भास्कर का पूजा का प्रवच था। हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के साथ साथ जन तथा अय सम्प्रदायों के प्रति भी राष्ट्रकूट नरेशों तथा उनका प्रजाजनों का व्यवहार सहिष्णुतापूर्ण था। गुजरात के खा का ककुमुदण स्वयं कट्टर शक था कि तु नौसारा में उसने जन विहार को एक क्षत्र दान में दिया। अमापवप ने उन धर्म स्थापक कर दिया था कि तु हिन्दू धर्म का स्वा महासधमा के प्रति उसके हृदय में इतनी अधिक श्रद्धा थी कि उसने देवी का प्रसन्न करवा के लिए अपने दायें हाथ का उंगला काटकर देवा दाया। गुजरात शासक का दत्तबन्धन पौराणिक हिन्दू धर्म का अनुयायी था कि तु उसने बौद्ध विहार का एक क्षत्र दान में दिया था। मंगुद के ब्रह्मण परिवारों ने ९०२ ई. में जन विहार का एक क्षत्र दान किया था। इस बात की धार्मिक सहिष्णुता के सम्बन्ध में सौ दत्त के रट्टा के तल बड़ महत्त्वपूर्ण है। महासामन्त पश्वी राम ने जो कृष्ण तृतीय का समकाशन था एक जन मन्दिर का निर्माण कराया था। उसका पौत्र जन था कि तु पश्वीराम के पौत्र का पौत्र हिन्दू था और उसने अपने गुरु का जो तान बदा में पारगत था १२ निवतन भूमि दान में दी थी।

उसके पुत्र श्रीसेन न एक जन मंदिर बनवाया था। राष्ट्रकूटों के उदार शासन के अधीन दक्षिणापथ में पौराणिक हिंदू धर्म और जन धर्म दाना ही फूले पड़े। किंतु बौद्ध सम्प्रदाय का निरस्तह ह्रास हुआ और अमात्यव्यय प्रथम के कुछ अभिलेखों के अनुसार दक्कन में इस सम्प्रदाय का पत्र कहेरी था।<sup>१</sup>

राष्ट्रकूट राजाओं ने विदेशियों के साथ भा अपना धार्मिक उदारता का परिचय दिया। हम पीछे देख चुके हैं कि चालुक्यों के समय में पारसियों का किस प्रकार अपने उपनिवेश स्थापित करने की अनुमति प्राप्त हो गई थी। इसी प्रकार की उदारता राष्ट्रकूट राजाओं ने अरबों के प्रति दिखलाई। लेकिन उन्होंने अरबों या पारसियों को ध्यापारिक और धार्मिक सुविधायें ही प्रदान कीं उनका साथ किसी प्रकार का राजनीतिक गठबंधन नहीं किया। डॉ० अल्तकर का कथन है कि इस बात के लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता कि राष्ट्रकूट राजाओं ने गुजरात प्रतीहारों से युद्ध करने के लिए सिंध के अरब शाहकों के साथ मंत्री सम्बंध स्थापित कर लिया था।

कला—कला के क्षेत्र में राष्ट्रकूटों की कोई विशिष्ट तथा मौलिक देन नहीं है। डॉ० अल्तकर हम बताते हैं कि मौर्यों गुप्ता चालुक्यों और पल्लवों की ललित कलाओं के क्षेत्र में अपनी अपना विशिष्ट तथा प्रशंसनीय देन रहा है किंतु राष्ट्रकूट युग के लिए इस प्रकार का कोई दावा नहीं किया जा सकता। ऐसा प्रतीत होता है कि मालवक राजसभा में ललित कलाओं की उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाता था।<sup>२</sup> फिर भी कृष्ण प्रथम के समय में एलौरा के कलाशाला मंदिर का निर्माण कराया गया। यह मंदिर चट्टानों का काटकर बनवाया गया है। इसकी अद्भुत निर्माण-कुशलता बरतुत प्रशंसनीय है। एक राष्ट्रकूट लेख में इस मंदिर की प्रशंसा इन शब्दों में की गई है—अपने रथों में समासीन देवगण आकाश में विचरण कर रहे थे कि वे इस मंदिर का देखकर विस्मय विमग्न हुए। गंध और उड़ाने वहा कि यह स्वयंभूव निमित्त हुआ गया होगा मनुष्यों न इसे नहा बनाया होगा। एलौरा का कलाशाला मंदिर भगवान् शिव के निमित्त निर्मित किया गया है और इसकी मूर्तियाँ पर अथ दवी देवताओं की आकृतियाँ उत्कृष्ट हैं। कुछ मूर्ति चित्रों में गंगावतरण का दृश्य दिखलाया गया है और एक चित्र में रावण कलाश पर्वत का उठात हुए प्रदर्शित किया गया है। इस चित्र के विषय में प्रसिद्ध कला समालोचक स्वर्गीय आनंदकुमार स्वामी का कथन है कि इसमें पर्वत के हिलने का अनुभूति होती है और पार्वती शिव का आरंभ मुहकरी भय से उठना हाथ दबतापूर्वक पर्वत से उठती है जब कि उठना कुमारा मांम राडा हाता है किन्तु महादेव बिलकुल स्थिर है और अपने चरण दबाकर निर्गल पर्वत का समार है।<sup>३</sup> एलौरा के मंदिर पर चालुक्यों का मंदिर निर्माण कला का प्रभाव स्पष्टतया दृष्टिगत होता है। डॉ० अल्तकर का अनुमान है कि यह मंदिर सम्भवतः उन कलाकारों ने बनाया होगा जिनका वाञ्छी

<sup>१</sup> *Rastrakutas and Their Time* p. 273

<sup>२</sup> *Ibid.*, p. 418

<sup>३</sup> Here the quivering of the mountain has been felt and Parvati turns to Siva and grasp his arm in fear while her mind takes to flight but the Great God is unmoved and holds all fast by pressing down his foot

से बुलवाया गया था। विसं ११५५ न लिखा है कि ठाम चट्टान का काटकर बनाया हुआ यह अमृतदरा मन्दिर भारत का वास्तुशास्त्र की मशहूर विस्मयजनक है।<sup>१</sup>

**शिक्षा और साहित्य**—राष्ट्रकूट राजाओं का शासन काल में शिक्षा और साहित्य की उन्नति हुई। उनके राज्य में वे शिक्षा की व्यवस्था थी। वे शिक्षा-मन्त्री की कार्यों के लिए प्रचुर दान दिया करते थे। अमानव प्रथम का शासनकाल में बहरी का बौद्ध विहार का मद्रविष्णु ने पुस्तकें खरीदने के लिए कुछ भूदान दिया था। इसमें स्पष्ट है कि बनसो के बौद्ध विहार को मालि बहरी का बौद्ध विहार में भी एक पुस्तकालय था। मालवाणी (जिना बीजापुर) के एक अभिज्ञ म एक विद्यालय का विषय में हम कुछ महत्वपूर्ण बातें जान सकते हैं। इस विद्यालय में दूर-दूर से विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते थे जिनके निवास के लिए उनमें २७ छात्रावास बन रहे थे। तमस साठ एकड़ भूमि का आय का उपयोग विद्यालय में प्रकाश का प्रवर्धन करने के लिए किया जाता था। २५० एकड़ भूमि की आय विद्यालय के प्रधानाचार्य का वेतन के रूप में प्राप्त होती थी। राष्ट्रकूटों के समय में शिलालेखों का राज तथा धनी मानी लोग से अधिक सहायता प्राप्त हुआ करती थी।

**साहित्य**—राष्ट्रकूट राजाओं के जन्मदिना से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उन अभिलेखों के रचयिता काव्य कला में बड़ी भाँति परिचित थे। यह सत्य है कि वे गुप्तकालीन अभिलेखों के रचयिताओं की भाँति सिद्ध कवि नहीं थे किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने सस्कृत साहित्य के प्रमुख ग्रंथों का सम्यक् रूप से अध्ययन किया था। कौलहान नामक विद्वान् का कथन है कि राष्ट्रकूट राजाओं के शासन के रचनाओं की शली सुब-परिचित वामदेवता तथा वाणशरीर कात्मवरी एवं ह्यचरित की श्लोका की पर्याप्त ऋणी है। राष्ट्रकूट राजाओं ने कविता और साहित्यकारों का राजाश्रय प्रदान किया। अमोवव स्वयं लेखक था और उसने कन्नड भाषा में काव्यशास्त्र पर कविराजमाय नामक पुस्तक लिखी। राष्ट्रकूट राजाओं ने जनपण्डितों का सम्मान किया और उन्हें अपनी राजसभा में स्थान दिया। जनपण्डितों ने कई ग्रंथों का प्रणयन किया। अमोवव प्रथम के गृह जिनसेन ने हरिवंश नामक ग्रंथ का प्रणयन ७८३ ई० में सम्पन्न किया। उन्होंने अतिपुराण लिखना प्रारम्भ किया था किन्तु इस सम्पन्न करने का पूर्व ही वे स्वभावानी हो गए। अपने पार्वश्रिय नामक ग्रंथ में उन्होंने पारश्वनाथ का जीवन चरित्र लिखा। इस ग्रंथ में उन्होंने महाकवि कालिदास के जन्म काव्य मवदन् के नामक ग्रंथ लिखे हैं। अमानव प्रथम के शासनकाल में अमानवति का रचना शाकनायन न की ओर वाराणसी गणितमरमवह का प्रणयन भी इसी समय हुआ। पारा नामक कवि कन्नड तथा सस्कृत भाषाओं में रचना करता था अतएव उस समयकवि चक्रवर्तिन का उपाधि भी गई थी। पारा की प्रमुख रचना शान्तिपुराण है। पम्पा ने कृष्णतन्त्र के समय में भारत लिखा। पारा और पम्पा कन्नड भाषा के तीन रत्नों में हैं। तीसरे कवि का नाम रत्ना है। इन तीनों कविता का आज भी बड़े आदर का साथ कन्नड भाषा में स्मरण करते हैं। राष्ट्रकूट युग तक मराठी भाषा में साहित्य रचना का काव्य प्रारम्भ नहीं हुआ था।



निष्कर्ष—राष्ट्रकूट वंश में कुल मिलाकर चौदह नपति हुए जिनमें दक्षिण, कृष्ण प्रथम, ध्रुव गार्ग्य तथा इन्द्र तताय और कृष्ण तताय काफ़ी महान शासक थे। अमावष्य प्रथम पृथगतया सफल शासक नहीं था किन्तु उसका यत्नित्व में कुछ विशिष्ट गुण थे जिनके कारण उस महान कहा जा सकता है। गुप्तवंश का छान्दक अथवा किमा मा राजवंश न सम्भवतः इतना अधिक सरया में सफल शासक का जन्म नहीं लिया। उत्तराधिकार के प्रश्न पर बड़े वार राष्ट्रकूट वंश के राजकुमारों में पारस्परिक मतभेद हुआ किन्तु राज्य का जातिरिक्त अवस्था विग्रह गुप्तवंश और अशांतिपूर्ण न हान पाइ। सुल्तान न राष्ट्रकूट राजाओं के लिए लिखा है कि वे भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली शासक थे और देश के अथवा शासक उनमें नयमीत रहा करते थे। राष्ट्रकूटों ने व्यापार की उत्थिति का प्रोत्साहन दिया। मार्गनाय इतिहास के अध्ययन से इस तथ्य का पता चलता है कि अधिकतर उत्तरापथ के राजाओं ने ही दक्षिणापथ पर आक्रमण किया परन्तु राष्ट्रकूटों के समय में पामा पलट गया। उनके समय में गुजरात प्रतिहार या पालवंश के नरेश देवकत पर आक्रमण करने का साहस न कर सका। इसके विपरान्त जसा कि हमने देखा है राष्ट्रकूटों के द्वारा इन दाना वंशों के राजाओं का अपने ही राज्यों में पराजय स्वीकार करना पड़ी। राष्ट्रकूटों ने गुजरात प्रताहारों की राजधानी पर अपना अधिकार जमा लिया किन्तु इस पराजय के प्रतिशोध स्वरूप गुजरात प्रतिहार नरेश राष्ट्रकूटों का सीमा का अतिक्रमण न कर सका। चालुक्य वंश के प्रारम्भिक नरेशों का पल्लवराजवंश के द्वारा काफी परेशाना उठानी पड़ी किन्तु राष्ट्रकूटों के विरुद्ध दक्षिण भारत का कोई भी राजवंश अपना सिर न उठा सका।

स्थायित्व की दृष्टि से भी राष्ट्रकूट वंश का महत्त्व काफ़ी अधिक है। राष्ट्रकूटों का साम्राज्य २२५ वर्षों तक टिका रहा। बहुत कम हिन्दू राजवंशों का गौरव इतने अधिक काल तक बना रहा। इसमें सन्देह नहीं कि दक्षिणापथ का राष्ट्रकूट राजाओं ने राजनीतिक उत्थय की चरम सीमा पर पहुँचा दिया था।

नरेश मूज के साथ उसका बहुत मित्रता युद्ध चला रहा। मेरुग नामक सम कालीनलेखक का कथन है कि मूज ने तीन वारों कम से कम छ बार परास्त किया। किन्तु अंतिम युद्ध में मज पराजित होने पर बगी बना लिया गया और तीन द्वितीय ही आज्ञा से उसका वन कर दिया गया (१९५ ई०)। तलप त्रितीय ने २४ वर तक राज्य किया और १९७ ई० के लगभग उसकी मृत्यु हो गई। कन्नड भाषा का प्रसिद्ध कवि रमा तलप त्रितीय तथा उसने उत्तराधिकारियों का राजकवि था।

✓ सत्याश्रय—तलप द्वितीय के पश्चात् पश्चिमी चानुक्या का स्वामी सत्याश्रय हुआ। सत्याश्रय (१९७-१००८ ई०) बीच नरेश राजराज का समकालीन था। उसने शासनकाल में चोली की राजधानि का बहुत अधिक उत्थान हुआ। राजराज प्रथम चाल की सेनाओं ने व्यान्क्य राज्य में मृत्यु का ताण्डव खन कर दिया। उसने गगवाडी और नोलम्बवाडी के ( दक्षिणी और उत्तरी भूमर ) प्रदेशों को जीत लिया। फिर भी सत्याश्रय ने अपना शक्ति का पुन संगठित करने में सफलता प्राप्त की और दक्षिण में चोला से कुछ प्रदेश जीने। नमदा नदी के मुहाने के निकटवर्ती प्रदेशों के लिये अहिलवाड के राजाओं और सत्याश्रय के बीच युद्ध छिड़ गया। सत्याश्रय १००८ ई० में मर गया। उसकी मृत्यु के बाद उसके मंत्री जे विक्रमानन्दित्य ने दस वर तक शांतिपूर्ण परिस्थितियों में शासन किया।

② ✓ सन् १०१८ ई० में जयसिंह द्वितीय सिंहासन पर बैठा। उसने चोली अहिलवाड के चानुक्या अथवा सानकिना और मालवा के परमारों से युद्ध जारी रखा। जयसिंह द्वितीय के समय में शक्तिशाली साम्राज्य का उत्पन्न हुआ और उन्होंने अपनी शक्ति बसा ली। वास्तव में वे स्वयं ही गये थे और नाममात्र के लिए ही सम्राट की अंगीकार स्वीकार किये हुए थे। कई स्थानों पर उन्होंने स्पर्श रूप से सम्राट की शक्ति को चुनौती देने हुए बिजोल का जगन्नाथ खड़ा कर दिया। यादव और कुतन सरदारों का जयसिंह द्वितीय ने सकलतापूर्वक दमन किया। उसने अपनी अहिल अक्कदेशी की कुतन का शासन निरुन्धन किया। जयसिंह द्वितीय जगदेकमलन ने सम्भवतः चोला से कुछ प्रदेश जीत लिए किन्तु गोघ्न ही चोला ने पुन अन्ततः राज्य नगमन नगी तक फला दिया। जयसिंह त्रितीय ने परमार वंशीय नरेश भोज को परास्त करके मानव मय नष्ट कर दिया और इस प्रकार भोज का साम्राज्य स्वप्न टूट गया।

तीसरे वर प्रथम आहवमल्ल (१०४२-११६८ ई०)—जयसिंह द्वितीय जगदेकमलन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र मोमेश्वर प्रथम नपति हुआ। उसने अपने शासनकाल के प्रारम्भिक वर्षों में ही चोला के विरुद्ध युद्ध छिड़ दिया। १०५२ ई० में वनमान कोल्हापुर के निकट कृष्णा नदी के तट पर बसम्म नामक स्थान में मोमेश्वर प्रथम ही चोला में मुठभड़ हुई। इस युद्ध में चोल नपति राजाधिकारी प्रथम को वीरपति प्राप्त हुई किन्तु विजयना चोला के हाथ रही और उन्होंने कोल्हापुर में अपना एक विजयस्वामि खड़ा किया। डा रमावकर विपाठी चोल अमिलवा के उपरुक्त कथन को स्वीकार नहीं करते। वे कहते हैं— चोला के अमिलवा का कवचय है कि उनमें मुख्य वर चानुक्य की प्रभूत क्षति उठानी पड़ी। सत्य चाहे जो हो इतना निश्चित है कि १०५२ ई० के काष्पम के युद्ध का जिसमें राजाधिराज प्रथम ने अपने प्राण खार परिणाम निश्चय चोला के पक्ष में नहीं हुआ। विक्र

माक्रेश्वरित का प्रख्यात रचयिता बिल्हण तो यहाँ तक कहता है कि सोमेश्वर प्रथम ने चोल शक्ति के महत्वपूर्ण के द्र काञ्ची तक पर आक्रमण कर दिया था। १०६१ ई० में सोमेश्वर प्रथम ने इस बात का प्रयत्न किया कि कोयम के युद्ध में उसे जा सक्ति उठानी पडो है उसकी वह प्रति करे। किन्तु १०६२ ई० में उसे पुन चोला से पराजय उठानी पडो। यह युद्ध कृष्ण और तगमद्रा नामक नदियों के संगम पर कुदलनगमम् नामक स्थान में हुआ था।

चोला के विरुद्ध सोमेश्वर प्रथम का सफलता न प्राप्त हो सकी किन्तु उसने मालवा के राजा भोज परमार के विरुद्ध राजाओं के मध्य में माग लिया और उनकी शक्ति का तहस-नहस कर दिया। बाद में भोज को पराजय के बाद अहिहवाड के भीम प्रथम लक्ष्मीकग कनचुरा और सोमेश्वर प्रथम के बीच लट की वस्तुओं के सम्बन्ध में झगडा उत्पन्न हो गया। सोमेश्वर प्रथम ने लक्ष्मीकग का परास्त किया। उसकी शक्ति का लोहा कन्नोज के गुजर प्रतीहारा को भी मानना पडा। सोमेश्वर प्रथम एक नरकर उपाधि से प्रसिद्धित था। जब बिक्रित्तक रोग नष्ट करने में असमर्थ हो गया तो उसने अपनी व्यति की असाध्यता का विचार करके तुंगमद्रा नदी में डूब जाना उचित समझा। इस प्रकार उसने परमयोग व्रत के अनुष्ठान द्वारा अपना प्राण त्याग दिया।

सोमेश्वर प्रथम अपने कुल का एक विख्यात और प्रतापी शासक था। उसकी वीरता इस बात से सिद्ध होगी है कि उसने उत्तरी भारत को दो प्रमुख राजनीतिक शक्तियों परमार और गुजर प्रतीहार को मयसन्नस्त कर दिया। आहवमल्ल (युद्ध में कुशल) उपाधि उसने निरपेक्ष ही धारण नहीं की थी। चोला द्वारा कई बार पराजित होने पर भी सोमेश्वर प्रथम ने अपने राज्य की शासन-व्यवस्था को शिथिल नही होने दिया। उसके नेत्रत्व में चालुक्य शक्ति इतनी प्रबल हो उठी कि उसका प्रभाव भारत के दूरस्थ प्रदेशों पर भी पडा। किन्तु उसकी शासन-व्यवस्था सशान्ति थी। उसने छ विवाह किये थे जिनमें से दो का उसने प्रांतीय शासकों के रूप में अधिष्ठित कर रखा था। मूलवा देवी बनवामी प्रदेश का शासन करती थी और कलवा देवी राजापुर की प्रशासिका थी। केनवा देवी एक धर्मात्मा स्त्री थी और अपने राज्य की आय का ३ भाग वह मन्दिरों तथा ब्राह्मणों को दे देती थी। उनके पुत्रों का भी विभिन्न प्रांतों का गवर्नर नियुक्त किया गया था। इन बातों से यह सिद्ध होता है कि सोमेश्वर प्रथम के शासनकाल में सम्पूर्ण शक्ति राजवंश में ही केन्द्रित कर दी गई थी और जनता के किसी वर्ग को भी शासन के उच्च पदों को प्राप्त करने का अधिकार नहीं प्रदान किया गया था। सोमेश्वर प्रथम ने यात्रावा शीतहारा झपमना और कदम्बों की देवार खला था किन्तु उसके शासन-काल में ही ये लोग अपना शक्ति बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे और उसकी मृत्यु के बाद ये एक बार सशक्त हुए। सोमेश्वर प्रथम अपने धार्मिक विश्वासों में धरु था। उसने बल्याण में अपनी राजधानी बसाई और उस नगरी का भवना तथा मन्दिरों के निर्माण द्वारा समलकृत कर दिया।

सोमेश्वर प्रथम ने अपने जीवन के अन्तिम दिना में अपने ज्येष्ठ पुत्र सोमेश्वर द्वितीय का अपना युवराज निर्वाचित कर दिया था, अतएव उसकी मृत्यु के बाद

वहा राजा हुआ। सामांवर द्वितीय ने नुवाबम ने रा ज्पायि प्राग का। जरा अजिहला म मदनकमत्त यह दावा करता है कि उगत जरा राचारहण क कुछ हा समय बाद चान जायमण का सफातापूवक मामना तिया जोर जायमणकारा का पाछ धका दिमा किन्तु पात्र जमिन्ग्या म विन्ति त्ता कि जायमण म गफ लता चाना का ही प्राप्त हुई और उान काग्पति नामक साम्राज्य-नगर का म्म कर दिया। सामांवर द्वितीय मयत जठ थप तक हा प्रागा कर पाया था कि उसक अनुज विश्वमादित्य ने उगवा सितागनच्यन कर तिया सामांवर त्तीमी शत्र मतानुयाया था और उसक समय म दक्षिणापय म मय मत था बहुत अधिक प्रचार हुआ।

विश्वमादित्य पच्छ त्रिभुवनमत्स (१०७६-११२६ ई०)—विश्वमादित्य पच्छ अपने कुल का स्वयं प्रसिद्ध शासक था। समकालान र्पनिया का पवित म भी उगवा स्थान गौरवपूर्ण था। उसने अपने राज्य म प्रचलित शकु-मवत का नष्ट कराक अपने राज्याराहण क वप स प्रारम्भ हान वाला एक नया मवत चनाया। उमन विश्व-माक जोर निभुनमहल क विरुद भा धारण किय। राज्यमहासन हस्तगत करन के बाद विक्रमादित्य पच्छ का अपने भाई क समझका क विन्ति का सामना करना पडा किन्तु यह विद्राह बुचन दिया गया। अपने शासन क शुरू म ही उमन चानु स युद्ध किया। उसक हायसल सामन्ता न १११७ ई० क लगभग चाना म तलकाड का प्रदेश छीन लिया किन्तु होयसल नाग काफी शक्तिशाली हो गय थ और के विश्वमादित्य पच्छ की अधानता नाम मात्र का ही स्वाकार करते थ। उसके शासन क अतकाल म चोल राजा कुलात्तुग प्रथम ने उसक ऊपर आक्रमण किया, किन्तु विक्रमादित्य पच्छ ने उसका पराजित कर दिया। इसी प्रकार होयसल विष्णुवधनु के विरुद भा विश्वमादित्य का सफलता प्राप्त हुई। मद्यपि विश्वमादित्य का कई बार अपनी तलवार म्यान से निकालनी पडी उसका शामुन काल सामायत शांतिपूर्ण ही कहा जायगा। उसने अपने विस्तृत साम्राज्य पर बद्धिमत्तापूर्ण तरीका से शासन किया। वह प्रारम्भ म कदाचित् जैन था किन्तु बाद म वह शक मत का अनुयायी हो गया। उसक एक अभिलेख म कहा गया है 'उसके राज्य म दुमिक्ष अथवा सत्रामुन रोगा का प्रकाप कभी नहा हुआ। सभी देश क निधना क प्रति उसकी उदारता असीमित थी। उसने धमकार्यो क लिए अनेक मवुन बनवाये और कुरनाल म एक विष्णु मन्दिर का निर्माण किया। विश्वमादित्य पच्छ ने कामीर के प्रसिद्ध कवि विल्हण का बुताकर अपनी राजसभा म आदरपूर्ण स्थान दिया। विल्हण ने अपने आश्रयदाता का जीवनचरित विश्वमाकचरितचर्चा नामक ग्रंथ म लिखा। विश्वमाकचरितचर्चा से विश्वमादित्य पच्छ के जीवन की घटनाओ के विषय म कुछ पान अवश्य प्राप्त हाता है परंतु इस ग्रंथ म वर्णित समस्त तथ्यो की ऐतिहासिक सत्यता म सन्देह किया जा सकता है। कुछ विषयो का वर्णन निचयरूप से अति रजतप्रधान शान्ती म किया गया है। फिर भी इसम सन्देह नहीं कि विश्वमादित्य पच्छ एक महान् नपति था। उसके समय म विज्ञानेवर न हिन्दुओ के लिए मिताक्षरा नामक बानून की पुस्तक लिखा। विमानद्वार के विश्वमादित्य पच्छ और उसकी राजधानी कल्याण क विषय म लिखा है 'इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर कल्याण और विश्व मादित्य की भांति का नगर और नपति न है न कभी हुआ है और न हागा। अग्निहस्ता म विश्वमादित्य की छ रानिया का उल्लस प्राप्त होता है जिनका उसने प्राचीय मदनरा क पट पर नियन्त्रित कर रखा था। कल्याण क अतिरिक्त उसके

साम्राज्य में जय प्रसिद्ध नगर जम दक्षिणदिशि द्वारमण्ड, वनवास और विजयपुर थे जहाँ पर उमक सामन्तों का राजधानिर्मा थी।

(सामन्तविराट्)

विश्वमादित्य क बाद—विश्वमादित्य पृष्ठ का मृत्यु ११२७ ई० म हुई। उसके देहावसान क पश्चात् शाहू झा क द्वारा मरकार का शक्ति छिन भिन हान ग्या। उसक पुत्र सामन्त तताय का शासन क नाम का हा था। सामन्त तताय एक शक्तिशाली शासक भा ग्या या जतएव कल्याण क चानुव्या का साम्राज्य सिद्धि लहामा मत्र हान ग्या। किन्तु सामन्त विद्यानराग और विद्यान का। उनन मान-सात्त्वाम नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया जिमम विविध विषया का विवचन किया गया है। मानसात्त्वाम म यह बताया गया है कि राजनातिक क्विन् किन प्रकार प्राप्त की जा सकती है इसका उपमाग किस राति स करना चाहिए निमम यह चिरस्थायी है मक। म ग्रन्थ म वादिक मुवा और अन्य प्रकार क मनास्यजन प्रणय करनेवाणे माधना का मृत्यु विवचन किया गया है। मात्सात्त्वाम म यह स्पष्ट पता चलता है कि सामन्त तताय का राजनाति यद्यत् प्राप्त न चिकित्सा सिद्धि ज्योतिष इतिविद्या (हाथिया का पकडन तथा उनका तदन पहचानन की रिति) शस्त्रविद्या और जनकशास्त्र आदि विभिन्न विषया का सम्यक ज्ञान था। सामन्त तताय का पुत्र जगत्कमल तताय (११२६-११५१ ई०) या जिनन नाम मना का जाग बन स राका और परमार वंश क राजा जयवमन पर आक्रमण करके उसस मानवा का एक भाग छान लिया। प्राप्तमर नीलका न शास्त्रा का विचार है कि चानुवय राजा जगत्कमल न सगाठ-बूढामणि नामक पुस्तक लिखी। जगत्कमल सामन्तवान ता था किन्तु उसक समय म भी चानुवय मना का हानि का नहीं। वास्तविक बात यह था कि मासना का शक्ति वृत्त जान क कारण चानुवया का शक्ति का बहुत घबका पहुँचा। हम दल चक हैं कि सबसे प्रतापी और प्रसिद्ध चानुवय नरेश विश्वमादित्य पृष्ठ क समय म ना उसक सामन्त सनन थ। आवश्यकता से बात का था कि का चतुर राजनातिक सामन्त का अपनी आर मिता गता आर उसक हित का राज्य क हित का रूप प्रदान किया जाता। हायमल विष्णुवदन सबसे अधिक प्रभावशाली सामन्त था। कृष्ण नदी क दक्षिण म जितन भी सामन्त थ उन सब का उसने अपन ज्ञान कर लिया। म सामन्त विष्णुवदन का कर दिया करत थ। विष्णुवदन न गाजा का जीत लिया था और नालम्बवाडा जयवा पूर्वीय मसूर पर अपना अधिकार जमा लिया। उत्तर बादवा न ना उत्तर म अपना शक्ति बढा का ला। जगत्कमल तताय क बाढ तलप तताय कत्याण क मितासन पर बढा। तलपतताय का काकलाय नरेश प्राप्त न पराजित कर दिया। हम पताजय स चानुवय वंश का शक्ति और प्रतिष्ठा का प्रबन्ध आघात पचा जिसस नाम उठा बल मया विजल न ज। सम्भवत बलबुरा वंश का था राजसिंहासन पर अधिकार जमा लिया (१११६ ई०) और तलप तताय का कत्याण क गहर सड किया। इस प्रकार कत्याण म एक नम राजवंश का स्थापना हुई। फिर ना ततप तनीय अपने राज्य क एक छान स भाग पर ११६२ ई० तक शासन करता रहा।

कत्याण से बलबुरी अक्षराधिपत्य और सिंहासित सम्प्रदाय—तलप तताय के मया विजल बलबुरी न ११५६ ई० म राजसिंहासन हस्तगत कर लिया। मात वप तक शासन करने के बाद उसने ११६३ ई० म सिंहासन त्याग दिया। विजल क उत्तराधिकारिया का अधिकार ११८ ई० तक स्थापित रया। बलबुरी अक्षराधिपत्य क समय म वार शक मत अथवा सिंहासित सम्प्रदाय का दशनामपय म काका प्रचार

वडा। विजयन का मन्त्रा वासय लिगायत सम्प्रदाय का संस्थापक था। कन्नड तथा ममूर देश में जज भा विगायत की सरवा कपी जयित है। य ताव व। ता अवीरयवत, तस मरमायत। तही मानन और शिव र विग र्ग तथा उनका वान नन्दा क परम उपासक हति है। उनका पुनति प्र य जपन है जिनका वागय पु रण प्रग्यात हैं। व वण पवस्था का नहा मानन और परम्परागत रिट्टर का मामाजिन नया सद्धान्तिक प्रग्यात स भा उनका विराय है। विगायत सम्प्रदाय क ताव पुनजम और वान विवा म विवास नहा करत। शास्त्रणा को जनाय श्रान्ता का व म्प्राय न्नी करत प्र प्रन या क्हना चाहिए कि व इमका प्रयन विराय कर्न है यद्यपि लिगायत सम्प्रदाय क संस्थापक वमर का जन्म ब्राह्मण परिवार म हा ज्जा था। विगायत नाग विप्रता विवाह का ममवन करत हैं। इम मय क प्रचार म कन्न दस म जन वम का वान क्षति पहुचा किन्तु विगायतान कन्नड नाया म महित्य सजन किया।

पश्चिमी चातुर्व्या की शक्ति का पुनरुत्थान—विजय क उपरांत उक्त उक्त शक्तिरिषा का शासन दुर्गन्तापूर्ण प्रमर्णित हुआ। उनका विरय म म्म प्राय कुछ भा मन्म नही। सामन्वर चतुय न अन्तिम कनकरा नरण का सिहामन्पुन करक अपन वज की शक्ति का पुन प्रतिष्ठापित किया। किन्तु पश्चिमा चातुर्व्या का शक्ति अव और अधिक दिना तत्र त्कि त सनी।

पश्चिमी चातुर्व्या का पतन—हम इस बात का निश्च कर चक है कि विजयमा हित्य पठ जस प्रतोषा नपति क समय भा सामन्ता की शक्ति काफी द् हा गई थी। बाद म सामन्ता का शक्ति निरन्तर बढती ही गई। सोमन्वर चतुय क समय म म्प्राय और हायसत ताग स्वतन्त्र ा गय। इन शक्तिता क उदय का यह परिणाम हुआ कि कम्पण के चातुर्व्य वश का पान हा गया।

### देवगिरि के यादव

चातुर्व नाग अपा का भगवान वृष्ण के वंश यदुवश का घनत है। पहलू वे राष्ट्ररूपा क सामन्त क बाद म पश्चिमा चातुर्व्या का शक्ति घन पर यादव लाग उनका सामन्त ा गय। उत्तरवर्ती चातुर्व्या क समय म विशपतया विजयमदित्य पठ क शासक बाल म म्प्राय वग का प्रमुख सन्नचद्र चातुर्व्य राय क सम्पूर्ण उत्तरा प्रग का शासन नियन्त किया गया। विजयमान्दित्य पठ ने यह अनुभव किया कि यह विद्या स्वानाय ग्गारा की सहायता क अपन साम्राय का शासना सम्पन्न रूपण नहा चना स्वता जतएव उसन उन सरदागा की सहायता तथा शक्ति प्राप्त करन क लिए उनका स्वानाय शासन की स्वतन्त्रता प्रदान कर दा। सनुचद्र ा शासन गान्धरा क मन्ना भाग (खानगा) पर था। विजयमान्दित्य का मत्यु क बाद उसन अपना शक्ति का बलाया। बाद म सन्नचद्र क पुत्र न अपा पिता क काय का जारी रनया। कम्पण म कनकरा जतराविपत्य क कारण म्प्राय नाग कुछ काल तक अपनी शक्ति का अधिक विवास न कर सय। किन्तु जसा कि पीछ कहा जा चुका है सामन्वर चतुय क समय यादव नाग स्वतन्त्र हो गय। यादवा की स्वतन्त्रता का प्रतिष्ठापक निहनम पञ्चम था जिमन सामन्वर चतुय स वृष्णा न्नी क उत्तरवर्ती प्रात छान निय। मिन्म पञ्चम न सम्प्राटा क विरुद धारण किये और अपनी राजधाना देवगिरि म बसा। उसा क समय स देवगिरि क स्वतन्त्र राय का प्रारम्भ मानना चाहिए।

मिलनम का मन्त्रम पहल, कथ था जाने राज्य का स्थिति सुन्न करना। उसने चतुर्थ साम्राज्य के कर्त्रीय प्रथेण पर अनन, अधिकार जमाया। धारवारा और वाश्या का कुचनत, हुआ बहुकृष्णा नगी क त पर पच गया और होयसल नरेश वीर वल्लान त्रिनाय स वही पर उमना मुडम हुइ। मिलनम ने छोट माट सरदारा का पहल स हा दवा रक्या था और पच्छिमा घाट क (काकण तथा वाजापुर) सरदारा क, भा उसने अपनी अरीगत, वाका कर्न क लिये बाध्य किया। होयसल नरेश और वीर वल्लान क विरुद्ध संग्राम करन म मिलनम पचम को सफलता प्राप्त न हा सही और इन दाता म एक पारम्पगिन समनीत हुआ जिसक फलस्वरुप कृष्णा नगी उनक राज्या के बाच एक ताम गया मने नी गई। अपने विद्रोी सामन्ता का दान क प्रयत्न म मिलनम पचम का अपन प्राणा स हाथ घाने पड।

मिलनम पचम का मत्स्य क उदरात उतन, पुन और उत्तराधिकारा जनपाल प्रथम अथवा जजुगा देवगिरि क मिहामन पर वठा। जजुगा न ११९१ ई० स लकर १२१० ई० तक शासन किया। जजुगी न ११९६ ई० म त्रिपुरा क कलचुरिया के ऊनर विजय प्राप्त की जो ११९० ई० म काकनाय नरेश महादेव की पराजित किया। क ज्ञात है कि उमन गगनति क कनाय का जो कारावस म घा मुक्त कर दिया, जो वारगत क मिहानन पर उने वगाया। जजुगा प्रथम चारों वंश और तन तना मामाम, शास्त्रा का पण्डित था। उसने प्रयात गणितन भास्कराचार्य क पुन ल मावर का अमन, राजकवि बनाया। १२१० ई० मे जजुगी की मत्स्य के बाद उमन पुन मिहण राज। हुआ नी यालय वर का समस्त प्रसिद्ध शासक था।

सिंहण—मिहण क सनासत्रयोय शासन काल म (१२१०-१२४७ ई०) देवगिरि क यालवा क राजर जन विन्त र और गोरव क चरमा इन पर पहुच गया। १२३१-३२ ई० और १२३७-३८ ई० म मिहण न दो बार गुजरात पर आक्रमण किया और उल्ल ल त्रिनाय क विरुद्ध यद्ध छेकर उसने उमन म नरना तथा कृष्णा नदिगा क दीनग म क फी विन्तन मूमि छीन ला। उ तन क उत्तराधिकारी नरसिंह द्वितीय का भा स गजुतुनू तथा वनरा क जिन् सिंहण का मन्त्र म समनित कर दन पड। इनक बाद हायमत नरेश मानवर न हम बात का प्रयत्न किया कि वह अपन पिता तना पितृमद् द्वारा खान हुए प्रथेणा को पुन जन अधिकार म कर ल और इसी दराल म वह पण्यपुर तक बड गया किन्तु सिंहण क मनापति वीचन न होयमल संग्राम का पराजित कर दिया और उ हें लो जाने क लिए विनश किया। वीचन न यालव विजयवाहिनी के जवा का कवरा क जन का पान करवाया। इनका परिणाम यह हुआ कि सामन्तर का अपन शासन क अतिन दिना तक अपन राज्य के थार अधिभू भागा स हाथ घाने पडा। सिंहण न कावरीय राजा गगनति और मानवा क शासन स निरवक ही पड किन्तु बजाक मालवराज अजयवमन का पराजित कर दन क वावजू मी वह उन दिश, म अना रजयमामा का अधिभू विस्तार न कर सका। वापन गजआ क मनय म उमने गुजरात पर मी कम से कम दो आक्रमण किए। अपन राजाराज्य क समन म वह सिंहण महाराष्ट्र और कृष्णा नगी क उत्तर म तथा मन्तु नगर कन्नड प्रदेश क कुछ जिला क, स्वामी था किन्तु उमनी विजय नाति से यदव राज्य का सामर्थ्य उनी प्रकार विस्तृत हो गई जिसे प्रकार बना पश्चिमी चतुया का हा गई था।

महण न मास्कराचार्य क रचना र मनकरकरड, जारी रखी। उसने राज्य पर्याप्तियन छात्रेव था जा मास्कराचार्य का पोत्र तथा तन्मातर का पुत्र था।

छात्रादयः न पातना म एक विद्यालय गीना था जो पर भारतराज्य के मिद्वान्ति शिरामणि तथा अन्य प्रथम पदाय जाय । मिष्ण का राजमन्त्रा का मारगपर गुप्तो मित्त करता था जिसका मगातग्लानकर सत्तापान मगात मन्त्रित्व म मन्मन्त्र एक उच्चत रत्न है । इस प्रथम के ऊपर एक टाका प्रस्तुत है जोर इन वान के भी प्रमाण मित्त है कि वह टाका म्बय मिष्ण न गिया थी । मिष्ण एक नानिग्नन शासक और महान निमाता था था । उसन अपन राज्य म ८४ टुग वाराय जोर अपन सामन्ता का भी एसा करन का आता था ।

मिष्ण के उपरान्त उसका पौत्र कृष्ण मिष्णसन पर बसा । कृष्ण न १ ८३ २० स २२६० ई० तक शासन किया । गणपति काकताय न दक्षिण पश्चिम म जाग्र देश का कुछ भाग कृष्ण से छान लिया । कृष्ण एक शांतिप्रिय शासक था । उसन अपन तरह वष के शासन-काल म एक भा युद्ध नया किया और मन्त्रित्व-मददन का आर ध्यान दिया । कृष्ण के मन्त्राज्य-मन्त्र न सूचितमुवतायना नामक प्रथम म सूचिनया का सफलन किया और उगा के शासन-काल म अमरानन्द न मन्त्रित्व-मददन का प्रणयन किया । कृष्ण का मन्त्र और उत्तराधिकारी मन्त्रित्व (१२६०-७१ २०) एक सामर्थ्यशाली शासक था । उसन काकताय गणपति शास्त्रा के विरुद्ध मन्त्रा म सफलता प्राप्त का । उसन उत्तरा काकण के शिवाचारकाय सामन्त्र का पराजित किया और उससे उसका राज्य छान लिया । हमान्ति महादेव का मन्त्रा (जावणा धिप) था । हमान्ति स्वयं एक जसक था और उसन जनक उसका का राजाश्रय प्रदान किया । हमान्ति न स्तन अधिक मन्दिना का निर्माण करामा कि वास्तु कला की एक विशिष्ट शली हा उसका नाम स चल निकली । उस कला-कला का नाम था हमदपरिया । हमान्ति न हिन्दू धर्म के सम्बन्ध म कई प्रथम निल जितम चतुवर्ग चित्तमणि सवम प्रसिद्ध है । महादेव का १२७१ ई० म देहान्त हा गया और यादवा का शासक रामराज अथवा रामचन्द्र हुआ ।

रामचन्द्र न मानवा के राजा और काकताय वंश के शासक म यद्ध किये किन्तु इन युद्धा का कुछ निश्चित परिणाम न निकला । रामचन्द्र के समय म भा यादवा का मन्त्रा हेमान्ति ही था । उसका प्रसिद्ध सनानायक टिक्कम ने १२७६ २० म राज्यसल राज्य पर आक्रमण कर दिया और उसकी राजधानी द्वारसमुद्र पर जग वष धरा टान दिया । टिक्कम के वहुत सा मान के देवगिरि लौट जाया । यादव राजा रामचन्द्र के समय म दिल्ली के खिल्जी सुल्तान अलाउद्दीजन न देवगिरि पर आक्रमण किया । रामचन्द्र का मुसलमानों की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी । रामचन्द्र के शासन काल म सत्त पानवर ने गोदावरी नदी के तट पर मराठी भाषा म गाता पर एक भाष्य लिखा । देवगिरि के यादव राज्य का उमूलन अलाउद्दीन खिल्जी के उत्तराधिकारी मुबारक खिल्जी के समय म हुआ ।

## वारङ्गल के काकतीय

इसकेन के चानुष्य-मन्त्राय के ध्वसावशया पर जा नवान राजवंश उठ लड हुए उनम काकतीयों का राज्य भाएक था । काकताया के मून के सम्बन्ध म निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता । कुछ अभिलेखा म काकतीयों का पूरा बताया गया है किन्तु स्वयं काकताया का स्वरूप वंश-तलिका से जिम्ह रूपकुल के अनक नाम मित्त है विदित होता है कि काकताय सम्भवत मूयवशाय धारिय थे ।



काकतीय वंश का सबसे प्रथम ऐतिहासिक व्यक्ति वेता था, जो कल्याणी क चालुक्य नरेश विक्रमादित्य पट्ट ना सामंत था। प्रीत द्वितीय न पश्चिमा चालुक्य की राजसत्ता का विनाशामुला दण्डकर तथा कुडल्लुग प्रथम की मृत्यु के कारण वेता म उत्पन्न अराजकता से लाभ उठाकर कृष्णा तथा गालावरा नदिया के मध्यवर्ती भूभाग पर अपना अधिकार जमा लिया और जमकाड (अथवा हनुमकाड) म अपना राजधानी बसाई। ऐसा अनुसूति है कि प्रीत द्वितीय न कल्याणा क तलप तताय का ११५५ ई० क लगभग पराजित किया और उस बन्दी बना लिया किन्तु बाद म उस मुक्त भी कर दिया। प्रीत द्वितीय न जपन राज्य म अनेक जलाशय खुन्वाय और कृषि म सुधार करने की आर ध्यान दिया।

प्रीत द्वितीय की मृत्यु ११६२ ई० म हुई और उसके पश्चात् हद्र अथवा प्रताप हद्र काकतीय वंश का नृपति हुआ। अपने पिता का मीति प्रतापरुद्र का मा सिंहासन प्राप्त करने समय विद्रोही सामन्ता का अभ्यन्त करना पडा था। डम्म और मालि गिन्व नामक तलगू सरदारा से प्रतापरुद्र न उनका जागारें छान ला। माम नामक एक शक्तिशाली सरदार न अय सरदारा की जागीरें छान कर अपने अधिकार म कर ली और इस प्रकार अपना शक्ति बला ली। उसन प्रतापहद्र की राजधानी वारगल की आर प्रयाण किया आर माग म जितन भा छोट माट नगर पड उन सबको जीत लिया। किन्तु भीम को प्रतापरुद्र म पराजय खाता पडो और युद्ध भूमि म हा उसके प्राण गय। इस प्रकार गटूर क चान सरदार को भी काकतीय नरेश प्रतापहद्र प्रथम न दबा दिया और उसकी राजधानी म आग लगवा दी। उसन अय सामन्ता क गडा और नगरा का भी विध्वस्त करा दिया और अपनी राजधानी वारगल की प्राचारें मुण्ड कराई। उसन अपनी राजधानी म अनेक मन्दिरा का निर्माण भी कराया। प्रतापरुद्र प्रथम का राज्य दक्षिण म समुद्र तक, उत्तर म गादावरा नदी तक और पश्चिम म वर्तमान हैदराबाद नगर तक फला हुआ था। वह विद्वाना का आश्रयदाता था। उसका शासननाति भी उत्तरता और प्रजावत्सलता क सिद्धान्ता पर आधारित थी। उसने स्वय एक नौतिसार का मसूदा और तलगू भाषाभा म प्रणयन किया। उसकी धार्मिक रुचि वार शव सम्प्रदाय की आर या जिनम प्रति हाकर उसने मामनाथ का राजाश्रय प्रदान किया। सामनाथ मसूदा तलगू और कन्नड़ इन तान भाषाभा का पणित था और उसन वार शव सम्प्रदाय क धार्मिक सिद्धान्ता पर बड़ा प्रय लिय। नमछाडु न ज। कलहस्ति का सरदार था कुमार सम्भव लिखा। यह काय प्रय तलगू भाषा म लिखा गया है और इस पर महाकवि कालिदास क कुमारसम्भवम् का प्रभाव सुस्पष्टरूपण प्रतिगत हाता है। प्रताप हद्र प्रथम का मृत्यु (११०९ ई०) क पञ्चान उमका अनुज महादेव मिहामनाडु हुआ किन्तु उम यादेव राजा जतुगा न मिहामनच्युन कर लिया। जतुगा न काकतीय गणपति का वारगल क सिंहासन पर अधिष्ठित कर दिया।

गणपति—गणपति काकतीय वंश का एक शक्तिशाली और प्रसिद्ध शासक था। उसका ममकालीन यदव-नरेश सिंहेण था, जिसक विषय म हम पाछ पड चुके हैं। गणपति न अपन सामन्ता क प्रति उत्तरता दिखलाई और उनक माय बवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया। उसने अपना दा पुत्रिया का विवाह काल और मन्वाति नामक शक्तिशाली सरदारा के माय किया। उसन जय नामक मन्त्री का दा ब्याआ के साथ अपना विवाह किया। इन विवाह सम्बन्धा द्वारा गणपति न अपना आन्तरिक स्थिति मजबूत कर ली और काकतीय वंश क मीमाग्य से आगे चलकर भा इन सम्बन्धा का

काई अहितकर या अवाछनीय परिणाम न निकला। अपना यम शासन स्थापित कर लेने के बाद गणपति ने अपने दृष्टसा राजा के विरुद्ध यज्ञ छुड़ दिया। एक अमिच्छक से पता चलता है कि उसने चल बसिग यात्र्य वर्णात् लज्जोरयत्ना दु के शासको का पराजित किया। किन्तु एका प्रतीत जाना है कि यक्ष नरेश मिहण और गणपति के पारस्परिक यद्धा का कार्य निष्पत्तय परिणाम न निकला। अथ देश से ११८६ ई० के लगभग दत्तनाति चाडा के निकल जन के वाग्ण वर्ण की राजनीतिक स्थिति अशांतिमय हा गइ। जा ध्र की इम रजनीतिक अशांति म नाम उठाकर गणपति ने (१२०० ई०) के लगभग वहाँ अपना अधिकार जमा किया और वहाँ की उवरा भूमि लह तथा हार का रचना एक वहाँ के व दरगाहा स अधिकतम लाभ प्राप्त किया। नत्तार के तलग चडा न मा गणपति की अध नत्ता स्वीकार करनी। गणपति ने छूदपट्ट तथा क नून के कायस्थ शास्का गामय साहिति तथा उसके भतीजो त्रिपुरा तक तथा अम्बदव का अपन अधान किया। इस के पचात गणपति ने अपना एकमात्र पुत्रा रद्राम्बा का अपने राज्य की उत्तराधिकारिणा नियवत किया और उस रुद्रदेव महाराज नाम स विमूषित किया। मातपत्तिल म जा विदशी यापारी तिजारत करते थे उनका उसने अमयशासन द्वारा यापार करने की छूट प्रदान की। काश्च कापरन्तु ग न भी गणपति की अधानत्ता स्वाकार कर ली था।

गणपति के सुग्रीष शासनकाल मे (११९१-१२६१ ई०) कावतीय वश अपने राजनीतिक उत्कर्ष की स्वीच्छ सीमा पर पहुच गया। कावतीय राज्य की सामायों काफ़ी दूर तक फल गयी। गणपति के मन्त्री जय न जनक प्राचान मन्दिरा का दान दिये और कितन ही बान मन्दिरा का निर्माण करया। पात्त वर चिद वर गणपत इवर पुष्पागि भीमे वर मेतमक वर आदि दवत जा के मन्दिरों का निर्माण अथवा पुननिर्माण गणपति कावतीय के मन्त्री जय न ही करया था। चान सम्राट कुलात्तुग प्रथम का अनसरण करते हुए गणपति ने वरत्तों के जायत और रियात म के कर उठा लिय आर सामुद्रिक यापारिया का सुदिघाय प्रदान की। उसने पावल नामक एक क्षील का भी निर्माण करया। गणपति शबरत्तानुय यी था अतएव उसने अपने राज्य मे शबो के प्रति विशप उचारता प्रदर्शित की। गणपति ने धामिक साहित्य के अध्ययन को प्रात्साहन प्रदान किया। उसके समय मे दक्षिणी भारत का विदेशी यापार काफ़ी बढ गया और देश के धन तथा समृद्धि म पर्याप्त अभिवद्धि हुई।

गणपति के पचात—१२६१ ई० मे गणपति का मृत्यु के उपरांत उसका पुत्र रद्राम्बा सिंहासन पर बठी। रद्राम्बा के शासन काल मे कावतीय राज्य मे काई गडबडा उत्पन्न नही हुई। केवल दा एक सामन्ता न निर्वाह करने का प्रयत्न किया किन्तु उनका विवाह कुचल दिया गया। उसके समय मे मार्कोपाना नामक वेनिस के एक पयटक ने उसके राज्य का भ्रमण किया था। मार्कोपाना ने अपने यात्रा विवरण मे रद्राम्बा के शासन की बहुत प्रशंसा की है। उसने लिखा है कि शासन व्यवस्था श्रुष्ठ और यामपूण ह तथा समानता के सिद्धांतों पर आधारित है। रद्राम्बा का उसकी प्रजा बहुत चाहता था। कृष्णा नदी के मुहान पर मोतुपल्ली का बंदर गाह था जा राज्य का सर्वम प्रसिद्ध बन्दरगाह था। राज्य के यापार की स्थिति ममद्विपूण था। हार और भटकात्र वस्त्र वहत घडे परिमाण मे विदशा का भ्रज जाते थे। लाग गिद्धा का सन्निधता द्वारा गुफाआम हारे प्रात्त करत थे। रद्राम्बा के नाती प्रतापरद्रदव न यात्रा के विरुद्ध यद्ध करके श्याति अजित की और १२८० ई० मे वह युवराज मनातीन कर लिया गया। आठ वष बाद रद्राम्बा के मन्त्री अम्ब-

देव ने विद्रोह कर दिया परन्तु युवराज ने एक चाल चलकर उसक विद्रोह को विफल कर दिया। १०१५ ई० म रद्राम्बा की मृत्यु क उपरान्त प्रतापरुद्रदेव राजा हुआ। प्रतापरुद्रदेव न १०२६ ई० तक शासन किया। अपन राज्य-कान क प्रारम्भ म ही उसन अगली और रायचूर क दुग य दवा स छीन लिय और इन दुगों क निकटवर्ती नूनागा पर भी उसने अपना अधिकार जमा लिया। प्रतापरुद्रदेव ने शासन-व्यवस्था म सुधार करन का प्रयत्न मा किया। उसन अपन राज्य का ७७ भागा म विभक्त किया और प्रत्येक भाग का शासन एक नायक क अधीन कर दिया। प्रतापरुद्रदेव का वंशनाथ न प्रतापरुद्री नामक अलकारग्रय समर्पित कर अमर कर दिया है। प्रतापरुद्र काकतीय वंश का अंतिम प्रभावशाली नरेश था और उसे मलिक काफूर की दक्षिण आक्रमण यात्रा क समय मुसलमाना के प्रति आत्म समर्पण करना पडा। तदनंतर काकतीया का प्रभाव घटने लगा और अंत म उनका राज्य दक्कन के बहमनी सुल्ताना के हाथ म चला गया।

### द्वारसमुद्र के होयसल

अनुश्रुति क अनुसार होयसल वंश का संस्थापक साल था। कहा जाता है कि साल न जन मतानुयायी विसा महारमा को एक याघ्र के आश्रमण स बचाया था। इस घटना (पीय साल अर्थात् मारना साल) क परिणाम स्वरूप इस राजकुल को प्रायजस अथवा होयसल सजा मिली। राइस नामक विद्वान् ने एक अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसमें एक नरमक्षा याघ्र का किसी सरदार द्वारा हनन का जिक्र मिलता है। याघ्र वध के वीरतापूर्ण काय के बदले म प्रत्येक ग्रामवासी न उस सरदार को वक्ष्य एक पण देना प्रारम्भ किया। ग्रामीणो ने उस सरदार का अपने लिए एक दुर्ग बनाने मे भी सहायता प्रदान की। यह घटना शशकपुर नामक ग्राम म घटित हुई थी। इस प्रकार साल ने होयसल राजवंश की नींव डाली कि तु बहुत दिना तक इसका आधिपत्य और प्रभाव अत्यंत क्षीण था। होयसल वंश क एक व्यक्ति मांजिग को चोल सनानायक अप्रमेय्या ने १००४ ई० क लगभग मार डाला था। कुछ दिना तक साल का वंश बिलकुल लुप्त मा रहा कि तु १०२२ ई० नपकाम इस वंश का प्रभुत्व हुआ जिसने चाल सम्राटा क प्रांतीय गवर्नरा से युद्ध किया। नपकाम ने अपने वंश क भावी गौरव की नींव डाली। सरदारा क विरुद्ध उसनजायद विजे उनम उस सफलता प्राप्त हुई। नपकाम का उत्तराधिकारी विनयादित्य द्वितीय (१०४८-११०० ई०) था जिमा हायसल वंश की मान प्रतिष्ठा म प्रभुत्व अर्जित क। उसकी नाति कुशलता और वीरता स प्रभावित होकर कल्पना क चालुक्य सम्राट न उसे अपना अधीनस्थ साम तबना लिया और उस प्रांतीय शासक के पद पर प्रतिष्ठित कर दिया। चान्ना और चानुवया क याघ्र निरंतर जा युद्ध हात रहे उनक कारण होयसला का बड़ा लाभ हुआ। विनयादित्य द्वितीय १११०० म परुनोदगामी हो गया और उसका पीठ बल्लाल प्रथम उसका उत्तराधिकारा हुआ। बल्लाल प्रथम को अपन क विरापी मामता का दमन करना पडा। ११०८ ई० म बल्लाल प्रथम का अनुज विह्गिन्व हायसल वंश का राजा हुआ।

विह्गिन्व (११०८-११४१ ई०)—इसे हा भारतविक अय म होयसल वंश की राजसना का प्रतिष्ठापक कहा जा सकता है। उमने गगवाडा प्रस्थ का, जा होय सला क अधिकार स निकल गया था पुन अपन अधिकार म कर लिया। इसी प्रकार

नीलम्बवाडी तथा पडास व अन्य भागों का भी जानकर उमन एक म पित्राया और वतमान ममूर की नाव डाला। विहिग्ट्व क जमिन्दा म उमरा विजया जीर मय सफलताओं का विवरण कुछ विस्तार क साथ मिनता है। उमन वाला मदुरा क पाण्ड्या मलावार क निवामिया त्रिण कन्नड क तुनवा तथा गाजा क मन्दा का पराम्न किया और कृष्णा तथा काञ्चा तक घाय बिय। तामिन ट्य पर आक्रमण करके वह परमेश्वरम तक पञ्च गया। म प्रकार विहिग ने एक विस्तृत भूभाग पर जिमम प्राय सारा ममूर आर निकटवर्ती प्रन्श शामिल थ जपना प्रमत्त म्यापिन किया। उसके बहुत स मुवण निष्कप्राप्त हु है जिन पर कन्नड भाषा म तानक गुगन् विरु उत्काण है। विहिग का राजधाना मरमम थी। यद्यपि व चानुक्य सम्राट विष्णुमादित्य पड्ड के अधीन हा हुए भी व्यावहारिक रू स स्वतंत्र हा वका थ, तथापि उसने सम्राटा क विरु धारण नहा किये जीर न उमने अपना स्वतंत्रता धापित की। विहिग पहल जनमतानपाया था किन्तु बाद म रामानजाचाय क प्रभाव म जाकर वह बण्णवह गया। वण्णव मत म स्थापित हा जान पर उमने अपना नाम विष्णुवद्वन रख लिया था। जन मन क प्रति विहिग विष्णुवद्वन का स्थापना उगार और प्रणमनाय था। उसने स पात्र नामक एक जन जाचाय का म्मि तान लिया था। शव मन का भी विहिग विष्णुवद्वन न रजाथय प्रदान किया। उसने अनक म्मि का निर्माण कराया जिनमे वनर का म्मि प्रसिद्ध है। म्मि और थारग पट्टम क विष्णु मन्दिर भी विष्णुवद्वन क समय म हा बनवाय गये थ।

विहिग्ट्व विष्णुवद्वन की मृत्यु क बाद मत् ११४१ ई म नरसिंह प्रथम हायसला का नपति हुआ। अपने सिंहासनारोहण क समय नरसिंह प्रथम केवल आठ वष का बालक थी था। उसके समय म वनवामी तथा नालम्बवाडी क प्रदेशों का शासन करने क निण जा प्रान्ताय गवनर नियुक्त किय गये थ उनक, चानुक्य सम्राट ने नियुक्त किया था यद्यपि विहिगदेव क कान म उपयुक्त प्राप्ता पर हायसल वश का प्रभत्व चालुक्य सम्राट न स्वाकार कर लिया था। इसा वाच म कल्याणी म कन्नचुरा अन्तराधिपत्य क कारण चानुक्य की शक्ति ह्रासासुग हो गई और राय म उभय पृथग मच गई अतएव नरसिंह प्रथम के मनानायक वाकन ने रायापहती कन्नचुरा विजय क, पर जित कर लिया जीर उसने वनवासा तथा नालम्बवाडी के प्रदेश छान लिय। योवनावस्था प्राप्त म, ज न पर नरसिंह प्रथम विलासी तथा कामुक हा गया। कहा जाता है कि उसका अन्त पुर क फी विशाल जीर समज्जित था जिसमे ३८४ स्त्रियां थी। नरसिंह प्रथम म कोई सनिक याम्यता अथवा शासन निपुणता न था। उसके राज्य कान म बोकन की सनिक सफलता के अतिरिक्त और कां विजय काय सम्पन्न नहीं किया गया। किन्तु नरसिंह प्रथम के पुत्रवीर बल्लाल प्रथम (११७२-१२१५ ई) ने अपने कायोग्य और शक्तिशाली शासक प्रमाणित किया। उसने अपने ४२ वष के शासन कान म योयसन वश का राजशक्ति का खूब बढाया। बार बल्लाल होयसन वश का प्रथम शासक था जिसने सम्राटा के विरुध धारण किय। उसने वनवामी और नालम्बवाडी के विजय मय का पूणरूपण सम्पन्न किया तथा पाण्ड्यो का सफलतापूर्वक दमन किया। कायाण पर यादवा तथा कावतीया का आक्रमणकारी के रूप म आता हुआ जानकर वीर वान भी अपना सेना नकर उस आर वग गोल्म नामक स्थान क निकट पड्ड हा सिजमे य देव नरश मिलनम पञ्चम का वीर बल्लाल क हाया पराजय स्वाकार करली पनी। ११९० ई मे नाकुने क दुग पर होयसतो का अधिकार होगया। चानुक्य सम्राट सामेन्बर चतुय का पराजित

करके वीर बल्लाल ने अपनी स्वाधीनता घोषित कर ली और उत्तर में कृष्णा नदी तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया। उस कृष्णा की एक सहायक नदी माल प्रमा को अपने राज्य की उत्तरी सीमा निर्धारित किया। हायसन राज्य की यही सीमा अलाउद्दौल खिजा के सनानायक मलिक काफूर के आक्रमण तक स्थिर रही। ११९१-९२ ई० में वल्लाल ने कई सम्राटों के उपाधियाँ धारण की और इसी वष से उसने एक नया मवा चलाया। १२११ ई० में उनकी मृत्यु के समय होयसला का राज्य जब उदरूप की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उसने वण्णवा को राजाश्रय प्रदान करने की नीति जारी रखी।

वीर बल्लाल प्रथम का राज्य के उत्तरी सीमा पर स्थित राज्य के विस्तार पर बड़ा। इस समय तक (१२१६) चाला की शक्ति बिलकुल तहस न चाला को सहायता प्रदान की और उनका नष्ट होने से बचा लिया। नरसिंह द्वितीय को यादव राजा सिहग सहार चाना पने और यादव सना कृष्णा के पार पहुँच गई। नरसिंह द्वितीय के बादवाल नामक राजा का क विषय में कुछ विग्रह विवरण प्राप्त नहीं होता केवल इतना पता चलता है कि चाना जोर पाण्ड्या से लड़ते रहे। किन्तु वीर-बल्लाल प्रथम ने यादवों का उनका राजनीतिक उत्कर्ष का जिन मोमापर पहुँचा दिया था उसका कारण वीरहवा तथा तेरहवा शताब्दी में दक्षिण भारत की राजनीतिक शक्तियों में उनका प्रमुख स्थान था। चौदहवा शताब्दी में सुदूर दक्षिण में विजयनगर के हिंदू राज्य की स्थापना में हायसला का भा यागदान महत्वपूर्ण था।

होयसन शासकों ने कविया का राजाश्रय प्रदान किया जिससे उनके राज्य में विद्या, साहित्य और कला की उत्थिति हुई। वे विशाल मन्दिरों के निर्माता थे और उन्हीं के इमारतें बनाईं। आज भी हलवि तथा अन्य स्थानों में खड़ी हैं और उनकी कलाप्रियता तथा धर्मानुरागिता प्रकटित करती हैं। विष्णुवदन न नागचन्द्र अथवा जमिनन पम्पा का अपनी राजममा में स्थान दिया था। य जमिनन पम्पा आदि पम्पा में भिन्न थे और इ हों। पम्पा रामायण में रामचरित का वर्णन जन अनुशुनिया का आधार पर किया है। कान्ति नामक भिक्षु भी कन्नड भाषा की प्रसिद्ध कवियत्रा था जो सम्भवतः विष्णुवदन का समकालीन थी। राजा न्तिय न गणित का नियमा का छात्रवृद्ध किया। नयसन एक आचारवादी चरित और अपने समय का प्रसिद्ध विद्वान तथा लेखक था। उसने अपने समकालीन लेखकों द्वारा जनाक्यक रूप में संहृत शक्तों के प्रयोग करने का प्रवृत्ति का विरोध किया। नमि चन्द्र नामक विद्वान ने सुबधु का वागवदता का मान्य पर कन्नड भाषाम लीला वता प्रथ का प्रणयन किया जिस कुछ विद्वान् कन्नड भाषा का प्रथम उपवास मानते थे। पम्पा कान्ति राजन्तिक और नयसन य सभी जन मनावलम्बी थे, जिससे यह सिद्ध होता है कि कन्नड भाषा का साहित्य सृजन द्वारा समृद्ध बनाने में जनिया का योग महत्वपूर्ण था। यहाँ यह उल्लेख कर देना अप्रामाणिक नहीं कि जन पंडिता न तामिल भाषा का सम्पन्न बनाने में भी अपना महत्वपूर्ण योग प्रदान किया था। यह पीछे कहा जा चुका है कि वीर शव सम्प्रदाय का लया न भी कन्नड भाषा में अनेक प्रथा का प्रणयन किया। हायसला राजाओं के समय में हीरेवर ने गिरिजाकल्याण और गणधनक न हीरेचन्द्रकाव्य लिखा। य दोनों साहित्यकार वीरशय सम्प्रदाय का अनुयायी थे।

इसमें सदेह नहीं कि वज्रत मया का उत्पत्ति का दृष्टि से हदरसा का स्थय काका महत्त्वपूर्ण था।

### वदम्ब कुल

दक्षिणापथ के दक्षिण पश्चिमी भाग में चौथा शताब्दी के लगभग वदम्बों का अभ्युदय हुआ। समुद्रगुप्त ने सुदूर दक्षिण के परलव राजा विष्णुगुप्त का पराजित किया था जिससे परलवों का शक्ति का घटका पड़ा था। इसका परिणाम यह हुआ कि वदम्बों का अपनी शक्ति बढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ गया। वदम्बों के प्रारम्भिक अभित्त्व प्रकृत मया में है कि तु उन अभित्त्वा के बाद बलरमा अभिलस मगधुत में है। वदम्ब लगमन यगत्र के ब्रह्मण्य अरय अदन का हरेति का वशज मानते थे।

वदम्ब-कुल का स्थापक मयूरशमन या जिसने काञ्चना म पल्लवा द्वारा अपना मानित किया जाने पर अदन हाथ में शस्त्र ग्रहण किया और वर्णाटक मदनवसा का राजधानी बना अपना राज्य स्थापित किया। पहले मयूरशमन ने राज्य की उत्तरी सीमा पर पल्लव शासक के उच्च पदाधिकारियों का भयसत्ररत कर दिया और बृहद्धान लागू तथा पल्लवों के अय सामंता से कर वसूल करने के बाद श्रीशतम् के निवृत्त अरण्य में अपनी शक्ति जमा ली। उसकी योग्यता और शक्ति से प्रभावित होकर पल्लवों ने उससे संधि कर ली और दन्वासा के विद्वत् का भूमि उस दे दी। यह घटना ३४५ ई० के लगभग हुई। मयूरशमन के पुत्र कर्गवमन ने विध्यशक्ति के समय में वाकाटक आक्रमण का सामना किया। यद्यपि युद्ध के परिणाम स्वरूप कर्गवमन के अधिकार से घाटा सा भभाग निकल गया तथापि उसका प्रतिराय बस पर्याप्त रूप में सफल था। वदम्बों ने बाद में पालाशिका (हस्ता) का अपना दूसरा राजधानी बनाया। कर्गवमन वदम्ब कुल का एक प्रतिशानी शासक था। कर्गवमन ने अपने पसिद्ध समकालीन राजवंश गुप्तों वाकाटकों तथा पश्चिमी गंगा के साथ विवाह संबंध स्थापित किया। उसका पुत्र शातित्वमन (४५०-७५ ई०) ने काञ्चना के पल्लवों से मित्र एक दूसरी पल्लव शाखा के आक्रमण का स्फूर्ततापूर्वक प्रतिराय किया। इस कार्य के लिये उसने अपने राज्य के दक्षिणा भाग का अदन अनुज कृष्णवमन प्रथम के सिपुत्र कर दिया। कृष्णवमन प्रथम ने अदनमधमन का अनुष्ठान किया था। कि तु पल्लवों के विरुद्ध युद्ध के तै समय उस वा रति प्राप्त हुई। शातित्वमन के पुत्र मग वरवमन ने पल्लवों आर गंगा से स्फूर्ततापूर्वक युद्ध किया। मग वरवमन विद्वान् था और उस हाथिया तथा घटा का नरत पक्षनेत्र की जन्मत योग्यता प्राप्त था। उसने अपने दिवंगत पिता का पुण्यस्मृति म पत्र शिका (हस्ता) में एक जन मंदिर का निर्माण कराया था। मग वरवमन के पुत्र रविवमन ने विष्णुवमन का जा शातित्वमन के अनुज कृष्णवमन प्रथम का पुत्र था युद्ध में पराजित करके वदम्ब राजकुल का समुत्त किया। उसी चंद्रदेव

कर्गवमन के तालगण्डा लेख में इस बात का विवरण इस प्रकार दिया गया है— 'वहाँ एक पल्लव अवार ही के साथ घरे बल्ल से क्षय होकर उसने (मयूरशमन ने) विचार किया खद है कि कलिकाल में ब्रह्मण क्षत्रियों से इतना दुबल होत लगे।' तत्र पल्लवों वसस्थन बल्लण त क्षणरोपिता। कल्पियगस्तिमप्रहो बत क्षत्रात् परिवल्ला विप्रत यत।

नामक परलेख आश्रमणकारी का पाछ ढकेल दिया। रविवमन ने गगो का भा युद्ध म पराजित किया। उसक पुत्र हरिवमन का ५२८ ई० म राजसिंहासन प्राप्त हुआ। हरिवमन शांतिप्रिय यवित था किन्तु उस चालुक्य शासक पुलकशिन प्रथम क आक्रमण का सामना करना पडा। वातापी क चालुक्या क उरकप न कदम्बा का महत्वाकाक्षा चूण कर दा। उनक उत्तरा प्रदश पुलकशिन प्रथम न छीन लिय और पुलकशिन द्वितीय ने उनका सवथा नगण्य बना दिया। कदम्ब राज्य क दक्षिणी प्रदशा पर गगा ने अपना प्रभुत्व स्थापित किया। फिर भा कदम्ब राजकुल सवथा विलुप्त न हुआ और उसक राजा राष्ट्रकूट क पतन क बाद १०वा सदी ई० के अंतिम चरण म एक बार फिर बलवान् सिद्ध हुए। इन कदम्ब शासक आने दक्कन आर काकण क विविध भागा पर १२वा सदी ई० क प्राय अंत तक शासन किया परंतु उनकी सन्नियता स्थानीय सीमाआ तक ही परिमित रही।

### पश्चिमी गगो का राजवश

पश्चिम म कदम्ब राज्य और पूव म पल्लव राज्य क बीच म आधुनिक मसूर क दक्षिणी भागा म पश्चिमी गगो का राज्य था। इस भाग का प्राचान काल म गगवशी कहा जाता था। पश्चिमी गगो क राजकुल का प्रतिष्ठापक दिदिग अथवा कागनिवमन था जो अनुश्रुति के अनुसार काण्वायन गान का था। उसने घम महामात्र का विरुद धारण किया था जिसस प्रतीत हाता है कि वह एक स्वतंत्र शासक था। किन्तु कुछ अनुश्रुतिया से एसा पता चलता है कि काण्वा क किसी पल्लव शासक ने गगो क पडासी (उत्तर पूर्वीय दिशा म) दाना का जीतन क लिए कागनिवमन को अधिष्ठित किया था। कागनिवमन का राजत्व काल ४०० ई० क आस पास रखा जा सक्ता है। उसकी राजधानी तुलदुल (कालार) थी आर उसकी राज्य पतका पर हाथी का चित्र अंकित रहा क ता था। का री-दी क टट पर तलकड का पञ्चम शती क मध्य म हरिवमन ने अपना राजधनी बनाई। कागनिवमन का पुत्र माधव प्रथम महामिराज (४२५ ई०) राजसन म उवण था। इस क बाद गगवश का शासक आयवमन (४५० ई०) हुआ जा एक परतमा यद्धा तथा प्रकाण्ड परिष्ठत था। आयवमन को काञ्ची क पल्लव नरेश सिद्धवमन न अधिष्ठित किया था। एसा प्रतीत हाता है कि आयवमन और उसके अनुज कृष्णवमन क बीच उत्तराधिकार क प्र न पर चगडा उठ राडा हुआ। इस पारस्परिक झगड का निणय कर ने क लिए एना माइया न पल्लव राजा को अपना मध्यस्थ बन या जिसन गग राज्य का नो भागा म विभक्त कर दिया। परवर्ती अभिला म इसी आयवमन क लिए हरिवमन नाम का प्रयाग किया गया है और जसा पाछे कहा जा चुका है हरिवमन ने ही गग राज्य की राजधाना तलकड म स्थापित की। गग वश क पूवकालिक राजाआ म सातवाँ नरेश दुविनीत शक्तिशाला और उत्तमनीय था। दुविनाठ कदम्ब वश के प्रतिष्ठापक मसूरशमन तथा पल्लव शासक सिंहविष्णु का समकालान था। पल्लवों स युद्ध कर क उसने श्याति अजित की। कदम्बा तथा बाला क ऊपर दुविनीत अन्तूर और पारु नामक स्थाना म विजय प्राप्त की। दुविनीत न पशाची बहल्लवों का महत्कृत रूपांतर किया। सातवा शताब्दी म चालुक्य लाग गग राज्य तक बढ़ आय और उन्हुने गगो का अपनी अधानता स्वीकार करने क लिए विवश किया। गग वश का बारहवाँ नरेश श्रीपुरष (७२८-७८८ ई०) था। उसने चालुक्यों के विरुद्ध अपनी स्वतंत्रता घोषित की और उन्हें कर दना बन्द कर दिया। वह पल्लवों

राज्य तक आगे बढ़ आया और उसने मित्राक्षी के युद्ध में पल्लवों का पनामाभूत राजसत्ता का बिलतुन तहस नहस कर डाला। श्रीपुरुष ने उन्नीसमान राष्ट्रकूटों में सफलतापूर्वक तोहफा लिया। श्रीपुरुष ने अपना राजधानी का स्थानांतरण बंगलूर के निकट माप्ती नामक स्थान में किया। उसका शासन उत्तराखण्ड के गिदाला पर ममाधारित होने के कारण प्रजा के लिए सुखकर और हितकारक था। उसका राज्य की समृद्धिशांति का कारण उसका प्रजाजन उस राज्य का श्रीराज्य कर्तव्य था। श्रीपुरुष की मृत्यु के पश्चात् पश्चिमी गंगा का शक्ति का पडागा राज्य बेंगलूर के पूर्वी राजकुमार तथा मानवद के राष्ट्रकूटों ने बहुत क्षति पहुँचाई। श्रीपुरुष के उत्तराधिकारी शिवमार (७८८-८१० ई०) का राष्ट्रकूट राजा भव निरुपम ने पराजित करके बन्धी बना लिया और उसके राज्य पर अधिकार जमा लिया। गगवाडी का शासन करने के लिए राष्ट्रकूटों की आर स एक राज प्रतिनिधि नियुक्त किया गया। गाविर्नताय के राज्यारक्षण के बाद राष्ट्रकूट राज्य में आन्तरिक कलह उत्पन्न हो गई जिससे साम उठा कर शिवमार ने स्वतंत्र होने की चप्पा की परन्तु उसका दमन कर दिया गया और गगवाडी पर राष्ट्रकूट शासन बना रहा। शिवमार राजनीतिक दृष्टि में एक हतमाय नरेश सिद्ध हुआ किन्तु बौद्धिक क्षमता में उसका सफलतापूर्वक उत्तराधिकारी नहीं। वह तन्त्रशास्त्र, दार्शनिक नाट्य शास्त्र तथा व्याकरण आदि विभिन्न विषयों का पण्डित था। हाथिया जीर घोडा का पालन विधि तथा उनका नस्लें पहचानना वह अच्छा तरह से जानता था। कन्नड भाषा में उसने गजशतक नामक ऐतद्विषयक एक ग्रन्थ भी लिखा।

शिवमार के पश्चात् काफी समय तक गगवाडी राष्ट्रकूटों के अधिकार में रहा। अमोघवर्ष प्रथम के सिंहासनारोहण के पश्चात् गंगा ने अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने का प्रयत्न किया परन्तु इस प्रयत्न में वे विफल रहे। लेकिन अमोघवर्ष ने गंगा के साथ समझौते की नीति का अवलम्बन किया। राजमल्ल प्रथम (८१७-८५३ ई०) ने राष्ट्रकूटों के विरुद्ध विद्रोह किया। नातिमाग प्रथम ने (८५३-८७० ई०) भी गंगा का स्वाधीनता का प्रयत्न जारी रखा और उस अपने प्रयत्न में कुछ सफलता भी प्राप्त हुई। राजमल्ल द्वितीय को चोला के विरुद्ध मा कई युद्ध करने पड़े। राजमल्ल द्वितीय के साथ राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष प्रथम का सम्बन्ध मन्त्रीपूण था। बुतुग प्रथम का जो राजमल्ल का उत्तराधिकारी था ममाघ वर्ष प्रथम ने अपना साम्राज्य बनाया। इन लोगों ने मित्रकर बेंगलूर के चालुक्यों से सघष किया। कृष्ण द्वितीय ने पश्चिमी गंगा का स्वाधीनता का अपहरण नहीं किया। पद्मावर्ष प्रथम (८५५-८८० ई०) गंगा की एक दूसरी शाखा का नपति था। उसने श्रीपुरुष निरुपम (नजारजिन्म) के युद्ध में पल्लव नरेश अपराजितवर्षम के सहायता प्रदान की। पद्मावर्ष द्वितीय (८८०-९५२ ई०) चोड नरेश परतक प्रथम का सामन्त था।

पश्चिमी गंगा का मूल शाखा में नातिमाग द्वितीय के पश्चात् राजमल्ल तताय राजा हुआ। राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तताय ने बुतुग द्वितीय के समय में राजमल्ल तताय से उसका राज्य छीन लिया। कृष्ण तताय और बुतुग तताय का पारस्परिक सम्बन्ध मन्त्रीपूण था। बुतुग तताय ने कृष्ण तताय का तन्त्रशास्त्र के युद्ध में (९४९ ई०) सहायता प्रदान की थी। इस युद्ध में चान राजकुमार राजादित्य मारा गया था। बुतुग जन दशन का प्रकाण्ड पण्डित था और दार्शनिक वाद विवाद में उसने एक बौद्ध तान्त्रिक को परास्त किया था। मारसिंह तनीय (९६०-९७४ ई०) ने आ राष्ट्रकूटों के साथ मन्त्रीपूण सम्बन्ध बनाया रखा। उसने भी कृष्ण तताय की



उसके सामरिक कार्यों में सहायता की। कल्याणी व चालुक्य नरेश तत्र द्वितीय का शक्ति का विराध करत हुए मारसिंह तताम न इन्द्र चतुर्थ का राष्ट्रकूट सिंहासन पर ममामोनि बगान का प्रयत्न किया परन्तु असफल रहा। जन मन व एक नियम का जनसरण करत हुए मारसिंह न जनशन व्रत द्वारा प्राण त्याग किया। मारसिंह का उत्तराधिकारी राजमल्ल चतुर्थ (९७४-९८५ इ०) हुआ जिसका मंत्री चामुण्ड राय जन मतानुयाया था। चामुण्ड राय एक पराक्रमी मनानायक था और उसका वाग्ना स प्रभावित हाकर लागान उस वारमातण्ड की उपाधि दा था। उसने एक विद्रोह का दन्तापूर्वक दमन किया और अपने स्वामी का सिंहासन चतुर्थ नियम जान स वचाया। उसने कन्नड भाषा में चामुण्डरायपुराण लिखा जिसमें उमन चात्रीस जन-सायङ्करा का जीवन वृत्त लिखा। उसने श्रवण बेलगाल में एक जन मन्दिर का निर्माण कराया।

राजमल्ल चतुर्थ व पश्चात् उमका अनुज नववस गग राजा हुआ। १००४ इ० में चालान तलकाट पर अधिकार कर लिया और रव्वम गग की शक्ति का अंत हो गया। इकिन १०२४ इ० व उसमें एक अभिलेख स पता चलता है कि उसने शासन का समूची मूलन नहा किया और राजद्र प्रथम नामक चात शासक के सामंत रूप में वह कुछ और अधिक समय तक राज करता रहा। गग वंश व राज कुमारकुट अधिक काल तक सामंता व रूप में शासन करते रहे। वारवा शताब्दी में दामसल नरेश विष्णुवमन का मन्त्रा गगराज था। शिवसमुद्रम् व गगराज न सातहवा शताब्दी के प्रारम्भ में विजयनगर व वृष्णदेव राय का विराध किया। इसके बाद गग वंश व राजकुमारा व अस्तित्व का काइ पता नहीं चलता।

तनकाड व पश्चिमा गगा का महत्त्व उसके सांस्कृतिक कार्यों व कारण अधिक है राजनातिक कार्यों व कारण अपेक्षाकृत कम। गग वंश का राजनातिक इतिहास अविष्मरणीय तथा स हीन है। पडास व शक्तिशाली राया की ललुप दक्षिण सव इस पर पत्ती रही। मुद्दूर दक्षिण और दक्कन व राज्या व ठाक मय में स्थित हान व कारण पश्चिमी गगा के राज्य (गगवाडी) की स्थिति हा ऐसी थी कि इस सव शक्तिशाली और महत्त्वाकांक्षी शासका व घोडा की टाप सहना पडती था। युराप व नदरनण्ड की भाति गगवाडी की भी सहसा वार अनिच्छापूर्वक रण मूमि बन जाना पडा। यही कारण है कि गगा की राजनातिक शक्ति का कमी भी अधिक विकास न हो सका। किन्तु अनेक गग राजाओं ने साहित्य और कला के क्षेत्र में अपनी दन छोडी है। उहाने आधुनिक कन्नड भाषा का नाथ डाला। वाट में विजयनगर राज्य व शासका व कन्नड भाषा का उन्नति के लिए महत्त्वपूर्ण काम किया। माघव न्तिाय तथा श्रीविशम जिनका उल्लस स्थानाभाव के कारण राजनीतिक इतिहास में नहा किया जा सका यापशास्त्र व प्रकाण्ड पण्डित थे। जनावीत एक महान विद्वान् था। दुविनीति जसा कि हम पाछ नित्त चुक है एक ललक था। उसने बहुरव्या व सस्कृत रूपांतर व अतिरिक्त यावरण का एक ग्रंथ लिखा और किसा पुस्तक पर उमक द्वारा भाष्य नियम जान का प्रमाण मिलता है। कहा जाता है कि उसने सस्कृत व महाकवि भारवि का अपना राज समा में आन्तरपूण स्थान दिया था और कन्नड भाषा में भी वह लिखा करता था। श्रीपुराप का राय कात भी साहित्यिक उन्नति के लिए अनुकूल था। शिवमार की बौद्धिक उपलब्धि का उल्लस पीछ किया जा चुका है। एमी अनश्रुति है कि वहतीन भाषाओं में लेखन काय कररवता था। एरप्पा एक प्रसिद्ध व्याकरण

## २६ | सुदूर दक्षिण के राजवंश पल्लव राजवंश

पल्लवों का मूल—पल्लवों का मूल का विषय में द्रविड़ों का जन्म विभिन्न धारणाएँ हैं। डा० विसंट स्मिथ ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ जर्नी ट्रिप्टा जाव इण्डिया के प्रथम संस्करण में अपना यह सम्मति प्रकट की थी कि पल्लवों का पवित्र जन्म पाण्डियन मूल का था। स्मिथ साहब का इस मत का समर्थन श्री वनकय्या ने कुछ विस्तार के साथ किया है। श्री वनकय्या ने लिखा है—जब तब पल्लवों का मूल का प्रश्न दिवादायुय तर्कों द्वारा सन्तापजनक रूप में सुस्थिर नया जा जाता तब तब उनका समाकरण पुराणों में उल्लिखित पल्लवों पुद्गुवा और पल्लवों के साथ किया जाना चाहिए। यह समाकरण शब्द व्युत्पत्ति के ऊपर आधारित है और हमें पुष्टि के साथ बात सहा जाता है कि पल्लवों का प्रारम्भ में पश्चिमी भारत का जनमस्थान में पल्लव (पल्लव) नाम एक विशिष्ट तत्त्व के रूप में विद्यमान था। पश्चिमी भारत से पूर्वोक्त समस्त तटों का जार उनका सन्तमण प्रयत्न सम्भव हो नया प्रस्तावित है अपितु नात एतिहासिक तत्त्वों के द्वारा यह (सन्तमण) सम्भावना ना कर लिया गया है।

श्री वनकय्या ने पल्लव सन्तमण के आधार पर अपने मत का पुष्ट करन का प्रयत्न किया है किन्तु उनके मत का वास्तविक आधार नामा का ऊपरी भाग्य ही है क्योंकि इस बात का वास्तुनिश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि पल्लव (या पाण्डियन) नाम वन्धी मा दक्षिणापथ (दक्कन) जयवा पश्चिमी भारत से सुदूर दक्षिण में जाकर बस गया था। यहाँ यह उल्लेख कर देना आवश्यक है कि डा० एल० राब्स ने चानवयो का उत्पत्ति के विषय में अपना मत प्रकट किया था उसका सम्बन्ध पल्लवों के मूल का समस्या से ना है। अपने *Myths and Customs from Inscriptions* में डा० राब्स ने लिखा है कि दक्षिण भारत के पल्लव नरेशों का समाकरण पल्लवों के साथ किया जाना चाहिए जिन पल्लवों का उत्पादन गौतमा पुत्र शातकर्षि ने शकाओं को बचना के साथ कर दिया था। डा० राब्स का धारणा है कि पल्लव शब्द पाथर्व शब्द का प्राकृत रूप है जिसका अभिप्राय पाण्डियन विशपतया एरसिडियन (Arasidion) पाण्डियना से है। किन्तु जसा कि हम देख चुके हैं कि चालुक्यों के मूल के सम्बन्ध में डा० राब्स की विचित्र धारणा निराधार है उसी प्रकार इस बात का भी अभी विचार किया जा चुका है कि दक्कन के पल्लवों और दक्षिण भारत के पल्लवों में कोई सम्बन्ध नहीं था। विसंट स्मिथ ने अपने ग्रन्थ के तीसरे संस्करण में पल्लवों के विदेशी मूल की इस धारणा का सन्तन किया है और लिखता है कि पल्लवों का देश के किसी स्वदेशोत्पन्न कबील वंश या जाति के थे।<sup>1</sup>

पल्लवों और पल्लवों के समाकरण का प्रयत्न एक अन्य प्रमाण का भी ध्यान में रखते हुए निराधार जान पड़ता है। डा० एस० कृष्णस्वामी आयंगर ने इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध कवि राजशेखर का मत उद्धृत किया है—जा गजर प्रतीहार नरेशा महेन्द्र पान या महीपान का राजसमाजा में नया शताब्दी के अन्त तथा दसवाँ शताब्दी के

प्रारम्भ में रहता था। राजशेखर ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'भुवनकाय' में भारत का पाँच भागों में विभक्त किया है और प्रत्येक भाग के लोग नगरों और नदियों का वर्णन किया है। राजशेखर ने पल्लवों का दक्षिणी भाग अथवा दक्षिणापथ (माहिष्मती के उर्वर) का बताया है और पल्लवों का पश्चिम के उस पार उत्तरापथ का निवास बताया है। इस प्रकार राजशेखर के अनुसार पल्लव और पल्लवों के विभिन्न जातियों के लोग थे। पल्लवों के रहने के जो पल्लव मिथुना के दूरी और सीमा प्रश्न में रहते थे।

श्रावृत्त रत्नयगम का मत है कि पल्लवों का मूल निवास दक्षिण के उस स्थान में था जिसे प्राचीन तामिल लोग मणिपल्लवम् कहते थे। रत्नयगम का विश्वास है कि किल्लि का पुत्र इन्द्रम तिरयम जिमका जन्म मणिमकलक में उल्लिगित नाम राजकुमारी के गम सहजा था प्रथम पल्लव शासक था। इन्द्रम तिरयम पातमग हान पर बह गया था किन्तु ममन्त पर जब वह पकड़ा गया तो उसके टखने में ताण्डई-सना की शाखा का गेंडूरा बधी हुई थी। इसी से उमका नाम ताण्डमान इन्द्रम तिरयम पड़ा। इस प्रकार इन्द्रम तिरयम पल्लवों का प्रथम नरेश और उनका राजसत्ता का प्रतिष्ठापक था। उसका काल दूसरी शताब्दी के उत्तरार्ध में स्थिर किया गया है। इन्द्रम तिरयम के वंश का नाम उमकी माँ के मूल निवास मणिपल्लवम् के आधार पर पल्लव वंश हुआ।<sup>१</sup> श्रावृत्त रत्नयगम के इस मतानुसार पल्लवों नाम चाल-नाग कुन के थे और सुदूर दक्षिण तथा लका के निवासी थे। किन्तु रत्नयगम के इस मत का खण्डन श्री आर० गोपालन ने प्रत्ययात्पत्क तर्कों द्वारा किया है।<sup>२</sup> डा जायसवाल का मत है कि पल्लव न तो विदशा में न द्रविड वरन् उत्तर के शुद्ध अभिजातकुलाय ब्राह्मण थे जिन्होंने सन्निवृत्ति अपना ली थी और जा बाकाटकों की एक शाखा के थे। प्राफमर नातवान्त शास्त्रों का यह धारणा है कि अपने समकालीन छन्द और बन्धु राजवंशों की भाँति पल्लवों शासक भी मूलतः उत्तर भारत के ही थे जिन्होंने अपने लिए दक्षिण में एक नया निवास-स्थान तैयार किया और वहाँ की स्थानाय परम्परा का अपने प्रयोग में लाने के लिए ग्रहण कर लिया किन्तु पल्लवों का बन्धु तथा बाकाटकों की तरह ब्राह्मण मानना असंगत जचता है। डा० रमाशंकर त्रिपाठी का धारणा है कि इसमें सन्देह नहीं कि पल्लवों के उत्तरा सम्बन्ध की बात कुछ सीमा तक सही है क्योंकि उनके प्राचीन अभिग्रन्थ प्राकृत में हैं और वे सस्कृत विद्या तथा सस्कृत में भी सरक्षक थे। परन्तु द्राणाचाय और अक्षयामा से उनके सम्बन्ध करनेवाला अनुश्रुतिपूर्ण सम्भवन मध्य पर अवलम्बित नहीं है। तानगुण्य अभिग्रन्थ में बन्धु मयूरगमनन काञ्चा के ऊपर पल्लव क्षत्रियों के प्रभाव का धिक्कारना है जिससे स्पष्ट है कि पल्लव क्षत्रिय थे।<sup>३</sup>

**पल्लवों का राजनीतिक इतिहास**—पल्लव वंश का सबसे प्राचीन ज्ञान शाम्ब मिह्वमन था। उम्का एक पाषाण अभिग्रन्थ गन्त्र जिसे के पालनार तक में प्राप्त हुआ है। इस अभिग्रन्थ की भाषा प्राकृत है और इसकी लिपि प्राकृत अभिग्रन्थों की लिपि में काफी मिलती जचता है। मिह्वमन अपने सभी उत्तराधिकारियों की भाँति मान्दजाय का था। मिह्वमन के पश्चात् इस सम्बन्धमन का नाम मिलता है।

<sup>१</sup> *Indian Antiquary* सप्ट ५२ (अप्रैल १९२२), पृष्ठ ७७ ७८।

<sup>२</sup> आर० गोपालन, *History of the Pallavas of Kanchi*, pp 21 22

<sup>३</sup> प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ ३२८।

स्कन्दवमन पहले युवराज था जोर बाद में उसने धम्ममहानिराज की उपाधि धारण कर ली। उसने जग्गन्नाम, वाजपय और अ वमय यथा का अनन्तान किया। उगगा राजधानी काञ्ची था। उसका राज्य उत्तर में वृष्णा नदी और पश्चिम में अन्न सागर तक फैला हुआ था। स्कन्दवमन का पुत्र बुद्धवमन अपने पिता के समय में युवराज था। अपने पिता का उसने अपने युवराजत्व का नाम शासन काय में महा यथा प्रदान का थी। स्कन्दवमन का समय ईसा की तीसरी शताब्दी का उत्तरार्द्ध था जिस समय तक दक्षिण में राजशासक कार्या के लिए प्राकृत भाषा का ही प्रयोग किया जाता था।

स्कन्दवमन के बाद पल्लव राजवंश के नपति का नाम विष्णुगोत्र मित्रता है। विष्णुगोत्र ने अपने सामन्त पालक उद्यमन के साथ समुद्रगुप्त के आक्रमण का सामना किया था। विष्णुगोत्र का एक निकट सम्बन्धी कुमारविष्णु था जो उसका ही सम कालीन था। कुमारविष्णु (३२५-५० ई०) ने जिस वंश का चलाया वह ५०० ई० या उससे बाद तक कायम रहा। इन राजाओं के समस्त लय ससृष्ट भाषा में और ताम्रपत्र पर है। इन अभिलेखा का उद्देश्य पुत्रोत्त ब्राह्मणों और मन्त्रियों को भूमि दान देना है परन्तु साथ ही वे तात्कालिक घटनाओं पर भी प्रकाश डालते हैं। पल्लव-इतिहास के इस युग के कानूनमग्न राजाओं के लक्ष्य से निश्चित किया जा सकता है क्योंकि मग्न राजाओं ने अपने समकालीन पल्लव नरेशों का भी उल्लेख किया है। लक्ष्यभाग नामक सूष्ट ब्रह्मज्ञान विषयक ग्रन्थ की पाण्डुलिपि से भी पल्लव इतिहास का कानूनम निर्धारित करने में पर्याप्त सहायता प्राप्त होती है। इस ग्रन्थ का समाप्त जिस दिन हुआ उस दिन से इसकी अनुसार २५ अगस्त ४५८ ई० ताराख था। ४५८ सन् इसकी साल सिंहवमन के शासन का २२वाँ वर्ष है। इस युग के पल्लव शासकों का वंशावली भी अज्ञात नहीं है। इस युग के लेखों के सम्बन्ध में एक विशिष्ट बात यह है कि वे (काञ्ची राजधानी) से नहीं बरन अन्य स्थानों से घोषित किये गये थे। इस कारण से कुछ विद्वानों की धारणा है कि पल्लवों का आवकार कुछ दिनों के लिए काञ्ची से जाता रहा था। किन्तु कुछ अन्य विद्वानों का विश्वास है कि पल्लवों के राजवंश मित्र मित्र थे जो विभिन्न स्थानों से शासन कर रहे थे।

## पल्लव राजशक्ति का चरम विकास

### सिंहविष्णु का वंश और इसकी सांस्कृतिक उपलब्धियाँ

सिंहविष्णु के राज्याराहण से काञ्ची के इतिहास का एक नवीन अध्याय प्रारम्भ होता है। सिंहविष्णु ने एक नये राजवंश की स्थापना की थी। इस राजवंश के शासकों ने पल्लव राज्य का राजनीतिक शक्ति का खूब विकास किया। इस समय से लेकर पल्लव शक्ति का प्रवेश तामिल देश में पहले की अपेक्षा अधिक दूर तक होना लगा। इस युग में शक तथा वज्जव सम्प्रदायों के सबसे प्रसिद्ध सत्ता का प्रादुर्भाव हुआ। इन नायकों और आतवार सत्ता ने अपने सरस और भावपूर्ण पत्नों द्वारा दक्षिण भारत के धार्मिक जीवन तथा दृष्टिकोण में महत्वपूर्ण परिवर्तन उपस्थित कर दिया। एक अन्य दृष्टि से भी दक्षिण भारत के इतिहास में पल्लव इतिहास का यह युग विशेष महत्त्व का है। इसी युग में तामिल देश के निवासियों ने मन्दिर तथा अन्य इमारतों के निर्माण लकड़ा तथा इट्ट के स्थान पर पत्थर का प्रयोग करना प्रारम्भ किया। निर्माण-सामग्री के इस महत्वपूर्ण परिवर्तन से आगे आनेवाली

कुछ हा शताब्दियाँ के दौरान म दक्षिण भारत में शिव विष्णु और ब्रह्मा के मूर्तियाँ का जाल सा बिछ गया। इस युग के पल्लव नरेशों ने ताम्रित्त देश में मस्कृत विद्या और संस्कृत के फलान का सक्रिय प्रयत्न किया। आधुनिक राजा में यह मिश्र हाता है कि कुछ सर्वमहान् कवि और काव्यशास्त्रविदों ने किरात जुनाय तथा के व्यास देश के प्रांत। क्रमशः भारत में तथा दक्षिण इम युग में के च्चापुरम् की राजमना का समलवृत्त करत थे।

सिंहावष्णु ने अपने राज्य का सामा चाला के अधिकार के भीतर कावरी तक विस्तृत कर ला और पाण्ड्या कलभ्रा तथा मालवा (मलनाडु के निवामा) का अपने दक्षिणों आक्रमण के समय परास्त किया। मत्तविनामप्रहसन के रचयिता महद्रवमन ने अपने पिता सिंहावष्णु की प्रशंसा में ये शब्द कहे हैं पल्लव-कुलवर्णि मण्डलकुलपवतस्य सवनमविजितसमस्त सामन्तमण्डलस्य जावण्णसमपराक्रम थिय श्रामहिमानुरुपदानविभूति परिभूत राजराजस्य। सिंहावष्णु का धार्मिक अभिरुचि वष्णव मत का और था जसा कि उसका नाम से स्पष्ट है। उसने ५७५ ई० से लेकर ६०० ई० तक शासन किया और अवर्तिसह का उपाधि धारण की था।

महद्रवमन प्रथम—सिंहावष्णु का मृत्यु के बाद सातवा शताब्दी के प्रारम्भ में महद्रवमन पल्लव-वंश का उत्पत्ति हुआ। महद्रवमन का शासन काय कई बातों के लिए स्मरणाय है। प्रथम बात यह है कि दक्षिण में वही ऐसा प्रथम शासक था जिसने कठोर पाषाण खण्डों का काटकर मन्दिर सुदवान की कला का वहाँ प्रचार किया। दूसरी बात यह है कि उसी के शासन-काल में अप्पर नामक मन्त्र ने अपने धर्म प्रचार का कार्य किया और संस्कृत के महाकवि भारवि ने अपना प्रसिद्ध महाकाव्य किरात जुनाय लिखा। शासन प्रबंध के दृष्टिकोण से उसका राजत्व-कार्य में दक्षिण की जनता का निरूपद्रवित्त का वातावरण प्रदान किया जिसमें वह उद्योग व्यवसाय के शान्तिपूर्ण कार्यों में प्रवृत्त हो सकी। यह उल्लेख करना आवश्यक है कि महद्रवमन प्रथम के पहले तक जनता का अपने शासकों के मुद्दों का बाध उठाना पड़ता था। मन्त्रिक दृष्टि कोण से भी उसका शासन-काल महत्त्वपूर्ण था क्योंकि इसी समय में पल्लव चालुक्य और पल्लव-पाण्ड्य संधियों का प्रारम्भ हुआ जिन संधियों का उनके उत्तराधिकारियों ने डेढ़ शताब्दियों तक जारी रखा। महद्रवमन ने नाटक संगीत चित्रकला आदि विभिन्न सातत कलाओं की उत्पत्ति को सूक्ष्म प्रोत्साहन प्रदान किया। एक बात की आह हम प्राचीन भारतीय इतिहास के विचार्यों का ध्यान आकृष्ट करना आवश्यक समझते हैं कि महद्रवमन प्रथम के दो समकालीन नरेश पुलकशिन द्वितीय तथा सम्राट ह्यवर्द्धन शोलादित्य उसी की मूर्ति कलानुरागा तथा मस्कृति-सम्पादन थे। उत्तर में ह्यवर्द्धन किस कला और साहित्य का राजाश्रय प्रदान कर रहे थे हम यह पीछे पढ़ें चक है। दक्षिणापथ में पुलकशिन द्वितीय की शासन-व्यवस्था भी आय धर्म के उन्नत आदर्शों पर आधारित थी और सुदूर दक्षिण में महद्रवमन प्रथम अपने उदार शासन द्वारा संस्कृति तथा कलाओं का उत्पत्ति के लिए अनकूल वातावरण की मूर्ति बन रहा था। यह भारत का सोमाग्य था कि उनमें इस समय तीन महान शासकों का जन्म दिया जिन्होंने अपने अपने राज्यों में शान्ति स्थापित कर रखी थी। ये तीनों शासकों के संस्कृति में बल-सञ्चार करने के लिए प्रयत्नशील थे। इन्होंने अपना विजया द्वारा भारत के विभिन्न विशाल भूभागों में रजनीतिक एकता स्थापित की। कर्नाटक के ह्यवर्द्धन ने उत्तरापथ में अपना विशाल साम्राज्य स्थापित करके उच्च राजनीतिक एकता प्रदान की चालुक्य सम्राट पुत्रकशिन द्वितीय की धार्मिक सम्पूर्ण

दक्षिणापथ पर जमी हुई थी और पल्लव मन्त्रवमन न कृष्णा नदी के दक्षिण में समस्त छोटे छोटे राजाओं का विजय करके वहाँ के राजतान्त्रिक अनुभव का समाप्त कर लिया था। छोटे छोटे राजाओं का इतना सम्प्राप्त हयवद्धन पुनर्गणित तृतीय मया मन्त्रवमन की सेवा में कर देना पड़ना था। दक्षिणापथ दक्षिणापथ में कर्णव कारण गग बन् तथा केशरी वंश के नरेश पुनर्गणित तृतीय के कर्णव य मुद्रक दक्षिण में पान पाण्ड्य तथा चेर वंश के नरेश मन्त्रवमन प्रथम की अधीनता स्वाकार करते थे और उत्तर गग पथ में कायपुत्र मन्त्रवमन हयवद्धन के अधीन पन् शसक थे जिनमें वनमी के मन्त्रव वंशीय तथा मानव, के उत्तर गग पथ नरेश प्रमुख थे।

मन्त्रवमन प्रथम का अपने महान् समकालीन चानुक्य नरेश पुनर्गणित तृतीय से युद्ध करना पड़ा जिसके फलस्वरूप उसने अधिकार से पल्लव राज्य का कुछ भाग निवृत्त गया। परन्तु मन्त्रवमन के चिन्तापत्नी श्री अभिलेख से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उसका साम्राज्य दक्षिण में काफी दूर तक फैला हुआ था। पश्चिमी चानुक्य के विरुद्ध उसने अपन रण-अभियानों में सफलता प्राप्त हुई किन्तु अय क्षत्रों में उमने विपुल यश अर्जित किया। इस बात का उल्लेख किया जा चका है कि मन्त्रवमन प्रथम ने नरित कलाओं और साहित्य की उन्नति के लिए महत्त्व प्रयत्न किया। अपने जीवन और शासन के प्रारम्भिक दिनों में वह जन मतानुयायी था किन्तु कालान्तर में अप्पर नामक सेत के प्रभाव से उसने शव मत ग्रहण कर लिया। मन्त्रवमन प्रथम के चिन्तापत्नी के से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उमके हृदय में भगवान् शंकर के प्रति महती श्रद्धा थी और उसने एक दग मन्दिर का निर्माण कराया था। मन्त्रवमन प्रथम द्वारा निर्मित शिव और विष्णु के कई दरी मन्दिर अय स्थानों में भी मिलते हैं। मण्डगप्यतु अभिलेख से विदित होता है कि मन्त्रवमन प्रथम ने ब्रह्मा ईश्वर और विष्णु के लिए भी एक मन्दिर बना इट चने लाने और उकड़ी के बनवाया। इस प्रकार मन्त्रवमन प्रथम ने दक्षिण भारत में दरी मन्दिर बनवाने की प्रथा प्रचलित की। याम्बव मे उसके अनेक विरुद्धों में से चैतकारि अथवा चत्यकारि अर्थात् चत्या अथवा मन्दिरों का निर्माता है। इन मन्दिरों की विशेषता उनके त्रिमूर्ती स्तम्भों में थी। ये दरी मन्दिर दलवनुर (दक्षिण अर्काट जिला) पल्लवरम् सिय्यमग लम् वल्लम (चिगनिपुत्त जिला) आदि स्थानों में मिलते हैं।<sup>१</sup>

मन्त्रवमन प्रथम सवतोमुखी प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति था। अपने महान् समकालीन उत्तरापथपति मन्त्रवमन हयवद्धन शिवादित्य की भाँति मन्त्रवमन प्रथम भी एक प्रसिद्ध चित्रकला था। मन्त्रवमन प्रथम ने मत्तविलासप्रत्सन नामक ग्रन्थ लिखा। सित्तन वामन (पुदुदुकाटा रियासत) की जन चित्रकारी में नृत्यविषयक चित्र मिलते हैं जिसे यह अनमान किया जा सकता है कि मन्त्रवमन प्रथम ने नृत्य कला को प्रोत्साहन दिया। प्रसिद्ध विज्ञान द्ब्राआ (Dubreuil) की धारणा है कि मन्त्रवमन ने नृत्य कला पर यह पुस्तक भी लिखी थी। इस राजा के मामदूर अभिलेख में दक्षिणचित्र नामक ग्रन्थ का उल्लेख मिलता है। जसमें सम्भवत चित्र कला तथा संगीत के सिद्धान्तों की व्याख्या की गई है। यह ग्रन्थ भी मन्त्रवमन द्वारा लिखित बताया जाता है। कुडमियमल का संगीत सम्पत्नी अभिलेख उसी का उदाहरण हुआ कहा जाता है और यह विश्वास किया जाता है कि वह संगीत में बड़ा निपुण था। चित्र कला में उमकी निपुणता का सबैत उसा एक विरुद्ध चित्रकार्यमुना से प्राप्त होता है। मन्त्रवमन

<sup>१</sup> डा० रमाशंकर त्रिपाठी प्राचीन भारत का इतिहास पृष्ठ ३३३।

प्रथम के एक अथ विरुद्ध विचित्रचित्त उसका सबता-मुखता चरिताथ कर दी है। मत्तविलासप्रहसन के प्रारम्भ में महेंद्रवमन प्रथम के विभिन्न गुणा का वणन निम्न लिखित श्लोक में किया गया है—

प्रनादानदयानुभावधतय कांति कलाकौशल  
सत्य शीघ्रसमायता विनय इत्यवम्प्रकारा गुणा ।  
अप्राप्तस्थितय ममेत्य शरण याता मयक बली  
कल्पान्त जगदादिमादिपुरुष सगप्रभदा इव ॥

महेंद्रवमन की विभिन्न प्रकार के विरुद्ध से बड़ा अनुराग था। उसने मत्त विलास अवनिभाजन शत्रुमत्तल गुणाभार विचित्रचित्त सत्यसत्य परममाहेवर महेंद्रविक्रम चेतकारि आदि उपाधियाँ धारण की। इन विरुद्धों का उल्लेख महेंद्रवमन प्रथम के विभिन्न अभिलेखा में किया गया है।

नरसिंहवमन प्रथम—महेंद्रवमन प्रथम के पश्चात् उसका पुत्र नरसिंहवमन प्रथम ७वीं सदी ई० के द्वितीय चरण के आरम्भ में सिंहासनाारूढ हुआ। नरसिंहवमन के पिता के चातुर्व्य नरेश पुलकेशिन द्वितीय द्वारा पराजित हुआ पडा था किन्तु गुणवान् पिता के इस पराजयमी पुत्र ने अपने पिता के प्रबल शत्रु पुत्रकेशिन को गहरा पराजय दी और इस प्रकार अपने पिता की हार का बदला लिया। नरसिंहवमन को मणि मगलम नामक स्थान में पुलकेशिन द्वितीय के विरुद्ध सफलता प्राप्त हुई किन्तु वह अपनी सफलता से सतुष्ट न हुआ और उसने अपने वीर सेनानायक सिरतीड उपनाम परजाति के सेनापतित्व में एक सबल सेना बातापी पर आक्रमण करने के लिए भजी। इस सेना ने चातुर्व्य की राजधानी बतापी का घेर लिया। अपना राजधानी की रक्षा करत हुए पुत्रकेशिन द्वितीय युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ। वादामी पर नरसिंहवमन का अधिकारहा गया। अपनी इस महत्वपूर्ण विजय के उपलक्ष्य में नरसिंहवमन ने वातापीकाण्ड का विस्तृत धारण किया (६४२ ई०)।

चातुर्व्य के ऊपर विजय प्राप्त करने के उपरांत नरसिंहवमन प्रथम अपनी राजधानी काञ्ची लौट आया। उस सिंहासन के एक राजकुमार मानवम्म ने उसके युद्धों में सहायता दी थी अतएव नरसिंहवमन ने भी मानवम्म का सिंहासन का राज्य प्राप्त करने में सहायता प्रदान की। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नरसिंहवमन ने महा बलिपुरम सदा बार लकाधिपति के विरुद्ध नौसनाएँ भजा। दूसरी बार नरसिंहवमन अपने प्रयत्न में सफल रहा और उसने मानवम्म का सिंहासन के राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया।

श्री गोपालन के अनुसार नरसिंहवमन का भी अपने पिता की भाँति अपने राज्य में मन्दिर बनवाने का शौक था। त्रिचनापल्ली जिसे तथा पुदुकोट्टै रियासत में उसने चट्टानों का खुदवाकर मन्दिरों का निर्माण कराया था। इन मन्दिरों का साधारण नक्शा प्रायः वही है जो महेंद्रवमन प्रथम के मन्दिरों के नक्शा का है। केवल उनका ऊपर सामान अधिक अन्वृत्त है और उनका स्तम्भ भी अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर है। नरसिंहवमन प्रथम महामल्ल ने अपने लक्ष्य के अनुकूल महाबलिपुरम् अथवा महामल्लपुरम् नामक नगर बनाया और उस घमराज रथ के-से मन्दिरों से मण्डित किया। घमराज रथ सप्तमडपीय मन्दिरों में से एक माना जाता है।

प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने ६४२ ई० के लगभग काञ्ची का पददल किया था। चीनी यात्री ने पल्लव राज्य और वहाँ के निवासियों के विषय में अपने अनुभव लिखे हैं। उसके कथनानुसार देश की भूमि उर्वर है। साग नियत समय पर इस

जोते है जिससे प्रभूत अन्न उत्पन्न होता है। यहाँ पून और पन भी अन्न प्रकार के होते हैं। बहुमूल्य रत्न और अन्य वस्तुएँ यहाँ उत्पन्न होती हैं। जनतापु उष्ण है और प्रजा गहमी है। ताग सत्यप्रिय और ईमानदार हैं और विद्या का यत्न करते हैं। यहाँ की भाषा और विधि में मध्य देश का भाषा और विधि में विशेष अन्तर नहीं है। यहाँ सभारामा का मर्यादा १०० व मगमग है जिनमें १० ०० मिन रत्न है। य समा मिन महायाग सम्प्रदाय की स्थिति शागा के अनुपाय है। यहाँ प्रायः अस्मा देव मन्दिर हैं और जनक निगम हैं। हूनमोग १ विद्या है कि तागा का विद्याप्रम वस्तु प्रमगनीय है। राजधानी में नातिदूर दक्षिण की ओर एक मन्त्रि शात्र मभाराम है जिसमें एक विद्यात विद्या का प्रायः मगमग हुआ करता है। चानाय का विवरण में एम जन पत्ता है कि पत्तय राय में म्गिम्बर म्प्रदाय व जनिया का मर्यादा का फाजिक था। हूनमोग व नय में ही एम बात का सूचना प्राप्त जाता है कि तथाशिता विद्याविद्याय व प्रयानाचाय तथा सुप्रमिद बोद्ध विद्या धमगा व च्वापुर व ही निवाना व।

परमेश्वरवमन प्रथम—नरसिंहवमन प्रथम व पञ्चात महेश्वमन त्तीय राजा हुआ किन्तु उसके पाच वर्षों का शासन कात घटनाशून्य था। उसरी मत्य व जन त्तर परमेश्वरवमन प्रथम सिंहासनारूढ हुआ। चातक्य तथा स यह प्रमाण मितता है कि परमेश्वरवमन प्रथम का चालुक्य नरेश विक्रमादित्य प्रथम के आग घन टक दन पडे किन्तु पत्तव अभिलवा का वक्तव्य है कि परमेश्वरवमन प्रथम ने पेश्वनन त्तर (निचनपत्तव जि व तागनी तालक म) व यत्न म विक्रमादित्य प्रथम की सना का मार भगाया। इन परस्पर विरोधी प्रमाणों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि च नया जीर पत्तव व इम पारस्परिक संघर्ष में वस्तुतः किसी पक्ष की पूरी तरह में विजय नहीं हुई। परमेश्वरवमन प्रथम भगवान् शिव का परम उपासक था और उसने अपने इष्टदेव व अनेक मन्दिर राय भर में निमित कराये। मम्मलपुरम का गणश म्दिर सम्भवतः परमेश्वरवमन ने ही बनवाया था और काञ्ची के निकट करम नामक स्थान में उसने एक शिव मन्दिर का निर्माण कराया। परमेश्वरवमन प्रथम न चित्रमाय गुणभाजन श्रीभार और रणजय विरुद धारण किये थे। विद्याविनीत पत्तव भी उसकी एक अन्य उपाधि थी। उसने ६६० ई० से लेकर ६८० ई० तक शासन किया।

नरसिंहवमन द्वितीय राजसिंह—नरसिंहवमन द्वितीय सातवीं शताब्दी के प्रायः अन्त में अपने पिता की मृत्यु के पञ्चात सिंहासन पर बैठा। श्रीयत गोपानन की धारणा है कि नरसिंहवमन त्तीय का शासन कात शान्तिपूर्ण तथा बाह्याक्रमणा से विमक्त था।<sup>१</sup> यहाँ कारण है कि उसने अपने राय में अनेक मन्दिर बनवाये जिनमें काञ्ची का कताशनाय मन्दिर महाबलिपुरम का तथाकथित शोर मन्दिर काञ्ची का एरावतेश्वर म्दिर और पनामल के मन्दिर अधिक उल्लेखनीय हैं। इन ममी म्दिरों में नरसिंहवमन व अभिलग उल्लेख है।

नरसिंहवमन का अपने पिता पितामहा की भाँति विद्या से अतीव अनुराग था। धवल कताशनाय म्दिर की दीवारा पर ही उसकी २५० से अधिक उपाधियाँ खी हैं। उसका कुछ विद्या है श्री शंकरमन्त श्रीवाद्यविद्याधर श्रीआगमप्रिय शिवचामणि और राजसिंह। नरसिंहवमन त्तीय की उपाधियों में उसकी

<sup>१</sup> History of the Pallavas of Kanchi p 108



व्यक्तिगत श्रमिर्चिया उसके गुणा तथा उमका धार्मिक मनोवृत्ति का परिचय प्राप्त होता है। गणपालन् महात्म्य का कथन है कि नरसिंहवमन द्वितीय का शासन का न एक उत्कट साहित्यिक त्रिमाशीनता का यग था।<sup>१</sup> बलरपालयम पत्ररत्ना म हम वान का उत्तरेव मिलता है कि राजसिंह न द्विजा की घटिका का पुनरुज्जावित किया। ब्राह्मणा का घटिका म जिस विद्या का उपाजन किया जाता था उसक स्वरूप का वणन बसकुटा पत्ररत्ना म किया गया है। एसा विवास किया जाता है कि काया दश का प्रणेता दण्डिन राजसिंह (नरसिंहवमन त्रितीय) की राजसमा म कुछ काल तक रहचका था। इसी प्रकार कुछ विद्वाना की यह भा धारणा है कि मास क नाटका का अभिनयाय सक्षिप्तीकरण राजसिंह का ही राजसमा म किया गया था। प्राफमन् नीलकांत शास्त्री का धारणा है कि पत्रव नरेश नरसिंहवमन द्वितीय न चान क मगाट का राजसमा म अपना राजत भजा था।<sup>२</sup>

नदिवमन पल्लवमल—नरसिंहवमन द्वितीय राजसिंह की मत्य क अनंतर पर मन्वरवमन त्रितीय नृपति हुआ किन्तु उमका शासन का न अत्यन्त मरिप्त था। बर पालयमपत्रा म उसक दिए त्रिया है कि उमन मनम्भृति के शाशानुसार शासन किया। परमन्वरवमन त्रितीय क उपरान्त नदिवमन त्रितीय पल्लवमन का राजसिंहासन प्राप्त हुआ। कुछ विद्वाना का मत है कि नदिवमन राज्यापहर्ता था किन्तु य मत् शीव नही जान पड़ता। परमन्वरवमन द्वितीय का मयु क उपरान्त उमक राय म उत्तराधिकार क प्रश्न पर गहकतह उत्पन्न हा गय। इन कत्ना म उय कर जनना क प्रतिनिधिया न नदिवमन का जिमम शेष का प्रजा वन्त म्नुह करता थी राजा चुन दिया। नदिवमन का जन्म सिंहविष्ण क भात भीमवमन क कुन म था था।

नदिवमन त्रितीय क समय म चानुक्य-मल्लव-मक्षप पुनरुज्जावित हा उठा। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि नरसिंहवमन प्रथम महामल्ल क समय म चानुक्या जीर पल्लवा का मक्षप भाल्ल पठ गया था किन्तु एसा प्रतात होता है कि परमन्वर वमन की मत्यु के बाद गहकलत् उत्पन्न न जान पर चानुक्या न पुन पत्रव राय पर आक्रमण करन का निश्चय किया। ७४० ई० में चानुक्य नरेश विश्रमादित्य द्वितीय न नदिवमन त्रितीय क ऊपर आक्रमण करव उम मयमत्रस्त कर दिया। कत्ना जाता है कि विश्रमादित्य द्वितीय ने काची का कुछ त्रिना तक अपन अधिकार म रक्खा। परन्तु शोधश्री नदिवमन न अपना परिश्रयिनि ममान न आ शत्रु को मार भगाया। पल्लव-मक्षप क अनावा नदिवमन न अय रण अभियान किये। पाण्य नरेश राजसिंह प्रथम क ऊपर उमन आक्रमण किया परन्तु नदिवपुर नामक स्थान म जर्न पर वह ठहरा हुआ था क शत्रु म घिर गया। नदिवमन क वाग मनाध्यक्ष मयचन्द्र न उमका रणा का। नदिवमन द्वितीय क उत्पत्तिरम पत्ररत्ना म उत्पत्त की मय मफलताया की उत्रव किया गया है। इन पत्ररत्ना म नान जाता है कि उमन वेगा क पूर्वो चानुक्या म उनक राय का कुछ भाग टोन लिया था। पत्रव पाण्य मक्षप क मम्बय म आपनिक तजार क निवत् अनेक यद्ध हा। नदिवमन न मगराज आ पृष्ठ म मा यत् किया। काञ्चा पर गल्लकत् न भा आक्रमण किया परन्तु उम आक्रमण क पञ्चान दाना शकितया म मृत्तत्ता मर्त्। गल्लकत् नरेश त्रितीय न जन्ना कया रवा का विवाह नदिवमन क माय कर दिया।

<sup>१</sup> *History of the Pallavas of Kanchi* p 110

<sup>२</sup> *Foreign Notices of South India* pp 116 117

नन्दिवर्मन द्वितीय का शासन पाल राज्य कायों मन्दाइया आक्रमण तथा प्रयाग क्रमणों से परिपूर्ण था। फिर भी उत्तम निर्माण कायों के प्रति अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की। वह वैष्णव था और उत्तम अपनी राजधानी काञ्ची में मन्दापर मन्दिर बनवाया। काञ्ची का बहुश्रुत पेरुमन मन्दिर भी उमा के द्वारा निर्मित बताया जाता है। नन्दिवर्मन द्वितीय का इस बात का गौरव प्राप्त है कि उमक शासनकाल में ही प्रसिद्ध वैष्णव सात तथा विष्णु निर्माण आन्दोलन हुए थे जिनका रचनायें नालागिरिप्रबंध में संगृहीत हैं। नन्दिवर्मन स्वयं भी मन्दा विष्णु था। उमक सण्डातम पत्निका में उसकी काननरागिता तथा काव्यकला निपुणता का उल्लेख किया गया है। काव्यशक्ति में उमका तुलना आदिकवि वाल्मीकि से की गई है। नन्दिवर्मन तृतीय न पसठ वर्षों तक शासन किया।

नन्दिवर्मन और उसके उत्तराधिकारी—नन्दिवर्मन द्वितीय की राष्ट्रकूटवाया पत्नी रवा से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम नन्दिवर्मन था। नन्दिवर्मन का नन्दिवर्मन द्वितीय के उपरांत पल्लव राज्य का स्वामित्व प्राप्त हुआ। नन्दिवर्मन के समय में पल्लवों और राष्ट्रकूटों के बीच विवाह सम्बन्ध स्थापित हो चुके थे फिर भी ध्रुव निरुपम तथा गावि देवताय नामक राष्ट्रकूट राजाओं ने काञ्ची पर आक्रमण किया। वरगुण पाण्ड्य ने कुछ समय तक कावेरी प्रदेश पर अधिकार रखा। किन्तु नन्दिवर्मन तृतीय (८२६-८४९ ई०) के समय में पल्लवों ने पाण्ड्य पर विजय प्राप्त की। तल्लेर नामक स्थानों में नन्दिवर्मन तृतीय ने ग्रामार पाण्ड्य का पराजित किया अतएव उसका एक उपनाम तल्लेरेंद्र नन्दिवर्मन पड़ा। कहा जाता है कि नन्दिवर्मन दक्षिण में काफी दूर तक पहुँच गया था। नाटिक कनम्बकम नामक समकालीन तामिल ग्रन्थ में उसकी विजया का उल्लेख किया गया है। इस ग्रन्थ में उसका प्रमुख नगर काञ्ची महाबलिपुरम और मयनाई का वर्णन किया गया है। नन्दिवर्मन तृतीय ने राष्ट्रकूट वंश का एक राजकुमारी के साथ विवाह किया। वह शकमतानुयायी था और उसने तामिल साहित्य को राजसंरक्षण प्रदान किया। भारत के वा नामक तामिल पुस्तक का प्रणेतार पेरुवेनर नन्दिवर्मन तृतीय का समकालीन था। नन्दिवर्मन तृतीय का पुत्र और उत्तराधिकारी नपतुगवर्मन था जिसने ८४९ ई० में राजसिंहासन प्राप्त हुआ। नपतुगवर्मन ने मा पाण्ड्य नरेश श्रीमार को पराजित किया। उसका बाहुर पत्निका से विदित होता है कि उसका मन्दा न बंदशास्त्रा के अध्यक्षनाथ स्थापित एक संस्था को तान ग्राम दान में दिये थे। अपराजितवर्मन वंश का अन्तिम शासक था। उसने पाण्ड्य राजा वरगुण द्वितीय को हराया। पाण्ड्यों से लड़ने में अपराजितवर्मन पल्लव का गगनरथ पञ्चापति प्रथम से सहायता प्राप्त हुई। नवा शताब्दी के अन्तिम तिमा में चोला नरेश आदित्य प्रथम ने अपराजितवर्मन को पूरी तरह से परास्त कर दिया। इस प्रकार से पल्लव वंश की स्वतंत्र राजसत्ता का अन्त हो गया। निरसंदेह कुछ छाट-माट पल्लव राजा जसा कि उनका अभिलेखों से सूचित है जहाँ-तहाँ बाद तक राज करत रहे। परन्तु पल्लव-वंश सूची में उनका स्थान स्पष्ट नहीं।

१ The reign of Nandivarman II appears to have been almost literally crowded with military engagements sieges invasions and counter invasions *History of the Pallavas* Lanchi p 123

पल्लवों की शासन-पद्धति—पल्लवों के अनेक साम्प्रदायिक शासन पद्धति पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। हिरहद गल्ली साम्प्रदायिक शासन से यह स्पष्ट सूचित होता है कि तीसरी शताब्दी के मध्य में ही पल्लव शासकों ने एक सुव्यवस्थित शासन प्रणाली का जन्म दिया था जिसका प्रधान राजा स्वयं था। इस शासन प्रणाली के अग्रस्तम्भ थे प्रान्तीय गवर्नर तथा विभागीय अमात्यगण। कुछ मंत्रियों का सावजनिक उद्योग स्नानागारा, तथा जरण्या से सम्बन्धित विभाग का काम सीपा जाता था। श्रावित गापालन का सम्मति में पल्लवों का शासन-व्यवस्था कुछ बातों में हम मौर्यों और कुछ विषयों में गुप्ता का शासन प्रणाली का स्मरण दिलाती है।<sup>१</sup> श्री कृष्ण-स्व माआयगर का मान्यही मत है कि प्रारम्भिक पल्लव राजाओं की शासन व्यवस्था मौर्यों का शासन प्रणाली से काफी मिलती-जुलती है।

प्रारम्भिक पल्लव राजाओं के समय में मा उनका साम्राज्य छोटे बड़े भागों में विभाजित था जिनका शासन करने के लिए राज्य का जार से बन्धकारी नियुक्त किया जाता था। सम्पूर्ण साम्राज्य का राष्ट्रों में विभक्त किया गया था। राष्ट्र के प्रधान अधिकारियों का विपायक कहा जाता था। कोष्ठक (काट्टम) तथा ग्राम राज्य के छोटे विभाग थे जिनके शासकों का प्रमथ देशातिक और वपिन कहा जाता था। सम्राट शासन सम्बन्धी प्रश्नों पर मंत्रियों के एक दल (रहयादिकल) से परामर्श लिया करता था। सम्राट का निजा मन्त्र उससे आदेशों को घाटना किया करता था। प्राचीन पल्लव पत्रलिखा से इस बात का सूचना मिलती है कि वह एकत्र करने के लिए विशेष बन्धकारियों का नियुक्त किया जाता था। इन बन्धकारियों का मण्डली तथा जहाँ कर जमा किया जाता था उस स्थान का मण्डप कहते थे। इस युग में स्नानयोग्य जलाशयों का देख रख के लिये भी अफसरों का नियुक्ति की जाती थी, जिनका यह प्रमुख कर्तव्य था कि वह स्नान करनेवालों की सुविधाओं तथा सुरक्षा का ध्यान रखें। ये अफसर तीर्थिक कहे जाते थे। इन विभागों में राज्य के विभिन्न विभागों में से एक था और इस विभाग के अध्यक्ष को गुामक कहते थे। नयक नामक एक सचिव-अधिकारी होता था जिनका स्तर सनापित के बाद ही होता था। इन प्रमाणा के आधार पर गापालन मरुदय डम निकष परण्डुचत है कि पल्लवों का शासन प्रणाली उत्तरी भारत का शासन-व्यवस्था से मिलती-जुलती है दक्षिणी भारत की किसी शासन-व्यवस्था से नहीं जिसके हम जानते हैं।

<sup>१</sup> From the earliest of these (copper plates) namely the Hira hadgalli copper plates issued from the capital Kanchipuram we learn that already in the middle of the third century there prevailed a system of administration with the king at the top and the provincial governors and several departmental ministers in charge of parks public baths forests reminding us in several details of the Mauryan and in some respects the Gupta administration *History of the Pallavas of Kanche* p 146

<sup>२</sup> *Evolution of Hindu Administrative Institutions in South India* (Lectures III and IV)

ग्राम शासन—जसा कि हम आगे देखेंगे, सोना की शासन प्रणाली में स्यात्म निर्भर ग्राम समार्षों प्रारम्भ में ही विद्यमान थी और सोने राजात्र में प्रथम स्थान प्राप्त था किन्तु उपरन्व प्रमाणा के आधार पर यह निश्चयपूर्वक कह सकता है कि प्रारम्भिक पल्लव युग में समार्षों की अथवा नहीं। परन्तु पश्चात्कालीन पल्लव राजाओं के अभिप्रेत यह गृहित करते हैं कि ग्राम समार्षों का अस्तित्व उनके समय में विद्यमान था जो गाँवों के आर्थिक तथा सामाजिक शासन की देख रेख करती थी। ग्राम समार्षों उद्यान मन्त्रिण तात्राय आदि स्थानों के प्रबंध अपनी उपसमितियों द्वारा करती थी। हमारे अतिरिक्त ग्रामों के कृषक कृषक तथा कृषक (कानून) सम्बन्ध भी थे और प्रायः गावजनित्र दानों का प्रबंध भी उसी के जिम्मे था। मिर्चाई और भूमि माप की व्यवस्था सुन्न थी। ग्राम की सीमाओं स्पष्टतः निर्दिष्ट करनी जाती थी और जल तथा और परतिया का विवरण माप के लिए पूरा पूरा रखा जाता था।

पल्लवयुग में साहित्य—दक्षिण में पल्लव शासन का एक महत्त्वपूर्ण लक्षण यह था कि इसमें साहित्य विशेषतया सस्कृत की उत्पत्ति की सम्भव बनाया। पल्लवों के समय में ही आलवार तथा आदियार आणोन्नों का सत्रपात हुआ जिनके कारण नागा के धार्मिक दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन सम्पुस्यित हुआ। पल्लव नरेशों में म अधिकार कवियों और साहित्यकारों को राजाश्रय प्रदान किया यह हम पीछे देखेंगे कि पल्लवों की राजधानी काञ्ची अथवा प्राचीन कान में ही सम्भूत विद्या के कर्तृ रूप में विख्यात रही है। पल्लवजनित्र मन्त्रामाष्य से यह स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि उनके समय में भी काञ्ची की स्याति काफी दूर तक फैली हुई थी। मगम युग में जिसका काल ईसा की प्रारम्भिक प्रथम तीन शताब्दियों निरारित किया गया है अरवण जदिगल काञ्ची में प्रौढ दर्शन की शिक्षा दिया करते थे। प्रसिद्ध प्रौढ ताकिक दिङ्गनाग को भी अपने जीवन के कुछ महत्त्वपूर्ण कर्म काञ्ची में अर्पित करने पड़े थे। मयूरशासन को अपनी वलिक शिक्षा की समाप्ति के लिए काञ्ची जाना पड़ा था इसका उल्लेख पीछे किया जा चका है। छठी शताब्दी के अन्तिम तिमा में यह सूचने पर कि सम्भूत के प्रसिद्ध महाकवि भारवि मगराज दक्षिणीत कमाय रह रहे हैं सिद्धविष्णु ने उनका अपनी राजसमा में आमन्त्रित किया। सम्भवतः भारवि ने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य किराजनीय की रचना इसी समय की थी। मट्टर के अभिनय से पता हाता है कि किसी वलिक विद्यालय की मन्त्रायता के लिए राज्य की आर से तीन ग्राम प्राप्त हाते थे।

मिह्विष्णु के सुविषयान पुत्र महेश्वरमन प्रथम के रचना कौशल का कुछ उल्लेख किया जा चका है किन्तु उसका ग्रन्थ मत्तविासप्रहसन का मभिन्न परिचय प्राप्त करना आवश्यक है। म प्रहसन की प्रधान रोचकता यह है कि वह तत्कालीन सामाजिक तथा धार्मिक जीवन का उल्लेख करता है। सम्पूर्ण नाटक हास्य विनाद से मग हुआ है जसा कि प्रहसन का होना स्वभावतः अनिवार्य है। नाटक का रचयिता स्वयं शक्य था। उमने प्रौढ धर्म के सिद्धान्तों तथा म यवाद दर्शन पर सुविनाम्पूर्ण आश्रमण किया है। उसकी शली मरत एक त्रित है। कवि ने अनेक स्थानों पर अपनी कवित्व शक्ति का चमत्कार दिखाया है। नाटक का विषय बहुते साधारण है किन्तु उसका रूप बड़ा धनिय है। इस अमगति से प्रहसन का प्रभाव और बढ़ जाता है उस हम शक्य नहीं मान सकते। इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के

रक्षयिता ने भी हथकी भाँति विविध प्रकार के छटा के प्रयोग में कौशल प्रदर्शित किया है।<sup>१</sup>

महेन्द्रवर्मन प्रथम के उत्तराधिकारियाँ में से किसी एक की राजसभा में दर्शित रहा करता था। कुछ विद्वानों का मत है कि त्रिवद्रम से अभी कुछ ही समय पूर्व जो नाटक भास के नाम से प्रकाशित हुए हैं वे वस्तुतः भास और शूद्रक के प्राचीनतम नाटकों के संक्षिप्त रूप हैं जो इसी काल पल्लव राजसभा में अभिनय प्रस्तुत किये गये थे।<sup>२</sup>

कला—तामिल देश में पापाण वास्तुकला का प्रारम्भ पल्लवों के समय में ही हुआ। पल्लव वास्तुकला के विकास की रूपरेखा स्पष्ट है। सबसे पहले त्रिचना पल्ली में दरीमंदिर बनवाये गये। इसके बाद महाबलिपुरम् में रथ मंदिर का निर्माण कराया गया। फिर महाबलिपुरम् में शांतिमंदिर जस विशाल मंदिर बनवाये गये। पल्लव वास्तु की चार विभिन्न शक्तियाँ के नाम पल्लव राजाओं के नाम पर रक्षित किये थे—(१) महेन्द्रवर्मन प्रथम शली (२) महामल्ल शली (३) राजसिंह और त्रिवर्मन द्वितीय शली और (४) अपराजित शली। इस बात का प्रमाण मिलता है कि पहले कलाकार वास्तुकला में काष्ठ का प्रयोग करते थे किंतु बाद में वे पत्थर का प्रयोग भी निपुणता से करने लगे। चंद्राना को काटकर मंदिर बनाने की कला दक्षिण में महेन्द्रवर्मन प्रथम के समय में प्रारम्भ हुई। त्रिचनापल्ली और महामल्लपुरम् के मंदिर दरी मंदिर हैं। पत्थर और चूने से ऊँचे-ऊँचे शिखरों और मण्डपाओं के मंदिर भी बनवाये गये जिनमें कानाक्षनाथ मंदिर अधिक उल्लेखनीय है। इन मंदिरों की दीवारों का विशिष्ट तक्षण चित्रों से समृद्ध किया गया था। मित्तनवासन में चित्रकारी के भी उदाहरण मिलने हैं।

सुदूर पल्लवों के काल में उत्तर भारत की कला और सभ्यता के अनेक तत्व दक्षिण में पहुँचे। उनमें अधीन सुदूर दक्षिण में साम्प्रतिक विकास की एक परम्परा चतुर्पदी जिसका पूर्ण विकास चोल सम्राटों के समय में हुआ।

### चोल राजकुल

सुदूर दक्षिण के प्राचीन इतिहास में वहाँ की तीन परम्परागत राजनीतिक शक्तियों का वर्णन प्राप्त होता है। ये तीन शक्तियाँ थी—चालू चेर और पाण्ड्य। तामिल देश अथवा सुदूर दक्षिण के इन राज्यों का उल्लेख प्राचीन संस्कृत साहित्य में यत्र-तत्र किया गया है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी के लगभग कात्यायन ने चालू का उल्लेख किया है। अशोक के शिलालेख में पाण्ड्य मत्तियपुरा और कन्नपुरा के साथ चोलों के स्वतंत्र राज्य का उल्लेख मिलना है। इन राज्यों के साथ सम्राट अशोक का मत्त मन्वन्ध था। मौर्य साम्राज्य के पश्चात् राजा की प्रारम्भिक दूसरी-तासरी शताब्दी में तामिल राज्यों की स्थिति का विवरण हम समझ सकते हैं तामिल साहित्य तथा रामन नखका जिन्न प्लिनी और परिप्लम के अनात लेखक जिनके उल्लेख हैं द्वारा प्राप्त होता है। समझ सकते हैं साहित्य में कविताकी लक्ष्मी मन्वन्ध पवित्रता तथा पत्तुपात्तु नामक का

<sup>१</sup> कीय *The Sanskrit Drama* p 185

स्वर्गोय गौरीनकर चटर्जी द्वारा उद्धृत—हृदयद्वय, पृष्ठ ४०३।

<sup>२</sup> *History of the Pallavas of Kanchi* p 159

संग्रह है। सगम साहित्य के चाल वंश के कुछ प्राचीन राजाओं का विवरण तो प्राप्त होता है किन्तु इस विवरण के आधार पर चौथे वंश का प्रसिद्ध इतिहास निमित्त नहीं किया जा सकता। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों में तामिल देश की सांस्कृतिक अवस्था जानने के लिए सगम युग का साहित्य बहुत उपयोगी है।

सगम युग के तामिल साहित्य में चाल वंश के जिन राजाओं का उल्लेख मिलता है उनमें कारिकान् इतिहासिक व्यक्ति जान पड़ता है। कारिकान् इस युग में चाल वंश का एक शक्तिशाली और सुप्रसिद्ध शासक था। कारिकान् एक मन्त्रिजिता था। उसने अपनी सभ्य विजया द्वारा सुदूर दक्षिण के अथवा राय्या पर चाला का घाब जमा दी। कारिकाल ने राय्या का साम्राज्य का विस्तार किया फिर भी जसा कि प्राक्तर नानकांत शास्त्री ने लिखा है उसका म्याया विजया का प्रसार कावरा से जागे की भूमि तक नहीं था।<sup>१</sup> कावरा पट्टनम् तथा पाण्डिचरा के उत्तरगाह कारिकान् के राय्या में सम्मिलित थे। कारिकान् का राजनीतिक सफलताओं का जितना अधिक महत्त्व है उतना ही महत्त्व उसका शान्तिकालीन विजया का है। उसने जंगल का माफ कराया और उनमें लागू का बसाया। सिचाई के लिये जलाशय खुदाकर उसने अपने राय्या को अधिक समृद्धि का बढान का प्रयत्न किया। कारिकान् वैदिक धर्म का अनुयायी था और उसने यज्ञ का अनुष्ठान किया था। परन्तु कितना भी चाल वंश का एक शक्तिशाली शासक था जिसने राजसूय यज्ञ किया था। तामिल राजाओं में वेदों पर नरकित्ता का ही राजसूय यज्ञ करने का गौरव प्राप्त था। काञ्चनगणन नामक चौथे नपति ने भी कारिकाल की भाँति पर्याप्त स्याति अर्जित का। सगम-युग के चाल राजाओं से कर्नाट राजनीतिक शक्ति छीन ला। पल्लवों के उत्थय से भी चोल शक्ति का काफी धक्का पहुँचा फिर भी चाला का पूरा विनाश नहीं किया जा सका। साहित्य-ग्रन्थों तथा अभिलेखों में यदा कदा उनका उल्लेख प्राप्त हो जाता है। सगम-युग के बाद से विजयालय के पूर्व तक की छ शताब्दियों में चाला के अस्तित्व का प्रमाण मिलता है पद्यों इतना सत्य है कि उनका प्रभाव अत्यंत परिमित था। चाल राजाओं के परवर्ती इतिहास का अध्ययन हम आगे की पंक्तियों में करेंगे यहाँ सगम-युग के तामिल देश की सांस्कृतिक अवस्था के विषय में कुछ जानना आवश्यक प्रतीत होता है।

सगम-युग में तामिल देश का समाज और वहाँ की सङ्कृति—सगम-युग की तामिल देशीय सङ्कृति आय तथा द्रविड सङ्कृतिओं के तत्त्वा से मिश्रित होकर बनी थी।<sup>२</sup> तामिल देश की सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थाओं उत्तरायण की सामाजिक और राजनीतिक संस्थाओं से काफी मिलती-जुलती थी। तामिल नरेश अपना राजधानी में राजमन्त्री पर डयाड़ीदारा बनाने के लिये यवन प्रहरीया का नियुक्त किया करते थे। समाज का अधिक ढाँचा कृषिकर्म पर अवलम्बित था किन्तु उद्योग तथा व्यापार की स्थिति वस्तु ही उत्तम थी। नौकाओं द्वारा जन माग से व्यापार सामग्रियाँ भजी जाती थी और स्थान मार्गों में बोन डोन का वाय पशा स लिया जाता था। अति प्राचीन काल से ही दक्षिण के महीन वस्त्र

<sup>१</sup> *The Colas (Part I)* pp 30-44

<sup>२</sup> इस सम्बन्ध में हम प्रोफेसर नीलकांत शास्त्री का मत गुप्तकालीन भारत की सांस्कृतिक विपत्ताओं का अध्ययन करते हुए उद्धृत कर चुके हैं। उसे यहाँ फिर से दुहराने की आवश्यकता नहीं है।

तथा मातिया के प्रति उत्तर के नाग आकृष्ट थे। जयशास्त्र के प्रणेता न तामिन दश के मातिया और मूनी वस्त्र का उल्लेख किया है। तामिल दश के निवासी व्यापार-कृशत्रुय और के पश्चिमा गंगा तथा रामन साम्राज्य में व्यापार किया करते थे। राम के व्यापारी प्रायः तामिन दश के वन्दरगाहों में आया करते थे और कुछ प्रमुख बन्दर में उन्होंने अपनी बस्तियाँ बसा ली थीं। म्युचिरिम (कन्ननार) में पश्चिमी समुद्र-तट पर रामन व्यापारियों ने अपने मन्त्रागम्य आगम्यस का एक मन्दिर बनवाया था। दक्षिण में रामन साम्राज्य की सुवर्ण तथा रजत मन्त्रागम्य प्रचुर परिमाण में प्राप्त हुए हैं जिससे यह सिद्ध होता है कि व्यापार से तामिल लोग का अधिक लाभ होता था। सगम यग तक तामिल देश का विदेशी व्यापार अत्यन्त समृद्ध था किन्तु बाद में इसका ह्रास होने लगा। परिणाम में दक्षिण भारत के अनेक बन्दरगाहों तथा उनकी प्रसिद्ध व्यापार सामग्रियों का बणन विस्तारपूर्वक किया गया है। भगालवार तालमा (लगभग १४० ८०) को दक्षिण भारत के अनेक आन्तरिक नगरों का ज्ञान था और उसने उनका वाजता तथा व्यापार सामग्रियों का काफी विस्तार बणन किया है। पूर्वयुग के साथ ही तामिल लोग का व्यापारिक सम्बन्ध था और वे जहाजों में अपनी व्यापार-सामग्रियाँ—गरम मसाले, मित्र अदरक, माली रत्न, सुगन्धित द्रव्य आदि—लादकर सुदूर पूर्व तथा मलय द्वीपों की यात्रा किया करते थे।

धनाढ्य व्यक्तिता में घर बड़ बनाने लगे थे। य चूने तथा इटा से बनाये जाते थे और भीतरी दीवाल पर दबताआ तथा पशुआ के चित्र टग रहते थे। घर का चारो ओर से एक प्रमोद उद्यान घेर रहा करता था। जन-साधारण का जीवन भी प्रमोदमय था। बमलन यद्धा के बड़ शौकीन होते थे। झापडा में रहते थे और मछली पकड़ने में बड़ कुशल होते थे। लोग के धार्मिक जीवन पर आर्यों की धार्मिक विचारधारा का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। सगम यग के तामिन कवि वैदिक तथा सम्वृत महाकाव्यों की दन्तकथाओं से पूणतया परिचित थे और उन्होंने धर्मशास्त्रों की आचार-सम्बन्धी मायताओं का मयास्थान निरूपण किया है। मणिमक्लार्ड तथा सिलिपट्टि कारम नामक तामिन महाकाव्यों में जिनका प्रणयन सम्भवतः सगम-युग के आस-पास किया गया था आर्यों की पौराणिक कथाओं का उल्लेख प्रचुरता से किया गया है। आर्यों के कमकाण्डों तथा धार्मिक अनुष्ठानों का प्रचार इस समय तक दक्षिण में मला प्रकार हो चुका था। सगम-युग के ज्ञान शासकों द्वारा वैदिक यज्ञों के अनुष्ठान का परिचय प्राप्त होता है। मणिमक्लार्ड में ब्राह्मणों का नित्य अग्नि पूजा का उल्लेख किया गया है। श्रावण परिवारा का ममाज बड़े आकार की दृष्टि में देवता था। आर्यों की वैदिक विवाह राति भी तामिल-ममाज द्वारा अग्निकृत की जा रही थी। शिव धनराम और कृष्ण तथा मुद्गण तामिला के प्रसिद्ध उपास्य देव थे। वैदिक देवता इन्द्र की पूजा भी समय-समय पर की जाती थी। भजन-पूजन विधि में सगीन का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। मणिमक्लार्ड में एक मरुस्वता मन्दिर का वर्णन किया गया है। पुनज में तथा बमवात के मिद्राना के तामिन ममाज में पूरी तरह से प्रचार हो चुका था। तामिन देश के निवासियों की विचारधारा पर बौद्ध धर्म का प्रभाव भी पर्याप्त रूप में पड़ा था।<sup>१</sup>

<sup>१</sup> The Colas बोल-इतिहास के लिए हम प्रोफेसर नी-कांत गार्ग्यो के इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के प्रथम और द्वितीय भागों के श्रेणी हैं। हमने इस ग्रन्थ से पूरा पूरा लाभ उठाया है।

युग-युग से विजयालय तक—यह कहा जा चुका है कि कसत्र सागा ने चाना की राजनीतिक शक्ति का वाफा धति पहुँचाई। उत्तर भारत का पल्लवा १ तामिन देश में अपना राज्य स्थापित कर लिया जिससे चान राजाओं का अपनी शक्ति बढान का अवसर प्राप्त न हो सका। उरयर नामक भाग का निवृत्तवर्ती चाना की स्थिति मामूली का समतुल्य थी किन्तु बुद्धि तथा करनूल जिला का चाना की शक्ति कुछ अग्रिम थी। सातवीं शताब्दी चानो यात्री ह्वनसांग ने रेनाटु चाना का राजनीतिक शक्ति का उल्लेख किया है। उसने अपने ग्रन्थ-बुद्धिता में चाल देश का निवासियों का वर्णन भी किया है। यह लिखता है चुलिय (चुल्य अथवा चाल) देश प्रायः २४०० या २५०० ली में फैला हुआ है और उसका राजधानी का घरा लगभग १० मील है। देश अधिकतर उजाड़ है और उसमें दानना और वना का प्रभूत विस्तार है। देश की जनसंख्या बहुत घाटा है और सैनिक तथा डाकू सैन्य तौर पर देश को लूटते हैं। जलवायु उष्ण है प्रजा का स्वभाव बुरा और क्रूर है। लोग स्वामाविक रूप से निरर्थक हैं और उनका विश्वास सद्धम का विरुद्ध है। मयाराम उजाड़ और बर है और इसी प्रकार उनमें रहनेवाले भिक्षु भी अपावन हैं। वहाँ दजना देवमन्दिर तथा अन्य निग्रय मिंगु हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ह्वनसांग का उपयुक्त विवरण सम्पूर्ण चाल देश का लिए ठीक नहीं माना जा सकता क्योंकि वहाँ का भूमि मक्या अनुवरा तथा जनसंख्या बहुत घाटी नहीं थी। कनिंघम साहब का धारणा है कि चीनी यात्री ने जिस स्थान का वर्णन किया है वह आधुनिक कनूल जिला है। जिस समय ह्वनसांग ने दक्षिण का पयटन किया था वहाँ पर उस समय पल्लवा की राजसत्ता जमी हुई थी। सम्भवतः इस समय चालवशीय राजकुमार पल्लवा का अधीनस्थ सामन्त थे। चाना का राजनीतिक सम्बन्ध दक्षिणापथ सुदूर दक्षिण की प्रमुख राजनीतिक शक्तियों चालुक्या तथा पल्लवा के साथ बहुत गहरा था। चालुक्या तथा पल्लवा के पारस्परिक संधियों से लाभ उठाकर चाला ने अपनी शक्ति बना ला।

विजयालय तथा आदित्य—नवा शताब्दी के मध्य में विजयालय ने तजार पर अपना अधिकार जमाकर चोला की राजनीतिक शक्ति का प्रतिष्ठित किया। विजयालय पल्लवों का सामन्त था। उसने पाण्ड्यो के सामन्त मुत्तरयर लोगो से तजार छीन लिया जिसका फलस्वरूप पल्लवा और पाण्ड्यो में संधय छिड गया। श्रीपुरम्बियम के युद्ध में विजयालय के पुत्र आदित्य ने अपने स्वामी पल्लवराज अपराजितवमन का साथ दिया। अपराजितवमन को युद्ध में सफलता प्राप्त हुई जिससे उपलक्ष्य में उसने आदित्य को तजोर का निकटवर्ती प्रदेश दिया। इधर पल्लवा की शक्ति भा ह्मासीमुखी थी, अतएव ८८३ ई० के लगभग आदित्य ने अपराजित वमन को पराजित कर दिया और काचा का अपने अधिकार में कर लिया। सम्पूर्ण पल्लव राज्य को अपने अधिकार में कर लाने पर आदित्य प्रथम चाल की राज्यसीमा उत्तर में राष्ट्रकूट राज्यसीमा का संरक्षण करने लगी। गग पध्वीपति द्वितीय ने उसको अधीनता स्वीकार कर ला। आदित्य ने विवाह सम्बन्धों द्वारा भी अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया। उसने राष्ट्रकूट नरेश शृष्ण द्वितीय की राजकन्या से अपना विवाह किया और उसके द्वारा उस एक पुत्र प्राप्त हुआ जिसका नाम कन्नरदेव था। स्थाणुरवि ने अपनी पुत्री का विवाह आदित्य का पुत्र परातक का साथ कर दिया। चेर-नरेश स्थाणुरवि की सहायता से आदित्य ने पाण्ड्यो से कोंयम्बटूर तथा सलेम का प्रदेश छीन लिया। इस प्रकार आदित्य चाल कलहस्ति सलेमर पुदुकाट्ट तथा कायम्बटूर तक के प्रदेश का स्वामी हो गया। विजयालय और आदित्य दाना ही शक्य था। आदित्य प्रथम ने शिव के कई मन्दिर बनवाये थे। उसकी मृत्यु कलहस्ति के निकट ताण्डमानाद में हुई।



परांतक—आदित्य प्रथम व पुत्र परांतक (९०७-९१२ ई०) ने अपने शासन काल में प्रारम्भ से ही पाण्ड्या से निवृत्तन का आग्रह ध्यान दिया। उनसे मदुरा पर आक्रमण करके मद्रकाण्ड का उपाधि धारण का। ९१५ ई० में तलगम वन्नूर के युद्ध में परांतक ने पाण्ड्या तथा महिला का पराजित कर दिया। अपने तनाय रण-आनयान में ९२० ई० में तलगम परांतक ने पाण्ड्य-नरेश राजनिह त्रिनाय का उसके राज्य से निकाल बाहर कर दिया और तान वय वाण्ड उमन मद्रयम इतमुमनाण्ड (मदुरा तथा लका का विजय) का उपाधि धारण की। परांतक ने पल्लव राजसत्ता को अवशेष का भाग समूल नष्ट कर दिया और उत्तर में मन्नूर तक के भूभाग का अपने अधिकार में किया। पश्चिम में गंग राजा पद्मानात्रि द्वितीय परांतक का अधीनस्थ सामंत था। इस प्रकार परांतक का राज्य उत्तरी पश्चिम से लेकर कुमारा उत्तराय तक फैल गया।

परांतक प्रथम ने चानास वर्षों तक शासन किया और अपने इस मुनास शासन काल में उसे प्रायः सफलता प्राप्त हुई, परामव नहीं। किन्तु उसके जीवन के अन्तिम दिन मुखपूर्वक व्यतीत नहीं सक। राष्ट्रकूट राजा वृष्ण तृतीय ने पश्चिमी गंग वृत्तुग त्रिनाय का सहायता से परांतक प्रथम के राज्य पर ताण्डमण्डलम् के निकट आक्रमण कर दिया। तत्कालीन (उत्तरी अरकाट जिला) के युद्ध में परांतक प्रथम का ज्येष्ठ पुत्र तथा चानास का युवराज राजादित्य वारगति को प्राप्त हुआ। तत्कालीन (९४९ ई०) में परांतक से चाला का उपायमान साम्राज्य शक्ति का प्रबल आधार पट्टा। ऐसा प्रतीत होता है कि राष्ट्रकूट-आक्रामक ने काञ्ची तथा तंजावर पर अधिकार कर लिया और तंजावरकाण्ड का दुष्ट विरुद्ध धारण कर लिया। राजादित्य प्रथम का मरण से उसके गुरु चतुरभ्र पण्डित के इतना सघनक चाट गया कि अपने प्रिय शिष्य के मरण से उन्हें जीवन का अर्थ समझकर सत्यास ग्रहण कर लिया।

तत्कालीन के युद्ध ने चाल राजसत्ता का समाप्त कर दिया परन्तु परांतक प्रथम के उत्तम शासन प्रथम का गौरव अशुण्य रहा। परांतक ने वस्तुतः के युद्ध के बाद पञ्चास वर्ष तक त्रिलुल शान्तिपूर्वक राज्य किया और एक सुव्यवस्थित शासन-मण्डल का जन्म दिया। उसका शासन-व्यवस्था में प्रामा तथा शासन का बड़ा इकाया में लक्ष सस्यात्रा का स्वशासन का पुण्य अधिकार प्राप्त था। परांतक प्रथम के उत्तर में अभिलसा में उसकी शासन-व्यवस्था का वर्णन किया गया है। उसके शासन-काल में साहित्य की उन्नति हुई और कावरा के तट पर वैकट माधव ने ऋग्वेद पर एक भाष्य लिखा। ऋग्वेद पर वैकटमाधवप्रणीत भाष्य ही सम्भवतः सबसे प्राचीन भाष्य है। परांतक प्रथम शिव का परम भक्त था। विदाम्बरम् के शिव मन्दिर पर उसने सान का छत बनवाई था। प्रारम्भ में नीलकान्ठ शास्त्रा का कथन है कि वस्तुतः परांतक का शासन-काल दक्षिण भारत में मन्दिर-वास्तु के इतिहास में एक महान युग था और मन्दिर-निर्माण का कार्य, जिस आदित्य प्रथम ने प्रारम्भ किया था उसके शासन-काल में सर्वोत्तम भाग में समाप्त रूप में जारी रहा।<sup>१</sup>

1 In fact Parantaka's reign was a great epoch in the history of south India temple architecture and the work of temple building begun by Aditya was rigorously continued during the best part of his reign. *The Colas* Vol I p 164

परांतक के पश्चात् और राजराज प्रथम के पूर्व—११३ ई० में परांतक की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु के बाद चालुक्य राजा की शक्ति नाममात्र का ही रही। ११८ ई० में राजराज प्रथम गिरीगिरि हूआ जिसने चालुक्य राजा की राजनीतिक शक्ति का उन्मूलन पुनः-जारी ही किया और उसे (चालुक्य) उन्मूलन और उन्मूलन पर पूर्ण विजय दिया। परन्तु ११३ ई० तक चालुक्य राजा के समय चालुक्य राजा की निमित्त प्रथम प्रथम है। इस चालुक्य राजा की शक्ति का उन्मूलन और उन्मूलन प्रथम प्रकार से उनका पश्चात् भी निश्चित रूप किया जा सकता है। इस निमित्त के लक्ष्य का इतिहास जानने के लिए जा साधन उपलब्ध है उनसे सम्पूर्ण में विज्ञान के विरोधा मत हैं। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि परांतक के पश्चात् उसका निमित्त पुनः गण्डादित्य चालुक्य का राजा हुआ क्योंकि जसा कि हम पहले पढ़ चुके हैं राजादित्य तत्कालीन के युद्ध में मारा गया था।

गण्डादित्य का ग्याति राजनीति में नकार के घम के क्षण में है। उसकी राजा सम्प्रियन महात्मा बड़ा ही धर्मात्मा और दयालु स्वभाव की थी। गण्डादित्य के मनाज परान्तक द्वितीय सुन्दर चालुक्य ने अपने वंश का शक्ति बढाने का प्रयत्न किया और अपने इस प्रयत्न में वह पर्याप्त जशा तक सफल भी रहा। उसने अपने पुत्र आदित्य द्वितीय का सहायता से पाण्ड्य राज्य पर फिर से चोलों का अधिकार जमाना चाहा। यहाँ पर यह स्मरण रखना आवश्यक है कि पाण्ड्या और लका के राजा का मना इस समय भी कायम थी। लकाधिपति वीर पाण्ड्य का सहायक था। परान्तक द्वितीय सुन्दर चालुक्य ने पाण्ड्य राज्य पर आक्रमण किया और वीर पाण्ड्य का युद्ध में मार डाला। परन्तु इस युद्ध का परिणाम अनिष्टात्मक ही रहा। उत्तर में सुन्दर चालुक्य का अधिकार सफलता प्राप्त हुई। उसने राष्ट्रकूटों के अधिकार से तोण्डमण्डलम या काञ्चा का प्रदेश छीन लिया। गण्डादित्य के पुत्र उत्तम चोल ने जा स्वयं चालुक्य का स्वामी होना चाहता था आदित्य को मार डाला। अपने सुयोग्य पुत्र तथा यवराज की हत्या से व्यथित होकर सुन्दर चोल स्वयं सिंघार गया। सुन्दर चालुक्य के बाद उत्तम चोल ने १७३ से लेकर १८५ ई० तक शासन किया। उत्तम चालुक्य ने तिकक चलाये जा चालुक्य वंश के सबसे प्राचीन सिक्के हैं।<sup>१</sup> उत्तम चालुक्य के उपरांत राजराज का राजमिहासन प्राप्त हुआ।

राजराज प्रथम—प्राक्सर तीनकाल शास्त्री के शब्दों में राजराज प्रथम के राज्यारोहण से हम चालुक्य वंश के इतिहास में गौरव तथा बल की शताब्दी में प्रवेश करने हैं। राजराज प्रथम के तीस वर्षीय शासन काल को चालुक्य राजतंत्र के इतिहास का निमाणात्मक युग कहा जा सकता है। राजराज प्रथम परांतक द्वितीय का पुत्र था। उसकी प्रथम उत्तमनीय सफलता यह था कि उसने कन्दूर में चेरों के एक जन्मो बड़े का विनाश कर दिया। दक्षिण में राजराज प्रथम ने केवल चर-नरेश भास्कर रविवर्मन का ही नहीं परास्त किया अपितु उसे पाण्ड्यनरेश तथा लकाधिपति के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त हुई। उसने पाण्ड्य राज्य में चालुक्य का अधिकार जमाना दिया और उत्तरा लका को भी अपने राज्य में मिला लिया। लका में अपनी विजय मन्त्रि का विरसवाया बनाय रखने के लिए राजराज प्रथम ने वहाँ भगवान शिव का एक मन्दिर बनवाया। उत्तरा लका का भूभाग मुम्मडि चालुक्य मण्डलम के नाम में चालुक्य वंश को मिला। पाण्ड्या और चेरों का शक्ति का दनाभ रखने के उन्मूलन में

राजराज प्रथम कुर्ग तक अपना विजयवाहिनी ले गया। मन् ९९१ म १००४ ई० क बीच म उमन गगवाडा तथा मसूर क अय प्रान्ता को विजित कर लिया। पश्चिमा चानुक्य नरम सत्याश्रय को राजराज प्रथम के द्वारा गहरा पराजय स्वाकार करना पडा। इस युद्ध म विजय प्राप्त कर लेने के बाद राजराज ने गृहपाठों पर अधिकार कर लिया और चानुक्य देश का रौं बना। तदुमद्रा नयी चाल साम्राज्य का सीमा बन गई। राजराज प्रथम न वेगा के पूर्वी चानुक्या को आन्तरिक राजनानि म हस्तगत किया। उमन उनकी पारम्परिक कलहों का अन्त करके उनक साथ मग्रा स्थापित कर ती। डम मन्त्री क स्मारक मगजराज प्रथम न अपना कया कुत्तव्य क विवाह विमला दिल्य (वेगानरथ) क साथ कर लिया। अपन राजत्वकाय क अन्तिम दिन म राजराज प्रथम ने चक्रवर्त्य और मानसोव के द्वीप-ममुद्रा का विजित किया। इन द्वीप-ममुद्रा की विजय मे यह स्पष्टतया प्रमाणित है कि राजराज प्रथम न चाना का एक जहाजी बडा शक्ति विजय का। सुमात्रा क आधिपत्य साम्राज्य क मग्रा भारतविजयोलुम वमन के साथ राजराज प्रथम का मन्त्री मन्वच था और उमन मारविजयानगवमन का नामपट्टम म एक बौद्ध विहार बनवान की आज्ञा दे दी।

अपनी विजया क फलस्वरूप राजराज प्रथम सम्पूर्ण वतमान मद्राम प्रांत मुग मसूर और मिहल क अनेक द्वीप का स्वामी बन गया। इन मय-मफलताओं का ध्यान मरुन पर राजराज प्रथम का प्राचीन भारत क अग्रपा यादात्रा महान विजे ताज और साम्राज्य निमात्रा का पक्ति म गौरवपूर्ण स्थान दना चाहिए।

राजराज प्रथम कवल बार विजिता नहा था अपितु एक सुयोग्य शासक भी था। उमन अपन विभिन्न शासन सम्बन्धी कार्यों द्वारा अपन साम्राज्य का नाव सुदृढ़ कर दा। भूमि-कर नियत करन क उद्देश्य स भूमि का ठान-ठाक पमाइश तथा कर का दर निश्चित करना एक सुदृढ़ तथा सुवर्द्धित व्यवस्था द्वारा जापुनिक शासन के मन्त्र-रिएट म मित्रो-जुलनी थी देश क शासन-मगठन को पूरणा तक पहुंचा दना और उपयुक्त स्थाना पर केन्द्राय सरकार क प्रतिनिधि अफमरा का नियुक्ति करना, हिमाय का जौच-सदतान तथा नियंत्रण की व्यवस्था का प्रतमाहित करना, जिसक द्वारा ग्रामममत्रा तथा अन्य लोक मगठना क आद-व्यय का निराकरण किया जाता था किन्तु उनकी स्वतंत्रता या कार्यात्मन की प्रवृत्ति पर काट आघात नहा हान पाता था एक भक्तिशाला स्थाया सना तथा जहाजा बट का निमाण जिनन राजद्र क समय में अधिक सफलता प्राप्त की, इन बातों म पना चतता है कि राजराज दक्षिण भारत क साम्राज्य निमात्रा म सर्वम महान् था।<sup>१</sup>

“The accurate survey and assessment of the country for purposes of land revenue (a great survey commenced in 1001) the perfection of the administrative organization of the country by the creation of a strong and centralized machinery corresponding to the staff of secretaries in a modern administration and the posting of representative officers of the central government in suitable localities the promotion of a system of audit and control by which village assemblies and other quasi public corporations were held to account without their initiative or autonomy being curtailed the creation of a powerful standing army and a considerable navy which achieved

राजराज स्वयं शिव का प्रथम मन्त्र था जिसे प्राचीन भारत के सभी मन्त्र  
शास्त्रों की भाँति यह धर्म के मामलों में मन्त्रों का उगने वाला मन्त्र मन्त्र  
सम्प्रदाय का फलन देना का अन्तर्गत प्रथा किया और यह हम को ११११ के उगने  
श्राद्धाधिकारगतगवमेन का योद्धा विहार बताया का जन्म ११११ का था। स्वयं राज  
राज ने इस योद्धा विहार का एक गाँव दान में दिया था। यह मन्त्र का निर्माण  
भी था। उमन तजारा में जन्म उगम्य दन शिव का एक मुन्त्र मन्त्र जनराया।  
इस मन्त्र का नाम उगी के नाम के आधार पर राजराजराज पर पडा। यह मन्त्र  
अपने अगानुगत गाँव शिवरेखा गज्जीव मूर्तियों तथा जमासारग अन्तर्गत की मुना  
रुना के लिए प्रसिद्ध है। मन्त्र की मिति पर राजराज प्रथम की विजया का वनान्त  
सुना है और यदि यह नग प्रस्तुत न होता तो उम महान् नृपति के मन्त्र का  
अधिनाश नुप्त हो जाता।

**राजद्रप्रथम**—राजराज प्रथम का सुपाय्य पुत्र राजद्र उमने पञ्चात नृपति हुआ।  
अपने पिता के शासन काल में उमन युवराज के सौ शासन तथा सतिर कायी में उनकी  
सहायता की थी। कल्याणी के चानक्य नरेश सत्याश्रय पर चाना का जा सक्राना  
प्राप्त हुई थी उसका धर्म राजद्र प्रथम को दिया जा सकता है। राजराज प्रथम ने  
पाण्ड्य नरेश के विरुद्ध जा युद्ध किया उमने परिणाम स्वरूप यह कबल उत्तरी लडा  
काहा स्वामाहा सका किन्तु राजद्र प्रथम ने १०१८ ई० में सिहून के नरेश से उसका  
राज्य छीन लिया और उसका देश को विजित कर लिया। उमने यप राजद्र प्रथम  
ने चेर शासन के ऊपर भी विजय प्राप्त की। उमने चर और पाण्ड्य प्रशा का एक  
ही सामान्य शासन विभाग बनाकर यहाँ पर चाल वग के एक शासन का नियन्त्रण कर  
दिया। इस प्रान्तीय शासन को चोन पाण्ड्य की उपाधि दी गई और मदुरा में उसकी  
राजधानी स्थापित की गई। राजद्र प्रथम के समय में चककाल और मालगैव पर चोना  
का अधिकार बना रहा। कल्याणी के जयमिह द्वितीय का १०२१ ई० में मुसगी  
(मस्की) के निकट राजद्र प्रथम के हाथ पराजय स्वीकार करना पडा परन्तु उसने  
रायवूर दाआव का फिर से जात किया और तुंगभद्रा नदी तक उसने अपना प्रभाव  
जमा लिया। कल्याणी के चानक्य नरेश की आर से उदासीन होकर राजद्र प्रथम  
ने उत्तरी भारत के राया का जीतने का निश्चय किया। वह स्वयं अपनी सेना के  
साथ गान्धारा तक आया आर जाग के देश को जीतने के लिए उसने अपने सेना  
ध्यक्षा के साथ नना भज दान। गान्धारी नदी को पार कर राजद्र प्रथम को सनायें  
वस्तर और उगसा होता हुई पश्चिमी बंगाल तक जा पडा। माग मन्त्रे राजाभा को  
चोल सेना ने पराजित किया। इसने पश्चात सना ने गगा नदी को पार किया और  
पाल नरेश महिपाल प्रथम का हराया। गगा की घाटी में अपनी विजया के फल स्वरूप  
राजद्र प्रथम ने गगकीर्ण का विह्वल धारण किया। यह समझना ग्यामक है कि  
राजद्र प्रथम ने यह अभियान धर्म प्रथा के उद्देश्य से प्रेरित होकर किया था परन्तु  
राजद्र प्रथम का पाण्ड्य का इस विजय का उसके लिए कोई स्थायी राजनीतिक प्रभाव  
नहीं पडा। फिर माअय दष्टियास यह रण अभियान परिणाम गूय नहीं था।  
आ आर० डा० बनर्जी ने अपना पुस्तक पानाज आर बंगाल में अपनी यह धारणा

even greater success under himself mark out Rajaraj as the greatest  
the empire builders of Southern India

व्यक्त की है कि दक्षिण भारत के कुछ भाग पश्चिमी बंगाल तथा मिथिला में विलीन हुए। बंगाल में सन राजवश तथा मिथिला में कर्णाट वंश की स्थापना इन्हीं दक्षिण भारतीयों की थी। उत्तरी भारत के कुछ शक्तिशाली राजवंशों का भी विलीन होना हुआ।

राजद्र प्रथम गंगकाण्ड का महत्त्वाकांक्षी उसकी इन उपयुक्त विजयों से शान्त नहीं हुआ। सम्पूर्ण भारतीय इतिहास में वही ऐसा अकेला शासक था जिसने भारत का साम्राज्य बाहर जलमार्गों द्वारा बंगाल की खाड़ी में अपने जहाजों के प्रयोग से किया। सन् १२५३ ई० के लगभग राजद्र प्रथम ने कर्णाट और श्रीविजय के राज्यों के विरुद्ध अपना जहाजों के साथ किया। श्रीविजय का राज्य सुमात्रा में था और कर्णाट का भी कुछ विद्वान उसी द्वीप में बतलाते हैं परन्तु अन्य विद्वानों का धारणा है कि यह (कर्णाट) मलाया प्रायद्वीप के पश्चिमी तट पर पन्नय के निकट था। महत्तर भारत के इन राज्यों की विजय का वास्तविक उद्देश्य क्या था यह नहीं कहा जा सकता। संप्रामुखिकतात्पर्य नामक राजा जिमकी राजद्र चाल ने पराजित किया था शलद्रनृपति मारावजयात्तुगवमन का उत्तराधिकारी था। यह स्मरण रखना आवश्यक है कि मारावजयात्तुगवमन और राजराज प्रथम के बीच आपस में मंत्री सम्बन्ध था। डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार सम्भवतः यह आक्रमण केवल राजद्र प्रथम का महत्त्वाकांक्षी का प्रतिफल नहीं किया गया था वरन् इसका उद्देश्य मलय प्रायद्वीप और दक्षिण भारत के बीच व्यापार सम्बन्ध स्थापित करना भी था। प्राक्सर नोलकान्त शास्त्रा का धारणा है कि चीना का व्यापारिक सम्बन्ध चीन के साथ निरन्तर स्थापित था। श्रीविजय का राज्य दक्षिण भारत और चीन के व्यापारिक मार्ग के बीच में पड़ता था जिससे व्यापार में अशुभिका हाता था। अतएव यह अस्वीकार्य नहीं कि व्यापारिक सुविधा के उद्देश्य से प्रतिष्ठित होकर राजद्र चाल गंगकाण्ड ने यह आक्रमण किया था। राजद्र प्रथम के इस आक्रमण का कारण कुछ भी नहीं है। इसमें सन्देह नहीं कि इसका प्रभाव स्थायी नहीं था। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिलता कि श्रीविजय और कर्णाट के राजा या पर राजद्र प्रथम ने अपना शासन प्रभाव स्थापित किया था।

राजद्र प्रथम का अपने शासन काल के अन्तिम दिनों में जातिविकल्पितवा का सामना करना पड़ा था। राजद्र प्रथम के महत्तर भारत में अभियान के पश्चात् लका ने अपनी स्वतंत्रता वापिस ली। पाण्ड्य और कर्णाट राज्यों में भी बंगाल के वरदा विन्तु राजद्र प्रथम के पुत्र राजाधिराज प्रथम ने इस विद्रोह का सफलतापूर्वक दमन कर दिया। पश्चिमी चानुक्य नरेश समेश्वर प्रथम आह्वयल्ल के विरुद्ध भी राजाधिराज प्रथम का सफलतापूर्वक प्राप्त हुई। दम आक्रमण में चीन सेना ने कल्याण का स्वयं लूट-खसोट। ममूर अति स्थानों में भी कुछ छोट-छोटे आक्रमण किए गए। राजद्र प्रथम का मृत्यु १०४४ ई० में हुई।

राजद्र प्रथम चीन वंश का एक शासक माना गया तथा चांगू पिना का चांगू पुत्र था। इसमें सन्देह नहीं कि उन अपने पिता द्वारा उत्तराधिकार के रूप में एक सुवर्ण शाल साम्राज्य प्राप्त हुआ था किन्तु उनमें अपने बल और पाह्य से उन राज्य की सामान्यता का जोर नहीं दिया। प्राक्सर नोलकान्त शास्त्रा का कथन है कि राजद्र प्रथम के शासन काल के अन्तिम दिनों विजयानगर के बल के काल इतिहास का सबसे शान्त युग निमित्त करता है। (इस समय) साम्राज्य का विस्तार समस्त

अधिक था और इनका सत्त्व गौरव गमग ऊँचा था।<sup>१</sup>

राजेन्द्र प्रथम के समय में चालुक्य साम्राज्य तराजालान् भारतवर्ष का गमग विज्ञान और शक्तिशाली साम्राज्य था। उसकी सबसे प्रसिद्ध उपाधियों थीं 'वज्रनाथ' मुण्डिकाण्ड गगनाण्ड तथा पण्डित। उसकी प्रथम उपाधि में इन्द्र वायु का उल्लेख होता है कि उमन पाण्ड्य धरम तथा लक्ष्मी का राजाभा में उनके राजमुकुट उल्लेख किया था। उमन अपनी द्वितीय उपाधि की स्मृति विख्याता बनाता था 'नियं गगनाण्ड चोलपुरम्' नामक नगर बनाया और यहाँ अपनी राजधानी बसाई। पण्डित चालुक्य की उपाधि राजेन्द्र प्रथम का विद्वान्ताम का मूर्तिन करती है। उमन यहाँ का अध्यक्ष नाथ एक विद्वान्ताम स्थापित किया था।

राजाधिराज प्रथम (ल० १०४४-५२ ई०)—चालुक्य की वंश परम्परा का अनुसार राजाधिराज प्रथम अपने पिता का शासन काल में यवराज बनाया गया था। अपने यौवराजत्वकाल में उमन अपनी मायायना का पयात्त परिचय किया। राजमिहामन पर बैठते ही उस कनिनाथ्या का सामना करना पड़ा किन्तु उमन धीरता तथा धैर्य पूर्वक उन कठिनाइयों का सामना किया। सिन्धु की राजमाला का साथ राजाधिराज ने अपमानजनक व्यवहार किया और उसका नाक कटवा दी। पश्चिमी चालुक्य का साथ सधप जारी रहा और इसकी परिणति काण्ठम का भयानक युद्ध में हुई। इस युद्ध में चोल नरेश राजाधिराज प्रथम को अपने प्राणा में हाथ धान पड़े किन्तु विजयथा चालुक्य ही हाथ रही। अपनी का पराजय और राज्यशक्ति का बावजूद भी चालुक्य ने चोला का सम्मुख आत्म समर्पण नहीं किया। चोला को चालुक्य राज्य का किसी भी भाग पर स्थायी रूप से अधिकार करने में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। राजाधिराज का शासन काल अधिकतर युद्धादि कार्यों में ही व्यतीत हुआ। उसने सिंहलराज का विरुद्ध युद्ध में सफलता प्राप्त करने पर अभ्येक्ष्य यत्न का अनुष्ठान किया था।

राजेन्द्र (देव) द्वितीय (ल० १०५२-६३ ई०)—राजेन्द्र द्वितीय राजाधिराज प्रथम का अनुज था। उसका काण्ठम का रणक्षेत्र में ही राजा घोषित किया गया। चालुक्य का विरुद्ध लड़ते हुए राजेन्द्र द्वितीय ने अपनी धीरता तथा साहसिकता का परिचय दिया था। चालुक्य-अभिलषा का वकनव्य है कि राजेन्द्र द्वितीय कालहापुर (कालनापुर) तक जा पहुँचा और वहाँ उसने जयस्तम्भ स्थापित किया। इस वकनव्य के विरुद्ध विक्रमाकर्षकचरित का रचयिता बिल्हाण निरूपता है कि सामेवर प्रथम ने चौड शक्ति के तत्कालीन भयंकर काञ्ची पर जाक्रमण किया। इन परस्पर विरोधी वृत्तान्तों से प्रतीत होता है कि दाना पश्या में वस्तुतः कोई प्रणत सफल नहीं हुआ। कुछ विद्वानों का विचार है कि चालुक्य नरेश सामेवर प्रथम को राजेन्द्र द्वितीय ने वृद्धगल सगमम् नामक स्थान पर १०६२ ई० में पराजित किया था। राजेन्द्र द्वितीय के समय में चोल साम्राज्य का सीमायं सङ्कुचित नहीं हान पायी।

वीर राजेन्द्र प्रथम (ल० १०६३-७० ई०)—राजेन्द्र द्वितीय का अनुज वीर राजेन्द्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। चालुक्य से उसने सधप जारी रखा। कर्तव्य है

<sup>१</sup> The closing years of Rajendra's reign formed the most splendid period of the history of the Cholas of the Vijayalaya line. The extent of the empire was at its widest and its military and naval prestige stood at its highest. *The Cholas* p. 277

कि मोमवर प्रथम की चुनौती स्वाकार करके वार राजेन्द्र ने पश्चिमा चानुक्य साम्राज्य पर आक्रमण किया। परन्तु सामवर प्रथम कुद्गल सगमम् के मैदान में युद्ध करने के लिए आया नहीं। सम्भवतः सामवर प्रथम रोग-ग्रस्त था इसलिए वह रणभूमि में उपस्थित नहीं हो सका। अतएव कुद्गल सगमम् में अपना उपस्थिति प्रतिष्ठापित कर और सामवर प्रथम को एक कायर-मति बना उस अपमानित कर वार राजेन्द्र प्रथम आगे बढ़ा। इसके बाद चाल सम्राट् वेंगा तक पहुँचे गया और बजजाण के निकट पश्चिमी चालुक्या का पराजित किया। वेगा पर अच्छा तरह से अपना अधिकार जमा लेने के बाद वार राजेन्द्र अपना राजधानी गगकीण्चालपुरम् भी आया। उसमें लंबा में अपना एक सना भजकरवती के विद्या के दमन किया। उसने पाण्ड्य और कन्न राजाओं के स्वतंत्रता प्रयास का विनाश करने का प्रयत्न किया। सामवर द्वितीय के साथ भी अधिराजेन्द्र का युद्ध हुआ। कहते हैं कि सामवर द्वितीय आर उसके भाई विक्रमार्जुन पण्ड्य में पारम्परिक कर्तव्य है। विक्रमार्जुन पण्ड्य का प्रायना पर जिमका विनाश एक चाल राजकुमारी में हुआ था वार राजेन्द्र प्रथम ने सामवर द्वितीय के ऊपर आक्रमण किया और उस इम बात के लिए विवश किया कि वह अपने राज्य का कुछ भाग अपने भाई विक्रमार्जुन पण्ड्य को दे। वार राजेन्द्र ने अपना राजधानी में एक सुविशाल प्रासाद तथा अपने लिए एक राजसिंहासन बनवाया। वार राजेन्द्र ने मकरमुत्ताथय मदिनावल्लभ तथा मन्तराजधिराज का उपाधियाँ धारण की थी। उसने चानुक्या के विरुद्ध सफलता प्राप्त करने के उपरक्ष्य में जाह्नवमल कुन्वान के विरुद्ध धारण किया था। वार राजेन्द्र ने 'त्रनाकभार' नामक तीन मणि विनाम्बरम् के मयवान् नरराज का मवा में भजा था। उसने भूमिगत द्वारा चोरी में हजार विद्वान् तथा वेश्यामन्त्र-धारण ब्राह्मणों का मन्त्रु किया। वार राजेन्द्र के समय में बद्धमित्र ने वीर मतिवयम नामक ग्रन्थ तामिन व्याकरण पर लिखा। इस ग्रन्थ में यह स्पष्ट सूचित जाता है कि इस समय भातामिन नामक ब्राह्मण जावित था और तामिन मन्त्रिय पर बौद्ध पाण्ड्य का प्रभाव पड़ चुका था।

अधिराज द्व—अधिराजेन्द्र ने अपने पिता वार राजेन्द्र के साथ मिलकर उस वर्षों तक शासन किया। वार राजेन्द्र का मृत्यु के पश्चात् अधिराजेन्द्र चानुक्य का मरति हुआ किन्तु कन्न कुद्गल मन्त्रिणा तक वे एक मरतत्र नर का हृमियत में शासन कर सका। उसका मृत्यु उपवास्यता में ही हुआ। अधिराजेन्द्र के समय में चानु-सत्ता का प्रभाव और आने के कम हो गया। उसका मृत्यु के बाद चाल साम्राज्य का स्वामी कुन्वान् राजा जिमका भाई राजेन्द्र का एक राजकुमारी था और जो स्वयं चानुक्य के का था। कुन्वान् प्रथम के निहायनाराहण ने विजयानय के वंश का अन्त हो गया।

कुन्वान् प्रथम (न० १०७०-१११० ई०)—कुन्वान् प्रथम का वास्तविक नाम राजेन्द्र था। राजेन्द्र चानु सम्राट् राजराज प्रथम का परनाता था। राजेन्द्र की माँ जम्मग देवी राजेन्द्र प्रथम चानु का दुहिनी थी और उसका पिता पूर्वी चानुक्य यश का राजराज प्रथम कुन्वान् (चानु सम्राट् राजराज प्रथम का कन्या) तथा विमला दित्य का पुत्र था। स्वयं राजेन्द्र द्वितीय चानुक्य (पश्चात् कुन्वान् प्रथम) ने राजेन्द्र स्व द्वितीय के कन्या मधुरातकी में विवाह किया था। इस प्रकार चानु से राजेन्द्र द्वितीय (कुन्वान् प्रथम) का सम्बन्ध बाप-पुत्र और बड़े भाई-सुपुत्र था। कुन्वान् प्रथम का प्रारम्भिक जीवन कुन्वान् मूल में ही है। ऐसा प्रतीत होता है कि वीर राजेन्द्र प्रथम चानु के साथ उसका मनापूरा सम्बन्ध था और उसने ही बना चानुक्यों के





बालवचवशीय राजा था वेंगी पर अधिकार जमा लिया। लका का राजा विजयदाह स्वतंत्र हो गया। ममद्र पारक द्वापा पर जा राजे प्रथम गगकाण्ड के समय म चाली के अधीन य कुलात्तुग प्रथम के अधीन नह रह गय थे। इन राय क्षतिया के वावजद भी कुलात्तुग प्रथम के समय म साम्राय का प्रमुख भाग उसक अधीन था।

कुलात्तुग प्रथम चाल वश का एक सुयाय शासक था। उसक अनक अमिल्ला से यह प्रमाणित होता है कि उसन शासन-व्यवस्था को सुसंगठित किया। उसन अपन शासन काल क सोलहवें तथा चालासवें वर्ष म अपने रा य भर म भूमि का माप करारा था। कुलात्तुग प्रथम क शासन काल का गौरव इमी बात म है कि उसन अपने राय म शांति स्थापित रखन तथा शासन-व्यवस्था को दृढ बनान क लिये विविध उपाय किये। आंतरिक शासन क सम्बन्ध म उसन ग्रामसभा क संगठन का सु-दनाया और उसक प्रत्येक विभाग का दख रख क िए अफसर नियुक्त किये। राजराज प्रथम ने जलाण्य उद्यान तथा कायकारिणी समिति क कुछ अय विभाग का स्थापना की थी कि त सता म्मनिसिपल विभाग तथा स य मिया आर शहणा का वरता की देख रण क िए कर्मचारियों का नियुक्ति कुलात्तुग प्रथम का काय था। कुलात्तुग ने राजकर्मचारियों की नियुक्ति म अपनी बुद्धिमत्ता आर शासन िदुण्णता का परिचय दिया। उसन रिचार्ड व्यवस्था का विकसित करन की आर पूरा ध्यान दिया। अनक महकूला का उसन माफ कर दिया जिसस आंतरिक और बाह्य दाना प्रकार क या पारा का प्रारसाहन प्राप्त हुआ। करा का माफ क न क कारण उसन सुगन्धत की उपाधि धारण की। गगकाण्डचानपरम का महत्व कुलात्तुग प्रथम क समय म कायम रहा। कि न उसन का-चा का विक्षय गारव प्रदन किया। कहा जाता है कि वह समय समय पर अपने साम्राय का दौरा किया करता था। उसन अनक स्थान पर कृषि-उपविेश स्थापित किये थे जिसस यह सूचित होता है कि वह अपना सामान्य प्रजा की आर्थिक समझि का ध्यान रखा था। स य उपनिवेश स्थापित करक उसन रा य-सौमाथा की सुरक्षा पर ध्यान दिया।

कुलात्तुग प्रथम क शासन काल का कुछ धार्मिक और साहित्यिक महत्व भी है। उसन स्ना चाल शासक का भांति शक म्मत्त का रा यमय प्रदान किया। उसने बौद्धा क प्रति सहिष्णुता िगलाण्य आर नागपट्टिनम क बाढ़ चलाया का अन्वत्न दिये। महान अणव आचार्य रामानुज उसक सम्बलान थ कि त उनक प्रति उसका व्यवहार असहिष्णु था। कहा जाता है कि रामानुजाचार्य का प्रचा-पट्टि उस समय के परिपटाशत समाज का ठप्रतिवर् प्रतीत दृष्टि जिसम कुलात्तुग प्रथम उनक प्रति अमिष्णता दिखलान क लिए बाध्य हा गया। रामानुज उसक अत्याचारा स तग आवर समूर चल गय जहाँ विहिम दक न उनका प्रभत सम्मान और आदर सखाय किया।<sup>१</sup> परिवापूराणम' क प्रणता सेविकसार का कुलात्तुग न अपना राजसभा में स्थान दिया था। कलिगतापरनी' के रचयिता जगान और शिलपट्टिकारम पर माय लि-काल अदियदक-त्तरकुस ल्ग प्रथम क समय क दिश्यत साहित्यकार थ।

<sup>१</sup> प्रोफेसर नीलका त गारगी की धारणा है कि रामानुज को तग करन वाला चोल शासक कौन-सा था, यह नि समपूयक नहीं कहा जा सकता। यह भी हो सकता है कि रामानुज को कुलात्तुग प्रथम नहीं बल्कि किसी अ य चोल शासक क अत्याचारों के कारण विडिग देव की णरण लेनी पड़ी।

कुलोत्तम प्रथम के पश्चात् विक्रम चोल—कुलात्तम प्रथम के प्रायः अथ शास्त्री के गुनीय शासन काल में चोल साम्राज्य की स्थिति सन्तोषप्रदा रही किन्तु उगली मृत्यु के बाद चोल वंश की शक्ति पटन सगः। परन्तु जहाँ तक साहित्यिक कार्यों का प्रश्न है उनमें कमी नहीं आने पाई। कुलात्तम प्रथम का उत्तराधिकारी विक्रम चोल ११२० ई० में चोल साम्राज्य का अधिपति हुआ। ११२७ ई० में कल्याणी के क्षत्रिय नरेश विक्रमादित्य पण्डित की मृत्यु हो जाने पर विक्रम चोल ने घेंगा पर चोल सत्ता पुनः जमा ली। उसने गंगवाड़ी का कुछ प्रदेश भी विजित किया। ११२८ ई० में विक्रम चोल ने अपने कुल देवता नटराज की सेवा में राज्य का एक वर्ष का कर का अधिकांश भाग समर्पित कर दिया। विक्रम चोल के अभिनयों से इस बात का स्पष्ट प्रमाण मिलता है कि वह अपने साम्राज्य के विभिन्न भागों का दौरा किया करता था। प्रायः नाना पान्त शास्त्रियों का कथन है कि राजा द्वारा इस प्रकार का कुशल शासन के निमित्त राज्य का दौरा करने की नीति मध्यकाल के निरंकुश राजतन्त्रात्मक राज्य के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण थी और इस कार्य के द्वारा वह निम्नलिखित इस योग्य चोल शासन की नियमित नीति का अनुगमन कर रहा था।<sup>१</sup> विक्रम चोल ने त्यागमन् और अकनक के विरुद्ध धारण किया था।

कुलोत्तम द्वितीय—कुलात्तम द्वितीय ने ११३५ ई० में अपने पिता विक्रम चोल की मृत्यु के बाद शासन सूत्र अपने हाथों में ग्रहण किया। चिन्मन्वरेण के नटराज मन्दिर की सेवा में उसने मा उपहार भेंट किया। तामिल साहित्य के इतिहास में कुलात्तम द्वितीय का शासन काल उत्कृष्टतम है क्योंकि उसने और उसके सामन्तों ने अत्यन्त सत्कृत तथा कव्य ज्ञान आदि कविता का साक्षात्कार प्रदान किया था।

कुलात्तम द्वितीय के पश्चात् राजराज द्वितीय (११५०-२) राजा हुआ। राजराज द्वितीय तथा राजाधिराज द्वितीय दुबल शासन में जिनके समय में चोल शक्ति का दिनादिन पतन होता गया। उत्तर में काकतीय वंश के शासकों ने चोलों पर दार करला आरम्भ कर दिया। गणपति और ह्यम्बा के समय में काकतीय वंश की शक्ति प्रबल हो उठी और उन्होंने चोल साम्राज्य की उत्तरी सीमा के कुछ भूभाग पर अपना अधिकार जमा लिया। दक्षिण में पाण्ड्या ने भारवमन सुन्दर पाण्ड्य तथा जगन्मन सुन्दर पाण्ड्य के जघीन अपनी शक्ति का विकास करके चोल साम्राज्य के अन्तर्गत भागों को अपने अधिकार में कर लिया। पश्चिम में यही कार्य होयसला न किया। लकाके राजा पराक्रमवाहने चोलों से संधि किया। कुलात्तम तृतीय इस काल में चोल वंश का एक पराक्रमी शासक हुआ और उसने कुछ जगह तक अपने शत्रुओं का सफलतापूर्वक सामना किया। उसने अपने सय गुणों के द्वारा चोल साम्राज्य की रक्षा की और उस नष्ट होने से बचाया किन्तु कुलात्तम तृतीय के उत्तराधिकारी राजराज तृतीय ने अपने को दुबल प्रमाणित किया। राजराज तृतीय अपने सामन्तों को भी वंश में न रख सका। उसके समय में पल्लव जाति के सरदार कोप्पेरु जिग ने विद्रोह करके उसे बन्दी बना लिया। एसी संकटापन्न स्थिति में चोलनरेश राजराज तृतीय

<sup>१</sup> The importance of such royal progresses for ensuring efficient administration in an autocratic medieval state can hardly be overrated and in undertaking them Vikrama Cola was no doubt following the regular practice of the Cola rulers of this period. *Colas* part II p 69

की रखा असक वगर नरसिंह (होयसल नरेश) न अपना एक सना मजकर की। इस सना न राजराज तताय का मुक्त किया इसक पूव १२१६ ई० म होयसल राज नर सिंह न राजराज तताय का मारवमन मुन्दर पाण्डय क आक्रमण स वचाया था तजोर तक व आया था। पर्चीचगन न चात साम्राज्य क कुछ भागो जस सलमगलम (दक्षिणी अरकाट जिला) म अपना स्वतंत्र राजसत्ता प्रतिष्ठित कर ली। अगल होयमन राजा मामवर का भा जटावमन मुन्दर पाण्डय क विरुद्ध चोल-नपति की रखा कर्गी पडा। किन्तु चान साम्राज्य क उत्थप क निन अब समाप्त हा चल थे। पाण्डया का शक्ति काफा व चुका था। राजद्र तनीय का जटावमन मुन्दर पाण्डय न पराजित कर लिया और कान्चा पर, जहाँ चाल शक्ति का प्रमुख कद्र था अतिकार जमा लिया। जटावमन मुन्दर पाण्डय क उत्तराधिकारी मारवमन कुलशेखर न चोन राज्य को रौन डाना। चाल साम्राज्य क उत्तरी जिन तलगू सगदारा क नतत्व म स्वतंत्र हो गये। य तलगू सगदर अपन का करिकाल चान का बहाज बनान थे। कावरी नगा के मैदान म रहनवान चाला का अस्तित्व स्थानाय सरदारो क रूप म कुछ और समय तक बना रहा। चालहवा घातांग म विजयनगर क राजाओ ने चाना क अवशय का भा पूषणपण नष्ट कर दिया।

### चोल शासन

चाल राजाओ क आक अभिलष उनका शासन व्यवस्था पर प्रचुर प्रकाश डालने है। चाना का शासन व्यवस्था मुसगडिन तथा कतिपय विशिष्ट तत्वा म युक्त थी। वास्तव म यदि यह प्रुछा जाय कि चोल इतिहास का सबसे मह वपुण पक्ष कौन-सा है ना यना उत्तर टाक हा सफता है कि शासन-व्यवस्था का उत्तम सगठन और इसकी अपनी कुछ विमपनाए। चाना का शासन-व्यवस्था का अध्ययन करत समय हम इसका विापनाओ पर विचार करेंगे।

केन्द्र या सरकार—चाल साम्राज्य की शासन-व्यवस्था प्रामयन राजतन्त्रात्मक था। चान राज्य क एक विशाल-साम्राज्य म परिणत हा जल पर राजा के प्रमेत्त्व ठाटपाट तथा सम्मान नहुन अधिक बढ़ गया। सम्राट विविध प्रकार स अपनी प्रविष्टा का बढान का चप्पा किया करता था। उनका एक म अतिक राजधानी हानी थी और उनका राजममा ए अथमया तथा तत्क अडक स परिपूर्ण हुआ करती था। बड़े अन्वमघाति यना का अनुष्ठान करता था और इन अवसरा पर आक्रमण का विपुड दीतना तान म लिया करता था। इतना ना नगी विाप मदिरा क नाम अग्राटा क नाम पर रख लिये जात थे, जम राजराज वर मदिरे जो मन्त्रि म उनका प्रति माय भक्ता जली था।

चान साम्राज्य म उत्तराधिकार की व्यवस्था बड़ा इ उत्तम और सुस्पष्ट था। सम्राट अपन जावन काल मे हा अपना उत्तराधिकार चुन ता था जिस युवराज कान प। युवराज अपन पिता का शासन काय म महायत्ता प्रदान किया करता था। सम्राट की शासन ज्ञायो म सहायता क क र्ति क मकारी हात प जिनका नवन यनन नही कर या जाना था। अमिनता स यु र अत्रिस का सगडन सुव्यवस्थित था। समु किमा का अप्पन ओन नौयक, सम्राट का प्राइवट सक्त्री हाता था। यह एक उचयनीय बात है कि चान शासन-इति म मक्तिमण्डल नहा था, किन्तु इस अभाव का पूति एक याय अमकारी-वग गारा हो जाता थी। इस अमकारी का

क प्रमत्त प्रमुख सदस्य सम्राट क निकट सम्पन्न मन्त्री वरत थ जीर उस शासन-कार्यो म परामश दिया करत थ। उस बात का उत्तरण किया जा चका है कि चान-नपति अपन साम्राज्य का दौरा किया करत थ जिमम शासन-व्यवस्था शिथिल न्हा हान पाती था। वस मूढातिक रूप म सम्राट का शक्ति पर कार्य नियन्त्रण न्हा था किन्तु उस स्थानाय नियमा जीर परम्पराया का ध्यान रखना पड़ता था।

**सेना और जहाजी बडा**—चोन सम्राटा क अघान एक सुविशाल सेना हुआ वना था। सेना म हाथा जवारही और पदल हात थ। जमिन्दारा म सेना क सुस्तर मय दत्ता का उत्तरण किया गया है। प्रत्येक सय दत्त का संगठन सत्कारिता क सिद्धांता पर समाधारित हाता था। कुछ सय दल नागरिक जावन क कार्या म भा भाग रत थे जीर मन्दिरा का दानादि दिया करत थ। मन्त्रिका का शिक्षा तथा उनको जन-शासित रखन पर समचित ध्यान दिया जाता था। उस कार्य क लिए विशिष्ट मय शिविर (कडगम) आ करत थ। चाल सेना अम्ना तथा जाराही जीर जनारही का दष्टि स अनक भागा म विभाजित थी। इस प्रकार रुसका सेना म एक रथ व चून हुए घनघरा का समन् (विरिगड) ठमरा शरीर रक्षक पदाति (बडपर कालर) तीसरा दक्षिण पांव क पदाति (यत्रग क यन्वारर) चाथा चन सय ज वारही (कुदिर च्चवगर) पांचवा गजदत्त (जानयात्वन, कुजिर मरवर) राति थ।

चाना का जहाजी बडा अत्यन्त सुमंगलित था। इसा जहाजा बड की सहपता स क्त्तरम और श्राविक्रय क राय विजित किय गय थ। चान सेना क सन्धिका अनशामन का शिक्षा ली जाती थी किन्तु विजित शत्रुया क प्रति उनका व्यवहार कभी-कभी अशामन और सजास्पद हो जाया करता था। पश्चिमा चानवय रा य जीर पाण्य दश पर आक्रमण करन क बात चाल सेना क सन्धिका न सिद्धो नागरिका को भी बाधा क्षति पट्टा और स्थिया का अपमान किया।

**भूमिकर और आय के साधन**—चान साम्राज्य का आय का प्रमुख माग भूमिकर द्वारा प्राप्त हाता था। भूमिकर ग्रामसमाये एकत्र किया करना था और किस ना को इस बात की सुविधा प्रदान का जाता था कि व अपना स्थानमार कर नकट निवक अथवा उपज क अंश द्वारा चकता करें। राजराज प्रथम क समय म भूमिकर उपज का १/३ भाग निश्चित किया गया था। राजराज प्रथम और कुत्रात्तु प्रथम क शासन काल म चान साम्राज्य मर म भूमि का माप कराया गया था इसका उत्तरण किया जा चका है। भूमिकर निश्चित करन क लिए समय समय पर भूमि का वर्गीकरण किया जाता था। दृष्टि पन्न जयवा वाड जान क कारण फसल नष्ट हान पर भूमिकर माफ कर लिया जाता था।

भूमिकर क अतिरिक्त विविध प्रकार क करा म भी राज्य का आमदनी आ करता था। विभिन्न व्यवसाया तथा मुनारो यापारिया बनकरा पर भा कर लगया जाता था। खला बना नीया बाजारो जीर तातावा पर भा जा कर लगाय जन ये उनम साम्राज्य का पर्याप्त आय हाता था। चान जमिन्धारा म एक बात का उत्तरण मिलता है कि चान सम्राटा का कर-व्यवस्था प्राय उत्तर और अज्ञानमि पूर्ण आ करता था। कुत्रात्तु प्रथम न अनेक कर लगाये थ जिसक कारण उनम स्थिति बल का उपधि घारण का था। परन्तु कभी कभी कर क मरद प म प्रपाहन की नीति भी बना जाती था। अम्बिका म वे पा हा बगरा करन जाता था। शाय इतिहास क परवर्ती यग में मादना का शक्ति कपी बड़ जन म उता क उपर कर भार कुछ अधिक बन गया।

प्रादेशिक दिभाजन—राजराज प्रथम व अमि खा म यह सूचित होता है कि उसका समय पहाट म्पटना या प्राता म विम त था। प्रथम म्पटन वना और नोदु म विनाजित विया जाता था। कुरम तथा वट्टम शासन का छटा इकाइया था। म्पटलम का शासन कान व लिए राजवत का कइ राजकुमार या कइ उच्च मरदार वहा का वात्सराय नियुक्त विया जाता था। वल्लदु नामक इ म्पट वकाच म कइ विट्ट हृत था। नादु म्पटवत आनुनिक जि व म्पमतुयथा। वइ ग्रामो क समह म कुरम का रचना होती थी।

ज्ञान शासन का स्वयं प्रमथ वि प्पता था एकर स्व शासन दव था। अमिप भारत म ल गा का धार्मिक तथा आर्थिक जीवन पाम्पति के म्पय म और सत्वाति का सिद्धता पर आधारित था तथा नादु अर न्गत्स म कुरम्मा शासन इकाइया म म्पटलम तव स्वयं मन का म्पयये हुआ व ता था। पर तु चतु साधारण्य की ग्राम ममाथा स वी का स्व शासन यदस्या का अधिक म्पित्त और वि द्मनाय विवरण प्रा त हाता है। म्पटन का जनता का एक सभा हुआ वता था जिसका उत्तर म्पटल के शासना उगत प्रात व करका छत क सम्बन्ध म्पटथा है। इम्क अतिरिक्त अमिरसा म नाड (जिवा) का जनता का नाहर नाम का सभा तथा न्गम् क साधारण्य वर्गों की नगस्तार नामक सभा क भा उत्तर म्पित्त है। नादुर और निगस्तार म्पवत प्रमथ जनपद और पीर हैं। अनाम्यदश एनक विधान नया कायचम का इम विस्तृत जान नहीं। इम्क अतिरिक्त अथा और पूण तथा एम प्रकार के अय जनसत्ताक म्पटना द्वारा भा स्थानाय शासन स्वयंमथा का म्पयता मिपता थी। अथा और पूण आदि एम प्रकार की म्पथाये था जिनक एक ही म्पि स म्पिपी म्पय हात थे।

ग्रामममाजा का कायप्रणानी का विवरण अमिनेवा द्वारा कुछ अतिर पि माण म प्राप्त होता है। ग्राम दा प्रकार क थ। कुछ साधारण प्रकार क ग्राम होते थे जो एर कहनात थे और एका सभा का उरार कहत थ। कुछ ग्राम सुम् टा द्वारा विद्वान ब्राह्मणा का दान म द दिये गय थे जा उत्तरदिमालम कहलात थ। इन ग्रामा का जनसत्ताक म्पथा का सभा कहत थे। नत्तमम्पथा उरार और समा की सदस्यता समस्त ग्रामनिवासिया के लिए थी अथवा यह कहसत्ता एक निम्न साम्पत्तिक अधिकार अथवा शक्तिक योग्यता पर आधारित थी। उत्तरमहर अमिनों म ग्रामममा का काय प्रणानी क सम्बन्ध म कुछ महत्त्वपूर्ण बातें जानुम होता है। एन अमिनेखा म ग्राम महासभा द्वारा स्व हुनटा प्रस्ताव का उत्तरव विया गया है। एक प्रस्ताव का दखन म विदित हाता है कि ग्राम का तीम भाग म विभाजित कर लिया जाता था। प्रत्येक भाग क निवासो कुछ स्थितिया का च्पत थ जिनम निम्नलिखित योग्यताया का होना आवश्यक था—(१) एक चपाच वनि (हेर एवट क लेगमग) स कुछ अधिक का भूमि का स्वाधिक (२) अदना हा भूमि पर बचाये गत म्पकान म रहना (३) २५ वय स सबर ८० वय तक का आय हाना और अदिक धनों तथा ब्राह्मण प्र था का म्पयक जान होना। यदि बिना स्थिति म एम योग्यता का अभाव होता था तो उम क म स क म एक बंद तथा एक भाग्य का जान रचना पहता था और उस १६ बलि भूमि का स्वामा होना आव दक था। एन योग्यताओं क हान पर नी निम्नलिखित स्थितिया का सदस्यता स दचित कर लिया जाता था—(१) जो विगत तीन वर्षों से किसी भा समिति म रह चुक हा (२) जा समिति म रह चुक थे किन्तु जो अपने विभाग का आय-म्यम तथा तत्सम्बन्धित विषया का स्पष्ट समा-

जाया नहीं दे पाते थे। (३) जो यमिचार तथा इसी प्रकार के अन्य भयकर अपराधों के अपराधी होते थे। (४) जो दूसरों का धन चुराने के अपराधी होते थे। (५) जो निम्न जाति के लोग के सम्पर्क में आ चुके होते थे किन्तु शब्द क्रियाओं का अनुष्ठान नहीं करते थे इत्यादि।

ग्राम समाज शासन कार्यों के संचालनाथ कई समितियों का संगठन करती थी। समिति का बरियम कहते थे। समितियों में कभी कभी स्थिया को भी ले लिया जाता था। समाज के सदस्यों द्वारा समिति के सदस्य निर्वाचित किये जाते थे। ग्राम समाज का कार्यक्षेत्र जल्यत विस्तृत और अधिकार बहुत अधिक थे। जो कार्य राज्य का करने पड़ते थे लगभग वे समाज के ग्राम समार्यों भी करती थीं केवल ग्रामसमाजों के अधिकार में मर्यादा समा नहीं रहता था। समाज तालिका तथा सिचाइ के साधना का रख रखा रखा था। भूमिकर का संग्रह करके राज्य-काय में जमा करती थीं, ग्राम समितियों के हितार्थ वस्तुओं का निमाण कराने के लिए उन पर कुछ कर लगाती थीं वकार भूमि का कृषि योग्य बनाने का प्रयत्न करती थीं। मंदिरों तथा अन्य साधन जिनके सदस्याओं का देखरख करना ग्राम समाज का एक प्रमुख कर्तव्य होता था। ग्राम समाज का धान सम्बन्ध कर्तव्या का भी पालन करना पड़ता था और यह दावाती तथा फौजदारी के मर्यादा का पालन करती थी। समाज ग्रामवासियों के भौतिक जीवन का सुगम तथा सुविधापूर्ण बनाने का प्रयत्न करता था साथ ही उनके सदा चरण का ध्यान रखना भी उसके कर्तव्य समझा जाता था। व्यापार की सुविधा के लिए ग्राम समार्यों राजपथ का निमाण करती थीं और समय-समय पर उनके मरम्मत का व्यवस्था भी करती थी। ग्रामीणों के स्वास्थ्य साधन के लिए ग्राम समाजों की आरंभ चिकित्सालय खोल जाते थे। समार्यों बच्चा का शिक्षा का भी ध्यान रखती थीं और मृतकों के जर्जिय उहें संहृत तथा तामिल भाषाओं में शिक्षा देती थीं। विभिन्न समितियों के कार्यों की प्रति वेप जांच करने के लिए एक अन्य समिति होती थी। ग्राम समाजों के कार्य संचालन विधि तथा उनके शासन सफलता अथवा असफलता का निरीक्षण करने के लिए राज्य का आरंभ अधिकारी नियुक्त किये जाते थे परन्तु प्रायः राज्य ग्राम समाज के कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करता था और न उनके अधिकारों पर कोई कुशराधाति करता था। जब कभी दास समाजों में परस्पर कोई विवादजनक प्रश्न उत्पन्न होता जाता था तब राज्य उनके कार्यों में हस्तक्षेप करने के लिए बाध्य होता था। ग्राम का महासमाज का साम्प्रतिक अधिकार प्राप्त होता था और इसके शासनानुगत जिन अधिकारों के पास व्यक्तिगत सम्पत्ति होता था उन पर भी यह नियंत्रण रखता था। यह कर्तव्य सरकार भूमि के वर्गीकरण में को परिवर्तन करना चाहता था ताकि उसके लिए महासमाज का अनुमति प्राप्त करना आवश्यक समझा जाता था। समाज के अधिकारों में मर्यादा अथवा विद्यालय कक्षा के नीचे नहीं करते थे।

चाउ शासन-संरचना का स्वशासन-व्यवस्था निम्नवत् एक महत्त्वपूर्ण कर्तव्य प्रदान करता है जब हम यह विचार करते हैं कि चाउ नरेश प्रायः अपनी साम्राज्य-साम्राज्य के विस्तार का भी प्रयत्न किया करते थे। इस प्रकार चाला न साम्राज्य विस्तार का भावना के साथ स्वशासन का भावना का समन्वय कर लिया था। चाउ का शासन-व्यवस्था के विषय में प्राइमेट नानकान शास्त्रों का कथन है कि एक साम्य नीतिशास्त्र तथा सक्रिय स्थान में मर्यादा के मध्य जा विविध प्रकार से नागरिकता का भावना का धारण करता था शासन नियुक्तता तथा शुद्धता का एक उच्च

स्तर प्राप्त कर लिया गया था, जो कदाचित हिंदू राज्य द्वारा प्राप्त सर्वोच्च स्तर था।<sup>1</sup>

**‘याय शासन’—**चोल सम्राटों के अग्रिम ‘याय शासन की उत्तम व्यवस्था थी। वनमान ज़री प्रथा से मिलती-जुलती एक ‘याय-व्यवस्था उस समय में विद्यमान थी। साधारण मकाम का फसला स्थानीय मस्थायों करती थीं। अभिलेखा से सूचित होता है कि विविध प्रकार की हत्याओं के अन्तर्गत अच्युत तरह से सम्पत्ता ली गई थी और इस अन्तर्गत अनन्तर ही दण्ड की व्यवस्था भी की गई थी। यदि किसी व्यक्ति के द्वारा द्रव्यभाव रहित कांड हत्या की जाती थी तो उस व्यक्ति को मारने का अधिकार देना पड़ता था। जिस व्यक्ति की हत्या की जाती थी उसका आत्मा का शांति पहुँचाने के लिए राज्य का ओर से मन्दिर में निरन्तर प्रार्थना करने की व्यवस्था करनी जाती थी। चाला की दण्डनीति कठोर नहीं थी अपितु इसमें दया बहा जायता अनुचित नहीं। दण्डनीति प्रतिशासक मनावृत्ति पर आधारित नहीं थी। उनमें मन्दिर अभिलेखा से पता चलता है कि ‘यमिचार चारा धातवाजी इत्यादि को गम्भार अपराध समझा जाता था और गम्भार अपराध करनेवाले व्यक्ति को गधे पर चढ़ा कर घमाया जाता था। किसी व्यक्ति ने अपराध किया है जयवा नहीं इसका फसला स्थानाय जनसत्ताक मस्थायों किया करती थी किन्तु अपराधियों को दण्डित करने का अधिकार राजकर्मचारियों का प्राप्त होता था।

**सामाजिक व्यवस्था—**चोल-युग के दक्षिण भारत का सामाजिक संगठन जाति व्यवस्था पर आधारित था किन्तु विभिन्न जातियों में पारस्परिक सहयोग रहा करता था। उद्योग व्यवसाय करनेवाली जातियों का विभाजन बलगाई तथा इन्गाई नामक वर्गों में हो गया था। अनुश्रुति के अनुसार इन दोनों वर्गों का उद्भव करिकान चाल के समय में हुआ करता था जब कि समाज के औद्योगिक वर्ग के दो प्रकार के लोग उस नरपति के दायें तथा बायें ओर खड़े होकर उसमें अपनी कठिनाइयाँ कहने लगें थे। बलगाई लोग दाहिने हाथ की ओर खड़े हुए और इन्गाई बायें हाथ की ओर इसीलिए उनका यह नाम पड़ा। कुलातग तृतीय के समय में इन्गाई लोग ने अपने को ‘अग्निकुल’ का घोषित किया और एक अभिलेख में इस वर्ग के ९८ उपवर्गों का उल्लेख मिलता है।

चोल युग में सामाजिक अधिकारों का वितरण समान नहीं था। कुछ वर्गों का विशेष अधिकार प्राप्त कर लिया जात था, जब कि इसके अतिरिक्त अन्य वर्गों के ऊपर कुछ प्रतिबन्ध लगा दिया जात था। ब्राह्मणों ने जय जातियों के प्रति अपनी परिवर्तन प्रवृत्ति का परिचय दत्त हुए अपना अस्तिव्यं अलग बसाती शुरू कर दिया। किन्तु इन बातों के बावजूद भी सामाजिक जातों में सम्पर्क और सहानुभूतिपूर्ण था। साधारण उद्योगों की प्रतिभूति के लिए विभिन्न जातियों तथा वर्गों के लोग परस्पर एक दूसरे से मिल जुल सकते थे। अन्याय और प्रतिभूति विवादा के कारण समाज में

<sup>1</sup> Between an able bureaucracy and the active local assemblies which in various ways fostered a live sense of citizenship there was attained a high standard of administrative efficiency and purity perhaps the highest ever attained by the Hindu state *The Class*, art II p 312

कुछ मिश्रित जानिया ७ पत्र हा ग० था इसका प्रमाण हम चोल समाज क अभिलेखा से प्राप्त होता है।

**हिन्दू प्रथा का स्थान**—हिन्दू भारत में समाज में स्थिति का स्थान काफी ऊँचा था। उनमें सामाजिक जीवन तथा कार्यों पर किमा प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं लगाया जाता था। यद्यपि लोगो को स्थिति में लज्जाशीलता नारी का सबसे प्रधान गुण था। अभिलेखा में इस बात का प्रमाण प्रचुरता से मिलते हैं कि उच्च कुला का स्त्रिया सम्पत्ति की स्वामिनी होता था और वे अपनी इच्छानुसार उस बेच भा सकती थी। नृपतिगण तथा उनके सामान्य जनक स्त्रिया से अपने अन्त पुरा का परिपूर्ण रक्षा करते थे किन्तु सामाज्य नाग एक पनात्रन का नियमपूर्वक पालन करते थे।

तमिल समाज में सती प्रथा का प्रचार तो अवश्य था किन्तु अभिलेखा में इसका उल्लेख इतने कम मिलता है कि इससे प्रायः रूप में प्रकलित होने का आभास नहीं किया जा सकता। परान्तक द्वितीय का सती बचन महात्मेवा अपने पति का मृत्यु पर चिता में जलकर सती हो गई थी। प्राचीन यवनो को मति दिये भारतीय समाज में भी नरविद्या (दवामिया) का एक बग था। य दवदासियो नृत्यगीतादि सकल कलाओं में निपुण होती थी और रागरगप्रिय यकिनया को उनके कलापूर्ण हान विलास में महायता प्रदान करती थी। इन्हें पुरुषो से मिलने जुटने की पूण स्वतंत्रता प्राप्त होती थी और अनेक विविध गुणा द्वारा वे उच्च अन्त आच्छा रती थी। मन्दिरों में मो नृत्यासियो रत्न करना था जो विशेष अन्तरा पर नृत्य द्वारा देवता का प्रसन्न किया करती थी। मस्तिष्क यात्रिया क लया से एसा प्रजात होता है कि देवनामियो समाज में अनाचार फलाना था किन्तु अमिच्छा में सिद्ध होता है कि तमिल समाज में उनका स्तर गिरा हुआ नही था। अनेक गुणशाली नरकिया में अपनी उदात्ता तथा दान्यता का कारण समाज में उन्नति प्राप्त कर लेती थी। कुछ दवदासियो द्वारा विवाह करके गृहिणा जीवन यतात किय जान का भी उल्लेख मिलता है।

चान्दयान दसिग मारुताय समाज में काम प्रथा प्रचलित था। इसका के साहित्य से हम बात का प्रमाण मिलता है कि कृषि शाय करनेवाले धर्मजावियों का जीवन दामनता का दा बराबर था। दासों को विभिन्न कार्यों में रूआ करती थी। अन्न तथा जीवन का अन्य वस्तुओं का अभाव में विग्रन्त (प्रेम्ड हा जान क कारण स्वयं के यकिन स्वयं हा सम्पन्न यकिनता का दाम हा गल) अपने लिए अविच लाभकर समझते थे।

**आर्थिक जीवन**—हिन्दू भारत में आर्थिक और बाह्य व्यापार की अवस्था उन्नत एवं समृद्ध थी किन्तु भी आर्थिक जीवन का आधार कृषि-कर्म था। जनमहत्या का श्रावण श्रावण श्रावणों में निवास करता था और कृषि कर्म ही उसका मुख्य उद्योग था। कृषक भूमि का स्वामी होता था और भूमि का स्वामिन् समाज में सम्मान का कारण समझी जाता था। प्रत्येक जोस का चार उमका ध्युससाय कुछ मात्रा नही हा म्द दान रत्न करनी था कि क्कउ न कुछ भूमि हा स्वामी नरु नरुट्ट। भूमि पर व्यक्तिता और समन्वय का अधिकार रत्न था। कृषि का उन्नति क लिए राज्य सरकार रत्न था। कावरी न । मे अनेक नरु निरन्तरया ग था। करिगत चार कक्षम न कावरी न । नरु बौन बरवाया गया था। कावरी नरु क जत का सम्पदा करान क अधिकत चार शानर बर बर नवाशय वरुवाया करु थे। उतम्मेदर में बरुमपउत्तक का निमा न कराया गया था। परान्तक न वाग्वाचन नामक तानाक यन्त्र था और मन्दिहाउन् का निमाय वा म था था। शान म्दगमाभा



जु प्रमुख कउ रा म से एउ वन न ग्राम क तानात्रा तथा मिचार्ड क अउ सखेता का दण्ड रव करना भा या जिनम मिदु हाता है कि येना का उन्नति क लिए राजा तथा प्रजा ताना क द्वारा विविध प्रकार क प्रयत्न किये जन थ। राय का आर म समुद्र समुद्र पर मूमि का माप तथा वर्गीकरण कराया जाता था। यद्यपि दुमिय का रावन क लिए राय मचंटे रहता था तथा अनावृष्टि क कारण दुमिय पन्न क क उ नव मिनन है। दुमिय क समुद्र या वाहू द्वारा फुलन नउ हा जान पर राय का आर कृपहा क त्रिर मूमि कउ म माफा स्वाकृति का जला था। दुपि-कम के माल पर राजन का व्यवसाय भा समुद्रतु तथा म था। पर राजन का व्यवसाय करने का उ मंगल कउ नय था। मंगलिया ने जने का एक व्यवसायिक का म मंगलित कर लिया था।

विभिन्न उद्योग-उत्पा म र्णिग साउर क निवामिषा न कारी उन्नति कर ती था। सुवर्णकार भाति भाति क वस्त्रिया आमूत्रग बनान थ और मनिया का मांग क कारण धातुकारा का कता उन्नति पर पहच गयी था। कान्चो म वस्त्र-व्यवसाय का एक प्रमुख कउ था। कुमार अ तथा मन्कनाम (दण्डिग अरकाउ) तथा समुद्र तट क निवस्त्रो अय स्थानो म तमक तयार करत का व्यवसाय हाता था।

चान शासक अवन साम्राज्य म राजमार्गो का निर्माण करान थ जिनम आतृष्टिक व्यापार काका सुविधागुण हुआ करता था। पहचति या राजमार्गो राग आध्र पश्चिमा चतुर्थ्य आर काउ दस एक दूसर म मिटे रहत थे। "यापारिखा की अन्क श्रेणियो था जा रागार का निर्माण करती था। नानाशय तिमयारितु अवसुस्वर नामक एक विगाल व्यापारिक श्रेणा का उ लेग मिलता है जा विजयानपवनाय चातो क उदय क पूर्व स ही स्थापित था। हम यापारिक श्रेणा क सम्म्य समुपार क देना म रापार किया करत थे। चान मल था, पूर्वी द्वीप समुद्र तथा फारम की खाडी इत्यदि तथा म दण्डिण भारत क निवामिषा का "यापारिक" सम्बन्ध था। आतृष्टिक व्यापार म वस्तु विनिमय का उहा प्रमाण किया जाता था। चान शासका न १०१५-१० ई० १०२२ २० और १०७७ २० म चान म अपन गिण मन्त्र भेज था।

७ धार्मिक जावन—मगम युगान र्णिग भारत में ही मत्र वण्यक जन तथा बौद्ध मता का प्रचार हा चहा था। पालव युग म उत्तर भारत का धार्मिक विचारराग न दण्डिण म अपनी जे जमा ता थी। इस युग म र्णिग म वण्यक और मत्र मत्रा की जा उन्नति हुई उमका प्रम चान शासका क समय म सवग जारा रहा। विजयानय चाय चान शासका का शासन-काल दण्डिण म एक महान् धार्मिक उत्साह का युग था। उनका महिष्मनापूण धार्मिक भाति क कारण चान साम्राज्य म गव और वण्यक मत्रा का ममान रूप स फनन फूनन का अवसर प्राप्त हुआ। विजयालय क वमज

१ "बोल गासरो में दो एक का धार्मिक दृष्टिकोण असहिष्णु था। हम पत्र चुक ह कि किसी चाल गासरो क अ-याचारों स बचन क लिए प्रसिद्ध वण्य आचार्य रामानुज मनोर चने जाये थे। किन्तु इस धार्मिक अत्याचार क परणाम की आर शोफेसर नील्कात गासरा हमारा ध्यान आकृष्ट करते ह। विद्वान प्राफेसर क मतानुसार इस धार्मिक प्रदीहन न एक जनविद्रोह की जन्म दिया जिसक परिणाम-रूप विजयालय के अन्तिम पुरुषवर्गज अधिराज क को अपन प्राणों स हाथ थाने पडे। इस घटना से दो निरक्षय निकाले जा सकते ह—पहला यह कि वण्य

चोल शासकों के समय में ही दक्षिण भारत के शिव और वष्णव मतों का रजत युग प्रारम्भ हुआ। यद्यपि बिलकुल ठीक-ठीक रूप में तद्विषय प्रामाणिकता निर्धारित करना दुष्कर है तथापि इस बात पर हमारी धारणा कुछ सुनिश्चित है कि नाममात्र और आत्मारान्ता के पवित्र गीतों का एक निश्चित नियमानुसार सकलन स्यादर्था शताब्दी में ही किया गया था।

शिव और वष्णव मतों के कारण बहुरूप यज्ञों का अनपेक्षित का महत्त्व कम हो जाता। सगम युग के साहित्य में इस बात का उत्तम प्रचुरता में मिलते हैं कि चाल शासकों ने बहुरूप यज्ञों का अनपेक्षित किया था किन्तु विजयानयनशायी चाल सम्राटों में बहुरूप राजाधिराज का अभिलेखा में ही अवयव का सकल मितता है। बहुरूप यज्ञों का स्थान सम्भवतः दान में ले लिया था। परवर्ती चोल शासक ब्राह्मणों का प्रभुत्व दान दिया करते थे। बहुरूप यज्ञों का अनुपेक्षित का महत्त्व कम था। जान पर भी मन्दिरों में बहुरूप कराय जान की व्यवस्था रहती थी। विष्णु और शिव दानों ही के मन्दिरों में कुछ ब्राह्मणों के सत्वर पाठ करने के लिए नियत किया जाते थे। आज भी दक्षिण भारत के विशाल मन्दिरों में यह प्रथा विद्यमान है। अभिलेखा में बहुरूप प्रतिपादितों के भी उल्लेख मिलते हैं। इन प्रतिपादितों में जो सफलता प्राप्त करते थे उनको पुरस्कृत किया जाता था।

चोल-युगीन दक्षिण भारत के धार्मिक जीवन में मन्दिरों का स्थान काफी महत्त्वपूर्ण था। इस काल के मन्दिरों में धार्मिक और सामाजिक कार्यों के प्रमुख केन्द्र थे। मन्दिरों के विविध कार्यों का उल्लेख करते हुए प्राफमर नीलकान्त शास्त्री ने लिखा है कि मध्यकालीन भारतीय मन्दिरों की जोड़ की सत्कार्य मानव इतिहास में स्वल्प है। मन्दिरों के स्वामित्व में समाग होते थे इसकी अधीनता में धर्मचारी हुआ करते थे। यों के शिक्षालय चिकित्सालय और रोगशाला का कार्य करते थे। शिक्षण में एक वेदस्थान के रूप में थे, जहाँ सुसम्भ्य जीवन की कलाओं का सर्वोत्तम रूप एकत्र किया जाता था और जो धर्म की आत्मा द्वारा प्रसूत मानव भावना से उनको (कलाओं को) संचालित करते थे।<sup>1</sup> लोका के सांस्कृतिक जीवन में मन्दिरों का महत्त्वपूर्ण भाग था। मन्दिरों और उनमें प्रतिष्ठापित की जानेवाली प्रतिमाओं के निर्माण से बितने ही लोगों को जीविका प्राप्त होती थी और कलाकारों को अपनी निपुणता दिखलाने का अवसर मिलता था। धातुकारों और सुवर्णकारों को मन्दिरों

में नष्ट करने का विचार चोल शासकों की नीति का एक अंग नहीं था अपितु एक बिसी विनाश शासक की सत्ता मात्र से यह विचार काय रूप में परिणत किया गया। दूसरा निष्कर्ष यह है कि सामान्य वातावरण एक सकीर्ण धार्मिक नीति के लिए इतना प्रकृत था कि जिस शासक ने इसका अवलम्बन किया, उसके प्राण एक जनविद्रोह के कारण गये।

<sup>1</sup> As landholder, employer and consumer of goods and service as bank, school and museum as hospital and theatre in short as a nucleus which gathered round it all that was best in the arts of civilized existence and regulated them with the humaneness of the spirit of Dharma, the medieval Indian Temple has few parallels in the annals of mankind. *The Colas* part II p. 504

स बहुत लाभ होता था। समय समय पर मन्त्रि द्वारा घामिक मामाजिक महत्त्व क पत्रों और माता का आयाजन किया जाता था, निम्न पुराहिताना, विद्वान पण्डिताना गायना नतका आर कविया क साथ माधारण जन भी भाग लिया करते थे। इन मला म एक आर विद्वान पण्डित परम्पर शास्त्राय कर्तु ये आर त्सरा आर जादू-अपना कलावाजिया का प्रदान करते थे। मन्त्रि क विशाल कर्म म ताका जी-नत्य-वापत्रमा का आयाजन किया जाता था। केन्द्रीय सरकार क उच्च पदाधिकारग कर्मा-अमी मंदिरा क वापत्रमा जीर प्रवत्र विधि का दगरल करते क लिए इनका मजायना किया करते थे जिसम सिद्ध जाता है कि चान सम्राट मन्त्रि क सामाजिक महत्त्व और इनक वाय-मचालन का दगर रख का आवश्यकता का भना प्रकार ममयत थ।

साहित्य—चान सम्राट का शासन-काल (८७०-१२०० ई०) तमिन समृद्धि का स्वर्ण युग था। साहित्य क क्षेत्र म काव्य क प्रवत्र रूप का प्रधानता रहा और तब सिद्धान्त दर्शन का शास्त्राय निरूपण प्रारम्भ हुआ। प्रसिद्ध तमिन महाकाव्य जायक चिन्तामणि का रचना दसवी शताब्दी क प्रारम्भ म हुई। इस ग्रंथ का भना तथा काव्य-मुपमा त्र घ्य है। इसम तमिल भाषा क महाकवि कम्बन बहुत अधिक प्रभावित हुए। जीयक चिन्तामणि क प्रणना निरत्तकत्वर नामक जन पण्डित न और जनमत क सिद्धांत ही इस मनारम काव्य का भावभूमि का निर्माण करते है। तानामोक्ति नामक जन रत्तक न भूलन्धि नामक ग्रंथ तिया जिसका गणना तमिन के पाँच रघुकाव्या म का जाती था। चान राजममा क कवि जयगान्धर न काँड गत्तुप्पणि नामक युद्ध-काव्य म कुलात्तुग प्रथम क कविण यद्ध का कणन किया है। कुलात्तुग तताय क ममय म कम्बन हुए जिनका सुप्रसिद्ध काव्य रामावतारम् है। कम्बन न अपने काव्य की कथावस्तु महाकवि वाल्मीकि स ग्रहण की है किन्तु कथा वही उहृति अपनी मौक्तता का भा परिचय किया है। दमवा भतात्ता म ही किमा बौद्ध कवि न कुण्डल्लेणि नामक काव्य तथा कन्दनर नामक कवि न अपना ग्रंथ कल्लदम तिया। अमृतगागर नामक जन विद्वान न काव्य रचना पदनि पर एक पुस्तक का प्रणयन किया। भ्याग्द्वी शताब्दी में विम्बान बौद्ध विद्वान बुद्धमित्र हुए जिन्हाने रमोत्रियम नामक व्याकरण ग्रंथ तिया। काव्य के क्षेत्र म पुण्यदि का नाम मलाया नहीं जो सक्ता जिनका नितवम्ब एक ममान काव्य है। इस काव्य म राजा नन का जीवनचरित कणित है। सक्किलरप्रणीत परियापुराणम् म धव सिद्धान्त का निरूपण है। काव्य शास्त्र के प्रसिद्ध रत्तक दण्डिन का पुस्तक काव्यालान क जायार पर तमिन में दण्डियनगारम नामक ग्रंथ की रचना का गत्। इस पुस्तक क रत्तक का नाम अथान है। कुलात्तुगतताय क शासन-काल म जैन विद्वान् पुवनात्ति न नमून नामक व्याकरण ग्रंथ तिया। यद्यपि चान शासका न अपने साम्राज्य म मस्कृत भाषा जीर साहित्य क पठन-पाठनाय विद्यालय स्थापित कराय थ तथापि समृद्ध-साहित्य सम्बद्धन म उनका यागमान अत्यन्त ही स्वल्प है। उनक कु-जनिग्रय समृद्ध म है। किन्तु क कणन गती का दृष्टि स तमिन अनिष्टसा का तदना नहा कर सक्न। पर तत्र प्रथम क शासन-काल म वैकट माधव न प्रवत्र पर अपना प्रसिद्ध भाष्य तिया। राजराज तियाय की आपा स कशकम्बामित्त न मस्कृत में नानायार्णव-भाष्य नामक काय का सम्पादन किया।

निर्माण काय और कला—चान सम्राटा ने साकहित्य क लिए अनक निर्माण-काय किये। मिर्चार् क लिए उहृति कुपे और नानक मुन्दकय। इगके अनिर्णय कारग

तथा जय गिर्वाण प्रयाह को रोककर पर्यन्त स बंधे अनक डम (जलराशि) बनवाये और उनमें स सुविस्तृत मण्डपों का सिंचाई के लिए नहरें गुन्वाई। राज प्रथम न अपनी राजधानी गगकाण्डचालपुरम क निकट एक विशाल झील गुन्वाई जिमम कालहन और वल्लार नदिया का जन भरवाया गया। इस झील पर जा बांध उधवाया गया था उसका गुन्वाई मालह मोन था और इसम प्रस्तर प्रणालियाँ तथा नहरें काटकर निकाला गई था। चाल शासकान पत्तवा का मन्त्रि निर्माण-परम्परा का जारी रखा। प्रारम्भिक चाल-नरेश क समा मन्दिर आकार म लघु और पाषाण-निमित्त ह। पुदुवाट्टि म इस प्रकार क अनक मन्त्रि हैं। नार्त्ति मन्त्रि म विजयालय-चाल-वर मन्दिर इस प्रकार के मन्दिरों का एक सुन्दर नमूना है। कुम्भानम क छान स नाग-वर मन्दिर की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसक गममट्ट क बाहरी आर स्त्री पुरपा क सजीव तक्षण चित्र उत्तुवित है। इन चित्रों की तुलना सहज ही भारत की सर्वोत्तम तक्षण-कृतिया से की जा सकती है। परान्तक प्रथम द्वारा निमित्त वोरगनाथ और परान्तक त्रितीय का मूवरकाविल मन्दिर प्रारम्भिक चाल शनी क अनुपम उदाहरण हैं।

चाल साम्राज्य के गौरव और साधना म अभिवृद्धि हान पर विशाल तथा प्रभावोत्पादन मन्दिर बनवाय जान लग। राजराज प्रथम द्वारा निमित्त तजोर क राज राज-वर मन्दिर का उल्लेख किया जा चुका है। यह मन्त्रि इतना विशाल और आकर्षक है कि इसको दखनवाले क चिन्त पर बड़ा ही गम्भीर प्रभाव पडता है। राज राज प्रथम तिन्नवना जिले के ब्रह्मदेशम् नामक स्थान म तिरुवाली-वरम मन्दिर का मा निमाण कराया था। इसक दुमजिल विमान पर अनक तक्षण चित्र खुदे हैं। राज द्र प्रथम न अपन राजधानी गगकोण्डचालपुरम में तजोर क राजराजेश्वर मन्दिर की नाति एक अत्यन्त सुविशाल मन्दिर बनवाया। इस मन्दिर के स्थापत्य म राजराजेश्वर मन्दिर क स्थापत्य की अपेक्षा अधिक परिपक्वता है। राजराज द्वितीय के समय क एरावत-वर मन्दिर तथा कुलातुग ततीय के शासन काल के कम्पहरेश्वर मन्दिर द्वारा चाला की मन्दिर निर्माण शलो जारी रही।

दक्षिण भारत म चोल युग सुन्दर कास्य प्रतिमाओं के निर्माण के लिए प्रमुखतया उल्लेखनीय है। भगवान् नटराज (नृत्य करत हुए शिव) की विशाल प्रतिमाओं का कलात्मक सौन्दर्य निस्सन्देह अनुपमेय है। शकर भगवान के अन्य रूपों की मूर्तियाँ मा कनाकारा ने गडी। ब्रह्मा सप्त मातायें मूदेवी तथा लक्ष्मी के साथ विष्णु भगवान अपने अनचरा क साथ राम और सीता तथा शक सन्तों की घातु मूर्तियाँ भी बनवाई गई। कालिय-दमन प्रदर्शित करनेवाली मूर्तियाँ बडी ही लोकप्रिय थी।

चान युग की सांस्कृतिक उपनर्तियों को ध्यान म रखन हुए यह जमन्दिग्ध रूप स कहा जा सकता है कि दक्षिण भारत के इतिहास म यह सबसे अधिक सजनशील युग था। प्रोफसर नीलवान्त शास्त्री का कथन है दक्षिण भारतीय इतिहास के मन्त्रेस अधिक सजनशील युग चीना क समय म सबसे पहली बार सम्पूर्ण भारत एक हा सरकार के अधीन हुआ और नूतन अवस्थाओं स उत्पन्न हानवाली सावजनिक शासन का समस्याओं का सामना करन तथा उनका हल ढन्ने का एक गम्भीर प्रयत्न किया गया। स्थानाय शासन कला धर्म तथा विद्या म तमिऴ देश श्रेष्ठता की उस सीमा पर पहुच गया जहाँ तक आनवा-युग कभी पहुच न सक। इन सभी क्षेत्रों म और विन्शी व्यापार तथा सामुक्तिक क्रियाशीलता म चोल मग उन सभी क्रियाओं के लिए

चरम परिणति का काल था जिनका प्रारम्भ पहलवा व अधीन एक पूर्वतर युग में हुआ था।

## मदुरा के पाण्ड्य

पाण्ड्य राज्य में मदुराई और तिरुवनवलिन्ति व आधुनिक जिले सम्मिलित थे। इस राज्य की सीमा बहुधा वाष्पणी श्रावणकार तक बढ़ जाती थी। पाण्ड्य राज्य का राजधाना मधुरा (मदुरा) विस्तार एश्वमेध व्रत और सम्पन्नता की दृष्टि से सम्पूर्ण दक्षिणा भारत में सबसे अधिक बढ़ी चढ़ी था। इस राज्य का प्रमुख बन्दरगाह कारक ताम्रपणि व मुहान पर स्थित था। पाण्ड्योकी राजधानी पहले कारक में थी। पाणिनि व अष्टाध्यायी पर भाष्य लिखनेवाले कात्यायन ने पाण्ड्या का उल्लेख किया है। रामायण में मदुरा व व्रतव का जिक्र मिलता है। बौद्धग्रन्थ महावश के अनुसार लका नरेश विजय ने एक पाण्ड्य राजकुमारी व साथ विवाह किया था। अथशास्त्र में पाण्ड्य वंश में मोतिया का उल्लेख मिलता है। पाण्ड्य देश अपने मोतिया की समृद्धि व निरूप विख्यात था। यहाँ के पत्तण्डुवे समुद्र से मोती ढ़ढ निकालत थे जिससे राज्य का प्रचुर आमदनी होती थी। भगवद्गीता ने भी पाण्ड्य राज्य का उल्लेख किया है। अशोक व कुछ अभिलेखा में पाण्ड्य राज्य का उल्लेख मिलता है। खारवेन के हाथी गुम्फा अभिलेख में इस बात का विवरण मिलता है कि उसने एक पाण्ड्य नरेश को पराजित किया था। स्ट्रैबो के अनुसार किसी पाण्ड्य नरेश ने रोमन सम्राट आगस्तस सीजर की राजसभा में २० ई० पू० व लगभग अपने राजदूत भेजे थे। पेरिप्लस तथा टोलमा का जोगरफी में पाण्ड्य राज्य तथा इसके नगरों का उल्लेख मिलता है।

पाण्ड्य वंश के मूल के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान असादिग्ध नहीं है। इस वंश के नरेश अपने का चन्द्रमा का वंशज बताते हैं। प्राचीन पाण्ड्या व इतिहास का ठीक ठीक पता लगाना एक दुष्कर कार्य है। शिलपट्टिकारम् नामक तामिल महाकाव्य में एक पाण्ड्य नरेश ने दूधनिम्ब का उल्लेख किया गया है। इसी नाम का दूसरा पाण्ड्य राजा, जिसका काल ईसा की दूसरी शताब्दी निर्धारित किया जाता है, अपने वंश

द्वितीय न अपनी सामरिक सफलताओं के उपलक्ष्य में अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया था। सगम युग की अनेक तमिल कविताओं में उसकी प्रशंसा वदिक यज्ञ के उत्साह

1 In the age of the Colas the most creative period of South Indian history the whole of South India was for the first time brought under the sway of a single government and a serious attempt made to face and solve the problems of public administration arising from the new conditions. In local government in art religion and letters the Tamil country reached heights of excellence never reached again in succeeding ages in all these spheres as in that of foreign trade and maritime activity the Cola period marked the culmination of movements that began in an earlier age under the Pallavas —Pre face of *The Colas*

अनुष्ठानकता का रूप में की गई है। निरंतर तया अथ कविया का उसने राजाश्रय प्रदान किया। सगम परिषद् का एक प्रमुख कर्ता मद्रुरा में था जिसे यथा सिद्ध होता है कि पाण्डय नृपति तमिस्र ग्राह्य का उत्थति में अपना महत्वपूर्ण योग्य रहा था।

नदूछनियन का मय ५ वें पाण्डय का शक्ति का ह्वाम ज्ञान लगा। सम्भवतः पल्लवा के उदय में पाण्डय शक्ति का घटना पशुचाया। किन्तु पल्लव प्रभुता का यग में भी पाण्डय नरेश अपने राज्य का नामा में स्वतंत्र रूप से शासन करते रहे। सातवीं शताब्दी में ह्वेनसांग ने दक्षिण भारत का भ्रमण किया था। उसने पाण्डय राज्य की निवासिया का विषय में लिखा है कि वहाँ भातिया की तिजारत तथा अथ व्यापारिक कार्यों में बग रहने है जो तनिक भी विद्यानुरागा नहीं हैं। पाण्डय राज्य में बौद्ध धर्म बिल्कुल ह्वामपूर्ण स्थिति में था। ब्राह्मण धर्म समुद्रत दशा में था और जनियों की मृत्या भी अधिक थी।

आठवीं और नवीं शताब्दियाँ में पाण्डय शक्ति का पुनरुत्थान—इस बात का उल्लेख किया जा रहा है कि चौथी शताब्दी में कर छोटी शताब्दी तक पाण्डय की शक्ति दूर रूप में विद्यमान रही। इस यग में चान शक्ति का भी ह्वाम हो गया था। दक्षिण में इन दो प्रसिद्ध और पाचीन राज्या की राजनीतिक शक्ति के ह्वाम का कारण बवल पत्तवा का उद्यम ही था वल्कि कलभ्रा का मन्त्रमण भी था जिहान मद्रुरा पर अपना अधिपत्य जमा, किया था। बलम लोग उत्तरी तोण्डमण्डलम में निवास करते थे। जय पत्तवा ने तोण्डमण्डलम में अपनी सत्ता प्रतिष्ठित कर ली ता विवश हाकर बलम को जोर दक्षिण में चला जाना पडा। एगो शताब्दी के अन्त तक मद्रुरा दक्षिण भारत के एक भागा में बलम ने अपनी सत्ता जमाये रखी।

सातवीं शताब्दी के लगभग कदुगान के अग्रान पाण्डय वंश की शक्ति दीप में पुनरुज्जीवित हो गई। कदुगान सम्भवतः पल्लव नरेश सिंहविष्णु का समकालान था। इस पाण्डय नरेश ने पाण्डय राज्य की सीमा से बलम को निर्वासित कर दिया। कदुगान के पत्तवान पाण्डय वंश में अरिक्शरी मारवमन एक शक्तिशाली शासक हुआ। अरिक्शरी मारवमन सातवीं शताब्दी के मध्य में शासन करता था। उसने चेर नपति का नलवति नामक स्थान में हराया। अरिक्शरी मारवमन का समीकरण अनुभूति में उल्लिखित कुन पाण्डय के साथ किया जाता है जिसका सम्बन्ध नामक शव सन्त ने जपन मन में लीक्षित किया था। ह्वेनसांग ने सम्भवतः उसी के समय में दक्षिण भारत का भ्रमण किया था। राजसिंह ने पल्लव पाण्डय मध्य में प्रमुख भाग लिया। राजसिंह के अभिलेख के अनुसार उसने नदिवमन पल्लवमल्ल को पराजित किया परन्तु नदिवमन भी अपने अभिलेख में घोषित करता है कि उसने राजसिंह को हराया। राजसिंह के वाट वरगुण (७६५-८१५ ई०) नृपति हुआ जो जपन वंश के सवमहान शासक में था। जपन मुत्तय शासन काल में वरगुण ने दक्षिणी प्राकणार सत्रम कोयम्बटूर तजार जोर त्रिचनापल्ला के जिला का पाण्डय राज्य में सम्मिलित कर दिया। सम्भवतः उमा जपन समकालान पल्लव राजा दन्तिवमन का हराया। वरगुण पाण्डय ने अपने राज्य में शिव तथा विष्णु के अनेक मन्दिर बनवाये जिनमें कोयम्बटूर त्रिचनापल्ला में स्थित विष्णु मन्दिर सबसे अधिक उल्लेखनाय है। किन्तु पाण्डय राज्य का आन्तरिक विनाश के कारण गहरी क्षति उठानी पडी। वरगुण के पत्तवान श्रीमार् पाण्डय राज्य का स्वामी हुआ जिसने बौद्ध धर्म महावश के अनु

मार लका के ऊपर आक्रमण किया और वहा के राजा का परास्त कर दिया। श्री मार न पल्लवा और गंगा की सम्मिलित शक्ति को नीचा दिखाया किन्तु बाद में पल्लव नरेश नन्दिबमन तृतीय ने तल्लार नामक स्थान में पाण्ड्य-नरेश को हराया। श्री मार का पुत्र वरगुण द्वितीय था जिसने श्रीपुरम्बियन के युद्ध में पल्लव राजा जपरा जितबमन के परास्त किया परन्तु बाद में गंगा की सहायता में पल्लव नरेश ने उसके ऊपर विजय प्राप्त कर ली।

पल्लव पाण्ड्य-संघ में ली प्रायः सफलता पाण्ड्या के हाँ में मिली किन्तु चाला के साथ उनका संघर्ष उनके लिए अनिष्टकारी प्रमाणित हुआ। पाण्ड्य नरेश राजसिंह द्वितीय का परान्तक चालन हरट्टिया और उसे भागकर लका गान का विवश किया। इन समय से पाण्ड्या का चाला का अज्ञानता स्वाकार कर गयी पडा। चाल शक्ति के अग्रदूत के कारण तीन शताब्दियाँ तक पाण्ड्या को अपना भार उठाने का मौका न मिल सका। फिर भी पाण्ड्य वंश निरमूल न किया जा सका और इस वंश के शासकों ने चाल सम्राटों का अपन विरोधा द्वारा पराजित रक्का। पाण्ड्य वंश के राजकुमारों ने चाल सम्राटों के विरुद्ध बार बार विद्रोह किए परन्तु उनका विद्रोह दबा दिया गया। परन्तु चाल नरेश कुलोत्तुंग प्रथम के समय से पाण्ड्यो के राजनीतिक शक्ति एक बार फिर उज्जावित हो उठी। कुलात्तुंग प्रथम के परधान चाल राजमहासैन पर पूर्ववर्ती चाल सम्राटों का तरह काई शक्तिशाली शासक न बठा। इन पूर्ववर्ती चाल शासकों की दुर्बलता से लाभ उठाकर दारुवा शाही के मध्य में पाण्ड्या ने अपनी शक्ति पुनः संगठित कर ली। मारवमन सुंदर पाण्ड्य प्रथम ने (१२१६-१२३८ ई०) चाल नरेश राजराज तृतीय पर आक्रमण किया परन्तु वह स्थायी रूप से चाल साम्राज्य पर अधिकार न कर सका। नरसिंह द्वितीय हायसला ने राजराज का साथ देकर मारवमन का चाल राज्य में जमाने न दिया। इस प्रकार चाल राज्य में हायसला की राजसत्ता प्रतिष्ठित हो गई। नरसिंह द्वितीय के पुत्र और उत्तराधिकारी सामन्वर ने हायसला के पर और अच्छा तरह से जमा दिया। परन्तु १२५१ ई० में पाण्ड्य सिंहासन पर जटावमन सुंदर पाण्ड्य बठा। इस समय तक चाला का शक्ति समाप्त हो चुकी था और हायसला का शक्ति का माँ काँकी ह्रास हो चका था अतएव सुंदर पाण्ड्य को अपनी राज्यसत्ता का विस्तार करने में किमा प्रबल प्रतिरोध का सामना न करना पडा। सुंदर पाण्ड्य ने सामन्वर का हरा दिया और काँची तक पहुँच गया। उसने पाण्ड्यो को उनके राजनीतिक उत्कर्ष की चरम सीमा पर पहुँचा दिया। सुंदर पाण्ड्य ने काकतीय नरेश गणपति का परास्त करके नन्तर तक सम्पूर्ण दक्षिणी भारत को अपने अधिकार में रक्का। चंद्रनरेश और लका के राजा का उसने अपना अधिनस्थ सामन्त बनया। लका के राजा पराक्रमवाहु द्वितीय को उसने पराजित किया था। सुंदर पाण्ड्य ने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। सुंदर पाण्ड्य के बाद मारवमन कुलशेखर (१२७२-१११ ई०) ने पाण्ड्य राज्य के राजनीतिक गौरव का लक्ष्य न होने दिया। अपने पिता के शासन काल में उसके भाय शासन करने के कारण मारवमन कुलशेखर ने इस विषय में पर्याप्त आशय प्राप्त कर लिया था। उक्त हायसला का चाल राज्य से विद्वुन निवात बाहर कर दिया। इस समय पाण्ड्यो के पास एक शक्तिशालिनी अरवभन्ना तथा नीमना थी। मारवमन कुलशेखर ने अरव व्यापारियों के प्रति उदारता की भाँति अपनाई। उसने उनको अपने राज्य में व्यापार करने की सुविधा प्रदान की। अरव लक्ष्यक वस्त्राफ न पाण्ड्य राज्य के अनुलक्ष्यमक का उत्थन किया है। मार्को पाला ने भी १२९३ में दक्षिण भारत का पर्यटन

किया था। उमने भी पाण्डय राज्य की अधिक समृद्धि और यहाँ के मानी व्यापार का वणन किया है।

मगधमन कुलापर के पश्चात् उमने भी पत्नों के बीच उत्तराधिकार के प्रश्न पर बगडा उठ खडा हुआ। इस पारम्परिक झगड से साम उपास्य अलाउद्दीन गिल्जी के सानानायक मलिक काफर ने पाण्डय राज्य पर आक्रमण करके वहाँ जशान्ति फना दी। पाण्डय राज्य चारा अर से विशृगन्तिन हान उगा। काकनीया ने तामिननाड में उत्तरी जिना पर अधिकार जमा लिया। सामता ने अपनी स्वधीनता की घोषणा कर दी। मलिक काफर ने मदुरा में अपना एक दुग खडा करवा दिया। इसके बाद पाण्डय राजकुमार मन्रा पर फिर से अधिकार न जमा सने और उनका स्तर बदन अधीनस्थ सामन्ता का भी रह गया।

### चेर राजवंश

चेर राज्य चोल और पाण्डय राज्या की अपेक्षा अधिक विस्तृत था। यहाँ की भूमि पवनीय हान के कारण यहाँ के निवासा कष्टसम्पिण और यद्धप्रिय थे। करल चेर का ही एक दूसरा नाम है। पहले करल अथवा चेर राज्य तमिऴ देश का ही एक भाग था। बाद में तमिऴ देश में मलयालम या करल प्रदेश पथक हो गया। करल के निवासी पश्चिमी दशा के साथ व्यापार किया करते थे जिससे उनका देश समृद्धिशाली हो गया था। चेर में मजिऴिम बकारा और तानी इत्यादि प्रसिद्ध बन्दर गाह थे। इस राज्य की राजधानी काञ्चाची जिसका समीकरण कुछ विद्वान त्रिचना पल्ली के निकटवर्ती एक स्थान से करते हैं परन्तु अन्य विद्वानों की सम्मति में यह काचीन के निकट अवस्थित थी।

जशाक के अमिल्लव में करलपुत्र राज्य का जो उल्लेख किया गया है वह चेर राज्य ही था। ऐरिलस और टालमी की जोगरफी में चेर राज्य तथा इसके बन्दर गाह का उल्लेख प्रचरता से मिलता है। प्राचीन चेर राज्य में आधुनिक मनावार का जिला तथा ट्रोवनकोरकाचीन के भगण्ड सम्मिलित थे। कभी कभी इसकी सीमा कांगू जिल (आधुनिक कायम्बटर का जिला तथा दक्षिणी सलेम) तक पहुच जाती थी।

चोल और पाण्डय राज्या की तरह चेर राज्य का इतिहास सुस्पष्ट नहीं है। मगध युग में अथन प्रथम को करिकाल चोऴ ने पराजित किया था। अथन तृतीय चेर राज्य का प्रथम मन् और शक्तिशाली शासक था। अथन द्वितीय का शासन काल गौरवशाली था। वह करिकाल चोऴ का दामाद था। उमने कपितार नामक कवि का राजाश्रय प्रदान किया था। अथन द्वितीय का उत्तराधिकारी सम्तवन चेर राज्य के महामहान् शासक में था। मगधवन का शासन काल ईसा की दूसरी शताब्दी में निघान्ति विषा जाल है। उमने कान और पाण्डय राज्या की आन्तरिक गन्वडो से नाम उठाकर अपनी शक्ति मगन्तिन कर ली। मगधवन की सफलताओं का वणन शिवपत्तिकारम् नामक तमिऴ महाकाव्य में विस्तार के साथ किया गया है। म महाकाव्य के अनुसार मगधवन ने उत्तरा भारत पर भी आक्रमण किया था किन्तु स्पष्ट है कि यह कथन अनिऴञ्जनमात्र है। उगा जाता है कि उस प्रतापी शासक ने कुछ सामुत्तिक विजयें मा काया। वह साहित्यकारों को राजाश्रय प्रदान करता था। उमके उत्तराधिकारी चेल निकर। एक परवर्ती चेर नपति यति



१०

कन छेय अथवा मन्म छेराल को पाण्ड्यनरेण नट्टुत्तैयन द्वितीय न तलमानगारम के प्रसिद्ध युद्ध म पराजित किया था। इसके पश्चात् चेर राज्य की राजनीतिक प्रमत्ता कुछ शताब्दियों के लिए समाप्त हो गई। फिर भी इस राज्य ने अपना आंतरिक स्वतंत्रता को दमवा शताब्दी तक बनाये रखा। बाल म चाला का शक्ति क उन्म स इसकी स्वतंत्रता छिन गई किन्तु चोल शासका क साथ यहाँ क राजाशा का मत्रा सम्बन्ध स्थापित था। आठवा शताब्दी म एक चेर-नपति का पल्लव राजा पमस्वर वमन क विरुद्ध युद्ध करना पडा और बाल म उत्तम पाण्ड्य राजा वरगुण प्रथम म युद्ध किया जिसन कान्ना देश और दक्षिणी द्रावणकोर को जीत लिया। म्याणुरवि न पाण्ड्या के विरुद्ध आदित्यचोल की महायत्ना का थी। परान्तक चोल न एक चर राजकुमार क साथ विवाह किया था। दमवी शताब्दी म चर शासका जार चाना का पारस्परिक मत्री सम्बन्ध विनष्ट हो गया। इस शताब्दी क अंत म राजराज चान न चर राजा मास्कर रविवमन को परास्त किया। बारहवा शताब्दी तक चाला न चेर राज्य पर अपना अधिकार कायम रखा। बारहवा शताब्दी म वार करन क मतत्व म चर राज्य स्वतंत्र हा गया। किन्तु तेरवी शताब्दी म एक वार फिर पाण्ड्या क उदय स चर शक्ति का घबका लगा। मनिव काफूर क आक्रमण स पाण्ड्य राज्य म जा आंतरिक गडबडी फनी उनम लाभ उठाकर रविवमन कुलशेखर न चर राज्य का शक्ति का पुन मगठित कर लिया। चौदवी शताब्दी क प्रथम चरण म वरन जयवा चर राज्य की शक्ति सम्पूर्ण दक्षिणी भारत म मवम अधिक था। कुलशेखर न काञ्ची पर अपना अधिकार जमा लिया। कुलशेखर क बाल चेर राज्य का शक्ति नष्ट हो गई और यह अनेक छोटे छोट भागा म विभक्त हो गया।

चर शासका का धार्मिक दृष्टिकान उत्तार और महिष्णुतापूर्ण था। स्थाणुरवि न मीरिया क ईसाई मतावलम्बियों और मास्कर रविवमन ने यूदियों को अपन राज्य म कुछ मुविधायें प्रदान का थी।

## Questions

### Agra University

१ चोल साम्राज्य के राजन तिक इतिहास का सक्षिप्त विवरण कीजिए।

(१९४७)

२ राजराजा एव राजेन्द्र चोल की उपलब्धियों का वणन कीजिए। चाल स्थानीय अभिगासन क विषय में आप क्या जानते ह ?

(१९५०)

३ चोलो की शासन प्रणाली का वणन कीजिए।

(१९४७)

४ राष्ट्रकूट कौन थे ? गोविन्द ततीय को मत्य तक दक्षिण में राष्ट्रकूट सत्ता के उत्पन्न का वणन सक्षेप में कीजिए।

(१९४२)

५ पुलकेशिन त्तीय की उपलब्धियों का वणन कीजिए।

(१९४९)

६ पुलकेशिन त्तीय के राज्यकाल का विषय उल्लेख करते हुए पातापी क प्रारम्भिक घातुष्यों का इतिहास लिखिए।

(१९५१)

### Allahabad University

1. Bring out the main achievement of the Chola power in India and abroad

(1955)

2 Describe the system of administration under the Cholas (10७6)

3 Give a critical account of the administrative system of the Cholas (10७8)

4 Whom do you consider to be greatest of the Chola kings and why ? (10७9)

५ राजराजा प्रथम के सिंहासनारोहण के साथ चोला का सबसे एंवय सम्पन्न युग प्रारम्भ हुआ इस कथन की व्याख्या कीजिए और यह बताएँ कि चोल साम्राज्य के समय में राजराजा प्रथम एवं राजद्रुगकोण्डन क्या भाग लिया। (१९४९ १९५१)

६ राष्ट्रकूट कौन थे ? उत्तर भारत में साम्राज्य स्थापित करने के लिए उन्होंने कौन कौन से प्रयत्न किये और वहाँ तक सफल हुए ? उत्तर भारत में उनका प्रमुख शत्रु कौन था ? (१९५१)

7 Who were the Rashtrakutas ? Describe briefly the attempt made by them and extend their authority in N India (1957)

8 Whom do you consider to be the greatest of the Rashtrakuta rulers and why ? (1958)

९ आप किसे राष्ट्रकूट वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक समझते हैं ? और क्यों ? (१९४८)

१० राष्ट्रकूटों की विदेश नीति, विशेषकर अरबों से उनके सम्बंध की आलोचना कीजिए। (१९५९)

११ दक्षिण के चालुक्य शक्ति के उदय का विवरण दीजिए। पुलकेशिन द्वितीय के कार्यों पर प्रकाश डालिए। (१९४५)

१२ परवर्ती चालुक्य कौन थे ? सोमेश्वर प्रथम अहविल्लभ के जीवन पर प्रकाश डालिए। (१९४७)

१३ पल्लव कौन थे ? दक्षिण भारत की संस्कृति में उनके योगदान का विवेचन कीजिए। (१९५०)

14 Examine the contribution of Pallavas to the culture of South (19७०)

15 Examine the contribution of the Pallavas to the art and culture of South (1959)

## Varanasi University

१ चोलों की शासन प्रणाली का वर्णन विस्तारपूर्वक कीजिए। (१९५०)  
(१९५१, १९५४)

२ राष्ट्रकूटों के इतिहास और उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। (१९५४)

## Lucknow University

1 Describe the system of Chola administration with special reference to local self government (1948)

३- चोल शासन-प्रणाली की विनियताओं पर प्रकाश डालिए। (१९५१)

३ राष्ट्रकूट वंश में सबसे प्रतापी शासक आप किसे समझते हैं और क्या ? (१९५४)

4 Who were the Rashtrakutas ? Give an account of the Rashtrakuta supremacy in the Deccan upto the death of Dantidurga (1956)

5 Give a short history of the Chalukya kings of the Deccan upto the death of Pulkesin II (A D 642) (1947)

6 Give a short history of the Chalukyas upto the time of Pulkesin II and account for his greatness (1956)

7 Give a brief account of the political and cultural history of the Pallava upto 800 A D (1956)

## २६ | पूर्व मध्यकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

पूर्व मध्यकाल से हमारा अभिप्राय मातृवी शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक से है। इस युग की राजनीतिक परिस्थितियों का पूर्ण विवरण लिखना पड़ा म दिया जा चुका है किंतु इस युग के राजनीतिक इतिहास की अपेक्षा इसका सामूहिक इतिहास अधिक महत्वपूर्ण है। इस युग में सामंति, कला आदि संस्कृतियों की प्रगति हुई वह भारतीय इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। अतः पूर्व मध्यकालीन शासन प्रबंध सामाजिक धार्मिक तथा आर्थिक अवस्थाओं शिक्षा कला संस्कृतियों की प्रगति एवं उपलब्धियों पर यहाँ पर्यक-पर्यक विचार किया जायगा।

### शासन प्रबंध

वस्तुतः मगध साम्राज्य के अंत में ही भारत में एकछत्र राज्य स्थापित रहा और उनका शासन प्रबंध बहुसम्यक के लिए एक रूप का था। उनके शासन प्रबंध को ही प्राचीन भारत का अन्तिम सुव्यवस्थित सुसंगठित एवं कुछ अंश तक मौलिक कहा जा सकता है और ऐसा न आगे आनेवाले राजाओं का अपना अनुकरण करने की प्रेरणा है। बारहवीं शताब्दी तक राजतंत्र पूर्ववत् चलता रहा पर वह सीमित और जातीय हो गया था। बहुधा प्राकृतिक सीमाओं के अनुसार अथवा जातीय सीमाओं के आधार पर सम्पूर्ण उत्तर भारत में अनेक छोटे छोटे राज्य स्थापित हो चुके थे। यद्यपि इन राज्यों के अस्तित्व में इन छोटे छोटे नपतंत्रों को भी पूर्ववत् बड़े बड़े विद्वत् परम मंत्रारक्षक महाराजाधिराज परमेश्वर प्रदान किए गए हैं पर यह उन राजाओं की बड़ी जातिमनुष्यता का प्रतिफल है उनका मनमात्र है। वास्तव में मनता कोई चक्रवर्ती राजा रह गया था और न कहीं एकछत्र राज्य। अपने-अपने सीमित क्षेत्र में प्रत्येक राजा महाराजाधिराज हान का दावा करता था। सामन्त शासन अब भी प्रचलित था क्योंकि दानपत्रों में सामन्तों महाराजाधिराज आदि शब्दों का उल्लेख किया गया है। यहाँ यह बताना आवश्यक है कि इन सामन्तों की स्थिति पहलू की अपेक्षा अब काफी बदल चुका था। ये कर्तव्य शासन की दुर्बलताओं का पूरा लाभ उठाते थे और परतंत्र हान हुए भी स्वतंत्र शासक-सा शासन करते थे।

उपरोक्त विवरण से तत्कालीन राजनीतिक व्यवस्था का कुछ वाच्य हो जाता है अतः यहाँ शासन प्रबंध पर प्रकाश डाला जायगा।

नपतंत्र शासन—प्राचीन भारत में हम राजतंत्रात्मक शासन के माध्यम-माध्यम तथा तंत्रात्मक शासन का भी प्रादुर्भाव मिलता रहा किंतु जस जस साम्राज्यवाद का भारना प्रचलित होता गया गणतंत्र की स्थिति उत्तर में पड़नी गई। विभिन्न कारणों के कारण साम्राज्य का भी गणतंत्र की अंत्यष्टि का उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। चायी किन्तु तंत्रात्मक आत आत गणतंत्र का नाम तक नहीं रह गया और जब बचत नपतंत्रात्मक शासन का ही अस्तित्व रह गया। हय प्रतीहार तथा पात वंशों राजाओं का राज्य अन्तर्गत विस्तृत था पर उन्नीसवीं शताब्दी के कुछ दिनों के राजाओं का राज्य इतना सीमित था कि नपतंत्र राज्यों का अस्तित्व प्राधान्य का न कि किसी भी गण

नत्र राज्य में किन्ना भी दुष्टिकाण में अधिक महत्वपूर्ण न था फिर भी राजतंत्र में अन राजतन्त्रात्मक प्रवृत्तियाँ का इनमें अभाव न था। समस्त राजकाय कार्यों में व प्राचीनकाल के विशाल नपतन राज्याँ का ही अनुकरण करते थे।

विचाराधान काल के ताम्रपत्रों शिलालेखों तथा साहित्यिक सामग्रियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजा का निर्वाचन नहीं होता था प्रत्युत यह पद वंशानुगत था। किन्तु यह आवश्यक नहीं था कि ज्येष्ठ पुत्र ही राजाधिकारी हो। राजा द्वारा मनानीत पुत्र (युवराज) ही राजा हो सकता था। पूर्व मध्यकालीन राजाओं में जन्मपात्रों का भावना का उद्भव अस्मात्त था। वे अपने जाति के नियमों का पालन करते थे और उस पर उन्हें गर्व था। राजाओं के कुछ प्रमुख कर्तव्य थे जिनका पालन करना उनका लक्ष्य था। जिनका अर्थ निम्नलिखित है—

क—प्रजा का रक्षा करना—आन्तरिक एवं बाह्य आतंकी से उसे बचाना (शासनत्व)

ख—राजा प्रजा का धर्म में नियोजित करे तथा स्वयं वर्णाश्रमम-पालक हो (पातकना राजा धर्मपाल का अनिर्णय)।

ग—वर्ण भोजनिक क्षत्रा एवं सभ्यताओं का गान दे। शिवालयों की गान गनना प्रणाली का प्रमाण हम अनेक सभ्यता से प्राप्त होता है।

सातवाण यह कि राजा प्रजा के नियमों का मिथ्या मिथ्या रूप में विद्यमान रहा पर इनका आवश्यक रूप कुछ भिन्न था और वह राजाओं के व्यक्तिक गुणों एवं प्रवृत्तियों पर निर्भर था। हम पिछले पृष्ठों में विभिन्न प्रकार के प्रवृत्तियों के शासकों का अध्ययन कर चुके हैं। कुछ शासकों में स्वच्छाचारी तथा निरपेक्ष होने के और राजाओं पर भविष्य तथा जनता का कोई दबाव नाममात्र का भी नहीं पड़ सकता था। वे स्वयं मनमाना करते थे और किसी का साहय्य न था कि कुछ बालता। इस युग के (प्राचीन काल के भी) शासकों की मन्ता का वाप उमर के अधिकार सम्पन्न होने उमर शरीर में देवता का निवास होने या कुछ स्मृतियों के विचार से उमर के अन्तर्गत अवतार होने की धारणा से ही जाता है। राजा का स्वयं मानन में उमर गुणों अथवा उमर की शक्ति के भय या उमर के प्रशंसकों की सहाय्यता में किन्ना अधिक शक्ति है यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता।

शास्त्रों तथा आचार्यों से राजा कुछ अवश्य प्रभावित रहते थे। वे कवियों के आश्रयता होते थे। राजा भी जयचक्र तथा यशोवर्मा के स्वरूप में कवियों के रहने का प्रमाण मिलता है।

युवराज—यह वह बताया जा चुका है कि राज-वंश वंशानुगत होता था पर राजा का ज्येष्ठ पुत्र ही उत्तराधिकारी था यह आवश्यक नहीं था ही उस गणवतन में जो आवश्यक था जिनमें उमर किन्ना प्रान्त का प्रान्तीय शासन (गवर्नर) बनाया जा सक और इस प्रकार वह राज राज में धार धीरे रूप ही रहते थे। विचाराधीन काल में युवराज का पद न था फिर भी राजा के नियमों आवश्यक था कि वह अपना अन्यायिकारों अपने जीवन-काल में ही धारित करे। इसका प्रमाण यह है कि इस काल के ताम्रपत्रों में राज्य के पद धारियों की सूची में युवराज की प्रथम स्थान प्रदान किया गया है। गृहदेवान् चन्द्र परमार के ताम्रपत्रों में युवराज का अन्तर्गत है। पाल युग में धर्मशास्त्रों की शास्त्रीय प्रशस्ति बंगाल के सम्राट् नरेंद्र तथा चन्द्राणा के नृसिंह के ताम्रपत्रों में युवराज के स्थान पर राजपुत्र शब्द का प्रयोग किया गया है।

मन्त्रिमण्डल—प्राचीन काल की मूर्ति इस युग में मन्त्रियों का राज-काज में महत्वपूर्ण हाथ था। महाप्रधा (परमार-नरेश याजर्मा का पुत्र) मन्त्रिमण्डल (गण-वाल साम्प्रदाय) आदि शास्त्रों का उल्लेख इस काल के अभिलेखा तथा अन्य प्रमाणों में प्राप्त होता है। मन्त्रियों की संख्या कितनी जानी चाहिये यह पर स्मृतिकारों ने अपने विचार प्रकट किये हैं। उन्होंने कम से कम तीन ५ या ७ और अधिक से अधिक १० मन्त्रियों के मन्त्रिमण्डल का समयन किया है। शुद्धनीति में इस मात्रियों का संख्या इस प्रकार दी गई है—

(१) पुराहित (२) प्रधान (३) सचिव (४) मन्त्री (५) प्राग्निवाक (६) पंडित (७) ? (८) सुमन्त्र (९) अमात्य तथा (१०) प्रतिनिधि।

किन्तु राजपूत काल में इन मन्त्रियों के नामों में क्या परिवर्तन आ गया यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। राजा के अनिर्दिष्ट यवराज तथा प्रांतीय शासकों को अपना पृथक् मन्त्रिमण्डल रखते थे। प्रधान मन्त्री मन्त्रिमण्डल का उन्नायक होता था। किन्तु बलचुरि लख में ही महामन्त्रि शास्त्र का उल्लेख मिलता है अन्य पूर्व मध्यकालीन लेखों में प्रधान मन्त्री का उल्लेख नहीं प्राप्त होता है। पाल तथा सन वंश के लेखों में राजामात्य शास्त्र आया है जो सम्भवतः प्रधान मन्त्री के नियम प्रयुक्त है। मन्त्रणा और नीति निर्धारण इनका प्रमुख कार्य था।

सैन्य विभाग—इस युग में सैनिक शक्ति का महत्व उत्तरात्तर बढ़ता जा रहा था। राज्य की सम्पूर्ण आय का ५० प्रतिशत भाग केवल सेना पर व्यय किया जाता था। सेना पूर्ववत् चार वर्गों में विभक्त थी—(१) पदाति अथवा गज तथा रथ। रथ सेना का उल्लेख इस युग के लेखों में नहीं किया गया है। पाता लेखों में नीलन नामक पदाधिकारी का उल्लेख किया गया है जिससे यह ज्ञात होता है कि यहाँ नील-सना भी थी और यह सम्भव है कि यहाँ पाल शासक समुह के समीपस्थ थे। अथवा पति (भटाश्वपति) हस्त्यध्याय आदि पदाधिकारियों का उल्लेख इस युग के लेखों में किया गया है। सना छाटी छाटी टुकड़िया (गुल्मा नामिक) में विभक्त थी। प्रत्येक टुकड़ी का नायक गणस्थ कहलाता था। कुछ विद्वानों ने ९ गज ९ रथ २७ अश्व तथा ४५ पदल की टुकड़ी (गुल्म) का एक पृथक् नायक बतलाया है और इस तीन गुल्मों के नायकों का गणस्थ बताया है। रणमाण्डागारिक गण्डवाल नरेश गोविन्द चन्द्र के लेख में प्रयुक्त माण्डागारिक तथा बलचुरि लेख के महामाण्डागारिक शास्त्रों से यह परिनिक्षिप्त होता है कि सैन्य-सामग्री के एकत्रित करने के लिए भी एक पदाधिकारी था।

मन्त्रिमण्डल में प्रधान मन्त्री के बाद यद्वमन्त्री का ही द्वितीय स्थान था। इसे सेनापति या महासेनापति कहा जाता था।

दुर्ग निर्माण की ओर इस युग के राजाओं का ध्यान अधिक जाकृष्ट था। दुर्ग के निरोधक का काटपाल कहते थे। सीमांत के रक्षकों को द्वारपाल कहते थे वरना द्वारपाल और काटपाल दोनों पदों पर एक ही व्यक्ति रहता था। मुत्तमान अन्तमूर्ती आदि न भारतवासी सेना का बहुत महत्त्व का उल्लेख किया है। अलममदा ने तो प्रतिहार नरेश महीपाल को सना के सम्यग्ध में लिखा है कि कन्नौज के राजा के पास बहुत विद्या सना थी जिसका संख्या काठ काठ में नौ लाख तक पहुँच चुकी थी।

अथ विभाग—राज्य के आय-व्यय का लेखा रखने के नियम का वाच्यता होता था। वना के जाय का हिस्सा कितना अरण्यध्याय रखता था। इसी प्रकार पशु धन का

निराक्षक गान्धर्व अथवा गान्धर्विक (परमार तथा गण्डवाल लेख) कहनाता था। घमपात्र क खानामपुर ताम्रपत्र म गज अथवा गा आदि पशुआ क निराक्षण क निये नियक्त पत्राधिकारा का उत्तरय किया गया है। ममिकर वसूल करन क निये एक जनग अधिकारा था जिम खालामपुर ताम्रपत्र म पष्ठाधिकृत (उठा भाग ग्रहण करन शाना) कया गया है। हिण्य माम्नायिक तथा भाष्ठागरिक पदाधिकारा भा इमी प्रभाग म क्रमश नक्त्त तगान वसूल करन तथा गज भाष्ठाग का हिमात्र खन का काय करत थ।

लेखा विभाग—कनचुरि तथा गह्ववान लखा म मन्त्राक्षपत्रिक नामक पत्राधि शरी का उत्तरय किया गया है जा ममि-सम्बन्धी विवरणा का खाना-आया खतता हा हागा। समक अधीन मा मीमाकमकर (विहार म) प्रमात (वगान म) तथा जीमा प्रताता (जामाम म) नामक पत्राधिकारी थे। ममि सम्बन्धी आनापना तथा धानपना का मुग्णित रखने का उत्तरययित्व इमी विभाग पर था।

पुलिस विभाग—आंतरिक शांति स्थापित करन क निये पुनिस विभाग को मकत्त प्रान का चप्ता की जाती था। गह्ववाल परमार पाल तथा प्रतिहार गगा मन्त्राक्षपाशिक पाण्डिक अथवा दण्डशविन शास्त्र का प्रयोग किया गया जो पुनिस विभाग क अधिकारा थ। पात्रवश क नान्ता खानामपुर तथा आमागाधी ताम्रपत्राम चौर धर्मिक (चारपत्रनवाना) नामक पत्राधिकारी का भा बाध हाता है। ग्राम शासन व्यवस्था म मरिया का प्रमुख हाथ इमनिय मी माना जाता था कि व स्वयमवक खन का नता जाता था और गाँव म शांति एव व्यवस्था बनाये रखताथा। मालाम पर ताम्रपत्र म खान नामक पत्राधिकारी का उत्तरय किया गया है जा डा० मजमत्तार क जनमान स्तचर विभाग का अधिकारा होता था।

साय विभाग—प्राचान काल से ही गजन-त्रात्मक नामक म राजा साय का मर्वो-च अधिकारी हाता था और उमका नियम अन्तिम नियम हाता था। उमर मीच जनग गामानाश हाता थ। मन लखा म मन्त्रायमाध्यक्ष नामक पत्राधिकारा का उत्तरय मितता है जा सम्मन्त्र साय विभाग का अयय हाता था। पवायता गरा श्री साय का काय सुचारु रूप म चन्ता था और इनक नियम का अपीर उचरार सायानमा सहित थी। इस वग क गथा तथा प्रपत्रा म कारागार शास्त्र के अभाव क लाघार पर कुछ नागा म पमा अनमान किया है कि सम्मन्त्र उन दिनों कारावास का दण्ड नहा दिया जाता था जरिजर्मा हो अविन किया जाता था किन्तु म स्वकार करन म कुछ बाधा पटना है और कारागृह क दिना साय एव व्यवस्था का खतना विम प्रकार सम्भव है यह नहा बहा जा सकता।

बाणिज्य विभाग—प्राचान भारत म कुत्त उद्योग काफी उन्नतावस्था म थ। राजपूत या म ता इमन और मा उन्नति कर तो था। औद्योगिक उद्यति क बाण्य व्यापार का पदाक्ष प्रानाहन मितता था जन बाणिज्य-व्यवसाय की लेग लेग के नियम एक पदक विभाग का स्थापना की गत्त था। इन विभाग क कमचारिया का प्रमुख काय अन्तर्गत तथा विन्गी व्यापार पर लगनवाडा चगा अथवा नियान कर वसूल करना वस्तुआ का पति आदर्यक था तो मन्त्र निवारण उपनाग की वस्तुआ का पूति का व्यवस्था आदि करना था। पाल तथा परमार लखा से यह जात हाता है कि उन मित गोत्रिक नामक वार् पत्राधिकारी था जा ची वसूल करता था।

धम विभाग—राजपूत काल में प्राचीन काल का भाँति धम विभाग का स्थापना की आवश्यकता सम्भवतः किसी शासन को नहीं पड़ी थी। यह युग सामरिक शक्ति काण का लहर चल रहा था पर इसका अभिप्राय यह था कि इसमें धम का उपेक्षा की गई है। कुछ प्रपत्रों एवं ग्रंथों में ऐसा परिलक्षित होता है कि धार्मिक अनुष्ठानों का स्थापना करने अथवा उनकी व्यवस्था के लिए कुछ राशियाँ धम-विभागों को स्थापना का गई थी। यदि ऐसा में धम प्रदान तथा सन लय में महा धर्मान्यक्ष नाम से उपराजित मन का समर्थन होता है। इन धम विभागों के कारणों के सम्बन्ध में कुछ विवेक प्राप्त नहीं है सम्भवतः धार्मिक सहिष्णुता बनाए रखना ही इनका प्रमुख कार्य रहा होगा। व्यक्ति का दान दान के स्थान पर जब मर्यादा का दान दिया जाना लगा था जत इसकी व्यवस्था भी इसी विभाग के अंतर्गत थी। पाल कालीन लक्ष्य में अपहारिक नामक पदाधिकारी का उल्लेख है जो दान कार्य के लिए ही नियुक्त किया जाता था।

राजप्रासाद की व्यवस्था—राजप्रासादों का एक पथक विभाग होता था जिनका सवायें राजकुल तक सीमित थी। इस विभाग में अनेक पदाधिकारी थे। जावसायक प्रतिहार महाप्रतिहार जातरग अंतर्पुरिक आदि का उल्लेख इस काल के अनेक लेखों में किया गया है। डा० मजूमदार ने राजा के अग्रदक्षक दल का भी उल्लेख किया है। गहडवाल चालुक्य तथा चहमान लेखा में ज्योतिषी का उल्लेख किया गया है। शकुन-अपशकुन पर विचार किया करते थे। गहडवाल लेखा में भिषग का उल्लेख किया गया है जो राजवध होता था।

आय व्यय के स्रोत—केन्द्रीय शासन-व्यवस्था पर विचार कर लेने के पश्चात् राशियों के आय व्यय के साधनों पर विचार कर लेना भी आवश्यक है। आय के प्रमुख साधन कृषि वाणिज्य-व्यवसाय कर तथा जमाने थे।

गहडवाल यदि परमार तथा पाल लेखा में कृषि कर को भागभाग कर या राज-भाग कर कहा गया है। पार तथा परमार लेखों में उपरि कर नामक कर का उल्लेख किया गया है। परवर्ती गुप्त काल (८वीं शताब्दी) में उपरि कर के साथ उदग का भी प्रयोग किया गया है। कुछ विद्वानों का मत है कि भागभोग की भाँति उदग भी स्थायी किसानों से वसूल किया जाता था और अस्थायी कृषकों से उपरि कर ग्रहण किया जाता था। सस्वयं नामक किसी कर का भी उल्लेख मिलता है जो सम्भवतः अस्थायी कृषकों से ही लिया जाता था। विद्वानों का अनुमान है कि भूमि कर किम्मत तथा नकद दोनों रूपों में लिया जाता था। गुजर प्रतिहार लेखों में किसी गाँव की आय पाँच सौ मुद्रा बताई गई है जिससे उक्त मत का समर्थन हो जाता है। नकदों के लिये 'हिरण्य' कहते थे। परन्तु इस मग के अंत में (१२वीं शताब्दी से) भूमि कर नकद लिया जाना लगा। इसका प्रमाण हम सेनावशी लेखों से मिलता है। ये नकदों भूमि कर चोरी के सिक्का मंडिय जाते थे जिन्हें पुराण कहा जाता था। प्रारम्भ में मलिया गाँव का भूमि कर वसूल करता था किन्तु ९वीं से १२वीं शताब्दी तक राजपूत राजाओं ने भूमि कर की वसूली का भार सामन्तों को सौंप दिया था।

भूमि कर के अतिरिक्त वाणिज्य-व्यवसाय पर लगनेवाला टकस भी राजकीय आय का एक प्रमुख साधन था। विभिन्न राशियों में वाणिज्य व्यापार अथवा उद्योग पेशा पर लगनेवाला कर अथवा टकस को भिन्न भिन्न नाम दिया गया था। महपिषा नामक टकस एक प्रकार का विनय कर था। बाहर से बिक्री के लिए आनेवाली वस्तुओं



पर आधुनिक युग का भाँति चगा लगता था।<sup>१</sup> मध्ययुगान लखा घाडे की विका, पान, तल व उद्याम घरा स वमूल टक्स लगाय जाने का उल्लख किया गया है जिन गलक की मना दी गद है और इस वमूल करनवाले का शौलिकक कहा गया है। खनिज उद्याम पर मा कर लगाये जान का सकत गहडवाल लख स प्राप्त हाता है।

काशा व निक्ट प्राप्त दानपत्रा म (गाविद्वन्द्व व लख म भी) तुसुष्क दण्ड का उल्लख किया गया है जा सम्भवन यवन आक्रमणा व समय प्रजा स लिया जाता था। गहडवाल लखा स कुमारानिधानक कुटव जातवर'आदि करा का भी वाग होता है जिस विद्वाना ने सन्तानात्पति पर नगनवाला टक्स अनुमानित किया है।

कुछ लाग राजकाय करा स मुक्त य उदाहरणाय लूल लगड अपाहिज अब अथवा श्रात्रिय तथा दानश्राहा प्राहण।

रघवश से हम नात होता है कि राज्यकर प्रजा के हित के लिए उगाहे जात थे।<sup>२</sup>

पूर्व मध्यकालीन राज्या के आय व साधना का अध्ययन हमन पिउले पष्ठों म किया है अब महाँ हम यय व साधना का विवेचन करेग। इस युग म व्यय क चार स्रात थ—(१) राज्य कमचारिया का वेतन (२) सावजनिक काय, (३) शिक्षा और (४) व्यक्तिव तथा सावजनिक दान। प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वनसांग न लिखा है कि भाय का चौयाई भाग राज्य व काय म दूसरा चौयाई दान म तासरा चौयाई विद्वाना व निमित्त अर्थात्—शिक्षा म और शप भाग विभिन्न घम के भाग म व्यय किया जाता था। राज्य कमचारिया की एक लम्बी सूची का उल्लख हमन किया है इसम इनकी सख्या का अनुमान लगाया जा सकता है। सावजनिक काय म मदिरो घमशालाआ और मठा का निर्माण काय अधिक हाता था जिनस इस काल की श्रष्ट कला का भास होता है। कन्नोज के शासन जयचन्द्र का काशी म मदिदर निर्माण और चदेल राजाओ का खजुराहो मदिदर इसका उज्ज्वल प्रतीक है कि तत्कालीन कला एक श्रष्ट कला थी। इसका विस्तृत विवरण हम अगलपष्ठो मे प्रस्तुत करेग। यहाँ केवल इतना बताना हो हमारा उद्देश्य है कि इन निर्माण कायों म राज्य का धन लगता था। पहाड पुर क उल्लखन से ज्ञात होता है कि यहाँ के एक ८वी शताब्दी के मन्दिर का अनुकरण बृहत्तर भारत अर्थात् जावावाला ने किया था। प्रजा के कल्याणाय किल का भी निर्माण किया जाता था पर खजुराहो कालिजर भुवनेश्वर आदि स्थाना व मयना की भाँति आज उनका अस्तित्व नहै है। राज्य के यय का ३ शिक्षा के मद म सख किया जाता था। नालन्दा का प्रसिद्ध विवविद्यालय इस युग की कीति था। यहाँ विहार भी बने होते थे और इन विहारो म विद्याधिया के रहेने और भोजनादि का प्रबध राय की ओर म होना था। नालन्दा और विक्रमशिला म विहारो का निर्माण पान-नरेशा ने किया था कपाकि उनका शिक्षा की ओर ध्यान अय नरेशा की अपक्षा अधिक रन्ना था। इस युग म राजाआ की प्रवृत्ति दान की आर विशेष थी। इस प्रकार आय का एक बहुत बडा भाग व्यय हो जाता था। दान दो प्रकार के होत थ— पहला व्यक्तिव जो यक्ति विशेष को दिया जाता था और दूसरा सावजनिक जो

<sup>१</sup> मार्गे गहडतानामागताना वयभाना'केव'—ए० इ० ११ पृष्ठ ३७। उक्त उद्धरण से यह परिलक्षित होता है कि प्रत्येक किराना से भरी हुई बसगाडो पर दो दृपया धरी ली जाती थी।

<sup>२</sup> प्रजानामेव भूयस्य स ताम्बोबलिमप्रहीत।

सहस्रगुणमुत्सृष्टभादते हि रस रवि ॥—रघुवग—१।

किमी सस्था का। गावजनिक दान पहल की लक्ष्मी मन्गा पडता था। यहूषा भूमिदान की नियम जात थे। ता भूमि वाटिका जयवा जनाशय शात म नियम जाते थे उभे तास्य पत्र पर मामा रोया माप सहित अक्षि कर लिया जाता था और राज्य कमरागिया ना भा राजाता शासक मृचना दती जाती थी। न रणा का रणा क रण ता म क्षणतिका जोर रामा म गात नामक रमारी नियम जात थे। तन्त रणा म जनाशया जोर वाटिका का माथ जोर गहडवाल गाविचरव क रण पत्रा म नात जोर ल। का रणा क दान र गाथ भूमिदान का मा उल्लेख मिलता है। तान पान वात यकिन राज्य नियम का मानन के नियम विवश था। मणि का रिन्न मिन्न तान म यचान के नियम भूमि का रचन या कथक रलन ना अधिकारा रणा था य यदि वह उभे भाग प्राप्त कर सकता था और सभा राजनाय करा स विमुक्त कर लिया जाता था। जिम प्रकार यकिन विशय का दान देकर जय अधिकारा ना स्वतंत्रता दता जाती था उमी प्रकार किमी सस्था की दान रण क नियम रमक प्रयत्न का हाचाजात था। यसस्थाय प्राय मंदिर या शिक्षा सम्प्रदा हाता था। इन सस्थाआ का प्रयत्न दान के हा जघार पर होता था। ध्यय र इन साधना क अतिरिक्त जाय का काम अण रायकाय म मचित हाता या या नहा इमक नियम कवन मुसलमान रचना क ही उत्तम उपनय है। वे लिखते है कि हिंदू नरेश मिहामनारुत हाते समय पूवजा द्वारा मचित कोष का भी अधिकारी हाता था परन्तु सकटावस्था म हा राजा इनका आभय रता था। इसस राजकीय रण का अवसर हा नती आता था। हमरे ममलमान आक्रमणक रिया द्वारा भारत की रण म राजधानी स जतुल घन र जने का विवरण यह प्रमाणित करता है कि हिंदू राजाआ के पास मचित आय भी अधिक मात्रा म होती थी।

**परराष्ट्र विभाग**—विचाराधीन काल की समसामयिक सामग्रिया क अध्ययन से यह ज्ञात हाता है कि शासन प्रबन्ध को सुचारु रूप म मचालित करने के लिए पूर निखित विभिन्न विभाग की स्थापना का गई थी। जसा कि उक्त काल के राजनीतिक इतिहास का अध्ययन करने समय हमने देखा था इन यग म अनेक छोट छोट राज्यो की उत्पत्ति हा चकी था जिनका पूण स्वतंत्रता प्राप्त थी। इन छोटे छोटे राज्या के पारम्परिक सम्बन्ध क विदरपण तत्सम्बन्धी नीति निधारण जाति नाय प्रत्येक राज्य का परराष्ट्र विभाग करता था। यह एक अलग विभाग था जिसकी दर रख एक अलग मन्त्रा क अधीन हाता थी। परराष्ट्र मन्त्री यद्ध और मचि करन का उत्तरदाया हाता था। इस मन्त्री का कर्तव्यरितया सन तला म महामा विविग्रहिक नाम से पुकारा गया है। तसक म य दूतक नामक पदाधिकारी का भी उल्लेख आता है। किन्तु यह निश्चय पूवक नहा कहा जा सकता कि यह स्मृतिया का दूत है या काई अन्य अधिकारी। ब्रह्मण क राजा घमपात और गहडवाल नरेश गाविचरवदव क रणा म इस दूत ही कहा गया है।<sup>६</sup> इस विभाग क अन्तगत एक उपविभाग हाता था। इसका प्रधान महामुत्पायक अथवा महामत्पाधिकृत हाता था। तन्मघसन के रण म इसका मन्त्र मत्पाधिकृत पुकारा गया है। इस विभाग का काम विदेशिया का राज्य म प्रवेश करी ना आना प्रदान करता था। परराष्ट्र मन्त्री की मत्पायना क हेतु गजर प्रतीहार आदि क रणा म कर्त उपमचि नियमन नियम जात थे। छोटे राज्या म कवल एक ही मन्त्रा हाता था।

<sup>६</sup> दूतो गोविन्द चन्द्रस्य काचकुण्डस्य भूभुज ।

प्रांतीय शासन—शासन की सुविधा के लिए राज्य प्रांतों में विभक्त होते थे जिन्हें भुक्ति कहा जाता था। प्रान्तपति की नियुक्ति राजा स्वयं करता था या किसी श्रेष्ठ कुल राजपरान्त या सरदारों से होता था। वह राजा की आर से प्रान्त का प्रबंध करता था और राजा की अनुमति का अक्षरशः पालन करता था। प्रजा हित की आर उसकी विशेष अभिरुचि होती थी। केंद्रीय राजधानी के अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में एक राजधानी होती थी जहाँ भूमिकर जमाना आदि संचित किये जाते थे। इस संकलित आय में प्रान्तीय शासन-व्यय निकाल कर अवशेष आय केंद्र में भेजी जाती थी। कुछ गहड़वाल-जैसे छोटे राज्य मात्र जिन्हें प्रान्तों में न विभक्त कर जिला में बाँटा गया था। इन प्रान्तीय शासकों को विभिन्न लक्ष्मणों में विभिन्न नामों में सम्बोधित किया गया है। हर्ष के ताम्रपत्रों में राजस्थानीय उपरिक्त तथा कुमार मात्य शाह प्रान्तपति के लिए ही आय हैं। पालवर्णीय आमागच्छी लेख में कुमार मात्य नेपाल के नालदा ताम्रपत्र में राजस्थानीय तथा उपरिक्त और उड़ीसा के एक लेख में राजस्थानीय और उपरिक्त दाना का प्रयोग है। कलचुरी लक्ष्मण में मागिक और घमपाल के खालीमपुर दानपत्र में मोगपति का नाम मिलता है।

जिले का शासन—विचारधीन युग में प्रत्येक प्रांत विषय (जिला) में बँटा होता था। राज्यकोटबद्ध में विभाजित करने का ध्येय जनता तक पहुँचना था जिससे राज्य की छोटी-से छोटी बात सरकार को पता हो जाय और प्रजा राजा का सामोप्य स्थापित हो जाय। साथ ही शासन सुदृढ़ हो जाता था एवं मानगुजारी तथा अत्याय कर्ता का बमूनी में सरनतापूर्वक हो जाया करती थी। विषय का प्रधान विषयपति होता था जिसका उत्तरवर्ध मध्यकालीन लेखा में मिलता है। इसका अधिकार आज के जिनाधीश के समतुल्य होता था। इसका सहायताय कर्म कर्मचारी नियुक्त रहते थे जो मानगुजारी की बमूनी किया करते थे। सम्मन्वित चारद्वरणीय और दण्डपाशिक नामक दो पुलिस कर्मचारी विषयपति के ही अधीनस्थ थे जो जिन्हें शांति-स्थापन तथा मुशासन के काम में जिलाधीश का सहायता प्रदान करते थे। विषयपति को न्याय का अधिकार नहीं उपन्य था। गुप्त काल में तो जिन्हें की परिपत्र का प्रबंध था तो पाय-काय सम्माननी थी पर बाद में उसका विघटन महा मिलता। जिले में पुस्तपाल की नियुक्ति केसा की सुरक्षा के लिए की जाती थी जिसका कि उत्तरवर्ध हम मुशावर में नलापुर पत्र से मिलता है।<sup>१</sup>

पुर का शासन—नगर और नगर-व्यवस्थापिका समिति का उत्तरवर्ध हम सर्वप्रथम मौर्यकाल में उपलब्ध होता है जिसका अध्ययन हमने यथा-स्थान किया है। तरपत्रात् गुप्तकालीन भारत में फाहियान के शाहों में नगरों का पर्याप्त विवरण मिलता है। पूर्व मध्यकालीन युग में भी कुछ लेखा और ताम्रपत्रों में नगर और नगर शासन का ज्ञान प्राप्त है पर य वास्तव में बहुत विवरण नहीं प्रस्तुत करते। इसलिए हम ज्ञान की नगर-व्यवस्था अधिकार में ही रह जाता है प्रकाश में आने का कार्य साधन ही प्राप्त नहीं था। थोड़ा मात्र पता हम राजपूताना में १०वीं शताब्दी के बाद का चलता है। हमने कायकारिणी और हमने प्रतिनिधियों के निर्वाचन का वाच्य ज्ञान है। इस निर्वाचन की अवधि सम्मन्वित एक वज की होती थी।<sup>२</sup>

<sup>१</sup> ए० इ० १५ पृष्ठ २।

<sup>२</sup> प्राचीन भारतीय शासन पद्धति, पृ० १६५।

ग्राम का शासन—शुद्धादि आर उत्तरवर्षिक काल से ही हम गाँव का शासन का सबसे छात्र इकाई पाते आये हैं। उनके काल में भी गाँवों का आय प्यवकन बना रहा। ग्राम शासन पचायतों का अधिन था। जगका प्रधान मुगिया हाता था। मुगिया का निमित्त अमाय लता में ग्रामपाते ग्रामिक वृहत्तर ग्राम महाधिकारिन आदि शा प्रयुक्त हुए हैं। ग्राम नमा जयवा ग्राम-पचायत का निर्माण राजत प्रात्मक शासन में भी राजत प्रात्मक ढग पर हाता था। मुसलमा ग्राम शासन में स्वतंत्र था। वह उपसमितिया का सहायता से विभिन्न कार्यों का पूण करता था। गाँव का रक्षा आर याय का भार मुखिया पर हा हाता था। इन कार्यों में भी वह उपसमितिया से सहायता रता था। भालगुजारा वभूषण करका में भजना उसा का काय था जिसमें से बाडा जश ग्राम का यय लए लता था। गाँव में चिकित्सालय और अनाया लय बन हात थे जिसका सारा दख रख मुसलमा द्वारा ही हाती था। पचायत का भी अधिकार कम नही था। दुमिक्ष का समय या अय सकट समुपस्यित होन पर पचायत गाँव का कल्याण साचता था आर उसका रक्षाय प्रयास करती थी। राजा द्वारा प्राप्त अनुदाना का सावजनिक कार्यों में व्यय करन का उस अधिकार था। ऊसर अयवा बजर भूमि पर पचायत का अधिकार माना जाता था जिस बचन या किसी व्यक्ति विशय का दन में वह पूणतया स्वतंत्र थी। शिक्षा की प्रगति में भी पचायत सक्रिय याग दता था।

## आर्थिक अवस्था

पिछले पन्था में हमन गाँवों आर नगरों का अवस्था का अययन किया है जिससे पात हाता है। यहाँ का लाग सुखा था। उनका सुरक्षा का यथाचित प्रब था जिससे अपन भरण आरण का आतीरक्त अयाजन में विशय रचि रखत थे। यद्यपि इस काय का आर्थिक इतिहास विशय स्पष्ट नही है तथापि कुछ प्रत्या लखा तथा विदेशी यात्रमा का विवरणा से आर्थिक अवस्था का कुछ ज्ञान ही जाता है। मुसलमान आक्रमणकार्या द्वारा भारत से लूट में अपार सम्पत्ति का ल जाना इस बात का प्रमाण है कि पूव मध्यकालीन भारत का आर्थिक दशा बहुत ही अच्छी थी। व्यापार की प्रगात में लए सघा का रचना हुई था जा भारताय व्यापार का समृद्ध बनाने में दत्तचित्त था। विदेशा से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित था। इसा युग में भारतीय उपनिवेश का स्थापना हुई। एशिया का भिन्न भिन्न भागा में भारतीय बस गय और वहाँ भारताय सम्पत्ता आर सस्कृति का प्रचार करने लग। इही नये बसे भूभागों को बहत्तर भारत का नाम से पुकारा जाता है। बहत्तर भारत का सृष्टि से भी यह सिद्ध हाता है कि तत्कालीन भारत की दशा ऐसी थी कि वह विदेश में भी अपना प्रभुत्व जमान में सफल हा सका।

ग्राम—गाँवों में दश को अधिकाश जनता रहता थी जिनका प्रमुख उद्यम कृषि काय था। कृषि ही उनका आश्रय था जिस पर उनका जावन आधारित था। य ग्रामाण उवरा भूमि में अपना फसल उगात थे आर वृक्ष तथा बाटिका लगा दिया करते थे। वक्षा और बाटिकाओं में उनका पालत पशुओं का लिए घास भी प्राप्त हो जाती थी। कुछ भूमि ऊसर आर बजर हाता था जा उनका किसा प्रयोजन में नही आती था। गाँववाता का विशयकर भूमि दान में प्राप्त हाती थी जिसके साथ-साथ आम महुआ इमली आदि वक्ष अपहार का रूप में मिल जात थे। गाँव का अधिवासियों का जावन सादा था। बगाल क दक्खिना तल से कृषका का सादे जीवन का स्पष्टीकरण

मलामांति हाथा है। अपनी आवश्यक सामग्रिया का खरीदने और बचन के लिए गात्रा म राय का ओर से बाजार का प्रबंध हाता था। इसका प्रबंध एक कर्मचारी जिस हट्टपति कहा जाता था, करता था।

पूर्वमध्यकाल म भूमि का नाप के लिए आठ प्रकार का नाप प्रणालिया मित मिश्र प्राप्ता म मिश्र मिश्र समय म प्रचलित थी—१—कुल्यावाप २—द्राणवाप ३—पाठक ४—हल ५—हस्त ६—पादावत, ७—नन और ८—नालु।

कुल्यावाप गुप्तकाल म भी प्रचलित था। कुल्य एक अनाज नापनवाला टाकरी का कहा जाता था। इस एक कुल्य का अनाज जितना भूमि म बाया जा सकता था उतना भूमि एक कुल्यावाप कहलाती थी। द्रोण का भी अनाज नापन के लिए प्रयोग किया जाता था। कुल्यावाप की मांति इस भी द्राणवाप बना जाने लगा। द्रोणवाप कुल्यावाप का पहाडपुर साम्रपत्र द्वारा आठ गुना था। तीसरा माप पाठक कुल्यावाप का पाँच गुना समझा जाता था। यह एक बड़ा माप है। एक हल से जितना भूमि बाई जा सकता था उतनी भूमि हल कहाती था। एक हल से लगभग १० बाधा भूमि का अनुमान लगाया जाता है। हस्त का प्रयोग भी भूमि माप म किया जाता था। हस्त सम्भवत राजा का हाथ ही माना जाता था। पादावत एक बगफुल के समतुल्य अनुमान किया गया। इस माप का उल्लेख बलभी लख म प्राप्त होता है। बगाल के सन लख म नल पौल के नाम पर नल नाप का विवेचन है। गहड़वाल राजा गाविन्दचंद्र के लखाम नालु शब्द माप के लिए प्रयुक्त हुआ जा सम्भवत इसी नन' शब्द से बना है।

कृषि—जसा कि पहल बताया गया है ग्रामीण जनता कृषि-काय म लगी हुई थी। गहू जो चना सन गन्ना आदि फसने उगायी जाती था। कृषक का अपनी अधिकृति भूमि का मालगुजारी देना पडती थी। यह मालगुजारी ११वा शताब्दी तक भाग भाग के रूप म उपज का छठा भाग राय का दी जाता था किन्तु १२वा शताब्दी म सिक्का के प्रचलन से नवद मालगुजारी दी जान लगा। तत्कालीन राजाआ न कृषि की ओर विशेष ध्यान दिया। राज्य का ओर से सिंचाई का उत्तम प्रबंध किया गया। नहरें भा निकाली गई जिससे सिंचाई सरल हो गई। कुये तथा तालाब का निर्माण कराया गया। परमार-नरेश मांज न एक विशाल जलाशय का जा मसार का कृत्रिम झील म भवस बड़ा था निर्माण कराया था। राजतरंगिणी म मूय नाम के एक राय कर्मचारी न किमी नष्टप्राय बाँध को ठीक कराया था। बल्हण न किया है कि मूय न नशिया को इस तरह नचामा जम सँपेरा सोपा का नचाता है। राजद्र चाल (१०१८-२५) न भी अपनी राजधानी के सभ्रिकट बहुत बड़ा जलाशय बनवाया था। मुराष्ट्र का मुन्शन झील इसी काल में बड़ाई गई। इलम नगी पर बाँध बनवा कर सिंचाई की जाता थी। चन्ल राजाआ के झील निर्माण का मान गया से प्राप्त होता है। कृषक का सिंचाई-कर अनग से देना पडता था। कृषि-काय म विशप राजाश्रय प्राप्त था।

वाणिज्य-व्यापार एवं उद्योग—मध्यकालीन गया म पान होता है कि इस युग म व्यापार का सुविधा के लिए व्यावसायिक सध अथवा श्रणियाँ स्थापित का गई था। विभिन्न प्रकार के व्यवसाय के लिए पुषक-पुषक श्रेणियाँ था जिनका प्रयान अपने व्यवसाय का उन्नति के लिए सन्व प्रयत्नान रहता था। उक्त काल के चित्र ओर

मृतियों द्वारा तत्कालीन भारतीय वस्त्रों का परिज्ञान होता है। मयूरा और बनारस में मृती कपड़े तयार होते थे। बंगाल में ममन के लिए प्रसिद्ध था जिनकी प्रशंसा अरब यात्री मुहम्मद और इब्न बतूता ने की है। कपड़े के अतिरिक्त नमक भी तयार किया जाता था। मध्यकालीन 'गंगा में मत्तवणाकर' शब्द प्रयुक्त हुआ है। मात्र पत्तय का भी व्यापार होता था। मत्त की उत्पत्ति होती थी। चमेल रेशम परमल के मत्तों का लेख में मत्त शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे अनुमान किया जाता है कि चीनी भी पत्त की जाती होगी। पहाड़ पर की मत्तों से इस काल की मिट्टी की प्रतिमायें जोर धरे हुए वस्तुओं का ज्ञान होता है। घड़ा गोंडा हडिया तमारी 'गानटेन दवान आदि अधिक परिमाण में मिले हैं। तत्कालीन सगतराश प्रस्तर पर अपनी कला का प्रस्न करते थे जिन्हें देखने से उस काल की कला का बमव स्पष्ट हो जाता है। कांस्य की मूर्तियाँ ढालने और वहमय प्रस्तरों से विभिन्न प्रकार के आमूषण बनाने का काम होता था। सोने चाँदी के पात्र बनाये जाते थे। अरब यात्री ने लक्ष्मणसेन के महल के सोने चाँदी के बने बतना का वणन किया है।

अन्तर्देशीय और अन्तर्राष्ट्रीय दोनों व्यापार प्रतावस्था में थे। देश में नदियों और राजमार्गों से नावों तथा बलगाडियाँ पर सामान आया जाया करता था। मार्गों पर उतारनामागताना बेपमाना शक्य से पता चलता है कि बलगाडियाँ सड़कों पर चला करती थीं जिन पर सामान ढादकर एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता था। हिमसाग ने भी इस प्रकार की सड़कों का उल्लेख किया है। उज्जैन और कन्नौज उत्तरी भारत के प्रसिद्ध नगर थे। इनके अतिरिक्त पाटलिपुत्र अयोध्या मयरा काशी भी व्यापारिक केंद्रों से बड़े महत्वपूर्ण थे। भारत से एशिया के अन्य देशों को जनेत्र माग आते थे। मय एशिया चीन निंबत अरब आदि देशों से भारतवर्षिया ने बहुत पहले से ही व्यापार करना प्रारम्भ कर दिया था। उपनिवेश सस्थापन में भारतीय व्यापारियों को बहुत सहायता मिली। बाहरी देशों से व्यापार करने के दो माग थे—थल माग और सामुद्रिक माग। ताभ्रलित्त भारत का प्रसिद्ध बंदरगाह था। हिमसाग ने इसका विषय में लिखा है कि व्यापार की सुंदर वस्तुएँ ताभ्रलित्त में एकत्रित रहती हैं। यहाँ से नका और चीन जादि की जहाज जाते थे। दक्षिण में कोर काई कावेरी पड्डिनम जोर पडिचम में मडौच प्रसिद्ध बंदरगाह थे। थल मागों में भारतीय व्यापारी अरब पार कर योरप तक पहुँच जाया करते थे। जरा तथा इराक भेजी जाने वाली वस्तुओं का उल्लेख इब्न बतूता ने किया है। उनमें चंदन तौंग कपूर जायफल नारियन बवावचीनी कपडा मखमल हाथी दाँत मोती वस्त्र मय पत्थर आदि आते हैं। इनके अतिरिक्त नारियन आम पान तथा इली भी बाहर भेजी जाती थीं। बाहर से भारत में पत्र की अगुडी मगा शराब रेशमी कपड़े ममर पास्तीन गलाव जन खजर तथा घोड मगाय जाते थे।

पूर्वमध्यकाल में विनिमय के साधन सिक्के थे। ये सिक्के सोने चाँदी अथवा ताँबे के बने होते थे जिनमें चाँदी और ताँबे के सिक्कों का विशेष प्रचलन था। डॉ० चक्रवर्ती के मतानुसार बंगाल में मत्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् चीनी ही विनिमय का साधन बनी किन्तु काननर म पाननरेशो ने इस अर्थान घातु के सिक्के चलाय। ममनमान यात्रियाँ न भा बंगाल में कौडियाँ का प्रचलन पाया था।

## सामाजिक अवस्था

वर्गीकरण—पूर्वमध्यकालीन समाज और वर्तमान भारतीय समाज में इतना निकट सम्बन्ध है कि वर्तमान समाज का पूणतया समझ लन से ही पूर्वमध्यकालीन समाज का कल्पित स्वरूप साक्षात् जा सकता है। वर्तमान भारतीय समाज का प्रवर्तिका का मूल भूत ही हम अश्वत्थिक, उत्तरवर्दिक या मुद्रा के काल में वर्तमान पर उभरा विस्तृत शास्त्राज्ञा प्रशास्त्राज्ञा का उदय पूर्वमध्यकालीन महा हुआ था। ये शास्त्राज्ञे प्रशास्त्राज्ञे इतना विशाल एवं विस्तृत हुई कि इन्होंने मूल तत्त्व का ढक किया है। अतः वर्तमान समाज के अध्ययन का स्त्रि स पूर्वमध्यकालीन समाज का वर्णन करना महत्व है। वर्तमान सिद्ध समाज स्मृतियां द्वारा अनशासित है और इनका रचना समाय म दृष्ट था। विचाराधीन काल में चारा वर्णों का जन्मिन्त्व ता पूर्ववत् बना हुआ था माय हा प्रत्येक वर्ण अनेक शास्त्राज्ञा में विनार्जित हुआ गया। वर्णाश्रम धर्म का पालन एवं उभका रक्षा राजा का प्रमुख कर्तव्य माना जाता था। पालन रक्षा में धर्मपाल तथा विग्रहपाल राजाओं का जाति-व्यवस्था के रक्षक का पन्था दा ग है। उदाहरण प्रात का राजा क्षत्रिक र्व वर्णाश्रमपरमापामक' कहा गया है। अना उपजातिया का उत्पत्ति का उत्तरय किया गया है। उपजातिया का उत्पत्ति के अनेक कारण थ। मयप्रधान कारण ता जाविनाभाजन का विनि है। यहथा त्रण विभिन्न प्रकार के कुटार-उद्योग म लगत जा रहे थ। लाहा का काम करने वाला त्रहार मान का काम करनेवाला मुनार, चम का काम करनेवाला चमकार कहा जान रगा। अनुनाम प्रतिनाम विवाहा का भी उपजातिया का उत्पत्ति में काफा हाय है। किन्तु परिवर्तन यहीं तक सीमित नहू रहे सका। उपजातिया में भा विभाग हुए। इन विभागों का कुटा गात्र या प्रवर कहा जाता है। त्रहार, मुनार चमकार जाति सब में अनेक विभाग हुआ ग। पहर हम प्रमुख वर्णों पर विचार करें।

अलवर महात्त्य न बाह्य साध्यों के जागर पर यत् निष्कप निवाता है कि ब्राह्मणों का भी राजपूतों के प्रति सम्मान प्रणयन करना पन्था था किन्तु माय हा उन्होंने यह भावताया है कि कवन उन राजपूतों के आग ही ब्राह्मणों का श्रवना पडता था जा राय के अधिकारो हात थ। मामान्य ब्राह्मण सामाय क्षत्रिया से उच्च समझ जात थ।<sup>1</sup>

<sup>1</sup> Ibn Khurdadba and Al Idrisi: who were acquainted with the conditions prevailing on the western coast observe that the members of the remaining six castes Brahmans included paid homage to the members of the Sakstria caste from among whom kings were selected (Elliot I p 16 and p 76) This would support the contention of the Jains and Buddhists that the Kshatriyas were superior to the Brahmans and not vice versa It must be however noted that the Sabkufria caste is distinguished by these Muslim writers from the Katariya or the Kshatriya caste and that their testimony would therefore show that not all the Kshatriyas are the actual princes and their descendants were held superior to the Brahmans and revered by them The average

ब्राह्मण का स्थान प्राचीन भारत में काफी ऊँचा था। वे धर्म कर्म में शिक्षा दीक्षा में शासन जादि में समाज का पथ प्रदान करते थे। पूर्वमध्यकालीन समाज में भी उनका बड़ी महत्त्व प्रदान किया गया था पर स्वयं ब्राह्मणों ने ही अपना प्राचीन गौरव खाना आरम्भ कर दिया था। प्राचीन काल में वे अपने मानमित्र मित्रान की ओर अपना अहित अधिक ध्यान देते थे पर पूर्वमध्यकाल में अधिक विकास में मानव रूप में गया था। पत्र व पुरातनिक में वे पुजारी बने गये। मन्त्रिक प्रचार के कारण इन युग में मन्त्रिका का निर्माण अधिक संख्या में हुआ था। अतः इनमें बन्धुवत् पूजा करना अधिक प्रचलित हो गया था। ब्राह्मण राजकीय नीतियों में भी योग्य थे। पातकशील नरणा की मना में ब्राह्मण सनापति का काम करने लगे थे। दानपत्रों में ब्राह्मणों का खूब दान देने का उल्लेख मिलता है अतः ब्राह्मणों का कृपिकार्यों में उगा रहने में शक्यता होती है। ये वणिज्य व्यवसाय में भी भाग लेने लगे थे। ब्राह्मणों के हाथ में राजकाज भी था। इनमें से न समस्त ही राजा का ब्राह्मण जाति का बताया है। मन्त्रालय में ब्राह्मणशास्त्री का ब्राह्मण होता है। किन्तु इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि ब्राह्मणों ने अपने परम्परागत कर्तव्यों में मूल भाग लिया था। ब्राह्मण द्वारा सामन्त मामला तथा तन्शास्त्रिक अध्यापन का विवरण प्राप्त होता है।<sup>1</sup>

ब्राह्मणों के कुछ प्रमुख कर्तव्यों में सम्बन्ध में अनेक महोपदेश मिलते हैं—

जिन व्यवसायों की लिखित अनुमति ब्राह्मणों को दी गई थी उनमें अतिरिक्त में ब्राह्मणों वगैरे विभिन्न प्रकार के कार्यों में मग्न थे। कुछ ब्राह्मण धार्मिक कृत्यों का अनुसरण करते थे। चीता तथा अन्य पशुओं को खाल तैयार हुए ईं वर एवं उमकी प्रवृत्ति पर नगा की भाँगे भौंड में धारयान देन वा ब्राह्मणों का उल्लेख अत्र इसी न किया है। कुछ ब्राह्मण अध्यापन कार्य करते थे और पाठशाला तथा विद्यालयों का संचालन करते थे जहाँ वे निःशुल्क शिक्षा प्रदान करते थे। जरी (Jurist) ज्योतिष गणितज्ञ कवि तथा दार्शनिक जैसा कि अवगत सूचित करता है अनेक ब्राह्मण वगैरे ही थे। (दिलियट १ प ६) प्रशासन कार्यों में ब्राह्मण वगैरे ही अधिक भाग लिए जाते थे। यद्यपि स्मृतिकारों ने यह विधान बनाया है कि ब्राह्मण नीतियों में करें किन्तु उनका आशय सरकारी नीतियों में था क्योंकि उनका भी कथन है कि केवल ब्राह्मण ही मन्त्रिमंडल तथा यायसभ्यों पर नियुक्त किया जाना चाहिए—

*The Rashtrakutas and Their Times* pp. 32-33

सम्पूर्ण देश का छात्रों से राजा में विभक्त हो जाना न केवल राजनीतिक स्थिति में अहितकर सिद्ध हुआ प्रत्यंत सामाजिक जीवन में भी इसने सकीणता का राजा रापण किया। पूर्व मध्यकालीन भारत की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करते समय हमें राजाओं के पारस्परिक व्यवहार का ज्ञान प्राप्त किया था। राजाओं

Kshtriva however did not enjoy a status superior to that of an average Brahman for from the *Chachanama* we learn that the principal inhabitants of Brahmanland supported the contention of the Brahmins that they were superior to the rest of the population — *The Pahlavakas and Their Times* p. 3-4

<sup>1</sup> ए० इ० १५ प० २९८



के व्यक्तिगत द्वेष एव बलह का सीया सम्बन्ध दोनों प्रदेशों की प्रजाओं से जड़ जाता था। प्रजा अपने राजा के शत्रु को अथवा उसकी प्रजा को अच्छी नज़ि से कैसे देख सकती थी। इस परिस्थिति का प्रतिफल यह हुआ कि दो विभिन्न स्थानों की समान जातियाँ मही अंतर पड़ गया। स्थान के आधार पर उपजातियों गोत्रों अथवा प्रवरों के निर्माण के मूल में बहुत कुछ उपरोक्त कारण ही परिलक्षित होता है। ब्राह्मणों का पचगौड में विमाजित हो जाने के कुछ अथवा कारण भी विद्वानों ने बताया हैं जिनमें स्थानांतरण भी एक प्रमुख कारण माना गया है। जब ब्राह्मणों में सरयपारी का पचगौड सारम्बत गौड तथा शकद्वीपी शाखाओं का निर्माण हो गया। उपरोक्त नामों के आधार पर तो यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि स्थानों के आधार पर ही यह विभाजन हुआ है। सरयू नदी के तट पर बसनेवाले ब्राह्मण अपने का सरयपारी कहने लगे। इसी प्रकार सरम्बती तटवामी सारम्बत और गौड देश में निवास करने वाले गौड कहलाये। तत्कालीन दान पत्रों से ब्राह्मणों की अनेक शाखाओं का बोध होता है। दक्षिण के माघाता साम्रज्य में पाण्ड्य पाठक लिखित शकन उपन्यास अभिनवोत्री चतुर्वेदी आदि के नाम प्राप्त होते हैं। जयचन्द्र के अभिनव में भी द्विवेदी त्रिवेदी आदि का उल्लेख मिलता है।

गान एव प्रवरों के निर्माण के पश्चात् गौटी-वेटी का सम्बन्ध भी सीमित हो गया। यह निश्चय हो गया कि अमुक गोत्र के ब्राह्मणों की कन्या का यान्त जमक गान के ब्राह्मणों से ही हो सकता है।

क्षत्रियों को समाज में ऊँचा स्थान प्राप्त था और ये ब्राह्मणों की समता में खड़ा होने का दावा करते थे। क्षत्रिय धर्म था यद् करना और प्रजा एव अनाथा की रक्षा। धर्म समय के क्षत्रियों (राजपूतों) की विशेषता पर प्रकाश डालते हुए एक महान्याय ने लिखा है कि अदम्य उत्साह राजमन्त्रिण प्रेम वचनमय आदि गण धर्म विद्वान् मान थे। उक्त विद्वान् राजपूतों के कुछ गणों में बहुत प्रभावित हुआ था और उनके जोरदार शासन में इन पर प्रकाश डाला है। समाज में क्षत्रियों का स्थान ऊँचा होने के प्रमुख कारणों में से राजनीतिक सत्ता का उनके हाथ में आना प्रमुख था। साथ ही इस युग में कुछ विद्वान् क्षत्रिय भी हुए। परमार राजा भोज तथा मण्डवान

1 High courage patriotism loyalty honour hospitality and simplicity are qualities which must at once be conceded to them and if we cannot indicate them from charges to which human nature in every clime is obnoxious if we are compelled to admit the deterioration of moral dignity from the continual inroads of and their subsequent collision with rapacious conquerors we must yet admire the quantum of virtue which even oppression and bad example have failed to banish The meaner vices of deceit and falsehoods which the delineators of national character attach to the Asiatic without distinction I deny to be universal with the Pajpurs though some tribes may have been obliged from position to use these shields of the weak against continuous oppression —*Tod Annals and Antiquities of Rajasthan* edited by Crooke II p 747 Quoted by Dr Ishwari Prasad in his *Mediaeval India*

नरेश गोविन्दचन्द्रदेव सुप्रसिद्ध विद्वान् थ। इतना ही नहीं इस युग में राजपूत राजे विद्वाना एव कसावारा का प्रथम दान में अपना गौरव समझते थे। इन समस्त कारणों का फलस्वरूप वे समाज के नेता समझे जाने लगे। तब से यहाँ एक बात ध्यान में लायें यह है कि सामान्य ब्राह्मणों और सामान्य क्षत्रियों में ब्राह्मणों का स्थान भी ऊँचा था। केवल राजा काज के अधिकारी क्षत्रिय (राजपूत) में ब्राह्मणों में ऊँच समझे जाते थे। ब्राह्मणों की भाँति क्षत्रिय भी जनक उपजातियों में उत्पन्न हुए थे। इस समय तक लगभग ३६ उपजातियाँ बन गई थीं। राजा काज के अनिश्चित कृषि-काय में भी क्षत्रियों को एक बहुत बड़ा सम्मान मिली हुई था। गारह्वा प्रताप के एक समय में दान ब्राह्मण क्षत्रिय सामन्त का उल्लंघन किया गया है।

अल्लेकर महोदय ने क्षत्रियों का अवस्था पर विचार करते हुए लिखा है कि जो शासन के अथवा उनके सम्बन्ध में वे अत्यन्त सुन्दर जावन विज्ञान थे। इन्हीं क्षत्रियों के साथ दण्ड का कठोरता में डिल्ली की जाता था। अल्लेकर ने कथन के अनुसार पर अल्लेकर महोदय ने बताया है कि चारों के अपराध पर क्षत्रियों का केवल दण्ड ही हाथ डार बाय पाँव से रहित कर दिया जाता था न कि ब्राह्मणों का भाँति इन्हें अज्ञान भी बना दिया जाता था। उक्त विज्ञान में भाग यह बताया है कि न तो सभी यादों क्षत्रिय थे और न सभी क्षत्रिय यादों थे। संन्यास में अथवा जातियों के नाम में सम्मिलित थे। अपने निर्धारित कार्यों के स्थान पर क्षत्रियों ने अन्य कार्य में अपना दिया था। राजकाज में क्षत्रियों का ही विशेष हाथ था। हनुमन्त ने जिन राजाओं का जातिसहित उल्लंघन किया है उनमें पाँच क्षत्रिय तान ब्राह्मण दो क्षत्रिय तथा दो शूद्र थे। इससे यह जाशय निकाला जा सकता है कि विचारार्थी जान के पूर्व भी राजत्व पर क्षत्रियों का अधिकार था।

क्षत्रियों की धार्मिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए अल्लेकर महोदय ने लिखा है कि प्राचीन क्षत्रिय राजाओं की भाँति अब ये बर्दिक यन्त्रों का जनपठान नहीं करते थे। अल्लेकर ने विवरण से यह ज्ञात होता है कि वे वेदों का अध्ययन कर सकते थे और पुराणों के आदेशानुसार जावन विज्ञान थे।<sup>१</sup>

वेदों में कृषि काय तथा तत्सम्बन्धी अन्य उद्योगों से अपना हाथ म्वाच लिया था और अब वे पूणतया वाणिज्य व्यवसाय में लग गये थे। पूर्व मध्यकालीन युग में

<sup>१</sup> Those among them who were actual rulers or their relatives enjoyed the highest status in the land. It is probably these and not all the ordinary Kshatriyas who enjoyed immunity from the capital punishment as reported by Alberuni. It may be further noted that according to the testimony of Alberuni a Kshatriya guilty of theft was merely maimed in the right hand and left foot and not blinded in addition like the Brahman.

It may be noted that during our period as in earlier times not all the fighters were Kshatriyas and not all the Kshatriyas were fighters. The army consisted of a number of non Kshatriyas. A number of Kshatriyas also must have taken to professions theoretically not their own.

सभ्यता एवं श्रेणियों का उल्लंघन प्राप्त होता है। श्रेणियों का महत्त्व अब काफी बढ़ चका था। दैनिक आवश्यकताओं की अभिवृद्धि के कारण ही 'यवसायियों का स्थान अधिक सम्मानित हा सका था क्योंकि वाणिज्य यवसाय पर इनका एकाधिकार था।

यदि हम अस्तंकर महोत्सव के विचारा पर नष्टि डालते हैं तो यह बात जाना है कि वश्या को साम्राज्यत काई बहुत उचा स्थान नहा प्राप्त था और शूना के माय उनका गणना का जान लगा थी। बौद्धसायन धममूत्र (१११४) म यह स्पष्टतया पात हा जाता है कि वशय 'यावहारिक रूप म उसी श्रेणा म जात थ जिनम शूद्र थ व्याकि उनक 'व्याहिक' तथा अन्य रीति रिवाज समान थ अल्वरुनी भी मूचित करता है कि इन दाना जातिया का स्थिति म काई जिशय अन्तर नही रह गया था। अल्वरुना न जाग बताया है कि यदि काई वशय या शूद्र वद-मत्र का उच्चारण कर लता था तो उसकी जवान काट नी जाना थी। अस्तंकर महोत्सव न अल्वरुना के इस कथन का समर्थन करत हुए लिखा है कि अल्वरुनी की रचना म एम अनक स्पष्ट प्रमाण हात है जिनक आधार पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि वह धमशास्त्र साहित्य म पूणतया परिचित था एसी अवस्था मे यदि वह एमा विवरण प्रस्तुत करता है जा उक्त विषय पर स्मृतिया के प्रत्यक्ष विरोध म पडता ह ता हमक कारण का सहज कल्पना का जा सकता है कि स्मृतिया के विधाना के हात हुए मा व्यावहारिक रूप म वश्या का स्थिति मा शूना के स्तर तक गिर चका था।

पूर्व मध्यकालीन भारतीय समाज म एक सवया नवीन जाति का जन्मदय 'गेना' है। वह जाति है कायस्थ। कायस्था के कथनानुसार ता यह जाति अन्य जातिया के समान ही बहुत प्राचीन है और इसकी उत्पत्ति मा राजपूता का भौति पीराणिक है किन्तु इसका काई ऐतिहासिक प्रमाण नहा है। वास्तविकता जा मा हा हम काणै महादय के इस मत से सहमत हान म काई हिकथ नहा है कि छोटी शना'नी से पूर्व धमशास्त्रा म कायस्थ का उल्लेख कहा नही किया गया है हाँ पि तो स्मृतिया म इनका नाम मिलता है।<sup>१</sup> कायस्थ शब्द का प्रयाग विंशय अर्थवमाय लयन-काय करन वाला के लिए अनेक खाना म किया गया है। पूर्व मध्य कालीन लवा म निविक

Among the Indian Kings who were Yuan Chwang's contemporaries and whose castes are mentioned by him five were Kshatriyas three Brahmans two Vaishyas and two Sudras. It is therefore clear that kingship had ceased to be an exclusive monopoly of the Kshatriyas even earlier than our period.

The Kings and Queens of earlier periods are known to have performed Vedic sacrifices. In our period the e sacrifices had become unpopular so we do not find any king celebrating them. The Kshatriyas however were still permitted to study the Vedas for Alberuni tells us that they could read and learn them in his times (Sachan II p 136 — *The Rashtrakutas And Their Times* pp 371-32)

<sup>१</sup> धमशास्त्र का इतिहास भाग २, पृष्ठ ७५।

क पद पर काय करनेवाला व्यक्ति को कायस्थ कहा गया है।<sup>१</sup> सती प्रकार साहित्यिक एवं धार्मिक ग्रन्थों में भी त्रिपिक को कायस्थ घोषित किया है। वारणास नगर में कायस्थों ने जाति का रूप धारण किया। उसमें तथा ब्रह्मव्यास स्मृति में कायस्थों का एक पथक जाति वर्णन गर्ह है। कायस्थ का शब्द मगध सम्प्रदाय तथा अथ वेदव्यास ने इन्हें शूद्र घोषित किया।<sup>२</sup> किन्तु ये शूद्रों में नहीं गये सक् और कायस्थों की एक पथक जाति ही बन गई। ब्राह्मण धर्मिय और वंशों से भी इनका मन न गया सका। कायस्थों में भी निवासस्थानों के आधार पर अनेक उपजातियाँ बन गईं। मथुरा में निवास करनेवाले माथुर तथा गौड (बंगाल) के निवासियों को गौड कहना। शूद्रों का भी अनेक उपजातियों का निर्माण होता जा रहा था। ब्रह्मव्यास जा न शूद्रों में उतारने इस प्रकार किया है—

शुद्धी नापिता गोप आशाम सुम्मकारक

एत चाय च बह्व शत्रामिन्ना स्वकमभि (ब्रह्मव्यास स्मृति १-१०)

शूद्रों में भी सती प्रकार के वंश पाये जाते हैं। एक वंश वंश जिस अस्पृश्य समझा जाता है तथा दूसरा स्पर्श्य है। चाण्डाल अस्पृश्य शूद्रों में विशेष उल्लेखनीय है। वेदव्यास ने ब्राह्मण और वंश में अनलोम विवाह में उत्पन्न सन्तान को चाण्डाल घोषित किया है।<sup>३</sup> बृह स्पृणित काय करनेवाला की गणना भी अस्पृश्य में शूद्रों लगी और वंश पंचम वंश कहना न गये।

अल्हनी ने भी पंचम वंश का उल्लेख करते हुए बताया है कि इस वंश के लोग गाँव के बाहर रहते थे। इनमें डोम चमार नट आदि सम्मिलित थे। चाहमान शूद्रों में भी जमाटा बाजार तथा मट्टारक के नाम उल्लिखित हैं जो शूद्रों की उपजातियाँ थीं। स्वर्णकारों का जाधपुर शूद्रों में शूद्र घोषित किया गया है किन्तु वर्तमान समाज में वे वंश माने जाते हैं। उनकी आर्थिक स्थिति और उनका व्यवसाय ही जिसमें उन्हें उच्च वर्गों के निकट सम्पर्क में आना पड़ता है इसके मूल में है।

सामाजिक रीति रिवाज एवं नियम—यद्यपि प्राचीन सामाजिक नियमों की महत्ता अब भी पूर्ववत् बनी रही किन्तु विभिन्न उपजातियों के उदय ने कुछ नवीन रीति रिवाजों एवं प्रथाओं को जन्म दिया। उपजातियों में पापकर्म की भावना तोत्र थी अतः रीति रिवाजों में विभिन्नता जाना आवश्यक था। प्राचीन काल में प्रचलित आठ प्रकार के विवाहों का उल्लेख इस यग में नहीं मिलता है पर अन्तजातीय विवाह का वर्णन हमें यज्ञ-यज्ञ प्राप्त हो जाता है। एक प्रशस्ति में पात होता है कि हरिश्चन्द्र नामक किसी ब्राह्मण ने ब्राह्मण कन्या के अतिरिक्त एक क्षत्रिय कन्या से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किया था।<sup>४</sup> पाल तथा सेन लखा से भी हम इस प्रकार के उत्साहरण प्राप्त होते हैं। ब्रह्म रिवाज का प्रथा का काफी जोर था पर राजाओं में ही इसका अधिक प्रचार था।

सती प्रथा अथवा जीहूर—सती प्रथा का श्रीगणेश प्राचीन काल से ही हुआ गया था। शूद्रों का माता तो पति को मनासत्र जानकर ही मरती थी गई थी। शूद्रों की बहन या बहिन भी पति के दहान के पश्चात् सती होने जा रहा थी। विचारार्थी काल में इस प्रथा ने और जोर पकड़ लिया था। पति के दहान के पश्चात् विधवाओं का

<sup>१</sup> इ० हि० ब० ६५५।

<sup>२</sup> धार्मिक किरात कायस्थ मालाकार कुटुम्बिन

एत चाय च बह्व शत्रामिन्ना स्वकमभि । वेदव्यास स्मृति १-१०

<sup>३</sup> ब्राह्मण शूद्र जनित चाण्डाली धर्मवर्जित—वेदव्यास स्मृति १-१०।

<sup>४</sup> ए० इ० १८ पृष्ठ ९५।

जीना पाप समझा जाने लगा। स्मृति प्रथा में भी सती होने के प्रमाण प्राप्त होते हैं। चेदि लेल में गानेयदेव की सती पत्निया के सती होने का उल्लेख किया गया है। डा० ईश्वरी प्रसाद ने सती प्रथा पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि राज-परिवारों में काफी सरया में स्त्रियाँ समय-समय पर सती होती थीं। यह प्रथा इतनी प्रचलित थी कि साधारण घरा की स्त्रियाँ भी विधवा होने पर सती हो जाती थीं। कभी कभी वे स्वच्छा से इस व्रत का पालन करती थीं और कभी उन्हें समाज सती होने के लिए बाध्य करती थी। डा० ईश्वरी प्रसाद ने बतलाया है कि भी कर्ण चित्रण किया है जो उस समय समाज में प्रचलित था।—किंतु यह अवस्था राजपूत वर्ग में ही अधिक थी। शप समाज इसका पालन इतनी बढोढ़ता से नहीं करता था।

भोजन बसन तथा आभूषण—पूर्व मध्यकालीन अभिषेखा में शोधन चावल तथा फल के नाम वार वार जाते हैं जिससे यह परिनिहित होता है कि ये राजपूत प्रमुख अंग थे। मांस भक्षण एवं मदिरा का भी उल्लेख अभिषेखा में किया गया है। बगान में शक्ति मत का प्राबल्य और मंत्रायन के प्रचार के फलस्वरूप वहाँ मांस भक्षण एवं मदिरा पान पर काफी जोर दिया जाता था। अष्टम शती के एक ग्रंथ में यह बात बताता है कि ब्राह्मण भी मांस भक्षण करते थे। किन्तु सभी ब्राह्मणों के लिए मांस भोजना उचित नहीं जाना जाता। प्रताहार राजवंश के राजा से यह बात होता है कि ब्राह्मणों को मांस भक्षण करने पर क्षत्रियों में सुरापान प्रचलित था। मरा वचनवाला स्त्रिया का भी वाद्य हम कुछ खाते से होता है।

तत्कालीन स्त्रियाँ के आधार पर वेश प्रथा का अनमान करने अधिक तक संभव नहीं जान पड़ता और इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि स्त्रियाँ अपने सम्पूर्ण

६ The practice of infanticide was common amongst them (Rajputs) and female children were seldom suffered to exist even in the most respectable families. Equally baneful was the custom of Sati which resulted from time to time in the death of a number of women in royal households which were universally polygamous. The practice became so common that even women of ordinary status burnt themselves to death sometimes of their own free will but more often under the pressure of parents and kinsmen obsessed by a false notion of family pride.—Dr Ishwari Prasad, *A Short History of Muslim Rule in India* p 24

डा० ईश्वरी प्रसाद का *Medieval India* भी देखिये—

The Rajput honoured his women and though their lot was one of appalling hardship from the cradle to the crematorium they showed a courage and determination in movements of crisis and performed deeds of valour which are unparalleled in the history of the world. The custom of Jauhar or self immolation though its cruelty seems revolting to us—had its origin in that high feeling of honour and chastity which led Rajput women to sacrifice themselves in the extremity of peril when the relentless invaders hemmed in their husbands on all sides and when all chances of deliverance were lost

शरार का डका रतना नहीं चाहती थी अर्थात् चादर का प्रयोग कम हुआ चला था। वास्तव में मूलकारण तो सौंदर्य के प्रदर्शन के निमित्त मूर्तियाँ का नग्न अथवा अर्ध नग्न दिखलाना रहे समाज में इस प्रकार का कोई वेश भूषा प्रचलित नहीं थी। स्त्रियाँ शृंगार प्रिय अवश्य थीं किन्तु शृंगारिता का मापण्ड आधुनिक युग की भाँति नग्न न था। वे अपने शरार का वस्त्र तथा आभूषण में पूर्णतया डकी रहती थीं। नारा मूर्तियाँ का भी मूर्तिकार आभूषण से कपल इसलिये जानते थे कि उनका वस्त्रविहानता अथवा नग्नता पर एक आवरण पड़ जाय। अधिकांश वनमान आभूषण का प्रचार विचाराधान काल में भी था।

मनोरंजन के साधन—जामोद प्रमाद के प्राचीन साधन अथवा विद्यमान थे। शतरंज (आधुनिक शतरंज) का खेल काफी प्रिय था। संगीत एक नृत्य का आयोजन विशेष अवसरों पर हुआ करता था। धार्मिक अवसरों पर रथ-यात्रा की व्यवस्था का जाता था। इनके अतिरिक्त घूँत ग्रीडा भी समाज में प्रचलित थी जिम पर कर लगता था। परमार चामुण्डराय को प्रशस्ति से इसका प्रमाण मिलता है। विभिन्न खेल कूड़ा में भी लागू भाग लिया करते थे। आखेट भी कुछ लोगों के लिए मनोरंजन का एक साधन था।

व्यक्तिक चरित्र—समाज में व्यक्ति का महत्वपूर्ण स्थान था क्योंकि अब समाज काफ़ी परिपक्व हुआ चुका था। यक्तियों के सगठित जीवन पर जार देन की आवश्यकता का अनुभव लोगों का होने लगा था और कभी कभी इस कार्य रूप में परिणत करने की भावना भी जगती रही। किन्तु जैसा कि प्रारम्भ में ही कहा गया है लोगों में अहमयता न घट कर बनी थी। जो कुछ बोर थे उन्हें अपनी बारीकियों पर घमण्ड था जो विद्वान् थे उनके लिए सारा सारा मुख था और जो दानगान् थे उनके लिए समस्त विश्व अथलालुप था। इस प्रकार व्यक्तिक गुणा से सम्पूर्ण समाज का वर्ण विशेष हित न होकर वह पतन का कारण बन रहा था। इस समय के समाज में छल कपट का घण्टा समझा जाता था। वचन का पानन करना लग अपने परम कर्तव्य समझते थे। शूद्र समाज के सम्बन्ध में तो कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता पर समाज के कर्णधार राजपूतों के लिए तो ईमानदारी और प्रतिभा पानन उनका आभूषण था। बहु विवाह का उल्लेख किया जा चुका है धार्मिक अवस्था का अध्ययन करते समय हम मंदिरों में असह्य देवतासियों के निवास का बतान भी पत्र पर इन सारा बातों के आधार पर यह निष्कर्ष कदापि नहीं निकालना चाहिए कि सम्पूर्ण समाज का चरित्रिक पतन हुआ चुका था। कामवासना की तृप्ति के लिए अधिकाधिक साह करनेवाला व्यक्ति हृष्य दृष्टि से देखा जाता था। इसी प्रकार केवल तथाकथित के निमित्त अतजानीय साह करनेवाला व्यक्ति भी समाज में सम्मानित नहीं होता था। विनायिका केवल कुछ राजपूतों तक सोमिन था। पर इतना अवश्य था कि माम मंदिरों के प्रयोगों में प्राचीन नतिक स्तर का नीचा गिराना आरम्भ कर लिया था। शक्ति मत का प्रभाव ही इसके मूल में है।

### धार्मिक अवस्था

ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान शूद्रों के समय से ही आरम्भ हो चुका था। पूर्वमध्यकाल तक तो इस पूर्णता प्राप्त हो चुकी थी जैसा कि अल्लकर महोदय ने बताया है केवल कुछ ही स्थानों पर बौद्ध धर्म का अस्तित्व रह गया था। चचनामा के अनुसार इस युग के आरम्भ तक सिंध में बौद्ध धर्म का काफी प्रभाव बना रहा। इसी प्रकार

१२वीं शताब्दी के अन्तिम चरण तक बंगाल में इस धर्म का बान्जाला रहा। जन धर्म का कुछ प्रान्ता में जार पर था। गुजरात में इस धर्म का अधिक बालबाला था। पर हिन्दू धर्म का प्राबल्य लगभग सम्पूर्ण भारत में था।

हिन्दू धर्म—अस्तंकर महोदय ने आगे बताया है कि यद्यपि कुछ प्रान्ता में जन तथा बौद्ध धर्म का प्रभाव स्थापित था तथापि यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि विचाराधीन काल में सनातन हिन्दू धर्म का काफी प्रचार वृद्धि हुआ था। माना कि गुप्त काल में हिन्दू धर्म का राधाधर्म प्राप्त होने हुए भा बौद्ध धर्म का बान्जाला स्थापित था पर स्थिति में शीघ्र ही परिवर्तन आया और ह्येनसाग ने देखा कि पञ्जाब तथा उत्तरा संयुक्त प्रदेशों का फाह्यान के समय में बौद्ध धर्म का माननेवाला था पुन ब्राह्मण धर्मावलम्बियों का क्षेत्र बन गया। कौशाम्बी धावस्ती कपिलवस्तु कुशीनगर तथा वशाला आदि प्रमुख बौद्ध स्थान या तो प्राचीन खडहर रह गये थे जथवा यहाँ हिन्दू धर्म का प्राबल्य स्थापित हो चुका था।<sup>१</sup>

अस्तंकर महादय का उक्त मत तकसगत है और विचाराधीन काल में हिन्दू धर्म अपनी पराकाष्ठा को पहुँच रहा था। प्रचार की दृष्टि से ही ऐसा कहा गया है। यहाँ हिन्दू धर्म का विभिन्न सम्प्रदायों का विवेचन पथक-पथक किया जायगा। हिन्दू धर्म का क्षेत्र मध्य दश हो चुका था। यहाँ से ब्राह्मणों ने बंगाल में ब्राह्मण धर्म का प्रचार किया था। बंगाल के राजाओं ने भी इस कार्य में काफी योग दिया था। इस योग की मजबूती बड़ी विपत्तियाँ यह है कि बौद्ध देवता जिसमें प्रारम्भ में बहुत मात्र परिवर्तन हो रहा था और काफी नीचता से बदरने लग और उनका म्यात्र पर नय देवी शक्तियों की प्रतिष्ठा प्राप्त होगी। इन्हें पौराणिक देवता कहा जा सकता है। लागो में विपत्तियाँ राजाओं और धनाढ्यों में दान देने की अभिरुचि अधिक था। इसी आय से चारा या र मंदिरों का निर्माण जारा से हो रहा था।<sup>२</sup> इस सम्प्रदाय

<sup>१</sup> In spite of this local ascendancy of Buddhism and Jainism in some of the provinces of India it must be however admitted that the period under review marked a distinct and decisive advance of the reformed Hinduism. It is true that in spite of state patronage of Hinduism Buddhism continued to prosper in the Gupta Age as the account of FaHien and the sculptures of the Gupta school of Buddhist art at Sarnath which represents the indigenous Buddhist art at its best clearly show. But the tide had turned and its effects were to be clearly seen in the seventh century. In spite of Harsha Yuan Chwang found that the Punjab and the Northern United Provinces which were definitely Buddhist at the time of FaHien had slipped back into heterodoxy. Sacred places of Buddhists like Kosambi Sravasti Kapilvastu Kusinagara and Vaisali were either wild ruins or populated by heretics even in Magadha Buddhism was not supreme. *The Rashtrakutas And Their Times* pp 269-70

<sup>२</sup> मंदिर निर्माण की दृष्टि से यह युग हिन्दू धर्म का सर्वोत्कृष्ट काल है। हाँ,

म भी हम अगल पृष्ठा में विचार करेंगे। तथा तथा मूर्तियां स यह परित्यक्त होना है कि अब त्रिदेवा के स्थान पर पंच देवा का उपासना होन लगी थी।

**गणधर्म**—विचाराधान काल में शिव और विष्णु की पूजा साथ साथ चलन आ रही। अल्लवर महादेव ने इस युग की धार्मिक सहिष्णुता तथा पारम्परिक धार्मिक समन्वय पर प्रकाश डालते हुए यह बताया है कि हिंदू धर्म के भा विभिन्न सम्प्रदायों में पारस्परिक समन्वय एवं साहचर्यता पयाप्त मात्रा में प्राप्त थी। यही कारण है कि हम एक ही घर में हान के उदाहरण शिव तथा विष्णु सम्प्रदाय के माननेवालों की सूचना मिलती है। उत्तरी भारत के बंगाल मध्य भारत मालवा तथा पूर्वी पंजाब में प्राप्त लखा के आधार पर ही यह ज्ञात हो सका है। पाल चेदि चंदेल आदि राजाओं के लखा में 'आम् नमः शिवाय' अथवा 'आम् नमो ब्रह्मणे' निगुण व्यापक नित्याशयम् उल्लेख है। बंगाल के लखा में भी शिव उपासना का उल्लेख किया गया है। इतना ही नहीं बौद्ध मतावलम्बी राजाओं के लखा में भी पाशुपत मत की प्रशंसा मिलती है। इस प्रकार के साक्ष्य स ता यह ज्ञात होता है कि विभिन्न हिंदू सम्प्रदायों में शिव मत का प्राबल्य सा था। कलचूरि लख में राजाओं को परम माहे देवर की उपाधि दी गई है और जो पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी बताये गये हैं। इस प्रकार एक अथ प्रमाण प्रतिहार लेख है जो अघनारीदेवर की प्रायना से प्रारम्भ किया गया है।

उपरोक्त साक्ष्य के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन शिवधर्म में पाशुपत मत का अधिक प्रचार था। मंदिरों के निर्माण का उन्मुख पीछे किया गया था। इस समय के निर्मित समस्त मंदिरों में स लगभग ७० प्रतिशत या इससे भी कुछ अधिक मंदिर शिवालय अथवा शिवमंदिर थे। अनेक राजाओं ने शिवमंदिर निर्माण में सक्रिय योग दिया। चंदेल चर्च परमार तथा सेन नरेशों द्वारा शिव मंदिर निर्माण का विवरण हमें लखा से प्राप्त होता है। इन मंदिरों में शिव की मूर्तियां स्थापित की गईं। इन मूर्तियों में काफी विभिन्नता पाई जाती है। अघनारीदेवर प्रतिमाएं प्राप्त हुई हैं और बरकपुर के सेन लेख में दसमुजी सदाशिव की मूर्ति का उल्लेख किया गया है।

**वृष्णधर्म**—वृष्णधर्म का प्रचार बंगाल से लेकर मध्य प्रांत तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश में काफी था। हमें ज्ञात है कि मागवत धर्म का प्रचार उत्तरी भारत में प्रथम शताब्दी ई० में ही हुआ चुका था और गुप्त वंश के शासकों ने इस राजधर्म को प्रोत्साहित किया था जिसके फलस्वरूप उन्हें 'परम मागवत' का विरुद्ध दिया गया था। तत्कालीन मुद्राओं पर विष्णु सहस्रनाम तथा विष्णुवाहन गरुड की मूर्तियां उल्लेख हैं। उज्जयिनिरि में शपथायी विष्णु की प्रतिमा प्राप्त हुई है। लगभग सातवीं शताब्दी में वृष्णधर्म में वृष्ण का आविर्भाव हुआ जो बंगाल में वृष्ण सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुआ। यहां इस सम्प्रदाय का खूब प्रचार हुआ। वृष्ण-लाला का प्रदर्शन इस प्रदेश में किंसे

यह अवश्य है कि इस युग में अधविश्वासों का अधिकाधिक सख्या में जन्म होता है कमलाण्डों का प्राधान्य स्थापित हो जाता है पर साथ ही इस सत्य को भी उपेक्षा नहीं की जा सकती कि इसी समय हिंदू धर्म अपने प्रतिस्पर्धी जन तथा बौद्ध धर्मों पर वास्तविक प्रभुत्व स्थापित कर सका।



श्रुतिगत ऋग्वेद सहाता या इसका प्रमाण हम आठवां शताब्दी के पहाड़पुर का खुदाई से प्राप्त होता है जहाँ प्रस्तर पर कृष्ण-लोला के चित्र उत्कांग है। वष्णव मत का राज्याश्रय भी प्राप्त हुआ था। सन वशीय राजाओं के लक्षा से हम यह जान होता है कि उनकी अभिरुचि वष्णव मत की ओर अधिक थी। उत्तरो भारत के विभिन्न स्थानों में प्राप्त दानपत्रों से भी भगवान् वासुदेव अर्थात् विष्णु का उपासना के प्रचार का वाद्य होता है। उत्तर भारत तथा बंगाल में पर्याप्त सख्या में विष्णु प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। बंगाल में चतुर्भुजी विष्णु प्रतिमाएँ बहुतायत से प्राप्त हुई हैं। विचाराधीन काल का स्वर्ण-मुद्राओं पर लक्ष्मी की आकृतिया उत्कोग को जाती थी। इन सारे साक्ष्यों से यह परिलक्षित होता था कि वष्णव मत काफी जार पकड़ चुका था।

कुछ अन्य सम्प्रदाय—हिन्दू धर्म की दो प्रमुख शाखाओं पर ऊपर प्रकाश डाला गया है किन्तु इनके अतिरिक्त भी कुछ अन्य सम्प्रदायों का उदय हो चुका था। इन सम्प्रदायों में शक्ति सम्प्रदाय नाथ सम्प्रदाय आदि तथा नूर्योपासक गणेश पूजक आदि भी अपना कुछ पथक अस्तित्व रखते थे। ये ब्राह्मण धर्म के अर्थात् सिद्धान्तों को कुछ अशांति के मानते हुए भी अपना एक पथक मते रखते थे। इनके पथक इष्ट देव थे जिनकी आराधना पर अधिक बल देते थे।

शक्ति-पूजा के पीछे नारी के महत्व प्रदान करने की प्रेरणा का ही हाथ ज्ञात होता है। नारी का शक्ति मानकर नारी-देवताओं को सृष्टि की गई थी। इनमें भगवती दुर्गा अम्बा कचनदवी सबमंगला लक्ष्मी आदि देवियाँ के पूर्व मध्ययुग में काफी महत्व प्रदान किया गया था। इन देवियों के नाम इस युग के लक्षा में प्रचुरता से मिलते हैं। किन्तु शक्ति पूजा का श्रीगणेश काफी पहले ही हो चुका था। गुप्तकालीन उदय गिरि की गुफा में सप्तमातृका का तथा महिषमर्दिनी दुर्गा की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। परवर्ती गुप्तों के शासन-काल में इस मत का विशेष प्रसार हुआ था और तब से निरन्तर यह जार पकड़ता गया। देवापुराण में ताँ देवियों की पूजा का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है। शक्ति की उपासना के प्रचार में बड़े कारणों का हाथ है। सबसे महत्वपूर्ण कारण तो यह बात होता है कि नारा का शक्ति मानने में जनता को काँड विशेष शुकलाहट न हो सका। प्रत्येक प्रचलित देवता के साथ एक देवी (जा उसका पत्नी के रूप में रहती है) को कल्पना कर ला गई जो मानव-जीवन का कसीटी पर मनोवर्णन ज्ञात हुई और इसे अपनाते में किसी का भी कोई आपत्ति नही हुई। यह व्यवस्था पूणतया विचाराधान काल की ही देन नही है प्रत्युत पहले भी इस प्रकार की भावना का श्रीगणेश ही चुका था किन्तु इस युग में इस विशेष गति मिली। फलतः जहाँ माहेश्वरी, वाराही नारासिंही वष्णवी ब्राह्मणी चामुण्डा आदि की मूर्तियाँ जा अब तक पृथक्-पृथक् निमित्त की जाती थी अब किसी विशिष्ट देवता के साथ बनाई जाने लगी। शिव पावती विष्णु-लक्ष्मी, आदि की युग्म प्रतिमाओं के निर्माण में उचित प्रेरणा के कारण-स्वरूप विश्वमान है। तांत्रिक प्रभाव में आकर तो शक्ति सम्प्रदाय कहाँ का कहाँ पहुँच गया। शक्ति-उपासका (शाक्त) न अन्यान्य तांत्रिक क्रियाओं का जन्म दिया जा लागा को महज ही आकर्षित कर लाने के लिए पर्याप्त थी। कला और साहित्य का भी शाक्त सम्प्रदाय ने अधिक प्रभावित किया और कुछ समय तो ऐसी स्थिति उपस्थित हो गई थी कि अन्य सम्प्रदायों के विलक्षण अथवा धीहीन-महो जान का आशका होने लगी। दुर्गा मन्दिर तथा भगवती-पूजा का उत्सव अनेक लक्षा में मिलता है। नारियाँ ने इन देवियों की पूजा में विशेष रुचि दितलाई और तत्कालीन साहित्य से यह ज्ञात होता है कि नारियाँ की मनाकामना सिद्धि का

एक मात्र साधन इही देविया की उपासना और पूजन था। बंगाल में तो शक्ति पूजा न और भी अधिक चार पक्या। वष्णव सम्प्रदाय में वृष्ण पूजा का उल्लेख पिछले पन्ना में किया गया था यहाँ राधा-वृष्ण के रूप में इस पूजा का प्रचार जान लगा। शीलता पण्डी कालिका तथा मनमा देविया का आराधना पर भी काफी चार किया जान लगा। अन्य प्रदेश में भी देविया की पूजा का प्रावलय स्थापित हुआ और वहाँ का चोमठ यागिनी का माँदर इसका प्रमाण-स्वरूप है। शाक्त सम्प्रदाय का प्रभाव कवन हिन्दू धर्म तक ही सीमित न रहा। इसमें बौद्ध तथा जैन धर्मों को भी पर्याप्त अंश में प्रभावित किया था।

शक्ति सम्प्रदाय का भाँति विचाराधीन काल में नाथ सम्प्रदाय का भी काफी चार था। इसकी उत्पत्ति तथा उत्पत्ति-काल के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। ऐसा अनुमान किया जाता है कि अत्यन्त प्राचीन काल से ही कुछ ऋषि या योगियों का तत्त्वज्ञान तथा योगिक क्रियाओं के प्रति अभिरुचि उत्पन्न हो चुका थी। योगियों का तत्त्वज्ञान हम प्राचीन तथा में ही प्राप्त होता है। इससे पूर्व न ही योग विद्या का प्रादुर्भाव माना जाया जाता है। एक महत्वपूर्ण बात यह है कि शिव को आदि योगी माना जाता है। योगशास्त्र के आदि प्रवर्तक शिव ही हैं। इसलिए इनका दूसरा नाम योगेश्वर भी है। मन्मथ योग तथा समाधिस्थ शिव की मूर्तियाँ पाई जाती हैं। किन्तु काफी समय तक इसे किसी पथक सम्प्रदाय के रूप में नहीं माना गया था। योगिक क्रियाओं को पथक महत्वपूर्ण स्थापित करने का प्रथम नाथ सम्प्रदायवादी का ही किया जा सकता है। शिव ही आदि नाथ भी कहे जाते हैं। गुरु गारुडनाथ नाथ सम्प्रदाय के इतिहास में प्रथम गौरवपूर्ण स्थान रखते हैं। उन्होंने विभिन्न योगिक क्रियाओं का प्रचार किया। इनके शिष्या की संख्या में उत्तरोत्तर बढ़ि जाती गई और शास्त्र ही नाथ-सम्प्रदाय का प्रभुत्व भारत में अनेक भागों में स्थापित हो गया। विद्वानों का यह सम्प्रदाय के सम्बन्ध में ऐसा मत है कि इस पर बौद्ध धर्म तथा शैव सम्प्रदाय का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। गर गौरवनाथ न जिस हठयोग को प्रदानना प्रदान की उसके उल्लेख आठवाँ शताब्दी के कुछ सातों में मिलता है। हठयोग द्वारा सिद्धि तथा मोक्ष प्राप्ति की कामना नाथ-सम्प्रदायवादी करते थे। नाथ सम्प्रदाय के कनकटे योगियों का भी बहुत बड़ा महत्व है। इनका मुख्य उद्देश्य जो भी हो ये धूम कर भिक्षाटन करते हैं। कापालिक मार्गी साधु भी नाथ सम्प्रदाय में ही सम्मिलित हैं।

शैव सम्प्रदाय पर प्रकाश डालते हुए यह बताया गया था कि भारत में शैवोपासना का प्रचार अधिक था पर साधु ही मूल तथा गणेश की पूजा भी कम प्रचलित न थी। गणेश तथा शिव के पुत्र ही माने जाते हैं अतः इनकी पूजा करने की शिवापासना का भी प्रेरणा मिति। पंचायत पूजा में गणेश का भी नाम आता है। मंगल स्नाना के लिए ही गणेश की पूजा प्रचलित हुई।

सूर्योपासना हमारे देश में प्राचीन काल से ही प्रचलित है। सातवीं शताब्दी के पञ्चान के चारों स विकसित सूर्योपासना का आभास मिलता है। गुप्तकाल में सूर्योपासना का काफी प्रचार था। प्रभावशाली भी सूर्योपासक था। विचाराधीन काल में अनेक मूल्य मन्त्रों का निर्माण हुआ था जिनके प्रतिष्ठान का उद्देश्य गृहस्थान प्रतिष्ठार तथा चरमान तथा में मिलता है। बंगाल के सन शासक विष्णुवर्धन तथा कर्णवर्धन मूल्य के परम उपासक थे और इसलिए उन्हें 'परमासीर' का विरु प्राप्त था। विचाराधीन काल में मूल्य की मूर्तियाँ का भी अधिक संख्या में निर्माण हुआ था।

ये मूर्तिया बहुधा पात्र शशी म का पत्थर पर बनती रही। दोना हाया म कमल का पुष्प लिए हुए स्य दवता की खरी मति प्राप्त होती है। निचल भाग म मूय के मान अश्ववाल रय का चित्र रहता है जिमक माला आर उपा तथा मध्या रविया की आइ निया उत्कीण रहती हैं। पात्र तथा मन वश के शासन का म इस प्रकार की मूय मूर्तिया काफी मध्या म निमित ह थी। मुस्तान का मूय मंदिर इस समय के मत्र प्रसिद्ध मूर्तियो म म था।

✓ अवतारवाद का विकास—अवतारवाद इस युग की न न थी प्रत्यत प्राचीनकाल स ही आयों न अवतार का कल्पना कर ती थी। विचाराधीन काल म अवतारवाद का महत्वपूर्ण विकास अवश्य हुआ। याज्ञण तदा जाण्यक म विष्णु क अवतारो मत्स्य कर्म, बराह नरसिंह आदि का उल्लेख किया गया है। महानारत क नारायणी पव म भी बराह वामन रामानि क अवतारो का विवरण प्राप्त जाता है। न अवतारो का प्रचार गुप्तयुग म भी खूब था जोर यनी कारण है कि तत्कालीन कलाकारो ने इनकी मूर्तियां निमित का थी। अवतारो का एकमात्र उदाय था गया मनुष्या को सासारिक कषा स मक्त करना अथवा पापाचार का अन्त कर पुण्य की स्थापना। कतत तागा म अवतारो क प्रति विशेष श्रद्धा का भाव जागत हुआ और पचत्वा की पूजा के माय-साथ या चौबीस अवतारो की मूर्तियां बनाकर उनको भी पूजा हान लगी। विचाराधीन काल म ही अवतारवाद म पराकाष्ठा पर पहुँचा था। मति कारो न अवतारो का मूर्तिया क निर्माण की ओर ध्यान दिया तो साहित्यकारो न तत्सम्बन्धी साहित्य क मजन की जाग। पुराणो म अवतारो पर पूण प्रकाश डाला गया। धर्म नशावतारचरित (१०६०२०) तथा जयदेव न गोतावित (११८० ई०) म अवतारो का विवरण प्रस्तुत किया। इस काव के अतिरिक्त म भी भगवान क विभिन्न अवतारो का उल्लेख किया गया है। सिद्धार्थो न अपन अवतारवाद म लिखा। अवतारो का मूर्तिया क निर्माण म विभिन्न कलाकारो क लिए चार जाठ तथा जय लगा।

✓ बौद्ध धर्म—बौद्ध धर्म क पतनामुग काल का उल्लेख्य म पिठ पठो म कर चुके हैं। उम स्थान पर अलंकर मन्त्रो क विचारा पर प्रकाश डाला गया था। आग उगत विद्वान न बताया है कि कन्नौज म बौद्ध धर्म का कुछ प्रश्रय प्राप्त था या ओर यही विचारा को मध्या म तक पहुँच गया था। किन्तु म ह्य क म्याया धर्म का प्रतिपत्त या इमन पीठ जनता की ओर अभिरुचि न था। ह्येनसांग मया रचित क ममण-कान म था बौद्ध धर्म का अपनी अष्टायु का आनाम प्राप्त हो चुका था। उक्त परिधिो न स्वयं बौद्ध मतावतन्त्रिया म भी अपन धर्म क मान्य म विरतत जात क विराम का उक्त किया है। उक्त गया क बौद्ध क य दिग्दर्शक कि अरु वहाँ का अवतारकित्तर का मतिरों वातु म पूणतया धर्म आधना तो नका धर्म (बौद्ध धर्म) विरतत जा जायगा। तातदा इतोती म नम न ब्रह्म मतिरों पर लगी तव वात चट कवा थी। पुत्रपर (आपूति पशावर) म जनसांग का एक जण ताग मना मितरों क था जिंक मन्त्रो म य कला जनता था कि ब्रह्म मन्त्रो म धारण कर कर थ। निशा का य विराम था रि मना क अन्त क मय थी, माय नक धर्म का जन हो जायगा। अन्तर मन्त्रो न जग य सिद्धा र दि रितो क भी नक धर्म की जीनायक म य नवी विनाय का यो न जात

था और इसलिए यात्री न भावी पतन से बौद्ध धर्म की रक्षा के लिए विभिन्न सम्प्रदायों के सम बय का बात बही थी।<sup>१</sup>

इन विवरणों से यह परिचित होता है कि बौद्ध धर्म अपनी प्राचीन महत्ता खाना जा रहा था। भारत में इस धर्म के पतनात्मक हानि का प्रमुख कारण विभिन्न सम्प्रदायों का प्रभाव है जिनमें बौद्ध धर्म की मौलिकता का क्षतिग्रस्त कर दिया। वसन्त प्रथम शताब्दी ई० सही भागवत धर्म के प्रभाव में आकर बौद्ध धर्म की महान यान शाखा का उदय हुआ था पर कालांतर में इस धर्म में इतने महान एवं आश्चर्यजनक परिवर्तन आय कि छठी शताब्दी ई० पू० और ११वीं १२वीं शताब्दी के बौद्ध धर्म में समता डटने में काफी कठिनाई पड़ सकती थी। पाँचवां शताब्दी में ही आचार्य जसग के ग्रन्थों में तान्त्रिक विचारधारा का समावेश प्रभावशाली ढंग से किया गया जिनके फलस्वरूप बौद्ध धर्म में तंत्र का प्राबल्य स्थापित हुआ। महायान सम्प्रदाय का प्राचीन स्वरूप नगमग सातवीं शताब्दी तक बना रहा किन्तु पूर्व मध्य युग में इस सम्प्रदाय में तंत्रयान न घेरकर लिया। साधारण लोग में दवी-देवताओं में पूजा आस्था थी। मंत्र का माक्ष प्राप्ति का साधन मानते थे। ऐसा विश्वास था कि मंत्र (धारणी) से मनुष्य पूणता को प्राप्त कर सकता है। इन सारी विचारधाराओं के फलस्वरूप बौद्ध धर्म में विभिन्न प्रकार के आडम्बरों न घेर कर लिया और मूल प्रत इन्द्रजाल माने वशाकरण आदि की भावनाओं से समस्त बौद्ध सम्प्रदाय पूरित हो गया। हृद्योग का माया में फस जाने के पश्चात् तो स्थिति और भी विकृत हो गई। शीघ्र ही तान्त्रिक बौद्ध धर्म ने अपनी युवावस्था को प्राप्त कर लिया और इसे वज्रयान सम्प्र

<sup>१</sup> The new ground gained in the interval was only at Kanauj where the number of the Vihars increased from 2 to 100 but this was due to the temporary impetus given by the patronage of Harsha and did not represent the tendency of the age. Buddhism had realised in the days of Yuan Chwan and I tsing that its days in India were numbered these Chinese pilgrims record a number of superstitious beliefs current among the Buddhists themselves about the destined disappearance of their religion from India. At Buddhgaya itself the brethren believed that their faith would disappear when certain images of Avalokitesvara in that locality would completely buried under sand and some of them were already more than chest deep under that material in the Seventh Century A D (Watters II p 115). A garment alleged to have been worn by the Buddha himself was shown to Yuan Chwang at Puru hapura at modern Peshawar it was in sadly tattered condition and the monks believed that the religion would perish the garment was no more. I tsing who came in the third quarter of the 7th century saw very clearly what way the things were moving he emphasises the necessity of a synthesis of the various sects if the rapid decline of the religion was to be arrested (Takakusu I tsing *A Record of Buddhist Religion* p 15) — *The Rashtrakutas And Their Times* p 270

दाय कहा गया। वज्रपान सम्प्रदायवाला ने योगिक क्रियाओं में मंत्र के साथ माय मुद्रा का भी स्थान दिया। तांत्रिक भाषा में मुद्रा' उसे कहते हैं जहाँ साधक किसी युवना का अपनी सगिनी बनाता है। इस साधना में सहज मुख (मोक्ष) पान के लिए योगिक गुप्त रीति का पालन किया जाता है। इसमें विविध धार्मिक कृत्य तथा देवी देवताओं की पूजा को स्थान देकर पौराणिक देवा का वज्रपान में अपनाया गया। किन्तु विकार यहाँ तक सीमित न रह सका। वज्रपान के साधका ने अपनी साधना में हठयोग जीर मेषुन का प्रधानता दी। ८४ सिद्धा का ही इसके प्रचार का श्रेय दिया जा सकता है। इनमें सरहृष्या तिलोपा नरोपाद कात्यायन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। वज्रपान सम्प्रदाय के जाचार्यों ने हठयोग के जिन साधना का उल्लेख किया था आनयाला पीपी न उनका दुरुपयोग किया। दगान तथा विहार वज्रपान सम्प्रदाय के प्रमुख ब्रह्म थ और नालन्दा तांत्रिक मत का ब्रह्म था। शक्ति की उपासना का बौद्ध धर्म में भी प्रचार हुआ और तारा देवी का बौद्ध शक्तियाम में प्रमुख स्थान प्रदान किया गया।<sup>१</sup> सिद्धों ने चर्यागान में शक्ति का बार बार उल्लेख किया है। वहाँ सामान्य स्त्रियाँ का कोई स्थान न देकर शाश्वत शक्ति की साधना पर बल दिया गया है। दसवीं स बारहवीं शताब्दी के बीच में सिद्धा ने इस मत के प्रचार में एंडी घाट का जोर लगा दिया। कानांतर में इस मत के नये रूपा को सहजपान तथा कालचक्रपान का सजा दी गई।

धार्मिक दृष्टिकोण से तो बौद्ध धर्म की उपरोक्त परिस्थिति अत्यन्त शोचनीय कहा जा सकता है क्योंकि जिन धार्मिक विद्वान्मनाओं एवं बाह्याङ्गम्वरा को चतुर्ता देते हुए बुद्ध भगवान ने नये पथ का सजन किया था और एक नये मत का सफल प्रतिपादन किया स्वयं उसमें ही समस्त दुःखों का अन्त था। पर कला की दृष्टि से यह परिस्थिति हितकर सिद्ध हुई। नये विचारों के परिणामस्वरूप जिन नये देवी-देवताओं का जन्म हुआ कलाकारों ने उनकी सुन्दरतम मूर्तियाँ की कल्पना की और ऐसी मूर्तियाँ का निर्माण किया जिनमें कला के उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं। तांत्रिक सम्प्रदाय की अनेक मूर्तियाँ पात्र शरीर में सेनयन की प्राप्ति हुई हैं। प्रस्तर

<sup>१</sup> अल्लेकर महोदय ने दक्षिण भारत में भी तारा देवी के मूर्तव का प्रदर्शन किया है और उन्होंने इस सम्बन्ध में विक्रमादित्य घण्टम का १०९-१६ ई० का एक अभिलेख उद्धृत किया है जिससे उनके मत की पुष्टि हो जाती है। उक्त विद्वान ने बताया है कि महायान सम्प्रदाय में तारा की पूजा स्थल तथा जल में आपत्ति के अक्षर पर सहायता के निमित्त की जाती थी। अभिलेख इस प्रकार है—

हरिकरिगलिफणि तस्करविपञ्जलाणवणिगा-धमभगामिनि ।  
 धारिकरणकार्ति धारिणि भगवति तारे नमस्तुभ्यम् ॥  
 या ज्ञानागयम-यनात् समुदिता प्रजेति या कथ्यते  
 या बुद्धस्य विभूतिदा विभवने बोधित्वरूपा परा ।  
 या हृद्ध्योग्नि तयागतस्य वसति स्फोतेव चाद्रोक्ता ।  
 सा तारा नयदु-खतापगामिनि प्राणास्तु वस्तयदा ॥

आगे अल्लेकर महोदय ने लिखा है—

(बौद्ध) धर्म सयसाधारण में अपना प्रभाव पूणतया लो घुका था और अपने पतन के अन्तिम सोपान पर पहुँच गया था।" *The Rastrakutas and Their Times* p 309

के अनिश्चित पात्र शली में धानु की-भी मूर्तियाँ उपलब्ध होती हैं। नागपुर में जो तांत्रिक मत का प्रधान केंद्र था वही मूर्तियाँ का वास्तव्य है। नागपुर में तांत्रिकों ने नानपाल तिब्बत तथा चीन में तांत्रिक मत का गहरा प्रचार किया था जिसके फलस्वरूप उन देशों में भारतीय सम्प्रदाय एवं विशेषतः भारतीय कला का भी प्रचार हुआ था।

**जनधर्म**—यद्यपि जनधर्म की भी प्राचीन महत्ता श्रुतीगत होती जा रही थी तथापि अभी उसकी स्थिति बौद्धधर्म की अपक्षा अज्ञात थी। उत्तर भारत में इस धर्म को राज्याध्यक्ष प्राप्त करने का गौरव मिर्जापुर जल्लेकर मन्त्रालयक शिल्प में विचाराधीन कान (राष्ट्रपति-युग) जनधर्म के इतिहास में दक्षिण में सर्वोच्च विक्रामायुग का नाम था। उत्तर भारत में इसकी नाकप्रियता अपक्षाकृत कम हो गई थी जिसके मूल में हिन्दू धर्म का पुनर्जात ही रहा। उत्तर भारत में विभिन्न राजाओं ने जन धर्म तथा विहारों को दान दिया था जिसका प्रमाण तत्कालीन शिलालेखों तथा दानपत्रों से प्राप्त होता है। पात्र युग में जब राजा का पत्नी द्वारा जन विहारों को दान देने का उत्सव किया गया है। वगान के पुण्ड्रवचन क्षत्र में अनेक जन विहार थे जिनको प्रायः हिन्दू राजाओं से दान मिल जाता था। मारवाड़ के चहमान युग में तीर्थकर शान्तिनाथ की देवयाना के लिए अग्रजान पान का विवरण प्राप्त होता है। दान का एक अन्य उदाहरण नामिक के निकट प्राप्त एक प्रशस्ति में मिलता है जिसमें सूयग्रहण के अवसर पर दान देने तथा दान का जायस जिन जाओर जन साधकों के भोजन की व्यवस्था का उत्सव किया गया है।

ब्राह्मण मतावलम्बी राजाओं द्वारा जन विहारों को दान देने के कई कारण हो सकते हैं। इनमें प्रमुख कारण तो दान देने की सव्यव्यापी प्रवृत्ति है जिसमें प्रमादित होकर राजा धार्मिक सस्थाओं को निर्पेक्ष्य भाव से दान दिया करते थे। किन्तु अन्य महत्त्वपूर्ण कारण जनधर्म का परिवर्तित अवस्था भी है। इस समय का जनधर्म ब्राह्मण धर्म के काफी निकट जा चुका था। जन मतावलम्बी पौराणिक देवी-देवताओं की पूजा करते लोग थे। मन्त्रवती को जन धर्म की विद्या-वेदिका में स्थान मिल चुका था। गणेश का अष्टारण मजावानी मति प्राप्त हुई है जिसकी पूजा जन लोग किया करते थे। अल्पकाल का गृह तथा शिव उपासना करना हमका प्रमाण है कि जनों में ब्राह्मण देवताओं का जागृता करने थे।

**कुछ सामाजिक धार्मिक विश्वास एवं आस्थाएँ**—पूर्व मध्ययुगीय ब्राह्मण बौद्ध तथा जन धर्मों का अवस्थाओं पर मन्त्र में प्रकाश डाला गया है जिसके अध्ययन में हम कुछ सामाजिक धार्मिक विश्वासों का वाद्य होत है। उत्साहरणाय दान देने का प्रवृत्ति धार्मिक मन्त्रिणुता मूर्ति पूजा आदि। धर्मनिरपेक्ष भाव में दान देना इस युग की विशेषताओं में एक महत्त्वपूर्ण वस्तु है। विचाराधीन कान में मति पूजा का प्राधाय था जिसके फलस्वरूप शिव में अधिक सरथा में मन्त्रियों का निर्माण होने लगा था। इन मन्त्रियों के उत्सव तथा उनकी व्यवस्था के लिए अनुदान की आवश्यकता थी। राजाओं के अनिश्चित जायस मन्त्रों में दान दिया करते थे। बहुधा मन्त्रिण ही दिया जाता है। मन्त्रियों के साथ साथ जागृता कमा कमा यज्ञितया शिक्षण सम्थाओं का भी दान देने थे। विचाराधीन कान में मन्त्रियों का निर्माण जाति को दान देने का उत्सव का उत्सव पिष्टपष्टा में किया जा चुका है। अहिन्दू उत्सवों में मां मन्त्रियों का दान देने की प्रथा का उल्लेख किया है। अहिन्दू उत्सवों के उत्सवों में उत्सवों को इस प्रकार मन्त्रित किया—

हिन्दू के राजा उस दशक सरदारों तथा घनाढ्य भक्त समय-समय पर अपना बहुमूल्य काय और जवाहिरात मूनिया को उपहारस्वरूप (दान-स्वरूप) दिया करते थे जिससे उनका इन अच्छे कार्यों का पुरस्कार मिले और वे अपने स्वर्ग के निकट पहुँच सकें ।<sup>1</sup>

दान-दन के मूल में स्वर्ग जान का अटूट विश्वास निहित था। दान-दन का महत्व का छाप प्राणी प्राणा के हृदय एवं मांस्तिष्क पर पड़ी थी। दान-दन का कुछ विशेष अवसर भी था। सूर्य या चंद्रग्रहण मुख्य पक्ष एकादशी अक्षयतथाया सक्रांत अधिक मास आदि के अवसर पर दान-दान अधिक पुनीत काय समझा जाता था। शुभ अवसर (जन्म दिवस विवाह आदि) पर भी राजा दान दिया करते थे। दान-दान का पद्धति का पूर्ण विवरण हम स्मृतियों में प्राप्त होता है। पूर्व मध्यकालीन काल में भी इसी विधि का पालन किया गया है। दान-दानवाला व्यक्ति शुभ अवसर पर उपवास रखकर गंगा स्नान कर भगवान् शिव या विष्णु का विविध पूजा कर तथा

था। वही कृष्ण स्नान के पश्चात्  
मनज भूत पिता गणान तपयित्वा)

अनेक दानपत्रों में प्रमाण विधि

वत् स्नात्वा कुशलतः । करतलादक त्रिभुवनपति वासुदेवस्य पूजा विधाय हुत्वा का उत्पन्न मिलता है। भूमि-दान-दान के पश्चात् दक्षिणा-स्वरूप स्वर्णमुद्रा दी जाता थी। शासन व्यवस्था के सम्बन्ध में पठते हुए हम राजाओं के लम्बे लम्बे दानपत्रों का पालन प्राप्त हुआ था जिनमें राजा यह घोषणा करता था कि अमुक भूमि तालाब वन, स्नान आदि सहित अमुक गात्र के अमुक ब्राह्मण को दान दी जा रही है और अमुक-अमुक राज्य पदाधिकारी सूचित किया जाते हैं कि उक्त भू-भाग से कर माँ बगार न लें। दानपत्रों का कितना टूट-दी जाना या इसका स्पष्ट चित्र उपरोक्त विवरण से हनार सम्मुख आ जाता है। इस प्रकार के अनेक दानपत्र प्राप्त हुए हैं। इतना ही नहीं राजा अपने उत्तराधिकारियों का भी यह सूचित करता था कि उक्त भू-भाग (दान में दिया हुआ भू-भाग) दानग्राहक वापस न लिया जाय। धर्म का बचन ही उत्तराधिकारियों का ऐसा करने से मना कर सवता था, क्योंकि राजा पर दूसरा बचन ही क्या डाला जा सकता है। अतः दानों राजा रख में यह लिखवा देता था कि दान-दान दिया गये भू-भाग का वापस लाने अथवा दान में बाधा पहुँचाने पर वह व्यक्ति नरकगामी होगा और इसके विपरीत इस नियम का पालन करनेवाला शासक स्वर्गगामी होगा।

पुण्यो नित्यगमिनो

विष्ठाया तु कृमि भूत्वा पितृभिः सह मरति।

इस प्रकार के राजा का दानपत्र के अंत में उद्घरण करके राजा अपना संतान से माँ-दान-ग्राहक का सुविधा पञ्चान की बात कह जाता था और पालन

<sup>1</sup> The kings of Hind the chiefs of that country and rich devotees used to amass their treasures and precious jewels and send them time after time to be presented to idols that they might receive a reward for their good deeds and draw near to their God. — Elliot II p 34 Quoted by Dr A S Altekar

उक्त उद्घरण से यह परिलक्षित हो जाता है कि दान-दान की प्रवृत्ति सम्पूर्ण भारत में पाई जाती थी।

करनेवाला को आशीर्वात तथा विरोधक को शाप दे जाता था। धार्मिक युग में जहाँ दान और पूजा का इतना महत्त्व हो। इन शापों से कौन नहीं भय माना रहा होगा।

मूर्ति पूजा का प्रादुर्भाव ब्राह्मण बौद्ध जन जादि सम्प्रदायों में ही हुआ था। इतना ही नहीं प्रत्येक सम्प्रदाय का यह सर्वोत्कृष्ट धार्मिक कृत्य था। ब्राह्मण धर्म के प्रत्येक उपशाखा में इसका प्रचलन था। पौराणिक देवताओं की आराधना भी इस युग की एक विशेष उत्कृष्टनीय विशेषता है। देवताओं का एक सम्प्रदाय में दूसरे सम्प्रदाय में सन्तुष्ट कर जाना भी महत्त्व की बात है। कुछ सबथा नवीन देवी देवताओं का भी उदय इस युग में हुआ था। वर्तमान हिन्दू समाज में देवा-देवताओं की नम्बी नालिका दान का दिनती है। इसमें क अधिकांश देवताओं का जन्म पूर्व मध्ययुग में ही हुआ था।

किन्तु विभिन्न प्रकार के सम्प्रदायों का उदय अथवा उनका विकास समाज में धार्मिक सहिष्णुता ने ही संभव हो सका। यद्यपि समलिप्ता की परिस्थिति कुछ इस ही प्रतिफल का घातक होती है किन्तु विचाराधीन कुन में योग्य अपन मत का प्रधानता प्रदान करने हुए भी दूसरे के मत का उपक्षिप्त दृष्टि से नहीं देखते। धार्मिक सहिष्णुता का सबसे बड़ा प्रमाण हिन्दू तथा जन मतावन्तम्बी राजाओं का अपने मत के मन्त्रियों एवं विहारों का दान देने के साथ ही अन्य मतवालों को भी दान देना है। वास्तविकता तो यह है कि भारत में केवल इन गिने हिन्दू सम्राटों पर ही धार्मिक असहिष्णुता का आरोप लगाया जा सकता है पर यह आरोप भी कुछ राजाओं के साथ न दहात्मक प्रश्न बन जाता है। हम जानते हैं कि गुप्त शासक परमभागवत हारा हुए भी बौद्ध तथा जन मतावन्तम्बियों के प्रति उदार दृष्टि रखते थे और कुछ ने तो उनके मत के प्रचार में योग दिया। इतना ही नहीं एक ही घर में बौद्ध तथा शक मतावन्तम्बी पाये जाते थे। राजघरानों का धार्मिक इतिहास यह बताता है कि यह आवश्यक नहीं था कि पुत्र पिता के धर्म का पालन करे। यानेवर का प्रभावितवधन शकमतावन्तम्बी था किन्तु उसके पुत्र बौद्ध थे। धार्मिक सहिष्णुता का एक प्रमुख प्रमाण अपना मत में इतर देवी-देवताओं का उपासना है। पाल नरेश बौद्ध धर्मावन्तम्बी होते हुए भी पौराणिक देवी देवताओं में रुचि रखते थे और वे इन देवी-देवताओं की मूर्तियों के निर्माण में सहायक सिद्ध हुए थे। राजाओं के अतिरिक्त जनसाधारण में भी धार्मिक सहिष्णुता का अंश कुछ कम नहीं था। ब्राह्मणतंत्र के प्रभाव में आकर बौद्ध मतवालों ने भी तांत्रिक क्रियाओं का प्रधानता प्रदान की और बौद्ध तांत्रिक मतानुयायियों ने ब्राह्मण देवताओं का जपनाया। एक युग में शिव विष्णु तारा तथा बुद्ध की उपासना धार्मिक सहिष्णुता का सर्वश्रेष्ठ प्रमाण है। परस्पर धार्मिक विश्वासों का आदान प्रदान भी इस काल का एक प्रमुख विशेषता है और साथ ही धार्मिक सहिष्णुता का एक चिह्न है। ब्राह्मणों के धर्म विश्वासों की मंगलास्नान मन्त्रान्ति या ग्रहण के अवसर पर दान देने में स्वर्ग का प्राप्ति होती है बौद्धों ने भी अपना दिया था और इसीलिए जनक बौद्ध मतावन्तम्बी राजाओं ने भी विधिवत दान दिया था। जनियों के साथ भी कुछ इसी प्रकार का सम्बन्ध चल रहा था। जन सम्प्रदायवालों ने भी ब्राह्मणों की दान पद्धति को अपना लिया था। ब्राह्मण धर्म ने अपने अवतारवाद का इतना विस्तार किया कि उमम मन्त्रालया गौतममुनि भी स्वयं पा गये। सुप्रसिद्ध कवि जयशंकर ने अपने गीतगावियों में अन्य ब्राह्मण देवताओं के साथ बद्ध की भी स्तुति की।<sup>1</sup>

<sup>1</sup> सदयहृदय दणित पणघातम् ।



इस धार्मिक सहिष्णुता के फलस्वरूप धर्म के क्षेत्र में भारताय समाज में एकता बनी रही और वास्तविकता तो यह परिलक्षित होती है कि इसी धार्मिक सहिष्णुता ने तत्कालीन समाज का पतनो-मुख बनाने से रोका था जयया राजा और प्रजा का सामाजिक प्रवृत्तियाँ समाज को पतनो-मुख करने का पर्याप्त थी। जीवन में विभिन्न अंगों को इस सहिष्णुता ने प्रभावित किया था। कला के क्षेत्र में भी इसने विकास का भाग प्रशस्त किया और नए सम्प्रदायों के कलाकारों को समुचित परिश्रम से देवता का मूर्तियों का सौंदर्य मिलने लगा।

## पूर्व मध्यकालीन साहित्य एवं कला

विचारार्थान काल की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता उसकी कुछ विशेष कलासम्बन्धी उपलब्धियाँ हैं। कला का प्रसफुटन इस युग की सबसे बड़ी वस्तु नहीं है इसका नाम प्राचीन काल से चलता आ रहा था। इस युग में कुछ क्षेत्रों में अधिकाधिक उन्नति हुई। साहित्य और वास्तुकला के क्षेत्रों में जो उन्नति इस युग में हुई वह असाधारण है। उस समय की कलाकृतियाँ आज हमारे गौरव का धनु बनो हुई हैं। साहित्यिक कृतियाँ वर्तमान साहित्यकारों एवं साहित्य विद्याधियों का पथ प्रदर्शन करने का क्षमता रखती हैं। इस युग में वास्तुकला विशारदों एवं साहित्यकारों की वाढ-मा आ गई थी। राज्याश्रय पाकर कलाकारों को उत्साह मिला। (यह दूसरी बात है कि कला कर्मियों को व्यक्ति विशेष या वर्गविशेष की कामनाओं की पूर्ति के निमित्त उनका इच्छाया द्वारा अनुशासित रही और उसका जमा स्वाम्प्राप्तिक विकास हो सकता था वसा नहीं हो सका।) साहित्य के विभिन्न अंगों पर जितनी रचनाएँ इस युग में हुईं वह मस्कृत साहित्य के काव्य में अपना अधिक महत्व तो रखती ही हैं माय ही व सम्या में भी अधिक है। कलित साहित्य का ओर ही साहित्यकारों को रचित अधिक थी और इसलिये उपयोगी साहित्य की रचना उपेक्षित र गई। अज्ञान साहित्य का आरंभ भी कुछ साहित्यकारों ने ध्यान दिया था। नीचे इन पर संक्षेप में प्रकाश डाला जायगा।

कलित साहित्य—स्थानाभाव के कारण समस्त साहित्यकारों का न तो उल्लेख ही किया जा सकता है और न महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों की तिथियाँ एवं उनका रचनाश्रम पर ही विचार किया जा सकता है अतः भवन नामकरण करके ही मनाय करना पडेगा। मस्कृत-साहित्य के विद्याधियों के मुख पर यह ब्रह्मवाक्य बगार सुनने को मिनता है उपमाकालिदासस्य भारवेरथगौरवम दडिन पदकालित्य माघे सति प्रयोगुणा, महाकवि कालिदास का विवरण हम गुप्तकालीन साहित्य का अध्ययन करते समय प्राप्त कर सकें हैं। दक्षिण भारत के महाकवि भारवि सातवा शताब्दी में आते हैं। इनका सुप्रसिद्ध ग्रंथ विराताजुनीय है। भारवि का कविता मस्कृत साहित्य में अथ-गौरव के लिए प्रसिद्ध है। भारवि जनश्रुत कायशरीर के जन्मदाता माने जाते हैं। वस्तुमा के राजा श्रीधर मने के अन्तर्गत में महाकवि भट्टि समा-अभिहित थे जिन्होंने रावण वध अथवा मद्रिकाव्य का रचना की। मस्कृत साहित्य के मन्त्र रथी गजरात निवासी माघ का जाविर्भाव भी इसी युग में हुआ था। इनका सुप्रसिद्ध महाकाव्य शिशुपाल-वध मस्कृत साहित्य की उत्कृष्ट रचना है। यह कालिदास जन्म

केवल पृथक् पृथक् करीर

जय जगदीश हरे।—गीत गावित्।

उपमात्रा भारवि जय गीरय तथा दण्ड पञ्चालित्य के लिए विख्यात हैं ता माघ म य तीना गुण विद्यमान है। यह उक्ति मल ही किमो सहस्र्य व ताप्रतम भावातिरव का प्रतिफल हो पर इतना ता स्वीकार हा करना हागा कि माघ का शिशुपान वन जनक भस्तिष्क एव हृदय दाना प ता की उत्कृष्टता का मजाव उत्तरण है। माघ व बाद का मारा पण्डित क्षमद्र का नाम विशेष उल्लेखनाय है। य ग्यारहवीं शताब्दी म हुए थ। इ हान जनक बहन् प्र था वा रचना का था जिनम बह्त्तया मजरी ण्शा वतार चरित कला विलास जादि विशेष उल्लेखनाय है।

काश्मार म ही बारहवा शताब्दी म एक दूसर सुप्रसिद्ध साहित्यकार हुए जिनका नाम मलक था। य काश्मार नरेश जयसिंह व समा पण्डित थ। मलक का श्रीकण्ठ चरित सुप्रसिद्ध महाकाय है। सस्कृत साहित्य व जगमगात रत्न श्रीहृष का उच्य बारहवा शताब्दी म हुआ था। य न बवल सफल कवि ही थ वरन साथ हा साथ य दशन व प्रवाण्ड विद्वान भा थ। इहा व शता म—

“अथप्रथिरिह क्वचिद् क्वचिदपि ध्यासि प्रयत्नामया  
प्राप्त मयमना हृठन पठति मास्मिन खल खलतु।”

अथात जिस प्रकार मरी बुद्धि सुकुमार साहित्य म चरनी है उमा प्रकार कठार तथा शुष्क माय का ग्रथिमा का सुनवान म फाडा करती है। इनका सब प्रण्ड तथा सस्कृत साहित्य का उच्च नाटि का महाकाय नपथ चरित ह। रण्णन-मण्ड्याद्य प्तका सुप्रसिद्ध दार्शनिक ग्रथ है। इनक अतिरिक्त थाहप न अय कइ ग्रथा की रचना का है। य कन्नोज नरेश जयचन्द्र व समापण्डित थ। पद्मगुप्त का नाम भा सस्कृत-साहित्य म गव व साथ लिया जा सकता है। इनका नवमाहसाकचरित ग्या रहवा शताब्दी की उत्कृष्ट रचनाआ म गिना जाता है। काश्मीर म दो जीर प्रमुख महाकवि हुए विल्हण और कल्हण। विल्हण न विनमाकत्व चरित तिलकर न कवल सस्कृत साहित्य व काप म अभिवद्धि का प्रत्युत इहान इतिहास व विद्याविद्या के लिए भा कुछ सामग्रा प्रस्तुत का है। कल्हण का राजतरंगिणा व लिए भा यही वाक्य कह जा सकत ह। दाना ही बारहवा शताब्दी म हुए थ। सुप्रसिद्ध कवि हम चन्द्र न ता कुमारपान चरित तिलकर दा भापाआ पर अपना पूण अधिकार रत्तन का परिचय दिया।

इस युग म कुछ सुप्रसिद्ध नाटककार भी हुए। इन नाटककारा न सस्कृत साहित्य का बहुत बने सवाये का। कालिदास व बाण भवभूति का ही सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है। इनका उत्तर रामचरित सस्कृत साहित्य का उत्कृष्ट ग्रथ है। इहान दा अय नाटक महावार चरित तथा मानवी माधव तिल। य विदम निवासा ओर कन्नोज नरेश यशावमा व समापण्डित थ। दूसर प्रसिद्ध नाटककार भट्टनारायण थ। इनका सुप्रसिद्ध ग्रथ वणासहार है। अय नाटककारा म मुरारि जयन्व और राज शखर का नाम विशेष उल्लेखनीय है। मुरारि का एकमात्र ग्रथ अनघराघव है। जयन्व न प्रसन्न राघव का रचना की। राजशखर न छ ग्रथा का रचना का जिनम बाल रामायण बाण भारत विद्वान मञ्जिका विशेष उल्लेखनाय है। इहान प्राकृत म वपरमञ्जरा का रचना का।

महाकाय एव नाटक व अतिरिक्त कथा साहित्य की भा इस युग म विशेष प्रगति हुई। कथा साहित्य का परम्पराता वृत्त पट्ट स हा चन जा रहा था। उपनशात्मक कहानियाँ ही लिखी जाता रही। विचाराधीन युग म पचनत्र की कहानियाँ समाज

म कापा प्रचलित थी। पंचतंत्र के आधार पर ही 'हितापदेश' की रचना हुई। नारायण पण्डित ने इसका रचना का था। सस्कृत कथा साहित्य में 'वह्लकथा' का काफी ऊँचा स्थान है। गुणाधर इसका रचयिता था। यह ग्रंथ पश्चात् की भाषा में लिखा गया था किन्तु मूल ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। इसके तीन सस्कृतानुवाद प्राप्य हैं। पहला बुद्धस्वामि का, वहलकथा श्लोकमग्रह दूसरा क्षमत्र की वहलकथामञ्जरी तथा तिसरा रामदेव का कथा सरित्सागर।

इस युग में साहित्य के क्षेत्र में जो सबसे महत्वपूर्ण कार्य हुआ वह काव्यशास्त्र के क्षेत्र में। इसी युग में काव्यशास्त्र का पूर्णता प्राप्त हुई। (और कुछ अंश में प्रारम्भ इस युग में ही मानना चाहिए।) डॉक्टर सुशोभ कुमार ने सस्कृत का यशास्त्र के इतिहास का जो काल विभाजन किया है और जो अत्यन्त प्रामाणिक है वह हमारे उपरोक्त कथन के समर्थन के लिए पर्याप्त है।<sup>१</sup>

काव्यशास्त्र के प्रथम आचार्य भामहू है जो काश्मीर के निवासी थे। इनका समय सातवीं शताब्दी के मध्य में माना जाता है। इनका 'काव्यालंकार' लिखकर अलंकार सम्प्रदाय का प्रतिष्ठापन किया। अलंकार सम्प्रदाय के अनुयायियों में उदभट्ट तथा रुद्रट का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उदभट्ट का समय आठवीं शताब्दी माना जाता है। ये काश्मीर निवासी और काश्मीर-नरेश के समर्पणित थे। इनके ग्रंथ का नाम भामहू विवरण है। रुद्रट भी काश्मीर के निवासी थे। काव्यशास्त्राचार्य के इतिहास अलंकार सम्प्रदाय का प्रतिष्ठापन किया। किन्तु धीरे-धीरे अलंकार सम्प्रदाय

<sup>१</sup> डा० ड० ने इस प्रकार काल विभाजन किया है—

अ—Formative stage प्रारम्भिक काल जो आदि काल से भामहू तक अर्थात् सातवीं शताब्दी के मध्य तक चलता है। आदि काल में काव्यशास्त्र पर वास्तव में कुछ महत्वपूर्ण कार्य नहीं हुआ है। यद्यपि दास-गुप्त के मतानुसार पतञ्जलि के महाभाष्य (दूसरी शताब्दी ई० पू०) से ही काव्यशास्त्र का प्रादुर्भाव होता है और भरतमुनि के नाट्यशास्त्र (समय सदिग्ध तीसरी शताब्दी पूर्व से तीसरी शताब्दी तक के बीच) को वे काव्यशास्त्र का प्रथम ज्ञात ग्रंथ बताया है तथापि डा० ड० का यह कथन कि उक्त ग्रंथ पूर्णतया नाट्यशास्त्र का ग्रंथ है और चूँकि नाट्यशास्त्र का अभिव्यक्ति नाटकीय भाषा पर अवलम्बित है अतः एक अध्याय में भरत ने काव्यशास्त्र की चर्चा कर दी है सत्यमात्र है। वास्तव में भामहू के समय से ही काव्यशास्त्र को नाट्यशास्त्र से पृथक् करके एक स्वतंत्र विषय बताया गया।

ब—Creative Stage रचनात्मक काल जो भामहू से आनन्दवदन तक अर्थात् सातवीं शताब्दी से नववीं शताब्दी के मध्य तक चलता है। इस समय में काव्यशास्त्र के घुरघुर विद्वानों का आविर्भाव होता है।

स—Definite stage निश्चयात्मक काल (स्थिति) जिसका समय आनन्दवदन से मम्मट तक अर्थात् ९५० ई० से ११०० ई० तक माना है।

द—Scholastic stage शास्त्रीय स्थिति। यही काल विचाराधीन युग के परिधि से इतर का है। अर्थात् बारहवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक का समय काव्यशास्त्र में शास्त्रीय स्थिति के नाम से प्रसिद्ध है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि काव्यशास्त्र के इतिहास का महत्वपूर्ण अंग पूर्व मध्य युग के युक्त में ही पड़ता है।

का लोप होने लगा और काव्य की आत्मा अलंकार को न मानकर रीति को माना जाने लगा। रीति सम्प्रदाय का प्रथम आचार्य दण्डाथ जो अलंकार को भी काफी जग्राह्य मान देता है। दण्डाथ ७०० स ७५० ई० का वाच्य म दूए था। ये दक्षिण का काची-नगरा का निवासी था। उन्होंने पल्लव नरेश का राज्यालय प्राप्त था। काव्यादश इनका काव्य शास्त्र का बहुत ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। किन्तु रीति सम्प्रदाय का वास्तविक संस्थापक आचार्य वामन है जिन्होंने यह स्पष्ट घोषणा की कि रीति ही काव्य की आत्मा है और आगे रीति की व्याख्या करते हुए उन्होंने बताया है कि विशिष्ट पंरचना ही रीति है। विद्याना ने इनका समय जाठवा शताब्दी का मध्य म था का मध्य तक माना है। ये काश्मीर नरेश जयापीड के मंत्री था। किन्तु रीति सम्प्रदाय का जन्म कितना तक नहीं चल सका और काव्य की आत्मा का अन्वेषण न एक नवीन सम्प्रदाय का प्रतिष्ठापन किया। यह है रस सम्प्रदाय। वास्तव में रस सिद्धान्त काई सवया नवीन सिद्धान्त न था और इनका प्रतिपादन बहुत पहले का भरतमुनि ने अपने नाट्य शास्त्र में कर दिया था।<sup>१</sup> इसी से प्रभावित होकर विचारार्थी कान में कुछ एम आचार्य हुए जिन्होंने रस का ही काव्य का आत्मा घोषित करके रस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इन आचार्यों में मद्रासालय शुक मद्रनायक जाति विशेष उल्लेखनीय है। पर इनका विचार का भी कुछ आचार्यों ने स्थायित्व नहीं प्राप्त करने दिया और उन्होंने काव्य शास्त्र में एक स्वया नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। ये आचार्य ध्वनि का काव्य का आत्मा बताते हैं।<sup>२</sup> दार्शनिकों का 'स्फुट सिद्धान्त' से प्रभावित होकर ध्वनिकारों ने ध्वनि सिद्धान्त का प्रचार किया। ध्वन्यानाक<sup>३</sup> नामक ग्रंथ में इस मत का प्रीक्षण होता है। उक्त ग्रंथ के रचयिता का नाम अज्ञात होने के कारण विद्वान उम बनिवा कहते हैं। डा सकरन ने आनन्दवदन को ही ध्वन्यानाक का रचयिता स्वीकार किया है किन्तु कणों महादय इससे सहमत नहीं हैं। मुशाल दुमार डे का भी ऐसा ही विचार है। आनन्दवदन काश्मीर-नरेश अवलि वर्मा के सम्पादित थे अत इनका समय ८५५ ई० स ८८३ ई० तक के पास माना जा सकता है।

काव्यशास्त्र का इतिहास का यह रचनात्मक काल भामह से आनन्दवदन तक अर्थात् ७वा शताब्दी स ९वा शताब्दी के अन्त तक चलता है। तत्पश्चात् निश्चयात्मक स्थिति ( Definite stage ) का सूत्रपात होता है। उस समय अभिनवगुप्त कुतलया कुतक, हर्षभट्ट धनञ्जय तथा मम्मट आदि आचार्यों का आविर्भाव होता है। यद्यपि हम सवप्रथम कुतक पर विचार कर लेना चाहिए क्योंकि उन्होंने काव्य शास्त्र में एक नवीन सम्प्रदाय वक्त्राकित सम्प्रदाय का प्रचार किया। वास्तव में उन्होंने भामह का वक्त्राकित अलंकार के आधार पर ही वक्त्राकित सिद्धान्त को पल्लवित किया। यही अपने सिद्धान्त के प्रणता एवं अन्तिम आचार्य भी थे। इनके ग्रंथ का नाम वक्त्राकितजीवित है। ये भी काश्मीर का रस काठ थे। दसवा शताब्दी के उत्तरार्द्ध में काश्मीर में अभिनवगुप्त नाम के आचार्य हुए जिनका ग्रंथ लाचन (ध्वन्यानाक लाचन) के नाम से प्रसिद्ध है। ये ध्वनि सम्प्रदाय का समयक थे। इस युग का अन्तिम सुप्रसिद्ध आचार्य मम्मट हैं। ये भी काश्मीर निवासी थे। अन्त में ध्वनि सम्प्रदाय का

<sup>१</sup> 'रीतिरात्मा काव्यस्य। विशिष्ट पद रचना रीति।' काव्यालंकारसूत्र १।२।६७

<sup>२</sup> 'विभावानभाव संचारि सयोगाव रसनिष्पत्ति — नाट्यशास्त्र।

<sup>३</sup> 'काव्यस्यात्मा ध्वनि — ध्वन्यालोक।

समयन अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यप्रकाश में इस विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया कि इस सिद्धान्त में विरुद्ध फिर किसी को कुछ बालन का साहस नहीं हुआ। इसलिए इन्हें ध्वनिप्रस्थापन परमाचार्य की उपाधि प्रदान की गई। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध माना जाता है। मम्मट ही काव्यशास्त्र के इतिहास का अन्तिम काल भारतीय स्थिति का प्रारम्भ होता है। ग्यारहवीं शताब्दी से १७वां शताब्दी तक जब तक यह काल चलता है जब यह विचाराधीन काल के वक्त के इतर पड़ता है और इसका सम्बन्ध में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस युग में किसी मन्वया नवीन मत का प्रतिपादन नहीं किया गया वरन् प्राचीन ग्रन्थों की अधिक, अधिक विशाल टीकाएँ ही लिखी गईं। इसीलिए कभी कभी इसे टीका-काल भी कहते हैं।

उपरोक्त विवरण से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि पूर्वमध्ययुग में साहित्य के महत्वपूर्ण अंग काव्यशास्त्र पर जितना काय हुआ उतना इसका पूर्व या बाद में निश्चय ही रहा हुआ। यह विचाराधीन काल की एक बहुत बड़ी विशेषता है।

काव्यशास्त्र के साथ साथ छन्दशास्त्र के क्षेत्र में भी काय होत रहा। छन्दशास्त्र के प्रणेतार विंगल माने जाते हैं। विंगल सूत्र इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ है। शालिदास ने (शकुन्तला के रचयिता से मित्र) श्रुतबोध नामक ग्रन्थ की रचना की थी। क्षेमेश्वर ने सुवर्णतिलक नामक छन्दशास्त्र सम्बन्धी प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना की। हेमचन्द्र का छन्दशास्त्र दामोदरमिश्र के वाणीमण्डन वेदार भट्ट के वृत्तरत्नाकर आदि अन्य सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं।

दशम-साहित्य—किन्तु केवल उल्लिखित साहित्य के क्षेत्र तक ही इस युग की साहित्यिक प्रगति सीमित नहीं रही दार्शनिक साहित्य की भी इस समय काफी उप्रति हृत्। दशम के विभिन्न क्षेत्रों में काय हुआ। यद्यपि इस युग के अधिकांश दशम-ग्रन्थ टीकायें हैं तथापि उनका रचयिताओं की मौखिक प्रतिभा पर सन्देह नहीं किया जा सकता है। ब्राह्मण बौद्ध तथा जन तीनों धर्म के दार्शनिकों ने अपने अपने काल का प्रकाशन विद्वत्तापूर्ण ढंग से किया। ब्राह्मण दशम की विभिन्न शाखाओं के दार्शनिकों के सम्बन्ध में पूरी जानकारी देना यहाँ स्थानान्तरण के कारण अल्पमत्र है अतः केवल उनका एक-एक प्रयास का नामांकन करते ही संतुष्ट करना पड़गा। विचाराधीन काल के प्रमुख न्यायिक हैं न्यायवातिक के रचयिता उद्योतकार (आठवीं शताब्दी के कुछ पूर्व) न्यायवातिक के सुप्रसिद्ध टीकाकार तात्पर्य टीका के तथा न्याय सूची निरूपण के प्रणेता विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं के महापण्डित वाचस्पति मिश्र (नवीं शताब्दी) वाचक बौद्ध मामाया तथा वज्रान्त मतो के सुप्रसिद्ध रचयिता एवं न्यायमञ्जरी के रचयिता जयस भट्ट (नवीं शताब्दी) न्यायिक-नरेश महापण्डित उदयनाचार्य (दसवीं शताब्दी) जिन्हें यह दावा था कि जिस प्रकार जिस विज्ञान में सृष्टि उत्पन्न होता है वही पूर्व दिशा कहलाता है उसी प्रकार उदयनाचार्य जो कुछ वर्षों की मृत्यु है। इन्होंने अनेक ग्रन्थों की रचना की जिसमें तात्पर्य परिभाषा 'न्यायशास्त्र' बौद्धिकधार' न्यायसूत्राञ्जलि आदि प्रसिद्ध हैं। न्यायशास्त्र के नौ अन्य आचार्यों का उल्लेख भी आवश्यक है। वे हैं 'न्यायसार' के प्रणेतार भास्वज (नवीं शताब्दी का अन्तिम भाग) तथा वाग्भटा शताब्दी के अन्तिम चरण में होनेवाले सुप्रसिद्ध दशम ग्रन्थ न्यायचिन्तामणि के रचयिता गणेश उपाध्याय।

१ 'वयमिहपदविद्यातकमाद्योक्षिकोया यदि पापविषये च यतयाम सा यथा' । उदयति विगं यस्यां भानुमान समपूर्वा नहि तरणिद्वीने विकपराधीन भूति ॥

कणाद द्वारा प्रतिपादित वशपिक दशन का आगे बचाने के लिए इस युग में जनक विद्वानों एवं दशन महारथियों ने एड़ी चाटी का जार लगाया। इनमें व्यामवना के रचयिता व्याम शिवाचार्य (दसवीं शताब्दी), पूर्व उल्लिखित उदयनाचार्य जिहान वशपिक दशन का प्रसिद्ध टीका ग्रन्थ 'विरणावली' का रचनाकार। श्रीधराचार्य (दसवीं शताब्दी) जिनका 'यागवल्की' सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है वशपिक विद्वानों का सुप्रसिद्ध ग्रन्थ 'याग लानावता' का रचयिता बल्लभाचार्य (बारहवीं शताब्दी का अंतिम चरण) तथा सप्तपदार्थी के प्रणता शिवादित्यमिश्र (बारहवीं शताब्दी) आदि विद्वान् उत्पन्न हुए।

'याग' एवं वशपिक दशन का भाँति सात्य एवं याग के क्षेत्र में मा पयाप्त उन्नति हुई। वाचस्पतीमिश्र ने मा सात्यशास्त्र पर साध्यतत्व कामुता नामक ग्रन्थ की रचना की। दूसरे विद्वान् दाशानकथ गाडपाद (सातवीं शताब्दी) जिहान सारथकारिक पर एक महत्वपूर्ण भाष्य गोडपाद भाष्य का रचना की। यागदशन के क्षेत्र में मा कुछ आचार्या ने काय किया। बहुमुखा प्रतिनासम्पन्न महापणित् वाचस्पति मिश्र ने २०० क्षेत्र में मा काय किया है और उनका ग्रन्थ तत्त्वशारदी प्राचीनतम यागसूत्र ग्रन्थ 'यासभाष्य' को सुन्दर टीका है। अय आचार्या में याग वक्तिक तथा याग सार-ग्रह के रचयिता विज्ञानभिक्षुपात-तन्त्रहस्य के रचयिता राघवानन्द सरस्वती, रात्रभातण्ड के रचयिता भाज वात्त के रचयिता भावागण भणिप्रभा के प्रणता रामानन्द पति, याग चन्द्रिका के ललक अनन्त पण्डित, त्यागसुधाकर के रचयिता सदाशिव सरस्वती नागोज भट्ट जादि का नाम बादर के साथ लिया जा सकता है। महा यह मा बता देना आवश्यक है कि इस युग में टीकाका का ही वात्स्य रहा। दशन साहित्य के इतिहास में इस टीकाकाल बहूता अनुचित न होगा।

इस युग में मामासा दशन के क्षेत्र में भी पर्याप्त काय हुआ। कुमारिल भट्ट का ही इस युग का स्तम्भ मानना चाहिए। ये शंकराचार्यजा के पूर्ववर्ती थे। इन्होंने वाद धर्म का दवाकर हिन्दू धर्म के पुनरुत्थान में बड़ा याग दिया। इनके सुप्रसिद्ध ग्रन्थ हैं 'नाक्यात्तिक' तत्रवात्तिक टुष्टिका आदि। इनके शिष्यों में मण्डनमिश्र (आठवीं शताब्दी) विशय उल्लेखनीय है। इन्होंने विधि विवक भावना विवक विग्रम-विवक' जादि का रचना की। उम्बके दूसरे महत्वपूर्ण शिष्य थे। इन्होंने कई सुप्रसिद्ध ग्रन्थों का टीकायों की जिनमें 'लोक वात्तिक का तात्पर्य टीका' अधिक प्रसिद्ध है। भट्ट सिद्धात के पापका एवं उनके टीकाकारों में माय सारथि मिश्र माधवाचार्य तथा लण्डदेव अधिक विख्यात हैं। मीमासा दशन में नवप्राण फूकनवाला न श्री प्रभाकर मिश्र का नाम विशेष उल्लेखनीय है। कहा जाता है कि ये कुमारिल भट्ट का अपना गुरु मानते थे। इनकी अद्वितीय प्रतिभा से प्रभावित होकर ही कुमारिल भट्ट ने इन्हें गुरु का उपाधि प्रदान की थी और तब से इनका मत 'गुरुमत' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु कुछ लोग इन्हें कुमारिल का दूक-वर्ती मानते हैं। पूर्ववर्ती शताब्दी इनका समय माना जाता है। गुरुमत के जाचार्यों में गालिकनाथ भवनाथ, मुरारिमिश्र नन्दान्वर आदि अधिक प्रसिद्ध हैं।

भारतीय दशन का विश्व में गौरव प्रदान करने का श्रेय बदान्त दशन का ही दिया जा सकता है। बदान्त दशन का सूत्रपाठ बहुत प्राचीन समय में ही हुआ चुका था और महर्षि वादरायण ध्याम ने ब्रह्मसूत्रों का रचना करके इसकी प्रतिष्ठा की थी। विचारार्थी काल में अनेक जाचार्यों ने बदान्त दशन के सम्बन्ध में अपने-अपने

मत का प्रतिपादन किया। प्रोफेसर वामुदेव उपाध्याय ने जपन ग्रन्थ पूर्व मध्यकालीन भारत में इसका पूर्ण विवेचन करते हुए आचार्यों उनका भाष्य तथा मत का खाका इस प्रकार खाना है—

नाम	भाष्य	मत
१ शंकराचार्य (७८८-८२० ई०)	शारीरिक भाष्य	जड़त्व
२ रामानुज (१००० ई०)	भारतीय भाष्य	ब्रह्मवाद
३ रामानुज (११४० ई०)	श्री भाष्य	विशिष्टाद्वैत
४ आनन्दाचर्य (१०८६ ई०)	पूर्णप्रा भाष्य	द्वैत
५ तिलकाचर्य (१२५० ई०)	वेदान्त पारिजात	द्वैताद्वैत

उपरोक्त बातों के अनेक समर्थक आचार्य हुए और उन्होंने अपने भाष्य मत को आगे बढ़ाया। फलतः बड़े बड़े दशन ग्रन्थों की रचना हुई जिसमें इस काल की उन्नति हुई।

### उपयोगी साहित्य

बोध—नवित साहित्य के अतिरिक्त उपयोगी साहित्य के क्षेत्र में पूर्व मध्यकाल में पर्याप्त कार्य हुआ था। साहित्य-संजन के लिए काश का बहुत बड़ा महत्व है अतः महान् कामकाज ही उत्पन्न आवश्यक है। मस्कृत-साहित्य में जपना महत्वपूर्ण स्थान रखनेवाला दशम शताब्दी में विजय की मन्ना के नवरत्न अमरसिंह द्वारा रचित 'अमरकाश' सम्भवतः अपने रूप का पहला ग्रन्थ है। नृत्यशास्त्र पुरुषोत्तमदेव ने त्रिकाण्ड शेष और हारावला नामक शास्त्रशास्त्रों की रचना की। इनके अतिरिक्त श्रीशंकराचार्य ने अनकाश समुच्चय के रचयिता शास्त्र अग्निगान रत्नमाला के प्रणयता हलायुध वज्रयन्त्री के रचयिता यादव प्रकाश तथा अभियानचिन्तामणि और दशमी नाममाला के रचयिता हेमचन्द्र अधिक विख्यात हैं।

व्याकरण—व्याकरण ग्रन्थों की रचना में इस काल में विशेष रूप से हुई। पाणिनि की अष्टाध्यायी की प्रतिष्ठा प्राचीन समय में स्थापित हो चुकी थी और यही मस्कृत व्याकरण का प्राण बनकर आज तक प्रचलित है। किन्तु उक्त ग्रन्थ का रचना के पश्चात् मस्कृत में अनेक नये शास्त्रों का उत्पत्ति हुई जिनका व्याख्या आवश्यक थी। अतः विचारार्थ काल में कुछ व्याकरणियाँ न साहित्य तथा टीका ग्रन्थों की रचना की। जयसिंह और वामन ने ६६० ई० में निकट पाणिनि की अष्टाध्यायी की टीका काविका वृत्ति लिखी और उनका टीका की बौद्ध पण्डितजिनद्र बद्धि ने 'याम' के नाम से टीका लिखी। एक जय वाद विज्ञान गणेशदेव ने ११७० ई० में दुषटवृत्ति नामक ग्रन्थ का प्रणयन किया। किन्तु उक्त ग्रन्थ की उपयोगिता मौलिक विज्ञान तक ही सीमित थी। सर्वसाधारण उनमें 'वामनाचार्य' नाम का सकेत था। जत कुछ विद्वानों ने अथवा शास्त्रों की रचना कर हम अभाव का दूर करने का एक प्रयास किया। पाणिनीय व्याकरण के समय में पाणिनीय तथा जय मस्कृतशास्त्रों का ग्रन्थ ही चुका था कि इन नये व्याकरणों का प्रणयन कर नया माग प्रशस्त किया। ६०० ई० के उग्र भय चन्द्राभिनव ने चांद्र व्याकरण का रचना का जो शास्त्र स्वयं टीका में लिखे। बौद्ध सिद्ध काव्यप ने वाचस्पत्य नाम ने १२०० ई० में एक ग्रन्थ लिखा। इस आगे यादवों के अतिरिक्त जिनियाँ न मा उत्साह प्रकृतियाँ। किन्तु न जिनद्र व्याकरण आरंभ करने में सफल हुए। यादवों का व्याकरण ११०० ई० में 'मदीश्वर' ने लिखा।

साग और १२५० ई० म षोपदेव ने मुग्धबोध व्याकरण लिखा। सस्वृत व्याकरण क अतिरिक्त प्राकृत भाषा क भी व्याकरण विचाराधान युग म लिख गय जिनम चण्ड का प्राकृत सक्षण, अनाचाय हेमचन्द्र न उणादि सूत्र वृत्ति और लक्ष्मीधर का शम्भु रहस्य आदि उल्लेखनीय है।

**आयुर्वेद**—व्याकरण की भाँति आयुर्वेद का क्षय भी उक्त काल म पुष्पिन और पल्लवित हुआ। धन्वन्तरि इस विद्या क जादि आचाय मान जात है। आयुष काय्यप, हारा न आग्निवश आदि प्राचीन ऋषि समी इस विद्या क पारगत स्वीकार किय जात है। चरक का चरक संहिता इस विद्या का महत्वपूर्ण ग्रथ है जिनकी टीका विचाराधान युग म लगभग ८०० ई० क अरवा भाषा म हुई। सुश्रुत द्वारा विरचित सुश्रुत संहिता का प्रसिद्धि नवी शताब्दी म कम्बोडिया स लकर अरब तक फली थी। चक्रपाणि दत्त न उक्त ग्रथ की ११वा शताब्दी म टीका लिखी। बृद्ध चाग्भट न अष्टांग हृदय आर अष्टांग हृदय संहिता दा ग्रथा का रचना की। माधवकर ने आठवा तथा नवा शताब्दी म रत्नानन्दय का प्रणयन किया आ माधवनिदान क नाम स विख्यात है। सिद्धियोग या बृद्धमाधव के प्रणता षट् का भी उदय इसी काल म हुआ था जा निदान का सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ है। सन् १०६० ई० म चक्रपाणिदत्त न चरक आर सुश्रुत पर टीका लिखी आर चिकित्सासार सग्रह नामक एक मौलिक रचना भा का। १२०० ई० क निकट शाङ्क गधर न साङ्क गधर संहिता और १२२४ ई० म भिल्लहण ने चिकित्सासत का रचना का। षोपदेव न इस ग्रथ की टीका लिखी। ७वा या ८वी शताब्दी म नागाजुन न रस रत्नाकर लिखा। इसी काल मे लगभग १२०० ई० म रसाणव रचा गया। नित्यनाथ ने रसरत्नाकर रामचन्द्र न रसद्र चिन्तामणि १०७५ ई० म सुरेश्वर न शब्द प्रतीप का रचना की। मदनपाल ने मदन त्रिष टु लिखा। इन ग्रथा के अतिरिक्त इन आचार्यों ने अनेक मौलिक सिद्धान्तों का अनुसंधान किया आर विश्व का अदभुत धन दी। त्रिदापसिद्धांत, नाट्य विनान शल्य चिकित्सा आर रसायन के सिद्धान्त विशपकर उल्लेखनीय हैं जिन्हें विश्व न भारत स प्राप्त किया। इसक अतिरिक्त पारा भस्म बनान की प्रक्रिया अर्थात् आलकेमी का अनुसंधान भा हुआ था जिसका विचाराधीन युग म बड़ी चलन थी।

**विभिन्न शास्त्र**—सगीतशास्त्र का प्रारम्भ सामवेद से माना जाता है। भरत का नाट्य शास्त्र सगीतशास्त्र का आदि ग्रथ माना जाता है। विचाराधीन युग म भी इस क्षत्र म कई ग्रथ लिख गये। शाङ्क गन्ध न सगीत रत्नाकर का प्रणयन किया। दामास्तरगुप्त न सगीत दपण लिखा। इन ग्रथा क अतिरिक्त सगीतशास्त्र म अयाय ग्रथा का रचना का उल्लेख मिलता है किन्तु अमाग्यवश वे रचनायें अब तक प्राप्त नहा हो सकी।

सगीतशास्त्र क पश्चात् जब हम कामशास्त्र पर दृष्टिपात करते है ता हम इसम अय क्षत्रा की भाँति द्रो प्रगति मिलती है। वात्स्यायन इस विषय क प्रधान आचार्य मान जात है। ज्योतिरीश्वर न पञ्च सायक नामक ग्रथ की रचना इसी युग म की। दामास्तरगुप्त न कुट्टनामत्त जयदेव न रतिमजरी तथा कल्याणमल्ल ने अनगरूप लिखा। नागाजुन न रतिशास्त्र नामक ग्रथ का प्रणयन किया।

अयशास्त्र और नीतिशास्त्र म भा अधिक उन्नति हुई। कामदकी न नीतिसार लिखा। दसवा शताब्दी म 'नीतिवाक्यामत' का रचना सोमदेवसूरि ने की। हेमचन्द्र न नष्ट अहन नीति का प्रणयन राजनीतिशास्त्र पर किया। भोज ने 'युक्तिवत्पतरु



और चण्डइश्वर न नातिरत्नाकर' की रचना इसी युग में की। इन ग्रंथों में अतिरिक्त अन्य और नातिशास्त्र का बहुत-सी बातें तत्कालीन कायशास्त्रों में लिखी पड़ी हैं। माघ किराताजुनाय, दशकुमार चरित तथा मुद्राराक्षस इन्हीं ग्रंथों में उल्लेख-नाय हैं।

पशुशास्त्र में भी कई ग्रंथ इस युग में रचे गये। हस्ति चिकित्सा के विषय में आचार्य पालकाप्य का ही माना जाता है जिहान हस्त्यायुर्वेद या गजायुर्वेद ग्रंथ का रचना की। इसके अतिरिक्त गजचिकित्सा गज दूषण तथा गज परीक्षा का रचना भी आप ही द्वारा मानी जाती है। नारायण न मातंग नाला और बहस्पति न गज लक्षण' तथा गोवध शास्त्र लिखा। अश्व चिकित्सा में शालिहोत्र न शालिहाय शास्त्र तथा अश्वतथ ग्रंथ लिखा। गण न जवायुर्वेद' जयदत्त न अश्ववचक षष्ठम न न यत्तमञ्जरी नकुल न अश्वचिकित्सा', भोज न शालिहाय मल्लिनाथ का हय लीलावती की रचना पूर्वमध्यकालीन मानी जाती है। इस पशु चिकित्सा के साथ साथ पशु चिकित्सा और कृषिशास्त्र का भी अध्ययन हमारे आचार्यों ने इस युग में किया और कई एक ग्रंथों में इसी विषयों पर लिखे। जन पंडित हंसदेव न मगधाक्ष शास्त्र की रचना की। मगधाक्षशास्त्र पर भी अनेक रचनाएँ हुईं जिनकी उपलब्धि दुर्भाग्यवश आज नहीं है।

इन शास्त्रों के अतिरिक्त रत्नशास्त्र चौपशास्त्र धातु विज्ञान भवन निर्माण शास्त्र शिल्प शास्त्र आदि में भी ग्रंथों का विकास इस युग में लिख गये। विमान बनाने की कला पर राजा भोज का समरागण सूत्रधार' नामक ग्रंथ पाया जाता है। विमान विद्या और विमान लक्षण नामक दो अन्य ग्रंथों का भी उपलब्धि हाता है। मूर्ति निर्माण कला में भी कई ग्रंथ पाये गये हैं जिनमें तरसम्प्रदायी कला पर प्रकाश डाला गया है। 'नौ शास्त्र' ग्रंथ नौ निर्माण-कलाओं को स्पष्ट करता है।

गणित—गणित शास्त्र में भी भारत बड़ा हुआ था और इसी में पाँचवीं दशक को गणित सम्बन्धी विषयों में बड़ा विकास हुआ। अंकशास्त्र का विकास जिस दशमलव पद्धति कहते हैं हमारे आचार्यों के अस्तित्व की वस्तु है। सर्वप्रथम यह पद्धति हमारे यहाँ से उभरी हुई। गणित शास्त्र के अनेक विभाग—अंकगणित खगोलगणित त्रिकोणमिति, चलनगणित स्थितिशास्त्र (स्टैटिक्स) तथा गति शास्त्र (डायनिमिक्स) में हमारे विद्वानों का योगदान है। ब्रह्मिहिर, धीशराचाय और भास्कराचाय न ग्रंथों में अंकगणित का ज्ञान प्राप्त होता है जिसका उल्लेख उन्होंने किया है। ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त' में गणिताध्याय तथा कुतुबाध्याय एवं सिद्धान्त शिरोमणि में लीलावती खण्ड में इस गणित का अनुशासन किया गया है। बीजगणित का मूलपाठ हमारे यहाँ पहले से ही ही पाया था और इस युग में हमारे आचार्यों इस गणित में भी योगदान था। इस युगान्त में ही दशकलन का प्रयोग प्रचलित हुआ। खगोलगणित का प्रयोग वैदिक काल में ही यज्ञ के यज्ञी के निर्माण करने में किया जाता था। पाठ्यागारस का सिद्धान्त याग्य से पहले ही हमारे यहाँ प्रचलित था। त्रिकोणमिति में बहस्पति न चापीय घनक्षत्र निर्वहण का साधन मीतिक रूप में प्रतिपादित किया है। भास्कराचाय न घटन में बहुत पहले ही चलन गणित का प्रयोग ज्योतिष में किया था। ब्रह्मस्फुट तथा भूगोल सम्बन्धी गति शास्त्र का भी परिचय भास्कराचाय का पहले से प्राप्त था।

ज्योतिष शास्त्र—प्राचीन युग में ज्योतिष शास्त्र में भी बड़ा प्रगति हुई थी। आयुर्वेद न विचारधारा युग के पहले ही ज्योतिष प्रयोगों की रचना की थी। उसमें

यज्ञ धाराहमिहिर का नाम आता है। जिनके पवित्रादिनाम वृहस्पति और ब्रह्मजातक दो प्रथा की रचना कर 'यातिप शास्त्र' नामक ग्रन्थ लिखाने का प्रतिपादन किया। ब्रह्मगुप्त ने ६२८ ई० के लगभग ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त तथा ६ ई० में ब्रह्मगोष्ठिका का प्रणयन किया। जगत पृथ्वी का घूर्णन का सिद्धान्त निराना जिनके यज्ञ व विज्ञान ने बहुत समय पहले मान्य किया। लगभग ६५० ई० में ब्रह्मगुप्त ने ब्रह्मसिद्धान्त तथा शिष्यपीथद्वारा की रचना की। भास्कराचार्य ने द्वादश प्रथा की टीका लिखी। इनके अतिरिक्त ९०८ ई० में आग पाग चतुर्वेद पद्य छह स्वामी ने ब्राह्मस्फुट सिद्धान्त की टीका लिखी। १०३८ ई० के लगभग सिद्धान्त शेर और धाकालिका की टीका श्रीपति ने तथा ब्रह्मगुप्त का टीका की। १००० ई० में राजमगाव 'गणितानन्द' ने भास्करा और ब्रह्मदेव के करण प्रकाश लिखा। भास्कराचार्य का उक्त इस काल के अन्तिम सिद्धांत म हुआ। आपने सिद्धान्त शिरामणि नामक ग्रन्थ की रचना की जो ज्योतिष शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। इसके अनिश्चित सिद्धान्त शिरामणि करण कुतूहल' करण कशरी और कई ग्रन्थों का प्रणयन आपने किया।

कलित ज्योतिष—यातिप में कलित ज्योतिष में भी कई प्रथा की रचना इस युग में हुई। धाराहमिहिर ने बहत्सहिता और ब्रह्मजातक नामक दो ग्रन्थों की रचना की। पद्युषणा ने होरापट पञ्चाशिका नामक ग्रन्थ लिखा जिसकी टीका दसरा शताब्दी में मट्टीत्केन ने की। १०३९ ई० में श्रीपति ने रत्नमाला और जानकपद्धति नामक दो ग्रन्थ लिखे। इसके बाद इस ज्योतिष की निरंतर प्रगति होती रही।

धर्म साहित्य—धर्म साहित्य में हमारे प्राचीन जाचार्यों ने इतनी रचना कर दी कि उसके बाद के जाचार्यों के लिए लिखने योग्य कार्य क्षेत्र ही नहीं गया था। जब विचारार्थान यग में विद्वानों ने उन्नी धर्म ग्रन्थों का अध्ययन किया और उन पर भाष्य लिखे। प्रसिद्ध भाष्यकार मेघातिथि तथा टीकाकार विज्ञानेश्वर ने मनस्मति और याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका इसी युग में की। विज्ञानेश्वर की मिताश्रय तथा जीमूतवाहन का दाय भाग इसी युग का देन है। इनके अतिरिक्त असहाय विश्वरूप, धारेश्वर भावदेवभट्ट देवनभट्ट आदि प्रकाश विद्वानों का जाविमात्र इसी युग में हुआ जिन्होंने अपना टीकाशा और भाष्य द्वारा धर्म साहित्य के कोष को बढ़ाया।

व्याख्याकार—पूर्व मध्यकालीन युग के व्याख्याकारों में असहाय का नाम प्रमुख है। उन्होंने मनस्मति पर भाष्य लिखा था। सम्भवतः इन्होंने गौतम धर्मसूत्र की भी टीका की थी। भक्तयज्ञ ने कात्यायन श्रौत सूत्र की टीका की। पास्कर गह्यसूत्र का अपने प्राचीन टीकाकार इन्हीं को माना जाता है। विवरूप इस काल के मामाभा शास्त्र के प्रकाश विद्वान थे। आपने याज्ञवल्क्य स्मृति पर बाल श्रौत नामक टीका लिखी। भारद्वाज नामक टीकाकार का समय इसी काल में था जिन्होंने सम्भवतः विष्णु धर्मसूत्र पर कई टीकाएँ लिखीं। मेघातिथि ने मनस्मति पर ब्रह्मगुप्त भाष्य लिखा है। इनकी अत्यन्त रचना स्मृति विवेक मानी जाती है। धारेश्वर भाजनेव ने कात्यायनिक ग्रन्थ शृंगार प्रकाश और सरस्वताश्रमभरण के अनिश्चित यातिप में राजमगाव और धर्मशास्त्र में राजमातण्ड का प्रणयन किया। विज्ञानेश्वर के समय के धर्म साहित्य में ब्रह्मदेव का स्थान उच्च रखा गया है। इनका मिताश्रय तत्कालीन युग की अपूर्व देन है। यद्यपि यह याज्ञवल्क्य स्मृति की टीका है किन्तु विद्वानों के न अपनी विद्वानों में एनी वस्तुओं का भी समावेश कर लिया गया। धर्मशास्त्र में अनेक नामों की

की मौलिकता प्रस्तुत करते हैं। इसका अतिरिक्त गोविंदराज लक्ष्मीधर जीमूतवाहन, अपराक, अनिरुद्ध बल्लभासेन देवणभट्ट हरदत्त तथा हेमाद्रि इस युग के महत्त्वपूर्ण विद्वान हैं। गोविंदराज ने स्मृति मजरा, लक्ष्मीधर ने 'कल्पद्रुम' जीमूतवाहन ने दायभाग, अपराक ने याज्ञवल्क्य स्मृति, अनिरुद्ध-यानदत्ताय धर्मशास्त्र निबंध नामक टाका अनिरुद्ध ने हारनता, बल्लभासेन ने प्रतिष्ठा सागर तथा दान सागर देवणभट्ट ने स्मृति चंद्रिका तथा हेमाद्रि ने चतुर्वेग चिन्तामणि का प्रणयन किया।

शिक्षा—विचारधीन युग में शिक्षा का उत्तम प्रबंध किया गया था। वैदिक काल का शिक्षा प्रबंध जागे चतुर्वेग परिवर्तित हो गया। बौद्धकाल में विहारा और मठों में ही शिक्षा का प्रबंध था। धारदार इन मठों ने शिक्षा-मठों का रूप ग्रहण कर लिया। इन संस्थाओं में प्राकृतिक भाषा के बजाय संस्कृत की पूर्ण प्रचलन हुआ। प्रारम्भिक पाठशालाओं में हिन्दी का स्थान मिल गया परन्तु संस्कृत की प्रधानता पूर्वजत बनी रही। साहित्य में संस्कृत को स्थान मिल ही चुका था। नानन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालयों की प्रधानता भी युग में हुई थी। इन्हें अन्तर्राष्ट्रीय प्रसिद्धि प्राप्त हो चुकी थी जहाँ ज्योतिष गणित आयुर्वेद दर्शन आदि विषय पढ़ाये जाते थे। इन विश्वविद्यालयों में चीन, पूर्वी द्वापममूह लका तिब्बत आदि दूर-दूर के देशों में विद्यार्थी अध्ययन के हेतु आते थे। इन विश्वविद्यालयों में विद्याधिया के रहने भाजन बपडा आदिको व्यवस्था हुनी थी जिसका खर्च राजाओं और धनिकों के द्वारा विद्यालयों को दिये दानों में चलता था। इन विद्यालयों में निकलने पर विद्याधिया की सर्व साधारण में बड़ी प्रतिष्ठा की जाती थी। उदत्तपुरा के विश्वविद्यालय भी इसी युग में स्थापित था।

इसके अतिरिक्त विद्याधिया का व्यावहारिक शिक्षाओं भी दी जाती थी। आयुर्वेद के अत्यान्व विषयों का अध्ययन प्रायोगिक ढंग से किया जाता था। अनेकानेक चिकित्साशास्त्रों का अन्वेषण प्रयोग करके किया जाता था। अध्यापक विद्याधिया को इन चिकित्साशास्त्रों का ज्ञान प्रायोगिक ढंग पर ही सिखलाया करते थे। चौरपाठ की शिक्षा भी इस युग में उत्पत्ति पर थी। अरब बाला ने यह विद्या हमारे यहाँ से सीखी। युद्ध शिक्षा व्यायाम शिक्षा आदि का भी अध्ययन प्रायोगिक ढंग पर किया जाता था। इस प्रकार शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में स्थिति सतोपजनक थी। शिक्षा का प्रबंध उत्तम था।

पूर्व मध्यकालीन कला—भारतीय कला के इतिहास में गुप्तकालीन कला महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसका पश्चात् पूर्व मध्यकालीन कला का आविर्भाव होता है। यह कला भी भारतीय कला में अपना विशिष्ट स्थान रखती है। कुछ लोगो का कथन है कि पूर्व मध्यकालीन कला पर गुप्तकालीन कला का अधिक प्रभाव है किन्तु यह कथन कहीं तक सत्य है इस पर विद्वानों को शंका है। सत्य तो यह है कि यह कला एक नवीन पथ प्रशस्त करती है और अपनी शैली का नवीन आदेश प्रस्तुत करती है। यह गुप्तकालीन कला में मिनर है। अजन्ता एव एलोरा में सबसे पहले इस कला का प्रस्फुटन होता है। धीरे धीरे इस कला में कुछ नवीनता आने लगती है और थोड़े ही समय पश्चात् इस कला की प्रारम्भिक कला शैली में पर्याप्त परिवर्तन आ जाता है। एलोरा में बुधनेश्वर तथा राजुराहा शाला में इस कला का प्रदशन होता है। इस काल में शिल्प शास्त्र में बणिता तात्मान का अक्षरशः प्रतिपादन हुआ है। इस शास्त्र में मूर्तियों की लम्बाई चौड़ाई का मुद्रा आदि का समावेश है जिसका अनुसार निर्मित मूर्ति उपयुक्त हो सकती है। इसका प्रयोग दक्षिण भारत की वास्तु मूर्तियों में स्पष्टतः मिनता है। गुप्तकालीन वास्तु कला का स्वरूप ही इस काल में

पूणतया परिवर्तित हो गया। उसका साधारण रूप दुर्बल बन गया और शिल्प शास्त्र का प्रयोग भी इसमें हानि लगा। वास्तु कला का धर्म समुचित न रहने पर विघ्न हो गया। मूनि कला, जिसका स्वतः एक पुराण धर्म था वह इस कला में गुल मिल गया। इसका कोई स्वतन्त्र अवस्था नष्ट रह गई। इस प्रकार वास्तु कला का धर्म अधिभूत 'यापक' बन गया। मन्दिरतया भवनबनानेवाङ्कारागर वास्तु शास्त्र के नियमा द्वारा काम करते थे। इस वास्तु विद्या के प्रतिष्ठापक विष्णुधर्मा माने जाते हैं जिन्होंने नियमों पर चलकर ही मन्दिरतया भवन का निर्माण प्रत्येक कारागर के लिये आवश्यक था। इस प्रकार जिन हिन्दू मन्दिरों का निर्माण हुआ उनका रूप साधारण हात हुए भां वास्तु कला का विधियां स प्रतिपादित हुआ। विशेषता यह था कि इस काल में दो प्रस्तर के टुकड़ों का जाड़न के लिये सामान्यतया प्रयोग न करके एक बज्जानिक ढंग का प्रयोग किया जाता था जिससे दाना टुकड़ सघ जाते थे और उनका जोड़ भी पक्का होता था। प्रस्तर के टुकड़ इस प्रकार रख जाते थे जिससे उनका भार साथ पथ्वी पर पड़ता था। मन्दिर के सामने उन्हा प्रस्तरों का नया जाता था जो जाकार भनाप के उपयुक्त होते थे। कला कला इन प्रस्तरों का चित्रित कर मन्दिर में लगाया जाता था अथवा मन्दिर के निर्माण के पश्चात् उनमें कारीगरों की जाती थी। इस कारागरों के कई उदाहरण आज भी उपलब्ध हुए हैं।

गुफा कला—गुफा निर्माण का जो नर्त शला इस काल में प्रचलित हुई वह पहाड़ियों का काटकर मठ अथवा चैत्य का निर्माण था। इस ढंग के इमारतों में ही दही-वनी मूर्तियां की स्थापना की जाती थीं अलग इसका कोई प्रवचन नहीं होता था। यह कला इस काल में उत्तरात्तर प्रगति करती गई जिसका तान श्रणियाँ हो सकती हैं (१) एनारा विधि (२) एनफटा विधि और (३) पल्लव विधि। एलीरा विधि में खादकर एक कमरा निर्माण किया जाता था और उसमें ब्राह्मण तथा जन मूर्तियां स्थापित की जाती थीं। इस गुफा में एक बरामदा बना होता है जिसके अन्त में एक काठरी निर्मित होती थी। एलीफँटा गुफा में शिव की प्रतिमाएँ चट्टान की काटकर गुफा के साथ ही बनाई जाती हैं। यह ब्राह्मण गुफा है। यह एक वास्तविक मन्दिर के रूप में होता है। महा ढाँचा न होकर इसमें बारीकी का जाता है। एली फँटा का गुफा में सजावट और स्वच्छता का विशेष ध्यान दिया गया जिसमें उसमें निर्मित प्रातमाआ का सौन्दर्य निखर सा गया है। यदि एलाफटा की गुफा प्रतिमा निर्माण के दृष्टिकोण से प्रसिद्ध है तो मन्दिर की विशालता के विचार से एलीरा का कनाश मन्दिर गुफा निर्माणकला का आदर्श है। साधारणतया गुफाओं का निर्माण ऊँची पहाड़ियों पर होता था जिनमें तीन ओर से चट्टान का काटकर गुफा बनाई जाती थी तथा उसका आकार मन्दिर का बनाया जाता था। किन्तु कनाश मन्दिर के निर्माण में इस शला का प्रयोग न करके दूसरी शरी का आधार लिया गया। इसमें कला बारा में पहाड़ का सिर से काटना प्रारम्भ किया। ऊपरी भाग में चौकार भाग काटकर मध्य के भाग से सतह तक मन्दिर बनाया गया। इस प्रकार गुफा निर्माण की कई श्रणियाँ बनती गईं और इनका उन्नत रूप सामने आता गया। कालान्तर में इन गुफाओं का रूप इतना परिवर्तित हो गया कि इन्हें गुफा कहकर मन्दिर कहा जाने लगा।

इन मन्दिरों के निर्माण में कई एक श्रणियाँ का आविर्भाव हुआ जिनमें किसी अंश तक तादात्म्य होने पर भी भिन्नता थी। इस प्रकार दक्षिण भारत की वास्तुकला उत्तरी भारत की वास्तुकला से भिन्न है। इस भिन्नता के आधार पर दक्षिण की

वास्तुशास्त्र का द्रविड शैली और उत्तरी भारत की शैली के साथ शैली के नाम से पुकारा गया।

**द्रविड शैली**—इस शैली में बड़ी-बड़ी चट्टानों का काटकर एक ही पत्थर में गुफा तथा मंदिर का बनाया गया। इसमें उदाहरण अजन्ता एतोग और एनफटा में दखन की मिलती हैं। इन गुफाओं के उत्तम रूप का मंदिर कहा जाता है। यद्यपि मन्दिरों के परिवर्तन में तत्कालीन गुफा निर्माण का काट तादात्म्य स्पष्ट रूप से नहीं देखा पड़ता किन्तु पत्थर शैली द्वारा यहाँ निष्पन्न निकलता है और उक्त वास्तु की पुष्टि हो जाता है।

**आय शैली**—उत्तरी भारत में गुफाओं का प्रारम्भ में ही अभाव में रहा। इस कारण यहाँ का वास्तुशास्त्र की प्रगति में गुफा निर्माण-शैली का महत्वपूर्ण स्थान नहीं मिलता। यहाँ स्तूप और मठ तथा विहारों का ही प्रधानता रहा। आय शैली के मन्दिरों की विशेषता यह थी कि यहाँ के मन्दिरों के शिखर विकसित रूप में होते थे। इन शैली का उद्भव स्तूपों में हुआ। ये स्तूप एक ऊँच चतुर्भुज पर अवस्थित त्रिभुज जिन थे और उनका आकार गुम्बज का भाँति होता था। गुम्बज के मिर पर एक बगाना प्रस्तर लगा होता था जिसे हरमिका कहते हैं। उसका ऊपरी भाग छत्र कहते हैं। स्तूपों का यही रूप इस काल में मन्दिरों के आकार में आ गया। ये मन्दिर दक्षिण भारत की भाँति प्रस्तरों में निर्मित नहीं होते अपितु इन तथा प्रस्तरों के बजाय मृत्त में जैसे उदाहरण मितरणाव तथा नन्दो के मन्दिर हैं। तत्कालीन मन्दिरों का मुसलमान आक्रमकों ने विनष्ट कर उही इन्हें द्वारा मस्जिदों का निर्माण करा दिया जिसमें वे अधिक मन्थ्या में आज प्राप्त नहीं हैं। पत्ताडपुर में दमया शताब्दी तक के बने स्तूप प्राप्त हुए हैं। इस काल में स्तूपों का रचना इटा के अनिरीकत काम और पक्का मिट्टी द्वारा भी होती थी। मूर्तिपूजा का प्रचलन इस काल में अधिक था इसी कारण मन्दिरों का निर्माण शुरू हुआ। मन्दिरों का नागर या आय शैली के कहते हैं। इन मन्दिरों के गमगृह के ऊपर शिखर होते थे जो ऊपर के आर क्रमशः पतल होते थे। इसमें उदाहरण खजुराहो का मन्दिर उन्नामा का मन्दिर कागडा का बजनाथ मन्दिर कुजु का विन्धवर मन्दिर राजपूताना का वष्णव मन्दिर तथा बंगाल के अनेक मन्दिर हैं। पूर्व मध्यकाल के प्रारम्भ में जिस प्रकार मन्दिरों का निर्माण हुआ उसका प्रगति धीरे धीरे होता रहा इसमें शैली में बाराका आती गई।

**उड़ीसा शैली**—इसका आय तथा द्रविड शैली का मिला जुला नाम कहना उचित होगा। यह शैली भुवनेश्वर के नाम में प्रख्यात है। उड़ीसा की राजधानी होने के कारण भुवनेश्वर पूर्व मध्यकाल में उत्तमा ही प्रसिद्ध हो गया जितना प्राचीनकाल में कहा था। भुवनेश्वर में यात्रियों ने बहुत से मन्दिरों का निर्माण कराया जिन्हें आज भी देखा जा सकता है। इन मन्दिरों की विशेषता शिखर निर्माण में था। शिखर के अन्तिम सिर पर शेर का आवृत्ति बना होती है और उसमें बाद आमतक का बड़ा-सा पत्थर चक्र का भाँति बना रहता है। इन मन्दिरों में अलवारिता का विशेष स्थान दिया जाता है। यहाँ के मन्दिर विशाल होते हैं। इनमें लिंगराज नामक मन्दिर प्रधान माना जाता है।

**खजुराहो शैली**—अन्तिम राजाओं के राजधानी होने के कारण खजुराहो का महत्व शैली के क्षेत्र में काफी बढ़ गया। उड़ीसा के बाद इसी शैली का प्रधानता रहा। यहाँ पर शिव धन्वाय दो जन लोगों ने मन्दिर निर्माण में काफी उत्साह दिखाया।

वर्णरिया महादेव का हिन्दू मन्दिर गुजरात में बनाया गया था। इसमें तीन स्तम्भ पवन पत्तन हैं। सभी कमरा पर वसाचार गुम्बज निर्मित है जिसे भारती भाग में पवन बना है। शिखर गगन उपरी भाग में है जो वसाचार पत्तन पर गुम्बज प्रस्तरों में विनूयित है। गमगुम्बज ऊपर शीखर शिखर का निर्माण है जो आय वाली व जावार पर बना है। इसमें मध्य शिखर व नीचे शिखरगवार गुम्बज प्रधान शिखर व चारा आर बन हैं। ये शिखर पञ्चीकारा द्वारा विगप जनकृत बना लिये गये हैं। इन नीचे व उताहरण चतुर्भुज वण्य नया आश्रिताय व जन मन्दिर हैं। ये मन्दिर वन ऊँचे नहीं हैं। इन मन्दिरों में नया नया राशना का ममचित्र प्रदर्शित किया गया है। शिखरों में ताव निमित्त होने से जिनमें मूर्तियाँ स्थिर की जाती थीं।

भवन निर्माण—पूव मध्यकाल में धर्म व पनात क्षत्र व अतिरिक्त नागा का स्थान भवन निर्माण की ओर भा वम न रत्ता। मठ शिखरान्त भवन आदि का निर्माण कला व शिल्पकाल से बहुत उत्तम काल का था। मकाने कई मजिल व वनन य। तत्कालीन एरीरा का मठ आज भी म्म वान का बना का प्रदर्शित कर रहा है। नानदा का विश्वविद्यालय इसी काल का वस्तु है। आधुनिक बुद्धिमान न न रत्ता व भवना का भान होना है। ये भवन कई मजिल व होत ये और इनकी सख्या नया जावार भी बहुत बडा था। यहाँ विद्याधिया के पत्ने रहने तथा सोने के सुन्दर भवन का निर्माण हुआ था।

संक्षेप कला—इस कला का प्रादुर्भाव-काल बहुत प्राचीन है। गुप्तकाल में यह कला अपने चरम बिन्दु पर पहुँच गई थी। इसी कला में थोडा बहुत परिवर्तन कर पूव मध्यकाल में इसका विकास हुआ। इस काल में तर्किक मता का काफी प्रचार हुआ जिससे उसका प्रभाव तत्कालीन कला पर पडा। बौद्ध तथा हिन्दू प्रतिमाओं पर भी इसका प्रभाव पडा। छठी शताब्दी में प्रतिमाओं का जो रूप था उसमें इस काल तक आते आते गालापन का आकार प्रवेश कर गया। इनमें कोमलता के साथ साथ महापुरुषों का लक्षण भी आने लगा।

इस कला में स्थान और समय के अनुसार कई शैलियों का प्रादुर्भाव हुआ। बिहार वगान राजपूताना गुजरात उड़ीसा आदि स्थानों पर भिन्न भिन्न समय पर भिन्न शैलियों का जन्म हुआ। पश्चिम भारत में पश्चिमी शैली का उद्भव हुआ जिसमें गुजराती और राजपूत दो स्कूल आते हैं। गुजराती स्कूल में प्रतिमाओं का स्वरूप नवीन हो गया। शरीर तथा अंग की घनपाकार में निर्मित करना इसी स्कूल की विशेषता है। राजपूत स्कूल में प्राचीनता लिये हुए प्रतिमाओं का सृजन हुआ जिनमें यौवन का प्रस्फुटन रत्ता था। इसके अतिरिक्त चदेल तथा हैहय स्कूलों का समावेश होना है जिनमें भनाविज्ञान का प्राधाय है। इसमें जाकृतियों का स्वाभाविक गुण समाविष्ट होता है। मनुष्य की मूर्ति के साथ साथ पशुओं की भी आकृतियाँ इस स्कूल में बनीं। उत्तरी भारत में सारनाथ शैली की प्रतिमाएँ आती हैं जिनमें चतुर्भुज प्रस्तर प्रयुक्त होते हैं। बिहार और वगान में राष्ट्रीय भावना की सकीणता ने एक नवीन शैली का जन्म दिया जिस पूव भारतीय शैली या पावन स्कूल कहते हैं। इस शैली की विशेषता यह थी कि इसमें चित्रों का प्रस्तरों का प्रयोग होता रहा। इसका समय ८०० ई० से १२०० ई० तक माना जाता है। इन चार सौ वर्षों तक इस कला में कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ और न किसी व्यक्ति विशेष का प्रभाव ही रहा। कारण यह था कि इस युग में बौद्ध जन और हिन्दू देवा देवताओं का स्वरूप शिखरों द्वारा न शिखर निर्मित हो गया था जिससे परिवर्तन का कोई माधन ही नहीं रह गया था।

इस शरीर में मूर्तियों का निमाण चिकन का प्रस्तार, पातन अथवा अप्पवानु स हाता था तथा साधनमाला के नियमानुसार उनकी बनावट पर ध्यान दिया जाता था। म्त्रा पुरुष शोभा का मास-मशिया सुगठित तथा सुन्दर हाता थी। इनमें हस्तकला का अच्छा कारागरा की जाता था जो इस काल में सर्वश्रेष्ठ मानी जाता है। इस शला में खडा तथा बँठा मूर्तियाँ बनाई जाती थी जिन्हें कमनामन पर त्रिटलाया जाता था। यह प्रया आठवाँ शताब्दी में ही था किन्तु नवा तथा १०वाँ सदी में का प्रत्येक परम्बन प्र प्रतिमायें बनने लगा जिसमें बाच में प्रमान मूर्ति तथा चारा आर देवता कमनामन पर आमान रहत थे। पाल शला की अधिकतम प्रतिमायें त्रिनगा मुद्रा में प्राप्त हाता है। प्रारम्भ में इस शला के अतगत निमित्त प्रतिमाया के चहर स आध्यात्मिकता प्रद शित हाता था किन्तु बारहवाँ शताब्दी के अत तक इन चहरा पर लौकिकता का समावेश हाता गया और अनालता भा प्रकट हाता गई। मुसलमान आक्रामका के बगान पर आक्रमण करन स इस कला का अवसान हा गया।

**मूर्ति निर्माण**—मूर्तिनिमाण-कला की प्रगति इस युग में खूब हुई। शाकन मत के प्रचार में शक्तिपा का रूप मूर्तिया में दिया गया और इस प्रकार मूर्तिया के निमाण की एक नई शला का प्राप्ताव हुआ। जगा न चित्त-एकाग्रता का एकमात्र साधन मूर्तिया का ही माना तथा इन शक्तिया जम मूय विष्णु शिव बद्ध आदि का विभिन्नावस्था का मूर्तयें अथवा मूर्त अथवा अथवा हाथा के माय मुर्ताजन किया। विचाराधान काल में मूर्तिया का कुछ अपना विशेषताएँ थी जिनमें विनयित हाता उनक लिए वाछनीय था। प्रथम ता उनका मूर्ति का शोधाना में निमित्त ताया में नियमित रूप में रखा जाता था और दूसरे प्रतिमाया के बद्ध हाथ और मूर्त बनाये जान थे। कुछ प्रतिमाएँ मी भी हाती थी जिनके बद्ध हाथ न त्रिनगाकर कुछ विशेष चिह्ना (शिव चक्र गण पद्म) का आकृतियाँ बना दा जाता था।

सूय का प्रतिमा यद्यपि गुप्तकाल में ही बननी प्रारम्भ हा गई था किन्तु इस युग में इसका बनावट में परिवर्तन आ गया। इस मूर्ति में बडा तथा पिगन दा मूर्तिया के साथ ऊरा तथा प्रत्युपा नामक दो दवियाँ ना जाँटा गई हैं। इस प्रकार का उपाहरण मध्यमकाल में प्राप्त हुआ है। ऐसा ही काणाक का विशाल मूय मूर्ति उपाया में तयार किया गया था। विष्णु प्रतिमाएँ इस काल में बहुत मख्या में प्राप्त हाता हैं। विष्णु के चोवास अवतारा का मूर्तियाँ मिलता है जो खडा तथा कमनामन पर बठा हाता अवस्थाया में हैं। बनराम बराह वामन मत्स्य नरसिंह आदि का मूर्तियाँ अलग अलग तथा एक साथ बनी मिलता हैं। ११वाँ शताब्दी का हैहय शामन-काल का बना एक मन्मथ पर विष्णु के अनक अवतारा का प्रतिमायें मिला है जिनमें मन्मथ बद्ध वामन कलिक का प्रतिमायें एक के ऊपर दूसरा स्थित हैं। एक अन्य मन्मथ पर क्रम बाराह और नर्गसह का मूर्तिया हैं। बगान में विष्णु का मूर्ति त्रिनगात्मन में गरुड के माथ निमित्त मिला है। विष्णु मूर्ति में आयुजा (मन्मथ चक्र गण और पद्म) का ना अकन पाया जाता है। कदा-कदा विष्णु और ब्रह्मा की मन्मथित प्रतिमायें उपलब्ध हुई हैं। विष्णुमूर्ति में चतुर्भुजा रूप हा प्राय प्रदर्शित किया गया है।

विष्णु के साथ-साथ शाकन मतानुसार शिव का त्रिग-भुजा का ना विचाराधान युग में अधिक प्रचार रहा। अन्तु एक मूय जयवा चतुर्भुजा का मूर्तियाँ शिव के आकार का प्रकट करन के लिए निमित्त हा। शिव का नृत्यमूर्ति, मन्मथशिव उपा महेश्वर कल्याण मुद्गर तथा अघार रूप का मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। पाल शला में अघनारावर का शिवमूर्ति का मूर्तयें में स्थान दिया गया है। इस कारण शिव-पावना

की सम्मिलित प्रतिमा का प्रारम्भ युग युग म सुब रहा। दमरी शास्त्री के वैश्व मन्दिर म एक ऐसी ही प्रतिमा मिली है। शिव के अतिरिक्त गणेश और कार्तिक्य की भी पूजा इस युग महानाथी। स्वर्ण युग इनकी भी मूर्तियाँ अधिष्ठान मन्त्रा म निर्माता।

इन शक्तियों के पश्चात् अर्थात् त्रैलोक्या का प्रतिमाओं का इस युग म सजाया। देवी प्रतिमा बहुमती जाहृति म प्राप्त जाता है। स्वर्ण अतिरिक्त लष्णा गणेशाना मन्त्रमातका जाति शक्ति देवी का मूर्तियाँ भी निर्मित हैं। राग का देवा हाग्नी (गानना) गणेश (मनना) शक्ति मूर्ति (पेठा) गंगा और यमुना का मूर्तियाँ मा पुत्र मध्यकाल म प्राप्त जाता है। उत्ति काय के कुम्भर यम वर्णन इन् अग्नि जाति शक्ति भी इस युग म प्रतिमाओं म समाहित कर लिये गये थे। इन सिद्ध प्रतिमाओं के अतिरिक्त जन जाय रोद्ध जाता घमों की प्रतिमाओं का स्वर्ण युग का है किन्तु इनका परिमाण सिद्ध प्रतिमाओं की अपेक्षा बहुत ही कम रहा।

त्रैलोक्य म चोपाम नायक के मूर्तियाँ मिली है जिनके साथ यम तथा योनि भी समाहित किए गए हैं। प्रधान मूर्ति का मूर्तियाँ के बीच म बनाया गया है। चित्ति राग्य म इस घम की अनेक मूर्तियाँ मिली है जो उनकी आराध्य शक्तियाँ हैं। रोद्ध घम म महायान तथा वज्रयान शाखाओं म तारा जवनाकित्तवर वादिमत्य तारावर जम्भन त्रज जादि शक्ति प्रतिमाओं मिलती हैं। कारण यह था कि रोद्ध घम पर सिद्ध मूर्ति पूजा का इतना पयाप्त प्रभाव पडा कि बोद्धा की शक्तियाँ देवताओं के नाम म पुनरा गान गयी और फिर उन्हें प्रतिमा के रूप म मूर्तित कर दिया गया। इन प्रतिमाओं का मज्जन् प्रस्तरा के अतिरिक्त काम्य ताम्र आदि धातुओं म भी हुआ जिसके प्रमाण म के मूर्तियाँ उपलब्ध हैं। मिट्टी की मूर्तियाँ के भी बहुल्य है।

सगीत तथा चित्रकला—तत्कालीन प्रतिमाओं के दिग्दर्शन से उस कालका सगान बना का स्पष्टाकरण सफ तनापूर्वक हो जाता है। पाल गरी म पान युग की निर्मित शिव का वातु प्रतिमा मिली है जिसमें शिव ताण्डव नृत्य कर रहे हैं। पहाडपुर की स्वर्ण म नाचना हुई स्त्री की मिट्टी प्रतिमा मिली है जिससे नृत्य कला का भान होता है। मूर्तियाँ के साथ धन मन्त्र पवना का वायुरी जादि वादना द्वारा वादन बना का पान जाता है। स माजिक उत्सवा पर सगीत का भा आयोजन होता था। इस प्रकार पूव मध्यकाल म नृत्य वादन और गायन ताना का प्रचार रहा।

चित्रकला का क्षेत्र भी विचाराधीन युग म काफी उन्नततावस्था म था। गुप्तकालीन जज्ञता की चित्रकला इस युग तक चरती रही जिसके अनुसार मन्दिरा का चित्रा की चित्रा से सजाया जाता था। जाठवी शताब्दी म इन मूर्ति चित्रों के स्थान पर छाटा जाहृतियाँ निर्मित हुई जिसका प्रयोग हस्तलिखित ग्रन्थों के प्रकाशन म होता था। इनका चरन पान जाता म खूब हुआ। ताड के पत्रा पर भी इस युग म चित्र चने। इनम प्रतापरमिता मन्त्र माता जाता है। तत्कालीन चित्रों का निर्माण देवताओं की जाहृतियों पर हुआ। पहल का रंग से इन चित्रा का आकार लीच लिया जाता था तत्पश्चात् तान ना हरे पीर जाति रंग से भर लिया जाता था। खाना स्थान को पत्र पुष्पा मे चित्रित कर लिया जाता था। चित्रा के मध्य म प्रधान देवता की रचना होना था और चारों ओर अन्य जाहृतियाँ बनाई जाती थी। इस प्रकार इस युग म चित्रा का खूब जमिवद्धि हुई। हस्तलिखित पुस्तकों के बीच-बीच म बनाकार चित्रकला का भी निर्देशन कर अपनी कलात्मकता का परिचय दे लेता था।



# परिशिष्ट

(क)

## राजपूतों की उत्पत्ति

राजपूतों की उत्पत्ति का प्रश्न अभी तक विवादास्पद बना हुआ है। इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न विद्वानों के मत भिन्न हैं। राजपूत स्वयं को कृत्वि जायों में सम्बन्धित मूल तथा चन्द्र वंश की सतान वतान में गौरव का अनुभव करते हैं। राजपूतों की ममा शाखाओं में किसी न किसी प्रकार अपना सम्बन्ध इन वंशों से स्थापित करने का प्रयत्न है। हम दखते हैं कि प्रतीहारों ने अपने सम्बन्धों में अपने का इक्ष्वाकुवंश या मूलवंश का कटा है। भाज का खालियर अभिलेख में निम्नलिखित है—

लाध्यस्तम्यानजामी मयममममा मघनाम्य मय्ये  
सोमिस्तिस्तीन्द्रण प्रतिहरणविषय प्रतीहार आसीत ।

गौर वाडक के जोधपुर अभिलेख—

स्वभाना रामभाम्य प्रतिशाय कृत यत ।

श्रीप्रतिहारवंश यमतत्तान्निमान्प्रयात ॥

मे स्पष्टत पता चलता है कि प्रतीहार राम के माँ तन्मण की सतान थे। एक जन श्रुति में पता चलता है कि चन्द्रों की उत्पत्ति चन्द्रमा तथा एक क्षत्रिय गणेश कुमारी में हुई थी। उत्तरीय भाग में ही इन्हीं परम्परा में जनमार उग्रक नामा तन्मण नता जो नवा शतका के प्रारम्भ में बुन्देलखण्ड के तमिणा हिन्दू में पवन हो उठा था चन्द्रवंशी क्षत्रिय का वंश था। जानक्यो का एक अतश्रुति हाराति के वमण के जन से उत्पन्न बताया है। जैनमार्ग में पुनर्वेशिन द्वितीय का क्षत्रिय बताया है। हमारी महाकाव्य चाणूना या चौणा के आदिपुरुष चाणूना का मूल पुत्र बताया है। पञ्चोराज रामो में गिनाये गये राजपूतों में गमी २६ कुन या तो मूल या शशि या यत् वंश में सम्बन्धित बताया गया है—

रवि ममि जाधव वम । ककुत्स्थ परमार मणवर ॥  
चाहुवान चालुक्य । छत्र मिहार अभीयर ॥  
दायमत (शेयमत) मखवान । मथ गोत्रि गोत्रियत ॥  
चापोत्कट परिहार । राम गणोर रामवत ॥  
देवरा टाक मधव अनिग । यौतिक प्रतिहार दधिपट ॥  
कारटुपान कोटपान हुन । इरित्तगारवना (मा)पम ॥  
धन पानक निकुम्बर । राजपारा कविनीम ॥  
काठछरक आदि । वरन प्रम छतीम ॥

१ टाड महोदय तथा श्री मोहनलाल रवि शक्ति तथा यादववंश को भी ३६ वंशों में अंतर्गत गिनते हैं। यही कारण है कि टाड महोदय और उनके मत के अनुयायी ३६ राजपूत कुलों को मूलवंशी, क्षत्रिय या यादववंशी नहीं मानते। मोहनलाल कवि

उपयुक्त उद्धरणों से स्पष्ट है कि अभिलग्न प्रशस्ति-रत्न तथा अनुभूतियाँ के अनुसार राजपूत वर्णिक आयों से सम्बन्धित उच्च कुल के क्षत्रिय थे। परन्तु पाश्चात्य विद्वान् तथा कुछ भारतीय इस मानने का विचार नहीं हैं। वे ठीक इमने विवरण हैं। अब लगते हैं और कहते हैं कि कितनी शास्त्रता मय विन्शी जानियाँ (राजपूत) भारतीय जाति-व्यवस्था के अंतर्गत आत्मसात् कर ला गईं।

राजपूत शब्द का अर्थ— राजपूत शब्द संस्कृत के राजपुत्र का विकृत रूप है। इस शब्द का प्रयोग राजपूताना के कुछ भागों में क्षत्रिय मानते या जागोरदार के अर्थात् वारिक पुत्र के अर्थ में किया जाता है। इस मन्व में मयट ध्यान रखना चाहिए कि प्रायः शास्त्रिक प्रकार के अर्थ हुआ करता है—अच्छ और बुरे। परन्तु उरा अर्थ वाद का विकास हुआ है। उदाहरणार्थ ब्राह्मण शब्द प्रारम्भ में जाति व्यवस्था के सर्वोच्च वर्ग का सूचक था जिन्का कर्तव्य था ब्रह्म या वृत्त का सुरक्षित रखना। समय के साथ साथ ब्राह्मणों का माना पकान का भी काम करना पड़ा। जाति व्यवस्था के अंतर्गत प्रारम्भ में इन्हें वदा के पठन पाठन आदि का काम मिला था और क्वचन यही उनकी जाविका था परन्तु कालान्तर में पतन हान के कारण कितने ही ब्राह्मण जा क्वचन जम से ब्राह्मण थे जनपद रह गये। उन्हें शिक्षा की शरण लेनी पड़ी। प्रारम्भ में विद्वान् ब्राह्मण या ऋषि भी अधिकतर शिक्षा पर ही निर्वाह करते थे। परन्तु इन दानों में अंतर था। पहले का तो मिलारो सत्ता मिली परन्तु क्रमशः कमरेतरह के ब्राह्मण कर्मों में मिलारो नहीं कह जाते थे। उन्हें ऋषि मुनि या तपस्वी के आदरमूचक सम्बोधना से सम्बन्धित किया जाता था। इस तरह ब्राह्मण का अर्थ मिलारो लगाया जाना लगा। आज भी अधिकतर मिलमग अपने को ब्राह्मण ही कहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मिलारो या वावर्षों के रूप में ब्राह्मण शब्द का अर्थ वाद का विकास है। ठीक यही बात राजपूत शब्द के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। महानारत में राजपुत्र शब्द के प्रयोग अच्छे अर्थ में किया गया है<sup>१</sup>—

एते ह्वमरया नाम राजपुत्रा महारया ।

रथध्वस्त्रपु नागपु च विशापत —

इस शब्द में राजपुत्र शब्द का प्रयोग कुतान क्षत्रिय के अर्थ में किया गया है। साधारणतः इसका अर्थ यही था परन्तु कर्मा कर्मा इसका विशिष्ट प्रयोग सत्ताहड राजा के वंशज के अर्थ में भी किया गया है। विराट पर्व में बहुधा द्रौपदी का राजपुत्री कुतान क्षत्रियों के अर्थ में कहा गया है। इसी अर्थ में ७वाँ शताब्दी के मवमूर्ति न कौशल्या का राजपुत्री कहा है। वाण न अपने हर्षचरित्र में राजपुत्र शब्द का प्रयोग एक क्षत्रिय सनिक के लिए किया है। पुराणों में भी इस शब्द का उल्लेख मिलता है। वृजया के प्रत्यय से सम्बन्धित एक पाणिनाय सूत्र में राजपुत्र शब्द जाया हुआ है।<sup>२</sup>

नील रोस जत तथा गवश को और टाड महोदय धाय पालूक भट तथा कई अन्य नामों को छोड़ गया है। इस प्रकार मोहनलाल राव, सति जाधव को लेकर ३६ कुल गिनते हैं और टाड महोदय रवि सति जाधव को लेकर भी केवल ३० को एक सूची बनाते हैं। श्री यद्य महोदय नीचे से ३६ कुलों को गिनते हैं और बताते हैं कि ये सभी राजपूत कुल सूप मा चद्र या मादव वर्णों थे। विंगय विवरण के लिए देखिए मेडिकल हिंदू इण्डिया द्वितीय भाग, पृ० सं० २२-२६।

<sup>१</sup> महा० द्रौणपर्व, अध्याय ११२ श्लोक सं० २०।

<sup>२</sup> गोत्रोत्पत्तोरभ्यराज राजय राजपुत्रवरस मनुष्याजादम ४-२-४१।

उपयुक्त साक्ष्या से यह स्पष्ट हो जाता है कि राजपुत्र शब्द का प्रयोग अति प्राचीन काल से लेकर ९वां शताब्दी तक कुलान क्षत्रिय के अर्थ में किया जाता रहा, अवैधानिक पुत्र या वणसकर का अर्थ में नहीं। १०वां या ग्यारहवीं शताब्दी के लगभग इस शब्द का महत्त्व कैसे और क्या बढ़ा इसकी विवेचना श्री वद्य महादेय ने इस प्रकार की है —

भारत में बौद्ध धर्म के पश्चात् जाति-व्यवस्था के बंधन धीरे धीरे दृष्टर होने लगे। यह प्रक्रिया तब तक होती रही जब तक कि जाति-व्यवस्था बिल्कुल कट्टरता का मामला का न पहुँच गई। प्रत्येक जाति अपनी-अपनी सीमा सन्तुलित करने लगी— विनापत राटी-बटा का सम्बन्ध के लिए। उनके दायरे में केवल वे ही कुल सम्मिलित हाने थे जो रक्त-सम्बन्ध में शुद्ध समझे जाते थे। सातवां शताब्दी में कई राजघराने थे जो क्षत्रिय थे जैसा कि हूँनसंग के साक्ष्य से प्रमाणित होता है। परन्तु अधिकांश क्षत्रिय बौद्ध बन गए थे और क्षत्रिया से सम्बन्धित आय प्रथाओं से उनका सम्पर्क बिल्कुल छूट गया था। ऐसे परिवारों का इस समय बुरी तरह बहिष्कृत किया गया। इससे अतिरिक्त स्थान-दूरी के कारण परिवारों की कुलीनता का निश्चित करना आरंभ भी कठिन था। अतएव न केवल क्षत्रिया वरन् ब्राह्मणों तथा वज्र्या में भी प्रान्ता के अनुसार उप-जातियाँ बनाने की प्रथा-सी चल निकली जिसमें दूरस्थ प्रान्ता में निवास करनेवाले परिवारों की कुलीनता का प्रश्न ही न उठे। इसी कारण ११वीं शताब्दी में प्रारम्भ के लगभग राजपूतों ने अपने आपका उस क्षेत्र में सीमित कर लिया जहाँ क्षत्रिय राजवंश मुख्यतः एकत्रित थे। स्वभावतः क्षत्रिय होने का गौरव केवल उन्हीं लोगों तक सीमित हो गया जो अपनी वंश-परम्परा सदैव रहित क्षत्रिय राजकुलों के साथ सिद्ध कर सके। वह भी जोचित पीढ़ी की स्मृति के आधार पर माता या गायिका की पौराणिक कथाओं के आधार पर नहीं क्योंकि सन्ध्या के बौद्ध एवं विदेशी शासना के कारण वे छिन्न मित्र हो गये थे। अतः राजपुत्र शब्द इस समय विशेष महत्त्व का बन गया था।

अग्निकुल की कहानी—पृथ्वीराज के समयकाल में पृथ्वीराज रासा' के प्रणता चन्द के मतानुसार एक विचित्र अनुभूति की ओर संबन्ध मिलता है। सक्षय में कहानी यह है कि जब पृथ्वी राक्षसा या म्लच्छा से बलात्कृत हो उठी तो आवू पवत पर वशिष्ठ ने अग्निकुण्ड से चार योद्धाओं को क्रमशः पदा किया। पहले परमार चानुवय तथा परिहार को और जब इनमें से कोई भी राक्षसा का नष्ट नहीं कर सका तो चाटमान का मजदूरी किया। रासा के साथ-साथ यह कहानी भी साक्ष्य प्रिय हुई और अन्त में गत्वा सभी राजपूतों ने इस स्वीकार कर लिया। इस किंवदन्ती के आधार पर ही कई विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि राजपूत विशेषों में जो अग्नि-संस्कार द्वारा सुमंस्कृत कर जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत क्षत्रिय माने गये थे। परन्तु श्री वद्य महादेय इस मत का खण्डन करते हैं और इस किंवदन्ती का अर्थ वे दूरतर ही लगाते हैं — बढ़ता है लिए यह एक नई जानकारी हागा कि यह कहना वाँव का केवल कल्पना मात्र ही नहीं है वरन् इससे अतिरिक्त उन कल्पना

Now it will be a revelation to many to know that this story is not only a poet's fancy but further arises from a misconception of even that fancy. In describing the four warriors Parmar Pratihara Chalukya and Chahman as coming out of fire at the call of Vashishtha he did not intend to convey that these warriors were

की भी गलत धारणा की उपज है। षष्ठी के आह्वान पर अग्नि मंत्र तनेरात्रा के रूप में परमार प्रतीकार धानुष्य तथा चातमान नामक चारों यादवों का वधन करन में उमरा (चात का) मन्त्रों यह शूनेन कराना था कि य यादव षष्ठी द्वारा नय-नय उत्पन्न किये गए वार थे। वह मन्त्र य मूचित करना चातना था कि पत्त म हा वनमा वशा म चार यादव षष्ठी के आह्वान पर रात्रा म लडन के लिए अग्नि से बाहर निकलें। अपन दम करन के समयन म वद्य मन्त्रय निम्नलिखित तत्र प्रस्तुत करते हैं—

(१) रागाँ केवल एक काल्पनिक कथा का प्रस्तुत करना है जिसे चात म त्रिकुन नहा मान लिया गया।

(२) याता रागाँ चात का नहीं है या चात म मन्त्र-नाना के समय म उमम क्षपक अश जाड दिय गये।

(३) उन कुता की जिनका उद्देश्य चात के समय म पत्त हा के अभिप्राय म मयवशा या त-वशी के रूप म लिया गया है अग्निपुन म उत्पन्न कथा का ज्ञा मकता है ?

(४) चात न स्वयं मी ३६ राजपूता के वशा का वधन करत समय अग्निवश का उद्देश्य नया किया है वरन उन्हें रवि म्मि नात्र वश का बनाया है।

शास्त्रात्य विद्वानों का मत—राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार टाड ने अग्निवश की कहानी का स्वाकार कर लिया और उसके आधार पर राजपूता का उद्गति विष्णो उहाराया। उनका मत है कि राजपूत म वियन या शका के वशज थे जो छठी शताब्दी के लगभग भारत म प्रविष्ट हुए थे। इन्हां विष्णो निजनाआ का जय के शोक वन बठ ना उन्हें अग्नि-सम्पार द्वारा पवित्र कर जाति-व्यवस्था के अन्तगत र लिया गया। चूंकि वे शासन का काम करते थे और यही काम क्षत्रिया के भी थे अतएव उन्हें क्षत्रियाकी तथा म रचा गया और वे राजपूत कहलाए। अपने मन के समयन म उहोंने राजपूता तथा शका के बीच निम्नलिखित साम्य की जार नकत किया है —

- (१) अश्व पूजा
- (२) अश्वमेध
- (३) अश्वपूजा
- (४) अश्व शिखा
- (५) उत्तेजक मुरा के प्रति अनुराग
- (६) शत्रुन विचार
- (७) अश्वविश्वास
- (८) युद्ध म प्रयुक्त होनेवाले रथ
- (९) माटा की प्रथा
- (१०) समाज म स्त्रिया का स्थान तथा
- (११) युद्ध से सम्बन्धित धर्म।

heroes newly created by Vasistha. He simply wanted to convey that four warriors out of the already existing clans came out of the fire at Vasistha's bid to fight the Rakshasas (Mediaeval Hindu India Vol II Page 13 and 14)

टाड महात्म्य का कथन है कि राजपूत युद्ध के अधिदेव हर की पूजा करते थे। वे अपने देवता का रुधिर तथा सुरा अर्पित करते थे। गून बन्तन में ही वे प्रसन्नता का अनुभव करते थे। इन सब बातों से यहाँ मान्यता है कि राजपूत उन आयुर्विद्या की मताओं को नहीं मानते हैं। सबत जा हरियाणा का शांति में रहना अधिक पसंद करता था। परंतु इस निष्कर्ष पर पहुँचने समय टाड महात्म्य ने आयुर्विद्या पर शायद ध्यान ही नहीं दिया और यह मान लिये कि आयुर्विद्या के इच्छुकों ने इन युद्धों में आयुर्विद्या ही अपना धर्म मानते थे मगर मरने के लिए सबके तयार रहने से और राजपूतों की तरफ ही आवृत्ति में किया कि यह किम्वदंता नही है उदाहरण लिये जा सकते हैं।

टाड महात्म्य का अनुमान और राजस्थान के सम्पादक तथा विद्वान् युद्ध महात्म्य ने इस मत का समर्थन करने के लिये किया है कि राजपूतों के कर्तव्य का उद्भव एक या कुशाण आक्रमण के समय हुआ था। गुजरात में जा कि वे वहाँ शांति में सम्प्रचित थे किन्तु घम का अनुभव किया। इन्हीं गुजरात के प्रमुखा ने राजपूतों के युद्ध उत्पन्न हुए। राज गौरव का प्राप्त जब इन विशिष्टों ने ब्राह्मण धर्म को स्वीकार कर लिया तो स्वभावतः उन्हें उन वंशों की वंश-परम्परा में सम्प्रचित बन्तन का प्रयत्न किया गया जिनका वंश गाथाएँ महाभारत और रामायण में सुगीत हैं। यहाँ से राजपूतों का उत्पत्ति सम्बन्धी स्मृतिक कथा का प्रारम्भ होता है। मिथ्या महात्म्य ने इस मत का स्वीकार करते हैं। इनके मतानुसार

But it is now certain that the origin of many clans dates from the Saka or Kushan invasion which began about the middle of the 2nd century B. C. or more certainly from that of the white Huns who destroyed the Gupta Empire about A. D. 450. The Gurjara tribe connected with the latter people adopted Hinduism and their leaders from the main stock from which the higher Rajput families sprang. When the new claimants to princely honours accepted the faith and institutions of Brahmanism the attempt would naturally be made to affiliate them selves to the mythical heroes whose exploits are recorded in the Mahabharat and Ramayan. Here arose the body of legend recorded in *The Annals* by which a fabulous origin from the Sun or Moon ascribed to two branches a genealogy claimed by other princely families like Incans of Peru or Mikado of Japan (W. Crooke *Tales Annals of Rajasthan* Intro Vol. I p. xxxi)

I have no doubt that the ruling families of both the Sakas and the Kushans when they became Hinduised were admitted to rank as Kshatriyas in the Hindu caste system but the fact can be inferred only from the analogy of what is ascertained to have happened in later ages—it can not be proved (*Early History of India* P. E. p. 42.)

षादेला राठोरा तथा गहरवारा की उत्पत्ति मूल निवासिया जस गाढ, भार तथा खवों सहृद्दी थी ।<sup>१</sup>

क्या राजपूत गुर्जर थे ?—कुछ विद्वाना का मत है कि राजपूत गुजर थे और चूकि गुजर विदेशी थे अतः राजपूत मा विदेशी जाति कथंशज थ । डा० मण्डारकर<sup>२</sup> न प्रतिहार, परमार चालुक्य तथा चाहमान—चारा अभिनूला का गुजर सिद्ध करन का प्रयत्न किया है। अपने मत के समर्थन म उनक द्वारा दिय गय तर्का म स कुछ निम्नलिखित है —

(१) राजार म पाय गय एक अभिलेख म आधुनिक जयपुर क दक्षिण-पूर्व म शासन करनवाळ प्रताहारा की एक गौण शाखा ने अपन का गुजर कहा है।

(२) कन्नड क प्रताहारा का राष्ट्रकूट न अपन अभिलेख म तथा अरवा न अपन यात्रा विवरणा म गुजर बताया है।

(३) चालुक्या न जब गुजरात प्रदेश को अधिकृत किया उमा समय स उसका यह नाम पडा। उनके अधिकार क पहलू वह लाट कहा जाता था। यदि चालुक्य गुजर नहा थ ता यह गुजरात नाम कस पडा।

डा० मण्डारकर न राजपूत कुला का गुजर सिद्ध करन क लिए इन तर्कों के जलावा भी कई अन्य प्रमाण प्रस्तुत किय हैं। उनका मत है कि ये गुजर खिजार हैं जा पाँचवा शताब्दी के प्रारम्भ म हूणा के साथ भारत म प्रविष्ट हुए।

कन्नौज के विजयपाल के सामन्त मयनदेव क राजार प्रस्तर लेख स स्पष्टतः हम पता चलता है कि राजपूत प्रतीहार गुजर थे क्वाकि उसम उल्लिखित गुजर प्रती हारावय इसी बात को ओर संकेत करता है। परन्तु अन्य विद्वाना ने कहा है कि राजपूत गुजर नहीं थे प्रत्युत गुजर प्रदेश के रहनेवाळ थ। डा० त्रिपाठी ने इस मत का विरोध किया है। उनका कथन है कि राजार अभिलेख का अर्थ अतः प्रत्यय मत्र श्री गुजर वाहित समस्त क्षेत्र समेत जश स्पष्टतः प्रकट करता है कि वे गुजर थ क्वाकि इसका कुछ दूसरा अर्थ ही नहीं लगाया जा सकता। राष्ट्रकूट राजा जमाथ वप के प्रथम सज्जन दानपत्र म प्रताहारो को गुजरराज कहा गया है। कन्नड कवि पम्पा ने भी महापाल प्रतीहार का गुजरराज कहा है। इन सब साक्ष्या से राजपूत गुजरही प्रमाणित होते हैं। परन्तु वद्य महोदय न इहें गुजर न बताया आयों की ही सन्तान बतायाहा। डा० मण्डारकर के मत का विरोध करते हुए उन्होंने निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किया है —

(१) डा० मण्डारकर ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि कन्नौज के प्रतीहारो न स्वयं को कभीमो गुजर नहीं कहा है। वत्सराज नागभट्ट जसे उनके नाम आम नाम हैं। उर्दू अपने अभिलेखा मे स्वयं का सूयवशी बताया है। राजशेखर न ज, उनके समकालीन थ उहें रघुकुन तिलक बताया है। आधुनिक जयपुर क दक्षिण पूर्व मशासन करनवाली प्रतिहार शाखा न अपने का अन्य प्रातहारा से पथक यतान क लिए ही स्वयं को गुजर कहा है। यह विभेद निवास-स्थान क नाम पर जाहित है।

(२) किमा जाति का गुजर कह दन से यह नहा प्रमाणित होता कि वह जाति

<sup>१</sup> *Early History of India* 3rd Ed p 322

<sup>२</sup> डा० मण्डारकर *Indian Antiquary* LX (1911)

गुजर उत्पत्ति की ही थी। उदाहरणाय मुसलमान आक्रमणकारियों को भी यवन कहा गया इसका यह अभिप्राय नहीं है कि मुसलमान नस्ल में यूनानी थे।

(३) साट का नाम गुजरात इसलिए नहीं पड़ा कि वहाँ पर चालुक्य शासन स्थापित हो गया बरन् ऐसा लगता है कि यह नाम गुजरात भाषा के आधार पर ही पड़ा होगा।

क्या राजपूत विदेशी थे ?—पाश्चात्य एवं कतिपय भारतीय विद्वानों ने राजपूतों का शक कुषाण या गुजर की ही सन्तान माना है और चूँकि ये विद्वानों थे अतः राजपूतों का भी विद्वानों से मतलब है। श्री गौरीशंकर आचार्य तथा श्री वल्लभ मन्नाथ ने इनका मत का खण्डन किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि राजपूत विदेशी नहीं बरन् भारतीय आर्यों की सन्तान थे। उन्होंने स्वयं का कभी भी विद्वानों से मतलब नहीं बताया है इसका विपरीत वे अपनी उत्पत्ति मूल या चद्र वंश से बताते हैं। उनका रीति रिवाज शक या कुषाणों के आने से पहले भी भारत में प्रचलित थे। मूल का पूजा वस्तु भारत में भी प्रचलित थी। अश्वमेध यज्ञ भी वस्तु पत्र से प्राप्त था जसा कि महाकाव्यों के सादर से प्रमाणित होता है। अथ तथा अन्न-भूजा भारत में क्षत्रियों द्वारा हमेशा की जाती थी। उनके गोत्र और प्रवर भी वे ही हैं जिनका उल्लेख वस्तु मूल में मिलता है। वस्तु आर्यों की सन्तानों के अनिश्चित विदेशी जातियों की सन्तानों कभी भी वदिक सभ्यता की सुरक्षित रखने के लिए इतनी दारता नहीं दिखा सकती थी। राजपूतों की लम्बी नामिका नम्बे सिर तथा उनका डान डोल स्पष्ट प्रमाणित करता है कि वे आर्यों की सन्तान थे विद्वानों की नहीं क्योंकि आर्यों की य विगपताएँ समार भर में प्रसिद्ध हैं।

# परिशिष्ट

(ख)

## वश-चक्ष

नागा या विम्बिसार वा वश

- (१) मट्टिय  
|
- (२) विम्बिसार  
|
- (३) अजातशत्रु  
|
- (४) उदयन  
|
- (५) दाशक (दशक)

## शैशुनाग वश

- (१) शिशुनाग  
|
- (२) वानाशाक (काक वण)  
|
- (३) नट्टिवधन

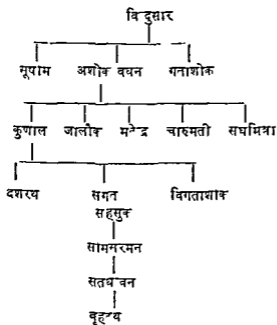
## नन्द वश

- (१) महापद्म  
|
- (२) महापद्म वा पुत्र

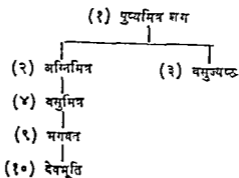
## मीय वश

चन्द्रगुप्त  
|  
विदुसार  
|



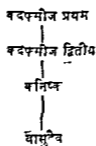


शुग वश

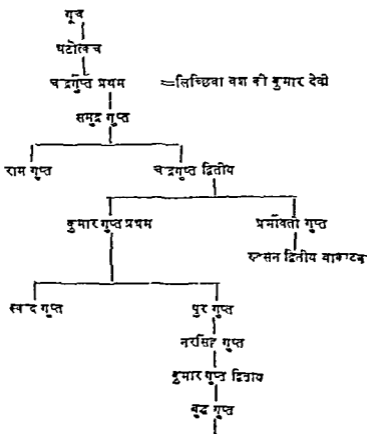




### कुषाण वंश



### गुप्त वंश





मौखरी वंश

हरिवंश

आदित्यवमन् = ह्य गुप्त उत्तरकात्यायन गण वग के वृ ग गुप्त को पुत्री

ईश्वरवमन्

ईशानवमन्

सूर्यवमन्

सर्ववमन्

अवन्तिवमन्

ग्रहवमन् =

पुत्री यानश्वर व प्रभाकर वयन की पुत्री

परवर्ती गुप्त वंश

दृष्ण गुप्त

ह्य गुप्त

ह्य गुप्त—आन्तियवमन् (मौखरी)

जीवित गुप्त प्रथम

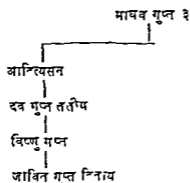
कुमारगुप्त तृतीय

दामोदर गुप्त

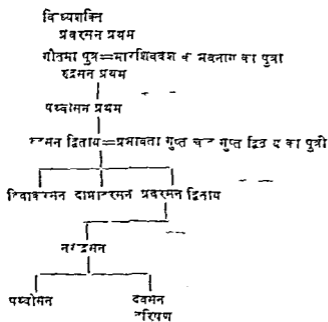
महासेन गुप्त

महासेन गुप्त (यानश्वर व आन्तियवमन्)

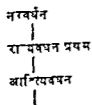
शैबगुप्त द्वितीय १ कुमारगुप्त २ माधवगुप्त ३

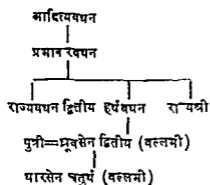


ब्राह्मणिक वंश

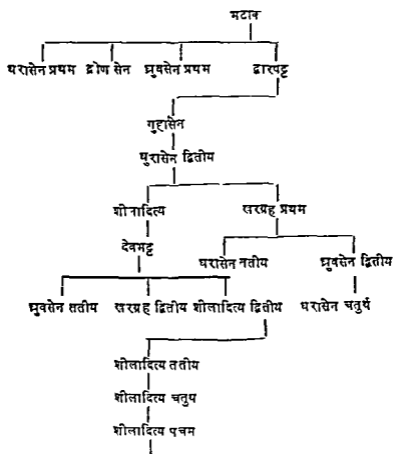


थानेश्वर और कन्नोज का वंश



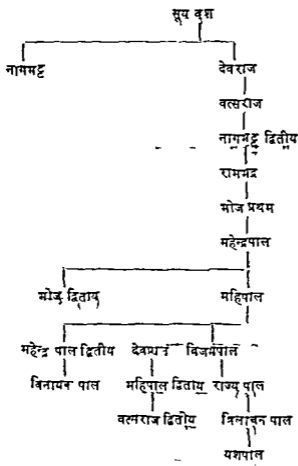


## वल्हमी के मौरव



शीलादित्य पंचम  
 |  
 शीलादित्य षष्ठम  
 |  
 शीलादित्य सप्तम

**प्रतीहार वंश**



**कन्नौज तथा बनारस के गहडवाल**

यादविवह  
 |  
 महीबहद  
 |

## प्राचीन भारत

- मन्वीष
- (१) च
- (२) मन्तपात
- (३) गावि
- (४) विजयच
- (५) जयचद्र
- (६) हरिच

## शाकम्भरी के चौहान

- (१) अपरिज
- (३) पृथ्वीराज प्रथम
- (२) विग्रहराज विलाश देव
- (४) सोमेश्वर
- (५) पृथ्वीराज द्वितीय

## मालवा के परमार

- (१) उपेन्द्र कृष्ण राज
- (२) बरिसिंह
- (३) शिषान्क प्रथम
- (४) वाकपति प्रथम
- (५) बरिसिंह द्वितीय
- (६) शिषान्क द्वितीय



(६) अग्निप्राक द्वितीय

(७) वाक्पति द्वितीय मुज

(८) विद्युराज

(९) माज प्रथम

(१०) जयसिंह प्रथम

(११) उत्पान्तिय

(१२) लक्ष्मण

(१३) नरवमन

(१) यशस्तवमन

(१५) अ—जयवमन

लक्ष्मीवमन

(१६) विध्यवमन्

हरिचन्द्र

(१७) सुमटवमन

(१८) अजुनवमन प्रथम

(१९) देवपाल

(२०) जवतुगि

(२१) जयवमन्

(२२) जयसिंह द्वितीय

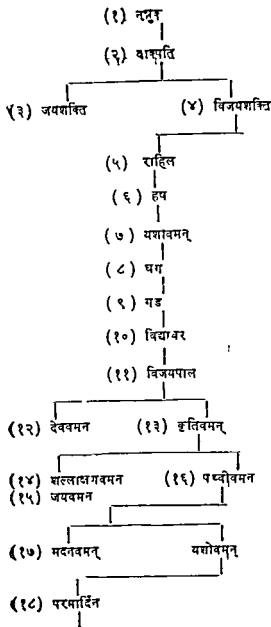
अजुनवमन द्वितीय

(२४) माज द्वितीय

(२५) मलहार

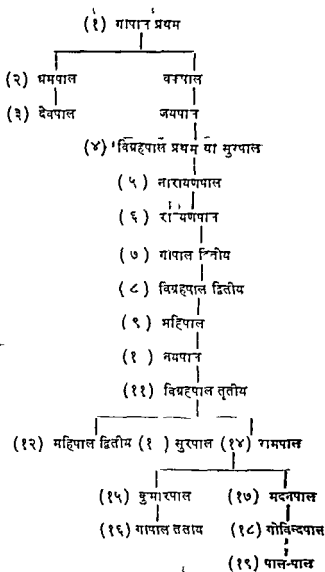
(२६) जयसिंह तृतीय

## कुटिलखण्ड के चन्देल



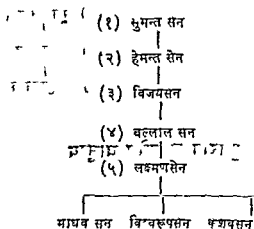


## बंगाल तथा त्रिहार के पाल

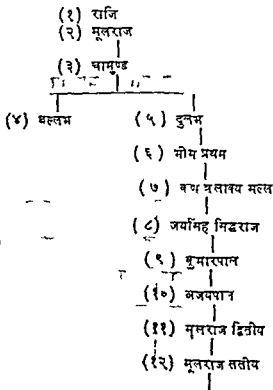


बंगाल के सेन

(१) मुमुक्षु सेन

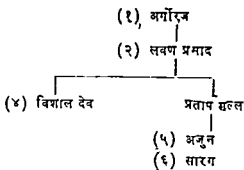


### गुजरात के चालुक्य

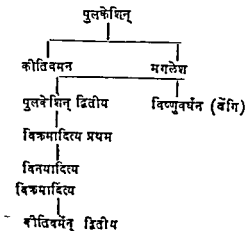


- (१२) मूमराज तृतीय  
 |  
 (१३) जयन्त सिंह  
 |  
 (१४) त्रिमुखनपाल

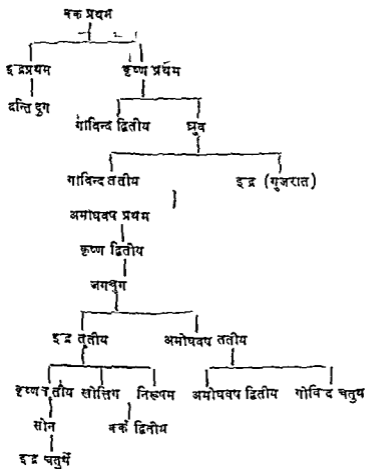
### गुजरात के बघेल चालुक्य



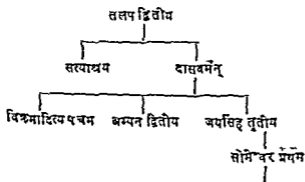
### वातापी के चालुक्य



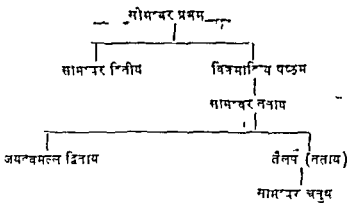
मान्यजत के राष्ट्रकूट



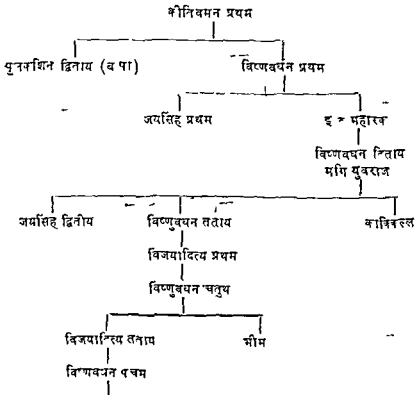
कल्याण के चालुक्य



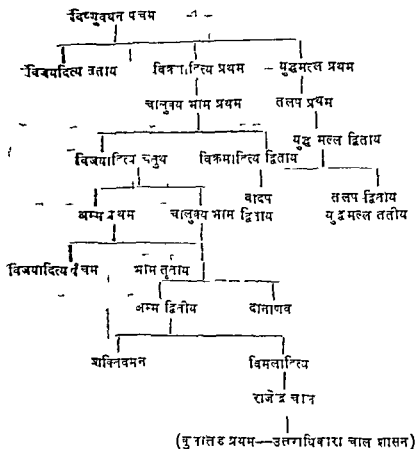
प्राचीन भारत



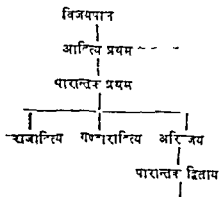
वैगि के चालुक्य

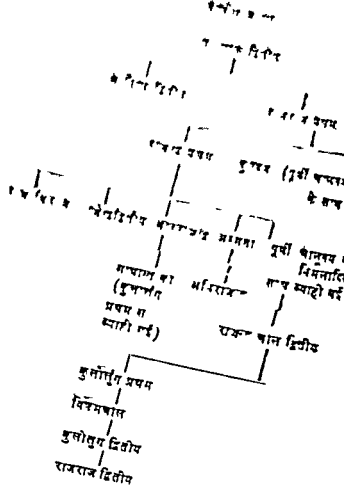






तझोर के चौत





—





## प्रथम भाग

